# पद्मपुराण

## अनुक्रमणिका


001) पद्म-चरित में वर्णनीय विषयों का संक्षेप में निरूपण
001) महाराज श्रेणिक की चिन्ता
003) विद्याधर लोक का वर्णन
003) ऋषभदेव का महात्म्य
005) राक्षसवंश
005) वानरवंश
007) दशानन
007) अष्टमं पर्व
009) बालि निर्वाण
009) राजा सहस्ररश्मि और अनरण्य की दीक्षा
011) राजा मरुत्व के यज्ञ का विध्वंस
011) इन्द्र विद्याधर की हार
013) इन्द्र को निर्वाण
013) अनन्तबल केवली के द्वारा धर्मोपदेश
015) अञ्जनासुन्दरी का विवाह
015) पवनंजय और अंजना का समागम
017) हनूमान् का जन्म
017) पवनंजय और अंजना का पुन: समागम
019) रावण का साम्राज्य
019) तीर्थकरादि के भव
021) भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, वज्रबाहु तथा राजा कीर्तिधर का माहात्म्य
021) राजा दशरथ की उत्पत्ति
023) विभीषण का व्यसन
023) केकया को वरदान
025) राम आदि चार भाइयों की उत्पत्ति
025) सीता और भामंडल की उत्पत्ति
027) म्लेच्छों की पराजय
027) राम-लक्ष्मण को स्वयंवर में रत्नमाला की प्राप्ति
029) राजा दशरथ को वैराग्य
029) भामंडल का समागम
031) राजा दशरथ को वैराग्य
031) दशरथ की दीक्षा, राम का वनगमन, भरत का राज्याभिषेक
033) वज्रकर्ण
033) बालिखिल्य
035) कपिल
035) वनमाला
037) राजा अतिवीर्य की दीक्षा
037) जितपद्मा
039) देशभूषण, कुलभूषण केवली
039) रामगिरि
041) जटायु
041) दंडक वन में निवास
043) शंबूक वध
043) सीताहरण और रामविलाप
045) सीता के वियोग जन्यदाह
045) रावण के माया के विविध रूप

047) साहसगति का वध
047) लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला उठाना
049) हनुमान का प्रस्थान
049) महेंद्र का पुत्री के साथ समागम
051) राम को गंधर्व कन्याओं की प्राप्ति
051) हनुमान् को लंकासुंदरी कन्या की प्राप्ति
053) हनुमान का लौटना
053) लंका के लिए प्रस्थान
055) विभीषण का समागम
055) राम और रावण की सेनाओं का प्रयाण
057) रावण की सेना लंका से बाहर निकली
057) हस्त-प्रहस्त का वध
059) हस्त-प्रहस्त और नल-नील के पूर्वभव
059) राम-लक्ष्मण को विद्याओं की प्राप्ति
061) सुग्रीव और भामंडल का नागपाश दूर होना
061) लक्ष्मण को शक्ति लगना
063) शक्तिभेद एवं रामविलाप
063) विशल्या का पूर्वभव
065) विशल्या का समागम
065) रावण के दूत का राम के पास जाना
067) शांतिजिनालय
067) फाल्गुन मास की अष्टाह्निकाओं की महिमा
069) लोगों द्वारा नियम लेना
069) सम्यग्दृष्टि देवों का प्रातिहार्यपना
071) रावण को बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि
071) रावण का युद्ध संबंधी निश्चय
073) युद्ध का उद्योग
073) रावण और लक्ष्मण का युद्ध
075) लक्ष्मण को चक्ररत्न की उत्पत्ति
075) रावण का वध
077) प्रीतिंकर
077) इंद्रजित् आदि की दीक्षा
079) सीता का समागम
079) मय मुनिराज
081) अयोध्या का वर्णन
081) राम-लक्ष्मण का समागम
083) त्रिलोकमंडन हाथी का क्षुभित होना
083) त्रिलोकमंडन हाथी का शांत होना
085) त्रिलोकमंडन हाथी का पूर्वभव
085) भरत और केकया की दीक्षा
087) भरत को निर्वाण
087) राज्याभिषेक
089) मधुसुंदर का वध
089) मथुरा पर उपसर्ग
091) शत्रुघ्न के भव
091) सप्तर्षियों द्वारा उपसर्ग नाश
093) मनोरमा की प्राप्ति
093) राम-लक्ष्मण की विभूति
095) सीता को जिनेंद्र पूजारूप दोहला
095) राम द्वारा लोकनिंदा की चिंता
097) सीता का निर्वासन, विलाप
097) सीता को सांत्वना
099) राम को शोक

099) लवणांकुश की उत्पत्ति
101) लवणांकुश की दिग्विजय
101) लवणांकुश द्वारा युद्ध
103) राम तथा लवणांकुश के समागम
103) सकलभूषण का केवलज्ञानोत्सव
105) राम द्वारा धर्म श्रवण
105) रामआदि के पूर्वभव
107) सीता द्वारा दीक्षा धारण
107) लवणांकुश के पूर्वभव
109) राजा मधु
109) आठ कुमारों की दीक्षा
111) भामंडल का परलोकगमन
111) हनूमान् को वैराग्य
113) हनूमान् को निर्वाण
113) इंद्र और देवों के बीच हुई कथा
115) लक्ष्मण का मरण
115) श्रीरामदेव के विप्रलाप
117) विभीषण द्वारा सम्बोधन
117) लक्ष्मण का संस्कार
119) राम की दीक्षा
119) नगर में क्षोभ
121) श्रीराम को आहार दान
121) श्रीराममुनि को केवलज्ञान
123) बलदेव की सिद्धि-प्राप्ति

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
**अर्थ** : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

## पद्म-चरित में वर्णनीय विषयों का संक्षेप में निरूपण

प्रथमं पर्व
कथा :
चिदानन्द चैतन्य के गुण अनन्त उर धार ।
भाषा पद्मपुराण की भाषूँ श्रुति अनुसार ॥ -दौलतरामजी
जो स्वयं कृतकृत्य हैं, जिनके प्रसाद से भव्यजीवों के मनोरथ पूर्ण होते हैं, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन करनेवाले हैं, जिनके चरण-कमलों की किरणरूपी केशर इन्द्रों के मुकुटों से आश्लिष्ट हो रही है तथा जो तीनों लोकों में मंगलस्वरूप हैं ऐसे महावीर भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१-२॥
जो योगी थे, समस्त विद्याओं के विधाता और स्वयम्भू थे ऐसे अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभजिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥३॥
जिन्होंने समस्त अन्तरंग और बहिरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली ऐसे अजितनाथ भगवान् को तथा जिनसे शिव **अर्थ**ात् सुख प्राप्त होता है ऐसे सार्थक नाम को धारण करनेवाले शम्भवनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥४॥
समस्त संसार को आनन्दित करनेवाले अभिनन्दन भगवान् को एवं सम्यग्ज्ञान के धारक और अन्य मत-मतान्तरों का निराकरण करनेवाले सुमतिनाथ जितेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥५॥
उदित होते हुए सूर्य की किरणों से व्याप्त कमलों के समूह के समान कान्ति को धारण करनेवाले पद्मप्रभ भगवान् को तथा जिनकी पसली अत्यन्त सुन्दर थीं ऐसे सर्वज्ञ सुपार्श्व-नाथ जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥६॥
जिनके शरीर की प्रभा शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान थी ऐसे अत्यन्त श्रेष्ठ चन्द्रप्रभ स्वामी को और जिनके दाँत फूले हुए कुन्द पुष्प के समान कान्ति के धारक थे ऐसे पुष्पदन्त भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥७॥
जो शीतल **अर्थ**ात् शान्तिदायक ध्यान के देनेवाले थे ऐसे शीतलनाथ जितेन्द्र को तथा जो कल्याण रूप थे एवं भव्य-जीवों को धर्म का उपदेश देते थे ऐसे श्रेयांसनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥८॥
जो सज्जनों के स्वामी थे एवं कुबेर के द्वारा पूज्य थे ऐसे वासुपूज्य भगवान् को और संसार के मूलकारण मिथ्या-दर्शन आदि मलों से बहुत दूर रहनेवाले श्रीविमलनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥९॥
जो अनन्त-ज्ञान को धारण करते थे तथा जिनका दर्शन अत्यन्त सुन्दर था ऐसे अनन्तनाथ जिनेन्द्र को, धर्म के स्थायी आधार धर्मनाथ स्वामी को और शान्ति के द्वारा ही शत्रुओं को जीतनेवाले शान्तिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ ॥१०॥
जिन्होंने कुन्थु आदि समस्त प्राणियों के लिए हित का निरूपण किया था ऐसे कुन्थुनाथ भगवान् को और समस्त दुःखों से मुक्ति पाकर जिन्होंने अनन्तसुख प्राप्त किया था ऐसे अरनाथ जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥११॥

जो संसार को नष्ट करने के लिए अद्वितीय मल्ल थे ऐसे मलरहित मल्लिनाथ भगवान् को और जिन्हें समस्त लोग प्रणाम करते थे तथा सुर-असुर सभी के गुरु थे ऐसे नमिनाथ स्वामी को नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

जो बहुत भारी अरिष्ट **अर्थ**ात् दु:ख-समूह को नष्ट करने के लिए नेमि अर्थात् चक्रधारा के समान थे साथ ही अतिशय कान्ति के धारक थे, ऐसे अरिष्टनेमि नामक बाईसवें तीर्थंकर को तथा जिनके समीप में धरणेन्द्र आकर बैठा था साथ हीं जो समस्त प्रजा के स्वामी थे ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

जो उत्तम व्रतों का उपदेश देनेवाले थे, जिन्होंने क्षुधा, तृषा आदि दोष नष्ट कर दिये थे और जिनके तीर्थ में पद्म **अर्थ**ात् कथानायक रामचन्द्रजी का शुभचरित उत्पन्न हुआ था ऐसे मुनि-सुव्रतनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

इनके सिवाय महाभाग्यशाली गणधरों आदि को लेकर अन्यान्य मुनिराजों को मन, वचन, काय से बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥१५॥

इस प्रकार प्रणाम कर मैं उन रामचन्द्रजी का चरित्र कहूँगा जिनका कि वक्षःस्थल पद्मा **अर्थ**ात् लक्ष्मी अथवा पद्म नामक चिह्न से अलिंगित था, जिनका मुख प्रफुल्लित कमल के समान था, जो विशाल पुण्य के धारक थे, बुद्धिमान् थे, अनन्त गुणों के गृहस्वरूप थे और उदार-उत्कृष्ट चेष्टाओं के धारक थे । उनका चरित्र कहने में यद्यपि श्रुतकेवली ही समर्थ हैं तो भी आचार्य-परम्परा के उपदेश से आये हुए उस उत्कृष्ट चरित्र को मेरे जैसे क्षुद्र पुरुष भी कर रहे हैं, सो उसका कारण स्पष्ट ही है ॥१६-१८॥

मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा संचरित मार्ग में हरिण भी चले जाते है तथा जिनके आगे बड़ेबड़े योद्धा चल रहे हैं ऐसे साधारण योद्धा भी युद्ध में प्रवेश करते ही हैं ॥१९॥

सूर्य के द्वारा प्रकाशित पदार्थों को साधारण मनुष्य सुखपूर्वक देख लेते हैं और सुई के अग्रभाग से बिदारे हुए मणि में सूत अनायास ही प्रवेश कर लेता है ॥२०॥

रामचन्द्रजी का जो चरित्र विद्वानों की परम्परा से चला आ रहा है उसे पूछने के लिए मेरी बुद्धि भक्ति से प्रेरित होकर ही उद्यत हुई है ॥२१॥

विशिष्ट पुरुषों के चिन्तवन से तत्काल जो महान् पुण्य प्राप्त होता है उसी के द्वारा रक्षित होकर मेरी वाणी सुन्दरता को प्राप्त हुई है ॥२२॥

जिस पुरुष की वाणी में अकार आदि अक्षर तो व्यक्त है पर जो सत्पुरुषों की कथा को प्राप्त नहीं करायी गयी है उसकी वह वाणी निष्फल है और केवल पाप-संचय का ही कारण है ॥२३॥

महा- पुरुषों का कीर्तन करने से विज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है, निर्मल यश फैलता है और पाप दूर चला जाता है ॥२४॥

जीवों का यह शरीर रोगों से भरा हुआ है तथा अल्प काल तक ही ठहरनेवाला है परन्तु सत्पुरुषों की कथा से जो यश उत्पन्न होता है वह जबतक सूर्य, चन्द्रमा और तारे रहेंगे तबतक रहता है ॥२५॥

इसलिए आत्मज्ञानी पुरुष को सब प्रकार का प्रयत्न कर महापुरुषों के कीर्तन से अपना शरीर स्थायी बनाना चाहिए **अर्थ**ात् यश प्राप्त करना चाहिए ॥२६॥

जो मनुष्य सज्जनों को आनन्द देनेवाली मनोहारिणी कथा करता है वह दोनों लोकों का फल प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

मनुष्य के जो कान सत्पुरुषों की कथा का श्रवण करते हैं मैं उन्हें ही कान मानता हूँ बाकी तो विदूषक के कानों के समान केवल कानों का आकार ही धारण करते हैं ॥२८॥

सत्पुरुषों की चेष्टा को वर्णन करनेवाले वर्ण-अक्षर जिस मस्तक में घूमते हैं वही वास्तव में मस्तक है बाकी तो नारियल के करक-कड़े आवरण के समान हैं ॥२९॥

जो जिह्वा सत्पुरुषों के कीर्तन रूपी अमृत का आस्वाद लेने में लीन है मैं उन्हें ही जिह्वा मानता हूँ बाकी तो दुर्वचनों को कहनेवाली छुरी का मानो फलक ही है ॥३०॥

श्रेष्ठ ओंठ वे ही हैं जो कि सत्पुरुषों का कीर्तन करने में लगे रहते हैं बाकी तो शम्बूक नामक जन्तु के मुख से मुक्त जोंक के पृष्ठ के समान ही हैं ॥३१॥

दाँत वही हैं जो कि शान्त पुरुषों की कथा के समागमे से सदा रंजित रहते हैं; उसी में लगे रहते हैं बाकी तो कफ निकलने के द्वार को रोकनेवाले मानो आवरण ही हैं ॥३२॥

मुख वही है जो कल्याण की प्राप्ति का प्रमुख कारण है और श्रेष्ठ पुरुषों की कथा कहने में सदा अनुरक्त रहता है बाकी तो मल से भरा

एवं दन्तरूपी कीड़ों से व्याप्त मानो गड्ढा ही है ॥३३॥
जो मनुष्य कल्याणकारी वचन कहता अथवा सुनता वास्तव में वही मनुष्य है बाकी तो शिल्पकार के द्वारा बनाने हुए मनुष्य के पुतले के समान हैं ॥३४॥
जिस प्रकार दूध और पानी के समूह में-से हंस समस्त दूध को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार सत्पुरुष गुण और दोषों के समूह में-से गुणों को ही ग्रहण करते हैं ॥३५॥
और जिसप्रकार कान हाथियों के गण्डस्थल से मुक्ताफलों को छोड़कर केवल मांस ही ग्रहण करते हैं उसीप्रकार दुर्जन, गुण और दोषों के समूह में-से केवल दोषों को ही ग्रहण करते हैं ॥३६॥
जिसप्रकार उलूक पक्षी सूर्य की मूर्ति को तमालपत्र के समान काली-काली ही देखते हैं उसी प्रकार दुष्ट पुरुष निर्दोष रचना को भी दोषयुक्त ही देखते हैं ॥३७॥
जिस प्रकार किसी सरोवर में जल आने के द्वार पर लगी हुई जाली जल को तो नहीं रोकती किन्तु कूड़ा-कर्कट को रोक लेती है उसीप्रकार दुष्ट मनुष्य गुणों को तो नहीं रोक पाते किन्तु कूड़ा-कर्कट के समान दोषों को ही रोककर धारण करते हैं ॥३८॥
सज्जन और दुर्जन का ऐसा स्वभाव ही है यह विचारकर सत्पुरुष स्वार्थ-आत्मप्रयोजन को लेकर ही कथा की रचना करने में प्रवृत्त होते हैं ॥३९॥
उत्तम कथा के सुनने से मनुष्यों की जो सुख उत्पन्न होता है वही बुद्धिमान् मनुष्यों का स्वार्थ-आत्म-प्रयोजन कहलाता है तथा यही पुण्योपार्जन का कारण होता है ॥४०॥
श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ यह **अर्थ** इन्द्रभूति नामक गौतम गणधर को प्राप्त हुआ । फिर धारिणी के पुत्र सुधर्माचार्य को प्राप्त हुआ फिर प्रभव को प्राप्त हुआ, फिर कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ । उनके अनन्तर उत्तरवाग्मी मुनि को प्राप्त हुआ । तदनन्तर उनका लिखा प्राप्त कर यह रविषेणाचार्य का प्रयत्न प्रकट हुआ है ॥४१-४२॥
इस पुराण में निम्नलिखित सात अधिकार हैं --लोकस्थिति,वंशों की उत्पत्ति,वन के लिए प्रस्थान, मृत,लवणांकुश की उत्पत्ति,भवान्तर निरूपण और रामचन्द्रजी का निर्वाण । ये सातों ही अधिकार अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर पर्वों से सहित हैं ॥४३-४४॥
रामचन्द्रजी की कथा-का सम्बन्ध बतलाने के लिए भगवान् महावीर स्वामी की भी संक्षिप्त कथा कहूँगा, जो इस प्रकार है ।
एक बार कुशाग्र पर्वत (विपुलाचल) के शिखरपर भगवान् महावीर स्वामी समवसरण सहित आकर विराजमान हुए । जिसमें राजा श्रेणिक ने जाकर इन्द्रभूति गणधर से प्रश्न किया । उस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने सर्वप्रथम युगों का वर्णन किया । फिर कुलकरों की उत्पत्ति का वर्णन हुआ । अकस्मात् दु:ख के कारण देखने से जगत् के जीवों को भय उत्पन्न हुआ इसका वर्णन किया ॥४५-४७॥
भगवान् ऋषभदेव की उत्पत्ति, सुमेरु पर्वत पर उनका अभिषेक और लोक की पीड़ा को नष्ट करने-वाला उनका विविध प्रकार का उपदेश बताया गया ॥४८॥
भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा धारण की, उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उनका लोकोत्तर ऐश्वर्य प्रकट हुआ, सब इन्द्रों का आगमन हुआ और भगवान् को मोक्ष-सुख का समागम हुआ ॥४९॥
भरत के साथ बाहुबली का बहुत भारी युद्ध हुआ, ब्राह्मणों की उत्पत्ति और मिथ्याधर्म को फैलानेवाले कुतीर्थियों का आविर्भाव हुआ ॥५०॥
इक्ष्वाकु आदि वंशों की उत्पत्ति, उनकी प्रशंसा का निरूपण, विद्याधरों की उत्पत्ति तथा उनके वंश में विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर के द्वारा संजयन्त मुनि को उपसर्ग हुआ । मुनिराज उपसर्ग सह केवलज्ञानी होकर निर्वाण को प्राप्त हुए । इस घटना से धरणेन्द्र को विद्युद्दंष्ट्र के प्रति बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसकी विद्याएँ छीन लीं तथा उसे बहुत भारी तजंना दी ॥५१-५२॥
तदनन्तर भी अजितनाथ भगवान् का जन्म, पूर्णमेघ विद्याधर और उसकी पुत्री के सुख का वर्णन, विद्याधर कुमार का भगवान् अजितनाथ की शरण में आना, राक्षस द्वीप के स्वामी व्यन्तर देव का आना तथा प्रसन्न होकर पूर्णमेघ के लिए राक्षस द्वीप का देवी, सगर चक्रवर्ती का उत्पन्न होना, पुत्रों का मरण सुन उसके दुःख से उन्होंने दीक्षाधारण की तथा निर्वाण प्राप्त किया ॥५३-५४॥
पूर्णमेघ के वंश में महारक्ष का जन्म तथा वानर-वंशी विद्याधरों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन ॥५५॥

विद्युत्केश विद्याधर का चरित्र, तदनन्तर उदधिविक्रम और अमरविक्रम विद्याधर का कथन, वानर-वंशियों में किष्किन्ध और अन्धक नामक विद्याधरों का जन्म लेना, भीमा का विद्याधरी का संगम होना ॥५६॥

विजयसिंह के वध से अशनिवेग को क्रोध उत्ताल होना, अन्धक का मारा जाना और वानरवंशियों का मधुपर्वत के शिखरपर किष्किन्धपुर नामक नगर बसाकर उसमें निवास करना । सुकेशी के पुत्र आदि को लंका की प्राप्ति होना ॥५७-५८॥

विनीत विद्याधर के वध से माली को बहुत भारी सम्पदा का प्राप्त होना, विजयार्ध पर्वत के दक्षिणभाग सम्बन्धी रथनूपर नगर में समस्त विद्याधरों के अधिपति इन्द्रनामक विद्याधर का जन्म लेना, बाली का मारा जानाँ और वैश्रवण का उत्पन्न होना ॥५९-६०॥

सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा का पुष्पान्तक नामक नगर बसाना, कैकसी के साथ उसका संयोग होना, और कैकसी का शुभ स्वप्नों का देखना ॥६१॥

रावण का उत्पन्न होना और विद्याओं का साधन करना, अनावृत नामक देव को क्षोभ होना तथा सुमाली का आगमन होना ॥६२॥

रावण को मन्दोदरी की प्राप्ति होना, साथ ही अन्य अनेक कन्याओं का अवलोकन होना और भानुकर्ण की चेष्टाओं से वैश्रवण का कुपित होना ॥६३॥

पक्ष और राक्षस नामक विद्याधरों का संग्राम, वैश्रवण का तप धारण करना, रावण का लंका में आना और श्रेष्ठ चैत्यालयों का अवलोकन करना ॥६४॥

पापों को नष्ट करनेवाला हरिषेण चक्रवर्ती का माहात्म्य, त्रिलोकमण्डन हाथी का अवलोकन ॥६५॥

यम नामक लोकपाल को अपने स्थान से च्युत करना तथा वानरवंशी राजा सूर्यरज को किष्किन्धापुर का संगम करना । तदनन्तर रावण की बहन शूर्पणखा को खरदूषण द्वारा हर ले जाना और उसी के साथ विवाह देना और खरदूषण का पाताल लंका जाना ॥६६॥

चन्द्रोदर का युद्ध में मारा जाना और उसके वियोग से उसकी रानी अनुराधा को बहुत दु:ख उठाना, चन्द्रोदर के पुत्र विराधित का नगर से भ्रष्ट होना तथा सुग्रीव को राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होना ॥६७॥

बालि का दीक्षा लेना, रावण का कैलास पर्वत को उठाना, सुग्रीव को सुतारा की प्राप्ति होना, सुतारा की प्राप्ति न होने से साहसगति विद्याधर को सन्तान का होना तथा रावण का विजयार्ध पर्वत पर जाना ॥६८-६९॥

राजा अनरण्य और सहस्ररश्मि का विरक्त होना, रावण के द्वारा बल का नाश हुआ उसका वर्णन, मधु के पूर्वभवों का व्याख्यान और रावण की पुत्री उपरम्भा का मधु के साथ अभिभाषण ॥७०॥

रावण को विधा का लाभ होना, इन्द्र की राज्यलक्ष्मी का क्षय होना, रावण का सुमेरु पर्वत पर जाना और वहाँ से वापस लौटना ॥७१॥

अनन्तवीर्यमुनि को केवलज्ञान उत्पन्न होना, रावण का उनके समक्ष यह नियम ग्रहण करना कि 'जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसे नहीं चाहूँगा', तदनन्तर वानरवंशी महात्मा हनुमान् के जन्म का वर्णन ॥७२॥ कैलास पर्वत पर अंजना के पिता राजा महेन्द्र का पवनंजय के पिता राजा प्रह्लाद से यह भाषण होना कि हमारी पुत्री का तुम्हारे पुत्र से सम्बन्ध हो, पवनंजय के साथ अंजना का विवाह, पवनंजय का कुपित होना । तदनन्तर चकवा-चकवी का वियोग देख प्रसन्न होना, अंजना के गर्भ रहना और सासु द्वारा उसका घर से निकाला जाना ॥७३॥

मुनिराज के द्वारा हनुमान् के पूर्वजन्म का कथन होना, गुफा में हनुमान् का जन्म होना और अंजना के मामा प्रतिसूर्य के द्वारा अंजना तथा हनुमान् को हनुरुह द्वीप में ले जाना ॥७४॥

तदनन्तर पवनंजय का भूताटवी में प्रवेश, वहाँ उसका हाथी देख प्रतिसूर्य विद्याधर का आगमन और अंजना को देखने का पवनंजय को बहुत भारी हर्ष हुआ इसका वर्णन ॥७५॥

हनुमान् के द्वारा रावण को सहायता की प्राप्ति तथा वरुण के साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध होना । रावण के महान् राज्य का वर्णन तथा तीर्थकरों की ऊंचाई और अन्तराल आदि का निरूपण ॥७६॥

बलभद्र, नारायण और उनके शत्रु प्रतिनारायण आदि की छह खण्डों में होनेवाली चेष्टाओं का वर्णन, राजा दशरथ की उत्पत्ति और कैकयी को वरदान देने का कथन ॥७७॥

राजा दशरथ के राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत का जन्म होना, राजा जनक के सीता की उत्पत्ति और भामण्डल के हरण से उसकी माता

को शोक उत्पन्न होना ॥७८॥
नारद के द्वारा चित्र में लिखी सीता को देख भाई भामण्डल को मोह उत्पन्न होना, सीता के स्वयंवर का वृत्तान्त और स्वयंवर में धनुषरत्न का प्रकट होना ॥७९॥
सर्वभूतशरण्य नामक मुनिराज के पास राजा दशरथ का दीक्षा लेना, सीता को देखकर भामण्डल को अन्य भवों का ज्ञान होना ॥८०॥
कैकयी के वरदान के कारण भरत को राज्य मिलना और सीता, राम तथा लक्ष्मण का दक्षिण दिशा की ओर जाना ॥८१॥
वज्रकर्ण का चरित्र, लक्ष्मण को कल्याणमाला स्त्री का लाभ होना, रुद्रभूति को वश में करना और बालखिल्य को छुड़ाना ॥८२॥
अरुण ग्राम में श्रीराम का आना, वहां देवों के द्वारा बसायी हुई रामपुरी नगरी में रहना, लक्ष्मण का वनमाला के साथ समागम होना और अतिवीर्य की उन्नति का वर्णन ॥८३॥
तदनन्तर लक्ष्मण को जितपद्मा की प्राप्ति होना, कुलभूषण और देशभूषण मुनि का चरित्र, श्रीराम ने वंशस्थल पर्वत पर जिनमन्दिर बनवाये उनका वर्णन ॥८४॥
जटायु पक्षी को व्रतप्राप्ति, पात्रदान के फल की महिमा, बड़े-बड़े हाथियों से जुते रथपर राम-लक्ष्मण आदि का आरूढ़ होना, तथा शम्बूक का मारा जाना ॥८५॥
शूर्पणखा का वृत्तान्त, खरदूषण के साथ श्रीराम के युद्ध का वर्णन, सीता के वियोग से राम को बहुत भारी शोक का होना ॥८६॥
विराधित नामक विद्याधर का आगमन, खरदूषण का मरण, रावण के द्वारा रत्नजटी विद्याधर की विद्याओं का छेदा जाना तथा सुग्रीव का राम के साथ समागम होना ॥८७॥
सुग्रीव के निमित्त राम ने साहसगति को मारा, रत्नवती ने सीता का सब वृत्तान्त राम से कहा, राम ने आकाशमार्ग से लंका पर चढ़ाई की, विभीषण राम से आकर मिला और राम तथा लक्ष्मण को सिंहवाहिनी गरुडवाहिनी विद्याओं की प्राप्ति हुई ॥८८॥
इन्द्रजीत्, कुम्भकर्ण और मेघनाद का नागपाश से बाँधा जाना, लक्ष्मण को शक्ति लगना और विशल्या के द्वारा शल्यरहित होना ॥८९॥
बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने के लिए रावण का शान्तिनाथ भगवान् के मन्दिर में प्रवेश कर स्तुति करना, राम के कटक के विद्याधर कुमारों का लंका पर आकमण करना, देवों के प्रभाव से विद्याधर कुमारों का पीछे कटक में वापस आना ॥९०॥
लक्ष्मण को चक्ररत्न की प्राप्ति होना, रावण का मारा जाना, उसकी स्त्रियों का विलाप करना तथा केवली का आगमन ॥९१॥ इन्द्रजित् आदि का दीक्षा लेना, राम का सीता के साथ समागम होना, नारद का आना और श्रीराम का अयोध्या में वापस आकर प्रवेश करना ॥९२॥
भरत और त्रिलोकमण्डन हाथी के पूर्वभव का वर्णन, भरत का वैराग्य, राम तथा लक्ष्मण के राज्य का विस्तार ॥९३॥
जिसका वक्षःस्थल राजलक्ष्मी से आलिंगित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण के लिए मनोरमा की प्राप्ति होना, युद्ध में मधु और लवण का मारा जाना ॥९४॥
अनेक देशों के साथ मथुरा नगरी में धरणेन्द्र के कोप से मरी रोग का उपसर्ग और सप्तर्षियों के प्रभाव से उसका दूर होना, सीता को घर से निकालना तथा उसके विलाप का वर्णन ॥९५॥
राजा वज्रजंघ के द्वारा सीता की रक्षा होना, लवणांकुश का जन्म लेना, बड़े होने पर लवणांकुश के द्वारा अन्य राजाओं का पराभव होकर वज्रजंघ के राज्य का विस्तार किया जाना और अन्त में उनका अपने पिता रामचन्द्र जी के साथ यद्ध होना ॥९६॥
सर्वभूषण मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त होने के उपलक्ष्य में देवों का आना, अग्निपरीक्षा द्वारा सीता का अपवाद दूर होना, विभीषण के भवान्तरों का निरूपण ॥९७॥ कृतान्तवक्र सेनापति का तप लेना, स्वयंवर में राम और लक्ष्मण के पुत्रों में क्षोभ होना, लक्ष्मण के पुत्रों का दीक्षा धारण करना और विद्युत्पात से भामण्डल का दुर्मरण होना ॥९८॥
हनुमान् का दीक्षा लेना, लक्ष्मण का मरण होना, राम के पुत्रों का तप धारण करना और भाई के वियोग से राम को बहुत भारी शोक का उत्पन्न होना ॥९९॥
पूर्वभव के मित्र देव के द्वारा उत्पादित प्रतिबोध से राम का दीक्षा लेना, केवल-ज्ञान प्राप्त होना और निर्वाणपद की प्राप्ति करना ॥१००॥ हे सत्पुरुषों ! रामचन्द्र का यह चरित्र मोक्षपदरूपी मन्दिर की प्राप्ति के लिए सीढ़ी के समान है तथा सुखदायक है इसलिए इस सब चरित्र को तुम मन स्थिर कर सुनो ॥१०१॥

जो मनुष्य श्रीराम आदि श्रेष्ठ मुनियों का ध्यान करते हैं और उनके प्रति अतिशय भक्ति-भाव से नम्रीभूत हृदय से प्रमोद की धारणा करते हैं उनका चिरसंचित पाप-कर्म हजार टूक होकर नाश को प्राप्त होता है फिर जो उनके चन्द्रमा के समान उज्ज्वल समस्त चरित्र को सुनते हैं उनका तो कहना ही क्या है? ॥१०२॥

आचार्य रविषेण कहते हैं कि इस तरह यह चरित्र उन्हीं इन्द्रभूति गणधर के द्वारा किया हुआ है और पाप उत्पन्न करनेवाला यह अशुभ कर्म उन्हीं के द्वारा नष्ट किया गया है, इसलिए हे विवेकशाली चतुर पुरुषों, प्राचीन पुरुषों के द्वारा सेवित इस परम पवित्र चरित्र की तुम सब शक्ति के अनुसार सेवा करो, इसका पठन-पाठन करो क्योंकि जब सूर्य के द्वारा समीचीन मार्ग प्रकट कर दिया जाता है तब ऐसा कौन भली दृष्टि का धारक होगा जो स्खलित होगा (चूककर नीचे गिरेगा) ॥१०३॥

(इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य निर्मित पद्म-चरित में वर्णनीय विषयों का संक्षेप में निरूपण करनेवाला प्रथम पर्व पूर्ण हुआ ।)

## महाराज श्रेणिक की चिन्ता

द्वितीयं पर्व

कथा :

अथानान्तर -- जम्बू द्वीप के भरैत क्षेत्र में मगध नाम से प्रसिद्ध एक अत्यन्त उज्जवल देश है ॥१॥

वह देश पूर्ण पुण्य के धारक मनुष्यों का निवासस्थान है, इन्द्र की नगरी के समान जान पडता है और उदारतापूर्ण व्यवहार से लोगों की सब व्यवस्था करता है ॥२॥

जिस देश के खेत हलों के अग्रभाग से विदारण किये हुए स्थल-कमलों की जड़ों के समूह को इस प्रकार धारण करते हैं मानो पृथिवी के श्रेष्ठ गुणों को ही धारण कर रहे हों ॥२॥

जो दूध के सिंचन से ही मानो उत्पन्न हुए थे और मन्द-मन्द वायु से जिनके पत्ते हिल रहे थे ऐसे पौड़ौं और ईखों के वनों के समूह से जिस देश का निकटवर्ती भूमिभाग सदा व्याप्त रहता है ॥४॥

जिस देश के समीपवर्ती प्रदेश खलिहानों में जुदी-जुदी लगी हुई अपूर्व पर्वतों के समान बड़ी-बड़ी धान्य की राशियों से सदा व्याप्त रहते हैं ॥५॥ जिस देश की पृथ्वी रहट की घड़ियों से सींचे गये अत्यन्त हरे-भरे जीरों और धानों के समूह से ऐसी जान पड़ती है मानो उसने जटाएँ ही धारण कर रखी हों ॥६॥

जहाँ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है जो धान के श्रेष्ठ खेतों से अलंकृत है और जिसके भू-भाग मूंग और मौठ की फलियों से पीले-पीले हो रहे हैं ॥७॥

गर्मी के कारण जिनकी फली चटक गयी थी ऐसे रोंसा अथवा वर्वटी के बीजों से वहाँ के भू-भाग निरन्तर व्याप्त होकर चित्र-विचित्र दिख रहे हैं और ऐसे जान पड़ते हैं कि वहाँ तृण के अंकुर उत्पन्न ही नहीं होंगे ॥८॥

जो देश उत्तमोत्तम गेहुँओं की उत्पत्ति के स्थानभूत खेतों से सहित है तथा विघ्न-रहित अन्य अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम अनाजों से परिपूर्ण है ॥९॥

बड़े-बड़े भैंसों की पीठ पर बैठे गाते हुए ग्वाले जिनकी रक्षा कर रहे हैं, शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में लगे हुए कीड़ों के लोभ से ऊपर को गरदन उठाकर चलने-वाले बगले मार्ग में जिनके पीछे लग रहे है, रंग-बिरंगे सूत्रों में बँधे हुए घण्टाओं के शब्द से जो बहुत मनोहर जान पड़ती हैं, जिनके स्तनों से दूध झर रहा है और उससे जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो पहले पिये हुए क्षीरोदक को अजीर्ण के भय से छोड़ती रहती हैं, मधुर रस से सम्पन्न तथा इतने कोमल कि मुँह की भाप मात्र से टूट जावें ऐसे सर्वत्र व्याप्त तृणों के द्वारा जो अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त थीं ऐसी गायों के द्वारा उस देश के वन सफेद-सफेद हो रहे हैं ॥१०-१२॥

जो इन्द्र के नेत्रों के समान जान पड़ते हैं ऐसे इधर-उधर चौकड़ियाँ भरने वाले हजारों श्याम हरिण से उस देश के भू-भाग चित्र-विचित्र हो रहे हैं ॥१३॥

जिस देश के ऊँचे-ऊँचे प्रदेश केतकी की धूलि से सफेद-सफेद हो रहे हैं और ऐसे जान पड़ते हैं मानो मनुष्यों के द्वारा सेवित गंगा के पुलिन ही हों ॥१४॥

जो देश कहीं तो शाक के खेतों से हरी-भरी शोभा को धारण करता है और कहीं वनपालों से आस्वादित नारियलों से सुशोभित है ॥१५॥
जिनके फूल तोतों की चोचों के अग्रभाग तथा वानरों के मुखों का संशय उत्पन्न करनेवाले हैं ऐसे अनार के बगीचों से वह देश युक्त है ॥१६॥
जो वनपालियों के हाथ से मर्दित बिजौरा के फलों के रस से लिप्त हैं, केशर के फूलों के समूह से शोभित हैं, तथा फल खाकर और पानी पीकर जिन में पथिक-जन सुख से सो रहे हैं ऐसे दाखों के मण्डप उस देश में जगह- जगह इस प्रकार लाये हुए हैं मानो वनदेवी के प्याऊ के स्थान ही हों ॥१७-१८॥
जिन्हें पथिक जन तोड़-तोड़कर खा रहे हैं ऐसे पिण्ड-खजूर के वृक्षों से तथा वानरों के द्वारा तोड़कर गिराये हुए केला के फलों से वह देश व्याप्त है ॥१९॥
जिनके किनारे ऊँचे-ऊँचे अर्जुन वृक्षों के वनों से व्याप्त हैं, जो गायों के समूह के द्वारा किये हुए उत्कट शब्द से युक्त कुलों को धारण कर रहे हैं, जो उछलती हुई मछलियों के द्वारा नेत्र खोले हुए के समान और फूले हुए सफेद कमलों के समूह से हँसते हुए के समान जान पड़ते है, ऊँची-ऊँची लहरों के समूह से जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो नृत्य के लिए ही तैयार खड़े हों, उपस्थित हंसों की मधुर ध्वनि में जो ऐसे जान पड़ते हैं मानो गान ही कर रहे हों, जिनके उत्तमोत्तम तटों पर हर्ष से भरे मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड बैठे हुए हैं और जो कमलों से व्याप्त हैं ऐसे सरोवरों से वह देश प्रत्येक वन-खण्डों में सुशोभित है ॥२०-२३॥
हितकारी पालक जिनकी रक्षा कर रहे हैं ऐसे खेलते हुए सुन्दर शरीर के धारक भेड, ऊँट तथा गायों के बछड़ों से उस देश की समस्त दिशाओं में भीड़ लगी रहती है ॥२4॥
सूर्य के रथ के घोड़ों को लुभाने के लिए ही मानो जिनके पीठ के प्रदेश केशर की पंक से लिप्त हैं और जो चंचल अग्रभाग वाले मुखों से वायु का स्वच्छन्दतापूर्वक इसलिए पान कर रही है मानो अपने उदर में स्थित बच्चों को गति के वेग की शिक्षा ही देनी चाहती हों ऐसी घोड़ियो के समूह से वह देश व्याप्त है ॥२५-२६॥
जो मनुष्यों के बहुत भारी गुणोंकर समूह के समान जान पड़ते हैं तथा जो अपने शब्द से लोगों का चित्त आकर्षित करते हैं ऐसे चलते-फिरते हंसों के झुण्डों से वह देश कहीं-कहीं अत्यधिक सफेद हो रहा है ॥२७॥
संगीत के शब्दों से युक्त तथा मयूरों के शब्द से मिश्रित मृदंगो की मनोहर आवाज से उस देश का आकाश सदा शब्दायमान रहता है ॥२८॥
जो शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान श्वेतवृत्त **अर्थ**ात् निर्मल चरित्र के धारक हैं (पक्ष में श्वेतवर्ण गोलाकार हैं), मुक्ताफल के समान हैं, तथा आनन्द के देने में चतुर हैं ऐसे गुणी मनुष्यों से वह देश सदा सुशोभित रहता है ॥२९॥
जिन्होंने आहार आदि की व्यवस्था से पथिकों के समूह को सन्तुष्ट किया है तथा जो फलों के द्वारा श्रेष्ठ वृक्षों के समान जान पड़ते है ऐसे बड़े-बड़े गृहस्थों के कारण उस देश में लोगों का सदा आवागमन होता रहता है ॥३०॥
कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य तथा भाँति-भाँति के वस्त्रों से वेष्टित होने में कारण जो हिमालय में प्रत्यन्त पर्वतों (शाखा) के समान जान पड़ते हैं ऐसे बड़े-बड़े लोग उस देश में निवास करते हैं ॥३१॥
उस देश में मिथ्यात्वरूपी दृष्टि के विकार जैन-वचनरूपी अंजन के द्वारा दूर होते रहते हैं और पापरूपी वन महा-मुनियों की तपरूपी अग्नि से भस्म होता रहता है ॥३२॥
उस मगध देश में सब ओर से सुन्दर तथा फूलों की सुगन्धि से मनोहर राजगृह नाग का नगर है जो ऐसा जान पड़ता है मानो संसार का यौवन ही हो ॥३३॥
वह राजगृह नगर धर्म **अर्थ**ात् यमराज के अन्तःपुर के समान सदा मन को अपनी ओर खींचता रहता है क्योंकि जिस प्रकार यमराज का अन्तःपुर केदार से युक्त शरीर को धारण करनेवाली हजारों महिषियों अर्थात् भैंसों से युक्त होता है उसी प्रकार वह राजगृह नगर भी केशर से लिप्त शरीर को धारण करने-वाली हजारों महिषियों अर्थात् रानियों से सुशोभित है । भावार्थ – महिषी नाम भैंस का है और जिसका राज्याभिषेक किया गया ऐसी रानी का भी है; लोक में यमराज महिषवाहन नाम से प्रसिद्ध हैं इसलिए उसके अन्तःपुर में महिषों की स्त्रियों-महिषियों का रहना उचित ही है और राजगृह नगर में राज की रानियों का सद्भाव युक्तियुक्त ही है ॥३४॥
उस नगर के प्रदेश जहाँ-तहाँ बालव्यजन **अर्थ**ात् छोटे-छोटे पंखों से सुशोभित थे और जहाँ-तहाँ उनमें मरुत अर्थात् वायु के द्वारा चमर

कम्पित हो रहे थे इसलिए वह नगर इन्द्र की शोभा को प्राप्त हो रहा था क्योंकि इन्द्र के समीपवर्ती प्रदेश भी बालव्यजनों से सुशोभित होते हैं और उनमें मरुत् अर्थात् देवों के द्वारा चमर कम्पित होते रहते हैं ॥३५॥

वह नगर, मानो त्रिपुर नगर को जीतना ही चाहता है क्योंकि जिस प्रकार त्रिपुर नगर के निवासी मनुष्य ईश्वरमार्गणै: **अर्थ**ात् महादेव के बाणों के द्वारा किये हुए सन्ताप को प्राप्त हैं उस प्रकार उस नगर के मनुष्य ईश्वरमार्गणै: अर्थात् धनिक-वर्ग की याचना से प्राप्त सन्तान को प्राप्त नहीं थे -- सभी सुख से सम्पन्न हैं ॥३६॥

वह नगर चुना से पुते सफेद महलों की पंक्ति से लसा जान पड़ता है मानो टांकियों से गढ़े चन्द्रकान्त मणियों से ही बनाया गया हो ॥३७॥

वह नगर मदिरा के नशा में मस्त स्त्रियों के आभूषणों की झनकार से सदा भरा रहता है इसलिए ऐसा जान पड़ता है मानो कुबेर की नगरी **अर्थ**ात् अलकापुरी का द्वितीय प्रतिबिम्ब ही हो ॥३८॥

उस नगर को श्रेष्ठ मुनियों ने तपोवन समझा था, वेश्याओं ने काम का मन्दिर माना था, नृत्यकारों ने नृत्यभवन समझा था और शत्रुओं ने यमराज का नगर माना था ॥३९॥

शंखधारियों ने वीरों का घर समझा था, याचकों ने चिन्तामणि, विद्यार्थियों ने गुरु का भवन और बन्दीजनों ने धूर्तों का नगर माना था ॥४०॥

संगीत शास्त्र के पारगामी विद्वानों ने उस नगर को गन्धर्व का नगर और विज्ञान के ग्रहण करने में तत्पर मनुष्यों ने विश्वकर्मा का भवन समझा था ॥४१॥

सज्जनों ने सत्समागम का स्थान माना था, व्यापारियों ने लाभ की भूमि और शरणागत मनुष्यों ने वज्रमय लकड़ी से निर्मित - सुरक्षित पंजर समझा था ॥४२॥

समाचार प्रेषक उसे असुरों के बिल जैसा रहस्यपूर्ण स्थान मानते थे, चतुर जन उसे विटमण्डली-विटों का जमघट समझते थे, और समीचीन मार्ग में चलने वाले मनुष्य उसे किसी मनोज्ञ-उत्कृष्ट कर्म का सुफल मानते थे ॥४३॥

चारण लोग उसे उत्सवों का निवास, कामीजन अप्सराओं का नगर और सुखीजन सिद्धों का लोक मानते थे ॥४४॥

उस नगर की स्त्रियाँ यद्यपि मातंगगामिनी थीं **अर्थ**ात् चाण्डालों के साथ गमन करने वाली थीं फिर भी शीलवती कहलाती थीं ( पक्ष में हाथियों के समान सुन्दर चाल वाली थीं तथा शीलवती अर्थात् पातिव्रत धर्म से सुशोभित थीं ) श्यामा अर्थात् श्यामवर्ण वाली होकर भी पद्मरागिण्य: अर्थात् पद्मराग मणि-जैसी लाल क्रान्ति से सम्पन्न थीं (पक्ष में श्यामा अर्थात् नवयौवन में युक्त होकर पद्मरागिण्य अर्थात् कमलों में अनुराग रखने वाली थीं अथवा पद्मराग मणियों से युक्त थीं) साथ ही गौरी अर्थात् पार्वती होकर भी विभवाश्रया अर्थात् महादेव के आश्रय से रहित थीं (पक्ष में गौर्य: अर्थात् गौर वर्ण होकर विभवाश्रया: अर्थात् सम्पदाओं से सम्पन्न थीं ) ॥४५॥

उन स्त्रियों के शरीर चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित थे फिर भी वे शिरीष के समान सुकुमार थीं (पक्ष में उनके शरीर चन्द्रमा के समान कान्त--सुन्दर थे और वे शिरीष के फूल के समान कोमल शरीर वाली थी) वे स्त्रियाँ यद्यपि भुजंगों **अर्थ**ात् सर्पों के अगम्य थीं फिर भी उनके शरीर कंचुक अर्थात् काँचलियों से युक्त थे (पक्ष में भुजंगों अर्थात् विटपुरुषों के अगम्य थी और उनके शरीर कंचुक अर्थात् चोलियों से सुशोभित थे) ॥४६॥

वे स्त्रियां यद्यपि महालावण्य **अर्थ**ात् बहुत भारी खारापन से युक्त थीं फिर भी मधुराभास-तत्परा अर्थात् मिष्ट भाषण करने में तत्पर थीं (पक्ष में महालावण्य अर्थात् बहुत भारी सौन्दर्य से युक्त थीं और प्रिय वचन बोलने में तत्पर थीं)। उनके मुख प्रसन्न तथा उज्ज्वल थे और उनकी चेष्टाएँ प्रमाद से रहित थीं ॥४७॥

वे स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर थीं, स्थूल नितम्बों की शोभा धारण करती थीं, उनका मध्यभाग अत्यन्त मनोहर था, वे सदाचार से युक्त थीं और उत्तम भविष्य से सम्पन्न थीं (इस श्लोक में भी ऊपर के श्लोकों के समान विरोधाभास अलंकार है जो इस प्रकार घटित होता है—वहां की स्त्रियाँ दुर्विधा **अर्थ**ात् दरिद्र होकर भी कलम अर्थात् स्त्री-सम्बन्धी भारी लक्ष्मी सम्पदा को धारण करती थी )और सुवृत्त अर्थात् गोलाकार होकर भी आयर्तिगता अर्थात् लम्बाई को प्राप्त थीं। (इस विरोधाभास का परिहार अर्थ में किया गया है)॥४८॥

उस राजगृह नगर का जो कोट था वह (मनुष्य) लोक के अन्त में स्थित मानुषोतर पर्वत के समान जान पड़ता था तथा समुद के समान गम्भीर परिखा उसे चारों ओर से घेरे हुई थी ॥४९॥

उस राजगृह नगर में श्रेणिक नाम का प्रसिद्ध राजा रहता था जो कि इन्द्र के समान सर्ववर्णधर **अर्थ**ात् ब्रह्मादिक समस्त वर्णों की

व्यवस्था करनेवाले (पक्ष में लाल-पीले आदि समस्त रंगों को धारण करने वाले) धनुष को धारण करता था ॥५०॥
वह राजा कल्याणप्रकृति था **अर्थ**ात् कल्याणकारी स्वभाव को धारण करनेवाला था (पक्ष में सुवर्णमय था) इसलिए सुमेरुपर्वत के समान जान पड़ता था और उसका चित्त मर्यादा के उल्लंघन से सदा भयभीत रहता था अत: वह समुद्र के समान प्रतीत होता था ॥५१॥
राजा श्रेणिक कलाओं के ग्रहण करने में चन्द्रमा था, लोक को धारण करने में पृथिवीरूप था, प्रताप से सूर्य था और धन-सम्पत्ति से कुबेर था ॥५२॥
वह अपनी शूरवीरता से समस्त लोकों की रक्षा करता था फिर भी उसका मन सदा नीति से भरा रहता था और लक्ष्मी के साथ उसका सम्बन्ध था तो भी अहंकाररूपी ग्रह से वह कभी दूषित नहीं होता था ॥५३॥
उसने यद्यपि जीतने योग्य शत्रुओं को जीत लिया था तो भी वह शस्त्र-विषयक व्यायाम से विमुख नहीं रहता था । वह आपत्ति के समय भी कभी व्यय नहीं होता था और जो मनुष्य उसके समक्ष नम्रीभूत होते थे उनका वह सम्मान करता था ॥५४॥
वह दोषरहित सज्जनों का ही रत्न समझता था, पाषाण के टुकड़ों को तो केवल पृथ्वी का एक विशेष परिणमन ही मानता था ॥५५॥
जिन में दान दिया जाता था, ऐसी क्रियाओं को -- धार्मिक अनुष्ठानों को ही वह कार्य की सिद्धि का श्रेष्ठ साधन समझता था मद से उत्कट हाथियों को तो वह दीर्घकाय कीड़ा ही मानता था ॥५६॥
सबके आगे चलने वाले यश में ही वह बहुत भारी प्रेम करता था। नश्वर जीवन को तो वह जीर्ण तृण के समान तुच्छ मानता था ॥५७॥
वह आर्यपुत्र कर प्रदान करने वाली दिशाओं को ही सदा अपना अलंकार समझता था स्त्रियों से तो सदा विमुख रहता था ॥५८॥
गुण **अर्थ**ात् डोरी से झुके धनुष को ही वह अपना सहायक समझता था। भोजन से सन्तुष्ट होने वाले अपकारी सेवकों के समुह को वह कभी भी सहायक नहीं मानता था ॥५९॥
उसके राज्य में वायु भी किसी का कुछ हरण नहीं करती थी फिर दूसरों की तो बात ही क्या थी। इसी प्रकार दुष्ट पशुओं के समूह भी हिंसा में प्रवृत्त नहीं होते थे फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या थी ॥६०॥
हरि **अर्थ**ात् विष्णु की चेष्टाएँ तो वृषघाती अर्थात् वृषासुर को नष्ट करने वाली थीं। पर उसकी चेष्टाएँ वृषघाती अर्थात् धर्म का घात करने वाली नहीं थीं इसी प्रकार महादेवजी का वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् राजा दक्ष के परिवार को सन्ताप पहुँचाने वाला था परन्तु उसका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् चतुर मनुष्यों के समुह को सन्ताप पहुँचाने वाला नहीं था ॥६१॥
जिस प्रकार इन्द्र की चेष्टा गोत्रनाशकरी **अर्थ**ात् पर्वतों का नाश करने वाली थी उस प्रकार उसकी चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् वंश का नाश करनेवाली नहीं थी और जिस प्रकार दक्षिण दिशा के अधिपति यमराज के अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् दण्डधारण करने में अधिक प्रीति रहती है उस प्रकार उसके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् बहुत भारी सजा देने में प्रीति नहीं रहती थी ॥६२॥
जिस प्रकार वरुण का द्रव्य मगरमच्छ आदि दुष्ट जलचरो से रहित होता है उस प्रकार उसका द्रव्य दुष्ट मनुष्यों से रक्षित नहीं था **अर्थ**ात् उसका सब उपभोग कर सकते थे और जिस प्रकार कुबेर की सन्निधि अर्थात् उत्तमनिधि का पाना निष्फल है उस प्रकार उसकी सन्निधि अर्थात् सज्जनरूपी निधि का पाना निष्फल नहीं था ॥६३॥
जिस प्रकार बुद्ध का दर्शन **अर्थ**ात् अर्थवाद-वास्तविकवाद से रहित होता है उस प्रकार उसका दर्शन अर्थात् साक्षात्कार अर्थवाद-धन प्राप्ति से रहित नहीं होता था और जिस प्रकार चन्द्रमा की भी बहुलदोषोपघातिनी अर्थात् कृष्णपक्ष की रात्रि से उपहत-नष्ट हो जाती है उस प्रकार उसकी भी बहुलदोषो-पघातिनी अर्थात् बहुत भारी दोषों से नष्ट होनेवाली नहीं थी ॥६४॥
याचक गण उसके त्यागगुण की पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सके थे **अर्थ**ात् वह जितना त्याग-दान करना चाहता था उतने याचक नहीं मिलते थे शास्त्र उसकी बुद्धि की पूर्णता को प्राप्त नहीं थे, अर्थात् उसकी बुद्धि बहुत भारी थी और शास्त्र अल्प थे इसी प्रकार सरस्वती उसकी कवित्व शक्ति की पूर्णता को प्राप्त नहीं थी अर्थात् वह जितनी कविता कर सकता था उतनी सरस्वती नहीं थी-उतना शब्द-भण्डार नहीं था ॥६५॥
साहसपूर्ण कार्य उसकी महिमा का अन्त नहीं पा सके थे, चेष्टाएं उसके उत्साह की सीमा नहीं प्राप्त कर सकी थीं, दिशाओं के अन्त उसकी कीर्ति का अवसान) नहीं पा सके थे और संध्या उसकी गुणरूप सम्पदा की पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकी थी **अर्थ**ात् उसकी गुणरूपी सम्पदा संरक्षा से रहित थी-अपरिमित थी ॥६६॥

समस्त पृथ्वीतल पर मनुष्यों के चित्त उसके अनुराग की सीमा नहीं पा सके थे, कला चतुराई उसकी कुशलता की अवधि नहीं प्राप्त कर सकी थीं और शत्रु उसके प्रताप-तेज की पूर्णता प्राप्त नहीं कर सके थे ॥६७॥

इन्द्र की सभा में जिसके उत्तम सम्यग्दर्शन की चर्चा होती थी उस राजा श्रेणिक के गुण हमारे जैसे तुच्छ शक्ति के धारक पुरुषों के द्वारा कैसे कहे जा सकते है ॥६८॥

वह राजा, उद्दण्ड शत्रुओं पर तो वज्रदण्ड के समान कठोर व्यवहार करता था और तपरूपी धन से समृद्ध गुणी मनुष्यों को नमस्कार करता हुआ उनके साथ बेंत के समान आचरण करता था ॥६९॥

उसने अपने भुजदण्ड से ही समस्त पृथिवी की रक्षा की थी-नगर के चारों ओर जो कोट तथा परखा आदिक वस्तुएँ थी वह केवल शोभा के लिए ही थीं ॥७०॥

राजा श्रेणिक की पत्नी का नाम चेलना था। वह शीलरूपी वस्त्राभूषणों से सहित थी सम्यग्दर्शन से शुद्ध थी तथा श्रावकाचार को जानने वाली थी ॥७१॥

किसी एक समय, अनन्त चतुष्टयरूपी लक्ष्मी से सम्पन्न तथा सुर और असुर जिनके चरणों को नमस्कार करते थे ऐसे महावीर जिनेन्द्र उस राजगृह नगर के समीप आये ॥७२॥

वे महावीर जिनेन्द्र, जो कि दिक्-कुमारियों के द्वारा शुद्ध किये हुए माता के उदर में भी मति, श्रुत तथा अवधि इन तीन ज्ञानों से सहित थे तथा जिन्हें उस गर्भवास के समय भी इन्द्र के समान सुख प्राप्त था ॥७३॥

जिनके जन्म लेने के पहले और पीछे भी इन्द्र के आदेश से कुबेर ने उनके पिता का घर रत्नों की वृष्टि से भर दिया था ॥७४॥

जिनके जन्माभिषेक के समय देवों ने इन्द्रों के साथ मिलकर सुमेरु-पर्वत के शिखर पर बहुत भारी उत्सव किया था ॥७५॥

जिन्होंने अपने पैर के अंगूठी से अनायास ही सुमेरु-पर्वत को कम्पित कर इन्द्र से 'महावीर' ऐसा नाम प्राप्त किया था ॥७६॥

बालक होने पर भी अबालकोचित कार्य करने वाले जिन महावीर जिनेन्द्र के शरीर की वृत्ति इन्द्र के द्वारा अँगूठे में सींचे हुए अमृत से होती थी ॥७७॥

बालकों जैसी चेष्टा करने वाले, मनोहर विनय के धारक, इन्द्र के द्वारा भेजे हुए सुन्दर देवकुमार सदा जिनकी सेवा किया करते थे ॥७८॥

जिनके साथ ही साथ माता-पिता का, बन्धु-समूह का और तीनों लोकों का आनन्द परम वृद्धि को प्राप्त हुआ था ॥७९॥

जिनके उत्पन्न होते ही पिता के चिरविरोधी प्रभावशाली समस्त राजा उनके प्रति नतमस्तक हो गये थे ॥८०॥

जिनके पिता के भवन का आँगन रथों से, मदोन्मत्त हाथियों से, वायु के समान वेगशाली घोड़ों से, उपहार के अनेक द्रव्यों से युक्त ऊँटों के समूह से, छत्र, चमर, वाहन आदि विभूति का त्याग कर राजाधिराज महाराज के दर्शन की इच्छा करने वाले अनेक मण्डलेश्वर राजाओं से तथा नाना देशों से आये हुए अन्य अनेक बड़े-बड़े लोगो से सदा क्षोभ को प्राप्त होता रहता था ॥८१-८३॥

जिस प्रकार कमल जल में आसक्ति की प्राप्त नहीं होता-उससे निर्लिप्त ही रहता है उसी प्रकार जिनका चित्त कर्मरूपी कलंक की मन्दता से मनोहारी विषयों में आसक्ति को प्राप्त नहीं हुआ था-उससे निर्लिप्त ही रहता था ॥८४॥

जो स्वयंबुद्ध भगवान् समस्त सम्पदा को बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर जानकर विरक्त हुए और जिनके दीक्षाकल्याणक में लौकान्तिक देवों का आगमन हुआ था ॥८५॥

जिन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों की आराधना कर चार घातिया कर्मों का विनाश किया था ॥८६॥

जिन्होंने लोक और अलोक को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त कर लोक-कल्याण के लिए धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया था तथा स्वयं कृतकृत्य हुए थे ॥८७॥

जो प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थ प्राप्त कर चुके थे और करने योग्य समस्त कार्य समाप्त कर चुके थे इसीलिए जिनकी समस्त चेष्टाएँ सूर्य के समान केवल परोपकार के लिए ही होती थीं ॥८८॥

जो जन्म से ही ऐसे उत्कृष्ट शरीर को धारण करते थे, जो कि मल तथा पसीना से रहित था, दूध के समान सफेद जिसमें रुधिर था, जो उत्तम संस्थान, उत्तम गन्ध और उत्तम संहनन से सहित था, अनन्त बल से युक्त था, सुन्दर-सुन्दर लक्षणों से पूर्ण था, हित मित वचन बोलने वाला था और अपरिमित गुणो का भण्डार था ॥८९-९०॥

जिनके विहार करते समय दो सौ योजन तक दुर्भिक्ष आदि दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले कार्य तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियो का होना सम्भव नहीं था ॥९१॥

जो समस्त विद्याओं की परमेश्वरता को प्राप्त थे । स्फटिक के समान निर्मल कान्तिवाला जिनका शरीर छाया को प्राप्त नहीं होता था **अर्थ** ात्, जिनके शरीर की परछाई नहीं पड़ती थी ॥९२॥

जिनके नेत्र टिमकार से रहित अत्यन्त शान्त थे, जिनके नख और महानील मणि के समान स्निग्ध कान्ति को धारण करनेवाले बाल सदा समान थे **अर्थ**ात् वृद्धि से रहित थे ॥९३॥

समस्त जीवों में मैत्रीभाव रहता था, विहार के अनुकूल मन्द-मन्द वायु चलती थी, जिनका विहार समस्त संसार के आनन्द का कारण था ॥९४॥

वृक्ष सब ऋतुओं के फल-फूल धारण करते थे और जिनके पास आते ही पृथिवी दर्पण के समान आचरण करने लगती थी ॥९५॥

जिनके एक योजन के अन्तराल में वर्तमान भूमि को सुगन्धित पवन सदा धूलि, पाषाण और कण्टक आदि से रहित करती रहती थी॥९६॥

बिजली की माला से जिनकी शोभा बढ़ रही है ऐसे स्तनितकुमार, मेघ कुमार जाति के देव बड़े उत्साह और आदर के साथ उस योजनान्तरालवर्ती भूमि को सुगन्धित जल से सींचते रहते थे ॥९७॥

जो आकाश में विहार करते थे और विहार करते समय जिनके चरणों के तले देव लोग अत्यन्त कोमल कमलों की रचना करते थे ॥९८॥

जिनके समीप आने पर पृथिवी बहुत भारी फलों के भार से नम्रीभूत धान आदि के पौधों से विभूषित हो उठती थी तथा सब प्रकार का अन्य उसमें उत्पन्न हो जाता था ॥९९॥

आकाश शरद ऋतु के तालाब के समान निर्मल हो जाता था और दिशाएँ धूमक आदि दोषों से रहित होकर बड़ी सुन्दर मासूम होने लगती थीं ॥१००॥

जिसमें हजार आरे देदीप्यमान हैं जो कान्ति के समूह से जगमगा रहा है और जिसने सूर्य को जीत लिया है ऐसा धर्मचक्र जिनके आगे स्थित रहता था ॥१०१॥

ऊपर कही हुई विशेषताओं से सहित भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र राजगृह के समीपवर्ती उस विशाल विपुलाचलपर अवस्थित हुए जो कि नाना निर्झरों के मधुर शब्द से मनोहर था, जिसका प्रत्येक स्थान फूलों से सुशोभित था, जिसके वृक्ष लताओं से आलिंगित थे । सिंह, व्याध अदिक जीव वैर-रहित होकर निश्चिन्तता से जिसकी अधित्यकाओं (उपरितनभागों) पर बैठे थे, वायु से हिलते हुए वृक्षों से जो ऐसा जान पड़ता था मानो नमस्कार ही कर रहा हो, ऊपर उछलते हुए झरनों के निर्मल छींटों से जो ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो, पक्षियों के कलरव से ऐसा जान पड़ता था मानो मधुर-भाषण ही कर रहा हो, मदोन्मत्त भ्रमरों की गुंजार से ऐसा जान पड़ता था मानो गा ही रहा हो, सुगन्धित पवन से जो ऐसा जान पड़ता था मानो आलिंगन ही कर रहा हो। जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर नाना धातुओं की कान्ति के समूह से सुशोभित थे, जिसकी गुफाओं के अग्रभाग में सुख से बैठे हुए सिंहों के मुख दिख रहे थे, जिसकी सघन वृक्षावली के नीचे गज-राज बैठे थे और जो अपनी महिमा से समस्त आकाश को आच्छादित कर स्थित था। जिस प्रकार अत्यन्त रमणीय कैलास पर्वत पर भगवान् वृषभदेव विराजमान हुए थे उसी प्रकार उक्त विपुलाचल-पर भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र विराजमान हुए ॥१०२-१०८॥

उस विपुलाचल पर एक योजन विस्तार वाली भूमि समवशरण के नाम में प्रसिद्ध थी ॥१०९॥

संसाररूपी शत्रु को जीतने वाले वर्धमान जिनेन्द्र जब उस समवशरण भूमि में सिंहासनारूढ़ हुए तब इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ ॥११०॥

इन्द्र ने उसी समय विचार किया कि मेरा यह सिंहासन किसके प्रभाव से कम्पायमान हुआ है विचार करते ही उसे अवधिज्ञान से सब समाचार विदित हो गया ॥१११॥

इन्द्र नें सेनापति का स्मरण किया और सेनापति तत्काल ही हाथ जोड़कर खड़ा हो गया इन्द्र ने उसे आदेश दिया कि सब देवों को यह समाचार मालूम कराओ कि भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र विपुलाचलपर विराजमान हैं इसलिए आप सब लोग एकत्रित होकर उनकी वन्दना के लिए चलिए ॥११२-११३॥

तदनन्तर इन्द्र स्वयं उस ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर चला जो कि शरद्ऋतु के मेघों के किसी बड़े समूह के समान जात पड़ता था,

सुवर्णमय तटों के आघात से जिसकी खीसों का अग्रभाग पीला-पीला हो रहा था, जो सुवर्ण की मालाओं से युक्त था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलों की पराग से जिसका जल पीला हो रहा है ऐसी नदी से परिवृत कैलास गिरि ही हो । जो मदान्ध भ्रमरों की पंक्ति से युक्त गण्डस्थलों से सुशोभित था, कदम्ब के फूलों की पराग से मिलती-जुलती सुगन्धि से जिसने समस्त संसार को व्याप्त कर लिया था, जिसके कानों के समीप शंख नामक आमरण दिखाई दे रहे थे, जो अपने लाल तालु से कमलों के वन को उगलता हुआ-सा जान पड़ता था, जो दर्प के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो सांस ही ले रहा हो, मद से ऐसा प्रतीत होता था मानो मूर्च्छा को ही प्राप्त हो रहा हो और यौवन से ऐसा विदित होता था मानो मोहित ही हो रहा हो जिसके वस्त्रों के प्रदेश चिकने और शरीर के रोम कठोर थे, विनय के ग्रहण करने में जो समीचीन शिष्य के समान जान पड़ता था, जो मुख में परम गुरु था **अर्थ**ात् जिसका मुख बहुत विस्तृत था, जिसका मस्तक कोमल था, जो परिचय के ग्रहण करने में अत्यन्त दृढ़ था, जो आयु में दीर्घता और स्कन्ध में ह्रस्वता धारण करता था अर्थात् जिसकी आयु विशाल थी और गरदन छोटी थी, जो उदर में दरिद्र था अर्थात् जिसका पेट कृश था, जो दान के मार्ग में सदा प्रवृत्त रहता था अर्थात् जिसके गण्डस्थलों से सदा मद झरता रहता था, जो कलह सम्बन्धी प्रेम के धारण मरने में नारद था अर्थात् नारद के समान कलह-प्रेमी था, जो नागों का नाश करने के लिए गरुड़ था, जो सुन्दर नक्षत्रमाला (सत्ताईस दानों वाली माला पक्ष में नक्षत्रों के समूह) से प्रदोष-रात्रि के प्रारम्भ के समान जान पड़ता था, जो बड़े-बड़े घण्टाओं का शब्द कर रहा था, जो लाल रंग के चमरी से विभूषित था और जो सिन्दूर के द्वारा लाल-लाल दिखने वाले उन्नत गण्डस्थलों के अग्रभाग से मनोहर था ॥११४-१२३॥

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन सम्बन्धी उत्साह से जिनके मुखकमल विकसित हो रहे थे ऐसे समस्त देव अपने-अपने वाहनों-पर सवार होकर इन्द्र के साथ आ मिले ॥१२४॥

देवों के सिवाय नाना अलंकारों को धारण करने वाले कमलायुध आदि विद्याधरों के राजा भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आकर एकत्रित हो गये ॥१२५॥

तदनन्तर भगवान् के वास्तविक, दिव्य तथा अत्यन्त निर्मल गुणों के द्वारा आश्चर्य को प्राप्त हुए वचनों से इन्द्र ने निम्न प्रकार स्तुति की ॥१२६॥

हे नाथ ! महामोहरूपी निशा के बीच सोते हुए इस समस्त जगत् को आपने अपने विशाल तेज के धारक ज्ञानरूपी सूर्य के बिम्ब से जगाया है ॥१२७॥

हे भगवत्! आप वीतराग हो, सर्वज्ञ हो, महात्मा हो, और संसाररूपी समुद्र के दुर्गम अन्तिम तट को प्राप्त हुए हो अत: आपको नमस्कार हो ॥१२८॥

आप उत्तम सार्थवाह हो, भव्य जीवरूपी व्यापारी आपके साथ निर्वाण धाम को प्राप्त करेंगे और मार्ग में दोषरूपी चोर उन्हें नहीं लूट सकेंगे ॥१२९॥

आपने मोक्षाभिलाषियो को निर्मल मोक्ष का मार्ग दिखाया है और ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्नि के द्वारा कर्मों के समूह को भस्म किया है ॥१३०॥

जिनका कोई बंधु नहीं है और जिनका कोई नाथ नहीं ऐसे दु:खरूपी अग्नि में वर्तमान संसार के जीवों को आप ही बंधु हो, आप ही नाथ हो तथा आप ही परम अभ्युदय के धारक ही ॥१३१॥

हे भगवन् ! हम आपके गुणों का स्तवन कैसे कर सकते हैं जबकि वे अनंत हैं, उपमा से रहित हैं तथा केवलज्ञानियों के विषय हैं ॥१३२॥

इस प्रकार स्तुति कर इंद्र ने भगवान् को नमस्कार किया । नमस्कार करते समय उसने मस्तक, घुटने तथा दोनों हस्त रूपी कमलों के कुड्मलों से पृथ्वीतल का स्पर्श किया था ॥१३३॥

वह इन्द्र भगवान् का समवसरण देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुआ था इसलिए यहाँ संक्षेप से उसका वर्णन किया जाता है ॥१३४॥

इन्द्र के आज्ञाकारी पुरुषों से सर्वप्रथम समवसरण के तीन कोटों की रचना की थी जो अनेक वर्ण के बड़े-बड़े रत्नों तथा सुवर्ण से निर्मित थे ॥१३५॥

उन कोटों की चारों दिशाओं में चार गोपुर द्वार थे जो बहुत ही ऊँचे थे, बड़ी-बड़ी बावड़ियों से सुशोभित थे, तथा रत्नों की कान्ति-रूपी परदा से आवृत थे ॥१३६॥

गोपुरों का वह स्थान अष्ट-मंगल-द्रव्यों से युक्त था तथा वचनों से अगोचर कोई अद्भुत शोभा धारण कर रहा था ॥१३७॥
उस समवसरण में स्फटिक की दीवालों से बारह कोटे बने हुए थे जो प्रदक्षिणा रूप से स्थिर थे ॥१३८॥
उन कोठों में से प्रथम कोठे में गणधरों से सुशोभित मुनिराज बैठे थे, दूसरे में इंद्राणियों के साथ-साथ कल्पवासी देवों की देवांगनाएँ थीं, तीसरे में गणिनीयों से सहित आर्यिकाओं का समूह बैठा था, चौथे में ज्योतिषी देवों की देवांगनाएँ थीं, पांचवें में व्यन्तर देवों की अंगनाएँ बैठी थीं, छठे में भवनवासी देवों की अंगनाएँ बैठी थीं, सातवें में ज्योतिषी देव थे, आठवें में व्यन्तर देव थे, नौवे में भवनवासी देव थे, दसवें में कल्पवासी देव थे, ग्यारहवे में मनुष्य थे और बारहवे में बैर-भाव से रहित तिर्यञ्च सुख से बैठे थे ॥१३९-१४२॥
तदनंतर सब ओर से आनेवाले देवों के समूह से जिसके मन में आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था ऐसा महा-बलवान् अथवा बहुत बड़ी सेना का नायक राजा श्रेणिक भी अपने नगर से बाहर निकाला ॥१४३॥
उसने वाहन आदि राजाओं के उपकरणों का दूर से ही त्याग कर दिया, फिर समवशरण में प्रवेश कर स्तुति पूर्वक जिनेन्द्रदेव को नमस्कार कर अपना स्थान ग्रहण किया ॥ १४४ ॥ दयालु वारिषेण, अभय कुमार, विजया वह तथा अन्य राजकुमारों ने भी हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये, स्तुति पढ़कर भगवान को नमस्कार किया । तदनन्तर बहुत भारी विनय को धारण करते हुए वे सब अपने योग्य स्थानों पर बैठ गये ॥१४५-१४६॥
भगवन् वर्धमान, समवशरण में जिस अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान थे उसकी शाखाएँ वैदूर्य ( नील ) मणि की थीं, वह कोमल पल्लवों से शोभायमान था, फूलों के गुच्छों की कान्ति से उसने समस्त दिशाएँ व्याप्त कर ली थीं, वह अत्यन्त सुशोभित था, कल्पवृक्ष के समान रमणीय था, मनुष्यों के शोक को हरने वाला था, उसके पत्ते हरे रंग वाले तथा सघन थे, और वह नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित पर्वत के समान जान पड़ता था । उनका वह सिंहासन भी नाना रत्नों के प्रकाश से इन्द्रधनुष को उत्पन्न कर रहा था । दिव्य वख से आच्छादित था, कोमल स्पर्श से मनोहारी था, इन्द्र के सिर पर लगे हुए रत्नों की कान्ति के विस्तार को रोकने वाला था, तीन लोक की ईश्वरता के चिह्न स्वरूप तीन छत्रों से सुशोभित था, देवों के द्वारा बरसाये हुए फूलों से व्याप्त था, भूमि मण्डल पर वर्तमान था, यक्षराज के हाथों में स्थित चंचल चमरों से सुशोभित था, और दुन्दुभि बाजों के शब्दों की शान्तिपूर्ण प्रतिध्वनि उससे निकल रही थी ॥१४७-१५२॥
भगवान की जो दिव्यध्वनि खिर रही थी वह तीन गति सम्बन्धी जीवों की भाषा-रूप परिणमन कर रही थी तथा मेघों की सुन्दर गर्जना के समान उसकी बुलन्द आवाज थी ॥१५३॥
वहाँ सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करने वाले प्रभामण्डल के मध्य में भगवान् विराजमान थे । गणधर के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उन्होंने लोगों के लिए निम्न प्रकार से धर्म का उपदेश दिया था ॥१५४॥
उन्होंने कहा था कि सबसे पहले एक सत्ता ही तत्व है उसके बाद जीव और अजीव के भेद से तत्व दो प्रकार का है । उनमें भी जीव के सिद्ध और संसारी के भेद से दो भेद माने गये हैं ॥१५५॥
इनके सिवाय जीवों के भव्य और अभव्य इस प्रकार दो भेद और भी हैं । जिस प्रकार उड़द आदि अनाज में कुछ तो ऐसे होते हैं जो पक जाते हैं-सीझ जाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं कि जो प्रयत्न करने पर भी नहीं पकते हैं-नहीं सीजते हैं । उसी प्रकार जीवों में भी कुछ जीव तो ऐसे होते हैं जो कर्म नष्ट कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो प्रयत्न करने पर भी सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते । जो सिद्ध हो सकते हैं वे भव्य कहलाते हैं और जो सिद्ध नहीं हो सकते हैं वे अभव्य कहलाते हैं । इस तरह भव्य और अभव्य की अपेक्षा जीव दो तरह के हैं और अजीव तत्व के धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा पुद्गल के भेद से पाँच भेद हैं ॥१५६-१५७॥
जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए तत्वों का श्रद्धान होना भव्यों का लक्षण है और उनका श्रद्धान नहीं होना अभव्यों का लक्षण है ।
एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये भव्य तथा अभव्य जीवों के उत्तर भेद हैं ॥१५८॥
गति, काय, योग, वेद, लेश्या, कषाय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुणस्थान, निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन, नामादि निक्षेप और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्प बहुत्व इन आठ अनुयोगों के द्वारा जीव-तत्व के अनेक भेद होते हैं ॥१५९-१६०॥
सिद्ध और संसारी इन दो प्रकार के जीवों में संसारी जीव केवल दुःख का ही अनुभव करते रहते हैं । पंचेन्द्रियों के विषयों से जो सुख होता है उन्हें संसारी जीव भ्रमवश सुख मान लेते हैं ॥१६१॥
जितनी देर में नेत्र का पलक झपकता है उतनी देर के लिए भी नारकियों को सुख नहीं होता ॥१६२॥

दमन, ताड़न, दोहन, वाहन आदि उपद्रवों से तथा शीत, घाम, वर्षा आदि के कारण तिर्यंचों को निरन्तर दुःख होता रहता है ॥१६३॥
प्रियजनों के वियोग से, अनिष्ट वस्तुओं के समागम से तथा इच्छित पदार्थों के न मिलने से मनुष्य गति में भारी दुःख है ॥१६४॥
अपने से उत्कृष्ट देवों के बहुत भारी भोगों को देखकर तथा वहाँ से च्युत होने के कारण देवों को दुःख उत्पन्न होता है ॥१६५॥
इस प्रकार जब चारों गतियों के जीव बहुत अधिक दुःख से पीड़ित हैं तब कर्मभूमि पाकर धर्म का उपार्जन करना उत्तम है ॥१६६॥
जो मनुष्य भव पाकर भी धर्म नहीं करते हैं मानो उनकी हथेली पर आया अमत नष्ट हो जाता है ॥१६७॥
अनेक योनियों से भरे इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ यह जीव बहुत समय के बाद बड़े दुःख से मनुष्य-भव को प्राप्त होता है ॥१६८॥
उस मनुष्य भव में यह जीव अधिकांश लोभी तथा पाप करने वाले शबर आदि नीच पुरुषों में ही जन्म लेता है । यदि कदाचित् आर्य देश प्राप्त होता है तो वहाँ भी नीच कुल में ही उत्पन्न होता हैं ॥१६९॥
यदि भाग्यवश उच्च कुल भी मिलता है तो काना-लूला आदि शरीर प्राप्त होता है । यदि कदाचित् शरीर की पूर्णता होती है तो नीरोगता का होना अत्यन्त दुर्लभ रहता है ॥१७०॥
इस तरह यदि कदाचित् समस्त उत्तम वस्तुओं का समागम भी हो जाता है तो विषयों के आस्वाद का लोभ रहने से धर्मानुराग दुर्लभ ही रहा आता है ॥१७१॥
इस संसार में कितने ही लोग ऐसे हैं जो दूसरों की नौकरी कर बहुत भारी कष्ट से पेट भर पाते हैं उन्हें वैभव की प्राप्ति होना तो दूर रहा ॥१७२॥
कितने ही लोग जिह्वा और काम-इन्द्रिय के वशीभूत होकर ऐसे संग्राम में प्रवेश करते है जो कि रक्त की कीचड़ से घृणित तथा शस्त्रों की वर्षा से भयंकर होता है ॥१७3॥ कितने ही लोग अनेक जीवों को बाधा पहुँचाने वाली भूमि जोतने की आजीविका कर बड़े क्लेश से अपने कुटुम्ब का पालन करते हैं और उतने पर भी राजाओं की ओर से निरन्तर पीड़ित रहते हैं ॥१७४॥
इस तरह सुख की इच्छा रखनेवाले जीव जो कार्य करते हैं वे उसी में बहुत भारी दुःख को प्राप्त करते हैं ॥१७५॥
यदि किसी तरह कष्ट से धन मिल भी जाता है तो चोर, अग्नि, जल और राजा से उसकी रक्षा करता हुआ यह प्राणी बहुत दुःख पाता है और उससे सदा व्याकुल रहता है ॥१७६॥
यदि प्राप्त हुआ धन सुरक्षित भी रहता है तो उसे भोगते हुए इस प्राणी को कभी शान्ति नहीं होती क्योंकि उसकी लालसा रूपी अग्नि प्रतिदिन बढ़ती रहती है ॥१७७॥
यदि किसी तरह पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के उदय से धर्म-भावना को प्राप्त होता भी है तो अन्य दुष्टजनों के द्वारा पुन: उसी संसार के मार्ग में ला दिया जाता है ॥१७८॥
अन्य पुरुषों के द्वारा नष्ट हुए सत्पुरुष अन्य लोगों को भी नष्ट कर देते है पथ-भ्रष्ट कर देते हैं और धर्म-सामान्य की अपेक्षा केवल रूढि का ही पालन करते हैं ॥१७९॥
परिग्रही मनुष्यों के चित्त में विशुद्धता कैसे हो सकती है और जिसमें चित्त की विशुद्धता ही मूल कारण है ऐसी धर्म की स्थिति उन परिग्रही मनुष्यों में कहाँ से हो सकती है ॥१८०॥
जब तक परिग्रह में आसक्ति है तब तक प्राणियों की हिंसा होना निश्चित है । हिंसा ही संसार का मूल कारण है और दु:ख को ही संसार कहते हैं ॥१८१॥
परिग्रह के सम्बन्ध से राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा राग और द्वेष ही संसार सम्बन्धी दुःख के प्रबल कारण हैं ॥१८२॥
दर्शनमोह कर्म का उपशम होने से कितने ही प्राणी यद्यपि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं तथापि चारित्र मोह के आवरण से आवृत रहने के कारण वे सम्यक् चारित्र को प्राप्त नहीं कर सकते ॥१८३॥
कितने ही लोग सम्यक् चारित्र को पाकर श्रेष्ठ तप भी करते हैं परन्तु दु:खदायी परिषहों के निमित्त से भ्रष्ट हो जाते हैं ॥१८४॥
परिषहों के निमित्त से भ्रष्ट हुए कितने ही लोग अणुव्रतों का सेवन करते हैं और कितने ही केवल सम्यग्दर्शन से सन्तुष्ट रह जाते हैं **अर्थ**ात् किसी प्रकार का व्रत नहीं पालते हैं ॥१८५॥
कितने ही लोग संसाररूपी गहरे कूएँ से हस्तावलम्बन देकर, निकालने वाले सम्यग्दर्शन को छोड़कर फिर से मिथ्यादर्शन की सेवा करने

लगते हैं ॥१८६॥
तथा ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर दु:खरूपी अग्नि के बीच रहते हुए संकटपूर्ण संसार में भ्रमण करते रहते हैं ॥१८७॥
कितने ही ऐसे महा शूरवीर पुण्यात्मा जीव हैं जो ग्रहण किये हुए चारित्र को जीवन पर्यन्त धारण करते हैं ॥१८८॥
और समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर निदान के दोष से नारायण आदि पद को प्राप्त होते हैं ॥१८९॥
जो नारायण होते हैं वे दूसरों को पीड़ा पहुंचाने में तत्पर रहते हैं तथा उनका चित्त निर्दय रहता है इसलिए वे मरकर नियम से नरकों में भारी दुःख भोगते हैं ॥१९०॥
कितने ही लोग सुतप करके इन्द्र पद को प्राप्त होते हैं । कितने ही बलदेव पदवी पाते हैं और कितने ही अनुत्तर विमानों में निवास प्राप्त करते हैं ॥१९१॥
कितने ही महाधैर्यवान् मनुष्य षोडश कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न करने वाले तीर्थंकर-पद प्राप्त करते हैं ॥१९२॥
और कितने ही लोग निरन्तराय रूप से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र की आराधना में तत्पर रहते हुए दो-तीन भव में ही अष्ट कर्मरूप कलंक से मुक्त हो जाते हैं ॥१९३॥
वे फिर मुक्त जीवों के उत्कृष्ट एवं निरुपम स्थान को पाकर अनन्त काल तक निर्बाध उत्तम-सुख का उपभोग करते हैं ॥१९४॥
इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के मुखारबिन्द से निकले हुए धर्म को सुनकर मनुष्य, तिर्यंच तथा देव तीनों गति के जीव परम-हर्ष को प्राप्त हुए ॥१९५॥
धर्मोपदेश सुनकर कितने ही लोगों ने अणुव्रत धारण किये और संसार से भयभीत चित्त होकर कितने ही लोगों ने दिगम्बर-दीक्षा धारण की ॥१९६॥
कितने ही लोगों ने केवल सम्यग्दर्शन ही धारण किया और कितने ही लोगों ने अपनी शक्ति के अनुसार पाप-कार्यों का त्याग किया ॥१९७॥
इस तरह धर्म-श्रवण कर सबने श्री वर्धमान जिनेन्द्र की स्तुति कर उन्हें विधिपूर्वक नमस्कार किया और तदनन्तर धर्म में चित्त लगाते हुए सब यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥१९८॥
धर्म श्रवण करने से जिसकी आत्मा हर्षित हो रही थी ऐसे महाराज श्रेणिक ने भी राजलक्ष्मी से सुशोभित होते हुए अपने नगर में प्रवेश किया ॥१९९॥
तदनन्तर सूर्य ने पश्चिम समुद्र में अवगाहन करने की इच्छा को सो ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान के उत्कृष्ट तेज पुंज को देखकर वह इतना अधिक लज्जित हो गया था कि समुद्र में डूबकर आत्मघात ही करना चाहता था ॥२००॥
सन्ध्या के समय सूर्य अस्ताचल के समीप पहुंचकर अत्यन्त लालिमा को धारण करने लगा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो पद्मराग मणियों की किरणों से आच्छादित होकर ही लालिमा धारण करने लगा था ॥२०१॥
निरन्तर सूर्य का अनुगमन करने वाली किरणें भी मन्द पड़ गयीं सो ठीक ही है क्योंकि स्वामी के विपत्तिग्रस्त रहते हुए किसके तेज की वृद्धि हो सकती है? **अर्थ**ात् किसी के नहीं ॥२०२॥
तदनन्तर चक्रियों ने अश्रु भरे नेत्रों से सूर्य की ओर देखा इसलिए उन पर दया करने के कारण ही मानो वह धीरे-धीरे अदृश्य हुआ था ॥२०३॥
धर्म-श्रवण करने से प्राणियों ने जो राग छोड़ा था सन्ध्या के छल से मानो उसी ने दिशाओं के मण्डल को आच्छादित कर लिया था ॥२०४॥
जिस प्रकार मित्र बिना प्रार्थना किये ही लोगों के उपकार करने में प्रवृत्त होता है उसी प्रकार सूर्य भी बिना प्रार्थना किये ही हम लोगों के उपकार करने में प्रवृत्त रहता है इसलिए सूर्य का अस्त हो रहा है मानो मित्र ही अस्त हो रहा है ॥२०५॥
उस समय कमल संकुचित हो रहे थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो अस्तंगामी सूर्य के प्रलयोन्मुख राग ( लालिमा ) को ग्रास बना-बनाकर ग्रहण ही कर रहे थे ॥२०६॥
जिसने विस्तार और ऊँचाई को एक रूप में परिणत कर दिया था, तथा जिसका निरूपण नहीं किया जा सकता था ऐसा अन्धकार प्रकटता को प्राप्त हुआ । जिस प्रकार दुर्जन की चेष्टा उच्च और नीच को एक समान करती है तथा विषमता के कारण उसका निरूपण

करना कठिन होता है उसी प्रकार वह अन्धकार भी ऊंचे-नीचे प्रदेशों को एक समान कर रहा था और विषमता के कारण उसका निरूपण करना भी कठिन था ॥२०७॥

जिस प्रकार पूनम का पटल बुझती हुई अग्नि को आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार बढ़ते हुए समस्त अन्धकार ने सन्ध्या सम्बन्धी अरुण प्रकाश को आच्छादित कर लिया था ॥२०८॥

चम्पा की कलियों के आकार को धारण करनेवाला दीपकों का समूह वायु के मन्द-मन्द झोंके से हिलता हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो रात्रि रूपी स्त्री के कर्ण-फूलों का समूह ही हो ॥२०९॥

जो कमलों का रस पीकर तृप्त हो रहे थे तथा मृणाल के द्वारा खुजली कर अपने पंख फड़फड़ा रहे थे ऐसे राजहंस पक्षी निद्रा का सेवन करने लगे ॥२१०॥

जो स्त्रियों की चोटियों में गुथी मालती की मालाओं को हरण कर रही थी ऐसी सन्ध्या समय की वायु रात्रि रूपी स्त्री के श्वासोच्छवास के समान धीरे-धीरे बहने लगी ॥२११॥

ऊँची उठी हुई केशर की कणिकाओं के समूह से जिनकी संकीर्णता बढ़ रही थी ऐसी कमल की कोटरों में भ्रमरों के समूह सोने लगे ॥ २१२॥

जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के अत्यन्त निर्मल उपदेशों के समूह से तीनों लोक रमणीय हो जाते हैं उसी प्रकार अत्यन्त उज्जवल ताराओं के समूह से आकाश रमणीय हो गया था ॥२१३॥

जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए नय से एकान्तवादियों के वचन खण्ड-खण्ड हो जाते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा की निर्मल किरणों के प्रादुर्भाव से अन्धकार खण्ड-खण्ड हो गया था ॥२१४॥

तदनन्तर लोगों के नेत्रों ने जिसका अभिनन्दन किया था और जो अन्धकार के स्तर क्रोध धारण करने के कारण ही मानो कुछ-कुछ काँपते हुए लाल शरीर को धारण कर रहा था ऐसे चन्द्रमा का उदय हुआ ॥२१५॥

जब चन्द्रमा की उज्जवल चांदनी सब ओर फैल गयी तब यह संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो अन्धकार से खिन्न होकर क्षीर-समुद्र की गोद में ही बैठने की तैयारी कर रहा हो ॥२१६॥

सहसा कुमुद फूल उठे सो वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चन्द्रमा की किरणों का स्पर्श पाकर ही बहुत भारी आमोद-हर्ष (पक्ष में गन्ध) को धारण कर रहे थे ॥२१७॥

इस प्रकार स्त्री-पुरुषों को प्रीति से जिसमें अनेक समद-उत्सवों की वृद्धि हो रही थी और जो जन-समुदाय को सुख देनेवाला था ऐसा प्रदोष काल जब स्पष्ट रूप से प्रकट हो चुका था, राजकार्य निपटा कर जिनेन्द्र भगवान की कथा करता हुआ श्रेणिक राजा उस शय्या पर से सो गया जो कि तरंगों के कारण क्षत-विक्षत हुए गंगा के पुलिन के समान जान पड़ती थी । जड़े हुए रत्नों की कान्ति से जिसने महल के समस्त मध्यभाग को आलिंगित कर दिया था, जिसके फूलों की उत्तम सुगन्धि झरोखों से बाहर निकल रही थी, पास में बैठी वेश्याओं के मधुरगान से जो मनोहर थी, जिसके पास ही स्फटिकमणि निर्मित आवरण से आच्छादित दीपक जल रहा था, अंगरक्षक लोग प्रमाद छोड़कर जिसकी रक्षा कर रहे थे, जो फूलों के समूह से सुशोभित पृथिवी तल पर बिछी हुई थी, जिस पर कोमल तकिया रखा हुआ था, जिनेन्द्र भगवान के चरण-कमलों से पवित्र दिशा की ओर जिसका सिरहाना था, तथा जिसके प्रत्येक पाये पर सूक्ष्म किन्तु विस्मृत पट्ट बिछे हुए थे ॥२१८-२२४॥

राजा श्रेणिक स्वप्न में भी बार-बार जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करता था, बारबार उन्हीं से संशय की बात पूछा था और उन्हीं के द्वारा कथित तत्त्व का पाठ करता था ॥२२५॥

तदनन्तर-मदोन्मत्त गजराज की निद्रा को दूर करने वाले, महल की कक्षाओं रूपी गुफाओं में गूंजने वाले एवं बड़े-बड़े मेघों की गम्भीर गर्जना को हरने वाले प्रातःकालीन तुरही के शब्द सुनकर राजा श्रेणिक जागृत हुआ ॥२२६-२२७॥

जागते ही उसने भगवान् महावीर के द्वारा भाषित, चक्रवर्ती आदि वीर पुरुषों के धर्म-वर्धक चरित का एकाग्रचित्त से चिन्तवन किया ॥ २२८ ॥ अथानन्तर उसका चित्त बलभद्र पद के धारक रामचन्द्रजी के चरित की ओर गया और उसे राक्षसों तथा वानरों के विषय में सन्देह-सा होने लगा ॥ २२९ ॥ वह विचारने लगा कि अहो! जो जिनधर्म के प्रभाव से उत्तम मनुष्य थे, उच्चकुल में उत्पन्न थे, विद्वान् थे और

विद्याओं के द्वारा जिनके मन प्रकाशमान थे ऐसे रावण आदिक लौकिक ग्रन्थों में चर्बी, रुधिर तथा मांस आदि का पान एवं भक्षण करने वाले राक्षस सुने जाते हैं ॥ २३०-२३१ ॥ रावण का भाई कुम्भकर्ण महाबलवान था और घोर निद्रा से युक्त होकर छह-माह तक निरन्तर सोता रहता था ॥ २३२॥

यदि मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा भी उसका मर्दन किया जाये, तपे हुए तेल के कड़ाही से उसके कान भरे जावें और भेरी तथा शंखों का बहुत भारी शब्द किया जाये तो भी समय पूर्ण न होने पर वह जागृत नहीं होता था ॥२३३-२३४॥

बहुत बड़े पेटू को धारण करनेवाला वह कुम्भकर्ण जब जागता था तब भूख और प्यास से इतना व्याकुल हो उठता था कि सामने हाथी आदि जो भी दिखते थे उन्हें खा जाता था । इस प्रकार वह बहुत ही दुर्धर था ॥२३५॥

तिर्यंच, मनुष्य और देवों के द्वारा वह तृप्ति कर पुन: सो जाता था उस समय उसके पास अन्य कोई भी पुरुष नहीं ठहर सकता था ॥२३६॥

अहो! कितने आश्चर्य को बात है कि पाप-वर्धक खोटे-ग्रन्थों की रचना करने वाले मूर्ख कुकवियो ने उस विद्याधर कुमार का कैसा बीभत्स चरित चित्रण किया है ॥२३७॥

जिसमें यह सब चरित्र-चित्रण किया गया है वह ग्रन्थ रामायण के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके विषय में यह प्रसिद्धि है कि वह सुननेवाले मनुष्यों के समस्त पाप तत्क्षण में नष्ट कर देता है ॥२३८॥

सो जिसका चित्त ताप का त्याग करने के लिए उत्सुक है उसके लिए यह रामायण मानो अग्नि का समागम है और जो शीत दूर करने की इच्छा करता है उसके लिए मानो हिम मिश्रित शीतल वायु का समागम है ॥२३९॥

घी की इच्छा रखनेवाले मनुष्य का जिस प्रकार पानी का बिलोवना व्यर्थ है और तेल प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य का बालू का पेलना निसार है उसी प्रकार पाप त्याग की इच्छा करनेवाले मनुष्य का रामायण का आश्रय लेना व्यर्थ है ॥२४०॥

जो महापुरुषों के चारित्र में प्रकट करते हैं ऐसे अधर्म शास्त्रों में भी पापी पुरुषों ने धर्मशाख की कल्पना कर रखी है ॥२४१॥

रामायण में यह भी लिखा है कि रावण ने कान तक खींचकर छोड़े हुए बाणों से देवों के अधिपति इन्द्र को भी पराजित कर दिया था ॥ २४२॥

अहो! कहाँ तो देवों का स्वामी इन्द्र और कहाँ वह तुच्छ मनुष्य जो कि इन्द्र की चिन्ता मात्र से भस्म की राशि हो सकता है? ॥२४३॥

जिसके ऐरावत हाथी था और वज्र जैसा महान् शस्त्र था तथा जो सुमेरु पर्वत और समुद्रों से सुशोभित पृथिवी को अनायास ही उठा सकता था ॥२४४॥

ऐसा इन्द्र अल्प-शक्ति के धारक विद्याधर के द्वारा, जो कि एक साधारण मनुष्य ही था, कैसे पराजित हो सकता था ? ॥२४५॥

उसमें यह भी लिखा है कि राक्षसों के राजा रावण ने इन्द्र की अपने बन्दी-गृह में पकड़कर रखा था और उसने बन्धन से बद्ध होकर लंका के बन्दी-गृह में चिरकाल तक निवास किया था ॥२४६॥

सो ऐसा कहना मृगों के द्वारा सिंह का वध होना, तिलों के द्वारा शिलाओं का पिसा जाना, पनिया साँप के द्वारा नाग का मारा जाना और कुत्ता के द्वारा गजराज का दमन होने के समान है ॥२४७॥

व्रत के धारक रामचन्द्रजी ने सुवर्ण मृग को मारा था, और स्त्री के पीछे सुग्रीव के बड़े भाई बाली को, जो कि उसके पिता के समान था, मारा था ॥२४८॥

यह सब कथानक युक्तियों से रहित होने के कारण श्रद्धान करने के योग्य नहीं है । यह सब कथा मैं कल भगवान् गौतम गणधर से पूछूँगा ॥२४१॥

इस प्रकार बुद्धिमान् महाराज श्रेणिक चिन्ता कर रहे थे कि तुरही का शब्द बन्द होते ही वन्दीजनों ने जोर से जयघोष किया ॥२५०॥

उसी समय महाराज श्रेणिक के समीपवर्ती चिरजीवी कुल-पुत्र ने जागकर स्वभाववश निम्न श्लोक पढ़ा कि जिस पदार्थ को स्वयं जानते है उस पदार्थ को भी गुरुजनों से नित्य ही पूछना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा निस्वयं को प्राप्त कराया हुआ पदार्थ परम-सुख प्रदान करता ॥ २५१-२५२॥

इस सुन्दर निमित्त से जो आनन्द को प्राप्त थे तथा अपनी स्त्रियों ने जिनका मंगलाचार किया था ऐसे महाराज श्रेणिक शैय्या से उठे ॥ २५३॥

तदनन्तर -- पुष्परूपी पट के भीतर सोकर बाहर निकले हुए भ्रमरों की मधुर गुंजार से जिसका एक भाग बहुत ही रमणीय था, जिसके भीतर जलते हुए निष्प्रभ दीपक प्रातःकाल की शीत-वायु के झोंके से हिल रहे थे और जो बहुत ही शोभा-सम्पन्न था ऐसे निकास गृह से राजा श्रेणिक बाहर निकले ॥२५४॥

बाहर निकलते ही उन्होंने लक्ष्मी के समान कान्ति वाली तथा करकुड्मलों के द्वारा कमलों की शोभा को प्रकट करने वाली वीरांगनाओं के नुकीले दाँतों से दष्ट श्रेष्ठ बिम्ब से निर्गत जयनाद को सुना ॥२५५॥

इस प्रकार अत्यन्त शुभ-ध्यान के प्रभाव से निश्चलता को प्राप्त हुए शुभ-भाव से जिन्हें तत्काल के उपयोगी समस्त शुभ-भावों की प्राप्ति हुई थी ऐसे महाराज श्रेणिक, सफेद कमल के समान कान्ति वाले निवास गृह से बाहर निकलकर शरद् ऋतु के मेघों के समूह से बाहर निकले हुए सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे ॥२५६॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्म चरित में महाराज श्रेणिक की चिन्ता को प्रकट करने वाला दूसरा पर्व पूर्ण हुआ ॥२॥

## विद्याधर लोक का वर्णन

तृतीय पर्व

कथा :

अथानन्तर दूसरे दिन शरीर संबंधी समस्त क्रियाओं को पूर्ण कर सर्व आभरणों से सुशोभित महाराज श्रेणिक सभामण्डप में आकर उत्तम सिंहासन पर विराजमान हुए ॥१॥

उसी समय द्वारपालों ने जिन्हें प्रवेश कराया था ऐसे आये हुए सामन्तों ने उन्हें नमस्कार किया । नमस्कार करते समय उन सामन्तों के श्रेष्ठ वस्त्र, बाजूबन्दों के अग्रभाग के संघर्षण से फट रहे थे जिन पर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ऐसी मुकुट में लगी हुई श्रेष्ठ मालाएँ नीचे पड़ रही थीं, वलय की किरणों के समूह से आच्छादित पाणितल से वे पृथ्वीतल का स्पर्श कर रहे थे, हिलती हुई माला के मध्य मणि सम्बन्धी प्रभा के समूह से व्याप्त थे, और महाराज के उत्तमोत्तम गुणों के समूह से उनके मन महाराज की ओर आसक्त हो रहे थे ॥२-४॥

तदनन्तर श्रेष्ठ वाहनों पर आरूढ़ हुए उन्हीं सब सामन्तों से अनुगत महाराज श्रेणिक, पीठ पर पड़ा झूल से सुशोभित उत्तम हथिनी पर सवार होकर श्री वर्धमान जिनेन्द्र के समवसरण की ओर चले ॥५॥

जिन्होंने अपने हाथ में तलवार ले रखी थी, कमर में छुरी बाँध रखी थी, जो बायें हाथ में सुवर्ण निर्मित कड़ा पहने हुए थे, बार-बार आकाश में दूर तक छलांग भर रहे थे और इसीलिए जो वायु के पीछे चलने वाले वात प्रेमी मृगों के झुण्ड के समान जान पड़ते थे तथा जो 'चलो-चलो, मार्ग छोड़ो, हटो आगे क्यों खड़े हो गये' इस प्रकार के शब्दों का उच्चारण कर रहे थे ऐसे मृगों का समूह उनके आगे कोलाहल करता जाता था ॥६-८॥

आगे-आगे वन्दीजन सुभाषित पढ़ रहे थे सो महाराज उन्हें चित्त स्थिर कर श्रवण करते जाते थे । इस प्रकार नगर से निकलकर राजा श्रेणिक उस स्थान पर पहुँचे जहाँ गौतम गणधर विराजमान थे । गौतम स्वामी अनेक मुनियों से घिरे हुए थे, समस्त शास्त्ररूपी जल में स्नान करने से उनकी चेतना निर्मल हो गयी थी, शुद्ध ध्यान से सहित थे, तत्वों के व्याख्यान में तत्पर थे, सुखकर स्पर्श से सहित एवं लब्धियों के कारण प्राप्त हुए मयूराकार आसन पर विराजमान थे, कान्ति से चन्द्रमा के समान थे, दीप्ति से सूर्य के सदृश थे, उनके हाथ और पैर अशोक के पल्लवों के समान लाल-लाल थे, उनके नेत्र कमलों के समान थे, अपने शान्त शरीर से संसार को शान्त कर रहे थे, और मुनियों के अधिपति थे ॥९-१३॥

राजा श्रेणिक दूर से ही हस्तिनी से नीचे उतरकर पैदल चलने लगे, उनके नेत्र हर्ष से फूल गये, और उनका शरीर विनय से झुक गया । वहाँ जाकर उन्होंने तीन प्रदक्षिणाएं दीं, हाथ जोड़कर प्रणाम किया और फिर गणधर स्वामी का आशीर्वाद प्राप्त कर वे पृथ्वी पर ही बैठ गये ॥१४-१५॥

तदनन्तर-दाँतों की प्रभा से पृथ्वी-तल को सफेद करते हुए राजा श्रेणिक ने कुशल-प्रश्न पूछने के बाद गणधर महाराज से यह पूछा ॥१६॥ उन्होंने कहा कि, हे भगवन्! मैं रामचन्द्रजी का वास्तविक चरित्र सुनना चाहता हूँ क्योंकि कुधर्म के अनुगामी लोगों ने उनके विषय में अन्य प्रकार की ही प्रसिद्धि उत्पन्न कर दी है ॥१७॥

लंका का स्वामी रावण, राक्षस वंशी विद्याधर मनुष्य होकर भी तिर्यंचगति के क्षुद्र वानरों के द्वारा किस प्रकार पराजित हुआ ॥१८॥
वह, अत्यन्त दुर्गन्धित मनुष्य शरीर का भक्षण कैसे करता होगा? रामचन्द्रजी ने कपट से बालि को कैसे मारा होगा? देवों के नगर में जाकर तथा उसके उत्तम उपवन को नष्ट कर रावण इन्द्र को बन्दीगृह में किस प्रकार लाया होगा? उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण तो समस्त शास्त्रों के **अर्थ** जानने में कुशल था तथा निरोग शरीर का धारक था फिर छह माह तक किस प्रकार सोता रहता होगा? जो देवों के द्वारा भी अशक्य था ऐसा बहुत ऊँचा पुल भारी-भारी पर्वतों के द्वारा वानरों ने कैसे बनाया होगा? ॥१९-२२॥
हे भगवन्! मेरे लिए यह सब कहने के **अर्थ** प्रसन्न होइए और संशय रूपी भारी कीचड़ से अनेक भव्य जीवों का उद्धार कीजिए ॥२३॥
इस प्रकार राजा श्रेणिक के पूछने पर गौतम गणधर, अपने दाँतों की किरणों से समस्त मलिन संसार को धोकर फूलों से सजाते हुए और मेघ-गर्जना के समान गम्भीर वाणी के द्वारा लता-गृहों के मध्य में स्थित मयूरों को नृत्य कराते हुए कहने लगे ॥२४-२५॥
कि हे आयुष्मन् ! हे देवों के प्रिय ! भूपाल ! तू यत्नपूर्वक मेरे वचन सुन । मेरे वचन जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट हैं, तथा पदार्थ का सत्यस्वरूप प्रकट करने में तत्पर हैं ॥२६॥
रावण राक्षस नहीं था और न मनुष्यों को ही खाता था । मिथ्यावादी लोग जो कहते हैं सो सब मिथ्या ही कहते हैं ॥२७॥
जिस प्रकार नींव के बिना भवन नहीं बनाया जा सकता है उसी प्रकार कथा के प्रस्ताव के बिना कोई वचन नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि इस तरह के वचन निर्मूल होते हैं और निर्मूल होने के कारण उनमें प्रामाणिकता नहीं आती है ॥२८॥
इसलिए सबसे पहले तुम क्षेत्र और काल का वर्णन सुनो । तदनन्तर पापों को नष्ट करनेवाला महापुरुषों का चरित्र सुनो ॥२९॥
अनन्त अलोकाकाश के मध्य में तीन वातवलयों से वेष्टित तीन लोक स्थित है । अनन्त अलोकाकाश के बीच में यह उन्नताकार लोक ऐसा जान पड़ता है मानो किसी उदूखल के बीच बड़ा भारी ताल का वृक्ष खड़ा किया गया हो ॥३०॥
इस लोक का मध्यभाग जो कि तिर्यग्लोक के नाम से प्रसिद्ध है, चूड़ी के आकार वाले असंख्यात द्वीप और समुद्रों से वेष्टित है ॥३१॥
कुम्भकार के चक्र के समान यह जम्बूद्वीप है । यह जम्बूद्वीप सब द्वीपों में उत्तम है, लवणसमुद्र के मध्य में स्थित है और सब ओर से एक लाख योजन विस्तार वाला है ॥३२॥
इस जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु पर्वत है । यह पर्वत कभी नष्ट नहीं होता, इसका मूल भाग वज्र **अर्थ**ात् हीरों का बना है और ऊपर का भाग सुवर्ण तथा मणियों एवं रत्नों से निर्मित है ॥३३॥
इसकी ऊँची चोटी सन्ध्या के कारण लाल-लाल दिखने वाले मेघों के समूह के समान जान पड़ती है । सौधर्म स्वर्ग की भूमि और इस पर्वत के शिखर में केवल बाल के अग्रभाग बराबर ही अन्तर रह जाता है ॥३४॥
यह निन्यानवे हजार योजन ऊपर उठा है और एक हजार योजन नीचे पृथिवी में प्रविष्ट है । पृथिवी के भीतर यह पर्वत वज्रमय है ॥३५॥
यह पर्वत पृथिवी पर दस हजार योजन और शिखर पर एक हजार योजन चौड़ा है और ऐसा जान पड़ता है मानो मध्यम लोक के आकाश को नापने के लिए एक दण्ड ही खड़ा किया गया है ॥३६॥
यह जम्बूद्वीप भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत-इन सात क्षेत्रों से सहित है । तथा इसी के विदेह क्षेत्र में देवकुरु और उत्तरकुरु नाम से प्रसिद्ध दो कुरु प्रदेश भी हैं । इन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले छह कुलाचल भी इसी जम्बूद्वीप में सुशोभित हैं ॥३७॥
जम्बू और शाल्मली ये दो महावृक्ष हैं । जम्बूद्वीप में चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं और प्रत्येक विजयार्ध पर्वत पर एक सौ दस एक सौ दस विद्याधरों की नगरियाँ हैं ॥३८॥
जम्बूद्वीप में बत्तीस विदेह, एक भरत और एक ऐरावत ऐसे चौंतीस क्षेत्र हैं और एक-एक क्षेत्र में एक-एक राजधानी है इस तरह चौंतीस राजधानियाँ हैं, चौदह महानदियाँ हैं, जम्बू वृक्ष के ऊपर अकृत्रिम जिनालय है ॥३९॥
हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, देवकुरु और उत्तरकुरु इस प्रकार छह भोगभूमियां हैं । मेरु, गजदन्त, कुलाचल, वक्षारगिरि, विजयार्ध, जम्बू वृक्ष और शाल्मली वृक्ष -- इन सात स्थानों पर अकृत्रिम तथा सर्वत्र कृत्रिम इस प्रकार आठ जिनमन्दिर हैं । बत्तीस विदेह क्षेत्र के तथा भरत और ऐरावत के एक-एक इस प्रकार कुल चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं । उनमें प्रत्येक में दो-दो गुफाएँ हैं इस तरह अड़सठ गुफाएँ हैं । और इतने ही भवनों की संख्या है ॥४०॥

बत्तीस विदेह क्षेत्र तथा एक भरत और एक ऐरावत इन चौंतीस स्थानों में एक साथ तीर्थंकर भगवान् हो सकते हैं इसलिए समवसरण में भगवान के चौंतीस सिंहासन हैं । विदेह के सिवाय भरत और ऐरावत क्षेत्र में रजतमय दो विजयार्ध पर्वत कहे गये हैं ॥४१॥
वक्षारगिरियों से युक्त समस्त पर्वतों पर जिनेन्द्र भगवान के मन्दिर हैं जो कि रत्नों की राशि से सुशोभित हो रहे हैं ॥४२॥
जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा में जिन-प्रतिमाओं से सुशोभित एक बड़ा भारी राक्षस नाम का द्वीप है ॥४३॥
महा विदेह क्षेत्र की पश्चिम दिशा में जिनबिम्बों से देदीप्यमान किन्नर द्वीप नाम का विशाल शुभद्वीप है ॥४४॥
ऐरावत क्षेत्र की उत्तरदिशा में गन्धर्व नाम का द्वीप है जो कि उत्तमोत्तम चैत्यालय विभूषित है ॥४५॥
मेरु पर्वत से पूर्व की ओर जो विदेह क्षेत्र है उसकी दिशा में धरण द्वीप सुशोभित हो रहा है । यह धरण द्वीप भी जिन-मन्दिरों से व्याप्त है ॥४६॥
भरत और ऐरावत ये दोनों क्षेत्र वृद्धि और हानि से सहित हैं । अन्य क्षेत्रों की भूमियां व्यवस्थित हैं **अर्थ**ात् उनमें काल-चक्र का परिवर्तन नहीं होता ॥४७॥
जम्बू वृक्ष के ऊपर जो भवन है उसमें अनावृत नाम का देव रहता है । यह देव किल्विष जाति के अनेक शत देवों से आवृत रहता है ॥४८॥
इस भरत क्षेत्र में जब पहले सुषमा नाम का पहला काल था तब वह उत्तरकुरु के समान कल्पवृक्षों से व्याप्त था **अर्थ**ात् यहां उत्तम भोगभूमि की रचना थी ॥४९॥ उस समय यहां के लोग मध्याह्न के सूर्य के समान देदीप्यमान, दो कोश ऊँचे और सर्व लक्षणों से पूर्ण-सुशोभित होते थे ॥५०॥
यहाँ स्त्री-पुरुष का जोड़ा साथ-साथ उत्पन्न होता था तीन पल्य की उनकी आयु होती थी और प्रेम बन्धनबद्ध रहते हुए साथ-ही-साथ उनकी मृत्यु होती थी ॥५१॥
यहाँ की भूमि सुवर्ण तथा नाना प्रकार के रत्नों से खचित थी और काल के प्रभाव से सबके लिए मनोवांछित फल प्रदान करने वाली थी ॥५२॥
सुगन्धित, निर्मल तथा कोमल स्पर्श वाली, चतुरंगुल प्रमाण घास से वहाँ की भूमि सदा सुशोभित रहती थी ॥ ५३ ॥ वृक्ष सब ऋतुओं के फल और फूलों से सुशोभित रहते थे तथा गाय, भैंस, भेड़ आदि जानवर स्वतन्त्रता पूर्वक सुख से निवास करते थे ॥५४॥
वहाँ के सिंह आदि जन्तु कल्पवृक्षों से उत्पन्न हुए मनवांछित अन्न को खाते हुए सदा सौम्य-शान्त रहते थे । कभी किसी जीव की हिंसा नहीं करते थे ॥५५॥
वहाँ की वापिकाएं पद्म आदि कमलों से आच्छादित, सुवर्ण और मणियों से सुशोभित तथा मधु, क्षीर एवं घृत आदि से भरी हुई अत्यधिक शोभायमान रहती थीं ॥५६॥
वहाँ के पर्वत अत्यन्त ऊंचे थे, पाँच प्रकार के वर्णों से उज्जवल थे, नाना प्रकार के रत्नों की कान्ति से व्याप्त थे तथा सर्व-प्राणियों को सुख उपजाने वाले थे ॥५७॥
वहाँ की नदियां मगरमच्छादि जन्तुओं से रहित थीं, सुन्दर थीं, उनका जल दूध, घी और मधु के समान था, उनका आस्वाद अत्यन्त सुरस था और उनके किनारे रत्नों से देदीप्यमान थे ॥५८॥
वहाँ न तो अधिक शीत पड़ती थी, न अधिक गर्मी होती थी, न तीव्र वायु चलती थी । वह सब प्रकार के भयों से रहित था और वहाँ निरन्तर नये-नये उत्सव होते रहते थे ॥५९॥ वहाँ ज्योतिरंग जाति के वृक्षों की कान्ति के समूह से सूर्य और चन्द्रमा के मण्डल छिपे रहते थे / दिखाई नहीं पड़ते थे तथा सर्व इन्द्रियों को सुखास्वाद के देने वाले कल्पवृक्ष सुशोभित रहते थे ॥६०॥
वहाँ बड़े-बड़े बाग-बगीचे और विस्तृत भूभाग से सहित महल, शयन, आसन, मद्य, इष्ट और मधुर पेय, भोजन, वस्त्र, अनुलेपन, तुरही के मनोहर शब्द और दूर तक फैलने वाली सुन्दर गन्ध तथा इनके सिवाय और भी अनेक प्रकार की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी ॥६१॥
इसप्रकार वहाँ के दम्पती, दस प्रकार के सुन्दर कल्पवृक्षों के नीचे देवदम्पती के समान रात-दिन क्रीड़ा करते रहते थे ॥६२-६३॥
इस तरह गणधर भगवान के कह चुकने पर राजा श्रेणिक ने उनसे भोगभूमि में उपजने का कारण पूछा ॥६४॥
उत्तर में गणधर भगवान् कहने लगे कि जो सरलचित्त के धारी मनुष्य मुनियों के लिए आहार आदि दान देते हैं वे ही इन भोग-भूमियों में

उत्तम मनुष्य होते हैं ॥६५॥
तथा जो भोगों की तृष्णा से कुपात्र के लिए दान देते हैं वे भी हस्ती आदि की पर्याय प्राप्त कर दान का फल भोगते हैं ॥६६॥
जिस प्रकार हल की नोक से दूर तक जूते और अत्यन्त कोमल क्षेत्र में बोया हुआ बीज अनन्तगुणा धान्य प्रदान करता है अथवा जिस प्रकार ईखों में दिया हुआ पानी मधुरता को प्राप्त होता हैं और गायों के द्वारा पिया हुआ पानी दूध रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार तप के भण्डार और व्रतों से अलंकृत शरीर के धारक सर्व-परिग्रह रहित मुनि के लिए दिया हुआ दान महाफल को देनेवाला होता है ॥ ६८-६९॥ जिस प्रकार ऊषर क्षेत्र में बोया हुआ बीज अल्प फल देता है अथवा नीम के वृक्षों में दिया हुआ पानी जिस प्रकार कडुआ हो जाता है और साँपों के द्वारा पीया हुआ पानी जिस प्रकार विष रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार कुपात्रों में दिया हुआ दान कुफल को देनेवाला होता है ॥७०-७१॥
गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन्! जो जैसा दान देता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है । दर्पण के सामने जो-जो वस्तु रखी जाती है वही-वही दिखाई देती है ॥७२॥
जिस प्रकार शुक्ल और कृष्ण के भेद से दो पक्ष एक के बाद एक प्रकट होते हैं उसी प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो काल क्रम से प्रकट होते हैं ॥७३॥
अथानन्तर तृतीय काल का अन्त होने के कारण जब क्रम से कल्पवृक्षों का समूह नष्ट होने लगा तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए उस समय की व्यवस्था कहता हूँ, सो हे श्रेणिक! सुन ॥७४॥
सबसे पहले प्रतिश्रुति नाम के प्रथम कुलकर हुए । उनके वचन सुनकर प्रजा आनन्द को प्राप्त हुई ॥७५॥
वे अपने तीन जन्म पहले की बात जानते थे, शुभचेष्टाओं के चलाने में तत्पर रहते थे और सब प्रकार की व्यवस्थाओं का निर्देश करने वाले थे ॥७६॥
उनके बाद अनेक करोड़ हजार वर्ष बीतने पर सन्मति नाम के द्वितीय कुलकर उत्पन्न हुए ॥७७॥
उनके बाद क्षेमंकर, फिर क्षेमन्धर, तत्पश्चात् सीमंकर और उनके पीछे सिकन्दर नाम के कुलकर उत्पन्न हुए ॥७८॥
उनके बाद चक्षुष्मान् कुलकर हुए । उनके समय प्रजा सूर्य चन्द्रमा को देखकर भयभीत हो उनसे पूछने लगी कि हे स्वामिन्! आकाशरूपी समुद्र में ये दो पदार्थ क्या दिख रहे हैं? ॥७९॥
प्रजा का प्रश्न सुनकर चक्षुष्मान् को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया ।
उस समय उन्होंने विदेह-क्षेत्र में भी जिनेन्द्र-देव के मुख से जो कुछ श्रवण किया था वह सब स्मरण में आ गया । उन्होंने कहा कि तृतीय काल का क्षय होना निकट है इसलिए ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों की कान्ति मन्द पड़ गयी है और चन्द्रमा तथा सूर्य की कान्ति प्रकट हो रही है । ये चन्द्रमा और सूर्य नाम से प्रसिद्ध दो ज्योतिषी देव आकाश में प्रकट दिख रहे हैं ॥८०-८१॥
ज्योतिषी, भवनवासी, व्यन्तर और कल्पवासी के भेद से देव चार प्रकार के होते हैं । संसार के प्राणी अपने-अपने कर्मों की योग्यता के अनुसार इनमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥८२॥
इनमें जो शीत किरणों वाला है वह चन्द्रमा है और जो उष्ण किरणों का धारक है वह सूर्य है । काल के स्वभाव से ये दोनों आकाशगामी देव दिखाई देने लगे हैं ॥८३॥
जब सूर्य अस्त हो जाता है तब चन्द्रमा की कान्ति बढ़ जाती है । सूर्य और चन्द्रमा के सिवाय आकाश में यह नक्षत्रों का समूह भी प्रकट हो रहा है ॥८४॥
यह सब काल का स्वभाव है, ऐसा जानकर आप लोग भय को छोड़ें । चक्षुष्मान् कुलकर ने जब प्रजा से यह कहा तब वह भय छोड़कर पहले के समान सुख से रहने लगी ॥८५॥
जब चक्षुष्मान् कुलकर स्वर्गगामी हो गये तो उनके बाद यशस्वी नामक कुलकर उत्पन्न हुए । उनके बाद विपुल, उनके पीछे अभिचन्द्र, उनके पश्चात् चन्द्राभ, उनके अनन्तर मरुदेव, उनके बाद प्रसेनजित् और उनके पीछे नाभि नामक कुलकर उत्पन्न हुए । इन कुलकरों में नाभिराज अन्तिम कुलकर थे ॥८६-८७॥
ये चौदह कुलकर प्रजा के पिता के समान कहे गये हैं, पुण्य कर्म के उदय से इनकी उत्पत्ति होती है और बुद्धि की अपेक्षा सब समान होते

हैं ॥८८॥
अथानन्तर चौदहवें कुलकर नाभिराज के समय में सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये । केवल इन्हीं के क्षेत्र के मध्य में स्थित एक कल्पवृक्ष रह गया जो प्रासाद **अर्थ**ात् भवन के रूप में स्थित था और अत्यन्त ऊँचा था ॥८१॥
उनका वह प्रासाद मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, सुवर्ण और रत्नों से उसकी दीवालें बनी थीं, वापी और बगीचा से सुशोभित था तथा पृथिवी पर एक अद्वितीय ही था ॥९०॥
नाभिराज के हृदय को हरने वाली मरुदेवी नाम की उत्तम रानी थी । जिस प्रकार चन्द्रमा की भार्या रोहिणी प्रचलत्तारका **अर्थ**ात् चंचल तारा रूप होती है उसी प्रकार मरुदेवी भी प्रचलत्तारका थी अर्थात् उसकी आंखों की पुतली चंचल थी ॥९१॥
जिस प्रकार समुद्र की स्त्री गंगा महा भूभृत्कुलोद्गता है **अर्थ**ात् हिमगिरि नामक उच्च पर्वत के कुल में उत्पन्न हुई है उसी प्रकार मरुदेवी भी महा भूभृत्कुलोद्गता अर्थात् उत्कृष्ट राजवंश में उत्पन्न हुई थी और राजहंस की स्त्री जिस प्रकार मानसानुगमक्षमा अर्थात् मानस सरोवर की ओर गमन करने में समर्थ रहती है उसी प्रकार मरुदेवी भी मानसानुगमक्षमा अर्थात् नाभिराज के मन के अनुकूल प्रवृत्ति करने में समर्थ थी ॥९२॥
जिस प्रकार अरुन्धती सदा अपने पति के पास रहती थी उसी प्रकार मरुदेवी भी निरन्तर पति के पास रहती थी । वह गमन करने में हंसी के समान थी और मधुर वचन बोलने में कोयल के अनुरूप थी ॥९३॥
वह पति के साथ प्रेम करने में चकवी के समान थी इत्यादि जो कहा जाता है वह सब मरुदेवी के प्रति हीनोपमा दोष को प्राप्त होता है ॥९४॥
जिस प्रकार तीनों लोकों के द्वारा वन्दनीय धर्म की भार्या श्रुतदेवता के नाम से प्रसिद्ध है उसी प्रकार नाभिराज की वह भार्या मरुदेवी नाम से प्रसिद्ध थी तथा समस्त लोकों के द्वारा पूजनीय थी ॥९५॥
उसमें रंच मात्र भी तस्मा **अर्थ**ात् क्रोध या अहंकार की गर्मी नहीं थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो चन्द्रमा की कलाओं से ही उसका निर्माण हुआ हो । उसे प्रत्येक मनुष्य अपने हाथ में लेना चाहता था - स्वीकृत करना चाहता था इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो दर्पण की शोभा को जीतना चाहती हो ॥९६॥
वह दूसरे के मनोगत भाव को समझने वाली थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो आत्मा से ही उसके-स्वरूप की रचना हुई हो । उसके कार्य तीनों लोकों में व्याप्त थे इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो मुक्त जीव के समान ही उसका स्वभाव था ॥९७॥
उसकी प्रवृत्ति पुण्यरूप थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनवाणी से ही उसकी रचना हुई हो । वह तृष्णा से भरे भृत्यों के लिए धन वृष्टि के समान थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अमृत स्वरूप ही हो ॥९८॥
सखियों को सन्तोष उपजाने वाली थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो निर्वृति **अर्थ**ात् मुक्ति के समान ही हो । उसका शरीर महाश्वास, विलास से सहित था इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो मदिरा स्वरूप ही हो । वह सौन्दर्य की परम काष्ठा को प्राप्त थी अर्थात् अत्यन्त सुन्दरी थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो रति की प्रतिमा ही हो ॥९९॥ उसके मस्तक को अलंकृत करने के लिए उसके नेत्र ही पर्याप्त थे, नील कमलों की मालाएँ तो केवल भार स्वरूप ही थीं ॥१००॥
भ्रमर के समान काले केश ही उसके ललाट के दोनों भागों के आभूषण थे तमाल पुष्प की कलिकाएँ तो केवल मार मात्र थीं ॥१०१॥
प्राण-वल्लभ की कथा-वार्ता सुनना ही उसके कानों का आभूषण था, रत्न तथा सुवर्ण के कुण्डल आदि का धारण करना आडम्बर मात्र था ॥१०२॥
उसके दोनों कपोल ही निरन्तर स्पष्ट प्रकाश के कारण थे, रत्नमय दीपकों की प्रभा केवल वैभव बतलाने के लिए ही थी ॥१०३॥
उसकी मन्द मुसकान ही उत्तम गन्ध से युक्त सुगन्धित चूर्ण थी, कपूर की सफेद रज केवल कान्ति को नष्ट करने वाली थी ॥१०४॥
उसकी वाणी ही मधुर वीणा थी, परिकर के द्वारा किया हुआ जो बाजा सुनने का कौतूहल था वह मात्र तारों के समूह को ताड़न करना था ॥१०५॥
उसके अधरोष्ठ से प्रकट हुई कान्ति ही उसके शरीर का देदीप्यमान अंगराग था । कुंकुम आदि का लेप गुणरहित तथा सौन्दर्य को कलंकित करनेवाला था ॥१०६॥

उसकी कोमल भुजाएँ ही परिहास के समय पति पर प्रहार करने के लिए पर्याप्त थीं, मृणाल के टुकड़े निष्प्रयोजन थे ॥१०७॥
यौवन की गरमी से उत्पन्न हुई पसीने की बूँदें ही उसके दोनों स्तनों का आभूषण थीं, उनपर हार का बोझ तो व्यर्थ ही डाला गया था ॥१०८॥
शिलातल के समान विशाल उसकी नितम्बस्थली ही आश्चर्य का कारण थी, महल के भीतर जो मणियों की वेदी बनायी गयी थी वह बिना कारण ही बनायी गयी थी ॥१०९॥ कमल समझकर बैठे हुए भ्रमर ही उसके दोनों चरणों के आभूषण थे, उनमें जो इन्द्रनील मणि के नूपुर पहनाये गये थे वे व्यर्थ थे ॥११०॥
नाभिराज के साथ, कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुए भोगों को भोगने वाली मरुदेवी के पुण्य वैभव का वर्णन करना करोड़ों ग्रन्थों के द्वारा भी अशक्य है ॥१११॥
जब भगवान् ऋषभदेव के गर्भावतार का समय प्राप्त हुआ तब इन्द्र की आज्ञा से सन्तुष्ट हुई दिक्कुमारी देवियाँ बड़े आदर से मरुदेवी की सेवा करने लगीं ॥११२॥
वृद्धि को प्राप्त होओ, आज्ञा देओ, चिरकाल तक जीवित रहो इत्यादि शब्दों को सम्भ्रम के साथ उच्चारण करने वाली लक्ष्मी, श्री, घृती और कीर्ति आदि देवियाँ उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगीं ॥११३॥
उस समय कितनी ही देवियाँ हृदयहारी गुणों के द्वारा उसकी स्तुति करती थीं, और उत्कृष्ट विज्ञान से सम्पन्न कितनी ही देवियाँ वीणा बजाकर उसका गुणगान करती थीं ॥११४॥
कोई कानों के लिए अमृत के समान आनन्द देनेवाला आश्चर्यकारक उत्तम गान गाती थीं और कोमल हाथों वाली कितनी ही देवियाँ उसके पैर पलोटती थीं ॥११५॥
कोई पान देती थी, और कोई आसन देती थी और कोई तलवार हाथ में लेकर सदा रक्षा करने में तत्पर रहती थी ॥११६॥
कोई महल के भीतरी द्वार पर और कोई महल के बाहरी द्वार पर भाला, सुवर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि हथियार लेकर पहरा देती थी ॥११७॥
कोई चमर ढोलती थीं, कोई वस्त्र लाकर देती थी और कोई आभूषण लाकर उपस्थित करती थी ॥११८॥
कोई शय्या बिछाने के कार्य में लगी थी कोई बुहारने के कार्य में तत्पर थी, कोई पुष्प बिखेरने में लीन थी और कोई सुगन्धित द्रव्य का लेप लगाने में व्यस्त थी॥११९॥ कोई भोजन पान के कार्य में व्यग्र थी और कोई बुलाने आदि के कार्य में लीन थी । इस प्रकार समस्त देवियाँ उसका कार्य करती थीं ॥१२०॥
इस प्रकार नाभिराज की प्रिय वल्लभा मरुदेवी को किसी बात की चिन्ता का क्लेश नहीं उठाना पड़ता था **अर्थ**ात् बिना चिन्ता किये ही समस्त कार्य सम्पन्न हो जाते थे । एक दिन वह चीनवस्त्र से आच्छादित तथा जिसके दोनों और तकिया रखे हुए थे, ऐसी अत्यन्त कोमल शय्या पर सो रही थी और उसके बीच अपने पुण्यकर्म के उदय से सुख का अनुभव कर रही थी ॥१२१-१२२॥
निर्मल शस्त्र लेकर देवियाँ उसकी सेवा कर रही थीं उसी समय उसने कल्याण करने वाले निम्नलिखित सोलह स्वप्न देखे ॥१२३॥
पहले स्वप्न में गण्डस्थल से च्युत मदजल की गन्ध से जिस पर भ्रमर लग रहे थे, ऐसा तथा चन्द्रमा के समान सफेद और गम्भीर गर्जना करने वाला हाथी देखा ॥१२४॥
दूसरे स्वप्न में ऐसा बैल देखा जिसका कि स्कन्ध दुन्दुभि नामक बाजे के समान था, जो शुभ कान्दील को धारण कर रहा था और शरद्ऋतु के मेघ समूह के समान आकार को धारण करने वाला था ॥१२५॥
तीसरे स्वप्न में चन्द्रमा की किरणों के समान धवल सटाओं के समूह से सुशोभित एवं चन्द्रमा की रेखा के समान दोनों दाँड़ों से युक्त सिंह को देखा ॥१२६॥
चौथे स्वप्न में हाथी, सुवर्ण तथा चाँदी के कलशों से जिसका अभिषेक कर रहे थे, तथा जो फूले हुए कमल पर निश्चय बैठी हुई थी, ऐसी लक्ष्मी देखी ॥१२७॥
पाँचवें स्वप्न में पुन्नाग, मालती, कुन्द तथा चम्पा आदि के फूलों से निर्मित और अपनी सुगन्धि से भ्रमरों को आकृष्ट करने वाली दो बहुत बड़ी मालाएँ देखी ॥१२८॥

छठवें स्वप्न में उदयाचल के मस्तक पर स्थित, अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाला, एवं मेघ आदि के उपद्रवों से रहित, निर्भय दर्शन को देने वाला सूर्य देखा ॥१२९॥ सातवें स्वप्न में ऐसा चन्द्रमा देखा कि जो कुमुदों के समूह का बन्धु था - उन्हें विकसित करने वाला था, रात्रिरूपी स्त्री का मानो आभूषण था, किरणों के द्वारा समस्त दिशाओं को सफेद करने वाला था और ताराओं का पति था ॥१३०॥
आठवें स्वप्न में जो परस्पर के प्रेम से सम्बद्ध थे, निर्मल जल में तैर रहे थे, बिजली के दण्ड के समान जिनका आकार था ऐसे मीनों का शुभ जोड़ा देखा ॥१३१॥
नौवे स्वप्न में जिसकी ग्रीवा हार से सुशोभित थी, जो फूलों की मालाओं से सुसज्जित था और जो पंचवर्ण के मणियों से भरा हुआ था, ऐसा उज्ज्वल कलश देखा ॥१३२॥
दसवें स्वप्न में कमलों और नील कमलों से आच्छादित, निर्मल जल से युक्त, नाना पक्षियों से व्याप्त तथा सुन्दर सीढ़ियों से सुशोभित विशाल सरोवर देखा ॥१३३॥
ग्यारहवें स्वप्न में चलते हुए मीन और बड़े-बड़े नक्रों से जिनमें ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं, जो मेघों से युक्त था तथा आकाश के समान जान पड़ता था, ऐसा सागर देखा ॥१३४॥
बारहवें स्वप्न में बड़े-बड़े सिंहों से युक्त, अनेक प्रकार के रत्नों से उज्ज्वल, सुवर्ण निर्मित, बहुत ऊँचा सुन्दर सिंहासन देखा ॥१३५॥
तेरहवें स्वप्न में ऐसा विमान देखा कि जिसका आकार सुमेरु पर्वत के शिखर के समान था, जिसका विस्तार बहुत था, जो रत्नों से सुशोभित था तथा गोले, दर्पण और चमर आदि से विभूषित था ॥१३६॥
चौदहवें स्वप्न में ऐसा भवन देखा कि जिसका आकार कल्पवृक्ष निर्मित प्रासाद के समान था, जिसके अनेक खण्ड थे, मोतियों की मालाओं से जिसकी शोभा बढ़ रही थी और जो रत्नों की किरणों के समूह से आवृत था ॥१३७॥
पन्द्रहवें स्वप्न में, परस्पर की किरणों के प्रकाश से इन्द्रधनुष को उत्पन्न करने वाली, अत्यन्त ऊँची पाँच प्रकार के रत्नों की राशि देखी ॥१३८॥
और सोलहवें स्वप्न में ज्वालाओं से व्याप्त, धूम से रहित, दक्षिण दिशा की ओर आवर्त ग्रहण करने वाली एवं ईंधन में रहित अग्नि देखी ॥१३९॥ स्वप्न देखने के बाद ही सुन्दरांगी मरुदेवी वन्दीजनों की मंगलमय जय-जय ध्वनि से जाग उठी ॥१४०॥
उस समय वन्दीजन कह रहे थे कि हे देवि ! यह चन्द्रमा तुम्हारे मुख की कान्ति से उत्पन्न हुई लज्जा के कारण ही इस समय छाया **अर्थ** ात् कान्ति से रहित हो गया है ॥१४१॥
उदयाचल के शिखर पर यह सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो मंगल के लिए सिन्दूर से अनुरंजित कलश ही हो ॥१४२॥
इस समय तुम्हारी मुस्कान से ही अन्धकार नष्ट हो जायेगा इसलिए दीपक मानो अपने आपकी व्यर्थता का अनुभव करते हुए ही निष्प्रभ हो गए हैं ॥१४३॥
यह पक्षियों का समूह अपने घोसलों में सुख से ठहरकर जो मनोहर कोलाहल कर रहा है जो ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा मंगल ही कर रहा है ॥१४४॥
ये घर के वृक्ष प्रात:काल की शीतल और मन्द वायु से संगत होकर ऐसे जान पड़ते हैं मानो अवशिष्ट निद्रा के कारण ही झूम रहे हैं ॥१४५॥
घर की बावड़ी के समीप जो यह चकवी खड़ी है वह सूर्य का बिम्ब देखकर हर्षित होती हुई मधुर शब्दों से अपने प्राणवल्लभ को बुला रही है ॥१४६॥
ये हंस तुम्हारी सुन्दर चाल को देखने के लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं इसलिए मानो इस समय निद्रा दूर करने के लिए मनोहर शब्द कर रहे हैं ॥१४७॥
जिसकी तुलना उकेरे जाने वाले काँसे से उत्पन्न शब्द के साथ ठीक बैठती है ऐसे यह सारस पक्षियों का क्रेंकार शब्द अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥१४८॥
हे निर्मल चेष्टा की धारक देवि ! अब स्पष्ट ही प्रात:काल हो गया है इसलिए इस समय निद्रा को छोड़ो । इस तरह वन्दीजन जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसी मरुदेवी ने, जिस पर चद्दर की सिकुड़न से मानो लहरें उठ रही थीं तथा जो फूलों से व्याप्त होने के कारण मेघ और नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान जान पड़ती थी, ऐसी शय्या छोड़ दी ॥१४९-१५०॥

निवासगृह से निकलकर जिसने समस्त कार्य सम्पन्न किये थे ऐसी मरुदेवी नाभिराज के पास इस तरह पहुँची जिस तरह कि दिन की लक्ष्मी सूर्य के पास पहुँचती है ॥१५१॥

वहाँ जाकर वह नीचे आसन पर बैठी और उत्तम सिंहासन पर आरूढ़ हृदयवल्लभ के लिए हाथ जोड़कर क्रम से स्वप्न निवेदित करने लगी ॥१५२॥

इस प्रकार रानी के स्वप्न सुनकर हर्ष से विवश हुए नाभिराज ने कहा कि हे देवि ! तुम्हारे गर्भ में त्रिलोकीनाथ ने अवतार ग्रहण किया है ॥१५३॥

नाभिराज के इतना कहते ही कमललोचना मरुदेवी परम हर्ष को प्राप्त हुई और चन्द्रमा की उत्कृष्ट मूर्ति के समान कान्ति के समूह को धारण करने लगी ॥१५४॥

जिनेन्द्र भगवान् के गर्भस्थ होने में जब छह माह बाकी थे तभी से इन्द्र की आज्ञानुसार कुबेर से बड़े आदर के साथ रत्नवृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया था ॥१५५॥

चूँकि भगवान् के गर्भस्थित रहते हुए यह पृथिवी सुवर्णमयी हो गयी थी इसलिए इन्द्र ने 'हिरण्यगर्भ' इस नाम से उनकी स्तुति की थी ॥१५६॥

भगवान्, गर्भ में भी मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों से युक्त थे तथा हमारे हलन-चलन से माता को कष्ट न हो इस अभिप्राय से वे गर्भ में चल-विचल नहीं होते थे ॥१५७॥

जिस प्रकार दर्पण में अग्नि की छाया पड़ने से कोई विकार नहीं होता है उसी प्रकार भगवान् के गर्भ में स्थित रहते हुए भी माता मरुदेवी के शरीर में कुछ भी विकार नहीं हुआ था ॥१५८॥

जब समय पूर्ण हो चुका तब भगवान् मल का स्पर्श किये बिना ही गर्भ से इस प्रकार बाहर निकले जिस प्रकार कि किसी स्फटिकमणि निर्मित घर से बाहर निकले हों ॥१५९॥

तदनन्तर - नाभिराज ने पुत्र-जन्म का यथोक्त महोत्सव किया जिससे समस्त लोग हर्षित हो गये ॥१६०॥

तीन लोक क्षोभ को प्राप्त हो गये, इन्द्र का आसन कम्पित हो गया और समस्त सुर तथा असुर 'क्या है?' यह शब्द करने लगे ॥१६१॥

उसी समय भवनवासी देवों के भवनों में बिना बजाये ही शंख बजने लगे, व्यन्तरों के भवनों में अपने आप ही भेरियो के शब्द होने लगे, ज्योतिषी देवों के घर में अकस्मात् सिंहों की गर्जना होने लगी और कल्पवासी देवों के घरों में अपने-अपने घण्टा शब्द करने लगे ॥१६२-१६३॥

इस प्रकार के शुभ उत्पातों से तथा मुकुटों के नम्रीभूत होने से इन्द्रों ने अवधिज्ञान का उपयोग किया और उसके द्वारा उन्हें तीर्थंकर के जन्म का समाचार विदित हो गया ॥१६४॥

तदनन्तर जो बहुत भारी उत्साह से भरे हुए थे तथा जिनके शरीर आभूषणों से जगमगा रहे थे ऐसे इन्द्र ने गजराज-ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर नाभिराज के घर की ओर प्रस्थान किया ॥१६५॥

उस समय काम से युक्त कितने ही देव नृत्य कर रहे थे, कितने ही तालियाँ बजा रहे थे, कितने ही अपनी सेना को उन्नत बना रहे थे, कितने ही समस्त लोक में फैलने वाला सिंहनाद कर रहे थे, कितने ही विक्रिया से अनेक वेष बना रहे थे, और कितने ही उत्कृष्ट गाना गा रहे थे ॥१६६-१६७॥

उस समय बहुत भारी शब्दों से भरा हुआ यह संसार ऊपर जाने वाले और नीचे आने वाले देवों से ऐसा जान पड़ता था मानो स्वकीय स्थान से भ्रष्ट ही हो गया हो ॥१६८॥

तदनन्तर कुबेर ने अयोध्या नगरी की रचना की। वह अयोध्या नगरी विजयार्ध पर्वत के समान आकार वाले विशाल कोट से घिरी हुई थी ॥१६९॥ पाताल तक गहरी परिखा उसे चारों ओर से घेरे हुए थी और ऊँचे-ऊँचे गोपुरों के शिखरों से अग्रभाग से वहाँ का आकाश दूर तक विदीर्ण हो रहा था ॥१७०॥

महाविभूति से युक्त इन्द्र क्षणभर में नाभिराज के उस घर जा पहुँचे जो कि नाना रत्नों की किरणों के प्रकाशरूपी वस्त्र से आवृत था ॥१७१॥

इन्द्र ने पहले देवों के साथ-साथ नगर की तीन प्रदक्षिणाएँ दी। फिर नाभिराज के घर में प्रवेश किया और तदनन्तर इन्द्राणी के द्वारा प्रसूतिका-गृह से जिन-बालक को बुलवाया ॥१७२॥

इन्द्राणी ने प्रसूतिका-गृह में जाकर पहले जिन-माता को नमस्कार किया। फिर माता के पास मायामयी बालक रखकर जिन-बालक को उठा लिया और बाहर लाकर इन्द्र के हाथों में सौंप दिया ॥१७३॥

यद्यपि इन्द्र हजार नेत्रों का धारक था तथापि तीनों लोकों में अतिशय पूर्ण भगवान् का रूप देखकर वह तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ था ॥१७४॥

तदनन्तर - सौधर्मेन्द्र भगवान् को गोद में बैठाकर ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुआ और श्रेष्ठ भक्ति से सहित अन्य देवों ने चमर तथा छत्र आदि स्वयं ही ग्रहण किये ॥१७५॥

इस प्रकार इन्द्र समस्त देवों के साथ चलकर वैडूर्य आदि महारत्नों की कान्ति के समूह से उज्ज्वल सुमेरु पर्वत के शिखर पर पहुँचा ॥१७६॥

वहाँ पाण्डु-कम्बल नाम की शिला पर जो अकृत्रिम सिंहासन स्थित है उस पर इन्द्र ने जिन-बालक को विराजमान कर दिया और स्वयं उनके पीछे खड़ा हो गया ॥१७७॥

उसी समय देवों ने क्षुभित समुद्र के समान शब्द करने वाली भेरियाँ बजायी, मृदंग और शंख के जोरदार शब्द किये ॥१७८॥

यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तुम्बुरु, नारद और विश्वावसु उत्कृष्ट मूर्च्छनाएँ करते हुए अपनी-अपनी पत्नियों के साथ मन और कानों को हरण करने वाले सुन्दर गीत गाने लगे। लक्ष्मी भी बड़े आदर के साथ वीणा बजाने लगी ॥१७९-१८०॥

हाव-भावों से भरी एवं आभूषणों से सुशोभित अप्सराएँ यथायोग्य अंगहार करती हुई उत्कृष्ट नृत्य करने लगीं ॥१८१॥

इस प्रकार जब वहाँ उत्तमोत्तम देवों के द्वारा गायन-वादन और नृत्य हो रहा था तब सौधर्मेन्द्र ने अभिषेक करने के लिए शुभ कलश हाथ में लिया ॥१८२॥

तदनन्तर जो क्षीरसागर के जल से भरे थे, जिनकी अवगाहना बहुत भारी थी, जो सुवर्ण निर्मित थे, जिनके मुख कमलों से आच्छादित थे तथा लाल-लाल पल्लव जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, ऐसे एक हजार आठ कलशों के द्वारा इन्द्र ने विक्रिया के प्रभाव से अपने अनेक रूप बनाकर जिन-बालक का अभिषेक किया ॥१८३-१८४॥

यम, वैश्रवण, सोम, वरुण आदि अन्य देवों ने और साथ ही शेष बचे समस्त इन्द्रों ने भक्तिपूर्वक जिन-बालक का अभिषेक किया ॥१८५॥

इन्द्राणी आदि देवियों ने पल्लवों के समान कोमल हाथों के द्वारा समीचीन गन्ध से युक्त अनुलेपन से भगवान् को उद्वर्तन किया ॥१८६॥

जिस प्रकार मेघों के द्वारा किसी पर्वत का अभिषेक होता है उसी प्रकार विशाल कलशों के द्वारा भगवान् का अभिषेक कर देव उन्हें आभूषण पहनाने के लिए तत्पर हुए ॥१८७॥

इन्द्र ने तत्काल ही वज्र की सूची से विभिन्न किये हुए उनके कानों में चन्द्रमा और सूर्य के समान कुण्डल पहनाये ॥१८८॥

चोटी के स्थान पर ऐसा निर्मल पद्मरागमणि पहनाया कि जिसकी किरणों से भगवान् सिर जटाओं से युक्त के समान जान पड़ने लगा ॥१८९॥ भाल पर चन्दन के द्वारा अर्धचन्द्राकार ललाटिका बनायी। भुजाओं के मूलभाग उत्तम सुवर्णनिर्मित केयूरों से अलंकृत किये ॥१९०॥

श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित वक्षःस्थल को नक्षत्रों के समान स्थूल मुक्ताफलों से निर्मित एवं किरणों से प्रकाशमान हार से अलंकृत किया ॥१९१॥

हरितमणि और पद्मरागमणियों की बड़ी मोटी किरणों से जिसमें मानो पल्लव ही निकल रहे थे ऐसी बड़ी माला से उन्हें अलंकृत किया था ॥१९२॥

लक्षणरूपी आभरणों से श्रेष्ठ उनकी दोनों भरी कलाइयाँ रत्नखचित सुन्दर कड़ों से बहुत भारी शोभा को धारण कर रही थी ॥१९३॥

रेशमी वस्त्र के ऊपर पहनायी हुई करधनी से सुशोभित उनका नितम्बस्थल ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्या की लाल-लाल रेखा से सुशोभित किसी पर्वत का तट ही हो ॥१९४॥

उनकी समस्त अंगुलियों में नाना रत्नों से खचित सुवर्णमय अँगूठियाँ पहनायी गयी थी ॥१९५॥

देवों ने भगवान् के लिए जो सब प्रकार के आभूषण पहनाये थे वे भक्तिवश ही पहनाये थे वैसे भगवान् स्वयं तीन लोक के आभरण थे

अन्य पदार्थ उनकी क्या शोभा बढ़ाते ? ॥१९६॥
उनके शरीर पर चन्दन का लेप लगाकर जो रोचन के पीले-पीले बिन्दु रखे गये थे, वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो स्फटिक की भूमि पर सुवर्ण कमल ही रखे गये हों ॥१९७॥
जिस पर कसीदा से अनेक फूल बनाये गये थे ऐसा उत्तरीय वस्त्र उनके शरीर पर पहनाया गया था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओं से सुशोभित निर्मल आकाश ही हो ॥१९८॥
पारिजात और सन्तान नामक कल्पवृक्षों के फूलों से जिसकी रचना हुई थी, तथा जिस पर भ्रमरों के समूह लग रहे थे ऐसा बड़ा सेहरा उनके सिर पर बाँधा गया था ॥१९९॥ चूँकि सुन्दर चेष्टाओं को धारण करने वाले भगवान् तीन लोक के तिलक थे इसलिए उनकी दोनों भौंहों का मध्यभाग सुगन्धित तिलक से अलंकृत किया गया था ॥२००॥
इस प्रकार तीन लोक के आभरण स्वरूप भगवान् जब न अलंकारों से अलंकृत हो गये तब इन्द्र आदि देव उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥२०१॥
हे भगवन्! धर्मरहित तथा अज्ञान रूपी अन्धकार से आच्छादित इस संसार में भ्रमण करनेवाले लोगों के लिए आप सूर्य के समान उदित हुए हो ॥२०२॥
हे जिनराज! आप चन्द्रमा के समान हो सो आपके उपदेशरूपी निर्मल किरणों के द्वारा अब भव्य जीवरूपी कुमुदिनी अवश्य ही विकास को प्राप्त होगी ॥२०३॥
हे नाथ! आप 'इस संसाररूपी घर में भव्य जीवों को जीव-अजीव आदि तत्वों का ठीक-ठीक दर्शन हो', इस उद्देश्य से स्वयं ही जलते हुए वह महान् दीपक हो कि जिसकी उत्पत्ति केवलज्ञानरूपी अग्नि से होती है ॥२०४॥
पापरूपी शत्रुओं को नष्ट करने के लिए आप तीक्ष्ण बाण हैं । तथा आप ही ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा संसाररूपी अटवी का दाह करेंगे ॥ २०१॥
हे प्रभो! ? आप दुष्ट इन्द्रियरूप नागों का दमन करने के लिए गरुड के समान उदित हुए हो, तथा आप ही सन्देह रूपी मेघों को उड़ाने के लिए प्रचण्ड वायु के समान हो ॥२०६॥
हे नाथ ! आप अमृत प्रदान करने के लिए महामेघ हो इसलिए धर्मरूपी जल की बूँदों की प्राप्ति के लिए इच्छानुसार भव्य जीवरूपी चातक ऊपर की ओर मुख कर आपको देख रहे हैं ॥२०७॥
हे स्वामिन् ! आपकी अत्यन्त निर्मल कीर्ति तीनों लोकों के द्वारा गायी जाती है इसलिए आपको नमस्कार हो । हे नाथ! आप गुणरूपी फूलों से सुशोभित तथा मनोवांछित फल प्रदान करने वाले वृक्ष स्वरूप हैं अत : आपको नमस्कार हो ॥२०८॥
आप कर्म रूपी काष्ठ को विदारण करने के लिए तीव्र धार वाली कुठार के समान हैं अत: आपको नमस्कार हो । इसी प्रकार आप मोहरूपी उन्नत पर्वत को भेदने के लिए वज्रस्वरूप हो इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२०९॥ आप दु:खरूपी अग्नि को बुझाने के लिए जल स्वरूप रज के संगम से रहित आकाश स्वरूप हो अत: आपको नमस्कार हो ॥२१०॥
इस तरह देवों ने विधि-पूर्वक भगवान् की स्तुति की, बारबार प्रणाम किया और तदनन्तर उन्हें ऐरावत हाथी पर सवार कर अयोध्या की ओर प्रस्थान किया ॥२११॥
अयोध्या आकर इन्द्र ने जिन-बालक को इन्द्राणी के हाथ से माता की गोद में विराजमान करा दिया, आनन्द नाम का उत्कृष्ट नाटक किया और तदनन्तर वह अन्य देवों के साथ अपने स्थान पर चला गया ॥११२॥
अथानन्तर दिव्य वस्त्रों और अलंकारों से अलंकृत, तथा उत्कृष्ट सुगन्धि के कारण नासिका को हरण करने वाले विलेपन से लिप्त एवं अपनी कान्ति के सम्पर्क से दिशाओं के अग्रभाग को पीला करने वाले अंकस्थ पुत्र को देखकर उस समय माता मरुदेवी बहुत ही सन्तुष्ट हो रही थी ॥२१३-२१४॥
जिसका हृदय कौतुक से भर रहा था ऐसी मरुदेवी कोमल स्पर्श वाले पुत्र का आलिंगन करती हुई वर्णनातीत सुखरूपी सागर में जा उतरी थी ॥२१५॥
वह उत्तम नारी मरुदेवी गोद में स्थित जिन-बालक से इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि नवीन उदित सूर्य के बिम्ब से पूर्व

दिशा सुशोभित होती है ॥२१६॥
नाभिराज ने दिव्य अलंकारों को धारण करने वाले एवं उत्कृष्ट कान्ति से युक्त उस पुत्र को देखकर अपने आपको तीन लोक के ऐश्वर्य से युक्त माना था ॥२१७॥
पुत्र के शरीर के सम्बन्ध से जिन्हें सुखरूप सम्पदा उत्पन्न हुई है तथा उस सुख का आस्वाद करते समय जिनके नेत्र का तृतीय भाग निमीलित हो रहा है ऐसा नाभिराज का मन उस पुत्र को देखकर द्रवीभूत हो गया था ॥२१८॥
चूँकि वे जिनेन्द्र इन्द्र के द्वारा की हुई पूजा से प्रधानता को प्राप्त हुए थे इसलिए माता-पिता ने उनका ऋषभ यह नाम रखा ॥२१९॥ माता-पिता का जो परस्पर सम्बन्धी प्रेम वृद्धि को प्राप्त हुआ था वह उस समय बालक ऋषभदेव में केन्द्रित हो गया था ॥२२०॥
इन्द्र ने भगवान के हाथ के अँगूठे में जो अमृत निक्षिप्त किया था उसका पान करते हुए वे क्रमश शरीर सम्बन्धी वृद्धि को प्राप्त हुए थे ॥२२१॥
तदनन्तर, इन्द्र के द्वारा अनुमोदित समान अवस्था वाले देव कुमारों से युक्त होकर भगवान् माता-पिता को सुख पहुँचाने वाली निर्दोष क्रीड़ा करने लगे ॥२२२॥
आसन, शयन, वाहन, भोजन, वस्त्र तथा चारण आदिक जितना भी उनका परिकर था वह सब उन्हें इन्द्र से प्राप्त होता था ॥२२३॥
वे थोड़े ही समय में परम वृद्धि को प्राप्त हो गये। उनका वक्षःस्थल मेरु पर्वत की भित्ति के समान चौड़ा और उन्नत हो गया ॥२२४॥
समस्त संसार के लिए कल्पवृक्ष के समान जो उनकी भुजाएँ थीं, वे आशारूपी दिग्गजों को बाँधने के लिए खम्भों का आकार धारण कर रही थीं ॥२२५॥
उनके दोनों ऊरु-दण्ड (जंघा) अपनी निज की कान्ति के द्वारा किये हुए लेपन को धारण कर रहे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो तीन लोकरूपी घर को धारण करने के लिए दो खम्भे हो खड़े किये गये हों ॥२२६॥
उनके मुख ने कान्ति से चन्द्रमा को जीत लिया था और तेज ने सूर्य को परास्त कर दिया था इस तरह वह परस्पर के विरोधी दो पदार्थों-चन्द्रमा और सूर्य को धारण कर रहा था ॥२२७॥
यद्यपि लाल-लाल कान्ति के धारक उनके दोनों हाथ पल्लव से भी अधिक कोमल थे तथापि वे समस्त पर्वतों को चूर्ण करने में (पक्ष में समस्त राजाओं का पराजय करन मे) समर्थ थे ॥२२८॥
उनके केशों का समूह अत्यन्त सघन तथा सचिक्कण था और ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु पर्वत के शिखर पर नीलांजन की शिला ही रखी हो ॥२२९॥ यद्यपि वे भगवान् धर्मात्मा थे-हरण आदि को अधर्म मानते थे तथापि उन्होंने अपने अनुपम रूप से समस्त लोगों के नेत्र हरण कर लिये थे। भावार्थ – भगवान का रूप सर्वजन नयनाभिराम था ॥२३०॥
उस समय कल्पवृक्ष पूर्णरूप से नष्ट हो चुके थे इसलिए समस्त पृथिवी अकृष्ट पच्य **अर्थ**ात् बिना जोते, बिना बोये ही अपने आप उत्पन्न होनेवाली धान्य से सुशोभित हो रही थी ॥२३१॥
उस समय की प्रजा वाणिज्य-लेनदेन का व्यवहार तथा शिल्प से रहित थी और धर्म का तो नाम भी नहीं था इसलिए पाखण्ड से भी रहित थी ॥२३२॥
जो छह रसों से सहित था, स्वयं ही कटकर शाखा से झड़ने लगता था और बल-वीर्य आदि के करने में समर्थ था ऐसा इक्षुरस ही उस समय की प्रजा का आहार था ॥२३३॥
पहले तो वह इक्षुरस अपने आप निकलता था पर काल के प्रभाव से अब उसका स्वयं निकलना बन्द हो गया और लोग बिना कुछ बताये यन्त्रों के द्वारा ईख को पेलने की विधि जानते नहीं थे ॥२३४॥
इसी प्रकार सामने खड़ी हुई धान को लोग देख रहे थे पर उसके संस्कार की विधि नहीं जानते थे इसलिए भूख से पीड़ित होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे ॥२३५॥
तदनन्तर बहुत भारी पीड़ा से युक्त वे लोग इकट्ठे होकर नाभिराज की शरण में पहुँचे और स्तुति तथा प्रणाम कर निम्नलिखित वचन कहने लगे ॥२३६॥
हे नाथ! जिनसे हमारा भरण-पोषण होता थी वे कल्पवृक्ष अब सब के सब नष्ट हो गये हैं इसलिए-भूख से सन्तृप्त होकर आपकी शरण में

आये हुए हम सब लोगों की आप रक्षा कीजिए ॥२३७॥
पृथिवी पर उत्पन्न हुई यह कोई वस्तु फलों से युक्त दिखाई दे रही है, यह, वस्तु संस्कार किये जाने पर खाने के योग्य हो सकती है पर हम लोग इसकी विधि नहीं जानते ॥२३८॥
स्वच्छन्द विचरने वाली गायों के स्तनों के भीतर से यह -पदार्थ निकलता है सो वह भक्ष्य है या अभक्ष्य है? हे स्वामिन्! यह बतलाइए ॥२३९॥ये सिंह, व्याघ्र आदि जन्तु पहले क्रीड़ाओं के समय आलिंगन करने योग्य होते थे पर अब ये कलह में तत्पर होकर प्रजा को भयभीत करने लगे हैं ॥२४०॥
और ये आकाश, स्थल तथा जल में उत्पन्न हुए कितने ही महामनोहर पदार्थ दिख रहे हैं सो इनसे हमें सुख किस तरह होगा यह हम नहीं जानते हैं ॥२४१॥
इसलिए है देव! हम लोगों को इनके संस्कार करने का उपाय बतलाइए जिससे कि प्रसाद से सुरक्षित होकर हम लोग सुख से जीवित रह सकें ॥२४२॥
प्रजा के ऐसा कहने पर नाभिराज का हृदय दया से भर गया और वे आजीविका के उपाय दिखलाने के लिए धीरता के साथ निम्न प्रकार वचन कहने लगे ॥२४३॥
कि जिसकी उत्पत्ति के समय चिरकाल तक रत्न-वृष्टि हुई थी और लोक में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला देवों का आगमन हुआ था ॥२४४॥
महान् अतिशयों से सम्पन्न ऋषभदेव के पास चलकर हम लोग उनसे आजीविका के कारण पूछें ॥२४५॥
इस संसार में उनके समान कोई मनुष्य नहीं है । उनकी आत्मा सर्व-प्रकार के अज्ञानरूपी अन्धकारों से परे है ॥२४६॥
नाभिराज ने जब प्रजा से उक्त वचन कहे तो वह उन्हीं को साथ लेकर ऋषभनाथ भगवान के पास गयी । भगवान ने पिता को देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया ॥२४७॥
तदनन्तर नाभिराज और भगवान ऋषभदेव जब अपने-अपने योग्य आसनों पर आरूढ़ हो गये तब प्रजा के लोग नमस्कार कर भगवान की इस प्रकार स्तुति करने के लिए तत्पर हुए ॥२४८॥
हे नाथ! समस्त लक्षणों से भरा हुआ आपका यह शरीर तेज के द्वारा समस्त जगत् को आक्रान्त कर देदीप्यमान हो रहा है ॥२४९॥ चन्द्रमा की किरणों के समान आनन्द उत्पन्न करने वाले आपके अत्यन्त निर्मल गुणों से समस्त संसार व्याप्त हो रहा है ॥२५०॥
हम लोग कार्य लेकर आपके पिता के पास आये थे परन्तु ये ज्ञान से उत्पन्न हुए आपके गुणों का बखान करते हैं ॥२५१॥
जबकि ऐसे विद्वान् महाराज नाभिराज भी आपके पास आकर पदार्थ का निश्चय कर देते हैं तब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आप अतिशयों से सुशोभित, धैर्य को धारण करने वाले कोई अनुपम महात्मा हैं ॥२५२॥
इसलिए आप, भूख से पीड़ित हुए हम लोगों की रक्षा कीजिए तथा सिंह आदि दुष्ट जन्तुओं से जो भय हो रहा है उसका भी उपाय बतलाइए ॥२५३॥
तदनन्तर-जिनका हृदय दया से युक्त था ऐसे भगवान् वृषभदेव हाथ जोड़कर चरणों में पड़ी हुई प्रजा को उपदेश देने लगे ॥२५४॥
उन्होंने प्रजा को सैकड़ों प्रकार की शिल्प-कलाओं का उपदेश दिया । नगरों का विभाग, ग्राम आदि का बसाना, और मकान आदि के बनाने की कला प्रजा को सिखायी ॥२५५॥
भगवान ने जिन पुरुषों को विपत्तिग्रस्त मनुष्यों की रक्षा करने में नियुक्त किया था वे अपने गुणों के कारण लोक में 'क्षत्रिय' इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥२५६॥
वाणिज्य, खेती, गोरक्षा आदि के व्यापार में जो लगाये गये थे वे लोक में 'वैश्य' कहलाये ॥२५७॥
जो नीच कार्य करते थे तथा शास्त्र से दूर भागते थे उन्हें 'शूद्र' संज्ञा प्राप्त हुई । इनके प्रेष्य दास आदि अनेक भेद थे ॥२५८॥
इस प्रकार सुख को प्राप्त कराने वाला वह युग भगवान् ऋषभदेव के द्वारा किया गया था तथा उसमें सब प्रकार को सम्पदाएँ सुलभ थीं इसलिए प्रजा उसे कृतयुग कहने लगी थी ॥२५९॥ भगवान् ऋषभदेव के सुनन्दा और नन्दा नाम की दो स्त्रियाँ थीं । उनसे उनके भरत आदि महा-प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥२६०॥
भरत आदि सौ भाई थे तथा गुणों के सम्बन्ध से अत्यन्त सुन्दर थे इसलिए यह पृथ्वी उनसे अलंकृत हुई थी तथा निरन्तर ही अनेक उत्सव

प्राप्त करती रहती थी ॥२६१॥
अपरिमित कान्ति को धारण करने वाले जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव को अनुपम ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए जब बहुत भारी काल व्यतीत हो गया ॥२६२॥
तब एक दिन नीलांजना नामक देवी के नृत्य करते समय उन्हें वैराग्य की उत्पत्ति में कारणभूत निम्न प्रकार को बुद्धि उत्पन्न हुई ॥२६३॥
वे विचारने लगे कि अहो! संसार के ये प्राणी दूसरों को सन्तुष्ट करने वाले कार्यों से विडम्बना प्राप्त कर रहे हैं । प्राणियों के ये कार्य पागलों की चेष्टा के समान हैं तथा अपने शरीर को खेद उत्पन्न करने के लिए कारणस्वरूप हैं ॥२६४॥
संसार की विचित्रता देखो, यहाँ कोई तो पराधीन होकर दास वृत्ति को प्राप्त होता है और कोई गर्व से स्खलित वचन होता हुआ उसे आज्ञा प्रदान करता है ॥२६५॥
इस संसार को धिक्कार हो कि जिसमें मोही जीव दुःख को ही, सुख समझकर, उत्पन्न करते हैं ॥२६६॥
इसलिए मैं तो इस विनाशीक तथा कृत्रिम सुख को छोड़कर सिद्ध जीवों का सुख प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही प्रयत्न करता हूँ ॥२६७॥
इसतरह यहाँ भगवान का चित्त शुभ विचार में लगा हुआ था कि वहाँ उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर निम्न प्रकार निवेदन करना प्रारम्भ कर दिया ॥२६८॥
वे कहने लगे कि हे नाथ! आपने जो तीन लोक के जीवों का हित करने का विचार किया है सो बहुत ही उत्तम बात है । इस समय मोक्ष का मार्ग बन्द हुए बहुत समय हो गया है ॥२६९॥ ये प्राणी उपदेश दाता के बिना संसाररूपी महासागर में गोता लगा रहे हैं ॥२७०॥
इस समय प्राणी आपके द्वारा बतलाये हुए मार्ग से चलकर अविनाशी सुख से युक्त तथा लोक के अग्रभाग में स्थित मुक्त जीवों के पद को प्राप्त हों ॥२७१॥
इस प्रकार देवों के द्वारा कहे हुए वचन स्वयंबुद्ध भगवान् आदिनाथ के समक्ष पुनरुक्तता को प्राप्त हुए ॥२७२॥
ज्यों ही भगवान ने गृहत्याग का निश्चय किया त्यों ही इन्द्र आदि देव पहले की भाँति आ पहुँचे ॥२७३॥
आकर समस्त देवों ने नमस्कार पूर्वक भगवान की स्तुति की और हे नाथ! आपने बहुत अच्छा विचार किया है यह शब्द बार-बार कहे ॥२७४॥
तदनन्तर, जिसने रत्नों की कान्ति के समूह से दिशाओं के अग्रभाग को व्याप्त कर रखा था, जिसके दोनों ओर चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान सुन्दर चमर ढोलें जा रहे थे, पूर्ण चन्द्रमा के समान दर्पण से जिसकी शोभा बढ़ रही थी, जो बुद्बुद के आकार मणिमय गोलकों से सहित थी, अर्द्धचन्द्राकार से सहित थी, पताकाओं के वस्त्र से सुशोभित थी, दिव्य मालाओं से सुगन्धित थी, मोतियों के हार से विराजमान थी, देखने में बहुत सुन्दर थी, विमान के समान जान पड़ती थी, जिसमें लगी हुई छोटी-छोटी घण्टियाँ रुन-झुन शब्द कर रही थीं, और इन्द्र ने जिस पर अपना कन्धा लगा रखा था ऐसी देवरूपी शिल्पियों के द्वारा निर्मित पालकी पर सवार होकर भगवान् अपने धर से बाहर निकले ॥२७५-२७८॥
तदनन्तर बजते हुए बाजों और नृत्य करते हुए देवों के प्रतिध्वनि पूर्ण शब्द से तीनों लोकों का अन्तराल भर गया ॥२७९॥ बहुत भारी वैभव और भक्ति से युक्त देवों के साथ भगवान् तिलक नामक उद्यान में पहुँचे ॥२८०॥
भगवान् वृषभदेव प्रजा **अर्थ**ात् जन समूह से दूर हो उस तिलक नामक उद्यान में पहुँचे थे इसलिए उस स्थान का नाम 'प्रजाग्' प्रसिद्ध हो गया अथवा भगवान ने उस स्थान पर बहुत भारी याग अर्थात् त्याग किया था, इसलिए उसका नाम प्रयाग भी प्रसिद्ध हुआ ॥२८१॥
वहाँ पहुँचकर भगवान ने माता-पिता तथा बन्धुजनों से दीक्षा लेने की आज्ञा ली और फिर 'नम: सिद्धेभ्य:' -- सिद्धों के लिए नमस्कार हो यह कह दीक्षा धारण कर ली ॥२८२॥
महामुनि वृषभदेव ने सब अलंकारों के साथ ही साथ वस्त्रों का भी त्याग कर दिया और पंचमुष्टियों के द्वारा केश उखाड़कर फेंक दिये ॥२८३॥
इन्द्र ने उन केशों को रत्नमयी पिटारे में रख लिया और तदनन्तर मस्तक पर रखकर उन्हें क्षीर-सागर में क्षेप आया ॥२८४॥
समस्त देव दीक्षा-कल्याणक सम्बन्धी उत्सव कर जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार चले गये, साथ ही मनुष्य भी अपना हृदय हराकर यथास्थान चले गये ॥२८५॥

उस समय चार हजार राजाओं ने जो कि भगवान के अभिप्राय को नहीं समझ सके थे केवल स्वामी-भक्ति से प्रेरित होकर नग्न अवस्था को प्राप्त हुए थे ॥२८६॥

तदनन्तर इन्द्रियों की समान अवस्था धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव छह माह तक कायोत्सर्ग से सुमेरु पर्वत के समान निश्चल खड़े रहे ॥२८७॥

हवा से उड़ी हुई उनकी अस्त-व्यस्त जटाएँ ऐसी जान पडती थीं मानो समीचीन ध्यानरूपी अग्नि से जलते हुए कर्म के घूम की पंक्तियाँ ही हों ॥२८८॥

तदनन्तर छह माह भी नहीं हो पाये थे कि साथ-साथ दीक्षा लेने वाले राजाओं का समूह परीषहरूपी महा योद्धाओं के द्वारा परास्त हो गया ॥२८९॥ उनमें से कितने ही राजा दु:खरूपी वायु से ताड़ित होकर पृथिवी पर गिर गये और कितने ही कुछ सबल शक्ति के धारक होने से पृथिवी पर बैठ गये ॥२९०॥

कितने ही भूख से पीड़ित हो कायोत्सर्ग छोड़कर फल खाने लगे । कितने हों सन्तृप्त शरीर होने के कारण शीतल जल में जा घुसे ॥२९१॥ कितने ही चारित्र का बन्धन तोड़ उन्मत्त हाथियों की तरह पहाड़ों की गुफाओं में घुसने लगे और कितने ही फिर से मन को लौटाकर जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने के लिए उद्यत हुए ॥२९२॥

उन सब राजाओं में भरत का पुत्र मरीचि बहुत अहंकारी था इसलिए वह गेरुआ वस्त्र धारण कर परिव्राजक बन गया तथा वल्कलों को धारण रहनेवाले कितने ही लोग उसके साथ हो गये ॥२९३॥

वे राजा लोग नग्नरूप में ही फलादिक ग्रहण करने के लिए जब उद्यत हुए तब अदृश्य देवताओं के निम्नांकित वचन आकाश में प्रकट हुए । हे राजाओं! तुम लोग नग्न वेष में रहकर यह कार्य न करो क्योंकि ऐसा करना तुम्हारे लिए अत्यन्त दुःख का कारण होगा ॥२९४-२९५॥

देवताओं के वचन सुनकर कितने ही लोगों ने वृक्षों के पत्ते पहन लिये, कितने ही लोगों ने वृक्षों के वल्कल धारण कर लिये, कितने ही लोगों ने चमड़े से शरीर आच्छादित कर लिया और कितने ही लोगों ने पहले छोड़े हुए वस्त्र ही फिर से ग्रहण कर लिये ॥२९६॥

अपने नग्न वेष से लज्जित होकर कितने ही लोगों ने कुशाओं का वह धारण किया । इस प्रकार पत्र आदि धारण करने के बाद वे सब फलों तथा शीतल जल से तृप्ति को प्राप्त हुए ॥२९७॥

तदनन्तर जिनकी बुरी हालत हो रही थी ऐसे भ्रष्ट हुए सब राजा लोग एकत्रित हो दूर जाकर निशंक भाव से परस्पर में सलाह करने लगे ॥२९८॥

उनमें से किसी राजा ने अन्य राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहा । कि आप लोगों में से किसी से भगवान ने कुछ कहा था ॥२९९॥ इसके उत्तर में अन्य राजाओं ने कहा कि इन्होंने हम लोगो में से किसी से कुछ भी नहीं कहा है । यह सुनकर भोगों की अभिलाषा रखनेवाले किसी राजा ने कहा कि तो फिर यहाँ रुकने से क्या लाभ है? उठिए, हम लोग अपने-अपने देश चलें और पुत्र तथा स्त्री आदि का मुख देखने से उत्पन्न हुआ सुख प्राप्त करें ॥३००-३०१॥

उन्ही में से किसी ने कहा कि चूँकि हम लोग दुखी हैं अत: चलने के लिए तैयार हैं । इस समय ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे दुःख के कारण हम कर न सकें परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि हम लोगों को स्वामी के बिना अकेला ही वापिस आया देखकर भरत मारेगा और अवश्य ही हम लोगों के देश छीन लेगा ॥३०२-३०३॥

अथवा भगवान् ऋषभदेव जब फिर से राज्य प्राप्त कर गई वनवास छोड़कर पुन: राज्य करने लगेंगे तब हम लोग निर्लज्ज होकर इन्हें मुख कैसे दिखावेंगे? ॥२८४॥

इसलिए हम लोग फलादि का भक्षण करते हुए यहीं पर रहें और इच्छानुसार सुखपूर्वक भ्रमण करते हुए इन्हीं की सेवा करते रहें ॥२८५॥

अथानन्तर - भगवान् ऋषभदेव प्रतिमायोग से विराजमान थे कि भोगों की याचना करने में तत्पर नमि और विनमि उनके चरणों में नमस्कार कर वहीं पर खड़े हो गये ॥३०६॥

उसी समय आसन के कम्पायमान होने से नागकुमारों के अधिपति धरणेन्द्र ने यह जान लिया कि नमि और विनमि भगवान से याचना कर रहें हैं । यह जानते ही वह शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचा ॥३०७॥

धरणेन्द्र ने विक्रिया से भगवान का रूप धरकर नमि और विनमि के लिए दो उत्कृष्ट विद्याएँ दीं । उन विद्याओं को पाकर वे दोनों उसी समय

विजयार्ध पर्वत पर चले गये ॥३०८॥
समान भूमि-तल से दश योजन ऊपर चलकर विजयार्ध पर्वत पर विद्याधरों के निवास-स्थान बने हुए हैं । उनके वे निवास-स्थान नाना देश और नगरों से व्यास हैं तथा भोगों से भोगभूमि के समान जान पड़ते हैं ॥३०९॥ विद्याधरों के निवास-स्थान से दश योजन ऊपर चलकर गन्धर्व और किन्नर देवों के हजारों नगर बसे हुए हैं ॥३१०॥
वहाँ से पांच योजन और ऊपर चलकर वह पर्वत अरहन्त भगवान के मन्दिरों से आच्छादित है तथा नन्दीश्वर द्वीप के पर्वत के समान जान पड़ता है ॥३११॥
अर्हन्त भगवान के उन मन्दिरों में स्वाध्याय के प्रेमी, चारणऋद्धि के धारक परम तेजस्वी मुनिराज निरन्तर विद्यमान रहते हैं ॥३१२॥
उस विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर रथनूपुर तथा सन्ध्याभ्र को आदि लेकर पचास नगरियाँ हैं और उत्तर श्रेणी पर गगनवल्लभ आदि साठ नगरियाँ हैं ॥३१३-३१४॥
ये प्रत्येक नगरियां एक से एक बढ़कर हैं, नाना देशों और गाँवों से व्याप्त हैं, मटम्बों से संकीर्ण हैं, खेट और कर्वटों के विस्तर से मुक्त हैं ॥३१५॥
बड़े-बड़े गोपुरों और अट्टालिकाओं से विभूषित हैं, सुवर्णमय कोटों और तोरणों से अलंकृत हैं, वापिकाओं और बगीचों से व्याप्त हैं, स्वर्ग सम्बन्धी भोगों का उत्सव प्रदान करने वाली हैं, बिना जोते ही उत्पन्न होनेवाले सर्व प्रकार के फलों के वृक्षों से सहित हैं, सर्व प्रकार की औषधियों से आकीर्ण हैं, और सबके मनोरथों को सिद्ध करने वाली हैं ॥३१६-३१७॥
उनका पृथ्वीतल हमेशा भोगभूमि के समान सुशोभित रहता है, वहाँ के निर्झर सदा मधु, दूध, घी आदि रसों को बहाते हैं, वहाँ के सरोवर कमलों से युक्त तथा हंस आदि पक्षियों से विभूषित हैं । वहाँ की वापिकाओ की सीढ़ियाँ मणियों तथा सुवर्ण से निर्मित हैं, उनमें मधु के समान स्वच्छ और मीठा पानी भरा रहता है, तथा वे स्वयं कमलों की पराग से आच्छादित रहती हैं । वहाँ की शालाओं में बछड़ों से सुशोभित उन कामधेनुओं के झुण्ड के झुण्ड बँधे रहते हैं जिनकी कि कान्ति पूर्ण चन्द्रमा के समान है, जिनके खुर और सींग सुवर्ण के समान पीले हैं तथा जो नेत्रों को आनन्द देने वाली है ॥३१८-३२१॥
वही वे गायें रहती हैं जिनका कि गोबर और मूत्र भी सुगन्धि से युक्त है तथा रसायन के समान कान्ति और वीर्य को देनेवाला है, फिर उनके दूध की तो उपमा ही किससे दी जा सकती है? ॥३२२॥
उन नगरियों में नील कमल के समान श्यामल तथा कमल के समान लालकान्ति को धारण करने वाली भैंसों की पंक्तियाँ अपने बछड़ों के साथ सदा विचरती रहती है ॥323॥ वहाँ पर्वतों के समान अनाज की राशियाँ हैं, वहाँ की खत्तियों (अनाज रखने की खोडियों) का कभी क्षय नहीं होता, वापिकाओं और बगीचों से घिरे हुए वहाँ के महल बहुत भारी कान्ति को धारण करने वाले हैं ॥३२४॥
वहाँ के मार्ग धूलि और कण्टक से रहित, सुख उपजानेवाले हैं । जिन पर बड़े-बड़े वृक्षों की छाया हो रही है तथा जो सर्वप्रकार के रसों से सहित हैं ऐसी वहाँ की प्याऊ हैं ॥३२५॥
जिनकी मधुर आवाज कानों को आनन्दित करती है ऐसे मेघ वहाँ चार मास तक योग्य देश तथा योग्य काल में अमृत के समान मधुर जल की वर्षा करते हैं ॥३२६॥
वहाँ की हेमन्त ऋतु हिममिश्रित शीतल वायु से रहित होती है तथा इच्छानुसार वस्त्र प्राप्त करने वाले सुख के उपभोगी मनुष्यों के लिए आनन्ददायी होती है ॥३२७॥
वहाँ ग्रीष्म ऋतु में भी सूर्य मानो शंकित होकर ही मन्द तेज का धारक रहता है और नाना रत्नों की प्रभा से युक्त होकर कमलों को विकसित करता है ॥३२८॥
वहाँ की अन्य ऋतुएँ भी मनोवांछित वस्तुओं को प्राप्त कराने वाली हैं तथा वहाँ की निर्मल दिशाएँ नीहार (कुहरा) आदि से रहित होकर अत्यन्त सुशोभित रहती हैं ॥३२९॥ वहाँ ऐसा एक भी स्थान नहीं है जो कि सुख से युक्त न हो । वहाँ की प्रजा सदा भोगभूमि के समान क्रीड़ा करती रहती है ॥३३०॥
वहाँ की स्त्रियाँ अत्यन्त कोमल शरीर को धारण करने वाली हैं, सब प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं, अभिप्राय के जानने में कुशल हैं, कीर्ति, लक्ष्मी, लज्जा, धैर्य और प्रभा को धारण करने वाली हैं ॥३३१॥

कोई ही कमल के भीतरी भाग के समान कान्ति वाली है, कोई नील कमल के समान श्यामल प्रभा की धारक है, कोई शिरीष के फूल के समान कोमल तथा हरित वर्ण की है और कोई बिजली के समान पीली कान्ति से सुशोभित है ॥३३२॥

वे स्त्रियाँ सुगन्धि से तो ऐसी जान पड़ती हैं मानो नन्दन वन की वायु से ही रची गई हों और मनोहर फूलों के आभरण धारण करने के कारण ऐसी प्रतिभासित होती हैं मानो वसन्त ऋतु से ही उत्पन्न हुई हों ॥३३३॥

जिनके शरीर चन्द्रमा की कान्ति से बने हुए के समान जान पड़ते थे ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ अपनी प्रभारूपी चाँदनी से निरन्तर सरोवर भरती रहती थीं ॥३३४॥

वे स्त्रियां लाल, काले और सफेद इस तरह तीन रंगों को धारण करनेवाले नेत्रों से सुशोभित रहती हैं, उनकी चाल हंसिनियों के समान है, उनके स्तन अत्यन्त स्थूल हैं, उदर कृश हैं, और उनके हाव-भाव-विलास देवांगनाओं के समान हैं ॥३३५॥

वहाँ के मनुष्य भी चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाले हैं, शूरवीर हैं, सिंह के समान चौड़े वक्षःस्थल से युक्त हैं, लम्बी भुजाओं से विभूषित हैं, आकाश में चलने में समर्थ हैं, उत्तम लक्षण, गुण और क्रियाओं से सहित ॥३३६॥

न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करने से सदा सन्तुष्ट रहते हैं, देवों के समान प्रभा के धारक हैं, काम के समान सुन्दर हैं और इच्छानुसार स्त्रियों सहित जहाँ-तहां घूमते हैं ॥३३७॥

इसप्रकार जिनका चित्त विद्यारूपी स्त्रियों में आसक्त रहता है ऐसे भूमि निवासी देव **अर्थ**ात् विद्याधर, अन्तराय रहित हो विजयार्ध पर्वत की दोनों मनोहर श्रेणियों में धर्म के फलस्वरूप प्राप्त हुए मनोवांछित भोगों को भोगते रहते हैं ॥३३८॥

इस प्रकार के समस्त भोग, प्राणियों को धर्म के द्वारा ही प्राप्त होते हैं इसलिए हे भव्य जीवों! जिस प्रकार आकाश में सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार तुम लोग भी अपने अन्तरंग सम्बन्धी अज्ञानान्धकार को नष्ट कर एक धर्म को ही प्राप्त करने का प्रयत्न करो ॥३३९॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में विद्याधर लोक का वर्णन करनेवाला तीसरा पर्व पूर्ण हुआ ॥३॥

## ऋषभदेव का महात्म्य

चतुर्थ पर्व

कथा :

अथानन्तर सुवर्ण के समान प्रभा के धारक ध्यानी भगवान् ऋषभदेव प्रभु जगत् के कल्याण के निमित्त दान धर्म की प्रवृत्ति करने के लिए उद्यत हुए ॥१॥ धीरवीर भगवान ने छह माह के बाद प्रतिमा योग समाप्त कर पृथिवी तल पर भ्रमण करना प्रारम्भ किया । भगवान् समस्त दोषों से रहित थे और मौन धारण कर ही विहार करते थे ॥२॥

जिनका शरीर बहुत ही ऊँचा था तथा जो अपने शरीर की प्रभा से आस-पास के भूमण्डल को आलोकित कर रहे थे ऐसे भ्रमण करने वाले भगवान के दर्शन कर प्रजा यह समझती थी मानो दूसरा सूर्य ही भ्रमण कर रहा है ॥३॥

वे जिनराज पृथिवी तल पर जहां-जहाँ चरण रखते थे वहाँ ऐसा जान पड़ता था मानो कमल ही खिल उठे हों ॥४॥

उनके कन्धे मेरुपर्वत के शिखर के समान ऊँचे तथा देदीप्यमान थे, उनपर बड़ी-बड़ी जटाएँ किरणों की भाँति सुशोभित हो रही थीं और भगवान् स्वयं बड़ी सावधानी से-ईर्यासमिति से नीचे देखते हुए विहार करते थे ॥५॥

जो शोभा से मेरु पर्वत के समान जान पड़ते थे ऐसे भगवान् ऋषभदेव किसी दिन विहार करते-करते मध्याह्न के समय हस्तिनापुर नगर में प्रविष्ट हुए ॥६॥ मध्याह्न के सूर्य के समान देदीप्यमान उन पुरुषोत्तम के दर्शन कर हस्तिनापुर के समस्त स्त्री-पुरुष बड़े आश्चर्य से मोह को प्राप्त हो गये **अर्थ**ात् किसी को यह ध्यान नहीं रहा कि यह आहार की वेला है इसलिए भगवान को आहार देना चाहिए ॥७॥

वहाँ के लोग नाना वर्णों के वस्त्र, अनेक प्रकार के रत्न और हाथी, घोड़े, रथ तथा अन्य प्रकार के वाहन ला-लाकर उन्हें समर्पित करने लगे ॥८॥

विनीत वेष को धारण करने वाले कितने ही लोग पूर्णचन्द्रमा के समान मुख वाली तथा कमलों के समान नेत्रों से सुशोभित सुन्दर-सुन्दर कन्याएँ उनके पास ले आये ॥९॥

जब वे पतिव्रता कन्याएँ भगवान के लिए रुचिकर नहीं हुई तब वे निराश होकर स्वयं अपने आप से ही द्वेष करने लगीं और आभूषण दूर

फेंक भगवान का ध्यान करती हुई खड़ी रह गयी ॥१०॥
अथानन्तर -- महल के शिखर पर खड़े राजा श्रेयांस ने उन्हें स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा और देखते ही उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया ॥११॥
राजा श्रेयांस महल से नीचे उतरकर अन्तःपुर तथा अन्य मित्रजनों के साथ उनके पास आया और हाथ जोड़कर स्तुति-पाठ करता हुआ प्रदक्षिणा देने लगा । भगवान की प्रदक्षिणा देता हुआ राजा श्रेयांस ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानो मेरु के मध्य भाग की प्रदक्षिणा देता हुआ सूर्य ही हो ॥१२-१३॥
सर्वप्रथम: राजा ने अपने केशों से भगवान के चरणों का मार्जन कर आनन्द के आँसुओं से उनका प्रक्षालन किया ॥१४॥
रत्नमयी पात्र से अर्घ देकर उनके चरण धोये, पवित्र स्थान में उन्हें विराजमान किया और तदनन्तर उनके गुणों से आकृष्ट चित्त हो, कलश में रखा हुआ इक्षु का शीतल जल, लेकर विधिपूर्वक श्रेष्ठ पारणा करायी-आहार दिया ॥१५-१६॥ उसी समय आकाश में चलने वाले देवों ने प्रसन्न होकर साधु-साधु, धन्य-धन्य शब्दों के समूह से मिश्रित एवं दिग्मण्डल को मुखरित करनेवाला दुन्दुभि बाजों का भारी शब्द किया ॥१७॥
प्रथम जाति के देवों के अधिपतियों ने अहो दानं अहो दानं कहकर हर्ष के साथ पांच रंग के फूल बरसाये ॥१८॥
अत्यन्त सुखकर स्पर्श से सहित, दिशाओं को सुगन्धित करने वाले वायु बहने लगी और आकाश को व्याप्त करती हुई रत्नों की धारा बरसने लगी ॥१९॥
इस प्रकार उधर राजा श्रेयांस तीनों जगत् को आश्चर्य में डालने वाले देवकृत सम्मान को प्राप्त हुआ और इधर सम्राट भरत ने भी बहुत भारी प्रीति के साथ उसकी पूजा की॥२०॥
अथानन्तर इन्द्रियों को जीतने वाले भगवान् ऋषभदेव, दिगम्बर मुनियों का वत कैसा है? उन्हें किस प्रकार आहार दिया जाता है? इसकी प्रवृत्ति चलाकर फिर से शुभ ध्यान में लीन हो गये ॥२१॥
तदनन्तर शुक्लध्यान के प्रभाव से मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने पर उन्हें लोक और अलोक को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥२२॥
केवलज्ञान के साथ ही बहुत भारी भामण्डल उत्पन्न हुआ । उनका वह भामण्डल रात्रि और दिन के कारण होनेवाले काल के भेद को दूर कर रहा था **अर्थ**ात् उसके प्रकाश के कारण वहां रात-दिन का विभाग नहीं रह पाता था ॥२३॥
जहाँ भगवान को केवलज्ञान हुआ था वहीं एक अशोक वृक्ष प्रकट हो गया । उस अशोक वृक्ष का स्कन्ध बहुत मोटा था, वह रत्नमयी फूलों से अलंकृत था तथा उसके लाल-लाल पल्लव बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥
आकाश में स्थित देवों ने सुगन्धि से भ्रमरों को आकर्षित करने वाली एवं नाना आकार में पड़ने वाली फूलों की वर्षा की ॥२५॥
जिनके शब्द, क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के शब्द के समान भारी थे ऐसे बड़े-बड़े दुन्दुभि बाजे, अदृश्य शरीर के धारक देवों के द्वारा करपल्लवों से ताड़ित होकर विशाल शब्द करने लगे ॥२६॥ जिनके नेत्र कमल की कलिकाओं के समान थे तथा जो सर्वप्रकार के आभूषणों से सुशोभित थे ऐसे दोनों ओर खड़े हुए दो यक्ष, चन्द्रमा की हँसी उड़ाने वाले-सफेद चमर इच्छानुसार चलाने लगे ॥२७॥
जो मेरु के शिखर के समान ऊँचा था, पृथिवी रूपी स्त्री का मानो मुकुट ही था, और अपनी किरणों से सूर्य को तिरस्कृत कर रहा था ऐसा सिंहासन उत्पन्न हुआ ॥२८॥
जो तीन लोक की प्रभुता का चिह्न स्वरूप था, मोतियों की लड़ियों से विभूषित था और भगवान के निर्मल यश के समान जान पड़ता था ऐसा छत्र-त्रय उत्पन्न हुआ ॥२९॥
आचार्य रविषेण कहते हैं कि समवसरण के बीच सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान की शोभा का वर्णन करने के लिए मात्र केवलज्ञानी ही समर्थ हैं, हमारे जैसे तुच्छ पुरुष उस शोभा का वर्णन कैसे कर सकते हैं ॥३०॥
तदनन्तर अवधिज्ञान के द्वारा, भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होने का समाचार जानकर सब इन्द्र अपने-अपने परिवारों के साथ वन्दना करने के लिए शीघ्र ही वहाँ आये ॥३१॥
सर्व प्रथम वृषभसेन नामक मुनिराज इनके प्रसिद्ध गणधर हुए थे । उनके बाद महा-वैराग्य को धारण करनेवाले अन्य-अन्य मुनिराज भी गणधर होते रहे थे ॥३२॥

उस समवसरण में जब मुनि, श्रावक तथा देव आदि सब लोग यथास्थान अपने-अपने कोठों में बैठ गये तब गणधर ने भगवान से उपदेश देने की प्रेरणा की ॥३३॥

भगवान अपने शब्द से देव-दुन्दुभियों के शब्द को तिरोहित करते एवं तत्वार्थ को सूचित करने वाली निम्नांकित वाणी कहने लगे ॥३४॥

उन्होंने कहा कि इस त्रिलोकात्मक समस्त संसार में हित चाहने वाले लोगों को एक धर्म ही परम शरण है, उसी से उत्कृष्ट सुख प्राप्त होता है ॥३५॥

प्राणियों की समस्त चेष्टाएँ सुख के लिए हैं और सुख धर्म के निमित्त से होता है, ऐसा जानकर है भव्य जन! तुम सब धर्म का संग्रह करो ॥३६॥ बिना मेघों के वृष्टि कैसे हो सकती है और बिना बीज के अनाज कैसे उत्पन्न हो सकता है । इसी तरह बिना धर्म के जीवों को सुख कैसे उत्पन्न हो सकता है? ॥३७॥

जिस प्रकार पंगु मनुष्य चलने को इच्छा करे, गूँगा मनुष्य बोलने की इच्छा करे, और अन्धा मनुष्य देखने की इच्छा करे उसी प्रकार धर्म के बिना सुख प्राप्त करना है ॥३८॥

जिस प्रकार इस संसार में परमाणु से छोटी कोई चीज नहीं है और आकाश से बड़ी कोई वस्तु नहीं है उसी प्रकार प्राणियों का धर्म से बड़ा कोई मित्र नहीं है ॥३९॥

जब धर्म से ही मनुष्य सम्बन्धी भोग, स्वर्ग और मुक्त जीवों को सुख प्राप्त हो जाता है तब दूसरा कार्य करने से क्या लाभ है? ॥४०॥

जो विद्वज्जन अहिंसा से निर्मल धर्म की सेवा करते हैं उन्हीं का ऊर्ध्वगमन होता है अन्य जीव तो तिर्यग्लोक अथवा अधोलोक में ही जाते हैं ॥४१॥

यद्यपि अन्यलिंगी-हंस-परमहंस-परिव्राजक आदि भी तपश्चरण की शक्ति से ऊपर जा सकते हैं - स्वर्गों में उत्पन्न हो सकते हैं तथापि वे वहां किंकर होकर अन्य देवों की उपासना करते हैं ॥४२॥

वे वहाँ देव होकर भी कर्म के वश दुर्गति के दुःख पाकर स्वर्ग से च्युत होते हैं और दुःखी होते हुए तिर्यंच-योनि प्राप्त करते हैं ॥४३॥

जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न है तथा जिन्होंने जिनशासन का अच्छी तरह अभ्यास किया है वे स्वर्ग जाते हैं और वहाँ से च्युत होने पर रत्नत्रय को पाकर उत्कष्ट मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥४४॥

वह धर्म गृहस्थों और मुनियों के भेद से दो प्रकार का है। इन दो के सिवाय जो तीसरे प्रकार का धर्म मानते हैं वे मोहरूपी अग्नि से जले हुए हैं ॥४५॥

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, यह गृहस्थों का धर्म है ॥४६॥ जो गृहस्थ उस समय सब प्रकार के आरम्भ का त्याग कर शरीर में भी नि:स्पृह हो जाते हैं तथा समता भाप से मरण करते हैं वे उत्तम-गति को प्राप्त होते हैं ॥४७॥

पांच महाव्रत, पाँच समितियां और तीन गुप्तियां यह मुनियों का धर्म है ॥४८॥

जो मनुष्य मुनि धर्म से युक्त होकर शुभ-ध्यान में तत्पर रहते हैं वे इस दुर्गन्धिपूर्ण वीभत्स शरीर को छोड़कर स्वर्ग अथवा मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥४९॥

जो मनुष्य उत्कृष्ट ब्रह्मचारी दिगम्बर मुनियों की भावपूर्वक स्तुति करते हैं वे भी धर्म को प्राप्त हो सकते हैं ॥५०॥

वे उस धर्म के प्रभाव से कुगतियों में नहीं जाते किन्तु उस रत्नत्रयरूपी धर्म को प्राप्त कर लेते हैं जिसके कि प्रभाव से पापबन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥५१॥

इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् वृषभदेव के द्वारा कहे उत्तम धर्म को सुनकर देव और मनुष्य सभी परम हर्ष को प्राप्त हुए ॥५२॥

कितने ही लोगों ने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को धारण किया । कितने ही लोगों ने गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और अपनी शक्ति का अनुसरण करने वाले कितने ही लोगों ने मुनिव्रत स्वीकार किया ॥५३॥

तदनन्तर जाने के लिए उद्यत हुए सुर और असुरों ने जिनेन्द्र देव को नमस्कार किया, उनकी स्तुति की और फिर धर्म से विभूषित होकर सब लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये ॥५४॥

भगवान का गमन इच्छा वश नहीं होता था फिर भी वे जिस-जिस देश में पहुंचते थे वहाँ सौ योजन तक का क्षेत्र स्वर्ग के समान हो जाता था ॥५५॥

इस प्रकार अनेक देशों में भ्रमण करते हुए जिनेन्द्र भगवान ने शरणागत भव्य जीवों को रत्नत्रय का दान देकर संसार-सागर से पार किया था ॥५६॥ भगवान के चौरासी गणधर थे और चौरासी हजार उत्तम तपस्वी साधु थे ॥५७॥

वे सब साधु अत्यन्त निर्मल हृदय के धारक थे तथा सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रभा से संयुक्त थे । इन सबसे परिवृत्त होकर भगवान ने समस्त पृथिवी पर विहार किया था ॥५८॥

भगवान् ऋषभदेव का पुत्र राजा भरत चक्रवर्ती की लक्ष्मी को प्राप्त हुआ था और उसी के नाम से यह क्षेत्र संसार में भरत क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥५९॥

भगवान् ऋषभदेव के सौ पुत्र थे जो एक से एक बढ़कर तेज और कान्ति से सहित थे तथा जो अन्त में श्रमणपद-मुनिपद धारण कर परमपद--निर्वाणधाम को प्राप्त हुए थे ॥६०॥

उन सौ पुत्रों के बीच भरत चक्रवर्ती प्रथम पुत्र था जो कि सज्जनों के समूह से सेवित अयोध्या नाम की सुन्दर नगरी में रहता था ॥६१॥ उसके पास नव रत्नों से भरी हुई अक्षय नौ निधियां थीं, निन्यानवे हजार खानें थीं, तीन करोड़ गायें थीं, एक करोड़ हल थे, चौरासी लाख उत्तम हाथी थे, वायु के समान वेग वाले अठारह करोड़ घोड़े थे, बत्तीस हजार महा प्रतापी राजा थे, नगरों से सुशोभित बत्तीस हजार ही देश थे, देव लोग सदा जिनकी रक्षा किया करते थे ऐसे चौदह रत्न थे, और छियानवे हजार स्त्रियां थीं । इस प्रकार उसके समस्त ऐश्वर्य का वर्णन करना अशक्य है-कठिन कार्य है ॥६२-६६॥ पोदनपुर नगर में भरत का सौतेला भाई राजा बाहुबली रहता था । वह अत्यन्त शक्तिशाली था तथा 'मैं और भरत एक ही पिता के दो पुत्र है' इस अहंकार से सदा भरत के विरुद्ध रहता था ॥६७॥

चक्ररत्न के अहंकार से चकनाचूर भरत अपनी चतुरंग सेना के द्वारा पृथिवी तल को आच्छादित करता हुआ उसके साथ युद्ध करने के लिए पोदनपुर गया ॥६८॥

वहाँ उन दोनों में हाथियों के समूह की टक्कर से उत्पन्न हुए शब्द से व्याप्त प्रथम युद्ध हुआ । उस युद्ध में अनेक प्राणी मारे गये ॥६९॥ यह देख भुजाओं के बल से सुशोभित बाहुबली ने हँसकर भरत से कहा कि इस तरह निरपराध दीन प्राणियों के वध से हमारा और आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ॥७०॥

यदि आपने मुझे निश्चल दृष्टि से पराजित कर दिया तो मैं अपने आपको पराजित समझ लूँगा अत: दृष्टियुद्ध में ही प्रवृत्त होना चाहिए ॥७१॥

बाहुबली के कहे अनुसार दोनों का दृष्टियुद्ध हुआ और उसमें भरत हार गया । तदनन्तर जल-युद्ध और बाहु-युद्ध भी हुए उनमें भी भरत हार गया । अन्त में भरत ने भाई का वध करने के लिए चक्ररत्न चलाया ॥७२॥

परन्तु बाहुबली चरमशरीरी थे अत: वह चक्ररत्न उनका वध करने में असमर्थ रहा और निष्फल हो लौटकर भरत के समीप वापस आ गया ॥७३॥

तदनन्तर भाई के साथ बैर का मूल कारण जानकर उदारचेता बाहुबली भोगों से अत्यन्त विरक्त हो गये ॥७४॥

उन्होंने उसी समय समस्त भोगों का त्यागकर वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये और एक वर्ष तक मेरु पर्वत के समान निष्प्रकम्प खड़े रहकर प्रतिमा-योग धारण किया ॥७५॥

उनके पास अनेक वामियाँ लग गयीं जिनके बिलों से निकले हुए बड़े-बड़े साँपों और श्यामा आदि की लताओं ने उन्हें वेष्टित कर लिया । इस दशा में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया ॥७६॥ तदनन्तर आयुकर्म का क्षय होने पर उन्होंने मोक्ष पद प्राप्त किया और इस अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम उन्होंने मोक्षमार्ग विशुद्ध किया-निष्कण्टक बनाया ॥७७॥

भरत चक्रवर्ती ने छह भागों से विभक्त भरत क्षेत्र की समस्त भूमि पर अपना निष्कण्टक राज्य किया ॥७८॥

उनके राज्य में भरत क्षेत्र के समस्त गांव विद्याधरों के नगरों के समान सर्व सुखों से सम्पन्न थे, समस्त नगर देवलोक के समान उत्कष्ट संपदाओं से युक्त थे ॥७९॥

और उनमें रहनेवाले मनुष्य, उस कृत युग में देवों के समान सदा सुशोभित होते थे । उस समय के मनुष्यों को मन में इच्छा होते ही तरह-तरह के वस्त्राभूषण प्राप्त होते रहते थे ॥८०॥

वहाँ के देश भोगभूमियों के समान थे, राजा लोकपालों के तुल्य थे और स्त्रियाँ अप्सराओं के समान काम की निवास भूमि थीं ॥८१॥

इस तरह जिस प्रकार इन्द्र स्वर्ग में अपने शुभकर्म का फल भोगता है उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी एकछत्र पृथिवी पर अपने शुभकर्म का फल भोगता था ॥८२॥

एक हजार यक्ष प्रयत्न पूर्वक जिसकी रक्षा करते थे ऐसा समस्त इन्द्रियों को सुख देनेवाला उसका सुभद्रा नामक स्त्री-रत्न अतिशय शोभायमान था ॥८३॥

भरत चक्रवर्ती के पाँच सौ पुत्र थे जो पिता के द्वारा विभाग कर दिये हुए निष्कण्टक भरत क्षेत्र का उपभोग करते थे ॥८४॥

इस प्रकार महात्मा गौतम गणधर ने भगवान् ऋषभदेव तथा उनके पुत्र और पौत्रों का वर्णन किया जिसे सुनकर कुतूहल से भरे हुए राजा श्रेणिक ने फिर से यह कहा ॥८५॥

हे भगवन्! आपने मेरे लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की उत्पत्ति तो कही अब मैं इस समय ब्राह्मणों की उत्पत्ति और जानना चाहता हूँ ॥८६॥ ये लोग धर्म प्राप्ति के निमित्त, सज्जनों के द्वारा निन्दित प्राणि हिंसा आदि कार्य कर बहुत भारी गर्व को धारण करते हैं ॥८७॥

इसलिए आप इन विपरीत प्रवृत्ति करने वालों की उत्पत्ति कहने के योग्य हैं । साथ ही यह भी बतलाइए कि इन गृहस्थ ब्राह्मणों के लोग भक्त कैसे हो जाते हैं? ॥८८॥

इस प्रकार दयारूपी स्त्री जिनके हृदय का आलिंगन कर रही थी तथा मत्सर भाव को जिन्होंने नष्ट कर दिया था ऐसे गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक के पूछने पर निम्नांकित वचन कहे ॥८९॥

हे श्रेणिक! जिनका हृदय मोह से आक्रान्त है और इसीलिए जो विपरीत प्रवृत्ति कर रहे हैं ऐसे इन ब्राह्मणों की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई वह मैं कहता हूँ तू सुन ॥९०॥

एक बार अयोध्या नगरी के समीपवर्ती प्रदेश में देव, मनुष्य तथा तिर्यंचों से वेष्टित भगवान् ऋषभदेव आकर विराजमान हुए । उन्हें आया जानकर राजा भरत बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और मुनियों के उद्देश्य से बनवाया हुआ नाना प्रकार का उत्तमोत्तम भोजन नौकरों से लिवाकर भगवान के पास पहुँचा । वहाँ जाकर उसने भक्तिपूर्वक भगवान् ऋषभदेव को तथा अन्य समस्त मुनियों को नमस्कार किया और पृथ्वी पर दोनों हाथ टेककर यह वचन कहे ॥९१-९३॥

हे भगवन्! मैं याचना करता हूँ कि आप लोग मुझ पर प्रसन्न होइए और मेरे द्वारा तैयार करायी हुई यह उत्तमोत्तम भिक्षा ग्रहण कीजिए ॥९४॥

भरत के ऐसा कहने पर भगवान ने कहा कि हे भरत! जो भिक्षा मुनियों के उद्देश्य से तैयार की जाती है वह उनके योग्य नहीं है-मुनिजन उद्दिष्ट भोजन ग्रहण नहीं करते ॥९५॥

ये मुनि तृष्णा से रहित हैं, इन्होंने इन्द्रियरूपी शत्रुओं को जीत लिया है, तथा गुणों के धारक हैं । ये एक दो नहीं अनेक महीनों के उपवास करने के बाद भी श्रावकों के घर भोजन के लिए जाते हैं और वहाँ प्राप्त हुई निर्दोष भिक्षा को मौन-से खड़े रहकर ग्रहण करते हैं । उनकी यह प्रवृत्ति रसास्वाद के लिए न होकर केवल प्राणों की रक्षा के लिए ही होती है क्योंकि प्राण धर्म के कारण हैं ॥९६-९७॥

ये मुनि मोक्ष-प्राप्ति के लिए उस धर्म का आचरण कर रहे जिसमें कि सुख की इच्छा रखनेवाले समस्त प्राणियों को किसी भी प्रकार को पीड़ा नहीं दी है ॥९८॥

भगवान के उक्त वचन सुनकर सम्राट भरत चिरकाल तक यह विचार करता और कहता रहा कि अहो! जिनेन्द्र भगवान का यह व्रत महान् कष्टों से भरा है । इस व्रत पालन करने वाले मुनि अपने शरीर में निस्पृह रहते हैं, दिगम्बर होते हैं, धीरवीर तथा समस्त प्राणियों पर दया करने में तत्पर रहते हैं ॥९९-१००॥

इस समय जो यह महान् भोजन-सामग्री तैयार की गयी है इससे गृहस्थ का व्रत धारण करने वाले पुरुषों को भोजन कराता हूँ तथा गृहस्थों को सुवर्ण सूत्र से चिह्नित करता हूँ ॥१०१॥

भोजन के सिवाय अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी इनके लिए भक्तिपूर्वक अच्छी मात्रा में देता हूँ क्योंकि इन लोगों ने जो धर्म धारण किया है वह मुनि धर्म का छोटा भाई ही तो है ॥१०२॥

तदनन्तर-सम्राट भरत ने महावेग शाली अपने इष्ट पुरुषों को भेजकर पृथिवी तल पर विद्यमान समस्त सम्यग्दृष्टिजनों को निमन्त्रित किया ॥

१०३॥
इस कार्य से समस्त पृथिवी पर कोलाहल मच गया । लोग कहने लगे कि अहो! मनुष्यजन हो! सम्राट भरत बहुत भारी दान करने के लिए उद्यत हुआ है ॥१०४॥
इसलिए उठो, शीघ्र चलें, वस्त्र-रत्न आदिक धन लावें, देखो ये आदर से भरे सेवकजन उसने भेजे हैं ॥१०५॥
यह सुनकर उन्हीं लोगो में से कोई कहने लगे कि यह भरत अपने इष्ट सम्यग्दृष्टिजनों का ही सत्कार करता है इसलिए हम लोगों का वहाँ जाना वृथा है ॥१०६॥ यह सुनकर जो सम्यग्दृष्टि पुरुष थे वे परम हर्ष को प्राप्त हो स्त्री-पुत्रादिकों के साथ भरत के पास गये और विनय से खड़े हो गये ॥१०७॥
जो मिथ्यादृष्टि थे वे भी धन की तृष्णा से मायामयी सम्यग्दृष्टि बनकर इन्द्रभवन की तुलना करने वाले सम्राट भरत के भवन में पहुँचे ॥१०८॥
सम्राट भरत ने भवन के आँगन में बोये हुए जौ, धान, मूँग, उड़द आदि के अंकुरों से समस्त सम्यग्दृष्टि पुरुषों की छाँट अलग कर ली तथा उन्हें जिसमें रत्न पिरोया गया था ऐसे सुवर्णमय सुन्दर सूत्र के चिह्न से चिह्नित कर भवन के भीतर प्रविष्ट करा लिया ॥१०९-११०॥
तृष्णा से पीड़ित मिथ्यादृष्टि लोग भी चिन्ता से व्याकुल हो दीन वचन कहते हुए दुःख रूपी सागर में प्रविष्ट हुए ॥१११॥
तदनन्तर-राजा भरत ने उन श्रावकों के लिए इच्छानुसार दान दिया । भरत के द्वारा सम्मान पाकर उनके हृदय में दुर्भावना उत्पन्न हुई और वे इस प्रकार विचार करने लगे ॥११२॥
कि हम लोग वास्तव में महा पवित्र तथा जगत् का हित करने वाले कोई अनुपम पुरुष हैं इसीलिए तो राजाधिराज भरत ने बड़ी श्रद्धा के साथ हम लोगों की पूजा की है ॥११३॥
तदनन्तर वे इसी गर्व से समस्त पृथिवी तल पर फैल गये और किसी धन-सम्पन्न व्यक्ति को देखकर याचना करने लगे ॥११४॥
तत्पश्चात् किसी दिन मति समुद्र नामक मन्त्री ने राजाधिराज भरत से कहा कि आज मैंने भगवान के समवसरण में निम्नांकित वचन सुना है ॥११५॥
वहाँ कहा गया है कि भरत ने जो इन ब्राह्मणों की रचना की है सो वे वर्द्धमान तीर्थकर के बाद कलियुग नामक पंचम काल आने पर पाखण्डी एवं अत्यन्त उद्धत हो जायेंगे ॥११६॥ धर्मबुद्धि से मोहित होकर **अर्थ**ात् धर्म समझकर प्राणियों को मारेंगे, बहुत भारी कषाय से युक्त होंगे और पाप कार्य के करने में तत्पर होंगे ॥११७॥
जो हिंसा का उपदेश देने में तत्पर रहेगा ऐसे वेद नामक खोटे शाख को कर्ता से रहित **अर्थ**ात् ईश्वर प्रणीत बतलावेंगे और समस्त प्रजा को मोहित करते फिरेंगे ॥११८॥
बड़े-बड़े आरम्भो में लीन रहेंगे, दक्षिणा ग्रहण करेंगे और जिनशासन की सदा निन्दा करेंगे ॥११९॥
निर्ग्रन्थ मुनि को आगे देखकर क्रोध को प्राप्त होंगे और जिस प्रकार विषवृक्ष के अंकुर जगत् के उपद्रव **अर्थ**ात् अपकार के लिए हैं उसी प्रकार ये पापी भी जगत् के उपद्रव के लिए होंगे-जगत् में सदा अनर्थ उत्पन्न करते रहेंगे ॥१२०॥
मति समुद्र मन्त्री के वचन सुनकर भरत कुपित हो उन सब विप्रों को मारने के लिए उद्यत हुआ । तदनन्तर वे भयभीत होकर भगवान् ऋषभदेव की शरण में गये ॥१२१॥
भगवान् ऋषभदेव ने हे पुत्र! इनका (मा हनन कार्षी:) हनन मत करो यह शब्द कहकर इनकी रक्षा की थी इसलिए ये आगे चलकर 'माहन' इस प्रसिद्धि को प्राप्त हो गये **अर्थ**ात् 'माहन' कहलाने लगे ॥१२२॥
चूँकि इन शरणागत ब्राह्मणों की ऋषभ जिनेन्द्र ने रक्षा की थी इसलिए देवों अथवा विद्वानों ने भगवान को त्राता **अर्थ**ात् रक्षक कहकर उनकी बहुत भारी स्तुति की थी ॥१२३॥
दीक्षा के समय भगवान् ऋषभदेव का अनुकरण करने वाले जो राजा पहले ही च्युत हो गये थे उन्होंने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार दूसरे-दूसरे व्रत चलाये थे ॥१२४॥
उन्हीं के शिष्य-प्रशिष्यों ने अहंकार से चूर होकर खोटी-खोटी युक्तियों से जगत् को मोहित करते हुए अनेक खोटे शास्त्रों की रचना की ॥१२५॥

भृगु, अगिशिरस, वहि, कपिल, अत्रि तथा विद आदि अनेक साधु अज्ञानवश वल्कलों को धारण करनेवाले तापसी हुए ॥१२६॥ स्त्री को देखकर उनका चित्त दूषित हो जाता था और जननेन्द्रिय में विकार दिखने लगता था इसलिए उन अधम मोही जीवों ने जननेन्द्रिय को लंगोट से आच्छादित कर लिया ॥१२७॥

कण्ठ में सूत्र **अर्थ**ात् यज्ञोपवीत को धारण करने वाले जिन ब्राह्मणों की चक्रवर्ती भरत ने पहले बीज के समान थोड़ी ही रचना की थी वे अब सन्ततिरूप से बढ़ते हुए समस्त पृथ्वी तल पर फैल गये ॥१२८॥

गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्! यह ब्राह्मणों की रचना प्रकरणवश मैंने तुझ से कही है । अब सावधान होकर प्रकृत बात कहता हूँ सो सुन ॥१२९॥

भगवान् ऋषभदेव संसार-सागर से अनेक प्राणियों का उद्धार कर कैलास पर्वत की शिखर से मोक्ष को प्राप्त हुए ॥१३०॥

तदनन्तर चक्रवर्ती भरत भी लोगों को आश्चर्य में डालने वाले साम्राज्य को तृण के समान छोड़कर दीक्षा को प्राप्त हुए ॥१३१॥

हे श्रेणिक! यह स्थिति नाम का अधिकार मैंने संक्षेप से तुझे कहा है, हे श्रेष्ठ पुरुष! अब वंशाधिकार को कहता हूँ सो आदर से श्रवण कर ॥१३२॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में ऋषभदेव का महात्म्य वर्णन करनेवाला चतुर्थ पर्व पूर्ण हुआ ॥४॥

## राक्षसवंश

पंचम पर्व

कथा :

अथानन्तर, गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्! इस संसार में चार महावंश प्रसिद्ध हैं और इन महावंशो के अनेक अवान्तर भेद कहे गये हैं । ये सभी भेद अनेक प्रकार के रहस्यों से युक्त हैं ॥१॥

उन चार महावंशों में पहला इक्ष्वाकुवंश है जो अत्यन्त उत्कृष्ट तथा लोक का आभूषण स्वरूप है । दूसरा ऋषिवंश अथवा चन्द्रवंश है जो चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल है ॥२॥

तीसरा विद्याधरों का वंश है जो अत्यन्त मनोहर है और चौथा हरिवंश है जो संसार में प्रसिद्ध कहा गया है ॥३॥

इक्ष्वाकुवंश में भगवान् ऋषभदेव उत्पन्न हुए, उनके भरत हुए और उनके अर्ककीर्ति महा प्रतापी पुत्र हुए । अर्क नाम सूर्य का है इसलिए इनका वंश सूर्यवंश कहलाने लगा। अर्ककीर्ति के सितयशा नामा पुत्र हुए, उनके बलांक, बलांक के सुबल, सुबल के महाबल, महाबल के अतिबल, अतिबल के अमृत, अमृत के सुभद्र, सुभद्र के सागर, सागर के भद्र, भद्र के रवितेज, रवितेज के शशी, शशी के प्रभूततेज, प्रभूततेज के तेजस्वी, तेजस्वी के प्रतापी तपन, तपन के अतिवीर्य, अतिवीर्य के सुवीर्य, सुवीर्य के उदितपराक्रम, उदितपराक्रम के महेन्द्रविक्रम, महेन्द्रविक्रम के सूर्य, सूर्य के इंद्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्न के महेन्द्रजित्, महेन्द्रजित् के प्रभु, प्रभु के विभु, विभु के अविध्वंस, अविध्वंस के वीतभी, वीतभी के वृषभध्वज, वृषभध्वज के गरुडांक और गरुडांक के मृगांक पुत्र हुए । इस प्रकार इस वंश में अन्य अनेक राजा हुए । ये सभी संसार से भयभीत थे अत: पुत्रों के लिए राज्य सौंपकर शरीर से भी निस्पृह हो निर्ग्रन्थ व्रत को प्राप्त हुए ॥४-९॥

हे राजन् ! मैंने क्रम से तुझे सूर्यवंश का निरूपण किया है अब सोमवंश अथवा चन्द्रवंश की उत्पत्ति कही जाती ॥१०॥

भगवान् ऋषभदेव की दूसरी रानी से बाहुबली नाम का पुत्र हुआ था, उसके सोमयश नाम का सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ था । सोम नाम चन्द्रमा का है सो उसी सोमयश से सोमवंश अथवा चन्द्रवंश की परम्परा चली है । सोमयश के महाबल, महाबल के सुबल और सुबल के भुजबलि इस प्रकार इन्हें आदि लेकर अनेक राजा इस वंश में क्रम से उत्पन्न हुए हैं। ये सभी राजा निर्मल चेष्टाओं के धारक थे तथा मुनिपद को धारण कर ही परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हुए ॥११-१३॥

कितने ही अल्पकर्म अवशिष्ट रह जाने के कारण तप का फल भोगते हुए स्वर्ग में देव हुए तथा वहाँ से आकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥१४॥

हे राजन्! यह मैंने तुझे सोमवंश कहा अब आगे संक्षेप से विद्याधरों के वंश का वर्णन करता हूँ ॥१५॥

विद्याधरों का राजा जो नमि था उसके रत्नमाली नाम का पुत्र हुआ । रत्नमाली के रत्नवज्र, रत्नवज्र के रत्नरथ, रत्नरथ के रत्नचित्र, रत्नचित्र के चन्द्ररथ, चन्द्ररथ के वज्रजंघ, वज्रजंघ के वज्रसेन, वज्रसेन के वज्रद्रंष्ट, वज्रद्रंष्ट के वज्रध्वज, वज्रध्वज के वज्रायुध, वज्रायुध

के वज्र, वज्र के सुवज्र, सुवज्र के वज्रभृत्, वज्रभृत् के वज्राभ, वज्राभ के वज्रबाहु, वज्रबाहु के वज्रसंज्ञ, वज्रसंज्ञ के वज्रास्य, वज्रास्य के वज्रपाणि, वज्रपाणि के वज्रजातु, वज्रजातु के वज्रवान्, वज्रवान् के विद्युन्मुख, विद्युन्मुख के सुवक्त्र, सुवक्त्र के विद्युद्दंष्ट्र, विद्युद्दंष्ट्र के विद्युत्वान्, विद्युत्वान् के विद्युदाभ, विद्युदाभ के विद्युद्वेग और विद्युद्वेग के वैद्युत नामक पुत्र हुए । ये ही नहीं, इन्हें आदि लेकर अनेक शूरवीर विद्याधरों के राजा हुए । ये सभी दीर्घ काल तक राज्य कर अपनी-अपनी चेष्टाओं के अनुसार स्थानों को प्राप्त हुए ॥१६-२१॥

इनमें से कितने ही राजाओं ने पुत्रों के लिए राज्य सौंपकर जिन दीक्षा धारण की और राग-द्वेष छोड़कर सिद्धि पद प्राप्त किया ॥२२॥

कितने ही राजा समस्त कर्मबन्धन को नष्ट नहीं कर सके इसलिए संकल्प मात्र से उपस्थित होनेवाले देवों के सुख का उपभोग करने लगे ॥२३॥

कितने ही लोग स्नेह के कारण गुरुतर कर्मरूपी पाश से बँधे रहे और जाल में बँधे हरिणों के समान उसी कर्मरूपी पाश में बँधे हुए मृत्यु को प्राप्त हुए ॥२४॥

अथानन्तर इसी विद्याधरों के वंश में एक विद्युद्दृढ़ नाम का राजा हुआ जो दोनों श्रेणियों का स्वामी था, विद्याबल में अत्यन्त उद्धत और विपुल पराक्रम का धारी था ॥२५॥

किसी एक समय वह विमान में बैठकर विदेह क्षेत्र गया था वहां उसने आकाश से ही निर्ग्रन्थ मुद्रा के धारी संजयन्त मुनि को देखा, उस समय वे ध्यान में आरूढ़ थे और उनका शरीर पर्वत के समान निश्चल था ॥२६॥

विद्युद्दृढ विद्याधर ने उन मुनिराज को लाकर पंचगिरि नामक पर्वत पर रख दिया और इनका वध करो इस प्रकार विद्याधरों को प्रेरित किया ॥२७॥

राजा की प्रेरणा पाकर विद्याधरों ने उन्हें पत्थर तथा अन्य साधनों से मारना शुरू किया परन्तु वे तो सम चित्त के धारी थे अत: उन्हें थोड़ा भी संक्लेश उत्पन्न नहीं हुआ ॥२८॥

तदनन्तर दु:सह उपसर्ग को सहन करते हुए उन संजयन्त मुनिराज को समस्त पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥२९॥

उसी समय मुनिराज का पूर्व भव का भाई धरणेन्द्र आया । उसने विद्युद्दृढ की सब विद्याएँ हर लीं जिससे वह विद्यारहित होकर अत्यन्त शान्त भाव को प्राप्त हुआ ॥३०॥

विद्याओं के अभाव में बहुत दुखी होकर उसने हाथ जोड़कर नम्र भाव से धरणेन्द्र से पूछा कि अब हमें किसी तरह विद्याएँ सिद्ध हो सकती हैं या नहीं? तब धरणेन्द्र ने कहा कि तुम्हें इन्हीं संजयन्त मुनिराज के चरणों में तपश्चरण सम्बन्धी क्लेश उठाने से फिर भी विद्याएँ सिद्ध हो सकती हैं परन्तु खोटा कार्य करने से वे विद्याएँ सिद्ध होने पर भी पुन: नष्ट हो जायेंगी । जिन-प्रतिमा से युक्त मन्दिर और मुनियों का उल्लंघन कर प्रमादवश यदि ऊपर गमन करोगे तो तुम्हारी विद्याएँ तत्काल नष्ट हो जायेंगी । धरणेन्द्र के द्वारा बतायी हुई व्यवस्था के अनुसार विद्युद्दृढ़ ने संजयन्त मुनिराज के पादमूल में तपश्चरण कर फिर भी विद्या प्राप्त कर ली ॥३१-३३॥

यह सब होने के बाद धरणेन्द्र ने कुतूहल वश संजयन्त मुनिराज से पूछा कि हे भगवत्! विद्युद्दृढ़ ने आपके प्रति ऐसी चेष्टा क्यों की है? वह किस कारण आपको हर कर लाया और किस कारण विद्याधरों से उसने उपसर्ग कराया ॥३४॥

धरणेन्द्र का प्रश्न सुनकर भगवान् संजयन्त केवली इस प्रकार कहने लगे-इस चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करता हुआ मैं एक बार शकट नामक गाँव में हितकर नामक वैश्य हुआ था । मैं अत्यन्त मधुरभाषी, दयालु, स्वभाव सम्बन्धी सरलता से युक्त तथा साधुओं की सेवा में तत्पर रहता था ॥३५-३६॥

तदनन्तर मैं कुमुदावती नाम की नगरी में मर्यादा के पालन करने में उद्यत श्रीवर्द्धन नाम का राजा हुआ ॥३७॥

उसी ग्राम में एक ब्राह्मण रहता था जो खोटा तप कर कुदेव हुआ था और वहाँ से च्युत होकर मुझ श्रीवर्द्धन राजा का वह्निशिख नाम का पुरोहित हुआ था । वह पुरोहित यद्यपि सत्यवादी रूप से प्रसिद्ध था परन्तु अत्यन्त दुष्ट परिणामी था और छिपकर खोटे कार्य करता था ॥३८-३९॥

उस पुरोहित ने एक बार नियमदत्त नामक वणिक् का धन छिपा लिया तब रानी ने उसके साथ जुआ खेलकर उसकी अँगूठी जीत ली ॥४०॥

रानी की दासी अँगूठी लेकर पुरोहित के घर गयी और वहाँ उसकी स्त्री को दिखाकर उससे रत्न ले आयी । रानी ने वे रत्न नियमदत्त वणिक् को जो कि अत्यन्त दुःखी था वापस दे दिये । तदनन्तर मैंने उस दुष्ट ब्राह्मण का सब धन छीन लिया तथा उसे तिरस्कृत कर नगर से बाहर निकाल दिया । उस दीन-हीन ब्राह्मण को सुबुद्धि उत्पन्न हुई जिससे उसने उत्कृष्ट तपश्चरण किया ॥४१-४२॥

अन्त में मरकर वह माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से च्युत होकर यह विद्युद्दृढ़ नामक विद्याधरों का राजा हुआ है ॥४३॥

मेरा जीव श्रीवर्द्धन भी तपश्चरण कर मरा और स्वर्ग में देव हुआ । वहाँ से च्युत होकर मैं विदेह क्षेत्र में संजयन्त हुआ हूँ ॥४४॥

उस पूर्वोक्त दोष के संस्कार से ही यह विद्याधर मुझे देखकर क्रोध से एकदम मूर्च्छित हो गया और कर्मो के वशीभूत होकर उसी संस्कार से इसने यह उपसर्ग किया है ॥४५॥

और जो वह नियमदत्त नामक वणिक् था वह तपश्चरण कर उसके फलस्वरूप उज्ज्वल हृदय का धारी तू नागकुमारों का राजा धरणेन्द्र हुआ है ॥४६॥

अथानन्तर-विद्युद्दृढ़ के दृढ़रथ नामक पुत्र हुआ सो विद्युद्दृढ़ उसके लिए राज्य सौंपकर तथा तपश्चरण कर स्वर्ग गया ॥४७॥

इधर दृढ़रथ के अश्वधर्मा, अश्वधर्मा के अश्वायु, अश्वायु के अश्वध्वज, अश्वध्वज के पद्मनिभ, पद्मनिभ के पद्ममाली, पद्ममाली के पद्मरथ, पद्मरथ के सिंहयान, सिंहयान के मृगोद्धर्मा, मृगोद्धर्मा के सिंहसप्रमु, सिंहसप्रमु के सिंहकेतु, सिंहकेतु के शशांकमुख, शशांकमुख के चन्द्र, चन्द्र के चन्द्रशेखर, चन्द्रशेखर के इन्द्र, इन्द्र के चन्द्ररथ, चन्द्ररथ के चक्रधर्मा, चक्रधर्मा के चक्रायुध, चक्रायुध के चक्रध्वज, चक्रध्वज के मणिग्रीव, मणिग्रीव के मण्यंक, मण्यंक के मणिभासुर, मणिभासुर के मणिस्यन्दन, मणिस्यन्दन के मण्यास्य, मण्यास्य के बिम्बोष्ठ के लम्बिताधर, लम्बिताधर के रक्तोष्ठ, रक्तोष्ठ के हरिचन्द्र, हरिचन्द्र के पूश्चन्द्र, पूश्चन्द्र के पूर्णचन्द्र, पूर्णचन्द्र के बालेन्दु, बालेन्दु के चन्द्रचूड, चन्द्रचूड के व्योमेन्दु, व्योमेन्दु के उडुपालन, उडुपालन के एकचूड, एकचूड के द्विचूड, द्विचूड के त्रिचूड, त्रिचूड के वज्रचूड, वज्रचूड के भूरिचूड, भूरिचूड के अर्कचूड, अर्कचूड के वह्निजटी के वह्नितेज के वह्नितेज नाम का पुत्र हुआ । इसी प्रकार और भी बहुत-से पुत्र हुए जो कालक्रम से मृत्यु को प्राप्त होते गये ॥४८-५४॥

इनमें से कितने ही विद्याधर राजा लक्ष्मी का पालन कर तथा अन्त में पुत्रों को राज्य सौंपकर कर्मों का क्षय करते हुए सिद्ध-भूमि को प्राप्त हुए ॥५५॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार यह विद्याधरों का वंश कहा । अब द्वितीय युग का अवतार कहा जाता है सो सुन ॥५६॥

भगवान् ऋषभदेव का युग समाप्त होने पर इस पृथिवी पर जो प्राचीन उत्तम भाव थे वे हीन हो गये, लोगों की परलोक सम्बन्धी क्रियाओं में प्रीति शिथिल होने लगी तथा काम और **अर्थ** पुरुषार्थ में ही उनकी प्रवर बुद्धि प्रवृत्त होने लगी ॥५७-५८॥

अथानन्तर इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए राजा जब कालक्रम से अतीत हो गये तब अयोध्या नगरी में एक धरणीधर नामक राजा उत्पन्न हुए । उनकी श्रीदेवी नामक रानी से प्रसिद्ध लक्ष्मी का धारक त्रिदशंजय नाम का पुत्र हुआ । इसकी स्त्री का नाम इन्दुरेखा था, उन दोनों के जितशत्रु नाम का पुत्र हुआ ॥५९-६०॥

पोदनपुर नगर में व्यानन्द नामक राजा रहते थे, उनकी अम्भोजमाला नामक रानी से विजया नाम की पुत्री उत्पन्न हुई थी । राजा त्रिदशंजय ने जितशत्रु का विवाह विजया के साथ कराकर दीक्षा धारण कर ली और तपश्चरण कर कैलास पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया ॥६१-६२॥

अथानन्तर राजा जितशत्रु और रानी विजया के अजितनाथ भगवान का जन्म हुआ । इन्द्रादिक देवों ने भगवान् ऋषभदेव का जैसा अभिषेक आदि किया था वैसा ही भगवान् ऋषभदेव का किया ॥६३॥

चूँकि उनका जन्म होते ही पिता ने समस्त शत्रु जीत लिये थे इसलिए पृथिवी तल पर उनका अजित नाम प्रसिद्ध हुआ ॥६४॥

भगवान् अजितनाथ की सुनयना, नन्दा आदि अनेक रानियाँ थीं । वे सब रानियाँ इतनी सुन्दर थीं कि इन्द्राणी भी अपने रूप से उनकी समानता नहीं कर सकती थी ॥६५॥

अथानन्तर-भगवान् अजितनाथ एक दिन अपने अन्तःपुर के साथ सुन्दर उपवन में गये । वहाँ उन्होंने प्रातःकाल के समय फूला हुआ कमलों का एक विशाल वन देखा ॥ ६६ ॥ उसी वन को उन्होंने जब सूर्य अस्त होने को हुआ तब संकुचित होता देखा । इस घटना से वे लक्ष्मी को अनित्य मानकर परम वैराग्य को प्राप्त हो गये ॥६७॥

तदनन्तर-पिता, माता और भाइयों से पूछकर उन्होंने पूर्व विधि के अनुसार दीक्षा धारण कर ली ॥६८॥

इनके साथ अन्य दस हजार क्षत्रियों ने भी राज्य, भाई-बन्धु तथा सब परिग्रह का त्याग कर दीक्षा धारण की थी ॥६९॥
भगवान ने तेला का उपवास धारण किया था सो तीन दिन बाद अयोध्या निवासी ब्रह्मदत्त राजा ने उन्हें भक्ति—पूर्वक पारणा करायी थी-आहार दिया था ॥७०॥
चौदह वर्ष होने पर उन्हें केवलज्ञान तथा समस्त संसार के द्वारा पूजनीय अर्हन्तपद प्राप्त हुआ ॥७१॥
जिस प्रकार भगवान् ऋषभदेव के चौंतीस अतिशय और आठ प्रातिहार्य प्रकट हुए थे उसी प्रकार इनके भी प्रकट हुए ॥७२॥
इनके पाद—मूल में रहनेवाले नब्बे गणधर थे तथा सूर्य के समान कान्ति को धारण करने वाले एक लाख साधु थे ॥७३॥
जितशत्रु के छोटे भाई विजय सागर थे, उनकी स्त्री का नाम सुमंगला था, सो उन दोनों के सगर नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥७४॥
यह सगर शुभ आकार का धारक दूसरा चक्रवर्ती हुआ और पृथ्वीतल पर नौ निधियों के कारण परम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था ॥७१॥
हे श्रेणिक! इसके समय जो वृत्तान्त हुआ उसे तू सुन । भरतक्षेत्र के विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में एक चक्रवाल नाम का नगर है ॥७६॥
उसमें पूर्णघन नाम का विद्याधरों का राजा राज्य करता था । वह महाप्रभाव से युक्त तथा विद्याओं के बल से उन्नत था । उसने विहायस्तिलक नगर के राजा सुलोचन से उसकी कन्या की याचना की पर सुलोचन ने अपनी कन्या पूर्णघन को न देकर निमित्तज्ञानी की आज्ञानुसार सगर चक्रवर्ती के लिए दी ॥७७-७८॥
इधर राजा सुलोचन और पूर्णघन के बीच जबतक भयंकर युद्ध होता है तब तक सुलोचन का पुत्र सहस्रनयन अपनी बहन को लेकर अन्यत्र चला गया ॥७९॥
पूर्णघन ने सुलोचन को मारकर नगर में प्रवेश किया परन्तु जब कन्या नहीं देखी तो अपने नगर को वापस लौट आया ॥८०॥
तदनन्तर पिता का वध सुनकर सहस्रनयन पूर्णमेघ पर बहुत ही कुपित हुआ परन्तु निर्बल होने से कुछ कर नहीं सका । वह अष्टापद आदि हिंसक जन्तुओं से भरे वन में रहता था और सदा पूर्णमेघ के छिद्र देखता रहता था ॥८१॥
तदनन्तर एक मायामयी अश्वसगर चक्रवर्ती को हर ले गया सो वह उसी वन में आया जिसमें कि सहस्रनयन रहता था । सौभाग्य से सहस्रनयन की बहन उत्पलमती ने चक्रवर्ती को देखकर भाई से यह समाचार कहा ॥८२॥
सहस्रनयन यह समाचार सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और उसने उत्पलमती, सगर चक्रवर्ती के लिए प्रदान कर दी । चक्रवर्ती ने भी पूर्णघन को विद्याधरों का राजा बना दिया ॥८३॥
जो छह खण्ड का अधिपति था तथा समस्त राजा जिसका शासन मानते थे ऐसा चक्रवर्ती सगर उस स्त्री को पाकर बहुत भारी सन्तोष को प्राप्त हुआ ॥८४॥
विद्याधरों का आधिपत्य पाकर सहस्रनयन ने पूर्णघन के नगर को चारों ओर से कोट के समान घेर लिया ॥८५॥
तदनन्तर दोनों के बीच मनुष्यों का संहार करनेवाला बहुत भारी युद्ध हुआ जिसमें सहस्रनयन ने पूर्णमेघ को मार डाला ॥८६॥
तदनन्तर पूर्णघन के पुत्र मेघवाहन को शत्रुओं ने चक्रवाल नगर से निर्वासित कर दिया सो वह आकाशरूपी आंगन में भ्रमण करने लगा ॥८७॥
उसे देखकर बहुत-से कुपित विद्याधरों ने उसका पीछा किया सो वह अत्यन्त दुःखी होकर तीन लोक के जीवों को सुख उत्पन्न करने वाले भगवान् अजितनाथ की शरण में पहुँचा ॥८८॥
वहाँ इन्द्र ने उससे भय का कारण पूछा । तब मेघवाहन ने कहा कि हमारे पिता पूर्णघन और सहस्रनयन के पिता सुलोचन में अनेक जीवों का विनाश करने वाला वैर-भाव चला आ रहा था सो उसी संस्कार के दोष से अत्यन्त क्रूर चित्त के धारक सहस्रनयन ने सगर चक्रवर्ती का बल पाकर मेरे बन्धुजनों का क्षय किया है । इस शत्रु ने मुझे भी बहुत भारी त्रास पहुँचाया है सो मैं महल से हंसों के साथ उड़कर शीघ्र ही यहाँ आया हूँ ॥८९-९१॥
तदनन्तर जो राजा मेघवाहन का पीछा कर रहे थे उन्होंने सहस्रनयन से कहा कि वह इस समय भगवान् अजितनाथ के समीप है अत: हम उसे पकड़ नहीं सकते । यह सुनकर सहस्रनयन रोष वश स्वयं ही चला और मन ही मन सोचने लगा कि देखें मुझसे अधिक बलवान् दूसरा कौन है जो इसकी रक्षा कर सके । ऐसा सोचता हुआ वह भगवान के समवसरण में आया ॥९२-९३॥
सहस्रनयन ने ज्यों ही दूर से भगवान का प्रभा-मण्डल देखा त्यों ही उसका समस्त अहंकार चूर-चूर हो गया । उसने भगवान अजितनाथ

को प्रणाम किया । सहस्रनयन और मेघवाहन दोनों ही परस्पर का बैर-भाव छोड़कर भगवान के चरणों के समीप जा बैठे । तदनन्तर गणधर ने भगवान से उन दोनों के पिता का चरित्र पूछा सो भगवान निम्न प्रकार कहने लगे ॥९४-९५॥

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सदृतु नाम का नगर था । उसमें भावन नाम का एक वणिक् रहता था । उसकी आतकी नामक स्त्री और हरिदास नामक पुत्र था । भावन यद्यपि चार करोड द्रव्य का स्वामी था तो भी धन कमाने की इच्छा से देशान्तर की यात्रा के लिए उद्यत हुआ ॥ ९६-९७॥

उसने अपना सब धन धरोहर के रूप में पुत्र के लिए सौंपते हुए, जुआ आदि व्यसनों के छोड़ने की उत्कष्ट शिक्षा दी । उसने कहा कि हे पुत्र! ये जुआ आदि व्यसन समस्त दोषों के कारण हैं इसलिए इनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है ऐसा उपदेश देकर वह भावन नाम का वणिक धन की तृष्णा से जहाज में बैठकर देशान्तर को चला गया ॥९८-९९॥

पिता के चले जाने पर हरिदास ने वेश्या-सेवन, जुआ की आसक्ति तथा मदिरा के अहंकारवश चारों करोड़ द्रव्य नष्ट कर दिया ॥१००॥

इस प्रकार जब वह जुआ में सब कुछ हार गया और अन्य जुवाड़ियो का देनदार हो गया तब वह दुराचारी धन के लिए सुरंग लगाकर राजा के घर में घुसा तथा वहाँ से धन लाकर अपने सब व्यसनों की पूर्ति करने लगा । अथानन्तर कुछ समय बाद जब उसका पिता भावन देशान्तर से घर लौटा तब उसने पुत्र को नहीं देखकर अपनी स्त्री से पूछा कि हरिदास कहां गया है? स्त्री ने उत्तर दिया कि वह इस सुरंग से चोरी करने के लिए गया है ॥१०१-१०३॥

तदनन्तर भावन को शंका हुई कि कहीं इस कार्य में इसका भरण न हो जावे इस शंका से वह चोरी छुड़ाने के लिए घर के भीतर दी हुई सुरंग से चला ॥१०४॥

उधर से उसका पुत्र हरिदास वापस लौट रहा था, सो उसने समझा कि यह कोई मेरा वैरी आ रहा है ऐसा समझकर उस पापी ने बेचारे भावन को तलवार से मार डाला ॥१०५॥

पीछे जब नख, दाढ़ी, मूँछ तथा जटा आदि के स्पर्श से उसे विदित हुआ कि अरे ! यह तो मेरा पिता है, तब वह दु:सह दुःख को प्राप्त हुआ ॥१०६॥

पिता की हत्या कर वह भय से भागा और अनेक देशों में दु:खपूर्वक भ्रमण करता हुआ मरा ॥१०७॥

पिता पुत्र दोनों श्वान हुए, फिर शृगाल हुए, फिर मार्जार हुए, फिर बैल हुए, फिर नेवला हुए, फिर भैंसा हुए और फिर बैल हुए । ये दोनों ही परस्पर में एक दूसरे का घात कर मरे और संसाररूपी वन में भटकते रहे । अन्त में विदेह क्षेत्र की पुष्कलावती नगरी में मनुष्य हुए ॥ १०८-१०९॥

फिर उग्र तपश्चरण कर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग में उत्तर और अनुत्तर नामक देव हुए । वहाँ से आकर जो भावन नाम का पिता था वह पूर्णमेघ विद्याधर हुआ और जो उसका पुत्र था वह सुलोचन नाम का विद्याधर हुआ । इसी वैर के कारण पूर्णमेघ ने सुलोचन को मारा है ॥ ११०-१११॥

गणधर देव ने सहस्रनयन और मेघवाहन को समझाया कि तुम दोनों इस तरह अपने पिताओं के सांसारिक दु:खमय परिभ्रमण को जानकर संसार का कारणभूत वैरभाव छोड़कर साम्यभाव का सेवन करो ॥११२॥

तदनन्तर सगर चक्रवर्ती ने पूछा कि हे भगवन! मेघवाहन और सहस्रनयन का पूर्व जन्म में वैर क्यों हुआ? तब धर्मचक्र के अधिपति भगवान ने उन के वैर का कारण निम्न प्रकार समझाया ॥११३॥

उन्होंने कहा कि जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी पद्मक नामक नगर में गणित शाख का पाठी महाधनवान् रम्भ नाम का एक प्रसिद्ध पुरुष रहता था ॥११४॥

उसके दो शिष्य थे - एक चन्द्र और दूसरा आवलि । ये दोनों ही परस्पर मैत्री भाव से सहित थे । अत्यन्त प्रसिद्ध धनवान और गुणों से युक्त थे ॥११५॥

नीतिशास्त्र में निपुण रम्भ ने यह विचारकर कि यदि ये दोनों परस्पर में मिले रहेंगे तो हमारा पद भंग कर देंगे, दोनों में फूट डाल दी ॥११६॥

एक दिन चन्द्र गाय खरीदना चाहता था सो गोपाल के साथ सलाह कर मूल्य लेने के लिए वह सहज ही अपने घर आया था कि भाग्यवश आवलि उसी गाय को खरीदकर अपने गांव की ओर आ रहा था । बीच में चन्द्र ने क्रोधवश उसे मार डाला । आवलि मरकर म्लेच्छ हुआ ॥

११७-११८॥
और चन्द्र मरकर बैल हुआ सो म्लेच्छ ने पूर्व वैर के कारण उसे मारकर खा लिया ॥११९॥
म्लेच्छ तिर्यंच तथा नरक योनि में भ्रमण कर चूहा हुआ और चन्द्र का जीव बैल मरकर बिलाव हुआ सो बिलाव ने चूहे को मारकर भक्षण किया ॥१२०॥
पाप कर्म के कारण दोनों ही मरकर नरक में उत्पन्न हुए सो ठीक ही है क्योंकि प्राणी संसाररूपी सागर में बहुत भारी दुख पाते ही हैं ॥१२१॥
नरक से निकलकर दोनों ही बनारस में संभ्रमदेव की दासी के कूट और कापंटिक नाम के पुत्र हुए । ये दोनों ही भाई दास थे - दास वृत्ति का काम करते थे सो संभ्रमदेव ने उन्हें जिनमन्दिर मे नियुक्त कर दिया । अन्त में मरकर दोनों ही पुण्य के प्रभाव से रूपानन्द और सुरूप नामक व्यन्तर देव हुए ॥१२२-१२३॥
रूपानन्द चन्द्र का जीव था और सुरूप आवलिका जीव था सो रूपानन्द चय कर रजोवली नगरी में कुलन्धर नाम का कुल पुत्रक हुआ और सुरूप, पुरोहित का पुत्र पुष्पभूति हुआ ॥१२४॥
यद्यपि कुलन्धर और पुष्पभूति दोनों ही मित्र थे तथापि एक हलवाहक के निमित्त से उन दोनों में शत्रुता हो गयी । फलस्वरूप कुलन्धर पुष्पभूति को मारने के लिए प्रवृत्त हुआ ॥१२५॥
मार्ग में उसे एक वृक्ष के नीचे विराजमान मुनिराज मिले सो उनसे धर्म श्रवण कर वह शान्त हो गया । राजा ने उसकी परीक्षा ली और पुण्य के प्रभाव से उसे मण्डलेश्वर बना दिया ॥१२६॥
पुष्पभूति ने देखा कि धर्म के प्रभाव से ही कुलन्धर वैभव को प्राप्त हुआ है इसलिए वह भी जैनी हो गया और मरकर तीसरे स्वर्ग में देव हुआ ॥१२७॥
कुलन्धर भी उसी तीसरे स्वर्ग में देव हुआ । दोनों ही च्युत होकर धातकी-खण्ड द्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में अरिंजय पिता और जयवंती माता के पुत्र हुए । एक का नाम क्रूरामर, का नाम धनश्रुति था । ये दोनों भाई अत्यन्त शूरवीर एवं सहस्र शीर्ष राजा के विश्वासपात्र प्रसिद्ध सेवक हुए॥१२८-१२९॥
किसी एक दिन राजा सहस्र शीर्ष इन दोनों सेवकों के साथ हाथी पकड़ने के लिए वन में गया । वहाँ उसने जन्म से ही विरोध रखनेवाले सिंह-मृगादि जीवों को परस्पर प्रेम करते हुए देखा ॥१३०॥
ये हिंसक प्राणी शान्त क्यों हैं ? इस प्रकार आश्चर्य को प्राप्त हुए राजा सहस्र शीर्ष ने ज्यों ही महावन में प्रवेश किया त्यों ही उसकी दृष्टि महामुनि केवली भगवान के ऊपर पड़ी ॥१३१॥
तदनन्तर राजा सहस्र शीर्ष ने दोनों सेवकों के साथ केवली भगवान के पास दीक्षा धारण कर ली । फलस्वरूप राजा तो मोक्ष को प्राप्त हुआ और क्रूरामर तथा धनश्रुति शतार स्वर्ग गये ॥१३२॥
इनमें चन्द्र का जीव क्रूरामर तो स्वर्ग से चयकर मेघवाहन हुआ है और आवलि का जीव धनश्रुति सहस्रनयन हुआ है । इस प्रकार पूर्वभव के कारण इन दोनों में वैरभाव है ॥१३३॥
तदनन्तर सगर चक्रवर्ती ने भगवान से पूछा कि हे प्रभो! सहस्रनयन में मेरी अधिक प्रीति है सो इसका क्या कारण है? उत्तर में भगवान ने कहा कि जो रम्भ नामा गणित शास्त्र का पाठी था वह मुनियों को आहारदान देने के कारण देव-कुल में आर्य हुआ, फिर सौधर्म-स्वर्ग गया, वहाँ से च्युत होकर चन्द्रपुर नगर में राजा हरि और धरा नाम की रानी के व्रतकीर्तन नाम का प्यारा पुत्र हुआ । वह मुनिपद धारण कर स्वर्ग गया, वहाँ से च्युत होकर पश्चिम विदेह क्षेत्र के रत्नसंचय नगर में राजा महाघोष और चन्द्रिणी नाम की रानी के पयोबल नाम का पुत्र हुआ । वह मुनि होकर प्राणत नामक चौदहवें स्वर्ग में देव हुआ ॥१३४-१३७॥
वहाँ से च्युत होकर भरत क्षेत्र के पृथिवीपुर नगर में राजा यशोधर और जया नाम की रानी के जयकीर्तन नाम का पुत्र हुआ ॥१३८॥
वह पिता के निकट जिन-दीक्षा ले, विजय विमान में उत्पन्न हुआ और वहाँ से चय कर तू सगर चक्रवर्ती हुआ है ॥१३९॥
जब तू रम्भ था तब आवलि के साथ तेरा बहुत स्नेह था । अब आवलि ही सहस्रनयन हुआ है । इसलिए पूर्व संस्कार के कारण अब भी तेरा उसके साथ गाढ़ स्नेह है ॥१४०॥

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के मुख से अपने तथा पिता के भवान्तर जानकर मेघवाहन और सहस्त्राक्ष दोनों को धर्म में बहुत भारी रुचि उत्पन्न हुई ॥१४१॥

उस धार्मिक रुचि के कारण दोनों को जाति-स्मरण भी हो गया । तदनन्तर श्रद्धा से भरे मेघवाहन और सहस्रनयन अजितनाथ भगवान की इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥१४२॥

हे भगवन्! जो बुद्धि से रहित हैं तथा जिनका कोई नाथ-रक्षक नहीं है ऐसे संसारी प्राणियों का आप बिना कारण ही उपकार करते हैं इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है ॥१४३॥

आपका रूप उपमा से रहित है तथा आप अतुल्य वीर्य के धारक हैं । हे नाथ! इन तीनों लोकों में ऐसा कौन पुरुष है जो आपके दर्शन से सन्तृप्त हुआ हो ॥१४४॥

हे भगवन्! यद्यपि आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, कृतकृत्य हैं, सर्वदर्शी हैं, सुखस्वरूप हैं, अचिन्त्य हैं, और जानने योग्य समस्त पदार्थों को जान चुके हैं तथापि जगत् का हित करने के लिए उद्यत हैं ॥१४५॥

हे जिनराज! संसाररूपी अन्धकूप में पड़ते हुए जीवों को आप श्रेष्ठ धर्मोपदेशरूपी हस्तावलम्बन प्रदान करते हैं ॥१४६॥

इस प्रकार जिनकी वाणी गद्गद हो रही थी और नेत्र आँसुओं से भर रहे थे ऐसे परम हर्ष को प्राप्त हुए मेघवाहन और सहस्रनयन विधिपूर्वक स्तुति और नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥१४७॥

सिंहवीर्य आदि मुनि, इन्द्र आदि देव और सगर आदि राजा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥१४८॥

अथानन्तर-जिनेन्द्र भगवान के समवसरण में राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम प्रसन्न होकर मेघवाहन से कहने लगे कि हे विद्याधर के बालक! तू धन्य है जो सर्वज्ञ अजित जिनेन्द्र की शरण में आया है, हम दोनों तुझ पर सन्तुष्ट हुए हैं अत: जिससे तेरी सर्वप्रकार से स्वस्थता हो सकेगी वह बात हम तुझसे इस समय कहते हैं सो तू ध्यान से सुन, तू हम दोनों की रक्षा का पात्र है ॥१४९-१५१॥

बहुत भारी मगरमच्छों से भरे हुए इस लवणसमुद्र में अत्यन्त दुर्गम्य तथा अतिशय सुन्दर हजारों महाद्वीप हैं ॥१५२॥

उन महा द्वीपों में कहीं गन्धर्व, कहीं किन्नरों के समूह, कहीं यक्षों के झुण्ड और कहीं पुरुष देव क्रीड़ा करते हैं ॥१५३॥

उन द्वीपों के बीच एक ऐसा द्वीप है जो राक्षसों की शुभ क्रीड़ा का स्थान होने से राक्षस द्वीप कहलाता है और सात सौ योजन लम्बा तथा उतना ही चौड़ा है ॥११४॥

उस राक्षस द्वीप के मध्य में मेरु पर्वत के समान त्रिकूटाचल नामक विशाल पर्वत है । वह पर्वत अत्यन्त दु:प्रवेश है और उत्तमोत्तम गुहारूपी गृहों से सबको शरण देने वाला है ॥१५५॥

उसकी शिखर सुमेरु पर्वत की चूलिका के समान महामनोहर है, वह नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१५६॥

उसके सुवर्णमय किनारे नाना प्रकार के रत्नों की कान्ति के समूह से सदा आच्छादित रहते हैं तथा नाना प्रकार की लताओं से आलिंगित कल्पवृक्ष वहाँ संकीर्णता करते रहते हैं ॥१५७॥

उस त्रिकूटाचल के नीचे तीस योजन विस्तार वाली लंका नगरी है, उसमें राक्षस वंशियों का निवास है, और उसके महल नाना प्रकार के रत्नों एवं सुवर्ण से निर्मित हैं ॥१५८॥

मन को हरण करने वाले बागबगीचों, कमलों से सुशोभित सरोवरों और बड़े-बड़े जिन-मन्दिरों से वह नगरी इन्द्रपुरी के समान जान पड़ती है ॥१५९॥

वह लंका नगरी दक्षिण दिशा की मानो आभूषण ही है । हे विद्याधर! तू अपने बन्धुवर्ग के साथ उस नगरी में जा और सुखी हो ॥१६०॥

ऐसा कहकर राक्षसों के इन्द्र भीम ने उसे देवाधिष्टित एक हार दिया । वह हार अपनी करोड़ों किरणों से चांदनी उत्पन्न कर रहा था ॥१६१॥

जन्मान्तर सम्बन्धी पुत्र की प्रीति के कारण उसने वह हार दिया था और कहा था कि हे विद्याधर! तू चरमशरीरी तथा युग का श्रेष्ठ पुरुष है इसलिए तुझे यह हार दिया है ॥१६२॥

उस हार के सिवाय उसने पृथ्वी के भीतर छिपा हुआ एक ऐसा प्राकृतिक नगर भी दिया जो छह योजन गहरा तथा एक सौ साढ़े इकतीस योजन और डेढ़ कला प्रमाण चौड़ा था ॥१६३॥

उस नगर में शत्रुओं का शरीर द्वारा प्रवेश करना तो दूर रहा मन से भी प्रवेश करना अशक्य था । उसमें बड़े-बड़े महल थे, अलंकारोदय

उसका नाम था और शोभा से वह स्वर्ग के समान जान पड़ता था ॥१६४॥
यदि तुझ पर कदाचित् परचक्र का आक्रमण हो तो इस नगर में खड्ग का आश्रय ले सुख से रहना । यह तेरी वंश परम्परा के लिए रहस्य-सुरक्षित स्थान है ॥१६५॥
इस प्रकार राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीमने पूर्णघन के पुत्र मेघवाहन से कहा जिसे सुनकर वह परम हर्ष को प्राप्त हुआ । वह अजितनाथ भगवान को नमस्कार कर उठा ॥१६६॥
राक्षसों के इन्द्र भीम ने उसे राक्षसी विद्या दी । उसे लेकर इच्छानुसार चलने वाले कामग नामक विमान पर आरूढ़ हो वह लंकापुरी की और चला ॥१६७॥
राक्षसों के इन्द्र ने इसे वरदान स्वरूप लंका नगरी दी है यह जानकर मेघवाहन के समस्त भाई बान्धव इस प्रकार हर्ष को प्राप्त हुए जिस प्रकार कि प्रातःकाल के समय कमलों के समूह विकास भाव को प्राप्त होते हैं ॥१६८॥
विमल, अमल, कान्त आदि अनेक विद्याधर परम प्रसन्न वैभव के साथ शीघ्र ही उसके समीप आये और अनेक प्रकार के मीठे-मीठे शब्दों से उसका अभिनन्दन करने लगे ॥१६९॥
सन्तोष से भरे भाई-बन्धुओं से वेष्टित होकर मेघवाहन ने लंका की ओर प्रस्थान किया । उस समय कितने ही विद्याधर उसकी बगल में चल रहे थे, कितने ही पीछे चल रहे थे, कितने ही आगे जा रहे थे, कितने ही हाथियों की पीठ पर सवार होकर चल रहे थे, कितने ही घोड़ों पर आरूढ़ होकर चल रहे थे, कितने ही जय-जय शब्द कर रहे थे, कितने ही दुन्दुभियों का मधुर शब्द कर रहे थे, कितने ही लोगों पर सफेद छत्रों से छाया हो रही थी तथा कितने ही ध्वजाओं और मालाओं से सुशोभित थे। पूर्वोक्त विद्याधरों में कोई तो मेघवाहन को आशीर्वाद दे रहे थे और कोई नमस्कार कर रहे थे । उन सबके साथ आकाश में चलते हुए मेघवाहन ने लवणसमुद्र देखा ॥१७०-१७२॥
वह लवणसमुद्र आकाश के समान विस्तृत था, पाताल के समान गहरा था, तमालवन के समान श्याम था और लहरों के समूह से व्याप्त था ॥ १७३॥
मेघवाहन के समीप चलने वाले लोग कह रहे थे कि देखो यह जल के बीच पर्वत दीख रहा है, यह बड़ा भारी मकर छलांग भर रहा है और इधर यह बृहदाकार मच्छ चल रहा है ॥१७४॥
इस प्रकार समुद्र की शोभा देखते हुए मेघवाहन ने त्रिकूटाचल के शिखर के नीचे स्थित लंकापुरी में प्रवेश किया । वह लंका बहुत भारी प्राकार और गोपुरों से सुशोभित थी, अपनी लाल-कान्ति के द्वारा सन्ध्या के समान आकाश को लिप्त कर रही थी, कुन्द के समान सफेद, ऊँचे पताकाओं से सुशोभित, कोट और तोरणों से युक्त जिनमन्दिरों से मण्डित थी । लंकानगरी में प्रविष्ट हो सर्वप्रथम उसने जिनमदिंर में जाकर जिनेन्द्रदेव की वन्दना की और तदनन्तर मंगलोपकरणों से युक्त अपने योग्य महल में निवास किया ॥१७५-१७७॥
रत्नों की शोभा से जिनके नेत्र और नेत्रों की पंक्तियाँ आकर्षित हो रही थीं ऐसे अन्य भाई-बन्धु भी यथायोग्य महलों में ठहर गये ॥१७८॥
अथानन्तर -- किन्नरगीत नामा नगर में राजा रतिमयूख और अनुमति नामक रानी के सुप्रभा नामक कन्या थी। वह कन्या नेत्र और मन को चुराने वाली थी, काम की वसतिका थी, लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी को विकसित करने के लिए चाँदनी के समान थी, लावण्यरूपी जल की वापिका थी , और समस्त इन्द्रियों को हर्ष उत्पन्न करने वाली थी । राजा मेघवाहन ने बड़े वैभव से उसके साथ विवाह किया ॥१७९-१८१॥
तदनन्तर समस्त विद्याधर लोग जिसकी आज्ञा को सिर पर धारण करते थे ऐसा मेघवाहन लंकापुरी में चिरकाल तक इस प्रकार रहता रहा जिस प्रकार कि इन्द्र स्वर्ग में रहता है ॥१८२॥
कुछ समय बाद पुत्रजन्म की इच्छा करने वाले राजा मेघवाहन के पुत्र उत्पन्न हुआ। कुल-परम्परा के अनुसार महारक्ष इस नाम को प्राप्त हुआ ॥१८३॥
किसी एक दिन राजा मेघवाहन वन्दना के लिए अजितनाथ भगवान् के समवसरण में गया। वहाँ वन्दना कर बड़ी विनय से अपने योग्य स्थान पर बैठ गया ॥१८४॥
वहाँ जब चलती हुई अन्य कथा पूर्ण हो चुकी तब सगर चक्रवर्ती ने हाथ मस्तक से लगा नमस्कार कर अजितनाथ जिनेन्द्र से पूछा ॥१८५॥
कि हे भगवन् ! इस अवसर्पिणी काल में आगे चलकर आपके समान धर्मचक्र के स्वामी अन्य कितने तीर्थंकर होंगे॥१८६॥
और तीनों जगत के जीवों को सुख देने वाले कितने तीर्थंकर पहले हो चुके हैं? यथार्थ में आप जैसे मनुष्यों की उत्पत्ति तीनों लोकों में

आश्चर्य उत्पन्न करने वाली है ॥१८७॥
चौदह रत्न और सुदर्शन चक्र से चिह्नित लक्ष्मी के धारक चक्रवर्ती कितने होंगे? इसी तरह बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण भी कितने होंगे ॥१८८॥
इस प्रकार सगर चक्रवर्ती के पूछने पर भगवान् अजितनाथ निम्नांकित वचन बोले। उसके वे वचन देव-दुन्दुभि के गम्भीर शब्द का तिरस्कार कर रहे थे तथा कानों के लिए परम आनन्द उत्पन्न करने वाले थे ॥१८९॥
भगवान् की भाषा अर्धमागधी भाषा थी और बोलते समय उनके ओठों को चंचल नहीं कर रही थी। यह बड़े आश्चर्य की बात थी ॥१९०॥
उन्होंने कहा कि हे सगर। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने वाले चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं॥१९१॥
जिस समय यह समस्त संसार मोहरूपी गाढ़ अन्धकार से व्याप्त था, धर्म की चेतना से शून्य था, समस्त पाखण्डों का घर और राजा से रहित था उस समय राजा नाभि के पुत्र ऋषभदेव नामक प्रथम तीर्थंकर हुए थे, हे राजन् ! सर्वप्रथम उन्हीं के द्वारा इस कृत युग की स्थापना हुई थी ॥१९२-१९३॥
उन्होंने क्रियाओं में भेद होने से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की कल्पना की थी। उनके समय में मेघों के जल से धान्यों की उत्पत्ति हुई थी ॥१९४॥
उन्हीं के समय उनके समान तेज के धारक भरतपुत्र ने यज्ञोपवीत को धारण करने वाले ब्राह्मणों की भी रचना की थी ॥१९५॥
सागार और अनगार के भेद से दो प्रकार के आश्रम भी उन्हीं के समय उत्पन्न हुए थे। समस्त विज्ञान और कलाओं के उपदेश भी उन्हीं भगवान् ऋषभदेव के द्वारा दिये गये थे ॥१९६॥
दीक्षा लेकर भगवान् ऋषभदेव ने अपना कार्य किया और जन्म सम्बन्धी दु:खाग्नि से पीड़ित अन्य भव्य-जीवों को शान्तिरूप जल के द्वारा सुख प्राप्त कराया ॥१९७॥
तीन-लोक के जीव मिलकर इकट्ठे हो जावें तो भी आत्मतेज के सुशोभित भगवान् ऋषभदेव के अनुपम गुणों का अन्त प्राप्त करने के लिए समर्थ नहीं हो सकते ॥१९८॥
शरीर त्याग करने के लिए जब भगवान् ऋषभदेव जब कैलास पर्वत पर आरूढ़ हुए थे तब आश्चर्य से भरे सुर और असुरों ने उन्हें सुवर्णमय शिखर के समान देखा था ॥१९९॥
उनकी शरण में जाकर महाव्रत धारण करने वाले कितने ही भरत आदि मुनि निर्वाण धाम को प्राप्त हुए हैं ॥२००॥
कितने ही पुण्य उपार्जन कर स्वर्ग सुख को प्राप्त हैं, और स्वभाव से ही सरलता को धारण करने वाले कितने ही लोग उत्कृष्ट मनुष्य पद को प्राप्त हुए हैं ॥२०१॥
यद्यपि उनका मत अत्यन्त उज्ज्वल था तो भी मिथ्यादर्शनरूपी राग से युक्त मनुष्य उसे उस तरह नहीं देख सके थे जिस तरह कि उल्लू सूर्य को नहीं देख सकते हैं ॥२०२॥
ऐसे मिथ्यादृष्टि लोग कुधर्म की श्रद्धा कर नीचे देवों में उत्पन्न होते हैं। फिर तिर्यंचों में दुष्ट चेष्टाएँ कर नरकों में भ्रमण करते हैं ॥२०३॥
तदनन्तर बहुत काल व्यतीत हो जाने पर समुद्र के समान गम्भीर ऋषभदेव का युग (तीर्थ) विच्छिन्न हो गया और धार्मिक उत्सव नष्ट हो गया तब सर्वाथसिद्धि से चयकर फिर से कृतयुग की व्यवस्था करने के लिए जगत् का हित करने वाला मैं दूसरा अजितनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुआ हूँ ॥२०४-२०५॥
जब आचार के विघात और मिथ्यादृष्टियों के वैभव से समीचीन धर्म ग्लानि को प्राप्त हो जाता है -- प्रभावहीन होने लगता है तब तीर्थंकर उत्पन्न होकर उसका उद्योत करते हैं ॥२०६॥
संसार के प्राणी उत्कृष्ट बन्धुस्वरूप समीचीन धर्म को पुन: प्राप्त कर मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं और मोक्ष स्थान की ओर गमन करने लगते हैं (विच्छिन्न मोक्षमार्ग फिर से चालू हो जाता है) ॥२०७॥
तदनन्तर जब मैं मोक्ष चला जाऊँगा तब क्रम से तीनों लोकों का उद्योत करने वाले बाईस तीर्थंकर और उत्पन्न होंगे ॥२०८॥
वे सभी तीर्थंकर मेरे ही समान कान्ति, वीर्य आदि से विभूषित होंगे, मेरे ही समान तीन-लोक के जीवों से पूजा को प्राप्त होंगे और मेरे ही समान ज्ञानदर्शन के धारक होंगे ॥२०९॥

उन तीर्थंकरों में तीन तीर्थंकर (शान्ति, कुन्थु, अर) चक्रवर्ती की लक्ष्मी का उपभोग कर अनन्त सुख का कारण ज्ञान का साम्राज्य प्राप्त करेंगे ॥२१०॥

अब मैं उन सभी महापुरुषों के नाम कहता हूँ। उनके ये नाम तीनों जगत् में मंगलस्वरूप हैं तथा हे राजन् सगर ! तेरे मन की शुद्धता करने वाले हैं ॥२११॥

पुरुषों में श्रेष्ठ ऋषभनाथ प्रथम तीर्थंकर थे जो हो चुके हैं, मैं अजितनाथ वर्तमान तीर्थंकर हूँ और बाकी बाईस तीर्थंकर भविष्यवत् तीर्थंकर हैं ॥२१२॥

मुक्ति के कारण सम्भवनाथ, भव्य जीवों को आनन्दित करने वाले अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले पुष्पदन्त, शील के सागरस्वरूप शीतलनाथ, उत्तम चेष्टाओं के द्वारा कल्याण करने वाले श्रेयोनाथ, सत्पुरुषों के द्वारा पूजित वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, सुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और जिनमार्ग के धुरन्दर वीरनाथ। ये इस अवसर्पिणी युग के चौबीस तीर्थंकर हैं। ये सभी देवाधिदेव और जीवों का कल्याण करने वाले होंगे ॥२१३-२१६॥

इन सभी का जन्मावतरण रत्नों की वर्षा से अभिनन्दित होगा तथा देव लोग क्षीरसागर के जल से सुमेरु-पर्वत पर सबका जन्माभिषेक करेंगे ॥२१७॥

इन सभी का तेज, रूप, सुख और बल उपमा से रहित होगा और सभी इस संसार में जन्मरूपी शत्रु का विध्वंस करने वाले होंगे (मोक्षमार्गी होंगे) ॥२१८॥

जब महावीररूपी सूर्य अस्त हो जायेगा तब इस संसार में बहुत से पाखण्डीरूपी जुगनू तेज को प्राप्त करेंगे ॥२१९॥

वे पाखण्ड पुरुष इस चतुर्गतिरूप संसार कूप में स्वयं गिरेंगे तथा मोह से अन्धे अन्य प्राणियों को भी गिरावेंगे ॥२२०॥

तुम्हारे समान चंक्राकित लक्ष्मी का अधिपति एक चक्रवर्ती तो हो चुका है, अत्यन्त शक्तिशाली द्वितीय चक्रवर्ती तुम हो और तुम दो के सिवाय दस चक्रवर्ती और होंगे ॥२२१॥

चक्रवर्तियों में प्रथम चक्रवर्ती भरत हो चुके हैं, द्वितीय चक्रवर्ती सगर तुम विद्यमान ही हो और तुम दो के सिवाय चक्रचिह्नित भोगों के स्वामी निम्नांकित दस चक्रवर्ती राजा और भी होंगे ॥२२२॥

३ सनन्तकुमार, ४ मधवा, ५ शान्ति, ६ कुन्थु, ७ अर, ८ सुभूम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जयसेन और १२ ब्रह्मदत्त ॥२२३॥

नौ प्रतिनारायणों के साथ नौ नारायण होंगे और धर्म में जिनका चित्त लग रहा है ऐसे बलभद्र भी नौ होंगे ॥२२४-२२५॥

हे राजन् ! जिस प्रकार हमने अवसर्पिणी काल में होने वाले तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि का वर्णन किया है उसी प्रकार के तीर्थंकर आदि उत्सर्पिणी काल में भी भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में होंगे ॥२२६॥

इस प्रकार कर्मों के वश होनेवाला जीवों का संसारभ्रमण, महापुरुषों की उत्पत्ति, कालचक्र का परिवर्तन और आठ कर्मों से रहित जीवों को होने वाला अनुपम सुख इन सबका विचारकर बुद्धिमान् मेघवाहन ने अपने मन में निम्न विचार किया ॥२२७-२२८॥

हाय-हाय, बड़े दु:ख की बात है कि जिन कर्मों के द्वारा यह जीव आताप को प्राप्त होता है, कर्मरूपी मदिरा से उन्मत्त हुआ यह उन्हीं कर्मों को करने के लिए उत्साहित होता है ॥२२९॥

जो प्रारम्भ में ही मनोहर दिखते हैं और अन्त में विष के समान दु:ख देते हैं अथवा दु:ख उत्पन्न करना ही जिनका स्वभाव है। ऐसे विषयों में क्या प्रेम करना है? ॥२३०॥

यह जीव धन, स्त्रियों तथा भाई-बन्धुओं का चिरकाल तक संग करता है तो भी संसार में इसे अकेले ही भ्रमण करना पड़ता है ॥२३१॥

जिस प्रकार कुत्ते के पिल्ले को जब तक रोटी का टुकड़ा देते रहते हैं तभी तक वह प्रेम करता हुआ पीछे लगा रहता है इसी प्रकार इन संसार के सभी प्राणियों को जब तक कुछ मिलता रहता है तभी तक ये प्रेमी बनकर अपने पीछे लगे रहते हैं ॥२३२॥

इतना भारी काल बीत गया पर इसमें कौन मनुष्य ऐसा है जो भाई-बन्धुओं, स्त्रियों, मित्रों तथा अन्य इष्ट-जनों के साथ परलोक को गया हो ॥२३३॥

ये पंचेन्द्रियों के भोग साँप के शरीर के समान भयंकर एवं नरक में गिराने वाले हैं। ऐसा कौन सचेतन (विचारक) पुरुष है जो कि इन

विषयों में आसक्ति करता हो? ॥२३४॥
अहो, सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि जो मनुष्य लक्ष्मी का सद्भावना से आश्रय लेते हैं यह लक्ष्मी उन्हें ही धोखा देती है (ठगती है), इससे बढ़कर दुष्टता और क्या होगी? ॥२३५॥
जिस प्रकार स्वप्न में होने वाला इष्ट जनों का समागम अस्थायी है उसी प्रकार बन्धुजनों का समागम भी अस्थायी है। तथा बन्धुजनों के समागम से जो सुख होता है वह इन्द्रधनुष के समान क्षणमात्र के लिए ही होता है ॥२३६॥
शरीर पानी के बबूले के समान सार से रहित है तथा यह जीवन बिजली की चमक के समान चंचल है ॥२३७॥
इसलिए संसार-निवास के कारणभूत इस समस्त परिकर को छोड़कर मैं तो कभी धोखा नहीं देने वाले एक धर्मरूप सहायक को ही ग्रहण करता हूँ ॥२३८॥
तदनन्तर ऐसा विचारकर वैराग्यरूपी कवच को धारण करने वाले बुद्धिमान् मेघवाहन विद्याधर ने महाराक्षस नामक पुत्र के लिए राज्यभार सौंपकर अजितनाथ भगवान् के समीप दीक्षा धारण कर ली ॥२३९॥
राजा मेघवाहन के साथ अन्य एक सौ दस विद्याधर भी वैराग्य प्राप्त कर घररूपी बन्दीगृह से बाहर निकले ॥२४०॥
इस महाराक्षसरूपी चन्द्रमा भी दानरूपी किरणों के समूह से बन्धुजनरूपी समुद्र को हुलसाता हुआ लंकारूपी आकाशांगण के बीच सुशोभित होने लगा ॥२४१॥
उसका ऐसा प्रभाव था कि बड़े-बड़े विद्याधरों के अधिपति स्वप्न में भी उसकी आज्ञा प्राप्त कर हड़बड़ाकर जाग उठते थे और हाथ जोड़कर मस्तक से लगा लेते थे ॥२४२॥
उसकी विमलाभा नाम की प्राणप्रिया वल्लभा थी जो छाया के समान सदा उसके साथ रहती थी ॥२४३॥
उसके अमररक्ष, उदधिरक्ष और भानुरक्ष नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों ही पुत्र सब प्रकार के **अर्थ**ों से परिपूर्ण थे ॥२४४॥
विचित्र-विचित्र कार्यों से युक्त थे, उत्तुंग **अर्थ**ात् उदार थे और जन-धन से विस्तार को प्राप्त थे इसलिए ऐसे जान पड़ते मानो तीन लोक ही हों ॥२४५॥
भगवान् अजितनाथ भी मुक्तिगामी भव्य-जीवों को मोक्ष का मार्ग प्रवर्ताकर सम्मेद-शिखर पर पहुँचे और वहाँ से आत्मस्वभाव को प्राप्त हुए (सिद्ध पद को प्राप्त हुए) ॥२४६॥
सगर चक्रवर्ती के इन्द्राणी के समान तेज को धारण करने वाली छयानवे हजार रानियाँ थीं और उत्तम शक्ति को धारण करने वाले एवं रत्नमयी खम्भों के समान देदीप्यमान साठ हजार पुत्र थे। उन पुत्रों के भी अनेक पुत्र थे॥२४७-२४८॥
किसी समय वे सभी पुत्र वन्दना के लिए कैलास पर्वत पर गये । उस समय वे चरणों के विक्षेप से पृथिवी को कंपा रहे थे और पर्वतों के समान जान पड़ते थे ॥२४९॥
कैलास पर्वत पर स्थित सिद्ध प्रतिमाओं की उन्होंने बड़ी विनय से वन्दना की और तदनन्तर वे दण्ड रत्न से उस पर्वत के चारों ओर खाई खोदने लगे ॥२५०॥
उन्होंने दण्ड रत्न से पाताल तक गहरी पृथिवी खोद डाली यह देख नागेन्द्र ने क्रोध से प्रज्वलित हो उनकी ओर देखा ॥२५१॥
नागेन्द्र की क्रोधाग्नि की ज्वालाओं से जिनका शरीर व्याप्त हो गया था ऐसे वे चक्रवर्ती के पुत्र भस्मी भूत हो गये ॥२५२॥
जिस प्रकार विष की मारक शक्ति के बीच एक जीवक शक्ति भी होती है और उसके प्रभाव से वह कभी-कभी औषधि के समान जीवन का भी कारण बन जाती है इसी प्रकार उस नागेन्द्र की क्रोधाग्नि में भी जहाँ जलाने की शक्ति थी वहाँ एक अनुकम्पारूप परिणति भी थी । उसी अनुकम्पारूप परिणति के कारण उन पुत्रों के बीच में भीम, भगीरथ नामक दो पुत्र किसी तरह भस्म नहीं हुए ॥२५३॥
सगर चक्रवर्ती के पुत्रों की इस आकस्मिक मृत्यु को देखकर वे दोनों ही दुःखी होकर सगर के पास आये ॥२५४॥
सहसा इस समाचार के कहने पर चक्रवर्ती कहीं प्राण न छोड़ दें ऐसा विचारकर पण्डितजनों ने भीम और भगीरथ को यह समाचार चक्रवर्ती से कहने के लिए मना कर दिया ॥२५५॥
तदनन्तर राजा, कुल क्रमागत मन्त्री, नाना शास्त्रों के पारगामी और विनोद के जानकार विद्वज्जन एकत्रित होकर चक्रवर्ती के पास गये । उस समय उन सबके मुख की कान्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं था तथा वेशभूषा भी सबकी पहले के ही समान थी । सब लोग

विनय से जाकर पहले ही के समान चक्रवर्ती सगर के समीप पहुँचे ॥२५६-२५७॥
नमस्कार कर सब लोग जब यथास्थान बैठ गये तब उनके संकेत से प्रेरित हो एक वृद्धजन ने निम्नांकित वचन कहना शुरू किया ॥२५८॥
हे राजन् सगर ! आप संसार की इस अनित्यता को तो देखो जिसे देखकर फिर संसार की ओर मन प्रवृत्त नहीं होता ॥२५९॥
पहले तुम्हारे ही समान पराक्रम का धारी राजा भरत हो गया है जिसने इस छह खण्ड की पृथ्वी को दासी के समान वश कर लिया था ॥२६०॥
उसके महापराक्रमी अर्ककीर्ति नामक ऐसा पुत्र हुआ था कि जिसके नाम से यह सूर्यवंश अब तक चल रहा है ॥२६१॥
अर्ककीर्ति के भी पुत्र हुआ और उसके पुत्र को भी पुत्र हुआ परन्तु इस समय वे सब दृष्टिगोचर नहीं हैं ॥२६२॥
अथवा इन सबको रहने दो, स्वर्गलोक के अधिपति भी जो कि वैभव से देदीप्यमान रहते हैं क्षणभर में दुःख से भस्म हो जाते हैं ॥२६३॥
अथवा इन्हें भी जाने दो, तीनलोक को आनन्दित रहनेवाले जो तीर्थकर हैं वे भी आयु समाप्त होने पर शरीर को छोड़कर चले जाते हैं ॥२६४॥
जिस प्रकार पक्षी, रात्रि के समय किसी बड़े-वृक्ष पर बसकर प्रातःकाल दसों दिशाओं में चले जाते हैं उसी प्रकार अनेक प्राणी एक कुटुम्ब में एकत्रित होकर कर्मों के अनुसार फिर अपनी गति को चले जाते हैं ॥२६५-२६६॥
किन्हीं ने उन पूर्व पुरुषों की चेष्टाएँ तथा उनका अत्यन्त सुन्दर शरीर अपनी आंखों से देखा है परन्तु हम कथामात्र से उन्हें जानते हैं ॥२६७॥
मृत्यु सभी बलवानों से अधिक बलवान् है क्योंकि इसने अन्य सभी बलवानों को परास्त कर दिया है ॥२६८॥
अहो! यह बड़ा आश्चर्य है कि भरत आदि महापुरुषों के विनाश का स्मरण कर हमारी छाती नहीं फट रही है ॥२६९॥
जीवों की धनसम्पदाएँ, इष्ट समागम और शरीर, फेन, तरंग, इन्द्रधनुष, स्वप्न, बिजली और बबूला के समान हैं ॥२७०॥
संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो इस विषय में उपमान हो सके कि जिस तरह यह अमर है उसी तरह हम भी अमर रहेंगे ॥२७१॥
जो मगरमच्छों से भरे समुद्र को सुखाने के लिए समर्थ हैं अथवा अपने दोनों हाथों से सुमेरु पर्वत को चूर्ण करने में समर्थ हैं अथवा पृथ्वी को ऊपर उठाने में और चन्द्रमा तथा सूर्य को ग्रसने में समर्थ हैं वे मनुष्य भी काल पाकर यमराज के मुख में प्रविष्ट हुए हैं ॥२७२-२७३॥
तीनों लोकों के प्राणी इस दुर्लघनीय मृत्यु के वश हो रहे हैं । यदि कोई बाकी छूटे हैं तो जिनधर्म से उत्पन्न हुए सिद्ध भगवान् ही छूटे हैं ॥२७४॥
जिस प्रकार बहुत से राजा काल के द्वारा विनाश को प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार हम लोग भी विनाश को प्राप्त होंगे । संसार का यह सामान्य नियम है ॥२७१॥
जो मृत्यु तीन लोक के जीवों को समान रूप से आती है उसके प्राप्त होने पर ऐसा कौन विवेकी पुरुष होगा जो संसार के कारणभूत शोक को करेगा ॥२७६॥
इस प्रकार वृद्ध मनुष्य के द्वारा यह चर्चा चल रही थी इधर चेष्टाओं के जानने में निपुण चक्रवर्ती ने सामने सिर्फ दो पुत्र देखे । उन्हें देखकर वह मन में विचार करने लगा ॥२७७॥
हमेशा सब पुत्र मे एक साथ नमस्कार करते थे पर आज दो ही पुत्र दिख रहे हैं और उतने पर भी इनके मुख अत्यन्त दीन दिखाई देते हैं । जान पड़ता है कि शेष पुत्र क्षय को प्राप्त हो चुके हैं ॥२७८॥
ये आगत राजा लोग इस भारी दुःख को साक्षात् कहने में समर्थ नहीं है इसलिए अन्योक्ति-दूसरे के बहाने कह रहे हैं ॥२७९॥
तदनन्तर सगर चक्रवर्ती यद्यपि शोक रूपी सर्प से डसा गया था तो भी सभासद जनों के वचनरूपी मन्त्रों से प्रतिकार-सान्तवना पाकर उसने प्राण नहीं छोड़े थे ॥२८०॥
उसने संसार के सुख को केले के गर्भ के समान निसार जानकर भगीरथ को राज्य लक्ष्मी सौंपी और स्वयं दीक्षा धारण कर ली ॥२८१॥
उत्कृष्ट लीला को धारण करनेवाला राजा सगर जब इस पृथ्वी का त्याग कर रहा था तब नाना नगर और सुवर्णादि की खानों से सुशोभित यह पृथ्वी उसके मन में जीर्णतृण के समान तुच्छ जान पड़ती थी ॥२८२॥
तदनन्तर सगर चक्रवर्ती भीमरथ नामक पुत्र के साथ अजितनाथ भगवान की शरण में गया । वहाँ दीक्षा धारण कर उसने केवलज्ञान प्राप्त

किया और तदनन्तर सिद्धपद का आश्रय लिया (मुक्त हुआ) ॥२८३॥
सगर चक्रवर्ती का पुत्र जह्नु का लड़का भगीरथ राज्य करने लगा । किसी एक दिन उसने श्रुतसागर मुनिराज से पूछा ॥२८४॥
कि हमारे बाबा सगर के पुत्र एक साथ किस कर्म के उदय से मरण को प्राप्त हुए हैं और उनके बीच में रहता हुआ भी मैं किस कर्म से बच गया हूँ ॥२८५॥
भगवान् अजितनाथ ने कहा कि एक बार चतुर्विध संघ सम्मेदशिखर की वन्दना के लिए जा रहा था सो मार्ग में वह अन्तिक नामक ग्राम में पहुँचा ॥२८६॥
संघ को देखकर उस अन्तिक ग्राम के सब लोग कुवचन कहते हुए संघ की हँसी करने लगे परन्तु उस ग्राम में एक कुम्भकार था उसने गाँव के सब लोगों को मना कर संघ की स्तुति की ॥२८७॥
उस गाँव में रहने वाले एक मनुष्य ने चोरी की थी सो अविवेकी राजा ने सोचा कि यह गाँव ही बहुत अपराध करता है इसलिए घेरा डालकर सारा का सारा गाँव जला दिया ॥२८८॥
जिस दिन वह गाँव जलाया गया था उस दिन मध्यस्थ परिणामों का धारक कुम्भकार निमन्त्रित होकर कहीं बाहर गया था ॥२८९॥
जब कुम्भकार मरा तो वह बहुत भारी धन का अधिपति वैश्य हुआ और गाँव के सब लोग मरकर कौड़ी हुए । वैश्य ने उन सब कौड़ियों को खरीद लिया ॥२९०॥
तदनन्तर कुम्भकार का जीव मरकर राजा हुआ और गाँव के जीव मरकर गिंजाई हुए सो राजा के हाथी से चूर्ण होकर वे सब गिंजाइयो के जीव संसार में भ्रमण करते रहे ॥२९१॥
कुम्भकार के जीव राजा ने मुनि होकर देवपद प्राप्त किया और वहाँ से च्युत होकर तू भगीरथ हुआ है तथा गाँव के सब लोग मरकर सगर चक्रवर्ती के पुत्र हुए हैं ॥२९२॥
मुनि संघ की निन्दा कर यह मनुष्य भव-भव में मृत्यु को प्राप्त होता है । इसी पाप से गाँव के सब लोग भी एक साथ मृत्यु को प्राप्त हुए थे और संघ की स्तुति करने से तू इस तरह सम्पन्न तथा दीर्घायु हुआ है ॥२९३॥
इस प्रकार भगीरथ भगवत् कि मुख से पूर्वभव सुनकर अत्यन्त शान्त हो गया और मुनियों में मुख्य बनकर तप के योग्य पद को प्राप्त हुआ ॥२९४॥
गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि -- हे राजन्! प्रकरण पाकर यह सगर का चरित्र मैंने तुझ से कहा । अब इस समय प्रकृत कथा कहूंगा सो सुन ॥२५५॥
अथानन्तर-जो महारक्ष नामा विद्याधरों का राजा लंका में निष्कण्टक राज्य करता था विद्याबल से समुन्नत वह राजा एक समय अन्तःपुर के साथ क्रीड़ा करने के लिए बड़े वैभव से उस प्रमदवन में गया जो कि कमलों से आच्छादित वापिकाओं से सुशोभित था, जिसके बीच में नाना रत्नों की प्रभा से ऊँचा दिखने वाला क्रीड़ा पर्वत बना हुआ था, खिले हुए फूलों से सुशोभित वृक्षों के समूह जिसकी शोभा बढ़ा रहे थे, अव्यक्त मधुर शब्दों के साथ इधर-उधर मँडराते हुए पक्षियों के समूह से व्याप्त था, जो रत्नमयी भूमि से वेष्टित था, जिसमें नाना प्रकार को कान्ति विकसित हो रही थी, और जो सघन पल्लवों की समीचीन छाया से युक्त लतामण्डपों से सुशोभित था ॥२६६-३००॥
राजा महारक्ष उस प्रमदवन में अपनी स्त्रियों के साथ कीड़ा करने लगा । कभी स्त्रियाँ उसे फूलों से ताड़ना करती थीं और कभी वह फूलों से स्त्रियों को ताड़ना करता था ॥३०१॥
कोई स्त्री अन्य स्त्री के पास जाने के कारण यदि ईर्ष्या से कुपित हो जाती थी तो उसे वह चरणों में झुककर शान्त कर लेता था । इसी प्रकार कभी आप स्वयं कुपित हो जाता था तो लीला से भरी स्त्री इसे प्रसन्न कर लेती थी ॥३०२॥
कभी यह त्रिकूटाचल के तट के समान सुशोभित अपने वक्ष:स्थल से किसी स्त्री को प्रेरणा देता था तो अन्य स्त्री उसे भी अपने स्कूल स्तनों के आलिंगन से प्रेरणा देती थी ॥३०३॥
इस तरह क्रीड़ा में निमग्न स्त्रियों के प्रच्छन्न शरीरों को देखता हुआ यह राजा रतिरूप सागर के मध्य में स्थित होता हुआ प्रमदवन में इस प्रकार क्रीड़ा करता रहा जिस प्रकार कि नन्दन वन में इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥३०४॥
अथानन्तर सूर्य अस्त हुआ और रात्रि का प्रारम्भ होते ही कमलों के सम्पुट संकोच को प्राप्त होने लगे । राजा महारक्ष ने एक कमल सम्पुट

के भीतर भरा हुआ भौंरा देखा ॥३०५॥
उसी समय मोहनीय कर्म का उदय शिथिल होने से उसके, हृदय में संसार-भ्रमण को नष्ट करने वाली निम्नांकित चिन्ता उत्पन्न हुई ॥३०६॥
वह विचार करने लगा कि देखो मकरन्द के रस में आसक्त हुआ यह मूढ़ भौंरा तृप्त नहीं हुआ इसलिए मरण को प्राप्त हुआ । आचार्य कहते हैं कि इस अन्तरहित अनन्त इच्छा को धिक्कार हो ॥३०७॥
जिस प्रकार इस कमल में आसक्त हुआ यह भौंरा मृत्यु को प्राप्त हुआ है उसी प्रकार स्त्रियों के मुखरूपी कमलों में आसक्त हुए हम लोग भी मृत्यु को प्राप्त होंगे ॥३०८॥
जब कि यह भौंरा घ्राण और रसना इन्द्रिय के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुआ है तब हम तो पाँचों इन्द्रियों के वशीभूत हो रहे हैं अत: हमारी बात ही क्या है? ॥३०९॥
अथवा यह भौंरा तिर्यंच जाति का है - अज्ञानी है अत: इसका ऐसा करना ठीक भी है परन्तु हम तो ज्ञान से सम्पन्न हैं फिर भी इन विषयों में क्यों आसक्त हो रहे हैं? ॥३१०॥
शहद लपेटी तलवार की उस धार के चाटने में क्या सुख होता है? जिस पर पड़ते ही जीभ के सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं ॥३११॥
विषयों में कैसा सुख होता है सो जान पड़ता है उन विषयों में जिनमें कि सुख की बात दूर रही किन्तु दुःख की सन्तति ही उत्तरोत्तर प्राप्त होती है ॥३१२॥
किंपाक फल के समान विषयों से जो मनुष्य विमुख हो गये हैं मैं उन सब महापुरुषों को मन वचन-काय से नमस्कार करता हूँ ॥३१३॥
हाय-हाय,बडे खेद की बात है कि मैं बहुत सभय तक इन दुष्ट विषयों से वंचित होता रहा - धोखा खाता रहा। इन विषयों की आसक्ति अत्यन्त विषम है तथा विष के समान मारने वाली है ॥३१४॥
अथानन्तर उसी समय उस वन में श्रुतसागर इस सार्थक नाम को धारण करने वाले एक महा मुनिराज वहाँ आये॥३१५॥
श्रुतसागर मुनिराज अत्यन्त सुन्दर रूप से युक्त थे, वे कान्ति से चन्द्रमा को लज्जित करते थे, दीप्ति से सूर्य का तिरस्कार करते थे और धैर्य से सुमेरु को पराजित करते थे ॥३१६॥
उनकी आत्मा सदा धर्मध्यान में लीन रहती थी, वे रागद्वेष से रहित थे, उन्होंने मन-वचन-काय को निरर्थक प्रवृत्तिरूपी तीन दण्डों को भग्न कर दिया था, कषायों के शान्त करने में वे सदा तत्पर रहते थे ॥३१७॥
वे इन्द्रियों को वश करने वाले थे छह-काय के जीवों से स्नेह रखते थे, सात भयों और आठ मदों से रहित थे ॥३१८॥
उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात् धर्म ही शरीर के साथ सम्बन्ध को प्राप्त हुआ है । वे मुनिराज उत्तम चेष्टा के धारक बहुत बड़े मुनिसंघ से सहित थे ॥३१९॥
जिन्होंने अपने शरीर की कान्ति से समस्त दिशाओं के अग्रभाग को आच्छादित कर दिया था ऐसे वे मुनिराज उस उद्यान के विस्तृत, शुद्ध एवं निर्जन्तुक पृथिवी तल पर विराजमान हो गये ॥३२०॥
जब राजा महारक्ष को वनपालों के मुख से वहाँ विराजमान इन मुनिराज का पता चला तो वह उत्कृष्ट हृदय को धारण करता हुआ उनके सम्मुख गया ॥३२१॥
अथानन्तर-अत्यन्त प्रसन्न मुख की कान्तिरूपी जल के द्वारा प्रक्षालन करता हुआ राजा महारक्ष मुनिराज के कल्याणदायी चरणों में जा पड़ा ॥३२२॥
उसने शेष संघ को भी नमस्कार किया, सबसे धर्म सम्बन्धी कुशल-क्षेम पूछी और फिर क्षणभर ठहरकर भक्तिभाव से धर्म का स्वरूप पूछा ॥३२३॥
तदनन्तर मुनिराज के हृदय में जो उपशम भावरूपी चन्द्रमा विद्यमान था उसकी किरणों के समान निर्मल दाँतों की किरणों के समूह से चांदनी को प्रकट हुए मुनिराज कहने लगे ॥३२४॥
उन्होंने कहा कि हे राजन् ! जिनेन्द्र भगवान् ने एक अहिंसा के सद्भाव को ही धर्म कहा है, बाकी सत्यभाषण आदि सभी इसके परिवार ॥३२५॥
संसारी प्राणी कर्मों के उदय से जिस-जिस गति में जाते हैं जीवन के प्रति मोहित होते हुए वे उसी-उसी में प्रेम करने लगते हैं ॥३२६॥

एक ओर तीन-लोक की प्राप्ति हो रही हो और दूसरी ओर मरण की सम्भावना हो तो मरण से डरने वाले ये प्राणी तीन-लोक का लोभ छोड़कर जीवित रहने की इच्छा करते हैं इससे जान पड़ता है कि प्राणियों को जीवन से बढ़कर और कोई वस्तु प्रिय नहीं है ॥३२७॥
इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है ? यह बात तो अपने अनुभव से ही जानी जा सकती है कि जिस प्रकार हमें अपना जीवन प्यारा है उसी प्रकार समस्त प्राणियों को भी अपना जीवन प्यारा होता है ॥३२८॥
इसलिए जो क्रूरकर्म करने वाले मूर्ख प्राणी, जीवों के ऐसे प्रिय जीवन को नष्ट करते हैं उन्होंने कौन-सा पाप नहीं किया? ॥३२९॥
जीवों के जीवन को नष्ट कर प्राणी कर्मों के भार से इतने वजनदार हो जाते हैं कि वे पानी में लोहपिण्ड के समान सीधे नरक में ही पड़ते हैं ॥३३०॥
जो वचन से तो मानो मधु झरते हैं पर हृदय में विष के समान दारुण हैं । जो इन्द्रियों के वश में स्थित हैं और बाहर से जिनका मन त्रैकालिक सन्ध्याओं में निमग्न रहता है ॥३३१॥
जो योग्य आचार से रहित हैं और इच्छानुसार मनचाही प्रवृत्ति करते हैं ऐसे दुष्ट जीव तिर्यंचयोनि में परिभ्रमण करते हैं ॥३३२॥
सर्वप्रथम तो जीवों को मनुष्यपद प्राप्त होना दुर्लभ है, उससे अधिक दुर्लभ सुन्दर रूप का पाना है, उससे अधिक दुर्लभ धन समृद्धि का पाना है, उससे अधिक दुर्लभ आर्यकुल में उत्पन्न होना है, उससे अधिक दुर्लभ विद्या का समागम होना है, उससे अधिक दुर्लभ हेयोपादेय पदार्थ को जानना है और उससे अधिक दुर्लभ धर्म का समागम होना है ॥३३३-३३४॥
कितने ही लोग धर्म करके उसके प्रभाव से स्वर्ग में देवियों आदि के परिवार से मानसिक सुख प्राप्त करते हैं ॥३३५॥
वहाँ से चयकर, विष्ठा तथा मूत्र से लिप्त बिलबिलाते कीड़ाओं से युक्त, दुर्गन्धित एवं अत्यन्त दु:सह गर्भगृह को प्राप्त होते हैं ॥३३६॥
गर्भ में यह प्राणी चर्म के जाल से आच्छादित रहते हैं, पित्त, श्लेष्मा आदि के बीच में स्थित रहते हैं और नाल द्वार से च्युत माता द्वारा उपभुक्त आहार के द्रव का आस्वादन करते रहते हैं ॥३३७॥
वहाँ उनके समस्त अंगोपांग संकुचित रहते हैं, और दुःख के भार से वे सदा पीड़ित रहते हैं । वहाँ रहने के बाद निकलकर उत्तम मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं ॥३३८॥
सो कितने ही ऐसे पापी मनुष्य जो कि जन्म से ही क्रूर होते हैं, नियम, आचार-विचार से विमुख रहे हैं और सम्यग्दर्शन से शून्य होते हैं, विषयों का सेवन करते हैं ॥३३९॥
जो मनुष्य काम के वशीभूत होकर सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो जाते हैं वे महादु:ख प्राप्त करते हुए संसाररूपी समुद्र में परिभ्रमण करते हैं ॥३४०॥
दूसरे प्राणियों को पीड़ा उत्पन्न करनेवाला वचन प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए क्योंकि ऐसा वचन हिंसा का कारण है और हिंसा संसार का कारण है ॥३४१॥
इसी प्रकार चोरी, परस्त्री का समागम तथा महापरिग्रह की आकांक्षा, यह सब भी छोड़ने के योग्य है क्योंकि यह सभी पीड़ा के कारण हैं ॥३४२॥
विद्याधरों का राजा महारक्ष, मुनिराज के मुख से धर्म का उपदेश सुनकर वैराग्य को प्राप्त हो गया । तदनन्तर उसने नमस्कार कर मुनिराज से अपना पूर्व भव पूछा ॥३४३॥
चार ज्ञान के धारी श्रुतसागर मुनि विनय से समीप में बैठे हुए महारक्ष विद्याधर से संक्षेप पूर्वक कहने लगे ॥३४४॥
हे राजन्! भरत क्षेत्र के पोदनपुर नगर में एक हित नाम का मनुष्य रहता था । माधवी उसकी स्त्री का नाम था और तू उन दोनों के प्रीति नाम का पुत्र था ॥३४५॥
उसी पोदनपुर नगर में उदयाचल राजा और अर्हच्छी नाम की रानी से उत्पन्न हुआ हेमरथ नाम का राज राज्य करता था ॥३४६॥
एक दिन उसने जिनमन्दिर में, बड़ी श्रद्धा के साथ, लोगों को आश्चर्य में डालने वाली बड़ी पूजा की ॥३४७॥
उस पूजा के समय लोगों ने बड़े जोर से जय-जय शब्द किया, उसे सुनकर तूने भी आनन्द-विभोर हो जय-जय शब्द उच्चारण किया ॥३३४॥
तू इस आनन्द के कारण घर के भीतर ठहर नहीं सका इसलिए बाहर निकलकर आंगन में इस तरह नृत्य करने लगा जिस प्रकार कि मयूर मेघ का शब्द सुनकर नृत्य करने लगता है ॥३४५॥

इस कार्य से तूने जो पुण्य बन्ध किया था उसके फलस्वरूप तू मरकर यक्षों के नेत्रों को आनन्द देने वाला यक्ष हुआ ॥३५०॥
तदनन्तर किसी दिन पश्चिम विदेह क्षेत्र के कांचनपुर नगर में शत्रुओं ने मुनियों के ऊपर उपसर्ग करना शुरू किया ॥३११॥
सो तूने उन शत्रुओं को अलग कर धर्मसाधन में सहाय भूत मुनियों के शरीर की रक्षा की । इस कार्य से तूने बहुत भारी पुण्य का संचय किया ॥३५२॥
तदनन्तर वहाँ से च्युत होकर तू विजयार्ध पर्वत पर तडिदंगद विद्याधर और श्रीप्रभा विद्याधरी के उदित नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३५३॥
एक बार अमरविक्रम नामक विद्याधरों का राजा मुनियों की वन्दना के लिए आया था सो उसे देखकर तूने निदान किया कि मेरे भी ऐसा वैभव हो ॥३५४॥
तदनन्तर महातपश्चरण कर तू दूसरे ऐशान स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से च्युत होकर मेघवाहन का पत्र महारक्ष हुआ है ॥३५५॥
जिस प्रकार सूर्य के रथ का चक्र निरन्तर भ्रमण करता रहता है इसी प्रकार तूने भी स्त्री तथा जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होकर संसार में परिभ्रमण किया है ॥३५६॥
तूने दूसरे भवों में जितने शरीर प्राप्त कर छोड़े है यदि वे एकत्रित किये जावें तो तीनों लोकों में कभी न समावें ॥३५७॥
जो करोड़ों कल्प तक प्राप्त होनेवाले देवो के भोगों से तथा विद्याधरों के मनचाहे भोग-विलास से नहीं हो सका वह तू केवल आठ दिन तक प्राप्त होने वाले स्वप्न अथवा इन्द्रजाल सदृश भोगों से कैसे तृप्त होगा? इसलिए अब भोगों की अभिलाषा छोड़ और शान्ति भाव धारण कर ॥३५८-३५९॥
तदनन्तर मुनिराज के मुख से अपनी आयु का क्षय निकटस्थ जानकर उसे विषाद नहीं हुआ किन्तु इस संसार-चक्र में अब भी मुझे अनेक भव धारण करना है यह जानकर कुछ खेद अवश्य हुआ ॥३६०॥
तदनन्तर उसने अमररक्ष नामक ज्येष्ठ पुत्र को राज्यपद पर स्थापित कर भानुरक्ष नामक लघु पुत्र को युवराज बना दिया ॥३६१॥
और स्वयं समस्त परिग्रह का त्याग कर परमार्थ में तत्पर हो स्तम्भ के समान निश्चल होता हुआ लोभ से रहित हो गया ॥३६२॥
शरीर का पोषण करने वाले आहार—पानी आदि समस्त पदार्थो का त्याग कर वह शत्रु तथा मित्र में सम-मध्यस्थ बन गया और मन को निश्चल कर मौन व्रत ले जिन-मन्दिर के मध्य में बैठ गया । इन सब कार्यों के पहले उसने अर्हन्त भगवान की अभिषेक पूर्वक विशाल पूजा की ॥३६३-३६४॥
अर्हन्त भगवान के चरणों के ध्यान से जिसकी चेतना पवित्र हो गयी थी ऐसा वह विद्याधर समाधिमरण कर उत्तम देव हुआ ॥३६५॥
अथानन्तर अमररक्ष ने, किन्नरगीत नामक नगर में श्रीधर राजा और विद्या रानी से समुत्पन्न रति नामक स्त्री को प्राप्त किया **अर्थ**ात् उसके साथ विवाह किया ॥३६६॥
और भानुरक्ष ने गन्धर्व-गीत नगर में राजा सुरसन्निभ और गान्धारी रानी के गर्भ से उत्पन्न, गन्धर्वा नाम की कन्या के साथ विवाह किया ॥३६७॥
अमररक्ष के अत्यन्त सुन्दर दस पुत्र और देवांगनाओं के समान सुन्दररूप—वाली, गुणरूप आभूषणों से सहित छह पुत्रियां उत्पन्न हुई ॥३६८॥
इस प्रकार भानुरक्ष के भी अपनी कीर्ति के द्वारा दिग्दिगन्त को व्याप्त करने वाले दस पुत्र और छह पुत्रियां उत्पन्न हुई ॥३६९॥
हे श्रेणिक ! उन विजयी राजपुत्रों ने अपने नाम के समान नाम वाले बड़े-बड़े सुन्दर नगर बसाये ॥३७०॥
उन नगरों के नाम सुनो - १ सन्ध्याकार, २ सुवेल, ३ मनोलाद, ४ मनोहर, १ हंसद्वीप, ६हरि, ७ योध, ८ समुद्र, १ कांचन और १० अर्धस्वर्गोत्कृष्ट । स्वर्ग की समानता रखनेवाले ये दस नगर, महाबुद्धि और पराक्रम को धारण करने वाले अमररक्ष के पुत्रों ने बसाये थे ॥३७१-३७२॥
इसी प्रकार १ आवर्त, २ विघट, ३ अम्भोद, ४ उत्कट, १ स्फुट, ६ दुर्ग्रह, ७ तट, ८ तोय, १ आवली और रत्नद्वीप ये दस नगर भानुरक्ष के पुत्रों ने बसाये थे ॥३७३॥
जिन में नाना रत्नों का उद्योत फैल रहा था तथा जो सुवर्णमयी दीवालों के प्रकाश से जगमगा रहे थे ऐसे वे सभी नगर क्रीड़ा के अभिलाषी राक्षसों के निवास हुए थे ॥३७४॥

वहीं पर दूसरे द्वीपों में रहनेवाले विद्याधरों ने बड़े उत्साह से अनेक नगरों की रचना की थी ॥३७५॥
अथानन्तर - अमररक्ष और भानुरक्ष दोनों भाई, पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा को प्राप्त हुए और महातमरूपी धन के धारक हो सनातन सिद्ध पद को प्राप्त हुए ॥३७६॥
इस प्रकार जिसमें बड़े-बड़े पुरुषों द्वारा पहले तो राज्य पालन किया गया और तदनन्तर दीक्षा धारण की गयी ऐसी राजा मेघवाहन की बहुत बड़ी सन्तान की परम्परा क्रमपूर्वक चलती रही ॥३७७॥
उसी सन्तान परम्परा में एक मनोवेग नामक राक्षस के, राक्षस नाम का ऐसा प्रभावशाली पुत्र हुआ कि उसके नाम से यह वंश ही राक्षस वंश कहलाने लगा ॥३७८॥
राजा राक्षस के सुप्रभा नाम की रानी थी, उससे उसके आदित्यगति और बृहत्कीर्ति नाम के दो पुत्र हुए । ये दोनों ही पुत्र सूर्य और चन्द्रमा के समान कान्ति—से युक्त थे ॥३७९॥
राजा राक्षस, राज्य रूपी रथ का भार उठाने में वृषभ के समान उन दोनों पुत्री को संलग्न कर तप धर स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥३८०॥
उन दोनों भाइयों में बड़ा भाई आदित्यगति राजा था और छोटा भाई बृहत्कीर्ति युवराज था । आदित्यगति की स्त्री का नाम सदनपद्मा था और बृहत्कीर्ति की स्त्री पुष्पनखा नाम से प्रसिद्ध थी ॥३८१॥
आदित्यगति के भीमप्रभ नाम का पुत्र हुआ जिसकी देवांगनाओं के समान कान्ति वाली एक हजार स्त्रियां थीं ॥३८२॥
उन स्त्रियो से उसके एक सौ आठ बलवान् पुत्र हुए थे । ये पुत्र स्तम्भों के समान चारों ओर से अपने राज्य को धारण किये थे ॥३८३॥
तदनन्तर राजा भीमप्रभ ने अपने बड़े पुत्र के लिए राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली और क्रम से तपश्चरण कर परमपद प्राप्त कर लिया ॥ ३८४॥
इस प्रकार राक्षस देवों के इन्द्र भीम-सुभीमने जिन पर अनुकम्पा की थी ऐसे मेघवाहन की वंश परम्परा के अनेक विद्याधर राक्षस द्वीप में निवास करते रहे ॥३८५॥
पुण्य जिनकी रक्षा कर रहा था ऐसे राक्षसवंशी विद्याधर चूँकि उस राक्षस जातीय देवों के द्वीप की रक्षा करते थे इसलिए वह द्वीप राक्षस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और उस द्वीप के रक्षक विद्याधर राक्षस कहलाने लगे ॥३८६॥
गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजद! यह राक्षसवंश की उत्पत्ति मैंने तुझसे की । अब आगे इस दंश के प्रधान पुरुषों का उल्लेख करूंगा । सो सुन ॥३८७॥
भीमप्रभ का प्रथम पुत्र पूजार्ह नाम से प्रसिद्ध था सो वह अपने जितभास्कर नामक पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर दीक्षित हुआ ॥३८८॥
जितभास्कर सम्परिकीर्ति नामक पुत्र को राज्य दे मुनि हुआ और सम्परिकीर्ति सुग्रीव के लिए राज्य सौंप दीक्षा को प्राप्त हुआ ॥३८९॥
सुग्रीव, हरिग्रीव को अपने पद पर बैठाकर उग्र तपश्चरण की आराधना करता हुआ उत्तम देव हुआ ॥३९०॥
हरिग्रीव भी श्रीग्रीव के लिए राज्य-सम्पत्ति देकर मुनिव्रत धार वन में चला गया ॥३९१॥
श्रीग्रीव सुमुख के लिए राज्य देकर पिता के द्वारा अंगीकृत मार्ग को प्राप्त हुआ और बलवान् सुमुख ने सुव्यक्त नामक पुत्र को राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली ॥३९२॥
सुव्यक्त ने अमृतवेग नामक पुत्र के लिए राक्षसवंश की सम्पदा सौंपकर तप धारण किया । अमृतवेग ने भानुगति को और भानुगति ने चिन्तागति को वैभव समर्पित कर साधुपद स्वीकृत किया ॥३९३॥
इस प्रकार इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिदमन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, सुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्विपवाह, अरिमर्दन, निर्वाण—भक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लंकाशोक, मयूरवान्, महाबाहु, मनोरम्य, भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त, महारव, मेघध्वान, गृहक्षोभ और नक्षत्रदमन आदि करोड़ों विद्याधर उस वंश में हुए । ये सभी विद्याधर माया और पराक्रम से सहित थे तथा विद्या, बल और महाकान्ति के धारक थे ॥३९४-३९९॥
ये सभी लंका के स्वामी, विद्यानुयोग में कुशल थे, सबके वक्षःस्थल लक्ष्मी से सुशोभित थे, सभी सुन्दर थे और प्राय: स्वर्ग से स्तुत होकर लंका में उत्पन्न हुए थे ॥४००॥

ये राक्षसवंशी राजा, संसार से भयभीत हो वंश-परम्परा से आगत लक्ष्मी अपने पुत्रों के लिए सौंपकर दीक्षा को प्राप्त हुए थे ॥४०१॥
कितने ही राजा कर्मों को नष्ट कर त्रिलोक के शिखर को प्राप्त हुए, और कितने ही पुण्योदय के प्रभाव से स्वर्ग में उत्पन्न हुए थे ॥४०२॥
इस प्रकार बहुत से राजा व्यतीत हुए । उनमें लंका का अधिपति एक घनप्रभ नामक राजा हुआ । उसकी पपा नामक स्त्री के गर्भ में उत्पन्न हुआ कीर्तिधवल नाम का प्रसिद्ध पुत्र हुआ । समस्त विद्याधर उसी का शासन मानते थे और जिस प्रकार स्वर्ग में इन्द्र परमैश्वर्य का अनुभव करता है उसी प्रकार वह कीर्तिधवल भी लंका में परमैश्वर्य का अनुभव करता था ॥४०३ -४०४॥
इस तरह पूर्वभव में किये तपश्चरण के बल से पुरुष, मनुष्यगति तथा देवगति में भोग भोगते हैं, वहाँ उत्तम गुणों से युक्त तथा नाना गुणों से भूषित शरीर के धारक होते हैं, कितने ही मनुष्य कर्मों के पलट को भस्म कर सिद्ध हो जाते हैं, तथा जिनकी बुद्धि दुष्कर्म में आसक्त है, ऐसे मनुष्य इस लोक में भारी निन्दा को प्राप्त होते हैं और मरने के बाद कुयोनि में पड़कर अनेक प्रकार के दु: ख भोगते हैं । ऐसा जानकर है भव्य जीवों ! पापरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य की सदृशता प्राप्त करो ॥४०५-४०६॥
इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में राक्षसवंश का निरूपण करनेवाला पंचम पर्व समाप्त हुआ ॥5॥

## वानरवंश

षष्टम पर्व
कथा :
अथानन्तर-गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् श्रेणिक! मैंने तेरे लिए राक्षस-विद्याधरों का वृत्तान्त तो कहा, अब तू वानरवंशियों का वृत्तान्त सुन ॥१॥
स्वर्ग के समान पर्वत की जो दक्षिण श्रेणी है उसमें एक मेघपुर नभ का नगर है । यह नगर ऊँचे-ऊँचे महलों से सुशोभित है ॥२॥
वहाँ विद्याधरों का राजा अतीन्द्र निवास करता था । राजा अतीन्द्र अत्यन्त प्रसिद्ध था और भोग-सम्पदा के द्वारा मानो इन्द्र का उल्लंघन करता था ॥३॥
उसकी लक्ष्मी समान हाव-भाव-विलास से सहित श्रीमती नाम की स्त्री थी । उसका मुख इतना सुन्दर था कि उसके रहते हुए सदा चाँदनी से युक्त पक्ष ही रहा करता था ॥४॥
उन दोनों के श्रीकण्ठ नाम का पुत्र था वह पुत्र शास्त्रों में निपुण था और जिसका नाम कर्णगत होते ही विद्वान् लोग हर्ष को प्राप्त कर ले थे ॥५॥
उसके महामनोहरदेवी नाम की छोटी बहन थी । उस देवी के नेत्र क्या थे मानो कामदेव के बाण ही थे ॥६॥
अथानन्तर-रत्नपुरनाम का एक सुन्दर नगर था जिसमें अत्यन्त बलवान् पुष्पोत्तर नाम का विद्याधर राजा निवास करता था ॥७॥
अपने सौन्दर्यरूपी सम्पत्ति के द्वारा देवकन्या के समान सबके मन को आनन्दित करने वाली पद्माभा नाम की पुत्री और पद्मोत्तर नाम का पुत्र था । यह पद्मोत्तर इतना सुन्दर था कि उसने अन्य मनुष्यों के नेत्र दूसरे पदार्थो के सम्बन्ध से दूर दिये थे **अर्थ**ात् सब लोग उसे ही देखते रहना चाहते थे ॥८॥
राजा पुष्पोत्तर ने अपने पुत्र पद्मोत्तर के लिए राजा अतीन्द्र की पुत्री देवी की बहुत बार याचना की परन्तु श्रीकण्ठ भाई ने अपनी बहन पद्मोत्तर के लिए नहीं दी, लंका के राजा कीर्तिधवल के लिए दी और बड़े वैभव के साथ विधिपूर्वक उसका विवाह कर दिया ॥१०॥
यह बात सुन राजा पुष्पोत्तर ने बहुत कोप किया । उसने विचार किया कि देखो, न तो हमारे वंश में कोई दोष है, न मुझमें दरिद्रता रूपी दोष है, न मेरे पुत्र में कुरूपपना है और न मेरा उनसे कुछ वैर भी है फिर भी श्रीकण्ठ ने मेरे पुत्र के लिए बहन नहीं दी ॥११-१२॥
किसी एक दिन श्रीकण्ठ अकृत्रिम प्रतिमाओं की वन्दना करने के लिए वायु के समान वेग वाले सुन्दर विमान के द्वारा सुमेरुपर्वत पर गया था ॥१३॥
वहाँ से जब वह लौट रहा था तब उसने मन और कानों को हरण करनेवाला, भ्रमरों की झंकार के समान सुन्दर संगीत का शब्द सुना ॥१४॥
वीणा के स्वर से मिले हुए संगीत के शब्द से उसका शरीर ऐसा निश्चल हो गया मानो सीधी रस्सी से ही बाँधकर उसे रोक लिया हो ॥१५॥
तदनन्तर उसने सब ओर देखा तो उसे संगीत गृह के आँगन में गुरु के साथ बैठी हुई पुष्पोत्तर की पुत्री पद्माभा दिखी ॥१६॥

उसे देखकर श्रीकण्ठ का मन पद्माभा के सौन्दर्य रूपी सागर में शीघ्र ही ऐसा निमग्न हो गया कि वह उसे निकालने में असमर्थ हो गया । जिस प्रकार कोई हाथियों को पकड़ने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार वह मन को स्थिर करने में समर्थ नहीं हो सका ॥१७॥

श्रीकण्ठ उस कन्या के समीप ही आकाश में खड़ा रह गया । श्रीकण्ठ सुन्दर शरीर का धारक तथा स्थूल कन्धों से युक्त था । पद्माभा ने भी चित्त को चुराने वाली अपनी नीली-नीली दृष्टि से उसे आकर्षित कर लिया था ॥१८॥

तदनन्तर दोनों का परस्पर में जो मधुर अवलोकन हुआ उसी ने दोनों का वरण कर दिया **अर्थ**ात् मधुर अवलोकन से ही श्रीकण्ठ ने पद्माभा को और पद्माभा ने श्रीकण्ठ को वर लिया । उनका यह वरना पारस्परिक प्रेम भाव को सूचित करनेवाला था ॥१९॥

तदनन्तर अभिप्राय को जाननेवाला श्रीकण्ठ पद्माभा को अपने भुजपंजर के मध्य में स्थित कर आकाश में ले चला । उस समय पद्माभा के स्पर्श से उसके नेत्र कुछ-कुछ बन्द हो रहे थे ॥२०॥

प्रलाप से चिल्लाते हुए परिजन के लोगों ने राजा पुष्पोत्तर को खबर दी कि श्रीकण्ठ ने आपकी कन्या का अपहरण किया है ॥२१॥

यह सुन पुष्पोत्तर भी बहुत क्रुद्ध हुआ । वह क्रोधवश दाँतों से ओठ चाबने लगा और सब प्रकार से तैयार हो श्रीकण्ठ के पीछे गया ॥२२॥

श्रीकण्ठ आगे-आगे जा रहा था और पुष्पोत्तर उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा था जिससे आकाश के बीच श्रीकण्ठ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मेघसमूह जिसके पीछे उड़ रहा है ऐसा चन्द्रमा ही हो ॥२३॥

नीतिशास्त्र में निपुण श्रीकण्ठ ने जब अपने पीछे महाबलवान् पुष्पोत्तर को आता देखा तो वह शीघ्र ही लंका की ओर चल पड़ा ॥२४॥

वहाँ वह अपने बहनोई कीर्तिधवल की शरण में पहुँचा सो ठीक ही है । क्योंकि जो समयानुकूल नीति योग करते हैं वे उन्नति को प्राप्त होते ही हैं ॥२५॥

यह मेरी स्त्री का भाई है यह जानकर कीर्तिधवल ने बड़े स्नेह से उसका आलिंगन कर अतिथिसत्कार किया ॥२६॥

जब तक उन दोनों के बीच कुशल-समाचार का प्रश्न चलता है कि तब तक बड़ी भारी सेना के साथ पुष्पोत्तर वहाँ जा पहुँचा ॥२७॥

तदनन्तर कीर्तिधवल ने आकाश को ओर देखा तो वह आकाश सब ओर से विद्याधरों के समूह से व्याप्त था, विशाल तेज से देदीप्यमान हो रहा था ॥२८॥

तलवार, भाले आदि शस्त्रों से महा-भयंकर था, बड़ा भारी शब्द उसमें हो रहा था, विद्याधरों के समागम से वह सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो अपने स्थान से भ्रष्ट होने के कारण ही उसमें वह महा-शब्द हो रहा था ॥२९॥

वायु के समान वेग वाले घोड़ों, मेघों की उपमा रखनेवाले हाथियों, बड़े-बड़े विमानों और जिनकी गरदन के बाल हिल रहे थे ऐसे सिंहों से उत्तर दिशा को व्याप्त देख कीर्तिधवल ने क्रोध मिश्रित हँसी हँसकर मन्त्रियों के लिए युद्ध का आदेश दिया ॥३०-३१॥

तदनन्तर अपने अकार्य-खोटे कार्य के कारण लज्जा से अवनत श्रीकण्ठ ने शीघ्रता करने वाले कीर्तिधवल से निम्नांकित वचन कहे ॥३२॥

कि जब तक मैं आपके आश्रय से शत्रु को परास्त करता हूँ तब तक आप यहाँ मेरे इष्टजन (स्त्री) की रक्षा करो ॥३३॥

श्रीकण्ठ के ऐसा कहने पर कीर्तिधवल ने उससे नीति युक्त वचन कहे कि भय का भेदन करने वाले मुझको पाकर तुम्हारा यह कहना युक्त नहीं है ॥३४॥

यदि यह दुर्जन साम्यभाव से शान्ति को प्राप्त नहीं होता है तो तुम निश्चित देखना कि यह मेरे द्वारा प्रेरित होकर यमराज के ही मुख में प्रवेश करेगा ॥३५॥

ऐसा कह अपनी स्त्री के भाई को तो उसने निश्चिन्त कर महल में रखा और शीघ्र ही उत्कृष्ट अवस्था वाले धीर-वीर दूतों को पुष्पोत्तर के पास भेजा ॥३६॥

अतिशय बुद्धिमान् और मधुर भाषण करने में निपुण दूतों ने लगे हाथ जाकर पुष्पोत्तर से यथाक्रम निम्नांकित वचन कहे ॥३७॥

हे पुष्पोत्तर! हम लोगों के मुख में स्थापित एवं आदरपूर्ण वचनों से कीर्तिधवल राजा आपसे यह कहता है॥३८॥

कि आप उच्चकुल में उत्पन्न हैं, निर्मल चेष्टाओं के धारक हैं, समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं और शास्त्रार्थ में चतुर हैं ॥३९॥

हे महाबुद्धिमान्! कौन-सी मर्यादा आपके कानों में नहीं पड़ी है जिसे इस समय हम लोग आपके कानों के समीप रखें ॥४०॥

श्रीकण्ठ भी चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल कुल में उत्पन्न हुआ है, धनवान्, विनय से युक्त है, सुंदर है, और सब कलाओं से सहित है ॥४१॥

तुम्हारी कन्या गुण, रूप तथा कुल सभी बातों में उसके योग्य है । इस प्रकार अनुकूल भाग्य, दो समान व्यक्तियों का संयोग करा दे तो उत्तम है ॥४२॥

जब कि दूसरे के घर की सेवा करना यह कन्याओं का स्वभाव ही है तब दोनों पक्ष की सेनाओं का क्षय करने में कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥४३॥

दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने में पुत्री, पद्माभा के द्वारा भेजी हुई दूती आकर पुष्पोत्तर से कहने लगी ॥४४॥

कि हे देव! पद्माभा आपके चरणों में नमस्कार कर कहती है कि मैं लज्जा के कारण आप से स्वयं निवेदन करने के लिए नहीं आ सकी हूँ ॥४५॥

हे तात! इस कार्य में श्रीकण्ठ का थोड़ा भी अपराध नहीं है । कर्मों के प्रभाव से मैंने इसे स्वयं प्रेरित किया था ॥४६॥

चूँकि सत्कुल में उत्पन्न हुई स्त्रियों की यही मर्यादा है अत: इसे छोड़कर अन्य पुरुष का मेरे नियम है - त्याग है ॥४७॥

इस प्रकार दूती के कहने पर अब क्या करना चाहिए इस चिन्ता को प्राप्त हुआ । उस समय वह अपने किंकर्तव्यविमूढ़ चित्त से बहुत दुःखी हो रहा था ॥४८॥

उसने विचार किया कि वर में जितने गुण होना चाहिए उनमें शुद्ध वंश में जन्म लेना सबसे प्रमुख है । यह गुण श्रीकण्ठ में है ही उसके सिवाय यह बलवान् पक्ष की शरण में आ पहुँचा है ॥४९॥

यद्यपि इसका अभिमान दूर करने की मुझमें शक्ति है, पर जब कन्या के लिए यह स्वयं रुचता है तब इस विषय में क्या किया जा सकता है? ॥५०॥

तदनन्तर पुष्पोत्तर का अभिप्राय जानकर हर्ष से भरे दूत, दूती के साथ वापस चले गये और सबने जो बात जैसी थी वैसी ही राजा कीर्तिधवल से कह दी ॥५१॥

पुत्री के कहने से जिसने क्रोध का भार छोड़ दिया था ऐसा अभिमानी तथा परमार्थ को जाननेवाला राजा पुष्पोत्तर अपने स्थान पर वापस चला गया ॥५२॥

अथानन्तर मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन शुभ मुहूर्त में दोनों का विधिपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार हुआ ॥५३॥

एक दिन उदार प्रेम से प्रेरित कीर्तिधवल ने श्रीकण्ठ से निश्चयपूर्ण निम्नांकित वचन कहे ॥५४॥

चूँकि विजयार्ध पर्वत पर तुम्हारे बहुत-से वैरी हैं अत: तुम सावधानी-से कितना काल बिता सकोगे ॥५५॥

लाभ इसी में है कि तुम्हें जो स्थान रुचिकर हो वहीं स्वेच्छा से क्रिया करते हुए यहीं अत्यन्त सुन्दर रत्नमयी महलों में निवास करो ॥५६॥

मेरा मन तुम्हें छोड़ने को समर्थ नहीं है और तुम भी मेरे प्रेमपाश को छोड़कर कैसे जाओगे ॥५७॥

श्रीकण्ठ से ऐसा कहकर कीर्तिधवल ने अपने पितामह के क्रम से आगत महाबुद्धिमान् आनन्द नामक मन्त्री को बुलाकर कहा ॥५८॥

कि तुम चिरकाल से मेरे नगरों की सारता और असारता को अच्छी तरह जानते हो अत: श्रीकण्ठ के लिए जो नगर सारभूत हो सो कहो ॥५९॥

इस प्रकार कहने पर वृद्ध मन्त्री कहने लगा । जब वह वृद्ध मन्त्री कह रहा था तब उसकी सफेद दाढ़ी वक्षःस्थल पर हिल रही थई और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो हृदय में विराजमान स्वामी को चमर ही ढोर रहा हो ॥६०॥

उसने कहा कि हे राजन्! यद्यपि आपके नगरों में ऐसा एक भी नगर नहीं है जो सुन्दर न हो तथापि श्रीकण्ठ स्वयं ही खोजकर इच्छानुसार-जो इन्हें रुचिकर हो, ग्रहण कर लें ॥६१॥

इस समुद्र के बीच में ऐसे बहुत से द्वीप हैं जहाँ कल्पवृक्षों के समान आकार वाले वृक्षों से दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं ॥६२॥

इन द्वीपों में ऐसे अनेक पर्वत हैं जो नाना प्रकार के रत्नों से व्याप्त हैं, ऊँचे-ऊँचे शिखरों से सुशोभित हैं, महा देदीप्यमान हैं और देवों की क्रीड़ा के कारण हैं ॥६३॥

राक्षसों के इन्द्र -- भीम, अतिभीम तथा उनके सिवाय अन्य सभी देवों ने आपके वंशजों के लिए वे सब द्वीप तथा पर्वत दे रखे हैं ऐसा पूर्व परम्परा से सुनते आते हैं ॥६४॥

उन द्वीपों में सुवर्णमय महलों से मनोहर और किरणों से सूर्य को आच्छादित करने वाले महारत्नों से परिपूर्ण अनेक नगर हैं ॥६५॥

उन नगरों के नाम इस प्रकार हैं - सन्ध्याकार, मनोह्लाद, सुवेल, कांचन, हरि, योधन, जलधिध्वान, हंसद्वीप, भरक्षम, अर्धस्वर्गोत्कट, आवर्त, विघट, रोधन, अमल, कान्त, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलंघन, नभोभानु और क्षेम इत्यादि अनेक सुन्दर-सुन्दर स्थान हैं । इन स्थानों में देव भी उपद्रव नहीं कर सकते हैं ॥६६-६८॥

जो बहुत भारी पुण्य से प्राप्त हो सकते हैं और जहाँ की वसुधा नाना प्रकार के रत्नों से प्रकाशमान है ऐसे वे समस्त नगर इस समय आपके अधीन हैं ॥६९॥

यहाँ पश्चिमोत्तर भाग **अर्थ**ात् वायव्य दिशा में समुद्र के बीच तीन सौ योजन विस्तार वाला बड़ा भारी वानर द्वीप है । यह वानर द्वीप तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और उसमें महामनोहर हजारों अवान्तर द्वीप हैं ॥७०-७१॥

यह द्वीप कहीं तो मणियों की लाल-लाल प्रभा से ऐसा जान पडता मानो जल ही रहा हो, कहीं हरे मणियों की किरणों से आच्छादित होकर ऐसा सुशोभित होता है मानो धान के हरे-भरे पौधों से ही आच्छादित हो ॥७२॥

कहीं इन्द्र-नील मणियों के कान्ति से ऐसा लगता है मानो अन्धकार के समूह से व्याप्त ही हो, कहीं पद्मराग मणियों की कान्ति से ऐसा जान पड़ता है मानो कमलाकर की शोभा धारण कर रहा हो ॥७३॥

जहाँ आकाश में भ्रमती हुई सुगन्धित वायु से हरे गये पक्षी यह नहीं समझ पाते हैं कि हम गिर रहे हैं॥ ७४॥

स्फटिक के बीच-बीच में लगे हुए पद्मराग मणियों के समान जिनकी कान्ति है ऐसे तालाबों के बीच प्रफुल्लित कमलों के समूह जहाँ हलन-चलन रूप क्रिया के द्वारा ही पहचाने जाते हैं ॥७५॥

जो द्वीप मकरन्दरूपी मदिरा के आस्वादन से मनोहर शब्द करने वाले मदोन्मत्त पक्षियों से ऐसा जान पड़ता है मानो समीप में स्थित अन्य द्वीपों से वार्तालाप ही कर रहा हो ॥७६॥

जहाँ रात्रि में चमकने वाली औषधियों की कान्ति के समूह से अन्धकार इतनी दूर खदेड़ दिया गया था कि वह कृष्ण पक्ष की रात्रियों में भी स्थान नहीं पा सका था ॥७७॥

जहाँ के वृक्ष छत्रों के समान आकार वाले हैं, फल और फूलों से सहित हैं, उनके स्कन्ध बहुत मोटे हैं और उनपर बैठे हुए पक्षी मनोहर शब्द करते रहते हैं ॥७८॥

स्वभाव-सम्पन्न (अपने आप) उत्पन्न, वीर्य और कान्ति को देने वाले, एवं मन्द-मन्द वायु से हिलते धान के पौधों से जहाँ की पृथिवी ऐसी जान पड़ती है मानो उसने हरे रंग की चोली ही पहन रखी हो ॥७९॥

जहाँ की वापिकाओं में भ्रमरों के समूह से सुशोभित नील कमल फूल रहे हैं और उनसे वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो भौंहों के सञ्चार से सुशोभित नेत्रों से ही देख रही हों ॥८०॥

हवा के चलने से समुत्पन्न अव्यक्त ध्वनि से कानों को हरने वाले पौंडों और ईखों के बड़े-बड़े बगीचों से जहाँ के प्रदेश वायु के संचार से रहित हैं **अर्थ**ात् जहाँ पौंडे और ईख के सघन वनों से वायु का आवागमन रुकता रहता है ॥८१॥

उस वानरद्वीप के मध्य में रत्न और सुवर्ण की लम्बी-चौड़ी शिलाओं से सुशोभित किष्कु नाम का बड़ा भारी पर्वत है ॥८२॥

जैसा यह त्रिकूटाचल है वैसा ही वह किष्कु पर्वत है सो उसकी शिखररूपी लम्बी-लम्बी भुजाओं से आलिंगित दिशारूपी स्त्रियाँ परम शोभा को प्राप्त हो रही हैं ॥८३॥

आनन्द मन्त्री के ऐसे वचन सुनकर परम आनन्द को प्राप्त हुआ श्रीकण्ठ अपने बहनोई कीर्तिधवल से कहने लगा कि जैसा आप कहते हैं वैसा मुझे स्वीकार है ॥८४॥

तदनन्तर चैत्र मास के मंगलमय प्रथम दिन में श्रीकण्ठ अपने परिवार के साथ वानरद्वीप गया ॥८५॥

प्रथम ही वह समुद्र को देखकर आश्चर्य से चकित हो गया । वह समुद्र नीलमणि के समान कान्ति वाला था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो नीला आकाश ही पृथिवी पर आ गया हो तथा बड़े-बड़े मगरमच्छ उसमें कम्पन पैदा कर रहे थे ॥८६॥

तदनन्तर उसने वानरद्वीप में प्रवेश किया । वह द्वीप क्या था मानो दूसरा स्वर्ग ही था, और झरनों के उच्च स्वर से ऐसा जान पड़ता था मानो स्वागत शब्द का उच्चारण ही कर रहा था ॥८७॥

झरनों के बड़े-बड़े छींटे उछलकर आकाश में पहुँच रहे थे उनसे वह द्वीप ऐसा लगता था मानो श्रीकण्ठ के आगमन से उत्पन्न सन्तोष से

हँस ही रहा हो ॥८८॥
नाना मणियों की सुन्दर कान्ति के समूह से ऐसा जान पड़ता था मानो ऊँचे-ऊँचे तोरणों के समूह ही वहाँ खड़े किये गये हों ॥८९॥
तदनन्तर समस्त दिशाओं में अपनी नीली दृष्टि चलाता हुआ श्रीकण्ठ आश्चर्य से भरे हुए उस वानरद्वीप में उतरा ॥९०॥
वह द्वीप खजूर, आँवला, नीप, कैंथा, अगरु चन्दन, बड़, कौहा, कदम्ब, आम, अचार, केला, अनार, सुपारी, कंकोल, लौंग तथा अन्य अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर वृक्षों से सुशोभित था ॥९१-९२॥
वहाँ वे सब वृक्ष इतने सुन्दर जान पड़ते थे मानो पृथिवी को विदीर्ण कर मणिमय वृक्ष ही बाहर निकले हों और इसीलिए वे अपने ऊपर पड़ी हुई दृष्टि को अन्यत्र नहीं ले जाने देते थे ॥९३॥
उन सब वृक्षों के तने सीधे थे, जहाँ से डालियां फूटती हैं ऐसे स्कन्ध अत्यन्त मोटे थे, ऊपर सघन पत्तों की राशियाँ छत्रों के समान सुशोभित थीं, देदीप्यमान तथा कुछ नीचे की ओर झुकी हुई शाखाओं से, फूलों के समूह से और मधुर फलों से वे सब उत्तम सन्तान को प्राप्त हुए से जनपति थे ॥९४-९५॥
वे सब वृक्ष न तो अत्यन्त ऊँचे थे, न अत्यंत नीचे थे । हाँ, इतने अवश्य थे कि स्त्रियाँ उनके फूल, फल और पल्लवों को अनायास ही पा लेती थीं ॥९६॥
जो गुच्छे रूपी स्तनों से मनोहर थीं, भ्रमर ही जिनके नेत्र थे,और चंचल पल्लव ही जिनके हाथ थे ऐसी लतारूपी स्त्रियाँ बड़े आदर से उन वृक्षों का आलिंगन कर रही थीं ॥९७॥
पक्षियों के मनोहर शब्द से वे वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे मानो परस्पर में वार्तालाप ही कर रहे हों और भ्रमरों की मधुर झंकार से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो गा ही रहे हों ॥९८॥
कितने ही वृक्ष शंख के टुकड़ों के समान सफेद कान्ति वाले थे, कितने ही स्वर्ण के समान पीले रंग के थे, कितने ही कमल के समान गुलाबी रंग के थे और कितने ही वैदूर्यमणि के समान नीले वर्ण के थे ॥९९॥
इस तरह नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित वहाँ के प्रदेश नाना रंग के दिखाई देते थे । वे प्रदेश इतने सुन्दर थे कि उन्हें देखकर फिर स्वर्ग के देखने को इच्छा नहीं रहती थी ॥१००॥
तोताओं के समान स्पष्ट बोलने वाले चकोर और चकोरी का जो मैनाओं के साथ वार्तालाप होता था वह उस वानरद्वीप में सबसे बड़ा आश्चर्य का कारण था ॥१०१॥
तदनन्तर वह श्रीकण्ठ, नाना प्रकार के वृक्षों की छाया में स्थित, फूलों की सुगन्ध से अनुलिप्त, रत्नमय तथा सुवर्णमय शिला तलों पर सेना के साथ बैठा और वहीं उसने शरीर को सुख पहुँचाने वाले समस्त कार्य किये ॥१०२-१०३॥
तदनन्तर - जिन में नाना प्रकार के पुष्प फूल रहे थे, हंस और सारस पक्षी शब्द कर रहे थे, स्वच्छ जल भरा हुआ था और जो मछलियों के संचार से कुछ कम्पित हो रहे थे ऐसे मालाओं की, तथा फूलों के समूह की वर्षा करने वाले, महाकान्तिमान् और पक्षियों की बोली के बहाने मानो जोर-जोर से जय शब्द का उच्चार करने वाले वृक्षों की, एवं नाना प्रकार के रत्नों से व्याप्त भूभागों (प्रदेशों) की सुषमा से युक्त उस वानर द्वीप में श्रीकण्ठ जहाँ-तहाँ भ्रमण करता हुआ बहुत सुखी हुआ ॥१०४-१०६॥
तदनन्तर नन्दन वन के समान उस वन में विहार करते हुए श्रीकण्ठ ने इच्छानुसार क्रीड़ा करने वाले अनेक प्रकार के वानर देखे ॥१०७॥
सृष्टि की इस विचित्रता को देखकर श्रीकण्ठ विचार करने लगा कि देखो ये वानर तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुए है फिर भी मनुष्य के समान क्यों हैं? ॥१०८॥
ये वानर मुख, पैर, हाथ तथा अन्य अवयव भी मनुष्य के अवयवों के समान ही धारण करते हैं । न केवल अवयव ही, इनकी चेष्टा भी मनुष्यों के समान है ॥१०९॥
तदनन्तर उन वानरों के साथ क्रीड़ा करने की श्रीकण्ठ के बहुत भारी इच्छा उत्पन्न हुई । यद्यपि वह स्थिर प्रकृति का राजा था तो भी अत्यन्त उत्सुक हो उठा ॥११०॥
उसने विस्मित चित्त होकर मुख की ओर देखने वाले निकटवर्ती पुरुषों को आज्ञा दी कि इन वानरों को शीघ्र ही यहाँ लाओ ॥१११॥
कहने की देर थी कि विद्याधरों ने सैकड़ों वानर लाकर उनके समीप खड़े कर दिये । वे सब वानर हर्ष से कल-कल शब्द कर रहे थे ॥११२॥

राजा श्रीकण्ठ उत्तम स्वभाव के धारक उन वानरों के साथ क्रीड़ा करने लगा । कभी वह ताली बजाकर उन्हें नचाता था, कभी अपनी भुजाओं से उनका स्पर्श करता था और कभी अनार के फूल के समान लाल, चपटी नाक से बुक एवं चमकीली सुनहली कनीनिकाओं से युक्त उनके मुख में उनके सफेद दांत देखता था ॥११३-११४॥

वे वानर परस्पर में विनयपूर्वक एक दूसरे के जुएँ अलग कर रहे थे, और प्रेम से खो-खो शब्द करते हुए मनोहर कलह करते थे । राजा श्रीकण्ठ ने यह सब देखा ॥११५॥

उन वानरों के बाल धान के छिलके के समान पीले थे, अत्यन्त कोमल थे, मन्द-मन्द वायु से हिल रहे थे और माँग से सुशोभित थे । इसी प्रकार उनके कान विदूषक के कानों के समान कुछ अटपटा आकार वाले, अत्यन्त कोमल और चिकने थे । राजा श्रीकण्ठ उनका बड़े प्रेम से स्पर्श कर रहा था और इस मोहनी सुरसुरी के कारण उनके शरीर निष्कम्प हो रहे थे ॥११६-११७॥

उन वानरों के कृश पेट पर जो-जो रोम अस्त-व्यस्त थे उन्हें यह अपने स्पर्श से ठीक कर रहा था, साथ ही भौंहों को तथा रेखा से युक्त कटाक्ष-प्रदेशों को कुछ ऊपर की ओर उठा रहा था ॥११८॥

तदनन्तर श्रीकण्ठ ने प्रीति के कारणभूत बहुत-से वानर मधुर अन्न-पान आदि के द्वारा पोषण करने के लिए सेवकों को सौंप दिये ॥११९॥

इसके बाद पहाड़ के शिखरों, लताओं, निर्झरनों और वृक्षों से जिसका मन हरा गया था ऐसा श्रीकण्ठ उन वानरों को लिवाकर किष्कु पर्वत पर चढ़ा ॥१२०॥

वहाँ उसने लम्बी-चौड़ी, विषमता रहित तथा अन्त में ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से सुशोभित उत्तुंग पहाड़ों से सुरक्षित भूमि देखी ॥१२१॥

उसी भूमि पर उसने किष्कुपुर नाम का एक नगर बसाया । यह नगर शत्रुओं के शरीर की बात तो दूर रहे मन के लिए भी दुर्गम था ॥१२२॥

यह नगर चौदह योजन लम्बा-चौड़ा था और इसकी परिधि (गोलाई) बयालीस योजन से कुछ अधिक थी ॥१२३॥

इस नगर में विद्याधरों ने महलों की ऐसी-ऐसी ऊंची श्रेणियाँ बनाकर तैयार की थी कि जिनके सामने उत्तुंग दरवाजे थे, जिनकी दीवालें मणि और सुवर्ण से निर्मित थीं, जो अच्छे-अच्छे बरण्डो से सहित थीं, रत्नों के खम्भों पर खड़ी थीं । जिन कट्टे कपोत पाली के समीप का भाग महा-नील मणियों से बना था और ऐसा जान पड़ता था कि रत्नों की कान्ति ने जिस अन्धकार को सब जगह से खदेड़कर दूर कर किया था मानो उसे यहाँ अनुकम्पावश स्थान ही दिया गया था । जिन महलों की देहरी पद्मरागमणियों निर्मित होने के कारण लाल-लाल दिख रही थीं इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो ताम्बूल के द्वारा जिसकी लाली बढ़ गयी थी ऐसा ओठ ही धारण कर रही हों । जिनके दरवाजों के ऊपर अनेक मोतियों की मालाएँ लटकायी गयी थीं और जिनकी किरणों से वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो अन्य भवनों की सुन्दरता की हंसी ही उड़ा रही हों । शिखरों के ऊपर चन्द्रमा के समान आकार वाले मणि लगे हुए थे उनसे जो रात्रि के समय असली चन्द्रमा के विषय में संशय उत्पन्न कर रहे थे । **अर्थ**ात् लोग संशय में पड़ जाते थे कि असली चन्द्रमा कौन है? चन्द्रकान्त मणियों की कान्ति से जो भवन उत्तम चांदनी की शोभा प्रकट कर रहे थे तथा जिन में लगे नाना रत्नों की प्रभा से ऊँचे-ऊँचे तोरण द्वारों का सन्देह हो रहा था जिनके मणिनिर्मित फर्शों पर रत्नमयी कमलों के चित्राम किये गये थे ॥१२४-१३०॥

उस नगर में कुटिलता से रहित (सीधे ऐसे) राजमार्ग बनाये गये थे जिन में कि मणियों और सुवर्ण की धूलि बिखर रही थी तथा जो सूखे सागर के समान लम्बे-चौड़े थे ॥१३१॥

उस नगर में ऊंचे-ऊंचे गोपुर बनाये गये थे जो मणियों की किरणों से सदा आच्छादित से रहा करते थे ॥१३२॥

इन्द्रपुर के समान सुन्दर उस नगर में राजा श्रीकण्ठ अपनी पद्माभा प्रिया के साथ, इन्द्र-इन्द्राणी के समान चिरकाल तक क्रीड़ा करता रहा ॥१३३॥

भद्रशालवन, सौमनसवन तथा नन्दनवन में ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो उसे दुर्लभ रही हो ॥१३४॥

अथानन्तर किसी एक दिन राजा श्रीकण्ठ महल की छत पर बैठा था उसी समय नन्दीश्वर दीप की वन्दना करने के लिए चतुर्विध देवों के साथ इन्द्र जा रहा था। वह इन्द्र मुकुटों की कान्ति से आकाश को पीतवर्ण कर रहा था, तुरही बाजों के शब्द से समस्त लोक को बधिर बना रहा था, अपने-अपने स्वामियों से अधिष्ठित हाथी, घोड़े, हंस, मेढ़ा, ऊंट, भेड़िया तथा हरिण आदि अन्य अनेक वाहन उसके पीछे-पीछे चल रहे थे, और उसकी दिव्य गन्ध से समस्त लोक व्याप्त हो रहा था ॥१३५-१३९॥

श्रीकण्ठ ने पहले मुनियों के मुख से नन्दीश्वर द्वीप का वर्णन सुना था, सो देवों को आनन्दित करनेवाला वह नन्दीश्वर द्वीप उसकी स्मृति में

आ गया ॥१४०॥
स्मृति में आते ही उसने देवों के साथ नन्दीश्वर द्वीप जाने का विचार किया । विचारकर वह समस्त विद्याधरों के साथ आकाश में आरूढ़ हुआ ॥११॥
जिसमें विद्या निर्मित क्रौंचपक्षी जुते थे ऐसे विमान पर अपनी प्रिया पद्माभा के साथ बैठकर राजा श्रीकण्ठ आकाशमार्ग से जा रहा था परन्तु जब मानुषोत्तर पर्वत पर पहुँचा तो उसका आगे जाना रुक गया ॥१४३॥
इसकी गति तो रुक गयी परन्तु देवों के समूह मानुषोत्तर पर्वत को उल्लंघ कर आगे निकल गये । यह देख श्रीकण्ठ परम शोक को प्राप्त हुआ ॥१४४॥
उसका उत्साह भग्न हो गया और कान्ति नष्ट हो गयी । तदनन्तर वह विलाप करने लगा कि हाय-हाय, क्षुद्र-शक्ति के धारी मनुष्यों की उन्नति को धिक्कार हो ॥१४५॥
नन्दीश्वर द्वीप में जो जिनेन्द्र भगवान की महाकान्तिशाली प्रतिमाएँ हैं, मैं निश्छलभाव से उसके दर्शन करूंगा, नाना प्रकार के पुष्प, धूप और मनोहारी गन्ध से उनकी पूजा करूंगा तथा पृथ्वी पर मुकुट झुकाकर शिर से उन्हें नमस्कार करूंगा मुझ मन्दभाग्य ने ऐसे जो सुन्दर मनोरथ किये थे वे पूर्व संचित अशुभ कर्मो के द्वारा किस प्रकार भग्न कर दिये गये? ॥१४६-१४७॥
अथवा यद्यपि यह बात मैंने अनेक बार सुनी थी कि मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत का उल्लंघन कर नहीं जा सकते हैं तथापि अतिशय वृद्धि को प्राप्त हुई श्रद्धा के कारण मैं इस बात को भूल गया और आत्मशक्ति का धारी होकर भी जाने के लिए तत्पर हो गया ॥१४८-१४९॥
इसलिए अब मैं ऐसे कार्य करता हुँ कि जिससे अन्य जन्म में नन्दीश्वर द्वीप जाने के लिए मेरी गति रोकी न जा सके ॥१५०॥
ऐसा हृदय से निश्चय कर श्रीकण्ठ, पुत्र के लिए राज्य सौंपकर, समस्त परिग्रह का त्यागी महामुनि हो गया ॥१५१॥
तदनन्तर श्रीकण्ठ का पुत्र वज्रकण्ठ अपनी चारुणी नामक वल्लभा के साथ महामनोहर किछपुर में उत्कृष्ट राज्यलक्ष्मी का उपभोग कर रहा था कि उसने एक दिन वृद्धजनों से अपने पिता के पूर्वभव सुने । सुनते ही उसका वैराग्य बढ़ गया और पुत्र के लिए ऐश्वर्य सौंपकर उसने जिन दीक्षा धारण कर ली । यह सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछा कि श्रीकण्ठ के पूर्वभव का वर्णन कैसा था जिसे सुनकर वज्रकण्ठ तत्काल विरक्त हो गया । उत्तर में गणधर भगवान् कहने लगे ॥१५२-१५३॥
कि पूर्वभव में दो भाई वणिक् थे, दोनों में परम प्रीति थी परन्तु स्त्रियों ने उन्हें पृथक्-पृथक् कर दिया । उनमें छोटा भाई दरिद्र था और बड़ा भाई धनसम्पन्न था । बड़ा भाई किसी सेठ का आज्ञाकारी था सो उसके समागम से वह श्रावक अवस्था को प्राप्त हुआ परन्तु छोटा भाई शिकार आदि कुव्यसनो में फंसा था । छोटे भाई की इस दशा से बड़ा भाई सदा दुखी रहता था॥१५४-१५५॥
एक दिन उसने अपने स्वामी का एक सेवक छोटे भाई के पास भेजकर झूठ-मूठ ही अपने आहत होने का समाचार भेजा । उसे सुनकर प्रेम से भरा छोटा भाई दौड़ा आया । इस घटना से बड़े भाई ने परीक्षा कर ली कि यह हम से स्नेह रखता है । यह जानकर उसने छोटे भाई के लिए बहुत धन दिया । धन देने का समाचार जब बड़े भाई की स्त्री को मिला तो वह बहुत ही कुपित हुई । इस अनबन के कारण बड़े भाई ने अपनी दुष्ट स्त्री का त्याग कर दिया और छोटे भाई को उपदेश देकर दीक्षा ले ली । समाधि से मरकर बड़ा भाई इन्द्र हुआ और छोटा भाई शान्त परिणामों से मरकर देव हुआ । वहाँ से च्युत होकर छोटे भाई का जीव श्रीकण्ठ हुआ । श्रीकण्ठ को सम्बोधने के लिए बड़े भाई का जीव जो वैभवशाली इन्द्र हुआ था अपने आपको दिखाता हुआ नन्दीश्वरद्वीप गया था । इन्द्र को देखकर तुम्हारे पिता श्रीकण्ठ को जातिस्मरण हो गया । यह कथा मुनियों ने हम से कही थी ऐसा वृद्धजनों ने वज्रकण्ठ से कहा ॥१५६-१५९॥
यह कथा सुनकर वज्रकण्ठ अपने वज्रप्रभ पुत्र के लिए राज्य देकर मुनि हो गया । वचप्रभ भी अपने पुत्र इन्द्रमत के लिए राज्य देकर मुनि हुआ । तदनन्तर इन्द्रमत से मेरु, मेरु से मन्दर, मन्दर से समीरणगति, समीरणगति से रविप्रभ और रविप्रभ से अमरप्रभ नामक पुत्र हुआ। अमरप्रभ लंका के धनी की पुत्री गुणवती को विवाहने के लिए अपने नगर ले गया ॥१६०-१६२॥
जहाँ विवाह की वेदी बनी थी वहाँ की भूमि दर्पण के समान निर्मल थी तथा वहाँ विद्याधरों की स्त्रियों ने मणियों से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले अनेक चित्र बना रखे थे । कहीं तो भ्रमरों से आलिंगित कमलों का वन बना हुआ था, कहीं नील कमलों का वन था, कहीं आधे लाल और नीले कमलों का वन था, कहीं चोंच से मृणाल दबाये हुए हंसों के जोड़े बने थे और कहीं क्रौंच, सारस तथा अन्य पक्षियों के युगल बने थे। उन्हीं विद्याधरों ने कहीं अत्यन्त चिकने पांच वर्ण के रत्नमयी चूर्ण से वानरों के चित्र बनाये थे सो इन्हें देखकर विद्याधरों का स्वामी

राजा अमरप्रभ परम सन्तोष को प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सुन्दररूप प्राप्त कर धीर-वीर मनुष्य के भी मन को हर लेता है ॥ १६३-१६७॥

इधर राजा अमरप्रभ तो परम सन्तुष्ट हुआ, उधर वधू गुणवती विकृत मुख वाले उन वानरों को देखकर भयभीत हो गयी । उसका प्रत्येक अंग कांपने लगा, सब आभूषण चंचल हो उठे, सबके देखते-देखते ही उसकी आँखों: की पुतलियां भय से घूमने लगीं, उसके सारे शरीर से रोमांच निकल आये और उनसे वह ऐसे जान पड़ने लगी मानो शरीरधारी भय को ही दिखा रही हो । उसके ललाट पर जो तिलक लगा था वह स्वेदजल की बूँदों से मिलकर फैल गया । यद्यपि वह भयभीत हो रही थी तो भी उसकी चेष्टाएँ उत्तम थीं । अन्त में वह इतनी भयभीत हुई कि राजा अमरप्रभ से लिपट गयी ॥१६८-१७॥

राजा अमरप्रभ पहले जिन वानरों को देखकर प्रसन्न हुआ था अब उन्हीं वानरों के प्रति अत्यन्त क्रोध करने लगा सो ठीक ही है क्योंकि खी का अभिप्राय देखकर सुन्दर वस्तु भी रुचिकर नहीं होती ॥१७१॥

तदनन्तर उसने कहा कि हमारे विवाह में अनेक आकारों के धारक तथा भय उत्पन्न करने वाले ये वानर किसने चित्रित किये हैं? ॥१७२॥

निश्चित ही इस कार्य में कोई मनुष्य मुझ से ईर्ष्या करनेवाला है सो शीघ्र ही उसकी खोज की जाये, मैं स्वयं ही उसका वध करूँगा ॥१७३॥

तदनन्तर राजा अमरप्रभ को क्रोधरूपी गहरी गुहा के मध्य वर्तमान देखकर महा बुद्धिमान् वृद्ध मन्त्री मधुर शब्दों में कहने लगे ॥१७४॥

कि हे स्वामिन्! इस कार्य में आप से द्वेष करनेवाला कोई भी नहीं है । भला, आपके साथ जिसका द्वेष होगा उसका जीवन ही कैसे रह सकता है? ॥१७५॥

आप प्रसन्न होइए और विवाह-मंगल में जिस कारण से वानरों की पंक्तियां चित्रित की गयी हैं वह कारण सुनिए ॥१७६॥

आपके वंश में श्रीकण्ठ नाम का प्रसिद्ध राजा हो गया है जिसने स्वर्ग के समान सुन्दर इस किष्कुपुर नामक उत्तम नगर की रचना की थी ॥ १७७॥

जिस प्रकार कर्मों का मूल कारण रागादि प्रपंच हैं उसी प्रकार अनेक आकार—को धारण करने वाले इस देश का मूल कारण वही श्रीकण्ठ राजा है ॥१७८॥

वनों के बीच निकुंजों में सुख से बैठे हुए किन्नर उत्तमोत्तम स्थान पाकर आज भी उस राजा के गुण गाया करते हैं ॥१७९॥

जिसकी प्रकृति स्थिर थी तथा जो इन्द्रतुल्य पराक्रम का धारक था ऐसे उस राजा ने चंचलता के कारण उत्पन्न हुआ लक्ष्मी का अपयश दूर कर दिया था ॥१८०॥

सुनते हैं कि वह राजा सर्वप्रथम इस नगर में सुन्दर रूप के धारक तथा मनुष्य के समान आकार से संयुक्त इन वानरों को देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुआ था ॥१८१॥

वह राजा नाना प्रकार की चेष्टाओं को धारण करने वाले इन वानरों के साथ बड़ी प्रसन्नता से क्रीड़ा करता था तथा उसी ने इन वानरों को मधुर आहार पानी आदि के द्वारा सुखी किया था ॥१८२॥

तदनन्तर महाकान्ति के धारक राजा श्रीकण्ठ के वंश में जो उत्तमोत्तम राजा हुए वे भी उसकी भक्ति के कारण इन वानरों से प्रेम करते रहे ॥१८३॥

चूँकि आपके पूर्वजों ने इन्हें मांगलिक पदार्थो में निश्चित किया था **अर्थ**ात् इन्हें मंगलस्वरूप माना था इसलिए ये सब चित्रामरूप से इस मंगलमय कार्य में उपस्थित किये गये हैं ॥१८४॥

जिस कुल में जिस पदार्थ को पहले से पुरुषों के द्वारा मंगलरूप में उपासना होती आ रही है यदि उसका तिरस्कार किया जाता है तो नियम से विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं ॥१८५॥

यदि वही कार्य भक्तिपूर्वक किया जाता है तो वह शुभ सम्पदाओं को देता है । हे राजद । आप उत्तम ह्रदय के धारक हैं-विचारशील हैं अत: आप भी इन वानरों के चित्राम की उपासना कीजिए ॥१८६॥

मन्त्रियों के ऐसा कहने पर राजा अमरप्रभ ने बड़ी सान्तवना से उत्तर दिया । क्रोध के कारण उसके मुख पर जो विकार आ गया था उत्तर देते समय उसने उस विकार का त्याग कर दिया था ॥१८७॥

उसने कहा कि यदि हमारे पूर्वजों ने इनकी मंगलरूप से उपासना की है तो इन्हें इस तरह पृथिवी पर क्यों चित्रित किया गया है जहाँ कि

पैर आदि का संगम होता है ॥१८८॥
गुरुजनों के गौरव से मैं इन्हें नमस्कार कर क्षीर पर धारण करूँगा । रत्न आदि के द्वारा वानरों के चिह्न बनवाकर मुकुटों के अग्रभाग में, ध्वजाओं में, महलों के शिखरों में, तोरणों के अग्रभाग में तथा छत्रों के ऊपर इन्हें शीघ्र ही धारण करो । इस प्रकार मन्त्रियों को आज्ञा दी सो उन्होंने तथास्तु कहकर राजा की आज्ञानुसार सब कुछ किया । जिस दिशा में देखो उसी दिशा में वानर ही वानर दिखाई देते थे ॥ १८९-१९१॥
अथानन्तर रानी के साथ परम सुख का उपभोग करते हुए राजा अमरप्रभ के मन में विजयार्ध पर्वत को जीतने की इच्छा हुई सो चतुरंग सेना के साथ उसने प्रस्थान किया । उस समय उसकी ध्वजा में वानरों का चिह्न था और सब वानरवंशी उसकी स्तुति कर रहे थे ॥ १९२-१९३॥
प्राणियों का मान मर्दन करने वाले युद्ध में दोनों श्रेणियों को जीतकर उसने अपने वश किया पर उनका धन नहीं ग्रहण किया ॥१९४॥
सो ठीक ही है क्योंकि अभिमानी मनुष्यों का यह व्रत है कि वे शत्रु को नम्रीभूत ही करते हैं उसके धन की आकांक्षा नहीं करते ॥१९५॥
तदनन्तर विजयार्ध पर्वत के प्रधान पुरुष जिसके पीछे-पीछे आ रहे थे ऐसा राजा अमरप्रभ दिग्विजय कर किष्कु नगर वापस आया ॥ १९६॥
इस प्रकार समस्त विद्याधरों का आधिपत्य पाकर उसने चिरकाल तक लक्ष्मी का उपभोग किया । लक्ष्मी चंचल थी सो उसने बेड़ी डालकर ही मानो उसे निश्चल बना दिया था ॥१९७॥
तदनन्तर राजा अमरप्रभ के कपिकेतु नाम का पुत्र हुआ । उसके अनेक गुणों को धरने वाली श्रीप्रभा नाम की रानी थी ॥१९८॥
पुत्र को पराक्रमी देख राजा अमरप्रभ उसे राज्यलक्ष्मी सौंपकर गृहरूपी बन्धन से बाहर निकला ॥१९९॥
तदनन्तर कपिकेतु भी प्रतिबल नामक पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी देकर घर से चला गया सो ठीक ही है क्योंकि पूर्व पुरुष राज्यलक्ष्मी को प्राय: विष की वेल के समान देखते थे ॥२००॥
जिन्होंने पूर्व पर्याय में पुण्य उपार्जित किया है ऐसे पुरुषों का प्रयत्नोंपार्जित लक्ष्मी में बड़ा अनुराग नहीं होता ॥२०१॥
पुण्यात्मा मनुष्यों को चूँकि लक्ष्मी थोड़े ही प्रयत्न से अनायास ही प्राप्त हो जाती है इसलिए उसका त्याग करते हुए उन्हें पीड़ा नहीं होती ॥ २०२॥
सत्पुरुष, विषय सम्बन्धी सुख को किसी तरह प्राप्त करते भी हैं तो उससे शीघ्र ही विरक्त हो परम पद (मोक्ष) की इच्छा करने लगते हैं ॥ २०३॥
जो सुख उपकरणों के द्वारा साध्य न होकर आत्मा के अधीन है, अन्तर-रहित है, महान् है तथा अन्त से रहित है उस सुख की भला कौन नहीं इच्छा करेगा ॥२०४॥
प्रतिबल के गगनानन्द नाम का पुत्र हुआ, गगनानन्द के खेचरानन्द और खेचरानन्द के गिरिनन्दन पुत्र हुआ ॥२०५॥
इस प्रकार ध्वजा में वानरों का चिह्न धारण रहनेवाले वानरवंशियों के वंश में संख्यातीत राजा हुए सो उनमें अपने-अपने कर्मानुसार कितने ही स्वर्ग को प्राप्त हुए और कितने ही मोक्ष गये ॥२०६॥
गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन्! यह तो वश में उत्पन्न हुए पुरुषों का छाया मात्र का निरूपण है । इन सब पुरुषों का नामोल्लेख करने के लिए कौन समर्थ है? ॥२०७॥
लोक में जिसका जो लक्षण होता है उसका उसी लक्षण से उल्लेख होता है । जैसे सेवा करनेवाला सेवक, खेती करनेवाला किसान, धनुष धारण करनेवाला धानुष्क, धर्म सेवन करनेवाला धार्मिक, दुःखी जीवों की रक्षा करनेवाला क्षत्रिय और ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला ब्राह्मण कहा जाता है । जिस प्रकार इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए पुरुष इक्ष्वाकु कहलाते हैं और नमि-विनमि के वंश में उत्पन्न हुए पुरुष विद्या धारण करने के कारण विद्याधर कहे गये हैं । जो राजा राज्य छोड़कर तप के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते है वे श्रमण कहलाते हैं क्योंकि श्रम करे सो श्रमण और तपश्चरण ही श्रम कहा जाता है ॥२०८-२११॥
इसके सिवाय यह बात तो स्पष्ट ही है कि शब्द कुछ है और उसका प्रयोग कुछ अन्य **अर्थ** में होता है जैसे जिसके हाथ में यष्टि है वह यष्टि, जिसके हाथ में कुन्त है वह कुन्त और जो मंच पर बैठा है वह मंच कहलाता है । इस तरह साहचर्य आदि धर्मो के कारण शब्दों के प्रयोग में

भेद होता है इसके उदाहरण दिये गये हैं ॥२१२-२१३॥
इसी प्रकार जिन विद्याधरों के छत्र आदि में वानर के चिह्न थे वे लोक में वानर इस प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥२१४॥
देवाधिदेव श्रेयान्सनाथ और वासुपूज्य भगवान के अन्तराल में राजा अमरप्रभ ने अपने मुकुट आदि में वानर का चिह्न धारण किया था सो उसकी परम्परा में जो अन्य राजा हुए वे भी ऐसा ही करते रहे । यथार्थ में पूर्वजों की परिपाटी का आचरण करना परम प्रीति उत्पन्न करता है॥२१५-२१६॥
गौतम स्वामी रजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्! इस तरह संक्षेप से वानर-वंश की उत्पत्ति कही हैं अब एक दूसरी बात कहता हूँ सो सुन ॥२१७॥
अथानन्तर किष्कु नामक उत्तम नगर में इसी वानर-वंश में महोदधि नामक विद्याधर राजा हुआ । इसकी विद्युत्प्रकाश नाम को रानी थी जो स्त्रियों के गुणरूपी सम्पदाओं की मानो खजाना थी । उसने अपनी चेष्टाओं से पति का हृदय वश कर लिया था, वह सौभाग्य, रूप, विज्ञान तथा अन्य चेष्टाओं के कारण सैकड़ों सुन्दरी स्त्रियों की शिरोमणि थी ॥२१८-२२०॥
राजा महोदधि के एक सौ आठ पराक्रमी पुत्र थे सो उनपर राज्यभार सौंपकर वह सुख से भोगों का उपभोग करता था ॥२२१॥
मुनिसुव्रत भगवान के तीर्थ में राजा महोदधि प्रसिद्ध विद्याधर था । वह अपने आश्चर्यजनक कार्यों से सदा विद्याधरों को अनुरक्त रखता था ॥२२२॥
उसी समय लंका में विद्यत्केश नामक प्रसिद्ध राजा था । जो राक्षसवंशरूप आकाश का मानो चन्द्रमा था और लोगों का अत्यन्त प्रिय था ॥२२३॥
महोदधि और विद्युत्केश में परम स्नेह था जो कि एक दूसरे के यहाँ आने-जाने के कारण परम वृद्धि को प्राप्त हुआ था । उन दोनों का चित्त तो एक था केवल शरीर मात्र से ही दोनों में पृथक्पना था ॥२२४॥
विद्युत्केश ने यह समाचार जानकर परमार्थ के जानने वाले महोदधि ने मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥२२५॥
यह कथा सुनकर श्रेणिक राजा ने गौतम गणधर से पूछा कि हे स्वामिन्! विद्युत्केश ने किस कारण कठिन दीक्षा धारण की । इसके उत्तर में गणधर भगवान् इस प्रकार कहने लगे ॥२२६॥
कि किसी समय विद्युत्केश जिसमें क्रीड़ा के अनेक स्थान बने हुए थे ऐसे अत्यन्त सुन्दर प्रमद नामक वन में क्रीड़ा करने के लिए गया था सो वहाँ कभी तो वह उन सरोवरों में क्रीड़ा करता था जो कमल तथा नील कमलों से मनोहर थे, जिनमें स्वच्छ जल भरा था, जिनमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं तथा नावों के संचार से महामनोहर दिखाई देते थे ॥२२७-२२८॥
कभी उन बेशकीमती झूलों पर झूलता था जिनमें बैठने का अच्छा आसन बनाया गया था, जो ऊँचे वृक्ष से बँधे थे तथा जिनकी उछाल बहुत लम्बी होती थी ॥२२९॥
कभी उन सुवर्णमय पर्वतों पर चढ़ता था जिनके ऊपर जाने के लिए सीढ़ियों के मार्ग बने हुए थे, जिनके शिखर रत्नों से रंजित थे, और जो वृक्षों के समूह से वेष्टित थे ॥२३०॥
कभी उन वृक्षों की झुरमुट में क्रीड़ा करता था जो फल और फूलों से मनोहर थे, जो हिलते हुए पल्लवों से सुशोभित थे और जिनके शरीर अनेक लताओं से आलिंगित थे ॥२३१॥
कभी उन स्त्रियों के बीच बैठकर क्रीड़ा करता था कि जिनके हाव-भाव-विलासरूप सम्पदाएँ मुनियों को भी क्षोभित करने की सामर्थ्य रखती थीं, जो फूल आदि तोड़ने की क्रिया में लगे हुए हस्तरूपी पल्लवों से शोभायमान थीं, स्थूल नितम्ब धारण करने के कारण जिनके शरीर पर स्वेद जल की बूँदें प्रकट हो रही थीं, स्तनों के कम्पन से ऊपर की ओर उछलने वाले बड़े-बड़े मोतियों के हार से जिनकी कान्ति बढ़ रही थी, जिसकी सूक्ष्म रेखाएँ कभी अन्तर्हित हो जाती थीं और कभी प्रकट दिखाई देती थीं ऐसी कमर से जो सुशोभित थीं, श्वासोच्छ्वास से आकर्षित मत्त भौंरों के निराकरण करने में जिनका चित्त व्याकुल था, जो नीचे खिसके हुए वस्त्र को अपने हाथ से थामे हुई थीं तथा जिनके नेत्र इधर-उधर चल रहे थे । इस प्रकार राक्षसों का राजा विद्युत्केश अनेक स्त्रियों के बीच बैठकर क्रीड़ा कर रहा था ॥२३२-२३५॥
अथानन्तर राजा विद्युत्केश की रानी श्रीचन्द्रा इधर क्रीड़ा में लीन थी उधर किसी वानर ने आकर अपने नाखूनों के अग्रभाग से उसके दोनों

स्तन विदीर्ण कर दिये ॥२३६॥
जिस वानर ने उसके स्तन विदीर्ण किये थे वह स्वभाव से ही अविनयी था, क्रोध से अत्यन्त खेद को प्राप्त हो रहा था, उसके नेत्र विकृत दिखाई देते थे ॥२३७॥
तदनन्तर जिसके स्तन से खून झड़ रहा था ऐसी वल्लभा को सान्तवना देकर उसने बाण द्वारा वानर को मार डाला ॥२३८॥
घायल वानर वेग से भागकर वहाँ पृथ्वी पर पड़ा जहाँ कि आकाशगामी मुनिराज विराजमान थे ॥॥२३९॥
जिसके शरीर में कँपकँपी छूट रही थी तथा बाण छिदा हुआ था ऐसे वानर को देखकर संसार की स्थिति के जानकार मुनियों के हृदय में दया उत्पन्न हुई ॥२४०॥
उसी समय धर्मदान करने में तसर एवं तपरूपी धन के धारक मुनियों ने उस वानर के लिए सब पदार्थों का त्याग कराकर पंच-नमस्कार मन्त्र का उपदेश दिया ॥२४१॥
उसके फलस्वरूप वह वानर योनि में उत्पन्न हुए अपने पूर्व विकृत शरीर को छोड़कर क्षणभर में उत्तम शरीर का धारी महोदधिकुमार नामक भवनवासी देव हुआ ॥२४२॥
तदनन्तर इधर राजा विद्युत्केश जबतक अन्य वानरों को मारने के लिए उद्यत हुआ तब तक अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव जानकर महोदधिकुमार देव वहाँ आ पहुँचा । आकर उसने अपने पूर्व शरीर का पूजन किया ॥२४३॥
दुष्ट मनुष्यों के द्वारा वानरों के समूह मारे जा रहे हैं यह देख उसने विक्रिया की सामर्थ्य से वानरों की एक बड़ी भारी सेना बनायी ॥२४४॥
उन वानरों के मुख दाढ़ों से विकराल थे, उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं, सिन्दूर के समान लाल-लाल उनका रंग था और वे भयंकर शब्द कर रहे थे ॥२४५॥
कोई वानर पर्वत उखाड़कर हाथ में लिये थे, कोई वृक्ष उखाड़कर हाथ में धारण कर रहे थे, कोई हाथों से जमीन कूट रहे थे और कोई पृथ्वी झूला रहे थे ॥२४६॥
क्रोध के भार से जिनके अंग महारुद्र (महा भयंकर) दिख रहे थे और जो दूर-दूर तक लम्बी छलाँगें भर रहे थे ऐसे मायामयी वानरों ने अतिशय कुपित वानरवंशी राजा विद्युत्केश विद्याधर से कहा ॥२४७॥
कि अरे दुराचारी! ठहर-ठहर, अब तू मृत्यु के वश आ पड़ा है, अरे पापी! वानर को मारकर अब तू किसकी शरण में जायेगा? ॥२४८॥
ऐसा कहकर हाथों में पर्वत धारण करने वाले उन मायामयी वानरों ने समस्त आकाश को इस प्रकार व्याप्त कर लिया कि सुई रखने को भी स्थान नहीं दिखाई देता था ॥२४९॥
तदनन्तर आश्चर्य को प्राप्त हुआ विद्युत् के विचार करने लगा कि यह वानरों का बल नहीं है, यह तो कुछ और ही होना चाहिए ॥२५०॥
तब शरीर की आशा छोड़ नीतिशास्त्र का पण्डित विद्युत्केश मधुरवाणी द्वारा विनयपूर्वक वानरों से बोला ॥२५१॥
कि हे सत्पुरुषों! कहो आप लोग कौन हो? तुम्हारे शरीर अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे हैं, तुम्हारी यह शक्ति वानरों की स्वाभाविक शक्ति तो नहीं दिखाई पड़ती ॥२५२॥
तदनन्तर विद्याधरों के राजा विद्यत्केश को विनयावनत देखकर महोदधिकुमार ने यह वचन कहे ॥२५३॥
कि पशु जाति के स्वभाव से जो अत्यन्त चपल था तथा इसी चपलता के कारण जिसने तुम्हारी स्त्री का अपराध किया था ऐसे जिस वानर को तूने मारा था वह मैं ही हूँ । साधुओं के प्रसाद से इस देवत्व पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ । यह पर्याय महाशक्ति से युक्त है तथा इच्छानुसार इसमें संपदाएँ प्राप्त होती हैं ॥२५४-२५५॥
तुम मेरी विभूति को देखो यह कह कर उसने मनोदधि कुमारदेव के योग्य अपनी उत्कृष्ट लक्ष्मी उसके सामने प्रकट कर दी ॥२५६॥
यह देख भय से विद्युत्केश का सर्व शरीर काँपने लगा, उसका हृदय विदीर्ण हो गया, रोमांच निकल आये और आँखे घूमने लगीं ॥२५७॥
तब महोदधि कुमार ने कहा कि डरो मत । देव की वाणी सुन, दुःखी होते हुए विद्युत्केश ने गद्गद वाणी में कहा कि मैं क्या करूँ? जो आप आज्ञा करो सो करूँ ॥२५८॥
तदनन्तर वह देव राजा विद्युत्केश को जिन्होंने पंच नमस्कार मन्त्र दिया था उन गुरु के पास ले गया । वहाँ जाकर देव तथा राजा विद्युत्केश दोनों ने प्रदक्षिणा देकर गुरु के चरणों में नमस्कार दिया ॥२५९॥

महोदधिकुमार देव ने मुनिराज की यह कहकर बार-बार स्तुति की कि मैं यद्यपि वानर था तो भी समस्त प्राणियों से स्नेह रखनेवाले आप ऐसे गुरु को पाकर मैंने यह देव पर्याय प्राप्त की है । यह कहकर उसने महामालाओं से मुनिराज को पूजा की तथा चरणों में नमस्कार किया॥२६०-२६१॥

यह आश्चर्य देखकर विद्याधर विद्युत्केश ने मुनिराज से पूछा कि हे देव! मैं क्या करूँ? मेरा क्या कर्तव्य है? इसके उत्तर में मुनिराज ने निम्नांकित हितकारी वचन कहे कि चार ज्ञान के धारी हमारे गुरु पास ही विद्यमान हैं सो हम लोग उन्हीं के समीप चलें, यही सनातन धर्म है ॥२६२-२६३॥

आचार्य के समीप रहने पर भी जो उनके पास नहीं जाता है और स्वयं उपदेशादि देकर आचार्य का काम करता है वह मूर्ख शिष्य, शिष्यपना को दूर से ही छोड़ देता है । वह न तो शिष्य रहता है और न आचार्य ही कहलाता है, वह धर्मरहित है, कुमार्गगामी है, अपने समस्त आचार से भ्रष्ट है और साधुजनों के द्वारा निन्दनीय है ॥२६४-२६५॥

मुनिराज के ऐसा कहने पर देव और विद्याधर दोनों ही परम आश्चर्य को प्राप्त हुए । अपने-अपने परिवार के साथ उन्होंने मन में विचार किया कि अहो तप का कैसा लोकोत्तर माहात्म्य है कि ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न मुनिराज के भी अन्य गुरु विद्यमान हैं ॥२६६-२६७॥

तदनन्तर धर्म के लिए जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे देव और विद्याधर उक्त मुनिराज के साथ उनके गुरु के समीप गये ॥२६८॥

वहाँ जाकर उन्होंने बड़े आदर के साथ प्रदक्षिणा देकर गुरु को नमस्कार किया और नमस्कार के अनन्तर न तो अत्यन्त दूर और न अत्यन्त पास किन्तु कुछ दूर हट कर बैठ गये ॥२६९॥

तदनन्तर तप की राशि से उत्पन्न दीप्ति से देदीप्यमान मुनिराज की उस उत्कृष्ट मुद्रा को देखकर देवघर विद्याधर धर्माचार से समुद्भत किसी अद्भूत चिन्ता को प्राप्त हुए । उस समय हर्ष और आश्चर्य से सबके नेत्र-कमल प्रफुल्लित हो रहे थे तथा सभी महाविनय से युक्त थे ॥ २७०-२७१॥

तत्पश्चात् देव और विद्याधर दोनों ने हाथ जोड़ मस्तक से लगाकर मुनिराज से धर्म तथा उसके यथायोग्य फल को पूछा ॥२७२॥

तदनन्तर जिनका मन सदा प्राणियों के हित में लगा रहता था तथा जिनकी समस्त चेष्टाएँ संसार के कारणों के सम्पर्क से सदा दूर रहती थीं ऐसे मुनिराज सजल मेघ की गर्जना के समान गम्भीर वाणी से जगत् का कल्याण करने वाले उत्कृष्ट धर्म का निरूपण करने लगे ॥ २७३-२७४॥

जब मुनिराज बोल रहे थे तब लतामण्डप में स्थित मयूरों के समूह मेघ गर्जना की शंका कर हर्ष से नृत्य करने लगे थे ॥२७५॥

मुनिराज ने कहा कि हे देव और विद्याधरी ! संसार का कल्याण करने वाले जिनेन्द्र भगवान ने धर्म का जैसा स्वरूप कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ आप—लोग मन स्थिर कर सुनो ॥२७६॥

जिनका चित्त विचार करने में जड़ है ऐसे बहुत से अधम प्राणी धर्म के नाम पर अधर्म का ही सेवन करते हैं ॥२७७॥

जो मोही प्राणी गन्तव्य दिशा को जाने बिना यही मार्ग है ऐसा समझ विरुद्ध दिशा में जाता है वह दीर्घकाल बीत जाने पर भी इष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता है ॥२७८॥

विचार करने की क्षमता से रहित विषय लम्पटी मनुष्य,कथा-कहानियों द्वारा जिसे धर्म संज्ञा दी गई है ऐसे जीवघात आदि से उत्पन्न अधर्म का ही सेवन करते हैं ॥२७९॥

मिथ्यादर्शन से दूषित मनुष्य ऐसे अधर्म का अभिप्राय पूर्वक सेवन कर तिर्यंच तथा नरकगति के दुःखों के पात्र होते हैं ॥२८०॥

कुयुक्तियों के जाल से परिपूर्ण ग्रन्थों के **अर्थ** से मोहित प्राणी धर्म प्राप्त करने की इच्छा से बड़े-बड़े दण्डों के द्वारा आकाश को ताडित करते हैं अर्थात् जिन कार्यों में धर्म की गन्ध भी नहीं उन्हें धर्म समझकर करते हैं ॥२८१॥

जिसमें प्रतिपादित आचार, हिंसादि पापों से रहित है तथा जिसमें शरीर-श्रम-कायक्लेश का उपदेश दिया गया है ऐसे किसी मिथ्या शासन में भी यद्यपि थोड़ा धर्म का अंश होता है तो भी सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण वह निर्मूल ही है । ऐसे जीवों का ज्ञानरहित क्षुद्र चारित्र मुक्ति का कारण नहीं है ॥२८२-२८३॥

मिट्टी का ढेला भी पार्थिव है और वैदूर्य मणि भी पार्थिव है सो पार्थिवत्व सामान्य की अपेक्षा दोनों के गुण आदिक एक समान नहीं हो जाते ॥२८४॥

मिथ्यादृष्टियों के द्वारा निरूपित धर्म मिट्टी के ढेले के समान है और जिनेन्द्र भगवान के द्वारा निरूपित धर्म वैदूर्य मणि के समान है जब कि धर्म संज्ञा दोनों में ही समान है ॥२८५॥

धर्म का मूल दया है और दया का मूल अहिंसा रूप परिणाम है । परिग्रही मनुष्यों के हिंसा निरन्तर होती रहती है ॥२८६॥

दया के सिवाय सत्य वचन भी धर्म है परन्तु सत्य वचन वह कहलाता है कि जिससे दूसरे को दुःख न हो । अदत्तादान का त्याग करना, परस्त्री का छोड़ना, धनादिक में सन्तोष रखना, इन्द्रियों का निवारण करना, कषायों को कुश करना और ज्ञानी मनुष्यों की विनय करना, यह सम्यग्दृष्टि गृहस्थों का व्रत **अर्थ**ात् धर्म का विधिपूर्वक निरूपण करता हूँ सो सुनो ॥२८७-२८९॥

जो पंच महाव्रत रूपी उन्नत हाथी के स्कन्ध पर सवार हैं, तीन गुप्ति रूपी मजबूत तथा निश्छिद्र कवच से जिनका शरीर आच्छादित है, जो पंच समितिरूपी पैदल सिपाहियों से युक्त है, और जो नाना तपरूपी महातीक्ष्ण शस्त्रों के समूह से सहित हैं ऐसे दिगम्बर यति रूपी महाराजा, कषाय रूपी सामन्तों से परिवृत तथा मोह रूपी हाथी पर सवार संसार रूपी शत्रु को नष्ट करते हैं ॥२६०-२६२॥

जब सब प्रकार के आरम्भ का त्याग किया जाता है और सम्यग्दर्शन धारण किया जाता है तभी मुनियों का धर्म प्राप्त होता है । यह संक्षेप में धर्म का स्वरूप समझो ॥२६३॥

यह धर्म ही त्रिलोक सम्बन्धी लक्ष्मी को प्राप्ति का कारण है । उत्तम पुरुषों ने इस धर्म को ही उत्कृष्ट मंगलस्वरूप कहा है ॥२६४॥

जिस धर्म के द्वारा महा सुखदायी त्रिलोक का शिखर **अर्थ**ात् मोक्ष प्राप्त हो जाता है उस धर्म का और दूसरा कौन उत्कृष्ट गुण कहा जावे? अर्थात् धर्म का सर्वोपरि गुण यही है कि उससे मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥२९५॥

गृहस्थ धर्म के द्वारा यह मनुष्य स्वर्ग में देवी समूह के मध्य में स्थित हो संकल्प मात्र से प्राप्त उत्तमोतम भोगों को भोगता है और मुनि धर्म के द्वारा उस मोक्ष को प्राप्त होता है जहाँ कि इसे अनुपम, निर्बाध तथा अनन्त सुख मिलता है ॥२६६-२९७॥

स्वर्गगामी उत्कृष्ट मनुष्य स्वर्ग से च्युत होकर पुन: मुनिदीक्षा धारण करते हैं और दो तीन भवों में ही परम पद (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं ॥ २९८॥

परन्तु जो पापी मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे काकतालीयन्याय से यद्यपि स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं तो भी वहाँ से स्तुत हो कुयोनियों में ही भ्रमण करते रहते हैं ॥२९९॥

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित वाक्य **अर्थ**ात् शास्त्र ही उत्तम वाक्य हैं, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा निरूपित तप ही उत्तम तप है, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रोक्त धर्म ही परम धर्म है और जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट मत ही परम मत है ॥३००॥

जिस प्रकार नगर की ओर जानेवाले पुरुष को खेद निवारण करनेवाला जो वृक्षमूल आदि का संगम प्राप्त होता है वह अनायास ही प्राप्त होता है उसी प्रकार जिन शासन रूपी मार्ग से मोक्ष की ओर प्रस्थान रहनेवाले पुरुष को जो देव तथा विद्याधर आदि की लक्ष्मी प्राप्त होती है वह अनुषंग से ही प्राप्त होती है -- उसके लिए मनुष्य को प्रयत्न नहीं करना पड़ता है ॥३०१-३०२॥

जिनधर्म, इन्द्र आदि के भोगों का कारण होता है इसमें आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि इन्द्र आदि के भोग तो साधारण पुण्य मात्र से भी प्राप्त हो जाते हैं ॥३०३॥

इस गृहस्थ और मुनिधर्म के विपरीत जो भी आचरण अथवा ज्ञान है वह अधर्म कहलाता है ॥३०४॥

इस अधर्म के कारण यह जीव वाहन, ताड़न, छेदन, भेदन तथा शीत उष्ण की प्राप्ति आदि कारणों से नाना दुःख देने वाले तिर्यंचों में भ्रमण करता है ॥३०५॥

इसी अधर्म के कारण यह जीव निरन्तर अन्धकार से युक्त रहनेवाले अनेक नरकों में भ्रमण करता है । इन नरकों में कितने ही नरक तो ऐसे हैं जिनमें ठण्डी! हवा के कारण निरन्तर शरीर काँपता रहता है । कितने ही ऐसे हैं जो निकलते हुए तिलगों से भयंकर दिखने वाली अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त है । कितने ही ऐसे हैं जो नाना प्रकार के महा शब्द करने वाले यन्त्रों से व्याप्त हैं । कितने ही ऐसे हैं जो विक्रियानिर्मित सिंह, व्याघ्र, वृक, बाज तथा गीध आदि जीवों से भरे हुए हैं । कितने ही ऐसे हैं जो चक्र, करैत, भाला, तलवार आदि की वर्षा करने वाले वृक्षों से युक्त हैं । कितने ही ऐसे हैं जिनमें पिघलाया हुआ रांगा, सीसा आदि पिलाया जाता है । कितने ही ऐसे हैं जिनमें तीक्ष्ण मुख वाली दुष्ट मक्खियाँ आदि विद्यमान हैं । कितने ही ऐसे हैं जिन में रक्त की कीच में कृमि के समान अनेक छोटे-छोटे जीव बिलबिलाते रहते हैं और कितने ही ऐसे हैं जिन में परस्पर-एक दूसरे के द्वारा दुःख के कारण उत्पन्न होते रहते हैं ॥३०६-३१०॥

इस प्रकार के सदा दु:खदायी नरकों में जीवों को जो दुःख प्राप्त होता है उसे कहने के लिए कौन समर्थ है? ॥३११॥
जिसप्रकार तुम दोनों ने पहले दुःख देने वाली अनेक कुयोनियों में भ्रमण किया था यदि अब भी तुम धर्म से वंचित रहते हो तो पुन: अनेक कुयोनियों में भ्रमण करना पड़ेगा ॥३१२॥
मुनिराज के यह कहने पर देव तथा विद्याधर ने उनसे पूछा कि हे भगवन्! हम दोनों ने किस कारण कुयोनियों में भ्रमण किया है? सो कहिए ॥३१३॥
तदनन्तर - हे वत्सों! मन स्थिर करो इस प्रकार के मधुर वचन कहकर संयमरूपी आभूषण से विभूषित मुनिराज उन दोनों के भवान्तर कहने लगे ॥३१४॥
इस दु:खदायी संसार में मोह से उन्मत्त हो तुम दोनों एक दूसरे का वध करते हुए चिरकाल तक भ्रमण करते रहे ॥३१५॥
तदनन्तर किसी प्रकार कर्मयोग से मनुष्य भव को प्राप्त हुए । निश्चय से संसार में धर्म प्राप्ति का कारणभूत मनुष्यभव का मिलना अत्यन्त कठिन है ॥३१६॥
उनमें से एक तो काशी देश में श्रावस्ती नगरी में राजा का सुयशोदत्त नामा मन्त्री हुआ । सुयशोदत्त अत्यन्त रूपवान् था, कारण पाकर उसने दीक्षा ले ली और महातपश्चरण से युक्त हो पृथ्वी पर विहार करने लगा ॥३१७॥
विहार करते हुए सुयशोदत्तमुनि काशी देश में आकर किसी निर्जन्तु स्थान में विराजमान हो गये । उनकी पूजा के लिए अनेक सम्यग्दृष्टि स्त्रियाँ आयी थीं सो पापी व्याध, स्त्रियों से घिरे उन मुनि को देख तीक्ष्ण वचनरूपी शस्त्रों से भय उत्पन्न करता हुआ बेधने लगा ॥ ३१८-३२०॥
यह निर्लज्ज नग्न, तथा स्नान रहित मलिन शरीर का धारक, शिकार के लिए प्रवृत्त हुए मुझ को महा अमंगलरूप हुआ है ॥३२१॥
धनुष से भय उत्पन्न करनेवाला व्याध जब उक्त प्रकार के वचन कह रहा था तब दुःख के कारण मुनि का ध्यान कुछ कलुषता को प्राप्त हो गया ॥३२२॥
क्रोधवश वे विचारने लगे कि रुक्ष वचन कहने वाले इस पापी व्याध को मैं एक मुट्ठी के प्रहार से कण-कण कर चूर्ण कर डालता हूँ ॥३२३॥
मुनि ने तपश्चरण के प्रभाव से कापिष्ठ स्वर्ग में जाने योग्य जो पुण्य उपार्जन किया था वह क्रोध के कारण क्षणभर में नष्ट हो गया ॥३२४॥
तदनन्तर कुछ समताभाव से मरकर वह ज्योतिषीदेव हुआ । वहाँ से आकर तू विद्युत्केश नामक विद्याधर हुआ है ॥३२५॥
और व्याध का जीव चिरकाल तक संसाररूपी अटवी में भ्रमण कर लंका के प्रमदवन में वानर हुआ ॥३२६॥
सो चपलता करने के कारण स्त्री के निमित्त तूने इसे बाण से मारा । वही अन्त में पंचनमस्कार मन्त्र प्राप्त कर महोदधि नाम का देव हुआ है ॥३२७॥
ऐसा विचारकर है देव विद्याधरों! तुम दोनों अब अपना वैर-भाव छोड़ दो जिससे फिर भी संसार में भ्रमण नहीं करना पड़े ॥३२८॥
हे भद्र-पुरुषों ! तुम भद्र आचरण करने में तत्पर हो इसलिए सिद्धों के उस सुख की अभिलाषा करो जिसकी मनुष्य-मात्र प्रशंसा नहीं कर सकता ॥३२९॥
इन्द्र आदि देव जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे मुनिसुव्रत भगवान को परमभक्ति से युक्त हो नमस्कार करो ॥३३०॥
वे भगवान् आत्महित का कार्य पूर्ण कर चुके हैं । अब पर हितकारी कार्य करने में ही संलग्न हैं सो तुम दोनों उनकी शरण में जाकर परम सुख को प्राप्त करोगे ॥३३१॥
तदनन्तर मुनिराज के मुखरूपी सूर्य से निर्गत वचनरूपी किरणों से विद्युत्केश कमल के समान परम प्रबोध को प्राप्त हुआ॥३३२॥
फलस्वरूप वह धीर वीर, सुकेश नामक पुत्र के लिए अपना पद सौंपकर चारण कवि धारी मुनिराज का शिष्य हो गया **अर्थ**ात् उनके समीप उसने दीक्षा धारण कर ली ॥३३३॥
तदनन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र -- इन तीनों की आराधना कर वह अन्त में समाधि के प्रभाव से उत्तम देव हुआ ॥ ३३४॥
इधर किष्कपुर का स्वामी महोदधि, बिजली के समान कान्ति को धारण करने वाली स्त्रियों के साथ, जिस पर चन्द्रमा की किरणें पड़ रहीं थीं ऐसे महामनोहर उत्तुंग भवन के शिखर पर सुन्दर गोष्ठी रूपी अमृत का स्वाद लेता हुआ इन्द्र के समान सुख से बैठा था ॥३३५-३३६॥

कि उसी समय शुक्ल वस्त्र को धारण करने वाले एक विद्याधर ने बड़े वेग से आकर तथा सामने खड़े होकर आदर पूर्वक प्रणाम किया और तदनन्तर विद्युत्केश विद्याधर के दीक्षा लेने का समाचार कहा । समाचार सुनते ही महोदधि ने भोगों से विरक्त होकर दीक्षा लेने का विचार किया ॥३३७-३३८॥

महोदधि के यह कहते ही कि मैं दीक्षा लेता हूँ अन्तःपुर से विलाप का बहुत भारी शब्द उठ खड़ा हुआ । उस विलाप की प्रतिध्वनि समस्त महलों में गूंजने लगी ॥३३९॥

वीणा-बाँसुरी आदि के शब्दों से मिश्रित मृदंग ध्वनि की तुलना करनेवाला स्त्रियों का वह विलाप, साधारण मनुष्य की बात जाने दो, मुनि के भी चित्त को हर रहा था **अर्थ**ात् करुणा से द्रवीभूत कर रहा था ॥३४०॥

उसी समय युवराज भी वहाँ आ गया । वह नेत्रों में नहीं समाने वाले जल की बड़ी मोटी धारा का बरसाता हुआ आदरपूर्वक बोला कि विद्युत्केश अपने पुत्र सुकेश को परमप्रीति के कारण अपि के लिए सौंप गया है । वह नवीन राज्य पर आरूढ़ हुआ है इसलिए आपके द्वारा रक्षा करने योग्य है ॥३४१-३४२॥

जिनका हृदय दुखी हो रहा था ऐसे नीति निपुण मन्त्रियों ने भी अनेक शास्त्रों के उदाहरण देकर प्रेरणा की कि इस महा वैभवशाली निष्कण्टक राज्य का इन्द्र के समान उपभोग करो और उत्कृष्ट भोगों से यौवन को सफल करो ॥३४३-३४४॥

जिनके मस्तक चरणों में नम्रीभूत थे, जो अपने गुणों के द्वारा उत्कट प्रेम प्रकट कर रही थीं तथा जिनकी आँखों से आँसू झर रहे थे ऐसी स्त्रियों ने भी यह कहकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया कि है नाथ! जिनके हृदय आपके हृदय में स्थित हैं ऐसी हम सबको अनाथ बनाकर लताओं को छोड़ वृक्ष के समान आप कहाँ जा रहे हैं? ॥३४५-३४६॥

हे नाथ! यह मनोहर राज्यलक्ष्मी पतिव्रता स्त्री के समान चिरकाल से आपके उत्कृष्ट गुणों से बद्ध है-आप में आसक्त है इसे छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं? और जिनके कपोलों पर अश्रु बह रहे थे ऐसे सामन्तों ने भी राजकीय आडम्बर से रहित हो एक साथ प्रार्थना की पर सब मिलकर भी उसके मानस को नहीं बदल सके ॥३४७-३४८॥

अन्त में उसने स्नेहरूपी पाश को छेदकर तथा समस्त परिग्रह का त्याग कर प्रतिचन्द्र नामक पुत्र के लिए राज्य सौंप दिया और शरीर में भी नि:स्पृह होकर कठिन दिगम्बरी लक्ष्मी-मुनिदीक्षा धारण कर ली । वह पूर्ण बुद्धि को धारण करनेवाला अतिशय गम्भीर था और अपनी सौम्यता के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी तल पर स्थिर रहनेवाला चन्द्रमा ही हो ॥३४६-३५०॥

तदनन्तर ध्यानरूपी हाथी पर बैठे हुए मुनिराज महोदधि तपरूपी तीक्ष्ण बाण से संसाररूपी शत्रु का शिर छेदकर सिद्धवन **अर्थ**ात् मोक्ष में प्रविष्ट हुए ॥३५१॥

तदनन्तर प्रतिचन्द्र भी अपने ज्येष्ठ पुत्र किष्किन्ध के लिए राज्यलक्ष्मी और अन्ध्रकरूढि नामक छोटे पुत्र के लिए युवराज-पद देकर निर्ग्रन्थ दीक्षा को प्राप्त हुआ और निर्मल ध्यान के प्रभाव से सिद्धालय में प्रविष्ट हो गया **अर्थ**ात् मोक्ष चला गया ॥३५२-३५३॥

तदनन्तर-जिनका तेज एक दूसरे में आक्रान्त हो रहा था ऐसे सूर्य-चन्द्रमा के समान तेजस्वी दोनों भाई किष्किन्ध और अन्ध्रकरूढि पृथिवी पर अपना कार्यभार फैलाने को उद्यत हुए ॥३५४॥

इसी समय विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में इन्द्र के समान रथनूपुर नाम का नगर था ॥३५५॥

उसमें दोनों श्रेणियों का स्वामी महा-पराक्रमी तथा शत्रुओं को भय उत्पन्न करनेवाला राजा अशनिवेग रहता था ॥३५६॥

अशनिवेग का पुत्र विजयसिंह था । आदित्यपुर के राजा विद्यामन्दर विद्याधर की वेगवती रानी से समुत्पन्न एक श्रीमाला नाम की पुत्री थी । वह इतनी सुन्दरी थी कि अपनी कान्ति से आकाशतल को लिप्त करती थी । विद्यामन्दर ने पुत्री को यौवनवती देख आत्मीय जनों की अनुमति से स्वयंवर रचवाया । अशनिवेग का पुत्र विजयसिंह श्रीमाला को चाहता था इसलिए रूप के गर्व से प्रेरित हो स्वयंवर में गया ॥३५७-३५९॥

जिनके शरीर भूषित थे ऐसे अन्य समस्त विद्याधर भी मणियों से सुशोभित विमानों के द्वारा आकाश को भरते हुए स्वयंवर में पहुँचे ॥३६०॥

तदनन्तर जो रत्नमय खम्भों पर खड़े थे, ऊँचे-ऊँचे सिंहासनों से युक्त थे तथा जिन में खचित मणियों की किरणें फैल रही थीं ऐसे मनोहर मंचों पर प्रमुख-प्रमुख विद्याधर यथास्थान आरूढ़ हुए। उन विद्याधरों के साथ उनकी शरीर-रक्षा के लिए उपयोगी परिमित परिवार भी था ॥३६१-३६२॥

तदनन्तर मध्य में विराजमान श्रीमाला पुत्री पर सब विद्याधरों के नेत्ररूपी नीलकमल एक साथ पड़े ॥३६३॥
तदनन्तर जिनकी आशा स्वयंवर में लग रही थी और जिनका चित्त काम से आलिंगित था ऐसे विद्याधर में निम्नांकित सुन्दर चेष्टाएँ प्रकट हुई ॥३६४॥
किसी विद्याधर के मस्तक पर स्थित उन्नत मुकुट, यद्यपि निश्चल था तो भी वह उसे रत्नों की किरणों से आच्छादित हाथ के द्वारा निश्चल कर रहा था॥३६५॥
कोई विद्याधर कोहनी कमर के पास रख जमुहाई लेता हुआ शरीर को मोड़ रहा था अँगड़ाई ले रहा था । उसकी इस क्रिया से शरीर के सन्धि-स्थान चटक कर शब्द कर रहे थे ॥३६६॥
कोई विद्याधर बगल में रखी हुई देदीप्यमान छुरी को हाथ के अग्रभाग से चला रहा था तथा बार-बार उसकी ओर कटाक्ष से देखता था ॥३६७॥
यद्यपि पास में खड़ा पुरुष चमर ढोर रहा था तो भी कोई विद्याधर वस्त्र के अंचल से लीला पूर्वक मुख के ऊपर हवा कर रहा था ॥३६८॥
कोई एक विद्याधर, जिसकी हथेली ऊपर की ओर थी ऐसे बायें हाथ से मुँह ढककर, जिसकी मुट्ठी बँधी थी ऐसी दाहिनी भुजा को संकुचित कर फैला रहा था ॥३६९॥
कोई एक रति कुशल विद्याधर, पद्मासन पर रखे दाहिने पाँव को उठाकर धीरे से बायीं जाँघ पर रख रहा था ॥३७०॥
कन्या की ओर कटाक्ष चलाता हुआ कोई एक युवा हथेली पर कपोल रखकर पैर के अँगूठे से पद्मासन को कुरेद रहा था ॥३७१॥
जिसमें लगा हुआ मणियों का समूह शेषनाग के समान जान पड़ता था ऐसे कसकर बँधे हुए कटिसूत्र को खोलकर कोई युवा उसे फिर से धीरे-धीरे बाँध रहा था ॥३७२॥
कोई एक युवा दोनों हाथों की चटचटाती अँगुलियों को एक दूसरे में फँसाकर ऊपर की ओर कर रहा था तथा सीना फुलाकर भुजाओं का तोरण खड़ा कर रहा था ॥३७३॥
जिसकी चंचल आँखें कन्या की ओर पड़ रही थीं ऐसा कोई एक युवा बगल में बैठे हुए मित्र का हाथ अपने हाथ में ले मुस्कुराता हुआ निष्प्रयोजन कथा कर रहा था-गप-शप लड़ा रहा था ॥३७४॥
कोई एक युवा, जिस पर चन्दन का लेप लगाने के बाद केशर का तिलक लगाया था तथा जिस पर हाथ रखा था ऐसे विशाल वक्षस्थल पर दृष्टि डाल रहा था ॥३७५॥
कोई एक विद्याधर ललाट पर लटकते हुए घुँघराले बालों को बायें हाथ की प्रदेशिनी अँगुली में फँसा रहा था ॥३७६॥
कोई एक युवा स्वच्छ ताम्बूल खाने से लाल-लाल दिखने वाले ओठ को धीरे-धीरे बायें हाथ से खींचकर भौंह ऊपर उठाता हुआ देख रहा था ॥३७७॥
और कोई एक युवा कर्णिका की पराग को फैलाता हुआ दाहिने हाथ से जिस पर भौंरे मँडरा रहे थे ऐसा कमल घुमा रहा था ॥३७८॥
उस समय स्वयंवर मण्डप में वीणा, बाँसुरी शंख, मृदंग, झालर, काहल भेरी और मर्दक नामक बाजों से उत्पन्न महा-शब्द हो रहा था ॥३७९॥
महापुरुषों की चेष्टाएँ देख जो मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे तथा जिन्होंने अलग-अलग अपने झुण्ड बना रखे थे ऐसे बन्दीजनों के द्वारा मंगल पाठ का उच्चारण हो रहा था ॥३८०॥
तदनन्तर महा-शब्द के शान्त होने के बाद दाहिने हाथ में स्वर्णमय छड़ी को धारण करने वाली सुमंगला धाय कन्या से निम्न वचन बोली । उस समय कन्या का सुख विनय से अवनत था मणिमयी आभूषणों से वह कल्पलता के समान जान पड़ती थी ॥३८१-३८२॥
वह अपना कोमल हस्त-कमल यद्यपि सखी के कन्धे पर रखी थी तो भी वह नीचे की ओर खिसक रहा था । वह पालकी पर सवार थी और काम को प्रकट करने वाली थी ॥३८३॥
आगत राजकुमारों का परिचय देती हुई सुमंगला धाय बोली कि हे पुत्री ! यह नभस्तिलक नगर का राजा, चन्द्रकुण्डल भूपाल की विमला नामक रानी से उत्पन्न हुआ है ॥३८४॥
मार्तण्डकुण्डल इसका नाम है, अपनी कान्ति से सूर्य को जीत रहा है, सन्धि, विग्रह आदि गुणों से युक्त है तथा इन्हीं सब कारणों से यह

अपने मण्डल में परम प्रमुखता को प्राप्त हुआ है ॥३८५॥
जब गोष्ठियों में राजाओं के गुणों की चर्चा शुरू होती है तब विद्वज्जन सबसे पहले इसी का नाम लेते हैं और हर्षातिरेक के कारण उस समय विद्वज्जनों के शरीर रोमांच रूपी कण्टकों से व्याप्त हो जाते हैं ॥३८६॥
हे पुत्री ! यदि इसके साथ रमण करने की तेरे मन की इच्छा है तो जिसने समस्त शास्त्रों का सार देखा है ऐसे इस मार्तण्डकुण्डल को स्वीकृत कर ॥३८७॥
तदनन्तर जिसका यौवन कुछ ढल चुका था ऐसे विद्याधरों के राजा मार्तण्डकुण्डल का श्रीमाला ने मुख नीचा करने मात्र से ही निराकरण कर दिया ॥३८८॥
तदनन्तर सुमंगला धाय बोली कि हे पुत्री ! कान्ति, दीप्ति और विभूति के द्वारा जो समस्त पुरुषों का अधीश्वर है ऐसे इस राजकुमार पर अपनी दृष्टि डालो ॥३८९॥
यह रत्नपुर का स्वामी है, राजा विद्यांग और रानी लक्ष्मी का पुत्र है, विद्या समुद्घात इसका नाम है तथा समस्त विद्याधरों का स्वामी है ॥३९०॥
वीरों में हलचल मचाने वाला इसका नाम सुनते ही शत्रु भय से वायु के द्वारा कम्पित पीपल के पत्ते की दशा को प्राप्त होते हैं **अर्थ**ात् पीपल के पत्ते के समान काँपने लगते हैं ॥३९१॥
अनेक क्षुद्र राजाओं के पास भ्रमण करने से जो थक गयी थी ऐसी लक्ष्मी, हाररूपी तकिया से सुशोभित इसके विस्तृत वक्षःस्थल पर मानो विश्राम को प्राप्त हुई है ॥३९२॥
यदि इसकी गोद में बैठने की तेरी अभिलाषा है तो इसे स्वीकार कर । बिजली सुमेरुपर्वत के साथ समागम को प्राप्त हो ॥३९३॥
श्रीमाला उसे अपने नेत्रों से सरलता पूर्वक देखती रही इसी से उसका निराकरण हो गया सो ठीक ही है क्योंकि कन्या जिसे वर रूप से पसन्द करती है उस पर उसकी दृष्टि चंचल हो जाती है ॥३९४॥
तदनन्तर उसका अभिप्राय जानने वाली सुमंगला उसे दूसरे राजा के पास ले जाकर बोली ॥३९५॥
कि यह राजा वज्रायुध और रानी वज्रशीला का पुत्र खेचरभानु वज्रपंजर नामक नगर में रहता है ॥३९६॥
लक्ष्मी यद्यपि स्वभाव से चंचल है तो भी सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान इसकी दोनों भुजाओं पर बँधी हुई के समान सदा स्थिर रहती है ॥३९७॥
यह सच है कि नाममात्र के अन्य विद्याधर भी हैं परन्तु वे सब जुगनू के समान हैं और यह उनके बीच सूर्य के समान देदीप्यमान है ॥३९८॥
यद्यपि इसका मस्तक स्वाभाविक प्रमाण से ही परम ऊँचाई को प्राप्त है फिर भी इस पर जो जगमगाते रत्नों से सुशोभित मुकुट बाँधा गया है सो केवल उत्कर्ष प्राप्त करने के लिए ही बांधा गया है ॥३९९॥
हे सुन्दरि ! यदि इन्द्राणी के समान समस्त भोग भोगने की तेरी इच्छा है तो इस विद्याधरों के अधिपति को स्वीकृत कर ॥४००॥
तदनन्तर उस खेचरभानुरूपी सूर्य को देखकर कन्यारूपी कुमुदिनी परम संकोच को प्राप्त हो गयी । यह देख सुमंगला धाय ने कुछ आगे बढ़कर कहा ॥४०१॥
कि यह राजा चित्राम्बर और रानी पद्मश्री का पुत्र चन्द्रानन है, चन्द्रपुरनगर का स्वामी है । देखो, सुन्दर चन्दन से चर्चित इसका वक्षःस्थल कितना चौड़ा है? यह चन्द्रमा की किरणों से आलिंगित कैलास पर्वत के तट के समान कितना भला मालूम होता है? ॥४०२-४०३॥
छलकती हुई किरणों से सुशोभित हार इसके वक्षःस्थल पर ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसा कि उठते हुए जल कणों से सुशोभित निर्झर कैलास के तट पर सुशोभित होता है ॥४०४॥
इसके नाम के अक्षररूपी किरणों से आलिंगित शत्रु का भी मन परम हर्ष को प्राप्त होता है तथा उसका सब दु:खरूपी सन्ताप छूट जाता है ॥४०५॥
हे सौम्यदर्शने! यदि तेरा चित्त इस पर प्रसन्नता को प्राप्त है तो चन्द्रमा के साथ रात्रि के समान तू इसके साथ समागम को प्राप्त हो ॥४०६॥
तदनन्तर नेत्रों को आनन्दित करने वाले चन्द्रमा पर जिस प्रकार कमलिनी का मन प्रीति को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार राजा चन्द्रानन पर श्रीमाला का मन प्रीति को प्राप्त नहीं हुआ ॥४०७॥

तब धाय बोली कि हे कन्ये ! इस राजा पुरन्दर को देखो । यह पुरन्दर क्या है मानो तुम्हारे संगम की लालसा से पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ साक्षात् पुरन्दर **अर्थ**ात् इन्द्र ही है ॥४०८॥

यह राजा मेरुकान्त और रानी श्रीरम्भा का पुत्र है मन्दरकुंज नगर का स्वामी है, मेघ के समान इसकी जोरदार आवाज है ॥४०९॥

युद्ध में भय से पीड़ित शत्रु इसकी सम्मुखागत दृष्टि को सहन करने में असमर्थ रहते फिर बाणों की तो बात ही अलग है ॥४१०॥

मुझे तो लगता है कि देवों का अधिपति इन्द्र भी इससे भयभीत हो सकता है, वास्तव में इसका अखण्डित प्रताप समस्त पृथ्वी में भ्रमण करता है ॥४११॥

हे सुन्दर शब्दों वाली नितम्बिनि! प्रेमपूर्ण कलह के समय तूँ इसके उन्नत मस्तक को अपने चरण से ताड़ित कर ॥४१२॥

राजा पुरन्दर भी उसके हृदय में स्थान नहीं पा सका सो ठीक ही है क्योंकि अपने-अपने कर्मों के कारण लोगों की चित्तवृत्ति विचित्र प्रकार की होती है ॥४१३॥

जिस प्रकार सरोवर में तरंग हंसी को दूसरे कमल के पास ले जाती है उसी प्रकार धाय उस कन्या को सभारूपी सरोवर में किसी दूसरे विद्याधर के पास ले जाकर बोली कि हे पुत्री ! इस राजा महाबल को देख । यह राजा मनोजव के द्वारा वेगिनी नामक रानी से उत्पन्न हुआ है । वायु के समान इसका वेग है ॥४१४-४१५॥

नाकार्धपुर का स्वामी है, इसके निर्मल गुण गणना से परे हैं ॥४१६॥

अपने शरीर के वेग से उत्पन्न वायु के द्वारा पर्वतों को गिरा देनेवाला यह राजा भौंह उठाते ही समस्त पृथिवी में चक्कर लगा देता है ॥४१७॥

यह विद्या के बल से पृथिवी को आकाशगामिनी बना सकता है और समस्त ग्रहों को पृथिवी-तलचारी दिखा सकता है ॥४१८॥

अथवा तीन लोक के सिवाय चतुर्थ लोक की रचना कर सकता है, सूर्य को चन्द्रमा के समान शीतल बना सकता है, सुमेरु पर्वत का चूर्ण कर सकता है, वायु को स्थिर बना सकता है, समुद्र को सुखा सकता है और आकाश को मूर्तिक बना सकता है । अथवा अधिक कहने से क्या? इसकी जो इच्छा होती है वैसा ही कार्य हो जाता है ॥४१६-४२०॥

धाय ने यह सब कहा सही, पर कन्या का मन: उसमें स्थान नहीं पा सका । कन्या सर्व शास्त्रों को जानने वाली थी इसलिए उसने जान लिया कि यह धाय अत्युक्ति युक्त कह रही है - इसके कहने में सत्यता नहीं है ॥४२१॥

इस तरह धाय के द्वारा जिनके वैभव का वर्णन किया गया था ऐसे बहुत से विद्याबलधारी विद्याधरों का परित्याग कर कन्या आगे बढ़ गयी ॥४२२॥

तदनन्तर जिस प्रकार चन्द्रलेखा जिन पर्वतों को छोड़कर आगे बढ़ जाती है वे पर्वत अन्धकार से मलिन जाते उसी प्रकार कन्या श्रीमाली जिन विद्याधरों को छोडकर आगे बढ़ गयी थी वे शोक को धारण करते हुए मलिन मुख हो गये ॥४२३॥

एक दूसरे को देखने से जिनकी कान्ति नष्ट हो गयी थी ऐसे लज्जा युक्त विद्याधरों के मन में विचार उठ रहा था कि यदि पृथ्वी फट जायें तो उसमें हम प्रविष्ट हो जावें ॥४२४॥

तदनन्तर विद्याधरों की कान्ति का वर्णन करने वाली धाय की उपेक्षा कर श्रीमाला की दृष्टि बड़े आदर से किष्किन्धकुमार के ऊपर पड़ी ॥४२५॥

उसने लोगों के देखते-देखते ही वरमाला किष्किन्धकुमार के गले में डाल दी और उसी समय स्नेह से भरी श्रीमाला ने परस्पर वार्तालाप किया ॥४२६॥

तदनन्तर किष्किन्ध और अन्ध्रकरूढ़ि पर विजयसिंह की दृष्टि पड़ी । विद्या के बल से गर्वित विजयसिंह ने उन दोनों को बुलाकर कहा ॥४२७॥

कि अरे ! यह तो विद्याधरों का समूह है, यहाँ आप लोग कहाँ आ गये? तुम दोनों का दर्शन अत्यन्त विरूप है । तुम क्षुद्र हो, वानर हो और विनय से रहित हो ॥४२८॥

न तो यहाँ फलों से नम्रीभूत मनोहर वन है और न निर्झरों को धारण करने वाली पहाड़ की गुफाएँ ही हैं ॥४२९॥

तथा जिनके मुख मांस के समान लाल-लाल हैं ऐसी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने वाली वानरियों के झुण्ड भी यहाँ कुचेष्टाएँ नहीं कर रहे हैं ॥४३०॥

इन पशु रूप वानर निशाचरों को यहाँ कौन बुलाकर लाया है? मैं आज उस नीच दूत का निपात (घात) करूँ ॥४३१॥
यह कह उसने अपने सैनिकों से कहा कि इन दुष्ट वानरों को इस स्थान से निकाल दो तथा इन्हें वृथा ही जो विद्याधरी प्राप्त करने की श्रद्धा हुई है उसे दूर कर दो ॥४३२॥
तदनन्तर विजयसिंह के कठोर शब्दों से रुष्ट हो किष्किन्ध और अन्ध्रकरूढ़ि दोनों वानरवंशी उस तरह महाक्षोभ को प्राप्त हुए जिस तरह कि हाथियों के प्रति सिंह महाक्षोभ को प्राप्त होते हैं ॥४३३॥
तदनन्तर स्वामी की निन्दारूपी महावायु से ताड़ित विद्याधरों की सेनारूपी वेला रुद्र-भयंकर चेष्टा करती हुई परम क्षोभ को प्राप्त हुई ॥४३४॥
कोई सामन्त दाहिने हाथ से बायें कन्धे को पीटने लगा । उस समय उसके वेगपूर्ण आघात के कारण बायें कन्धे से रक्त के छींटों का समूह उछटने लगा था ॥४३५॥
जिसका चित्त अत्यन्त क्षुभित हो रहा था ऐसा कोई एक सामन्त शत्रुओं पर क्रोध के आवेश से लाल-लाल भयंकर दृष्टि डाल रहा था । उसकी वह लाल दृष्टि ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रलय काल की उल्का ही हो ॥४३६॥
कोई सैनिक क्रोध से काँपते हुए दाहिने हाथ से वक्षःस्थल का स्पर्श कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त क्रूर कर्म करने के लिए किसी बड़े स्थान की खोज ही कर रहा हो ॥४३७॥
किसी ने मुसकराते हुए अपने एक हाथ से दूसरे हाथ को इतने जोर से पीटा कि उसका शब्द सुनकर पथिक चिरकाल के लिए बहरा हो गया ॥४३८॥
जिसका महा पीठ जड़ों के समूह से पृथ्वी पर मजबूत बँधा था और जो चंचल पल्लव धारण कर रहा था ऐसे किसी वृक्ष को कोई सैनिक जड से उखाड़ने लगा ॥४३९॥
किसी वानर ने मंच का खम्भा लेकर कन्धे पर इतने जोर से तोड़ा कि उसके निरन्तर बिखरे हुए छोटे-छोटे टुकड़ों से आकाश व्याप्त हो गया ॥४४०॥
किसीने अपने शरीर को इतने जोर से मोड़ा कि उसके पुरे हुए घाव फिर से फट गये तथा खून को बड़ी मोटी धाराओं से उसका शरीर उत्पात-काल के मेघ के समान जान पड़ने लगा ॥४४१॥
किसी ने मुँह फाड़कर इतने जोर से अट्टहास किया कि मानो वह समस्त संसार के अन्तराल को शब्दमय ही करना चाहता था ॥४४२॥
किसी ने अपनी जटाओं का समूह इतनी जोर से हिलाया कि उससे समस्त दिशाएँ व्याप्त हो गयीं और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो चिरकाल के लिए रात्रि ही हो गयी हो ॥४४३॥
कोई सैनिक दाहिने हाथ को संकुचित कर उससे बायीं भुजा को इतनी जोर से पीट रहा था कि उससे वज्रपात के समान भयंकर घोर शब्द हो रहा था ॥४४४॥
अरे दुष्ट विद्याधरों ! तुमने जो कठोर वचन कहे हैं उसके फलस्वरूप इस विध्वंस को सहन करो इस प्रकार के उच्च शब्दों से किसी का मुख शब्दायमान हो रहा था **अर्थ**ात् कोई चिल्ला-चिल्लाकर उक्त शब्द कह रहा था ॥४४५॥
तदनन्तर उस अपूर्व तिरस्कार के कारण वानरवंशी, विद्याधरों की सेना को नष्ट करने के लिए सम्मुख आये ॥४४६॥
तत्पश्चात् हाथी हाथियों से, रथों के सवार रथ के सवारों से और पैदल सिपाही पैदल सिपाहियों के साथ भयंकर युद्ध करने लगे ॥४४७॥
इस प्रकार दोनों सेनाओं में वहाँ महायुद्ध हुआ । ऐसा महायुद्ध कि जो दूर खड़े देवों के महान् आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था ॥४४८॥
किष्किन्ध और अन्ध्रक का मित्र जो सुकेश नाम का राक्षसों का राजा था वह युद्ध का समाचार सुन तत्काल ही मनोरथ के समान वहाँ आ पहुँचा ॥४४९॥
पहले अकम्पन की पुत्री सुलोचना के निमित्त जैसा महायुद्ध हुआ था वैसा ही युद्ध उस समय हुआ सो ठीक ही है क्योंकि युद्ध का कारण स्त्रियाँ ही हैं ॥४५०॥
इधर जब तक विद्याधर और राक्षसों के बीच भयंकर युद्ध होता है उधर तब तक कन्या को लेकर किष्किन्ध कृतकृत्य हो गया **अर्थ**ात् उसे लेकर युद्ध से भाग गया ॥४५१॥

विद्याधरों का राजा विजयसिंह ज्यों ही सामने आया त्यों ही अन्ध्रकरूढि ने ललकार कर उसका उन्नत मस्तक तलवार से नीचे गिरा दिया ॥ ४५२॥

जिस प्रकार एक आत्मा के बिना शरीर में इन्द्रियों का समूह जहाँ-तहाँ बिखर जाता है उसी प्रकार एक विजयसिंह के विना समस्त सेना इधर-उधर बिखर गयी ॥४५३॥

जब अशनिवेग ने पुत्र के वध का समाचार सुना तो वह शोक के कारण वज्र से ताड़ित हुए के समान परम दुखी हो मूर्छा रूपी गाढ़ अन्धकार से आवृत हो गया ॥४५४॥

तदनन्तर अपनी स्त्रियों के नयन जल से जिसका वक्षःस्थल भीग रहा था ऐसा अशनिवेग, जब प्रबोध को प्राप्त हुआ तब उसने क्रोध से भयंकर आकार धारण किया ॥४५५॥

तदनन्तर प्रलयकाल के उत्पात सूचक भयंकर सूर्य के समान उसके आकार को परिकर के लोग देखने में भी समर्थ नहीं हो सके ॥४५६॥

तदनन्तर उसने शस्त्रों से देदीप्यमान समस्त विद्याधरों के साथ जाकर किसी दूसरे ऊँचे कोट के समान किष्कुपुर को घेर लिया ॥४५७॥

तदनन्तर नगर को घिरा जान दोनों भाई युद्ध की लालसा रखते हुए सुकेश के साथ बाहर निकले ॥४५८॥

फिर वानर और राक्षसों की सेना ने गदा, शक्ति, बाण, पाश, भाले तथा बड़ी-बड़ी तलवारों से विद्याधरों की सेना को विध्वस्त कर दिया ॥ ४५९॥

उस महायुद्ध में अन्ध्रक, किष्किन्ध और सुकेश जिस दिशा में निकल जाते थे उसी दिशा के मार्ग चूर्णीकृत वानरों से भर जाते थे ॥४६०॥

तदनन्तर पुत्र वध से उत्पन्न क्रोधरूपी अग्नि की ज्वालाओं से प्रदीप्त हुआ अशनिवेग जोर का शब्द करता हुआ अन्ध्रक के सामने गया ॥ ४६१॥

तब किष्किन्ध ने विचारा कि अन्ध्रक अभी बालक है और यह पापी अशनिवेग महा उद्धत है, ऐसा विचारकर वह अशनिवेग के साथ युद्ध करने के लिए स्वयं उठा ॥४६२॥

सो अशनिवेग के पुत्र विद्युद्वाहन ने उसका सामना किया और फलस्वरूप दोनों में घोर युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि संसार में जितना पराभव होता है वह स्त्री के निमित्त ही होता है ॥४६३॥

इधर जब तक किष्किन्ध और विद्युद्वाहन में भयंकर युद्ध चलता है उधर तब तक अशनिवेग ने अन्ध्रक को मार डाला ॥४६४॥

तदनन्तर बालक अन्ध्रक, तेजरहित पृथ्वी पर पड़ा और निष्प्राण हो प्रातःकाल के चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने लगा **अर्थ**ात् प्रातःकालीन चन्द्रमा के समान कान्तिहीन हो गया ॥४६५॥

इधर किष्किन्ध ने एक शिला विद्युद्वाहन के वक्षस्थल पर फेंकी जिससे तड़ित हो वह मूर्च्छित हो गया परन्तु कुछ ही समय में सचेत होकर उसने वही शिला किष्किन्ध के वक्ष:स्थल पर फेंकी जिससे वह भी मूर्च्छा को प्राप्त हो गया । उस समय शिला के आघात से उसके नेत्र तथा मन दोनों ही घूम रहे थे ॥४६६-४६७॥

तदनन्तर प्रेम से जिसका चित्त भर रहा था ऐसा लंका का राजा सुकेश उसे प्रमाद छोड़कर शोध ही किष्कपुर ले गया । वहाँ चिरकाल के बाद उसे चेतना प्राप्त हुई ॥४६८॥

जब उसने आंखें खोली और सामने अन्ध्रक को नहीं देखा तब समीपवर्ती लोगों से पूछा कि हमारा भाई कहां है? ॥४६९॥

उसी समय उसने प्रलय की वायु से क्षोभित समुद्र के समान, अन्ध्रक की मृत्यु से उत्पन्न अन्तःपुर के रोने का शब्द सुना ॥४७०॥

तदनन्तर जिसके हृदय में भाई के गुणों के चिन्तवन से उत्पन्न दुःख की लहरें उठ रही थीं ऐसा किष्किन्ध शोकाग्नि से सन्तप्त हो चिरकाल तक विलाप करता रहा ॥४७१॥

हे भाई! मेरे रहते हुए तू मृत्यु को कैसे प्राप्त हो गया? तेरे मरने से मेरी दाहिनी भुजा ही भंग को प्राप्त हुई ॥४७२॥

उस पापी दुष्ट ने मुझ बालक पर शस्त्र कैसे चलाया? अन्याय में प्रवृत्ति करने वाले उस दुष्ट को धिक्कार है ॥४७३॥

जो तुझे निमेष मात्र भी नहीं देखता था तो आकुल हो जाता था यही मैं अब प्राणों को किस प्रकार धारण करूँगा, सो कह ॥४७४॥

अथवा मेरा कठोर चित्त वज्र से निर्मित है इसीलिए तो वह तेरी मृत्यु जानकर भी शरीर नहीं छोड़ रहा है ॥४७५॥

हे बालक ! मन्द-मन्द मुसकान से युक्त, वीर पुरुषों की गोष्ठी में समुत्पन्न जो तेरा प्रकट हर्षोल्लास था उसका स्मरण करता हुआ मैं दु:सह

दुःख प्राप्त कर रहा हूँ ॥४७६॥
पहले तेरे साथ जो-जो चेष्टाएं-कौतुक आदि किये थे वे समस्त शरीर में मानो अमृत का ही सिंचन करते थे ॥४७७॥
पर आज वे ही सब स्मरण में आते ही विष के सिञ्चन के समान मर्मघातक मरण क्यों प्रदान कर रहे हैं **अर्थ**ात् जो पहले अमृत के समान सुखदायी थे वे ही आज विष के समान दु:खदायी क्यों हो गये? ॥४७८॥
इस प्रकार भाई के स्नेह से दुःखी हुआ किष्किन्ध बहुत विलाप करता रहा । तदनन्तर सुकेश आदि ने उसे इस प्रकार समझाकर प्रबोध को प्राप्त कराया ॥४७९॥
उन्होंने कहा कि थोर-वीर मनुष्यों को क्षुद्र पुरुषों के समान शोक करना उचित नहीं है । यथार्थ में पण्डितजनों ने शोक को भिन्न नाम वाला पिशाच ही कहा है ॥४८०॥
कर्मों के अनुसार इष्टजनों के साथ वियोग का अवसर आने पर यदि शोक होता है तो वह आगे के लिए और भी दुःख देता है ॥४८१॥
विचारपूर्वक कार्य करने वाले मनुष्य को सदा वही कार्य करना चाहिए जो प्रयोजन से सहित हो । यह शोक प्रयोजन रहित है अत: बुद्धिमान् मनुष्य के द्वारा करने योग्य नहीं है ॥४८२॥
यदि शोक करने से मृतक व्यक्ति वापस लौट आता हो तो दूसरे लोगों को भी इकट्ठा कर शोक करना उचित है ॥४८३॥
शोक से कोई लाभ नहीं होता बल्कि शरीर का उत्कट शोषण ही होता है । यह शोक पापों का तीव्रोदय करने वाला और महामोह में प्रवेश कराने वाला है ॥४८४॥
इसलिए इस वैरी शोक को छोड़कर बुद्धि को स्वच्छ करो और करने योग्य कार्य में मन लगाओ क्योंकि शत्रु अपना संस्कार छोड़ता नहीं है ॥४८५॥
मोही मनुष्य शोक रूपी महापंक में निमग्न होकर अपने शेष कार्यों को भी नष्ट कर लेते हैं । मोही मनुष्यों का शोक तब और भी अधिक बढ़ता है जबकि अपने आश्रित मनुष्य उनकी ओर दीनता-भरी दृष्टि से देखते हैं ॥४८६॥
हमारे नाश का सदा ध्यान रखने वाला अशनिवेग चूँकि अत्यन्त बलवान् है इसलिए इस समय हम लोगों को इसके प्रतिकार का विचार अवश्य करना चाहिए ॥४८७॥
यदि शत्रु अधिक बलवान् है तो बुद्धिमान् मनुष्य किसी जगह छिपकर समय बिता देता है । ऐसा करने से वह शत्रु से प्राप्त होनेवाले पराभव से बच जाता है ॥४८८॥
छिपकर रहने वाला मनुष्य जब योग्य समय पाता है तब दूनी शक्ति को धारण करने वाले शत्रु को भी वश कर लेता है सो ठीक ही है क्योंकि सम्पदाओं की सदा एक ही व्यक्ति में प्रीति नहीं रहती ॥४८९॥
अत: परम्परा से चला आया हमारे वंश का निवासस्थल अलंकारपुर (पाताल लंका) इस समय मेरे ध्यान में आया है ॥४९०॥
हमारे कुल के वृद्धजन उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं तथा शत्रुओं को भी उसका पता नही है । वह इतना सुन्दर है कि उसे पाकर फिर मन स्वर्गलोक की आकांक्षा नहीं करता ॥४९१॥
इसलिए उठो हम लोग शीघ्र ही शत्रुओं के द्वारा अगम्य उस अलंकारपुर नगर में चलें। इस स्थिति में यदि वहाँ जाकर संकट का समय नहीं निकाला जाता है तो यह बड़ी अनीति होगी ॥४९२॥
इस प्रकार लंका के राजा सुकेश ने किष्किन्ध को बहुत समझाया पर उसका शोक दूर नहीं हुआ । अन्त में रानी श्रीमाला के देखने से उसका शोक दूर हो गया ॥४९३॥
तदनन्तर राजा किष्किन्ध और सुकेश अपने समस्त परिवार के साथ अलंकारपुर की ओर चले परन्तु विद्युद्वाहन शत्रु ने उन्हें देख लिया ॥४९४॥
वह भाई विजयसिंह के घात से अत्यन्त क्रुद्ध था तथा शत्रु का निर्मूल नाश करने में सदा उद्यत रहता था इसलिए भागते हुए सुकेश और किष्किन्ध के पीछे लग गया ॥४९५॥
यह देख नीतिशास्त्र के मर्मज्ञ तया शुद्ध बुद्धि को धारण करने वाले पुरुषों ने विद्युद्वाहन को समझाया कि भागते हुए शत्रुओं का पीछा नहीं करना चाहिए ॥४९६॥

पिता अशनिवेग ने भी उससे कहा कि जिस पापी वैरी ने तुम्हारे भाई विजयसिंह को मारा था उस अन्ध्रक को मैंने बाणों के द्वारा महानिद्रा प्राप्त करा दी है **अर्थ**ात् मार डाला है ॥४९७॥

इसलिए हे पुत्र ! लौटो, ये हमारे अपराधी नहीं हैं । महापुरुष को दुःखी जन पर दया करनी चाहिए ॥४९८॥

जिस भीरु मनुष्य ने अपनी पीठ दिखा दी वह तो जीवित रहने पर भी मृतक के समान है, तेजस्वी मनुष्य भला उसका और क्या करेंगे ॥ ४९९॥

इधर इस प्रकार अशनिवेग जब तक पुत्र को अपने अधीन रहने का उपदेश देता है उधर तब तक वानर और राक्षस अलंकारपुर (पाताललंका) में पहुँच गये ॥५००॥

वह नगर पाताल में स्थित था तथा रत्नों के प्रकाश से व्याप्त था सो उस नगर में वे दोनों शोक तथा हर्ष को धारण करते हुए रहने लगे ॥ ५०१॥

अथानन्तर एक दिन अशनिवेग शरद्ऋतु के मेघ को क्षणभर में विलीन होता देख राज्य-सम्पदा से विरक्त हो गया ॥५०२॥

विषयों के संयोग से जो सुख होता है वह क्षणभंगुर है तथा चौरासी लाख योनियों के संकट में मनुष्य जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है ॥५०३॥

ऐसा जानकर उसने सहस्रार नामक पुत्र को तो विधिपूर्वक राज्य दिया और स्वयं विद्युत्कुमार के साथ वह महाश्रमण **अर्थ**ात् निर्ग्रन्थ साधु हो गया ॥५०४॥

इस अन्तराल में अशनिवेग के द्वारा नियुक्त महाविद्या और महापराक्रम का धारी निर्घात नाम का विद्याधर लंका का शासन करता था ॥ ५०५॥

एक दिन किष्किन्ध बलि के समान पातालवर्ती अलंकारपुर नगर से निकलकर वन तथा पर्वतों से सुशोभित पृथिवी मण्डल का धीरे-धीरे अवलोकन कर रहा था । इसी अवसर पर उसे पता चला कि शत्रु शान्त हो चुके हैं । यह, जानकर वह निर्भय हो अपनी श्रीमाला रानी के साथ जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने के लिए सुमेरु पर्वत पर गया ॥५०६-५०७॥

वन्दना कर वापस लौटते समय उसने दक्षिणसमुद्र के तट पर पृथिवी-कर्णतटा नाम की अटवी देखी । यह अटवी देवकुरु के समान सुन्दर थी ॥५०८॥

किष्किन्ध ने, जिसका स्वर वीणा के समान सुखदायी था, जो वक्षःस्थल से सटकर बैठी थी और बायीं भुजा से अपने को पकड़े थी ऐसी रानी श्रीमाला से कहा ॥५०९॥

कि हे देवि! देखो, यह अटवी कितनी सुन्दर है, यहाँ के वृक्ष फूलों से सुशोभित हैं, तथा नदियों के जल की स्वच्छ एवं मन्द गति से ऐसी जान पड़ती है मानो इसने सीमन्त (माँग) ही निकाल रखी हो ॥५१०॥

इसके बीच में यह शरद्ऋतु के मेघ का आकार धारण करनेवाला तथा ऊंची-ऊँची शिखरों से सुशोभित धरणीमौलि नाम का पर्वत सुशोभित हो रहा है ॥५११॥

कुन्द के फूल के समान शुक्ल फेनपटल से मण्डित निर्झरनों से यह देदीप्यमान पर्वत ऐसा जान पड़ता है मानो अट्टहास ही कर रहा हो ॥ ५१२॥

यह वृक्ष की शाखाओं से आदरपूर्वक पुष्पांजलि बिखेरकर वायुकम्पित वृक्षों के वन से हम दोनों को आता देख आदर से मानो उठ ही रहा है ॥५१३॥

फूलों को सुगन्धि से समृद्ध तथा नासिका को लिप्त करने वाली वायु से यह पर्वत मानो हमारी अगवानी ही कर रहा है तथा झुकते हुए वृक्षों से ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोगों को नमस्कार ही कर रहा है ॥५१४॥

ऐसा जान पड़ता है कि आगे जाते हुए मुझे इस पर्वत ने अपने गुणों से मजबूत बाँधकर रोक लिया है इसीलिए तो मैं इसे लाँघकर आगे जानें के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥५१५॥

मैं यहाँ भूमिगोचरियों के अगोचर सुन्दर महल बनवाता हूँ । इस समय चूँकि मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है इसलिए वह आगामी शुभ की सूचना देता है ॥५१६॥

पाताल के बीच में स्थित अलंकारपुर में रहते-रहते मेरा मन खिन्न हो गया है सो यहाँ अवश्य ही प्रीति को प्राप्त होगा ॥५१७॥

प्रिया श्रीमाला ने किष्किन्ध के इस कथन का समर्थन किया तब आश्चर्य से भरा किष्किन्ध मेघसमूह को चीरता हुआ पर्वत पर उतरा ॥५१८॥

समस्त बान्धवों से युक्त, भारी हर्ष को धारण करने वाले राजा किष्किन्ध ने पर्वत के शिखर पर क्षण-भर में स्वर्ण के समान नगर की रचना की ॥५१९॥

जो अपना नाम था यशस्वी किष्किन्ध ने वही नाम उस नगर का रखा । यही कारण है कि वह पृथिवी में आज भी किष्किन्धपुर कहा जाता ॥५२०॥

पहले उस पर्वत का मधु यह नाम संसार में प्रसिद्ध था परन्तु अब किष्किन्धपुर के समागम से उसका नाम भी किष्किन्धगिरि प्रसिद्ध हो गया ॥५२१॥

सम्यग्दर्शन से सहित तथा जिनपूजा में उद्यत रहनेवाला राजा किष्किन्ध उत्कृष्ट भोगों को भोगता हुआ चिरकाल तक उस पर्वत पर निवास करता रहा ॥५२२॥

तदनन्तर राजा किष्किन्ध और रानी श्रीमाला के दो पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें बड़े का नाम सूर्यरज और छोटे का नाम यक्षरज था ॥५२३॥

इन दो पुत्रों के सिवाय उनके कमल के समान कोमल अंग को धारण करने वाली सूर्यकमला नाम को पुत्री भी उत्पन्न हुई । वह पुत्री इतनी सुन्दरी थी कि उसने अपनी शोभा के द्वारा समस्त विद्याधरों को बेचैन कर दिया था ॥५२४॥

अथानन्तर मेघपुरनगर में मेरु नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था । उसकी मघोनी नाम की रानी से मृगारिदमन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५२५॥

एक दिन मृगारिदमन अपनी इच्छानुसार भ्रमण कर रहा था कि उसने किष्किन्ध की पुत्री सूर्यकमला को देखा । उसे देख मृगारिदमन इतना उत्कण्ठित हुआ कि वह न तो रात में सुख पाता था और न दिन में ही ॥५२६॥

तदनन्तर मित्रों ने आदर के साथ उसके लिए सूर्यकमला की याचना की और राजा किष्किन्ध ने रानी श्रीमाला के साथ सलाह कर देना स्वीकृत कर लिया ॥५२७॥

ध्वजा पताका आदि से विभूषित, महामनोहर किष्किन्धनगर में विधिपूर्वक मृगारिदमन और सूर्यकमला का विवाह-मंगल पूर्ण हुआ ॥५२८॥

मृगारिदमन सूर्यकमला को विवाहकर जब वापस जा रहा था तब वह कर्ण नामक पर्वत पर ठहरा । वहाँ उसने कर्णकुण्डल नाम का नगर बसाया ॥५२९॥

अलंकारपुर के राजा सुकेश की इन्द्राणी नामक रानी से क्रमपूर्वक तीन महाबलवान् पुत्रों ने जन्म प्राप्त किया ॥५३०॥

उनमें से पहले का नाम माली, मँझले का नाम सुमाली और सबसे छोटे का नाम माल्यवान् था । ये तीनों ही पुत्र परमविज्ञानी तथा गुणरूपी आभूषणों से सहित थे ॥५३१॥

उन कुमारों की क्रीड़ा देवों की क्रीड़ा के समान अद्भुत थी तथा माता-पिता, बन्धुजन और शत्रुओं के भी मन को हरण करती थी ॥५३२॥

सिद्ध हुई विद्याओं से समुत्पन्न पराक्रम के कारण जिनकी क्रियाएँ अत्यन्त उद्धत हो रही थीं ऐसे उन कुमारों को माता-पिता बड़े प्रयत्न से बार-बार मना करते थे कि हे पुत्रों! यदि तुम लोग अपनी बालचपलता के कारण क्रीड़ा करने के लिए किष्किन्ध गिरि जाओ तो दक्षिण समुद्र के समीप कभी नहीं जाना ॥५३३-५३४॥

पराक्रम तथा बाल्य अवस्था के कारण समुत्पन्न कुतूहल की बहुलता से वे पुत्र प्रणाम कर माता-पिता से इसका कारण पूछ थे तो वे यही उत्तर देते थे कि हे पुत्रों! यह बात कहने की नहीं है । एक बार पुत्रों ने बड़े अनुनय विनय के साथ आग्रह कर पूछा तो पिता सुकेश ने उनसे कहा कि हे पुत्रों ! यदि तुम्हें इसका कारण अवश्य ही जानने का प्रयोजन है तो सुनो ॥५३५-५३७॥

बहुत पहले की बात है कि अशनिवेग लंका में शासन करने के लिए निर्घात नामक अत्यन्त क्रूर एवं बलवान् विद्याधर को नियुक्त किया वह लंका नगरी कुल-परम्परा से चली आयी हमारी शुभ नगरी है । वह यद्यपि हमारे लिए प्राणों समान प्रिय थी तो भी बलवान् शत्रु के भय से हमने उसे छोड़ दिया ॥५३८-५३९॥

पाप कर्म में तत्पर शत्रु ने जगह-जगह ऐसे गुप्तचर नियुक्त किये हैं जो सदा हम लोगों के छिद्र खोजने में सावधान रहते हैं ॥५४०॥

उसने जगह-जगह ऐसे यन्त्र बना रखे हैं कि जो आकाशांगण मे क्रीड़ा करते हुए आप लोगों को जानकर मार देते हैं ॥५४१॥
वे यन्त्र अपने सौन्दर्य से प्रलोभन देकर दर्शकों को भी बुलाते हैं और फिर उस तरह नष्ट कर देते हैं कि जिस तरह तपश्चरण के समय होनेवाले प्रमादपूर्ण आचरण, असमर्थ योगी को नष्ट कर देते हैं ॥५४२॥
इस प्रकार पिता का कहा सुन और उनके दुःख का विचारकर माली लम्बी साँस छोड़ने लगा तथा उसकी आँखों से आँसू बहने लगे ॥५४३॥
उसका चित्त क्रोध से भर गया, वह चिरकाल तक गर्व से मन्द-मन्द हँसता रहा और फिर अपनी भुजाओं का युगल देख इस प्रकार गम्भीर स्वर से बोला ॥५४४॥
हे पिताजी! इतने समय यह बात तुमने हम लोगों से क्यों नहीं कही? बड़े आश्चर्य की बात है कि आपने बड़े भारी स्नेह के बहाने हम लोगों को धोखा दिया ॥५४५॥
जो मनुष्य कार्य न कर केवल निष्प्रयोजन गर्जना कर रहे हैं वे लोक में शक्तिशाली होने पर भी महान् अनादर को पाते हैं ॥५४६॥
अथवा रहने दो, यह सब कहने से क्या? है तात! आप फल देखकर ही शान्ति को प्राप्त होंगे । जब तक यह कार्य पूरा नहीं हो जाता है तब तक के लिए मैं यह चोटी खोलकर रखूँगा ॥५४७॥
अथानन्तर अमंगल से भयभीत माता-पिता ने उन्हें वचनों से मना नहीं किया । केवल स्नेहपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखकर कहा कि हे पुत्रों! जाओ ॥५४८॥
तदनन्तर वे तीनों भाई भवनवासी देवों के समान पाताल से निकल कर शत्रु की ओर चले । उस समय वे तीनों भाई उत्साह से भर रहे थे तथा शस्त्रों से देदीप्यमान हो रहे थे ॥५४९॥
तदनन्तर चंचल शस्त्रों की धारा ही जिसमें लहरों का समूह था ऐसी राक्षसों की सेनारूपी नदी आकाशतल को व्याप्त कर उनके पीछे लग गयी ॥५५०॥
तीनों पुत्र आगे बढ़े जा रहे थे और जिनके हृदय स्नेह से परिपूर्ण थे ऐसे माता-पिता उन्हें जब तक वे नेत्रों से दिखते रहे तब तक मंगलाचार पूर्वक देखते रहे ॥५५१॥
तदनन्तर त्रिकूटाचल की शिखर से उपलक्षित लंकापुरी को उन्होंने गम्भीर दृष्टि से देखकर ऐसा समझा मानो हमने उसे ले ही लिया है ॥५५२॥
जाते-जाते ही उन्होंने कितने ही दैत्य मौत के घाट उतार दिये, कितने ही वश कर लिये और कितने ही स्थान से स्तुत कर दिये ॥५५३॥
शत्रुपक्ष के सामन्त नम्रीभूत होकर सेना में आकर मिलते जाते थे इससे विशालकीर्ति के धारक तीनों ही कुमार एक बड़ी सेना से युक्त हो गये थे ॥५५४॥
युद्ध में निपुण तथा चंचल छत्र की छाया से सूर्य को आच्छादित करनेवाला निर्घात, शत्रुओं का आगमन सुन लंका से बाहर निकला ॥५५५॥
तदनन्तर दोनों सेनाओं में महायुद्ध हुआ । उनका वह महायुद्ध घोड़ों, मदोन्मत्त हाथियों तथा अपरिमित रथों से जीवों को नष्ट करनेवाला था ॥५५६॥
हाथियों के समूह से आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वीमय ही हो, उनके गण्डस्थल से च्युत जल से ऐसा जान पड़ता था मानो जलमय ही हो, उनके कर्णरूपी तालपत्र से उत्पन्न वायु से ऐसा जान पड़ता था मानो वायुरूप ही हो और परस्पर के आघात से उत्पन्न अग्नि से ऐसा जान पड़ता था मानो अग्निरूप ही हो ॥५५७-५५८॥
युद्ध में दीन-हीन अन्य क्षुद्र विद्याधरों के मारने से क्या लाभ है? वह पापी निर्घात कहाँ है? कहाँ है? इस प्रकार प्रेरणा करता हुआ माली आगे बढ़ रहा था ॥५५९॥
अन्त में माली ने निर्घात को देखकर पहले तो उसे तीक्ष्ण बाणों से रथ-रहित किया और फिर तलवार के प्रहार से उसे समाप्त कर दिया ॥५६०॥
निर्घात को मरा जानकर जिनका चित्त भ्रष्ट हो गया था ऐसे दानव विजयार्ध पर्वत पर स्थित अपने-अपने भवनों में चले गये ॥५६१॥
युद्ध से डरने वाले कितने ही दीन-हीन दानव कण्ठ में तलवार लटकाकर शीघ्र ही माली की शरण में पहुँचे ॥५६२॥

तदनन्तर माली आदि तीनों भाइयों ने मंगलमय पदार्थों से सुशोभित लंकानगरी में प्रवेश किया । वहीं माता-पिता आदि इष्ट जनों के साथ समागम को प्राप्त हुए ॥५६३॥

तदनन्तर हेमपुर के राजा हेमविद्याधर की भोगवती रानी से उत्पन्न चन्द्रवती नामक शुभ पुत्री को माली ने विधिपूर्वक विवाहा । चन्द्रवती माली के मन में आनन्द उत्पन्न करने वाली थी तथा स्वभाव से ही चपल मन और इन्द्रियरूपी मृगों को बाँधने के लिए जाल के समान थी ॥५६४-५६५॥

प्रीतिकूटपुर के स्वामी राजा प्रीतिकान्त और रानी प्रीतिमती की पुत्री प्रीति को सुमाली ने प्राप्त किया ॥५६६॥

कनकाभनगर के स्वामी राजा कनक और रानी कनकश्री की पुत्री कनकावली को माल्यवान् ने विवाहा ॥५६७॥

सदा हृदय में निवास करने वाली ये इनकी प्रथम स्त्रियाँ थीं वैसे प्रत्येक की कुछ अधिक एक-एक हजार स्त्रियाँ थीं ॥५६८॥

तदनन्तर विजयार्ध पर्वत की दोनों श्रेणियाँ उनके पराक्रम से वशीभूत हो शेषाक्षत के समान उनकी आज्ञा को हाथ जोड़कर शिर से धारण करने लगीं ॥५६९॥

अन्त में अपने-अपने पदों पर अच्छी तरह आरूढ़ पुत्रों के लिए अपनी-अपनी सम्पदा सौंपकर सुकेश और किष्किन्ध शान्त चित्त हो निर्ग्रन्थ साधु हो गये ॥५७०॥

इस प्रकार प्राय: कितने ही बड़े-बड़े राक्षसवंशी और वानरवंशी राजा विषय सम्बन्धी सुख का उपभोग कर अन्त में संसार के सैकड़ों दोषों को नष्ट करनेवाला जिनेन्द्र प्रणीत मोक्ष मार्ग पाकर, प्रियजनों के गुणोत्पन्न स्नेह रूपी बन्धन से दूर हट अनुपम सुख से सम्पन्न मोक्षस्थान को प्राप्त हुए ॥५७१॥

कितने ही लोगों ने यद्यपि गृहस्थ अवस्था में बहुत भारी पाप किया था तो भी उसे निर्ग्रन्थ साधु हो ध्यान के योग से भस्म कर दिया था और मोक्ष में अपनी बुद्धि लगायी थी । इस प्रकार सम्यक्चारित्र के प्रभाव को जानकर हे भक्त प्राणियों ! शान्ति को प्राप्त होओ, मोह का उच्छेद कर विजयरूपी सूर्य को प्राप्त होओ और अन्त में ज्ञान का राज्य प्राप्त करो ॥५७२॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य प्रोक्त पद्मचरित में वानरवंश का कथन करनेवाला छठा पर्व पूर्ण हुआ ॥6॥

## दशानन

सप्तमं पर्व

कथा :

अथानन्तर रथनूपुर अत्यन्त पराक्रम का धारी राजा सहस्रार राज्य करता था ॥१॥

उसकी मैनासुन्दरी नामक प्रिय स्त्री थी । मैनासुन्दरी मन तथा शरीर दोनों से ही सुन्दर थी और अनेक उत्तमोत्तम गुणों से युक्त थी ॥२॥

वह गर्भिणी हुई । गर्भ के कारण उसका समस्त शरीर कृश हो गया और समस्त आभूषण शिथिल पड़ गये । उसे बड़े आदर के साथ देखकर राजा सहसा ने पूछा कि हे प्रिये! तेरे अंग अत्यन्त कृशता को क्यों धारण कर रहे है? तेरी क्या अभिलाषा है? जो मेरे राज्य में दुर्लभ हो ॥३-४॥

हे प्राणों से अधिक प्यारी देवी ! कह तेरी क्या अभिलाषा है? मैं आज ही उसे अच्छी तरह पूर्ण करूंगा ॥५॥

हे कान्ते! देवांगनाओं पर शासन करने वाली इन्द्राणी को भी मैं ऐसा करने में समर्थ हूँ कि वह अपनी हथेलियों से तेरे पाद मर्दन करे ॥६॥

पति के ऐसा कहने पर उसकी सुन्दर गोद में बैठी मैनासुन्दरी, विनय से लीला पूर्वक इस प्रकार के वचन बोली ॥७॥

हे नाथ! जब से यह कोई बालक मेरे गर्भ में आया है तभी से इन्द्र की सम्पदा भोगने की मेरी इच्छा है ॥८॥

हे स्वामिन्! अत्यन्त विवशता के कारण ही मैंने लज्जा छोड़कर ये मनोरथ आपके लिए प्रकट किये है ॥९॥

वल्लभा के ऐसा कहते ही विध्याचल से समृद्ध सहस्त्रार ने तत्क्षण ही उसके लिए इन्द्र जैसी भोग सम्पदा तैयार कर दी ॥१०॥

इस प्रकार दोहद पूर्ण होने से उसका समस्त शरीर पुष्ट हो गया और वह कहने में न आवे ऐसी दीप्ति तथा कान्ति धारण करने लगी ॥११॥

उसका इतना तेज बढ़ा कि वह ऊपर आकाश में जाते हुए सूर्य से भी खिन्न हो उठती थी तथा समस्त दिशाओं को आज्ञा देने की उसकी इच्छा होती थी ॥१२॥

समय पूर्ण होने पर उसने, जिसका शरीर समस्त लक्षणों से युक्त था तथा जो बान्धव जनों के हर्ष और सम्पदा का उत्तम कारण था ऐसा

पुत्र उत्पन्न किया ॥१३॥
तदनन्तर हर्ष से भरे सहसा ने पुत्र-जन्म का महान् उत्सव किया । उस समय शंख और तुरही के शब्दों से दिशाएँ बहरी हो गयी थीं ॥१४॥
नगर की स्त्रियां नृत्य करते समय जब नुपूरों की झनकार के साथ अपने पैर पृथिवी पर पटकती थीं तो पृथिवी तल काँप उठता था ॥१९॥
बिना विचार किये इच्छानुसार धन दान में दिया गया । मनुष्यों की बात दूर रही हाथियों ने भी उस समय अपनी चंचल सूंड़ ऊपर उठाकर गर्जना करते हुए नृत्य किया था ॥१६॥
शत्रुओं के घरों में शोक सूचक उत्पात होने लगे और बन्धुजनों के घरों में बहुत भारी सम्पदाओं की सूचना देने वाले शुभ शकुन होने लगे ॥१७॥
चूँकि बालक के गर्भ में रहते हुए माता को इन्द्र के भोग भोगने की इच्छा हुई थी इसलिए पिता ने उस बालक का इन्द्र नाम रखा ॥१८॥
वह बाल कथा फिर भी उसकी क्रीड़ाएँ शक्तिसम्पन्न तरुण मनुष्य को जीतने वाली थी, शत्रुओं का मान खण्डित करने वाली थीं और उत्तम कार्य में प्रवृत्त थीं ॥१९॥
क्रम-क्रम से वह उस यौवन को प्राप्त हुआ जिसने तेज से सूर्य को, कान्ति से चन्द्रमा को और स्थैर्य से पर्वत को जीत लिया था ॥२०॥
उसके कन्धे दिग्गज के गण्डस्थल के समान स्थूल और भुजाएँ गोल थीं तथा उसने विशाल वक्षस्थल से समस्त दिशाएँ मानो आच्छादित ही कर रखी थीं ॥२१॥
जिनके घुटने मांसपेशियों में वृद्ध थे ऐसी उसकी दोनों गोल जाँघें स्तम्भों की तरह वक्षस्थल रूपी भवन को धारण करने के कारण परम स्थिरता को प्राप्त हुई थीं ॥२२॥
बहुत भारी विद्याबल और ऋद्धि से सम्पन्न उस तरुण इन्द्र ने विजयार्ध पर्वत के समस्त विद्याधर राजाओं को बेंत के समान नम्र वृत्ति धारण करा रखी थी **अर्थ**ात् सब उसके आज्ञाकारी थे ॥२३॥
उसने इन्द्र के महल के समान सुन्दर महल बनवाया । अड़तालीस हजार उसकी स्त्रियाँ थीं । छब्बीस हजार नृत्यकार नृत्य करते थे । आकाश में चलने वाले हाथियों और घोड़ों की तो गिनती ही नहीं थी ॥२४-२५॥
एक हाथी था, जो चन्द्रमा के समान सफेद था, ऊँचा था, आकाशरूपी आँगन में चलनेवाला था, जिसे कोई रोक नहीं सकता था, महा शक्तिशाली था, आठ दाँतों से सुशोभित था, बड़ी मोटी गोल सूंड़ से जो दिशाओं में मानो अर्गल लगा रखता था, तथा गुणों के द्वारा पृथिवी पर प्रसिद्ध था, उसका उसने ऐरावत नाम रखा था ॥२६-२७॥
चारों दिशाओं में परम शक्ति से युक्त चार लोकपाल नियुक्त किये, पट्टरानी का नाम शची और सभा का नाम सुधर्मा रखा ॥२८॥
वज्र नाम का शस्त्र, तीन सभाएं, अप्सराओं के समूह, हरिणकेशी सेनापति, अश्विनी कुमार वैद्य, आठ वसु, चार प्रकार के देव, नारद, तुम्बुरु, विश्वास आदि गायक, उर्वशी, मेनका, मजुस्वनी आदि अप्सरा, और बृहस्पति मन्त्री आदि समस्त वैभव उसने इन्द्र के समान ही निश्चित किया था ॥२९-३१॥
तदनन्तर यह, नमि विद्याधर के पुण्योदय से प्राप्त इन्द्र का ऐश्वर्य धारण करता हुआ समस्त विद्याधरों का अधिपति हुआ ॥३२॥
इसी समय लंकापुरी का स्वामी महा मानी माली था सो समस्त विद्याधरों पर पहले ही के समान शासन करता था ॥३३॥
अपने भाइयों के बल से गर्व को धारण करनेवाला माली, लंका में रहकर ही विजयार्ध पर्वत के समस्त नगरों में अपना शासन करता था ॥३४॥
वेश्या, वाहन, विमान, कन्या, वस्त्र तथा आभूषण आदि जो-जो श्रेष्ठ वस्तु, दोनों श्रेणियों में गुप्तचरों से इसे मालूम होती थी उस सबको धीर-वीर माली जबरदस्ती शीघ्र ही अपने यहाँ बुलवा लेता था । वह बल, विद्या, विभूति आदि से अपने आपको ही सर्वश्रेष्ठ मानता था ॥३५-३६॥
अब इन्द्र का आश्रय पाकर विद्याधर माली की आज्ञा भंग करने लगे सो यह समाचार सुन महाबलवान् माली भाई तथा किष्किन्ध के पुत्रों के साथ विजयार्ध गिरि को ओर चला ॥३७॥
कोई अनेक प्रकार की कान्ति को धारण करने वाले तथा सन्ध्याकार के मेघों के समान ऊँचे विमानों पर बैठकर जा रहे थे, कोई बड़े-बड़े महलों के समान सुवर्णजटित रथों में बैठकर चल रहे थे, कोई मेघों के समान श्यामवर्ण हाथियों पर बैठे थे, कोई मन के समान शीघ्र गमन

करने वाले घोड़ों पर सवार थे, कोई शार्दूलों पर, कोई चीतों पर, कोई बैलों पर, कोई सिंहों पर, कोई ऊँटों पर, कोई गधों पर, कोई भैंसों पर, कोई हंसों पर, कोई भेड़ियों पर तथा कोई अन्य वाहनों पर बैठकर प्रस्थान कर रहे थे। इस प्रकार महा देदीप्यमान शरीर के धारक अन्यान्य वाहनों से समस्त आकाश गण को आच्छादित करता हुआ माली विजयार्ध के निकट पहुँचा ॥३८-४०॥

अथानन्तर भाई के स्नेह से भरे सुमाली ने माली से कहा कि हे भाई! हम सब आज यहीं ठहरें, आगे न चलें अथवा लंका को वापस लौट चलें । इसका कारण यह है कि आज मार्ग में बार-बार अपशकुन दिखाई देते हैं ॥४१-४२॥

देखो उधर सूखे वृक्ष के अग्रभाग पर बैठा कौआ एक पैर संकुचित कर बार-बार पंख फड़फड़ा रहा है । उसका मन अत्यन्त व्याकुल दिखाई देता है, सूखा काठ चोंच में दबाकर सूर्य की ओर देखता हुआ क्रूर शब्द कर रहा है मानो हम लोगों को आगे जाने से रोक रहा है ॥ ४३-४४॥

इधर ज्वालाओं से जिसका मुख अत्यन्त रुद्र मालूम होता है ऐसी यह शृगाली दक्षिण दिशा में रोमांच धारण करती हुई भयंकर शब्द कर रही है ॥४५॥

देखो, परिवेष से युक्त सूर्य के बिम्ब में वह भयंकर कबन्ध दिखाई दे रहा है और उससे खून की बूंदों का समूह बरस रहा है ॥४६॥

उधर समस्त पर्वतों को कम्पित करने वाले भयंकर वज्र गिर रहे हैं तो इधर आकाश में खुले केश धारण करने वाली समस्त स्त्रियों दिखाई दे रहीं हैं ॥४७॥

देखो, दाहिनी ओर वह गर्दन ऊपर को मुख उठाकर आकाश को बड़ी तीक्ष्णता से मुखरित कर रहा है तथा खुर के अग्रभाग से पृथिवी को खोदता हुआ भयंकर शब्द कर रहा है ॥४८॥

तदनन्तर बाजूबन्दों से दोनों भुजाओं को अच्छी तरह पीड़ित करते हुए माली ने मुस्कराकर सुमाली को इस प्रकार स्पष्ट उत्तर दिया कि शत्रु के वध का संकल्प कर तथा विजयी हाथी पर सवार हो जो पुरुषार्थ का धारी युद्ध के लिए चल पड़ा है, वह वापस कैसे लौट सकता है ॥ ४९-५०॥

जो मदमत्त हाथी की दाढ़ी को हिला रहा है, अपनी आँखों से ही जिसने शत्रुओं को भयभीत कर दिया है, जो तीक्ष्ण बाणों से परिपूर्ण है, दाँतों से जिसने अधरों चबा रखा है, तनी हुई भृकुटियों से जिसका मुँह कुटिल हो रहा है तथा देव लोग जिसे आश्चर्यचकित हो देखते हैं, ऐसा योद्धा क्या वापस लौटता है ॥५१-५२॥

मैंने मेरु पर्वत की कन्दराओं तथा सुन्दर नन्दन वन में रमण किया है, गगनचुम्बी जिनमन्दिर बनवाये हैं ॥५३॥

किमिच्छक दान दिया है, उत्तमोत्तम भोग भोगे हैं और समस्त संसार को उज्ज्वल करने वाला यश उपार्जित किया है ॥५४॥

इस प्रकार जन्म लेने का जो कार्य था उसे मैं कर चुका हु, कृतकृत्य हुआ हूँ, अब युद्ध में मुझे प्राण भी छोड़ना पड़े तो इससे क्या? मुझे अन्य की आवश्यकता नहीं ॥५५॥

'वह बेचारा भयभीत हो युद्ध से भाग गया' -- जनता के ऐसे शब्दों को धीरवीर मनुष्य कैसे सुन सकता है ॥५६॥

क्रोध से जिसका मुख तमतमा रहा था ऐसा माली भाई से इस प्रकार कहता हुआ तत्क्षण बिना जाने ही विजयार्ध के शिखर पर चला गया ॥५७॥

तदनन्तर जिन-जिन विद्याधरों ने उसका शासन नहीं माना था उन सबके नगर उसने क्रूर सामन्तों के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिए ॥५८॥

जिस प्रकार मदमस्त हाथी कमल वनों को विध्वस्त कर देते हैं उसी प्रकार क्रोध से भरे विद्याधरों ने वहाँ के उद्यान-बाग-बगीचे विध्वस्त कर दिये ॥५९॥

तदनन्तर माली के सामन्तों द्वारा पीड़ित विद्याधरों को प्रजा भय से कांपती हुई सहस्रार की शरण में गयी ॥६०॥

और उसके चरणों में नमस्कार कर इस प्रकार दीनता-भरे शब्द कहने लगी -- हे नाथ! सुकेश के पुत्रों ने समस्त प्रजा को क्षत-विक्षत कर दिया है सो उसकी रक्षा करो ॥७०॥

तब सहस्रार ने विद्याधरों से कहा कि आप लोग मेरे पुत्र - इन्द्र के पास जाओ और उससे अपनी रक्षा की बात कहो ॥६२॥

जिस प्रकार बलिष्ठ शासन को धारण करनेवाला इन्द्र, स्वर्ग की रक्षा करता है उसी प्रकार पाप को नष्ट करनेवाला मेरा पुत्र इस समस्त लोक की रक्षा करता है ॥६३॥

इस प्रकार सहस्रार का उत्तर पाकर विद्याधर इन्द्र के समीप गये और हाथ जोड़ प्रणाम करने के बाद सब समाचार उससे कहने लगे ॥६४॥
तदनन्तर गर्व पूर्ण मुस्कान से जिसका मुख सफेद हो रहा था ऐसे क्रुद्ध इन्द्र ने पास में रखे वज्र पर लाल-लाल नेत्र डालकर कहा कि ॥६५॥
जो लोक के कण्टक हैं मैं उन्हें बड़े प्रबल से खोज-खोजकर नष्ट करना चाहता हूँ फिर आप लोग तो स्वयं ही मेरे पास आये हैं और मैं लोक का रक्षक कहलाता हूँ ॥६६॥
तदनन्तर जिसे सुनकर मदोन्मत्त हाथी अपने बन्धन के खम्भों को तोड़ देते थे ऐसा तुरही का विषम शब्द उसने युद्ध का संकेत करने के लिए कराया ॥६७॥
उसे सुनते हो जो कवचरूपी आभूषण से सहित थे, हथियार जिनके हाथ में थे और जो युद्ध सम्बन्धी परम हर्ष धारण कर रहे ऐ ऐसे विद्याधर अपने-अपने घरों से बाहर निकल पड़े ॥६८॥
वे विद्याधर मायामयी रथ, घोड़े, हाथी, ऊंट, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, युग, हंस, बकरा, बैल, मेढ़ा, विमान, मोर और गंधर्व आदि वाहनों पर बैठे ॥६९॥
इनके सिवाय जो नाना प्रकार के शस्त्रों की प्रभा से आलिंगित थे तथा भौंहों के भंग से जिनके मुख विषम दिखाई देते थे ऐसे लोकपाल भी अपने-अपने परिकर के साथ बाहर निकल पड़े ॥७०॥
जिसका शरीर कवच से आच्छादित था, और जिसके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था ऐसा इन्द्र विद्याधर भी ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो देवों के साथ बाहर निकला ॥७१॥
तदनन्तर प्रलयकाल के मेघों के समान भयंकर देवों और राक्षसों के बीच ऐसा विकट युद्ध हुआ कि जो बड़ी कठिनाई से देखा जाता था तथा क्रूर चेष्टाओं से भरा था ॥७२॥
घोड़ा घोड़ा को गिरा रहा था, रथ रथ को चूर्ण कर रहा था, हाथी हाथी को भग्न कर रहा था और पैदल सिपाही पैदल सिपाही को नष्ट कर रहा था ॥७३॥
भाले, मुद्गर, चक्र, तलवार, बन्दूक, मुसल, बाण, गदा, कनक और पाश आदि शंखों से समस्त आकाश आच्छादित हो गया था ॥७४॥
तदनन्तर देव कहने वाले विद्याधरों ने एक ऐसी सेना बनायी जो महान् उत्साह से युक्त थी, आगे चलने में कुशल थी, उदार थी और शत्रु के उद्योग को विचलित करने वाली थी ॥७५॥
देवों की सेना के प्रधान विद्युत्वान्, चारुदान, चन्द्र, नित्यगति तथा चलज्ज्योति प्रभाढ्य आदि देवों ने राक्षसों की सेना को क्षत-विक्षत बना दिया । तब वानरवंशियों में प्रधान दुर्धर पराक्रम के धारी ऋक्षरज और सूर्यरज राक्षसों को नष्ट होते देख युद्ध करने के लिए तैयार हुए ॥ ७६-७७॥
ये दोनों ही वीर विजयी जैसे वेग को धारण करते थे इसलिए क्षण-क्षण में अन्यत्र दिखाई देते थे । इन दोनों ने देवों को इतना मारा कि उनसे पीठ दिखाते ही बनी ॥७८॥
इधर राक्षस भी इन दोनों का बल पाकर शस्त्रों के समूह से आकाश में अन्धकार फैलाते हुए युद्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥७९॥
उधर जब इन्द्र ने देखा कि राक्षसों और वानरवंशियों के द्वारा देवों की सेना नष्ट की जा रही है तब वह क्रुद्ध हो स्वयं युद्ध करने के लिए उठा ॥८०॥
तदनन्तर शस्त्र वर्षा और गम्भीर गर्जना करने वाले वानर तथा राक्षस रूपी मेघों ने उस इन्द्ररूपी पर्वत को घेर लिया ॥८१॥
तब लोकपालों की रक्षा करते हुए इन्द्र ने जोर से गर्जना की और सब ओर छोड़े हुए बाणों से वानर तथा राक्षसों को नष्ट करना शुरू कर दिया ॥८२॥
तदनन्तर सेना को व्याकुल देख माली स्वयं उठा । उस समय वह क्रोध से उत्पन्न तेज से समस्त आकाश को देदीप्यमान कर रहा था ॥८३॥
तदनन्तर माली और इन्द्र को अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ । आश्चर्य से जिनके चित्त भर रहे थे ऐसी दोनों ओर की सेनाएं उनके उस युद्ध को बड़े गौरव से देख रही थीं ॥८४॥
तदनन्तर इन्द्र ने, जो कान तक खींचकर छोड़ा गया था तथा अपने नाम से चिह्नित था ऐसा एक बाण माली के ललाट पर गाड़ दिया ॥८५॥
इधर माली ने भी उसकी पडी रोककर वेग से छोड़ी हुई शक्ति के द्वारा इन्द्र के ललाट के समीप ही जमकर चोट पहुँचा ॥८६॥

खून से जिसका शरीर लाल हो रहा था ऐसा क्रोधयुक्त माली शीघ्र ही इन्द्र के पास इस तरह पहुँचा जिस तरह कि सूर्य अस्ताचल के समीप पहुँचता है ॥८७॥

तदनन्तर माली ज्यों ही सामने आया त्यों ही इन्द्र ने सूर्यबिम्ब के समान चक्र से उसका सिर काट डाला ॥८८॥

भाई को मरा देख सुमाली बहुत दुखी हुआ । उसने विचार किया कि विद्याधरों का चक्रवर्ती इन्द्र महा शक्तिशाली है अत: इसके सामने हमारा स्थिर रहना असम्भव है । ऐसा विचारकर नीतिकुशल सुमाली अपने समस्त परिवार के साथ उसी समय युद्ध से भाग गया ॥ ८९-९०॥

उसका वध करने के लिए इन्द्र उसी मार्ग से जाने को उद्यत हुआ तब स्वामीभक्ति में तत्पर सामने नम्र होकर प्रार्थना को कि हे प्रभो! शत्रु को मारनेवाले मुझ-जैसे भृत्य के रहते हुए आप स्वयं क्यों प्रयत्न करते हैं? मुझे आज्ञा दीजिए ॥९१-९२॥

ऐसा ही हो इस प्रकार इन्द्र के कहते ही सोम शत्रु के पीछे उसी मार्ग से चल पड़ा । वह शत्रु तक पहुंचने वाली किरणों के समूह के समान बाणों के समूह की वर्षा करता जाता था ॥९३॥

तदनन्तर जिस प्रकार जल वृष्टि से पीड़ित गायों का समूह व्याकुलता को प्राप्त होता है उसी प्रकार सोम के बाणों से पीड़ित वानर और राक्षसों की सेना व्याकुलता को प्राप्त हुई ॥९४॥

तदनन्तर अवसर के योग्य कार्य करने वाले, क्रोध से देदीप्यमान माल्यवान् ने मुड़कर सोम से कहा कि अरे पापी! तू मूर्ख लोगों से घिरा है अत: तू युद्ध की मर्यादा की नहीं जानता । यह कहकर उसने भिण्डिमाल नामक शस्त्र से सोम के वक्षस्थल में इतनी गहरी चोट पहुँचायी कि वह वहीं मूर्च्छित हो गया ॥९५-९६॥

मूर्च्छा के कारण जिसके नेत्र निमीलित थे ऐसा सोम जबतक कुछ विश्राम लेता है तब तक राक्षस और वानर अन्तर्हित हो गये ॥९७॥

जिस प्रकार कोई सिंह के उदर से सुरक्षित निकल आवे उसी प्रकार वे भी सोम की चपेट से सुरक्षित निकलकर अलकारोदयपुर **अर्थ**ात् पाताल लंका में वापस आ गये । उस समय उन्हें ऐसा लगा मानो पुनर्जन्म को ही प्राप्त हुए हों ॥९८॥

इधर जब सोम की मूर्च्छा दूर हुई तो उसने दिशाओं को शत्रु से खाली देखा । निदान, शत्रु को विजय से जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसा सोम इन्द्र के समीप वापस पहुँचा ॥९९॥

जिसने शत्रुओं को नष्ट कर दिया था तथा बन्दीजनों के समूह जिसकी स्तुति कर रहे थे ऐसे इन्द्र विद्याधर ने सन्तोष से भरे लोकपालों के साथ रथनूपुर नगर में प्रवेश किया । वह ऐरावत हाथी पर सवार था, उसके दोनों ओर चमर डोले जा रहे थे, सफेद छत्र की उस पर छाया थी, नृत्य करते हुए देव उसके आगे-आगे चल रहे थे, तथा झरोखों में बैठी उत्तम स्त्रियाँ अपने नयनों से उसे देख रही थीं । उस समय रत्नमयी ध्वजाओं से रथनूपुर नगर की शोभा बढ़ रही थी, उसमें ऊँचे-ऊँचे तोरण खड़े किये गये थे, उसकी गलियों में घुटनों तक फूल बिछाये गये थे और केशर के जल से समस्त नगर सींचा गया था । ऐसे रथनूपुर नगर में उसने बडी विभूति के साथ प्रवेश किया ॥ १००-१०३॥

राजमहल में पहुँचने पर उसने हाथ जोड़कर माता-पिता के चरणों में नमस्कार किया और माता-पिता ने भी काँपते हुए हाथ से उसके शरीर का स्पर्श किया ॥१०४॥

इस प्रकार शत्रुओं को जीतकर वह परम हर्ष को प्राप्त हुआ और उत्कृष्ट भोग भोगता हुआ प्रजा-पालन में तत्पर रहने लगा ॥१०५॥

तदनन्तर वह लोक में इन्द्र की प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और विजयार्ध पर्वत स्वर्ग कहलाने लगा ॥१०६॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजद! अब लोकपालों की उत्पत्ति कहता हूँ सो मन को एकाग्र कर सुनो ॥१०७॥

स्वर्ग लोक से च्युत होकर मकरध्वज विद्याधर की अदिति नामा स्त्री के उदर से सोम नाम का लोकपाल उत्पन्न हुआ था । यह बहुत ही कान्तिमान् था । इन्द्र ने इसे द्योति:संग नामक नगर की पूर्व दिशा में लोकपाल स्थापित किया था । इस तरह यह परम ऋद्धि का धारी होता हुआ हर्ष से समय व्यतीत करता था ॥१०८-१०९॥

मेघरथ नामा विद्याधर की वरुणा नामा स्त्री से वरुण नाम का लोकपाल विद्याधर उत्पन्न हुआ था । इन्द्र ने इसे मेघपुर नगर की पश्चिम दिशा में स्थापित किया था । इसका शस्त्र पाश था जिसे सुनकर शत्रु दूर से ही भयभीत हो जाते थे ॥११०-१११॥

महात्मा कि सूर्य विद्याधर की कनकावली स्त्री से कुबेर नाम का लोकपाल विद्याधर उत्पन्न हुआ था । यह परम विभूति से युक्त था । इन्द्र ने

इसे कांचनपुर नगर की उत्तर दिशा में स्थापित किया था । यह संसार में लक्ष्मी के कारण प्रसिद्ध था तथा उत्कृष्ट भोगों को प्राप्त था ॥११२-११३॥

कालविन नामा विद्याधर की श्रीप्रभा स्त्री के गर्भ से यम नाम का लोकपाल विद्याधर उत्पन्न हुआ था । यह रुद्रकर्मा तथा परम तेजस्वी था ॥११४॥

इन्द्र ने इसे दक्षिण सागर के द्वीप में विद्यमान किष्किंध नामक नगर की दक्षिण दिशा में स्थापित किया था । इस प्रकार यह अपने पुण्य के प्रबल फल को भोगता हुआ समय व्यतीत करता था ॥११५॥

जिस नगर का जो नाम पृथिवी पर प्रसिद्ध था इन्द्र ने उस नगर के निवासियों को उसी नाम से प्रसिद्ध कराया था ॥११६॥

विद्याधरों के असुर नामक नगर में जो विद्याधर रहते थे पृथ्वीतल पर वे असुर नाम से प्रसिद्ध हुए ॥११७॥

यक्षगीत नगर के विद्य यक्ष कहलाये । किन्नर नामा नगर के निवासी विद्याधर किन्नर कहलाये और गन्धर्वनगर के रहनेवाले विद्याधर गन्धर्व नाम से प्रसिद्ध हुए ॥११८॥

अश्विनीकुमार, विश्वास तथा वैश्वानर आदि विद्याधर विद्याबल से सहित हो देवों की क्रीड़ा करते थे ॥११९॥

इन्द्र यद्यपि मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ था फिर भी वह पृथिवी पर लक्ष्मी का विस्तार पाकर अपने आपको इन्द्र मानने लगा । सब लोग उसे नमस्कार करते थे ।॥१२०॥

सम्पदाओं से परम प्रीति को प्राप्त तथा निरन्तर उत्सव करने वाले उस इन्द्र विद्याधर को समस्त प्रजा यह भूल गयी थी कि यथार्थ में कोई इन्द्र है, स्वर्ग है अथवा देव हैं ॥१२१॥

वैभव के गर्व में फँसा इन्द्र, अपने आपको इन्द्र, विजयार्ध गिरि को स्वर्ग, विद्याधरों को लोकपाल और अपनी समस्त प्रजा को देव मानता था ॥१२२॥

तीनों ही लोकों में मुझ से अधिक महापुरुष और कोई दूसरा नहीं है । मैं ही इस समस्त जगत् का प्रणेता तथा सब पदार्थों का ज्ञाता हूँ ॥१२३॥

इस प्रकार विद्याधरों का चक्रवर्तीपन पाकर गर्व से फूला इन्द्र विद्याधर अपने पूर्व जन्मोपार्जित पुण्य-कर्म का फल भोगता था ॥१२४॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन! इस भाग का जो वृत्तान्त निकल चुका है उसे सुनो जिसमें धनद की उत्पत्ति का ज्ञान हो सके ॥१२५॥

कौतुक मंगल नामा नगर में व्योम बिन्दु नाम का विद्याधर रहता था । उसकी नन्दवती भार्या के उदर से दो पुत्रियां उत्पन्न हुई ॥१२६॥

उनमें बड़ी का नाम कौशिकी और छोटी का नाम कैकसी था । बडी पुत्री कौशिकी यक्षपुर के धनी विश्रवस के लिए दी गयी । उससे वैश्रवण नाम का पुत्र हुआ । इसका समस्त शरीर शुभ लक्षणों से सहित था, कमल के समान उसके नेत्र थे, वह लक्ष्मी-सम्पन्न था तथा स्त्रियों के नेत्रों को आनन्द देनेवाला था ॥१२७-१२८॥

इन्द्र विद्याधर ने वैश्रवण को बुलाकर उसका सत्कार किया और कहा कि तुम मुझे बहुत प्रिय हो इसलिए लंका नगरी जाकर विद्याधरों पर शासन करो ॥१२९॥

तुम चूँकि महाबलवान् हो अत: मेरे प्रसाद के कारण आज से लेकर चार लोकपालों के सिवाय पंचम लोकपाल हो ॥१३०॥

जो आपकी आज्ञा है वैसा ही करूँगा यह कहकर वैश्रवण ने उसके चरणों में नमस्कार किया । तदनन्तर माता-पिता से पूछकर और उन्हें नमस्कार कर वैश्रवण मंगलाचार पूर्वक अपने नगर से निकला ॥१३१॥

विद्याधरों का समूह जिसकी आज्ञा सिर पर धारण करते थे ऐसा वैश्रवण निशंक हो बड़ी प्रसन्नता से लंका में रहने लगा ॥१३२॥

इन्द्र से हारकर सुमाली अलंकारपुर नगर (पाताल लोक) में रहने लगा था । वहाँ उसकी प्रीतिमती रानी से रत्नश्रवा नाम का पुत्र हुआ । वह बहुत ही शूरवीर, त्यागी और लोक-वत्सल था ॥१३३॥

उस उदार हृदय का जीवन मित्रों का उपकार करने के लिए था, उस तेजस्वी का तेज भृत्यों का उपकार करने के लिए था ॥१३४॥

दुर्बुद्धि को नष्ट करने वाले उस रत्नश्रवा का चातुर्य विद्वानों का उपकार करने के लिए था, वह लक्ष्मी को रक्षा बन्धुजनों का उपकार करने के लिए करता था ॥१३५॥

उसका बढ़ा-चढ़ा ऐश्वर्य दरिद्रों का उपकार करने के लिए था । सबकी रक्षा करने वाले उस रत्नश्रवा का सर्वस्व साधुओं का उपकार करने के लिए था ॥१३६॥

उस स्वाभिमानी का मन पुण्य कार्यों का स्मरण करने के लिए था । उसकी आयु धर्म का उपकार करने वाली थी और उसका शरीर पराक्रम का उपकार करने के लिए था ॥१३७॥

वह पिता के समान प्राणियों के समूह पर अनुकम्पा करनेवाला था । बीते हुए सुकाल की तरह आज भी प्राणी उसका स्मरण करते है ॥१३८॥

शीलरूपी आभूषण को धारण करने वाले उस रत्नश्रवा के लिए पर-स्त्री माता के समान थी । पर-द्रव्य तृण के समान था और पर-पुरुष अपने शरीर के समान था **अर्थ**ात् जिस प्रकार वह अपने शरीर की रक्षा करता था उसी प्रकार पर-पुरुष को भी रक्षा करता था ॥१३९॥

जब गुणी मनुष्यों की गणना शुरू होती थी तब विद्वान् लोग सबसे पहले इसी को गिनते थे और जब दोषों की चर्चा होती थी तब प्राणी इसका स्मरण ही नहीं करते थे ॥१४०॥

उसका शरीर मानो पृथिवी आदि से अतिरिक्त अन्य महा-भूतों से रचा गया था अन्यथा उसकी वह अनोखी शोभा कैसे होती? ॥१४१॥

वह जब वार्तालाप करता था तब ऐसा जान पड़ता था मानो अमृत ही सींच रहा हो । वह इतना उदात्तचरित्र था कि मानो हमेशा महादान ही देता रहता हो ॥१४२॥

जन्मान्तर में भी उस महा-बुद्धिमान ने धर्म, **अर्थ**, काम में से एक धर्म में ही महान् प्रयत्न किया था ॥१४३॥

सब आभूषणों का आभूषण यश ही उसका आभूषण था । गुण उसमें कीर्ति के साथ इस प्रकार रह रहे थे मानो उसके कुटुम्बी ही हों ॥१४४॥

वह रत्नश्रवा, अपनी वंश-परम्परा से चली आयी उत्कृष्ट विभूति को प्राप्त करना चाहता था पर इन्द्र विद्याधर ने उसे अपने स्थान से च्युत कर रखा था ॥१४५॥

निदान, वह धीर-वीर विद्या सिद्ध करने के लिए, जहाँ भूत-पिशाच आदि शब्द कर रहे थे ऐसे महा भयंकर पुष्प वन में गया ॥१४६॥

सो रत्नश्रवा तो इधर विद्या सिद्ध कर रहा था उधर विद्या के विषय में पहले से ही परिज्ञान रखने वाली तथा जो बाद में रत्नश्रवा की पत्नी होनेवाली थी ऐसी अपनी छोटी कन्या कैकसी को व्योमबिन्दु ने उसकी तत्कालीन परिचर्या के लिए भेजा ॥१४७॥

सो कैकसी उस योगी के समीप बड़े विनय से हाथ जोड़े खड़ी हुई उसके मुख से निकलने वाले आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी ॥१४८॥

तदनन्तर जब रत्नश्रवा का नियम समाप्त हुआ तब वह सिद्ध भगवान् को नमस्कार कर उठा । उसी समय उसकी दृष्टि अकेली खड़ी कैकसी पर पड़ी । कैकसी की आँखों से सरलता टपक रही थी ॥१४९॥

उसके नेत्र नीलकमल के समान थे, मुख कमल के समान था, दाँत कुन्द की कली के समान थे, भुजाएँ शिरीष की माला के समान थीं, अधरोष्ठ गुलाब के समान था ॥१५०॥

उसकी श्वांस से मौलिश्री के फूलों की सुगन्धि आ रही थी, उसकी कान्ति चम्पा के फूल के समान थी, उसका सारा शरीर मानो फूलों से ही बना था ॥१५१॥

रत्नश्रवा के पास खड़ी कैकसी ऐसी जान पड़ती थी मानो उसके रूप से वशीभूत हो लक्ष्मी ही कमलरूपी घर को छोड़कर बड़ी उत्कण्ठा से उसके पास आयी हो और उसके चरणों में नेत्र गड़ाकर खड़ी हो ॥१५२॥

अपूर्व पुरुष के देखने से उत्पन्न लज्जा के कारण उसका शरीर नीचे की ओर झुक रहा था तथा भय सहित निकलते हुए श्वासोच्छवास से उसके स्तन कम्पित हो रहे थे ॥१५३॥

वह अपने लावण्य से समीप में पड़े पल्लवों को लिप्त कर रही थी तथा श्वासोच्छ्वास की सुगन्धि से आकृष्ट मदोन्मत्त श्रमणों के समूह से वन को आकुलित कर रही थी ॥१५४॥

वह अत्यधिक सौकुमार्य के कारण इतनी अधिक नीचे को झुक रही थी कि यौवन डरते-डरते ही उसका आलिंगन कर रहा था । कैकसी क्या थी मानो स्त्रीत्व की परम सृष्टि थी ॥१५५॥

समस्त संसार सम्बन्धी आश्चर्य इकट्ठा करने के लिए ही मानो त्रिभुवन सम्बन्धी समस्त स्त्रियों का सौन्दर्य एकत्रित कर कर्मों ने उसकी

रचना की थी ॥१५६॥
वह कैकसी ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नश्रवा के उत्कृष्ट तप से वशीभूत हुई कान्ति से सुशोभित साक्षात् विद्या ही शरीर धरकर सामने खड़ी हो ॥१५७॥
रत्नश्रवा स्वभाव से ही दयालु था और विशेषकर स्त्रियों पर तथा उनसे भी अधिक कन्याओं पर अधिक दयालु था अत: उसने प्रिय वचनों से पूछा कि हे बाले! तू किसकी लड़की है? और इस महावन में झुण्ड से बिछुड़ी हरिणी के समान किसलिए खड़ी है? ॥१५८-१५९॥
हे पुण्य मनोरथ ! कौन से अक्षर तेरे नाम को प्राप्त हैं? रत्नश्रवा ने कैकसी से ऐसा पूछा सो उचित ही था क्योंकि सज्जन के ऊपर साधुओं का भी पक्षपात हो ही जाता है ॥१६०॥
इसके उत्तर में अनन्त माधुर्य को धारण करने वाली एवं चित्त के चुराने में समर्थ गद्गद वाणी से कैकसी ने कहा कि मैं मन्दवती के शरीर से उत्पन्न राजा व्योमबिन्दु की पुत्री हूँ, कैकसी मेरी नाम है और पिता को प्रेरणा से आपकी सेवा करने के लिए आयी हूँ ॥१६१-१६२॥
उसी समय महा-तेजस्वी रत्नश्रवा को मान-संस्तम्भिनी नाम को विद्या सिद्ध हो गयी सो उस विद्या ने उसी समय अपना शरीर प्रकट कर दिखाया ॥१६३॥
तदनन्तर उस विद्या के प्रभाव से उसने उसी वन में तत्क्षण ही पुष्पान्तक नाम का नगर बसाया ॥१६४॥
और कैकसी को विधिपूर्वक अपनी स्त्री बनाकर उसके साथ मनचाहे भोग भोगता हुआ वह उस नगर में क्रीड़ा करने लगा ॥१६४-१६५॥
शोभनीय हृदय को धारण करने वाले उन दोनों दम्पतियों में ऐसी अनुपम प्रीति उत्पन्न हुई कि वह आधे क्षण के लिए भी उनका वियोग सहन नहीं कर सकती थी ॥१६६॥
यदि कैकसी क्षण-भर के लिए भी रत्नश्रवा के नेत्रों के ओझल होती थी तो वह उसे ऐसा मानने लगता था मानो मर ही गयी हो । और कैकसी भी यदि उसे पल-भर के लिए नहीं देखती थी तो म्लानि को प्राप्त हो जाती थी - उसकी मुख की कान्ति मुरझा जाती थी । कोमल चित तो उसका था ही ॥१६७॥
रत्नश्रवा के नेत्र सदा कैकसी के मुखचन्द्र पर ही गड़े रहते थे अथवा यों कहना चाहिए कि कैकसी, रत्नश्रवा की समस्त इन्द्रियों का मानो बन्धन ही थी ॥१६८॥
अनुपम रूप, यौवन, धन-सम्पदा, विद्याबल और पूर्वोपार्जित धर्म के कारण उन दोनों में परस्पर परम आसक्ति थी ॥१६९॥
जब रत्नश्रवा चलता था तब कैकसी भी चलने लगती थी और जब रत्नश्रवा बैठता था तो कैकसी भी बैठ जाती थी । इस तरह वह छाया के समान पति की अनुगामिनी थी ॥१७॥
अथानन्तर-एक दिन रानी कैकसी रत्नों के महल में ऐसी शय्या पर पड़ी थी कि जो विशाल थी, सुन्दर थी, क्षीर समुद्र के समान सफेद थी, रत्नों के दीपकों का जिस पर प्रकाश फैल रहा था, जो रेशमी वस्त्र से कोमल थी ॥१७१॥
जिस पर यथेष्ट गद्दा बिछा हुआ था, रंगबिरंगी तकियाँ रखी हुई थीं, जिसके आस-पास श्वासोच्छवास की सुगन्धि से जागरूक भौंरे मँडरा रहे थे ॥१७२॥
चारों ओर पहरे पर खड़ी स्त्रियां जिसे निद्रारहित नेत्रों से देख रही थीं, और जिसके समीप ही हाथीदाँत की बनी छोटी-सी चौकी रखी हुई थी ऐसी उत्तम शय्या पर कैकसी मन का बन्धन करने वाले पति के गुणों का चिन्तवन करती और पुत्रोत्पत्ति की इच्छा रखती हुई सुख से सो रही थी ॥१७३-१७४॥
उसी समय स्थिर होकर ध्यान करने वाली **अर्थ**ात् सूक्ष्म देख-रेख रखने वाली सखियां जिसके शरीर का निरीक्षण कर रही थीं ऐसी कैकसी ने महा आश्चर्य उत्पन्न करने वाले उत्कृष्ट स्वप्न देखे ॥१७५॥
तदनन्तर शंखों के शब्द का अनुकरण करने वाली प्रातःकालीन तुरही की मधुर ध्वनि और चरणों की रम्य वाणी से कैकसी प्रबोध को प्राप्त हुई ॥१७६॥
सो मंगल कार्य करने के अनन्तर शुभ तथा श्रेष्ठ नेपथ्य को धारण कर मन को हरण करती हुई, सखियों के साथ पति के समीप पहुँची ॥१७७॥
वहाँ हाथ जोड़, हाव-भाव दिखाती हुई, पति के समीप, उत्तम वस्त्र से आच्छादित सोफा पर बैठकर उसने स्वप्न देखने की बात कही ॥

१७८॥
उसने कहा कि हे नाथ! आज रात्रि के पिछले पहर मैंने तीन स्वप्न देखे हैं सो उन्हें सुनकर प्रसन्नता कीजिए ॥१७९॥
पहले स्वप्न में मैंने देखा है कि अपने उत्कृष्ट तेज से हाथियों के बड़े भारी झुण्ड को विध्वस्त करता हुआ एक सिंह आकाश तल से नीचे उतरकर मुखद्वार से मेरे उदर में प्रविष्ट हुआ है ॥१८०॥
दूसरे स्वप्न में देखा है कि किरणों से हाथियों के समूह के समान काले अन्धकार को दूर हटाता हुआ सूर्य आकाश के मध्य भाग में स्थित है ॥१८१॥
और तीसरे स्वप्न में देखा है कि मनोहर लीला को करता और किरणों से अन्धकार को उर हटाता हुआ पूर्ण चन्द्रमा हमारे सामने खड़ा है ॥१८२॥
इन स्वप्नों के दिखते ही मेरा मन आश्चर्य से भर गया और उसी समय प्रात:कालीन तुरही की ध्वनि से मेरी निद्रा टूट गयी ॥१८३॥
हे नाथ! यह क्या है? इसे आप ही जानने के योग्य हैं क्योंकि स्त्रियों के जानने योग्य कार्यों में पति का मन ही प्रमाणभूत है ॥१८४॥
तदनन्तर अष्टांग निमित्त के जानकार एवं जिन-शासन में कुशल रत्नश्रवा ने बड़े हर्ष से क्रमपूर्वक स्वप्नों का फल कहा ॥१८५॥
उन्होंने कहा कि हे देवी ! तुम्हारे तीन पुत्र होंगे । ऐसे पुत्र कि जिनकी कीर्ति तीनों लोकों में व्याप्त होगी, जो महा पराक्रम के धारी तथा कुल की वृद्धि करने वाले होंगे ॥१८६॥
वे तीनों ही पुत्र पूर्व भव में संचित पुण्यकर्म से उत्तम कार्य करने वाले होंगे, देवों के समान होंगे और देवों के भी प्रीति पात्र होंगे ॥१८७॥
वे अपनी कान्ति से चन्द्रमा को दूर हटावेंगे, तेज से सूर्य को दूर भगावेंगे और स्थिरता से पर्वत को ठुकरावेंगे ॥१८८॥
स्वर्ग में पुण्य-कर्म का फल भोगने के बाद जो कुछ कर्म शेष बचा है अब उसका फल भोगेंगे । वे इतने बलवान् होंगे कि देव भी उन्हें पराजित नहीं कर सकेंगे ॥१८९॥
वेदना के द्वारा मनोरथ को पूर्ण करने वाले मेघ होंगे, चक्रवर्तियों के समान ऋद्धि के धारक होंगे, और श्रेष्ठ स्त्रियों के मन तथा नेत्रों को चुराने वाले होंगे ॥१९०॥
उनका उन्नत वक्षस्थल इस कार्य में कर्म ही कारण है हम नहीं ॥१९८॥
संसार के स्वरूप की योजना में कर्म ही मूल कारण है माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं ॥१९९॥
इसके दोनों छोटे भाई जिनमार्ग के पण्डित, गुणों के समूह से व्याप्त, उत्तम चेष्टाओं के धारक तथा शील के सागर होंगे ॥२००॥
संसार में कहीं मेरा स्खलन न हो जाये इस भय से वे सदा पुण्य कार्य में अच्छी तरह संलग्न रहेंगे, सत्य वचन बोलने में तत्पर होंगे और सब जीवों पर दया करने वाले होंगे ॥२०१॥
हे कोमल शब्दों वाली तथा दया से युक्त प्रिये ! उन दोनों पुत्रों का पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म ही उनके इस स्वभाव का कारण होगा सो ठीक ही है क्योंकि कारण के समान ही फल होता है ॥२०२॥
ऐसा कहकर रात-दिन सावधान रहनेवाले माता-पिता ने प्रसन्न-चित्त से जिनेन्द्र भगवान की पूजा की ॥२०३॥
तदनन्तर जब गर्भ में प्रथम बालक आया तब माता को चेष्टा अत्यन्त क्रूर हो गयी । वह हठपूर्वक पुरुषों के समूह की जीतने की इच्छा करने लगी । वह चाहने लगी कि मैं खून की कीचड़ से लिप्त तथा छटपटाते हुए शत्रुओं के मस्तकों पर पैर रखूं ॥२०४-२०५॥
देवराज-इन्द्र के ऊपर भी आज्ञा चलाने का उसका अभिप्राय होने लगा । बिना कारण ही इसका मुख हुंकार से मुखर हो उठता ॥२०६॥
उसका शरीर कठोर हो गया था, शत्रुओं को जीतने में वह अधिक श्रम करती थी, उसकी वाणी कर्कश तथा घर्घर स्वर से युक्त हो गयी थी, उसके दृष्टिपात भी निशब्द होने से स्पष्ट होते थे ॥२०७॥
दर्पण रहते हुए भी वह कृपाण में मुख देखती थी और गुरुजनों की बन्दना को भी उसका मस्तक किसी तरह बड़ी कठिनाई से झुकता था ॥२०८॥
तदनन्तर समय पूर्ण होने पर वह बालक शत्रुओं के आसन कँपाता हुआ माता के उदर से बाहर निकला **अर्थ**ात् उत्पन्न हुआ ॥२०९॥
सूर्य के समान कठिनाई से देखने योग्य उस बालक की प्रभा से प्रसूति-गृह में काम करने वाले परिजनों के नेत्र ऐसे हो गये जैसे मानो किसी सघन वन से ही आच्छादित हो गये हों ॥२१०॥

भूत जाति के देवों द्वारा ताड़ित होने के कारण दुन्दुभि बाजों से बहुत भारी शब्द उत्पन्न होने लगा और शत्रुओं के घरों में सिर रहित धड़ उत्पात सूचक नृत्य करने लगे ॥२११॥

तदनन्तर पिता ने पुत्र का बड़ा भारी जन्म-उत्सव किया । ऐसा जन्मोत्सव कि जिसमें प्रजा पागल के समान अपनी इच्छा के अनुसार विभिन्न प्रकार के कार्य करती थी ॥२१२॥

अथानन्तर जिसके पैर के तलुए लाल-लाल थे ऐसा वह बालक मेरुपर्वत की गुहा के समान आकार वाले प्रसूतिका गृह में शय्या के ऊपर मन्द-मन्द हँसता हुआ पड़ा था । हाथपैर हिलाने से चंचल था, चित्त **अर्थ**ात् ऊपर की ओर मुख कर पड़ा था, अपनी लीला से शय्या की समीपवर्ती भूमि को कम्पित कर रहा था, और तत्काल उदित हुए सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान था ॥२१३-२१४॥

बहुत पहले मेघवाहन के लिए राक्षसों के इन्द्र भीम ने जो हार दिया था, हजार नागकुमार जिसकी रक्षा करते थे, जिसकी किरणें सब ओर फैल रही थीं और राक्षसों के भय से इस अन्तराल में जिसे किसी ने नहीं पहना था ऐसे हार को उस बालक ने अनायास ही हाथ से खेंच लिया ॥२१५-२१६॥

बालक को मुट्ठी में हार लिये देख माता घबरा गई । उसने बड़े स्नेह से उसे उठाकर गोद में ले लिया और शीघ्र ही उसका मस्तक सूंघ लिया ॥२१७॥

पिता ने भी उस बालक को हार लिए बड़े आश्चर्य से देखा और विचार किया कि अवश्य जी कोई महापुरुष होगा ॥२१८॥

जिसकी शक्ति लोकोत्तर नहीं होगी ऐसा कौन पुरुष नागेंद्रों के द्वारा सुरक्षित इस हार के साथ क्रीडा कर सकता है ॥२१९॥

चारणऋद्धीधारी मुनिराज ने पहले जो वचन कहे थे वे यही थे क्योंकि मुनियों का भाषण कदापि मिथ्या नहीं होता ॥२२०॥

यह आश्चर्य देख माता ने निर्भय होकर वह हार उस बालक को पहना दिया । उस समय वह हार अपनी किरणों के समूह से दसों दिशाओं को प्रकाशमान कर रहा था ॥२२१॥

उस हार में जो बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे हुए थे, उनमें असली मुख के सिवाय नो मुख और भी प्रतबिम्बित हो रहे थे इसलिए उस बालक का दशानन नाम रखा गया ॥२२२॥

दशानन के बाद कितना ही समय बीत जाने पर भानुकर्ण उत्पन्न हुआ । भानुकर्ण के कपोल इतने सुंदर थे कि उनसे ऐसा जान पड़ता था मानों उसके कानों में भानु (सूर्य) ही पहना रखा हो ॥२२३॥

भानुकर्ण के बाद चंद्रनखा नामा पुत्री उत्पन्न हुई । उसका मुख पूर्ण-चंद्रमा के समान था और उगते हुए अर्ध-चंद्रमा के समान सुंदर नखों की कान्ति से उसने समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर दिया था ॥२२४॥

चंद्रनखा के बाद विभीषण हुआ । उसका आकार सौम्य था तथा वह साधु प्रकृति का था । उसके उत्पन्न होते ही पापी लोगों में भाय उत्पन्न कर दिया था ॥२२५॥

विभीषण ऐसा जान पड़ता था मानो साक्षात् उत्कृष्ट धर्म ही शरीरवात्ता को प्राप्त हुआ हो । उसके गुणों से उत्पन्न उसकी निर्मल कीर्ति आज भी संसार में सर्वत्र छायी हुई है ॥२२६॥

तेजस्वी दशानन की बालक्रीड़ा भी भयंकर होती थी जबकि उसके दोनों छोटे भाइयों की बालक्रीड़ा शत्रुओं को भी आनन्द पहुँचाती थी ॥२२७॥

भाइयों के बीच सुन्दर शरीर को धारण करने वाली कन्या चन्द्रनखा, ऐसी सुशोभित होती थी मानो दिन सूर्य और चन्द्रमा के बीच उत्तम क्रियाओं से युक्त सन्ध्या ही हो ॥२२८॥

अथानन्तर चोटी को धारण करनेवाला दशानन एक दिन माता की गोद में बैठा हुआ अपने दांतों की किरणों से मानो दसों दिशाओं में चांदनी फैला रहा था, उसी समय वैश्रवण आकाश मार्ग से कहीं जा रहा था । वह अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशमान कर रहा था, वैभव और पराक्रम से सुशोभित विद्याधरों के समूह से युक्त था तथा उन हाथी रूपी मेघों से घिरा था जो कि माला रूपी बिजली के द्वारा प्रकाश कर रहे थे, मदरूपी जल की धारा को छोड़ रहे थे, और जिनके कानों में लटकते हुए शंख वलाकाओ के समान जान पड़ते थे । वैश्रवण कानों को बहरा करने वाले तुरही के विशाल शब्द से दिशाओं के समूह को शब्दायमान कर रहा था । विशाल पराक्रम का धारक था और अपनी बड़ी भारी सेना से ऐसा जान पड़ता था मानो सामने के आकाश को ग्रस कर छोड़ ही रहा हो । दशानन ने उसे बड़ी गम्भीर

दृष्टि से देखा ॥२२९-२३३॥
दशानन लड़कपन के कारण चंचल तो था ही अत: उसने वैश्रवण की महिमा देख हंसते-हँसते माता से पूछा कि हे माँ ! अपने प्रताप से समस्त संसार को तृण के समान समझता हुआ, बड़ी भारी सेना से घिरा यह कौन यहाँ से जा रहा है ॥२३४-२३५॥
तब माता उससे कहने लगी कि यह तेरी मौसी का लड़का है । इसे अनेक विद्याएँ सिद्ध हुई हैं, यह बहुत भारी लक्ष्मी से युक्त है, लोक में प्रसिद्ध है, महा-वैभव से सम्पन्न हुआ दूसरे सूर्य के समान शत्रुओं को कंपकंपी उत्पन्न करता हुआ संसार में घूमता फिरता है ॥२३६-२३७॥
इन्द्र विद्याधर ने तेरे बाबा के भाई माली को युद्ध में मारा और बाबा को तेरी कुल-परम्परा से चली आयी लंकापुरी से दूर हटाकर इसे दी सो उसी लंका का पालन करता है ॥२३८॥
इस लंका के लिए तुम्हारे पिता सैकड़ों मनोरथों का चिन्तवन करते हुए न दिन में चैन लेते हैं न रात्रि में नींद ॥२३९॥
हे पुत्र ! मैं भी इसी चिन्ता से सूख रही हूँ । अपने स्थान से भ्रष्ट होने की अपेक्षा पुरुषों का मरण हो जाना अच्छा है ॥२४०॥
हे पुत्र! तू अपने कुल के योग्य लक्ष्मी को कब प्राप्त करेगा? जिसे देख हम दोनों का मन शल्यरहित सा हो सके ॥२४१॥
मैं कब तेरे इन भाइयों को विभूति से युक्त तथा निष्कण्टक विश्व में स्वच्छन्द विचरते हुए देखूँगी? ॥२४२॥
माता के दीन वचन सुनकर जिसके क्रोधरूपी विष के अंकुर उत्पन्न हो रहे थे ऐसा विभीषण गर्व से मुसकराता हुआ बोला ॥२४३॥
कि हे माँ! यह धनद हो चाहे देव हो, तुमने इसका ऐसा कौनसा प्रभाव देखा कि जिससे तुम इस प्रकार विलाप कर रही हो ॥२४४॥
तुम तो वीर पुरुष हो, स्वयं वीर हो, और मनुष्यों की समस्त दिशाओं को जानने वाली हो । फिर ऐसी होकर भी अन्य स्त्री की तरह ऐसा क्यों कह रही हो ॥२४५॥
जरा ध्यान तो करो कि जिसका वक्ष:स्थल श्रीवत्स के चिह्न से चिह्नित है, विशाल शरीर को धारण करने वाला है, जिसकी प्रतिदिन की चेष्टाएं एक आश्चर्य रस से ही सनी रहती हैं, जो महाबलवान् है और भस्म से आच्छादित अग्नि के समान समस्त संसार को भस्म करने में समर्थ है ऐसा दशानन क्या कभी तुम्हारे मन में नहीं आया? ॥२४६-२४७॥
यह अनादर से ही उत्पन्न गति के द्वारा मन को जीत सकता है और हाथ की चपेटा से सुमेरु के शिखर विदीर्ण कर सकता है ॥२४८॥
तुम्हें पता नहीं कि इसकी भुजाएँ प्रताप की पक्की सड़क हैं, संसाररूपी घर के ख़म्भे हैं, और अहंकार रूपी वृक्ष के अंकुर हैं ॥२४९॥
इस प्रकार गुण और कला के जानकार विभीषण भाई के द्वारा जिसकी प्रशंसा की गई थी ऐसा रावण, घी के द्वारा अग्नि के समान बहुत अधिक प्रताप को प्राप्त हुआ ॥२५०॥
उसने कहा कि माता ! अपनी बहुत प्रशंसा करने से क्या लाभ है? परन्तु सच बात तुमसे कहता हूँ त्तो सुन ॥२५१॥
विद्याओं के अहंकार से फूले यदि सबके सब विद्याघर मिलकर युद्ध के मैदान में आवें तो मेरी एक भुजा के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं ॥२५२॥
फिर भी विद्याओं की आराधना करना यह हमारे कुल के योग्य कार्य है अतः उसे करते हुए हमें लज्जित नहीं होना चाहिए ॥२५३॥
जिस प्रकार साधु बड़े प्रयत्न से तप की आराधना करते हैं उसी प्रकार विद्याधरों के गोत्रज पुरुषों कों भी बड़े प्रयत्न से विद्या की आराधना करनी चाहिए ॥२५४॥
इस प्रकार कहकर मान को धारण करता हुआ रावण अपने दोनों छोटे भाइयों के साथ विद्या सिद्ध करने के लिए घर से निकलकर आकाश की ओर चला गया । जाते समय माता-पिता ने उसका मस्तक चूमा था, उसने सिद्ध भगवान को नमस्कार किया था, मांगलिक संस्कार उसे प्राप्त हुए थे, उसका मन निश्चय से स्थिर था तथा प्रसन्नता से भरा था ॥२५५-२५६॥
क्षण-भर में ही वह भीम नामक महावन में जा पहुँचा । जिनके मुख दाढ़ी से भयंकर थे ऐसे दुष्ट प्राणी उस वन में शब्द कर रहे थे ॥२५७॥
सोते हुए अजगरों के श्वासोच्छ्वास से वहाँ बड़े-बड़े वृक्ष कम्पित हो रहे थे तथा नृत्य करते हुए व्यन्तरों के चरण-निक्षेप से वहाँ का पृथ्वीतल क्षोभित हो रहा था ॥२५८॥
वहाँ की बड़ी-बड़ी गुफाओं में सूची के द्वारा दुर्भेद्य सघन अन्धकार का समूह विद्यमान था । वह वन इतना भयंकर था कि मानो साक्षात् काल ही सदा उसमें विद्यमान रहता था ॥२५९॥
देव भी भय से पीड़ित होकर उसके ऊपर नहीं जाते थे, तथा अपनी भयंकरता के कारण तीनों लोकों में प्रसिद्ध था ॥२६०॥
जिनकी गुफाओं के अग्रभाग अन्धकार से व्याप्त थे ऐसे वहाँ के पर्वत अत्यन्त दुर्गम थे और वहाँ के सुदृढ़ वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे मानो

लोक को ग्रसने के लिए ही खड़े हों ॥२६१॥
जिनके चित्त में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था, जिनकी आत्माएँ खोटी आशाओं से दूर थीं, जो शुक्ल-वस्त्र धारण कर रहे थे, जिनके मुख पूर्णचन्द्रमा के समान सौम्य थे और जो चूड़ामणि से सुशोभित थे ऐसे तीनों भाइयों ने उस भीम महावन में उत्तम शान्ति धारण कर महान् तपश्चरण करना प्रारम्भ किया ॥२६२-२६३॥
उन्होंने एक लाख जप कर सर्वकामान्नदा नाम को आठ अक्षर वाली विद्या आधे ही दिन में सिद्ध कर ली ॥२६४॥
यह विद्या उन्हें जहाँ-तहां से मनचाहा अन्न लाकर देती रहती थी जिससे उन्हें क्षुधा सम्बन्धी पीड़ा नहीं होती थी ॥२६५॥
तदनन्तर हृदय को स्वस्थ कर उन्होंने सोलह अक्षर वाला वह मन्त्र जपना शुरू किया कि जिसकी दस हजार करोड़ आवृत्तियाँ, शास्त्रों में कही गयी हैं ॥२६६॥
तदनन्तर जम्बूद्वीप का अधिपति अनावृत नाम का यक्ष अपनी स्त्रियों से आवृत हो इच्छानुसार क्रीड़ा करने के लिए उस वन में आया ॥२६७॥
जिनकी आत्मा तपश्चरण में लीन थी ऐसे तीन भाई, हाव-भाव-पूर्वक क्रीड़ा करने वाली उस यक्ष की स्त्रियों के दृष्टिगोचर हुए ॥२६८॥
तदनन्तर कौतुक से जिनका चित्त आकुल हो रहा था ऐसी देवियाँ शीघ्र ही उनके पास इस प्रकार आयीं मानो उनके सौन्दर्य ने चोटी पकड़कर उन्हें खींच लिया हो ॥२६९॥
उन देवियों में कुछ देवियाँ घुँघराले बालों से सुशोभित मुख से भ्रमरसहित कमल की शोभा धारण कर रही थीं । उन्होंने कहा कि जिनके शरीर अत्यन्त सुकुमार हैं, जिनकी कान्ति और तेज सब ओर फैल रहा है तथा वस्त्र का जिन्होंने त्याग नहीं किया है, ऐसे आप लोग किस लिए तपश्चरण कर रहे हैं ॥२७०-२७१॥
शरीरों की ऐसी कान्ति भोगों के बिना नहीं हो सकती । तथा आपके ऐसे शरीर हैं कि जिससे आपको किसी अन्य से भय भी उत्पन्न नहीं हो सकता ॥२७२॥
कहाँ तो यह जटा रूप मुकुटों का भार और कहाँ यह प्रथम तारुण्य अवस्था? निश्चित ही आप लोग विरुद्ध पदार्थों का समागम सजाने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं ॥२७३॥
स्थूल स्तन तटों के आस्फालन से उत्पन्न सुख की प्राप्ति के योग्य अपने इन हाथों को आप लोग शिला आदि कर्कश पदार्थो के समागम से पीड़ा क्यों-पहुँचा रहे हैं ॥२७४॥
अहो आश्चर्य है कि रूप से सुशोभित आप लोगों की बुद्धि बड़ी हलकी है कि जिससे भोगों के योग्य शरीर को आप लोग इस तरह दुःख दे रहे हैं ॥२७५॥
उठो घर चलें, हे विज्ञ पुरुषों! अब भी क्या गया है? प्रिय पदार्थों का अवलोकन कर हम लोगों के साथ महाभोग प्राप्त करो ॥२७६॥
उन देवियों ने यह सब कहा अवश्य, पर उनके चित्त में ठीक उस तरह स्थान नहीं पा सका कि जिस तरह कमलिनी के पत्र पर पानी के बूँदों का समूह स्थान नहीं पाता है ॥२७७॥
तदनन्तर कुछ दूसरी देवियाँ परस्पर में इस प्रकार कहने लगी कि हे सखियों! निश्चय ही ये काष्ठ हैं - लकड़ी के पुतले हैं इसीलिए तो इनके समस्त अंगों में निश्छलता दिखाई देती है ॥२७८॥
ऐसा कहकर तथा कुछ कुपित हो पास में जाकर उन देवियों ने उनके विशाल हृदय में अपने कर्णफूलों से चोट पहुँचायी ॥२७९॥
फिर भी निपुण चित्त को धारण करने वाले तीनों भाई क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए, सो ठीक ही है क्योंकि कायर पुरुष ही अपने प्रकृत लक्ष से भ्रष्ट होते हैं ॥२८०॥
तदनन्तर देवियों के कहने से जिसके चित्त में आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था ऐसे जम्बूद्वीपाधिपति अनावृत यक्ष ने भी हर्षित हो उन तीनों भाइयों से मुसकराते हुए कहा ॥२८१॥
कि हे सत्पुरुषों! आप लोग किस प्रयोजन से कठिन तपश्चरण कर रहे हो? अथवा किस देव की आराधना करे रहे हो? सो शीघ्र ही कहो ॥२८०॥
यक्ष के ऐसा कहने पर भी जब वे मिट्टी से निर्मित पुतलों की तरह निश्चल बैठे रहे तब वह कुपित हो इस प्रकार बोला कि ॥२८३॥

ये लोग मुझे भुलाकर अन्य किस देव का ध्यान करने के लिए उद्यत हुए हैं । अहो ! इन मूर्खों की यह सबसे बड़ी चपलता है ॥२८४॥
इस तरह कठोर वचन यक्षेन्द्र ने आज्ञा देने की प्रतीक्षा करनेवाले अपने सेवकों को इन तीन भाईयों पर उपद्रव करने की आज्ञा दे दी ॥२८५॥
वे किंकर स्वभाव से ही क्रूर थे फिर उससे भी अधिक स्वामी की आज्ञा पा चुके थे इसलिए नाना रूप धारण कर उनके सामने तरह-तरह की कियाएँ करने लगे ॥२८६॥
कोई यक्ष वेग से पर्वत के समान ऊँचा उछलछकर उनके सामने ऐसा गिरा मानो सब ओर से वज्र ही गिरा रहा हो ॥२८७॥
किसी यक्ष ने साँप बनकर उनके समस्त शरीर को लपेट लिया और कोई सिंह बनकर तथा मुँह फाड़कर उनके सामने आ पहुँचा ॥२८८॥
किन्हीं ने कानों के पास ऐसा भयंकर शब्द किया कि उससे समस्त दिशाएँ बहरी हो गयीं । तथा कोई दंशमशक बनकर, कोई हाथी बनकर, कोई आंधी बनकर, कोई दावानल बनकर और कोई समुद्र बनकर भिन्न-भिन्न प्रकार के उपद्रव करने लगे ॥२८९॥
ध्यानरूपी खम्भे में बद्ध रहने के कारण जिनका चित्त अत्यन्त निश्चल था ऐसे तीनों भाई जब पूर्वोक्त उपायों से विकार को प्राप्त नहीं हुए ॥२९०॥
तब उन्होंने विक्रिया से म्लेच्छों की एक बड़ी भयंकर सेना बनायी । वह सेना अत्यन्त क्रोधी चाण्डालों से युक्त थी, तीक्ष्ण शस्त्रों से भयंकर थी और अन्धकार के समूह के समान जान पड़ती थी ॥२९१॥
तब उन्होंने दिखाया कि युद्ध में जीतकर पुष्पान्तक नगर को विध्वस्त कर दिया है तथा तुम्हारे पिता रत्नश्रवा को भाई-बंधुओं सहित गिरफ्तार कर लिया गया है ॥२९२॥
अन्तःपुर भी हृदय को तोड़ देनेवाला विलाप कर रहा है और साथ ही साथ यह शब्द कर रहा है कि तुम्हारे जैसे पुत्रों के रहते हुए भी हम दुख को प्राप्त हुए हैं ॥२९३॥
पिता इस प्रकार चिल्ला-चिल्लाकर उनके सामने बहुत भारी बाधा उत्पन्न कर रहा है कि हे पुत्रों ! इस महावन में म्लेच्छ मुझे मार रहे हैं सो मेरी रक्षा करो ॥२९४॥
उन्होंने दिखाया कि तुम्हारी माता को चाण्डाल बेड़ी में डालकर पीट रहें हैं, चोटी पकड़कर धसीट रहे हैं और वह आँसुओं की धारा छोड़ रही है ॥२९५॥
माता कह रही है कि हे पुत्रो ! देखो, वन में मैं ऐसी अवस्था को प्राप्त हो रही हूँ । यही नहीं तुम लोगों के सामने ही शबर लोग मुझे अपनी पल्ली-बसति में लिये जा रहे हैं ॥२०६॥
तुम यह पहले झूठ-मूठ ही कहा करते थे कि विद्याबल को प्राप्त सब विद्याधर मिलकर भी मेरी एक भुजा के लिए पर्याप्त नहीं हैं। परन्तु इस समय तो तुम तीनों ही इतने निस्तेज हो रहे हो कि एक ही म्लेच्छ के लिए पर्याप्त नहीं हो ॥२९७-२९८॥
हे दशाग्रीव, यह विभीषण तेरी व्यर्थ ही स्तुति करता था। जबकि तू माता की रक्षा नहीं कर पा रहा है तब तो मैं समझती हूँ कि तेरे एक भी ग्रीवा नहीं है ॥२९९॥
मानसे रहित तू जितने समय तक मेरे उदर में रहकर बाहर निकला है उतने समय तक यदि मैं मल को भी धारण करती तो अच्छा होता ॥३००॥
जान पड़ता है यह भानुकर्ण भी कर्णों से रहित है इसलिए तो मैं चिल्ला रही हूँ और यहाँ मेरे दुःख-भरे शब्द को सुन नहीं रहा है। देखो, केसा निश्चल शरीर धारण किये है ॥३०१॥
यह विभीषण भी इस विभीषण नाम को व्यर्थ ही धारण कर रहा है और मुर्दा जैसा इतना अकर्मण्य हो गया है कि एक भी म्लेच्छ का निराकरण करने में समर्थ नहीं है ॥३०२॥
देखो, ये म्लेज्छ, बहन चन्द्रनखा को धर्महीन बना रहे हैं सो इसपर भी तुम दया क्यों नहीं करते हो ? माता-पिता की अपेक्षा भाई का बहन पर अधिक प्रेम होता है पर इसकी तुम्हें चिन्ता कहां है ? ॥३०३॥
हे पुत्रों ! विद्या सिद्ध की जाती है आत्मीयजनों की समृद्धि के लिए, सो उन आत्मीयजनों की अपेक्षा माता-पिता श्रेष्ठ हैं और माता-पिता की अपेक्षा बहन श्रेष्ठ है यही सनातन व्यवस्था है ॥३०४॥

जिस प्रकार विषधर सर्प की दृष्टि पड़ते ही वृक्ष भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारी भौंह के संचार मात्र से म्लेच्छ भस्म हो सकते हैं ॥३०५॥

मैंने तुम लोगों को सुख पाने की इच्छा से ही उदर में धारण किया था क्योंकि पुत्र वही कहलाते हैं जो पाये की तरह माता-पिता को धारण करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं ॥३०६॥

इतना सब कुछ करने पर भी जब उनका ध्यान भंग नहीं हुआ, तब उन देवों ने अत्यन्त भयंकर मायामयी कार्य करना शुरू किया ॥३०७॥

उन्होंने उन तीनों के सामने तलवार की धार से माता-पिता का सिर काटा तथा रावण के सामने उसके अन्य दो भाइयों का सिर काटकर गिराया ॥३०८॥

इसी प्रकार उन दो भाइयों के सामने रावण का सिर काटकर गिराया। इस कार्य से विभीषण और भानुकर्ण के ध्यान में क्रोधवश कुछ चंचछता आ गयी ॥३०९॥

परन्तु दशानन भावों की शुद्धता को धारण करता हुआ सुमेरु के समान स्थिर बना रहा। वह महाशक्तिशाली तथा दृढ़श्रद्धानी जो था ॥३१०॥

उसने इन्द्रियों के संचार को अपने आप में हो रोककर बिजली के समान चंचल मन को दास के समान आज्ञाकारी बना लिया था ॥३११॥

शत्रु से बदला लेने की इच्छारूपी कण्टक तथा जितेन्द्रियतारूपी संवर दोनों ही जिसकी रक्षा कर रहे थे, ऐसा दशानन ध्यान-सम्बन्धी दोषों से रहित होकर प्रयत्न-पूर्वक मन्त्र का ध्यान करता रहा ॥३१२॥

आचार्य कहते हैं कि यदि ऐसा ध्यान कोई मुनिराज घारण करते तो उस ध्यान के प्रभाव से उसी समय अष्टकर्मों का विच्छेद कर देते ॥३१३॥

इसी बीच में हाथ जोड़कर सामने खड़ी हुई अनेक हजार शरीर धारिणी विद्याएँ दशानन को सिद्ध हो गयीं ॥३१४॥

मन्त्र जपने की संख्या समाप्त नहीं हो पायी कि उसके पहले ही समस्त विद्याएँ उसे सिद्ध हो गयीं, सो ठीक ही है क्योंकि दृढ़ निश्चय से क्या नहीं मिलता है ? ॥३१५॥

दृढ़ निश्चय भी पूर्वोपार्जित उज्ज्वल कर्म से ही प्राप्त होता है । यथार्थ में कर्म ही दुःखानुभव में विघ्न उत्पन्न करते हैं ॥३१६॥

योग्य समय पात्र के लिए दान देना, क्षेत्र में आयु की स्थिति समाप्त होना तथा रत्नत्रय की प्राप्तिरूपी फल से युक्त विद्या का प्राप्त होना, इन तीन कार्यों को अभव्य जीव कभी नहीं पाता है ॥३१७॥

किसी को दस वर्ष में, किसी को एक माह में और किसी को एक क्षण में ही विद्याएं सिद्ध हो जाती हैं, सो यह सब कर्मों का प्रभाव है ॥३१८॥

भले ही पृथिवी पर सोवे, चिरकाल तक भोजन का त्याग रखे, रात-दिन पानी में डूबे रहे, पहाड की चोटी से गिरे, और जिससे मरण भी हो जावे ऐसी शरीर सुखानेवाली क्रियाएँ करे तो भी पुण्य-रहित जीव अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता ॥३१९-३२०॥

जिन्होने पूर्व-भव में अच्छे कार्य किये हैं, उन्हें सिद्धि अनायास ही प्राप्त होती है । तपश्चरण आदि क्रियाएँ तो निमित्त-मात्र हैं पर जिन्होंने पूर्वभव में उत्तम-कार्य नहीं किये, वे व्यर्थ ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं - उनका जीवन निरर्थक जाता है ॥३२१॥

इसलिए मनुष्य को पूर्ण आदर से आचार्य की सेवा कर सदा पुण्य का ही संचय करना चाहिए क्योंकि पुण्य के बिना सिद्धि कैसे हो सकती है ? ॥३२२॥

गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुण्य का प्रभाव देखो कि महामनस्वी दशानन, समय पूर्ण न होने पर भी विद्याओं की सिद्धि को प्राप्त हो गया ॥३२३॥

अब मैं संक्षेप से विद्याओं का नामोल्लेख करता हूँ। विद्याओं के ये नाम उनके **अर्थ**-कार्य की सामर्थ्य से ही प्राप्त हुए हैं - प्रचलित हैं। हे श्रेणिक ! सावधान चित्त होकर सुनो ॥३२४॥ संचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, दुर्निवारा, जगत्कम्पा, प्रज्ञप्ति, भानुमालिनी, अणिमा, लघिमा, क्षोम्या, मनःस्तम्भनकारिणी, संवाहिनी, सुरध्वंसी, कौमारी, वधकारिणी, सुविधाना, तपोरूपा, दहनी, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिनरात्रिविधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शनी, अजरा, अमरा, अनलस्तम्भिनी, तोयस्तम्भिनी, गिरिदारणी, अवलोकिनी, अरिध्वंसी, घोरा, धीरा, भुजंगिनी, वारुणी, भुवना, अवध्या, दारुणा, मदनाशिनी, भास्करी, भयसंभूति, ऐशानी, विजया, जया, बन्धनी,

मोचनी, वाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शान्ति, कौबेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्सादी, चण्डा, भीति और प्रवर्षिणी आदि अनेक महाविद्याओं को निश्चल परिणामों का धारी दशानन पूर्वोपार्जित पुण्य-कर्म के उदय से थोड़े हो दिनों में प्राप्त हो गया ॥३२५-३३२॥
सर्वाहा, रतिसंवृद्धि, जृम्भिणी, व्योमगामिनी और निद्राणी ये पांच विद्याएँ भानुकर्ण को प्राप्त हुईं ॥३३३॥
सिद्धार्था, भत्रुदमनी, निर्व्याघाता और आकाशगामिनी ये चार विद्याएँ प्रिय स्त्रियाँ के समान विभीषण को प्राप्त हुईं ॥३३४॥
इस प्रकार विद्याओं के ऐश्वर्य को प्राप्त हुए वे तोनों भाई महाहर्ष के कारणभूत नूतन जन्म को ही मानो प्राप्त हुए थे ॥३३५॥
तदनन्तर यक्षों के अधिपति अनावृत यक्ष ने भी विद्याओं को आया देख महावैभव से उन तीनों भाइयों की पूजा की और उन्हें दिव्य अलंकारों से अलंकृत किया ॥३३६॥
दशानन ने विद्या के प्रभाव से स्वयंप्रभ नामक, नगर बसाया । वह नगर मेरुपर्वत के शिखर के समान ऊँचे-ऊँचे मकानों की पंक्ति से सुशोभित था ॥३३७॥
जिनके झरोखों में मोतियों की झालर लटक रही थी, जो बहुत ऊंचे थे तथा जिनके खम्भे रत्न और स्वर्ण के बने थे ऐसे जिनमन्दिरों से अलंकृत था ॥३३८॥
परस्पर की किरणों के सम्बन्ध से जो इन्द्रधनुष उत्पन्न कर रहे थे, तथा निरन्तर स्थिर रहनेवाली बिजली के समान जिनकी प्रभा थी ऐसे रत्नों से वह नगर सदा प्रकाशमान रहता था ॥३३९॥
उसी नगर के गगनचुम्बी राजमहल में विद्याबल से सम्पन्न दशानन अपने दोनों भाइयों के साथ सुख से रहने लगा ॥३४०॥
तदनन्तर आश्चर्य से भरे जम्बूद्वीप के अधिपति अनावृत यक्ष ने एक दिन दशानन से कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! में तुम्हारे वीर्य से बहुत प्रसन्न हूँ ॥३४१॥
अतः जिसके अन्त में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इस प्रकार चार समुद्र हैं तथा जो नागकुमार और व्यन्तर देवों से व्याप्त है ऐसे इस जम्बूद्वीप में इच्छानुसार रहो ॥३४२॥
मैं इस समस्त द्वीप का अधिपति हूँ, मेरा कोई भी प्रतिद्वन्दी नहीं है, अतः तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम शत्रु-समूह को उखाड़ते हुए इस जम्बूद्वीप में इच्छानुसार सर्वत्र विचरण करो ॥३४३॥
हे वत्स ! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ और तेरे स्मरण-मात्र से सदा तेरे सामने खड़ा रहूँगा । मेरे प्रभाव से तेरे मनोरथ में बाघा पहुंचाने के लिए इन्द्र भए समर्थ नहीं हो सकेगा फ़िर साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है ? ॥३४४॥
तू अपने दोनों भाइयों के साथ सुखी रहता हुआ दीर्घ-काल तक जीवित रह । तेरी दिव्य-विभूतियां सदा बढ़ती रहें और बन्धुजन सदा उनका सेवन करते रहें ॥३४५॥
इस प्रकार यथार्थ आशीर्वाद से उन तीनों भाइयों को आनन्दित कर वह यक्ष परिवार के साथ अपने स्थान पर चला गया ॥३४६॥
तदनन्तर दशानन को विद्याओं से आलिंगित सुन, चारों-ओर से राक्षसों के समूह महोत्सव करते हुए उसके समीप आये ॥३४७॥
उनमें कोई तो नृत्य करते थे, कोई ताल बजाते थे, कोई हर्ष से इतने फूल गये थे कि अपने शरीर में ही नहीं समाते थे ॥३४८॥
कितने ही लोग शत्रुपक्ष को भयभीत करनेवाला जोर का सिंहनाद करते थे, कोई आकाश को चूना से लिप्त करते हुए की तरह चिरकाल तक हँसते रहते थे ॥३४९॥
प्रीति से भरे सुमाली, माल्यवान्, सूर्यरज और ऋक्षरज उत्तमोत्तम रथों पर सवार हो उसके समीप आये ॥३५०॥
इनके सिवाय अन्य सभी कुटुम्बीजन, कोई विमानों पर बेठकर, कोई घोड़ों पर सवार होकर और कोई हाथियों पर आरूढ़ होकर आये। वे सब भय से रहित थे ॥३५१॥
अथानन्तर पुत्र के स्नेह से जिसका मन भर रहा था ऐसा रत्नश्रवा पताकाओं से आकाश को निरन्तर शुक्ल करता हुआ बड़ी विभूति के साथ आया। बन्दीजनों के समूह उसकी स्तुति कर रहे थे, और वह किसी बडे राजमहल के समान सुन्दर रथ पर सवार था ॥३५२-३५३॥
ये सब मिलकर साथ ही साथ आ रहे थे सो मार्ग में पंचसंगम नामक पर्वत पर उन्होंने शत्रु के भय के कारण बहुत ही दुख से रात्रि बितायी ॥२५४॥
तदनन्तर केकसी के पुत्र दशानन आदि ने आगे जाकर उन सबकी अग़वानी की। उन्होंने गुरुजनों को प्रणाम किया, मित्रों का आलिंगन

किया और भृत्यों की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा ॥३५५॥
गुरुजनों ने भी दशानन आदि से शरीर की कुशल-क्षेम पूछी, विद्याएँ किस तरह सिद्ध हुईं आदि का वृत्तान्त भी बार-बार पूछा सो ऐसे अवसर पर किसी बात को बार-बार पूछना निनन्दनीय नहीं है ॥३५६॥
राक्षस तथा वानर-वंशियों ने देवलोक के समान उस स्वयंप्रभनगर को बड़े आश्चर्य के साथ देखा ॥३५७॥
जिनके नेत्र आनन्द से व्याप्त थे ऐसे माता-पिता ने प्रणाम करते हुए दशानन आदि के शरीर का कांपते हुए हाथों से चिरकाल तक स्पर्श किया ॥३५८॥
जब सूर्य आकाश के मध्यभाग में था तब दिव्य वनिताओं ने बड़े उत्सव के साथ उन तीनों कुमारों की स्नानाविधि प्रारम्भ की ॥३५०॥
जिनके चारों ओर मोतियों के समूह व्याप्त थे तथा जो नाना प्रकार के रत्नों से समृद्ध थे ऐसे उत्कृष्ट स्वर्ण-निर्मित स्नान की चौकियों पर वे आसीन हुए ॥३६०॥
पल्लवों के समान लाल-लाल कान्ति के धारक दोनों पैर उन्होंने पादपीठ पर रखे थे और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उदयाचल के शिखरपर वर्तमान सूर्य ही हो ॥३६१॥
तदनन्तर रत्नमयी, सुवर्णमयी और रजतमयी उन कलशों से उनका अभिषेक शुरू हुआ कि जिनके मुख पल्लवों से आच्छादित थे, जो हारों से सुशोभित थे, चन्द्रमा तथा सूर्य के साथ स्पर्धा करनेवाली कान्ति से जिनका आत्म-स्वरूप आच्छादित था, जो अपनी सुगन्ध से दिग्मण्डल को सुवासित करनेवाले जल से पूर्ण थे, जिनमें एक तो प्रधान मुख था तथा अन्य छोटे-छोटे अनेक मुख थे, जिनके आस-पास भ्रमरों के समूह मंडरा रहे थे और जो जलपात के कारण गम्भीर मेघ के समान गरज रहे थे ॥३६२-३६४॥
तदनन्तर शरीर को कान्ति बढ़ाने में कुशल उबटना आदि लगाकर सुगन्धित जल से उनका अभिषेक किया गया । उस समय तुरही आदि वादित्रों के मंगलमय शब्दों से वहाँ का वातावरण आनन्दमय हो रहा था ॥३६५॥
तत्पश्यात् दिव्य वास्त्राभूषणों से उनके शरीर अलंकृत किये गये और कुलांगनाओं ने बड़े आदर से अनेक मंगलाचार किये ॥३६६॥
तदनन्तर जो देवकुमारों के समान जान पड़ते थे और आत्मीयजनों को आनन्द प्रदान कर रहे थे ऐसे उन तीनों कुमारों ने बड़ी विनय से गुरुजनों की चरण-वन्दना की ॥३६७॥
तदनन्तर गुरुजनों ने देखा कि इन्हें जो विद्याओं से सम्पदाएं प्राप्त हुई हैं वे हमारे आशीर्वाद से भी अधिक है अतः उन्होंने यही कहा कि तुम लोग चिरकाल तक जीवित रहो ॥३६८॥
सुमाली, माल्यवान्, सूर्यरज, ऋक्षरज और रत्नश्रवा ने स्नेहवश उनका बार-बार आलिंगन किया था ॥३६९॥
तदनन्तर इच्छानुसार जिन्हें सब सम्पदाएँ प्राप्त थीं ऐसे उन सब लोगों ने बन्धुजनों तथा भृत्य-वर्ग से आवृत होकर भोजन किया ॥३७०॥
तदनन्तर दशानन ने वस्त्र आदि देकर गुरुजनों की पूजा की और यथायोग्य भृत्यवर्ग का भी सम्मान किया ॥३७१॥
तत्पश्चात् प्रीति से जिनके नेत्र फूल रहे थे, ऐसे समस्त गुरुजन निश्चिन्तता से बेठे थे । प्रकरण पाकर उन्होंने कहा कि हे पुत्रों ! इतने दिन तक तुम सब सुख से रहे ? ॥३७२॥
तब दशानन आदि कुमारों ने हाथ जोड़ सिर से लगाकर प्रणाम करते हुए कहा कि आप लोगों के प्रसाद से हम सब को कुशल है ॥३७३॥
तदनन्तर प्रकरणवश माली के मरण की चर्चा करते हुए सुमाली इतने शोक-ग्रस्त हुए कि उन्हें तत्काल ही मूर्च्छा आ गयी ॥३७४॥
तत्पश्चात् रत्नश्रवा के ज्येष्ठ पुत्र दशानन ने अपने शीतल हाथ से स्पर्श कर उन्हें पुनः सचेत किया ॥३७५॥
तथा बर्फ के समान ठण्डे ओर समस्त शत्रु-समूह के घातरूपी बीज के अंकुरोद्गम के समान शक्तिशाली वचनों से उन्हें आनन्दित किया ॥३७६॥
तब कमल के समान नेत्रों से सुशोभित दशानन को देख, सुमाली तत्काल ही सब शोक छोड़कर पुनः आनन्द को प्राप्त हो गये ॥३७७॥
ओर दशानन से हृदयहारी सत्य वचन कहने लगे कि अहो वत्स ! सचमुच ही तुम्हारा उदार बल देवताओं को सन्तुष्ट करनेवाला है ॥३७८॥
अहो ! तुम्हारी यह कान्ति सूर्य को जीतकर स्थित है और तुम्हारा गाम्भीर्य समुद्र को दूर हटाकर विद्यमान है ॥३७९॥
अहो ! तुम्हारा यह कान्ति-सहित पराक्रम सर्वजनातिगामी है **अर्थ**ात् सब लोगों से बढ़कर है । अहो पुत्र ! तुम राक्षसवंश के तिलक-स्वरूप उत्पन्न हुए हो ॥३२८०॥

हे दशानन ! जिस प्रकार सुमेरु-पर्वत से जम्बूद्वीप सुशोभित है और चन्द्रमा तथा सूर्य से आकाश सुशोभित होता है, उसीप्रकार लोगों को महान आश्चर्य में डालनेवाली चेष्टाओं से युक्त तुझ सुपुत्र से यह राक्षसवंश सुशोभित हो रहा है ॥३८१-३८२॥
मेघवाहन आदि तुम्हारे कुल के पूर्वपुरुष थे जो लंकापुरी का पालन कर तथा अन्त में तपश्चरण कर मोक्ष गये हैं ॥३८३॥
अब हमारे दुःखों को दूर करनेवाले पुण्य से तू उत्पन्न हुआ है। हे पुत्र! एक तेरे मुख से मुझे जो सन्तोष हो रहा है उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ ॥३८४॥
इन विद्याघरोंने तो जीवित रहने की आशा छोड़ दी थी अब तुझ उत्साही के उत्पन्न होने पर फिर से आशा बांधी है ॥३८५॥
एक बार हम जिनेन्द्र भगवान् को वन्दना करने के लिए कैलाश पर्वत पर गये थे । वहां अवधिज्ञान के धारी मुनिराज को प्रणाम कर हमने पूछा था कि हे नाथ ! लंका में हमारा निवास फिर कब होगा ? इसके उत्तर में दयालु मुनिराज ने कहा था ॥३८६-३८७॥ कि तुम्हारे पुत्र से वियद्विन्दु की पुत्री में जो उत्तम पुरुष जन्म प्राप्त करेगा वही तुम्हारा लंका में प्रवेश करानेवाला होगा ॥३८८॥
वह पुत्र बल और पराक्रम का धारी तथा सत्त्व, प्रताप, विनय, लक्ष्मी, कीर्ति और कान्ति का अनन्य आश्रय होगा तथा भरत-क्षेत्र के तीन-खण्डों का पान करेगा ॥३८९॥ शत्रु के द्वारा अपने अधीन की हुई लक्ष्मी को यही पुत्र उससे मुक्त करावेगा इसमें आश्चर्य की भी कोई बात नहीं है क्योंकि वह लंका में परम लक्ष्मी को प्राप्त होगा ॥३९०॥
सो कुल के महोत्सवस्वरुप तू उत्पन्न हो गया है, तेरे सब लक्षण शुभ हैं तथा अनुपमरूप से तू सबके नेत्रों को हरनेवाला है ॥३९१॥
सुमाली के ऐसा कहने पर दक्शानन ने लज्जा से अपना मस्तक नीचा कर लिया और 'एयमस्तु' कह हाथ जोड़ सिर से लगाकर सिद्ध भगवान् को नमस्कार किया ॥३९२॥
तदनन्तर उस बालक के प्रभाव से सब बन्धुजन शत्रु के भय से रहित हो यथास्थान सुख से रहने लगे ॥३९३॥
तदनन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के प्रभाव से मनुष्य कीर्ति के द्वारा दिग्दिगन्तराल तथा लोक को आच्छादित करते हुए लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं। इसमें मनुष्य की आयु कारण नहीं है। क्या अग्नि का एक कण क्षणभर में विशाल वन को भस्म नहीं कर देता अथवा सिंह का बालक मदोन्मत्त हाथियों के झुण्ड को विदीर्ण नहीं कर देता ? ॥३९४॥
चन्द्रमा की किरणों का एक अंश, सूर्य की किरणों से उत्पादित प्राणियों के सन्ताप को दूर करता हुआ शीघ्र ही कुमुदिनियों में उल्लास पैदा कर देता है और सूर्य उदित होते ही निद्रा को दूर हटानेवाली अपनी किरणों से मेघमाला के समान मलिन अन्धकार को दूर कर देता है ॥३९५॥
इस प्रकार आर्य नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में दशानन का वर्णन करनेवाला सातवां पर्व पूरा हुआ ॥७॥

## अष्टमं पर्व

अष्टमं पर्व
कथा :
अथानन्तर विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में असुर-संगीत नाम का नगर है। वहाँ कान्ति में सूर्य की उपमा धारण करनेवाला प्रबल योद्धा मय नाम का विद्याधर रहता था। वह पृथिवी-तल में दैत्य नाम से प्रसिद्ध था। उसकी हेमवती नाम की स्त्री थी जो स्त्रियों के समस्त गुणों से सहित थी ॥१-२॥
उसकी मन्दोदरी नाम की पुत्री थी। उसके समस्त अवयव सुन्दर थे, उदर कृश था, नेत्र विशाल थे और वह सौन्दर्यरूपी जल की धारा के समान जान पड़ती थी ॥३॥
एक दिन नवयौवन से सम्पूर्ण उस पुत्री को देखकर पिता चिन्ता से व्याकुल हो अपनी स्त्री से बड़े आदर के साथ बोला कि हे प्रिये ! पुत्री मन्दोदरी नवयौवन को प्राप्त हो चुकी है। इसे देख मेरी इस विषय की मानसिक चिन्ता कई गुणी बढ़ गई है ॥४-५॥
किसी ने ठीक ही कहा है कि सन्तापरूपी अग्नि को उत्पन्न करनेवाले कन्याओं के यौवनारम्भ में माता-पिता अन्य परिजनों के साथ ही साथ ईन्धनपने को प्राप्त होते हैं ॥६॥
इसीलिए तो कन्या जन्म के बाद दुःख से आकुलित है चित्त जिनका, ऐसे विद्वग्जन इसके लिए नेत्ररूपी अंजलि के द्वारा जल दिया करते हैं

॥७॥
अहो, जिन्हें अपरिचित जन आकर ले जाते हैं ऐसे अपने शरीर से समुत्पन्न सन्तान ( पुत्री) के साथ जो वियोग होता है वह मर्म को भेदन कर देता है ॥८॥
इसलिए हे प्रिये ! कहो, यह तारुण्यवती पुत्री हम किसके लिए देवें । गुण, कुल और कान्ति से कौन वर इसके अनुरूप होगा ॥९॥
पति के ऐसा कहने पर रानी हेमवती ने कहा कि माताएँ तो कन्याओं के शरीर की रक्षा करने में ही उपयुक्त होती हैं और उनके दान करने में पिता उपयुक्त होते हैं ॥१०॥
जहां आपके लिए कन्या देना रुचता हो वहीं मेरे लिए भी रुचेगा क्योंकि कुलांगनाएँ पति के अभिप्राय के अनुसार ही चलती हैं ॥११॥
रानी के ऐसा कहने पर राजा ने मन्त्रियों के साथ सलाह की तो किसी मन्त्री ने किसी विद्याधर का उल्लेख किया ॥१२॥
तदनन्तर किसी दूसरे मन्त्री ने कहा कि इसके लिए इन्द्र विद्याधर ठीक होगा क्योंकि वह समस्त विद्याधरों का अधिपति है और सब विद्याधर उसके विरुद्ध जाने में भयभीत भी रहेंगे ॥१३॥
तब राजा मय ने स्वयं कहा कि मैं आप लोगों के मन की बात तो नहीं जानता पर मुझे जिसे समस्त विद्याएँ सिद्ध हुई हैं ऐसा प्रसिद्ध दशानन अच्छा लगता है ॥१४॥
निश्चित ही वह जगत् में कोई अद्भुत कार्य करनेवाला होगा अन्यथा उसे छोटी ही उमर में शीघ्र ही अनेक विद्याएँ सिद्ध कैसे हो जातीं ॥१५॥
तदनन्तर मन्त्र करने में निपुण मारीच आदि समस्त प्रमुख मन्त्रियों ने बड़े हर्ष के साथ राजा मय को बात का समर्थन किया ॥१६॥
तदनन्तर महाबलवान् मारीच आदि मन्त्रियों और भाइयों ने राजा मय के मन को शीघ्रता से युक्त किया **अर्थ**ात् प्रेरणा को कि इस कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न कर लेना चाहिए ॥१७॥
तब राजा मय ने भी विचार किया कि 'समय बीत जाने से कार्य सिद्ध नहीं हो पाता है' -- ऐसा विचारकर वह किसी शुभ दिन, जबकि सौम्य ग्रह सामने स्थित थे, क्रूर ग्रह विमुख थे और लग्न मंगलकारी थी, कन्या के साथ पुष्पान्तक विमान में बैठकर चला । प्रस्थान करते समय तुरही का मधुर शब्द हो रहा था और स्त्रियाँ मंगलगीत गा रही थीं । बीच-बीच में जब तुरही का शब्द बन्द होता था तो स्त्रियों के मंगल गीतों से आकाश ऐसा गूँज उठता था मानो शब्दमय ही हो गया हो ॥१८-२०॥
दशानन भीम वन में है, यह समाचार, पुष्पान्तक विमान से उतरकर जो जवान आगे गये थे उन्होंने लौटकर राजा मय से कहा । तब राजा मय उस देश के जानकार गुप्तचरों से पता चलाकर भीम वन की ओर चला । वहाँ जाकर उसने काली घटा के समान वह वन देखा ॥ २१-२२॥
दशानन के खास स्थान का पता बताते हुए किसी गुप्तचर ने कहा कि हे राजन्! जिस प्रकार सम्मेदाचल और कैलास पर्वत के बीच में मन्दारुण नाम का वन है उसी प्रकार वलाहक और सन्ध्यावते नामक पर्वतों के बीच में यह उत्तम वन देखिए । देखिए कि यह वन स्निग्ध अन्धकार की राशि के समान कितना सुन्दर मालूम होता है और यहाँ कितने ऊंचे तथा सघन वृक्ष लग रहे हैं ॥२३-२४॥
इस वन के मध्य में शंख के समान सफेद बड़े-बड़े घरों से सुशोभित जो वह नगर दिखाई दे रहा है वह शरद् ऋतु के बादलों के समूह के समान कितना भला जान पड़ता है? ॥२५॥
उसी नगर के समीप देखो एक बहुत ऊँचा महल दिखाई दे रहा है । ऐसा महल कि जो अपने शिखरों के अग्रभाग से मानो सौधर्म स्वर्ग को ही छूना चाहता है ॥२६॥
राजा मय की सेना आकाश से उतरकर उसी महल के समीप यथायोग्य विश्राम करने लगी ॥२७॥
तदनन्तर दैत्यों का अधिपति राजा मय तुरही आदि वादित्र का आडम्बर छोड़कर तथा विनीत मनुष्यों के योग्य वेष-भूषा धारणकर कुछ आप्त जनों के साथ उस महल के समीप पहुँचा । कन्या मन्दोदरी उसके साथ थी । महल को देखते ही राजा मय का जहाँ अहंकार छूटा वहाँ उसे आश्चर्य भी कम नहीं हुआ । तदनन्तर द्वारपाल के द्वारा समाचार भेज कर वह महल के ऊपर चढा ॥२८-२९॥
सावधानी से पैर रखता हुआ जब वह क्रम से सातवें खण्ड में पहुँचा तब वहाँ उसने मूर्तिधारिणी वनदेवी के समान उत्तम कन्या देखी ॥३०॥
वह कन्या दशानन की बहन चन्द्रनखा थी सो उसने सबका अतिथि-सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि कुल के जानकार मनुष्य योग्य उपचार से कभी नहीं चूकते ॥३१॥

तदनन्तर जब मय सुखकारी आसन पर बैठ गया और चन्द्रनखा भी कन्याओं के योग्य आसन पर बैठ चुकी तब विनय दिखाती हुई उस कन्या से मय ने बड़ी नम्रता से पूछा ॥३२॥

कि हे पुत्री! तू कौन है? और किस कारण से इस भयावह वन में रहती है तथा यह बड़ा भारी महल किसका है? ॥३३॥

इस महल में अकेली रहते हुए तुझे कैसे धैर्य उत्पन्न होता है । तेरा यह उत्कृष्ट शरीर पीड़ा का पात्र तो किसी तरह नहीं हो सकता ॥३४॥

स्त्रियों के लज्जा स्वभाव से ही होती है इसलिए मय के इस प्रकार पूछने पर उस सती कन्या का मुख लज्जा से नत हो गया । साथ ही वन की हरिणी के समान भोली थी ही अत: धीरे-धीरे इस प्रकार बोली कि मेरा भाई दशानन षष्ठोपवास **अर्थ**ात् तेला के द्वारा इस चन्द्रहास खड्ग को सिद्ध कर जिनेन्द्र भगवान् को वन्दना करने के लिए सुमेरु पर्वत पर गया है । दशानन मुझे इस खड्ग की रक्षा करने के लिए कह गया है सो हे आर्य! मैं चन्द्रप्रभ भगवान से सुशोभित इस चैत्यालय में स्थित हूँ । यदि आप लोग दशानन को देखने के लिए आये है तो क्षण-मात्र यहीं पर विश्राम कीजिए ॥३५-३८॥

जबतक उन दोनों में इस प्रकार का मधुर आलाप चल रहा था तब तक आकाश तल मे तेज का मण्डल दिखाई देने लगा ॥३९॥

उसी समय कन्या ने कहा कि जान पड़ता है अपनी प्रभा से सूर्य को निष्प्रभ करता हुआ दशानन आ गया है ॥४०॥

बिजली के सहित मेघ-राशि के समान उस दशानन को निकटवर्ती देख मय हड़बड़ाकर आसन से उठ खड़ा हुआ ॥४१॥

यथायोग्य आचार प्रदर्शित करने के बाद सब पुन: आसनों पर आरूढ़ हुए । तलवार की कान्ति से जिनके शरीर श्यामल हो रहे थे ऐसे मारीच, वज्र मध्य, वज्रनेत्र, नभस्तडित्, उग्रनक्र, मरुद्वक्त्र, मेधावी, सारस और शुक आदि मय के मन्त्री लोग दशानन को देखकर परम सन्तोष को प्राप्त हुए और निम्नलिखित मंगल वचन मय से कहने लगे कि हे दैत्यराज! आपकी बुद्धि हम सबसे अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि आपने ही इस पुरुषोत्तम को हृदय में स्थान दिया था । **अर्थ**ात् हम लोगों का इसकी ओर ध्यान नहीं गया जबकि आपने इसका अपने मन में अच्छी तरह विचार रखा ॥४२-४५॥

मय से इतना कहकर उन मन्त्रियों ने दशानन से कहा कि अहो तुम्हारा उज्जवल रूप आश्चर्य कारी है, तुम्हारा विनय का भार अद्भुत है और तुम्हारा पराक्रम भी अतिशय से सहित है ॥४६॥

यह दैत्यों का राजा दक्षिण श्रेणी के असुर गीत नामा नगर का रहनेवाला है तथा संसार में मय नाम से प्रसिद्ध है । यह आपके गुणों से आकर्षित होकर यहाँ आया है सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष किसे दर्शन के लिए उत्कण्ठित नहीं करते? ॥४७-४८॥

तब रत्नश्रवा के पुत्र दशानन ने कहा कि आपका स्वागत है । आचार्य कहते हैं कि जो मधुर भाषण है वह सत्पुरुषों की कुलविद्या है ॥४९॥

दैत्यों के अधिपति उत्तम पुरुष हैं जिन्होंने कि हमें प्रेमपूर्वक दर्शन दिये । मैं चाहता हूँ कि ये उचित आदेश देकर इस जन को अनुगृहीत करें ॥५०॥

तदनन्तर मय ने कहा कि हे तात! तुम्हें यह कहना उचित है क्योंकि जो उत्तम पुरुष हैं वे विरुद्ध आचरण कभी नहीं करते ॥५१॥

जिनका चित्त कौतुक से व्याप्त था ऐसे मय के मन्त्रियों ने भी दशानन के दर्शन किये और आकुलता से भरे तथा बार-बार कहे हुए उत्तम वचनों से उसे आनन्दित किया ॥५२॥

तदनन्तर अच्छी भावना से युक्त दशानन ने चन्द्रप्रभ जिनालय के महा मनोहर गर्भगृह में प्रवेश किया । वहाँ उसने प्रधान रूप से जिनेन्द्र भगवान की बड़ी भारी पूजा को ॥५३॥

रोमांच उत्पन्न करने वाले अनेक प्रकार के स्तवन पढ़े, हाथ जोड़कर चूड़ामणि से सुशोभित मस्तक पर लगाये, और ललाटतट तथा घुटनों से पृथ्वीतल का स्पर्श कर जैनेन्द्र भगवान के पवित्र चरणों को देर तक नमस्कार किया ॥५४-५५॥

तदनन्तर परम अभ्युदय को धारण करनेवाला दशानन जिनमन्दिर से बाहर निकलकर दैत्यराज मय के साथ आसन पर सुख से बैठा ॥५६॥

वार्तालाप के प्रकरण में जब वह विजयार्ध पर्वत पर रहनेवाले विद्याधरों का समाचार पूछ रहा था तब मन्दोदरी उसके दृष्टिगोचर हुई ॥५७॥

मन्दोदरी सुन्दर लक्षणों से पूर्ण थी, सौभाग्य रूपी मणियों की मानो भूमि थी, उसके चरण-कमलों का पृष्ठ भाग छोटे किन्तु स्निग्ध नखों से ऊपर को उठा हुआ जान पड़ता था ॥५८॥

वह जिन ऊरुओं से सुशोभित थी वे केले के स्तम्भ के समान थे, कामदेव के तरकस के समान जान पड़ते थे अथवा सौन्दर्य रूपी जल के

प्रवाह के समान मालूम होते थे ॥५९॥
वह जिस नितम्ब को धारण कर रही थी वह योग्य विस्तार से सहित था, ऊँचा उठा था, कामदेव के सभामण्डप के समान जान पड़ता था और कुछ ऊँचे उठे हुए कूल्हों से मनोहर था ॥६०॥
उसकी कमर वज्र के समान मजबूत अथवा हीरा के समान देदीप्यमान थी, लज्जा के कारण उसका मुख नीचे की ओर था, स्वर्ण कलश के समान उसके स्तन थे, और शिरीष के फूलों की माला के समान कोमल उसकी दोनों भुजाएँ थीं ॥६१॥
उसकी गरदन शंख जैसी रेखाओं से सुशोभित तथा कुछ नीचे की ओर झुकी थी, मुख पूर्णचन्द्रमा के समान था और नाक तो ऐसी जान पड़ती थी मानो नेत्रों की कान्तिरूपी नदी के बीच में पुल ही बांध दिया गया हो ॥६२॥
उसके स्वच्छ कपोल ओठों की लाल-लाल कान्ति से व्याप्त थे तथा उसकी आवाज वीणा, भ्रमर और उन्मत्त कोयल की आवाज के समान थी ॥६३॥
उसकी दृष्टि कामदेव की दूती के समान थी और उससे वह दिशाओं में नीलकमल, लालकमल तथा सफेद कमलों का समूह ही मानो बिखेरती थी ॥६४॥
उसका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान था, कान सुन्दर थे, तथा चिकने, काले और बारीक बाल थे ॥६५॥
वह मुख तथा चरणों की शोभा से चलती-फिरती कमलिनी को, हाथों की शोभा से हस्तिनी को तथा गति और विभ्रम के द्वारा क्रमश: हंसी और सिंहनी को जीत रही थी ॥६६॥
विद्याओं ने दशानन का आलिंगन प्राप्त कर लिया और मैं ऐसी ही रह गयी इस प्रकार ईर्ष्या को धारण करती हुई लक्ष्मी ही मानो कमलरूपी घर को छोड़कर मन्दोदरी के बहाने आ गयी थी ॥६७॥
कर्मरूपी विधाता ने संसार के समस्त सौन्दर्य को इकहरा कर उसके बहाने स्त्री-विषयक अपूर्व सृष्टि ही मानो रची थी ॥६८॥
वह सूर्य की किरणों का स्पर्श तथा राहु ग्रह के आक्रमण के भय से चन्द्रमा को छोड़कर पृथ्वी पर आयी हुई कान्ति के समान जान पड़ती थी ॥६९॥
उसने अपने सीमन्त (माँग) में जो मणि पहन रखा था उसकी कान्ति का समूह उसके मुख पर घूँघट का काम देता था । वह जिस हार से सुशोभित थी वह मुख के सौन्दर्य के प्रवाह के समान जान पड़ता था ॥७०॥
उसने अपने कानों में मोती जड़ित बालियाँ पहन रखी थीं सो उनकी प्रभा से ऐसी जान पड़ती थी मानो सफेद सिन्दुवार (निगुंण्डी) की मंजरी ही धारण कर रही हो ॥७१॥
चूँकि जघनस्थल काम के दर्पजन्य क्षोभ को सहन नहीं करता था इसलिए ही मानो उसे मणि समूह से सुशोभित कटि सूत्र से वेष्टित कर रखा था ॥७२॥
वह मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दर थी फिर भी दशानन उसे देख चिन्ता से दुःखी हो गया सो ठीक ही है क्योंकि धैर्यवान् मनुष्य भी प्रायः विषयों के अधीन हो जाते हैं ॥७३॥
मन्दोदरी माधुर्य से युक्त थी इसलिए उस पर पड़ी दशानन को दृष्टि स्वयं भी मानो मधु से मत्त हो गयी थी, यही कारण था कि वह उस पर से हटा लेने पर भी नशा में झूमती थी ॥७४॥
दशानन विचारने लगा कि यह उत्तम स्त्री कौन हो सकती है? क्या ह्री, श्री, लक्ष्मी, घृति, कीर्ति अथवा सरस्वती है? ॥७५॥
यह विवाहित है या अविवाहित? अथवा किसी के द्वारा की हुई माया है? अहो, यह तो समस्त स्त्रियों की शिरोधार्य सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है ॥७६॥
यदि मैं इन्द्रियों को हरने वाली इस कन्या को प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म कृतकृत्य हो जाये अन्यथा तृण के समान तुच्छ है ही ॥७७॥
इस प्रकार विचार करते हुए दशानन से अभिप्राय के जाननेवाले मय ने पुत्री मन्दोदरी को पास ले जाकर कहा कि इसके स्वामी आप हैं ॥७८॥
मय के इस वचन से दशानन को इतना आनन्द हुआ मानो तत्क्षण अमृत से ही सींचा गया हो । उसके सारे शरीर में रोमांच उठ आये मानो सन्तोष के अंकुर ही उत्पन्न हुए हों ॥७९॥
तदनन्तर जहाँ क्षणभर में ही समस्त वस्तुओं का समागम हो गया था और कुटुम्बीजन जहाँ आनन्द से फूल रहे थे ऐसा इन दोनों का

पाणिग्रहण-मंगल सम्पन्न हुआ ॥८०॥
तदनन्तर दशानन कृतकृत्य होता हुआ मन्दोदरी के साथ स्वयंप्रभ नगर गया । वह मन्दोदरी को पाकर ऐसा मान रहा था मानो समस्त संसार की लक्ष्मी ही मेरे हाथ लग गयी है ॥८१॥
पुत्री को चिन्ता रूपी शल्य के निकल जाने से जिसे हर्ष हो रहा था तथा साथ ही उसके वियोग से जिसे शोक हो रहा था ऐसा राजा मय भी अपने योग्य स्थान में जाकर रहने लगा ॥८२॥
जिसके हाव-भाव सुन्दर थे तथा जिसने अपने गुणों से पति का मन आकृष्ट कर लिया था ऐसी मन्दोदरी ने क्रम से हजारों देवियों में प्रधानता प्राप्त कर ली ॥८३॥
समस्त इन्द्रियों को प्रिय लगने वाली उस रानी मन्दोदरी के साथ दशानन, इच्छित स्थानों में इन्द्राणी के साथ इन्द्र के समान क्रीड़ा करने लगा ॥८४॥
उत्कृष्ट कान्ति से सहित दशानन अपनी विद्याओं का प्रभाव जानने के लिए निम्नांकित बहुत सारे कार्य करता था ॥८५॥
वह एक होकर भी अनेक रूप धरकर समस्त स्त्रियों के साथ समागम करता था । कभी सूर्य के समान सन्ताप उत्पन्न करता था तो कभी चन्द्रमा के समान चाँदनी छोड़ने लगता था ॥८६॥ कभी अग्नि के समान ज्वालाएँ छोड़ता था तो कभी मेघ के समान वर्षा करने लगता था । कभी वायु के समान बड़े-बड़े पहाड़ चला देता था तो कभी इन्द्र-जैसा प्रभाव जमाता था ॥८७॥ कभी समुद्र बन जाता था, कभी पर्वत हो जाता था, कभी मदोन्मत्त हाथी बन जाता था और कभी महा वेगशाली घोड़ा हो जाता था ॥८८॥ वह क्षण-भर में पास आ जाता था, क्षण-भर में दूर पहुँच जाता था, क्षण-भर में दृश्य हो जाता था, क्षण-भर में अदृश्य हो जाता था, क्षण-भर में महान् हो जाता था, क्षण-भर में सूक्ष्म हो जाता था, क्षण-भर में भयंकर दिखाई देने लगता था और क्षण भर में भयंकर नहीं रहता था ॥८९॥
इस प्रकार रमण करता हुआ वह एक बार मेघरव नामक पर्वत पर गया और वहाँ स्वच्छ जल से भरी वापिका के पास पहुँचा ॥८२॥ उस वापिका में कुमुद, नील-कमल, लाल-कमल, सफेद-कमल तथा अन्यान्य प्रकार के कमल फूल रहे थे और उसके किनारे पर क्रौंच, हंस, चकवा तथा सारस आदि पक्षी घूम रहे थे ॥९१॥ उसके तट हरी-हरी कोमल घास-रूपी वस्त्र से आच्छादित थे, सीढ़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं और उसका जल तो ऐसा जान पड़ता था, मानो सूर्य की किरणों से पिघलकर आकाश ही उसमें भर गया हो ॥९२॥अर्जुन (कोहा) आदि बड़े-बड़े ऊँचे वृक्षों से उसका तट व्याप्त था । जब कभी उसमें मछलियों के समूह ऊपर को उछलते थे तब उनसे जल के छींटे ऊपर उड़ने लगते थे ॥९३॥ अत्यन्त भंगुर **अर्थ**ात् जल्दी-जल्दी उत्पन्न होने और मिटने वाली तरंगों से वह ऐसी जान पड़ती थी मानो भौंहें ही चला रही हो तथा पक्षियों के मधुर शब्द से ऐसी मालूम होती थी मानो वार्तालाप ही कर रही हो ॥९४॥ उस वापिका पर परम शोभा को धारण करने वाली छह हजार कन्याएँ क्रीड़ा में लीन थीं, सो दशानन ने उन सबको देखा ॥९५॥ उनमें से कुछ कन्याएँ तो दूर तक उड़ने वाले जल के फव्वारे से क्रीड़ा कर रही थीं और कुछ अपराध करने वाली सखियों से दूर हटकर अकेली-अकेली ही घूम रही थी ॥९६॥ कोई एक कन्या शेवाल से सहित कमलों के समूह में बैठकर दाँत दिखा रही थी और उसकी सखियों के लिए कमल की आशंका उत्पन्न कर रही थी ॥९७॥ कोई एक कन्या पानी को हथेली पर रख दूसरे हाथ की हथेली से उसे पीट रही थी और उससे मृदंग जैसा शब्द निकल रहा था । इसके सिवाय कोई एक कन्या भ्रमरों के समान गाना गा रही थी । तदनन्तर वे सबकी सब कन्याएँ एक साथ दशानन को देखकर जल-क्रीड़ा भूल गयीं और आश्चर्य से चकित रह गयीं ॥९८-९९॥ दशानन क्रीड़ा करने की इच्छा से उनके बीच में चला गया तथा वे कन्याएँ भी उसके साथ क्रीड़ा करने के लिए बड़े हर्ष से तैयार हो गयीं ॥१००॥ क्रीड़ा करते-करते ही वे सब कन्याएँ एक साथ काम के बाणों से आहत (घायल) हो गयीं और दशानन पर उनकी दृष्टि ऐसी बँधी कि वह फिर अन्यत्र संचार नहीं कर सकी ॥१०१॥ उस अपूर्व समागम के कारण उन कन्याओं का कामरूपी रस लज्जा से मिश्रित हो रहा था अत: उनका मन दोला पर आरूढ़ हुए के समान अत्यन्त आकुल हो रहा था ॥१०२॥ अब उन कन्याओं में जो मुख्य हैं उनके नाम सुनो । राजा सुर सुन्दर से सर्वश्री नाम की स्त्री में उत्पन्न हुई पद्मावती नाम को शुभ कन्या थी । उसके नेत्र किसी बड़े नीलकमल की कलिका के समान थे ॥१०३॥ राजा बुध की मनोवेगा रानी से उत्पन्न अशोकलता नाम की कन्या थी जो नूतन अशोक लता के समान थी ॥१०४॥ राजा कनक से संख्या नामक रानी से उत्पन्न हुई विद्युतप्रभा नाम की श्रेष्ठ कन्या थी जो इतनी सुन्दरी थी कि अपनी प्रभा से बिजली को भी लज्जा प्राप्त करा रही थी ॥१०५॥ ये कन्याएँ महाकुल में उत्पन्न हुई थीं और शोभा से उन सबमें श्रेष्ठ थीं । विभूति से तो ऐसी जान पड़ती थीं मानो तीनों लोक की सुन्दरता ही रूप धरकर इकट्ठी हुई हो ॥१०६॥

उक्त तीनों कन्याएँ अन्य समस्त कन्याओं के साथ दशानन के समीप आयीं सो ठीक ही है क्योंकि लज्जा तभी तक सही जाती है जब तक कि काम की वेदना असह्य न हो उठे ॥१०७॥ तदनन्तर किसी प्रकार की शंका से रहित दशानन ने उन सब कन्याओं को गन्धर्व विधि से उस प्रकार विवाह लिया कि जिस प्रकार चन्द्रमा ताराओं के समूह को विवाह लेता है ॥१०८॥

तदनन्तर 'मैं पहले पहुंचूं, मैं पहले पहुंचूँ' इस प्रकार परस्पर में होड़ लगाकर वे कन्याएँ दशानन के साथ पुन:क्रीड़ा करने लगीं ॥१०९॥ जो कन्या दशानन के साथ क्रीड़ा करती थी वही भली मालूम होती थी सो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमा से रहित ताराओं की क्या शोभा है? ॥११०॥ तदनन्तर जो कंचुक की इन कन्याओं के साथ वापिका पर आये थे उन्होंने शीघ्र ही जाकर कन्याओं के पिता से दशानन का यह वृत्तान्त कह सुनाया ॥१११॥ तब कन्याओं के पिता ने दशानन को नष्ट करने के लिए ऐसे क्रूर पुरुष भेजे कि जो क्रोधवश ओठों को डंस रहे थे तथा बद्ध भौंहों के अग्रभाग से भयानक मालूम होते थे ॥११२॥ वे सब एक ही साथ अनेक प्रकार के शस्त्र चला रहे थे पर दशानन ने उन्हें भौंह उठाते ही जीत लिया ॥११३॥ तदनन्तर जिनका सारा शरीर भय से कांप रहा था तथा जिनके हाथ से शस्त्र छूट गये थे ऐसे वे सब पुरुष राजा सुरसुन्दर के पास जाकर कहने लगे ॥११४॥ कि हे नाथ! चाहे हमारा जीवन हर लो, चाहे हमारे हाथ-पैर तथा गरदन काट लो पर हम उस पुरुष को नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥११५॥ इन्द्र के समान सुन्दर तथा कान्ति से चन्द्रमा की तुलना करनेवाला कोई एक धीर-वीर मनुष्य कन्याओं के बीच में बैठा हुआ सुशोभित हो रहा है ॥११६॥ सो जब वह क्रुद्ध होता है तब उसकी दृष्टि को इन्द्र आदि देव भी सहन नहीं कर सकते फिर हमारे जैसे क्षुद्र प्राणियों की तो बात ही क्या है ? ॥११७॥ रथनूपुर नगर के राजा इन्द्र आदि बहुत से उत्तम पुरुष हमने देखे है पर यह उन सबमें परम आदर को प्राप्त है ॥११८॥

यह सुनकर, बहुत भारी क्रोध से जिसका मुंह लाल हो रहा था ऐसा राजा सुरसुन्दर, राजा कनक और बुध के साथ तैयार होकर बाहर निकले ॥११९॥ इनके सिवाय और भी बहुत से शूरवीर विद्याधरों के अधिपति शस्त्रों की किरणों से आकाश को देदीप्यमान करते हुए बाहर निकले ॥१२०॥ तदनन्तर उन्हें आता देख, जिनका मन भय से व्याकुल हो रहा था ऐसी वे विद्याधर कन्याएँ दशानन से बोली कि हे नाथ! आप हमारे निमित्त से अत्यन्त संशय को प्राप्त हुए हैं । यथार्थ में हम सब पुण्यहीन तथा शुभ लक्षणों से रहित हैं ॥१२१-१२२॥ हे नाथ ! उठो और किसी की शरण में जाओ । हम लोगों पर प्रसन्न होओ और शीघ्र ही आकाश में उड़कर अपने दुर्लभ प्राणों की रक्षा करो ॥१२३॥ अथवा ये क्रूर पुरुष जब तक आपका शरीर नहीं देख लेते हैं उसके पहले ही इस जिन-मन्दिर में छिपकर बैठ रहो ॥१२४॥

कन्याओं के यह दीन वचन सुनकर तथा सेना को निकट देख दशानन ने अपने कुमुद के समान सफेद नेत्र कमल के समान लाल कर लिये ॥१२५॥ उसने कन्याओं से कहा कि निश्चय ही आप हमारा पराक्रम नहीं जानती हो इसलिए ऐसा कह रही हो । जरा सोचो तो सही, बहुत से कौए एक साथ मिलकर भी गरुड़ का क्या कर सकते हैं? ॥१२६॥ जिसकी सफेद जटाएँ फहरा रही हैं ऐसा अकेला सिंह का बालक क्या मदोन्मत्त हाथियों के झुण्ड को नष्ट नहीं कर देता ? ॥१२७॥ दशानन के वीरता भरे वचन सुन उन कन्याओं ने फिर कहा कि हे नाथ! यदि आप ऐसा मानते हैं तो हमारे पिता, भाई तथा कुटुम्बीजनों को रक्षा कीजिए, **अर्थ**ात् युद्ध में उन्हें नहीं मारिए ॥१२८॥ 'हे प्रिया जनों ! ऐसा ही होगा, तुम सब भयभीत न होओ' इस प्रकार दशानन जब तक उन कन्याओं को सान्तवना देता है कि तब तक वह सेना आ पहुँची ॥१२९॥ तदनन्तर क्षण-भर में विद्या निर्मित विमान पर आरूढ़ होकर रावण आकाश में जा पहुँचा और दाँतों से ओठ चबाने लगा ॥१३०॥ दशानन के वे ही सब अवयव थे पर युद्ध रूपी महोत्सव को पाकर इतने अधिक फूल गये और रोमांचों से कर्कश हो गये कि आकाश में बड़ी कठिनाई से समा सके ॥१३१॥ तदनन्तर जिसप्रकार मेघ किसी पर्वत पर बड़ी मोटी जल की धाराएँ छोड़ते हैं उसी प्रकार सब योद्धा दशानन के ऊपर शस्त्रों के समूह छोड़ने लगे ॥१३२॥ तब दशानन ने शिलाएँ वर्षाना शुरू किया । उसने कितनी ही शिलाओं से तो शत्रुओं के शस्त्र समूह को रोका और कितनी ही क्रियाओं से शत्रु-समूह को भयभीत किया ॥१३३॥ इन बेचारे दीन-हीन विद्याधरों को मारने से मुझे क्या लाभ है? ऐसा विचारकर उसने सुरसुन्दर, कनक और बुध इन तीन प्रधान विद्याधरों को अपनी दृष्टि का विषय बनाया अर्थात् उनकी ओर देखा ॥१३४॥ तदनन्तर उसने तामस शस्त्र से मोहित कर उन्हें निश्चेष्ट बना दिया और नागपाश में बाँधकर तीनों को तीन कन्याओं के सामने रख दिया ॥१३५॥ तब कन्याओं ने उन्हें छुडवाकर उनका सत्कार कराया और तुम्हें शूरवीर वर प्राप्त हुआ है इस समाचार से उन्हें हर्षित भी किया ॥१३६॥ तदनन्तर उन्होंने दशानन और उन कन्याओं का विधिपूर्वक पुन: पाणिग्रहण किया । इस उपलक्ष्य में तीन दिन तक विद्या जनित महोत्सव होते रहे ॥१३७॥ तत्पश्चात् ये सब दशानन की अनुमति लेकर अपने-अपने घर चले गये और दशानन भी मन्दोदरी के गुणों से आकृष्ट हुआ स्वयंप्रभ नगर चला गया ॥१३८॥

तदनन्तर श्रेष्ठ कान्ति से युक्त दशानन को अनेक स्त्रियों सहित आया देख, बान्धवजन परम हर्ष को प्राप्त हुए । हर्षातिरेक से उनके नेत्र विस्तृत हो गये ॥१३९॥ भानुकर्ण और विभीषण तथा अन्य मित्र और इष्टजन दूर से ही उसे देख अगवानी करने के लिए नगर से बाहर निकले ॥१४०॥ उन सबसे घिरा दशानन, स्वयंप्रभ नगर में प्रविष्ट हो मनचाही क्रीड़ा करने लगा और भानुकर्ण-विभीषण आदि बन्धुजन भी उत्तम सुख को प्राप्त हुए ॥१४१॥ अथानन्तर कुम्भपुर नगर में राजा महोदर की सुरूपाक्षी नामा स्त्री से उत्पन्न तडिन्माला नाम की कन्या थी सो भानुकर्ण ने बड़ी प्रसन्नता से प्राप्त की। सुन्दर हाव-भाव दिखाने वाली तडिन्माला के साथ भानुकर्ण रतिरूपी सागर में निमग्न हो गया ॥१४२-१४३॥ एक बार कुम्भपुर नगर पर किसी प्रबल शत्रु ने आक्रमण कर हल्ला मचाया तब श्वसुर के स्नेह से भानुकर्ण के कान कुम्भपुर पर पड़े **अर्थ**ात् वहाँ के दुःख भरे शब्द इसने सुने तब से संसार में इसका कुम्भकर्ण नाम प्रसिद्ध हुआ । इसकी बुद्धि सदा धर्म में आसक्त रहती थी, यह शूरवीर था तथा कलाओं में निपुण था ॥१४४-१४५॥ दुष्टजनों ने इसके विषय में अन्यथा ही निरूपण किया है । वे कहते हैं कि यह मांस और खून का भोजन कर जीवित रहता था तथा छह माह की निद्रा लेता था सो इसका आहार तो इच्छानुसार परम पवित्र मधुर और सुगन्धित होता था । प्रथम ही अतिथियों को सन्तुष्ट कर बन्धुजनों के साथ आहार करता था ॥१४६-१४७॥ सन्ध्या-काल शयन करने का और प्रातःकाल उठने का समय है सो भानुकर्ण इसके बीच में ही निद्रा लेता था । इसका अन्य समय धार्मिक-कार्यों में ही व्यतीत होता था ॥१४८॥ जो परमार्थ ज्ञान से रहित पापी मनुष्य, सत्पुरुषों का अन्यथा वर्णन करते हैं वे दुर्गति में जानेवाले हैं । ऐसे लोगों को धिक्कार है ॥१४९॥

अथानन्तर दक्षिण श्रेणी में ज्योतिप्रभ नाम का नगर है । वहाँ विशुद्ध कमल राजा राज्य करता था जो मय का महामित्र था ॥१५०॥ उसकी नन्दनमाला नाम की स्त्री से राजीवसरसी नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी वह विभीषण को प्राप्त हुई ॥१५१॥ देवों के समान उत्कृष्ट आकार को धारण करनेवाला बुद्धिमान् लक्ष्मी के समान सुन्दरी उस राजीवसरसी स्त्री के साथ क्रीड़ा करता हुआ तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ ॥१५२॥

तदनन्तर समय पाकर मन्दोदरी ने गर्भ धारण किया । उस समय उसके चित्त में जो दोहला उत्पन्न होते थे उनकी पूर्ति तत्काल की जाती थी । उसके हाव-भाव भी मन को हरण करने वाले थे ॥१५३॥ राजा मय पुत्री को अपने घर ले आया वहाँ उसने उस उत्तम बालक को जन्म दिया जो समस्त पृथ्वीतल में इन्द्रजित् नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१५४॥ लोगों को आनन्दित करनेवाला इन्द्रजित् अपने नाना के घर ही वृद्धि को प्राप्त हुआ । वहाँ वह सिंह के बालक के समान उत्तम क्रीड़ा करता हुआ सुख से रहता था ॥१५५॥

तदनन्तर मन्दोदरी पुत्र के साथ अपने भर्त्ता दशानन के पास लायी गयी सो अपने तथा पुत्र के वियोग से वह पिता को दुःख पहुँचाने वाली हुई ॥१५६॥ दशानन पुत्र का मुख देख परम आनन्द को प्राप्त हुआ । यथार्थ में पुत्र से बढ़कर प्रीति का और दूसरा स्थान नहीं है ॥१५७॥ कालक्रम से मन्दोदरी ने फिर गर्भ धारण किया सो पुन: पिता के समीप भेजी गयी । अब की बार वहाँ उसने सुखपूर्वक मेघवाहन नामक पुत्र को जन्म दिया ॥१५८॥ तदनन्तर वह पुन: पति के पास आयी और पति के मन को वश कर इच्छानुसार भोगरूपी सागर में निमग्न हो गयी ॥१५९॥ सुन्दर चेष्टाओं के धारी दोनों बालक आत्मीयजनों का आनन्द बढ़ाते हुए तरुण अवस्था को प्राप्त हुए । उस समय उनके नेत्र किसी महावृषभ के नेत्रों के समान विशाल हो गये थे ॥१६०॥

अथानन्तर वैश्रवण जिन नगरों का राज्य करता था, कुम्भकर्ण हजारों बार जा-जाकर उन नगरों को विध्वस्त कर देता था ॥१६१॥ उन नगरों में जो भी मनोहर रत्न, वस्त्र, कन्याएँ अथवा गणिकाएँ होती थी शूरवीर कुम्भकर्ण उन्हें स्वयंप्रभ नगर ले आता था ॥१६२॥ तदनन्तर जब वैश्रवण को कुम्भकर्ण की इस बाल चेष्टा का पता चला तब उसने कुपित होकर सुमाली के पास दूत भेजा । वैश्रवण इन्द्र का बल पाकर अत्यन्त गर्वित रहता था ॥१६३॥ तदनन्तर द्वारपाल के द्वारा समाचार भेजकर दूत ने भीतर प्रवेश किया । दूत लोकाचार के अनुसार योग्य विनय को प्राप्त था ॥१६४॥ दूत का नाम वाक्यालंकार था सो उसने दशानन के समक्ष ही सुमाली से इस प्रकार क्रम से कहना शुरू किया ॥१६५॥ जिनकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही है ऐसे वैश्रवण महाराज ने आप से जो कहा है उसे चित्त में धारण करो ॥१६६॥ उन्होंने कहा है कि तुम पण्डित हो, कुलीन हो, लोक व्यवहार के ज्ञाता हो, महान् हो, अकार्य के समागम से भयभीत हो और सुमार्ग का उपदेश देने वाले हो ॥१६७॥ सो तुम्हें लड़कों जैसी चपलता करने वाले अपने प्रमादी पौत्र को मना करना उचित है ॥१६८॥ तिर्यंच और मनुष्यों में प्राय: यही तो भेद है कि तिर्यंच कृत्य और अकृत्य को नहीं जानते हैं पर मनुष्य जानते हैं ॥१६९॥ जिनका चित्त दृढ़ है ऐसे मनुष्य बिजली के समान भंगुर किसी विभूति के प्राप्त होने पर भी पूर्व वृत्तान्त को नहीं भूलते हैं ॥१७०॥ तुम्हारे कुल का प्रधान माली

मारा गया इसी से समस्त कुल को शान्ति धारण करना चाहिए थी - क्योंकि ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने कुल का निर्मूल नाश करने वाले काम करेगा ॥१७१॥ शत्रुओं को नष्ट करने वाले इन्द्र का वह प्रताप जो कि समुद्र की लहर-लहर में व्याप्त हो रहा है तुमने क्यों भुला दिया? जिससे कि अनुचित काम करने की चेष्टा करते हो ॥१७२॥ तुम मेंढक के समान हो और इन्द्र भुजंग के समकक्ष है, सो तुम इन्द्ररूपी भुजंग के उस मुखरूपी बिल में क्रीड़ा कर रहे हो जो दाढ़रूपी कण्टकों से व्याप्त है तथा विषरूपी अग्नि के तिलगे छोड़ रहा है ॥१७३॥ यदि तुम इस चोर बालक पर नियन्त्रण करने में समर्थ नहीं हो तो आज ही मुझे सौंप दो मैं स्वयं इसका नियन्त्रण करूँगा ॥१७४॥ यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो अपने पौत्र को जेलखाने के अन्दर बेड़ियों से बद्ध तथा अनेक प्रकार को यातना सहते हुए देखोगे ॥१७५॥ जान पड़ता है कि तुमने अलकारोदयपुर (पाताललंका) को छोड़कर बहुत समय तक बाहर रह लिया है अब फिर से उसी बिल में प्रवेश करना चाहते हो ॥१७६॥ यह निश्चित समझ लो कि मेरे या इन्द्र के कुपित होने पर पृथ्वी में तुम्हारा कोई शरण नहीं है, जिस प्रकार जरा-सी हवा चलने से पानी का बबूला नष्ट हो जाता है उसी प्रकार तुम भी नष्ट हो जाओगे ॥१७७॥

तदनन्तर उस दूत के कठोर वचनरूपी वायु के वेग से जिसका मनरूपी जल आघात को प्राप्त हुआ था ऐसा दानरूपी महासागर परम क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१७८॥ दूत के वचन सुनते ही दशानन की ऐसी दशा हो गयी मानो किसी ने उसके अंग पकड़कर झकझोर दिया हो, उसके प्रत्येक अंग से पसीना छूटने लगा और उसकी अत्यन्त लाल दृष्टि ने समस्त आकाश को लिप्त कर दिया ॥१७९॥ तदनन्तर आकाश में गूंजने वाले स्वर से दिशाओं को बहरा करता हुआ दशानन, प्रतिध्वनि से हाथियों को मदरहित करता हुआ बोला ॥१८०॥ कि यह वैश्रवण कौन है? अथवा इन्द्र कौन कहलाता है? जो कि हमारी वंश-परम्परा से चली आयी नगरी पर अधिकार किये बैठा है? ॥१८१॥ निर्लज्ज नीच पुरुष अपने भृत्यों के सामने इन्द्र जैसा आचरण करता है सो मानो कौआ बाज बन रहा है और श्रगाल अष्टापद के समान आचरण कर रहा है ॥१८२॥ अरे कुदूत ! हमारे सामने निशंक होकर कठोर वचन बोल रहा है सो मैं अभी क्रोध के लिए तेरे मस्तक की बलि चढ़ाता हूँ ॥१८३॥ यह कहकर उसने म्यान से तलवार खींची जिससे आकाशरूपी सरोवर ऐसा दिखने लगा मानो नीलकमल रूपी वन से ही व्याप्त हो गया हो ॥१८४॥ दशानन की वह तलवार हवा से बात कर रही थी, क्रोध से मानो काँप रही थी, ऐसी जान पड़ती थी मानो तलवार का रूप धरकर यमराज ही वहाँ आया हो, अथवा मानो हिंसा का बेटा ही हो ॥१८५॥ दशानन ने वह तलवार ऊपर को उठायी ही थी कि विभीषण ने बीच में आकर रोक दिया और बड़े आदर से इस प्रकार समझाया कि ॥१८६॥ जिसने अपना शरीर बेच दिया है और जो तोते के समान कही बात को ही दुहराता हो, ऐसे इस पापी दीन-हीन भृत्य का अपराध क्या है? ॥१८७॥ दूत जो कुछ वचन बोलते हैं सो पिशाच की तरह हृदय में विद्यमान अपने स्वामी से प्रेरणा पाकर ही बोलते हैं । यथार्थ में दूत यन्त्रमयी पुरुष के समान पराधीन है ॥१८८॥ इसलिए हे आर्य! प्रसन्न होओ और दुःखी प्राणी पर दया करो । क्षुद्र का वध करने से संसार में अकीर्ति ही फैलती है ॥१८९॥ आपकी तलवार तो शत्रुओं के ही सिर पर पड़ेगी क्योंकि गरुड जल में रहनेवाले निर्विष साँपों को मारने के लिए प्रवृत्त नहीं होता ॥१९०॥ इस प्रकार न्याय-नीति को जानने वाले सत्पुरुष विभीषण, सदुपदेशरूपी जल से जब तक दशानन की क्रोधाग्नि को शान्त करता है तब तक अन्य लोगों ने उस दूत के पैर खींचकर उसे सभाभवन से शीघ्र ही बाहर निकाल दिया । आचार्य कहते हैं कि दुःख के लिए ही जिसकी रचना हुई है ऐसे भृत्य को धिक्कार हो ॥१९१-१९२॥

दूत ने जाकर अपनी यह सब दशा वैश्रवण को बतला दी और दशानन के मुख से निकली वह अभद्र वाणी भी सुना दी ॥१९३॥ दूत के वचनरूपी ईंधन से वैश्रवण की क्रोधाग्नि भभक उठी । इतनी भभकी कि वैश्रवण के मन में मानो समा नहीं सकी इसलिए उसने भृत्यजनों के चित्त में बाँट दी **अर्थ**ात् दूत के वचन सुनकर वैश्रवण कुपित हुआ और साथ ही उसके भृत्य भी बहुत कुपित हुए ॥१९४॥ उसने तुरही के कठोर शब्दों से युद्ध की सूचना करवा दी जिससे मणिभद्र आदि योद्धा शीघ्र ही युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥१९५॥ तदनन्तर जिनके हाथों में कृपाण, भाले तथा चक्र आदि शंख सुशोभित हो रहे थे ऐसे यक्षरूपी योद्धाओं से घिरा हुआ वैश्रवण युद्ध के लिए निकला ॥१९६॥ इधर अंजनगिरि का आकार धारण करने वाले बड़े-बड़े काले हाथियों, सन्ध्या की लालिमा से युक्त मेघों के समान दिखने वाले बड़े-बड़े रथों, जिनके दोनों ओर चमर ढुल रहे थे तथा जो वेग से वायु को जीत रहे थे ऐसे घोड़ों, देवभवन के समान सुन्दर तथा ऊँची उड़ान भरने वाले विमानों, तथा जो घोड़े, विमान, हाथी और रथ, सभी को उल्लंघन कर रहे थे अर्थात् इन सबसे आगे बढ़कर चल रहे थे, जिनका प्रताप बहुत भारी था, जो अधिकता के कारण एक दूसरे को धक्का दे रहे थे तथा समुद्र के समान गरज रहे थे ऐसे पैदल सैनिकों और भानुकर्ण आदि भाइयों के साथ महाबलवान् दशानन, पहले से ही बाहर निकलकर बैठा था । युद्ध का निमित्त पाकर दशानन के

हृदय में बड़ा उत्सव-उल्लास हो रहा था ॥१९७-२००॥

तदनन्तर गुंज नामक पर्वत के शिखर पर दोनों सेनाओं का समागम हुआ । ऐसा समागम कि जिसमें शस्त्रों के पड़ने से अग्नि उत्पन्न हो रही थी ॥२०१॥ तदनन्तर तलवारों की खनखनाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, पैदल सैनिकों की आवाज, हाथियों की गर्जना, परस्पर के समागम से उत्पन्न रथों की सुन्दर चीत्कार, तुरही की बुलन्द आवाज और बाणों की सनसनाहट से उस समय कोई मिश्रित / विलक्षण ही शब्द हो रहा था । उसकी प्रतिध्वनि आकाश और पृथिवी के बीच गूँज रही थी तथा योद्धाओं में उत्तम मद उत्पन्न कर रही थी ॥२०२-२०४॥ इस तरह जिनका आकार यमराज के मुख के समान था तथा जिनकी धार पैनी थी, ऐसे चक्रों, यमराज की जिह्वा के समान दिखने वाली तथा खून की बूँदें बरसाने वाली तलवारों, उसके रोम के समान दिखने वाले भाले, यमराज की प्रदेशिनी अँगुली की उपमा धारण रहनेवाले बाणों, यमराज की भुजा के आकार परिघ नामक शस्त्रों और उनकी मुट्ठी के समान दिखने वाले मुद्गरों से दोनों सेनाओं में बड़ा भारी युद्ध हुआ । उस युद्ध से जहाँ पराक्रमी मनुष्यों को हर्ष हो रहा था वहाँ कातर मनुष्यों को भय भी उत्पन्न हो रहा था । दोनों ही सेनाओं के शूरवीर अपना सिर दे-देकर यशरूपी महाधन खरीद रहे थे ॥२०५-२०७॥ तदनन्तर चिरकाल तक यक्षरूपी भटों के द्वारा अपनी सेना को खेद खिन्न देख दशानन उसे संभालने के लिए तत्पर हुआ ॥२०८॥ तदनन्तर जिसके ऊपर सफेद छत्र लग रहा था और उससे जो उस काले मेघ के समान दिखाई देता था जिस पर कि चन्द्रमा का मण्डल चमक रहा था, जो धनुष से सहित था और उससे इन्द्रधनुष सहित श्याम मेघ के समान जान पड़ता था, सुवर्णमय कवच से युक्त होने के कारण जो बिजली से युक्त श्याम मेघ के समान दिखाई देता था, जो नाना रत्नों के समागम से सुशोभित मुकुट धारण कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्ति से आकाश को आच्छादित करता हुआ वज्र से युक्त श्याम मेघ ही हो । ऐसे दशानन को आता हुआ देख यक्षों की आँखें चौंधिया गयीं, उनका सब ओज नष्ट हो गया, युद्ध से विमुख हो भागने की चेष्टा करने लगे और क्षण-भर में उनका युद्ध का अभिप्राय समाप्त हो गया ॥२०६-२१२॥ तदनन्तर जिनके चित्त भय से व्याकुल हो रहे थे ऐसे यक्षों के पैदल सैनिक महाशब्द करते हुए जब भ्रमर में पड़े के समान घूमने लगे तब यक्षों के बहुत सारे अधिपति अपनी सेना के सामने आये और उन्होंने सेना को फिर से युद्ध के सम्मुख किया ॥२१३-२१४॥ तदनन्तर जिस प्रकार सिंह आकाश में उछल-उछलकर मत्त हाथियों को नष्ट करता है उसी प्रकार दशानन यक्षाधिपतियों को नष्ट करने के लिए तत्पर हुआ ॥२१५॥ शंखरूपी ज्वालाओं से युक्त दशाननरूपी अग्नि, क्रोधरूपी वायु से प्रेरित होकर शत्रु सेना रूपी वन में वृद्धि को प्राप्त हो रही थी ॥२१६॥ उस समय पृथिवी, रथ, घोड़े, हाथी अथवा विमान पर ऐसा एक भी आदमी नहीं बचा था जो रावण के बाणों से सछिद्र न हुआ हो ॥२१७॥ तदनन्तर युद्ध में दशानन को सामने आता देख वैश्रवण, क्षण-भर में भाई के उत्तम स्नेह को प्राप्त हुआ ॥२१८॥ साथ ही अनुपम और राज्यलक्ष्मी से उदासीनता को प्राप्त हुआ । जिस प्रकार पहले बाहुबलि अपने भाई भरत से द्वेष कर पछताये उसी प्रकार वैश्रवण भी भाई दशानन से विरोध कर पछताया । वह मन ही मन शान्त अवस्था को प्राप्त होता हुआ विचार करने लगा कि जिस संसार में प्राणी नाना योनियों में चक्र की भाँति परिवर्तन करते रहते हैं वह संसार दुःख का पात्र है, कष्ट स्वरूप है, अत: उसे धिक्कार हो ॥२१९-२२०॥ देखो, ऐश्वर्य में मत्त होकर मैंने यह कौन-सा कार्य प्रारम्भ कर रखा है कि जिसमें अहंकारवश अपने भाई का विध्वंस किया जाता हूँ ॥२२१॥ वह इस प्रकार उत्कृष्ट वचन कहने लगा कि हे दशानन! सुन, क्षणिक राज्यलक्ष्मी से प्रेरित होकर यह कौन-सा पापकर्म किया जा रहा है? ॥२२२॥ मैं तेरी मौसी का पुत्र हूँ अत: तुझ पर सगे भाई-जैसा स्नेह करता हूँ । भाइयों के साथ अनुचित व्यवहार करना उचित नहीं है ॥२२३॥ यह प्राणी मनोहर विषयों की आशा से प्राणियों का वध कर बहुत भारी दुःखों से युक्त भयंकर नरक में जाता है ॥२२४॥ जिस प्रकार कोई मनुष्य एक दिन का तो राज्य प्राप्त करे और उसके फलस्वरूप वर्ष-भर मृत्यु को प्राप्त हो उसी प्रकार निश्चय से यह प्राणी विषयों के द्वारा क्षणस्थायी सुख प्राप्त करता है और उसके फलस्वरूप अपरिमित काल तक दु:ख प्राप्त करता है ॥२२५॥ यथार्थ में यह जीवन नेत्रों की टिमकार के समान क्षणभंगुर है सो हे दशानन! क्या तू यह जानता नहीं है जिससे भोगों के निमित्त यह कार्य कर रहा है? ॥२२६॥

तब दयाहीन दशानन ने हँसते हुए कहा कि है वैश्रवण! यह धर्म-श्रवण करने का समय नहीं है ॥२२७॥ मदोन्मत्त हाथियों पर चढ़े तथा तलवार को हाथ में धारण करने वाले मनुष्य तो शत्रु का संहार करते हैं न कि धर्म का उपदेश ॥२२8॥ व्यर्थ ही बहुत क्यों बक रहा है? या तो तलवार के मार्ग में खड़ा हो या मेरे लिए प्रणाम कर । तेरी तीसरी गति नहीं है ॥२२९॥ अथवा तू धनपाल है सो मेरे धन की रक्षा कर । क्योंकि जिसका जो अपना कार्य होता है उसे करता हुआ वह लज्जित नहीं होता ॥२३०॥ तब वैश्रवण फिर दशानन से बोला कि निश्चय

ही तेरी आयु अल्प रह गयी है इसीलिए तू इस प्रकार क्रूर वचन बोल रहा है ॥२३१॥ इसके उत्तर में रोष से रूषित मन को धारण करने वाले दशानन ने फिर कहा कि यदि तेरी सामर्थ्य है तो मार ॥२३२॥ तब वैश्रवण ने कहा कि तू बड़ा है इसलिए प्रथम तू ही मुझे मार क्योंकि जिनके शरीर में घाव नहीं लगता ऐसे शूरवीरों का पराक्रम वृद्धि को प्राप्त नहीं होता ॥२३३॥ तदनन्तर मध्याह्न के समय जिस प्रकार सूर्य अपनी किरण पृथिवी के ऊपर छोड़ता है उसी प्रकार वैश्रवण ने दशानन के ऊपर बाण छोड़े ॥२३४॥ तत्पश्चात् दशानन ने अपने बाणों से उसके बाण छेद डाले और बिना किसी आकुलता के लगातार छोड़े हुए बाणों से उसके ऊपर मण्डप-सा तान दिया ॥२३५॥ तदनन्तर अवसर पाकर वैश्रवण ने अर्धचन्द्र बाण से दशानन का धनुष तोड़ डाला और उसे रथ से च्युत कर दिया ॥२३६॥ तत्पश्चात् अद्भुत पराक्रम का धारी दशानन मेघ के समान शब्द करने वाले मेघनाद नामा दूसरे रथ पर वेग से चढ़कर वैश्रवण के समीप पहुँचा ॥२३७॥ वहाँ बहुत भारी क्रोध से उसने जोर-जोर से चलाये हुए उल्का के समान आकार वाले वज्रदण्डों से वैश्रवण का कवच चूर-चूर कर डाला ॥ २३८॥ और सफेद माला को धारण करने वाले उसके हृदय में वेगशाली भिण्डिमाल से इतने जमकर प्रहार किया कि वह वहीं मूर्छित हो गया॥२३९॥ यह देख वैश्रवण की सेना में रुदन का महाशब्द होने लगा और राक्षसों की सेना में हर्ष के कारण बड़ा भारी कल-कल शब्द होने लगा ॥२४०॥ तब अतिशय दुखी और वीरशय्या पर पड़े वैश्रवण को उसके भृत्यगण शीघ्र ही यक्षपुर ले गये ॥२४१॥ रावण भी शत्रु को पराजित जान युद्ध से विमुख हो गया सो ठीक ही है क्योंकि वीर मनुष्यों का कृतकृत्यपना शत्रुओं के पराजय से ही हो जाता है । धनादि की प्राप्ति से नहीं ॥२४२॥

अथानन्तर वैद्यों ने वैश्रवण का उपचार किया सो वह पहले के समान स्वस्थ शरीर को प्राप्त हो गया । स्वस्थ होने पर उसने मन में विचार किया ॥२४३॥ कि इस समय मैं पुष्परहित वृक्ष, फूटे हुए घट अथवा कमल रहित सरोवर के समान हूँ ॥२४४॥ जब तक मनुष्य मान को धारण करता है तभी तक संसार में जीवित रहते हुए उसे सुख होता है । इस समय मेरा वह मान नष्ट हो गया है इसलिए मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता हूँ ॥२४५॥ चूँकि यह विषयजन्य सुख अनित्य है, थोड़ा है, सान्तराय है और दुःखों से सहित है इसलिए सत्पुरुष उसकी चाह नहीं रखते ॥२४६॥ इसमें किसी का अपराध नहीं है, यह तो प्राणियों ने अन्य-जन्म में जो कर्म कर रखे हैं उन्हीं की समस्त चेष्टा है ॥२४७॥ दुःख अथवा सुख के दूसरे लोग निमित्त मात्र, इसलिए संसार की स्थिति के जानने वाले विद्वान् उनसे कुपित नहीं होते हैं **अर्थ**ात् ? निमित्त के प्रति हर्ष-विषाद नहीं करते हैं ॥२४८॥ वह दशानन मेरा कल्याणकारी मित्र है कि जिसने मुझ दुर्बुद्धि को गृहवास रूपी महाबन्धन से मुक्त करा दिया ॥२४९॥ भानुकर्ण भी इस समय मेरा परम हितैषी हुआ है कि जिसके द्वारा किया हुआ संग्राम मेरे परम वैराग्य का कारण हुआ है ॥२५०॥ इस प्रकार विचारकर उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली और समीचीन तप की आराधना कर परम धाम प्राप्त किया ॥२५१॥

इधर दशानन भी अपने कुल के ऊपर जो पराभवरूपी मैल जमा हुआ था उसे धोकर पृथिवी में सुख से रहने लगा तथा समस्त बन्धुजनों ने उसे अपना शिरपौर माना ॥२५२॥ अथानन्तर वैश्रवण का जो पुष्पक विमान था उसे रावण के भृत्यजन रावण के समीप ले आये । वह पुष्पक विमान अत्यन्त सुन्दर था, वैश्रवण उसका स्वामी था, उसके शिखर में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए थे, झरोखे उसके नेत्र थे, उसमें जो मोतियों की झालर लगी थी उससे निर्मल कान्ति का समूह निकल रहा था और उससे वह ऐसा जान पड़ता था मानो स्वामी का वियोग हो जाने के कारण निरन्तर आँसू ही छोड़ता रहता हो । उसका अग्रभाग पद्मराग मणियों से बना था इसलिए उसे धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो शोक के कारण उसने हृदय को बहुत कुछ पीटा था इसीलिए वह अत्यन्त लालिमा को धारण कर रहा था । कहीं-कहीं इन्द्रनील मणियों की प्रभा उस पर आवरण कर रही थी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शोक के कारण ही वह अत्यन्त श्यामलता को प्राप्त हुआ हो । चैत्यालय, वन, मकानों के अग्रभाग, वापिका तथा महल आदि से सहित होने के कारण वह किसी नगर के समान जान पड़ता था । नाना शस्त्रों ने उस विमान में चोटें पहुँचायी थीं, वह बहुत ही ऊँचा था, देव भवन के समान जान पड़ता था और आकाशतल का मानो आभूषण ही था ॥२५३-२५४॥ मानी दशानन ने शत्रु की पराजय का चिह्न समझ उस पुष्पक विमान को अपने पास रखने की इच्छा की थी अन्यथा उसके पास विद्या निर्मित कौन-सा वाहन नहीं था? ॥२५९॥ वह उस विमान पर आरूढ़ होकर मन्त्रियों, वाहनों, नागरिक जनों, पुत्रों, माता-पिताओं तथा बन्धुजनों के साथ चला ॥२६०॥ वह उस विमान के अन्दर अन्तःपुररूपी महाकमल वन के बीच में सुख से बैठा था, उसकी गति को कोई नहीं रोक सकता था, तथा अपनी इच्छानुसार उसने हाव-भावरूपी आभूषण धारण कर रखे थे ॥२६१॥ चाप, त्रिशूल, तलवार, भाला तथा पाश आदि शस्त्र जिनके हाथ में थे तथा जिन्होंने अनेक आश्चर्यजनक कार्य करके

दिखलाये थे ऐसे अनेक सेवक उसके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥२६२॥ जिन्होंने शत्रुओं के समूह का अन्त कर दिया था, जो चक्राकार मण्डल बनाकर पास खड़े थे, जिनका चित्त गुणों के अधीन था तथा जो महा-वैभव से शोभित थे ऐसे अनेक सामन्त उसके साथ जा रहे थे ॥२६३॥ गोशीर्ष आदि विलेपनों से उसका सारा शरीर लिप्त था तथा उत्तमोत्तम विद्याधरियाँ हाथ में लिये हुए सुन्दर चमरों से उसे हवा कर रही थीं ॥२६४॥ वह चन्द्रमा के समान सुशोभित ऊपर तने हुए छत्र से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो शत्रु की पराजय से उत्पन्न यश से ही सुशोभित हो रहा हो ॥२६५॥ वह सूर्य के समान उत्कृष्ट तेज को धारण कर रहा था तथा लक्ष्मी से इन्द्र के समान जान पड़ता था । इस प्रकार पुण्य से उत्पन्न फल को प्राप्त होता हुआ वह दक्षिणसमुद्र की ओर चला ॥२६६॥ हाथी पर बैठा हुआ कुम्भकर्ण और रथ पर बैठा तथा स्वाभिमान रूपी वैभव से युक्त विभीषण इस प्रकार दोनों भाई उसके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥२६७॥ भाई-बान्धवों एवं सामन्तों से सहित महादैत्य मय भी, जिनमें सिंह-शरभ आदि जन्तु जुते थे ऐसे रथों पर बैठकर जा रहा था ॥२६८॥ मरीच, अम्बर विद्युत्, वच, वज्रोदर, बुध, वज्राक्ष, क्रूरनक्र, सारण और सुनय ये राजा मय के मन्त्री तथा उत्कृष्ट वैभव से युक्त अन्य अनेक विद्याधरों के राजा उसके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥२६९-२७०॥ इस प्रकार समस्त दक्षिण दिशा को वश कर वह वन, पर्वत तथा समुद्र से सहित पृथ्वी को देखता हुआ अन्य दिशा की ओर चला ॥२७१॥

अथानन्तर एक दिन विनय से जिसका शरीर झुक रहा था, ऐसा दशानन आकाश में बहुत ऊँचे चढ़कर अपने दादा सुमाली से आश्चर्यचकित हो पूछता है कि हे पूज्य! इधर इस पर्वत के शिखर पर सरोवर तो नहीं है पर कमलों का वन लहलहा रहा है सो इस महा-आश्चर्य को आप देखें ॥२७२-२७३॥ हे स्वामिन् ! यहाँ पृथ्वीतल पर पड़े रंगबिरंगे बड़े-बड़े मेघ निश्चल होकर कैसे खड़े हैं? ॥२७४॥ तब सुमाली ने 'नम: सिद्धेभ्य:' कहकर दशानन से कहा कि हे वत्स! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं ॥२७५॥ किन्तु सफेद पताकाएँ जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिन में हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे-ऐसे ये जिन-मन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं ॥२७६॥ ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुए हैं । हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षण-भर में अपने हृदय को पवित्र कर ॥२७७॥ तदनन्तर वैश्रवण का मान-मर्दन करने वाले दशानन ने वहीं खड़े रहकर जिनालयों को नमस्कार किया और आश्चर्यचकित हो सुमाली से पूछा कि पूज्यवर! हरिषेण का ऐसा क्या माहात्म्य था कि जिससे आपने उनका इस तरह कथन किया है? ॥२७८-२७९॥ तब सुमाली ने कहा कि हे दशानन! तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया । अब पाप को नष्ट करनेवाला हरिषेण का चरित्र सुन ॥२८०॥ काम्पिल्य नगर में अपने यश के द्वारा समस्त संसार को व्याप्त करने वाला सिंहध्वज नाम का एक बड़ा राजा रहता था ॥२८१॥ उसकी वप्रा नाम की पटरानी थी जो स्त्रियों के योग्य गुणों से सुशोभित थी तथा अपने सौभाग्य के कारण सैकड़ों रानियों में आभूषणपना को प्राप्त थी ॥२८२॥ उन दोनों से परम अभ्युदय को धारण करनेवाला हरिषेण नाम का पुत्र हुआ । वह पुत्र उत्तमोत्तम चौंसठ लक्षणों से युक्त था तथा पापों को नष्ट करनेवाला था ॥२८३॥ किसी एक समय आष्टाह्निक महोत्सव आया सो धर्मशील वप्रा रानी ने नगर में जिनेन्द्र भगवान का रथ निकलवाना चाहा ॥२८४॥ राजा सिंहध्वज की महालक्ष्मी नामक दूसरी रानी थी जो कि सौभाग्य के गर्व से सदा विह्वल रहती थी । अनेक खोटी-चेष्टाओं से भरी महालक्ष्मी वप्रा की सौत थी इसलिए उसने उसके विरुद्ध आवाज उठायी कि पहले मेरा ब्रह्मरथ नगर की गलियों में घूमेगा । उसके पीछे वप्रा रानी के द्वारा बनवाया हुआ जैनरथ घूम सकेगा ॥२८५-२८६॥ यह सुनकर वप्रा को इतना दुःख हुआ कि मानो उसके हृदय में वज्र की ही चोट लगी हो । दुःख से सन्तप्त होकर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा यह रथ नगर में पहले घूमेगा, तो मैं पूर्व की तरह पुन: आहार करूँगी अन्यथा नहीं ॥२८७-२८८॥

यह कहकर उसने प्रतिज्ञा के चिह्न स्वरूप वेणी बाँध ली और सब काम छोड़ दिया । उसका मुखकमल शोक से मुरझा गया, वह निरन्तर मुख से श्वास और नेत्रों से आँसू छोड़ रही थी । माता को, ऐसी दशा देख हरिषेण ने कहा कि हे मात ! जिसका पहले कभी स्वप्न में भी तुमने सेवन नहीं किया वह अमांगलिक रुदन तुमने क्यों प्रारम्भ किया ? अब बस करो और रुदन का कारण कहो ॥२८९-२९१॥ तदनन्तर माता का कहा कारण सुनकर हरिषेण ने इस प्रकार विचार किया कि अहो! मैं क्या करूँ? यह बहुत भारी पीड़ा प्राप्त हुई है सो पिता से इसे कैसे कहूं? ॥२९२॥ वह पिता हैं और यह माता हैं । दोनों ही मेरे लिए परमगुरु हैं । मैं किसके प्रति द्वेष करूँ? आश्चर्य है कि मैं बड़े संकट में आ पड़ा हूँ ॥२९३॥ कुछ भी हो पर मैं रुदन करती माता को देखने में असमर्थ हूँ । ऐसा विचारकर वह महल से निकल पड़ा और हिंसक जन्तुओं से भरे हुए वन में चला गया ॥२९४॥ वहाँ वह निर्जन वन में मूल, फल आदि खाता और सरोवर में पानी पीता हुआ निर्भय हो घूमने लगा ॥२९५॥ हरिषेण का ऐसा रूप था कि उसे देखकर दुष्ट पशु भी क्षण-भर में उपशम भाव को प्राप्त हो जाते थे सो ठीक ही है

क्योंकि भव्य-जीव किसे नहीं प्रिय होता है? ॥२९६॥ निर्जन वन में ही जब हरिषेण को माता के द्वारा किये हुए रुदन की याद आती थी तब वह अत्यन्त दुःखी हो उठता था । माता ने गदगद कण्ठ से जो भी प्रलाप किया वह सब स्मरण आने पर उसे बहुत कुछ बाधा पहुँचा रहा था ॥२९७॥ कोमल चित्त से निरन्तर भ्रमण करने वाले हरिषेण को वन के भीतर एक-से-एक बढ़कर मनोहर स्थान मिलते थे पर उनमें उसे धैर्य प्राप्त नहीं होता था ॥२९८॥ क्या यह वनदेव है? इस प्रकार की भ्रान्ति वह निरन्तर करता रहता था और हरिणियाँ उसे दूर तक आंख फाड़-फाड़कर देखती रहती थीं ॥२९९॥ इस प्रकार घूमता हुआ हरिषेण, जहाँ वन में प्राणी परस्पर का वैरभाव दूर छोड़कर शान्ति से रहते थे ऐसे अंगिरस ऋषि के शिष्य शतमन्यु के आश्रम में पहुँचा ॥३००॥

अथानन्तर एक काल कल्प नाम का राजा था जो महा-भयंकर, महा-प्रतापी और बहुत बड़ी सेना को धारण करनेवाला था सो उसने चारों-ओर से चम्पा-नगरी को घेर लिया ॥३०१॥ चम्पा का राजा जनमेजय जब तक उसके साथ युद्ध करता है तब तक पहले से बनवायी हुई लम्बी सुरंग से माता नागवती अपनी पुत्री के साथ निकलकर शतमन्यु ऋषि के उस आश्रम में पहले से ही पहुँच गयी थी ॥३०२-३०३॥ वहाँ नागवती की पुत्री सुन्दर रूप से सुशोभित हरिषेण को देखकर शरीर में बेचैनी उत्पन्न करने वाले कामदेव के बाणों से घायल हो गयी ॥३०४॥ तदनन्तर पुत्री को अन्यथा देख नागवती ने कहा ? कि हे पुत्री! सावधान रह, तू महामुनि के वचन स्मरण कर ॥३०५॥ सम्यग्ज्ञानरूपी चक्षु को धारण करने वाले मुनिराज ने पहले कहा था कि तू चक्रवर्ती का स्त्री-रत्न होगी ॥३०६॥ तपस्वियों को जब मालूम हुआ कि नागवती की पुत्री हरिषेण से बहुत अनुराग रखती है तो अपकीर्ति से डरकर उन मूढ-तपस्वियों ने हरिषेण को आश्रम से निकाल दिया ॥३०७॥ तब अपमान से जला हरिषेण हृदय में कन्या को धारण कर निरन्तर इधर-उधर घूमता रहा । ऐसा जान पड़ता था मानो वह भ्रामरी विद्या से आलिंगित होकर ही निरन्तर घूमता रहता था ॥३०८॥ उत्कण्ठा के भार से दबा हरिषेण निरन्तर शोकग्रस्त रहता था । उसे भोजन में, न पुष्प और पल्लवों से निर्मित शय्या में, न फलों के भोजन में, न सरोवर का जल पीने में, न गाँव में, न नगर में और न मनोहर निकुंजों से युक्त उपवन में धीरज प्राप्त होता था ॥३०९-३१०॥ कमलों के समुह को वह दावानल के समान देखता था और चन्द्रमा की किरणें उसे वज्र की सुई के समान जान पड़ती थीं ॥३११॥ विशाल तटों से सुशोभित एवं स्वच्छ जल को धारण करने वाली नदियां इसके मन को इसलिए आकर्षित करती थीं, क्योंकि उनके तट, इसके प्रति आकर्षित कन्या के नितम्बों की समानता रखते थे ॥३१२॥ केतकी की अनी भाले के समान इसके मन को भेदती रहती थी और कदम्बवृक्षों के सुगन्धित फूल चक्र के समान छेदते रहते थे ॥३१३॥ वायु के मन्द-मन्द झोंके से हिलते हुए कुटज वृक्षों के फूल कामदेव के बाणों के समान उसके मर्मस्थल छेदते रहते थे ॥३१४॥ हरिषेण ऐसा विचार करता रहता था कि यदि मैं उस स्त्रीरत्न को पा सका तो नि:सन्देह माता का शोक दूर कर दूँगा ॥३१५॥ यदि वह कन्या मिल गयी तो मैं यही समझूँगा कि मुझे समस्त भरत-क्षेत्र का स्वामित्व मिल गया है । क्योंकि उसकी जो आकृति है वह अल्प-भोगों को भोगने वाली नहीं है ॥३१६॥ यदि मैं उसे पा सका तो नदियों के तटों पर, वनों में, गाँवों में, नगरों में और पर्वतों पर जिन-मन्दिर बनवाऊँगा ॥३१७॥ यदि मैं उसे नहीं देखता तो माता के शोक से सन्तृप्त होकर कभी का मर जाता । वास्तव में मेरे प्राण उसी के समागम की आशा से रुके हुए हैं ॥३१८॥ जिसका मन अत्यन्त दुखी था ऐसा हरिषेण इस प्रकार तथा अन्य प्रकार की चिन्ता करता हुआ माता का शोक भूल गया । अब तो वह भूताक्रान्त मानव के समान इधर-उधर घूमने लगा ॥३१९॥ इस प्रकार अनेक देशों में घूमता हुआ सिन्धुनद नामक नगर में पहुँचा । यद्यपि उसकी वैसी अवस्था हो रही थी तो भी वह बहुत भारी पराक्रम और विशाल तेज से युक्त था ॥३२०॥ उस नगर की जो स्त्रियाँ क्रीड़ा करने के लिए नगर के बाहर गयी थीं वे हरिषेण को देखकर आश्चर्यचकित की तरह निश्चेष्ट हो गयीं । वे सैकड़ों बार आंखें फाड़-फाड़कर उसे देखती थीं ॥३२१॥ जिसके नेत्र कमल के समान थे, जिसका वक्षःस्थल मेरुपर्वत के कटक के समान लम्बा-चौड़ा था, जिसके कन्धे दधिज के गण्डस्थल के समान थे, और जिसकी जाँघें हाथी बाँधने के खम्भे के समान संपुष्ट थीं ऐसे हरिषेण को देखकर वे स्त्रियाँ पागल-सी हो गयीं, उनके चित्त ठिकाने नहीं रहे तथा उसे देखने-देखते उन्हें तृप्ति नहीं हुई ॥३२२-३२३॥ अथानन्तर-अंजनगिरि के समान काला और झरते हुए मद से भरा एक हाथी बलपूर्वक उन स्त्रियों के सामने आया ॥३२४॥ हाथी का महावत जोर-जोर से चिल्ला रहा था कि हे स्त्रियों! यदि तुम लोगों में शक्ति है तो शीघ्र ही भाग जाओ, मैं हाथी को रोकने में असमर्थ हूँ ॥३२५॥ पर स्त्रियाँ तो श्रेष्ठ पुरुष हरिषेण के देखने में आसक्त थीं इसलिए महावत के वचन नहीं सुन सकी और न भागने में ही समर्थ हुईं ॥३२६॥ जब महावत ने बार-बार जोर से चिल्लाना शुरू किया तब स्त्रियों ने उस ओर ध्यान दिया और तब वे भय से व्याकुल हो गयीं ॥३२७॥ तदनन्तर काँपती हुई वे स्त्रियों हरिषेण की शरण में गयीं । इस तरह उसके साथ समागम की इच्छा करने वाली स्त्रियों का भय ने उपकार किया ॥३२८॥ तत्पश्चात्

घबड़ायी हुई उत्तम स्त्रियों के शरीर के सम्पर्क से जिसे रोमांच उठ आये थे ऐसे हरिषेण ने दया-युक्त हो विचार किया ॥३२९॥ कि इस ओर गहरा समुद्र है, उस ओर प्राकार है और उधर हाथी है इस तरह संकट उपस्थित होने पर मैं प्राणियों की रक्षा अवश्य करूँगा ॥३३०॥ जिस प्रकार बैल अपने सींगों से वामी को खोदता है पर्वत को नहीं । और पुरुष बाण से केले के वृक्ष को छेदता है, शिला को नहीं ॥३३१॥ इसी प्रकार दुष्ट चेष्टाओं से भरा मानव कोमल प्राणी का ही पराभव करता है, कठोर प्राणी को दुःख पहुँचाने की वह इच्छा भी नहीं करता ॥३३२॥ वे तपस्वी तो अत्यन्त दीन थे इसलिए मैंने उनपर क्षमा धारण की थी । उन तपस्वियों ने आश्रम से निकालकर यद्यपि अपराध किया था पर उनकी वृत्ति हिरणों के समान दीन थी साथ ही वे गुरुओं के घर रहते थे इसलिए उनपर क्षमा धारण करना अत्यन्त श्रेष्ठ था । यथार्थ में मैंने उनपर जो क्षमा को थी वह मेरे लिए अत्यन्त हितावह था परमाभ्युदय का कारण हुई है ॥३३३-३३४॥ तदनन्तर हरिषेण ने बड़े जोर से चिल्लाकर कहा कि रे महावत! तू हाथी दूसरे स्थान से ले जा ॥३३५॥ तब महावत ने कहा कि अहो ! तेरी बडी धृष्टता है कि जो तू हाथी को मनुष्य समझता है और अपने को हाथी मानता है ॥३३६॥ जान पड़ता है कि तू मृत्यु के समीप पहुंचने वाला है इसलिए तो हाथी के विषय में गर्व धारण कर रहा है अथवा तुझे कोई भूत लग रहा है । यदि भला चाहता है तो शीघ्र ही इस स्थान से चला जा । ॥३३७॥ तदनन्तर क्रोधवश लीला-पूर्वक नृत्य करते हुए हरिषेण ने जोर से अट्टहास किया, स्त्रियों को सान्तवना दी और स्वयं स्त्रियो को अपने पीछे कर हाथी के सामने गया ॥३३८॥ तदनन्तर बिजली की चमक के समान शीघ्र ही आकाश में उछलकर और शीश पर पैर रखकर वह हाथी पर सवार हो गया ॥३३९॥ तदनन्तर उसने लीला पूर्वक हाथी के साथ क्रीड़ा करना शुरू किया । क्रीड़ा करतेकरते कभी तो वह दिखाई देता था और कभी अदृश्य हो जाता था । इस तरह उसने हाथी के समस्त शरीर पर कीड़ा की पश्चात् पृथ्वी पर नीचे उतरकर भी उसके साथ नाना क्रीड़ाएँ कीं ॥३४०॥ तदनन्तर परम्परा से इस महान् कल-कल को सुनकर नगर के सब लोग इस महा-आश्चर्य को देखने के लिए बाहर निकल आये ॥३४१॥ बड़ी-बड़ी स्त्रियों ने झरोखों में बैठकर उसे देखा तथा कन्याओं ने उसके साथ समागम की इच्छाएँ की ॥३४२॥ अस्फालन **अर्थ**ात् पीठ पर हाथ फेरने से, जोरदार डांट-डपट के शब्दों से और बार-बार शरीर के कम्पन से हरिषेण ने उस हाथी को क्षण-भर में मदरहित कर दिया ॥३४३॥ नगर का राजा सिन्ध, महल को छत पर बैठा हुआ यह सब आश्चर्य देख रहा था । वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने हरिषेण को बुलाने के लिए अपना समस्त परिकर भेजा ॥३४४॥ तदनन्तर रंग-बिरंगी झूल से जिसकी शोभा बढ़ रही थी तथा नाना रंगों के चित्राम से जो शोभायमान था ऐसे उसी हाथी पर वह बड़े वैभव से प्राप्त हुआ ॥३४५॥ जो पसीने की बूंदों के बहाने मानो मोतियों से सहित था ऐसा हरिषेण अपने सौन्दर्य रूपी हाथ से नगर की स्त्रियों का मन संचित करता हुआ नगर में प्रविष्ट हुआ ॥३४६॥ तदनन्तर उसने राजा की सौ कन्याओं के साथ विवाह किया । इस प्रकार से जहाँ देखो वहीं सर्वत्र हरिषेण की चर्चा फैल गयी ॥३४७॥ यद्यपि उसने राजा से बहुत भारी सम्मान प्राप्त किया था तो भी तपस्वियों के आश्रम में जो स्त्री-रत्न देखा था उसके बिना उसने एक रात को वर्ष के समान समझा ॥३४८॥ वह विचार करने लगा कि इस समय निश्चय ही वह कन्या मेरे बिना विषम वन में हरिणी के समान परम आकुलता को प्राप्त होती होगी ॥३४९॥ यदि यह रात्रि किसी तरह एक बार भी समाप्त हो जाये तो मैं शीघ्र ही उस बाला पर दया करने के लिए दौड़ पडूंगा ॥३५०॥ यह अत्यन्त सुशोभित शय्या पर पड़ा हुआ ऐसा विचार करता रहा । विचार करतेकरते बड़ी देर बाद बहुत कठिनाई से उसे नींद आयी ॥३५१॥ स्वप्न में भी यह उसी कमल-लोचना को देखता रहा सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः करके इसके मन का वही एक विषय रह गयी थी ॥३५२॥

अथानन्तर विद्याधर राजा की कन्या की सहेली वेगवती जो कि सर्व प्रकार को कलाओं और गुणों में विशारद थी, सोते हुए हरिषेण को क्षण एक में हर कर ले गयी ॥३५३॥ जब उसकी निद्रा भग्न हुई तो उसने अपने आपको आकाश में हरा जाता देख क्रोधपूर्वक वेगवती से कहा कि रे पापिनी! तू मुझे किस लिए हर लिये जा रही है? ॥३५४॥ जिसके नेत्रों की समस्त पुतलियां दिख रही थीं तथा जिसने ओठ डंस रखा था ऐसे हरिषेण ने उस वेगवती को मारने के लिए वज्रमय मुद्गर के समान मुट्ठी बाँधी ॥३५५॥ तदनन्तर सुन्दर लक्षणों के धारक हरिषेण को कुपित देख वेगवती यद्यपि विद्याबल से समृद्ध थी तो भी भयभीत हो गयी । उसने उससे कहा कि हे आयुष्मान! जिस प्रकार वृक्ष की शाखा पर चढा कोई मनुष्य उसी की जड़ को काटता है उसी प्रकार मुझ पर आरूढ़ हुए तुम मेरा ही घात कर रहे हो ॥३५६-३५७॥ हे तात! मैं तुझे जिस लिए ले जा रही हूँ तुम जब उसको प्राप्त होओगे तब मेरे वचनों की यथार्थता जान सकोगे । यह निश्चित समझो कि वहाँ जाकर तुम्हारे इस शरीर को रंचमात्र भी दुःख नहीं होगा ॥३५८॥ वेगवती का कहा सुनकर हरिषेण ने विचार किया कि यह स्त्री मन्दर तथा मधुरभाषिणी है। इसकी आकृति ही बतला रही है कि यह पर-पीडा से निवृत्त है **अर्थ**ात् कभी किसी को पीड़ा नहीं

पहुंचाती ॥३५९॥ और चूँकि इस समय मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है इससे निश्चय होता है कि यह अवश्य ही प्रियजनों का समागम करावेगी ॥३६॥ तब हरिषेण ने उससे फिर पूछा कि हे भद्रे! तू ठीक-ठीक कारण बता और मनोहर कथा सुनाकर मेरे कानों को सन्तुष्ट कर ॥३६१॥

इसके उत्तर में वेगवती ने कहा कि सूर्योदय नामक श्रेष्ठ नगर में राजा शक्रधनु रहता है । उसकी स्त्री धी नाम से प्रसिद्ध है । उन दोनों के जयचन्द्रा नाम की पुत्री है जो कि गुण तथा रूप के अहंकार से ग्रस्त है, पुरुषों के साथ द्वेष रखती है और पिता के वचनों की अवहेलना करती है ॥३६२-३६३॥ समस्त भरत क्षेत्र में जो-जो उत्तम पुरुष थे उन सबके चित्रपट बनाकर मैंने पहले उसे दिखलाये हैं पर उसकी रुचि में एक भी नहीं आया ॥३६४॥ तब मैंने आपका चित्रपट उसे दिखलाया सो उसे देखते ही वह तीव्र उत्कण्ठारूपी शल्य से विद्ध होकर बोली कि कामदेव के समान इस पुरुष के साथ यदि मेरा समागम न होगा तो मैं मृत्यु को भले ही प्राप्त हो जाऊँगी पर अन्य अधम मनुष्य को प्राप्त नहीं होऊँगी ॥३६५-३६६॥ उसके गुणों से जिसका चित्त आकृष्ट हो रहा था ऐसी मैंने उसका बहुत भारी शोक देखकर उसके आगे यह कठिन प्रतिज्ञा कर ली कि तुम्हारे मन को चुराने वाले इस पुरुष को यदि मैं शीघ्र नहीं ले आऊँ तो हे सखि! ज्वालाओं से युक्त अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगी ॥३६७-३६८॥ मैंने ऐसी प्रतिज्ञा को ही थी कि बड़े भारी पुण्योदय से आप मिल गये । अब आपके प्रसाद से अपनी प्रतिज्ञा को अवश्य ही सफल बनाऊँगी ॥३६९॥ ऐसा कहती हुई वह सूर्योदय पुर आ पहुंची । वहाँ आकर उसने राजा शक्रधनु और कन्या जयचन्द्रा के लिए सूचना दे दी कि तुम्हारे मन को हरण करनेवाला हरिषेण आ गया है ॥३७०॥ तदनन्तर आश्चर्यकारी रूप को धारण करने वाले दोनों-वर कन्या का पाणिग्रहण किया गया । जिनका चित्त आश्चर्य से भर रहा था ऐसे सभी आत्मीय जनों ने उनके उस पाणिग्रहण का अभिनन्दन किया था ॥३७१॥ जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी ऐसी वेगवती ने राजा और कन्या दोनों की ओर से परम सम्मान प्राप्त किया था । उसके हर्ष और सुयश का भी ठिकाना नहीं था ॥३७२॥ इस कन्या ने हम लोगों को छोड़कर भूमि गोचरी पुरुष स्वीकृत किया ऐसा विचारकर कन्या के मामा के लड़के गंगाधर और महीधर बहुत ही कुपित हुए । कुपित ही नहीं हुए अपमान से प्रेरित हो बड़ी भारी सेना लेकर युद्ध करने की भी इच्छा करने लगे ॥३७३-३७४॥ तदनन्तर करुणा में आसक्त है चित्त जिसका ऐसे राजा शक्रधनु ने अपने सुचाप नामक पुत्र के साथ हरिषेण से इस प्रकार निवेदन किया कि हे जामात ! तुम यहीं ठहरो, मैं युद्ध करने के लिए जाता हूँ । तुम्हारे निमित्त से दो उत्कट शत्रु कुपित होकर दुःख का अनुभव कर रहे हैं ॥३७५-३७६॥ तब हँसकर हरिषेण ने कहा कि जो परकीय कार्यों में सदा तत्पर रहता है उसके अपने ही कार्य में उदासीनता कैसे हो सकती है? ॥३७७॥ हे पूज्य! प्रसन्नता करो और मेरे लिए युद्ध का आदेश दो । मेरे जैसा भृत्य पाकर आप इस प्रकार स्वयं क्यों युद्ध करते हो? ॥३७८॥ तदनन्तर अमंगल से भयभीत श्वसुर ने चाहते हुए भी उसे नहीं रोका । फलस्वरूप जिसमें हवा के समान शीघ्रगामी घोड़े जुते थे, जो नाना प्रकार के शस्त्रों से पूर्ण था, जिसका सारथी शूरवीर था और जो योद्धाओं के समूह से घिरा था ऐसे रथ को हरिषेण प्राप्त हुआ ॥३७९-३८०॥ उसके पीछे विद्याधर लोग शत्रु के मन को असहनीय बहुत भारी कोलाहल कर घोड़ों और हाथियों पर सवार होकर जा रहे थे ॥३८१॥ तदनन्तर शूरवीर मनुष्य जिसकी व्यवस्था बनाये हुए थे ऐसा महायुद्ध प्रवृत्त हुआ सो कुछ ही समय बाद शक्रधनु की सेना को पराजित देख हरिषेण युद्ध के लिए उठा ॥३८२॥ तदनन्तर जिस दिशा से उसका उत्तम रथ निकल जाता था उस दिशा में न घोड़ा बचता था, न हाथी दिखाई देता था, न मनुष्य शेष रहता था और न रथ ही बाकी बचता था ॥३८३॥ उसने एक साथ डोरी पर चढ़ाये हुए बाणों से शत्रु की सेना को इस प्रकार मारा कि वह पीछे बिना देखे ही एकदम सरपट कहीं पर भाग खड़ी हुई ॥३८४॥ जिनके शरीर में बहुत भारी कँपकँपी छूट रही थी ऐसे भय से पीडित कितने ही योद्धा कह रहे थे कि गंगाधर और महीधर ने यह बड़ा अनिष्ट कार्य किया है ॥३८५॥ यह कोई अद्भुत पुरुष युद्ध में सूर्य की भांति सुशोभित हो रहा है । जिस प्रकार सूर्य समस्त दिशाओं में किरणें छोड़ता है उसी प्रकार यह भी समस्त दिशाओं में बहुत बाण छोड़ रहा है ॥३८६॥ तदनन्तर अपनी सेना को उस महात्मा के द्वारा नष्ट होती देख भय से ग्रस्त हुए गंगाधर और महीधर दोनों ही कहीं भाग खड़े हुए ॥३८७॥ तदनन्तर उसी समय पुण्योदय से रत्न प्रकट हो गये जिससे हरिषेण महान् अभ्युदय को धारण करनेवाला दसवाँ चक्रवर्ती प्रसिद्ध हुआ ॥३८८॥ यद्यपि वह चक्ररत्न से चिह्नित परम लक्ष्मी से युक्त हो गया था तो भी मदनावली से रहित अपने आपको मृग के समान तुच्छ समझता था ॥३८९॥ तदनन्तर बारह योजन लम्बी-चौड़ी सेना को चलाता और समस्त शत्रुओं को नम्रीभूत करता हुआ वह तपस्वियों के आश्रम में पहुँचा ॥३९०॥ जब तपस्वियों को इस बात का पता चला कि यह वही है जिसे हम लोगों ने आश्रम से निकाल दिया था तो बहुत ही भयभीत हुए । निदान, हाथों में फल लेकर उन्होंने हरिषेण को अर्घ दिया और आशीर्वाद से युक्त वचनों से उसका सम्मान किया ॥

३९१॥ शतमन्यु के पुत्र जनमेजय और माता नागवती ने सन्तुष्ट होकर वह कन्या: इसके लिए समर्पित कर दी ॥३९२॥ तदनन्तर उन दोनों का विधिपूर्वक विवाहोत्सव हुआ । इस कन्या को पाकर राजा हरिषेण ने अपना पुनर्जन्म माना ॥३९३॥ तदनन्तर चक्रवर्ती की लक्ष्मी से युक्त होकर वह काम्पिल्यनगर आया । बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसके साथ थे ॥३९४॥ उसने मुकुट में लगे मणियों के समूह से सुशोभित शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बड़ी विनय से माता के चरणों में नमस्कार किया ॥३९५॥ सुमाली दशानन से कहते हैं कि हे दशानन! उस समय उक्त प्रकार के पुत्र को देखकर वप्रा के हर्ष का पार नहीं रहा । वह अपने अंगों में नहीं समा सकी तथा हर्ष के आँसुओं से उसके दोनों नेत्र भर गये ॥३९६॥ तदनन्तर उसने सूर्य के समान तेजस्वी बड़े-बड़े रथ काम्पिल्यनगर मे घुमाये और इस तरह अपनी माता का मनोरथ सफल किया ॥३९७॥ इस कार्य से मुनि और श्रावकों को परम हर्ष हुआ तथा बहुत से लोगों ने जिन-धर्म धारण किया ॥३९८॥ पृथिवी, पर्वत, नदियों के समागम स्थान, नगर तथा गाँव आदि में जो नाना रंग के ऊँचे-ऊँचे जिनालय शोभित हो रहे हैं वे सब उसी के बनवाये हैं ॥३९९॥ उदार हृदय को धारण करने वाले हरिषेण ने चिरकाल तक राज्य कर दीक्षा ले ली । और परम तपश्चरण कर तीन लोक का शिखर **अर्थ**ात् सिद्धालय प्राप्त कर लिया ॥४००॥ इस प्रकार हरिषेण चक्रवर्ती का चरित्र सुनकर दशानन आश्चर्य को प्राप्त हुआ । तदनन्तर जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर वह आगे बढ़ा ॥४०१॥

अथानन्तर सन्ध्या काल आया और सूर्य डूब गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो सूर्य ने दशानन को विजयी जानकर भय से ही उसके नेत्रों का गोचर-स्थान छोड़ दिया था ॥४०२॥ सन्ध्या की लालिमा से समस्त लोक व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दशानन से उत्पन्न हुए बहुत भारी अनुराग से ही व्याप्त हो गया था ॥४०३॥ क्रम-क्रम से सन्ध्या को नष्ट कर काला अन्धकार आकाश में व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दशानन की सेवा करने के लिए ही व्याप्त हुआ था ॥४०४॥ तदनन्तर दशानन ने आकाश से उतरकर सम्मेदाचल के समीप स्थली नामक पर्वत के ऊपर अपना डेरा डाला ॥४०५॥ अथानन्तर जिसप्रकार वर्षाकालीन मेघों के समूह से वज्र का शब्द निकलता है इसी प्रकार कहीं से ऐसा भयंकर शब्द निकला कि जिसने समस्त सेना को भयभीत कर दिया ॥४०६॥ बड़े-बड़े हाथियों ने अपने आलानभूत वृक्ष तोड़ डाले और घोड़े कान खड़े कर फरहरी लेते हुए हिनहिनाने लगे ॥४०७॥ वह शब्द सुनकर दशानन शीघ्रता से बोला कि यह क्या है? क्या है? अपराध के बहाने मरने के लिए आज कौन उद्यत हुआ है? ॥४०८॥ जान पड़ता है कि वैश्रवण आया है अथवा शत्रु से प्रेरित हुआ सोम आया है अथवा मुझे निश्चिन्त रूप से ठहरा जानकर शत्रु पक्ष का कोई दूसरा व्यक्ति यहाँ आया है ॥४०९॥ तदनन्तर दशानन की आज्ञा पाकर प्रशस्त नामा मन्त्री उस स्थान पर गया जहाँ से कि वह शब्द आ रहा था । वहाँ जाकर उसने पर्वत के समान आकार वाला, क्रीड़ा करता हुआ एक हाथी देखा ॥४१०॥ वहाँ से लौटकर प्रहस्त ने बड़े आश्चर्य के साथ दशानन को सूचना दी कि हे देव! मेघों की महा राशि के समान उस हाथी को देखो ॥४११॥ ऐसा जान पड़ता है कि इस हाथी को मैंने पहले भी कभी देखा है, इन्द्र विद्याधर भी इसे पकड़ने में समर्थ नहीं था इसीलिए उसने इसे छोड़ दिया है, अथवा इन्द्र विद्याधर की बात जाने दो साक्षात् देवेन्द्र भी इसे पकड़ने में असमर्थ है, इसे कोई सहन नहीं कर सकता । नहीं जान पड़ता कि यह हाथी है या समस्त प्राणियों का एकत्रित तेज का समूह है? ॥४१२-४१३॥ तब दशानन ने हँसकर कहा कि हे प्रहस्त! यद्यपि अपनी प्रशंसा स्वयं करना ठीक नहीं है फिर भी मैं इतना तो कहता ही हूँ कि यदि मैं इस हाथी को क्षण-भर में न पकड़ लूँ तो बाजुबन्द से पीड़ित अपनी इन दोनों भुजाओं को काट डालूँ ॥४१४-४१५॥ तदनन्तर वह इच्छानुसार चलने वाले पुष्पक विमान पर सवार हो, जाकर उत्तम लक्षणों से युक्त उस हाथी को देखता है ॥४१६॥ वह हाथी चिकने इन्द्रनील मणि के समान था, उसका तालु कमल के समान लाल था, वह लम्बे, गोल तथा अमृत के फेन के समान सफेद दाँतों को धारण कर रहा था ॥४१७॥ वह सात हाथ ऊंचा, दस हाथ चौड़ा और नौ हाथ लम्बा था । उसके नेत्र मधु के समान कुछ पीतवर्ण के थे ॥४१८॥ उसकी पीठ की हड्डी मांसपेशियों में निमग्न थी, उसके शरीर का अगला भाग ऊँचा था, पूँछ लम्बी थी, सूंड़ विशाल थी, और नखरूपी अंकुर चिकने तथा पीले थे ॥४१९॥ उसका मस्तक गोल तथा स्थूल था, उसके चरण अत्यन्त जमे हुए थे, वह स्वयं बलवान् था, उसकी विशाल गर्जना भीतर से मधुर तथा गम्भीर थी और वह विनय से खड़ा था ॥४२०॥ उसके गण्डस्थल से जो मद चू रहा था उसकी सुगन्धि के कारण भ्रमरों की पंक्तियाँ उसके समीप खिंची चली आ रही थीं । वह कर्णरूपी ताल पत्रों की फटकार से बन्धुभि के समान विशाल शब्द कर रहा था ॥४२१॥ वह अपनी स्थूलता के कारण आकाश को मानो निरवकाश कर रहा था और चित्त तथा नेत्रों को चुराने वाली क्रीड़ा कर रहा था ॥४२२॥ उस हाथी को देख दशानन परम प्रीति को प्राप्त हुआ । उसने अपने आपको कृतकृत्य-सा माना और उसका रोम-रोम हर्षित हो उठा ॥४२३॥ तदनन्तर दशानन ने विमान छोड़कर अपना परिकर मजबूत बाँधा और उसके सामने शब्द से लोक को

व्याप्त करनेवाला शंख फूँका ॥४२४॥ तत्पश्चात् शंख के शब्द से जिसके चित्त में क्षोभ उत्पन्न हुआ था तथा जो बल के गर्व से युक्त था ऐसा हाथी गर्जना करता हुआ दशानन के सम्मुख चला ॥४२५॥ जब हाथी वेग से दशानन के सामने दौड़ा तो घूमने में चतुर दशानन ने उसके सामने अपना सफेद चद्दर घरियाकर फेंक दिया ॥४२६॥ हाथी जब तक उस चद्दर को सूँघता है तब तक दशानन ने उछलकर भ्रमर समूह के शब्दों से तीक्ष्ण उसके दोनों कपोलों का स्पर्श कर लिया ॥४२७॥ हाथी जब तक दशानन को सूंड से लपेटने की इच्छा करता है कि तब तक शीघ्रता से युक्त दशानन उसके दाँतों के बीच से बाहर निकल गया ॥४२८॥ घूमने में बिजली के समान चंचल दशानन उसके चारों ओर के अंगों का स्पर्श करता था । बार-बार दाँतों पर टक्कर लगाता था और कभी खीसों पर झूला झूलने लगता था ॥४२९॥ तदनन्तर दशानन विलासपूर्वक उसकी पीठ पर चढ़ गया और हाथी उसी क्षण उत्तम शिष्य के समान विनीत भाव से खड़ा हो गया ॥४३०॥ उसी समय देवों ने फूलों की वर्षा की, बार-बार धन्यवाद दिये, और विद्याधरों की सेना कल-कल करती हुई परम हर्ष को प्राप्त हुई ॥४३१॥ वह हाथी, दशानन से त्रिलोकमण्डन इस नाम को प्राप्त हुआ । यथार्थ में उस हाथी से तीनों लोक मण्डित हुए थे इसलिए दशानन ने बड़े हर्ष से उसका त्रिलोकमण्डन नाम सार्थक माना था ॥४३२॥ फूलों से व्याप्त उस रमणीय पर्वत पर नृत्य करते हुए विद्याधरों ने उस श्रेष्ठ हाथी के मिलने का महोत्सव किया था ॥४३३॥

इस हाथी के प्रकरण से यद्यपि सब लोग जाग रहे थे तो भी रात्रि और दिवस की मर्यादा बतलाने के लिए प्रभातकालीन तुरही ने ऐसा जोरदार शब्द किया कि वह पर्वत की प्रत्येक गुफा में गूँज उठा ॥४३४॥ तदनन्तर सूर्य बिम्ब का उदय हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो सेवा की चतुराई को जानने वाले दिवस ने दशानन के लिए मंगल-कलश ही समर्पित किया हो ॥४३५॥

तदनन्तर दशानन शारीरिक क्रियाएँ कर सोफा पर बैठा था । साथ ही अन्य विद्याधर भी हाथी की चर्चा करते हुए उसे घेरकर बैठे थे ॥४३६॥ उसी समय आकाश से उतरकर एक पुरुष वहाँ आया । वह पुरुष अत्यन्त काँप रहा था, पसीने को बूँदों से व्याप्त था, खेद को धारण कर रहा था, प्रहार जन्य घावों से सहित था, आँसू छोड़ रहा था और अपना जर्जर शरीर दिखला रहा था । उसने हाथ जोड़ मस्तक से लगा बड़े दुःख के साथ निवेदन किया ॥४३७-४३८॥ कि हे देव! आज से दस दिन पहले हृदय में आपके बल का भरोसा कर सूर्यरज और ऋक्षरज दोनों भाई, अपनी वंश-परम्परा से चले आये किष्कु नगर को लेने के लिए बड़े उत्साह से अलंकारपुर **अर्थ**ात् पाताल लंका से निकलकर चले थे ॥४३९-४४०॥ दोनों ही भाई महान् अभिमान से युक्त, बड़ी भारी सेना से सहित तथा निशंक थे । वे आपके गर्व से संसार को तृण के समान तुच्छ मानते थे । ॥४४१॥ इन दोनों भाइयों की प्रेरणा से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हुए बहुत-से लोग एक साथ आक्रमण कर किष्कुपुर को लूटने लगे ॥४४२॥ तदनन्तर जिनके हाथों में नाना प्रकार के शस्त्र चमक रहे थे ऐसे यम नामा दिक्पाल के उत्तम योद्धा युद्ध करने के लिए उठे सो मध्य रात्रि में उन सबके बीच बड़ा भारी युद्ध हुआ । उस युद्ध में परस्पर के शस्त्र प्रहार से अनेक पुरुषों का क्षय हुआ ॥४४३-४४४॥ अथानन्तर बड़ी गौर से उनका कल-कल शब्द सुनकर यह दिक्पाल स्वयं क्रोध से युद्ध करने के लिए निकला । उस समय वह यम क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान भयंकर जान पड़ता था ॥४४५॥ जिसका तेज अत्यन्त दु:सह था ऐसे यम ने आते ही के साथ हमारी सेना को नाना प्रकार के शस्त्रों से घायल कर भग्न कर दिया ॥४४६॥ अथानन्तर वह दूत इस प्रकार कहता-कहता बीच में ही मूर्च्छित हो गया । वस्त्र के छोर से हवा करने पर पुन: सचेत हुआ ॥४४७॥ यह क्या है? इस प्रकार पूछे जाने पर उसने हृदय पर हाथ रखकर कहा कि हे देव! मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं वहीं पर हूँ । उसी दृश्य को सामने देख मैं मूर्च्छित हो गया ॥४४८॥ तदनन्तर आश्चर्य को धारण करने वाले रावण ने पूछा कि फिर क्या हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर में वह कुछ विश्राम कर फिर कहने लगा ॥४४९॥ कि हे नाथ! जब ऋक्षरज ने देखा कि हमारी सेना अत्यन्त दु:ख पूर्ण शब्दों से व्याकुल होती हुई पराजित हो रही है, नष्ट हुई जा रही है तब स्नेह युक्त हो वह युद्ध करने के लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥४५०॥ वह अत्यन्त बलवान् यम के साथ चिरकाल तक युद्ध करता रहा । युद्ध करते-करते उसका हृदय नहीं टूटा था फिर भी शत्रु ने छल से उसे पकड़ लिया ॥४५१॥ तदनन्तर जब ऋक्षरज युद्ध कर रहा था उसी समय सूर्यरज भी युद्ध के लिए उठा । उसने भी चिरकाल तक युद्ध किया पर अन्त में वह शस्त्र की गहरी चोट खाकर मूर्च्छित हो गया ॥४५२॥ आत्मीय लोग उसे उठाकर शीघ्र ही मेखला नामक वन में ले गये । वहाँ वह चन्दन मिश्रित शीतल जल से श्वास को प्राप्त हो गया **अर्थ**ात् शीतलोपचार से उसकी मूर्च्छा दूर हुई ॥४५३॥ लोकपाल यम ने अपने आपको सचमुच ही यमराज समझकर नगर के बाहर वैतरणी नदी आदि कष्ट देने के स्थान बनवाये ॥४५४॥ तदनन्तर उसने अथवा इन्द्र विद्याधर ने जिन्हें युद्ध में जीता था उन सबको उसने उस कष्टदायी स्थान में रखा सो वे वहाँ दु:खपूर्वक मरण को प्राप्त हो रहे हैं ॥४५५॥ इस वृत्तान्त को देख मैं बहुत ही व्याकुल हूँ । मैं

ऋक्षरज की वंश परम्परा से चला आया प्यारा नौकर हूँ । शाखावली मेरा नाम है, मैं सुश्रोणी और रणदक्ष का पुत्र हूँ । आप चूँकि रक्षक हो इसलिए किसी तरह भागकर आपके पास आया हूँ ॥४५६-४५७॥ इस प्रकार अपने पक्ष के लोगों की दुर्दशा जानकर मैंने आप से कही है । इस विषय में अब आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जैसा उचित समझें सो करें । मैं तो आप से निवेदन कर कृतकृत्य हो चुका ॥४५८॥ तदनन्तर महाक्रोधी रावण ने अपने पक्ष के लोगों को बड़े आदर से आदेश दिया कि इस शाखावली के घाव ठीक किये जावें । तदनन्तर मुसकराता हुआ वह उठा और साथ ही उठे अन्य लोगों से कहने लगा कि मैं कष्टरूपी महासागर में पड़े तथा वैतरणी आदि कष्टदायी स्थानों में डाले गये लोगों का उद्धार करूँगा ॥४५९-४६०॥ प्रहस्त आदि बड़े-बड़े राजा सेना के आगे दौड़े । वे शस्त्रों के तेज से आकाश को देदीप्यमान कर रहे थे ॥४६१॥ नाना प्रकार के वाहनों पर सवार थे, छत्र और ध्वजाओं को धारण करने वाले थे । तुरही के शब्दों से उनका बड़ा भारी उत्साह प्रकट हो रहा था और वे महा तेजस्वी थे ही ॥४६२॥ इस प्रकार विद्याधरों के अधिपति आकाश से उतरकर पृथिवी पर आये और नगर के समीप महलों की पंक्ति की शोभा देख परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥४६३॥ तदनन्तर रावण ने किष्कुपुर नगर की दक्षिण दिशा में कृत्रिम नरक के गर्त में पड़े मनुष्यों के समूह को देखा ॥४६४॥ देखते ही उसने नरक की रक्षा करने वाले लोगों को नष्ट किया और जिस प्रकार बन्धुजन अपने इष्ट लोगों को कष्ट से निकालते हैं उसी प्रकार उसने सब लोगों को नरक से निकाला ॥४६५॥ तदनन्तर शत्रुसेना को आया सुनकर बड़े भारी आडम्बर को धारण करनेवाला, शक्तिशाली यम नाम लोकपाल का साटोप नाम का प्रमुख भट युद्ध करने के लिए अपनी सब सेना के साथ बाहर निकला । उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो क्षोभ को प्राप्त हुआ सागर ही हो ॥४६६॥ पहाड़ के समान ऊँचे, भयंकर और मद की धारा से अन्धकार फैलाने वाले हाथी, चलते हुए सुन्दर चामर रूपी आभूषणों को धारण करने वाले घोड़े, सूर्य के समान देदीप्यमान तथा ध्वजाओं की पंक्ति से सुशोभित रथ, और कवच धारण करने वाले एवं शस्त्रों से युक्त शूरवीर योद्धा इस प्रकार चतुरंग सेना उसके साथ थी ॥४६७-४६८॥ तदनन्तर रथ पर आरूढ़ एवं रण कला में निपुण विभीषण ने हँसते-हँसते ही बाणों के द्वारा उस साटोप को क्षण-भर में मार गिराया ॥४६९॥ यम के जो दीन हीन किंकर थे वे भी बाणों से ताड़ित हो आकाश को लम्बा करते हुए शीघ्र ही कहीं भाग खड़े हुए ॥४७०॥ जब यम नाम लोकपाल को पता चला कि सूर्यरज-ऋक्षरज आदि को नरक से छुड़ा दिया है तथा साटोप नामक प्रमुख भट को मार डाला है तब यमराज के समान क्रूर तथा महा शस्त्रों को धारण करनेवाला वह यम लोकपाल बड़े वेग से रथ पर सवार हो युद्ध करने के लिए बाहर निकला । वह धनुष तथा क्रोध को धारणकर रहा था, बढ़े हुए प्रताप और ऊँची उठी ध्वजा से युक्त था, महाबलवान् था, काले सर्प के समान भयंकर भौंहों से उसका ललाट कुटिल हो रहा था, वह अपने लाल-लाल नेत्रों से ऐसा जान पड़ता था मानो जगत्रूपी वन को जला ही रहा हो । अपने ही प्रतिबिम्ब के समान दिखने वाले अन्य सामन्त उसे घेरे हुए थे तथा तेज से वह आकाश को आच्छादित कर रहा था ॥४७१-४७४॥ तदनन्तर यम लोकपाल को बाहर निकला देख दशानन ने विभीषण को मना किया और स्वयं ही क्रोध को धारण करता हुआ युद्ध करने के लिए उठा ॥४७५॥ साटोप के मारे जाने से जो अत्यन्त देदीप्यमान दिख रहा था ऐसे भयंकर मुख को धारण करनेवाला यम ने दशानन के साथ युद्ध करना शुरू किया ॥४७६॥ यम को देख राक्षसों की सेना भयभीत हो उठी, उसकी चेष्टाएँ मन्द पड़ गयीं और वह निरुत्साह हो दशानन के समीप भाग खड़ी हुई ॥४७७॥ तदनन्तर रथ पर बैठा हुआ दशानन बाणों की वर्षा करता हुआ यम के सम्मुख गया । यम भी बाणों की वर्षा कर रहा था ॥४७८॥ तदनन्तर सघन मण्डल बाँधने वाले मेघों से जिस प्रकार समस्त आकाश व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार उन दोनों के भयंकर शब्द करने वाले बाणों से समस्त आकाश व्याप्त हो गया ॥४७९॥ अथानन्तर दशानन के बाण की चोट खाकर यम का सारथी पुण्यहीन ग्रह के समान भूमि पर गिर पड़ा ॥४८०॥ यम लोकपाल भी दशानन के तीक्ष्ण बाण से ताड़ित हो रथरहित हो गया । इस कार्य से वह इतना घबड़ाया कि क्षण-भर में छिपकर आकाश में जा उड़ा ॥४८१॥ तदनन्तर भय से जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा यम अपने अन्तःपुर, पुत्र और मन्त्रियों को साथ लेकर रथनूपुर नगर में पहुँचा ॥४८२॥ और बड़ी घबराहट के साथ इन्द्र को नमस्कार कर इस प्रकार कहने लगा कि हे देव! मेरी बात सुनिए । अब मुझे यमराज की लीला से प्रयोजन नहीं है ॥४८३॥ हे नाथ ! चाहे आप प्रसन्न हों, चाहे क्रोध करें, चाहे मेरा जीवन हरण करें अथवा चाहे जो आपकी इच्छा हो सो करें परन्तु अब मैं यमपना अर्थात् यम नामा लोकपाल का कार्य नहीं करूँगा ॥४८४॥ विशाल तेज को धारण करने वाले जिस योद्धा ने पहले युद्ध में वैश्रवण को जीता था उसी योद्धा दशानन ने मुझे भी पराजित किया है । यद्यपि मैं चिरकाल तक उसके साथ युद्ध करता रहा पर स्थिर नहीं रह सका ॥४८५॥ उस महात्मा का शरीर ऐसा जान पड़ता है मानो वीर रस से ही बना हो । वह आकाश के मध्य में स्थित ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान दुनिरीक्ष्य है अर्थात् उसकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता है ॥४८६॥ यह सुनकर इन्द्र युद्ध के

लिए उद्यत हुआ परन्तु नीति की यथार्थता को जानने वाले मन्त्री मण्डल ने उसे रोक दिया ॥४८७॥ इन्द्र, यम का जामाता था सो यम की बात सुन मन्द हास्य करते हुए उसने कहा कि हे मातुल! दशानन कहां जायेगा? तुम भय को छोड़ो और निश्चिन्त होकर इस आसन पर सुख से बैठो ॥४८५॥ इस प्रकार जामाता के वचन से शत्रु का भय छोड़कर यम इन्द्र के द्वारा बतलाये हुए नगर में सुख से रहने लगा ॥४८६॥ बहुत भारी गर्व को धारण करनेवाला इन्द्र यम का सन्मान कर अन्तःपुर में चला गया और वहाँ जाकर काम भोगरूपी समुद्र में निमग्न हो गया ॥४९०॥ यम ने दशानन का जो चरित्र इन्द्र के लिए कहा था तथा युद्ध में दशानन से पराजित होकर वैश्रवण को जो वनवास करना पड़ा था, ऐश्वर्य के मद में मस्त रहनेवाले इन्द्र के लिए वह सब क्षण-भर में उस प्रकार विस्मृत हो गया जिस प्रकार कि पहले पढ़ा शास्त्र अभ्यास न करने पर विस्मृत हो जाता है ॥४९१-४९२॥ स्वप्न में उपलब्ध वस्तु का कुछ तो भी स्मरण रहता है परन्तु इन्द्र के लिए पूर्व कथित बात का निर्मूल विस्मरण हो गया ॥४९३॥ इधर इन्द्र का यह हाल हुआ उधर यम सुरसंगीत नामा नगर का स्वामित्व पाकर दशानन से प्राप्त हुए तिरस्कार को बिलकुल भूल गया ॥४९४॥ वह मानता था कि मेरी पुत्री सर्वश्री अत्यन्त रूपवती है और इन्द्र को प्राणों से भी अधिक प्रिय है ॥४९५॥ इस प्रकार एक बड़े पुरुष के साथ मेरा अन्तरंग सम्बन्ध है इसलिए इन्द्र का सम्मान पाकर मेरा जन्म कृतकृत्य अर्थात् सफल हुआ है ॥४९६॥

तदनन्तर महान् अभ्युदय और उत्साह को धारण करने वाले दशानन ने यम को हटाकर किष्किन्ध नामा नगर सूर्यरज के लिए दिया ॥४९७॥ और ऋक्षरज के लिए परम सम्पत्ति को धारण करनेवाला किष्कुपुर नगर दिया । इस प्रकार सूर्यरज और ऋक्षरज दोनों ही अपनाई कुल-परम्परा से आगत नगरों को पाकर सुख से रहने लगे ॥४९८॥ जिनकी शोभा इन्द्र के नगर के समान थी, और जिन में सुवर्णमय भवन बने हुए थे ऐसे वे दोनों नगर योग्य-स्वामी से युक्त होकर परम लक्ष्मी को प्राप्त हुए ॥४९९॥ बहुत भारी लक्ष्मी और कीर्ति को धारण करने वाले दशानन ने कृतकृत्य होकर बड़े वैभव के साथ त्रिकूटाचल के शिखर की ओर प्रस्थान किया । उस समय शत्रु राजा प्रणाम करते हुए उससे मिल रहे थे । वह स्वयं उत्तम था और जिस प्रकार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा प्रतिदिन पूर्ण होता रहता है उसी प्रकार वह भी प्रतिदिन सेवनीय वैभव से पूर्ण होता रहता था । रत्नमयी मालाओं से युक्त, ऊँचे शिखरों की पंक्ति से सुशोभित, सुन्दर और इच्छानुसार गमन करने वाले पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर वह जा रहा था । वह परम धैर्य से युक्त था तथा पुण्य के फलस्वरूप अनेक अभ्युदय उसे प्राप्त थे ॥५००-५०३॥

तदनन्तर परम हर्ष को प्राप्त, नाना अलंकारों से युक्त एवं उत्तमोत्तम वस्त्र धारण करने वाले राक्षसों के झुण्ड के झुण्ड जोर-जोर से निम्नांकित मंगल वाक्यों का उच्चारण कर रहे थे कि हे देव ! तुम्हारी जय हो, तुम समृद्धि को प्राप्त होओ, चिरकाल तक जीते रहो, बढ़ते रहो और निरन्तर अभ्युदय को प्राप्त होते रहो ॥५०४-५०५॥ वे राक्षस, सिंह, शार्दूल, हाथी, घोड़े तथा हंस आदि वाहनों पर आरूढ़ थे । नाना प्रकार के विभ्रमों से युक्त थे । हर्ष से उनके नेत्र फूल रहे थे । वे देवों जैसी आकृतियों को धारण कर रहे थे । अपने तेज से उन्होंने दिशाओं को व्याप्त कर रखा था । उनकी प्रभा से समस्त दिशाएँ जगमगा रही थीं और वे वन, पर्वत तथा समुद्र आदि सर्व स्थानों में चल रहे थे ॥५०६-५०७॥ जिसका किनारा नहीं दीख रहा था, जो अत्यन्त गहरा था, बड़े-बड़े ग्राह-मगरमच्छों से व्याप्त था, तमाल वन के समान श्याम था, पर्वतों-जैसी ऊँची-ऊँची तरंगों के समूह उठ रहे थे, जो रसातल के समान अनेक बड़े-बड़े नागों-सर्पों से भयंकर था, और नाना-प्रकार के रत्नों की किरणों के समूह से अनुरक्त स्थलों से सुशोभित था ऐसे अनेक आश्चर्यों से युक्त समुद्र को देखते हुए वे राक्षस आश्चर्य से भर रहे थे । अहो, ही, आदि आश्चर्य व्यंजक शब्दों से उनके मुख बार-बार मुखरित हो रहे थे । इस प्रकार अनेक राक्षस दशानन के पीछे-पीछे चल रहे थे ॥५०८-५१०॥

अथानन्तर जिसमें बड़ी-बड़ी शालाएँ देदीप्यमान हो रही थीं, जो गम्भीर परिखा से आवृत्त थी, जो झरोखों में लगे हुए मणियों से कहीं तो कुन्द के समान सफेद, कहीं महानील मणियों के समान नील, कहीं पद्मरागमणि के समान लाल, कहीं पुष्परागमणियों के समान प्रभास्वर और कहीं गरुड़मणियों के समान गहरे नील वर्ण वाले महलों में व्याप्त थी। जो स्वभाव से ही सुशोभित थी फिर राक्षसों के अधिपति दशानन के शुभागमन के अवसर पर आश्चर्यकारी हर्ष से भरे भक्त नागरिकजनों के द्वारा और भी अधिक सुशोभित की गयी थी ऐसी अपनी लंका नगरी में हितकारी उदार शासक दशानन ने निःशंक हो इन्द्र के समान प्रवेश किया। प्रवेश करते समय दशानन, पर्वतों के समान ऊँचे-ऊँचे हाथियों, बड़े-बड़े महलों के समान रत्नों से रंजित रथों, जिनकी लगाम के स्वर्णमयी छल्ले शब्द कर रहे थे एवं जिनके आजूबाजू चमर ढोले जा रहे थे ऐसे घोड़ों जिनके शिखर दूर तब आकाश में चले गये थे ऐसे रंगबिरंगे विमानों, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल

छत्रों, और जिनका अंचल आकाश में दूर-दूर तक फहरा रहा था ऐसी ध्वजाओं से लंका की शोभा को अत्यन्त अधिक बढ़ा रहा था। उत्तमोत्तम चारणों के झुण्ड मंगल शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। वीणा, बाँसुरी और शंखों के शब्द से मिश्रित तुरही की विशालध्वनि से समस्त दिशा और आकाश व्याप्त हो रहे थे॥५११-५१८॥ तदनन्तर कुलक्रम से आगत स्वामी के दर्शन करने की जिनकी लालसा बढ़ रही थी, जिन्होंने आभूषण तथा अत्यन्त सुन्दर वस्त्रादि सम्पदाएँ धारण कर रखी थी और जो नृत्य करती हुई नयनाभिराम गणिकाओं के समूह से युक्त थे, ऐसे समस्त पुरवासी जन, फलों-फूलों, पत्तों और रत्नों से निर्मित अर्घ लेकर बार-बार आर्शीवाद का उच्चारण करते हुए दशानन के समक्ष आये। उन पुरवासियों ने वृद्धजनों को अपने आगे कर रखा था। उन्होंने आते ही दशानन को नमस्कार कर उसकी पूजा की॥५१९-५२१॥ दशानन ने सबका सम्मान कर उन्हें विदा किया और सब अपने मुखों से उसी का गुणगान करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥५२२॥ अथानन्तर जिनकी बुद्धि कौतुक से व्याप्त हो रही थी और जिन्होंने तरह-तरह के आभूषण धारण कर रखे थे ऐसी उसकी दर्शनाभिलाषी स्त्रियों से दशानन का घर भर गया ॥५२३॥ उन स्त्रियों में कितनी ही स्त्रियाँ झरोंखों के सम्मुख आ रही थी। शीघ्रता के कारण उनके वस्त्र खुल रहे थे और परस्पर की धक्काधूमी से उनके मोतियों के हार तथा अन्य आभूषण टूट-टूटकर गिरे रहे थे ॥५२४॥ कितनी ही स्त्रियाँ अपने स्थूल स्तनों से एक दूसरे को पीड़ा पहुँचा रही थीं और उससे उनके कुण्डल हिल रहे थे । कितनी ही स्त्रियों के दोनों पैर रुनझुन करते हुए नुपूरों से झंकृत हो रहे थे ॥५२५॥ कोई स्त्री सामने खड़ी दूसरी स्त्री से कह रही थी कि हे माता ! क्या देख नहीं रही हो? अरी दुर्भगे ! जरा बगल में हो जा, मुझे भी रास्ता दे दे । कोई कह रही थी कि अरी भली आदमिन ! तू यहाँ से चली जा, तू यहाँ शोभा नहीं देती ॥५२६॥ इत्यादि शब्द वे स्त्रियाँ कर रहीं थीं । उस समय उनके मुखकमल हर्ष से खिल रहे थे । वे अन्य सब काम छोड़कर एक दशानन को ही देख रही थीं ॥५२७॥ इस प्रकार यम का मान-मर्दन करनेवाला दशानन, लंका नगरी में स्थित चूड़ामणि के समान मनोहर अपने सुसज्जित महल में अन्तःपुर सहित सुख से रहने लगा ॥५२८॥ इसके सिवाय अन्य विद्याधर राजा भी देवों के समान निरन्तर महा आनन्द को प्राप्त हुए यथायोग्य स्थान में रहने लगे ॥५२९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक! जो निर्मल कार्य करते हैं उन्हें नाना प्रकार के रत्नादि सम्पदाओं की प्राप्ति होती है, उनके प्रबल शत्रुओं का समूह नष्ट होता है और समस्त संसार में फैलने वाला उज्जवल यश उन्हें प्राप्त होता है ॥५३०॥ पंचेन्द्रियों के विषय सबसे प्रबल शत्रु हैं; सो जो निर्मल कार्य करते हैं उनके ये प्रबल शत्रु भी तीनों लोकों में अपनी स्मृति नष्ट कर देते हैं **अर्थ**ात् इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं कि उनका स्मरण भी नहीं रहता । इसी प्रकार बाह्य में स्थित होनेवाला जो शत्रुओं का समूह है वह भी निर्मल कार्य करने वाले मनुष्यों के चरणों के समीप निरन्तर नमस्कार करता रहता है । भावार्थ –- निर्मल कार्य करने वाले मनुष्यों के अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही शत्रु नष्ट हो जाते हैं॥५३१॥ ऐसा विचारकर हे श्रेष्ठ चित्त के धारक पुरुषों! विषयरूपी शत्रुसमूह की उपासना करना उचित नहीं है । क्योंकि उनकी उपासना करनेवाला मनुष्य अन्धकार से युक्त नरकरूपी गर्त में पड़ता है न कि सूर्य की किरणों से प्रकाशमान उत्तम स्थान को प्राप्त होता है ॥५३२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यनिर्मित पद्मचरित ग्रन्थ में दशानन का कथन करनेवाला अष्टम पर्व समाप्त हुआ ॥8॥

## बालि निर्वाण

नवम पर्व

कथा :

अथानन्तर सूर्यरज ने अपनी चन्द्रमालिनी नामक गुणवती रानी में बाली नाम का पुत्र उत्पन्न किया ॥1॥ वह पुत्र परोपकारी था, निरन्तर शीलव्रत से युक्त रहता था, विद्वान् था, कुशल था, धीर था, लक्ष्मी से युक्त था, शूर-वीर था, ज्ञानवान् था, कलाओं के समूह से युक्त था, सम्यग्दृष्टि था, महाबलवान् था, राजनीति का जानकार था, वीर था, दयालु था, विद्याओं के समूह से युक्त था, कान्तिमान् था और उत्तम तेज से युक्त था ॥2-3॥ जिस प्रकार लोक में उत्कृष्ट चन्दन की उत्पत्ति विरल **अर्थ**ात् कहीं-कहीं ही होती है उसी प्रकार बाली-जैसे उत्कृष्ट पुरुषों का जन्म भी विरल अर्थात् कहीं-कहीं होता है ॥4॥ जिसका समस्त सन्देह दूर हो गया था ऐसा बाली उत्कृष्ट भक्ति से युक्त होकर तीनों ही काल समस्त जिन-प्रतिमाओं की वन्दना करने के लिए उद्यत रहता था ॥5॥ जिसकी चारों दिशा में समुद्र घिरा हुआ है ऐसे जम्बूद्वीप की वह क्षणभर में तीन प्रदक्षिणाएँ देकर अपने किष्किन्ध नगर में वापस आ जाता था ॥6॥ इस प्रकार के अद्भुत पराक्रम का आधारभूत बाली शत्रुओं के पक्ष का मर्दन करनेवाला था, पुरवासी लोगों के नेत्ररूपी कुमुदिनियों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा के

समान था और निरन्तर शंका से दूर रहता था ॥7॥ जहाँ रंग-बिरंगे महलों के तोरणद्वार थे, जो विद्वज्जनों से व्याप्त था, एक से एक बढ़कर हाथियों और घोड़ों से युक्त था, और अनेक प्रकार के व्यापारों से युक्त बाजारों से सहित था ऐसे मनोहर किष्किन्ध नगर में वह बाली इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि ऐशान स्वर्ग में रत्नों की माला धारण करनेवाला इन्द्र क्रीड़ा किया करता है ॥8-9॥ अनुक्रम से बाली के सुग्रीव नाम का छोटा भाई उत्पन्न हुआ। सुग्रीव भी अत्यन्त धीर वीर, नीतिज्ञ एवं मनोहर रूप से युक्त था ॥१०॥ बाली और सुग्रीव-दोनों ही भाई किष्किन्ध नगर के कुल-भूषण थे और विनय आदि गुण उन दोनों के आभूषण थे ॥११॥ सुग्रीव के बाद श्रीप्रभा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जो पृथ्वी में रूप से अनुपम थी तथा साक्षात् श्री **अर्थ**ात् लक्ष्मी के समान जान पड़ती थी ॥१२॥ सूर्यरज का छोटा भाई ऋक्षरज किष्कुप्रमोद नामक नगर में रहता था । सो उसने वहाँ हरिकान्ता नामक रानी में क्रम से नल और नील नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१३॥ ये दोनों ही पुत्र आत्मीय जनों को आनन्द प्रदान करते थे, शत्रुओं को भय उत्पन्न करते थे, उत्कृष्ट गुणों से युक्त थे और किष्कुप्रमोद नगर के मानो आभूषण ही थे ॥१४॥ विद्वान्, कुशल एवं समीचीन चेष्टाओं को धारण करने वाले सूर्यरज ने जब देखा कि पुत्र की यौवन लक्ष्मी कुल-मर्यादा का पालन करने में समर्थ हो गयी है, तब उसने पंचेन्द्रियों के विषयों को विषमिश्रित अन्न के समान त्याज्य समझकर धर्म रक्षा का कारणभूत राज्य बाली के लिए दे दिया और सुग्रीव को युवराज बना दिया ॥१५-१६॥ सत्पुरुष सूर्यरज स्वजन और परिजन को समान जान तथा चतुर्गति रूप संसार को महादु:खों से पीड़ित अनुभव कर पिहितमोह नामक मुनिराज का शिष्य हो गया । जिनेन्द्र भगवान ने मुनियों का जैसा चारित्र बतलाया है सूर्यरज वैसे ही चारित्र का आधार था । वह शरीर में भी नि:स्पृह था । उसका हृदय आकाश के समान निर्मल था, वह वायु के समान नि:संग था, क्रोध-रहित था और केवल मुक्ति की ही लालसा रखता हुआ पृथिवी में विहार करता था ॥१७-१९॥

अथानन्तर बाली की ध्रुवा नाम की शीलवती स्त्री थी । वह ध्रुवा अपने गुणों के अभ्युदय से उसकी अन्य सौ स्त्रियों में प्रधानता को प्राप्त थी ॥२०॥ जिसके मुकुट में वानर का चिह्न था, तथा विद्याधर राजा जिसकी आज्ञा बड़े सम्मान के साथ मानते थे ऐसा सुन्दर विभ्रम को धारण करने वाला बाली उस ध्रुवा रानी के साथ महान् ऐश्वर्य का अनुभव करता था ॥२१॥ इसी बीच में मेघप्रभ का पुत्र खरदूषण जो निरन्तर छल का अन्वेषण करता था दशानन की बहन चन्द्रनखा का अपहरण करना चाहता था ॥२२॥ जिसका सर्व शरीर सुन्दर था ऐसी चन्द्रनखा को जिस समय से खरदूषण ने देखा था उसी समय से उसका शरीर काम से पीड़ित हो गया था ॥२३॥ एक दिन यम का मान मर्दन करनेवाला दशानन राजा प्रवर की आवली रानी से समुत्पन्न तनूदरी नामा कन्या का अपहरण करने के लिए गया था ॥२४॥ सो विद्या और माया दोनों में ही कुशल खरदूषण ने लंका को दशानन से रहित जानकर चन्द्रनखा का सुखपूर्वक-अनायास ही अपहरण कर लिया ॥२५॥ यद्यपि शूरवीर भानुकर्ण और विभीषण दोनों ही लंका में विद्यमान थे पर जब शत्रु माया से छिद्र पाकर कन्या का अपहरण कर रहा था तब वे क्या करते? ॥२६॥ उसके पीछे जो सेना जा रही थी भानुकर्ण और विभीषण ने उसे यह सोचकर लौटा लिया कि यह जिन्दा युद्ध में पकड़ा नहीं जा सकता ॥२७॥ लंका वापस आने पर दशानन ने जब यह बात सुनी तो भयंकर क्रोध से वह दुरीक्ष्य हो गया **अर्थ**ात् उसकी ओर देखना कठिन हो गया ॥२८॥ तदनन्तर बाहर से आने के कारण उत्पन्न परिश्रम से उसके शरीर पर पसीने की जो बूँदें उत्पन्न हुई थीं वे सूख नहीं पायी थीं, कि अभिमान से प्रेरित हो वह पुन: जाने के लिए उद्यत हो गया ॥२९॥ उसने अन्य किसी की अपेक्षा न कर सहायता के लिए सिर्फ एक तलवार अपने साथ ली, सो ठीक ही है क्योंकि युद्ध में शक्तिशाली मनुष्यों का अन्तरंग सहायक वही एक तलवार होती है ॥३०॥ ज्यों ही दशानन जाने के लिए उद्यत हुआ त्योंही स्पष्ट रूप से लोक की स्थिति को जानने वाली मन्दोदरी दोनों हस्त कमल जोड़कर इस प्रकार निवेदन करने लगी ॥३१॥ कि हे नाथ! निश्चय से कन्या दूसरे के लिए ही दी जाती है क्योंकि समस्त संसार में उनकी उत्पत्ति ही इस प्रकार की होती है ॥३२॥ खरदूषण के पास चौदह हजार विद्याधर हैं जो अत्यधिक शक्तिशाली तथा युद्ध से कभी पीछे नहीं हटने वाले हैं ॥३३॥ इस के सिवाय उस अहंकारी को कई हजार विद्याएँ सिद्ध हुई हैं यह क्या आपने लोगों से नहीं सुना? ॥३४॥ आप दोनों ही समान शक्ति के धारक हो अत: दोनों के बीच भयंकर युद्ध होने पर एक दूसरे के प्रति विजय का सन्देह ही रहेगा ॥३५॥ यदि किसी तरह वह मारा भी गया तो हरण के दोष से दूषित कन्या दूसरे के लिए नहीं दी जा सकेगी, उसे तो मात्र विधवा ही रहना पड़ेगा ॥३६॥ इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि तुम्हारे अलंकारोदय नगर को जब राजा सूर्यरज ने छोड़ा था तब चन्द्रोदर नामा विद्याधर तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल उस नगर में जम गया था सो उसे निकालकर महाबलवान् खरदूषण तुम्हारी बहन के साथ उसमें रह रहा है इस प्रकार तुम्हारे स्वजन उससे उपकार को भी प्राप्त हुए हैं ॥३७-३८॥ यह कहकर जब मन्दोदरी चुप ही रही तब दशाननने कहा कि हे प्रिये ! यद्यपि

मैं युद्ध से नहीं डरता हूँ तो भी अन्य कारणों को देखता हुआ मैं तुम्हारे वचनों में स्थित हूँ अर्थात् तुम्हारे कहे अनुसार उसका पीछा नहीं करता हूँ ॥३९॥ अथानन्तर कर्मों के नियोग से चन्द्रोदर विद्याधर काल को प्राप्त हुआ सो उसकी दीन-हीन अनुराधा नाम की गर्भवती स्त्री शरण रहित हो तथा विद्या के बल से शून्य हो हरिणी की नांई भयंकर वन में इधर-उधर भटकने लगी ॥४०-४१॥ वह भटकती-भटकती मणिकान्त नामक पर्वत पर पहुँची । वहाँ उसने कोमल पल्लव और फूलों के समूह से आच्छादित समशिला तल पर एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया ॥४२॥ तदनन्तर जिसका चित्त निरन्तर उद्विग्न रहता था, और पुत्र की आशा से ही जिसका जीवन स्थित था ऐसी उस वनवासिनी माता ने क्रम—क्रम से उस पुत्र को बड़ा किया ॥४३॥ चूँकि शत्रु ने उस पुत्र को गर्भ में ही विराधित किया था इसलिए भोगों से रहित उस पुत्र का माता ने विराधित नाम रखा ॥४४॥ जिस प्रकार अपने स्थान-मस्तक से च्युत हुए केश का कोई आदर नहीं करता उसी प्रकार उस विराधित का पृथिवी पर कोई भी आदर नहीं करता था ॥४५॥ वह शत्रु से बदला लेने में समर्थ नहीं था इसलिए मन में ही वैर धारण करता था और कुछ परम्परागत आचार का पालन करता हुआ इच्छित देशों में घूमता रहता था ॥४६॥ वह कुलाचलों के ऊपर, मनोहर वनों में तथा जहाँ देवों का आगमन होता था ऐसे अतिशय-पूर्ण स्थानों में क्रीड़ा किया करता था ॥४७॥ वह ध्वजा, छत्र आदि से सुन्दर तथा हाथियों आदि से व्याप्त देवों के साथ होनेवाले युद्धों में वीर मनुष्यों की चेष्टाएँ देखता हुआ घूमता फिरता था ॥४८॥
अथानन्तर उत्कृष्ट भोगों को प्राप्त करता हुआ देदीप्यमान दशानन लंकानगरी में इन्द्र के समान रहता था ॥४९॥ सो आश्चर्यजनक कार्य करने वाली विद्याओं से सेवित बलवान् बाली उसकी आज्ञा का अतिक्रम करने लगा ॥५०॥ तदनन्तर दशानन ने बाली के पास महाबुद्धिमान् दूत भेजा । सो स्वामी के गर्व को धारण करता हुआ दूत बाली के पास जाकर कहने लगा कि दशानन इस भरत क्षेत्र में अपनी शानी नहीं रखता । वह अतिशय प्रतापी, महाबलवान्, महातेजस्वी, लक्ष्मी-सम्पन्न, नीति में निपुण, महासाधन सम्पन्न, उग्रदण्ड देने वाला महान् अभ्युदय से युक्त, और शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाला है । वह तुम्हें आज्ञा देता है कि ॥५१-५३॥ मैंने यमरूपी शत्रु को हटाकर आपके पिता सूर्यरज को वानरवंश में किष्किन्धपुर के राजपद पर स्थापित किया था ॥५४॥ तुम उस उपकार को भूलकर पिता के विरुद्ध कार्य करते हो । हे सत्पुरुष! तुम्हें ऐसा करना योग्य नहीं है ॥55॥ मैं तेरे साथ पिता के समान अथवा उससे भी अधिक प्यार करता हूँ । तू आज भी आ और सुखपूर्वक रहने के लिए मुझे प्रणाम कर ॥56॥ अथवा अपनी श्रीप्रभा नामक बहन मेरे लिए प्रदान कर । यथार्थ में मेरे साथ सम्बन्ध प्राप्त कर लेने से तेरे लिए समस्त पदार्थ सुखदायक हो जायेंगे ॥५७॥ इतना कहने पर भी बाली दशानन को नमस्कार करने में विमुख रहा । मुख की विकृति से रोष प्रकट करता हुआ दूत फिर कहने लगा कि अरे वानर! इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ है ? तू मेरे निश्चित वचन सुन, तू व्यर्थ ही थोड़ी-सी लक्ष्मी पाकर विडम्बना कर रहा है ॥58-59॥ तू अपने दोनों हाथों को या तो कर देने के लिए तैयार कर या शस्त्र ग्रहण करने के लिए तैयार कर । तू या तो शीघ्र ही चामर ग्रहण कर **अर्थ**ात् दास बनकर दशानन के लिए चामर ढोल या दिशामण्डल को ग्रहण कर अर्थात् दिशाओं के अन्त तक भाग जा ॥६०॥ तू या तो शिर को नम्र कर या धनुष को नम्रीभूत कर । या तो आज्ञा को कानों में पूर्ण कर या असहनीय शब्दों से युक्त तथा अपना जीवन प्रदान करने वाली धनुष की डोरी को कानों में पूर्ण कर अर्थात् कानों तक धनुष की डोरी खींच ॥६१॥ या तो मेरी चरणरज को मस्तक पर धारण कर अथवा सिर की रक्षा करनेवाला टोप मस्तक पर धारण कर । या तो क्षमा माँगने के लिए हाथ जोड़कर अंजलिया बांध या हाथियों का बड़ा भारी समूह एकत्रित कर ॥६२॥ या तो बाण छोड़ या पृथिवी को प्राप्त कर । या तो वेत्र ग्रहण कर या माला ग्रहण कर । या तो मेरे चरणों के नखों में अपना मुख देख या तलवाररूपी दर्पण में मुख देख ॥६३॥ तदनन्तर दूत के कठोर वचनों से जिसका मन उद्धूत हो रहा था ऐसा व्याघ्रविलम्बी नामक प्रमुख योद्धा कहने लगा ॥६४॥ कि रे दूत ! जिसके पराक्रम आदि गुणों का अभ्युदय समस्त पृथिवी में व्याप्त हो रहा है ऐसा बाली राजा क्या दुष्ट राक्षस के कर्णमूल को प्राप्त नहीं हुआ है? अर्थात् उसने बाली का नाम क्या अभी तक नहीं सुना है? ॥६५॥ यदि वह राक्षस ऐसा कहता है तो वह निश्चित ही भूतों से आक्रान्त है । अरे अधम दूत! तू तो स्वस्थ है फिर क्यों इस तरह तारीफ हाँक रहा है? ॥६६॥ इस प्रकार कहकर व्याधविलम्बी क्रोध से मूर्च्छित हो गया । उसकी ओर देखना भी कठिन हो गया । उसका शरीर स्पष्ट रूप से काँपने लगा । इसी दशा में वह दूत को मारने के लिए बाण उठाने लगा तो बाली ने कहा ॥६७॥ कि कथित बात को कहने वाले बेचारे दूत के मारने से क्या लाभ है? यथार्थ में ये लोग अपने स्वामी के वचनों की प्रतिध्वनि ही करते हैं ॥68॥ जो कुछ मन में आया हो वह दशानन का ही करना चाहिए । निश्चय ही दशानन की आयु अल्प रह गयी है इसीलिए तो वह कुवचन कह रहा है ॥६९॥
तदनन्तर अत्यन्त भयभीत दूत ने जाकर सब समाचार दशानन को सुनाये और दु:सह तेज के धारक उस दशानन के क्रोध को वृद्धिंगत

किया ॥७०॥ वह बड़ी शीघ्रता से तैयार हो सेना साथ ले किष्किन्धपुर की ओर चला सो ठीक ही है क्योंकि उसकी रचना अहंकार के परमाणुओं से ही हुई थी ॥७१॥ तदनन्तर आकाश को आच्छादित करनेवाला शत्रुदल का कल-कल शब्द सुनकर युद्ध करने में कुशल बालि ने महल से बाहर निकलने का मन किया ॥७२॥ तब क्रोध से प्रज्वलित बालि को सागर वृद्धि आदि नीतिज्ञ मन्त्रियों ने वचनरूपी जल के द्वारा इस प्रकार शान्त किया कि हे देव! अकारण युद्ध रहने दो, क्षमा करो, युद्ध के प्रेमी अनेकों राजा अनायास ही क्षय को प्राप्त हो चुके हैं ॥७३-७४॥ जिन्हें अर्ककीर्ति की भुजाओं का आलम्बन प्राप्त था तथा देव भी जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसे अष्टचन्द्र विद्याधर जयकुमार के बाणों के समूह से क्षय को प्राप्त हुए थे ॥७५॥ साथ ही जिसे देखना कठिन था, तथा जो उत्तमोत्तम तलवार और गदाओं को धारण करने वाली थी ऐसी बहुत भारी सेना भी नष्ट हुई थी इसलिए संशय की अनुपम तराजू पर आरूढ़ होना उचित नहीं है ॥७६॥ मन्त्रियों के वचन सुनकर बाली ने कहा कि यद्यपि अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं है तथापि है मन्त्रिगणों! यथार्थ बात आप लोगों को कहता हूँ ॥७७॥ मैं सेना सहित दशानन को भ्रकुटिरूपी लता के उत्क्षेपमात्र से बायें हस्ततल की चपेट से ही चूर्ण करने में समर्थ हूँ ॥७८॥ फिर-फिर कठिन मन को क्रोधाग्नि से प्रज्वलित किया जाये तो कहना ही क्या है? फिर भी मुझे उस कर्म की आवश्यकता नहीं जिससे कि क्षण-भंगुर भोग प्राप्त होते हैं ॥७९॥ मोही जीव केला के स्तम्भ के समान नि:सार भोगों को प्राप्त कर महादुख से भरे नरक में पड़ते हैं ॥८०॥ जिन्हें अपना जीवन अत्यन्त प्रिय है ऐसे जीवों के समूह को मारकर सुख नाम को धारण करनेवाला दुख ही प्राप्त होता है, अत: उससे क्या लाभ है? ॥८१॥ ये प्राणी अरहट (रहट) की घटी के समान अत्यन्त दुःखी होते हुए संसाररूपी कूप में निरन्तर घूमते रहते हैं ॥ ८२॥ संसार से निकलने में कारणभूत जिनेन्द्र भगवान के चरण युगल को नमस्कार कर अब मैं अन्य पुरुष के लिए नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ॥८३॥ जब पहले मुझे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ था तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलों के सिवाय अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूँगा ॥८४॥ मैं न तो इस प्रतिज्ञा का भंग करना चाहता हूँ और न प्राणियों की हिंसा ही । मैं तो मोक्ष-प्रदान करने वाली निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण करता हूँ ॥८५॥ जो हाथ उत्तमोत्तम स्त्रियों के स्तन तट का स्पर्श करने वाले थे तथा मनोहर रत्नमयी बाजूबन्दों से सुशोभित जो भुजाएँ उत्तमोत्तम स्त्रियों का आलिंगन करने वाली थीं उन्हें जो मनुष्य शत्रुओं के समक्ष अंजलि बाँधने में प्रयुक्त करता है उस अधम का ऐश्वर्य कैसा? और जीवन कैसा? ॥८६-८७॥ इस प्रकार कहकर उसने छोटे भाई सुग्रीव को बुलाकर कहा कि हे बालक! तू राज्य पर प्रतिष्ठित होकर दशानन को नमस्कार कर अथवा न कर और इसके लिए अपनी बहन दे अथवा न दे, मुझे इससे प्रयोजन नहीं । मैं तो आज ही घर से बाहर निकलता हूँ । जो तुझे हितकर मालूम हो वह कर ॥८८-८९॥ इतना कहकर बाली घर से निकल गया और गुणों से श्रेष्ठ गगन चन्द्र गुरु के समीप दिगम्बर हो गया ॥९०॥ अब तो उसने अपना मन परमार्थ में ही लगा रखा था । उसे अनेक ऋद्धि आदि अभ्युदय प्राप्त हुए थे । वह एक शुद्ध भाव में ही सदा रत रहता था, परीषहों के सहन करने में शूरवीर था, सम्यग्दर्शन से निर्मल था **अर्थ**ात् शुद्ध सम्यग्दृष्टि था, उसकी आत्मा सदा सम्यग्ज्ञान में लीन रहती थी, वह सम्यक् चारित्र में तत्पर रहता था और मोह से रहित हो अनुप्रेक्षाओं के द्वारा आत्मा का चिन्तवन करता रहता था ॥९१-९२॥ सूक्ष्म जीवों से रहित तथा निर्मल आचार के धारी महामुनियों से सेवित धर्माराधन के योग्य भूमियों में ही वह विहार करता था । वह जीवों पर पिता के समान दया करता था । बाह्य तप से अन्तरंग तप को निरन्तर बढ़ाता रहता था ॥९३-९४॥ बड़ी-बड़ी ऋद्धियों की आवासता को प्राप्त था अर्थात् उसमें बडी-बड़ी ऋद्धियां निवास करती थीं, प्रशान्त चित्त था, उत्कष्ट तपरूपी लक्ष्मी से आलिंगित था, अत्यन्त सुन्दर था ॥९५॥ ऊँचे-ऊँचे गुणस्थानरूपी सीढ़ियों के चढ़ने में उद्यत रहता था, उसने अपने हृदय में समस्त ग्रन्थों की ग्रन्थियाँ अर्थात् कठिन स्थल खोल रखे थे, समस्त प्रकार के परिग्रह से रहित था ॥९६॥ वह शास्त्र के द्वारा समस्त कृत्य और अकृत्य को समझता था । महा गुणवान् था, महासंवर से युक्त था, और कर्मों की सन्तति को नष्ट करनेवाला था ॥९७॥ वह प्राणों की रक्षा के लिए ही आगमोक्त विधि से आहार ग्रहण करता था, धर्म के लिए ही प्राण धारण करता था और मोक्ष के लिए ही धर्म का अर्जन करता था ॥९८॥ वह भव्य जीवों को सदा आनन्द उत्पन्न करता था, उत्कृष्ट पराक्रम का धारी था और अपने चारित्र से तपस्वीजनों का उपमान हो रहा था ॥९९॥

इधर सुग्रीव दशानन के लिए श्रीप्रभा बहन देकर उसकी अनुमति से सुख पूर्वक वंश-परम्परागत राज्य का पालन करने लगा ॥१००॥ पृथ्वी पर विद्याधरों की जो सुन्दर कुमारियां थीं दशाननने अपने पराक्रम से उन सबके साथ विवाह किया ॥१०१॥ अथानन्तर एक बार दशानन नित्यालोक नगर में राजानित्यालोक की श्रीदेवी से समुत्पन्नरलावली नाम की पुत्री को विवाह कर बड़े हर्ष के साथ आकाशमार्ग से अपनी नगरी की ओर आ रहा था । उस समय उसके मुकुट में जो रत्न लगे थे उनकी किरणों से आकाश सुशोभित हो रहा था ॥

१०२-१०३॥ जिस प्रकार बड़ा भारी वायुमण्डल मेरु के तट को पाकर सहसा रुक जाता है उसी प्रकार मन के समान चंचल पुष्पक विमान सहसा रुक गया ॥१०४॥ जब पुष्पक विमान की गति रुक गयी और घण्टा आदि से उत्पन्न होनेवाला शब्द भंग हो गया तब ऐसा जान पड़ता था मानो तेजहीन होने से लज्जा के कारण उसने मौन ही ले रखा था ॥१०५॥ विमान को रुका देख दशानन ने क्रोध से दमकते हुए कहा कि अरे यहाँ कौन है? कौन है? ॥१०६॥ तब सर्व वृत्तान्त को जानने वाले मारीच ने कहा कि हे देव! सुनो, यहाँ कैलास पर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमा योग से विराजमान हैं ॥१०७॥ ये सूर्य के सम्मुख विद्यमान हैं और अपनी किरणों से सूर्य की किरणों को इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहे हैं । समान शिलातल पर ये रत्नों के स्तम्भ के समान अवस्थित हैं ॥१०८॥ घोर तपश्चरण को धारण करने वाले ये कोई महान् वीर पुरुष हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं । इन्हीं से यह वृत्तान्त हुआ है ॥१०९॥ इन मुनिराज के प्रभाव से जब तक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तब तक शीघ्र ही इस स्थान से विमान को लौटा लेता हूँ ॥११०॥ अथानन्तर मारीच के वचन सुनकर अपने पराक्रम के गर्व से गर्वित दशानन ने कैलास पर्वत की ओर देखा ॥१११॥ वह कैलास पर्वत व्याकरण की उपमा प्राप्त कर रहा था क्योंकि जिस प्रकार व्याकरण भू आदि अनेक धातुओं से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी सोना-चाँदी अनेक धातुओं से युक्त था । जिस प्रकार व्याकरण हजारों गणों-शब्द-समूहों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी हजारों गणों **अर्थ**ात् साधु-समूहों से युक्त था । जिस प्रकार व्याकरण सुवर्ण अर्थात् उत्तमोत्तम वर्णों की घटना से मनोहर है उसी प्रकार वह पर्वत भी सुवर्ण अर्थात् स्वर्ण की घटना से मनोहर था । जिस प्रकार व्याकरण पदों अर्थात् सुबन्त तिङन्तरूप शब्द समुदाय से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक पदों अर्थात् स्थानों या प्रत्यन्त पर्वतों अथवा चरणचिह्नों से युक्त था ॥११२॥ जिस प्रकार व्याकरण प्रकृति अर्थात् मूल शब्दों के अनुरूप विकारों अर्थात् प्रत्ययादिजन्य विकारों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक रचना के अनुरूप विकारों से युक्त था । जिस प्रकार व्याकरण विल अर्थात् मूल सूत्रों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी विल अर्थात् ऊपर पृथिवी अथवा गर्त आदि से युक्त था । और जिस प्रकार व्याकरण उदात्त-अनुदात्तस्वरित आदि अनेक प्रकार के स्वरों से पूर्ण है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक प्रकार के स्वरों अर्थात् प्राणियों के शब्दों से पूर्ण था ॥११३॥ वह अपने तीक्ष्ण शिखरों से ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश के खण्ड ही कर रहा था । और ऊपर की ओर उछलते हुए छींटों से युक्त निर्झरों से ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११४॥ मकरन्दरूपी मदिरा से मत्त भ्रमरों के समूह से वह पर्वत कुछ बढ़ता हुआ-सा जान पड़ता था । शालाओं के समूह से उसने आकाश को व्याप्त कर रखा था । साथ ही नाना प्रकार के वृक्षों से व्याप्त था ॥११५॥ वह सर्व ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले पुष्प आदि से व्याप्त था तथा उसकी उपत्यकाओं में हर्ष से भरे हजारों प्राणी चलते-फिरते दिख रहे थे ॥११६॥ वह पर्वत औषधियों के भय से दूर स्थित सर्पों के समूह से व्याप्त था तथा मनोहर सुगन्धि से ऐसा जान पड़ता था मानो सदा यौवन को ही धारण कर रहा हो ॥११७॥ बड़ी-बड़ी शिलाएँ ही उसका लम्बा-चौड़ा वक्षस्थल था, बड़े-बड़े वृक्ष ही उसकी महाभुजाएँ थीं: और गुफाएँ ही उसका गम्भीर मुख थीं, इस प्रकार वह पर्वत अपूर्व पुरुष की आकृति धारण कर रहा था ॥१ १८॥ वह शरद्ऋतु के बादलों के समान सफेद-सफेद किनारों के समूह से व्याप्त था तथा किरणों के समूह से ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त संसार को दूध से ही धो रहा हो ॥११९॥ कहीं उसकी गुफाओं में सिंह निशंक होकर सो रहे थे और कहीं सोये हुए अजगरों की श्वासोच्छवास की वायु से वृक्ष हिल रहे थे ॥१२०॥ कहीं उसके किनारों के वनों में हरिणों का समूह क्रीड़ा कर रहा था और कहीं उसकी अधित्यका के वनों में मदोन्मत्त हाथियों के समूह स्थित थे ॥१२१॥ कहीं फूलों के समूह से व्याप्त होने के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो उसके रोमांच ही उठ रहे हों और कहीं उद्धत रीक्षों की लम्बी-लम्बी सटाओं से उसका आकार भयंकर हो रहा था ॥१२२॥ कहीं बन्दरों के लाल-लाल मुँहों से ऐसा जान पड़ता था मानो कमलों के वन से ही युक्त हो और कहीं गैंडा-हाथियों के द्वारा खण्डित साल आदि वृक्षों से जो पानी झर रहे था उससे सुगन्ध फैल रही थी ॥१२३॥ कहीं बिजलीरूपी लताओं से आलिंगित मेघों की सन्तति उत्पन्न हो रही थी और कहीं सूर्य के समान देदीप्यमान शिखरों से आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥१२४॥ जिनके लम्बे-चौड़े सघन वृक्ष सुगन्धित फूलों से ऊँचे उठे हुए थे ऐसे वनों से वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो पाण्डुकवन को जीतना ही चाहता हो ॥१२५॥ दशानन ने उस पर्वत पर उतरकर उन महामुनि के दर्शन किये । वे महामुनि ध्यानरूपी समुद्र में निमग्न थे और तेज के द्वारा चारों ओर मण्डल बाँध रहे थे ॥ १२६॥ दिग्गजों के शुण्डादण्ड के समान उनकी दोनों भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पों से आवेष्टित चन्दन का बड़ा वृक्ष ही हो ॥१२७॥ वे आतापन योग में शिला पीठ के ऊपर निश्चल बैठे थे और प्राणियों के प्रति ऐसा संशय उत्पन्न कर रहे थे कि ये जीवित हैं भी या नहीं ॥१२८॥ तदनन्तर यह बालि हैं ऐसा जानकर दशानन पिछले वैर का स्मरण करता हुआ

क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठा ॥१२९॥ जो ओंठ चबा रहा था, जिसकी आवाज अत्यन्त कर्कश थी, और जो अत्यन्त देदीप्यमान आकार का धारक था ऐसा दशानन भ्रकुटी बाँधकर बड़ी निर्भयता के साथ मुनिराज से कहने लगा ॥१३०॥ कि अहो! तुमने यह बड़ा अच्छा तप करना प्रारम्भ किया कि अब भी अभिमान से मेरा विमान रोका जा रहा है ॥१३१॥ धर्म कहाँ और क्रोध कहाँ? अरे दुर्बुद्धि ! तू व्यर्थ ही श्रम कर रहा है और अमृत तथा विष को एक करना चाहता है ॥१३२॥ इसलिए मैं तेरे इस उद्धत अहंकार को आज ही नष्ट किये देता हूँ । तू जिस कैलास पर्वत पर बैठा है उसे उखाड़कर तेरे ही साथ अभी समुद्र में फेंकता हूँ ॥१३३॥ तदनन्तर उसने समस्त विद्याओं का ध्यान किया जिससे आकर उन्होंने उसे घेर लिया । अब दशाननने इन्द्र के समान महा भयंकर रूप बनाया और महाबाहु-रूपी वन से सब ओर सघन अन्धकार फैलाता हुआ वह पृथिवी को भेदकर पाताल में प्रविष्ट हुआ । पाप करने में वह उद्यत था ही ॥१३४-१३५॥ तदनन्तर क्रोध के कारण जिसके नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे थे, और जिसका मुख क्रोध से मुखरित था ऐसे प्रबल पराक्रमी दशानन ने अपनी भुजाओं से कैलास को उठाना प्रारम्भ किया ॥१३६॥ आखिर, पृथिवी को अत्यन्त चंचल करता हुआ कैलास पर्वत स्वस्थान से चलित हो गया । उस समय वह कैलास विषकणों को छोड़ने वाले लम्बे-लम्बे लटकते हुए साँपों को धारण कर रहा था । सिंहों की चपेट में जो मत्त हाथी आ फंसे थे वे छूटकर अलग हो रहे थे । घबड़ाये हुए हरिणों के समूह अपने कानों को ऊपर की ओर निश्चल खड़ा कर इधर-उधर भटक रहे थे । फटी हुई पृथिवी ने झरनों का समस्त जल पी लिया था इसलिए उनकी धाराएँ टूट गयी थीं । बड़े-बड़े वृक्षों का जो समूह टूट-टूटकर चारों ओर गिर रहा था उससे बड़ा भारी शब्द उत्पन्न हो रहा था । शिलाओं के समूह चटक कर चट-चट शब्द कर रहे थे इससे वहाँ भयंकर शब्द हो रहा था । और बड़े-बड़े पत्थर टूट-टूटकर नीचे गिर रहे थे तथा उससे उत्पन्न होनेवाले शब्दों से समस्त लोक व्याप्त हो रहा था ॥ १३७-१४०॥ विदीर्ण पृथिवी ने समुद्र का सब जल पी लिया था इसलिए वह सूख गया था । समुद्र की ओर जाने वाली नदियां स्वच्छता से रहित होकर उलटी बहने लगी थीं ॥१४१॥ प्रमथ लोग भयभीत होकर दिशाओं की ओर देखने लगे तथा बहुत भारी आश्चर्य में निमग्न हो यह क्या है? क्या है? हा-हाँ, हुँ-ही आदि शब्द करने लगे ॥१४२॥ अप्सराओं ने भयभीत होकर उत्तमोत्तम लताओं के मण्डप छोड़ दिये और पक्षियों के समूह कलकल शब्द करते हुए आकाश में जा उड़े ॥१४३॥ पाताल से लगातार निकलने वाले दशानन के दस मुखों की अट्टहास से दिशाओं के साथ-साथ आकाश फट पड़ा ॥१४४॥

तदनन्तर जब समस्त संसार संवर्तक नामक वायु से ही मानो आकुलित हो गया था तब भगवान् बाली मुनिराज ने अवधिज्ञान से दशानन नामक राक्षस को जान लिया ॥१४५॥ यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ भी पीड़ा नहीं हुई थी और पहले की तरह उनका समस्त शरीर निश्चल रूप से अवस्थित था तथापि वे धीरवीर और क्रोध से रहित हो अपने चित्त में इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१४६॥ चक्रवर्ती भरत ने ये नाना प्रकार के सर्व रत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर बनवाये हैं । भक्ति से भरे सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं सो इस पर्वत के विचलित हो जाने पर कहीं ये जिन-मन्दिर नष्ट न हो जावें ॥१४७॥ ऐसा विचारकर शुभध्यान के निकट ही जिनकी चेतना थी ऐसे मुनिराज बाली ने पर्वत के मस्तक को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया ॥१४८-१४९॥ तदनन्तर जिसकी भुजाओं का बन बहुत भारी बोझ से आक्रान्त होने के कारण अत्यधिक टूट रहा था, जो दुख से आकुल था, इसकी लाल-लाल मनोहर आँखें चंचल हो रही थीं ऐसा दशानन अत्यन्त व्याकुल हो गया । उसके सिर का मुकुट टूटकर नीचे गिर गया और उस नंगे सिर पर पर्वत का भार आ पड़ा । नीचे धँसती हुई पृथिवी पर उसने घुटने टेक दिये । स्थूल होने के कारण उसकी जंघाएँ मांसपेशियों में निमग्न हो गयीं ॥१५०-१५१॥ उसके शरीर से शीघ्र ही पसीना की धारा बह निकली और उससे उसने रसातल को धो दिया । उसका सारा शरीर कछुए के समान संकुचित हो गया ॥१५२॥ उस समय चूंकि उसने सर्व प्रयत्न से चिल्लाकर समस्त संसार को शब्दायमान कर दिया था इसलिए वह पीछे चलकर सर्वत्र प्रचलित रावण इस नाम को प्राप्त हुआ ॥१५३॥ रावण की स्त्रियों का समूह अपने स्वामी के उस अश्रुतपूर्व दीन-हीन शब्द को सुनकर व्याकुल हो विलाप करने लगा॥१५४॥ मन्त्री लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये । वे युद्ध के लिए तैयार हो व्यर्थ ही इधर-उधर फिरने लगे । उनके वचन बार-बार बीच में ही स्खलित हो जाते थे और हथियार उनके हाथ से छूट जाते थे ॥१५५॥ मुनिराज के वीर्य के प्रभाव से देवो के दुन्दुभि बजने लगे और भ्रमरसहित फूलों की वृष्टि आकाश को आच्छादित कर पड़ने लगी ॥१५६॥ क्रीड़ा करना जिनका स्वभाव था ऐसे देव-कुमार आकाश में नृत्य करने लगे और देवियों की संगीत ध्वनि वंशी की मधुर ध्वनि के साथ सर्वत्र उठने लगी ॥१५७॥ तदनन्तर मन्दोदरी ने दीन होकर मुनिराज को प्रणाम कर याचना की कि है अद्भुत पराक्रम के धारी! मेरे लिए पति-भिक्षा दीजिए ॥१५८॥ तब महामुनि ने दयावश पैर का अँगूठा ढीला कर लिया और रावण भी पर्वत को जहाँ का तहाँ छोड़ क्लेशरूपी अटके से बाहर निकला ॥१५९॥ तदनन्तर जिसने

तप का बल जान लिया था ऐसे रावण ने जाकर मुनिराज को प्रणाम कर बार-बार क्षमा मांगी और इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१६०॥ कि हे पूज्य! आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के चरणों को छोड़कर अन्य के लिए नमस्कार नहीं करूँगा यह उसी की सामर्थ्य का फल है ॥१६१॥ हे भगवद् ! आपके तप का महाफल निश्चय से सम्पन्न है इसीलिए तो आप तीन लोक को अन्यथा करने में समर्थ हैं ॥१६२॥ तप से समृद्ध मुनियों की थोड़े ही प्रयत्न से उत्पन्न जैसी सामर्थ्य देखी जाती है हे नाथ! वैसी सामर्थ्य इन्द्रों की भी नहीं देखी जाती है ॥१६३॥ आपके गुण, आपका रूप, आपकी कान्ति, आपका बल, आपकी दीप्ति, आपका धैर्य, आपका शील और आपका तप सभी आश्चर्यकारी हैं ॥१६४॥ ऐसा जान पड़ता है मानो कर्मों ने तीनों लोकों से समस्त सुन्दर पदार्थ ला-लाकर पुण्य के आधारभूत आपके शरीर की रचना की है ॥१६५॥ हे सत्पुरुष! इस लोकोत्तर सामर्थ्य से युक्त होकर भी जो आपने पृथिवी का त्याग किया है यह अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य है ॥१६६॥ ऐसी सामर्थ्य से युक्त आपके विषय में जो मैंने अनुचित कार्य करना चाहा था वह मुझ असमर्थ के लिए केवल पाप-बन्ध का ही कारण हुआ ॥१६७॥ मुझ पापी के इस शरीर को, हृदय को और वचन को धिक्कार है कि जो अयोग्य कार्य करने के सम्मुख हुए ॥१६८॥ हे द्वेषरहित ! आप-जैसे नर-रत्नों और मुझ-जैसे दुष्ट पुरुषों के बीच उतना ही अन्तर है जितना कि मेरु और सरसों के बीच होता है ॥१६९॥ हे मुनिराज ! मुझ मरते हुए के लिए आपने प्राण प्रदान किये हैं सो अपकार करने वाले पर जिसकी ऐसी बुद्धि है उसके विषय में क्या कहा जावे? ॥१७०॥ मैं सुनता हूँ, जानता हूँ और देखता हूँ कि संसार केवल दुःख का अनुभव कराने वाला है फिर भी मैं इतना पापी हूँ कि विषयों से वैराग्य को प्राप्त नहीं होता ॥१७१॥ जो तरुण अवस्था में ही विषयों को छोड़कर मोक्ष-मार्ग में स्थित हुए हैं वे पुण्यात्मा हैं, महा शक्तिशाली हैं और मुक्तिलक्ष्मी के समीप में विचरने वाले हैं ॥१७२॥ इस प्रकार स्तुति कर उसने मुनिराज को प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, अपने आपकी बहुत निन्दा की और दु:खवश मुँह से सू-सू शब्द कर रुदन किया ॥१७३॥ मुनिराज के समीप जो जिन-मन्दिर था लज्जा से युक्त और विषयों से विरक्त रावण उसी के अन्दर चला गया ॥१७४॥ वहाँ उसने चन्द्रहास नामक खड्ग को अनादर से पृथिवी पर फेंक दिया और अपनी स्त्रियों से युक्त होकर जिनेन्द्रदेव की पूजा की ॥१७५॥ उसके भाव-भक्ति में इतने लीन हो गये थे कि उसने अपनी भुजा की नाड़ी रूपी तन्त्री को खींचकर वीणा बजायी और सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा जिनराज का गुणगान किया ॥१७६॥ वह गा रहा था कि नाथ! आप देवों के देव हो, लोक और अलोक को देखने वाले हो, आपने अपने तेज से समस्त लोक को अतिक्रान्त कर दिया है, आप कृतकृत्य हैं, महात्मा हैं । तीनों लोक आपकी पूजा करते हैं, आपने मोह रूपी महा शत्रु को नष्ट कर दिया है, आप वचनागोचर गुणों के समूह को धारण करने वाले हैं। आप महान् ऐश्वर्य से सहित हैं, मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले हैं, सुख की परम सीमा से समृद्ध हैं, आपने समस्त कुत्सित वस्तुओं को दूर कर दिया है । आप प्राणियों के लिए मोक्ष तथा स्वर्ग के हेतु हैं, महा कल्याणों के मूल कारण हैं, समस्त कार्यों के विधाता हैं । आपने ध्यानाग्नि के द्वारा समस्त पापों को जला दिया है, आप जन्म का विध्वंस करने वाले हैं, गुरु हैं, आपका कोई गुरु नहीं है, सब आपको प्रणाम करते हैं और आप स्वयं किसी को प्रणाम नहीं करते । आप आदि तथा अन्त से रहित हैं, आप निरन्तर आदि तथा अन्तिम योगी हैं, आपके परमार्थ को कोई नहीं जानता पर आप समस्त परमार्थ को जानते हैं । आत्मा रागादिक विकारों से शून्य है ऐसा उपदेश आपने सबके लिए दिया है, आत्मा है, परलोक है इत्यादि आस्तिक्यवाद का उपदेश भी आपने सबके लिए दिया है, पर्यायार्थिक नय से संसार के समस्त पदार्थ क्षणिक हैं इस पक्ष का निरूपण आपने जहाँ किया है वहाँ द्रव्यार्थिक नय से समस्त पदार्थों को नित्य भी आपने दिखलाया है । हमारी आत्मा समस्त पर-पदार्थों से पृथक् अखण्ड एक द्रव्य है ऐसा कथन आपने किया है, आप सबके लिए अनेकान्त धर्म का प्रतिपादन करने वाले हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वालो में श्रेष्ठ हैं, सर्व-पदार्थों को जानने वाले होने से सर्वरूप हैं, अखण्ड चैतन्य पुंज के धारक होने से एकरूप हैं और मोक्ष प्रदान करने वाले हैं अत: आपको नमस्कार हो ॥१७७-१८४॥ ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयोनाथ, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, सौख्यों के मूल कारण शान्तिनाथ, कुन्थु जिनेन्द्र, अरनाथ, मल्लि महाराज और मुनिसुव्रत भगवान् इन वर्तमान तीर्थंकरों को मन-वचन-काय से नमस्कार हो । इनके सिवाय जो अन्य भूत और भविष्यत् काल सम्बन्धी तीर्थकर हैं उन्हें नमस्कार हो । साधुओं के लिए सदा नमस्कार हो । सम्यक्त्व-सहित ज्ञान और एकान्तवाद को नष्ट करने वाले दर्शन के लिए निरन्तर नमस्कार हो, तथा सिद्ध-परमेश्वर के लिए सदा नमस्कार हो ॥१८५-१९१॥ लंका का स्वामी रावण जब इस प्रकार के पवित्र अक्षर गा रहा था तब नागराज धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ ॥१९२॥ तदनन्तर उत्तम हृदय को धारण करनेवाला नागराज शीघ्र ही पाताल से निकलकर बाहर आया । उस समय अवधिज्ञानरूपी प्रकाश से उसकी आत्मा प्रकाशमान थी, सन्तोष से उसके नेत्र विकसित हो

रहे थे, ऊपर उठे हुए फणों में जो मणि लगे हुए थे उनकी कान्ति से वह अन्धकार के समूह दूर हटा रहा था और पूर्ण तथा निर्मल चन्द्रमा के समान प्रसन्न मुख से शोभित था ॥१९३-१९४॥ उसने आकर जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार किया और तदनन्तर ध्यान मात्र से ही जिसमें समस्त द्रव्यरूपी सम्पदा प्राप्त हो गयी थी ऐसी विधिपूर्वक पूजा की ॥१९५॥ पूजा के बाद उसने रावण से कहा कि हे सत्पुरुष! तुमने जिनेन्द्रदेव की स्तुति से सम्बन्ध रखने वाला यह बहुत अच्छा गीत गाया है । तुम्हारा यह गीत रोमांच उत्पन्न होने का कारण है ॥ १९६॥ देखो, सन्तोष के कारण मेरे शरीर में सघन एवं कठोर रोमांच निकल आये हैं । मैं पाताल में रहता था फिर भी तुझे अब भी शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है ॥१९७॥ हे राक्षसेश्वर! तू धन्य है जो जिनेन्द्र भगवान की इस प्रकार स्तुति करता है । तेरी भावना ने मुझे बलपूर्वक खींचकर यहाँ बुलाया है ॥१९८॥ जिनेन्द्रदेव के प्रति जो तेरी भक्ति है उससे में बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ । तू वर माँग, मैं तुझे शीघ्र ही कुपुरुषों की दुर्लभ इच्छित वस्तु देता हूँ ॥१९९॥ तदनन्तर कैलास को कम्पित करने वाले रावण ने कहा कि मुझे मालूम है-आप नागराज धरणेन्द्र हैं। सो मैं आप से ही पूछता हूँ भला आप ही बतलाइए ॥२००॥ कि जिन-वन्दना के समान और कौन-सी शुभ-वस्तु है जिसे देने के लिए उद्यत हुए आप से मैं मांगूँ ॥२०१॥ तब नागराज ने कहा कि हे रावण! सुन, जिनेन्द्र-वन्दना के समान और दूसरी वस्तु कल्याणकारी नहीं है ॥२०२॥ जो जिन-भक्ति अच्छी तरह उपासना करने पर निर्वाण सुख प्रदान करती है उसके तुल्य दूसरी वस्तु न तो हुई है और न होगी ॥ २०३॥ यह सुन रावण ने कहा कि जब जिनेन्द्र वन्दना से बढ़कर और कुछ नहीं है और वह मुझे प्राप्त है तब हे महाबुद्धिमान् ! तुम्हीं कहो इससे अधिक और किस वस्तु की याचना तुम से करूँ ॥२०४॥ नागराज ने फिर कहा कि तुम्हारा यह कहना सच है । वास्तव में जो वस्तु जिन-भक्ति से असाध्य हो वह है ही नहीं ॥२०५॥ तुम्हारे समान, हमारे समान और इन्द्र आदि के समान जो भी सुख के आधार हैं वे सब जिन-भक्ति से ही हुए हैं ॥२०६॥ यह संसार का सुख तो अत्यन्त अल्प तथा बाधा से सहित है अत: इसे रहने दो, जिन-भक्ति से तो मोक्ष का भी उत्तम सुख प्राप्त हो जाता है ॥२०७॥ यद्यपि तू त्यागी है, महाविनय से युक्त है, वीर्यवान् है, उत्तम ऐश्वर्य से सहित है और गुणों से विभूषित है तथापि तेरे लिए मेरा जो अमोघ दर्शन हुआ वह व्यर्थ न हो इसलिए मैं तुझ से कुछ ग्रहण करने की याचना करता हूँ ॥ २०८-२०९॥ हे लंकेश! जिससे मनचाहे रूप बनाये जा सकते हैं ऐसी अमोघविजया शक्ति नाम की विद्या मैं तुझे देता हूँ सो ग्रहण कर, मेरा स्नेह खण्डित मत कर ॥२१०॥ हे भले मानुष। एक ही दशा में किसका काल बीतता है? विपत्ति के बाद सम्पत्ति और सम्पत्ति के बाद विपत्ति सभी को प्राप्त होती है ॥२११॥ इसलिए यदि कदाचित् किसी कारणवश विपत्ति तेरे समीप आयेगी तो यह विद्या शत्रु को बाधा पहुँचाती हुई तेरी रक्षक होगी ॥२१२॥ मनुष्य तो दूर रहें अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त इस शक्ति से, शक्ति के धारक देव भी भयभीत रहते है ॥२१३॥ आखिर, रावण नागराज के इस स्नेह को भंग नहीं कर सका और उसने बड़ी कठिनाई से ग्रहण करने वाले की लघुता प्राप्त की ॥२१४॥ तदनन्तर हाथ जोड़कर और पूजा कर रावण से वार्तालाप करता हुआ नागराज बड़े हर्ष से अपने स्थान पर चला गया ॥ २१५॥ रावण भी एक माह तक कैलास पर्वत पर रहकर तथा जिनेन्द्रदेव को नमस्कार कर इच्छित स्थल को चला ॥२१६॥ मुनिराज बाली ने मन में क्षोभ उत्पन्न होने से अपने आपको पाप-कर्म का बन्ध करनेवाला समझ गुरु के पास जाकर प्रायश्चित्त ग्रहण किया ॥२१७॥ जिस प्रकार विष्णुकुमार महामुनि प्रायश्चित्त कर सुखी हुए थे उसी प्रकार बाली मुनिराज भी प्रायश्चित्त द्वारा हृदय की शल्य निकल जाने से सुखी हुए ॥२१८॥ चारित्र, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, समिति और परीषह सहन करने से मुनिराज महासंवर को प्राप्त हुए । नवीन कर्मों का अर्जन उन्होंने बन्द कर दिया और पहले के संचित कर्मों का तप के द्वारा नाश करना शुरू किया । इस तरह संवर और निर्जरा के द्वारा वे केवलज्ञान प्राप्त हुए ॥२१९-२२०॥ अन्त में आठ कर्मों को नष्ट कर वे तीन-लोक के उस शिखर पर जा पहुँचे जहां अनन्त सुख प्राप्त होता है ॥२२१॥ जो इन्द्रियों को जीतने में समर्थ है मैं उससे हारा हूँ यह जानकर अब रावण साधुओं के समक्ष नम्र रहने लगा ॥२२२॥ जो सम्यग्दर्शन से सम्पन्न था, और जिनदेव में जिसकी दृढ़ भक्ति थी ऐसा रावण परम भोगों से तृप्त न होता हुआ इच्छानुसार रहने लगा ॥ २२३॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक! जो उत्तम मनुष्य शुभ-तत्पर होता हुआ बाली मुनि के इस चरित्र को सुनता है वह कभी पर से पराभव को प्राप्त नहीं और सूर्य के समान देदीप्यमान पद को प्राप्त होता है ॥२२४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालि निर्वाण का कथन करनेवाला नवम पर्व पूर्ण हुआ ॥9॥

## राजा सहस्ररश्मि और अनरण्य की दीक्षा

दसम पर्व

कथा :

अथानन्तर-गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक, इस तरह तुमने बाली का वृत्तान्त जाना । अब इसके आगे तेरे लिए सुग्रीव और सुतारा का श्रेष्ठ चरित कहता हूँ सो सुन ॥१॥ ज्योतिपुर नामा नगर में राजा अग्निशिख की रानी ह्री देवी के उदर से उत्पन्न एक सुतारा नाम की कन्या थी । शोभा से समस्त पृथिवी में प्रसिद्ध थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलरूपी आवास को छोड़कर लक्ष्मी ही आ गयी हो ॥२-३॥ एक दिन राजा चक्रांक और अनुमति रानी से उत्पन्न साहसगति नामक दुष्ट विद्याधर अपनी इच्छा से इधर-उधर भ्रमण कर रहा था सो उसने सुतारा देखी ॥४॥ उसे देखकर वह कामरूपी शल्य से विद्ध होकर अत्यन्त दुःखी हुआ । वह सुतारा को निरन्तर अपने मन में धारण करता था और उन्मत्त-जैसी उसकी चेष्टा थी ॥५॥ इधर वह एक के बाद एक दूत भेजकर उसकी याचना करता था उधर सुग्रीव भी उस मनोहर कन्या की याचना करता था ॥६॥ अपनी कन्या दो में से किसे दूँ इस प्रकार द्वैधीभाव को प्राप्त हुआ राजा अग्निशिख निश्चय नहीं कर सका इसलिए उसकी आत्मा निरन्तर व्याकुल रहती थी । आखिर महाज्ञानी मुनिराज से पूछा ॥७॥ तब महाज्ञानी मुनिचन्द्र ने कहा कि साहसगति चिरकाल तक जीवित नहीं रहेगा-अल्पायु है और सुग्रीव इसके विपरीत परम अभ्युदय का धारक तथा चिरायु है ॥८॥ राजा अग्निशिख, साहसगति के पिता चक्रांक का पक्ष प्रबल होने से मुनिचन्द्र के वचनों का निश्चय नहीं कर सका तब मुनिचन्द्र ने दो दीपक, दो वृष और गजराजों को निमित्त बनाकर उसे अपनी बात का दृढ़ निश्चय करा दिया ॥९॥ तदनन्तर मुनिराज के अमृत तुल्य वचनों का निश्चय कर पिता अग्निशिख ने अपनी पुत्री सुतारा लाकर मंगलाचार पूर्वक सुग्रीव के लिए दे दी ॥१०॥ जिसका पुण्य का संचय प्रबल था ऐसा सुग्रीव उस कन्या को विवाह कर बड़ी सम्पदा के साथ श्रेष्ठ कामोपभोग को प्राप्त हुआ ॥११॥ तदनन्तर सुग्रीव और सुतारा के क्रम से दो पुत्र उत्पन्न हुए । दोनों ही अत्यन्त सुन्दर थे । उनमें से बड़े पुत्र का नाम अंग था और छोटा पुत्र अंगद के नाम से प्रसिद्ध था ॥१२॥ राजा चक्रांक का पुत्र साहसगति इतना निर्लज्ज था कि वह अब भी सुतारा की आशा नहीं छोड़ रहा था सो आचार्य कहते हैं कि इस काम से दूषित आशा को धिक्कार हो ॥१३॥ जो कामाग्नि से जल रहा था ऐसा, सारहीन मन का धारक साहसगति निरन्तर यही विचार करता रहता था कि मैं सुख देने वाली उस कन्या को किस उपाय से प्राप्त कर सकूँगा ॥१४॥ जिसने अपनी शोभा से चन्द्रमा को जीत लिया है और जिसका ओंठ स्फुरायमान लाल कान्ति से आच्छादित है ऐसे उसके मुख का कब चुम्बन करूँगा? ॥१५॥ नन्दनवन के मध्य में उसके साथ कब क्रीड़ा करूँगा, और उसके स्थूल स्तनों के स्पर्शजन्य सुखोत्सव को कब प्राप्त होऊँगा ॥१६॥ इस प्रकार उसके समागम—के कारणों का ध्यान करते हुए उसने रूप बदलने वाली शेमुषी नामक विद्या का स्मरण किया ॥१७॥ जिस प्रकार प्रिय मित्र अपने दुःखी मित्र की निरन्तर आराधना करता है उसी प्रकार साहसगति हिमवान् पर्वत पर जाकर उसकी दुर्गम गुहा का आश्रय ले उस विद्या की आराधना करने लगा ॥१८॥

अथानन्तर इसी बीच में रावण दिग्विजय करने के लिए निकला सो पर्वत और वनों से विभूषित पृथिवी को देखता हुआ भ्रमण करने लगा ॥१९॥ विशाल आज्ञा को धारण करने वाले जितेन्द्रिय रावण ने दूसरे-दूसरे द्वीपों में स्थित विद्याधर राजाओं को जीतकर उन्हें फिर से अपने-अपने देशों में नियुक्त किया ॥२०॥ जिन विद्याधर राजाओं को वह वश में कर चुका था उन सब-पर उसका मन पुत्रों के समान स्निग्ध था **अर्थ**ात् जिस प्रकार पिता का मन पुत्रों पर स्नेहपूर्ण होता है उसी प्रकार दशानन का मन वशीकृत राजाओं पर स्नेहपूर्ण था । सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुष नमस्कार मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥२१॥ राक्षसवंश और वानरवंश में जो भी उद्धत विद्याधर राजा थे उन सबको उसने वश में किया था ॥२२॥ बड़ी भारी सेना के साथ जब रावण आकाशमार्ग से जाता था तब उसकी वेग जन्य वायु को अन्य विद्याधर सहन करने में असमर्थ हो जाते थे ॥२३॥ सन्ध्याकार, सुवेल, हेमापूर्ण, सुयोधन, हंसद्वीप और परिह्लाद आदि जो राजा थे वे सब भेंट ले लेकर तथा हाथ जोड़ मस्तक से लगा-लगाकर उसे नमस्कार करते थे और रावण भी अच्छे-अच्छे वचनों से उन्हें सन्तुष्ट कर उनकी सम्पदाओं को पूर्ववत् अवस्थित रखता था ॥२४-२५॥ जो विद्याधर राजा अत्यन्त दुर्गम स्थानों में रहते थे उन्होंने भी उत्तमोत्तम शिष्टाचार के साथ रावण के चरणों में नमस्कार किया था ॥२६॥ आचार्य कहते हैं कि सब बलों में कर्मो के द्वारा किया हुआ बल ही श्रेष्ठ बल है सो उसका उदय रहते हुए रावण किसे जीतने के लिए समर्थ नहीं हुआ था? ॥२७॥

अथानन्तर - रावण रथनूपुर नगर के राजा इन्द्र विद्याधर को जीतने के लिए प्रवृत्त हुआ सो उसने इस अवसर पर अपनी बहन चन्द्रनखा और उसके पति खरदूषण का बड़े भारी स्नेह से स्मरण किया ॥२८॥ प्रस्थान कर पाताल लंका के समीप पहुँचा । जब बहन को इस बात का पता चला कि प्रीति से भरा हमारा भाई निकट ही आकर स्थित है तब वह उत्कण्ठा से भर गयी ॥२९॥ उस समय रात्रि का पिछला

पहर था और खरदूषण सुख से सो रहा था सो चन्द्रनखा ने बड़े प्रेम से उसे जगाया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषण ने अलंकारोदयपुर (पाताल लंका) से निकलकर बड़ी भक्ति और बहुत भारी उत्सव से रावण की पूजा की ॥३१॥ रावण ने भी बदले में प्रीतिपूर्वक बहन की पूजा की सो ठीक ही है क्योंकि संसार में भाई का स्नेह से बढ़कर दूसरा स्नेह नहीं है ॥३२॥ खरदूषण ने रावण के लिए इच्छानुसार रूप बदलने वाले चौदह हजार विद्याधर दिखलाये ॥३३॥ जो अत्यन्त कुशल था, शूरवीर था और जिसने अपने गुणों से समस्त सामन्तों के मन को अपनी ओर खींच लिया था ऐसे खरदूषण को रावण ने अपने समान सेनापति बनाया ॥३४॥ जिस प्रकार असुरों के समूह से आवृत चामरेन्द्र पाताल से निकलकर प्रस्थान करता है उसी प्रकार रावण ने सर्वप्रकार के शस्त्रों में कौशल प्राप्त करने वाले खरदूषण आदि विद्याधरों के साथ पाताललंका से निकलकर प्रस्थान किया ॥३५॥ हिडम्ब, हैहिड, डिम्ब, विकट, त्रिजट, हय, माकोट, सुजट, टंक, किष्किन्धाधिपति, त्रिपुर, मलय, हेमपाल, कोल और वसुन्धर आदि राजा नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ होकर साथ जा रहे थे । ये सभी राजा नाना प्रकार के शस्त्रों से सुशोभित थे ॥३६-३७॥ जिस प्रकार बिजली और इन्द्रधनुष से युक्त मेघों के समूह से सावन का माह भर जाता है उसी प्रकार उन समस्त विद्याधर राजाओं से दशानन भर गया था ॥३८॥ इस प्रकार कैलास को कम्पित करने वाले रावण के कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण विद्याधरों की सेना इकट्ठी हो गयी थी ॥३९॥ प्रत्येक के हजार-हजार देव जिनकी रक्षा करते थे और जो नाना गुणों के समूह को धारण करने वाले थे ऐसे रत्न उसके साथ चलते थे ॥४०॥ चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान जिनका आकार था ऐसे चमर उस पर ढोले जा रहे थे । उसके सिर पर सफेद छत्र लग रहा था और उसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ सुन्दर रूप को धारण करने वाली थीं ॥४१॥ वह पुष्पक विमान के अग्रभाग पर आरूढ़ था जिससे मेरुपर्वत पर स्थित सूर्य के समान कान्ति को धारण कर रहा था । वह अपनी यानरूपी सम्पत्ति के द्वारा सूर्य का मार्ग **अर्थ**ात् आकाश को आच्छादित कर रहा था ॥४२॥ प्रबल पराक्रम का धारी रावण मन में इन्द्र के विनाश का संकल्प कर इच्छानुकूल प्रयाणकों से निरन्तर आगे बढ़ता जाता था ॥४३॥ उस समय वह आकाश को ठीक समुद्र के समान बना रहा था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र में नाना प्रकार के रत्नों की कान्ति व्याप्त होती है उसी प्रकार आकाश में नाना प्रकार के रत्नों की कान्ति फैल रही थी । जिस प्रकार समुद्र तरंगों से युक्त होता है उसी प्रकार आकाश चामररूपी तरंगों से युक्त होता था । जिस प्रकार समुद्र में मीन अर्थात् मछलियों का समूह होता है उसी प्रकार आकाश में दण्डरूपी मछलियों का समूह था । जिस प्रकार समुद्र सैकड़ों आवर्तों अर्थात् भ्रमरों से सहित होता है उसी प्रकार आकाश भी छत्ररूपी सैकड़ों भ्रमरों से युक्त था । जिस प्रकार समुद्र मगरमच्छों के समूह से भयंकर होता है उसी प्रकार आकाश भी घोड़े, हाथी और पैदल योद्धारूपी मगरमच्छों से भयंकर था तथा जिस प्रकार समुद्र में अनेक कल्लोल अर्थात् तरंग उठते रहते हैं उसी प्रकार आकाश में भी अनेक शस्त्ररूपी तरंग उठ रहे थे ॥४४-४५॥ जिनके अग्रभाग पर मयूरपिच्छों का समूह विद्यमान था ऐसी चमकीली ऊँची ध्वजाओं से कहीं आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो इन्द्रनील मणियों से युक्त हीरों से ही व्याप्त हो ॥४६॥ जिनमें नाना प्रकार के रत्नों का प्रकाश फैल रहा था और जो ऊँचे-ऊँचे शिखरों से सुशोभित थे ऐसे विमानों के समूह से आकाश कहीं चलते-फिरते स्वर्गलोक के समान जान पड़ता था ॥४७॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि मगधेश्वर! इस विषय में बहुत कहने से क्या? मुझे तो ऐसा लगता है कि रावण की सेना देखकर देव भी भयभीत हो रहे थे ॥ 48॥ जिन्हें विद्यारूपी महाप्रकाश प्राप्त था और शस्त्र तथा शास्त्र में जिन्होंने परिश्रम किया था ऐसे इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकर्ण, विभीषण, खरदूषण, निकुम्भ और कुम्भ, ये तथा इनके सिवाय युद्ध में कुशल अन्य अनेक आत्मीयजन रावण के पीछे-पीछे चल रहे थे । ये सभी लोग बड़ी-बड़ी सेनाओं से सहित थे, इन्द्र की लक्ष्मी को लजाते थे, अत्यन्त प्रीति से युक्त थे और विशाल कीर्ति के धारक थे ॥ ४६-५१॥

तदनन्तर जब रावण विन्ध्याचल के समीप पहुँचा तब सूर्य अस्त हो गया सो रावण के तेज से पराजित होने के कारण लज्जा से ही मानो प्रभाहीन हो गया था ॥५२॥ सूर्यास्त होते ही उसने विन्ध्याचल के शिखर पर सेना ठहरा दी । वहाँ विद्या के बल से सेना को नाना प्रकार के आश्रय प्राप्त हुए थे ॥५३॥ किरणों के द्वारा अन्धकार के समूह को दूर करनेवाला चन्द्रमा उदित हुआ सो मानो रावण से डरी हुई रात्रि ने उत्तम दीपक ही लाकर उपस्थित किया था ॥५४॥ तारागण ही जिसके सिर के पुष्प थे, चन्द्रमा ही जिसका मुख था, और जो निर्मल अम्बर(आकाश) रूपी अम्बर (वस्त्र) धारण कर रही थी ऐसी उत्तम नायिका के समान रात्रि रावण के समीप आयी ॥५५॥ विद्याधरों ने नाना प्रकार की कथाओं से, योग्य व्यापारों से तथा अनुकूल निद्रा से वह रात्रि व्यतीत की ॥५६॥ तदनन्तर प्रातःकाल की तुरही और वन्दीजनों के मांगलिक शब्दों से जागकर रावण ने शरीर सम्बन्धी समस्त कार्य किये ॥५७॥ सूर्योदय हुआ सो मानो सूर्य समस्त जगह

भ्रमण कर अन्य आश्रय न देख पुन: रावण की शरण में आया ॥५८॥ तदनन्तर रावण ने नर्मदा नदी देखी । नर्मदा मधुर शब्द करने वाले नाना पक्षियों के समूह के साथ मानो अत्यधिक वार्तालाप ही कर रही थी॥५९॥ फेन के समूह से ऐसी जान पड़ती थी मानो हँस ही रही हो । उसका जल शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल था और वह हाथियों से सुशोभित थी ॥६०॥ वह नर्मदा तरंगरूपी भ्रकुटी के विलास से युक्त थी, आवर्तरूपी नाभि से सहित थी, तैरती हुई मछलियाँ ही उसके नेत्र थे, दोनों विशाल तट ही स्थूल नितम्ब थे, नाना फूलों से वह व्याप्त थी और निर्मल जल ही उसका वस्त्र था । इस प्रकार किसी उत्तम नायिका के समान नर्मदा को देख रावण महा प्रीति को प्राप्त हुआ ॥ ६१-६२॥ वह नर्मदा कहीं तो उग्र मगरमच्छों के समूह से व्याप्त होने के कारण गम्भीर थी, कहीं वेग से बहती थी, कहीं मन्द गति से बहती थी और कहीं कुण्डल की तरह टेढ़ी-मेढ़ी चाल से बहती थी ॥६३॥ नाना चेष्टाओं से भरी हुई थी, तथा भयंकर होने पर भी रमणीय थी । जिसका चित्त कौतुक से व्याप्त था ऐसे रावण ने बड़े आदर के साथ उस नर्मदा नदी में प्रवेश ॥६४॥

अथानन्तर जो अपने बल से पृथिवी पर प्रसिद्ध था ऐसा माहिष्मती का राजा सहस्ररश्मि भी उसी समय अन्य दिशा से नर्मदा में प्रविष्ट हुआ ॥६५॥ यह सहस्ररश्मि यथार्थ में परम सुन्दर था क्योंकि उत्कृष्ट कान्ति को धारण करने वाली हजारों स्त्रियाँ उसके साथ थीं ॥६६॥ उसने उत्कृष्ट कलाकारों के द्वारा नाना प्रकार के जल यन्त्र बनवाये थे सो उन सबका आश्रय कर आश्चर्य को उत्पन्न करनेवाला सहस्ररश्मि नर्मदा में उतरकर नाना प्रकार की क्रीड़ा कर रहा था ॥६७॥ उसके साथ यन्त्र निर्माण को जानने वाले ऐसे अनेक मनुष्य थे जो समुद्र का भी जल रोकने में समर्थ थे फिर नदी की तो बात ही क्या थी । इस प्रकार अपनी इच्छानुसार वह नर्मदा में भ्रमण कर रहा था ॥68॥ यन्त्रों के प्रयोग से नर्मदा का जल क्षण-भर में रुक गया था इसलिए नाना प्रकार की क्रीड़ा में निपुण स्त्रियाँ उसके तट पर भ्रमण कर रही थीं ॥ ६६॥ उन स्त्रियों के अत्यन्त पतले और उज्ज्वल वस्त्र जल का सम्बन्ध पाकर उनके नितम्ब स्थलों से एकदम श्लिष्ट हो गये थे इसलिए जब पति उनकी ओर आँख उठाकर देखता था तब वे लज्जा से गड जाती थीं ॥७०॥ शरीर का लेप धुल जाने के कारण जो नखक्षतों से चिह्नित स्तन दिखला रही थी ऐसी कोई एक स्त्री अपनी सौत के लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी ॥७१ ॥ जिसके समस्त अंग दिख रहे थे ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनों हाथों से बड़ी आकुलता के साथ पति की ओर पानी उछाल रही थी ॥७२॥ कोई अन्य स्त्री सौत के नितम्ब स्थल पर नखक्षत देखकर क्रीड़ाकमल की नाल से पति पर प्रहार कर रही थी ॥७३॥ कोई एक स्वभाव की क्रोधिनी स्त्री मौन लेकर निश्चल खड़ी रह गयी थी तब पति ने चरणों में प्रणाम कर उसे किसी तरह सन्तुष्ट किया ॥७४॥ राजा सहस्ररश्मि जब तक एक स्त्री को प्रसन्न करता था तब तक दूसरी स्त्री रोष को प्राप्त हो जाती थी । इस कारण वह समस्त स्त्रियों को बड़ी कठिनाई से सन्तुष्ट कर सका था ॥७५॥ उत्तमोत्तम स्त्रियों से घिरा, मनोहर रूप का धारक वह राजा, किसी स्त्री की ओर देखकर, किसी का स्पर्श कर, किसी के प्रति कोप प्रकट कर, किसी के प्रति अनेक प्रकार की प्रसन्नता प्रकट कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के ऊपर पानी उछालकर, किसी को कर्णा-भरण से ताड़ित कर, किसी का धोखे से वस्त्र खींचकर, किसी को मेखला से बाँधकर, किसी के पास से दूर हटकर, किसी को भारी डाँट दिखाकर, किसी के साथ सम्पर्क कर, किसी के स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर, किसी के साथ हँसकर, किसी के आभूषण गिराकर, किसी को गुदगुदा कर, किसी के प्रति भौंह चलाकर, किसी से छिपकर, किसी के समक्ष प्रकट होकर तथा किसी के साथ अन्य प्रकार के विभ्रम दिखाकर नर्मदा नदी में बडे-आनन्द से उस तरह क्रीड़ा कर रहा था जिस प्रकार कि देवियों के साथ इन्द्र क्रीड़ा किया करता है ॥ ७६-७९॥ उदार हृदय को धारण करने वाली उन स्त्रियों के जो आभूषण बालू के ऊपर गिर गये थे उन्होंने निर्माल्य की माला के समान फिर उन्हें उठाने की इच्छा नहीं की थी ॥८०॥ किसी स्त्री ने चन्दन के लेप से पानी को सफेद कर दिया था तो किसी ने केशर के द्रव से उसे सुवर्ण के समान पीला बना दिया था ॥८१॥ जिनकी पान की लालिमा धुल गयी थी ऐसे स्त्रियों के ओंठ तथा जिनका काजल छूट गया था ऐसे नेत्रों की कोई अद्भुत ही शोभा दृष्टि गोचर हो रही थी ॥८२॥ तदनन्तर यन्त्र के द्वारा छोड़े हुए जल के बीच में वह राजा, काम उत्पन्न करने वाली अनेक उत्कृष्ट स्त्रियों के साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगा ॥८३॥ उस समय तट के समीपवर्ती जल में विचरण करने वाले पक्षी मनोहर शब्द कर रहे थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो जल के भीतर क्रीड़ा करने वाली स्त्रियों ने अपने आभूषणों का शब्द उनके पास धरोहर ही रख दिया हो ॥८४॥ उधर यह सब चल रहा था इधर रावण ने भी सुखपूर्वक स्थान कर घुले हुए उत्तम वस्त्र पहने और अपने मस्तक को बड़ी सावधानी से सफेद वस्त्र से युक्त किया ॥८५॥ जिसे नियुक्त मनुष्य सदा बड़ी सावधानी से साथ लिये रहते थे ऐसी स्वर्ण तथा रत्न निर्मित अर्हन्त भगवान की प्रतिमा को रावण ने नदी के उस तीर पर स्थापित कराया जो कि नदी के बीच नया निकला था, मनोहर था, सफेद तथा देदीप्यमान था, बालू के द्वारा निर्मित ऊँचे चबूतरे से सुशोभित था, जहाँ वैडूर्यमणि की छड़ियों पर चन्दोवा तानकर

उस पर मोतियों की झालर लटकायी गयी थी, और जो सब प्रकार के उपकरण इकट्ठे करने में व्यय परिजनों से भरा था ॥८६-८७॥ प्रतिमा स्थापित कर उसने भारी सुगन्धि से भ्रमरों को आकर्षित करने वाले धूप, चन्दन, पुष्प तथा मनोहर नैवेद्य के द्वारा बड़ी पूजा की और सामने बैठकर चिरकाल तक स्तुति के पवित्र अक्षरों से अपने मुख को सहित किया ॥८९-९०॥ अथानन्तर रावण पूजा में निमग्न था कि अचानक ही उसकी पूजा सब ओर से फेन तथा बबूलों से युक्त, मलिन एवं वेगशाली जल के पूर से नष्ट हो गयी ॥९१॥ तब रावण ने शीघ्र ही प्रतिमा ऊपर उठाकर कुपित हो लोगों से कहा कि मालूम करो क्या बात है? ॥९२॥ तदनन्तर लोगों ने वेग से जाकर और वापस लौटकर निवेदन किया कि हे नाथ! आभूषणों से परम अभ्युदय को प्रकट करनेवाला कोई मनुष्य सुन्दर स्त्रियों के बीच बैठा है । तलवार को धारण करने वाले मनुष्य दूर खड़े रहकर उसे घेरे हुए हैं । नाना प्रकार के बड़े-बड़े यन्त्र उसके पास विद्यमान हैं । निश्चय ही यह कार्य उन सब यन्त्रों का किया है ॥९३-९५॥ हमारा ध्यान है कि उसके पास जो पुरुष हैं वे तो व्यवस्था मात्र के लिए हैं यथार्थ में उसका जो बल है वही दूसरों के लिए दुःख से सहन करने योग्य है ॥९६॥ लोक-कथा से सुना जाता है कि स्वर्ग में अथवा सुमेरु पर्वत पर इन्द्र नाम का कोई व्यक्ति रहता है पर हमने तो यह साक्षात् ही इन्द्र देखा है ॥९७॥ उसी समय रावण ने वीणा, बाँसुरी आदि से युक्त तथा जय-जय शब्द से निश्चित मृदंग का शब्द सुना । साथ ही हाथी, घोड़े और मनुष्यों का शब्द भी उसने सुना । सुनते ही उसकी भौंह चढ़ गयी । उसी समय उसने राजाओं को आज्ञा दी कि इस दुष्ट को शीघ्र ही पकड़ा जाये ॥९८-९९॥ आज्ञा देकर रावण फिर नदी के किनारे रत्न तथा सुवर्ण निर्मित पुष्पों से जिन प्रतिमा की उत्तम पूजा करने लगा ॥१००॥ विद्याधर राजाओं ने रावण की आज्ञा शेषाक्षत के समान मस्तक पर धारण की और तैयार हो वे शीघ्र ही शत्रु के सम्मुख दौड़ पड़े ॥१०१॥ तदनन्तर शत्रुदल को आया देख सहस्ररश्मि क्षण-भर में क्षुभित हो गया और स्त्रियों को अभय देकर शीघ्र ही जलाशय से बाहर निकला ॥१०२॥ तत्पश्चात् कल-कल सुनकर और जनसमूह से सब समाचार जानकर माहिष्मती के वीर शीघ्र ही तैयार हो बाहर निकल पड़े ॥१०३॥ जिस प्रकार वसन्त आदि ऋतुएँ सम्मेदाचल के पास एक साथ आ पहुँचती हैं उसी प्रकार नाना तरह के शस्त्रों को धारण करने वाले बहुत भारी अनुराग से भरे सामन्त सहस्ररश्मि के पास एक साथ आ पहुँचे । वे सामन्त हाथियों, घोड़ों और रथों पर सवार थे तथा पैदल चलने वाले सैनिकों से युक्त थे ॥१०४-१०५॥
परस्पर एक दूसरे की रक्षा करने में तत्पर तथा उत्साह से भरे सहस्ररश्मि के सामन्तों ने जब विद्याधरों की सेना आती देखी तो वे जीवन का लोभ छोड़ मेघ व्यूह की रचना कर स्वामी की आज्ञा के बिना ही युद्ध करने के लिए उठ खड़े हुए ॥१०६-१०७॥ इधर जब रावण की सेना युद्ध करने के लिए उद्यत हुई तब आकाश में सहसा देवताओं के निम्नांकित वचन विचरण करने लगे ॥१०८॥ देवताओं ने कहा कि अहो! वीर लोग यह बड़ा अन्याय करना चाहते हैं कि भूमि-गोचरियों के साथ विद्याधर युद्ध करने के लिए उद्यत हुए हैं ॥१०९॥ ये बेचारे भूमिगोचरी थोड़े तथा सरल चित्त हैं और विद्याधर इनके विपरीत विद्या तथा माया को करने वाले एवं संख्या में बहुत हैं ॥११०॥ इस प्रकार आकाश में बार-बार कहे हुए इस आकुलतापूर्ण शब्द को सुनकर अच्छी प्रवृत्ति वाले विद्याधर लज्जा से युक्त होते हुए पृथिवी पर आ गये ॥१११॥ तदनन्तर समान योद्धाओं के द्वारा प्रारम्भ किये हुए युद्ध में रावण के पुरुष परस्पर तलवार, बाण, गदा और भाले आदि से प्रहार करने लगे ॥११२॥ रथों के सवार रथों के सवारों के साथ, घुड़सवार घुड़सवारों के साथ, हाथियों के सवार हाथियों के सवारों के साथ, और पैदल सैनिक पैदल सैनिकों के साथ युद्ध करने लगे ॥११३॥ जिन्हें क्रम-क्रम से पराजय प्राप्त हो रहा था और जिनके शस्त्र-समूह की टक्कर से अग्नि उत्पन्न हो रही थी ऐसे योद्धाओं ने न्यायपूर्वक युद्ध करना शुरू किया ॥११४॥ जब सहस्ररश्मि ने अपनी सेना को शीघ्र ही नष्ट होने के निकट देखा तब उत्तम रथ पर सवार हो तत्काल आ पहुँचा ॥११५॥ उत्तम किरीट और कवच को धारण करनेवाला सहस्ररश्मि उत्कृष्ट तेज को धारण करता था इसलिए विद्याधरों की सेना देख वह जरा भी भयभीत नहीं हुआ ॥११६॥ तदनन्तर स्वामी से सहित होने के कारण जिनका तेज पुनः वापस आ गया था, जिनके ऊपर खुले हुए छत्र लग रहे थे और जिन्होंने घावों का कष्ट भुला दिया था ऐसे रण निपुण भूमिगोचरी राक्षसों की सेना में इस प्रकार घुस गये जिस प्रकार कि मदोन्मत्त हाथी गहरे समुद्र में घुस जाते हैं ॥११७-११८॥ जिस प्रकार वायु मेघों को उड़ा देता है उसी प्रकार अत्यधिक क्रोध को धारण करनेवाला सहस्ररश्मि बाणों के समूह से शत्रुओं को उड़ाने लगा ॥११९॥ यह देख द्वारपाल ने रावण से निवेदन किया कि हे देव ! देखो जगत् को तृण के समान तुच्छ देखने वाले, रथ पर बैठे धनुषधारी इस किसी राजा ने बाणों के समूह से तुम्हारी सेना को एक योजन पीछे खदेड़ दिया है ॥१२०-१२१॥ तदनन्तर सहस्ररश्मि को सम्मुख आता देख दशानन त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो चला । शत्रु जिसे भयभीत होकर देख रहे थे तथा जिसका तेज अत्यन्त दुःसह था ऐसे रावण ने बाणों का समूह छोड़कर सहस्ररश्मि को रथरहित कर दिया ॥१२२-१२३॥ तब सहस्ररश्मि उत्तम हाथी पर सवार हो क्रुद्ध

होता हुआ वेग से पुन: रावण के सम्मुख आया ॥१२४॥ इधर सहस्ररश्मि के द्वारा छोड़े हुए पैने बाण कवच को भेदकर रावण के अंगों को विदीर्ण करने लगे ॥१२५॥ उधर रावण ने सहस्ररश्मि के प्रति जो बाण छोड़े थे उन्हें वह शरीर से खींचकर हँसता हुआ जोर से बोला ॥१२६॥ कि अहो रावण ! तुम तो बड़े धनुर्धारी मालूम होते हो । यह उपदेश तुम्हें किस कुशल गुरु से प्राप्त हुआ है? ॥१२७॥ अरे छोकड़े ! भले धनुर्वेद पढ़ और कयास कर, फिर मेरे साथ युद्ध करना । तू नीति से रहित जान पड़ता है ॥१२८॥ तदनन्तर उक्त कठोर वचनों से बहुत भारी क्रोध को प्राप्त हुए रावण ने एक भाला सहस्ररश्मि के ललाट पर मारा ॥१२६॥ जिससे रुधिर की धारा बहने लगी तथा आँखें घूमने लगीं । मूर्छित हो पुन: सावधान होकर जब तक वह बाण ग्रहण करता है तब तक रावण ने वेग से उछलकर उस धैर्यशाली को जीवित ही पकड़ लिया ॥१३०-१३१॥ रावण उसे बाँधकर अपने डेरे पर ले गया । विद्याधर उसे बड़े आश्चर्य से देख रहे थे । वे सोच रहे थे कि यदि यह किसी तरह उछलकर छूटता है तो फिर इसे कौन पकड़ सकेगा? ॥१३२॥

तदनन्तर सन्ध्यारूपी प्राकार से वेष्टित होता हुआ सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो सहस्ररश्मि के इस वृत्तान्त से उसने कुछ नीति को प्राप्त किया था **अर्थ**ात् शिक्षा ग्रहण की थी ॥१३३॥ अच्छे और बुरे को समान करने वाले अन्धकार से लोक आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रावण के द्वारा छोड़े हुए बहुत भारी क्रोध से ही आच्छादित हुआ हो ॥१३४॥ तदनन्तर अन्धकार के हरने में निपुण चन्द्रमा का बिम्ब उदित हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो युद्ध से उत्पन्न हुआ रावण का अत्यन्त निर्मल यश ही हो ॥१३५॥ उस समय कोई तो घायल सैनिकों के घावों पर मरहमपट्टी लगा रहे थे, कोई योद्धाओं के पराक्रम का वर्णन कर रहे थे, कोई गुमे हुए सैनिकों की तलाश कर रहे थे और कोई, जिन्हें घाव नहीं लगे थे सो रहे थे । इस प्रकार यथायोग्य कार्यों से रावण की सेना की रात्रि व्यतीत हुई । प्रभात हुआ तो प्रभात सम्बन्धी तुरही के शब्द से रावण जागृत हुआ ॥१३६-१३७॥ तदनन्तर परम राग को धारण करता हुआ सूर्य काँपता-काँपता उदित हुआ सो ऐसा जान पड़ता था मानो रावण का समाचार जानने के लिए उदित हुआ हो ॥१३८॥

अथानन्तर सहस्ररश्मि के पिता शतबाहु, जो दिगम्बर थे, जिन्हें जंघाचारण ऋद्धि प्राप्त थी, जो महाबाहु, महा तपस्वी, चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य के समान तेजस्वी, मेरु के समान स्थिर और समुद्र के समान गम्भीर थे, पुत्र को बँधा सुनकर रावण के समीप आये । उस समय रावण अपने शरीर सम्बन्धी कार्यों से निपटकर सभा के बीच में सुख से बैठा था और मुनिराज शतबाहु प्रशान्त-चित्त एवं लोगों से स्नेह करने वाले थे ॥१३६-१४१॥ रावण, मुनिराज को दूर से ही देखकर खड़ा हो गया । उसने सामने जाकर तथा पृथ्वी पर मस्तक टेककर नमस्कार किया ॥१४२॥ जब मुनिराज उत्कृष्ट प्रासुक आसन पर विराजमान हो गये तब रावण पृथ्वी पर दोनों हाथ जोड़कर बैठ गया । उस समय उसका सारा शरीर विनय से नम्रीभूत था ॥१४३॥ रावण ने कहा कि हे भगवद् ! आप कृतकृत्य हैं अत: मुझे पवित्र करने के सिवाय आपके यहाँ आने में दूसरा कारण नहीं है ॥१४४॥ तब कुल, वीर्य और विभूति के द्वारा रावण की प्रशंसा कर वचनों से अमृत झलते हुए की तरह मुनिराज कहने लगे कि ॥१४५॥ हे आयुष्मन् ! तुम्हारे शुभ संकल्प से यही बात है फिर भी मैं एक बात कहता हूँ सो सुन ॥१४६॥ यतश्च शत्रुओं का पराभव करने मात्र से क्षत्रियों के कृतकृत्यपना हो जाता है अत: तुम मेरे पुत्र सहस्ररश्मि को छोड़ दो ॥१४७॥ तदनन्तर रावण ने मन्त्रियों के साथ इशारों से सलाह कर नम्र हो मुनिराज से कहा कि हे नाथ! मेरा निम्न प्रकार निवेदन है । मैं इस समय राजलक्ष्मी से उन्मत्त एवं हमारे पूर्वजों का अपराध करने वाले विद्याधराधिपति इन्द्र को वश करने के लिए प्रयाण कर रहा हूँ ॥१४८-१४९॥ सो इस प्रयाणकाल में मनोहर रेवा नदी के किनारे चक्ररत्न रखकर मैं बालू के निर्मल चबूतरे पर जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने के लिए बैठा था सो इस भोगी-विलासी सहस्ररश्मि के यन्त्र रचित वेगशाली जल से उपकरणों के साथ-साथ मेरी वह सब पूजा अचानक बह गयी ॥१५०-१५१॥ जिनेन्द्र भगवान की पूजा के नष्ट हो जाने से मुझे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ सो इस क्रोध के कारण ही मैंने यह कार्य किया है । प्रयोजन के बिना मैं किसी मनुष्य से द्वेष नहीं करता ॥१५२॥ जब मैं पहुँचा तब इस मानी एवं प्रमादी ने यह भी नहीं कहा कि मुझे ज्ञान नहीं था अत: क्षमा कीजिए ॥१५३॥ जो भूमिगोचरी मनुष्यों को जीतने के लिए समर्थ नहीं है वह विद्याओं के द्वारा नाना प्रकार की चेष्टाएँ करने वाले विद्याधरों को कैसे जीत सकेगा? ॥११४॥ यही सोचकर मैं पहले अहंकारी भूमिगोचरियों को वश कर रहा हूँ । उसके बाद श्रेणी के क्रम से विद्याधराधिपति इन्द्र को वश करूँगा ॥१५५॥ इसे मैं वश कर चुका हूँ अत: इसको छोड़ना न्यायोचित ही है फिर जिनके दर्शन केवल पुण्यवान् मनुष्यों की ही हो सकते हैं ऐसे आप आज्ञा प्रदान कर रहे हैं अत: कहना ही क्या है? ॥१५६॥ तदनन्तर रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने कहा कि आपने बिलकुल ठीक कहा है सो उचित ही है क्योंकि आप जैसे नीतिज्ञ राजा को छोड़कर दूसरा ऐसा कौन कह सकता है? ॥१५७॥

तदनन्तर रावण का आदेश पाकर मारीच नामा मन्त्री ने हाथ में नंगी तलवार लिये हुए अधिकारी मनुष्यों के द्वारा सहस्ररश्मि को सभा में बुलवाया ॥१५8॥ सहस्ररश्मि पिता के चरणों में नमस्कार कर भूमि पर बैठ गया । रावण ने क्रोधरहित होकर बड़े सम्मान के साथ उससे कहा ॥१५९॥ कि आज से तुम मेरे चौथे भाई हो । चूँकि तुम महाबलवान् हो अत: तुम्हारे साथ मैं इन्द्र की विडम्बना करने वाले राजा इन्द्र को जीतूंगा ॥१६०॥ मैं तुम्हारे लिए मन्दोदरी की छोटी बहन स्वयंप्रभा दूँगा । हे सुन्दर आकृति के धारक! तुमने जो किया है वह मुझे प्रमाण है ॥१६१। सहस्ररश्मि बोला कि मेरे इस क्षणभंगुर राज्य को धिक्कार है। जो प्रारम्भ में रमणीय दिखते हैं और अन्त में जो दुःखों से बहुल होते हैं उन विषयों को धिक्कार है ॥१६२॥ उस स्वर्ग के लिए धिक्कार है जिससे कि च्युति अवश्यम्भावी है। दुःख के पात्र स्वरूप इस शरीर को धिक्कार है और जो चिरकाल तक दुष्ट कर्मों से ठगा गया ऐसे मुझे भी धिक्कार है ॥१६३॥ अब तो मैं वह काम करूँगा जिससे कि फिर संसार में नहीं पड़ूँ। अत्यन्त दु:खदायी गतियों में घूमता-घूमता मैं बहुत खिन्न हो चुका हूँ ॥१६४॥ इसके उत्तर में रावण ने कहा कि हे भद्र ! दीक्षा तो वृद्ध मनुष्यों के लिए शोभा देती है अभी तो तुम नवयौवन से सम्पन्न हो ॥१६५॥ सहस्ररश्मि ने रावण की बात काटते हुए बीच में ही कहा कि मृत्यु को ऐसा विवेक थोड़ा ही है कि वह वृद्ध जन को ही ग्रहण करे यौवन वाले को नहीं । अरे! यह शरीर शरद्ऋतु के बादल के समान अकस्मात् ही नष्ट हो जाता है ॥१६६॥ हे रावण! यदि भोगों में कुछ सार होता तो उत्तम बुद्धि के धारक पिताजी ने ही उनका त्याग नहीं किया होता ॥१६७॥ ऐसा कहकर उसने दृढ़ निश्चय के साथ पुत्र के लिए राज्य सौंपा और दशानन से क्षमा याचना कर पिता शतबाहु के समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१६८॥ सहस्ररश्मि ने अपने मित्र अयोध्या के राजा अनरण्य से पहले कह रखा था कि जब मैं दिगम्बर दीक्षा धारण करूँगा तब तुम्हारे लिए खबर दूँगा और अनरण्य ने भी सहस्ररश्मि से ऐसा ही कह रखा था सो इस कथन के अनुसार सहस्ररश्मि ने खबर देने के लिए अनरण्य के पास आदमी भेजे ॥१६६-१७०॥ गये हुए पुरुषों ने जब अनरण्य से सहस्ररश्मि के वैराग्य की वार्ता कही तो उसे सुनकर उसके नेत्र आँसुओं से भर गये । उस महापुरुष के गुणों का स्मरण कर वह चिरकाल तक विलाप करता रहा ॥१७१॥ जब विषाद कम हुआ तो महाबुद्धिमान् अनरण्य ने कहा कि उसके पास रावण क्या आया! मानो शत्रु के वेष में भाई ही उसके पास आया ॥१७२॥ वह रावण कि जिसने अत्यन्त अनुकूल होकर विषयों से मोहित हो चिरकाल तक ऐश्वर्य रूपी पिंजडे के अन्दर स्थित रहनेवाले इस मनुष्य रूपी पक्षी को मुक्त किया है ॥१७३॥ माहिष्मती के राजा सहस्ररश्मि को धन्य है जो रावण के सम्यग्ज्ञानरूपी जहाज का आश्रय ले संसाररूपी सागर को तैरना चाहता है ॥१७४॥ जो अन्त में अत्यन्त दुःख देने वाले राज्य नामक पाप को छोड़कर जिनेन्द्र प्रणीत व्रत को प्राप्त हुआ है अब उसकी कृतकृत्यता का क्या पूछना ॥१७१॥ इस प्रकार सहस्ररश्मि की प्रशंसा कर अनरण्य भी संसार से भयभीत हो पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी सौंप बड़े पुत्र के साथ मुनि हो गया ॥१७६॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! जब उत्कृष्ट कर्म का निमित्त मिलता है तब शत्रु अथवा मित्र किसी के भी द्वारा इस जीव को कल्याणकारी बुद्धि प्राप्त हो जाती है पर जब तक निकृष्ट कर्म का उदय रहता है तब तक प्राप्त नहीं होती ॥१७७॥ जो जिसके मन को अच्छे कार्य में लगा देता है यथार्थ में वही उसका बान्धव है और जो जिसके मन को भोगोपभोग की वस्तुओं में लगाता है वही उसका वास्तविक शत्रु है ॥१७८॥ इस प्रकार सहस्ररश्मि का ध्यान करता हुआ जो मनुष्य मुनियों के समान शीलरूपी सम्पदा से युक्त राजा अनरण्य का चरित्र सुनता है वह सूर्य के समान निर्मलता को प्राप्त होता है ॥१७९॥

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में दशानन के प्रयाण के समय राजा सहस्ररश्मि और अनरण्य की दीक्षा का वर्णन करनेवाला दशम पर्व पूर्ण हुआ ॥10॥

## राजा मरुत्व के यज्ञ का विध्वंस

एकादस पर्व

कथा :

अथानन्तर रावण ने पृथ्वी पर जिन-जिन राजाओं को मानी सुना उन सबको नम्रीभूत किया ॥१॥ जिन राजाओं को इसने वश किया था उनका सम्मान भी किया और ऐसे उन समस्त राजाओं से वेष्टित होकर उसने बड़े-बड़े ग्रामों से सहित पृथ्वी को देखते हुए सुभूमचक्रवर्ती के समान भ्रमण किया ॥२॥ इसके साथ नाना देशों में उत्पन्न हुए नाना आकार के मनुष्य थे । वे मनुष्य नाना प्रकार के आभूषण पहने हुए थे, नाना प्रकार की उनकी चेष्टाएँ थीं और नाना प्रकार के वाहनों पर वे आरूढ़ थे ॥३॥ वह जीर्ण मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराता जाता था और देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव की बड़े भाव से पूजा करता था ॥४॥ जैनधर्म के साथ द्वेष रखनेवाले दुष्ट मनुष्यों को नष्ट करता था और दरिद्र

मनुष्यों को-दया से युक्त हो धन से परिपूर्ण करता था ॥५॥ सम्यग्दर्शन से शुद्ध जनों की बड़े स्नेह से पूजा करता था और जो मात्र जैन-मुद्रा को धारण करने वाले थे ऐसे मुनियों को भी भक्ति पूर्वक प्रणाम करता था ॥६॥ जिस प्रकार उत्तरायण के समय सूर्य दु:सह प्रताप बिखेरता हुआ उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करता है उसी प्रकार रावण ने भी पुण्य कर्म के उदय से दु:सह प्रताप बिखेरते हुए उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥७॥

अथानन्तर रावण ने सुना कि राजपुर का राजा बहुत बलवान् है । वह बहुत भारी अहंकार को धारण करता हुआ कभी किसी को प्रणाम नहीं करता है ॥८॥ जन्म से ही लेकर दुष्ट-चित्त है, लौकिक मिथ्या मार्ग से मोहित है, और प्राणियों का विध्वंस कराने वाले यज्ञ दीक्षा नामक महापाप को प्राप्त है **अर्थ**ात् यज्ञ क्रिया में प्रवृत्त है ॥९॥ तदनन्तर यज्ञ का कथन सुन राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछा कि हे विभो! अभी रावण की कथा रहने दीजिए । पहले मैं इस यज्ञ की उत्पत्ति जानना चाहता हूँ कि जीवों का विघात करने वाले जिस यज्ञ में दुष्टजन प्रवृत्त हुए हैं ॥१०-११॥ तब गणधर बोले कि हे श्रेणिक! सुन, तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इस यज्ञ के द्वारा बहुत से जन मोहित हो रहे हैं ॥१२॥

अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुकुल का आभूषण स्वरूप एक ययाति नाम का राजा था और सुरकान्ता नाम की उसकी रानी थी ॥१३॥ उन दोनों के वसु नाम का पुत्र हुआ । जब वह पढ़ने के योग्य हुआ तब क्षीरकदम्बक नामक गुरु के लिए सौंपा गया । क्षीरकदम्बक की स्त्री का नाम स्वस्तिमती था ॥॥ किसी एक दिन सर्व शास्त्रों में निपुण क्षीरकदम्बक, वन के मध्य में नारद आदि शिष्यों को आरण्यक शास्त्र पढ़ा रहा था ॥१५॥ वहीं आकाशमार्ग से विहार करने वाले चारण मुनियों का संघ विराजमान था । उनमें से एक दयालु मुनि ने इस प्रकार कहा कि इन चार प्राणियों में से एक नरक को प्राप्त होगा । मुनि के वचन सुन क्षीरकदम्बक अत्यन्त भयभीत हो गया ॥१६-१७॥ तदनन्तर उसने नारद, पर्वत और वसु इन तीनों शिष्यों को अपने-अपने घर भेज दिया और वे शिष्य भी बन्धन से छोड़े गये बछड़ों के समान सन्तुष्ट होते हुए अपने-अपने घर गये ॥१८॥ जब पर्वत अकेला ही घर पहुँचा तब उसकी माता स्वस्तिमती ने पूछा कि हे पुत्र! तुम्हारे पिता कहाँ हैं जिससे कि तुम अकेले ही आये हो ॥१९॥ पर्वत ने माता को उत्तर दिया कि उन्होंने कहा था कि पीछे आते हैं । पति के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए स्वस्तिमती का दिन समाप्त हो गया ॥२०॥ जब दिन का बिलकुल अन्त हो गया और सघन अन्धकार फैल चुका फिर भी वह नहीं आया तब स्वस्तिमती शोक के भार से आक्रान्त हो पृथ्वी पर गिर पड़ी ॥२१॥ वह दुःख से पीड़ित हो चकवी के समान इस प्रकार विलाप करने लगी कि हाय-हाय मैं बड़ी मन्दभाग्य हूँ जो पति के द्वारा छोड़ी गयी ॥२२॥ क्या मेरा पति किसी पापी मनुष्य के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ है अथवा किसी कारण परदेश को चला गया है? ॥२३॥ अथवा समस्त शास्त्रों में कुशल होने से वैराग्य को प्राप्त हो सर्व परिग्रह का त्याग कर मुनिदीक्षा को प्राप्त हुआ है? ॥२४॥ इस प्रकार विलाप करते-करते स्वस्तिमती की रात्रि भी व्यतीत हो गयी । जब प्रातःकाल हुआ तब पर्वत पिता को खोजने के लिए गया ॥२५॥ लगातार कुछ दिनों तक खोज करने के बाद पर्वत ने देखा कि हमारे पिता नदी के तटवर्ती उद्यान में मुनि होकर विद्यमान हैं । संघ सहित गुरु के समीप विनय से बैठे हैं ॥२६॥ उसने दूर से ही लौटकर माता से कहा कि मेरा पिता नग्न मुनियों और उनके भक्तों द्वारा प्रतारित हो नग्न हो गया है ॥२७॥ तदनन्तर स्वस्तिमती ने जब निश्चय से यह जान लिया कि अब पति का समागम मुझे प्राप्त नहीं होनेवाला है तब वह अत्यन्त दुःखी हुई । वह दोनों हाथों से स्तनों को पीटती एवं जोर से चिल्लाती हुई रुदन करने लगी ॥२८॥ यह वृत्तान्त सुन धर्म स्नेही नारद शोक से व्याकुल होता हुआ अपनी गुरानी को देखने के लिए आया ॥२९॥ उसे देख वह और भी अधिक स्तन पीटकर रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि यह स्वाभाविक बात है कि आप्तजनों के समक्ष शोक बढ़ने लगता है ॥३०॥ नारद ने कहा कि हे माताजी ! व्यर्थ ही शोक क्यों करती हो क्योंकि इस समय शोक करने से निर्मल बुद्धि के धारक गुरुजी वापस नहीं आवेंगे ॥31॥ सुन्दर चेष्टाओं के धारक गुरुजी पर पुण्यकर्म ने बड़ा अनुग्रह किया है कि जिससे वे जीवन को चंचल जानकर तप करने के लिए उद्यत हुए हैं ॥३२॥ इस प्रकार नारद के समझाने पर उसका शोक क्रम-क्रम से हल्का हो गया । स्वस्तिमती कभी तो पीत की निन्दा करती थी कि वे एक अबला को असहाय छोड़कर चल दिये और कभी उनके गुणों का चिन्तवन कर स्तुति करती थी कि इनकी निर्लेपता कितनी उच्च कोटि की थी । इस प्रकार निन्दा और स्तुति करती हुई वह घर में रहने लगी ॥३३॥

इसी घटना से तत्वों का जानकार ययाति राजा भी वसु के लिए राज्यभार सौंपकर महामुनि हो गया ॥३४॥ नवीन राजा वसु की पृथिवी पर बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ी। आकाश स्फटिक की लम्बी-चौड़ी शिला पर उसका सिंहासन स्थित था सो लोक में ऐसी प्रसिद्धि हुई कि सत्य के बल पर वसु आकाश में निराधार स्थित है ॥३५॥ अथानन्तर एक दिन नारद की पर्वत के साथ शास्त्र का वास्तविक **अर्थ** प्रकट करने पर तत्पर

निम्नलिखित चर्चा हुई ॥३६॥ नारद ने कहा कि सबको जानने देखने वाले अर्हन्त भगवान ने अणुव्रत और महाव्रत के भेद से धर्म दो प्रकार का कहा है ॥३७॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापों से विरक्त होने को व्रत कहते हैं । यह व्रत प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाओं से सहित होता है ॥३८॥ जो उक्त पापों का सर्वदेश त्याग करने में समर्थ हैं वे महाव्रत ग्रहण करते हैं और जो घर में रहते हैं ऐसे शेष जन अणुव्रत धारण करते हैं ॥३९॥ जिनेन्द्र भगवान ने गृहस्थों का एक व्रत अतिथिसंविभाग बतलाया है जो पात्रादि के भेद से अनेक प्रकार का है । यज्ञ का अन्तर्भाव इसी अतिथिसंविभाग व्रत में होता है ॥४०॥ ग्रन्थों के अर्थ की गाँठ खोलने वाले दयालु मुनियों ने अजैर्यष्टव्यम् इस वाक्य का यह अर्थ बतलाया है ॥४१॥ कि अज उस पुराने धान को कहते हैं जिसमें कि कारण मिलने पर भी अंकुर उत्पन्न नहीं होते । ऐसे धान से ही यज्ञ करना चाहिए ॥४२॥ नारद की इस व्याख्या को सुनकर तमक कर पर्वत बोला कि नहीं अज नाम पशु का है अत: उनकी हिंसा करनी चाहिए यही यज्ञ कहलाता है ॥४३॥ इसके उत्तर में नारद ने कुपित होकर दुष्ट पर्वत से कहा कि ऐसा मत कहो क्योंकि ऐसा कहने से भयंकर वेदना वाले नरक में पड़ोगे ॥४४॥ अपने पक्ष की प्रबलता सिद्ध करते हुए नारद ने यह प्रतिज्ञा भी की कि हम दोनों राजा वसु के पास चलें, वहाँ जो पराजित होगा उसकी जिह्वा काट ली जावे ॥45॥ आज राजा वसु के मिलने का समय निकल चुका है इसलिए कल इस बात का निश्चय होगा इतना कहकर पर्वत, अपनी माता के पास गया ॥४६॥ अभिमानी पर्वत ने कलह का मूल कारण माता के लिए कह सुनाया । इसके उत्तर में माता ने कहा कि हे पुत्र ! तूने मिथ्या बात कही है ॥४७॥ अनेकों बार व्याख्या करते हुए तेरे पिता से मैंने सुनी है कि अज उस धान को कहते हैं कि जिसमें अंकुर उत्पन्न नहीं होते ॥४८॥ तू देशान्तर में जाकर मांस भक्षण करने लगा इसलिए अभिमान से तूने यह मिथ्या बात कही है । यह बात तुझे दुःख का कारण होगी ॥४९॥ हे पुत्र ! निश्चित ही तेरी जिह्वा का छेद होगा । मैं अभागिनी पति और पुत्र से रहित होकर क्या करूँगी? ॥50॥ उसी क्षण उसे स्मरण आया कि एक बार राजा वसु ने मुझे गुरुदक्षिणा देना कहा था और मैंने उसे धरोहर के रूप में उन्हीं के पास रख दिया था । स्मरण आते हो वह तत्काल घबड़ायी हुई राजा वसु के पास पहुँची ॥५१॥ यह हमारी गुरानी है यह विचारकर राजा वसु ने उसका बहुत सत्कार किया, उसे प्रणाम किया और जब वह आसन पर सुख से बैठ गयी तब हाथ जोड़कर विनय से पूछा ॥५२॥ कि हे गुरानी! मुझे आज्ञा दीजिए । जिस कारण आप आयी हैं मैं उसे अभी सिद्ध करता हूँ । आप दुःखी-सी क्यों दिखाई देती हैं? ॥53॥ इसके उत्तर में स्वस्तिमती ने कहा कि हे पुत्र ! मैं तो निरन्तर दुःखी रहती हूँ क्योंकि पति के द्वारा छोड़ी हुई कौन-सी स्त्री सुख पाती है? ॥५४॥ सम्बन्ध दो प्रकार का है एक योनि सम्बन्धी और दूसरा शास्त्र-सम्बन्धी । इन दोनों में मैं शास्त्रीय सम्बन्ध को ही उत्तम मानती हूँ क्योंकि यह निर्दोष सम्बन्ध है ॥५५॥ चूँकि तुम मेरे पीत के शिष्य हो अत: तुम भी मेरे पुत्र हो । तुम्हारी लक्ष्मी को देखते हुए मुझे सन्तोष होता है ॥५६॥ हे पुत्र! एक बार तुमने कहा था कि दक्षिणा ले लो तब मैंने कहा था कि फिर किसी समय ले लूँगी -- स्मरण करो ॥५७॥ पृथिवी की रक्षा करने में तत्पर राजा लोग सदा सत्य बोलते हैं । यथार्थ में जो जीवों की रक्षा करने में तत्पर हैं वे ही ऋषि कहलाते हैं ॥५८॥ तुम सत्य के कारण जगत् में प्रसिद्ध हो अत: मेरे लिए वह दक्षिणा दो । गुरानी के ऐसा कहने पर राजा वसु ने विनय से मस्तक झुकाते हुए कहा ॥५९॥ कि हे माता! तुम्हारे कहने से मैं आज घृणित कार्य भी कर सकता हूँ । जो बात तुम्हारे मन में हो सो कहो; अन्यथा विचार मत करो ॥६०॥ तदनन्तर स्वस्तिमती ने उसके लिए नारद और पर्वत के विवाद का सब वृत्तान्त कह सुनाया और साथ ही इस बात की प्रेरणा की कि यद्यपि मेरे पुत्र का पक्ष मिथ्या ही है तो भी तुम इसका समर्थन करो ॥६१॥ राजा वसु यद्यपि शास्त्र के यथार्थ अर्थ को जानता था पर स्वस्तिमती ने उसे बार-बार प्रेरणा देकर अपने पक्ष में स्थिर रखा । इस तरह मूर्ख सत्य के वश हो राजा ने उसकी बात स्वीकृत कर ली ॥६२॥ तदनन्तर स्वस्तिमती राजा वसु के लिए बार-बार अनेकों प्रिय आशीर्वाद देकर अत्यन्त सन्तुष्ट होती हुई अपने घर गयी ॥६३॥ अथानन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल ही नारद और पर्वत राजा वसु के पास गये । कुतूहल से भरे अनेकों लोग उनके साथ थे ॥६४॥ चार प्रकार के जनपद, नाना प्रजाजन, सामन्त और मन्त्री लोग शीघ्र ही उस वादस्थल में आ पहुँचे ॥६५॥ तदनन्तर सज्जनों के बीच नारद और पर्वत का बड़ा भारी विवाद हुआ । उनमें से नारद कहता था कि अज का अर्थ बीजरहित धान है और, पर्वत कहता था कि अज का अर्थ पशु है ॥६६॥ जब विवाद शान्त नहीं हुआ तब उन्होंने राजा वसु से पूछा कि हे महाराज! इस विषय में गुरु क्षीरकदम्बक ने जो कहा था सो आप कहो । आप अपनी सत्यवादिता से प्रसिद्ध हैं ॥६७॥ इसके उत्तर में राजा वसु ने कहा कि पर्वत ने जो कहा है वही गुरुजी ने कहा था । इतना कहते ही राजा स्फटिक पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ६८ ॥ लोग उस स्फटिक को नहीं जानते थे इसलिए यही समझते थे कि राजा वसु का सिंहासन आकाश में निराधार स्थित है ॥६9॥ नारद ने राजा को सम्बोधते हुए कहा कि वसो ! मिथ्या पक्ष का समर्थन करने से तुम्हारा सिंहासन पृथिवी पर आ पड़ा है । अत: अब भी

सत्य पक्ष का समर्थन करना तुम्हें उचित है ॥70॥ परन्तु राजा वसु तो मोहरूपी मदिरा के नशा में इतना निमग्न था कि उसने फिर भी वही बात कही । इस पाप के फलस्वरूप राजा वसु शीघ्र ही सिंहासन के साथ ही साथ पृथिवी में धंस गया ॥७१॥ हिंसा धर्म की प्रवृत्ति चलाने से वह बहुत भारी पाप के भार से आक्रान्त हो बहुत भारी वेदना वाली तमस्तम:प्रभा नामक सातवीं पृथिवी में गया ॥७२॥ तदनन्तर पाप से भयभीत मनुष्य राजा वसु और पर्वत को लक्ष्य कर धिक्-धिक् कहने लगे जिससे बड़ा भारी कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥७३॥ अहिंसा पूर्ण आचार का उपदेश देने के कारण नारद सम्मान को प्राप्त हुआ । सब लोगों के मुख से यही शब्द निकल रहे थे कि 'यतो धर्मस्ततो जय:' जहाँ धर्म वहाँ विजय ॥७४॥ पापी पर्वत, लोक में धिक्कार रूपी दण्ड की चोट खाकर दुःखी हो शरीर को सुखाता हुआ कुतप करने लगा ॥७५॥ अन्त में मरण कर प्रबल पराक्रम का धारक दुष्ट राक्षस हुआ । उसे पूर्व पर्याय में जो अपमान और धिक्कार रूपी दण्ड प्राप्त हुआ था उसका स्मरण हो आया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि लोगों ने मेरा पराभव किया था इसलिए मैं इसका दु:खदायी बदला लूँगा ॥७७॥ मैं कपटपूर्ण शास्त्र रचकर ऐसा कार्य करूँगा कि जिसमें आसक्त हुए मनुष्य तिर्यंच अथवा नरक-जैसी दुर्गतियों में जावेंगे ॥७8॥ तदनन्तर उस राक्षस ने मनुष्य का वेष रखा, बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत पहना और हाथ से कमण्डलु तथा अक्ष माला आदि उपकरण लिये ॥79॥ इस प्रकार हिंसा कार्यों की प्रवृत्ति कराने में तत्पर तथा क्रूर मनुष्यों को प्रिय भयावह शास्त्र का अत्यन्त अमांगलिक स्वर में उच्चारण करता हुआ वह दुष्ट राक्षस पृथिवी पर भ्रमण करने लगा ॥80॥ वह, स्वभाव से निर्दय था तथा बुद्धिहीन तपस्वियों और ब्राह्मणों को मोहित करने में सदा तत्पर रहता था ॥८१॥ तदनन्तर जिन्हें भविष्य में दुःख प्राप्त होनेवाला था ऐसे मूर्ख प्राणी उसके पक्ष में इस प्रकार पड़ने लगे जिस प्रकार कि अग्नि पर पतंगे पड़ते हैं ॥८२॥ वह उन लोगों से कहता था कि मैं वह ब्रह्मा हूँ जिसने इस चराचर विश्व की रचना की है । यज्ञ की प्रवृत्ति चलाने के लिए मैं स्वयं इस लोक में आया हूँ ॥83॥ मैंने बड़े आदर से स्वयं ही यज्ञ के लिए पशुओं की रचना की हैं । यथार्थ में यज्ञ स्वर्ग की विभूति प्राप्त कराने वाला है इसलिए यज्ञ में जो हिंसा होती: है वह हिंसा नहीं है ॥८४॥ सौत्रामणि नामक यज्ञ में मदिरा पीना दोषपूर्ण नहीं है और गोसव नामक यज्ञ में अगम्या अर्थात् परस्त्री का भी सेवन किया जा सकता है ॥85॥ मातृमेध यज्ञ में माता का और पितृमेध यज्ञ में पिता का वध वेदी के मध्य में करना चाहिए इसमें दोष नहीं है ॥86॥ कछुए की पीठ पर अग्नि रखकर जुह्वक नामक देव को बड़े प्रयत्न से स्वाहा शब्द का उच्चारण करते हुए साकल्य से सन्तृप्त करना चाहिए ॥87॥ यदि इस कार्य के लिए कछुआ न मिले तो एक गंजे सिर वाले पीले रंग के शुद्ध ब्राह्मण को पवित्र जल में मुख प्रमाण नीचे उतारे अर्थात् उसका शरीर मुख तक पानी में डूबा रहे ऊपर केवल कछुआ के आकार का मस्तक निकला रहे उस मस्तक पर प्रचण्ड अग्नि जलाकर आहुति देना चाहिए ॥88-89॥ जो कुछ हो चुका है अथवा जो आगे होगा, जो अमृतत्व का स्वामी है अर्थात् देवपक्षीय है और जो अन्न-जीवी है अर्थात् भूचारी है वह सब पुरुष ही है ॥90॥ इस प्रकार जब सर्वत्र एक ही पुरुष है तब किसके द्वारा कौन मारा जाता है? अर्थात् कोई किसी को नहीं मारता इसलिए यज्ञ में इच्छानुसार प्राणियों की हिंसा करो ॥९१॥ यज्ञ में यज्ञ करने वाले को उन जीवों का मांस खाना चाहिए क्योंकि देवता के उद्देश्य से निर्मित होने के कारण वह मांस पवित्र माना जाता है ॥९२॥ इस प्रकार अत्यन्त पापपूर्ण कार्य दिखाता हुआ वह राक्षस पृथिवी तल पर प्राणियों को यज्ञादि कार्यों में निपुण करने लगा ॥93। तदनन्तर उसकी बातों का विश्वास कर जो लोग सुख की इच्छा से दीक्षित हो हिंसामयी यज्ञ की भूमि में प्रवेश करते थे उन सबको वह लकड़ियों के भार के समान मजबूत बाँधकर आकाश में उड़ जाता था । उस समय उनके शरीर भय से काँप उठते थे, उनकी आंखों की पुतलियाँ घूमने लगती थी । उन्हें वह उलटा कर ऐसा झुकाता था कि उनकी जंघाएँ पीठ तथा ग्रीवा पर और पैर के पंजे सिर पर आ लगते थे तथा पड़ती हुई खून की धाराओं से वे बहुत दुःखी हो जाते थे ॥९४-९६॥ इस कार्य से वे सब बहुत भयंकर शब्द करते हुए चिल्लाते-थे और कहते थे कि हे देव! तुम किसलिए रुष्ट हो गये हो जिससे हम सबको मारने के लिए उद्यत हुए हो ॥९७॥ हे देव! तुम महाबलवान् हो, प्रसन्न होओ, हम सब निर्दोष हैं अत: हम लोगों को छोड़ो। हम सब आपके समक्ष नत शरीर हैं और आप जो आज्ञा देंगे उस सबका पालन करेंगे ॥९८॥ तदनन्तर राक्षस उनसे कहता था कि जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा मारे हुए पशु स्वर्ग जाते हैं उसी प्रकार मेरे द्वारा मारे गये आप लोग भी स्वर्ग जावेंगे ॥९९॥ ऐसा कहकर उसने कितने ही लोगों को जहाँ मनुष्यों का सद्भाव नहीं था ऐसे दूसरे द्वीपों में डाल दिया । कितने ही लोगों को समुद्र में फेंक दिया, कितने ही लोगों को सिंहादिक दुष्ट जीवों के मध्य डाल दिया और जिस प्रकार धोबी अनेक प्रकार के शब्द करता हुआ शिलातल पर वस्त्र पछाड़ता है उसी तरह कितने ही लोगों को घुमा-घुमाकर पर्वत की चोटी पर पछाड़ दिया ॥१००-१०१॥ दुःख से वे मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो गये थे, उन सबके चित्त भयभीत थे, और अन्त में माता पिता, पुत्र और भाई आदि का स्मरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥१०२॥ जो मरने

से बाकी बचे थे वे मिथ्या शास्त्ररूपी कन्या से मोहित थे अत: उन्होंने राक्षस के द्वारा दिखलाये हुए हिंसा यज्ञ की वृद्धि की ॥१०३॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! जो मनुष्य इस भयंकर हिंसा यज्ञ को नहीं करते वे महादुख देने वाली दुर्गति में नहीं जाते हैं ॥१०४॥ हे श्रेणिक! मैंने यह तेरे लिए हिंसा यज्ञ की उत्पत्ति कही । रावण इसे पहले से ही जानता था ॥१०५॥ अथानन्तर रावण, स्वर्ग की तुलना करने वाले उस राजपुर नगर में पहुँचा जहाँ मरुत्वान् नाम का राजा नगर के बाहर यज्ञशाला में बैठा था ॥१०६॥ हिंसा धर्म में प्रवीण संवर्त नाम का प्रसिद्ध ब्राह्मण उस यज्ञ का प्रधान याजक था जो राजा के लिए विधिपूर्वक सब उपदेश दे रहा था ॥१०७॥ पृथ्वी में जो ब्राह्मण थे वे सब इस यज्ञ में निमन्त्रित किये गये थे इसलिए लोभ के वशीभूत हो स्त्री-पुत्रादि के साथ वहाँ आये थे ॥१०८॥ लाभ की आशा से जिनके मुख प्रसन्न थे तथा जो वेद का मंगल पाठ कर रहे थे ऐसे बहुत सारे ब्राह्मणों से यज्ञ की समस्त भूमि आवृत होकर क्षोभ को प्राप्त हो रही थी॥१०९॥ सैकड़ों दीनहीन पशु भी वहाँ लाकर बाँधे गये गये थे । भय से उन पशुओं के पेट दुःख की सांसें भर रहे थे॥ ११०॥ उसी समय अपनी इच्छा से आकाश में भ्रमण करते हुए नारद ने वहाँ एकत्रित लोगों का समूह देखा ॥१११॥ उसे देख नारद आश्चर्य से चकित हो, कुतूहल जनित शरीर की चेष्टाओं को धारण करता हुआ इस प्रकार विचार करने लगा ॥११२॥ यह उत्तम नगर कौन है? यह किसकी सेना है? और यह सागर के आकार किसकी प्रजा यहाँ किस प्रयोजन से ठहरी हुई है? ॥११३॥ मैंने बहुत से नगर, बहुत से लोगों के समूह और बहुत सारी सेनाएं देखी पर कभी ऐसा जनसमूह नहीं देखा ॥११४॥ ऐसा विचारकर नारद कुतूहल वश आकाश से नीचे उतरा सो ठीक ही है क्योंकि कुतूहल देखना ही उसका खास काम है ॥११५॥

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतमस्वामी से पूछा कि भगवन्! वह नारद कौन है? उसकी उत्पत्ति किससे हुई है और उसके कैसे गुण हैं? ॥ ११६॥ इसके उत्तर में गणधर कहने लगे कि श्रेणिक! ब्रह्म रुचि नाम का एक ब्राह्मण था और उसकी कूर्मी नामक स्त्री थी ॥११७॥ ब्राह्मण तापस होकर वन में रहने लगा और फल तथा कन्द मूल आदि भक्षण करने लगा । ब्राह्मणी भी इसके साथ रहती थी सो ब्राह्मण ने इसमें गर्भ धारण किया ॥११८॥ अथानन्तर किसी दिन संयम के धारक निर्ग्रन्थमुनि कहीं जा रहे थे सो मार्गवश उस स्थान पर आये ॥११९॥ और श्रम को दूर करने वाले उस आश्रम में थोड़ी देर के लिए विश्राम करने लगे । उसी आश्रम में उन मुनियों ने उस ब्राह्मण दम्पती को देखा जिनका कि आकार तो उत्तम था पर कार्य निन्दनीय था ॥१२०॥ जिसका शरीर पीला था, स्तन स्कूल थे, जो दुर्बल थी, गर्भ के भार से म्लान थी और सांसें भरती हुई सर्पिणी के समान जान पड़ती थी ऐसी स्त्री को देखकर संसार के स्वभाव को जानने वाले उदार हृदय मुनियों के मन में दयावश उक्त दम्पती को धर्मोपदेश देने का विचार उत्पन्न हुआ ॥१२१-१२२॥ उन मुनियों के बीच में जो बड़े मुनि-थे वे मधुर शब्दों में उपदेश देने लगे । उन्होंने कहा कि बड़े खेद की बात है देखो, ये प्राणी कर्मों के द्वारा कैसे नचाये जाते हैं? ॥१२३॥ हे तापस! तूने संसार-सागर से पार होने की आशा से धर्म समझ भाई-बन्धुओं का त्याग कर स्वयं अपने आपको इस वन के मध्य क्यों कष्ट में डाला है? ॥१२४॥ अरे भले मानुष! तूने प्रव्रज्या धारण की है पर तुझमें गृहस्थ से भेद ही क्या है? तूने जो चारित्र धारण किया था उसके तू प्रतिकूल चल रहा है । केवल वेष ही तेरा दूसरा है पर चारित्र तो गृहस्थ-जैसा ही है ॥१२५॥ जिस प्रकार मनुष्य वमन किये हुए अन्न को फिर नहीं खाते हैं उसी प्रकार विज्ञजन जिन विषयों का परित्याग कर चुकते हैं फिर उनकी इच्छा नहीं करते ॥१२६॥ जो लिंग धारी साधु एक बार स्त्री का त्याग कर पुन: उसका सेवन करता है वह पापी है और मरकर भयंकर अटवी में भेड़िया होता है ॥१२७॥ जो सब प्रकार के आरम्भ में स्थित रहता हुआ, अब्रह्म सेवन करता हुआ और नशा में निमग्न रहता हुआ भी 'मैं दीक्षित हूँ' ऐसा अपने आपको जानता है वह अत्यन्त मोही है ॥१२८॥ जो ईर्ष्या और काम से जल रहा है, जिसकी दृष्टि दुष्ट है, जिसकी आत्मा दूषित है, और जो आरम्भ में वर्तमान है **अर्थ**ात् जो सब प्रकार के आरम्भ करता है उसकी प्रव्रज्या कैसी? तुम्हीं कहो ॥१२९॥ जो कुदृष्टि से गर्वित है, मिथ्या वेशधारी है, और जिसका मन विषयों के अधीन है फिर भी अपने आपको तपस्वी कहता है वह झूठ बोलने वाला है वह व्रती कैसे हो सकता है? ॥ १३०॥ जो सुखपूर्वक उठता-बैठता और विहार करता है तथा जो सदा भोजन एवं वस्त्रों में बुद्धि लगाये रखता है फिर भी अपने आपको सिद्ध मानता है वह मूर्ख अपने आपको धोखा देता है ॥ १३१॥ जिस प्रकार जलते हुए मकान से कोई किसी तरह बाहर निकले और फिर से अपने आपको उसी मकान में फेंक दे तो वह मूर्ख ही समझा जाता है ॥१३२॥ अथवा जिस प्रकार कोई पक्षी छिद्र पाकर पिंजडे से बाहर निकल आवे और अज्ञान से प्रेरित हो पुन: उसी में लौट आवे तो यह उसकी मूर्खता ही है ॥१३३॥ उसी प्रकार कोई मनुष्य दीक्षित होकर पुन: इन्द्रियों की आधीनता को प्राप्त हो जावे तो वह लोक में निन्दित होता है और आत्मकल्याण को प्राप्त नहीं होता ॥१३४॥ जिनका चित्त एकाग्र है ऐसे सर्व-परिग्रह का त्याग करने वाले मुनि ही ध्यान करने योग्य तत्व का ध्यान कर सकते हैं तुम्हारे जैसे आरम्भी

मनुष्य नहीं ॥१३१॥ परिग्रह की संगति से प्राणी के रागद्वेष की उत्पत्ति होती है । राग से काम उत्पन्न होता है और द्वेष से जीवों का विघात होता है ॥१३६॥ जो काम और क्रोध से अभिभूत ही रहा है उसका मन मोह से आक्रान्त हो जाता है और जो करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मों के विषय में मूढ़ है उसकी बुद्धि विवेकयुक्त नहीं हो सकती ॥१३७॥ जो मनुष्य इच्छानुसार चाहे जो कार्य करता हुआ अशुभ कर्म का उपार्जन करता है इस भयंकर संसार-सागर में उसका भ्रमण कभी भी बन्द नहीं होता ॥१३८॥ ये सब दोष ससंग इस ही उत्पन्न होते हैं ऐसा जानकर विद्वान् लोग अपने आपके द्वारा अपने आपका नियन्त्रण कर वैराग्य को धारण करते हैं ॥१३९॥ इस प्रकार परमार्थ का उपदेश देने वाले वचनों से सम्बोधा गया ब्रह्म रुचि ब्राह्मण मिथ्यात्व से च्युत हो दिगम्बरी दीक्षा को प्राप्त हुआ और अपनी कूर्मी नामक स्त्री से नि:स्पृह हो महा वैराग्य से युक्त होता हुआ गुरु के साथ सुखपूर्वक विहार करने लगा । उसका गुरु स्नेह ऐसा ही था ॥१४०-१४१॥ कूर्मी ने भी जान लिया कि जीव का संसार में जो परिभ्रमण होता है वह राग के वश ही होता है । ऐसा जानकर वह पापकार्य से विरत हो शुद्धाचार में निमग्न हो गयी ॥१४२॥ वह मिथ्यामार्गियों का ससंग छोड़कर सदा जिन-भक्ति में ही तत्पर रहने लगी और पति से रहित होने पर भी निर्जन वन में सिंहनी के समान सुशोभित होने लगी ॥१४३॥ उस धैर्यशालिनी ने दसवें मास में शुभ पुत्र उत्पन्न किया । पुत्र को देखकर कर्मों की चेष्टा को जानने वाली कूर्मी ने विचार किया ॥१४४॥ कि चूँकि महर्षियों ने इस सम्पर्क को अनर्थ का कारण कहा था इसलिए मैं इस सम्पर्क अर्थात् पुत्र की संगति को छोड़कर आत्मा का हित करती हूँ ॥१४५॥ इस शिशु ने भी अपने भवान्तर में जो कर्मों की विधि अर्जित की है उसी का यह अच्छा या बुरा फल भोगेगा ॥१४६॥ घनघोर अटवी, समुद्र अथवा शत्रुओं के पिंजड़े में स्थित जन्तु की अपने आपके द्वारा किये हुए कर्म ही रक्षा करते हैं अन्य लोग नहीं ॥१४७॥ जिसका काल आ जाता है ऐसा स्वकृत कर्मों की अधीनता को प्राप्त हुआ जीव माता को गोद में स्थित होता हुआ भी मृत्यु के द्वारा हर लिया जाता है ॥१४८॥ इस प्रकार तत्व को जानने वाली तापसी ने निरपेक्ष बुद्धि से उस बालक को वन में छोड़ दिया । तदनन्तर मत्सर भाव से रहित होकर वह बड़ी शान्ति से आलोक नगर में इन्द्रमालिनी नामक आर्यिका की शरण में गयी और उनके पास बहुत भारी संवेग से उत्तम चेष्टा की धारक आर्यिका हो गयी ॥१४९-१५०॥

अथानन्तर-आकाश में जृम्भक नामक देव जाते थे सो उन्होंने रोदनादि क्रिया से रहित उस पुण्यात्मा बालक को देखा ॥१५१॥ उन दयालु देवों ने आदर से ले जाकर उसका पालन किया और उसे रहस्य सहित समस्त शास्त्र पढ़ाये ॥१५२॥ विद्वान् होने पर उसने आकाशगामिनी विद्या प्राप्त की और परम यौवन प्राप्त कर अत्यन्त दृढ़ अणुव्रत धारण किये ॥१५३॥ उसने चिह्नों से पहचानने वाली माता के दर्शन किये और उसकी प्रीति से अपने पिता निर्ग्रन्थ गुरु के भी दर्शन कर सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१५४॥ क्षुल्लक का चारित्र प्राप्त कर वह जटारूपी मुकुट को धारण करता हुआ अवद्वार के समान हो गया **अर्थ**ात् न गृहस्थ ही रहा और न मुनि ही किन्तु उन दोनों के मध्य का हो गया ॥१५५॥ वह कन्दर्प, कौत्कुच्य और मौखर्य्य से अधिक स्नेह रखता था, कलह देखने को सदा उसे इच्छा बनी रहती थी, वह संगीत का प्रेमी और प्रभावशाली था ॥१५६॥ राजाओं के समूह उसका सम्मान करते थे, उसके आगमन में कभी कोई रुकावट नहीं करते थे अर्थात् वह राजाओं के अन्तःपुर आदि सुरक्षित स्थानों में भी बिना किसी रुकावट के आ-जा सकता था । और निरन्तर कौतूहलों पर दृष्टि डालता हुआ आकाश तथा पृथिवी में भ्रमण करता रहता था ॥१५७॥ देवों ने उसका पालन-पोषण किया था इसलिए उसकी सब चेष्टाएँ देवों के समान थीं । वह देवर्षि नाम से प्रसिद्ध था और विद्याओं से प्रकाशमान् तथा आश्चर्यकारी था ॥१५८॥

अपनी इच्छा से संचार करता हुआ वह नारद किसी तरह राजपुर नगर की यज्ञशाला के समीप पहुँचा और वहाँ पास ही आकाश में खड़ा होकर मनुष्यों से भरी हुई यज्ञभूमि को देखने लगा ॥१५९॥ वहाँ बँधे हुए पशुओं को देखकर वह दया से युक्त हो यज्ञभूमि में उतरा । वाद-विवाद करने में वह पण्डित था ही ॥१६०॥ उसने राजा मरुत्वान् से कहा कि हे राजन् ! तुमने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है? तुम्हारा यह प्राणि समूह की हिंसा का कार्य दुर्गति में जाने वालों के लिए द्वार के समान है ॥161॥ इसके उत्तर में राजा ने कहा कि इस कार्य से मुझे जो फल प्राप्त होगा वह समस्त शास्त्रों का **अर्थ** जानने में निपुण यह याजक (पुरोहित)जानता है ॥१६२॥ नारद ने याजक से कहा कि अरे बालक! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है? सर्वज्ञ भगवान ने तेरे इस कार्य को दुःख का कारण देखा है ॥१६३॥ नारद की बात सुन संवर्त नामक याजक ने कुपित होकर कहा कि अहो, तेरी बड़ी मूर्खता है जो इस तरह बिना किसी हेतु के अत्यन्त असम्बद्ध बात बोलता है ॥१६४॥ तुम्हारा जो यह मत है कि कोई पुरुष सर्वज्ञ वीतराग है सो वह सर्वज्ञ वक्ता आदि होने से दूसरे पुरुष के समान सर्वज्ञ वीतराग सिद्ध नहीं होता । क्योंकि जो सर्वज्ञ वीतराग है वह वक्ता नहीं हो सकता और जो वक्ता है वह सर्वज्ञ वीतराग नहीं हो सकता॥ १६५॥ अशुद्ध अर्थात् रागी-द्वेषी मनुष्यों के द्वारा कहे हुए वचन मलिन होते हैं और इनसे विलक्षण कोई सर्वज्ञ है नहीं, क्योंकि उसका साधक कोई प्रमाण

नहीं पाया जाता । इसलिए अकर्तृक वेद ही तीन वर्णों के लिए अतीन्द्रिय पदार्थ के विषय में प्रमाण है । उसी में यज्ञ कर्म का कथन किया है । यज्ञ के द्वारा अपूर्व नामक ध्रुवधर्म प्रकट होता है जो जीव को स्वर्ग में इष्ट विषयों से उत्पन्न फल प्रदान करता है ॥१६६-१६8॥ वेदी के मध्य पशुओं का जो वध होता है वह पाप का कारण नहीं है क्योंकि उसका निरूपण शास्त्र में किया गया है इसलिए निश्चिन्त होकर यज्ञ आदि करना चाहिए ॥१६६॥ ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है इसलिए जो जिस कार्य के लिए रचे गये हैं उस कार्य के लिए उनका विघात करने में दोष नहीं है ॥१७०॥ संवर्त के इतना कह चुकने पर नारद ने कहा कि तूने सब मिथ्या कहा है । तेरी आत्मा मिथ्या शास्त्रों की भावना से दूषित हो रही है इसीलिए तूने ऐसा कहा है सुन ॥ १७१॥ तू कहता है कि सर्वज्ञ नहीं है सो यदि सर्व प्रकार के सर्वज्ञ का अभाव है तो शब्द सर्वज्ञ, अर्थ सर्वज्ञ और बुद्धि सर्वज्ञ इस प्रकार सर्वज्ञ के तीन भेद तूने स्वयं अपने शब्दों द्वारा क्यों कहे? स्ववचन से ही तू बाधित होता है ॥१७२॥ यदि तू कहता है कि शब्द सर्वज्ञ और बुद्धि सर्वज्ञ तो है पर अर्थ सर्वज्ञ कोई नहीं है तो यह कहना नहीं बनता क्योंकि गो आदि समस्त पदार्थों में शब्द, अर्थ और बुद्धि तीनों साथ ही साथ देखे जाते हैं ॥१७३॥ यदि पदार्थ का बिलकुल अभाव है तो उसके बिना बुद्धि और शब्द कहाँ टिकेंगे अर्थात् किसके आश्रय से उस प्रकार को बुद्धि होगी और उस प्रकार शब्द बोला जावेगा । और उस प्रकार का अर्थ बुद्धि और वचन के व्यतिक्रम को प्राप्त हो जायेगा ॥१७४॥ बुद्धि में जो सर्वज्ञ का व्यवहार होता है वह गौण है और गौण व्यवहार मुख्य की अपेक्षा करके प्रवृत्त होता है । जिस प्रकार चैत्र के लिए सिंह कहना मुख्य सिंह की अपेक्षा रखता है उसी प्रकार बुद्धि सर्वज्ञ वास्तविक सर्वज्ञ की अपेक्षा रखता है ॥१७१॥ इस प्रकार इस अनुमान से तुम्हारी सर्वज्ञ नहीं है इस प्रतिज्ञा में विरोध आता है तथा हमारे मत में सर्वथा अभाव माना नहीं गया है ॥१७६॥ पृथिवी में जिसकी महिमा व्याप्त है ऐसा यह सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहाँ रहता है इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि दिव्य ब्रह्मपुर में आकाश के समान निर्मल आत्मा सुप्रतिष्ठित है ॥१७७॥ तुम्हारे इस आगम से भी प्रतिज्ञा वाक्य विरोध को प्राप्त होता है । यदि सर्वथा सर्वज्ञ का अभाव होता तो तुम्हारे आगम में उसके स्थान आदि की चर्चा क्यों की जाती और इस प्रकार साध्य अर्थ के अनेकान्त हो जाने पर अर्थात् कथचित् सिद्ध हो जाने पर वह हमारे लिए सिद्ध साधन है क्योंकि यही तो हम कहते हैं ॥१७8॥ सर्वज्ञ के अभाव में तुमने जो वक्तृत्व है दिया है सो वक्तृत्व तीन प्रकार का होता है -- सर्वथा अयुक्त वक्तृत्व, युक्त वक्तृत्व और सामावक्तृत्व । उनमें से सर्वथा अयुक्त वक्तृत्व तो बनता नहीं, क्योंकि प्रतिवादी के प्रति वह सिद्ध नह है । यदि स्याद्वाद सम्मत वक्तृत्व लेते हो तो तुम्हारा हेतु असिद्ध हो जाता है, क्योंकि इससे निर्दोष वक्ता की सिद्धि हो जाती है । दूसरे आपके जैमिनि आदिक वेदार्थ वक्ता हम लोगों को भी नहीं हैं । वक्तृत्व हेतु से देवदत्त के समान वे भी सदोष वक्ता सिद्ध होते हैं, इसलिए आपका य वक्तृत्व हेतु विरुद्ध अर्थ को सिद्ध करनेवाला होने से विरुद्ध हो जाता है॥179-180॥ तथा प्रजापति आदि के द्वारा दिया गया यह उपदेश प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी देवदत्तादि के समा रागी-द्वेषी ही हैं और ऐसे रागी-द्वेषी पुरुषों से जो आगम कहा जावेगा वह भी सदोष ही हो अत: निर्दोष आगम का तुम्हारे यहां अभाव सिद्ध होता है ॥१८१॥ एक को जिसने जान लिया उस सद्रूप से अखिल पदार्थ जान लिये, अत: सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि में जो तुमने दूसरे पुरुष का दृष्टान्त दिया है उसे तुमने ही साध्य विकल कह दिया है, क्योंकि वह चूँकि एक को जानता है इसलिए वह सबको जानता है इसकी सिद्धि हो जाती है ॥१८२॥ दूसरे तुम्हारे मत से सर्वथा युक्त वचन बोलने वाला पुरुष दृष्टान्तरूप से है नहीं,अत: आपको दृष्टान्त में साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखलाना चाहिए । अर्थात् जिस प्रकार आप अन्वय दृष्टान्त में अन्वयव्याप्ति करके घटित बतलाते हैं उसी प्रकार व्यतिरेक दृष्टान्त में व्यतिरेक-व्याप्ति भी घटित करके बतलानी चाहिए तभी साध्य की सिद्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं ॥१८३॥ तथा आपके यहाँ सुनकर अदृष्ट वस्तु के विषय में वेद में प्रमाणता आती है, अत: वस्तुत्व हेतु के बल से सर्वज्ञ के विषय में दूषण उपस्थित करने में इसका आश्रय करना उचित नहीं है अर्थात् वेदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने से उसके बल से सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि नहीं की जा सकती ॥१८४॥ फिर थोड़ा विचार तो करो कि सर्वज्ञता के साथ वक्तृत्व का क्या विरोध है? मैं तो कहता हूँ कि सर्वज्ञता का सुयोग मिलने पर यह पुरुष अधिक वक्ता अपने आप हो जाता है ॥१८५॥ जो बेचारा स्वयं नहीं जानता है वह बुद्धि का दरिद्र दूसरों के लिए क्या कह सकता है? अर्थात् कुछ नहीं । इस प्रकार व्यतिरेक और अविनाभाव का अभाव होने से वह साधक नहीं हो सकता ॥१८६॥ हमारा पक्ष तो यह है कि जिस प्रकार कि सुवर्णादिक धातुओं का मल किसी में बिलकुल ही क्षीण हो जाता है उसी प्रकार यह अविद्या अर्थात् अज्ञान और रागादिक मल कारण पाकर किसी पुरुष में अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं । जिसमें क्षीण हो जाते हैं बही सर्वज्ञ कहलाने लगता है ॥१८७॥ हमारे सिद्धान्त से पदार्थों के जो धर्म अर्थात् विशेषण हैं वे अपने से विरुद्ध धर्म की अपेक्षा अवश्य रखते हैं जिस प्रकार कि उत्पल आदि के लिए जो नील विशेषण दिया जाता

है उससे यह सिद्ध होता है कि कोई उत्पल ऐसा भी होता है जो कि नील नहीं है । इसी प्रकार पुरुष के लिए जो आपके यहाँ असर्वज्ञ विशेषण है वह सिद्ध करता है कि कोई पुरुष ऐसा भी है जो असर्वज्ञ नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ है । यथार्थ में विशेषण की सार्थकता सम्भव और व्यभिचार रहते ही होती है जैसा कि अन्यत्र कहा है - 'सम्भवव्यभिचारास्यां स्याद्विशेषणमथंवत् । न शैत्येन न् चौष्ण्येन वह्नि: क्वापि विशिष्यते ॥' अर्थात् सम्भव और व्यभिचार के का:रण ही विशेषण सार्थक होता है । अग्नि के लिए कहीं भी शीत विशेषण नहीं दिया जाता क्योंकि वह सम्भव नहीं है इसी प्रकार कहीं भी उष्ण विशेषण नहीं दिया जात्रा क्योंकि अग्नि सर्वत्र उष्ण ही होती है । इसी प्रकार तुम्हारे सिद्धान्तानुसार यदि पुरुष असर्वज्ञ ही होता तो उसके लिए असर्वज्ञ विशेषण देना निरर्थक था । उसकी सार्थकता तभी है जब किसी पुरुष को सर्वज्ञ माना जावे ॥१८८॥ वेद का कोई कर्ता नहीं है यह बात युक्ति के अभाव में सिद्ध नहीं होती अर्थात् अकर्तृत्व की संगति नहीं बैठती जब कि वेद का कर्ता है इस विषय में अनेक हेतु सम्भव हैं । जिस प्रकार दृश्यमान घट-पटादि पदार्थ सहेतुक होते हैं उसी प्रकार वेद सकर्ता है इस विषय में भी अनेक हेतु सम्भव हैं ॥१८६॥ चूँकि वेद पद और वाक्यादि रूप है तथा विधेय और प्रतिषेध्य अर्थ से युक्त है अत: कर्तृमान् है, किसी के द्वारा बनाया गया है । जिस प्रकार मैत्र का काव्य पदवाक्य रूप होने से सकर्तृक है उसी प्रकार वेद भी पदवाक्य रूप होने से सकर्तृक है ॥१९०॥ इसके साथ लोक में यह सुना जाता है कि वेद की उत्पत्ति ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि पुरुषों से हुई है सो इस प्रसिद्धि का दूर किया जाना शक्य नहीं है ॥१९१॥ सम्भवत: तुम्हारा यह विचार हो कि ब्रह्मा आदि वेद के कर्ता नहीं हैं किन्तु प्रवक्ता अर्थात् प्रवचन करने वाले हैं तो वे प्रवचन कर्ता आपके मत से राग-द्वेषादि से युक्त ही ठहरेंगे: ॥१९२॥ और यदि सर्वज्ञ हैं तो वे ग्रन्थ का अन्यथा उपदेश कैसे देंगे और अन्यथा व्याख्यान कैसे करेंगे, क्योंकि सर्वज्ञ होने से उनका मत प्रमाण है । इस प्रकार विचार करने पर सर्वज्ञ की ही सिद्धि होती है ॥१९३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के भेद से जो जाति के चार भेद हैं वे बिना हेतु के युक्तिसंगत नहीं हैं । यदि कहो कि वेदवाक्य और अग्नि के संस्कार से दूसरा जन्म होने के कारण उनके देहीवशेष का ज्ञान होता है सो यह कहना भी युक्त नहीं है ॥१९४॥ हाँ, जहां-जहां जाति-भेद देखा जाता है वहां-वहां शरीर में विशेषता अवश्य पायी जाती है जिस प्रकार कि मनुष्य, हाथी, गधा, गाय, घोड़ा आदि में पायी जाती है ॥१९५॥ इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि अन्य जातीय पुरुष के द्वारा अन्य जातीय स्त्री में गर्भोत्पत्ति नहीं देखी जाती परन्तु ब्राह्मणादिक में देखी जाती है । इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणादिक में जातिवैचित्र्य नहीं है ॥१९६॥ इसके उत्तर में यदि तुम कहो कि गधे के द्वारा घोड़ी में गर्भोत्पत्ति देखी जाती है, इसलिए उक्त युक्ति ठीक नहीं है? तो ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि गधा और घोड़ा दोनों अत्यन्त भिन्न जातीय नहीं है क्योंकि एक खुर आदि की अपेक्षा उनके शरीर में समानता पायी जाती है ॥१९७॥ अथवा दोनों में भिन्न जातीयता ही है यदि ऐसा पक्ष है तो दोनों की जो सन्तान होगी वह विसदृश ही होगी जैसे कि गधा और घोड़ी के समागम से जो सन्तान होगी वह न घोड़ा ही कहलावेगी और न गधा ही । किन्तु खच्चर नाम की धारक होगी किन्तु इस प्रकार सन्तान की विसदृशता ब्राह्मणादि में नहीं देखी जाती इससे सिद्ध होता है कि वर्णव्यवस्था गुणों के अधीन है जाति के अधीन नहीं है ॥१९८॥ इसके अतिरिक्त जो यह कहा जाता है कि ब्राह्मण की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है, क्षत्रिय की उत्पत्ति भुजा से हुई है, वैश्य की उत्पत्ति जंघा से हुई है और शूद्र की उत्पत्ति पैर से हुई है सो ऐसा हेतुहीन कथन करनेवाला अपने घर में ही शोभा देता है सर्वत्र नहीं ॥१९९॥ तथा ऋषिश्रृंग आदि मानवों में जो ब्राह्मणता कही जाती है वह गुणों के संयोग से कही जाती है ब्राह्मण योनि में उत्पन्न होने से नहीं कही जाती ॥२००॥ वास्तव में समस्त गुणों के वृद्धिंगत होने के कारण भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मा कहलाते हैं और जो सत्पुरुष उनके भक्त हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं ॥२०१॥ क्षत **अर्थ**ात् विनाश से त्राण अर्थात् रक्षा करने के कारण क्षत्रिय कहलाते हैं, शिल्प अर्थात् वस्तु निर्माण या व्यापार में प्रवेश करने से लोग वैश्य कहे जाते हैं और श्रुत अर्थात् प्रशस्त आगम से जो दूर रहते हैं वे शूद्र कहलाते हैं ॥२०२॥ कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है, गुण ही कल्याण करने वाले हैं । यही कारण है कि व्रत धारण करने वाले चाण्डाल को भी गणधरादि देव ब्राह्मण कहते हैं ॥२०३॥

विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल आदि के विषय में जो समदर्शी हैं वे पण्डित कहलाते हैं अथवा जो पण्डितजन हैं वे इन सबमें समदर्शी होते हैं ॥२०४॥ इस प्रकार ब्राह्मणादिक चार वर्ण और चाण्डाल आदि विशेषणों का जितना अन्य वर्णन है वह सब आचार के भेद से ही संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है ॥२०५॥

इसके पूर्व तुमने कहा था कि यज्ञ से अपूर्व अथवा अदृष्ट नाम का धर्म व्यक्त होता है सो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अपूर्व धर्म तो आकाश के समान नित्य है वह कैसे व्यक्त होगा? और यदि व्यक्त होता ही है तो फिर वह नित्य न रहकर घटादि के समान अनित्य होगा ॥

२०६॥ जिस प्रकार दीपक के व्यक्त होने के बाद रूप का ज्ञान उसका फल होता है उसी प्रकार स्वर्गादि की प्राप्ति रूपी फल भी अपूर्व धर्म के व्यक्त होने के बाद ही होना चाहिए पर ऐसा नहीं है ॥२०7॥

तुमने कहा है कि वेदी के मध्य में पशुओं का जो वध होता है वह शास्त्र निरूपित होने से पाप का कारण नहीं है सो ऐसा कहना अयुक्त है उसका कारण सुनो ॥२०८॥ सर्वप्रथम तो वेद शास्त्र हैं यही बात असिद्ध है क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माता के समान समस्त संसार के लिए हित का उपदेश दे ॥२०९॥ जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्त का निरूपण करना उचित नहीं है परन्तु इस याज्ञिक हिंसा में प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सदोष है । उस प्रायश्चित्त का कुछ वर्णन यहां किया जाता है ॥२१०॥ जो सोमयज्ञ में सोम **अर्थ** ात् चन्द्रमा के प्रतीक रूप सोमलता से यज्ञ करता है जिसका तात्पर्य होता है कि वह देवों के वीर सोम राजा का हनन करता है उसके इस यज्ञ की दक्षिणा एक सौ बारह गौ है ॥२११॥ इन एक सौ बारह दक्षिणाओं में से सौ दक्षिणाएं देवों के वीर सोम का शोधन करती हैं, दस दक्षिणाएं प्राणों का तर्पण करती हैं, ग्यारहवीं दक्षिणा आत्मा के लिए है और जो बारहवीं दक्षिणा है वह केवल दक्षिणा ही है । अन्य दक्षिणाओं का व्यापार तो दोषों के निवारण करने में होता है ॥२१२-२१३॥ तथा पशु-यज्ञ में यदि पशु यज्ञ के समय शब्द करे या अपने अगले दोनों पैरों से छाती पीटे तो हे अनल! तुम मुझे इससे होनेवाले समस्त दोष से मुक्त करो ॥२१४॥ इत्यादि रूप से जो दोषों के बहुत से प्रायश्चित्त कहे गये हैं उनके विषय में अन्य आगम से प्रकृत में विरोध दिखाई देता है ॥२१५॥

जिस प्रकार व्याध के द्वारा किया हुआ वध दुःख का कारण होने से पापबन्ध का निमित्त है उसी प्रकार वेदी के बीच में पशु का जो वध होता है वह भी उसे दुःख का कारण होने से पापबन्ध का ही निमित्त है ॥२१६॥

ब्रह्मा के द्वारा लोक की सृष्टि हुई है यह कहना भी सत्य नहीं है क्योंकि विचार करने पर ऐसा कथन जीर्णतृण के समान निस्सार जान पड़ता है ॥२१७॥ हम पूछते हैं कि जब ब्रह्मा कृतकृत्य है तो उसे सृष्टि की रचना करने से क्या प्रयोजन है? कहो कि क्रीड़ावश वह सृष्टि की रचना करता है तो फिर कृतकृत्य कहाँ रहा? जिस प्रकार क्रीड़ा का अभिलाषी बालक अकृत-कृत्य है उसी प्रकार क्रीड़ा का अभिलाषी ब्रह्मा भी अकृतकृत्य कहलायेगा ॥२९८॥ फिर ब्रह्मा अन्य पदार्थों के बिना स्वयं ही रति को क्यों नहीं प्राप्त हो जाता? जिससे सृष्टि निर्माण की कल्पना करनी पड़ी । इसके सिवाय एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है तो इसके सहायक करण, अधिकरण आदि कौनसे पदार्थ हैं? ॥२९९॥ फिर संसार में सब लोग एक सदृश नहीं हैं, कोई सुखी देखे जाते हैं और कोई दुःखी देखे जाते हैं । इससे यह मानना पड़ेगा कि कोई लोग तो ब्रह्मा के उपकारी हैं और कोई अपकारी हैं । जो उपकारी हैं उन्हें यह सुखी करता है और कोई अपकारी हैं उन्हें यह दुखी करता है ॥२२०॥

इस सब विसंवाद से बचने के लिए यदि यह माना जाये कि ईश्वर कृतकृत्य नहीं है तो वह कर्मों के परतन्त्र होने के कारण ईश्वर नहीं कहलावेगा जिसप्रकार कि आप कर्मों के परतन्त्र होने के कारण ईश्वर नहीं हैं ॥२२१॥ जिस प्रकार रथ, मकान आदि पदार्थ विशिष्ट आकार से सहित होने के कारण किसी बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से निर्मित माने जाते हैं उसी प्रकार कमल आदि पदार्थ भी विशिष्ट आकार से युक्त होने के कारण किसी बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से रचित होना चाहिए । जिसकी बुद्धि से इन सबकी रचना होती है वही ईश्वर है इस अनुमान से सृष्टिकर्ता ईश्वर की सिद्धि होती है सो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि एकान्तवादी का उक्त अनुमान समीचीनता को प्राप्त नहीं है ॥२२२-२२३॥ विचार करने पर जान पड़ता है कि रथ आदि जितने पदार्थ हैं वे सब एकान्त से बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से ही उत्पन्न होते हैं ऐसी बात नहीं है । क्योंकि रथ आदि वस्तुओं में जो लकड़ी आदि पदार्थ अवस्थित है वही रथादिरूप उत्पन्न होता है ॥ २२४॥ जिस प्रकार रथ आदि के बनाने में बढ़ई आदि को क्लेश उठाना पड़ता है उसी प्रकार ईश्वर को भी सृष्टि के बनाने में क्लेश उठाना पड़ता होगा । इस तरह उसके सुखी होने में बाधा प्रतीत होती है । यथार्थ में तुम जिसे ईश्वर कहते हो वह नाम कर्म है ॥२२५॥ एक प्रश्न यह भी उठता है कि ईश्वर सशरीर है या अशरीर? यदि अशरीर है तो उससे मूर्तिक पदार्थों का निर्माण सम्भव नहीं है । यदि सशरीर है तो उसका वह विशिष्टाकार वाला शरीर किसके द्वारा रचा गया है? यदि स्वयं रचा गया है तो फिर दूसरे पदार्थ स्वयं क्यों नहीं रचे जाते? यदि यह भाना जाय कि वह दूसरे ईश्वर के यत्न से रचा गया है तो फिर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि उस दूसरे ईश्वर का शरीर किसने रचा? इस तरह अनवस्था दोष उत्पन्न होगा । इस विसंवाद से बचने के लिए यदि यह माना जाये कि ईश्वर के शरीर है ही नहीं तो फिर अमूर्तिक होने से वह सृष्टि का रचयिता कैसे होगा? जिस प्रकार अमूर्तिक होने से आकाश सृष्टि का कर्ता नहीं है उसी प्रकार अमूर्तिक होने से ईश्वर भी सृष्टि का कर्ता नहीं हो , सकता । यदि बढ़ई के समान ईश्वर को कर्ता माना जाये तो वह सशरीर होगा न कि अशरीर ॥२२६-२२८॥ और

तुमने जो कहा कि ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है सो यदि यह सत्य है तो फिर पशुओं से बोझा ढोना आदि काम क्यों लिया जाता? इसमें विरोध आता है; विरोध ही नहीं यह तो चोरी कहलावेगी ॥२२६॥ इससे यह सिद्ध होता है कि रागादि भावों से उपार्जित कर्मों के कारण ही समस्त लोग अनादि संसारसागर में विचित्र दशा का अनुभव करते हैं ॥२३०॥ कर्म पहले होता है कि शरीर पहले होता है? ऐसा प्रश्न करना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनों का सम्बन्ध बीज और वृक्ष के समान अनादि-काल से चला आ रहा है ॥२३१॥ कर्म और शरीर का सम्बन्ध अनादि है इसलिए इसका कभी अन्त नहीं होगा ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्योंकि जिस प्रकार बीज के नष्ट हो जाने से वृक्ष की उत्पत्ति का अभाव देखा जाता है उसी प्रकार कर्म के नष्ट होने से शरीर का अभाव भी देखा जाता है ॥२३२॥ इसलिए पाप कार्य करने वाले किसी द्वेषी पुरुष ने खोटे शास्त्र की रचना कर इस यज्ञ कार्य को प्रचलित किया है ॥२३३॥ तुम उच्च-कुल में उत्पन्न हुए हो और बुद्धिमान् मनुष्य हो इसलिए शिकारियों के कार्य के समान इस पाप-कार्य से विरत होओ ॥२३४॥ यदि प्राणियों का वध स्वर्ग प्राप्ति का कारण होता तो थोड़े ही दिनों में यह संसार शून्य हो जाता ॥२३१॥ और फिर उस स्वर्ग के प्राप्त होने से भी क्या लाभ है? जिससे फिर च्युत होना पड़ता है । यथार्थ में बाह्य पदार्थों से जो सुख उत्पन्न होता है वह दुःख से मिला हुआ तथा परिमाण में थोड़ा होता है ॥२३६॥ यदि प्राणियों का वध करने से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं तो फिर प्राणि वध की अनुमति मात्र से वसु नरक में क्यों पड़ा? ॥२३७॥ वसु नरक गया है इसमें प्रमाण यह है कि दुराचारी, निज और पर का अकल्याण करने वाले दुष्टचेता ब्राह्मण, अपने पक्ष के समर्थन से प्रसन्न हो आज भी हे वसो! उठो, स्वर्ग जाओ इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाते हुए अग्नि में आहुति डालते हैं । यदि वसु नरक नहीं गया होता तो उक्त मन्त्र द्वारा आहुति देने की क्या आवश्यकता थी? ॥२३८-२३९॥ चूर्ण के द्वारा पशु बनाकर उसका घात करने वाले लोग भी नरक गये हैं फिर अशुभ संकल्प से साक्षात् अन्य पशु के वध करने वाले लोगों की तो कथा ही क्या हैं ॥२४०॥

प्रथम तो यज्ञ को कल्पना से कोई प्रयोजन नहीं है **अर्थ**ात् यज्ञ की कल्पना करना ही व्यर्थ है दूसरे यदि कल्पना करना ही है तो विद्वानों को इस प्रकार के हिंसायज्ञ की कल्पना नहीं करनी चाहिए ॥२४१॥ उन्हें धर्मयज्ञ ही करना चाहिए । आत्मा यजमान है, शरीर वेदी है, सन्तोष साकल्य है, त्याग होम है, मस्तक के बालकुशा हैं, प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है, शुक्लध्यान प्राणायाम है, सिद्धपद की प्राप्ति होना फल है, सत्य बोलना स्तम्भ है, तप अग्नि है, चंचल मन पशु है और इन्द्रियाँ समिधाएँ हैं । इन सबसे यज्ञ करना चाहिए यही धर्मयज्ञ कहलाता है ॥२४२-२४४॥

यज्ञ से देवों की तृप्ति होती है यदि ऐसा तुम्हारा ख्याल है तो यह ठीक नहीं है क्योंकि देवों को तो मनचाहा दिव्य अन्न उपलब्ध है ॥२४५॥ जिन्हें स्पर्श, रस, गन्ध और रूप की अपेक्षा मनोहर आहार प्राप्त होता है उन्हें इस मांसादिक घृणित वस्तु से क्या प्रयोजन है? ॥२४६॥ जो रज और वीर्य से उत्पन्न है, अपवित्र है, कीड़ों का उत्पत्ति स्थान है तथा जिसकी गन्ध और रूप दोनों ही अत्यन्त कुत्सित हैं - ऐसे मांस को देव लोग किस प्रकार खाते हैं ? ॥२४७॥ ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और जठराग्नि इस तरह तीन अग्नियाँ शरीर में सदा विद्यमान रहती हैं; विद्वानों को उन्हीं में दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि इन तीन अग्नियों की स्थापना करना चाहिए ॥२४८॥ यदि भूखे देव होम किये गये पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होते हैं तो वे स्वयं ही क्यों नहीं तृप्ति को प्राप्त हो जाते, मनुष्यों के होम को माध्यम क्यों बनाते हैं? ॥२४९॥ जो देव ब्रह्मलोक से आकर योनि से उत्पन्न होनेवाले दुर्गन्धयुक्त शरीर को खाता है वह कौए, शृगाल और कुत्ते के समान है ॥२५०॥ इसके सिवाय तुम श्राद्धतर्पण आदि के द्वारा मृत व्यक्तियों की तृप्ति मानते हो सो जरा विचार तो करो । ब्राह्मण लोग लार से भीगे हुए अपने मुख में जो अन्न रखते हैं वह मल से भरे पेट में जाकर पहुँचता है । ऐसा अन्न स्वर्गवासी देवताओं को तृप्त कैसे करता होगा? ॥२५१॥ इस प्रकार शास्त्रों के **अर्थ**-ज्ञान से उत्पन्न, देवर्षि के तेज से देदीप्यमान, उक्त कथन करते हुए नारदजी अनेकान्त के सूर्य के समान जान पड़ते थे ॥२५२॥ ब्राह्मणों ने उन्हें सब ओर से घेर लिया । उस समय वे ब्राह्मण याजक की पराजय से उत्पन्न क्रोध के भार से कम्पित थे, वेदार्थ का अभ्यास करने के कारण उनके हृदय दया से रहित थे ॥२५३॥ सर्प के समान उनकी आँखों की पुतलियाँ सबको दिख रही थीं और क्षुभित हो सब ओर से बड़ा भारी कल-कल कर रहे थे ॥२५४॥ वे सब ब्राह्मण कमर कसकर हस्तपादादिक से नारद को मारने के लिए ठीक उसी तरह तैयार हो गये जिस प्रकार कि कौए उल्लू को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं ॥२५५॥ तदनन्तर नारद भी उनमें से कितने ही लोगों को मुठ्ठियों रूपी मुद्गरों की मार से और कितने ही लोगों को एड़ीरूपी वज्रपात से मारने लगा ॥२५६॥ उस समय नारद के समस्त अवयव अत्यन्त दु:सह शस्त्रों के समान जान पड़ते थे । उन सबसे उसने घूम-घूमकर बहुत से ब्राह्मणों को मारा ॥२५७॥ अथानन्तर चिरकाल तक ब्राह्मणों को मारता हुआ खेदखिन्न हो गया । उसे बहुत से दुष्ट ब्राह्मणों ने घेर लिया, वे उसे समस्त शरीर में मारने लगे

जिससे वह परम आकुलता को प्राप्त हुआ ॥२५८॥ जिस प्रकार जाल से कसकर बँधा पक्षी अत्यन्त दुखी हो जाता है और आकाश में उड़ने में असमर्थ होता हुआ प्राणों के संशय को प्राप्त होता है ठीक वही दशा उस समय नारद की थी ॥२५९॥

इसी बीच में रावण का दूत आ रहा था सो उसने पिटते हुए नारद को देखकर पहचान लिया ॥२६०॥ उसने शीघ्र ही लौटकर रावण से इसप्रकार कहा कि हे महाराज! मुझ दूत को आपने जिसके पास भेजा था वह अकेला ही राजा के देखते हुए बहुत से दुष्ट ब्राह्मणों के द्वारा उस तरह मारा जा रहा है जिस प्रकार कि बहुत से दुष्ट पतंगे किसी साँप को मारते हैं ॥२६१-२६२॥ मैं शक्तिहीन था और राजा को वहाँ देख भय से पीड़ित हो गया इसलिए यह दारुण वृत्तान्त आप से कहने के लिए दौड़ा आया हूँ ॥२६३॥ यह समाचार सुनते ही रावण क्रोध को प्राप्त हुआ और वेगशाली वाहन पर सवार हो यज्ञभूमि में जाने के लिए तत्पर हुआ ॥२६४॥ वायु के समान जिनका वेग था, जो म्यानों से निकली हुई नंगी तलवारें हाथ में लिये थे और सू-सू शब्द से सुशोभित थे ऐसे रावण के सिपाही पहले ही चल दिये थे ॥२६५॥ वे पल-भर में यज्ञभूमि में जा पहुँचे । वहाँ जाकर उन दयालु पुरुषों ने दृष्टिमात्र से नारद को शत्रुरूपी पिंजडे से मुक्त करा दिया ॥२६६॥ क्रूर मनुष्य जिस पशुओं के झुण्ड की रक्षा कर रहे थे उसे उन्होंने आँख के इशारे मात्र से छुड़वा दिया ॥२६७॥ यज्ञ के खम्भे तोड़ डाले, ब्राह्मणों को पिटाई लगायी और पशुओं को बन्धन से छोड़ दिया । इन सब कारणों से वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥268॥ अब्रह्मण्यं अब्रह्मण्यं की रट लगाने वाले एक-एक ब्राह्मण को इतना पीटा कि जब तक वे निश्चेष्ट शरीर होकर भूमि पर गिर न पड़े तब तक पीटते ही गये ॥२६९॥ रावण के योद्धाओं ने उन ब्राह्मणों से पूछा कि जिस प्रकार आप लोगों को दुःख अप्रिय लगता है और सुख प्रिय जान पड़ता है उसी तरह इन पशुओं को भी लगता होगा ॥२७०॥ जिस प्रकार तीन लोक के समस्त जीवों को हृदय से अपना जीवन अच्छा लगता है उसी प्रकार इन समस्त जन्तुओं की भी व्यवस्था जाननी चाहिए ॥२७१॥ आप लोगों को जो पिटाई लगी है उससे आप लोगों की यह कष्टकारी अवस्था हुई है फिर शस्त्रों से मारे गये पशुओं को क्या दशा होती होगी सो आप ही कहो ॥२७२॥ अरे पापी नीच पुरुषों! इस समय तुम्हारे पाप का जो फल प्राप्त हुआ है उसे सहन करो जिससे फिर ऐसा न करोगे ॥२७३॥ देवों के साथ इन्द्र भी यहाँ आ जाये तो भी हमारे स्वामी के कुपित रहते तुम लोगों की रक्षा नहीं हो सकती ॥२७४॥ हाथी, घोड़े, रथ, आकाश और पृथ्वी पर जो भी जहाँ स्थित था वह वहीं से शस्त्रों द्वारा ब्राह्मणों को मार रहा था ॥२७१॥ और ब्राह्मण चिल्ला रहे थे कि 'अब्रह्मण्यम्' बड़ा अनर्थ हुआ । हे राजन् ! हे माता यज्ञपालि ! हमारी रक्षा करो । हे योद्धाओं ! हम जीवित रह सकें इसलिए छोड़ दो, अब ऐसा नहीं करेंगे ॥२७६॥ इस प्रकार दीनता के साथ अत्यन्त विलाप करते हुए वे ब्राह्मण केंचुए-जैसी दशा को प्राप्त थे फिर भी रावण के योद्धा उन्हें पीटते जाते थे ॥२७७॥ तदनन्तर ब्राह्मणों के समूह को पिटता देख नारद ने रावण से इस प्रकार कहा ॥२७8॥ कि हे राजद! तुम्हारा कल्याण हो । मैं इन दुष्ट शिकारी ब्राह्मणों के द्वारा मारा जा रहा था जो आपने मुझे इनसे छुड़ाया ॥२७९॥ यह कार्य चूँकि ऐसा ही होना था सो हुआ अब इन पर दया करो । ये शूद्र जीव जीवित रह सकें ऐसा करो, अपना जीवन इन्हें प्रिय है ॥२८०॥

हे राजन्! इन कुपाखण्डियों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है? यह क्या आप नहीं जानते हैं । अच्छा सुनो मैं कहता हूँ । इस अवसर्पिणी युग का जब चौथा काल आने वाला था तब भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकर हुए । तीनों लोकों के जीव उन्हें नमस्कार करते थे । उन्होंने कृतयुग की व्यवस्था कर सैकड़ों कलाओं का प्रचार किया ॥२८१-२८२॥ जिस समय ऋषभदेव उत्पन्न हुए थे उसी समय देवों ने सुमेरु पर्वत के मस्तक पर ले जाकर सन्तुष्ट हो क्षीरसागर के जल से उनका अभिषेक किया था । वे महाकान्ति के धारक थे ॥२८३॥ भगवान् ऋषभदेव का पापापहारी चरित्र तीनों लोकों में व्याप्त होकर स्थित है क्या तुमने उनका पुराण नहीं सुना? ॥२८४॥ प्राणियों के साथ स्नेह करने वाले भगवान् ऋषभदेव कुमार-काल के बाद इस पृथ्वी के स्वामी हुए थे । उनके गुण इतने अधिक थे कि इन्द्र भी उनका विस्तार के साथ वर्णन करने में समर्थ नहीं था ॥२८५॥ जब उन्हें वैराग्य आया और वे संसाररूपी संकट को छोड़ने की इच्छा करने लगें तब जो विन्ध्याचल और हिमाचल रूपी उन्नत स्तनों को धारण कर रही थी, आर्य देश ही जिसका मुख था, जो नगरी रूपी चूड़ियों से युक्त होकर बहुत मनोहर जान पड़ती थी, समुद्र ही जिसकी करधनी थी, हरेभरे वन जिसके सिर के बाल थे, नाना रत्नों से जिसकी कान्ति बढ़ रही थी और जो अत्यन्त निपुण थी ऐसी पृथिवीरूपी स्त्री को छोड़कर उन्होंने विशुद्धात्मा हो जगत् के लिए हितकारी मुनिपद धारण किया था ॥ २८६-२८८॥ उनका शरीर वज्रमय था, वे स्थिर योग को धारण कर एक हजार वर्ष तक खड़े रहे । उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं और जटाओं का समूह पृथिवी को छू रहा था ॥२८६॥ स्वामी के अनुराग से कच्छ आदि चार हजार राजाओं ने भी उनके साथ नग्न व्रत धारण किया था परन्तु कठिन परीषहों से पीड़ित होकर अन्त में उन्होंने वह व्रत छोड़ दिया और वल्कल आदि धारण कर

लिये ॥२६०॥ परमार्थ को नहीं जानने वाले उन राजाओं ने क्षुधा आदि से पीड़ित होने पर फल आदि के आहार से सन्तोष प्राप्त किया । उन्ही भ्रष्ट लोगों ने तापस आदि लोगों की रचना की ॥२९१॥ जब भगवान् ऋषभदेव महा वटवृक्ष के समीप विद्यमान थे तब उन्हें समस्त पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्रकट हुआ ॥२५२॥ उस समय उस स्थान पर चूँकि देवों के द्वारा भगवान की पूजा की गयी थी इसलिए उसी पद्धति से आज भी लोग पूजा करने में प्रवृत्त हैं **अर्थ**ात् आज जो वटवृक्ष की पूजा होती है उसका मूल स्रोत भगवान् ऋषभदेव के केवलज्ञान कल्याण से है ॥२६३॥ उत्तम हृदय के धारक देवों ने उस स्थान पर उनकी प्रतिमा स्थापित की तथा महान् उत्सवों से युक्त मनुष्यों ने मनोहर चैत्यालयो में उनकी प्रतिमाएँ विराजमान कीं ॥२६४॥ भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने तथा इनके पुत्र मरीचि ने पहले प्रमाद और अहंकार के योग से जिन ब्राह्मणों की रचना की थी वे पानी में विष की बूँदों के समान प्राणियों को दुःख देते हुए संसार में सर्वत्र फैल गये ॥२६५-२६६॥ जिन्होंने कुत्सित आचार की परम्परा चलायी है, जो अनेक प्रकार के कपटों से युक्त हैं, जो नाना प्रकार के खोटे-खोटे वेष धारण करते हैं और प्रचण्ड अत्यन्त तीक्ष्ण दण्ड के धारक हैं ऐसे इन ब्राह्मणों ने इस संसार को मोहित कर रखा है / भ्रम में डाल रखा है ॥२६७॥ यह समस्त संसार निरन्तर प्रवृत्त रहने वाले अत्यन्त क्रूर कार्य रूपी अन्धकार से व्याप्त है, इसका पुण्यरूपी प्रकाश नष्ट हो चुका है और साधुजनों का अनादर करने में तत्पर है ॥२६८॥ इस पृथिवी पर सुभूम चक्रवर्ती ने इक्कीस बार इन ब्राह्मणों का सर्वनाश किया फिर भी ये अत्यन्ताभाव को प्राप्त नहीं हुए ॥२६९॥ इसलिए है दशानन! तुम्हारे द्वारा ये किस तरह शान्त किये जा सकेंगे - सो तुम्हीं कहो । तुम स्वयं उपशान्त होओ । इस प्राणि-हिंसा से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३००॥ जब सर्वज्ञ जिनेन्द्र भी इस संसार को कुमार्ग से रहित नहीं कर सके तब फिर हमारे जैसे लोग कैसे कर सकते हैं? ॥301॥ इस प्रकार नारद के मुख से पुराण की कथा सुनकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार किया ॥३०२॥ इस प्रकार वह नारद के साथ महापुरुषों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक प्रकार की मनोहर और विचित्र कथाएँ करता हुआ क्षणभर सुख से बैठा ॥३०३॥ अथानन्तर नीति के जानकार राजा मरुत्वान् ने हाथ जोड़कर तथा सिर के बाल जमीन पर लगाकर रावण को प्रणाम किया और निम्नांकित वचन कहे ॥३०४॥ हे लंकेश ! मैं आपका दास हूँ । आप मुझ पर प्रसन्न होइए । अज्ञानवश जीवों से खोटे काम बन ही जाते हैं ॥३०५॥ मेरी कनकप्रभा नाम की कन्या है सो इसे आप स्वीकृत करें । क्योंकि सुन्दर वस्तुओं के पात्र आप ही हैं ॥३०६॥ नम्र मनुष्यों पर दया करना जिसका स्वभाव था और निरन्तर जिसका अभ्युदय बढ़ रहा था ऐसे रावण ने कनकप्रभा को विवाहना स्वीकृत कर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह कर लिया ॥३०७॥ राजा मरुत्व ने सन्तुष्ट होकर रावण के सामन्तों और योद्धाओं का वाहन, वस्त्र तथा अलंकार आदि से यथायोग्य सत्कार किया ॥३०८॥ कनकप्रभा के साथ रमण करते हुए रावण के एक वर्ष बाद कृतचित्रा नाम की पुत्री हुई ॥३०९॥ चूँकि उसने देखने वाले मनुष्यों को अपने रूप से चित्र अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न किया था इसलिए उसका कृतचित्रा नाम सार्थक था । वह मूर्तिमती शोभा के समान सबका चित्त चुराती थी ॥३१०॥ विजय से जिनका उत्साह बढ़ रहा था तथा जिनका शरीर अत्यन्त तेज:पूर्ण था ऐसे दशानन के शूरवीर सामन्त पृथ्वीतल पर जहां-तहाँ क्रीड़ा करते थे ॥३११॥ जो मनुष्य राजा इस ख्याति को धारण करता था वह दशानन के उन बलवान् सामन्तों को देखकर अपने भोगों के नाश से कातर होता हुआ अत्यन्त दीनता को प्राप्त हो जाता था ॥३१२॥ विद्याधर लोग सुवर्णमय पर्वत तथा नदियों से मनोहर भारतवर्ष का मध्यभाग देखकर परम आश्चर्य को प्राप्त हुए थे ॥३१३॥ कितने ही विद्याधर कहने लगे कि यदि हम लोग यहीं रहने लगें तो अच्छा हो । निश्चय ही स्वर्ग भी इस स्थान से बढ़कर अधिक सौन्दर्य को प्राप्त नहीं है ॥३१४॥ कितने ही लोग कहते थे कि हम लोग इस देश को देखकर लंका लौटेंगे इसमें अपने कुटुम्ब का दर्शन ही मुख्य कारण होगा ॥३१५॥ कुछ लोग कहते थे कि घर में रहना तो कुछ भी शोभा नहीं देता । जरा इस मनोहर देश का विस्तार तो देखो ॥३१६॥ देखो, रावण की समुद्र के समान विशाल सेना यहाँ किस प्रकार ठहर गयी कि परस्पर में दिखाई ही नहीं देती ॥३१७॥ नेत्रों को हरण करने वाले इस लोक के धैर्य की महानता आश्चर्यकारी है । इस लोक तथा विद्याधरों के लोक का जब विचार करते हैं तो यह लोक ही उत्तम मालूम होता है ॥३१८॥ राजा मरुत्व के यज्ञ को नष्ट करनेवाला रावण जिस-जिस देश में जाता था वहीं के निवासी जन तोरण आदि के द्वारा उसके मार्ग को मनोहर बना देते थे॥३१९॥ जिनके मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर थे, जो कमल तुल्य नेत्र धारण कर रही थीं और जिनका शरीर सौन्दर्य से परिपूर्ण था ऐसी भूमिगोचरी स्त्रियां विद्याधरों के कुतूहल से जिन्हें बड़े आदर से देख रही थीं ऐसा विद्याधर भी रावण को देखने की इच्छा से पृथ्वी पर चल रहे थे ॥३२०-३२१॥ जो अत्यन्त धुले हुए बाण के अग्रभाग अथवा तलवार के समान श्यामवर्ण था, जिसके ओठ पके हुए बिम्ब फल के समान थे, मुकुट में लगे हुए मोतियों की किरणरूपी जल से जिसका ललाट धुला हुआ था, जिसके घुँघराले बालों का समूह इन्द्रनीलमणि की प्रभा से

भी अधिक चमकीला था, जिसके नेत्र कमल के समान थे, मुख चन्द्रमा के समान था, जो प्रत्यंचा सहित धनुष के समान टेढ़ी, चिकनी एवं नीली-नीली भौंहों को युगल से सुशोभित था, जिसकी ग्रीवा शंख के समान थी, कन्धे सिंह के समान थे, जिसका वक्षःस्थल मोटा और चौड़ा था, जिसकी भुजाएँ दिग्गज की सूँड के समान मोटी थीं, जिसकी कमर वच के समान मजबूत एवं पतली थी, जिसकी जंघाएँ साँप के फण के समान थीं, जिसके घुटने अपनी मांसपेशियों में निमग्न थे, पैर कमल के समान थे, जिसका शरीर योग्य ऊँचाई से सहित था, जो श्रीवत्स आदि उत्तमोत्तम बत्तीस लक्षणों से युक्त था, जिसका मुकुट रत्नों की किरणों से जगमगा रहा था, जिसके कुण्डल चित्रविचित्र मणियों से निर्मित थे, जिसके कन्धे बाजूबन्दों की किरणों से देदीप्यमान थे जिसका वक्षस्थल हार से सुशोभित था और जिसे अर्धचक्री के भोग प्राप्त थे ऐसा रावण जब नगर के समीप में गमन करता हुआ आगे जाता था तब उसे देखने के लिए स्त्रियाँ अत्यन्त उत्कण्ठित चित्त हो जाती थीं । उत्तम वेष को धारण करने वाली स्त्रियाँ परस्पर एक दूसरे को पीड़ा पहुँचाती हुई प्रारब्ध समस्त कार्यों को छोडकर झरोखों में आ डटी थीं ॥३२२-३२९॥ वे सन्तुष्ट होकर भौंरों से सहित फूल रावण पर फेंक रही थीं और विविधप्रकार के शब्दों से उसका इस प्रकार वर्णन कर रही थीं ॥३३०॥ कोई कह रही थी कि देखो यह वही रावण है जिसने मौसी के लड़के वैश्रवण और यम को जीता था । जो कैलास पर्वत को उठाने के लिए उद्यत हुआ था । जिसने सहस्त्ररश्मि को राज्यभार से विमुक्त किया था यह बड़ा पराक्रमी है ॥३३१-३३२॥ अहो, बड़े आश्चर्य की बात है कि कर्मों ने चिरकाल बाद रावण में रूप तथा अनेक गुणों का लोकानन्दकारी समागम किया है । अर्थात् जैसा इसका सुन्दर रूप है वैसे ही इसमें गुण विद्यमान हैं ॥३३३॥ वह स्त्री पुण्यवती है जिसने इस उत्तम पुत्र को गर्भ में धारण किया है और वह पिता भी कृतकृत्यपना को प्राप्त है जिसने इसे जन्म दिया है ॥३३४॥ वे बन्धुजन प्रशंसनीय हैं जिनका कि यह प्रेमपात्र है, जो स्त्रियाँ इसके साथ विवाहित हैं उनका तो कहना ही क्या है? ॥३३५॥ वार्तालाप करती हुई स्त्रियां उसे तबतक देखती रहीं जब तक कि वह उनके विस्तृत नेत्रों का विषय रहा अर्थात् नेत्रों के ओझल नहीं हो गया ॥३३६॥ मन को चुराने वाला रावण जब नेत्रों से अदृश्य हो गया तब मुहूर्त-भर के लिए स्त्रियाँ चित्रलिखित की तरह निश्चेष्ट हो गयीं ॥३३७॥ रावण के द्वारा उन स्त्रियो का चित्त हरा गया था इसलिए कुछ दिन तक तो उनका यह हाल रहा कि उनके मन में कुछ कार्य था और वे कर बैठती थीं कोई दूसरा ही कार्य ॥३३८॥ रावण जिस देश का समागम छोड़ आगे बढ़ जाता था उस देश के स्त्री-पुरुषों में एक रावण की ही कथा शेष रह जाती थी अन्य सबकी कथा छूट जाती थी ॥३३९॥ देश, नगर, ग्राम अथवा अहीरों की बस्ती में जो पुरुष प्रधानता को प्राप्त थे वे उपहार ले-लेकर रावण के समीप गये ॥३४०॥ जनपदों में रहनेवाले लोग यथायोग्य भेंट लेकर रावण के पास गये और हाथ जोड़ नमस्कार कर सन्तुष्ट होते हुए निम्न प्रकार निवेदन करने लगे ॥३४१॥ उन्होंने कहा कि हे राजन्! नन्दन आदि वनों में जो भी मनोहर द्रव्य हैं वे इच्छा करने मात्र से ही आपको सुलभ हैं अर्थात् अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥३४२॥ चूँकि आप महा-वैभव के पात्र हैं इसलिए ऐसा कौन-सा अपूर्व धन है जिसे भेंट देकर हम आपको प्रसन्न कर सकते हैं॥३४३॥ फिर भी हम लोगों को खाली हाथ आपका दर्शन करना उचित नहीं है इसलिए कुछ तो भी लेकर समीप आये हैं ॥३४४॥ देवों ने जिनेन्द्र भगवान की सुवर्ण कमलों से पूजा की थी तो क्या हमारे जैसे लोग उनकी साधारण वृक्षों के फूलों से पूजा नहीं करते? ॥३४५॥ इस प्रकार नाना जनपद वासी और बड़ी-बड़ी सम्पदाओं को धारण करने वाले सामन्तों ने रावण की पूजा की तथा रावण ने भी प्रिय वचन कहकर बदले में उनका सम्मान किया ॥३४६॥ नाना रत्नमयी, अलंकारों से सुशोभित अपनी स्त्री के समान सुन्दर पृथिवी को देखता हुआ रावण परम प्रीति को प्राप्त हुआ॥347॥ रावण मार्ग के कारण जिस-जिस देश के साथ समागम को प्राप्त हुआ था वहाँ की पृथिवी अकृष्ट पच्य धान्य से युक्त हो गयी थी ॥३४8॥ परम हर्ष को धारण करने वाले लोग रावण के द्वारा छोड़े हुए पृथिवी-तल को तथा उसकी अत्यन्त निर्मल कीर्ति को अनुराग रूपी जल से सींचते थे ॥३४९॥ किसान लोग इस प्रकार कह रहे थे कि हम लोग बड़े पुण्यात्मा हैं जिससे कि रावण इस देश में आया ॥३५०॥ हम लोग अब तक खेती में लगे रहे, हम लोगों का सारा शरीर रूखा हो गया । हमें फटे पुराने वस्त्र पहनने को मिले, हम कठोर स्पर्श और तीव्र वेदना से युक्त हाथ-पैरों को धारण करते रहे और आज तक कभी सुख से अच्छा भोजन भी प्राप्त नहीं हुआ । इस तरह हम लोगों का काल बड़े क्लेश से व्यतीत हुआ परन्तु इस भव्य जीव के प्रभाव से हम लोग इस समय सर्व प्रकार से सम्पन्न हो गये हैं ॥३५१-३५२॥ जिन देशों में यह कल्याणकारी रावण विचरण करता है वे देश पुण्य से अनुगृहीत तथा सम्पत्ति से सुशोभित हैं ॥३५३॥ मुझे उन भाइयों से क्या प्रयोजन जो कि दुःख दूर करने में समर्थ नहीं हैं । यह रावण ही हम सब प्राणियों का बड़ा भाई है ॥३५४॥ इस प्रकार गुणों के द्वारा लोगों के अनुराग को बढ़ाते हुए रावण ने हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु को भी लोगों के लिए सुखदायी बना दिया था ॥३५५॥ चेतन पदार्थ तो दूर रहे जो अचेतन पदार्थ थे वे भी मानो रावण से भयभीत होकर ही लोगों के

लिए सुखदायी हो गये थे ॥३५६॥
रावण का प्रयाण जारी था कि इतने में वर्षा ऋतु आ गयी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो हर्ष के साथ रावण की अगवानी करने के लिए ही आयी थी ॥३५७॥ बलाका बिजली और इन्द्रधनुष से शोभित, महानीलगिरि के समान काले-काले मेघ जोरदार गर्जना करते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो सुवर्ण मालाओं को धारण करने वाले शंख और पताकाओं से सुशोभित हाथी ही इन्द्र ने रावण के लिए उपहार में भेजे हों ॥३५८-३५९॥ मेघों के समूह से समस्त दिशाएँ इस प्रकार अन्धकार युक्त हो गयी थीं कि लोगों को रात-दिन का भेद ही नहीं मालूम होता था ॥३६०॥ अथवा जो मलिनता को धारण करने वाले हैं उन्हें ऐसा ही करना उचित है कि वे संसार में प्रकाश और अन्धकार से युक्त सभी पदार्थो को एक समान कर देते हैं ॥३६१॥ पानी की बड़ी मोटी धाराएँ रुकावट रहित पृथिवी और आकाश के बीच में इस तरह संलग्न हो रही थीं कि पता ही नहीं चलता था कि ये मोटी धाराएँ ऊपर को जा रही हैं या ऊपर से नीचे फिर रही हैं ॥३६२॥ मानवती स्त्रियों ने जो मान का समूह चिरकाल से अपने मन में धारण कर रखा था वह मेघों की जोरदार गर्जना से क्षण-भर में नष्ट हो गया था ॥३६३॥ जिनकी भुजाएँ रुनझुन करने वाली चूड़ियों से युक्त थीं ऐसी मानवती स्त्रियां मेघ गर्जना से डरकर पति का गाढ़ आलिंगन कर रही थीं ॥३६४॥ मेघों के द्वारा छोड़ी हुई जल की धाराएँ यद्यपि शीतल और कोमल थीं तथापि वे पथिक जनों का मर्म विदारण करती हुई दर्शकों की समानता को प्राप्त हो रही थीं ॥३६५॥ जिसकी आत्मा अत्यन्त व्याकुल थी ऐसे दूरवर्ती पथिक का हृदय धाराओं के समूह से इस प्रकार खण्डित हो गया था मानो अत्यन्त पैने चक्र से ही खण्डित हुआ हो ॥३६६॥ कदम्ब के नये फूल से बेचारा पथिक इतना अधिक मोहित हो गया कि वह क्षण-भर के लिए मिट्टी के पुतले के समान निश्चेष्ट हो गया ॥३६७॥ ऐसा जान पड़ता था कि क्षीर समुद्र से जल ग्रहण करने वाले मेघ मानो गायों के भीतर जा घुसे थे। यदि ऐसा न होता तो वे निरन्तर दूध की धाराएँ कैसे झराते रहते? ॥३६८॥ उस समय के किसान रावण के प्रभाव से महाधनवान् हो गये थे इसलिए उस वर्षा के समय भी वे व्याकुल नहीं हुए थे ॥३६९॥ घर की मालकिन एक व्यक्ति के लिए जो भोजन तैयार करती थी उसे सारा कुटुम्ब खाता था फिर भी वह समाप्त नहीं होता था ॥३७०॥ इस प्रकार रावण समस्त प्राणियों के लिए महोत्सव स्वरूप था सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवों का सौभाग्य कौन कह सकता है? ॥३७१॥ रावण नील कमलों के समूह के समान श्याम वर्ण था और जोरदार शब्द करता था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो स्त्रियों को उत्सुक करता हुआ साक्षात् वर्षाकाल ही हो ॥३७२॥ मेघों की गर्जना के बहाने मानो रावण का आदेश पाकर ही समस्त राजाओं ने रावण को नमस्कार किया था ॥३७३॥ नेत्रों को हरण करने वाली भूमिगोचरियों की अनेक कन्याएँ रावण को प्राप्त हुई सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो आकाश को छोड़कर बिजलियाँ ही उसके पास आयी हों ॥३७४॥ जिस प्रकार पयोधरभराक्रान्ता **अर्थ**ात् मेघों के समूह से युक्त उत्तम वर्षाएँ किसी पर्वत को पाकर क्रीड़ा करती हैं उसी प्रकार पयोधरभराक्रान्ता अर्थात् स्तनों के भार से आक्रान्त कन्याएँ पृथिवी का भार धारण करने में समर्थ रावण को पाकर क्रीड़ा करती थीं ॥३७५॥ वर्षा ऋतु में सूर्य छिप गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो विजयाभिलाषी रावण की उत्कृष्ट कान्ति देख लज्जा और भय से व्याकुल होता हुआ कहीं भाग गया था ॥३७६॥चन्द्रमा ने देखा कि जो काम मैं करता हूँ वही रावण का मुख करता है ऐसा मानकर ही मानो वह कहीं चला गया था ॥३७७॥ तारा भी अन्तर्हित हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो ताराओं ने देखा कि रावण के मुख से हमारा स्वामी-चन्द्रमा जीत लिया गया है इस भय से युक्त होकर ही वे कहीं भाग गयी थीं ॥३७८॥ रावण की स्त्रियों के हाथ और पैर हम से कहीं अधिक लाल हैं ऐसा जानकर ही मानो कमलों का समूह लजाता हुआ कहीं छिप गया था ॥३७९॥ जो मेखला रूपी बिजली से युक्त थीं तथा रंग-बिरंगे वस्त्ररूपी इन्द्रधनुष को धारण कर रही थीं और पयोधर अर्थात् स्तनों (पक्ष में मेघों) से आक्रान्त थीं ऐसी रावण की स्त्रियाँ ठीक वर्षा ऋतु के समान जान पड़ती थीं ॥३८०॥ जिसने गूँजती हुई भ्रमर पंक्ति को आकृष्ट किया था ऐसे श्वासोच्छ्वास की वायु से रावण केतकी के फूल और स्त्रियों की गन्ध को अलग-अलग नहीं पहचान सका था ॥३८१॥ जिसके दूर-दूर तक प्रचुर मात्रा में सुन्दर घास उत्पन्न हुई थी और जहाँ नाना फूलों से समुत्पन्न गन्ध घ्राण को व्याप्त कर रही थी ऐसे गंगा नदी के लम्बे-चौड़े सुन्दर तट को पाकर रावण ने सुखपूर्वक वर्षा काल व्यतीत किया ॥३८२॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्यात्मा मनुष्यों का नाम सुनकर ही लोग उन्हें प्रणाम करने लगते हैं, अनेक विषयों की प्राप्त कराने वाले सुन्दर स्त्रियों के समूह उन्हें प्राप्त होते रहते हैं, आश्चर्य के निवासभूत अनेक ऐश्वर्य उनके घर उत्पन्न होते हैं और कहाँ तक कहा जाये, सूर्य भी उनके प्रभाव से शीतल हो जाता है इसलिए सबको पुण्यबन्ध के लिए प्रयत्न करना चाहिए॥383॥
इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में राजा मरुत्व के यज्ञ के विध्वंसका वर्णन करनेवाला ग्यारहवाँ पर्व

समाप्त हुआ ॥11॥

## इन्द्र विद्याधर की हार

द्वादश पर्व

कथा :

अथानन्तर उसी गंगा तट पर रावण ने एकान्त में मन्त्रियों के साथ सलाह की कि यह कृतचित्रा कन्या किसके लिए दी जाये? ॥१॥ इन्द्र के साथ संग्राम में जीवित रहने का निश्चय नहीं है इसलिए कन्या का विवाह रूप मंगल कार्य प्रथम ही कर लेना योग्य है ॥२॥ तब रावण को कन्या के योग्य वर खोजने में चिन्तातुर जानकर राजा हरिवाहन ने अपना पुत्र निकट बुलाया ॥३॥ सुन्दर आकार के धारक उस विनयवान् पुत्र को देखकर रावण को बड़ा सन्तोष हुआ और उसने उसके लिए पुत्री देने का विचार किया ॥४॥ जब वह मन्त्रियों के साथ योग्य आसन पर बैठ गया तब नीतिशास्त्र का विद्वान् रावण इस प्रकार विचार करने लगा कि यह मथुरा नगरी का राजा हरिवाहन उच्चकुल में उत्पन्न हुआ है, इसका मन सदा हमारे गुण-कथन करने में आसक्त रहता है और यह इसका तथा इसके बन्धुजनों का प्राणभूत मधु नाम का पुत्र है । यह अत्यन्त प्रशंसनीय, विनय सम्पन्न और प्रीति के निर्वाह करने में योग्य है ॥५-७॥ यह वृत्तान्त जानकर ही मानो इसकी चेष्टाएँ सुन्दर हो रही हैं । इसके गुणों का समूह अत्यन्त प्रसिद्ध है । यह मेरे समीप आया सो बहुत अच्छा हुआ ॥8॥ तदनन्तर राजा मधु का मन्त्री बोला कि हे देव ! आपके आगे इस पराक्रमी के गुण बड़े दुःख से वर्णन किये जाते हैं **अर्थ**ात् उनका वर्णन करना सरल नहीं है ॥9॥ फिर भी आप कुछ जान सकें इसलिए कुछ तो भी वर्णन करने का प्रयत्न करता हूँ ॥१०॥ सब लोगों के मन को हरण करने वाला यह कुमार वास्तविक मधु शब्द को धारण करता है क्योंकि यह सदा मधु-जैसी उत्कृष्ट गन्ध को धारण करनेवाला है ॥११॥ इसके गुणों का वर्णन इतने से ही पर्याप्त समझना चाहिए कि असुरेन्द्र ने इसके लिए महा गुणशाली शूल रत्न प्रदान किया है ॥१२॥ ऐसा शूल रत्न कि जो कभी व्यर्थ नहीं जाता, अत्यन्त देदीप्यमान है और शत्रुसेना की ओर फेंका जाये जो हजारों शत्रुओं को नष्ट कर हाथ में वापस लौट आता है ॥१३॥ अथवा आप कार्य के द्वारा ही शीघ्र इसके गुण जानने लगेंगे । वचनों के द्वारा उनका प्रकट करना हास्य का कारण है ॥१४॥ इसलिए आप इसके साथ पुत्री का सम्बन्ध करने का विचार कीजिए । आपका सम्बन्ध पाकर यह कृतकृत्य हो जायेगा ॥१५॥ मन्त्री के ऐसा कहने पर रावण ने उसे बुद्धिपूर्वक अपना जामाता निश्चित कर लिया और जामाता के यथायोग्य सब कार्य कर दिये ॥१६॥ इच्छा करते ही जिसके समस्त कारण अनायास मिल गये थे ऐसा उन दोनों का विवाह अत्यन्त प्रसन्न लोगों से व्याप्त था अर्थात् उनके विवाहोत्सव में प्रीति से भरे अनेक लोक आये थे ॥१७॥ मधु नाम उस राजकुमार का था और वसन्तऋतु का भी । इसी प्रकार आमोद का अर्थ सुगन्धि है और हर्ष भी । सो जिस प्रकार वसन्तऋतु नेत्रों को हरण करने वाली अकथनीय पुष्पसम्पदा को पाकर जगत् प्रिय सुगन्धि को प्राप्त होती है उसी प्रकार राजकुमार मधु भी नेत्रों को हरण करने वाली कृतचित्रा को पाकर परम हर्ष को प्राप्त हुआ था ॥१८॥ इसी अवसर पर जिसे कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिक ने फिर से नमस्कार कर गौतम स्वामी से पूछा ॥१९॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! असुरेन्द्र ने मधु के लिए दुर्लभ शूल रत्न किस कारण दिया था? ॥२०॥ श्रेणिक के ऐसा कहने पर विशाल तेज से युक्त तथा धर्म से स्नेह रखनेवाले गौतम स्वामी शूल रत्न की प्राप्ति का कारण कहने लगे ॥२१॥ उन्होंने कहा कि धातकीखण्ड द्वीप के ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी शतद्वार नामक नगर में प्रीतिरूपी बन्धन से बँधे दो मित्र रहते थे ॥२२॥ उनमें से एक का नाम सुमित्र था और दूसरे का नाम प्रभव । सो ये दोनों एक गुरु की चटशाला में पढ़कर बडे विद्वान् हुए ॥२३॥ कई एक दिन में पुण्योपार्जित सत्कर्म के प्रभाव से सुमित्र को सर्व सामन्तों से सेवित तथा परम अभ्युदय से मुक्त राज्य प्राप्त हुआ ॥२४॥ यद्यपि प्रभव पूर्वोपार्जित पाप कर्म के उदय से दरिद्र कुल में उत्पन्न हुआ था तथापि महा स्नेह के कारण सुमित्र ने उसे भी राजा बना दिया ॥२5॥

अथानन्तर एक दिन एक दुष्ट घोड़ा राजा सुमित्र को हरकर जंगल में ले गया सो वहाँ अपनी इच्छा से भ्रमण करने वाले द्विरददंष्ट्र नाम म्लेच्छों के राजा ने उसे देखा ॥२६॥ द्विरददंष्ट्र उसे अपनी पल्ली (भीलों की बस्ती) में ले गया और एक पक्की शर्त कर उसने अपनी पुत्री राजा सुमित्र को विवाह दी ॥२७॥ जो साक्षात् वन लक्ष्मी के समान जान पड़ती थी ऐसी वनमाला नामा कन्या को पाकर राजा सुमित्र वहाँ एक माह तक रहा ॥२८॥ तदनन्तर द्विरददंष्ट्र की आज्ञा लेकर वह अपनी कान्ता के साथ शतद्वार नगर की ओर वापस आ रहा था । भीलों की सेना उसके साथ थी ॥२९॥ इधर प्रभव अपने मित्र की खोज के लिए निकला था सो उसने कामदेव की पताका के समान सुशोभित कान्ता से सहित मित्र को देखा ॥३०॥ पापकर्म के उदय से जिसके समस्त करने और न करने योग्य कार्यों का विचार नष्ट हो गया था ऐसे

प्रभव ने मित्र की स्त्री में अपना मन किया ॥३१॥ सब ओर से काम के तीक्ष्ण बाणों से ताड़ित होने के कारण उसका मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा था इसलिए वह कहीं भी सुख नहीं पा रहा था ॥३२॥ बुद्धि को नष्ट करनेवाला काम हजारों बीमारियों में सबसे बड़ी बीमारी है क्योंकि उससे मनुष्यों का शरीर तो नष्ट होता नहीं है पर वे दुःख पाते रहते हैं ॥३३॥ जिस प्रकार सूर्य समस्त ज्योतिषियों में प्रधान है उसी प्रकार काम समस्त रोगों में प्रधान है ॥३४॥ बेचैन क्यों हो रहे हो इस तरह जब मित्र ने बेचैनी का कारण पूछा तब उसने सुन्दरी को देखना ही अपनी बेचैनी का कारण कहा ॥३१॥ मित्र वत्सल सुमित्र ने जब सुना कि मेरे प्राण तुल्य मित्र को जो दुःख हो रहा है उसमें मेरी स्त्री ही निमित्त है तब उस बुद्धिमान ने उसे प्रभव के घर भेज दिया और आप झरोखे में छिपकर देखने लगा कि देखें यह वनमाला इसका क्या करती है ॥३६-३७॥ साथ ही वह यह भी सोचता जाता था कि यदि यह वनमाला इसके अनुकूल नहीं हुई तो मैं निश्चित ही इसका निग्रह करूँगा **अर्थ**ात् इसे दण्ड दूँगा ॥३८॥ और यदि अनुकूल होकर इसका मनोरथ पूर्ण करेगी तो हजार ग्राम देकर इस सुन्दरी की पूजा करूँगा ॥३९॥ तदनन्तर जब रात्रि का प्रारम्भ हो गया और आकाश में ताराओं के समूह छिटक गये तब वनमाला बड़ी उत्कण्ठा के साथ प्रभव के समीप पहुँची ॥४०॥ वनमाला को उसने सुन्दर आसन पर बैठाया और स्वयं निर्दोष भाव से उसके सामने बैठ गया । तदनन्तर उसने बड़े आदर के साथ उससे पूछा कि हे भद्रे ! तू कौन है? ॥४१॥ वनमाला ने विवाह तक का सब समाचार कह सुनाया । उसे सुनकर प्रभव प्रभाहीन हो गया और परम निर्वेद को प्राप्त हुआ ॥४२॥ वह विचार करने लगा कि हायहाय ! बड़े कष्ट की बात है कि मैंने मित्र की स्त्री से कुछ तो भी करने की इच्छा की । मुझ अविवेकी के लिए धिक्कार है ॥४३॥ आत्मघात के सिवाय अन्य तरह मैं इस पाप से मुक्त नहीं हो सकता। अथवा मुझे अब इस कलंकी जीवन से प्रयोजन ही क्या है? ॥४४॥ ऐसा विचारकर उसने अपना मस्तक काटने के लिए म्यान से तलवार खींची । उसकी वह तलवार अपनी सघन कान्ति से दिशाओं के अन्तराल को व्याप्त कर रही थी ॥45॥ वह इस तलवार को कण्ठ के पास ले ही गया था कि सुमित्र ने सहसा लपककर उसे रोक दिया ॥४६॥ सुमित्र ने शीघ्रता से मित्र का आलिंगन कर कहा कि तुम तो पण्डित हो, आत्मघात से जो दोष होता है उसे क्या नहीं जानते हो? ॥४७॥ जो मनुष्य अपने शरीर का अविधि से घात करते हैं वे चिरकाल तक कच्चे गर्भ में दुख प्राप्त करते हैं अर्थात् गर्भ पूर्ण हुए बिना ही असमय में मर जाते हैं ॥४८॥ ऐसा कहकर उसने मित्र के हाथ से तलवार छीनकर नष्ट कर दी और चिरकाल तक उसे मनोहारी वचनों से समझाया ॥49॥ आचार्य कहते हैं कि परस्पर के गुणों से सम्बन्ध रखने वाली उन दोनों मित्रों की प्रीति इस तरह अन्त को प्राप्त होगी इससे जान पड़ता है कि यह संसार असार है ॥50॥ अपने-अपने कर्मों से युक्त जीव सुख-दुःख उत्पन्न करने वाली पृथक्-पृथक् गति की प्राप्त होते हैं इसलिए इस संसार में कौन किसका मित्र है? ॥५१॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा प्रबुद्ध थी ऐसा राजा सुमित्र मुनि-दीक्षा धारण कर अन्त में ऐशान स्वर्ग का अधिपति हो गया ॥५२॥ वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप की मथुरा नगरी में राजा हरिवाहन की माधवी रानी से मधु नाम का पुत्र हुआ । यह पुत्र मधु के समान मोह उत्पन्न करनेवाला था और हरिवंशरूपी आकाश में चन्द्रमा के समान सुशोभित था ॥५३-५४॥ मिथ्यादृष्टि प्रभव मरकर दुर्गति में दुःख भोगता रहा और अन्त में विश्वावसु की ज्योतिष्मती स्त्री के शिखी नामा पुत्र हुआ ॥55॥ सो द्रव्यलिंगी मुनि हो महातप कर निदान के प्रभाव से असुरों का अधिपति चमरेन्द्र हुआ ॥५६॥ तदनन्तर अवधिज्ञान के द्वारा अपने पूर्व भवों का स्मरण कर सुमित्र नामक मित्र के निर्मल गुणों का हृदय में चिन्तवन करने लगा ॥५७॥ ज्यों ही उसे सुमित्र राजा के मनोहर चरित्र का स्मरण आया त्यों ही वह करोंत के समान उसके हृदय को विदीर्ण करने लगा ॥५8॥ वह विचार करने लगा कि सुमित्र बड़ा ही भला और मह गुणवान् था । वह समस्त कार्यों में सहायता करनेवाला मेरा परम मित्र था ॥५९॥ उसने मेरे साथ गुरु के घर विद्या पढ़ी थी । मैं दरिद्र कुल में उत्पन्न हुआ था सो उसने मुझे अपने समान धनवान् बना लिया था ॥60॥ मेरे चित्त में पाप समाया सो द्वेषरहित चित के धारक उस दयालु ने तृष्णारहित होकर मेरे पास अपनी स्त्री भेजी ॥६१॥ यह मित्र की स्त्री है ऐसा जानकर जब मैं परम उद्वेग को प्राप्त होता हुआ तलवार से अपना शिर काटने के लिए उद्यत हुआ तो उसी ने मेरी रक्षा की थी ॥६२॥ मैंने जिनशासन की श्रद्धा बिना मरकर दुर्गति में ऐसे दुःख भोगे कि जिनका स्मरण करना भी दुःसह है ॥६३॥ मैंने मोक्षमार्ग का अनुवर्तन करने वाले साधुओं के समूह की जो निन्दा की थी उसका फल अनेक दुःखदायी योनियों में प्राप्त किया ॥६४॥ और वह सुमित्र निर्मल चारित्र का पालन कर ऐशान स्वर्ग में उत्तम सुख का उपभोग करने वाला इन्द्र हुआ तथा अब वहाँ से स्तुत होकर मधु हुआ है ॥65॥ इस प्रकार क्षणभर में उत्पन्न हुए परम प्रेम से जिसका मन आर्द्र हो रहा था ऐसा चमरेन्द्र सुमित्र मित्र के उपकारों से आकृष्ट हो अपने भवन से बाहर निकला ॥६६॥ उसने बड़े आदर के साथ मिलकर महारत्नों से मित्र का पूजन किया और उसके लिए सहखान्तक नामक शूल रत्न भेंट में दिया ॥67॥ हरिवाहन का पुत्र मधु चमरेन्द्र से शूल रत्न पाकर पृथिवी पर परम प्रीति

को प्राप्त हुआ और अस्त्र विद्या का स्वामी कहलाने लगा ॥68॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्! जो मनुष्य मधु के इस चरित्र को पढ़ता अथवा सुनता है वह विशाल दीप्ति, श्रेष्ठ धन और उत्कृष्ट आयु को प्राप्त होता है ॥६९॥

अथानन्तर अनेक सामन्त जिसके पीछे-पीछे चल रहे थे ऐसा रावण लोक में शत्रुओं को वशीभूत करने वाला अपना प्रभाव फैलाता और अनेक आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ प्रेम से भरे संसार में अठारह वर्ष तक इस प्रकार भ्रमण करता रहा जिस प्रकार कि इन्द्र स्वर्ग में भ्रमण करता है ॥७०-७१॥ तदनन्तर रावण क्रम-क्रम से समुद्र की निकटवर्तिनी भूमि को छोड़ता हुआ चिरकाल के बाद जिनमन्दिरों से युक्त कैलास पर्वत पर पहुँचा ॥७२॥ वहाँ स्वच्छ जल से भरी समुद्र की पत्नी एवं सुवर्ण कमलों की पराग से व्याप्त गंगानदी अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥७३॥ सो उसके समीप ही अपनी विशाल सेना ठहराकर कैलास की कन्दराओं में मनोहर क्रीड़ा करने लगा ॥७४॥ पहले विद्याधर और फिर भूमिगोचरी मनुष्यों ने यथाक्रम से गंगा नदी के स्फटिक के समान स्वच्छ सुखकर स्पर्श वाले जल में अपना खेद दूर किया था **अर्थ**ात् स्नान कर अपनी थकावट दूर की थी ॥७१॥ पृथ्वी पर लोटने के कारण लगी हुई जिनकी धूलि नमेरुवृक्ष के नये-नये पत्तों से झाड़कर दूर कर दी गयीं थी और पानी पिलाने के बाद जिन्हें खूब नहलाया गया था ऐसे घोड़े विनय से खड़े थे ॥७६॥ जल के छींटों से गीला शरीर होने के कारण जिन पर बहुत गाढ़ी धूलि जमी हुई थी तथा नदी के द्वारा जिनका बड़ा भारी खेद दूर कर दिया गया था ऐसे हाथियों को महावतों ने चिरकाल तक नहलाया था ॥७७॥ कैलास पर आते ही रावण को बालि का वृत्तान्त स्मृत हो उठा इसलिए उसने समस्त चैत्यालयों को बड़ी सावधानी से नमस्कार किया और धर्मानुकूल क्रियाओं का आचरण किया ॥७८॥ अथानन्तर इन्द्र ने दुर्लंघ्यपुर नामा नगर में नलकूबर को लोकपाल बनाकर स्थापित किया था सो गुप्तचरों से जब उसे यह मालूम हुआ कि सेना रूपी सागर के मध्य वर्तमान रहनेवाला रावण जीतने की इच्छा से निकट ही आ पहुँचा है तब उसने भयभीत चित्त होकर पत्र में सब समाचार लिख एक शीघ्रगामी विद्याधर इन्द्र के पास पहुँचाया ॥७९-८१॥ सो इन्द्र जिस समय जिन-प्रतिमाओं की वन्दना करने के लिए सुमेरु पर्वत पर जा रहा था उसी समय पत्रवाहक विद्याधर ने प्रणाम कर नलकूबर का पत्र उसके सामने रख दिया ॥८२॥ इन्द्र ने पत्र बाँचकर तथा समस्त अर्थ हृदय में धारणकर प्रतिलेख द्वारा आज्ञा दी कि मैं जब तक पाण्डुकवन में स्थित जिन-प्रतिमाओं की वन्दना कर वापस आता हूँ तब तक तुम बड़े यत्न से रहना । तुम अमोघ अस्त्र के धारक हो ॥८३-८४॥ ऐसा सन्देश देकर जिसका मन वन्दना में आसक्त था ऐसा इन्द्र गर्व-वश शत्रु की सेना को कुछ नहीं गिनता हुआ पाण्डुकवन चला गया ॥८५॥ इधर समयानुसार कार्य करने में तत्पर रहनेवाले नलकूबर ने समस्त आप्तजनों के साथ मिलकर बड़े प्रयत्न से नगर की रक्षा का उपाय सोचा ॥८६॥ उसने सौ योजन ऊँचा और तिगुनी परिधि से युक्त वज्रशाल नामा कोट, विद्या के प्रभाव से नगर के चारों ओर खड़ा कर दिया ॥८७॥ यह नगर शत्रु के अधीन है ऐसा जानकर रावण ने दण्ड वसूल करने के लिए प्रहस्त नामा सेनापति भेजा ॥88॥ सो उसने लौटकर रावण से कहा कि हे देव ! शत्रु का नगर बहुत ऊँचे प्रकार से घिरा हुआ है इसलिए वह नहीं लिया जा सकता है ॥8९॥ देखो वह भयंकर प्राकार यहाँ से ही समस्त दिशाओं में दिखाई दे रहा है । वह बड़ी ऊँची शिखरों और गम्भीर बिलों से युक्त है तथा जिसका मुख दाढ़ों से भयंकर है ऐसे अजगर के समान जान पड़ता है ॥90॥ लड़ते हुए तिलगों से जिनकी ओर देखना भी कठिन है ऐसी ज्वालाओं के समूह से वह प्राकार भरा हुआ है तथा बाँसों के जलते हुए किसी सघन बड़े वन के समान दिखाई देता है ॥९१॥ इस प्राकार में भयंकर दांढों को धारण करने वाले बेतालों के समान ऐसे-ऐसे विशाल यन्त्र लगे हुए हैं जो एक योजन के भीतर रहनेवाले बहुत से मनुष्यों को एक साथ पकड़ लेते हैं ॥९२॥ प्राणियों के जो समूह उन यन्त्रों के मुख में पहुँच जाते हैं फिर उसके शरीर का समागम दूसरे जन्म में ही होता है ॥९३॥ ऐसा जानकर आप नगर लेने के लिए कोई कुशल उपाय सोचिए । यथार्थ में दीर्घदर्शी मनुष्य के द्वारा ही विजिगीषुपना किया जाता है अर्थात् जो दीर्घदर्शी होता है वही विजिगीषु हो सकता है ॥९४॥ इस स्थान से तो शीघ्र ही निकल भागना शोभा देता है क्योंकि यहाँ पर जिसका निरावरण नहीं किया जा सकता ऐसा बहुत भारी संशय विद्यमान है ॥95॥ तदनन्तर कैलास की गुफाओं में बैठे रावण के नीति निपुण मन्त्री उपाय का विचार करने लगे ॥९६॥ अथानन्तर जिसके गुण और आकार रम्भा नामक अप्सरा के समान थे ऐसी नलकूबर की उपरम्भा नामक प्रसिद्ध स्त्री ने सुना कि रावण समीप ही आकर ठहरा हुआ है ॥९७॥ वह रावण के गुणों से पहले ही अनुरक्त थी इसलिए जिस प्रकार कुमुदों की पंक्ति चन्द्रमा के विषय में उत्कण्ठा को प्राप्त रहती है उसी प्रकार वह भी रावण के विषय में परम उत्कण्ठा को प्राप्त हुई ॥९८॥ उसने एकान्त में विचित्रमाला नामक सखी से कहा कि हे सुन्दरि, सुन । तुझे छोड़कर मेरी प्राण-तुल्य दूसरी सखी कौन है? ॥९९॥ जो समान बात कहे वहीं सखी शब्द प्रवृत्त होता है अर्थात् समान बात कहने वाली ही सखी कहलाती है, इसलिए हे शोभने! तू मेरी मनसा का भेद करने के योग्य नहीं है ॥१००॥ हे

चतुरे ! तू अवश्य ही मेरा कार्य सिद्ध करती है इसलिए तुझसे कहती हूँ। यथार्थ में सखियां ही जीवन का बड़ा आलम्बन हैं - सब से बड़ा सहारा हैं ॥१०१॥ ऐसा कहने पर विचित्रमाला ने कहा कि हे देवि ! आप ऐसा क्यों कहती हैं । मैं तो आपकी दासी हूँ, मुझे आप इच्छित कार्य में लगाइए ॥१०२॥ मैं अपनी प्रशंसा नहीं करती क्योंकि लोक में उसे निन्दनीय बताया है पर इतना अवश्य कहती हूँ कि मैं साक्षात् रूपधारिणी सिद्धि ही हूँ ॥१०३॥ जो कुछ तुम्हारे मन में हो उसे निशंक होकर कहो; मेरे रहते आप खेद व्यर्थ ही उठा रही हैं ॥१०४॥ तदनन्तर उपरम्भा लम्बी और धीमी साँस लेकर तथा कमल तुल्य हथेली पर चन्द्रमा के समान सुन्दर कपोल रखकर कहने लगी ॥१०५॥ जो अक्षर उपरम्भा के मुख से निकलते थे वे लज्जा के कारण बीच-बीच में रुक जाते थे अत: वह उन्हें बारबार प्रेरित कर रही थी - तथा उसका मन धृष्टता के ऊपर बार-बार चढ़ता और बार-बार गिरता था सो उसे वह बड़े कष्ट से धृष्टता के ऊपर स्थित कर रही थी ॥१०६॥ उसने कहा कि हे सखि ! बाल्य अवस्था से ही मेरा मन रावण में लगा हुआ है। यद्यपि मैंने उसके समस्त लोक में फैलने वाले मनोहर गुण सुने हैं तो भी मैं उसका समागम प्राप्त नहीं कर सकी । किन्तु उसके विपरीत भाग्य की मन्दता से मैं नलकूबर के साथ अप्रिय संगम को प्राप्त हुई हूँ सो अप्रीति के कारण निरन्तर भारी पश्चात्ताप को धारण करती रहती हूँ ॥107-108॥ हे रूपिणी ! यद्यपि मैं जानती हूँ कि यह कार्य प्रशंसनीय नहीं है तथापि हे सुभाषिते ! मैं मरण सहन करने के लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१०९॥ मेरे मन को हरण करनेवाला वह रावण इस समय निकट ही स्थित है इसलिए हे सखि! मुझ पर प्रसन्न हो और इसके साथ किसी तरह मेरा समागम करा ॥११०॥ यह मैं तेरे चरणों में नमस्कार करती हूँ इतना कहकर ज्यों ही वह शिर झुकाने के लिए उद्यत हुई त्यों ही सखी ने बड़ी शीघ्रता उसका शिर पकड़ लिया ॥१११॥ स्वामिनी! मैं आपका मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध करती हूँ यह कहकर सब स्थिति को जानने वाली दूती घर से बाहर निकली ॥११२॥ सजल-मेघ के समान सूक्ष्म वस्त्र का घूँघट धारण करने वाली दूती आकाश में उड़कर क्षण-भर में रावण के डेरे में जा पहुँची ॥११३॥ द्वारपालिनी के द्वारा सूचना देकर वह अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई । वहाँ प्रणाम कर, रावण के द्वारा दिये आसन पर विनय से बैठी ॥११४॥ तदनन्तर कहने लगी कि हे देव! आपके निर्दोष गुणों से जो समस्त संसार व्याप्त हो रहा है वह आपके समान प्रभावक पुरुष के अनुरूप ही है ॥115॥ चूँकि आपका उदार वैभव पृथिवी पर याचकों को सन्तुष्ट कर रहा है इस कारण मैं जानती हूँ कि आप सबका हित करने में तत्पर हैं ॥११६॥ मैं खूब समझती हूँ कि इस आकार को धारण करने वाले आप मेरी प्रार्थना को भंग नहीं करेंगे । यथार्थ में आप-जैसे लोगों की सम्पदा परोपकार का ही कारण है ॥११७॥ हे विभो! आप क्षण-भर के लिए समस्त परिजन को दूर कर दीजिए और ध्यान देकर मुझ पर प्रसन्नता कीजिए ॥११८॥

तदनन्तर जब सर्व परिजन दूर कर दिये गये और बिलकुल एकान्त हो गया तब सब वृत्तान्त जानने वाली दूती ने रावण के कान में पहले का सब समाचार कहा ॥११६॥

तदनन्तर दूती की बात सुन रावण ने दोनों हाथों से दोनों कान ढंक लिये । वह चिरकाल तक सिर हिलाता रहा और नेत्र सिकोड़ता रहा ॥१२०॥ सदाचार में तत्पर रहनेवाला रावण परस्त्री की वांछा सुन चिन्ता से क्षण-भर में खिन्नचित्त हो गया ॥१२१॥ उसने हँसते हुए कहा कि हे भद्रे ! पाप का संगम कराने वाली यह ऐसी बात तुम्हारे मन आयी ही कैसे? ॥१२२॥ तूने यह बात अभिमान छोड़कर कही है । ऐसी याचना के पूर्ण करने में मैं अत्यन्त दरिद्र हूँ, क्या करूँ? ॥१२३॥ चाहे विधवा हो, चाहे पति से सहित हो, चाहे कुलवती हो और चाहे रूप से युक्त वेश्या हो, परस्त्री मात्र का प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिए ॥१२४॥ यह कार्य इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह विरुद्ध है । तथा जो मनुष्य दोनों लोकों से भ्रष्ट हो गया वह मनुष्य ही क्या सो तू ही कह ॥१२५॥ हे भद्रे ! दूसरे मनुष्य के मुख की लार से पूर्ण तथा अन्य मनुष्य के अंग से मर्दित जूठा भोजन खाने की कौन मनुष्य इच्छा करता है? ॥१२६॥

तदनन्तर रावण ने यह बात प्रीतिपूर्वक विभीषण से भी एकान्त में कही सो नीति को जानने वाले एवं निरन्तर मन्त्रिगणों में प्रमुखता धारण करने वाले विभीषण ने इस प्रकार उत्तर दिया ॥१२७॥ कि हे देव! चूँकि यह कार्य ही ऐसा है अत: सदा नीति के जानने वाले राजा को कभी झूठ भी बोलना पड़ता है ॥१२८॥ सम्भव है स्वीकार कर लेने से सन्तोष को प्राप्त हुई उपरम्भा उत्कट विश्वास करती हुई, किसी तरह नगर लेने का कोई उपाय बता दे ॥१२५॥ तदनन्तर विभीषण के कहने से कपट का अनुसरण करने वाले रावण ने दूती से कहा कि हे भद्रे! तूने जो कहा है वह ठीक है ॥१३०॥ चूँकि उस बेचारी के प्राण मुझ में अटक रहे हैं और वह अत्यन्त दुःख से युक्त है अत: मेरे द्वारा रक्षा करने के योग्य है । यथार्थ में उदार मनुष्य दयालु होते हैं ॥१३१॥ इसलिए जब तक प्राण उसे नहीं छोड़ देते हैं तब तक जाकर उसे ले आ । प्राणियों की रक्षा करने में धर्म है यह बात पृथिवी पर खूब सुनी जाती है ॥१३२॥ इतना कहकर रावण के द्वारा विदा की हुई दूती क्षणभर

में जाकर उपरम्भा को ले आयी। आने पर रावण ने उसका बहुत आदर किया ॥१३३॥
तदनन्तर काम के वशीभूत हो जब उपरम्भा रावण के समीप पहुँची तब रावण ने कहा कि हे देवि ! मेरी उत्कट इच्छा दुर्गंध्य नगर में ही रमण करने की है ॥१३४॥ तुम्हीं कहो इस जंगल में क्या सुख है? और क्या काम वर्धक कारण है? हे देवि ! ऐसा करो कि जिससे मैं तुम्हारे साथ नगर में ही रमण करूँ ॥१३५॥ स्त्रियाँ स्वभाव से ही मुग्ध होती हैं इसलिए उपरम्भा रावण की कुटिलता को नहीं समझ सकी । निदान, उसने काम से पीड़ित हो उसे नगर में आने के लिए आशालि का नाम की वह विद्या जो कि प्राकार बनकर खड़ी हुई थी तथा व्यन्तर-देव जिनकी रक्षा किया करते थे ऐसे नाना शस्त्र बड़े आदर के साथ दे दिये ॥१३६-१३७॥ विद्या मिलते ही वह मायामय प्राकार दूर हो गया और उसके अभाव में वह नगर केवल स्वाभाविक प्राकार से ही आवृत रह गया ॥१३८॥ रावण बड़ी भारी सेना लेकर नगर के निकट पहुँचा सो उसका कलकल सुनकर नलकूबर क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१३९॥ तदनन्तर उस मायामय प्राकार को न देखकर लोकपाल नलकूबर बड़ा दुःखी हुआ । यद्यपि उसने समझ लिया था कि अब तो हमारा नगर रावण ने ले ही लिया तो भी उसने उद्यम नहीं छोड़ा । वह पुरुषार्थ को धारण करता हुआ बड़े श्रम से युद्ध करने के लिए बाहर निकला । अत्यन्त पराक्रमी सब सामन्त उसके साथ थे ॥१४०-१४१॥ तदनन्तर जो शस्त्रों से व्याप्त था, जिसमें सूर्य की किरणें नहीं दिख रही थीं और भयंकर कठोर शब्द हो रहा था ऐसे महायुद्ध के होने पर विभीषण ने वेग से उछलकर पैर के आघात से रथ का धुरा तोड़ दिया और नलकूबर को जीवित पकड़ लिया ॥१४२-१४३॥ रावण ने राजा सहस्ररश्मि के साथ जो काम किया था वही काम क्रोध से भरे विभीषण ने नलकूबर के साथ किया ॥१४४॥ उसी समय रावण ने देव और असुरों को भय उत्पन्न करने में समर्थ इन्द्र सम्बन्धी सुदर्शन नाम का चक्ररत्न प्राप्त किया ॥१४५॥
तदनन्तर रावण ने एकान्त में उपरम्भा से कहा कि हे प्रवरांगने ! विद्या देने से तुम मेरी गुरु हो ॥१४६॥ पति के जीवित रहते तुम्हें ऐसा करना योग्य नहीं है और नीति मार्ग का उपदेश देने वाले मुझे तो बिलकुल ही योग्य नहीं हुए ॥१४७॥ तत्पश्चात् शस्त्रों से विदारित कवच के भीतर जिसका अक्षत शरीर दिख रहा था ऐसे नलकूबर को वह समझाकर स्त्री के पास ले गया ॥१४८॥ और कहा कि इस भर्ता के साथ मनचाहे भोग भोगो । काम-सेवन के विषय में मेरे और इसके साथ उपभोग में विशेषता ही क्या है ?॥१४९॥ इस कार्य के करने से मेरी कीर्ति मलिन हो जायेगी और मैंने यह कार्य किया है इसलिए दूसरे लोग भी यह कार्य करने लग जावेंगे ॥१५०॥ तुम राजा आकाशध्वज और मृदुकान्ता की पुत्री हो, निर्मल कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है अत: शील की रक्षा करना ही योग्य है ॥१५१॥ रावण के ऐसा कहने पर वह अत्यधिक लज्जित हुई और प्रतिबोध को प्राप्त हो अपने पति में ही सन्तुष्ट हो गयी ॥१५२॥ इधर नलकूबर को अपनी स्त्री के व्यभिचार का पता नहीं चला इसलिए रावण से सम्मान प्राप्त कर वह पूर्ववत् उसके साथ रमण करने लगा ॥१५३॥
तदनन्तर रावण युद्ध में शत्रु के संहार से परम यश को प्राप्त करता हुआ बढ़ती हुई लक्ष्मी के साथ विजयार्धगिरि की भूमि में पहुँचा ॥१५४॥ अथानन्तर इन्द्र ने रावण को निकट आया सुन सभामण्डप में स्थित समस्त देवों से कहा ॥१५५॥ कि हे वस्वश्वि आदि देव जनों! युद्ध की तैयारी करो, आप लोग निश्चिन्त क्यों बैठे हो? यह राक्षसों का स्वामी रावण यहाँ आ पहुँचा है ॥१५६॥ इतना कहकर इन्द्र पिता से सलाह करने के लिए उसके स्थान पर गया और नमस्कार कर विनय-पूर्वक पृथिवी पर बैठ गया ॥१५७॥ उसने कहा कि इस अवसर पर मुझे क्या करना चाहिए। जिसे मैंने अनेक बार पराजित किया पुन: स्थापित किया ऐसा यह शत्रु अब प्रबल होकर यहाँ आया है ॥१५८॥ हे तात! मैंने आत्म कार्य के विरुद्ध यह बड़ी अनीति की है कि जब यह शत्रु छोटा था तभी इसे नष्ट नहीं कर दिया ॥१५९॥ उठते हुए कण्टक का मुख एक साधारण व्यक्ति भी तोड़ सकता है पर जब वही कण्टक परिपक्व हो जाता है तब बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है॥१६०॥ जब रोग उत्पन्न होता है तब उसका सुख से विनाश किया जाता है पर जब वह रोग जड़ बाँधकर व्याप्त हो जाता है तब मरने के बाद ही उसका प्रतिकार हो सकता है ॥१६१॥ मैंने अनेक बार उसके नष्ट करने का उद्योग किया पर आपके द्वारा रोक दिया गया । आपने व्यर्थ ही मुझे क्षमा धारण करायी ॥१६२॥ हे तात ! नीति मार्ग का अनुसरण कर ही मैं यह कह रहा हूँ । बड़ी से पूछकर कार्य करना यह कुल की मर्यादा है और इसलिए ही मैंने आप से पूछा है । मैं उसके मारने में असमर्थ नहीं हूँ ॥163॥ अहंकार और क्रोध से मिश्रित पुत्र के वचन सुनकर सहस्रार ने कहा कि हे पुत्र! इस तरह उतावला मत हो ॥१६४॥ पहले उत्तम मन्त्रियों के साथ सलाह कर क्योंकि बिना विचारे कार्य करने वालों का कार्य निष्फल हो जाता है ॥१६५॥ केवल पुरुषार्थ ही कार्यसिद्धि का कारण नहीं है क्योंकि निरन्तर कार्य करने वाले-पुरुषार्थी किसान के वर्षा के बिना क्या सिद्ध हो सकता है? ॥१६६॥ एक ही समान पुरुषार्थ करने वाले और एक ही समान आदर से पढ़ने वाले छात्रों में से कुछ तो सफल हो जाते हैं और कुछ कर्मों की विवशता से सफल नहीं हो पाते ॥१६७॥ ऐसी स्थिति आने पर भी तुम रावण के

साथ सन्धि कर लो क्योंकि सन्धि के होने पर तुम समस्त संसार को निष्कण्टक बना सकते हो ॥168॥ साथ ही तू रूपवती नाम की अपनी सुन्दरी पुत्री रावण के लिए दे दे । ऐसा करने में कुछ भी दोष नहीं है । बल्कि ऐसा करने से तेरी यही दशा बनी रहेगी ॥१६९॥ पवित्र बुद्धि के धारक पिता ने इस प्रकार इन्द्र को समझाया अवश्य परन्तु क्रोध के समूह के कारण उसके नेत्र क्षण-भर में लाल-लाल हो गये ॥१७०॥ क्रोधाग्नि के सन्ताप से जिसके शरीर में पसीने की परम्परा उत्पन्न हो गयी थी ऐसा देदीप्यमान इन्द्र अपनी वाणी से मानो आकाश को फोड़ता हुआ बोला कि हे तात! जो वध करने योग्य है उसी के लिए कन्या दी जावे यह कहाँ तक उचित है? अथवा वृद्ध पुरुषों की बुद्धि क्षीण हो ही जाती है ॥१७१-१७२॥ हे तात! कहो तो सही मैं किस वस्तु में उससे हीन हूँ? जिससे आपने यह अत्यन्त दीन वचन कहे हैं ॥१७३॥ जो मस्तक पर सूर्य की किरणों का स्पर्श होने पर भी अत्यन्त खेदखिन्न हो जाता है वह उदार मानव मिलने पर अन्य पुरुष के लिए प्रणाम किस प्रकार करेगा? ॥174॥ मैं पुरुषार्थ की अपेक्षा रावण से हर एक बात में अधिक हूँ फिर आपकी बुद्धि में यह बात कैसे बैठ गयी कि भाग्य उसके अनुकूल है? ॥१७५॥ यदि आपका यह ख्याल है कि इसने अनेक शत्रुओं को जीता है तो अनेक हरिणों को मारने वाले सिंह को क्या एक भील नहीं मार देता? ॥१७६॥ शस्त्रों के प्रहार से जहाँ ज्वालाओं के समूह उत्पन्न हो रहे हैं ऐसे युद्ध में प्राणत्याग करना भी अच्छा है पर शत्रु के लिए नमस्कार करना अच्छा नहीं है ॥१७७॥ वह इन्द्र रावण राक्षस के सामने नम्र हो गया इस तरह लोक में जो मेरी हँसी होगी उस ओर भी आपने दृष्टि क्यों नहीं दी? ॥178॥ वह विद्याधर है और मैं भी विद्याधर हूँ इस प्रकार विद्याधरपना की समानता सन्धि का कारण नहीं हो सकती । जिस प्रकार सिंह और शृगाल में वनचारित्व की समानता होने पर भी एकता नहीं होती है उसी प्रकार विद्याधर पना की समानता होने पर भी हम दोनों में एकता नहीं हो सकती ॥१७९॥ इस प्रकार प्रातःकाल के समय इन्द्र पिता के समक्ष कह रहा था कि उसी समय समस्त संसार को व्याप्त करनेवाला शत्रुसेना का जोरदार शब्द उसके कानों में प्रविष्ट हुआ ॥180॥

तदनन्तर पिता की बात अनसुनी कर वह आयुधशाला में गया और वहाँ युद्ध की तैयारी का संकेत करने के लिए उसने जोर से तुरही बजवायी ॥१८१॥ हाथी शीघ्र लाओ, घोड़ा पर शीघ्र ही पलान बाँधो, तलवार यहाँ देओ, अच्छा-सा कवच लाओ, दौड़कर धनुष लाओ, सिर की रक्षा करनेवाला टोप इधर बढ़ाओ, हाथ पर बांधने की पट्टी शीघ्र देओ, छुरी भी जल्दी देओ, अरे चेट, घोड़े जोत और रथ को तैयार करो इत्यादि शब्द करते हुए देवनामधारी विद्याधर इधर-उधर चलने लगे ॥१८२-१८४॥ अथानन्तर-जब वीर सैनिक क्षुभित हो रहे थे, बाजे बज रहे थे, शंख जोरदार शब्द कर रहे थे, हाथी बार-बार चिंघाड़ रहे थे, बेंत के छूते ही घोड़े दीर्घ हुंकार छोड़ रहे थे, रथों के समूह चल रहे थे और प्रत्यंचाओं के समूह जोरदार गुंजन कर रहे थे, तब योद्धाओं के अट्टहास और चारणों के जयजयकार से समस्त संसार ऐसा हो गया था मानो शब्द से निर्मित हो ॥१८५-१८७॥ तलवारों, तोमरों, पाशों, ध्वजाओं, छत्रों और धनुषों से समस्त दिशाएँ आच्छादित हो गयीं और सूर्य का प्रभाव जाता रहा ॥188॥ शीघ्रता के प्रेमी देव तैयार हो-हो कर बाहर निकल पड़े और हाथियों के घण्टाओं के शब्द सुन-सुनकर गोपुर के समीप धक्कमधक्का करने लगे ॥१८९॥ रथ को उधर खड़ा करो, इधर यह मदोन्मत्त हाथी आ रहा है । अरे महावत! हाथी को यहाँ से शीघ्र ही हटा । अरे सवार ! यहीं क्यों रुक गया? शीघ्र ही घोड़ा आगे ले जा । अरी मुग्धे! मुझे छोड़ तू लौट जा, व्यर्थ ही मुझे व्याकुल मत कर इत्यादि वार्तालाप करते हुए शीघ्रता से भरे देव, अपने-अपने मकानों से बाहर निकल पड़े । उस समय वे अहंकार के कारण शुभ गर्जना कर रहे थे ॥१९०-१९२॥ कभी धीमी और कभी जोर से बजायी हुई तुरही से जिसका उत्साह बढ़ रहा था ऐसी सेना जब शत्रु के सम्मुख जाकर यथास्थान खड़ी हो गयी तब आकाश को आच्छादित करने वाले शस्त्र समूह को छोड़ते हुए देवों ने राक्षसों की सेना का मुख भंग कर दिया **अर्थ**ात् उसके अग्रभाग पर जोरदार प्रहार किया ॥१९३-१९४॥ सेना के अग्रभाग का विनाश देख प्रबल पराक्रम के धारक राक्षस कुपित हो अपनी सेना के आगे आ डटे ॥१९५॥ वज्रवेग, प्रहस्त, हस्त, मारीच, उद्धव, वज्रमुख, शुक, घोर, सारण, गगनोज्ज्वल, महाजठर, सन्ध्याभ्र और क्रूर आदि राक्षस आ-आकर सेना के सामने खड़े हो गये । ये सभी राक्षस कवच आदि से युक्त थे, उत्तमोत्तम सवारियों पर आरूढ़ थे और अच्छे-अच्छे शस्त्रों से युक्त थे ॥१६६-१९७॥ तदनन्तर इन उद्यमी राक्षसों ने देवों की सेना को क्षणमात्र में मारकर भयभीत कर दिया । उसके छोड़े हुए अस्त्र-शस्त्र शत्रुओं के हाथ लगे ॥१९8॥ तब अपनी सेना के अग्रभाग को नष्ट होता देख बड़े-बड़े देव युद्ध करने के लिए उठे । उस समय उन सबके शरीर अत्यन्त तीव्र क्रोध से भर रहे थे ॥१९९॥ मेघमाली, तडित्पिंग, ज्वलिताक्ष, अरिसंज्वर और अग्निरथ आदि देव सामने आये ॥२००॥ जो शस्त्रों के समूह की वर्षा कर रहे थे और उत्पन्न हुए तीव्र क्रोध से अतिशय देदीप्यमान थे ऐसे देवों ने उठकर राक्षसों को रोका ॥२०१॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करने के बाद राक्षस भंग को प्राप्त हुए

। एक-एक राक्षस को बहुत—से देवों ने घेर लिया ॥२०२॥ वेगशाली भँवरों में पड़े हुए के समान राक्षस इधर-उधर घूम रहे थे तथा उनके ढीले हाथों से शस्त्र छूट-छूटकर नीचे गिर रहे थे ॥२०३॥ कितने ही राक्षस युद्ध से पराङ्मुख हो गये पर जो अभिमानी राक्षस थे वे सामने आकर प्राण तो छोड़ रहे थे पर उन्होंने शस्त्र नहीं छोड़े ॥२०४॥ तदनन्तर देवों की विकट मार से राक्षसों की सेना को नष्ट होता देख वानरवंशी राजा महेन्द्र का महाबलवान् पुत्र, जो कि अत्यन्त चतुर था और प्रसन्न कीर्ति इस सार्थक नाम को धारण करता था,युद्ध के अग्रभाग में स्थित शत्रुओं की सेना को भयभीत करता हुआ सामने आया ॥२०५-२०६॥ अपनी सेना की रक्षा करते हुए उसने निरन्तर निकलने वाले बाणों से शत्रु को सेना को पराङ्मुख कर दिया ॥२०७॥ विजयार्ध पर्वत पर रहनेवाले देवों की जो सेना नाना प्रकार के शस्त्रों से देदीप्यमान थी वह प्रथम तो प्रसन्न कीर्ति से अत्यधिक महान् उत्साह को प्राप्त हुई ॥२०८॥ पर उसके बाद ही जब उसने उसकी ध्वजा और छत्र में वानर का चिह्न देखा तो उसका मन दूक-दूक हो गया ॥२०९॥ तदनन्तर जिस प्रकार काम के बाणों से कुगुरु का हृदय खण्डित हो जाता है उसी प्रकार जिनसे अग्नि की देदीप्यमान शिखा निकल रही थी ऐसे प्रसन्न कीर्ति के बाणों से देवों की सेना खण्डित हो गयी ॥२१०॥ तदनन्तर देवों की और दूसरी सेना सामने आयी । वह सेना कनक, तलवार, गदा, शक्ति, धनुष और मुद्गर आदि अस्त्र शस्त्रों से युक्त थी ॥२११॥ तत्पश्चात् माल्यवान् का पुत्र श्रीमाली जो अत्यन्त वीर और निशंक हृदय वाला था देवों की सेना के आगे खड़ा हो गया ॥२१२॥ जिसकी सूर्य के समान कान्ति थी तथा जो निरन्तर बाणों का समूह छोड़ रहा था ऐसे श्रीमाली ने देवों को क्षणमात्र में कहां भेज दिया इसका पता नहीं चला ॥२१३॥ तदनन्तर जो शत्रुपक्ष की ओर से सामने खड़ा था, जिसका वेग अनिवार्य था, जो शत्रुओं की सेना को इस तरह क्षोभ युक्त कर रहा था जिस प्रकार कि महा ग्राह किसी समुद्र को क्षोभ युक्त करता है, जो अपना मदोन्मत्त हाथी शत्रुओं की सेना पर हूल रहा था और जो तलवार हाथ में लिये उद्दण्ड योद्धाओं के बीच में घूम रहा था ऐसे श्रीमाली को देखकर देव लोग अपनी सेना की रक्षा करने के लिए उठे । उस समय उन सबके शरीर बहुत भारी क्रोध से व्यास थे तथा उनके हाथों में अनेक शस्त्र चमक रहे थे ॥२१४—२१६॥ शिखी, केशरी, दण्ड, उग्र, कनक, प्रवर आदि इन्द्र के योद्धाओं ने आकाश को दूर तक ऐसा आच्छादित कर लिया जैसा कि वर्षाऋतु के मेघ आच्छादित कर लेते हैं ॥२१७॥ इनके सिवाय मृग चिह्न आदि इन्द्र के भानेज भी जो कि रण से समुत्पन्न तेज के द्वारा अत्यधिक देदीप्यमान और महाबलवान् थे, आकाश को दूर-दूर तक आच्छादित कर रहे थे ॥२१८॥ तदनन्तर श्रीमाली ने अपने अर्द्धचन्द्राकार बाणों से काटे हुए उनके सिरों से पृथिवी को इस प्रकार ढँक दिया मानो शेवाल-सहित कमलों से ही ढँक दिया हो ॥२१९॥ अथानन्तर इन्द्र ने विचार किया कि जिसने इन श्रेष्ठ देवों के साथ-साथ इन नरश्रेष्ठ राजकुमारों का क्षय कर दिया है तथा अपने विशाल तेज से जिसकी ओर आँख उठाना भी कठिन है ऐसे इस राक्षस के आगे युद्ध में देवों के बीच ऐसा कौन है जो सामने खड़ा होने की भी इच्छा कर सके? इसलिए जब तक यह दूसरे देवों को नहीं मारता है उसके पहले ही मैं स्वयं इसके युद्ध की श्रद्धा का नाश कर देता हूँ ॥२२०-२२२॥ ऐसा विचारकर देवों का स्वामी इन्द्र भय से काँपती हुई सेवा को सान्तवना देकर ज्योंही युद्ध के लिए उठा त्योंही उसका महाबलवान जयन्त नाम का पुत्र चरणों में गिरकर तथा पृथिवी पर घुटने टेककर कहने लगा कि हे देवेन्द्र! यदि मेरे रहते हुए आप युद्ध करते हैं तो आप से जो मेरा जन्म हुआ है वह निरर्थक है ॥२२३-२२५॥ जब मैं बाल्य अवस्था में आपकी गोद में क्रीड़ा करता था और आप पुत्र के स्नेह से बारबार मेरी ओर देखते थे आज मैं उस स्नेह का बदला चुकाना चाहता हूँ, उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ ॥२२६॥ इसलिए हे तात! आप निराकुल होकर घर पर रहिए । मैं क्षण-भर में समस्त शत्रुओं का नाश कर डालता हूँ ॥२२७॥ हे तात! जो वस्तु थोड़े ही प्रयत्न से नख के द्वारा छेदी जा सकती है वहाँ परशु का चलाना व्यर्थ ही है ॥२२8॥ इस प्रकार पिता को मनाकर जयन्त युद्ध के लिए उद्यत हुआ । उस समय वह क्रोधावेश से ऐसा जान पड़ता था मानो शरीर के द्वारा आकाश को ही ग्रस रहा हो ॥२२9॥ पवन के समान वेगशाली एवं देदीप्यमान शस्त्रों को धारण करने वाली सेना जिसकी रक्षा कर रही थी ऐसा जयन्त बिना किसी खेद के सहज ही श्रीमाली के सम्मुख आया ॥२३०॥ श्रीमाली चिर काल बाद रण के योग्य शत्रु को आया देख बहुत सन्तुष्ट हुआ और सेना के बीच गमन करता हुआ उसकी ओर दौड़ा ॥२३१॥ तदनन्तर जिनके धनुर्मण्डल निरन्तर खिंचते हुए दिखाई देते थे ऐसे क्रोध से भरे दोनों कुमारों ने एक दूसरे पर बाणों की वर्षा छोड़ी ॥२३२॥ जिनका चित्त आश्चर्य से भर रहा था और जो अपनी-अपनी रेखाओं पर खड़ी थीं ऐसी दोनों ओर की सेनाएं निश्चल होकर उन दोनों कुमारों का युद्ध देख रही थी ॥२३३॥ तदनन्तर अपनी सेना को हर्षित करते हुए श्रीमाली ने कनक नामक हथियार से जयन्त का रथ तोड़कर रथरहित कर दिया ॥२३ड॥ जयन्त मूर्च्छा से नीचे गिर पड़ा सो उसे गिरा देख उसकी सेना का मन भी गिर गया और मूर्च्छा दूर होने पर जब वह उठा तो सेना का मन भी उठ गया ॥२३५॥ तदनन्तर जयन्त ने भिण्डिभाल नामक शस्त्र चलाकर श्रीमाली

को रथरहित कर दिया और अत्यन्त बढ़े हुए क्रोध से ऐसा प्रहार किया कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥१३६॥ तब शत्रुसेना में बड़ा भारी हर्षनाद हुआ और इधर राक्षसों की सेना में रुदन शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥२३७॥ जब मूर्च्छा दूर हुई तब श्रीमाली अत्यन्त कुपित हो शस्त्र समूह की वर्षा करता हुआ जयन्त के सम्मुख गया । उस समय वह अत्यन्त भयंकर दिखाई देता था ॥२३8॥ शस्त्र समूह को छोड़ते हुए दोनों कुमार ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जिनकी चमकीली सटाओं का समूह उड़ रहा था ऐसे सिंह के दो बालक ही हों ॥२३९॥ तदनन्तर इन्द्र के पुत्र जयन्त ने माल्यवार के पुत्र श्रीमाली के वक्षःस्थल पर गदा का ऐसा प्रहार किया कि वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥५४०॥ मुख से खून को छोड़ता पृथिवी पर पड़ा श्रीमाली ऐसा जान पड़ता था मानो अस्त होता हुआ सूर्य ही हो ॥२४१॥ श्रीमाली को मारने के बाद जयन्त ने रथ पर सवार हो हर्ष से शंख फूँका जिससे राक्षस भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे ॥२४२॥

तदनन्तर श्रीमाली को निष्प्राण और जिसके योद्धा हर्षनाद कर रहे थे ऐसे जयन्त को आगामी युद्ध के लिए तत्पर देख रावण का पुत्र इन्द्रजित् अपनी भागती हुई सेना को आश्वासन देता हुआ जयन्त के सम्मुख आया । उस समय वह क्रोध से बड़ा विकट जान पड़ता था ॥२४३-२४४॥ तदनन्तर इन्द्रजित् ने कलिकाल की तरह लोगों के अनादर करने में संलग्न जयन्त को अपने बाणों से कवच की तरह जर्जर कर दिया **अर्थ**ात् जिस प्रकार बाणों से उसका कवच जर्जर किया था उसी प्रकार उसका शरीर भी जर्जर कर दिया ॥२४५॥ जिसका कवच टूट गया था, जिसका शरीर खून से लाल-लाल हो रहा था और जो गड़े हुए बाणों से सेही की तुलना प्राप्त कर रहा था ऐसे जयन्त को देखकर इन्द्र स्वयं युद्ध करने के लिए उठा। उस समय इन्द्र अपने वाहनों और चमकते हुए तीक्षा शस्त्रों से नीरन्ध्र आकाश को आच्छादित कर रहा था ॥२४६-२४७॥ इन्द्र को युद्ध के लिए उद्यत देख सन्मति नामक सारथी ने रावण से कहा कि हे देव ! यह देवों का अधिपति इन्द्र स्वयं ही आया है ॥२४8॥ लोकपालों का समूह चारों ओर से इसकी रक्षा कर रहा है, यह मदोन्मत्त ऐरावत हाथी पर सवार है, मुकुट के रत्नों की प्रभा से आवृत है, ऊपर लगे हुए सफेद छत्र से सूर्य को ढँक रहा है, तथा क्षोभ को प्राप्त हुए महासागर के समान सेना से घिरा हुआ है ॥२४९-२५०॥ यह चूँकि महाबलवान् है इसलिए कुमार इन्द्रजित् युद्ध करने के लिए इसके योग्य नहीं है अत: आप स्वयं ही उठिए और शत्रु का अहंकार नष्ट कीजिए ॥251॥

तदनन्तर बलवान् इन्द्र को सामने आता देख रावण वायु के समान वेगशाली रथ से सामने दौड़ा ।उस समय रावण माली के मरण का स्मरण कर रहा था और अभी हाल में जो श्रीमाली का वध हुआ था उससे देदीप्यमान हो रहा था । उस समय इन दोनों योद्धाओं का रोमांचकारी भयंकर युद्ध हो रहा था । वह युद्ध शस्त्र समुदाय से उत्पन्न सघन अन्धकार से व्याप्त था । रावण ने देखा कि उसका पुत्र इन्द्रजित् सब ओर से शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया है अत: वह कुपित हो आगे दौड़ा ॥२५२-२५४॥ तदनन्तर जहाँ शस्त्रों के द्वारा अन्धकार फैल रहा था और रुधिर का कुहरा छाया हुआ था ऐसे युद्ध में यदि शूरवीर योद्धा पहचाने जाते थे तो केवल अपनी जोरदार आवाज से ही पहचाने जाते थे ॥२५५॥ जिन योद्धाओं ने पहले अपेक्षा भाव से युद्ध करना बन्द कर दिया था उन पर भी जब चोटें पड़ने लगीं तब वे स्वामी की भक्ति से प्रेरित हो प्रहार जन्य क्रोध से अत्यधिक युद्ध करने लगे ॥२५६॥ गदा, शक्ति, कुन्त, मुसल, कृपाण, बाण, परिघ, कनक, चक्र, छुरी, अंह्रिप, शूल, पाश, भुशुण्डी, कुठार, मुद्गर, घन, पत्थर, लांगल, दण्ड, कौण, बांस के बाण तथा एक दूसरे को काटने वाले अन्य अनेक शस्त्रों से उस समय आकाश भयंकर हो गया था और शस्त्रों के पारस्परिक आघात से उसमें अग्नि उत्पन्न हो रही थी ॥२५७-२५९॥ उस समय कहीं तो ग्रसद्-ग्रसद्, कहीं शूद्-शूद्, कहीं रण-रण, कहीं किण-किण, कहीं त्रप-त्रप, कहीं दम-दम, कहीं छम-छम, कहीं पट-पट, कहीं छल-छल, कहीं टद्द-टद्द, कहीं तड़-तड़, कहीं चट-चट और कहीं घग्घ—घग्घ की आवाज आ रही थी । यथार्थ बात यह थी कि शस्त्रों से उत्पन्न स्वरों से उस समय रणांगण शब्दमय हो रहा था ॥२६२६३॥ घोड़ा घोड़ा को मार रहा था, हाथी हाथी को मार रहा था, घुड़सवार घुड़सवार को, हाथी का सवार हाथी के सवार को और रथ रथ को नष्ट कर रहा था ॥२६४॥ जो जिसके सामने आया उसी को चीरने में तत्पर रहनेवाला पैदल सिपाहियों का झुण्ड पैदल सिपाहियों के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत था ॥२६५॥ हाथियों की शूत्कार के साथ जो जल के छींटों का समूह निकल रहा था वह शस्त्रपात से उत्पन्न अग्नि को शान्त कर रहा था ॥२६६॥ प्रतिमा के समान भारी-भारी जो दाँत हाथियों के मुख से नीचे गिरते थे वे गिरते-गिरते ही अनेक योद्धाओं की पंक्ति का कचूमर निकाल देते थे ॥२६७॥ अरे शूर पुरुष! प्रहार छोड़, कायर क्यों हो रहा है? हे सैनिक शिरोमणे ! इस समय जरा मेरी तलवार का भी तो वार सहन कर ॥२६८॥ ले अब तू मरता ही है, मेरे पास आकर अब तो जा ही कहां सकता है? अरे दुशिक्षित! तलवार पकड़ना भी तो तुझे आता नहीं है, युद्ध करने के लिए चला है ॥२६९॥ जा यहाँ से भाग जा और अपने आपकी रक्षा कर । तेरी रण की खाज व्यर्थ है, तूने इतना

थोड़ा घाव किया कि उससे मेरी खाज ही नहीं गयी ॥२७०॥ तुझ नपुंसक ने स्वामी का वेतन व्यर्थ ही खाया है, चुप रह, क्यों गरज रहा है? अवसर आने पर शूरवीरता अपने आप प्रकट हो जायेगी ॥२७१॥ काँप क्यों रहा है? जरा स्थिरता को प्राप्त हो, शीघ्र ही बाण हाथ में ले, मुट्ठी को मजबूत रख, देख यह तलवार खिसककर नीचे चली जायेगी ॥२७2॥ उस समय युद्ध में अपने-अपने स्वामियों के आगे परमोत्साह से युक्त योद्धाओं के बार-बार उल्लिखित वार्तालाप हो रहे थे ॥२७३॥ किसी की भुजा आलस्य से भरी थी-उठती ही नहीं थी पर जब शत्रु ने उसमें गदा की चोट जमायी तब वह क्षण-भर में नाच उठा और उसकी भुजा ठीक हो गयी॥२७४॥ जिससे बड़े वेग से अत्यधिक खून निकल रहा था ऐसा किसी का सिर शत्रु के लिए बार-बार धन्यवाद देता हुआ नीचे गिर पड़ा॥२७५॥ बाणों से योद्धाओं का वक्षःस्थल तो खण्डित हो गया पर मन खण्डित नही हुआ । इसी प्रकार योद्धाओं का सिर तो गिर गया पर मान नहीं गिरा । उन्हें मृत्यु प्रिय थी पर जीवन प्रिय नहीं था ॥२७६॥ जो महा-तेजस्वी कुशल वीर थे उन्होंने संकट आने पर शस्त्र लिये यश की रक्षा करते-करते अपने प्राण छोड़ दिये थे ॥२७७॥कोई एक योद्धा मर तो रहा था पर शत्रु को मारने की इच्छा से क्रोध युक्त हो जब गिरने लगा तो-शत्रु के शरीर पर आक्रमण कर गिरा ॥२७8॥ शत्रु के शस्त्र की चोट से जब किसी योद्धा का शस्त्र छूटकर नीचे गिर गया तब उसने मुट्ठी रूपी मुद्गर की मार से ही शत्रु को प्राण रहित कर दिया ॥२७९॥ किसी महायोद्धा ने मित्र की तरह भुजाओं से शत्रु का गाढ आलिंगन कर उसे निर्जीव कर दिया-आलिंगन करते समय शत्रु के शरीर से खून की धारा बह निकली थी ॥२८०॥ किसी योद्धा ने योद्धाओं के समूह को मारकर युद्ध में अपना सीधा मार्ग बना लिया था । भय के कारण अन्य पुरुष उसके उस मार्ग में आड़े नहीं आये थे ॥२8१॥ गर्व से जिनका वक्षःस्थल तना हुआ था ऐसे उत्तम योद्धाओं ने गिरते-गिरते भी शत्रु के लिए अपनी पीठ नही दिखलायी थी ॥२8२॥ बड़े वेग से नीचे गिरने वाले घोड़ों, रथों, योद्धाओं और हाथियों ने हजारों घोड़ों, रथों, योद्धाओं और हाथियों को नीचे गिरा दिया था ॥283॥ शस्त्रों के निक्षेप से उठी हुई रुधिराक्त धूलि और हाथियों के मदजल से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो इन्द्र धनुषों से ही आच्छादित हो रहा हो ॥२८४॥ कोई एक भयंकर योद्धा अपनी निकलती हुई आँतों को बायें हाथ से पकड़कर तथा दाहिने हाथ से तलवार उठा बड़े वेग से शत्रु के सामने जा रहा था ॥२८५॥ जो ओठ चाब रहा था तथा जिसके नेत्रों की पूर्ण पुतलियां दिख रही थी ऐसा कोई योद्धा अपनी ही आंतों से कमर को मजबूत कसकर शत्रु की ओर जा रहा था ॥२८६॥ जिसके हथियार गिर गये थे ऐसे किसी योद्धा ने क्रोध निमग्न हो अपना खून दोनों हाथों में भरकर शमु के सिर पर डाल दिया था ॥२८७॥ जो निकलते हुए खून की धारा से लथपथ नखों से सुशोभित था ऐसा कोई योद्धा शत्रु के द्वारा काटी हुई अपनी हड्डी लेकर शत्रु के सामने जा रहा था ॥२88॥ जो युद्ध में उत्सुक तथा युद्ध काल में उत्पन्न होनेवाली अनेक चेष्टाओं से युक्त था ऐसे किसी योद्धा ने शत्रु को पाश में बाँधकर दूर ले जाकर छोड़ दिया ॥२8९॥

जो न्यायपूर्ण युद्ध करने में तत्पर था ऐसे किसी योद्धा ने जब देखा कि हमारे शत्रु के शस्त्र नीचे गिर गये हैं और वह निरस्त्र हो गया है तब वह स्वयं भी अपना शस्त्र छोड़कर अनिच्छा से शत्रु के सामने गया था ॥२६०॥ कोई योद्धा धनुष के अग्रभाग में लगे एवं खून की बड़ी मोटी धाराओं की वर्षा करने वाले शत्रु के द्वारा ही दूसरे शत्रुओं को मार रहा था ॥२९१॥ कोई एक योद्धा सिर कट जाने से यद्यपि बन्ध दशा को प्राप्त हुआ था तथापि उसने शत्रु को दिशा में वेग से उछलते हुए सिरके द्वारा ही रुधिर की वर्षा कर शत्रु को मार डाला था ॥ 292॥ जिसका चित्त गर्व से भर रहा था ऐसे किसी योद्धा का सिर यद्यपि कट गया था तो भी वह ओठों को डसता रहा रसे मुखर होता हुआ चिरकाल बाद नीचे गिरा था॥ 293॥ जो साँप के समान जान पड़ता था ऐसे किसी योद्धा ने गिरते समय उल्काके समान अत्यन्त भयंकर अपनी दृष्टि शत्रु के शरीर पर डाली थी ॥294॥ किसी पराक्रमी योद्धा ने शत्रु के द्वारा आधे काटे हुए अपने सिर को बायें हाथ से थाम लिया और दाहिने हाथ से शत्रु का सिर काटकर नीचे गिरा दिया ॥295॥ किसी योद्धाका शस्त्र शत्रु तक नहीं पहुंच रहा था इसलिए क्रोध में आकर उसने उसे फेंक दिया और अर्गलके समान लम्बी भुजा से ही शत्रु को मारनेके लिए उद्यत हो गया ॥296॥ किसी एक दयालु योद्धा ने देखा कि हमारा शत्रु सामने मूच्छित पड़ा है जब उसे सचेत करनेके लिए जल आदि अन्य साधन न मिले तब उसने सम्भ्रम से युक्त हो वस्त्र के छोर की वायु से शीतल किये गये अपने ही रुधिर से उसे बार-बार सींचना शुरू कर दिया॥ 297॥ क्रोध से कांपते हुए शूर-वीर मनुष्यों को जब मूर्छा आती थी तब वे समझते थे कि विश्राम प्राप्त हुआ है, जब शस्त्रों को चोट लगती थी तब समझते थे कि सुख प्राप्त हआ और जब मरण प्राप्त होता था तब समझते थे कि कृतकृत्यता प्राप्त हुई है॥ 298॥ _ इस प्रकार जब योद्धाओंके बीच महायुद्ध हो रहा था, ऐसा महायुद्ध कि जो भयको भी भय उत्पन्न करनेवाला था तथा उत्तम मनुष्योंको आनन्द उत्पन्न करने में तत्पर था॥ 299॥ जहाँ हाथी अपनी सूंड़ों में कसकर वीर पुरुषोंको अपनी ओर खींचते थे पर वे वीर पुरुष उनकी सूँड़ें स्वयं काट डालते थे। जहाँ

लोग घोड़ों को काटनेके लिए उद्यत होते अवश्य थे पर वे वेगशाली घोड़े अपने खुरों के आघात से उन्हें वहीं गिरा देते थे ॥300 । जहाँ घोड़े सारथियों की प्रेरणा पाकर रथ खींचते थे पर उनसे उनका शरीर घायल हो जाता था। जहाँ मस्तक-रहित बड़े-बड़े हाथी पड़े हुए थे और लोग उनपर पैर रखते हुए चलते थे॥ 301॥ जहाँ पैदल सिपाहियों के शरीर एक दूसरेके वेगपूर्ण आघात से खण्डित हो रहे थे। जहाँ उत्तम योद्धा अपने हाथों से घोड़ों की पूंछ पकड़कर इतने जोर से खींचते थे कि वे निश्चल खड़े रह जाते थे ॥302॥ जहाँ हाथों की चोट से हाथियों के गण्डस्थल फट जाते थे तथा उनसे मोती निकलने लगते थे। जहाँ गिरते हुए हाथियों से रथ टूट जाते थे और उनकी चपेट में आकर अनेक योद्धा घायल होकर नीचे गिर जाते थे ॥303॥ जहाँ लोगों की नासिकाओं के समूह पड़ते हुए खून के समूह से आच्छादित हो रहे थे अथवा जहाँ आकाश और दिशाओं के समूह खून के समूह से आच्छादित थे और जहाँ हाथियों के कानों की फटकार से प्रचण्ड वायु उत्पन्न हो रही थी ॥304॥ इस प्रकार योद्धाओं के बीच भयंकर यद्ध हो रहा था पर यद्ध के कुतूहल से भरा वीर रावण उस युद्ध को ऐसा मान रहा था जैसा कि मानो कुछ हो ही न रहा हो। उसने अपने सुमति नामक सारथि से कहा कि उस इन्द्र के सामने ही रथ ले जाया जाये क्योंकि जो हमारी समानता नहीं रखते ऐसे उसके अन्य सामन्तों के मारने से क्या लाभ है ? ॥305-306॥ तृण के समान तुच्छ इनं सामन्तों पर न तो मेरा शस्त्र उठता है और न महाभटरूपी ग्रास के ग्रहण करने में तत्पर मेरा मन ही इनकी ओर प्रवृत्त होता है॥ 307॥ अपने आपकी विडम्बना करानेवाले इस विद्याधर ने क्षुद्र अभिमान के वशीभूत हो अपने आपको जो इन्द्र मान रखा है सो इसके उस इन्द्रपना को आज मृत्यु के द्वारा दूर करता हूँ ॥308॥ यह बड़ा इन्द्र बना है, ये लोकपाल इसी ने बनाये हैं। यह अन्य मनुष्यों को देव मानता है और विजया पर्वत को स्वर्ग समझता है॥ 309॥ बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस प्रकार कोई दुर्बुद्धि नट उत्तम पुरुष का वेष धर अपने आपको भुला देता है उसी प्रकार यह दुर्बुद्धि क्षुद्र लक्ष्मी से मत्त होकर अपने आपको भुला रहा है, तथा लोगों की हँसी का पात्र हो रहा है॥ 310॥ शुक्र, शोणित, मांस, हड्डी और मज्जा आदि से भरे हुए माता के उदर में चिरकाल तक निवास कर यह अपने आपको देव मानने लगा है ॥311॥ विद्या के बल से कुछ तो भी करता हुआ यह अधीर व्यक्ति अपने आपको देव समझ रहा है जो इसका यह कार्य ऐसा है कि जिस प्रकार कोआ अपने आपको गरुड़ समझने लगता है॥ 312॥ ऐसा कहते ही सुमति नामक सारथि ने महाबलवान् सामन्तों के द्वारा सुरक्षित रावण के रथको इन्द्र की सेना में प्रविष्ट कर. दिया ॥313॥ वहाँ जाकर रावण ने इन्द्र के उन सामन्तों को सरल दृष्टि से देखा कि जो युद्ध में असमर्थ होकर भाग रहे थे, तथा कीड़ों के समान जिनकी दयनीय चेष्टाएँ थीं ॥314॥ जिस प्रकार किनारे नीर के प्रवाह को नहीं रोक सकते हैं और जिस प्रकार मिथ्यादर्शन के साथ व्रताचरण करनेवाले मनुष्य क्रोधसहित मन के वेग को नहीं रोक पाते हैं उसी प्रकार शत्रु भी रावण को आगे बढ़ने से नहीं रोक सके थे ॥315॥ जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार क्षीरसमुद्र की आवर्त के समान धवल रावण का छत्र देखकर देवों की सेना न जाने कहाँ नष्ट हो गयी ॥316॥ कैलास पर्वत के समान ऊँचे हाथी पर सवार हुआ इन्द्र भी तरकस से बाण निकालता हुआ रावण के सम्मुख आया ॥317॥ जिस प्रकार मेघ बड़ी मोटी धाराओं के समूह को किसी पर्वत पर छोड़ता है उसी प्रकार इन्द्र भी कान तक खींचे हुए बाण रावण के ऊपर छोड़ने लगा ॥318॥ इधर रावण ने भी इन्द्र के उन बाणों को बीच में ही अपने बाणों से छेद डाला और अपने बाणों से समस्त आकाश में मण्डप-सा बना दिया ॥319॥ इस प्रकार बाणों के द्वारा बाण छेदे-भेदे जाने लगे और सूर्यको किरणें इस तरह निर्मूल नष्ट हो गयीं मानो भयसे कहीं जा छिपी हों ॥320॥ इसी समय युद्धके देखनेसे जिसे बहुत भारी हर्ष उत्पन्न हो रहा था ऐसा नारद जहाँ बाण नहीं पहुँच पाते थे वहाँ आनन्दविभोर हो नृत्य कर रहा था ॥321॥ अथानन्तर जब इन्द्रने देखा कि रावण सामान्य शस्त्रोंसे साध्य नहीं है तब उसने आग्नेय या ॥322॥ वह आग्नेय बाण इतना विशाल था कि स्वयं आकाश ही उसका ईंधन बन गया, धनुष आदि पौद्गलिक वस्तुओं के विषय में तो कहा ही क्या जा सकता है ? ॥323॥ जिस प्रकार बाँसों के वनके जलनेपर विशाल शब्द होता है उसी प्रकार ज्वालाओं के समूहसे भयंकर दिखनेवाली आग्नेय बाण की अग्निसे विशाल शब्द हो रहा था ॥324॥ तदनन्तर जब रावण ने अपनी सेना को आग्नेय बाणसे आकुल देखा तब उसने शीघ्र ही वरुण अस्त्र चलाया॥ 325॥ उस बाण के प्रभावसे तत्क्षण ही महामेघों का समूह उत्पन्न हो गया। वह मेघसमूह पर्वतके समान बड़ी मोटी धाराओं के समूहकी वर्षा कर रहा था, गर्जनासे सुशोभित था और ऐसा जान पड़ता था मानो रावण के क्रोध से आकाश ही पिघल गया हो। ऐसे मेघसमूह ने इन्द्र के उस आग्नेय बाण को उसी क्षण सम्पूर्ण रूपसे बझा दिया॥ 326-327॥ तदनन्तर इन्द्र ने तामस बाण छोड़ा जिससे समस्त दिशाओं और आकाश में अन्धकार ही अन्धकार छा गया ॥328॥ उस बाण ने रावण को सेना को इस प्रकार व्याप्त कर लिया कि वह अपना शरीर भी देखने में असमर्थ हो गयी फिर शत्रु की सेना को देखने की तो बात ही क्या थी ? ॥329॥ तब अवसर के

योग्य वस्तु को योजना करने में निपुण रावणने अपनी सेना को मोहग्रस्त देख प्रभास्त्र **अर्थ**ात् प्रकाशबाण छोड़ा ॥330॥ सो जिस प्रकार जिन-शासन के तत्त्व से मिथ्यादृष्टियों का मत नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उस प्रभास्त्र से क्षण-भर में ही वह समस्त अन्धकार नष्ट हो गया ॥331॥ तदनन्तर रावणने क्रोधवश नागास्त्र छोड़ा जिससे समस्त आकाश रत्नों से देदीप्यमान साँसे व्याप्त हो गया ॥332॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन बाणोंने जाकर इन्द्र के शरीर को निश्चेष्ट कर दिया तथा सब उससे लिपट गये ॥333॥ जो महानीलमणि के समान श्याम थे, वलयका आकार धारण करनेवाले थे और चंचल जिह्वाओं से भयंकर दिखते थे ऐसे साँसे इन्द्र बड़ी आकुलता को प्राप्त हुआ ॥334॥ जिस प्रकार कर्मजाल से घिरा प्राणी संसाररूपी सागर में विवश हो जाता है उसी प्रकार व्याल अर्थात् साँसे घिरा इन्द्र विवशता को प्राप्त हो गया ॥335॥ तदनन्तर इन्द्रने गरुडास्त्रका ध्यान किया जिसके प्रभावसे उसी क्षण आकाश सुवर्णमय पंखोंकी कान्तिके समूहसे पीला हो गया ॥336॥ जिसका वेग अत्यन्त तीव्र था ऐसी गरुडके पंखोंकी वायुसे रावणकी समस्त सेना ऐसी चंचल हो गयो मानो हिंडोला ही झूल रही हो ॥337॥ गरुडकी वायुका स्पर्श होते ही पता नहीं चला कि नागबाण कहाँ चले गये। वे शरीरमें कहां-कहाँ बंधे थे उन स्थानोंका पता भी नहीं रहा ॥338॥ गरुड का आलिंगन होने से जिसके समस्त बन्धन दूर हो गये थे ऐसा इन्द्र ग्रीष्मऋतु के सूर्य के समान भयंकर हो गया ॥339॥ जब रावण ने देखा कि इन्द्र नागपाश से छूट गया है तब वह जिससे मद झर रहा था ऐसे त्रिलोकमण्डन नामक विजयी हाथी पर सवार हुआ ॥340॥ उधरसे इन्द्र भी क्रोधवश अपना ऐरावत हाथी रावण के निकट ले आया। तदनन्तर बहुत भारी गर्व को धारण करनेवाले दोनों हाथियों में महायुद्ध हुआ ॥341॥ जिनसे मद झर रहा था, जो चमकती हुई स्वर्ण की मालारूपी बिजली के सहित थे, तथा जो लगातार विशाल गर्जना कर रहे थे ऐसे दोनों हाथी मेध का आकार धारण कर रहे थे ॥342॥ परस्पर के दांतों के आघात से ऐसा लगता था मानो भयंकर वज्र गिर रहे हों और उनसे शब्दायमान हो समस्त संसार कम्पित हो रहा हो ॥343॥ जिनका शरीर अत्यन्त चंचल था तथा वेग भारी था ऐसे दोनों हाथी अपनी मोटी सूड़ों को फैलाते, सिकोड़ते और ताड़ित कर रहे थे ॥344॥ साफ-साफ दिखनेवाली पुतलियों से जिनके नेत्र अत्यन्त क्रूर जान पड़ते थे, जिनके कान खड़े थे और जो महाबल से युक्त थे ऐसे दोनों हाथियों ने बहुत भारी युद्ध किया ॥345॥ तदनन्तर शक्तिशाली रावण ने उछलकर अपना पैर इन्द्र के हाथों के मस्तकपर रखा और बड़ी शीघ्रता से पैर की ठोकर देकर सारथि को नीचे गिरा दिया। बार-बार आश्वासन देते हुए रावण ने इन्द्र को वस्त्र से कसकर बाँध अपने हाथी पर चढ़ा लिया ॥346-347॥ उधर इन्द्रजित् ने भी जयन्त को बाँधकर किंकरों के लिए सौंप दिया। तदनन्तर विजय से जिसका उत्साह बढ़ रहा था तथा जो शत्रुओं को सन्तप्त कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् देवों की सेना के सम्मुख दौडा। उसे दौडता देख शत्रुओं को सन्ताप पहुँचानेवाले रावण ने कहा कि हे वत्स ! अब प्रयत्न करना व्यर्थ है, युद्ध के आदर से निवृत्त होओ, विजयार्धवासी लोगों की इस सेना का सिर अपने हाथ लग चुका है ॥348-350॥ इसके हाथ लग चुकने पर दूसरा कौन हलचल कर सकता है ? ये क्षुद्र सामन्त जीवित रहें और अपने इच्छित स्थान पर जावें ॥351॥ जब धान के समूह से चावल निकाल लिये जाते हैं तब छिलकों के समूह को अकारण ही छोड़ देते हैं ॥352॥ रावण के इस प्रकार कहने पर इन्द्रजित् युद्ध के उत्साह से निवृत्त हआ। उस समय राजाओं का बड़ा भारी समह इन्द्रजित को घेरे हए था ॥353॥ तदनन्तर जिस प्रकार शरदऋतु के बादलों का बड़ा लम्बा समूह क्षण-भरमें विशीर्ण हो जाता है उसी प्रकार इन्द्र की सेना क्षण-भर में विशीर्ण हो गयी-इधर-उधर बिखर गयी ॥354॥ रावण की सेना में उत्तमोत्तम पटल, शंख, झर्झर बाजे तथा बन्दीजनों के समूह के द्वारा बड़ा भारी जयनाद किया गया ॥355॥ उस जयनाद से इन्द्र को पकड़ा जानकर रावण की सेना निराकुल हो गयी ॥356॥ तदनन्तर परम विभूतिसे युक्त रावण, सेना से आकाश को आच्छादित करता हुआ लंका की ओर चला । उस समय वह बड़ा सन्तुष्ट था ॥357॥ जो सूर्यके रथके समान थे, ध्वजाओंसे सुशोभित थे और नाना रत्नोंकी किरणोंसे जिनपर इन्द्रधनुष उत्पन्न हो रहे थे ऐसे रथ उसके साथ थे ॥358॥ जो हिलते हुए सुन्दर चमरोंके समूहसे सुशोभित थे, निश्चिन्तता से किये हुए अनेक विलासों से मनोहर थे तथा नृत्य करते हुए से जान पड़ते थे ऐसे घोड़े उसकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥359॥ जिनके गलेमें विशाल शब्द करनेवाले घण्टा बँधे हुए थे, जिनसे मद के निर्झरने झर रहे थे, जो मधुर गर्जना कर रहे थे तथा भ्रमरों की पंक्ति जिनकी उपासना कर रही थी ऐसे हाथी उसके साथ थे ॥360॥ इनके सिवाय अपनी-अपनी सवारियों पर बैठे हुए बड़ी-बड़ी सेनाओं के अधिपति विद्याधर उसके साथ चल रहे थे। इन सबके साथ रावण क्षण-भरमें ही लंका के समीप जा पहुँचा ॥361॥ तब रावण को निकट आया जान नगर की रक्षा करनेवाले लोग पुरवासी और भाईबान्धव उत्सुक हो अर्घ ले-लेकर बाहर निकले ॥362॥ तदनन्तर कितने ही लोगों ने रावण की पूजा की तथा रावण ने भी कितने ही वृद्धजनों की पूजा की। कितने ही लोगों ने रावण को नमस्कार किया और रावण ने भी कितने ही वद्धजनों को

मदरहित हो नमस्कार किया ॥363॥ लोगों की विशेषता को जाननेवाला तथा नम्र मनष्यों से स्नेह रखनेवाला रावण कितने ही मनुष्यों को स्नेहपूर्ण दष्टि से सम्मानित करता था। कितने ही लोगों को मन्द मुसकान से और कितने ही लोगों को मनोहर वचनों से समादृत कर रहा था ॥364॥

तदनन्तर जो स्वभाव से ही सुन्दर थी तथा उस समय विशेषकर सजायी गयी थी, जिसमें रत्ननिर्मित बड़े ऊंचे-ऊँचे तोरण खड़े किये गये थे ॥365॥ जो मन्द-मन्द वायु से हिलती हुई रंगबिरंगी ध्वजाओं से युक्त थी, केशर आदि मनोज्ञ वस्तुओं से मिश्रित जल से जहाँ की समस्त पृथिवी सोंची गयी थी ॥366॥ जो सब ऋतुओं के फूलों से व्याप्त राजमार्गों से सुशोभित थी, काले, पीले, नीले, लाल, हरे आदि पंचवर्णीय चूर्ण से निर्मित अनेक वेल-बूटों से जो अलंकृत थी ॥367॥ जिसके दरवाजों पर पूर्ण कलश रखे गये थे, जो महाकान्ति से युक्त थी, सरस पल्लवों की जिसमें वन्दनमालाएं बांधी गयी थीं, जो उत्तमोत्तम वस्त्रों से विभूषित थी तथा जहाँ बहुत भारी उत्सव हो रहा था ऐसी लंकानगरी में रावण ने प्रवेश किया ॥368॥ जिस प्रकार अनेक देवों से इन्द्र घिरा होता है उसी प्रकार रावण भी अनेक विद्याधरों से घिरा था। उस समय वह अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के प्रभाव से उत्तम सुख को प्राप्त हो रहा था ॥369॥ अत्यन्त सुन्दर तथा इच्छानुकूल गमन करने वाले पुष्पक विमान पर सवार था। उसके मुकुट में बड़े-बड़े रत्न देदीप्यमान हो रहे थे तथा उसकी भुजाएँ बाजूबन्दों से सुशोभित थीं ॥370॥ जिसकी उज्ज्वल प्रभा सब ओर फैल रही थी ऐसे हार को वह वक्षःस्थलपर धारण कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पन्न हुए फूलों के समूहसे सुशोभित वसन्त ऋतु ही हो॥ 371॥ जो अतृप्तिकर हर्ष से पूर्ण थीं तथा धीरे-धीरे चमर ऊपर उठा रही थीं ऐसी स्त्रियां हाव-भावपूर्वक उसे देख रही थीं ॥372॥ वह नाना प्रकार के बाजोंके शब्द तथा मनोहर जय-जयकारसे आनन्दित हो रहा था और नृत्य करती हुई उत्तमोत्तम वेश्याओं से सहित था ॥373॥ इस प्रकार उसने बड़ी प्रसन्नता से, अनेक महोत्सवों से भरी लंकामें प्रवेश किया और बन्धुजन तथा भृत्यसमूहसे अभिनन्दित हो अपने भवन में भी पदार्पण किया ॥374॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि जिसने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के प्रभाव से, सब प्रकार की तैयारी से युक्त समस्त शत्रुओं को तृण के समान जीतकर उत्तम वैभव प्राप्त किया था ऐसा इन्द्र विद्याधर पुण्यकर्म के क्षीण होने पर कान्तिहीन तथा विभव से रहित हो गया सो इस अत्यन्त चंचल मनुष्य के सुख को धिक्कार है ॥375॥ तथा विद्याधर रावण अपने पूर्वोपाजित पुण्य कर्म के प्रभाव से समस्त बलवान् शत्रुओं को निर्मूल नष्ट कर वृद्धि को प्राप्त हुआ। इस प्रकार संसार के समस्त कार्य कर्मजनित हैं ऐसा जानकर हे भव्यजनो! अन्य पदार्थों में आसक्ति छोड़कर सूर्य के समान कान्ति को उत्पन्न करनेवाले एक पुण्य कर्म का ही संचय करो ॥376॥

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में इन्द्र विद्याधर के पराभव का वर्णन करनेवाला बारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥12॥

## इन्द्र को निर्वाण

त्रयोदश पर्व

कथा :

अथानन्तर स्वामी के दुःख से आकुल इन्द्र के सामन्त, सहस्रार को आगे कर रावण के महल में पहुँचे ॥1॥ द्वारपाल के द्वारा समाचार देकर बड़ी विनय से सब ने भीतर प्रवेश किया और सब प्रणाम कर दिये हुए आसनोंपर यथायोग्य रीति से बैठ गये ॥2॥ तदनन्तर रावण ने सहस्रार की ओर बड़े गौरव से देखा / तब सहस्रार रावण से बोला कि तूने मेरे पुत्र इन्द्र को जीत लिया है अब मेरे कह ने से छोड़ दे ॥3॥ तूने अपनी भुजाओं और पुण्य की उदार महिमा दिखलायी सो ठीक ही है क्योंकि राजा दूसरे के अहंकार को नष्ट कर ने की ही चेष्टा करते हैं ॥4॥ सहस्रार के ऐसा कहनेपर लोकपालों के मुख से भी यही शब्द निकला सो मानो उस के शब्द की प्रतिध्वनि ही निकली थी ॥5॥ तदनन्तर रावण ने हँसकर लोकपालों से कहा कि एक शर्त है उस शर्त से ही मैं इन्द्र को छोड़ सकता हूँ ॥6॥ वह शर्त यह है कि आज से लेकर तुम सब, मेरे नगर के भीतर और बाहर बुहारी देना आदि जो भी कार्य हैं उन्हें करो ॥7॥ अब आप सब को प्रतिदिन ही यह नगरी धूलि, अशुचिपदार्थ, पत्थर, तृण तथा कण्टक आदि से रहित करनी होगी ॥8॥ तथा इन्द्र भी घड़ा लेकर सुगन्धित जल से पृथिवी सींचें। लोक में इस का यही कार्य प्रसिद्ध है ॥9॥ और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित इन की सम्भ्रान्त देवियाँ पंचवर्ण के सुगन्धित फूलों से नगरी को सजावें ॥10॥ यदि आप लोग आदर के साथ इस शर्त से युक्त होकर रहना चाहते हैं तो इन्द्र को अभी छोड़ देता हूँ। अन्यथा इस का छूटना कैसे हो सकता है ? ॥11॥ इतना कह रावण लज्जा से झुके हुए लोकपालों की ओर देखता तथा आप्तजनों के हाथ को

अपने हाथ में ताड़ित करता हुआ बार-बार हंस ने लगा। तदनन्तर उसने विनयावनत होकर सहस्रार से कहा। उस समय रावण सभा के हृदय को हरनेवाली अपनी मधुर वाणी से मानो अमृत ही झरा रहा था ॥13॥ उसने कहा कि हे तात ! जिस प्रकार आप इन्द्र के पूज्य हैं उसी प्रकार मेरे भी पूज्य हैं, बल्कि उस से भी अधिक। इसलिए मैं आप की आज्ञा का उल्लंघन कैसे की कर सकता हूँ ? ॥14॥ यदि यथार्थ में आप-जैसे गुरुजन न होते तो यह पृथिवी पर्वतों से छोड़ो गयी के समान रसातल को चली जाती ॥15॥ चूंकि आप-जैसे पूज्यपुरुष मुझे आज्ञा दे रहे हैं अतः मैं पुण्यवान् हूँ। यथार्थ में आप-जैसे पुरुषों की आज्ञा के पात्र पुण्यहीन मनुष्य नहीं हो सकते ॥16॥ इसलिए हे प्रभो! आज आप विचारकर ऐसा उत्तम कार्य कीजिए जिस से इन्द्र और मुझ में सौहाद्रं उत्पन्न हो जाये / इन्द्र सुख से रहे और मैं भी सुख से रह सकूँ ॥17॥ यह बलवान् इन्द्र मेरा चौथा भाई है, इसे पाकर मैं पृथ्वी को निष्कण्टक कर दूंगा ॥18॥ इस के लोकपाल पहले की तरह ही रहें तथा इस का राज्य भी पहले की तरह ही रहे अथवा उस से भी अधिक ले ले। हम दोनों में भेद को आवश्यकता ही क्या है ? ॥19॥ आप जिस प्रकार इन्द्र को आज्ञा देते हैं उसी प्रकार मुझ में कर ने योग्य कार्य की आज्ञा देते रहें क्योंकि गुरुजनों की आज्ञा ही शेषाक्षत की तरह रक्षा एवं शोभा को करनेवाली है ॥20॥ आप अपने अभिप्राय के अनुसार यहाँ रहें अथवा रथनूपुर नगर में रहें अथवा जहाँ इच्छा हो वहां रहें। हम दोनों आप के सेवक हैं हमारी भूमि हो कौन है ? ॥21॥ इस प्रकार के प्रियवचनरूपी जल से जिस का मन भीग रहा था ऐसा सहस्रार रावण से भी अधिक मधुर वचन बोला ॥22॥ उसने कहा कि हे भद्र ! आप-जैसे सज्जनों की उत्पत्ति समस्त लोगों को आनन्दित करनेवाले गुणों के साथ ही होती है ॥23॥ हे आयुष्मन् ! तुम्हारी यह उत्तम विनय इस संसार में प्रशंसा को प्राप्त है तथा तुम्हारी इस शूरवीरता के आभूषण के समान है ॥24॥ आप के दर्शन ने मेरे इस जन्म को सार्थक कर दिया। वे माता-पिता धन्य हैं जिन्हें तूने अपनी उत्पत्ति में कारण बनाया है ॥25॥ जो समर्थ होकर भी क्षमावान् है, तथा जिस की कीर्ति कुन्द के फूल के समान निर्मल है ऐ से तूने दोषों के उत्पन्न हो ने की आशं का दूर हटा दी है ॥26॥ तू जैसा कह रहा है वह ऐसा ही है। तुझ में सर्व कार्य सम्भव हैं। दिग्गजों की सूंड़ के समान स्थूल तेरी भुजाएँ क्या नहीं कर सकती हैं ॥27॥ किन्तु जिस प्रकार माता नहीं छोड़ी जा सकती उसी प्रकार जन्मभूमि भी नहीं छोड़ी जा सकती क्योंकि वह क्षण-भर के वियोग से चित्त को आकुल कर ने लगती है ॥28॥ हम अपनी भूमि को छोड़ ने के लिए असमर्थ हैं क्योंकि वहाँ हमारे मित्र तथा भाई-बान्धव चातक की तरह उत्कण्ठा से युक्त हो मार्ग देखते हुए स्थित होंगे ॥29॥ हे गुणालय! आप भी तो अपनी कुल-परम्परा से चली आयी लंका की सेवा करते हुए परम प्रीति को प्राप्त हो रहे हैं सो बात ही ऐसी है जन्मभूमि के विषय में क्या कहा जाये ? ॥30॥ इसलिए हम जहाँ महाभोगों की उत्पत्ति होती है अपनी उसी भूमि को जाते हैं / हे देवों के प्रिय ! तुम चिरकाल तक संसार की रक्षा करो ॥31॥ इतना कहकर सहस्रार इन्द्र नामा पुत्र तथा लोकपालों के साथ विजयाध पर्वतपर चला गया। रावण भेज ने के लिए कुछ दूर तक उस के साथ गया ॥32॥ सब लोकपाल पहले की तरह ही अपने-अपने स्थानोंपर रह ने लगे परन्तु पराजय के कारण निःसार हो गये और चलते-फिरते यन्त्र के समान जान पड़ ने लगे ॥33॥ बहुत भारी लज्जा से भरे देव लोगों की ओर जब विजयावासी लोग देखते थे तब वे यह नहीं जान पाते थे कि हम कहां जा रहे हैं ? इस तरह देव लोग सदा भोगों से उदास रहते थे ॥34॥ इन्द्र भी न नगरमें, न बाग-बगीचों में और न कमलों की पराग से पीले जलवाली वापिकाओं में ही प्रीति को प्राप्त होता था **अर्थ**ात् पराजय के कारण उसे कहीं अच्छा नहीं लगता था ॥35॥ अब वह स्त्रियोंपर भी अपनी सरल दृष्टि नहीं डालता था फिर शरीर को तो गिनती ही क्या थी ? उसका चित्त सदा लज्जा से भरा रहता था ॥36॥ यद्यपि लोग अन्यान्य कथाओं के प्रसंग छेड़कर उस के पराजय सम्बन्धी दुःख को भुला दे ने के लिए सदा अनुकूल चेष्टा करते थे तो भी उसका चित्त स्वस्थ नहीं होता था ॥37॥
अथानन्तर एक दिन इन्द्र, अपने महल को भीतर विद्यमान, एक खम्भे के अग्रभागपर स्थित, गन्धमादन पर्वत के शिखर के समान सुशोभित जिनालय में बैठा था ॥38॥ विद्वान् लोग उसे घेरकर बैठे थे। वह निरन्तर पराजय का स्मरण करता हुआ शरीर को निरादर भाव से धारण कर रहा था। बैठे-बैठे ही उसने इस प्रकार विचार किया कि ॥39॥ विद्याओं से सम्बन्ध रखनेवाले इस ऐश्वर्य को धिक्कार है जो कि शरद् ऋतु के बादलों के अत्यन्त उन्नत समूह के समान क्षण-भर में विलीन हो गया ॥40॥ वे शस्त्र, वे हाथी, वे योद्धा और वे घोड़े जो कि पहले मुझे आश्चर्य उत्पन्न करते थे आज सब के सब तृण के समान तुच्छ जान पड़ते हैं ॥41॥ अथवा कर्मों की इस विचित्रता को अन्यथा कर ने के लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? यथार्थ में अन्य सब पदार्थ कर्मों के बल से ही बल धारण करते हैं ॥42॥ निश्चय ही मेरा पूर्वसंचित पुण्यकर्म जो कि नाना भोगों की प्राप्ति करा ने में समर्थ है परिक्षीण हो चु का है इसीलिए तो यह अवस्था हो रही है ॥43॥ शत्रु के संकट से भरे युद्ध में यदि मर ही जाता तो अच्छा होता क्योंकि उस से समस्त लोक में फैलनेवाली अपकीर्ति तो उत्पन्न नहीं होती ॥

44॥ जिस ने शत्रुओं के सिरपर पैर रखकर जीवन बिताया वह मैं अब शत्रु द्वारा अनुमत लक्ष्मी का कैसे की उपभोग करूँ ? ॥45॥ इसलिए अब मैं संसार सम्बन्धी सुख की अभिलाषा छोड़ मोक्षपद की प्राप्ति के जो कारण हैं उन्हीं की उपासना करता हूँ ॥46॥ शत्रु के वेश को धारण करनेवाला रावण मेरा महाबन्धु बनकर आया था जिस ने कि इस असार सुख के स्वाद में लीन मुझ को जागृत कर दिया ॥47॥ इसी बीच में गुणी मनुष्यों के योग्य स्थानों में विहार करते हुए निर्वाणसंगम नामा चारणऋद्धिधारी मुनि वहाँ आकाशमार्ग से जा रहे थे ॥48॥ सो चलते-चलते उन की गति सहसा रुक गयी। तदनन्तर उन्हों ने जब नीचे दृष्टि डाली तो मन्दिर के दर्शन हुए ॥49॥ प्रत्यक्ष ज्ञान के धारी महामुनि मन्दिर में विराजमान जिन-प्रतिमा की वन्दना कर ने के लिए शीघ्र ही आकाश से नीचे उतरे ॥50॥ राजा इन्द्र ने बड़े सन्तोष से उठकर जिन की पूजा की थी ऐ से उन मुनिराज ने विधिपूर्वक जिनप्रतिमा को नमस्कार किया ॥51॥ तदनन्तर जब मुनिराज जिनेन्द्रदेव की वन्दना कर चुप बैठ गये तब इन्द्र उन के चरणों को नमस्कार कर साम ने बैठ गया और अपनी निन्दा कर ने लगा ॥52॥ मुनिराज ने समस्त संसार के वृत्तान्त का अनुभव करा ने में अतिशय निपुण उत्कृष्ट वचनों से उसे सन्तोष प्राप्त कराया ॥53॥ अथानन्तर इन्द्र ने मुनिराज से अपना पूर्वभव पूछा सो गुणों के समूह से विभूषित मुनिराज उस के लिए इस प्रकार पूर्वभव कह ने लगे ॥54॥ हे राजन् ! चतुगंति सम्बन्धी अनेक योनियों के दुःखरूपी महावन में भ्रमण करता हुआ एक जीव शिखापदनामा नगर में मनुष्य गति को प्राप्त हो दरिद्र कुल में उत्पन्न हुआ। वहाँ स्त्री पर्याय से युक्त हो वह जीव 'कुलवान्ता' इस सार्थक नाम को धारण करनेवाला हुआ ॥55-56॥ कुलवान्ता के नेत्र सदा कीचर से युक्त रहते थे, उस की नाक चपटी थी और उसका शरीर सैकड़ों बीमारियों से युक्त था। इतना होनेपर भी उस के भोजन का ठिकाना नहीं था। वह कर्मोदय के कारण जिस किसी तरह लोगों का जूठन खाकर जीवित रहती थी ॥57॥ उस के वस्त्र अत्यन्त मलिन थे, दौर्भाग्य उसका पीछा कर रहा था, सारा शरीर अत्यन्त रूक्ष था, हाथ-पैर आदि अंग फटे हुए थे और खोटे केश बिखरे हुए थे। वह जहाँ जाती थी वहीं लोग उसे तंग करते थे। इस तरह वह कहीं भी सुख नहीं प्राप्त कर सकती थी ॥58॥ अन्त समय शुभमति हो उसने एक मुहूर्त के लिए अन्न का त्याग कर अनशन धारण किया जिस से शरीर त्याग कर किपुरुषनामा देव की क्षीरधारा नाम की स्त्री हुई ॥59॥ वहाँ से च्युत होकर रत्नपूर नगर में धरणी और गोमुख नामा दम्पती के सहस्रभाग नामक पुत्र हुआ ॥60॥ वहाँ उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अणुव्रतों का धारी हुआ और अन्त में मरकर शुक्र नामा स्वर्ग में उत्तम देव हुआ ॥61॥ वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र के रत्नसंचयनामा नगर में मणिनामक मन्त्री की गुणावली नामक स्त्री से सामन्तवर्धन नामक पुत्र हुआ ॥62॥ सामन्तवर्धन अपने राजा के साथ विरक्त हो महाव्रत का धारक हुआ। वहाँ उसने अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया, तत्त्वार्थ के चिन्तन में निरन्तर मन लगाया, इन किये, निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और कषायोंपर विजय प्राप्त की। अन्त समय मरकर वह ग्रैवेयक गया सो अहमिद्र होकर चिरकाल तक वहाँ के सुख भोगता रहा। अन्त समय में वहाँ से च्युत हो रथनूपुर नगर में सहस्रार नामक विद्याधर की हृदयसुन्दरी रानी से इन्द्र नाम को धारण करनेवाला तू विद्याधरों का राजा हुआ है। पूर्व अभ्यास के कारण ही तेरा मन इन्द्र के सुख में लीन रहा है ॥63-66॥ सो हे इन्द्र ! मैं विद्याओं से युक्त होता हुआ भी शत्रु से हार गया हूँ, इस प्रकार अपने आप के विषय में अनादर को धारण करता हुआ तू विषादयुक्त हो व्यर्थं ही क्यों सन्ताप कर रहा है ॥67॥ अरे निर्बुद्धि ! तू कोदों बोकर धान को व्यर्थ ही इच्छा करता है। प्राणियों को सदा कर्मों के अनुकूल ही फल प्राप्त होता है ॥68॥ तुम्हारे भोगोपभोग का साधन जो पूर्वोपार्जित कर्म था वह अब क्षीण हो गया है सो कारण के बिना कार्य नहीं होता है इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥69॥ तेरे इस पराभव में रावण तो निमित्तमात्र है। तूने इसी जन्म में कम किये हैं उन्हीं से यह पराभव प्राप्त हुआ है ॥70॥ तूने पहले कोड़ा करते समय जो अन्याय किया है उसका स्मरण क्यों नहीं करता है ? ऐश्वर्य से उत्पन्न हुआ तेरा मद चूंकि अब नष्ट हो चु का है इसलिए अब तो पिछली बात का स्मरण कर ॥71॥ जान पड़ता है कि बहुत समय हो जाने के कारण वह वृत्तान्त स्वयं तेरी बुद्धि में नहीं आ रहा है इसलिए एकाग्रचित्त होकर सुन, मैं कहता हूँ॥७२॥ अरिंजयपुर नगर में वह्निवेगानामा विद्याधर राजा था सो उसने वेगवती रानी से उत्पन्न आहल्या नामक पुत्री का स्वयंवर रचा था ॥73॥ उत्सुकता से भरे तथा यथायोग्य वैभव से शोभित समस्त विद्याधर दक्षिण श्रेणी छोड़-छोड़कर उस स्वयंवर में आये थे ॥74॥ उत्कृष्ट सम्पदा से युक्त होकर आप भी वहां गये थे तथा चन्द्रावत नगर का राजा आनन्दमाल भी वहां आया था ॥75॥ सर्वांगसुन्दरी कन्या ने पूर्व कर्म के प्रभाव से समस्त विद्याधरों को छोड़कर आनन्दमाल को वरा ॥76॥ सो आनन्दमाल उसे विवाहकर इच्छा करते ही प्राप्त होनेवाले भोगों का उस तरह उपभोग कर ने लगा जिस तरह कि इन्द्र स्वर्ग में प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होनेवाले भोगों का उपभोग करता है ॥77॥ ईर्ष्याजन्य बहुत भारी क्रोध के कारण तू उसी समय से उस के साथ अत्यधिक शत्रुता कर ने लगा ॥78॥ तदनन्तर कर्मों की अनुकूलता के

कारण आनन्दमाल को सहसा यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि यह शरीर अनित्य है अतः इस से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥79॥ मैं तो तप करता हूँ जिस से संसार सम्बन्धी दुःख का नाश होगा। धोखा देनेवाले भोगों में क्या आशा रखना है ? ॥80॥ प्रबोध को प्राप्त हुई अन्तरात्मा से ऐसा विचारकर उसने सर्व परिग्रह का त्यागकर उत्कृष्ट तप धारण कर लिया ॥81॥

एक दिन हंसावली नदी के किनारे रथावर्त नामा पर्वतपर वह प्रतिमा योग से विराजमान था सो तूने पहचान लिया ॥82॥ दर्शनरूपी ईन्धन से जिस की पिछली क्रोधाग्नि भड़क उठी थी ऐ से तूने क्रीड़ा करते हुए अहंकारवश उस की बार-बार हंसी की थी ॥83॥ तू कह रहा था कि अरे ! तू तो कामभोग का अतिशय प्रेमी आहल्या का पति है, इस समय यहाँ इस तरह क्यों बैठा है ? ॥84॥ ऐसा कहकर तूने उन्हें रस्सियों से कसकर लपेट लिया फिर भी उन का शरीर पर्वत के समान निष्कम्प बना रहा और उन का मन तत्त्वार्थ की चिन्तना में लीन हो ने से स्थिर रहा आया ॥85॥ इस प्रकार आनन्दमाल मुनि तो निर्विकार रहे पर उन्हीं के समीप कल्याण नामक दूसरे मुनि बैठे थे जो कि उन के भाई थे तेरे द्वारा उन्हें अनादृत होता देख क्रोध से दुःखी हो गये ॥86॥ वे मुनि ऋद्धिधारी थे तथा प्रतिमायोग से विराजमान थे सो तेरे कुकृत्य से दुःखी होकर उन्हों ने प्रतिमायोग का संकोचकर तथा लम्बी और गरम श्वास भरकर तेरे लिए इस प्रकार शाप दी ॥87॥ कि चूंकि तूने इन निरपराध मुनिराज का तिरस्कार किया है इसलिए तू भी बहुत भारी तिरस्कार को प्राप्त होगा ॥88॥ वे मुनि अपनी अपरिमित श्वास से तुझे भस्म ही कर देना चाहते थे पर तेरी सर्वश्रीनामक स्त्री ने उन्हें शान्त कर लिया ॥८९॥ वह सर्वश्री सम्यग्दर्शन से युक्त तथा मुनिजनों की पूजा करनेवाली थी इसलिए उत्तम हृदय के धारक मुनि भी उस की बात मानते थे ॥90॥ यदि वह साध्वी उन मुनिराज को शान्त नहीं करती तो उन की क्रोधाग्नि को कौन रोक सकता था ? ॥91॥ तीनों लोकों में वह कार्य नहीं है जो तप से सिद्ध नहीं होता हो। यथार्थ में तप का बल सब बलों के शिरपर स्थित है **अर्थ**ात् सब से श्रेष्ठ है ॥92॥ इच्छानुकूल कार्य करनेवाले तपस्वी साधु की जैसी शक्ति, कान्ति, द्युति, अथवा धुति होती है वैसी इन्द्र की भी सम्भव नहीं है ॥93॥ जो मनुष्य साधुजनों का तिरस्कार करते हैं वे तिर्यंच गति और नरक गति में महान् दुःख पाते हैं ॥94॥ जो मनुष्य मन से भी साधुजनों का पराभव करता है वह पराभव उसे परलोक तथा इस लोक में परम दुःख देता है ॥95॥ जो दुष्ट चित्त का धारी मनुष्य निर्ग्रंथ मुनि को गाली देता है अथवा मारता है उस पापी मनुष्य के विषय में क्या कहा जाय ? ॥96॥ मनुष्य मन वचन काय से जो कर्म करते हैं वे छूटते नहीं हैं और प्राणियों को अवश्य ही फल देते हैं ॥97॥ इस प्रकार कर्मों के पुण्य पापरूप फल का विचारकर अपनी बुद्धि धर्म में धारण करो और अपने आप को दुःखों से बचाओ ॥98॥ इस प्रकार मुनिराज के कहनेपर इन्द्र को अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो आया। उन्हें स्मरण करता हुआ वह आश्चर्य को प्राप्त हुआ। तदनन्तर बहुत भारी आदर से भरे इन्द्र ने निर्ग्रन्थ मुनिराज को नमस्कार कर कहा कि ॥99॥ हे भगवन् ! आप के प्रसाद से मुझे उत्कृष्ट रत्नत्रय की प्राप्ति हुई है इसलिए मैं मानता हूँ कि अब मेरे समस्त पाप मानो क्षण भर में ही छूट जानेवाले हैं ॥100॥ जो बोधि अनेक जन्मों में भी प्राप्त नहीं हुई वह साधु समागम से प्राप्त हो जाती है इसलिए कहना पड़ता है कि साधुसमागम से संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती ॥101॥ इतना कहकर निर्वाणसंगम मुनिराज तो उधर इन्द्र के द्वारा वन्दित हो यथेच्छ स्थानपर चले गये इधर इन्द्र भी गृहवास से अत्यन्त निर्वेद को प्राप्त हो गया ॥102॥ उसने जान लिया कि रावण पुण्यकर्म के उदय से परम अभ्युदय को प्राप्त हुआ है। उसने महापर्वत के तटपर विद्यमान वीर्यदंष्ट्र को बार-बार स्तुति की ॥103॥ मनुष्य पर्याय को जल के बबूला के समान निःसार जानकर उसने धर्म में अपनी बुद्धि निश्चल की । अपने पाप कार्यों की बार-बार निन्दा की ॥104॥ इस प्रकार महापुरुष इन्द्र ने रथनू पुर नगर में पुत्र के लिए राज्य-सम्पदा सौंपकर अन्य अनेक पुत्रों तथा लोकपालों के समूह के साथ समस्त कर्मो को करनेवाली जैनेश्वरी दोक्षा धारण कर ली। उस समय उसका मन अत्यन्त विशुद्ध था तथा समस्त परिग्रह का उसने त्याग कर दिया था ॥105-106॥ यद्यपि उसका शरीर इन्द्र के समान लोकोत्तर भोगों से लालित हुआ था तो भी उसने अन्यजन जिसे धारण कर ने में असमर्थ थे ऐसा तप का भार धारण किया था ॥107॥ प्रायः कर के महापुरुषों की रुद्र कार्यों में जैसी अद्भुत शक्ति होती है वैसी ही शक्ति विशुद्ध कार्यों में भी उत्पन्न हो जाती है ॥108॥ तदनन्तर दीर्घ काल तक तपकर शुक्ल ध्यान के प्रभाव से कर्मो का क्षय कर इन्द्र निर्वाण धाम को प्राप्त हुआ ॥109॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन् ! देखो, बड़े पुरुषों के चरित्र अतिशय शक्ति से सम्पन्न तथा आश्चयं उत्पन्न करनेवाले हैं। ये चिर काल तक भोगों का उपार्जन करते हैं और अन्त में उत्तम सुख से युक्त निर्वाण पद को प्राप्त हो जाते हैं ॥110॥ इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि बड़े पुरुष समस्त परिग्रह का संग छोड़कर ध्यान के बल से क्षण-भर में पापों का नाश कर देते हैं ॥111॥ क्या बहुत काल से इकट्ठी को हुई ईन्धन की बड़ी राशि को कणमात्र अग्नि क्षणभर में विशाल महिमा को प्राप्त हो भस्म नहीं कर देती ? ॥112॥

ऐसा जानकर हे भव्य जनो! यत्न में तत्पर हो अन्तःकरण को अत्यन्त निर्मल करो। मृत्यु का दिन आनेपर कोई भी पीछे नहीं हट सकते **अर्थ**ात् मृत्यु का अवसर आनेपर सब को मरना पड़ता है। इसलिए सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य की प्राप्ति करो ॥113॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में इन्द्र के निर्वाण का कथन करनेवाला तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥13॥

## अनन्तबल केवली के द्वारा धर्मोपदेश

चौदहवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर जो इन्द्र के समान शोभा का धारक था, जिसका मन भोगों में मूढ़ रहता था, जिसे इच्छानुसार कार्यों की प्राप्ति होती थी तथा जिसकी क्रियाएँ शत्रुओं को प्राप्त होना कठिन था ऐसा रावण एक समय मेरुपर्वतपर गया था। वहाँ जिनेन्द्रदेव की वन्दना कर वह अपनी इच्छानुसार वापस आ रहा था ॥1-2॥ मार्ग में वह भरतादि क्षेत्रों का विभाग करनेवाले एवं अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित हिमवत् आदि पर्वतों को तथा स्फटिक से भी अधिक निर्मल एवं अत्यन्त सुन्दर नदियों को देखता हुआ चला आ रहा था ॥3॥ सूर्यबिम्ब के आकार विमान को अलंकृत कर रहा था, उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त था तथा लंका की प्राप्ति में अत्यन्त उत्सुक था ॥4॥ अचानक ही उसने जोरदार कोमल शब्द सुना जिसे सुनकर वह अत्यन्त क्षुभित हो गया। उसने शीघ्र ही मारीच से पूछा भी ॥5॥ अरे मारीच ! मारीच !! यह महाशब्द कहाँ से आ रहा है ? और दिशाएं सुवर्ण के समान लाल-पीली क्यों हो रही हैं ॥6॥ तब मारीच ने कहा कि हे देव ! किसी महामुनि के महाकल्याणक में सम्मिलित होने के लिए यह देवों का आगमन हो रहा है ॥7॥ सन्तोष से भरे एवं नाना प्रकार से गमन करनेवाले देवों का यह संसारव्यापी प्रशस्त शब्द सुनाई दे रहा है ॥8॥ ये दिशाएँ उन्ही के मुकुट आदि की किरणों से व्याप्त होकर कुसुम्भ रंग की देदीप्यमान कान्ति को धारण कर रही हैं ॥9॥ इस सुवर्णगिरिपर अनन्तबल नामक मनिराज रहते थे जान पड़ता है उन्हें ही आज केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ॥10॥ तदनन्तर मारीच के वचन सुनकर सम्यग्दर्शन की भावना से युक्त रावण परम हर्ष को प्राप्त हुआ ॥11॥ महाकान्ति को धारण करनेवाला रावण उन महामुनि की वन्दना करने के लिए दूरवर्ती आकाश प्रदेश से इस प्रकार नीचे उतरा मानो दूसरा इन्द्र ही उतर रहा हो ॥12॥ तत्पश्चात् इन्द्र आदि देवों ने हाथ जोड़कर मुनिराज को नमस्कार किया। स्तुति की और फिर सब यथास्थान बैठ गये ॥13॥ विद्याधरों से युक्त रावण भी बड़ी भक्ति से नमस्कार एवं स्तुति कर योग्य भूमि में बैठ गया ॥14॥ तदनन्तर विनीत शिष्य के समान रावण ने मुनिराज से इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! समस्त प्राणी धर्म-अधर्म का फल और मोक्ष का कारण जानना चाहते हैं सो आप यह सब कहने के योग्य हैं। रावण के इस प्रश्न की चारों प्रकार के देवों, मनुष्यों और तियंचों ने भारी प्रशंसा की ॥15-16॥ तदनन्तर मुनिराज निम्न प्रकार वचन कहने लगे। उनके वे वचन निपुणता से युक्त थे, शुद्ध थे, महा**अर्थ** से भरे थे, परिमित अक्षरों से सहित थे, अखण्डनीय थे और सर्वहितकारी तथा प्रिय थे॥१७॥ उन्हों ने कहा कि अनादिकाल से बँधे हुए ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से जिसकी आत्मीय शक्ति छिप गयो है ऐसा यह प्राणी निरन्तर भ्रमण कर रहा है ॥18॥ अनेक लक्ष योनियों में नाना इन्द्रियों से उत्पन्न होनेवाले सुख-दुःख का सदा अनुभव करता रहता है ॥19॥ कर्मों का जब जैसा तोत्र, मन्द या मध्यम उदय आता है वैसा रागी, द्वेषी अथवा मोही होता हुआ कुम्हार के चक्र के समान चतुर्गति में घूमता रहता है ॥20॥ यह जीव अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य पर्याय को भी प्राप्त कर लेता है फिर भी ज्ञानावरण कर्म के कारण आत्महित को नहीं समझ पाता है ॥21॥ रसना और स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत हुए प्राणी अत्यन्त निन्दित कार्य कर के पाप के भार से इतने वजनदार हो जाते हैं कि वे अनेक साधनों से उत्पन्न महादुःख देनेवाले नरकों में उस प्रकार जा पड़ते हैं जिस प्रकार कि पानी में पत्थर पड़ जाते हैं-डूब जाते हैं ॥22-23॥ जिनके मन की सभी निन्दा करते हैं ऐसे कित ने ही मनुष्य धनादि से प्रेरित होकर माता, पिता, भाई, पुत्री, पत्नी, मित्रजन, गर्भस्थ बालक, वृद्ध, तरुण एवं स्त्रियों को मार डालते हैं तथा कित ने ही महादुष्ट मनुष्य मनुष्यों, पक्षियों और हरिणों की हत्या करते हैं ॥24-25॥ जिनका चित्त धर्म से च्युत है ऐसे कित ने ही दुर्बुद्धि मनुष्य स्थलचारी एवं जल चारी जीवों को मारकर भयंकर वेदनावाले नरक में पड़ते हैं ॥26॥ मधुमक्खियों का घात करनेवाले तथा वन में आग लगानेवाले दुष्ट चाण्डाल निरन्तर हिंसा में तत्पर रहनेवाले पापी कहार और नीच शिकारी, झूठ वचन बोल ने में आसक्त एवं पराया धन हरण करने में उद्यत प्राणी शरणरहित हो भयंकर नरक में पड़ते हैं ॥27-28॥ जो मनुष्य जिस-जिस प्रकार से मांस भक्षण करते हैं नरक में दूसरे प्राणी उसी-उसी प्रकार से उनका भक्षण करते हैं ॥29॥ जो मनुष्य बहत भारी परिग्रह से सहित हैं. बहत बडे आरम्भ करते हैं और तीव्र संकल्प-विकल्प करते हैं वे चिरकाल तक नरक में वास करते हैं ॥30॥ जो साधुओं से द्वेष रखते हैं, पापी हैं, मिथ्यादर्शन से सहित हैं एवं रौद्रध्यान से

जिनका मरण होता है वे निश्चय ही नरक में जाते हैं ॥31॥ ऐसे जीव नरकों में कुल्हाड़ियों, तलवारों, चक्रों, करोंतों तथा अन्य अनेक प्रकार के शस्त्रों से चीरे जाते हैं। तीक्ष्ण चोंचोंवाले पक्षी उन्हें चूंथते हैं ॥32॥ सिंह, व्याघ्र, कुत्ते, सर्प, अष्टापद, बिच्छू, भेड़िया तथा विक्रिया से ब ने हुए विविध प्रकार के प्राणी उन्हें बहुत भारी दुःख पहुंचाते हैं ॥33॥ जो शब्द आदि विषयों में अत्यन्त आसक्ति करते हैं ऐसे मायावी जीव तिर्यंच गति को प्राप्त होते हैं ॥34॥ उस तिर्यंच गति में जीव एक दूसरे को मार डालते हैं। मनुष्य विविध प्रकार के शस्त्रों से उनका घात करते हैं तथा स्वयं भार ढोना एवं दोहा जाना आदि कार्यों से महादुःख पाते हैं ॥35॥ संसार के संकट में भ्रमण करता हुआ यह जीव स्थल में, जल में, पहाड़पर, वृक्षपर और अन्यान्य सघन स्थानों में सोया है ॥36॥ यह जीव अनादि काल से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होता हुआ जन्म-मरण कर रहा है ॥37॥ ऐसा तिलमात्र भी स्थान बा की नहीं है जहाँ संसाररूपी भंवर में पड़े हुए इस जीव ने जन्म और मरण प्राप्त न किया हो ॥38॥ यदि कोई प्राणी मृदुता और सरलता से सहित होते हैं तथा स्वभाव से ही सन्तोष प्राप्त करते हैं तो वे मनुष्य गति को प्राप्त होते हैं ॥39॥ मनुष्य गति में भी मोही जीव परम सुख के कारणभूत कल्याण मार्ग को छोड़कर क्षणिक सुख के लिए पाप करते हैं ॥40॥ अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के अनुसार कोई आय होते हैं और कोई म्लेच्छ होते हैं। कोई धनाढ्य होते हैं और कोई अत्यन्त दरिद्र होते हैं ॥41॥ कर्मों से घिरे कित ने ही प्राणी सैकड़ों मनोरथ करते हुए दूसरे के घरों में बड़ी कठिनाई से समय बिताते हैं ॥42॥ कोई धनाढ्य होकर भी कुरूप होते हैं, कोई रूपवान् होकर भी निर्धन रहते हैं, कोई दीर्घायु होते हैं और कोई अल्पायु होते हैं ॥43॥ कोई सब को प्रिय तथा यश के धारक होते हैं, कोई अत्यन्त अप्रिय होते हैं, कोई आज्ञा देते हैं और कोई उस आज्ञा का पालन करते हैं ॥44॥ कोई रण में प्रवेश करते हैं, कोई पानी में गोता लगाते हैं, कोई विदेश में जाते हैं और कोई खेती आदि करते हैं ॥45॥ इस प्रकार मनुष्य गति में भी सुख और दुःख की विचित्रता देखी जाती है । वास्तव में तो सब दुःख ही है सुख तो कल्पना मात्र है ॥46॥ कोई जीव सरागसंयम तथा संयमासंयम के धारक होते हैं, कोई अकाम निर्जरा करते हैं और कोई बालतप करते हैं ऐसे जीव भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चार भेदों से युक्त देव गति में उत्पन्न होते हैं सो वहाँ भी कित ने ही महद्धियों के धारक होते हैं और कित ने ही अल्प ऋद्धियों के धारक ॥47-48॥ स्थिति, कान्ति, प्रभाव, बुद्धि, सुख, लेश्या, अभिमान और मान के अनुसार वे पुनः कर्मों का बन्ध कर चतुर्गति रूप संसार में निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं / जिस प्रकार अरघट की घड़ी निरन्तर घूमती रहती है इसी प्रकार ये प्राणी भी निरन्तर घूमते रहते हैं ॥42-50॥ यह जीव अशुभ संकल्प से दुःख पाता है, शुभ संकल्प से सुख पाता है और अष्टकों के क्षय से मोक्ष प्राप्त करता है ॥51॥ पात्र की विशेषता से अनेक रूपता को प्राप्त हुए जीव दान के प्रभाव से भोग-भूमियों में भोगों को प्राप्त होते हैं ॥52॥ जो प्राणिहिंसा से विरत, परिग्रह से रहित और राग-द्वेष से शून्य हैं उन्हें जिनेन्द्र भगवान् ने उत्तम पात्र कहा है ॥53॥ जो तप से रहित होकर भी सम्यग्दर्शन से शुद्ध है ऐसा पात्र भी प्रशंसनीय है क्योंकि उससे मिथ्यादृष्टि दाता के शरीर की शुद्धि होती है ॥54॥ जो आपत्तियों से रक्षा करे वह पात्र कहलाता है (पातीति पात्रम् ) इस प्रकार पात्र शब्द का निरुक्त्यर्थ है। चूंकि मुनि, सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य से लोगों की रक्षा करते अतः पात्र हैं ॥55॥ जो निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से सहित होता है वह उत्तम कहलाता है ॥56॥ जो मान, अपमान, सुख-दुःख और तृण-कांचन में समान दृष्टि रखता है ऐसा साधु पात्र कहलाता है ॥57॥ जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित हैं, महातपश्चरण में लीन हैं और तत्त्वों के ध्यान में सदा तत्पर रहते हैं ऐसे श्रमण अर्थात् मनि उत्तम पात्र कहलाते ॥58॥ उन मुनियों के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार भावपूर्वक जो भी अन्न, पान, औषधि अथवा उपयोग में आनेवाले पीछी, कमण्डलु आदि अन्य पदार्थ दिये जाते हैं वे महाफल प्रदान करते हैं ॥59॥ जिस प्रकार उत्तम क्षेत्र में बोया हुआ बीज अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है उसी प्रकार उत्तम पात्र के लिए शुद्ध हृदय से दिया हुआ दान अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है ॥60॥ जो रागद्वेष आदि दोषों से युक्त है वह पात्र नहीं है और न वह इच्छित फल ही देता है अतः उसके फल का विचार करना दूर की बात है ॥61॥ जिस प्रकार ऊषर जमीन में बीज बोया जाय तो उससे कुछ भी उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार मिथ्यादर्शन से सहित पापी पात्र के लिए दान दिया जाय तो उससे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता ॥62॥ एक कुएँ से निकाले हुए पानी को यदि ईख के पौधे पीते हैं तो वह माधुर्य को प्राप्त होता है और यदि नीम के पौधे पीते हैं तो कड़आ हो जाता है ॥63॥ अथवा जिस प्रकार एक ही तालाब में गाय ने पानी पिया और सांप ने भी। गाय के द्वारा पिया पानी दूध हो जाता है और साँप के द्वारा पिया पानी विष हो जाता है, उसी प्रकार एक ही गृहस्थ से उत्तम पात्र ने दान लिया और नीच पात्र ने भी। जो दान उत्तम पात्र को प्राप्त होता है उसका फल उत्तम होता है और जो नीच पात्र को प्राप्त होता है उसका फल नीचा होता है ॥64॥ कोई-कोई पात्र मिथ्यादर्शन से युक्त होने पर भी सम्यग्दर्शन की भावना से युक्त होते हैं ऐसे पात्रों के लिए भाव

से जो दान दिया जाता है उसका फल शुभ-अशुभ अर्थात् मिश्रित प्रकार का होता है ॥65॥ दीन तथा अन्धे आदि मनुष्यों के लिए करुणा दान कहा गया है और उससे यद्यपि फल की भी प्राप्ति होती है पर वह फल उत्तम फल नहीं कहा जाता ॥66॥ सभी वेषधारी प्रयत्नपूर्वक अपने अनुकूल धर्म का उपदेश देते हैं पर उत्तम हृदय के धारक मनुष्यों को विशेषकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए ॥67॥ काम-क्रोधादि से युक्त तथा अपनी समानता रखनेवाले गृहस्थों के लिए जो द्रव्य दिया जाता है उसका क्या फल भोग ने को मिलता है ? सो कहा नहीं जा सकता ॥68॥ अहो ! यह कितना प्रबल मोह है कि मिथ्यामतों से ठगाये गये लोग सभी अवस्थाओंवाले लोगों को अपना धन दे देते हैं ॥69॥ उन दुष्टजनों को धिक्कार है जिन्हों ने कि इस भोले प्राणी को ठग रखा है तथा लोभ दिखाकर मिथ्या शास्त्रों की चर्चा से उसके मन को विचलित कर दिया है ॥70॥ मीठा तथा बलकारी होने से पापी मनुष्यों ने मांस को भक्ष्य बताया है और अपना कपट बता ने के लिए जिनका मास खाना चाहिए उन की संख्या भी निधारित की है ॥71॥ सो ऐसे दृष्ट लोभी जीव दूसरों को मांस दिलाकर तथा स्वयं खाकर दाताओं के साथ-साथ भयंकर वेदना से यक्त नरक नरक में जाते हैं ॥72॥ लोभ के वशीभूत, दुष्ट अभिप्राय से युक्त तथा झूठ-मूठं ही अपने-आप को ऋषि माननेवाले कित ने ही लोगों ने हाथी, घोड़ा, गाय आदि जीवों का दान भी बतलाया है पर तत्त्व के जानकार मनुष्यों ने उसकी अत्यन्त निन्दा की है ॥73॥ उसका कारण भी यह है कि जीवदान में जो जीव दिया जाता है उसे बोझा ढोना पड़ता है, नुकीली अरी आदि से उसके शरीर को आँ का जाता है तथा लाठी आदि से उसे पीटा जाता है इन कारणों से उसे महादुःख होता है और उसके निमित्त से बहुत- से अन्य जीवों को भी बहुत दुःख उठाना पड़ता है ॥74॥ इसी प्रकार भूमिदान भी निन्दनीय है क्योंकि उससे भूमि में रहनेवाले जीवों को पीड़ा होती है। और प्राणिपीड़ा के निमित्त जुटाकर पुण्य की इच्छा करना मानो पत्थर से पानी निकालना है ॥75॥ इसलिए समस्त प्राणियों को सदा अभयदान देना चाहिए साथ ही ज्ञान. प्रासुक औषधि, अन्न और वस्त्रादि भी देना चाहिए ॥76॥ जो दान निन्दित बताया है वह भी पात्र के भेद से प्रशंसनीय हो जाता है. जिस प्रकार कि शुक्ति (सीप ) के द्वारा पिया हुआ पानी निश्चय से मोती हो जाता है ॥77॥ पशु तथा भूमि का दान यद्यपि निन्दित दान है फिर भी यदि वह जिन-प्रतिमा आदि को उद्देश्य कर दिया जाता है तो वह दीर्घ काल तक स्थिर रहनेवाले उत्कृष्ट भोग प्रदान करता है ॥78॥ भीतर का संकल्प ही पुण्यपाप का कारण है उसके बिना बाह्य में दान देना पर्वत के शिखरपर वर्षा करने के समान है ॥79॥ इसलिए वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव का ध्यान कर जो दान दिया जाता है उसका फल कहने के लिए कोन समर्थ है ?॥80॥ जिनेन्द्र के सिवाय जो अन्य देव हैं वे द्वेषी, रागी तथा मोही हैं क्योंकि वे शस्त्र लिये रहते हैं इस से द्वेषी सिद्ध होते हैं और स्त्री साथ में रखते हैं तथा आभूषण धारण करते हैं इस से रागी सिद्ध होते हैं। राग-द्वेष के द्वारा उनके मोह का भी अनुमान हो जाता है क्योंकि मोह राग-द्वेष का कारण है। इस प्रकार राग-द्वेष और मोह ये तीन दोष उन में सिद्ध हो गये बा की अन्य दोष इन्हीं के रूपान्तर हैं ॥81-82॥ लोक में जो कुछ मनुष्य देव के रूप में प्रसिद्ध हैं वे साधारण जन के समान ही भोजन के पात्र हैं अर्थात् भोजन करते हैं, कषाय से युक्त हैं और अवसरपर आंशिक कामादि का सेवन करते हैं सो ऐसे देव दान के पात्र कैसे की हो सकते हैं ? वे कितनी ही बातों में जब कि अपने भक्त जनों से गये-गुजरे अथवा उनके समान ही हैं तब उन्हें उत्तम फल कैसे की दे सकते हैं ? ॥ 83-84॥ यद्यपि वर्तमान में उनके शुभ कर्मों का उदय देखा जाता है तो भी उन से अन्य दुःखी मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति कैसे की हो सकती है ? ॥85॥ ऐसे कुदेवों से मोक्ष की इच्छा करना बालू की मुट्ठी पेरकर तेल प्राप्त करने की इच्छा के समान है अथवा अग्नि की सेवा से प्यास नष्ट करने की इच्छा के तुल्य है ॥86॥ यदि एक लँगड़ा मनुष्य दूसरे लँगड़े मनुष्य को देशान्तर में ले जा सकता हो तो इन देवों से दूसरे दुःखी जीवों को भी फल की प्राप्ति हो सकती है ॥87॥ जब इन देवों की यह बात है तब पाप कार्य करनेवाले उनके भक्तों की बात तो दूर ही रही। उन में सत्पात्रता किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकती ॥88॥ लोभ से प्रेरित हुए पापी जन यज्ञ में प्रवृत्त होते हैं और लोग ऐसा करने वालों को दक्षिणा आदि के रूप में धन देते हैं सो यह निर्दोष कैसे की हो सकता है ? ॥89॥ इसलिए जिनेन्द्र देव को उद्देश्य कर जो दान दिया जाता है वही सर्वदोष रहित है और वही महाफल प्रदान करता है ॥90॥ धर्म तो व्यापार के समान है, जिस प्रकार व्यापार में सदा हीनाधिकता का विचार किया जाता है उसी प्रकार धर्म में भी सदा हीनाधिकता का विचार रखना चाहिए अर्थात् हानि-लाभपर दृष्टि रखना चाहिए। जिस धर्म में पुण्य की अधिकता हो और पाप की न्यूनता हो गृहस्थ उसे स्वीकृत कर सकता है क्योंकि अधिक वस्तु के द्वारा हीन वस्तु का पराभव हो जाता है ॥91॥ जिस प्रकार विष का एक कण तालाब में पहुंचकर पूरे तालाब को दूषित नहीं कर सकता उसी प्रकार जिनधर्मानुकूल आचरण करनेवाले पुरुष से जो थोड़ी हिंसा होती है वह उसे दूषित नहीं कर सकती। उसकी वह अल्प हिंसा व्यर्थ रहती है ॥92॥ इसलिए भक्ति में तत्पर रहनेवाले कुशल मनुष्यों को जिन-मन्दिर आदि बनवाना चाहिए और माला,

धूप, दीप आदि सब की व्यवस्था करनी चाहिए ॥93॥ जिनेन्द्र भगवान् को उद्देश्य कर जो दान दिया जाता है उसके फलस्वरूप जीव स्वर्ग तथा मनुष्यलोक सम्बन्धी उत्तमोत्तम भोग प्राप्त करते हैं ॥14॥ सन्मार्ग में प्रयाण करनेवाले मुनि आदि के लिए जो यथायोग्य दान दिया जाता है वह उत्कृष्ट भोग प्रदान करता है। इस प्रकार यही दान गुणों का पात्र है ॥15॥ इसलिए सामर्थ्य के अनुसार भक्तिपूर्वक सम्यग्दृष्टि पुरुषों के लिए जो दान देता है उसी का दान एक दान है बा की तो चोरों को धन लुटाना है ॥96॥ केवलज्ञान ज्ञान के साम्राज्य. पदपर स्थित है। ध्यान के प्रभाव से जब केवलज्ञान की प्राप्ति हो चुकती है तभी यह जीव निर्वाण को प्राप्त होता है ॥97॥ जिनके समस्त कर्म नष्ट हो चुकते हैं, जो सर्व प्रकार की बाधाओं से परे हो जाते हैं, जो अनन्त सुख से सम्पन्न रहते हैं, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन जिन की आत्मा में प्रकाशमान रहते हैं जिनके तीनों प्रकार के शरीर नष्ट हो जाते हैं, निश्चय से जो अपने स्वभाव में ही स्थित रहते हैं और व्यवहार से लोक-शिखरपर विराजमान हैं, जो पुनरागमन से रहित हैं और जिनका स्वरूप शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता वे सिद्ध भगवान् हैं ॥98-99॥ लोभरूपी पवन से बढ़े दुःख रूपी अग्नि के बीच में पड़े पापी जीव पुण्य रूपी जल के बिना निरन्तर क्लेश भोगते रहते हैं ॥10॥ पापरूपी अन्धकार के बीच में रहनेवाले तथा मिथ्यादर्शन के वशीभूत कित ने ही जीव धर्मरूपी सूर्य की किरणों से प्रबोध को प्राप्त होते हैं ॥101॥ जो अशुभभावरूपी लोहे के मजबूत पिंजरे के मध्य में रह रहे हैं तथा आशारूपी पाश के अधीन हैं ऐसे जीव धर्मरूपी बन्धु के द्वारा ही मुक्त किये जाते हैंबन्धन से छुड़ाये जाते हैं ॥102॥ जो लोकबिन्दुसार नामक पूर्व का एक देश है ऐसे व्याकरण से सिद्ध है कि जो धारण करे सो धर्म है। 'धरतीति धर्मः' इस प्रकार उसका निरुक्त्यर्थ है ॥103॥ और यह ठीक भी है क्योंकि अच्छी तरह से आचरण किया हुआ धर्म दुर्गति में पड़ते हुए जीव को धारण कर लेता है-बचा लेता है इसलिए वह धर्म कहलाता है ॥104॥ लभ धातु का अर्थ प्राप्ति है और प्राप्ति सम्पर्क को कहते हैं, अतः धर्म को प्राप्ति को धर्मलाभ कहते हैं ॥105॥ अब हम जिनभगवान् के द्वारा कहे हुए धर्म का संक्षेप से निरूपण करते हैं। साथ ही उसके कुछ भेदों और उनके फलों का भी निर्देश करेंगे सो तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥106॥ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरक्त होना सो व्रत कहलाता है। ऐसा व्रत अवश्य ॥107॥ ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं / साधु को इन का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए ॥108॥ वचन, मन और काय की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव हो जाना अथवा उस में कोमलता आ जाना गुप्ति है। इसका आचरण बड़े आदर से करना चाहिए ॥109॥ क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय महाशत्रु हैं, इन्हीं के द्वारा जीव संसार में परिभ्रमण करता है ॥110॥ आगम के अनुसार कार्य करनेवाले मनुष्य को क्षमा से क्रोधका, मृदुता से मानका, सरलता से माया का और सन्तोष से लोभ का निग्रह करना चाहिए ॥111॥ अभी ऊपर जिन व्रत समिति आदि का वर्णन किया है वह सब धर्म कहलाता है। इसके सिवाय त्याग भी विशेषधर्म कहा गया है ॥112॥ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ प्रसिद्ध हैं। इन का जीतना धर्म कहलाता है ॥113॥ उपवास, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्यतप हैं। बाह्यतप अन्तरंग तप की रक्षा के लिए वृति अर्थात् बाड़ी के समान हैं ॥114-115॥ प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह आभ्यन्तर तप हैं। यह समस्त तप धर्म कहलाता है ॥116-117॥ भव्य जीव इस धर्म के द्वारा कर्मों का वियोजन अर्थात् विनाश तथा अनन्त व्यवसायों को परिवर्तित करनेवाले अनेक आश्चर्यजनक कार्य करते हैं ॥118॥ यह जीव धर्म के प्रभाव से ऐसा विक्रियात्मक शरीर प्राप्त करता है कि जिस के द्वारा समस्त मनुष्य और देवों को बाधा दे ने तथा लोकाकाश को व्याप्त करने में समर्थ होता है ॥119॥ धर्म के प्रभाव से यह जीव इतना महाबलवान् हो जाता है कि तीनों लोकों को एक ग्रास बना सकता है। अणिमा, महिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य तथा अनेक दुर्लभ योग भी यह धर्म के प्रभाव से प्राप्त करता है ॥120॥ यह जीव धर्म के प्रभाव से सूर्य के सन्ताप को और चन्द्रमा की शीतलता को नष्ट कर सकता है तथा वृष्टि के द्वारा समस्त संसार को क्षणभर में भर सकता है ॥121॥ यह धर्म के प्रभाव से आशीविष साँप के समान दृष्टिमात्र से लोक को भस्म कर सकता है, मेरु पर्वत को उठा सकता है और समुद्र को बिखेर सकता है ॥122॥ धर्म के ही प्रभाव से ज्योतिश्चक्र को उठा सकता है, इन्द्र, रुद्र आदि देवों को भयभीत कर सकता है, रत्न और सुवर्ण की वर्षा कर सकता है तथा पर्वतों के समूह की सृष्टि कर सकता है ॥123॥ धर्म के ही प्रभाव से अत्यन्त भयंकर बीमारियों की शान्ति अपने पैर की धूलि से कर सकता है तथा मनुष्यों को अन्य अनेक आश्चर्यकारक वैभव की प्राप्ति करा सकता है ॥124॥ जीव धर्म के प्रभाव से और भी कित ने ही कठिन कार्य कर सकता है। यथार्थ में धर्म के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ॥125॥ जो जीव धर्मपूर्वक मरण करते हैं वे ज्योतिश्चक्र को उल्लंघन कर गुणों के निवासभूत सौधर्मादि स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं ॥126॥ धर्म का उपार्जन कर कित ने ही सामानिक देव होते हैं, कित ने ही इन्द्र होते हैं और

कित ने ही अहमिन्द्र बनते हैं ॥127॥ धर्म के प्रभाव से जीव उन महलों में उत्पन्न होते हैं जो कि स्वर्ण, स्फटिक और वैडूर्य मणिमय खम्भों के समूह से निर्मित होते हैं जिन की स्वर्णादिनिर्मित दीवालें सदा देदीप्यमान रहती हैं, जो अत्यन्त ऊँचे और अनेक भूमियों (खण्डों) से युक्त होते है ॥१२८॥ जिनके फर्श पद्मराग, दधिराग तथा मधुराग आदि विचित्र-विचित्र मणियोस ब ने होते हैं, जिन में मोतियों की मालाएं लटकती रहती हैं, जो झरोखों से सुशोभित होते हैं ॥129॥ जिनके किनारोंपर हरिण, चमरी गाय, सिंह, हाथी तथा अन्यान्य जीवों के सुन्दर-सुन्दर चित्र चित्रित रहते हैं ऐसी वेदिकाओं से जो अलंकृत होते हैं ॥130॥ जो चन्द्रशाला आदि से सहित होते हैं, ध्वजाओं और मालाओं से अलंकृत रहते हैं तथा जिन की कक्षाओं में मनोहारी शय्याएँ और आसन बिछे रहते हैं ॥131॥ धर्म धारण करनेवाले लोग ऐसे विमान आदि स्थानों में उत्पन्न होते हैं जो वादित्र आदि संगीत के साधनों से युक्त रहते हैं, इच्छानुसार जिन में गमन होता है, जो उत्तम परिकर से सहित होते हैं, कमल आदि प्रसाधन सामग्री से युक्त रहते हैं और अपनी प्रभा से सूर्य की दीप्ति और चन्द्रमा की कान्ति को तिरस्कृत करते रहते हैं ॥132-133॥ धर्म के प्रभाव से प्राणियों को देव-भवनों में ऐसा वैक्रियिक शरीर प्राप्त होता है जो कि सुखमय निद्रा के दूर होनेपर जागृत हुए के समान जान पडता है. जिसकी इन्द्रियाँ अत्यन्त निर्मल होती हैं। जो तत्काल उदित समान देदीप्यमान होता है, जो कान्ति से चन्द्रमा की तुलना प्राप्त करता है, रज, पसीना तथा बीमारी से रहित होता है. अत्यन्त सगन्धित. निर्मल और कोमल होता है. उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त, नयनाभिराम और उपपाद जन्म से उत्पन्न होता है। इसके सिवाय अपनी कान्ति के समूह से दिगन्तराल को आच्छादित करनेवाले आभूषण भी प्राप्त होते हैं ॥134-136॥ धर्म के प्रभाव से स्वर्ग में ऐसी अप्सराएँ प्राप्त होती हैं जिनके कि चरणों का स्पर्शन कमलदल के समान कोमल होता है, जिनके नख अत्यन्त कान्तिमान होते हैं, जिनके लाल-लाल वस्त्रों के अंचल नूपुरों में उलझते रहते हैं ॥137॥ जिन की जंघाएँ केले के स्तम्भ के समान स्निग्ध स्पर्श से युक्त होती हैं, जिनके घुट ने मांस-पेशियों में अन्तर्निहित रहते हैं, जिनके स्थूल नितम्ब मेखलाओं से सुशोभित होते हैं, जिन की चाल हाथो की चाल के समान मस्ती से भरी रहती है ॥ 138॥ जो सूक्ष्म त्रिवलि से युक्त मध्यभाग से सुशोभित होती हैं, जिनके स्तनों के मण्डल नवीन उदित चन्द्रमा के समान होते हैं ॥139॥ जिन को रत्नावली की कान्ति से सदा चाँदनी छिटकती रहती है, जो मालती के समान कोमल और पतली भुजारूपी लताओं को धारण करती हैं ॥140॥ जिनके हाथ महामूल्य मणियों की खनकती हुई चूड़ियों से सदा युक्त रहते हैं, अशोक पल्लव के समान कोमलता धारण करनेवाली जिन की अंगुलियों से मानो कान्ति चूती रहती है ॥141॥ जिनके कण्ठ शंख के समान होते हैं, जिनके ओठ दाँतों की कान्ति से आच्छादित रहते हैं, जिनके कपोलरूपी निर्मल दर्पणों का समस्त भाग लावण्य से संलिप्त रहता है ॥142॥ जिनके नयनान्त को सघन कान्ति सदा कर्णाभरण की शोभा बढ़ाया करती है, मोतियों से व्याप्त पद्मराग मणि जिन की माँग को अलंकृत करते रहते हैं ॥143॥ जिनके केशों के समूह भ्रमर के समान काले, सूक्ष्म और अत्यन्त कोमल हैं, जिनके शरीर का स्पर्श मृणाल के समान कोमल है, जिन की आवाज अत्यन्त मधुर है ॥144॥ जो सब प्रकार का उपचार जानती हैं, जिन की समस्त क्रियाएँ अत्यन्त मनोहर हैं, जिनके श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धि नन्दनवन की सुगन्धि के समान है ॥145॥ जो अभिप्राय के समझ ने में कुशल, पंचेन्द्रियों को सुख पहुंचानेवाली और इच्छानुसार रूप को धारण करनेवाली हैं ॥146॥ देव लोग, उन अप्सराओं के साथ जहाँ संकल्पमात्र से ही समस्त उपकरण उपस्थित हो जाते हैं ऐसा विषयजन्य विशाल सुख भोगते हैं ॥147॥ अथवा मनुष्य लोक में जो सुख प्राप्त होता है जिनेन्द्रदेव ने उस सब को धर्म का फल कहा है ॥148॥ ऊर्च, मध्य और अधोलोक में उपभोक्ताओं को जो भी सुख नाम का पदार्थ प्राप्त होता है वह सब धर्म से ही उत्पन्न होता है ॥149॥ दान देनेवाले, उपभोग करनेवाले एवं मर्यादा स्थापित करनेवाले मनुष्य की जो हजारों मनुष्यों के झुण्ड रक्षा करते हैं वह सब धर्म से उत्पन्न हुआ फल समझना चाहिए ॥150॥ मनोहर आभूषण धारण करनेवाले हजारों देवोंपर इन्द्र जो शासन करता है वह धर्म से उत्पन्न हुआ फल है ॥151 सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय से युक्त जो पुरुष मोहरूपी शत्रु को नष्ट कर मोक्षस्थान प्राप्त करते हैं वह शुद्ध धर्म का फल है ॥152॥ मनुष्य-जन्म के बिना अन्यत्र वह धर्म प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए मनुष्यभव की प्राप्ति सब भवों में श्रेष्ठ है ॥153॥ जिस प्रकार मनुष्यों में राजा, मृगों में सिंह और पक्षियों में गरुड़ श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब भवों में मनुष्यभव श्रेष्ठ है ॥154॥ तीनों लोकों में श्रेष्ठ एवं समस्त इन्द्रियों को सुख देनेवाला धर्म मनुष्यशरीर में ही किया जाता है इसलिए मनुष्यदेह ही सर्वश्रेष्ठ है ॥155॥ जिस प्रकार तृणों में धान, वृक्षों में चन्दन और पत्थरों में रत्न श्रेष्ठ है उसी प्रकार सब भवों में मनुष्यभव श्रेष्ठ है ॥156॥ हजारों उत्सर्पिणियों में भ्रमण करने के बाद यह जीव किसी तरह मनुष्य-जन्म प्राप्त करता है और नहीं भी प्राप्त करता है ॥157॥ क्लेशों से छुटकारा देनेवाले उस मनुष्य-जन्म को पाकर जो मनुष्य धर्म नहीं करता है वह पुनः दुर्गतियों को प्राप्त होता है ॥158॥ जिस प्रकार समुद्र

के पानी में गिरा महामूल्य रत्न दुर्लभ हो जाता है उसी प्रकार नष्ट हुए मनुष्य-जन्म का पुनः पाना भी दुर्लभ है ॥159॥ इसी मनुष्य पर्याय में यथायोग्य धर्म कर प्राणी स्वर्गादिक में समस्त फल प्राप्त करते हैं ॥160॥

सर्वज्ञ देव के द्वारा कहे हुए इस उपदेश को सुनकर भानुकर्ण बहुत ही हर्षित हुआ। उसके नेत्र कमल के समान विकसित हो गये। उसने भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर पूछा कि ॥161॥ हे भगवान् ! अभी जो उपदेश प्राप्त हुआ है उससे मुझे तृप्ति नहीं हुई है अतः भेदप्रभेद के द्वारा धर्म का निरूपण कीजिए ॥162॥ तब अनन्तबल केवली कहने लगे कि अच्छा धर्म का विशेष वर्णन सुनो जिस के प्रभाव से भव्य प्राणी संसार से मुक्त हो जाते हैं ॥163॥ महाव्रत और अणुव्रत के भेद से धर्म दो प्रकार का कहा गया है। उन में से पहला **अर्थ**ात् महाव्रत गृहत्यागी मुनियों के होता है और दूसरा अर्थात् अणुव्रत संसारवर्ती गृहस्थों के होता है ॥164॥ अब मैं समस्त परिग्रहों से रहित महान् आत्मा के धारी मुनियों का वह चरित्र कहता हूँ जो कि पापों को नष्ट करने में समर्थ है ॥165॥ समस्त पदार्थों को जाननेवाले मुनि सुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में ऐसे कित ने ही महापुरुष हैं जो जन्म-मरण सम्बन्धी महाभय से यक्त हैं ॥166॥ ये मनुष्य पर्याय को एरण्ड वक्ष के समान निःसार जानकर परिग्रह से रहित हो मुनिपद को प्राप्त हुए हैं ॥167॥ वे साधु सदा पंच महाव्रतों में लीन रहते हैं और शरीरत्यागपर्यन्त तत्त्वज्ञान के प्राप्त करने में तत्पर होते हैं ॥168॥ शुद्ध हृदय को धारण करनेवाले ये धैर्यशालो मुनि पाँच समितियों और तीन गुप्तियों में सदा लीन रहते हैं ॥169॥ अहिंसा, सत्य, अचौर्य और आगमानुमोदित बह्मचर्य उन्हीं के होता है जिनके कि परिग्रह का आलम्बन नहीं होता ॥170॥ जो बुद्धिमान् जन अपने शरीर में भी राग नहीं करते हैं और सूर्यास्त हो जानेपर यत्नपूर्वक विश्राम करते हैं उनके परिग्रह क्या हो सकता है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥171॥ मुनि पाप उपार्जन करनेवाले बालाग्रमात्र परिग्रह से रहित होते हैं तथा अत्यन्त धीर-वीर और सिंह के समान पराक्रमी होते हैं ॥172॥ ये वायु के समान सब प्रकार के प्रतिबन्ध से रहित होते हैं। पक्षियों के तो परिग्रह हो सकता है पर मुनियों के रंचमात्र भी परिग्रह नहीं होता ॥173॥ ये आकाश के समान मल के संसर्ग से रहित होते हैं, इन की चेष्टाएँ अत्यन्त प्रशंसनीय होती हैं, ये चन्द्रमा के समान सौम्य और दिवाकर के समान देदीप्यमान होते हैं ॥174॥ ये समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरुके समान धीर-वीर और भयभीत कछुए के समान समस्त इन्द्रियों के समूह को अत्यन्त गुप्त रखनेवाले होते हैं ॥175॥ ये क्षमाधर्म के कारण क्षमा अर्थात् पृथ्वी के तुल्य हैं, कषायों के उद्रेक से रहित हैं और चौरासी लाख गुणों से सहित हैं ॥176॥ जिनेन्द्र प्रतिपादित शील के अठारह लाख भेदों से सहित हैं, तपरूपी विभूति से अत्यन्त सम्पन्न हैं तथा मुक्ति की इच्छा करने में सदा तत्पर रहते हैं ॥177॥ ये मुनि जिनेन्द्रनिरूपित पदार्थों में लीन रहते हैं, अन्य धर्मों के भी अच्छे जानकार होते हैं, श्रुतरूपी सागर के पारगामी और यम के धारी होते हैं ॥178॥ ये मुनि अनेक नियमों के करनेवाले, उद्दण्डता से रहित, नाना ऋद्धियों से सम्पन्न और महामंगलमय शरीर के धारक होते हैं ॥179॥ इस तरह जो पूर्वोक्त गुणों को धारण करनेवाले हैं, समस्त जगत् के आभरण हैं और जिनके कर्म क्षीण हो गये हैं ऐसे मुनि उत्तम देव पद को प्राप्त होते हैं ॥180॥ तदनन्तर दो-तीन भवों में ध्यानाग्नि के द्वारा समस्त कलषता को जलाकर निर्वाण-सुख को प्राप्त कर लेते हैं ॥181॥ अब स्नेहरूपी पिंजड़े में रुके हुए गृहस्थाश्रमवासी लोगों का बारह प्रकार का धर्म कहता हूँ सो सुनो ॥182॥ गृहस्थों को पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत और यथाशक्ति हजारों नियम धारण करने पड़ते हैं ॥183॥ स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल परद्रव्यग्रहण, परस्त्री समागम और अनन्ततृष्णा से विरत होना ये गृहस्थों के पाँच अणुव्रत कहलाते हैं। इन व्रतों को रक्षा के लिए जिनेन्द्रदेव ने निम्नांकित भावना का निरूपण किया है ॥184-185॥ जिस प्रकार मुझे अपना शरीर इष्ट है उसी प्रकार समस्त प्राणियों को भी अपना-अपना शरीर इष्ट होता है ऐसा जानकर गृहस्थ को सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिए ॥186॥ जिनेन्द्रदेव ने दया को ही धर्म को परम सीमा बतलायी है । यथार्थ में जिनके चित्त दयारहित हैं उनके थोड़ा भी धर्म नहीं होता है ॥187॥ जो वचन दूसरों को पीड़ा पहुँचा ने में निमित्त है वह असत्य ही कहा गया है, क्योंकि सत्य इस से विपरीत होता है ॥188॥ की गयी चोरी इस जन्म में वध, बन्धन आदि कराती है और मरने के बाद कुयोनियों में नाना प्रकार के दुःख देती है ॥189॥ इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह चोरी का सर्व प्रकार से त्याग करे । जो कार्य दोनों लोकों में विरोध का कारण है वह किया ही कैसे की जा सकता है ? ॥190॥ परस्त्री का सर्पिणी के समान दूर से ही त्याग करना चाहिए क्योंकि वह पापिनी लोभ के वशीभूत हो पुरुष का नाश कर देती है ॥19॥ जिस प्रकार अपनी स्त्री को कोई दूसरा मनुष्य छेड़ता है और उससे अपने आप को दुःख होता है उसी प्रकार सभी की यह व्यवस्था जाननी चाहिए ॥192॥ परस्त्री सेवन करनेवाले मनुष्य को इसी जन्म में बहुत भारी तिरस्कार प्राप्त होता है और मरनेपर तिर्यंच तथा नरकगति के अत्यन्त दुःसह दुःख प्राप्त करने ही पड़ते हैं ॥193॥ अपनी इच्छा का सदा परिमाण करना चाहिए क्योंकि इच्छापर यदि अंकुश नहीं लगाया गया तो वह

महादुःख देती है। इस विषय में भद्र और कांचन का उदाहरण प्रसिद्ध है ॥194॥ वैर आदि को बेचनेवाला एक भद्र नामक पुरुष था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं एक दीनार का ही परिग्रह रखूंगा। एक बार उसे मार्ग में पड़ा हुआ बटुआ मिला। उस बटुए में यद्यपि बहुत दीनारें रखी थीं पर भद्र ने अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान कर कुतूहलवश उन में से एक दीनार निकाल ली। शेष बटुआ वहीं छोड़ दिया। वह बटुआ कांचन नामक दूसरे पुरुष ने देखा तो वह सब का सब उठा लिया । दीनारों का स्वामी राजा था। जब उसने जांच-पड़ताल की तो कांचन को मृत्यु की सजा दी गयी और भद्र ने जो एक दीनार ली थी वह स्वयं ही जाकर राजा को वापस कर दी जिस से राजाने उसका सम्मान किया ॥195-197॥ अनर्थदण्डों का त्याग करना, दिशाओं और विदिशाओं में आवागमन की सीमा निर्धारित करना और भोगोपभोग का परिमाण करना ये तीन गुणवत हैं ॥198॥ प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथिसंविभाग और आयु का क्षय उपस्थित होनेपर सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं ॥199॥ जिसने अपने आगमन के विषय में किसी तिथि का संकेत नहीं किया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणों से युक्त होकर घर आता है ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है ॥200॥ ऐसे अतिथि के लिए अपने वैभव के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए यही अतिथिसंविभाग है ॥201॥ इन के सिवाय गृहस्थ मधु, मद्य, मांस, जुआ, रात्रिभोजन और वेश्यासमागम से जो विरक्त होता है उसे नियम कहा है ॥202॥ इस गृहस्थ धर्म का पालन कर जो समाधिपूर्वक मरण करता है, वह उत्तमदेव पर्याय को प्राप्त होता है और वहाँ से च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है ॥203॥ ऐसा जीव अधिक से अधिक आठ भवों में रत्नत्रय का पालन कर अन्त में निर्ग्रन्थ हो सिद्धिपद को प्राप्त होता है ॥204॥ जो दुर्लभ मनुष्यपर्याय पाकर यथोक्त आचरण करने में असमर्थ है, केवल जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित आचरण की श्रद्धा करता है वह भी निकट काल में त प्राप्त करता है ॥205॥ जिसका लाभ सब लाभों में श्रेष्ठ है ऐसे केवल सम्यग्दर्शन के द्वारा भी मनुष्य दर्गति के भय से छट जाता है ॥206॥ जो स्वभाव से ही जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर है वह पुण्य का आधार होता है तथा पाप के अंशमात्र का भी उससे सम्बन्ध नहीं होता ॥207॥ नमस्कार तो दूर रहा जो जिनेन्द्र देव का भावपूर्वक स्मरण भी करता है उसके करोड़ों भवों के द्वारा संचित पाप कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥208॥ जो मनुष्य तीन लोक में श्रेष्ठ रत्नस्वरूप जिनेन्द्र देव को हृदय में धारण करता है उसके सब ग्रह, स्वप्न और शकुन की सूचना देनेवाले पक्षी सदा शुभ ही रहते हैं ॥209॥ जो मनुष्य 'अहंते नमः' अहंन्त के लिए नमस्कार हो, इस वचन का भावपूर्वक उच्चारण करता है उसके समस्त कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥210॥ जिनेन्द्र चन्द्र की कथारूपी किरणों के समागम से भव्य जीव का निर्मल हृदयरूपी कुमुद शीघ्र ही प्रफुल्ल अवस्था को प्राप्त होता है ॥211॥ जो मनुष्य अर्हन्त सिद्ध और मुनियों के लिए नमस्कार करता है वह जिनशासन के भक्त जनों से स्नेह रखनेवाला अतीतसंसार है अर्थात् शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करनेवाला है ऐसा जानना चाहिए ॥212॥ जो पुरुष जिनेन्द्र देव की प्रतिमा बनवाता है, जिनेन्द्र देव का आकार लिखवाता है, जिनेन्द्र देव की पूजा करता है अथवा जिनेन्द्रदेव की स्तुति करता है उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ॥213॥ यह मनुष्य चाहे राजा हो चाहे साधारण कुटुम्बी, धनाढय हो चाहे दरिद्र, जो भी धर्म से युक्त होता है वह समस्त संसार में पूज्य होता है ॥214॥ जो महाविनय से सम्पन्न तथा कार्य और अकार्य के विचार में निपुण हैं वे धर्म के समागम से गृहस्थों में प्रधान होते हैं ॥215॥ जो मनुष्य मधु, मांस और मदिरा आदि का उपयोग नहीं करते हैं वे गृहस्थों के आभूषण पद पदपर स्थित हैं अर्थात् गृहस्थों के आभूषण हैं ॥216॥ जो शंका, कांक्षा और विचिकित्सा से रहित हैं, जिन की आत्मा अन्यदृष्टियों को प्रशंसा से दूर है और जो अन्य शासन सम्बन्धी स्तवन से वर्जित हैं वे गृहस्थों में प्रधान पद को प्राप्त हैं ॥217-218॥ जो उत्तम वस्त्र का धारक है, जिस के शरीर से सुगन्धि निकल रही है, जिसका दर्शन सब को प्रिय लगता है, नगर की स्त्रियाँ जिसकी प्रशंसा कर रही हैं, जो पृथिवी को देखता हुआ चलता है, जिसने सब विकार छोड़ दिये हैं, जो उत्तम भावना से युक्त है और अच्छे कार्यों के करने में तत्पर है ऐसा होता हुआ जो जिनेन्द्रदेव की वन्दना के लिए जाता है उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है ॥219-220॥ जो परद्रव्य को तृण के समान, परपुरुष को अपने समान और परस्त्री को माता के समान देखते हैं वे धन्य हैं ॥221॥ 'मैं दीक्षा लेकर पृथिवीपर कब विहार करूँगा? और कब कर्मों को नष्ट कर सिद्धालय में पहुँचूँगा' जो निर्मल चित्त का धारी मनुष्य प्रतिदिन ऐसा विचार करता है कम भयभीत होकर ही मानो उसकी संगति नहीं करते ॥222-223॥ कोई-कोई गृहस्थ प्राणी, सात-आठ भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और उत्तम हृदय को धारण करनेवाले कित ने ही मनुष्य तीक्ष्ण तप कर दो-तीन भव में ही मुक्त हो जाते हैं ॥224॥ मध्यम भव्य प्राणी शीघ्र ही महान् आनन्द अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं पर जो असमर्थ हैं किन्त मार्ग को जानते हैं वे कूछ विश्राम करने के बाद महाआनन्द प्राप्त कर पाते हैं ॥225॥ जो मनष्य मार्ग को न

जानकर दिन में सौ-सौ योजन तक गमन करता है वह भटकता ही रहता है तथा चिरकाल तक भी इष्ट स्थान को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥226॥ जिनका श्रद्धान मिथ्या है ऐसे लोग उग्र तपश्चरण करते हुए भी जन्म-मरण से रहित पद नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥227॥ जो मोक्षमार्ग अर्थात् रत्नत्रय से भ्रष्ट हैं वे मोहरूपी अन्ध-कार से आच्छादित तथा कषायरूपी सो से व्याप्त संसाररूपी अटवी में भटकते रहते हैं ॥228॥ जिस के न शील है, न सम्यक्त्व है और न उत्तम त्याग ही है उसका संसार-सागर से सन्तरण किस प्रकार हो सकता है ? ॥229॥ विन्ध्याचल के जिस प्रवाह में पहाड़ के समान ऊँचे-ऊँचे हाथी बह जाते हैं उस में बेचारे खरगोश तो निःसन्देह ही बह जाते हैं ॥230॥ जहाँ कुतीर्थ का उपदेश देनेवाले कुगुरु भी जन्म-जरा-मृत्युरूपी आवर्तो से युक्त संसाररूपी प्रवाह में चक्कर काटते हैं, वहाँ उनके भक्तों की कथा ही क्या है ? ॥231॥ जिस प्रकार पानी में पड़ी शिला को शिला ही तार ने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार परिग्रही साधु शरणागत परिग्रही भक्तों को तार ने में समर्थ नहीं हैं ॥232॥ जो तप के द्वारा पापों को जलाकर हल के हो गये हैं ऐसे तत्त्वज्ञ मनुष्य ही अपने उपदेश से दूसरों को तार ने में समर्थ होते हैं ॥233॥ जो यह मनुष्य क्षेत्र है सो भयंकर संसार-सागर में मानो उत्तम रत्नद्वीप है। इसकी प्राप्ति बड़े दुःख से होती है ॥234॥ इस रत्नद्वीप में आकर बुद्धिमान् मनुष्य को अवश्य ही नियमरूपी रत्न ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान शरीर छोड़कर पर्यायान्तर में अवश्य ही जाना होगा ॥235॥ इस संसार में जो विषयों के लिए धर्मरूपी रत्नों का चूर्ण करता है वह वैसा ही है जैसा कि कोई सूत प्राप्त करने के लिए मणियों का चूर्ण करता है ॥236॥ शरीरादि अनित्य है, कोई किसी का शरण नहीं है, शरीर अशुचि है, शरीररूपी पिंजड़े से आत्मा पृथक् है, यह अकेला ही सुख-दुःख भोगता है, संसार के स्वरूप का चिन्तवन करना, लोक की विचित्रता का विचार करना, आस्रव के दुर्गुणों का ध्यान करना, संवर की महिमा का चिन्तवन करना, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा का उपाय सोचना, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की दुर्लभता का विचार करना और धर्म का माहात्म्य सोचना-जिनेन्द्र भगवान् ने ये बारह भावनाएँ कही हैं सो इन्हें सदा हृदय में धारण करना चाहिए ॥237-239॥ जो अपनी शक्ति के अनुसार जैसे धर्म का सेवन करता है वह देवादि गतियों में उसका वैसा ही फल भोगता है ॥240॥ इस प्रकार उपदेश देते हुए अनन्तबल केवलो से भानुकर्ण ने पूछा कि हे नाथ ! मैं अब नियम तथा उसके भेदों को जानना चाहता हूँ ॥241॥ इसके उत्तर में भगवान् ने कहा कि हे भानुकर्ण ! ध्यान देकर अवधारण करो। नियम और तप ये दो पदार्थ पृथक्-पृथक् नहीं हैं ॥242॥ जो मनुष्य नियम से युक्त है वह शक्ति के अनुसार तपस्वी कहलाता है इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को सब प्रकार से नियम अथवा तप में प्रवृत्त रहना चाहिए ॥243॥ बुद्धिमान् मनुष्यों को थोड़ा-थोड़ा भी पुण्य का संचय करना चाहिए क्योंकि एक-एक बूंद के पड़ने से समुद्र तक बहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बन जाती हैं ॥244॥ जो दिन में एक मुहर्त के लिए भी भोजन का त्याग करता है उसे एक महीने में उपवास के समान फल प्राप्त होता है ॥245॥ संकल्प मात्र से प्राप्त होनेवाले उत्कृष्ट भोगों का उपभोग करते हुए इस जीव को कम से कम दसहजार वर्ष तो लगते ही हैं ॥246॥ और जो जैनधर्म की श्रद्धा करता हुआ पूर्वप्रतिपादित व्रतादि धारण करता है उस महात्मा का स्वर्ग में कम से कम एक पल्य प्रमाण काल बीतता है ॥247॥ वहाँ से च्युत होकर वह मनुष्य गति में उस प्रकार उत्तम भोग प्राप्त करता है जिस प्रकार तापसवंश में उत्पन्न हुई उपवना ने प्राप्त किये थे ॥248॥ एक उपवना नाम की दुःखिनी कन्या थी जो भाई-बन्धुओं से रहित थी और बेर आदि खाकर अपनी जीवि का करती थी। एक बार उसने मुहूर्त-भर के लिए आहार का त्याग किया। उस व्रत के प्रभाव से राजाने उसका बड़ा आदर किया तथा व्रत के अनन्तर उसे उत्कृष्ट धनसम्पदा से युक्त किया। इस घटना से उसका मन धर्म में अत्यन्त उत्साहित हो गया ॥249-250॥ जो मनुष्य निरन्तर जिनेन्द्र भगवान् के वचनों का पालन करता है वह परलोक में निर्बाध सुख का उपभोग करता है ॥251॥ जो प्रतिदिन दो मुहूर्त के लिए आहार का त्याग करता है उसे महीने में दो उपवास का फल प्राप्त होता है ॥252॥ इस प्रकार जो एक-एक मुहूतं बढ़ाता हुआ तीस मुहूर्त तक के लिए आहार का त्याग करता है उसे तीन-चार आदि उपवासों का फल प्राप्त होता है ॥253॥ तेला आदि उपवासों में भी इसी तरह मुहर्त की योजना कर लेनी चाहिए। जो अधिक काल के लिए त्याग होता है उसका कारण के अनुसार अधिक फल कहना चाहिए ॥254॥ प्राणी स्वर्ग में इस नियम का फल प्राप्त कर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और वहां अद्भत चेष्टाओं के धारक होते हैं ॥255॥ स्वर्ग में फल भोग ने से जो पण्य शेष बचता है उसके फलस्वरूप वे क स्त्रियों के पति होते हैं। जिनका कि शरीर लावण्यरूपी पंक से लिप्त रहता है तथा जो मन को हरण करनेवाले हाव-भाव विभ्रम किया करती हैं ॥256॥ नियमवाली स्त्रियाँ भी स्वर्ग से चयकर मनुष्य भव में आती हैं और महापुरुषों के द्वारा सेवनीय होती हुई लक्ष्मी की समानता प्राप्त करती हैं ॥257॥ जो सूर्यास्त होनेपर अन्न का त्याग करता है उस सम्यग्दृष्टि को भी विशेष अभ्युदय की प्राप्ति होती है ॥258॥ यह जीव इस धर्म के कारण रत्नों से जगमगाते विमानों में अप्सराओं के

मध्य में बैठकर अनेक पल्योपमकाल व्यतीत करता है ॥259॥ इसलिए दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर धर्म में तत्पर रहनेवाले मनुष्यों को महाप्रभु श्रीजिनेन्द्र देव की उपासना करनी चाहिए ॥260॥ जिनके आसनस्थ होनेपर देव, तिर्यंच और मनुष्यों से सेवित एक योजन की पृथ्वी स्वर्णमयी हो जाती है ॥261॥ जिनके आठ प्रातिहार्य और चौंतीस महाअतिशय प्रकट होते हैं। तथा जिनका रूप हजार सूर्यों के समान देदीप्यमान एवं नेत्रों को सुख देनेवाला होता है ॥262॥ ऐसे महाप्रभु जिनेन्द्र भगवान् को जो बुद्धिमान् भव्य प्रणाम करता है वह थोड़े ही समय में संसार-सागर से पार हो जाता है ॥263॥ जीवों को शान्ति प्राप्त करने के लिए यह उपाय छोड़कर और दूसरा कोई उपाय नहीं है इसलिए यत्नपूर्वक इसकी सेवा करनी चाहिए ॥264॥ इन के सिवाय कुतोथियों से सेवित गोदण्डक के समान जो अन्य हजारों मार्ग हैं उन में प्रमादी जीव मोहित हो रहे हैं-यथार्थ मार्ग भूल रहे हैं ॥265॥ उन मार्गाभासों में समीचीन दया तो नाममात्र को नहीं है क्योंकि मधु-मांसादि का सेवन खुलेआम होता है पर जिनेन्द्रदेव की प्ररूपणा में दोष की कणि का भी दृष्टिगत नहीं होती ॥266॥ लोक में यह कार्य तो बिलकुल ही त्याग ने योग्य है कि दिनभर तो भूख से अपनी आत्मा को पीड़ा पहुंचाते हैं और रात्रि को भोजन कर संचित पुण्य को तत्काल नष्ट कर देते हैं ॥267॥ रात्रि में भोजन करना अधर्म है फिर भी इसे जिन लोगों ने धर्म मान रखा है, उनके हृदय पापकर्म से अत्यन्त कठोर हैं उनका समझना कठिन है ॥268॥ सूर्य के अदृश हो जानेपर जो लम्पटी-पापी मनुष्य भोजन करता है वह दुर्गति को नहीं समझता ॥269॥ जिस के नेत्र अन्धकार के पटल से आच्छादित हैं और बुद्धि पाप से लिप्त है ऐसे पापी प्राणी रात के समय मक्खी, कीड़े तथा बाल आदि हानिकारक पदार्थ खा जाते हैं ॥270॥ जो रात्रि में भोजन करता है वह डाकिनी, प्रेत, भूत आदि नीच प्राणियों के साथ भोजन करता है ॥271॥ जो रात्रि में भोजन करता है वह कुत्ते, चूहे, बिल्लो आदि मांसाहारी जीवों के साथ भोजन करता है ॥272॥ अथवा अधिक कहने से क्या ? संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि जो रात में भोजन करता है वह सब अपवित्र पदार्थ खाता है ॥273॥ सूर्य के अस्त हो जानेपर जो भोजन करते हैं उन्हें विद्वानों ने मनुष्यता से बंधे हुए पशु कहा है ॥274॥ जो जिनशासन से विमुख होकर रात-दिन चाहे जब खाता रहता है वह नियमरहित नष्य परलोक में सखी कैसे की हो सकता है ? ॥275॥ जो पापी मनुष्य दयारहित होकर जिनेन्द्र देव को निन्दा करता है वह अन्य शरीर में जाकर दुर्गन्धित मुखवाला होता है अर्थात् परभव में उसके मुख से दुर्गन्ध आती है ॥276॥ जो मनुष्य मांस, मद्य, रात्रिभोजन, चोरी और परखो का सेवन करता है वह अपने दोनों भवों को नष्ट करता है ॥277॥ जो मनुष्य रात्रि में भोजन करता है वह पर-भव में अल्पायु, निर्धन, रोगी और सुखरहित अर्थात् दुःखी होता है ॥278॥ रात्रि में भोजन करने से यह जीव दीर्घ काल तक निरन्तर जन्म-मरण प्राप्त करता रहता है और गर्भवास में दुःख से पकता रहता है ॥279॥ रात्रि में भोजन करनेवाला मिथ्यादृष्टि पुरुष शूकर, भेडिया, बिलाव, हंस तथा कौआ आदि योनियों में दीर्घ काल तक उत्पन्न होता रहता है ॥280॥ जो दुर्बुद्धि रात्रि में भोजन करता है वह हजारों उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक कुयोनियों में दुःख उठाता रहता है ॥281॥ जो जैन धर्म पाकर उसके नियमों में अटल रहता है वह समस्त पापों को जलाकर उत्तम स्थान को प्राप्त होता है ॥282॥ रत्नत्रय के धारक तथा अणुव्रतों का पालन करने में तत्पर भव्य जीव सूर्योदय होनेपर ही निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं ॥283॥ जो दयालु मनुष्य रात्रि में भोजन नहीं करते वे पापहीन मनुष्य स्वर्ग में विमानों के अधिपति होकर उत्कृष्ट भोग प्राप्त करते हैं ॥284॥ वहाँ से च्युत होकर तथा उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर चक्रवर्ती आदि के विभव से प्राप्त होनेवाले सख का उपभोग करते हैं ॥285॥ शभ चेष्टाओं के धारक पुरुष सौधर्मादि स्वर्गों में मन में विचार आते ही उपस्थित होनेवाले उत्कृष्ट भोगों तथा अणिमा-महिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त होते हैं ॥286॥ दिन में भोजन करने से मनुष्य जगत् का हित करनेवाले महामन्त्री, राजा, पीठमर्द तथा सर्व लोकप्रिय व्यक्ति होते हैं ॥287॥ धनवान्, गुणवान्, रूपवान्, दीर्घायुष्क, रत्नत्रय से युक्त तथा प्रधान पदपर आसीन व्यक्ति भी दिन में भोजन करने से ही होते हैं ॥288॥ जिनका तेज युद्ध में असह्य है, जो नगर आदि के अधिपति हैं, विचित्र वाहनों से सहित हैं तथा सामन्तगण जिनका सत्कार करते हैं ऐसे पुरुष भी दिन में भोजन करने से ही होते हैं ॥289॥ इतना ही नहीं, भवनेन्द्र, देवेन्द्र, चक्रवर्ती और महालक्षणों से सम्पन्न व्यक्ति भी दिन में भोजन करने से ही होते हैं ॥290॥ जो रात्रिभोजनत्यागवत में उद्यत रहते हैं वे सूर्य के समान प्रभावान्, चन्द्रमा के समान सौम्य और स्थायी भोगों से युक्त होते हैं ॥291॥ रात्रि में भोजन करने से स्त्रियाँ अनाथ, दुर्भाग्यशाली, मातापिता भाई से रहित तथा शोक और दारिद्रय से युक्त होती हैं ॥ 292॥ जिन की नाक चपटी है, जिनका देखना ग्लानि उत्पन्न करता है, जिनके नेत्र कीचड़ से युक्त हैं, जो अनेक दुष्टलक्षणों से सहित हैं, जिनके शरीर से दुर्गन्ध आती रहती है, जिनके ओठ फटे और मोटे हैं, कान खड़े हैं, शिर के बाल पीले तथा चट के हैं, दाँत तूंबड़ो के बीज के समान हैं और शरीर सफेद है, जो कानी, शिथिल तथा कान्तिहीन हैं, रूपरहित हैं, जिनका चमं कठोर है। जो अनेक रोगों से युक्त तथा

मलिन हैं, जिनके वस्त्र फटे हैं, जो गन्दा भोजन खाकर जीवित रहती हैं, और जिन्हें दूसरे की नौकरी करनी पड़ती है, ऐसी खियाँ रात्रि भोजन के ही पाप से होती हैं ॥293-296॥ रात्रिभोजन में तत्पर रहनेवाली स्त्रियाँ बूढ़े नकटे और धन तथा भाई-बन्धुओं से रहित पति को प्राप्त होती हैं ॥297॥ जो दुःख के भार से निरन्तर आक्रान्त रहती हैं, बाल अवस्था में ही विधवा हो जाती हैं, पानी, लकड़ी आदि ढो-डो कर पेट भरती हैं, अपना पेट बड़ी कठिनाई से भर पाती हैं, सब लोग जिनका तिरस्कार करते हैं, जिनका चित्त वचन रूपी वसूला से नष्ट होता रहता है और जिनके शरीर में सैकड़ों घाव लगे रहते हैं, ऐसी स्त्रियाँ रात्रि भोजन के कारण ही होती हैं ॥298-299॥ जो स्त्रियां शान्त चित्त, शील सहित, मुनिजनों का हित करनेवाली और रात्रि भोजन से विरत रहती हैं वे स्वर्ग में यथेच्छ भोग प्राप्त करती हैं। शिरपर हाथ रखकर आज्ञा की प्रतीक्षा करनेवाले परिवार के लोग उन्हें सदा घेरे रहते हैं ॥300-301॥ स्वर्ग से च्युत होकर वे वैभवशाली उच्च कुल में उत्पन्न होती हैं, शुभ लक्षणों से युक्त तथा समस्त गुणी से सहित होती हैं ॥302॥ अनेक कलाओं में निपुण रहती हैं, उनके शरीर नेत्र और मन में स्नेह उत्पन्न करनेवाले होते हैं, अपने वचनों से मानो वे अमृत छोड़ती हैं, समस्त लोगों को आनन्दित करती हैं ॥303॥ विद्याधरों के अधिपति, नारायण, बलदेव और चक्रवर्ती भी उन में उत्कण्ठित रहते हैं-उन्हें प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं ॥304॥ जिनके शरीर को कान्ति बिजली तथा लाल कमल के समान मनोहारी है, जिनके सुन्दर कुण्डल सदा हिलते रहते हैं, तथा राजाओं के साथ जिनके विवाह सम्बन्ध होते हैं ऐसी स्त्रियाँ दिन में भोजन करने से ही होती हैं ॥305॥ जो दयावती स्त्रियाँ रात्रि में भोजन नहीं करती हैं उन्हें सदा भृत्य जनों के द्वारा तैयार किया हुआ मनचाहा भोजन प्राप्त होता है ॥306॥ दिन में भोजन करने से स्त्रियां श्रीकान्ता, सुप्रभा, सुभद्रा और लक्ष्मी के समान कान्तियुक्त होती हैं ॥307॥ इसलिए नर हो चाहे नारी, दोनों को अपना चित्त नियम में स्थिरकर अनेक दुःखों से सहित जो रात्रि भोजन है उसका त्याग करना चाहिए ॥308॥ इस प्रकार थोड़े ही प्रयास से जब सुख मिलता है तो उस प्रयास का निरन्तर सेवन करो। ऐसा कोन है जो अपने लिए सुख की इच्छा न करता हो ॥309॥ 'धर्म सुखोत्पत्ति का कारण है और अधर्म दुःखोत्पत्तिका' ऐसा जानकर धर्म की सेवा करनी चाहिए और अधर्म का परित्याग ॥310॥ यह बात गोपालकों तक में प्रसिद्ध है कि धर्म से सुख होता है और अधर्म से दुःख ॥311॥ धर्म का माहात्म्य देखो कि जिस के प्रभाव से प्राणी स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं और वहां महाभोगों से यक्त तथा मनोहर शरीर के धारक होते हैं ॥312॥ वे जल तथा स्थल में उत्पन्न हुए रत्नों के आधार होते हैं और उदासीन होनेपर भी सदा सुखी रहते हैं ॥313॥ ऐसे मनुष्यों के स्वर्ण, वस्त्र तथा धान आदि के भाण्डारों की रक्षा हाथों में विविध प्रकार के शस्त्र धारण करनेवाले लोग किया करते हैं ॥314॥ उन्हें अत्यधिक गाय, भैंस आदि पशु, हाथी, घोड़े, रथ, पयादे, देश, ग्राम, महल, नौकरों के समूह, विशाल लक्ष्मी और सिंहासन प्राप्त होते हैं। साथ ही जो मन और इन्द्रियों के विषय उत्पन्न करने में समर्थ हैं, जिन की चाल हंसी के समान विलास पूर्ण है, जिनका शरीर अत्यधिक सौन्दर्य से युक्त है, जिन की आवाज मीठी है, जिनके स्तन स्थूल हैं, जो अनेक शुभ लक्षणों से युक्त हैं, जो नेत्रों को पराधीन करने के लिए जाल के समान हैं, तथा जिन की चेष्टाएँ मनोहर हैं ऐसी अनेक तरुण स्त्रियां और नाना अलंकार धारण करनेवाली दासियाँ पुण्य के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं ॥315-318॥ कित ने ही मूर्ख प्राणी ऐसे हैं कि जो सुख-समूह की प्राप्ति का कारण धर्म है उसे जानते ही नहीं हैं अतः वे उसके साधन के लिए प्रयत्न ही नहीं करते ॥319॥ और जिन की आत्मा पाप कर्म के वशीभूत है तथा जो पाप कर्मों में निरन्तर तत्पर रहते हैं ऐसे भी कित ने ही लोग हैं कि जो धर्म को सुख प्राप्ति का साधन सुनकर भी उसका सेवन नहीं करते ॥320॥ उत्तम कार्यों के बाधक पापकर्म के उपशान्त हो जानेपर कुछ ही जीव ऐसे होते हैं कि जो उत्सुक चित्त हो गुरुके समीप जाकर धर्म का स्वरूप पूछते हैं ॥321॥ तथा पाप कर्म के उपशान्त होने से यदि वे जीव उत्तम आचरण करने लगते हैं तो उन में सद्गुरुके वचन सार्थक हो जाते हैं ॥322॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य पाप का परित्याग कर इस नियम का पालन करते हैं वे स्वर्ग में महागुणों के धारक होते हुए प्रथम अथवा द्वितीय होते हैं ॥323॥ जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक मुनियों के भोजन करने का समय बिताकर बाद में भोजन करते हैं स्वर्ग में देव लोग सदा उन्हें सुखी देख ने की इच्छा करते हैं ॥324॥ उत्तम तेज को धारण करनेवाले वे पुरुष देवों के समूह के इन्द्र होते हैं अथवा मनचाहे भोग प्राप्त करनेवाले सामानिक पद को प्राप्त करते हैं ॥325॥ जिस प्रकार वट वृक्ष का छोटा-सा बीज आगे चलकर ऊंचा वृक्ष हो जाता है उसी प्रकार छोटा-सा तप भी आगे चलकर महाभोग रूपी फल को धारण करता है ॥326॥ जिसकी बुद्धि निरन्तर धर्म में आसक्त रहती है ऐसा मनुष्य अपने पूर्वाचरित धर्म के प्रभाव से कुबेरकान्त के समान नेत्रों को आकर्षित करनेवाले सुन्दर शरीर का धारक होता है ॥327॥ एक सहस्रभट नाम का पुरुष था। उसने मुनिवेलाव्रत धारण किया था अर्थात् मुनियों के भोजन करने का समय बीत जाने के बाद ही वह भोजन करता था। एक बार उसने मुनि के लिए आहार दिया। उसके प्रभाव से

उसके घर रत्नवृष्टि हुई और वह मरकर परभव में कुबेरकान्त सेठ हुआ ॥328॥ जो कि भूमण्डल में प्रसिद्ध, उत्कृष्ट पराक्रमी, महाधन से युक्त और सेवक समूह के मध्य में स्थित रहनेवाला था ॥329॥ पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उसका शरीर अत्यन्त सुन्दर था और वह उत्कृष्ट भोगों को भोगता हुआ समस्त शास्त्रों का अर्थ जान ने में निपुण था॥३३०॥ पूर्व धर्म के प्रभाव से ही उसने परम वैराग्य को प्राप्त हो जिनेन्द्र-प्रतिपादित दीक्षा को धारण किया था ॥331॥ जो मनुष्य अनगार महर्षियों के काल की प्रतीक्षा करते हैं वे हरिषेण चक्रवर्ती के समान उत्कृष्ट भोगों को प्राप्त होते हैं ॥332॥ हरिषेण ने मुनिवेला में मुनि के आगमन की प्रतीक्षा कर बहुत भारी पुण्य का संचय किया था इसलिए वह अत्यन्त उन्नत लक्ष्मी को प्राप्त हुआ था ॥333॥ शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाले जो मनुष्य ध्यान की भावना से प्रेरित हो मुनि के समीप जाकर एकभक्त करते हैं अर्थात् एक बार भोजन करने का नियम लेते हैं और एक भक्त से हो समय पूरा कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं वे रत्नों को कान्ति से जगमगाते हुए विमानो में उत्पन्न होते हैं ॥334-335॥ शुद्ध हृदय को धारण करनेवाले वे देव, निरन्तर प्रकाशित रहनेवाले उन विमानों अप्सराओं के बीच बैठकर चिरकाल तक क्रीडा करते हैं ॥336॥ जो उत्तम हार धारण किये हुए हैं, जिन की कलाइयों में उत्तम कड़े सुशोभित हैं, जो कमर में कटिसूत्र और शिरपर मुकुट धारण करते हैं, जिनके ऊपर छत्र फिरता है और पार्श्व में चमर ढोले जाते हैं ऐसे देव, एक भक्त व्रत के प्रभाव से होते हैं ॥337॥ जो महाव्रत धारण करने की भावना रखते हुए वर्तमान में अणुव्रत धारण करते हैं तथा शरीर को अनित्य समझकर जिनके हृदय अत्यन्त शान्त हो चु के हैं ऐसे जो मनुष्य हृदयपूर्वक अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास करते हैं वे स्वर्ग की दीर्घायु का बन्ध करते हैं ॥338-339॥ उन में से कोई तो सौधर्मादि स्वर्गों में जन्म लेते हैं, कोई अहमिन्द्र पद प्राप्त करते हैं और कोई विशुद्धता के कारण मोक्ष जाते हैं ॥340॥ जो निरन्तर विनय से युक्त रहते हैं, गुण और शीलवत से सहित होते हैं तथा जिनका चित्त सदा तप में लगा रहता है ऐसे मनुष्य निःसन्देह स्वर्ग जाते हैं वहाँ इच्छानुसार भोग भोगकर मनुष्य होते हैं, बड़े भारी राज्य का उपभोग करते हैं और जैनमत को प्राप्त होते हैं ॥341-342॥ जैनमत को पाकर क्रम-क्रम से मुनियों का चरित्र धारण करते हैं और उसके प्रभाव से सर्व कर्मरहित सिद्धों का निकेतन प्राप्त कर लेते हैं ॥343॥

जो प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल इन तीनों कालों में मन, वचन, काय से स्तुति कर जिन देव को नमस्कार करता है **अर्थ**ात् त्रिकाल वन्दना का नियम लेता है वह सुमेरुपर्वत के समान मिथ्यामत रूपी वायु से सदा अक्षोभ्य रहता है ॥344॥ जो गुणरूपी अलंकारों से सुशोभित है तथा जिसका शरीर शीलवत रूपी चन्दन से सुगन्धित है ऐसा वह पुरुष स्वर्ग में समस्त इन्द्रियों को हरनेवाले भोग भोगता है ॥345॥ तदनन्तर मनुष्य और देव इन दो शुभगतियों में कुछ आवागमन कर सर्वकर्मरहित हो परम धाम (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है ॥346॥ चूंकि पंचेन्द्रियों के विषय सब जीवों के द्वारा चिरकाल से अभ्यस्त हैं इसलिए इन से मोहित हुए प्राणी विरति (त्यागआखड़ी) करने के लिए समर्थ नहीं हो पाते हैं ॥347॥ यहाँ बड़ा आश्चर्य तो यही है कि फिर भी उत्तम पुरुष उन विषयों को विषमिश्रित अन्न के समान देखकर मोक्ष प्राप्ति के साधक कार्य का सेवन करते हैं ॥348॥ संसार में भ्रमण करनेवाले सम्यग्दष्टि जीव को यदि एक ही विरति (आखड़ी) प्राप्त हो जाती है तो वह मोक्ष का बीज हो जाती है ॥349॥ जिन प्राणियों के एक भी नियम नहीं है वे पशु हैं अथवा रस्सी से रहित (पक्ष में व्रतशील आदि गुणों से रहित) फूटे घड़े के समान हैं ॥350॥ गुण और व्रत से समृद्ध तथा नियमों का पालन करनेवाला प्राणी यदि वह संसार से पार होने की इच्छा रखता है तो उसे प्रमादरहित होना चाहिए ॥351॥ जो बुद्धि के दरिद्र मनुष्य दुष्कर्म-खोटे कार्य नहीं छोड़ते हैं वे जन्मान्ध मनुष्यों के समान चिरकाल तक संसाररूपी अटवी में भटकते रहते हैं ॥352॥ तदनन्तर वहाँ जो भी तिर्यंच, मनुष्य और देव विद्यमान थे वे उन अनन्तबल केवली रूपी चन्द्रमा के वचन रूपी किरणों के समागम से परम हर्ष को प्राप्त हुए ॥353॥ उन में से कोई तो सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए, कोई अणुव्रती हुए और कोई बलशाली महावतों के धारक हुए ॥354॥ अथानन्तर धर्मरथ नामक मुनि ने रावण से कहा कि हे भव्य ! अपनी शक्ति के अनुसार कोई नियम ले ॥355॥ ये मुनिराज धर्मरूपी रत्नों के द्वीप हैं सो इन से अधिक नहीं तो कम से कम एक ही नियम रूपी रत्न ग्रहण कर ॥356॥ इस प्रकार चिन्ता के वशीभूत होकर क्यों बैठा है ? निश्चय से त्याग महापुरुषों की बुद्धि के खेद का कारण नहीं है अर्थात् त्याग से महापुरुषों को खिन्नता नहीं होती प्रत्युत प्रसन्नता होती है ॥357॥ जिस प्रकार रत्नद्वीप में प्रविष्ट हुए पुरुष का चित्त 'यह लूं या यह लूं' इस तरह चंचल होकर घूमता है उसी प्रकार इस चारित्र रूपी द्वीप में प्रविष्ट हुए पुरुष का भी चित्त 'यह नियम लूं या यह नियम लूं' इस तरह परम आकुलता को प्राप्त हो घूमता रहता है ॥358॥ अथानन्तर जिसका चित्त सदा भोगों में अनुरक्त रहता था और इसी कारण जो व्याकुलता को प्राप्त हो रहा था ऐसे रावण के मन में यह भारी चिन्ता उत्पन्न हुई कि ॥359॥ मेरा भोजन तो स्वभाव से ही शुद्ध है, सुगन्धित है, स्वादिष्ट है, गरिष्ठ है और मांसादि के संसर्ग से रहित

है ॥360॥ स्थूल हिंसा त्याग आदि जो गृहस्थों के व्रत हैं उन में से मैं एक भी प्रत धारण करने में समर्थ नहीं हूँ फिर अन्य व्रतों की चर्चा ही क्या है ? ॥361॥ मेरा मन मदोन्मत्त हाथी के समान सर्व वस्तुओं में दौड़ता रहता है सो उसे मैं हाथ के समान अपनी भावना से रोक ने में समर्थ नहीं हूँ ॥362॥ जो निर्ग्रन्थ व्रत धारण करना चाहता है वह मानो अग्नि की शिखा को पीना चाहता है, वायु को वस्त्र में बाँधना चाहता है, और सुमेरु को उठाना चाहता है ॥363॥ बड़ा आश्चर्य है कि मैं शूर वीर होकर भी जिस तप एवं व्रत को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ उसी तप एवं व्रत को अन्य पुरुष धारण कर लेते हैं। यथार्थ में वे ही पुरुषोत्तम हैं ॥364॥ रावण सोचता है कि क्या मैं एक यह नियम ले लूं कि परस्त्री कितनी ही सुन्दर क्यों न हो यदि वह मुझे नहीं चाहेगी तो मैं उसे बलपूर्वक नहीं छेड़ें गा ॥365॥ अथवा मुझ क्षुद्र व्यक्ति में इतनी शक्ति कहाँ से आई ? मैं अपने ही चित्त का निश्चय वहन करने में समर्थ नहीं हूँ॥३६६॥ अथवा तीनों लोकों में ऐसी उत्तम स्त्री नहीं है जो मुझे देखकर काम से पीड़ित होती हुई विकलता को प्राप्त न हो जाय?॥३६७।। अथवा जो मनुष्य मान और संस्कार के पात्र स्वरूप मन को धारण करता है उसे अन्य मनुष्य के संसर्ग से दूषित स्त्री के उस शरीर में धैर्यसन्तोष हो ही कैसे की सकता है कि जो अन्य पुरुष के दाँतों द्वारा किये हुए घाव से युक्त ओठ को धारण है. स्वभाव से ही दर्गन्धित है और मल की राशि स्वरूप है॥३६८-३६९।।, ऐसा विचारकर रावण ने पहले तो अनन्तबल केवली को भाव पूर्वक नमस्कार किया। फिर देवों और असुरों के समक्ष स्पष्ट रूप से यह कहा कि ॥370॥ हे भगवन् ! 'जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसे ग्रहण नहीं करूँगा' मैं ने यह दृढ़ नियम लिया है ॥371॥ जो समस्त बातों को सुन रहा था तथा जिसका मन सुमेरुके समान स्थिर था ऐसे भानुकर्ण ( कुम्भकर्ण ) ने भी अरहन्त सिद्ध साधु और जिन धर्म इन चार की शरण में जाकर यह नियम लिया कि 'मैं प्रतिदिन प्रातः काल उठकर तथा स्तुति कर अभिषेकपूर्वक जिनेन्द्र देव को पूजा करूँगा। साथ ही जबतक मैं निर्ग्रन्थ साधओं की पूजा नहीं कर लँगा तबतक आज से लेकर आहार नहीं करूंगा'। भानुकर्ण ने यह प्रतिज्ञा बड़े हर्ष से की ॥372-374॥ इसके सिवाय उसने पृथिवीपर घुट ने टेक मुनिराज को आदरपूर्वक नमस्कार कर और भी बड़े-बड़े नियम लिये ॥375॥ तदनन्तर हर्ष से जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे भक्त और असुर मुनिराज को नमस्कार कर अपने-अपने स्थानोंपर चले गये ॥376॥ विशाल पराक्रम का धारी रावण भी आकाश में उड़कर इन्द्र की लीला धारण करता हुआ लंका को ओर चला ॥377॥ उत्तमोत्तम स्त्रियों के समूह ने प्रणामपूर्वक जिसकी पूजा की थी ऐसे रावण ने वस्त्रादि से सुसज्जित अपनी नगरी में प्रवेश किया ॥378॥ जिस प्रकार अनावृत देव मेरुपर्वत की गम्भीर गुहा में रहता है उसी प्रकार रावण भी समस्त वैभव से युक्त अपने निवासगृह में प्रवेश कर रहने लगा ॥379॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! जब भव्य जीवों के कर्म उपशम भाव को प्राप्त होते हैं तब वे सुगुरुके मुख से कल्याणकारी उत्तम उपदेश प्राप्त करते हैं ॥380॥ ऐसा जानकर हे प्रबुद्ध एवं उद्यमशील हृदय के धारक भव्य जनो! तुम लोग बार-बार जिनधर्म के सुन ने में तत्पर होओ क्योंकि जो उत्तम विनयपूर्वक धर्म श्रवण करते हैं उन्हें सूर्य के समान विपुल ज्ञान प्राप्त होता है ॥381॥ इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में अनन्तबल केवली के द्वारा धर्मोपदेश का निरूपण करनेवाला चौदहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥14॥

## अञ्जनासुन्दरी का विवाह

पन्द्रहवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर उन्हीं मुनिराज के पास हनुमान् और विभीषण ने भी अभिप्राय को सुदृढ़ कर गृहस्थों के व्रत ग्रहण किये ॥1॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि विद्वान् लोग सुमेरुपर्वत की स्थिरता की उस प्रकार प्रशंसा नहीं करते जिस प्रकार कि परमनिश्चलता को प्राप्त हए हनुमान के शील और सम्यग्दर्शन की करते हैं ॥2॥ इस प्रकार जब गौतमस्वामी ने सौभाग्य आदि के द्वारा हनुमान् की अत्यधिक प्रशंसा की तब उत्कट रोमांच को धारण करता हुआ श्रेणिक बोला कि ॥3॥ हे गणनाथ ! हनुमान् कौन ? इसकी क्या विशेषता है ? कहां किस से इसकी उत्पत्ति हुई है ? हे भगवन् ! मैं इसका चरित्र यथार्थ में जानना चाहता हूँ ॥4॥ तदनन्तर सत्पुरुष का नाम सुनने से जिन्हें अत्यधिक हर्ष उत्पन्न हो रहा था ऐसे गणधर भगवान् आह्लाद उत्पन्न करनेवाली वाणी में कहने लगे ॥5॥ हे राजन् ! विजया, पर्वत की दक्षिण श्रेणी में दश योजन का मार्ग लांघकर आदित्यपुर नामक एक मनोहर नगर है । वहाँ के राजा प्रह्लाद और उन की रानी का नाम केतुमती था ॥6-7॥ इन दोनों के पवनगति नाम का उत्तम पुत्र हुआ। पवनगति के विशाल वक्षःस्थल को लक्ष्मी ने अपना निवासस्थल बनाया था ॥8॥ उसे

पूर्णयौवन देख, सन्तान-विच्छेद का भय रखनेवाले पिता ने उसके विवाह की चिन्ता की ॥9॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! यह कथा तो अब रहने दो। दूसरी कथा हृदय में धारण करो जिससे कि पवनगति के विवाह की चर्चा सम्भव हो सके ॥10॥
इसी भरत क्षेत्र के अन्त में महासागर के निकट आग्नेय दिशा में एक दन्ती नाम का पवंत है ॥11॥ जो बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी चमकीले शिखरों से युक्त है, नाना प्रकार के वृक्ष और औषधियों से व्याप्त है तथा जिस के लम्बे-चौड़े किनारे उत्तमोत्तम झरनों से युक्त हैं ॥12॥ महेन्द्र के समान पराक्रम को धारण करनेवाला महेन्द्र विद्याधर उत्तम नगर बसाकर जबसे उस पर्वतपर रहने लगा था तभी से उस पर्वत का 'महेन्द्रगिरि' नाम पड़ गया था और उस नगर का महेन्द्रनगर नाम प्रसिद्ध हो गया था ॥13-14॥ राजा महेन्द्र को हृदयवेगा रानी में अरिदम आदि सौ गुणवान पुत्र उत्पन्न हए ॥15॥ उनके अंजनासुन्दरी नाम से प्रसिद्ध छोटी बहन उत्पन्न हई। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोक की सुन्दर स्त्रियों का रूप इकट्ठा कर उसके समूह से ही उसकी रचना हुई थी ॥16॥ उसकी प्रभा नील कमल के समान सुन्दर थी, हस्तरूप पल्लव अत्यन्त प्रशस्त थे, चरण कमल के भीतरी भाग के समान थे, स्तन हथी के गण्डस्थल के तुल्य थे ॥17॥ उसकी कमर पतली थी, नितम्ब स्थूल थे, जंघाएँ उत्तम घुटनों से युक्त थीं, उसके शरीर में अनेक शुभ लक्षण थे, उसकी दोनों भुजलताएं प्रफुल्ल मालती को माला के समान कोमल थीं ॥18॥ कानों तक लम्बे एवं कान्तिरूपी मूठ से युक्त उसके दोनों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे मानो कामदेव के सुदूरगामी बाण ही हों ॥19॥ वह गन्धवं आदि कलाओं को जाननेवाली थी इसलिए साक्षात् सरस्वती के समान जान पड़ती थी और रूप से लक्ष्मी के तुल्य लगती थी॥२०॥ इस प्रकार अनेक गुणों से सहित वह कन्या किसी समय गोलाकार भ्रमण करती हुई गेंद खेल रही थी कि पिता की उसपर दृष्टि पड़ी। पिता ने देखा कि कन्या का शरीर नव-यौवन से सुशोभित हो रहा है। उसे देख जिस प्रकार उत्तम गुणों में चित्त लगानेवाले राजा अकम्पन को अपनी पुत्री सुलोचना के योग्य वर ढूँढने की चिन्ता हुई थी और उससे वह अत्यन्त दुःखी हुआ था उसी प्रकार राजा महेन्द्र को भी पुत्री के योग्य वर ढूँढने की चिन्ता हुई सो ठीक ही है क्योंकि स्वाभिमानी मनुष्यों को कन्या का दुःख अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न करनेवाला होता है ॥21-23॥ कन्या के पिता को सदा यह चिन्ता लगी रहती है कि कन्या उत्तम पति को प्राप्त होगी या नहीं, यह उसे चिरकाल तक रमण करा सकेगी या नहीं और निर्दोष रह सकेगी या नहीं। यथार्थ में पुत्री मनुष्य के लिए बड़ी चिन्ता है ॥24॥ अथानन्तर राजा महेन्द्र ज्ञानरूपी अलंकार से अलंकृत समस्त मित्रजनों को बुलाकर वर का निश्चय करने के लिए एकान्त घर में गये ॥25॥ वहां उन्हों ने मन्त्रियों से कहा कि अहो मन्त्रिजनो! आप लोग सब कुछ जानते हैं तथा विद्वान् हैं अतः मेरी कन्या के योग्य उत्तम वर बतलाइए ॥26॥ तब एक मन्त्री ने कहा कि यह कन्या भरत क्षेत्र के स्वामी राक्षसों के अधिपति रावण के लिए दी जानी चाहिए ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥27॥ समस्त विद्याधरों के स्वामी रावण जैसे स्वजन को पाकर आप का प्रभाव समुद्रान्त पृथिवी में फैल जायेगा ॥28॥ अथवा हे राजन् ! रावण के पुत्र इन्द्रजित् और मेघनाद तरुण हैं सो इन्हें यह कन्या दीजिए क्योंकि उन्हें देनेपर भी रावण स्वजन होगा ॥29॥ अथवा यह बात भी आप को इष्ट नहीं है तो फिर कन्या को स्वयं पति चुन ने के लिए छोड़ दीजिए **अर्थ**ात् इसका स्वयंवर कीजिए। ऐसा करने से आप का कोई वैरी नहीं बन सकेगा ॥30॥ इतना कहकर जब अमरसागर मन्त्री चुप हो गया तब सुमति नाम का दूसरा विद्वान् मन्त्री स्पष्ट वचन बोला ॥31॥ उसने कहा कि रावण के अनेक पत्नियां हैं, साथ ही वह महाअहंकारी है इसलिए इसे पाकर भी उसकी हम लोगों में प्रीति उत्पन्न नहीं होगी ॥32॥ यद्यपि इस परम प्रतापी भोगी रावण का आकार सोलह वर्ष के पुरुष के समान है तो भी उसकी आयु अधिक तो है ही ॥33॥ अतः इसके लिए कन्या देना में उचित नहीं समझता / दूसरा पक्ष इन्द्रजित् और मेघनाद का रखा सो यदि मेघनाद के लिए कन्या दी जाती है तो इन्द्रजित् कुपित होता है और इन्द्रजित के लिए देते हैं जो मेघनाद कुपित होता है इसलिए ये दोनों वर भी ठीक नहीं हैं ॥34॥ पहले राजा श्रीषेण के पुत्रों में एक गणि का के निमित्त पिता को दुःखी करनेवाला बड़ा युद्ध हुआ था यह सुनने में आता है सो ठीक ही है क्योंकि स्त्री का निमित्त पाकर क्या नहीं होता है. ? ॥35॥ तदनन्तर जिसका हृदय सदभिप्राय से युक्त था ऐसा ताराधरायण नाम का मन्त्री, पूर्व मन्त्री के वचनों की अनुमोदना कर इस प्रकार के वचन बोला ॥36॥ उसने कहा कि विजयधिपर्वत की दक्षिण श्रेणी में एक कनकपुर नाम का नगर है। वहाँ राजा हिरण्याभ रहते हैं उन की रानी का नाम सुमना है ॥37॥ उन दोनों के विद्युत्प्रभ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ है जो बहुत भारी यश, कान्ति और अवस्था से अत्यन्त सुन्दर है ॥38॥ वह समस्त विद्याओं और कलाओं का पारगामी है, लोगों के नेत्रों का मानो महोत्सव ही है, गुणों से अनुपम है, और अपनी चेष्टाओं से उसने समस्त लोक को अनुरंजित कर रखा है ॥39॥ समस्त देव-विद्याधर एक होकर भी उसे प्रयत्नपूर्वक नहीं जीत सकते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मानो वह तीनों लोकों की शक्ति इकट्ठी कर ही बनाया गया है ॥40॥ यदि आपकी सम्मति हो तो यह कन्या उसे दी जावे जिससे योग्य दम्पतियों का

चिरकाल के लिए संयोग उत्पन्न हो सके ॥41॥ तदनन्तर सन्देहपारग नाम का मन्त्री सिर हिलाकर तथा चिरकाल तक नेत्र बन्द कर निम्नांकित वचन बोला ॥42॥ उसने कहा कि यह निकट भव्य है तथा निरन्तर ऐसा विचार करता रहता है कि मेरे पूर्वज कहाँ गये ? सो इस से जान पड़ता है कि यह संसार का स्वभाव जानकर परम वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा ॥43॥ जिसकी आत्मा विषयों में अनासक्त रहती है ऐसा यह कुमार अठारह वर्ष को अवस्था में भोगरूपी महाआलान का भंग कर गृहस्थ अवस्था छोड़ देगा ॥44॥ वह महामना बहिरंग और अन्तरंग परिग्रह का त्याग कर तथा केवलज्ञान उत्पन्न कर निर्वाण को प्राप्त होगा ॥45॥ सो जिस प्रकार जगत् को प्रकाशित करनेवाले चन्द्रमा से रहित होनेपर रात्रि शोभाहीन हो जाती है उसी प्रकार इस से वियुक्त होनेपर यह बाला शोभाहीन हो जावेगी ॥46॥ इसलिए मेरी बात सुनो, इन्द्र के नगर के समान सुन्दर तथा रत्नों से सूर्य के समान देदीप्यमान एक आदित्यपुर नाम का नगर है इसमें प्रह्लाद नाम का राजा रहता है जो भोगों से युक्त है तथा विद्याधरों के बीच चन्द्रमा के समान जान पड़ता है। प्रह्लाद की रानी केतुमती है जो कि सौन्दर्य के कारण कामदेव की पता का के समान सुशोभित है ॥47-48॥ उन दोनों के एक पवनंजय नाम का पुत्र है जो अत्यन्त पराक्रमी, रूपवान्, गुणों का सागर तथा नयरूपी आभूषणों से विभूषित है ॥४९॥ उसका अतिशय ऊँचा शरीर अनेक शुभ लक्षणों से व्याप्त है, वह कलाओं का घर, शूरवीर तथा खोटी चेष्टाओं से दूर रहनेवाला है ॥50॥ वह सब लोगों के चित्त में बसा हुआ है तथा सौ वर्ष में भी उसके समस्त गुणों का समूह कहा नहीं जा सकता है ॥51॥ अथवा वचनों के द्वारा जो किसी का ज्ञान कराया जाता है वह अस्पष्ट ही रहता है इसलिए देवतुल्य कान्ति को धारण करनेवाले इस युवा को स्वयं जाकर ही देख लीजिए ॥52॥ तदनन्तर कर्ण मार्ग को प्राप्त हुए पवनंजय के उत्कृष्ट गुणों से सब लोग परम हर्ष को प्राप्त हो आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥53॥ तथा कन्या भी उस वार्ता को सुनकर हर्ष से इस तरह खिल उठो जिस तरह कि चन्द्रमा की किरणों को देख ने मात्र से कुमुदिनी खिल उठती है ॥54॥ अथानन्तर इसी बीच में वसन्त ऋतु आयी और स्त्रियों के मुख कमल की सुन्दरता के अपहरण में उद्यत शीतकाल समाप्त हुआ ॥55॥ कमलिनी प्रफुल्लित हुई और नये कमलों के समूह चिरकाल से उत्कण्ठित भ्रमर-समूह के साथ समागम करने लगे अर्थात् उनपर भ्रमरों के समूह गूंज ने लगे ॥56॥ वृक्षों के पत्र, पुष्प, अंकुर आदि घनी मात्रा में उत्पन्न हुऐ जो ऐसे जान पड़ते थे मानो वसन्त लक्ष्मी के आलिंगन से उन में रोमांच ही उत्पन्न हुए हों ॥57॥ जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ऐसे आम के मौरों के समूह कामदेव के बाणों के पटल के समान लोगों का मन बेध ने लगे ॥58॥ मानवती स्त्रियों के मान को भंग करनेवाला कोकिलाओं का मधुर शब्द लोगों को व्याकुलता उत्पन्न करने लगा। वह कोकिलाओं का शब्द ऐसा जान पड़ता था मानो उसके बहाने वसन्त ऋतु ही वार्तालाप कर रही हो ॥59॥ स्त्रियों के जो ओठ पति के दाँतों से डॅसे जाने के कारण पहले वेदना से युक्त रहते थे अब चिरकाल बाद उन में विशदता उत्पन्न हुई ॥60॥ जगत् के जीवों में परस्पर बहुत भारी स्नेह प्रकट होने लगा। उनका यह स्नेह उपकारपरक चेष्टाओं से स्पष्ट ही प्रकट हो रहा था ॥61॥ चारों ओर भ्रमण करता हुआ भ्रमर अपने पंखों की वायु से, थकी हुई भ्रमरी को श्रमरहित करने लगा ॥62॥ उस समय हरिण दूर्वा के प्रवाल उखाड़-उखाड़कर हरिणी के लिए दे रहा था और उससे हरिणी को ऐसा प्रेम उत्पन्न हो रहा था मानो अमत ही उसे मिल रहा हो ॥63॥ हाथी हथिनी के लिए खुजला रहा था। इस कार्य में उसके मुख का पल्लव छूटकर नीचे गिर गया था और हथिनी के नेत्र सुख के भार से निमीलित हो गये थे ॥64॥ जो गुच्छेरूपी स्तनों से झुक रही थीं, जिनके पल्लवरूपी हाथ हिल रहे थे और ऊपर बैठे हुए भ्रमर ही जिनके नेत्र थे ऐसी लतारूपी स्त्रियाँ वृक्षरूप पुरुषों का आलिंगन कर रही थीं ॥65॥ दक्षिण दिशा के मुख से प्रकट हुआ मलयसमीर बहने लगा और सूर्य उत्तरायण हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो इस मलयसमीर से प्रेरित होकर ही सूर्य उत्तरायण हो गया था ॥66॥ वायु से हिलते हुए मौलश्री के फूलों का समूह नीचे गिर रहा था जिसे पथिक लोग ऐसा समझ रहे थे मानो वसन्तरूपी सिंह को जटाओं का समूह ही हो ॥67॥ विरहिणी स्त्रियों को भय उत्पन्न करनेवाली अंकोल वृक्ष के पुष्पों की केशर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो वसन्तरूपी सिंह को दंष्ट्रा अर्थात् जबड़े ही हों अथवा मानरूपी हाथी का अंकुश ही हो ॥68॥ जिसपर भ्रमर गूंज रहे थे ऐसा कुमुदों का सघन जाल ऐसा जान पड़ता था मानो वियोगिनी स्त्रियों के मन को खींच ने के लिए वसन्त ने जाल ही छोड रखा था ॥69॥ जिस के नये-नये पत्ते हिल रहे थे ऐसा बोंडियों से सुशोभित अशोक का वृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अधिकता के कारण स्त्रियों के द्वारा उगला हुआ राग का समूह ही हो ॥70॥ वनश्रेणियों में पलाश के सघन वृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो विरहिणी स्त्रियों के मन में ठहर ने से बा की बचे हुए दुःखरूपो अग्नि के समूह हो हों ॥71॥ समस्त दिशाओं को व्याप्त करनेवाला फूलों का पराग सब ओर फैल रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो बसन्त सुगन्धित चूर्ण के द्वारा महोत्सव हो मना रहा था ॥72॥ जब प्रेमरूपी बन्धन से बँधे स्त्री-पुरुष पल-भर के लिए भी एक दूसरे का अदर्शन नहीं सहन कर

पाते थे तब अन्य देश में गमन किस प्रकार सहन करते ? ॥73॥ फाल्गुन मास के अन्तिम आठ दिन में आष्टाह्निक महोत्सव आया सो जिनभक्ति से प्रेरित तथा महाहर्ष से भरे देव नन्दीश्वर द्वीप को जाने लगे ॥74॥ उसी समय पूजा के उपकरणों से व्यग्र हाथोंवाले सेवकों से सहित विद्याधर राजा कैलास पर्वतपर गये ॥75॥ वह पर्वत भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष जाने से अत्यन्त पूजनीय था इसलिए भक्ति से भरा राजा महेन्द्र भी बन्धुवर्ग के साथ वहाँ गया था ॥76॥ श्रीमान वह राजा महेन्द्र वहाँपर जिन भगवान की भावपूर्वक अचंना, स्तुति एवं नमस्कार कर के स्वर्णमय शिलातलपर सखपूर्वक बैठ गया ॥77॥ उसी समय राजा प्रह्लाद भी जिनेन्द्र देव की वन्दना करने के लिए केलास पर्वतपर गया था सो पूजा के अनन्तर भ्रमण करता हुआ राजा महेन्द्र को दिखाई दिया ॥78॥ तदनन्तर जिस के नेत्र विकसित हो रहे थे और मन प्रीति से भर रहा था ऐसा प्रह्लाद पुत्र को प्रीति से बड़े आदर के साथ राजा महेन्द्र के पास गया ॥79॥ सो हर्ष से भरे महेन्द्र ने भी सहसा उठकर उसकी अगवानी की और आनन्द के कारण आलिंगन करते हुए प्रह्लाद का आलिंगन किया ॥80॥ तदनन्तर दोनों ही राजा निश्चित होकर मनोहर शिलातलपर बैठे और परस्पर शरीरादि की कुशलता पूछ ने लगे ॥81॥ अथानन्तर राजा महेन्द्र ने कहा कि हे मित्र! मेरा मन तो निरन्तर कन्या के अनुरूप सम्बन्ध ढूँढने की चिन्ता से व्याकुल रहता है अतः कुशलता कैसे की हो सकती है ? ॥82॥ मेरी एक कन्या है जो वर प्राप्त करने योग्य अवस्था में है, किसके लिए उसे दूँ इसी चिन्ता में मन घूमता रहता है ॥83॥ रावण बहुपत्नीक है अर्थात् अनेक पत्नियों का स्वामी है और इसके पुत्र इन्द्रजित् तथा मेघनाद किसी एक के लिएदेने से शेष रोष को प्राप्त होते हैं अतः उन तीनों में मेरी रुचि नहीं है ॥84॥ हेमपुर नगर में राजा कनकद्युति के विद्युत्प्रभ नाम का पुत्र है सो वह थोड़े ही दिनों में निर्वाण प्राप्त करेगा ॥85॥ यह बात किसी सम्यग्ज्ञानी मुनि ने कही है सो समस्त लोक में प्रसिद्ध है और परम्परावश मुझे भी विदित हुई है ॥86॥ अतः मन्त्रिमण्डल के साथ बैठकर मैंने निश्चय किया है कि आपके पुत्र पवनंजय को ही कन्या का वर चुनना चाहिए ॥87॥ सो हे प्रह्लाद ! यहाँ पधारकर तुमने मेरे इस मनोरथ को पूर्ण किया है। मैं तुम्हें देखकर क्षण-भर में ही सन्तुष्ट हो गया हूँ ॥8॥ तदनन्तर जिसे अभिलषित वस्तु की प्राप्ति हो रही है ऐसे प्रह्लाद ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि पुत्र के अनुरूप वधू ढूंढ़ ने की मुझे भी चिन्ता है ॥89॥ सो हे मित्र! आपके इस वचन से मैं जो शब्दों से न कही जाये ऐसी निश्चिन्तता को प्राप्त हुआ हूँ ॥90॥ अथानन्तर अंजना और पवनंजय के पिता ने वहीं मानुषोत्तर पर्वत के अत्यन्त सुन्दर तटपर उनका विवाह-मंगल करने की इच्छा की ॥11॥ इसलिए क्षण-भर में ही जिनके डेरे-तम्बू तैयार हो गये थे तथा जो हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों के अनुकूल शब्दों से व्याप्त था ऐसी उन दोनों की सेनाएं वहीं ठहर गयीं ॥92॥ समस्त ज्योतिषियों की गतिविधि को जाननेवाले ज्योतिषियों ने तीन दिन बीत ने के बाद विवाह के योग्य दिन बतलाया था ॥96॥ पवनंजय ने परिजनों के मुख से सुन रखा था कि अंजनासुन्दरी सर्वांगसुन्दरी है इसलिए उसे देख ने के लिए वह तीन दिन का व्यवधान सहन नहीं कर सका ॥94॥ निरन्तर समागम की उत्कण्ठा रखनेवाला यह पवनंजय काम के दस वेगों से इस प्रकार पूर्ण हो गया जिस प्रकार कि युद्ध में कोई योद्धा शत्रुके बाणों से पूर्ण हो जाता है-भर जाता है ॥९५॥ प्रथम वेग में उसे अंजनाविषयक चिन्ता होने लगी अर्थात् मन में अंजना की इच्छा उत्पन्न हुई। दूसरे वेग के समय बाह्य में उसकी आकृति देख ने की इच्छा हुई ॥96॥ तीसरे वेग में मन्द-लम्बी और गरम सांसें निकल ने लगीं। चौथे वेग में ऐसा ज्वर उत्पन्न हो गया कि जिसमें चन्दन अग्नि के समान सन्तापकारी जान पड़ने लगा ॥97॥ पंचम वेग में उसका शरीर फूलों की शय्यापर करवटें बदल ने लगा। छठे वेग में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन को वह विष के समान मान ने लगा ॥ 98॥ सातवें वेग में उसी की चर्चा में आसक्त रहकर विप्रलाप-बकवाद करने लगा। आठवें वेग में उन्मत्तता प्रकट हो गयी जिससे कभी गा ने लगता और कभी नाच ने लगता था ॥99॥ कामरूपी सर्प के द्वारा ड से हुए उस पवनंजय को नौवें वेग में मूर्छा आने लगी और दसवें वेग में जिसका स्वयं ही अनुभव होता था ऐसा दुःख का भार प्राप्त होने लगा ॥100॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि वह पवनंजय विवेक से युक्त था तो भी उस समय उसका चरित्र स्वच्छन्द हो गया था सो ऐसे दुष्ट काम के लिए धिक्कार हो ॥101॥ अथानन्तर काम के उपर्युक्त वेगों के कारण पवनंजय का धैर्य छूट गया। उसका मुख निरन्तर निकलनेवाले श्वासोच्छ्वासों से चंचल हो गया और वह उसे अपनी हथेलियों से ढंक ने लगा॥१०२॥ वह स्वेद से भरे अपने कपोलमण्डल को सदा हथेलीपर रखे रहता था जिससे उस में लालिमा उत्पन्न हो गयी थी। वह शीतलता प्राप्त करने के उद्देश्य से पल्लवों के आसनपर बैठता था तथा उसे गरमगरम लम्बी श्वासों से म्लान करता रहता था ॥103॥ बाणों के गहरे प्रहार से असहनीय काम को धारण करनेवाला वह पवनंजय बार-बार जमुहाई लेता था, बार-बार सिहर उठता था और बार-बार अंगड़ाई लेता था ॥104॥ निरन्तर स्त्री का ध्यान रख ने से उसकी इन्द्रियों का समूह व्यर्थ हो गया था अर्थात् उसकी कोई भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं करती थी और अच्छे-से-अच्छे स्थानों में भी उसे धैर्य प्राप्त नहीं होता था-वह सदा अधीर ही बना

रहता था ॥105॥ उसने शून्य हृदय होकर सब काम छोड़ दिये थे। क्षण भर के लिए वह लज्जा को धारण करता भी था तो पुनः उसे छोड़ देता था ॥106॥ जिस के समस्त अंग दुर्बल हो गये थे और जिसने सब आभूषण उतारकर अलग कर दिये थे ऐसा पवनंजय निरन्तर स्त्री का ही ध्यान करता रहता था। परिवार के लोग बड़ी चिन्ता से उसकी इस दशा को देखते थे ॥107॥ वह सोचा करता था कि मैं उस कान्ता को अपनी गोद में बैठी कब देखूगा और उसके कमलतुल्य शरीर का स्पर्श करता हुआ उसके साथ कब वार्तालाप करूंगा ॥108॥ उसकी चर्चा सुनकर तो हमारी यह अत्यन्त दुःख देनेवाली अवस्था हो गयी है फिर साक्षात् देखकर तो न जाने क्या होगा? उसे देखकर तो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा ॥109॥ अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वह मेरी सखी मनोहर होकर भी मेरे लिए दुःख का कारण बन रही है ॥110॥ अरी भली आदमिन? तू तो बड़ी पण्डिता है फिर जिस हृदय में निवास कर रही है उसे हो दुःखरूपी अग्नि से जला ने के लिए तैयार क्यों बैठी है ॥111॥ स्त्रियाँ स्वभाव से ही कोमलचित्त होती हैं पर मेरे लिए दुःखदेने के कारण तुम्हारे विषय में यह बात विपरीत मालूम होती है ॥112॥ हे अनंग ! जब तुम शरीररहित होकर भी इतनी पीड़ा उत्पन्न कर सकते हो तब फिर यदि शरीरसहित होते तो बड़ा ही कष्ट होता ॥113॥ मेरे शरीर में यद्यपि घाव नहीं है तो भी पीड़ा अत्यधिक हो रही है और यद्यपि एक स्थानपर बैठा हूँ तो भी निरन्तर कहीं घूमता रहता हूँ ॥114॥ यदि मैं उसे नेत्रों का विषय नहीं बनाता हूँ-उसे देखता नहीं हूँ तो मेरे ये तीन दिन कुशलतापूर्वक नहीं बीत सकेंगे ॥115॥ इसलिए उसके दर्शन का उपाय क्या हो सकता है जिसे प्राप्त कर चित्त शान्ति प्राप्त करेगा ॥116॥ अथवा इस संसार में करने योग्य समस्त कार्यों में परममित्र को छोड़कर और दूसरा कारण नहीं दिखाई देता ॥117॥ ऐसा विचारकर पवनंजय ने पास ही बैठे हुए प्रहसित नामक मित्र से धीमी एवं गद्गद वाणी में कहा। वह मित्र छाया के समान सदा पवनंजय के साथ रहता था। विक्रिया से उत्पन्न हुए उन्हीं के दूसरे शरीर के समान जान पड़ता था और सर्व विश्वास का पात्र था ॥118-119॥ उसने कहा कि मित्र ! तुम मेरा अभिप्राय जानते ही हो अतः तुम से क्या कहा जाये ? मेरी मुखरता केवल तुम्हें दुःखी ही करेगी ॥120॥ हे सखे ! तीनों लोकों की समस्त चेष्टाओं को जाननेवाले एक आप को छोड़कर दूसरा ऐसा कौन उदारचेता है जिस के लिए यह दुःख बताया जाये ? ॥121॥ जिस प्रकार गृहस्थ राजा के लिए, विद्यार्थी गुरुके लिए, स्त्री पति के लिए, रोगी वैद्य के लिए और बालक माता के लिए प्रकटकर बड़े भारी दुःख से छूट जाता है उसी प्रकार मनुष्य मित्र के लिए प्रकटकर दुःख से छूट जाता है इसी कारण मैं आप से कुछ कह रहा हूँ ॥122-123॥ जबसे मैंने अनवद्य सुन्दरी राजा महेन्द्र की पुत्री की चर्चा सुनी हैं तभी से मैं काम के बाणों से अत्यधिक विकलता प्राप्त कर रहा हूँ ॥124॥ मन को हरनेवाली उस सुन्दरी प्रिया को देखे बिना मैं तीन दिन बिता ने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥125॥ इसलिए ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे मैं उसे देख सकूँ। क्योंकि उसके देख ने से मैं स्वस्थ हो सकूँगा और मेरे स्वस्थ रहने से आप भी स्वस्थ रह सकेंगे ॥126॥ निश्चय से सब प्राणियों के लिए अन्य समस्त वस्तुओं की अपेक्षा अपना जीवन ही इष्ट होता है क्योंकि उसके रहते हुए ही अन्य कार्यों का होना सम्भव है ॥127॥ तदनन्तर मित्र के मन को मानो कृतकृत्य करता हुआ प्रहसित हंसकर शीघ्र ही बोला ॥128॥ कि हे मित्र ! करने योग्य कार्य का उल्लंघन करनेवाले बहत कहने से क्या मतलब है कहो, मैं क्या करूँ ? यथार्थ में हम दोनों में पृथक्पनी नहीं हैं ॥129॥ उत्तम चित्त के धारक उन मित्रों के बीच जबतक यह वार्तालाप चलता है तबतक सूर्य अस्त हो गया सो मानो उनका उपकार करने के लिए ही अस्त हो गया था ॥130॥ जो पवनंजय के राग के समान लाल-लाल था, अन्धकार के प्रसार को चाहता था और प्रिय करनेवाला था ऐसे सन्ध्या के आलोक से प्रेरित होकर ही मानो सूर्य अस्त हुआ था ॥131॥ कान्ता से रहित पवनंजय का दुःख देखकर ही मानो जिसे करुणा उत्पन्न हो गयी थी ऐसी सन्ध्या अपना पति जो सूर्य सो उसके पीछे चल ने लगी थी-उसके अनुकूल हो गयी थी॥१३२॥ तदनन्तर पूर्व दिशा अत्यधिक अन्धकार से कृष्णता को प्राप्त हो गयी सो मानो सूर्यरूप पति के वियोग से ही मलिन अवस्था को प्राप्त हुई थी ॥133॥ क्षण-भर में लोक ऐसा दिखने लगा मानो नील वस्त्र से ही आच्छादित हो गया हो अथवा नीलांजन की सघन पराग ही सब ओर उड़-उड़कर गिरने लगी हो ॥134॥

तदनन्तर जब प्रकृत कार्य के योग्य समय आ गया तब उत्साह से भरे पवनंजय ने मित्र से इस प्रकार कहा ॥135॥ हे मित्र! उठो, मार्ग दिखलाओ, हम दोनों वहाँ चलें जहां कि वह हृदय को हरनेवाली विद्यमान है॥१३६॥ इतना कहनेपर दोनों मित्र वहाँ के लिए चल पडे। उनके मन उनके जाने के पूर्व ही प्रस्थान कर चु के थे और वे महानील मणि के समान नील आकाशतलरूपी समुद्र में मछलियों की तरह जा रहे थे ॥137॥ दोनों मित्र क्षण-भर में ही अंजनासुन्दरी के घर जा पहुंचे। उसका वह घर अंजनासुन्दरी के सन्निधान से ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि रत्नों के समूह से सुमेरु पर्वत सुशोभित होता है ॥138॥ उस भवन के सातवें खण्ड में चढ़कर दोनों मित्र मोतियों की

जाली से छिपकर झरोखे में बैठ गये और वहीं से अंजनासुन्दरी को देख ने लगे ॥139॥ वह अंजनासुन्दरी अपने मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से भवन के भीतर जलनेवाले दीपकों को निष्फल कर रही थी तथा उसके सफेद, काले और लाल-लाल नेत्रों की कान्ति से दिशाएं रंग-बिरंगी हो रही थीं ॥140॥ वह स्थूल, उन्नत एवं सुन्दर स्तनों को धारण कर रही थी उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो पति के स्वागत के लिए श्रृंगार रस से भरे हए दो कलश ही धारण कर रही थी ॥141॥ नवीन पल्लवों के समान लाल-लाल कान्ति को धारण करनेवाले तथा अनेक शुभ लक्षणों से परिपूर्ण उसके हाथ और पैर ऐसे जान पड़ते थे मानो नखरूपी किरणों से सौन्दर्य को ही उगल रहे हों॥१४२॥ उसकी कमर पतली तो थी ही ऊपर से उसपर स्तनों का भारी बोझ पड़ रहा है इसलिए वह कहीं टूट न जाये इस भय से ही मानो उसे त्रिवलिरूपी रस्सियों से उसने कसकर बाँध रखा था ॥143॥ वह अंजना जिन गोल-गोल जाँघों को धारण कर रही थी वे कामदेव के तरकस के समान, अथवा मद और काम के बांधने के स्तम्भ के समान अथवा सौन्दर्यरूपी जल को बहानेवाली नदियों के समान जान पड़ती थीं ॥144॥ उसकी कान्ति इन्दीवर **अर्थ**ात् नील कमलों के समूह के समान थी, वह मुक्ताफल-रूपी नक्षत्रों से सहित थी तथा पतिरूपी चन्द्रमा उसके पास ही विद्यमान था इसलिए वह मूर्तिधारिणी रात्रि के समान जान पड़ती थी॥१४५। इस प्रकार जिस के देख ने से तृप्ति ही नहीं होती थी ऐसी अंजना को पवनंजय एकटक नेत्रों से देखता हुआ परम सुख को प्राप्त हुआ ॥146॥

इसी बीच में उसकी वसन्ततिलका नाम की अत्यन्त प्यारी सखी ने अंजना सुन्दरी से यह वचन कहे कि हे सुन्दरी ! राजकुमारी ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो जो पिता ने तुझे महाप्रतापी पवनंजय के लिए समर्पित किया है ॥147-148॥ चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं अन्य मनुष्यों के गुणों की ख्याति को तिरस्कृत करनेवाले उसके गुणों से यह समस्त संसार व्याप्त हो रहा है ॥149॥ बड़ी प्रसन्नता की बात है कि तुम समुद्र की बेला के समान महारत्नों की कान्ति के समूह से प्रभासित हो, मनोहर शब्द करती हुई उसकी गोद में बैठोगी ॥150॥ तुम्हारा उसके साथ सम्बन्ध होनेवाला है सो मानो रत्नाचल के तटपर रत्नों की धारा ही बरसनेवाली है। यथार्थ में स्त्रियों के प्रशंसनीय सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला सन्तोष ही सब से बड़ा सन्तोष होता है ॥151॥ इस प्रकार जब सखी वसन्तमाला पवनंजय के गुणों का वर्णन कर रही थी तब अंजना मन ही मन प्रसन्न हो रही थी और लज्जा के कारण मुख नीचा कर अंगुली से पैर का नख कुरेद रही थी ॥152॥ और खिले हुए नेत्रकमलों से जिसका मुख व्याप्त था ऐसे पवनंजय को आनन्दरूपी जल का प्रवाह बहुत दूर तक बहा ले गया था ॥153॥ अथानन्तर मिश्रकेशी नामक दूसरी सखी ने निम्नांकित वचन कहे । कहते समय वह अपने लाल-लाल ओठों को भीतर की ओर संकुचित कर रही थी तथा सिर हिलाने के कारण उसकी चोटी में लगा पल्लव नीचे गिर गया था ॥154॥ उसने कहा कि चूंकि तू विद्युत्प्रभ को छोड़कर पवनंजय के गुण ग्रहण कर रही है इस से तूने अपना बड़ा अज्ञान प्रकट किया है ॥155॥ मैंने राजमहलों में विद्युत्प्रभ की चर्चा कई बार सुनी है कि उसके लिए यह कन्या दी जाये अथवा नहीं दी जाये ॥156॥ जो समुद्र के जल की बूंदों की संख्या जानता है उसी की बुद्धि उसके निर्मल गुणों का पार पा सकती है ॥157॥ वह युवा है, सौम्य है, नम्र है, कान्तिमान् है, धीर-वीर है, प्रतापी है, विद्याओं का पारगामी है और समस्त संसार उसके दर्शन को इच्छा करता है ॥158॥ यदि पुण्ययोग से विद्युत्प्रभ इस कन्या का पति होता तो इसे इस जन्म का फल प्राप्त हो जाता ॥159॥ हे वसन्तमालिके ! पवनंजय और विद्युत्प्रभ के बीच संसार में वही भेद प्रसिद्ध है जो कि गोष्पद और समुद्र के बीच होता है ॥160॥ वह थोड़े ही वर्षों में मुनिपद धारण कर लेगा इस कारण इसके पिता ने उसकी उपेक्षा की है पर यह बात मुझे अच्छी नहीं मालूम होती ॥161॥ विद्युत्प्रभ के साथ इसका एक क्षण भी बीतता तो वह सुख का कारण होता और अन्य क्षद्र प्राणी के साथ अनन्त भी काल बीतेगा तो भी वह सुख का कारण नहीं होगा ॥162॥ तदनन्तर मिश्रकेशी के ऐसा कहते ही पवनंजय क्रोधाग्नि से देदीप्यमान हो गया, उसका शरीर काँपने लगा और क्षण-भर में ही उसकी कान्ति बदल गयी ॥163॥ ओठ चाबते हुए उसने म्यान से तलवार बाहर खींच ली और नेत्रों से निकलती हुई लाल-लाल कान्ति से दिशाओं का अग्र भाग व्याप्त कर दिया ॥164॥ उसने मित्र से कहा कि हे प्रहसित ! यह बात अवश्य ही इस कन्या के लिए इष्ट होगी तभी तो यह स्त्री इसके समक्ष इस घृणित बात को कहे जा रही है ॥165॥ इसलिए देखो, मैं अभी इन दोनों का मस्तक काटता हूँ। हृदय का प्यारा विद्युत्प्रभ इस समय इन की रक्षा करे ॥166॥ तदनन्तर मित्र के वचन सुनकर क्रोध से जिसका ललाटतट भौंहों से 'भयंकर हो रहा था ऐसा प्रहसित बोला कि मित्र! मित्र ! अस्थान में यह प्रयत्न रहने दो। तुम्हारी तलवार का प्रयोजन तो शत्रुजनों का नाश करना है न कि स्त्रीजनों का नाश करना ॥167-168॥ अतः देखो, निन्दा में तत्पर इस दुष्ट स्त्री को मैं इन डण्डे से ही निर्जीव किये देता हूँ ॥169॥ तदनन्तर पवनंजय, प्रहसित के महाक्रोध को देखकर अपना क्रोध भूल गया, उसने तलवार म्यान में वापस डाल ली ॥170॥ और उसका समस्त शरीर अपने स्वभाव की प्राप्ति में निपुण हो

गया **अर्थ**ात् उसका क्रोध शान्त हो गया। तदनन्तर उसने क्रूर कार्य में दृढ़ मित्र से कहा ॥171॥ कि हे मित्र ! शान्ति को प्राप्त होओ। अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने से सुशोभित रहनेवाले तुम्हारे क्रोध का भी ये स्त्रियाँ विषय नहीं हैं ॥172॥ अन्य मनुष्य के लिए भी स्त्रोजन का घात करना योग्य नहीं है फिर तुम तो मदोन्मत्त हाथियों के गण्डस्थल चीरनेवाले हो अतः तुम्हें युक्त कैसे की हो सकता है ? ॥173॥ उच्च कूल में उत्पन्न तथा गुणों की ख्याति को प्राप्त पुरुषों के लिए इस प्रकार यश की मलिनता करनेवाला कार्य करना योग्य नहीं है ॥174॥ इसलिए उठो उसी मार्ग से पुनः वापस चलें। मनुष्य की मनोवृत्ति भिन्न प्रकार की होती है अतः उसपर क्रोध करना उचित नहीं है ॥175॥ निश्चित ही वह विद्युत्प्रभ इस कन्या के लिए प्यारा होगा तभी तो पास बैठकर मेरी निन्दा करने वाली इस स्त्री से उसने कुछ नहीं कहा ॥176॥ तदनन्तर जिनके आने का किसी को कुछ भी पता नहीं था ऐसे दोनों मित्र झरोखे से बाहर निकलकर अपने डेरे में चले गये ॥177॥ तदनन्तर जिसका हृदय अत्यन्त शान्त था ऐसा पवनंजय परम वैराग्य को प्राप्त होकर इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥178॥ जिसमें सन्देहरूपी विषम भँवरें उठ रही हैं और जो दुष्टभावरूपी मगरमच्छों से भरी हुई हैं ऐसी पर-पुरुषासक्त स्त्रीरूपी नदी का दूर से ही परित्याग करना चाहिए ॥179॥ जो खोटे भावों से अत्यन्त सघन है तथा जिसमें इन्द्रियरूपी दुष्ट जीवों का समूह व्याप्त है ऐसी यह स्त्री एक बड़ी अटवी के समान है, विद्वज्जनों को कभी इसकी सेवा नहीं करनी चाहिए ॥180॥ जिसका अपने शत्रुके साथ सम्पर्क है ऐसे राजा की सेवा करने से क्या लाभ है? इसी प्रकार शिथिल मित्र और परपरुषासक्त स्त्री को पाकर सख कहाँ से हो सकता है? ॥181॥ जो विज्ञ पुरुष हैं वे अनादृत होनेपर इष्ट-मित्रों, बन्धुजनों, पुत्रों और स्त्रियों को छोड़ देते हैं पर जो क्षुद्र मनुष्य हैं वे पराभवरूपी जल में डूबकर वहीं नष्ट हो जाते हैं ॥182॥ मदिरापान में राग रखनेवाला वैद्य, शिक्षा रहित हाथी, अहेतुक वैरी, हिंसापूर्ण दुष्ट धर्म, मूल् की गोष्ठी, मर्यादाहीन देश, क्रोधी तथा बालक राजा और परपुरुषासक्त स्त्री-बुद्धिमान् मनुष्य इन सब को दूर से ही छोड़ देवे ॥183-184॥ ऐसा विचार करते हुए पवनंजय की रात्रि कन्या की प्रीति के समान क्षय को प्राप्त हो गयी और जगानेवाले बाजे बज उठे ॥185॥ तदनन्तर सन्ध्या की लाली से पूर्व दिशा आच्छादित हो गयो सो ऐसो जान पड़ती थी मानो पवनंजय के द्वारा छोड़े हुए राग से ही निरन्तर आच्छादित हो गयी थी ॥186॥ और जो लो के क्रोध के कारण ही मानो लाल-लाल दिख रहा था तथा जो जगत् की चेष्टाओं का कारण था ऐसे चंचल बिम्ब को धारण करता हुआ सूर्य उदित हुआ ॥187॥ तदनन्तर विराग के कारण अत्यन्त अलस शरीर को धारण करता स्त्रीविमुख पवनंजय प्रहसित मित्र से बोला कि ॥188॥ हे मित्र ! उससे सम्पर्क रखनेवाली वायु का स्पर्श न हो जाये इसलिए यहाँ समीप में भी मेरा रहना उचित नहीं है अतः सुनो और उठो-अपने नगर की ओर चलें, यहाँ विलम्ब करना उचित नहीं है। प्रस्थान काल में बजनेवाले शंख से सेना को सावधान कर दो ॥189-190॥ तदनन्तर शंखध्वनि होनेपर जो क्षुभित सागर के समान जान पड़ती थी तथा जिसने प्रस्थान काल के योग्य सर्व कार्य कर लिये थे ऐसी सेना शीघ्र ही चल पड़ी ॥191॥ तत्पश्चात् रथ, घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही और भेरी आदि से उत्पन्न हुआ शब्द कन्या के कान में प्रविष्ट हुआ ॥192॥ प्रस्थान को सूचित करनेवाले उस शब्द से कन्या अत्यन्त दुःखी हुई मानो मुद्गर प्रहार सम्बन्धी वेग से प्रवेश करनेवाली कील से पीड़ित ही हुई थी ॥193॥ वह विचार करने लगी कि हाय-हाय, बड़े खेद की बात है कि विधाता ने मेरे लिए खजाना देकर छीन लिया। मैं क्या करूँ ? अब कैसा क्या होगा? ॥194॥ इस श्रेष्ठ पुरुष की गोद में कोड़ा करूंगी इस प्रकार के जो मनोरथ मैंने किये थे मुझ अभागिनी के वे सब मनोरथ अन्यथा ही परिणत हो गये और रूप ही बदल गये ॥195॥ इस वैरिन सखी ने जो उन की निन्दा की थी जान पड़ता है.कि किसी तरह उन्हें इसका ज्ञान हो गया है इसीलिए वे मझपर द्वेष करने लगे हैं ॥196॥ विवेकरहित, पापिनी तथा कर वचन बोलनेवाली इस सखी को धिक्कार है जिसने कि मेरे प्रियतम को यह अवस्था प्राप्त करा दी ॥197॥ पिताजी यदि हृदयवल्लभ को लौटा सकें तो मेरा बड़ा हित करेंगे और क्या इन की भी लौट ने की बुद्धि होगी ॥198॥ यदि सचमुच ही हृदयवल्लभ मेरा परित्याग करेंगे तो मैं आहार त्याग कर मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगी ॥199॥ इस प्रकार विचार करती हुई अंजना मूर्छित हो छिन्नमूल लता के समान पृथिवीपर गिर पड़ी ॥200॥ तदनन्तर 'यह क्या है ?' ऐसा कहकर परम उद्वेग को प्राप्त हुई दोनों सखियों ने शीतलोपचार से उसे मूर्छारहित किया ॥201॥ उस समय उसका समस्त शरीर ढीला हो रहा था और नेत्र निश्चल थे। सखियों ने प्रयत्नपूर्वक उससे मूर्छा का कारण पूछा पर वह लज्जा के कारण कुछ कह न सकी ॥202॥ अथानन्तर वायुकुमार (पवनंजय ) की सेना के लोग इस अकारण गमन से चकित हो बड़ी आकुलता के साथ-मन में विचार करने लगे कि यह कुमार इच्छित कार्य को पूरा किये बिना ही जाने के लिए उद्यत क्यों हो गया है ? इसे किस ने क्रोध उत्पन्न कर दिया ? अथवा किस ने इसे विपरीत प्रेरणा दी है ? ॥203-204॥ इसके कन्या ग्रहण करने की समस्त तैयारी है हो फिर यह किस कारण उदासीन हो गया है ? ॥205॥ कित ने ही

लोग हँसकर कहने लगे कि चूंकि इस ने वेग से पवन को जीत लिया है इसलिए इसका 'पवनंजय' यह नाम सार्थक है ॥206॥ कुछ लोग कहने लगे कि यह अभी तक स्त्री का रस जानता नहीं है इसीलिए तो यह इस कन्या को छोड़कर जाने के लिए उद्यत हुआ है ॥207॥ यदि इसे उत्तम रति का ज्ञान होता तो यह जंगली हाथो के समान उसके प्रेमपाश में सदा बँधा रहता ॥208॥ इस प्रकार एकान्त में वार्तालाप करनेवाले सैकड़ों सामन्तों के बीच खड़ा हुआ पवनंजय वेगशाली वाहनपर आरूढ हो चल ने के लिए प्रवृत्त हुआ ॥209॥ तदनन्तर जब कन्या के पिता को इसके प्रस्थान का पता चला तब वह हड़बड़ाकर घबड़ाये हुए समस्त बन्धुजनों के साथ वहां आया ॥210॥ उसने प्रह्लाद के साथ मिलकर कुमार से इस प्रकार कहा कि हे भद्र ! शोक का कारण जो यह गमन है सो किसलिए किया जा रहा है ? आप से किस ने क्या कह दिया ? हे भद्र पुरुष ! आप कि से प्रिय नहीं हैं ? हे विद्वन् ! जो बात आपके लिए नहीं रुचती हो उसका तो यहां कोई विचार ही नहीं करता ॥211-212॥ दोष रहते हुए भी आप को मेरे तथा पिता के वचन मानना उचित है फिर यह कार्य तो समस्त दोषों से रहित है अतः इसका करना अनुचित कैसे की हो सकता है ? ॥213॥ इसलिए हे विद्वन् ! लौटो और हम दोनों का मनोरथ पूर्ण करो। आप जैसे पुरुषों के लिए पिता की आज्ञा तो आनन्द का कारण होना चाहिए ॥214॥ इतना कहकर श्वसुर तथा पिता ने सन्तान के राग वश नतमस्तक वीर पवनंजय का बड़े आदर से हाथ पकड़ा ॥215॥ तत्पश्चात् 'श्वसुर और पिता के गौरव का भंग करने के लिए असमर्थ होता हआ पवनंजय वापिस लौट आया और क्रोधवश कन्या को दःख पहुँचानेवाले कारण का इस प्रकार विचार करने लगा ॥216॥ अब मैं इस कन्या को विवाह कर असमागम से उत्पन्न दुःख के द्वारा सदा दुःखी करूंगा। क्योंकि विवाह के बाद यह अन्य पुरुष से भी सुख प्राप्त नहीं कर सकेगी ॥217॥ पवनंजय ने अपना यह विचार मित्र के लिए बतलाया और उसने भी उत्तर दिया कि ठीक है यही बात मैं कह रहा था जिसे तुमने अपनी बुद्धि से स्वयं समझ लिया ॥218॥ प्रियतम को लौटा सुनकर कन्या को बहुत हर्ष हुआ। उसके समस्त शरीर में रोमांच निकल आये ॥219॥ तदनन्तर समय पाकर बन्धुजनों ने दोनों का विवाहरूप मंगल किया जिससे सब के मनोरथ पूर्ण हुए ॥220॥ यद्यपि कन्या का हाथ अशोकपल्लव के समान शीत स्पर्शवाला था पर उस विरक्त चित्त के लिए वह अग्नि की मेखला के समान अत्यन्त उष्ण जान पड़ा ॥221॥ बिजली को तुलना करनेवाले अंजना के शरीरपर किसी तरह इच्छा के बिना हो पवनंजय की दृष्टि गयी तो सही पर वह उसपर क्षण भर के लिए भी नहीं ठहर सकी ॥222॥ यह पवनंजय इस कन्या के भाव को नहीं समझ रहा है यह जानकर ही मानो चटकती हुई लाई के बहा ने अग्नि शब्द करती हुई हँस रही थी ॥223॥ इस तरह विधिपूर्वक दोनों का विवाह कर शब्द करते हुए समस्त बन्धुजन परम हर्ष को प्राप्त हुए ॥224॥ नाना वृक्ष और लताओं से व्याप्त तथा फल-फूलों से सुशोभित उस वन में सब लोग बड़े वैभव से महोत्सव करते रहे ॥225॥ तदनन्तर परस्पर वार्तालाप और यथा योग्य सत्कार कर सब लोग यथा स्थान गये। जाते समय सब लोग वियोग के कारण क्षण भर के लिए दुःखी हो उठे थे ॥226॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! तत्त्व की स्थिति को नहीं समझनेवाले प्राणी दूसरे के लिए जो दुःख अथवा सुख पहुंचाते हैं उस में मूल कारण सन्ताप पहुँचानेवाला कर्म रूपी सूर्य ही है **अर्थ**ात् कर्म के अनुकूल या प्रतिकूल रहनेपर ही दूसरे लोग किसी को सुख या दुःख पहुंचा सकते हैं ॥227॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषणाचार्य कथित पद्मचरित में अञ्जनासुन्दरी के विवाह का कथन करनेवाला पन्द्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥15॥

## पवनंजय और अंजना का समागम

सोलहवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर पवनंजय ने अंजना को विवाह कर ऐसा छोड़ा कि उससे कभी बात भी नहीं करते थे, बात करना तो दूर रहा आँख उठाकर भी उस ओर नहीं देखते थे। इस तरह वे उसे बहत दःख पहुँचा रहे थे। इस घटना से अंजना के मन में कितना दुःख हो रहा था इसका उन्हें बोध नहीं था ॥1॥ उसे रात्रि में भी नींद नहीं आती थी, सदा उसके नेत्र खुले रहते थे। उसके स्तन निरन्तर अश्रुओं से मलिन हो गये थे ॥2॥ पति के समान नामवाले पवन **अर्थ**ात् वायु को भी वह अच्छा समझती थी-सदा उसका अभिनन्दन करती थी और पति का नाम सुनने के लिए सदा अपने कान खड़े रखती थी ॥3॥ उसने विवाह के समय वेदीपर जो पति का अस्पष्टरूप देखा था उसी का मन में ध्यान करती रहती थी। वह क्षण-क्षण में निश्चेष्ट हो जाती थी और उसके नेत्र निश्चल रह जाते थे ॥4॥ वह हृदय में पति को देखकर बाहर भी

उनका दर्शन करना चाहती थी इसलिए नेत्रों को पोंछकर ठीक करती थी पर जब बाह्य में उनका दर्शन नहीं होता था तो पुनः शोक को प्राप्त हो जाती थी ॥5॥ उसने एक ही बार तो पति का रूप देखा था इसलिए बड़ी कठिनाई से वह उनका चित्र खींच पाती थी उतने पर भी हाथ बीच-बीच में कांप ने लगता था जिससे तुलिका छूटकर नीचे गिर जाती था ॥6॥ वह इतनी निर्बल हो चुकी थी कि मुख को एक हाथ से दूसरे हाथ पर बड़ी कठिनाई से ले जा पाती थी। उसके समस्त अंग इतने कृश हो गये थे कि उन से आभूषण ढीले हो होकर शब्द करते हुए नीचे गिरने लगे थे ॥7॥ उसकी लम्बी और अतिशय गरम सांस से हाथ तथा कपोल दोनों ही जल गये थे। उसके शरीर पर जो महीन वस्त्र था उसी के भार से वह खेद का अनुभव करने लगी थी ॥8॥ वह अपने आपकी अत्यधिक निन्दा करती हुई बार-बार माता-पिता का स्मरण करती थी तथा शून्य हृदय को धारण करती हुई क्षणक्षण में निश्चेष्ट अर्थात् मूच्छित हो जाती थी ॥9॥ कण्ठ के वाष्पावरुद्ध होने के कारण दुःख से निकले हुए वचनों से वह सदा अपने भाग्य को उलाहना देती रहती थी। अत्यन्त दुःखी जो वह थी ॥10॥ वह चन्द्रमा की किरणों से भी अधिक दाह का अनुभव करती थी और महल में भी चलती थी तो बार-बार मूच्छित हो जाती थी ॥11॥ हे नाथ ! तुम्हारे मनोहर अंग मेरे हृदय में विद्यमान हैं फिर वे अत्यधिक सन्ताप क्यों उत्पन्न कर रहे हैं ? ॥12॥ हे प्रभो! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है फिर अकारण अत्यधिक क्रोध को क्यों प्राप्त हुए हो ? ॥13॥ हे नाथ ! मैं आपकी भक्त हूँ अतः प्रसन्न होओ और बाह्य में दर्शन देकर मेरा चित्त सन्तुष्ट करो। लो, मैं आपके लिए यह हाथ जोड़ती हूँ ॥14॥ जिस प्रकार सूर्य से .रहित आकाश, चन्द्रमा से रहित रात्रि और गुणों से रहित विद्या शोभा नहीं देती उसी प्रकार आपके बिना मैं भी शोभा नहीं देती ॥15॥ इस प्रकार वह मन में निवास करने वाले पति के लिए उलाहना देती हुई मुक्ताफल के समान स्थूल आसुओं की बँदें छोड़ती रहती थी ॥16॥ वह अत्यन्त कोमल पुष्पशय्या पर भी खेद का अनुभव करती थी और गुरुजनों का आग्रह देख बड़ी कठिनाई से भोजन करती थी ॥17॥ वह चक्रपर चढ़े हुए के समान निरन्तर घूमती रहती थी और तेल कंघी आदि संस्कार के अभाव में जो अत्यन्त रूक्ष हो गये थे ऐसे केशों के समह को धारण करती थी / उसके शरीर में निरन्तर सन्ताप विद्यम रहता था इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो तेजःस्वरूप ही है। निरन्तर अश्रु निकलते रहने से ऐसी जान पड़ती थी मानो जलरूप ही हो । निरन्तर शून्य मनस्क रहने से ऐसी जान पड़ती थी मानो आकाश रूप ही हो और अक्रिय अर्थात् निश्चल होने के कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो पृथिवी रूप ही हो ॥19॥ उसके हृदय में निरन्तर उत्कलिकाएँ अर्थात् उत्कण्ठाएँ (पक्ष में तरंगें) उठती रहती थीं इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो वायु के द्वारा रची गयी हो और चेतना शक्ति के तिरोभूत होने से ऐसी जान पड़ती थी मानो पथिवी आदि भतचतष्टय रूप ही हो ॥20॥ वह पृथिवीपर समस्त अवयव फैलाये पड़ी रहती थी, बैठ ने के लिए भी समर्थ नहीं थी। यदि बैठ जाती थी तो उठ ने के लिए असमर्थ थी और जिस किसी तरह उठती भी तो शरीर सम्भाल ने की उस में क्षमता नहीं रह गयी थी॥२१॥ यदि कभी चलती थी तो सखी जनों के कन्धों पर हाथ रख कर चलती थी। चलते समय उसके हाथ सखियों के कन्धों से बार बार नीचे गिर जाते थे और मणिमय फर्श पर भी बार बार उसके पैर लड़खड़ा जाते थे ॥22॥ चापलूसी करनेवाले पति सदा जिनके साथ रहते थे ऐसी चतुर स्त्रियों को वह बड़ी स्पृहा के साथ देखती थी और उन्हीं की ओर उसके निश्चल नेत्र लगे रहते थे ॥23॥ जो पति से तिरस्कार को प्राप्त थी तथा अकारण ही जिसका त्याग किया गया था ऐसी दीनहीन अंजना दिनों को वर्षों के समान बड़ी कठिनाई से बिताती थी ॥24॥ उसकी ऐसी अवस्था होनेपर उसका समस्त परिवार उसके समान अथवा उससे भी अधिक दुःखी था तथा 'क्या करना चाहिए' इस विषय में निरन्तर व्याकुल रहता था ॥25॥ परिवार के लोग सोचा करते थे कि क्या यह सब कारण के बिना ही हुआ है अथवा जन्मान्तर में संचित कर्म ऐसा फल दे रहा है ॥26॥ अथवा वायुकुमार ने जन्मान्तर में जिस अन्तराय कर्म का उपार्जन किया था अब वह फलदेने में तत्पर हुआ है ॥27 / जिससे कि वह इस निर्दोष सुन्दरी के साथ समस्त इन्द्रियों को सुख देनेवाले उत्कृष्ट भोग नहीं भोग रहा है ॥28॥ सुनो, जिस अंजना ने पहले पिता के घर कभी रचमात्र भी दुःख नहीं पाया वही अब कर्म के प्रभाव से इस दुःख के भार को प्राप्त हुई है ॥22॥ इस विषय में हम भाग्यहीन क्या उपाय करें सो जान नहीं पड़ता। वास्तव में यह कर्मों का विषय हमारे प्रयत्न द्वारा साध्य नहीं है ॥30॥ हम लोगों ने जो पुण्य किया है उसी के प्रभाव से यह राजपुत्री अपने पति की प्रेमभाजन हो जाये तो अच्छा हो ॥31॥ अथवा हम लोगों के पास अणुमात्र भी तो पुण्य नहीं है क्योंकि हम स्वयं इस बाला के दुःखरूपी महासागर में डूबे हुए हैं ॥32॥ वह प्रशंसनीय मुहूर्त कब आवेगा जब इसका पति इसे गोद में बैठाकर इसके साथ हास्यभरी वाणी में वार्तालाप करेगा ॥33॥ इसी बीच में बहत भारी अहंकार को धारण करनेवाले वरुण का रावण के साथ विरोध हो गया ॥34॥ सो रावण ने वरुण के पास दूत भेजा। स्वामी के सामयं से परम तेज को धारण करनेवाला दूत वरुण से कहता है कि ॥35॥ हे वरुण! विद्याधरों के अधिपति श्रीमान्

रावण ने तुम से कहा है कि या तो तुम मेरे लिए प्रणाम करो या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ॥36॥ तब स्वभाव से ही स्थिर चित्त के धारक वरुण ने हंसकर कहा कि हे दूत ! रावण कौन है ? और क्या काम करता है ? ॥37॥ लोकनिन्द्य वीर्य को धारण करनेवाला मैं इन्द्र नहीं हूँ, अथवा वैश्रवण नहीं हूँ, अथवा सहस्ररश्मि नहीं हूँ, अथवा राजा मरुत्व या यम नहीं हूँ ॥38॥ देवताधिष्ठित रत्नों से इसका गर्व बहुत बढ़ गया है इसलिए वह इन रत्नों के साथ आवे मैं आज उसे बिना नाम का कर दूँ अर्थात् लोक से उसका नाम ही मिटा दूं ॥39॥ निश्चय ही तुम्हारी मृत्यु निकट आ गयी है इसलिए ऐसा स्पष्ट कह रहे हो' इतना कहकर दूत चला गया और जाकर उसने रावण से सब समाचार कह सुनाया ॥40॥ तदनन्तर समुद्र के समान भारी सेना से युक्त रावण ने तीव्र क्रोधवश जाकर वरुण के नगर को चारों ओर से घेर लिया ॥41॥ और सहसा उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं देवोपनीत रत्नों के बिना ही इस चपल को पराजित करूँगा अथवा मृत्यु को प्राप्त कराऊँगा ॥42॥ राजीव पौण्डरीक आदि वरुण के लड़के बहुत क्षोभ को प्राप्त हुए और शत्रु की सेना आयी सुन तैयार हो-होकर युद्ध के लिए बाहर निकले ॥43॥ तदनन्तर रावण की सेना के साथ उनका घोर युद्ध हुआ। युद्ध के समय नाना शस्त्रों के समूह परस्पर की टक्कर से टूट-टूटकर नीचे गिर रहे थे ॥44॥ हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथों से और योद्धा योद्धाओं के साथ भिड़ गये। उस समय योद्धा बहुत अधिक हल्ला कर रहे थे, ओठ डॅस रहे थे तथा क्रोध के कारण उनके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ॥45॥ तदनन्तर जिसने चिरकाल तक युद्ध किया था और शस्त्रसमूह का प्रहार कर स्वयं भी उसकी चोट खायी थी ऐसी वरुण की सेना, रावण की सेना से पराङ्मुख हो गयी ॥46॥ तत्पश्चात् जो क्रुद्ध होकर प्रलयकाल की अग्नि के समान भयंकर था और शस्त्ररूपी पंजर के बीच में चल रहा था ऐसा वरुण राक्षसों की सेना की ओर दौडा ॥47॥ तदनन्तर जिसका वेग बडी कठिनाई से रो का जाता था ऐसे वरुण को रणांगण में आता देख देदीप्यमान शस्त्रों की धारक सेना ने रावण की रक्षा को ॥48॥ तत्पश्चात् वरुण का आश्वासन पाकर उसके पुत्र पुनः तेजी के साथ युद्ध करने लगे और उन्हों ने अनेक योद्धारूपी हस्तियों को मार गिराया ॥49॥ तदनन्तर जिसका चित्त खेद से देदीप्यमान हो रहा था और ललाट भौंहों से कुटिल था ऐसे क्रूर रावण ने जबतक धनुष उठाया तबतक वरुण के सो पुत्रों ने शीघ्र ही खरदूषण को पकड़ लिया। खरदूषण चिरकाल से युद्ध कर रहा था फिर भी उसका चित्त खेदरहित था ॥50-51॥ तदनन्तर रावण ने अत्यन्त व्याकुल होकर मन में विचार किया कि इस समय युद्ध की भावना रखना मेरे लिए शोभा नहीं देती ॥52॥ यदि परम युद्ध जारी रहता है तो खरदूष के मरण की आशं का है इसलिए इस समय शान्ति धारण करना ही उचित है ॥53॥ ऐसा निश्चय कर रावण युद्ध के अग्रभाग से दूर हट गया सो ठीक ही है क्योंकि उदार मनुष्यों का चित्त करने योग्य कार्य में रस को नहीं छोड़ता अर्थात् करने न करने योग्य कार्य का विचार अवश्य रखता है ॥54॥ तदनन्तर मन्त्र कार्य में निपुण मन्त्रियों के साथ सलाह कर उसने अपने देश में रहनेवाले समस्त सामन्तों को सर्व प्रकार की सेना के साथ शीघ्र ही बुलवाया। बलवा ने के लिए उसने लम्बा मार्ग तय करनेवाले तथा सिरपर लेख बाँधकर रखनेवाले दूत भेजे ॥55-56॥ रावण के द्वारा भेजा हुआ एक आदमी प्रह्लाद के पास भी आया सो उसने स्वामी की भक्ति से उसका यथायोग्य सत्कार किया ॥57॥ तथा पूछा कि हे भद्र ! विद्याधरों के अधिपति रावण की कुशलता तो है ? तदनन्तर उस आदमी ने 'कुशलता है' इस प्रकार कहकर आदरपूर्वक रावण का पत्र प्रह्लाद के साम ने रख दिया ॥58॥ तत्पश्चात् प्रह्लाद ने सहसा स्वयं ही उस पत्र को उठाकर मस्तक से लगाया और फिर प्रकृत अर्थ को कहनेवाला वह पत्र पढ़वाया ॥59॥ पत्र में लिखा था कि अलंकारपुर नगर के समीप जिसकी सेना ठहरी है, जो कुशलता से युक्त है, सोमाली का पुत्र है तथा राक्षस वंशरूपी आकाश का चन्द्रमा है ऐसा विद्याधर राजाओं का स्वामी रावण, आदित्य नगर में रहनेवाले न्याय-नीतिज्ञ, देश-काल की विधि के ज्ञाता एवं हमारे साथ प्रेम करने में निपुण भद्र प्रकृति के धारी राजा प्रह्लाद को शरीरादि की कुशल कामना के अनन्तर आज्ञा देता है कि हाथकी अंगुलियों के नखों की कान्ति से जिनके केश पीले हो रहे हैं ऐसे समस्त विद्याधर राजा तो शीघ्र ही आकर मेरे लिए नमस्कार कर चु के हैं पर पाताल नगर में जो दुर्बुद्धि वरुण रहता है वह अपनी शक्ति से सम्पन्न होने के कारण प्रतिकूलता कर रहा है-विरोध में खड़ा है। वह हृदय में चोट पहुँचानेवाले विद्याधरों के समूह से घिरकर समुद्र के मध्य में सुख से रहता है। इसी विद्वेष के कारण इसके साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ था सो इसके सौ पुत्रों ने खरदूषण को किसी तरह पकड़ लिया है ॥60-66॥ 'युद्ध में इसका मरण न हो जाये' इस विचार से समय की विधि को जानते हुए मैंने महायुद्ध की भावना छोड़ दी है ॥67॥ इसलिए उसका प्रतिकार करने के लिए तुम्हें अवश्य ही यहाँ आना चाहिए क्योंकि आप-जैसे पुरुष करने योग्य कार्य में कभी भूल नहीं करते ॥68॥ अब मैं तुम्हारे साथ सलाह कर ही आगे का कार्य करूंगा और यह उचित भी है क्योंकि सूर्य भी तो अरुण के साथ मिलकर ही कार्य करता है ॥69॥ अथानन्तर प्रह्लाद ने पवनंजय के लिए पत्र का सब सार बतलाकर तथा उत्तम मन्त्रियों के साथ सलाहकर शीघ्र ही जाने का विचार

किया ॥70॥ पिता को गमन में उद्यत देख पवनंजय ने पृथिवीपर घुट ने टेककर तथा हाथ जोड़ प्रणाम कर निवेदन किया कि ॥71॥ हे नाथ! मेरे रहते हुए आपका जाना उचित नहीं है। पिता पुत्रों का आलिंगन करते हैं सो पुत्रों को उसका फल अवश्य ही चुकाना चाहिए ॥72॥ यदि मैं वह फल नहीं चुकाता हूँ तो पुत्र ही नहीं कहला सकता अतः आप जाने की आज्ञा देकर मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥73॥ इसके उत्तर में पिता ने कहा कि अभी तुम बालक ही हो, युद्ध में जो खेद होता है उसे तुमने कहीं प्राप्त नहीं किया है इसलिए सुख से यहीं बैठो, मैं जाता हूँ ॥74॥

तदनन्तर सुमेरुके तट के समान चौड़ा सीना तानकर पवनंजय ने निम्नांकित ओजस्वी वचन कहे ॥75॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरी शक्ति का सब से प्रथम लक्षण यही है कि मेरा जन्म आप से हुआ है। अथवा संसार को भस्म करने के लिए क्या कभी अग्नि के तिलगे की परीक्षा की जाती है ? ॥76॥ आप को आज्ञारूपी शेषाक्षत से जिसका मस्तक पवित्र हो रहा है ऐसा मैं इन्द्र को भी पराजित करने में समर्थ हूँ इसमें संशय की बात नहीं है ॥77॥ ऐसा कहकर उसने पिता को प्रणाम किया और फिर बड़ी प्रसन्नता से उठकर उसने स्नान-भोजन आदि शारीरिक क्रियाएँ की ॥78॥ तदनन्तर कुल की वृद्धा स्त्रियों ने बड़े आदर से आशीर्वाद देकर जिसका मंगलाचार किया था. जो उत्कृष्ट कान्ति को धारण कर रहा था और 'मंगलाचार में बाधा न आ जाये; जिनके नेत्र आँसुओं से आकुलित थे ऐसे आशीर्वाद देने में तत्पर माता-पिता ने जिसका मस्तक चूमा था ऐसा पवनंजय भावपूर्वक सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर समस्त बन्धजनों से पूछकर गरुजनों का अभिवादन कर तथा भक्ति से नम्रीभत समस्त परिजन से वार्तालाप कर मन्द-मन्द हंसता हुआ घर से निकला ॥79-81॥ उसने स्वभाव से ही सर्वप्रथम दाहिना पैर ऊपर उठाया था । बारबार फड़कती हुई दाहिनी भुजा से उसका हर्ष बढ़ रहा था ॥82॥ और जिस के मुखपर पल्लव रखे हुए थे ऐसे पूर्णकलशपर उसके नेत्र पड़ रहे थे। महल से निकलते ही उसने सहसा अंजना को देखा ॥83॥ अंजना द्वार के खम्भे से टिककर खड़ी थी, उसके नेत्र आँसुओं से आच्छादित थे, कमर को सहारादेने के लिए वह अपनी भुजा नितम्बपर रखती भली थी पर दुर्बलता के कारण वह भुजा नितम्ब से नीचे हट जाती थी ॥84॥ पान की लाली से रहित होने के कारण उसके ओठ अत्यन्त धूसरवर्ण थे और वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उसी खम्भे में उकेरी हुई एक मैली पुतली ही हो ॥85॥ तदनन्तर मनुष्य जिस प्रकार बिजलीपर पड़ी दृष्टि को सहसा संकुचित कर लेता है-उससे दूर हटा लेता है उसी प्रकार पवनंजय ने अंजनापर पड़ी अपनी दृष्टि को शीघ्र ही संकुचित कर लिया तथा कुपित होकर कहा कि ॥86॥ हे दुरवलोक ने ! तू इस स्थान से शीघ्र ही हट जा। उल्का की तरह तुझे देख ने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ ॥८७॥ अहो, कुलांगना होकर भी तेरी यह परम धता है जो मेरे न चाहनेपर भी सामने खडी है। बडी निर्लज्ज है॥८८॥ पवनंजय के उक्त वचन यद्यपि अत्यन्त क्रूर थे तो भी जिस प्रकार चिरकाल का प्यासा मनुष्य प्राप्त हुए जल को बड़े मनोयोग से पीता है उसी प्रकार अंजना स्वामी में भक्ति होने के कारण उसके उन क्रूर वचनों को बड़े मनोयोग से सुनती रही ॥89॥ उसने स्वामी के चरणों में नेत्र गड़ाकर तथा हाथ जोड़कर कहा। कहते समय वह यद्यपि प्रयत्नपूर्वक वचनों का उच्चारण करती थी तो भी बार-बार चूक जाती थी, चुप रह जाती थी, अथवा कुछ का कुछ कह जाती थी ॥90॥ उसने कहा कि हे नाथ ! इस महल में रहते हुए भी मैं आपके द्वारा त्यक्त हूँ फिर भी 'मैं आपके समीप ही रह रही हूँ' इतने मात्र से ही सन्तोष धारणकर अब तक बड़े कष्ट से जीवित रही हूँ ॥91॥ पर हे स्वामिन् ! अब जब कि आप दूर जा रहे हैं निरन्तर दुःखी रहनेवाली मैं आपके सद्वचनरूपी अमृत के स्वाद के बिना किस प्रकार जीवित रहूँगी ? ॥92॥ हे प्रभो! परदेश जाते समय आप ने स्नेह से आर्द्र चित्त होकर सेवक जनों से भी सम्भाषण किया है फिर मेरा चित्त तो एक आप में ही लग रहा है और आपके ही वियोग से निरन्तर दुःखी रहती हूँ फिर स्वयं न सही दूसरे के मुख से भी आप ने मुझ से सम्भाषण क्यों नहीं किया ? ॥93-94॥ हे नाथ ! आप ने मेरा त्याग किया है इसलिए इस समस्त संसार में दूसरा कोई भी मेरा शरण नहीं है अथवा मरण हो शरण है ॥25॥ तदनन्तर पवनंजय ने मुख सिकोड़कर कहा कि 'मरो' / उनके इतना कहते ही वह खेदखिन्न हो मूछित होकर पृथिवीपर गिर पड़ी ॥96॥ इधर उत्तम ऋद्धि को धारण करता हआ निर्दय पवनंजय उत्तम हाथीपर सवार हो सामन्तों के साथ आगे बढ़ गया ॥97॥ प्रथम दिन वह मानसरोवर को प्राप्त हुआ सो यद्यपि उसके वाहन थ के नहीं थे तो भी उसने मानसरोवर के तटपर सेना ठहरा दी ॥98॥

आकाश से उतरते हुए पवनंजय की नाना प्रकार के वाहन और शस्त्रों से सुशोभित सेना ऐसी जान पड़ती थी मानो देवों का समूह ही नीचे उतर रहा हो ॥99॥ प्रसन्नता से भरे विद्याधरों ने अपने तथा वाहनों के स्नान-भोजनादि समस्त कार्य यथायोग्य रीति से किये ॥100 / अथानन्तर विद्या के बल से शीघ्र ही एक ऐसा मनोहर महल बनाया गया कि जिसमें अनेक खण्ड थे तथा जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और

ऊंचाई अनुरूप थी, उस महल के ऊपर के खण्डपर मित्र के साथ स्वच्छन्द वार्तालाप करता हुआ पवनंजय उत्कृष्ट आसनपर विराजमान था। युद्ध की वार्ता से उसका हर्ष बढ़ रहा था ॥101-102॥ पवनंजय झरोखों के मार्ग से किनारे के वृक्षों को तथा मन्द-मन्द वायु से हिलते हुए मानसरोवर को देख रहा था ॥103॥ भयंकर कछुए, मीन, नक्र, गर्व को धारण करनेवाले मगर तथा अन्य अनेक जल-जन्त उस सरोवर में लहरें उत्पन्न कर रहे थे ॥104॥ धले हए स्फटिक के समान स्वच्छ तथा कमलों और नील कमलों से सुशोभित उस सरोवर का जल हंस, कारण्डव, क्रौंच और सारस पक्षियों से अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥105॥ इन सब पक्षियों के गम्भीर कोलाहल से वह सरोवर मन और कर्ण-दोनों को चुरा रहा था। तथा उसके मध्य में भ्रमरियों का उत्कृष्ट झंकार सुनाई देता था ॥106॥ उसी सरोवर के किनारे पवनंजय ने एक चकवी देखी। वह चकवी अकेली होने से अत्यन्त व्याकुल थी, वियोगरूपी अग्नि से सन्तप्त थी, नाना प्रकार की चेष्टाएँ कर रही थी, अस्ताचल के निकटवर्ती सूर्यबिम्बपर उसके नेत्र पड़ रहे थे, वह बार-बार कमलिनी के पत्तों के विवरों में नेत्र डालती थी, वेग से पंखों को फड़फड़ाती थी, बार-बार ऊपर उड़कर तथा नीचे उतरकर खेदखिन्न हो रही थी, मृणाल के टुकड़ों से स्वादिष्ट जल की ओर देखकर दुःखी हो रही थी, पानी के भीतर अपना प्रतिबिम्ब देखकर पति की आशं का से उसे बुलाती थी और अन्त में उसके न आने से अत्यधिक शोक करती थी, नाना स्थानों से जो प्रतिध्वनि आती थी उसे सुनकर 'कहीं पति तो नहीं बोल रहा है' इस आशा से वह चक्रारूढ़ की तरह गोल चक्कर लगाती लगाता था, उसके नेत्र सुन्दर थे, वह किनारे के वृक्षपर चढ़कर सब दिशाओं में नेत्र डालती थी और वहाँ जब पति को नहीं देखती थी तब बड़े वेग से पुनः नीचे आ जाती थी, तथा पंखों की फड़फड़ाहट से कमलों की पराग को दूर तक उड़ा रही थी। पवनंजय दया के वशीभूत हो उसकी सोर दृष्टि लगाकर देर तक देखता रहा ॥107-113॥ चकवी को जो अत्यधिक दुःख प्राप्त हो रहा था उसी का वह इस प्रकार चिन्तवन करने लगा। वह विचार ने लगा कि पति से वियुक्त हुई यह चकवी शोकरूपी अग्नि से जल रही है ॥114॥ यह वही चन्द्रमा और चन्दन के समान शीतल, मनोहर सरोवर है पर पति का वियोग पाकर इसे दावानल के समान हो रहा है ॥115॥ पति से रहित स्त्रियों के लिए पल्लव भी तलवार का काम करता है, चन्द्रमा की किरण भी वज्र बन जाती है और स्वर्ग भी नरक-जैसा हो जाता है ॥116॥ ऐसा विचार करते हुए उसका मन अपनी प्रिया अंजनासुन्दरीपर गया और उसी में प्रेम ने के कारण उसने विवाह के समय सेवित स्थानों को बडे गौर से देखा ॥117॥ वे सब स्थान उसके नेत्रों के साम ने आनेपर शोक के कारण हो गये और मर्म भेद करनेवालों के समान दुःसह हो उठे ॥118॥ वह मन ही मन सोच ने लगा कि हाय-हाय बड़े कष्ट की बात है-मुझ दुष्ट चित्त के द्वारा छोड़ी हुई वह प्रिया भी इस चकवी के समान दुःख को प्राप्त हो रही होगी ॥119॥ यदि उस समय उसकी सखी ने कठोर शब्द कहे थे तो दूसरे के दोष से मैंने उसे क्यों छोड़ दिया? ॥120॥ बिना विचारे काम करनेवाले मुझ-जैसे मूर्खों के लिए धिक्कार है। जो बिना कारण ही लोगों को दुःखी करते हैं ॥121॥ निश्चय ही मुझ पापी का चित्त वज्र का बना है इसीलिए तो वह इतने समय तक प्रिया के विरुद्ध रह सका है ॥122॥ अब क्या करूँ ? मैं पिता से पूछकर घर से बाहर निकला हूँ. इसलिए अब लौटकर वापस कैसे की जाऊँ ? अहो ! मैं बड़े संकट में आ पड़ा हूँ ॥123॥ यदि मैं युद्ध के लिए जाता हूँ तो निश्चित है कि वह जीवित नहीं बचेगी और उसके अभाव में मेरा भी अभाव स्वयमेव हो जायेगा। इसलिए इस से बढ़कर और दूसरा कष्ट नहीं है ॥124॥ अथवा समस्त सन्देह की गाँठ को खोलनेवाला मेरा परम मित्र विद्यमान है सो यही इस शुभ कार्य का निर्णायक है ॥125॥ इसलिए सब प्रकार के व्यवहार में निपुण इस मित्र से पूछता हूँ क्योंकि जो कार्य विचारकर किया जाता है उसी में प्राणी सुख पाते हैं सर्वत्र नहीं ॥126॥ इधर पवनंजय इस प्रकार विचार कर रहा था उधर प्रहसित मित्र ने उसे अन्यमनस्क देखा। तब उसके दुःख से दुःखी होकर उसने स्वयं ही धीरे से पूछा ॥127॥ कि हे सखे! तुम तो शत्रु का उच्छेद करने के लिए निकले हो फिर आज इस तरह तुम्हारा मुख खिन्न-सा क्यों दिखाई दे रहा है ? ॥128॥ हे सत्पुरुष ! लज्जा छोड़कर शीघ्र ही मेरे लिए इसका कारण बताओ। आपके इस तरह खिन्न रहते हुए मुझे बहुत आकुलता उत्पन्न हो रही है ॥129॥ तदनन्तर जो धैर्य से भ्रष्ट होकर बहुत दूर जा पड़ा ऐसा पवनंजय मित्र के इस प्रकार कहनेपर कठिनाई से निकलती हुई वाणी से कहने लगा कि ॥130॥ हे सुन्दर ! सुनो, तुम्हें छोड़कर और किस से कहूँगा ? यथार्थ में मेरे समस्त रहस्यों के तुम्ही एक पात्र हो ॥131॥ हे मित्र ! यह बात तुम किसी दूसरे से कहने के योग्य नहीं हो क्योंकि इस से मुझे अधिक लज्जा उत्पन्न होती है ॥132॥ इसके उत्तर में प्रहसित ने कहा कि तुम निःशंक होकर कहो क्योंकि तुम्हारे द्वारा कहा हुआ पदार्थ मेरे लिए सन्तप्त लोहेपर पड़े पानी के समान है ॥133॥ तदनन्तर पवनंजय ने कहा कि हे मित्र ! सुनो, मैंने आज तक कभी अंजना से प्रेम नहीं किया इसलिए मेरा मन दुखी हो रहा है ॥134॥ यद्यपि मैं क्रूर हूँ और क्रूरतावश उससे बोलताचालता नहीं था तो भी मात्र समीप में रहने के कारण उसने निरन्तर आँस डाल-डालकर अपने आप को जीवित

रखा है ॥135॥ परन्तु उस दिन आते समय मैंने उसकी जो चेष्टा देखी थी उससे जानता हूँ कि वह वियोगिनी अब जीवित नहीं रहेगी ॥136॥ मुझ पाषाणचित्त ने अपराध के बिना ही उसका बाईस वर्ष तक अनादर किया है ॥137॥ आते समय मैंने उसका वह मुख देखा था जो कि शोकरूपी तुषार से सम्पर्क होने के कारण सौन्दर्यरूपी सम्पदा से रहित था ॥138॥ उसके जब नीलोत्पल के समान नीले एवं दीर्घ नेत्र स्मृति में आते हैं तो बाण की तरह हृदय बिंध जाता है ॥139॥ इसलिए हे सज्जन ! ऐसा उपाय करो कि जिससे हम दोनों का समागम हो जाये और मरण न हो सके ॥140॥ अथानन्तर क्षण-भर के लिए जिसका शरीर तो निश्चल था और मन उपाय की चिन्तना में मानो अत्यन्त चंचल झूलापर ही स्थित था ऐसा प्रहसित बोला कि ॥141॥ चूँकि तुम गुरुजनों से पूछकर निकले हो और शत्रु को जीतना चाहते हो इसलिए इस समय तुम्हारा लौटना उचित नहीं है ॥142॥ इसके सिवाय गुरुजनों के समक्ष तुम कभी अंजना को अपने पास नहीं लाये हो इसलिए इस समय उसका यहाँ लाना भी लज्जा की बात है ॥143॥ अतः अच्छा उपाय यही है कि तुम गुप्त रूप से वहीं जाकर उसे अपने दर्शन तथा सम्भाषणजन्य सुख का पात्र बनाओ ॥144॥ तुम्हारा समागम उसके जीवन का आलम्बन है सो उसे चिरकाल तक प्राप्त कराकर तथा अपने मन को ठण्डा कर शीघ्र ही वहाँ से वापस लौट आना ॥145॥ और इस तरह तुम उस ओर से निश्चिन्त हो उत्तम उत्साह को धारण करते हुए शत्रु को जीत ने के लिए जा सकोगे ॥146॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर शीघ्रता से भरा पवनंजय, मुद्गर नामक सेनापति को सेना की रक्षा में नियुक्त कर माला, अनुलेपन आदि अन्य सुगन्धित पदार्थ लेकर और प्रहसित मित्र को आगे कर मेरुवन्दना के बहा ने आकाश में जा उड़ा ॥147-148॥ इतने में ही सूर्य अस्त हो गया सो रात्रि के समय इन दोनों का निश्चिन्तता से समागम हो सके इस करुणा से प्रेरित होकर ही मानो अस्त हो गया था ॥149॥ तदनन्तर सन्ध्या के प्रकाश को नष्ट करने का कारण जो अन्धकार उससे युक्त होकर समस्त संसार श्याम वर्ण हो गया और समस्त पदार्थ मात्र स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा हो जान ने योग्य रह गये ॥150॥ अंजनासुन्दरी के घर पहुंचकर पवनंजय तो बाह्य बरण्डा में रह गया और प्रहसित उसके पास गया ॥151॥ तदनन्तर दीपक के मन्द प्रकाश में उसे सहसा देखकर 'यह कौन है कौन है' ऐसा कहती हुई अंजना अत्यधिक भयभीत हुई ॥152॥ उसने पास में सोयी वसन्तमाला सखी को जगाया सो उस चतुर ने उठकर उसका भय नष्ट किया ॥153॥ तत्पश्चात् 'मैं प्रहसित हूँ' ऐसा कहकर उसने नमस्कार किया और पवनंजय के आने की सूचना दी ॥154॥ तब वह स्वप्न के समान प्राणनाथ के समागम का समाचार सुन गद्गद वाणी में दीनता के साथ प्रहसित से कहने लगी कि ॥155॥ हे प्रहसित ! मुझ पुण्यहीना तथा पतित्यक्ता की हँसी क्यों करते हो ? मैं तो अपने मलिन कर्मों से स्वयं ही हास्य का पात्र हो रही हूँ॥१५६॥ यह हृदयवल्लभ के द्वारा तिरस्कृत है-पति के द्वारा ठुकरायी गयी है ऐसा जानकर मुझ अभागिनी एवं दुःखिनी का किस ने नहीं तिरस्कार किया है ? ॥157॥ खासकर दुष्ट चित्त को धारण करनेवाले तुम्हीं ने प्राणनाथ को प्रोत्साहित कर मुझे अत्यन्त दुःख देनेवाली इस अवस्था तक पहुँचाया है ॥158॥ अथवा हे भद्र ! इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? क्योंकि कम के वशीभूत हुआ समस्त संसार दुःख अथवा सुख प्राप्त कर रहा है ॥159॥ इस प्रकार जो अश्रु ढालती हुई कह रही थी तथा अपने आपकी निन्दा करने में तत्पर थी ऐसी अंजना सुन्दरी को नमस्कार कर प्रहसित बोला। उस समय प्रहसित का मन दुःख से द्रवीभूत हो रहा था ॥160॥ उसने कहा कि हे कल्याणि! ऐसा मत कहो, मुझ निर्विचार तथा पापयुक्त चित्त के धारक ने जो अपराध किया है उसे क्षमा करो ॥161॥ इस समय तुम्हारे दुष्कर्म निश्चय ही नष्ट हो गये हैं क्योंकि प्रेमरूपी गुण से खिचा हुआ तुम्हारा हृदयवल्लभ स्वयं आया है ॥162॥ अब इसके प्रसन्न रहनेपर तुम्हें कौन-सी वस्तु सुखदायक नहीं होगी? वास्तव में चन्द्रमा के साथ समागम होनेपर रात्रि में कोन-सी सुन्दरता नहीं आ जाती ? ॥163॥ तदनन्तर अंजनासुन्दरी क्षण-भर के लिए चुप हो रही। उसके बाद उसने सखी के द्वारा अनूदित वचनों के द्वारा उत्तर दिया। सखी जो वचन कह रही थी वे अंजना की प्रतिध्वनि के समान जान पडते थे ॥164॥ उसने कहा कि हे भद्र ! जिस प्रकार जल से रहित वर्षा का होना असंभव है उसी प्रकार उनका आना भी असम्भव है। अथवा इस समय मेरे किसी शुभ-कार्य का उदय हो जिससे तुम्हारा कहना सम्भव भी हो सकता है ॥165॥ अस्तु, यदि प्राणनाथ आये हैं तो मैं उनका स्वागत करती हूँ। मेरा पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मरूपी वृक्ष आज फलीभूत हुआ है ॥166॥ इस प्रकार नेत्रों में हर्ष के आँसू भरे हुई अंजनासुन्दरी यह कह ही रही थी कि सखी के समान करुणा प्राणनाथ को उसके समीप ले आयी ॥167॥ उस समय अंजना शय्यापर बैठी थी। ज्यों ही उसने परम आनन्द के देनेवाले प्राणनाथ को समीप आते देखा त्यों ही वह उठने का प्रयास करने लगी। उसके नेत्र भयभीत हरिण के समान सुन्दर थे, वह खड़ी होने के लिए अपने घुटनोंपर बार-बार हस्त-कमल रखती थी पर वे दुर्बलता के कारण नीचे खिसक जाते थे। उसकी जांघे खम्भे के समान अकड़ गयी थीं और सारा शरीर कांप ने लगा था ॥168-169॥ यह देख पवनंजय ने अमृततुल्य निम्न वचन कहे कि हे देवि ! रहने दो, क्लेश

उत्पन्न करनेवाले इस सम्भ्रम से क्या प्रयोजन है ? ॥170॥ इतना कहनेपर भी अंजना बड़े कष्ट से खड़ी होकर हाथ जोड़ ने का उद्यम करने लगी कि पवनंजय ने उसका हाथ पकड़कर उसे शय्यापर बैठा दिया ॥171॥ अंजना का वह हाथ पसीना से युक्त हो गया और रोमांच धारण करने लगा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो पति के स्पर्शरूपी अमत से सींचा जाकर अंकर ही धारण कर रहा था ॥172॥ वसन्तमाला ने पवनंजय को नमस्कार कर आदरपूर्वक उसके साथ वार्तालाप किया। तदनन्तर वह प्रहसित के साथ एक दूसरे सुन्दर कमरे में सुख से बैठ गयी ॥173॥ अथानन्तर चूंकि पवनंजय अपने द्वारा किये हुए अनादर से लज्जित हो रहा था अतः सर्वप्रथम कुशल समाचार पूछ ने के लिए वह हृदय से प्रवृत्त नहीं हो सका ॥174॥ तदनन्तर लज्जित होते हुए उसने कहा कि हे प्रिये ! मैंने कर्मोदय के प्रभाव से तुम्हारा जो तिरस्कार किया है उसे क्षमा करो। यह कहते समय पवनंजय का मन अत्यन्त आकुल हो रहा था ॥175॥ अंजना का पति के साथ वार्तालाप करने का प्रथम अवसर था इसलिए वह भी लज्जा के कारण मुख नीचा किये थी। उसका सारा शरीर निश्चल था। इसी दशा में उसने धीरे-धीरे उत्तर दिया ॥176॥ कि हे नाथ ! चूँकि इस समय आप जिसकी मुझे आशा ही नहीं थी ऐसा दुर्लभ स्नेह कर रहे हैं इसलिए यही समझना चाहिए कि आप ने मेरा कुछ भी तिरस्कार नहीं किया है ॥177॥ मैंने अब तक जो जीवन धारण किया है वह एक आपकी स्मृति के आश्रय ही धारण किया है। इसलिए आपके द्वारा किया हुआ तिरस्कार भी मेरे लिए महान् आनन्दस्वरूप ही रहा है ॥178॥ अथानन्तर ऐसा कहती हुई अंजना की चिबुकपर अंगुली रख उसके मुख को कुछ ऊंचा उठाकर उसी की ओर देखते हुए पवनंजय ने कहा कि ॥179॥ हे देवि ! समस्त अपराध भूल जाओ इसलिए मैं तुम्हारे चरणों में प्रणाम करता हूँ, परम प्रसन्नता को प्राप्त होओ ॥180॥ इतना कहकर पवनंजय ने अपना मस्तक अंजना के चरणों में रख दिया और अंजना उसे अपने करकमलों से शीघ्र ही उठा ने का प्रयत्न करने लगी ॥181॥ परन्तु पवनंजय उसी दशा में पड़े रहे। उन्हों ने कहा कि हे प्रिये ! जब तुम यह कहोगी कि 'मैं प्रसन्न हूँ तभी सिर ऊपर उठाऊँगा ॥182॥ तदनन्तर 'क्षमा किया' अंजना के ऐसा कहते ही पवनंजय ने सिर ऊपर उठाकर उसका आलिंगन किया। उस समय उसके दोनों नेत्र सुख से निमीलित हो रहे थे॥१८३।। आलिंगित अंजना पति के शरीर में इस प्रकार लीन हो गयी मानो फिर से वियोग न हो जावे इस भय से शरीर के भीतर ही प्रविष्ट होना चाहती थी ॥184॥ पवनंजय ने अंजना को आलिंगन से छोड़ा तो निश्चल नेत्रों से युक्त उसके मुख को अपने टिमकाररहित नेत्रों से देख ने लगे ॥185॥ तदनन्तर काम से व्याकुल हो उन्हों ने अंजना के पैरों, हाथों, नाभि, स्तन, दाढ़ी, ललाट, कपोलों और नेत्रों का चुम्बन किया ॥186॥ एक ही बार नहीं, किन्तु पसीना से युक्त हाथ से स्पर्श करते हुए उन्होंने पुनः पुनः उन स्थानों का चुम्बन किया जो ठोक ही है क्योंकि मुख का चुम्बन करने के लिए वह आप्त सेवा है सो प्रेमीजनों को करना ही पड़ता है ॥187॥ तदनन्तर खिले हुए कमल के भीतरी दल के समान जिसकी कान्ति थी और मानो जो अमृत ही छोड़ रहा था ऐसे उसके अधरोष्ठ का पान किया ॥188॥ नीवी की गाँठ खोलने के लिए उतावली करनेवाले पवनंजय के हाथ को लज्जा से भरी अंजना रोकना तो चाहती थी पर उसका हाथ इतना अधिक काँप रहा था कि उससे वह रोकने में समर्थ नहीं हो सकी ॥189॥ तदनन्तर वस्त्ररहित अंजना का नितम्बफलक देखकर पवनंजय का हृदय काम के वेग से चंचल हो गया ॥190॥ तत्पश्चात् किसी अद्भुत वेग से जिसकी आत्मा विवश हो रही थी ऐसे पवनंजय ने कमल के समान कोमल अंजना को कसकर पकड़ लिया ॥191॥ तदनन्तर चतुराई जो बात कहती थी, काम जैसी आज्ञा देता था, और बढ़ा हुआ अनुराग जैसी शिक्षा देता था 'वैसी ही उन दोनों' दम्पतियों की रति-क्रिया उत्तम वृद्धि को प्राप्त हुई। उस समय उन दोनों के मन का जो भाव था वह शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता ॥192-193॥ परम सन्दरी अंजना के स्तनरूपी कलश तथा नितम्ब-स्थल का आस्फालन करते हए पवनंजय कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीपर आरूढ़ थे ॥ 194॥ 'ठहरो', 'छोड़ो, 'पकड़ो' आदि नाना शब्दों से युक्त तथा हाव-भाव विभ्रम से भरा उनका रत किसी महायुद्ध के समान जान पड़ता था ॥195॥ अधरोष्ठ को ग्रहण करते समय जोर से सी-सी करती हुई अंजना जो हाथ हिलाती थी वह ऐसा जान पड़ता था मानो किसी लता का पल्लव ही हिल रहा हो ॥196॥ अंजना के नितम्ब-स्थलपर पवनंजय ने जो नये-नये नखक्षत दिये थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो नीलमणि को भूमि में पद्मरागमणि ही निकल रहे हों ॥197॥ अंजना का जघन-स्थल देखते-देखते पवनंजय को तृप्ति ही नहीं होती थी। वह अपने टिमकाररहित नेत्र उसीपर गड़ाये बैठे थे ॥198॥ मधुर आलाप से सहित उसकी चूड़ियों की मनोहर रुनझुन ऐसी जान पड़ती थी मानो भ्रमरों के समूह ही गुंजार कर रहे हों ॥199॥ अंजना के नेत्रों के कटाक्ष और पुतलियां ऐसी जान पड़ती थीं मानो चंचल भ्रमरों से युक्त नील कमलों की शोभा ही धारण कर रही हो ॥200॥ सम्भोग के अनन्तर अंजना के मुख तथा स्तनों के ऊपर जो पसीनों की बूंदों का समूह प्रकट हुआ था वह ऐसा जान पड़ता था मानो स्वच्छ मोतियों का समूह ही हो ॥201॥ दन्ताघात के कारण उसका अधरोष्ठ लाल-

लाल हो गया था। उसे धारण करती हुई वह ऐसी जान पड़ती थी मानो जिसमें एक फूल आया है ऐसे टेसू के वन की पंक्ति ही हो ॥202॥ पति के द्वारा उपभुक्त अंजना का शरीर सुमेरु पर्वत के द्वारा आलिंगित मेघपंक्ति के समान उत्तम कान्ति को धारण कर रहा था ॥203॥ तदनन्तर जिस के समस्त कार्य पूर्ण हो चु के थे ऐसे सुरतोत्सव के समाप्त होनेपर खिन्न शरीर से यक्त दोनों दम्पति निद्रा-सेवन की इच्छा करने लगे ॥204॥ परन्तु उन दोनों के मन एक दूसरे के गुणों का ध्यान करने में निमग्न थे इसलिए निद्रा ईर्ष्या के कारण ही मानो क्रोधवश कहीं भाग गयी थी ॥205॥ तदनन्तर जिसमें पति के कन्धेपर वल्लभा का सिर रखा था, जिसमें भुजाओं का परस्पर आलिंगन हो रहा था, जो पारस्परिक प्रेम से मानो कीलित था, महासुगन्धित श्वासोच्छ्वास के कारण जिसमें मुख-कमल सुवासित थे, विशाल वक्ष-स्थल की चपेट से जिसमें स्तन-मण्डल चक्र के आकार चपटे हो रहे थे, जिसमें पुरुष को जांघों के बीच में स्त्री की एक जाँघ का भार अवस्थित था और इच्छित स्थानों में जहां नाना प्रकार के तकिया लगाये गये थे, ऐसी अवस्था में नागकुमार देव-देवियों के युगल के समान वह अंजना और पवनंजय का युगल किसी तरह निद्रा को प्राप्त हुआ। उस समय उन दोनों के शरीर स्पर्श-जन्य सुखरूपी सागर में निमग्न होने से अत्यन्त निश्चल थे ॥२०६-२०९॥ अथानन्तर जब कुछ-कुछ प्रभात हुआ तब अंजना शय्या से उठकर तथा बगल में निकट बैठकर पति की सेवा करने लगी ॥210॥ अपने शरीर में सम्भोगजन्य सुगन्धि देखकर वह लज्जित हो गयी और साथ ही चूँकि उसके मनोरथ चिरकाल बाद पूर्ण हुए थे इसलिए हर्ष को भी प्राप्त हुई ॥211॥ इस प्रकार जो पहले एक दूसरे के दर्शन-मात्र से भयभीत रहते थे ऐसे उन दम्पतियों की अज्ञातरूप से यथेच्छ उपभोग करते हुए अनेक रात्रियां व्यतीत हो गयीं ॥212॥ दोदुन्दुक नामक देव की उपमा को धारण करनेवाले उन दोनों दम्पतियों की इन्द्रियाँ उस समय अन्य कार्यों से व्यावृत्त होकर परस्पर एक दूसरे की ओर ही लगी हुई थीं ॥213॥ अथानन्तर सुख के सम्भार से जिसने स्वामी का आदेश भुला दिया था ऐसे मित्र को प्रमादी जान उसके हित का चिन्तन करने में तत्पर रहनेवाला बुद्धिमान् प्रहसित मित्र वसन्तमाला के प्रवेश करनेपर आवाज देता हुआ महल के भीतर प्रवेश कर धीरे-धीरे बोला ॥214-215॥ कि हे सुन्दर ! उठो, क्यों शयन कर रहे हो? जान पड़ता है कि मानो तुम्हारे मुख की कान्ति से पराजित होकर ही यह चन्द्रमा अत्यन्त निष्प्रभता को प्राप्त हुआ है ॥ 216॥ मित्र के यह वचन सुनते ही पवनंजय जाग उठा। उस समय उसका शरीर शिथिल था, निद्रा के शेष रहने से उसके नेत्र लाल थे तथा जमुहाई आ रही थी ॥217॥ उसने नेत्र बन्द किये ही वाम हस्त की तर्जनी नामा अंगुली से कान खुजाया तथा दाहिनी भुजा को पहले संकोचकर फिर जोर से फैलाया जिससे चटाक का शब्द हुआ ॥218॥ तदनन्तर लज्जा से जिस के नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसे कान्ता के मुखपर दृष्टि डालता हुआ पवनंजय 'आओ मित्र' ऐसा कहता हुआ शय्या से उठ खड़ा हुआ ॥219॥ तदनन्तर प्रहसित ने हँसकर पूछा कि रात्रि सुख से व्यतीत हुई ? इसके उत्तर में पवनंजय ने भी हँसते हुए प्रहसित से पूछा कि तुम्हारी भी रात्रि कुशलता से बीती ? इस प्रकार वार्तालाप के अनन्तर समस्त वृत्तान्त को जाननेवाला एवं नीतिशास्त्र का पण्डित प्रहसित अंजना के द्वारा बतलाये हुए निकटवर्ती सुखासनपर बैठकर पवनंजय से इस प्रकार बोला कि हे मित्र ! उठो, अब चलें, प्रिया के सम्मान-कार्य में लगे हुए आपके बहुत दिन निकल गये ॥220-222॥ जबतक हम लोगों का वापस आना कोई जान नहीं पाता है तबतक चला जाना ठीक है अन्यथा लज्जा की बात हो जायेगी ॥223॥ तुम्हारा सेनापति रथनूपुरक तथा स्वामी के समीप जाने का इच्छुक राजा कैन्नरगीत तुम्हारी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे हैं ॥224॥ आदर से भरा रावण निरन्तर मन्त्रियों से पूछता रहता है कि पवनंजय कहाँ है ? ॥225॥ मैंने तुम्हारे जाने का यह उपाय रचा था सो इस समय वल्लभा का समागम छोड़ दिया जाये ॥226॥ तुम्हें स्वामी रावण और पिता प्रह्लाद की यह आज्ञा माननी चाहिए। तदनन्तर कुशलतापूर्वक वापस आकर निरन्तर वल्लभा का सम्मान करते रहना ॥227॥ इसके उत्तर में पवनंजय ने कहा कि हे मित्र ! ऐसा ही करता हूँ। तुमने बहुत ठोक कहा है। ऐसा कहकर उसने मंगलाचारपूर्वक शरीरसम्बन्धी क्रियाएँ की ॥228॥ एकान्त में वल्लभा का आलिंगन किया, उसके फड़कते हुए अधरोष्ठ का चुम्बन किया और कहा कि हे देवि ! तुम उद्वेग नहीं करना, मैं जाता हूँ और शीघ्र ही स्वामी की आज्ञा का पालन कर वापस आ जाऊंगा। तुम सुख से रहो। पवनंजय ने यह शब्द बड़ी मधुर आवाज से कहे थे ॥229-230॥ तदनन्तर जो विरह से भयभीत थी तथा जिस के नेत्र पवनंजय के मुखपर लग रहे थे ऐसी अंजनासुन्दरी दोनों हस्तकमल जोड़कर बोली कि हे आर्य पुत्र ! ऋतु काल के बाद ही मैंने आपके साथ समागम किया है इसलिए यदि मेरे गर्भ रह गया तो वह आपके विरह-काल में निन्दा का पात्र होगा ॥231-232॥ अतः आप गुरुजनों को गर्भ सम्भवता की सूचना देकर जाइए। दीर्घदर्शिता मनुष्यों के कल्याण का कारण है ॥233॥ अंजना के ऐसा कहनेपर पवनंजय ने कहो कि हे देवि ! मैं पहले गुरुजनों के समीप तुम्हारे बिना घर से निकला था और ऐसा ही सब को निश्चय हैं। इसलिए इस समय उनके पास जाने और यह सब समाचार कहने में मुझे लज्जा आती है । इसकी चेष्टाएँ

विचित्र हैं ऐसा जानकर लोग मेरी हँसी करेंगे ॥234-235॥ अतः जबतक तुम्हारा यह गर्भ प्रकट नहीं हो पाता है तबतक मैं वापस आ जाऊँगा। विषाद मत करो ॥236॥ हे भद्रे ! प्रमाद दूर करने के लिए मेरे नाम से चिह्नित यह कड़ा ले लो इसमें तुम्हें शान्ति रहेगी ॥237॥ ऐसा कहकर, कड़ा देकर, बार-बार सान्त्वना देकर और वसन्तमाला को ठीक-ठीक सेवा करने का आदेश देकर पवनंजय शय्या से उठा। उस समय उस को वह शय्या सुरतकालीन सम्मदन से टूटे हुए हार के मोतियों से व्याप्त थो, फूलों की सुगन्धित पराग सम्बन्धी भारी सुगन्धि से भौंरे खिंचकर उसपर इकट्ठे हो रहे थे, उसके ऊपर बिछा हुआ चद्दर लहरा रहा था, और वह क्षीरसमुद्र के मध्य में स्थित क्षीर द्वीप के समान जान पड़ती थी। पवनंजय उठा तो सही पर उसका मन अपनी प्रिया में ही लग रहा था ॥238-240॥ पृथ्वीपर अश्रु गिरने से कहीं मंगलाचार में बाधा न आ जाये इस भय से अंजना ने अपने अश्रु नेत्रों में ही समेटकर रखे थे और इसलिए जाते समय वह पवनंजय को आँख खोलकर नहीं देख सकती थी फिर भी मित्र के साथ वह आकाश की ओर उड़ गया ॥241॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि इस संसार में प्राणियों को कभी तो अपने पूर्वोपार्जित पुण्य-कर्म के उदय से इष्ट वस्तु का समागम होने से सुख होता है और कभी पाप-कर्म के उदय से परम दुःख प्राप्त होता है क्योंकि इस संसार में सदा किसी की स्थिति एक-सी नहीं रहती ॥242॥ फिर भी धर्म के प्रसाद से कित ने ही जीवों को जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त निरन्तर सुख प्राप्त होता रहता है और मरने के बाद परलोक में भी उन्हें सुख मिलता रहता है। इसलिए हे भव्य जीवो! निरन्तर अत्यधिक सुख देनेवाले एवं संसार के दुःखरूपी अन्धकार को छेदनेवाले जिनेन्द्रोक्त धर्मरूपी सूर्य को सेवा करो ॥243॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में पवनंजय और अंजना के सम्भोग का वर्णन करनेवाला सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥16॥

## हनूमान् का जन्म

सत्रहवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर कितना ही समय बीतनेपर राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना के शरीर में गर्भ को सूचित करनेवाले विशेष चिह्न प्रकट हुए ॥1॥ उसकी कान्ति सफ़ेदो को प्राप्त हो गयी सो मानो गर्भ में स्थित हनुमान् के यश से ही प्राप्त हुई थी। मदोन्मत्त दिग्गज के समान विभ्रम से भरी उसकी मन्द चाल और भी अधिक मन्द हो गयी ॥2॥ जिनका अग्रभाग श्यामल पड़ गया था ऐसे स्तन अत्यन्त उन्नत हो गये और आलस्य के कारण वह जहाँ बात करना आवश्यक था वहाँ केवल भौंह ऊपर उठा कर संकेत करने लगी ॥3॥ तदनन्तर इन लक्षणों से उसे गर्भवती जान ईर्ष्या से भरी सास ने उससे पूछा कि तेरे साथ यह कार्य किस ने किया है ? ॥4॥ इसके उत्तर में अजना ने हाथ जोड़ प्रणाम कर पहले का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। यद्यपि पवनंजय ने यह वृत्तान्त प्रकट करने के लिए उसे मना कर दिया था तथापि जब उसने कोई दूसरा उपाय नहीं देखा तब विवश हो संकोच छोड़ सब समाचार प्रकट कर दिया ॥5॥ तदनन्तर केतुमती ने कुपित होकर बड़ी निष्ठुरता के साथ पत्थर-जैसी कठोर वाणी में उससे कहा । जब केतुमती अंजना से कठोर शब्द बोल रही थी तब ऐसा जान पड़ता था मानो वह लाठियों से उसे ताड़ित कर रही थी ॥6॥ उसने कहा कि अरी पापिन ! अत्यन्त द्वेष से भरा होने के कारण जो तुझ-जैसा आकार भी नहीं देखना चाहता और तेरा शब्द भी कान में नहीं पड़ने देना चाहता वह धीर-वीर पवनंजय तो आत्मीय जनों से पूछकर घर से बाहर गया हुआ है। हे निलंज्जे ! वह तेरे साथ समागम कैसे की कर सकता है ? ॥7-8॥ चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल सन्तान को दूषित करनेवाली तथा दोनों लोकों में निन्दनीय इस क्रिया को करनेवाली तुझ पापिन को धिक्कार है ॥9॥ जान पड़ता है कि सखी वसन्तमाला ने ही तेरे लिए यह उत्तम बुद्धि दी है सो ठीक ही है क्योंकि वेश्या और कुलटा स्त्रियों की सेविकाएँ इसके सिवाय करती ही क्या हैं ॥10॥ उस समय अंजना ने यद्यपि पवनंजय का दिया कड़ा भी दिखाया पर उस दुष्ट हृदया ने उसका विश्वास नहीं किया। विश्वास तो दूर रहा तीक्ष्ण शब्द कहती हुई अत्यन्त कुपित हो उठी ॥11॥ उसने उस समय कर नामधारी दुष्ट सेवक को बुलाया। सेवक ने आकर उसे प्रणाम किया। तदनन्तर क्रोध से जिस के नेत्र लाल हो रहे थे ऐसी केतुमती ने सेवक से कहा कि हे क्रूर ! तू सखो के साथ इस अंजना को शीघ्र ही ले जाकर राजा महेन्द्र के नगर के समीप छोड़कर बिना किसी विलम्ब के वापस आ जा ॥12-13॥ तदनन्तर आज्ञा पालन में तत्पर रहनेवाला कर केतुमती के वचन सुन अंजना को वसन्तमाला के साथ गाड़ीपर सवार कर राजा महेन्द्र के नगर की ओर चला। उस समय अंजना का शरीर भय से अत्यन्त कम्पित हो रहा था, वह प्रचण्ड वायु के द्वारा झकझोरकर नीचे गिरायी हुई निराश्रय लता के समान

जान पड़ती थी, आगामी काल में प्राप्त होनेवाले भारी दुःख का वह बड़ी व्याकुलता से चिन्तन कर रही थी, उसका हृदय दुःखरूपी अग्नि से मानो पिघल गया था, भय के कारण वह निरुत्तर थी, सखी वसन्तमालापर उसके नेत्र लग रहे थे. वह पनः उदय में आये अशभ कर्म कर्म को मनही-मन निन्दा कर रही थी, और जिसका एक छोर स्तनों के बीच में रखा हुआ था ऐसी स्फटिक की चंचल शला का के समान आँसुओं को धारा छोड़ रही थी ॥14-18॥ तदनन्तर जब दिन समाप्त होने को आया तब क्रूर राजा महेन्द्र के नगर के समीप पहुंचा। वहाँ पहुँचकर उसने अंजना सुन्दरी को नमस्कार कर निम्नांकित मधुर वचन कहे ॥19॥ उसने कहा कि हे देवि ! मैंने तुम्हारे लिए दुःख देनेवाला यह कार्य स्वामिनी की आज्ञा से किया है अतः मुझपर क्रोध करना योग्य नहीं है ॥20॥ ऐसा कहकर उसने सखीसहित अंजना को गाड़ी से उतारकर तथा शीघ्र ही वापस आकर स्वामिनी के लिए सूचित कर किया कि मैं आप को आज्ञा का पालन कर चु का ॥21॥ तदनन्तर उत्तम नारी अंजना को देखकर ही मानो दुःख के भार से जिसका प्रभामण्डल फी का पड़ गया था ऐसा सूर्य अस्त हो गया ॥22॥ पश्चिम दिशा लाल हो गयी सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजना सुन्दरी, निरन्तर रोती रहने के कारण अत्यन्त लाल दिखनेवाले नेत्रों से रक्षा करने के उद्देश्य से सूर्य की ओर देख रही थी सो उन्हीं की लाली से लाल हो गयी थी ॥23॥ तदनन्तर दिशाओं ने आकाश को श्यामल कर दिया सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजना के दःख से दःखी होकर उन्होने अत्यधिक वाष्प ही छोडे थे, उन्हीं से आकाश श्यामल हो गया था ॥24॥ घोंसलों में इकट्ठे होनेवाले पक्षी बड़ी आकुलता से अत्यधिक कोलाहल करने लगे सो ऐसा मालूम होता था मानो अंजना के दुःख से दुःखी होकर ही वे चिल्ला रहे हों ॥25॥ तदनन्तर वह अंजना भूख-प्यास आदि से उत्पन्न होनेवाला दुःख तो भूल गयी और अपवादजन्य महादुःखरूपी सागर में उतरा ने लगी ॥26॥ वह भयभीत होने के कारण जोर से तो नहीं चिल्लाती थी पर मुख के भीतर-ही-भीतर अश्रु ढालती हुई विलाप कर रही थी। तत्पश्चात् सखी ने वृक्षों के पल्लवों से एक आसन बनाया सो वह उसीपर बैठ गयी ॥27॥ उस रात्रि में अजना के नेत्रों में निद्रा नहीं आयी सो ऐसा जान पडता था मानो निरन्तर निकलनेवाले उष्ण आँसूओं से समत्पन्न दाह से डरकर ही नहीं आयी थी ॥28॥ सखी ने हाथ से दाबकर जिसकी थकावट दूर कर दी थी तथा जिसे निरन्तर सान्त्वना दी थी ऐसी अंजना ने बड़े कष्ट के साथ पूर्ण रात्रि बितायी अथवा 'समा समां निशां कृच्छ्रेण नित्ये' एक वर्ष के समान रात्रि बड़े कष्ट से व्यतीत की ॥29॥ तदनन्तर प्रभात हुआ सो लम्बी और गरम-गरम साँसों से जिस के पल्लव अत्यन्त मुरझा गये थे ऐसी शय्या छोड़कर अंजना पिता के महल के द्वारपर पहुंची। छाया की तरह अनुकूल चलनेवाली सखी उसके पीछे-पीछे चल रही थी और लोग उसे दयाभरी दृष्टि से देख रहे थे ॥30-31॥ दुःख के कारण अजना का रूप बदल गया था सो द्वारपाल की पहचान में नहीं आयी। अतः द्वार में प्रवेश करते समय उसने उसे रोक दिया। जिससे वह वहीं खड़ी हो गयी ॥32॥ तदनन्तर सखी ने सब समाचार सुनाया सो उसे जानकर शिलाकपाट नाम का द्वारपाल द्वारपर किसी दूसरे मनुष्य को खडा कर भीतर गया और राजा को नमस्कार कर हाथ से पृथिवी को छूता हुआ एकान्त में पुत्री के आने का समाचार कहने लगा॥३३-३४।। तत्पश्चात राजा महेन्द्र ने समीप में बैठे हए प्रसन्न कीर्ति नामक पुत्र को आज्ञा दी कि पुत्री का बड़े वैभव के साथ शीघ्र ही प्रवेश कराओ ॥35॥ तदनन्तर राजा ने फिर कहा कि नगर की शोभा करायी जाये तथा सेना सजायी जाये मैं स्वयं ही पुत्री का प्रवेश कराऊँगा ॥36॥ तत्पश्चात् द्वारपाल ने पुत्र का जैसा चरित्र सुन रखा था वैसा मुँहपर हाथ लगाकर राजा के लिए कह सुनाया ॥37॥ तदनन्तर पिता पुत्री की लज्जाजनक चेष्टा सुनकर परम क्रोध को प्राप्त हुआ और प्रसन्नकीर्ति नामक पुत्र से बोला ॥38॥ कि उस पापकारिणी को इस नगर से शीघ्र ही निकाल दो। उसका चरित्र सुनकर मेरे कान मानो वज्र से ही ताड़ित हुए हैं ॥39॥ तदनन्तर महोत्साह नाम का सामन्त जो राजा महेन्द्र को अत्यन्त प्यारा था बोला, हे नाथ ! इसके प्रति ऐसा करना योग्य नहीं है ॥40॥ वसन्तमाला ने द्वारपाल के लिए जैसी बात कही है कदाचित् वह वैसी ही हो तो अकारण घृणा करना उचित नहीं है ॥41॥ इसकी सास केतुमती अत्यन्त क्रूर है, लौकिक श्रुतियों से प्रभावित होनेवाली है और बिलकुल ही विचाररहित है। उसने बिना दोष के ही इसका परित्याग किया है ॥42॥ कल्याणरूप आचार का पालन करने में तत्पर रहनेवाली इस पुत्री का जिस प्रकार उस दुष्ट सास ने परित्याग किया है उसी प्रकार यदि आप भी तिरस्कार कर त्याग करते हैं तो फिर यह किसकी शरण में जायेगी ? ॥43॥ जिस प्रकार व्याघ्र के द्वारा देखी हुई हरिणी भयभीत होकर किसी महावन की शरण में पहुंचती है उसी प्रकार यह मुग्ध-वदना सास से भयभीत होकर महावन के समान जो तुम हो सो तुम्हारी शरण में आयी है ॥44॥ यह बाला मानो ग्रीष्मऋतुक सूर्य को किरणों के सन्ताप से ही दुःखी हो रही है और तुम्हें महावृक्ष के समान जानकर तुम्हारे पास आयो है ॥45॥ यह बेचारी स्वर्ग से परिभ्रष्ट लक्ष्मी के समान अत्यन्त विह्वल हो रही है और अपवादरूपी घाम से युक्त हो कल्पलता के समान काँप रही है ॥46॥ द्वारपाल के रोकने से यह अत्यन्त लज्जा को प्राप्त हुई है। इसीलिए इसने लज्जावश

मस्तक के साथ-साथ अपना सारा शरीर वस्त्र से ढंक लिया है ॥47॥ पिता के स्नेह से युक्त होकर जो सदा लाड़-प्यार से भरी रहती थी वह अंजना आज दरवाजे पर रुकी खड़ी है। हे राजन् ! इस द्वारपाल ने यह समाचार आप से कहा है ॥48॥ सो तुम इसपर दया करो, यह निर्दोष है, इसलिए इसका भीतर प्रवेश कराओ। यथार्थ में केतुमती दुष्ट है यह लोक में कौन नहीं जानता? ॥49॥ जिस प्रकार कमलिनी के पत्रपर स्थित पानी के बूंदों का समूह उसपर स्थान नहीं पाता है उसी प्रकार महोत्साह नामक सामन्त के वचन राजा के कानों में स्थान नहीं पा सके ॥50॥ राजा ने कहा कि कदाचित् सखी ने स्नेह के कारण इस सत्य बात को भी अन्यथा कह दिया हो तो इसका निश्चय कैसे की किया जाये ? ॥51॥ इसलिए यह सन्दिग्धशीला है **अर्थ**ात् इसके शोल में सन्देश है अतः जबतक हमारे निर्मल कुल में कलंक नहीं लगता है उसके पहले ही इसे नगर से शीघ्र निकाल दिया जाये ॥52॥ निर्दोष, विनय को धारण करनेवाली, सुन्दर और उत्तम चेष्टाओं से युक्त घर की लड़ की कि से अत्यन्त प्रिय नहीं होती ? पर ये सब गुण इसमें कहाँ रहे ? ॥53॥ वे महान् धैर्य को धारण करनेवाले अत्यन्त निर्मल पुरुष बड़े पुण्यात्मा हैं जिन्हों ने दोषों के मूल कारणभूत स्त्रियों का परिग्रह ही नहीं किया अर्थात् उन्हें स्वीकृत ही नहीं किया ॥54॥ स्त्रियों के स्वीकार करने में ऐसा हो फल होता है / यदि कदाचित् स्त्रो अपवाद को प्राप्त होती है तो पृथिवी में प्रवेश करने की इच्छा होने लगती है ॥55॥ जिनके हृदय में बड़े दुःख से विश्वास उत्पन्न कराया जाता है ऐसे अन्य मनुष्य तो दूर रहे आज मेरा हृदय ही इस विषय में शंकाशील हो गया है ॥56॥ यह अपने पति की द्वेषपात्र है अर्थात् इसका पति इसे आँख से भी नहीं देखना चाहता यह मैंने कई बार सुना है। इसलिए यह तो निश्चित है कि इसके गर्भ की उत्पत्ति पति से नहीं है ॥57॥ इस दशा में यदि और कोई भी इसके लिए आश्रय देगा तो मैं उसे प्राणरहित कर दूंगा ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है ॥58॥ इस प्रकार कुपित हुए राजा ने जब तक सरों को पता नहीं चल पाया उसके पहले ही अंजना को सखी के साथ द्वार से बाहर निकलवा दिया। उस समय अजना का शरीर दुःख से भरा हुआ था ॥59॥ आश्रय पा ने को इच्छा से वह जिस-जिस आत्मीयजन के घर जाती थी राजा को आज्ञा से वह वहीं-वहीं के द्वार बन्द पाती थी॥६॥ जो ठीक हो है क्योंकि जहाँ पिता हो क्रुद्ध होकर तिरस्कार करता है वहाँ उसी के अभिप्राय के अनुसार कार्य करनेवाले दूसरे लोगों का क्या विश्वास किया जा सकता है ?-उन में क्या आशा रखी जा सकती है ? ॥61॥ इस तरह सब जगह से निकाली गयी अंजना अत्यन्त अधीर हो गयी। अश्रुओं के समूह से उसका शरीर गीला हो गया। उसने सखी से कहा कि हे माता! हम दोनों यहाँ भटकती हुई क्यों पड़ी हैं ? हे सखि! हमारे पापोदय के कारण यह समस्त संसार पाषाणहृदय हो गया है अर्थात् सब का हृदय पत्थर के समान कड़ा हो गया है ॥62-63॥ इसलिए हम लोग उसी वन में चलें । जो कुछ होना होगा सो वहीं हो लेगा। इस अपमान से तथा तज्जन्य दुःख से तो मर जाना ही परम सुख है ॥64॥ इतना कहकर अंजना सखी के साथ उसी वन में प्रविष्ट हो गयी जिसमें केतुमती का सेवक उसे छोड़ गया था। जिस प्रकार कोई मृगी सिंह से भयभीत हो वन से भागे और कुछ समय बाद भ्रान्तिवश उसी वन में फिर जा पहुँचे उसी प्रकार फिर से अंजना का वन में जाना हुआ ॥ 65॥ दुःख के भार से पीड़ित अंजना जब वायु और घाम से थक गयी तब वन के समीप बैठकर विलाप करने लगी ॥66॥ हाय-हाय ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ, अकारण वैर रखनेवाले दुःखदायी विधाता ने मुझे यों ही नष्ट कर डाला । बड़े दुःख की बात है, मैं किसकी शरण गहूँ ॥ ६७॥ दौर्भाग्यरूपी सागर को पार करने के बाद मेरा नाथ किसी तरह प्रसन्नता को प्राप्त हुआ सो दुष्कर्म से प्रेरित हो अन्यत्र चला गया ॥ 68॥ जिन्हें सास आदि दुःख पहुँचाती हैं ऐसी स्त्रियाँ जाकर पिता के घर रहने लगती हैं पर मेरे दुर्भाग्य ने पिता के घर रहना भी छुड़ा दिया ॥69॥ माता ने भी मेरी कुछ भी रक्षा नहीं की सो ठीक ही है क्योंकि कुलवती स्त्रियां अपने भर्तार के अभिप्रायानुसार ही चलती हैं ॥70॥ हे नाथ ! तुमने कहा था कि तुम्हारा गर्भ प्रकट नहीं हो पायेगा और मैं आ जाऊंगा सो वह वचन याद क्यों नहीं रखा ? तुम तो बड़े दयालु थे ॥71॥ हे सास ! बिना परीक्षा किये हो क्या मेरा त्याग करना तुम्हें उचित था ? जिनके शील में संशय होता है उनकी परीक्षा करने के भी तो बहुत उपाय हैं ॥72॥ हे पिता! आप ने मुझे बाल्यकाल में गोद में खिलाया है और सदा बड़े लाड़-प्यार से रखा है फिर परीक्षा किये बिना ही मेरा परित्याग करने की बुद्धि आप को कैसे की हो गयी ?॥73॥ हाय माता ! इस समय तेरे मुख से एक बार भी उत्तम वचन क्यों नहीं निकला? तूने वह अनुपम प्रीति इस समय क्यों छोड़ दी ? ॥74॥ हे भाई! मैं तेरी एक ही माता के उदर में वास करनेवाली अत्यन्त दुःखिनी बहन हूँ सो मेरी रक्षा करने के लिए तेरी कुछ भी चेष्टा क्यों नहीं हुई ? तू बड़ा निष्ठुर हृदय है ॥75॥ जब बन्धुजनों में प्रधानता रखनेवाले तुम लोगों की यह दशा है तब जो बेचारे दूर के बन्धु हैं वे तो कर ही क्या सकते हैं ? ॥76॥ अथवा इसमें तुम सब का क्या दोष है ? पुण्यरूपी ऋतु के समाप्त होनेपर अब मेरा यह पापरूपी वृक्ष फलीभूत हुआ है सो विवश होकर मुझे इसकी सेवा करनी ही है ॥77॥ अंजना का विलाप सुनकर जिस के हृदय का धैर्य दूर हो गया था ऐसी सखी वसन्तमाला भी प्रतिध्वनि के समान विलाप कर रही थी॥

७८॥ यह अंजना बड़ी दीनता के साथ इतने जोर-जोर से विलाप कर रही थी कि उसे सुनकर वन की हरिणियों ने भी आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें छोड़ी थीं ॥7॥ तदनन्तर चिरकाल तक रो ने से जिस के नेत्र लाल हो गये थे ऐसी अंजना का दोनों भुजाओं से आलिंगन कर बुद्धिमती सखी ने कहा कि हे स्वामिनि ! रोना व्यर्थ है। पूर्वोपार्जित कर्म उदय में आया है तो उसे आँख बन्द कर सहन करना हो योग्य है ॥ 80-81॥ हे देवि ! समस्त प्राणियों के पीछे, आगे तथा बगल में कर्म विद्यमान हैं इसलिए यहाँ शोक का अवसर ही क्या है ? ॥82॥ जिनके शरीरपर सैकड़ों अप्सराओं के नेत्र विलीन रहते हैं ऐसे देव भी पुण्य का अन्त होनेपर परम दुःख प्राप्त करते हैं ॥83॥ लोक अन्यथा सोचते हैं और अन्यथा ही फल प्राप्त करते हैं । यथार्थ में लोगों के कार्यपर दृष्टि रखनेवाला विधाता ही परम गुरु है ॥84॥ कभी तो यह विधाता प्राप्त हुई हितकारी वस्तु को क्षण भर में नष्ट कर देता है और कभी ऐसी वस्तु लाकर सामने रख देता है जिसकी मन में कल्पना ही नहीं थी ॥85॥ कर्मों की दशाएँ बड़ी विचित्र हैं। उनका पूर्ण निश्चय कौन कर पाया है ? इसलिए तुम दुःखी होकर गर्भ को पीड़ा मत पहुँचाओ ॥86॥ हे देवि ! दाँतों से दांतों को दबाकर और मन को पत्थर के समान बनाकर जिसका घटना अशक्य है ऐसा स्वोपाजित कर्म का फल सहन करो ॥87॥ वास्तव में आप स्वयं विशुद्ध हैं अतः आपके लिए मेरा शिक्षा देना निन्दा के समान जान पड़ता है। तुम्हीं कहो कि आप क्या नहीं जानती हैं ? |88॥ इतना कहकर सान्त्वनादेने में तत्पर रहनेवाली सखी ने अपने काँपते हुए हाथों से उसके लाल-लाल नेत्र पोंछ दिये ॥89॥ फिर कहा कि हे देवि ! यह प्रदेश आश्रय से रहित है अर्थात् यहाँ ठहर ने योग्य स्थान नहीं है इसलिए उठो इस पर्वत के पास चलें ॥90॥ यहाँ किसी ऐसी गुफा में जिसमें दुष्ट जीव नहीं पहुँच सकेंगे, गर्भ के कल्याण के लिए कुछ समय तक निवास करेंगी ॥91॥ तदनन्तर सखी का उपदेश पाकर वह पैदल ही मार्ग चलने लगी। क्योंकि गर्भ के भार के कारण वह आकाश में चलने के लिए समर्थ नहीं थी ॥92॥ वह पर्वत की समीपवर्तिनी महावन की भूमि में चलती-चलती मातंगमालिनी नाम की उस भूमि में पहुंची जो हिंसक जन्तुओं से व्याप्त थी और उनके शब्दों से भय उत्पन्न कर रही थी। बड़े-बड़े वृक्षों ने जहाँ सूर्य को किरणों का समूह रोक लिया था, जो छोटी-छोटी पहाड़ियों से व्याप्त थी, डाभ को अनियों के कारण जहाँ चलना कठिन था, जो हाथियों की श्रेणियों से युक्त थी तथा शरीर की बात तो दूर रही मन से भी जहाँ पहुँचना कठिन था। अंजना बड़े कष्ट से एक-एक डग रखकर चल रही थी ॥93-95॥ यद्यपि उसकी सखी आकाश में चलने में समर्थ थी तो भी वह प्रेमरूपी बन्धन में बंधी होने से छाया के समान पैदल ही उसके साथसाथ चल रही थी ॥ 16॥ उस भयानक सघन अटवी को देखकर अंजना का समस्त शरीर काँप उठा। वह अत्यन्त भयभीत हो गयी ॥97॥ __ तदनन्तर उसे व्यग्र देख सखी ने हाथ पकड़कर बड़े आदर से कहा कि स्वामिनि ! डरो मत, इधर आओ ॥98॥ अंजना सहारा पा ने की इच्छा से सखी के कन्धेपर हाथ रखकर चल रही थी पर उसका हाथ सखी के कन्धे से बार-बार खिसककर नीचे आ जाता था। चलते-चलते जब कभी डाभ की अनी पैर में चुभ जाती थी तब बेचारी आंख मींचकर खड़ी रह जाती थी ॥99॥ वह जहाँ से पैर उठाती थी दुःख के भार से चीखती हुई वहीं फिर पैर रख देती थी। वह अपना शरीर बड़ी कठिनता से धारण कर रही थी ॥१००॥ वेग से बहते हुए झरनों को वह बड़ी कठिनाई से पार कर पाती थी। उसे निष्ठर व्यवहार करनेवाले अपने समस्त आत्मीयजनों का बार-बार स्मरण हो आता था ॥101॥ वह कभी अपनी निन्दा करती थी तो कभी भाग्य को बार-बार दोष देती थी। लताएँ उसके शरीर में लिपट जाती थीं सो ऐसा जान पड़ता था कि दया से वशीभूत होकर मानो उसका आलिंगन ही करने लगती थीं ॥102॥ उसके नेत्र भयभीत हरिणी के समान चंचल थे, थकावट के कारण उसके शरीर में पसीना निकल आया था, काँटेदार वृक्षों में वस्त्र उलझ जाता था तो देर तक उसे ही सुलझाती खड़ी रहती थी ॥ 103॥ उसके पैर रुधिर से लाल-लाल हो गये थे, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो लाख का महावर ही उन में लगाया गया हो। शोकरूपी अग्नि को दाह से उसका शरीर अत्यन्त सांवला हो गया था ॥104॥ पत्ता भी हिलता था तो वह भयभीत हो जाती थी, उसका शरीर काँपने लगता था, भय के कारण उसकी दोनों जाँघे अकड़ जाती थीं और खेद के कारण उनका उठाना कठिन हो जाता था ॥105॥ अत्यन्त प्रिय वचन बोलनेवाली सखी उसे बार-बार बैठाकर विश्राम कराती थी। इस प्रकार दुःख से भरी अंजना धीरे-धीरे पहाड़ के समीप पहुँची ॥ 106॥ वहाँ तक पहुँच ने में वह इतनी अधिक थक गयी कि शरीर सम्भालना भी दूभर हो गया। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे और वह बहुत भारी खेद के कारण सखी की बात अनसुनी कर बैठ गयी ॥107॥ कहने लगी कि अब तो मैं एक डग भी चलने के लिए समर्थ नहीं है अतः यही ठहरो जाती हैं। यदि यहाँ मरण भी हो जाय तो अच्छा है ॥108॥ तदनन्तर प्रेम से भरी चतुर सखी हृदय को प्रिय लगनेवाले वचनों से उसे सान्त्वना देकर तथा कुछ देर विश्राम कराकर प्रणामपूर्वक इस प्रकार बोली ॥109॥ हे देवि ! देखो-देखो यह पास ही उत्तम गुफा दिखाई दे रही है। प्रसन्न होओ, उठो, हम दोनों उस गुफा में सुख से ठहरेंगी ॥110॥ यहाँ कर चेष्टाओं को धारण करनेवाले अनेक

जीव बिचर रहे हैं और तुम्हें गर्भ की भी रक्षा करनी है। इसलिए हे स्वामिनि ! गलती न करो ॥111॥ ऐसा कहनेपर सन्ताप से भरी अंजना सखी के अनुरोध से तथा वन के भय से पुनः चलने के लिए उठी ॥112॥ उस समय ये दोनों स्त्रियाँ वन में कष्ट तो उठाती रहीं पर पवनंजय के पास नहीं गयीं सो इसमें उनकी महानुभावता, आज्ञा का अभाव अथवा लज्जा ही कारण समझना चाहिए ॥113॥ तदनन्तर सखी वसन्तमाला हाथ का सहारा देकर जिस किसी तरह उस ऊंची-नीची भूमि को पार कराकर बड़े कष्ट से अंजना को गुफा के द्वार तक ले गयी ॥114॥ ऊँचे-नीचे पत्थरों में चलने के कारण वे दोनों ही बहुत थक गयी थीं और साथ ही उस गुफा में सहसा प्रवेश करने के लिए डर भी रही थी इसलिए क्षणभर के लिए बाहर ही बैठ गयीं ॥115॥ बहुत देर तक विश्राम करने के बाद उन्होने अपनी मन्दगामिनी दृष्टि गुफापर डाली। उनकी वह दृष्टि मुरझाये हुए लाल, नीले और सफेद कमलों की माला के समान जान पड़ती थी ॥116॥ तदनन्तर उन्होने शुद्ध सम और निर्मल शिला-तलपर पर्यंकासन से विराजमान चारणऋद्धि के धारक मुनिराज को देखा ॥117॥ उन मुनिराज का श्वासोच्छ्वास निश्चल अथवा नियमित था। उन्होने अपने नेत्र नासि का के अग्रभागपर लगा रखे थे, उनकी शरीरयष्टि शिथिल होने पर भी सीधी थी, और वे स्वयं स्थाणु अर्थात् ठूठ के समान हलन-चलन से रहित थे ॥118॥ उन्होने अपनी गोद में स्थित वाम हाथकी हथेलीपर दाहिना हाथ उत्तान रूप से रख छोड़ा था, वे स्वयं निश्चल थे और उनका मन समुद्र के समान गम्भीर था ॥119॥ वे जिनागम के अनुसार वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ध्यान कर रहे थे, वायु के समान सर्व-परिग्रह से रहित थे और आकाश के समान निर्मल थे ॥120॥ उन्हें देखकर किसी पर्वत के शिखर की आशंका उत्पन्न होती थी। वे महान् धैर्य के धारक थे तथा उनका शरीर सौम्य होनेपर भी देदीप्यमान था। बहुत देर तक देख ने के बाद उन्होने निश्चय कर लिया कि यह उत्तम मुनिराज हैं ॥121॥ तदनन्तर जिन्हों ने पहले अनेक बार मुनियों की सेवा की थी ऐसी वे दोनों स्त्रियाँ हर्ष से मुनिराज के समीप गयीं और क्षण-भर में अपना सब दुःख भूल गयीं ॥122॥ उन्होने भावपूर्वक तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, हाथ जोड़कर नमस्कार किया और परम बन्धु के समान मुनिराज को पाकर उनके नेत्र खिल उठे ॥123॥ जिस समय ये पहुंचीं उसी समय मुनिराज ने स्वेच्छा से ध्यान समाप्त किया सो ठीक ही है क्योंकि भव्य जीवों की क्रिया अवसर के अनुसार ही होती है ॥124॥ तत्पश्चात् जिनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे और जिन्हों ने अपने अश्रुरहित निश्चल नेत्र मुनिराज के चरणों में लगा रखे थे ऐसी दोनों सखियों ने कहा कि हे भगवन् ! हे कुशल अभिप्राय के धारक ! हे उत्तम चेष्टाओं से सम्पन्न ! आपके शरीर में कुशलता तो है ? क्योंकि समस्त साधनों का मूल कारण यह शरीर ही है ॥125-126॥ हे गुणों के सागर! आपका तप उत्तरोत्तर बढ़ तो रहा है। इसी तरह इन्द्रियविजय के धारक ! आपका विहार उपसर्गरहित तथा महाक्षमा से युक्त तो है ? ॥127॥ हे प्रभो! हम आप से जो इस तरह कुशल पूछ रही हैं सो ऐसी पद्धति है यही ध्यान रखकर पूछ रही हैं अन्यथा आप-जैसे मनुष्य किस कुशल के योग्य नहीं हैं ? अर्थात् आप समस्त कुशलता के भण्डार हैं ॥128॥ आप-जैसे पुरुषों को शरण में पहुंचे हुए लोग कुशलता से युक्त हो जाते हैं; किन्तु स्वयं अपने-आपके विषय में अच्छे और बुरे पदार्थों को चर्चा ही क्या है ? ॥129॥ इस प्रकार कहकर वे दोनों चुप हो रहों। उस समय उनके शरीर विनय से नम्रीभूत थे। मुनिराज ने जब उनकी ओर देखा तो वे सर्व प्रकार के भय से रहित हो गयीं ॥130॥

जो अथानन्तर मुनिराज दाहिना हाथ ऊपर उठाकर अमृत के समान प्रशान्त एवं गम्भीर वाणी में इस प्रकार कहने लगे कि हे कल्याणि ! कर्मों के प्रभाव से मेरा सर्वप्रकार कुशल है। हे बाले! निश्चय से यह सब अपने-अपने कर्मों की चेष्टा है ॥१३१-१३२॥ कर्मों की लीला राजा महेन्द्र की यह निरपराधिनी पुत्री भाइयों द्वारा निर्वासितपना को प्राप्त हुई **अर्थ**ात् घर से निकाली जाकर अत्यन्त अनादर को प्राप्त हुई ॥ 133॥ तदनन्तर बिना कहे ही जिन्हों ने सब वृत्तान्त जान लिया था ऐसे महामुनिराज को नमस्कार कर बड़े आदर से वसन्तमाला बोली। उस समय वसन्तमाला का मन कुतूहल से भर रहा था, वह स्वामिनी का भला करने में तत्पर थी। और अपने नेत्रों की कान्ति से मानो मुनिराज के चरणों का अभिषेक कर रही थी ॥134-135॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मैं कुछ प्रार्थना कर रही हूँ सो कृपा कर उसका उत्तर कहिए। क्योंकि आप-जैसे पुरुषों की क्रियाएँ परोपकार-बहुल ही होती हैं ॥136॥ इस अंजना का भर्ता किस कारण से चिरकाल तक विरक्त रहा और अब किस कारण से अनुरक्त हुआ है ? यह अंजना महावन में किस कारण से दुःख को प्राप्त हुई है ? और मन्द भाग्य का धारक कौन-सा जीव इस को कुक्षि में आया है जिसने कि सुख भोगनेवाली इस बेचारी को प्राणों के संशय में डाल दिया है ॥ 137-138॥ तदनन्तर मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों में निपुण अमितगति नामक मुनिराज अंजना का यथावत् वृत्तान्त कहने लगे। सो ठीक ही है क्योंकि बुद्धिमानों की यह वृत्ति है ॥139॥ उन्होने कहा कि हे बेटी ! सुन, इस अंजना ने अपने पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से जिस कारण यह ऐसा दुःख पाया है उसे मैं कहता हूँ ॥140॥

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के मन्दर नामक नगर में एक प्रियनन्दी नाम का सद्गृहस्थ रहता था ॥141॥ उसकी स्त्री का नाम जाया था। उस स्त्री से प्रियनन्दो के दमयन्त नाम का ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ था जो महासौभाग्य से सम्पन्न तथा कल्याणकारी गुणरूपी आभूषणों से विभूषित था ॥142॥ तदनन्तर वसन्त ऋतु आनेपर नगर में बड़ा भारी उत्सव हुआ सो नगरवासी लोगों से व्याप्त नन्दनवन के समान सुन्दर उद्यान में दमयन्त भी अपने मित्रों के साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा कर रहा था। उस समय उसका शरीर सुगन्धित चूर्ण से सफेद था तथा कुण्डलादि आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥143-144॥ तदनन्तर वहाँ ठहरकर क्रीड़ा करते हुए दमयन्त ने समीप में ही विद्यमान ध्यान, स्वाध्याय आदि क्रियाओं में तत्पर दिगम्बर मुनिराज देखे ॥145॥ उन्हें देखते ही जिस प्रकार सूर्य से देदीप्यमान किरण निकलती है उसी प्रकार अपनी गोष्ठी से निकलकर अतिशय देदीप्यमान दमयन्त मुनिसमूह के पास पहुँचा / वह मुनियों का समूह मेरुके शिखरों के समूह के समान निश्चल था ॥146॥ तदनन्तर दमयन्त ने मुनिराज की वन्दना कर उनसे विधि-पूर्वक धर्म का उपदेश सुना और सम्यग्दर्शन से सम्पन्न होकर नियम आदि धारण किये ॥147॥ किसी एक समय उसने साधुओं के लिए सप्तगुणों से युक्त पारणा करायी और अन्त में मरकर स्वर्ग में देवपर्याय पाया ॥148॥ वहाँ वह पूर्वाचरित नियम और दान के प्रभाव से उत्तम भोग भोग ने लगा। सैकड़ों देवियों के नेत्रों के समान कान्तिवाले नील कमलों की माला से वह वहां सदा अलंकृत रहता था ॥149॥ वहाँ से च्युत होकर वह इसी जम्बूद्वीप के मृगांकनामा नगर में राजा हरिचन्द्र और प्रियंगुलक्ष्मी नामक रानी से सिंहचन्द्र नाम का कला और गणों में निपूण पूत्र हआ। सिंहचन्द्र यद्यपि एक था तो भी समस्त प्राणियों के हृदयों में विद्यमान था ॥150-151॥ उस पर्याय में भी उसने साधुओं से सद्बोध पाकर भोगों का त्याग कर दिया था जिससे आयु के अन्त में मरकर स्वर्ग गया ॥152॥ वहाँ वह देवियों के मुखरूपी कमल-वन को विकसित करने के लिए सूर्य के समान था और संकल्प मात्र से प्राप्त होनेवाले उत्तम सुख का उपभोग करता था ॥153॥ वहां से च्युत होकर इसी भरतक्षेत्र के विजयाध पर्वतपर अरुण नामक नगर में राजा सुकण्ठ की कनकोदरी नामा रानी से सिंहवाहन नाम का पुत्र हुआ। इस सिंहवाहन ने गुणों के द्वारा समस्त लोगों का मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया था ॥154-155॥ अप्सराओं के विभ्रम को चुरानेवाली स्त्रियों के आलिंगन से परमाह्लाद को प्राप्त हुआ सिंहवाहन वहाँ देवों के समान उदार भोगों का अनुभव करने लगा ॥156॥ किसी एक समय श्रीविमलनाथ भगवान् के तीर्थ में उसे सद्बोध प्राप्त हुआ सो मेघवाहन नामक पुत्र के लिए राज्य-लक्ष्मी सौंप संसार से विरक्त हो गया। तदनन्तर जो बहुत भारी संवेग से युक्त था और संसार की असारता को जिसने अच्छी तरह समझ लिया था ऐसा सिंहवाहन लक्ष्मीतिलक नामक मुनि का शिष्य हो गया **अर्थ**ात् उनके पास उसने दीक्षा धारण कर ली ॥157-158॥ जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए उत्तम व्रत का अच्छी तरह पालन कर उसने अनित्य आदि भावनाओं के चिन्तवन से अपनी आत्मा को प्रभावित किया ॥159॥ शरीर का आदर छोडकर उसने ऐसा कठिन तपश्चरण किया कि का जिसका विचार भी नहीं कर सकते थे। वह सदा रत्नत्रय के प्रभाव से उत्पन्न होनेवाली परमार्थता को धारण करता था ॥160॥ नाना प्रकार की ऋद्धियाँ उत्पन्न होने से यद्यपि वह अनिष्ट पदार्थों का निवारण करने में समर्थ था तो भी शान्त हृदय से उसने परीषहरूपी घोर शत्रुओं का कष्ट सहन किया था ॥161॥ आयु का अन्त आनेपर वह निर्मल ध्यान में लीन हो गया और ज्योतिषी देवों का पटल भेदन कर अर्थात् उससे ऊपर जाकर लान्तव स्वर्ग में उत्कृष्ट देव हुआ ॥162॥ वहाँ वह उत्कृष्ट स्थिति का धारी हुआ और छद्मस्थ जीवों के ज्ञान तथा वचन दीनों से परे रहनेवाले इच्छानुकूल भोगों का उपभोग करने लगा ॥163॥ परम अभ्युदय से सहित तथा सुख का पात्रभूत, इसी देव का जीव लान्तव स्वर्ग से च्युत होकर बा की बचे पुण्य से प्रेरित होता हुआ इस अंजना के गर्भ में प्रविष्ट हुआ है ॥164॥ इस प्रकार जो गर्भ तेरी स्वामिनी के शरीर में प्रविष्ट हुआ है उसका वर्णन किया। अब हे शुभ चेष्टा की धारक वसन्तमाले ! इसके विरह-जन्य दुःख का कारण कहता हूँ सो सुन ॥165॥ जब यह अंजना कनकोदरी के भव में थी तब इसकी लक्ष्मी नामक सौत थी। उसकी आत्मा सम्यग्दर्शन से पवित्र थी और वह सदा मनियों की पूजा करने में तत्पर रहती थी॥१६६।। उसने घर के एक भाग में देवाधिदेव जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापित कराकर भक्तिपूर्वक मुख से स्तुतियाँ पढ़ती हुई उसकी पूजा की थी ॥167॥ कनकोदरी महादेवी थी इसलिए उसने अभिमानवश सोत के प्रति बहुत ही क्रोध प्रकट किया। इतना ही नहीं जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को घर के बाहरी भाग में फिंकवा दिया ॥168॥ इसी बीचमे संयमश्री नामक आर्यिका ने भिक्षा के लिए इसके घर में प्रवेश किया। संयमश्री अपने तप के कारण समस्त संसार में प्रसिद्ध थीं ॥169॥ तदनन्तर जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का अनादर देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। पारणा करने से उनका मन हटा गया ॥170॥ तथा इस अंजना का जीव जो कनकोदरी था उसे मिथ्यात्वग्रस्त देख उन्हें परम करुणा उत्पन्न हुई सो ठीक ही है क्योंकि साधुवर्ग सभी प्राणियों का कल्याण चाहता है ॥171॥ गुरु-भक्ति से प्रेरित हुए साधुजन बिना पूछे भी अज्ञानी प्राणियों का

हित करने के लिए धर्मोपदेशदेने लगते हैं ॥172॥ तदनन्तर शीलरूप आभूषण को धारण करनेवाली संयमश्री आर्यि का अत्यन्त मधुर वाणी में कनकोदरी से बोली कि हे भद्रे ! मन को उदार कर सुन । तू परम कान्ति को धारण करनेवाली है, राजा तेरा सम्मान करता है, तथा तेरा शरीर भोगों का आयतन है ॥173-174॥ चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव सदा दुःखी रहता है। जब अशुभ कर्म का उदय शान्त होता है तभी यह उत्तम मनुष्यपर्याय को प्राप्त होता है ॥175॥ हे शोभने ! तू पुण्योदय से मनुष्य योनि को प्राप्त हुई है अतः घृणित आचार करनेवाली न हो। तू उत्तम क्रिया करने योग्य है अर्थात् अच्छे कार्य करना हो तुझे उचित है ॥176॥ जो प्राणी मनुष्यपर्याय पाकर भी शुभ कार्य नहीं करता है. उस मोही के हाथ में आया हुआ रत्न यों ही नष्ट हो जाता है ॥177॥ मन, बचन, काय की शुभ प्रवृत्ति ही प्राणियों का हित करती है और अशुभ प्रवृत्ति अहित करती है ॥178॥ इस संसार में निन्दित आचार के धारक मनुष्यों की ही बहुलता है पर जो आत्महित का लक्ष्य कर शुभ कार्य में प्रवृत्त होते हैं वे उत्तम कहलाते हैं ॥179॥ जो स्वयं कृतकृत्य होकर भी उपदेश देकर भव्य प्राणियों को संसाररूपी महासागर से तारते हैं, जो सर्वोत्कृष्ट हैं तथा धर्मचक्र के प्रवर्तक हैं ऐसे अरहन्त भगवान् की प्रतिमा का जो तिरस्कार करते हैं उन मोही जीवों को अनेक भवों तक साथ जानेवाला जो दुःख प्राप्त होता है उसे पूर्ण रूप से कहने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ? ॥180-182॥ अरहन्त भगवान् तो माध्यस्थ्य भाव को प्राप्त हैं इसलिए यद्यपि इन्हें शरणागत जीवों में न प्रसन्नता होती है और ने अपकार करनेवालोंपर द्वेष ही होता है ॥183॥ तो भी जीवों को उपकार और अपकार के निमित्त से होनेवाले अपने शुभ-अशुभ परिणाम से सुखदुःख की उत्पत्ति होती है ॥184॥ जिस प्रकार यह जीव अग्नि की सेवा से अपना शीत-जन्य दुःख दूर कर लेता है और भोजन तथा जल का सेवन कर भूख-प्यास की पीड़ा से छुट्टी पा जाता है यह स्वाभाविक बात है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने से प्राणियों को सुख उत्पन्न होता है और उनका तिरस्कार करने से परम दुःख प्राप्त होता है यह भी स्वाभाविक बात है ॥ 185-186॥ यह निश्चित जानो कि संसार में जो भी दुःख दिखाई देता है वह पाप से उत्पन्न हुआ है और जो भी सुख दृष्टिगोचर है वह पूर्वोपार्जित पुण्य कम से उपलब्ध है ॥187॥ तूने जो यह वैभव, राजा पति और आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला पुत्र पाया है सो पूण्य के द्वारा ही पाया है। तु प्राणियों में प्रशंसनीय है ॥188॥ इसलिए ऐसा कार्य कर जिससे फिर भी तुझे सुख प्राप्त हो। हे भव्ये ! तू मेरे कहने से सूर्य के रहते हुए गड्ढे में मत गिर ॥189॥ इस पाप के कारण घोर वेदना से युक्त नरक में तेरा निवास हो और मैं तुझे सम्बोधित न करूं यह मेरा बड़ा प्रमाद कहलायेगा ॥190॥ आर्यि का के ऐसा कहनेपर कनकोदरी नरकों में उत्पन्न होनेवाले दुःख से भयभीत हो गयी। उसने उसी समय शुद्ध हृदय से उत्तम सम्यग्दर्शन धारण किया ॥191॥ गृहस्थ का धर्म और शक्ति अनुसार तप भी उसने स्वीकृत किया। उसे ऐसा लग ने लगा मानो धर्म का समागम होने से मैंने दूसरा ही जन्म पाया हो ॥192॥ अर्हन्त भगवान् की प्रतिमा को उसने पूर्व स्थानपर विराजमान कराया और नाना प्रकार के सुगन्धित फूलों से उसकी पूजा की ॥193॥ कनकोदरी को धर्म में लगाकर अपने आप को कृतकृत्य मानती हई संयमश्री आर्यि का हर्षित हो अपने योग्य स्थानपर चली गयीं ॥194॥ घर में अनुराग रखनेवाली कनकोदरी भी पुण्योपार्जन कर आयु के अन्त में स्वर्ग गयी और वहाँ उत्तमोत्तम भोग भोगकर वहाँ से च्युत हो महेन्द्र नगर में राजा महेन्द्र की मनोवेगा नामा रानी से यह अंजना नामक पुत्री हुई है ॥195-196॥ इसने जन्मान्तर में जो पुण्य किया था उसके अवशिष्ट अंश से यह यहाँ सम्पन्न एवं विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुई है तथा उत्तम वर को प्राप्त हुई है ॥197॥ इसने त्रिकाल में पूजनीय जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा को कुछ समय तक घर से बाहर किया था उसी से इसे यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥198॥ विवाह के पूर्व जब इसके आगे मिश्रकेशी विद्युत्प्रभ के गुणों की प्रशंसा और पवनंजय को निन्दा कर रही थी तब पवनंजय अपने मित्र के साथ रात्रि के समय झरोखे से छिपा खड़ा था सो यह सब सुनकर इस से रोष को प्राप्त हो गया और उस रोष के कारण ही उसने पहले इसे दुःख उपजाया है ॥199-200॥ जब वह युद्ध के लिए गया तो अत्यन्त मनोहर मानसरोवरपर ठहरा। वहाँ विरह से छटपटाती हुई चकवी को देखकर अंजनापर दयालु हो गया ॥201॥ उसके हृदय में जो दया उत्पन्न हुई थी वह सखी के समान उसे शीघ्र ही समयपर इस सुन्दरी के पास ले आयी और वह गर्भाधान कराकर पिता की आज्ञा पूर्ण करने के लिए चला गया ॥202 महादयालु मुनिराज इतना कहकर वाणी से अमृत झराते हुए के समान अंजना से फिर कहने लगे कि हे बेटी ! कर्म के प्रभाव से ही तूने यह दुःख पाया है इसलिए फिर कभी ऐसा निन्द्य कार्य नहीं करना ॥203-204॥ इस पृथ्वीतलपर जो-जो सुख उत्पन्न होते हैं वे सब विशेषकर जिनेन्द्र देव की भक्ति से ही उत्पन्न होते हैं ॥205॥ इसलिए तु संसार से पार करनेवाले जिनेन्द्र देव की भक्त हो, शक्ति के अनुसार नियम ग्रहण कर और मुनियों की पूजा कर ॥206॥ भाग्य से तू उस समय संयमश्री आर्या के द्वारा प्रदत्त बोधि को प्राप्त हुई थी। आर्या ने तुझे बोधि क्या दी थी मानो अधोगति में जाती हुई तुझे हाथ का सहारा

देकर ऊपर खींच लिया था ॥207॥ यह महाभाग्यशाली गर्भ तेरे उदर में आया है सो आगे चल कर अनेक उत्तमोत्तम कल्याणों का पात्र होगा ॥208॥ हे शोभने त इस पत्र से परम विश्रति को प्राप्त होगी। सब देव मिलकर भी इसका पराक्रम खण्डित नहीं कर सकेंगे ॥209॥ थोड़े ही दिनों में तुम्हारा पति के साथ समागम होगा। इसलिए हे शुभे ! चित्त को सुखी रखो और प्रमादरहित होओ ॥210॥ मुनिराज के ऐसा कहनेपर जो अत्यन्त हर्षित हो रही थीं तथा जिनके नेत्रकमल खिल रहे थे ऐसी दोनों सखियों ने मुनिराज को बार-बार प्रणाम किया ॥211॥ तदनन्तर निर्मल हृदय के धारक मुनिराज उन दोनों के लिए आशीर्वाद देकर आकाश-मागं से संयम के योग्य स्थानपर चले गये ॥212॥ वे उत्तम मुनिराज उस गुहा में पर्यकासन से विराजमान थे। इसलिए आगे चलकर वह गुहा पृथिवी में 'पयंक गुहा' इस नाम को प्राप्त हो गयी ॥213॥ इस प्रकार राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना अपने भवान्तर सुन आश्चर्य से चकित हो गयी। उसने पूर्वभव में जो निन्द्य कार्य किया था उसकी वह बार-बार निन्दा करती रहती थी ॥214॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! मुनिराज के संगम से जो अत्यन्त पवित्र हो चुकी थी ऐसी उस गुफा में अंजना प्रसवकाल की प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी ॥215॥ विद्या-बल से समृद्ध वसन्तमाला उसकी इच्छानुसार आहार-पान की विधि मिलाती रहती थी ॥216॥ अथानन्तर सूर्य अस्ताचल के सेवन को इच्छा करने लगा **अर्थ**ात् अस्त होने के सम्मुख हुआ। सो ऐसा जान पड़ता था मानो अत्यधिक करुणा के कारण भर्तार से वियक्त अंजना को देख ने के लिए असमर्थ हो गया हो ॥217॥ सर्य की किरणें भी चित्रलिखित सर्य की किरणों के समान मन्दप ने को प्राप्त हो गयी थीं सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजनाफा दुःख देखकर ही मन्द पड़ गयी हों ॥218॥ पर्वत और वृक्षों के अग्रभागपर स्थित किरणों के समूह को समेटता हुआ सूर्य का बिम्ब सहसा पतन को प्राप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो अंजना के शोक के कारण ही पतन को प्राप्त हुआ हो ॥219॥ तदनन्तर आगे आनेवाले सिंह की कुपित दृष्टि के समान लालवर्ण की सन्ध्या से समस्त आकाश क्षण-भर में व्याप्त हो गया ॥220॥ तत्पश्चात् भावी उपसर्ग से प्रेरित होकर ही मानो शीघ्रता करनेवाली अन्धकार की रेखा उत्पन्न हो गयी। वह अन्धकार की रेखा ऐसी जान पड़ती थी मानो पाताल से वेताली ही निकल रही हो ॥221॥ उस वन में पक्षी पहले तो कोलाहल कर रहे थे पर उन्होने जब अन्धकार की रेखा देखी तो मानो उसके भय से ही नि:शब्द होकर वृक्षों के अग्रभागपर बैठ रहे ॥222॥ महावज्रपात के समान भयंकर शृगालों के शब्द होने लगे सो ऐसा जान पड़ता था मानो आनेवाले उपसगं ने अपने नगाड़े ही बजाना शुरू कर दिया हो ॥223॥

अथानन्तर वहाँ क्षण-भर में एक ऐसा विकराल सिंह प्रकट हुआ जो हाथियों के रुधिर से लाल-लाल दिखनेवाले जटाओं के समूह को बार-बार हिला रहा था, मृत्यु के द्वारा भेजे हुए पत्रपर पड़ी अंगुली की रेखा के समान कुटिल भौंह को धारण कर रहा था। वीच-बीच में प्रतिध्वनि से युक्त वेगशाली भयंकर शब्द छोड़ रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त आकाश के खण्ड-खण्ड ही कर रहा हो। जो प्रलयकालीन अग्नि की ज्वाला के समान चंचल एवं अनेक प्राणियों का क्षय करने में निपुण जिह्वा को मुखरूपी महागर्त में बार-बार चला रहा था। जो जीव को खींचनेवाली कुशा के समान तीक्ष्ण, नुकीली, सघन, कुटिल, रौद्र और मृत्यु को भी भय उत्पन्न करनेवाली डाढ़ को धारण कर रहा था। जो उदित होते हुए प्रलयकालीन सूर्य-बिम्ब के समान लाल वर्ण एवं दिशाओं को व्याप्त करनेवाले भयंकर नेत्रों से युक्त था। जिसकी पूंछ का अग्रभाग मस्तकपर रखा हुआ था, जो अपने नखाग्र से पृथ्वी को खोद रहा था, जिसका वक्षःस्थल कैलास के तट के समान चौड़ा था, जो स्थूल नितम्ब-मण्डल को धारण कर रहा था। और जिसे सब प्राणी ऐसी आशंका करते हुए देखते थे कि क्या यह साक्षात् मृत्यु है ? अथवा दैत्य है अथवा कृतान्त है, अथवा प्रेतराज है, अथवा कलिकाल है अथवा प्रलय है ? अथवा अन्तक ( यमराज ) का भी अन्त करनेवाला है ? अथवा सूर्य है ? अथवा अग्नि है ? ॥224-231॥ उसकी गर्जना की प्रतिध्वनि से जिन की बडी-बडी गफाएँ भर गयी थीं ऐसे पर्वत, ऐसे जान पडते थे मानो भयभीत हो अत्यन्त गम्भीर रुदन ही कर रहे हों ॥232॥ उसके मुद्गर के समान भयंकर वेगशाली शब्द से कानों में ताड़ित हुए प्राणी नाना प्रकार की चेष्टाएँ करने लगते थे ॥२३३॥ जो सामने खड़े हुए दुर्गम पहाड़पर अपने दोनों नेत्र लगाये हए था तथा अत्यन्त अहंकार से युक्त था ऐसे उस सिंह ने अंगड़ाई लेते हुए बहुत ही कोप प्रकट किया ॥234॥ जिस के शरीर में तृण-पुष्प के समान रोमांच निकल रहे थे तथा जिस के नेत्र गुमची के समान लाल-पीले एवं चंचल थे ऐसे सिंह ने पर्वत को गुफा में प्रवेश किया ॥235॥ उसे देख जिनके मुख से दूर्वा और कोमल पल्लवों के ग्रास नीचे गिर गये थे तथा भय से जिनका शरीर अकड़ गया था ऐसे हरिण ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये ॥236॥ जिनके पीले-पीले नेत्र घूम रहे थे, कान खड़े हो गये थे, मन की गति बन्द हो गयी थी और शरीर निश्चल हो गया था ऐसे हाथियों के मद के प्रवाह रुक गये ॥237॥ हरिणी आदि पशु-स्त्रियों के जो समूह थे वे

भय से कांपते हुए बच्चों को घेरे के भीतर कर खड़े हो गये। उन सब के नेत्र अपने झुण्ड के मुखियापर लगे हुए थे ॥238॥ जो सिंह की गर्जना से भयभीत हो रही थी तथा जिसका शरीर कांप रहा था ऐसी अंजना ने 'यदि उपसर्ग से जीती बनूंगी तो शरीर और आहार ग्रहण करूँगी अन्यथा नहीं' इस आलम्बन के साथ शरीर और आहार का त्याग कर दिया ॥239॥ इसकी सखी वसन्तमाला इसे उठाने में समर्थ नहीं थी इसलिए शीघ्रता से आकाश में उड़कर पक्षिणी की तरह व्याकुल होती हुई मण्डलाकार भ्रमण कर रही थी-चक्कर लगा रही थी ॥240॥ वह अंजना के प्रेम और गुणों से आकर्षित होकर बार-बार उसके पास आती थी पर तीव्र भय के कारण पुनः आकाश में ऊपर चली जाती थी ॥241॥ अथानन्तर जिनके हृदय विशीर्ण हो रहे थे ऐसी उन दोनों स्त्रियों को भयभीत देख उस गुफा में रहनेवाला गन्धर्व दया के आलिंगन को प्राप्त हुआ **अर्थ**ात् उसे दया उत्पन्न हुई ॥242॥ उस गन्धर्व की स्त्री का नाम रत्नचूला था। सो बहत भारी दया से प्रेरित एवं शीघ्रता से भाषण करनेवाली उस साध्वी नचूलान अपने पति मणिचूल नामा गन्धर्व से कहा ॥243॥ कि हे प्रिय ! देखो देखो, सिंह से भयभीत हुई एक स्त्री यहीं स्थित है और उससे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी स्त्री आकाशांगण में चक्कर काट रही है ॥244॥ हे नाथ ! मेरे ऊपर प्रसाद करो और इस अत्यन्त विह्वल स्त्री की रक्षा करो। यह कुलवती उत्तम नारी किसी कारण इस विषम स्थान में आ पड़ी है ॥245 / इस प्रकार कहनेपर गन्धवं देव ने विक्रिया से अष्टापद का रूप बनाया। उसका वह रूप ऐसा जान पड़ता था मानो तीनों लोकों में जित ने भयंकर पदार्थ हैं उन सब को इकट्ठा कर ही उसकी रचना की गयी हो ॥246॥ अंजना और सिंह के बीच में सिर्फ तीन हाथ का अन्तर रह गया था कि इतने में ही अपने शरीर से शिखरों के समूह को आच्छादित करनेवाला अष्टापद सिंह के सामने आकर खड़ा हो गया ॥247॥ तदनन्तर वहाँ सिंह और अष्टापद के बीच भयंकर युद्ध हुआ। उनका वह युद्ध भयंकर गर्जना से युक्त था और बिजली से प्रकाशित वर्षाकालिक मेघों के समूह की मानो हँसी ही उड़ा रहा था ॥248॥ इस प्रकार वहाँ शूरवीर मनुष्यों को भी भय उत्पन्न करनेवाला समय यद्यपि आया था तो भी अंजना निर्भय रहकर हृदय में जिनेन्द्र देव का ध्यान करती रही ॥249॥ आकाश में मण्डलाकार भ्रमण करती तथा महादुःख से भरी वसन्तमाला कुररी की तरह इस प्रकार विलाप कर रही थी ॥250॥ हाय राजपुत्रि ! तुम पहले दौर्भाग्य को प्राप्त रही फिर जिस किसी तरह कष्ट से दौर्भाग्य समाप्त हुआ तो समस्त बन्धुजनों ने तुम्हारा त्याग कर दिया ॥251॥ भयंकर वन में आकर किसी तरह इस गुफा में आयी और 'निकट काल में ही पति का समागम प्राप्त होगा' यह कहकर मुनिराज ने आश्वासन दिया पर अब हे देवि ! तुम सिंह के उस मुख में जा रही हो जो डाढों से भयंकर है तथा उद्दण्ड हाथियों के क्षय का कारण है ॥252-253॥ हाय देवि ! दुष्ट विधाता के वश और मेरी दुर्बुद्धि के कारण तुम्हारा समय उत्तरोत्तर दुःख से ही व्यतीत हुआ ॥254॥ हा नाथ पवनंजय ! अपनी गृहिणी की रक्षा करो। हा महेन्द्र ! तुम इस पुत्री की रक्षा क्यों नहीं करते हो ? ॥255॥ हा दुष्टा केतुमति ! तूने व्यर्थ ही इसके विषय में क्या अनर्थ किया ? हा दयावती मनोवेगे ! अपनी पुत्री की रक्षा क्यों नहीं कर रही हो? ॥256॥ यह राजपुत्री निर्जन वन में मरण को प्राप्त हो रही है। हे वनदेवताओ ! कृपा कर इसकी रक्षा करो ॥257॥ लोक के यथार्थ स्वरूप को जाननेवाले उन मुनि के शुभसूचक वचन भी क्या अन्यथा हो जावेंगे? ॥258॥ इस प्रकार रुदन करती तथा झूलापर चढ़ी हुई के समान विह्वल वसन्तमाला जल्दी-जल्दी स्वामिनी के समीप गमन तथा आगमन कर रही थी अर्थात् साहस कर समीप आती थी फिर भय की तीव्रता से दूर हट जाती थी ॥259॥ अथानन्तर अष्टापद की चपेट से आहत होकर सिंह नष्ट हो गया और कृतकृत्य होकर अष्टापद अपने स्थान में अन्तहित हो गया ॥260॥ तदनन्तर स्वप्न के समान दोनों का युद्ध समाप्त हुआ देख पसीना से लथ-पथ वसन्तमाला शीघ्र ही गुहा में आयी ॥261॥ गुहा के भीतर पल्लव के समान कोमल हाथों से अंजना को खोजती हुई वसन्तमाला कह रही थी कि कहाँ हो ? कहाँ हो ? उस समय भी उसका पूरा भय नष्ट नहीं हुआ था इसलिए आवाज गद्गद निकल रही थी ॥262॥ वसन्तमाला ने हाथ के स्पर्श से जाना कि यह बिलकुल निश्चल पड़ी हुई है। इसलिए उसका मन 'यह जीवित है या नहीं' इस आशंका से व्याकुल हो उठा ॥263॥ वह उसके वक्षःस्थलपर हाथ रखकर बार-बार उकसाती हुई कह रही थी कि हे देवि ! देवि ! जिन्दा हो ? ॥264॥ तदनन्तर वसन्तमाला के हाथ के स्पर्श से जब अंजना को चेतना आयी और कुछ देर बाद उसने समझ लिया कि यह सखी है तब अस्पष्ट वाणी में उसने कहा कि 'मैं हूँ' ॥265॥ तत्पश्चात् वे दोनों सखियाँ परस्पर मिलकर अनिर्वचनीय सुख को प्राप्त हुई और अवसर के अनुसार वार्तालाप करने में उद्यत हो ऐसा समझ ने लगीं मानो हम लोगों का दूसरा ही जन्म हुआ है ॥266॥ भय शेष रहने से उन भोलीभाली स्त्रियों ने उस भयावनी रात्रि को वर्ष के बराबर भारी समझा। वे सारी रात जागकर समस्त बन्धुजनों की निष्ठुरता को चर्चा करती रहीं ॥267॥ तदनन्तर जिस प्रकार गरुड़ सांप को नष्ट कर देता है उसी प्रकार गन्धर्व सिंह को नष्ट कर बड़ा हर्षित हुआ और हर्षित होकर उसने महागुणकारी मद्य का पान किया ॥268॥ जिस के नेत्र चंचल हो रहे थे

ऐसी गन्धर्व को विदुषी स्त्री ने उसकी जाँघपर अपनी भुजा रख गन्धर्व से कहा कि ॥269॥ हे नाथ ! मुझे अवसर दीजिए मैं इस समय कुछ गाना चाहती हूँ क्योंकि मद्यपान के अनन्तर उत्तम गाना गाना चाहिए ऐसा उपदेश है ॥270॥ साथ ही हम दोनों का मधुर दिव्य एवं हृदयहारी संगीत सुनकर ये दोनों स्त्रियाँ अवशिष्ट भय को भी छोड़ देंगी ॥271॥ तदनन्तर जब अर्धरात्रि हो गयी और किसी दूसरे का शब्द भी सुनाई नहीं पड़ने लगा तब गन्धर्व ने कानों को हरनेवाली वीणा ठीक कर बजाना शुरू किया ॥272॥ और उसकी स्त्री रत्नचला पति के मुखपर नेत्र धारण कर मंजीरा बजाती हुई धीरे-धीरे गा ने लगी। उसका वह गाना मुनियों को भी क्षोभ उत्पन्न करने का कारण था ॥273॥ उस समय उन दोनों के बीच घन, वाद्य, सुषिर और तत इन चारों प्रकार के बाजों का प्रयोग चल रहा था और परिजन के अन्य लोग गम्भीर हाथों से क्रमानुसार योग्य ताल दे रहे थे ॥274॥ तबला बजाने में निपुण देव एकचित्त होकर गम्भीर ध्वनि के साथ तबला बजा रहे थे तो बाँसुरी बजाने में चतुर देव भौंह चलाते हुए अच्छी तरह बाँसुरी बजा रहे थे ॥275॥ उत्तम आभा को धारण करनेवाला यक्ष प्रवाल के समान कान्तिवाली तथा सुन्दर उपमा से युक्त वीणा को तमूरे से बजा रहा था। तो स्वरों की सूक्ष्मता को जाननेवाला गन्धर्व, क्रम को नहीं छोड़ता हुआ, मध्यम, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों को निकाल रहा था ॥276-277॥ गाते समय वह गन्धर्व द्रुता, मध्या और विलम्बिता इन तीन वृत्तियों का यथास्थान प्रयोग करता था और जिन से नेत्र नाच उठते हैं, ऐसी इक्कीस मूर्च्छनाओं का भी यथावसर उपयोग करता था ॥278॥ वह देवों के गवैया जो हाहा-हूहू हैं उनके समान अथवा उनसे भी अधिक उत्तम गान गा रहा था और प्रायःकर गन्धर्व देवों में यही गान प्रसिद्ध को प्राप्त है ॥279॥ वह उनचास ध्वनियों में गा रहा था तथा उसका वह समस्त गान जिनेन्द्र भगवान् के गुणों से सम्बन्ध रखनेवाले मनोहर अक्षरों से युक्त वचनावली से निर्मित था ॥280 / वह गा रहा था कि भक्ति से नम्रीभूत सुर-असुर पुष्प, अर्घ तथा नाना प्रकार की गन्ध से जिन की उत्तम पूजा करते हैं ऐसे देवाधिदेव वन्दनीय अरहन्त भगवान् को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥281॥ उसने यह भी गाया कि मैं श्री मुनिसुव्रत भगवान् के उस चरण युगल को उत्कट भक्ति से नमस्कार करता हूँ जो त्रिभुवन की कुशल करनेवाला है, अत्यन्त पवित्र है और इन्द्र के मुकुट का सम्बन्ध पाकर जिस के नखरूपी मणियों से किरणें फूट पड़ती हैं ॥282॥ तदनन्तर जिसका मन आश्चर्य से व्याप्त था ऐसी वसन्तमाला ने उस अश्रुतपूर्व तथा अत्यन्त सुन्दर संगीत की बहुत प्रशंसा की ॥283॥ वह कहने लगी कि वाह ! वाह ! यह मनोहर गान किस ने गाया है / इस अमृतवर्षी गवैया ने तो मेरा हृदय मानो गीला ही कर दिया है ॥284॥ उसने स्वामिनी से कहा कि हे देवि ! यह कोई देव है जिसने सिंह भगाकर हम लोगों की रक्षा की है ॥285॥ जिस के बीच में स्त्री का मधुर शब्द सुनाई देता था तथा जो संगीत के समस्त अंगों से सहित था ऐसा यह कर्णप्रिय गाना, जान पड़ता है इसने हम लोगों के लिए ही गाया है ॥286॥ हे देवि ! हे शोभने ! उत्तम शील को धारण करनेवाली ! तू किसकी दया-पात्र नहीं है ? भव्य जीवों को महाअटवी में भी मित्र मिल जाते हैं ॥287॥ इस उपसर्ग के दूर होने से यह सुनिश्चित है कि तुम्हारा पति के साथ समागम होगा । अथवा क्या मुनि भी अन्यथा कहते हैं ? ॥288॥ इसलिए इस उत्तम देव का यथोचित आश्रय लेकर मुनिराज की पद्मासन से पवित्र इस गुफा में श्री मुनिसुव्रत भगवान् की प्रतिमा विराजमान कर सुख-प्राप्ति के लिए अत्यन्त सुगन्धित फलों से उसकी पूजा करती हई हम दोनों कुछ समय तक यहीं रहें। इस गर्भ की सुख से प्रसूति हो जायै चित्त में इसी बात का ध्यान रखें और विरह-सम्बन्धी सब दुःख भूल जावें ॥289-291॥ तुम्हारा समागम पाकर परम हर्ष को प्राप्त हुआ। यह पर्वत झरनों के जल-कणों के बहा ने मानो हँस ही रहा है ॥292॥ जिनके अग्रभाग फलों के भार से झुक रहे हैं, जिनके कोमल पल्लव लहलहा रहे हैं और जो पुष्पों के बहा ने हँसी प्रकट कर रहे हैं ऐसे ये वृक्ष तुम्हारे समागम से ही मानो परम सन्तोष को प्राप्त हो रहे हैं ॥293॥ इस पर्वत के जंगली मैदान मोर, मैना, तोता तथा कोयल आदि को मधुर ध्वनि से ऐसे जान पड़ते हैं मानो वार्तालाप ही कर रहे हों ॥294॥ जिन में गेरू आदि नाना धातुओं की कान्ति छायी हुई है, जिनपर वृक्षों के समूह वस्त्र के समान आवरण किये हुए हैं और जो फूलों की सुगन्धि से सुवासित हैं ऐसी इस पर्वत की गुफाएँ स्त्रियों के समान सुशोभित हो रही हैं ॥295॥ तालाबों में जिनेन्द्र देव की पूजा करने के योग्य जो कमल फूल रहे हैं वे तुम्हारे मुख की समानता धारण करते हैं ॥296॥ हे वामिनि ! यहाँ धैर्य धारण करो, चिन्ता की वशीभूत मत होओ। यहाँ देवता तुम्हारा सब प्रकार का कल्याण करेंगे ॥297॥ अब दिन के प्रारम्भ में पक्षी चहक रहे हैं सो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे शरीर की स्वस्थता जानकर हर्ष से मानो कोलाहल ही कर रहे हैं ॥298॥ ये वृक्ष पत्तों के अग्रभाग में स्थित तथा मन्द-मन्द वायु से प्रेरित शीतल ओस के कणों को छोड़ रहे हैं सो ऐसे जान पड़ते हैं मानो हर्ष के आँसू ही छोड़ रहे हों ॥299॥ तुम्हारा वृत्तान्त जान ने के लिए सर्वप्रथम दूती के समान रागवती ( लालिमा से युक्त ) सन्ध्या को भेजकर अब पीछे से यह सूर्य स्वयं उदित हो रहा है ॥30॥ वसन्तमाला के ऐसा कहनेपर अंजना

ने उत्तर दिया कि हे सखि ! मेरे समस्त बान्धव तुम्ही हो। तेरे रहते हुए मुझे यह वन नगर के समान है ॥301॥ जो मनुष्य जिस के आपत्तिकाल, मध्यकाल और उत्सवकाल अर्थात् सभी अवस्थाओं में सेवा करता है वही उसका बन्धु है तथा जो दुःख देता है वह बन्धु होकर भी शत्रु है ॥302॥ इतना कहकर वे दोनों गुफा में देवाधिदेव मुनि सुव्रतनाथकी प्रतिमा विराजमान कर उसकी पूजा करती हुई रहने लगीं। विद्या के बल से उनके भोजन की व्यवस्था होती थी ॥303॥ जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से प्रतिदिन संगीत करता हुआ गन्धर्वदेव भी करुणा भाव से इन दोनों स्त्रियों की सब से रक्षा करता था ॥304॥

अथानन्तर किसी दिन अंजना बोली कि हे सखि ! मेरी कूख चंचल हो रही है और मैं व्याकुल-सी हई जा रही है, यह क्या होगा? ॥305॥ तब वसन्तमाला ने कहा कि हे शोभने! अवश्य ही तेरे प्रसव का समय आ पहुँचा है इसलिए सुख से बैठ जाओ ॥306॥ तदनन्तर वसन्तमाला ने कोमल पल्लवों से शय्या बनायी सो उसपर, जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को उत्पन्न करती है उसी प्रकार अंजना सुन्दरी ने पुत्र उत्पन्न किया ॥307॥ पुत्र उत्पन्न होते ही उसके शरीर सम्बन्धी तेज से गुफा का समस्त अन्धकार नष्ट हो गया और गुफा ऐसी हो गयी मानो सुवर्ण की ही बनी हो ॥308॥ यद्यपि वह हर्ष का समय था तो भी अंजना दोनों कुलों का स्मरण कर दीनता को प्राप्त हो रही थी और इसीलिए वह पुत्र को गोद में ले रो ने लगी ॥309॥ वह विलाप करने लगी कि हे वत्स ! मनुष्य के लिए भय उत्पन्न करनेवाले इस सघन वन में मैं तेरा जन्मोत्सव कैसे की करूं ? ॥310॥ यदि तू पिता अथवा नाना के घर उत्पन्न हुआ होता तो मनुष्यों को उन्मत्त बना देनेवाला महा-आनन्द मनाया जाता ॥311॥ सुन्दर नेत्रों से सुशोभित तेरे इस मुखचन्द्र को देखकर संसार में किस सहृदय मनुष्य को आश्चर्य उत्पन्न नहीं होगा ॥312॥ क्या करूँ ? मैं मन्दभागिनी सब वस्तुओं से रहित हूँ। विधाता ने मुझे यह सर्वदुःख-दायिनी अवस्था प्राप्त करायी है ॥313॥ चूंकि संसार प्राणी सब वस्तओं से पहले दीर्घायष्य की ही इच्छा रखते हैं इसलिए हे वत्स! मेरा आशीर्वाद है कि तू उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त जीवित रहे ॥314॥ तत्काल प्राण हरण करनेवाले ऐसे जंगल में पड़ी रहकर भी जो मैं जीवित हूँ यह तुम्हारे पुण्य कर्म का ही प्रभाव है ॥315॥ इस प्रकार वचन बोलती हुई अंजना से हितकारिणी सखी ने कहा कि हे देवि ! चूँकि तुमने ऐसा पुत्र प्राप्त किया है इसलिए तुम कल्याणों से परिपूर्ण हो ॥316॥ यह पुत्र उत्तम लक्षणों से युक्त दिखाई देता है। इसका यह शुभ सुन्दर शरीर अत्यधिक सम्पदा को धारण कर रहा है ॥317॥ जिनपर भ्रमर संगीत कर रहे हैं और जिनके कोमल पल्लव हिल रहे हैं ऐसी ये लताएँ तुम्हारे पुत्र के जन्मोत्सव से मानो नृत्य ही कर रही हैं ॥318॥ उत्कट तेज को धारण करनेवाले इस बालक के प्रभाव से सब कुछ ठीक होगा / तुम व्यर्थ ही खेद-खिन्न न हो ॥319॥ इस प्रकार उन दोनों सखियों में वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी क्षण आकाश में सूर्य के समान प्रभावाला एक ऊँचा विमान प्रकट हुआ ॥320॥ तदनन्तर वसन्तमाला ने वह विमान देखकर अंजना को दिखलाया सो अंजना आशंका से पुनः ऐसा विप्रलाप करने लगी कि ॥321॥ क्या यह मेरा कोई अकारण वैरी है जो पुत्र को छीन ले जायेगा ? अथवा कोई मेरा भाई ही आया है ॥322॥ तदनन्तर अंजना का उक्त विप्रलाप सुनकर वह विमान देर तक खड़ा रहा फिर कुछ देर बाद एक दयालु विद्याधर आकाशांगण से नीचे उतरा ॥323॥ गुफा के द्वारपर विमान खड़ा कर वह विद्याधर भीतर घुसा। उसकी पत्नियाँ उसके साथ थीं और वह मन-ही-मन शंकित हो रहा था ॥324॥ वसन्तमाला ने उसका स्वागत किया। तदनन्तर अपने सेवक के द्वारा दिये हुए सम आसनपर वह सहृदय विद्याधर बैठ गया ॥325॥ तत्पश्चात् क्षणभर ठहरकर अपनी गम्भीर वाणी से मेघगर्जना की शं का करनेवाले चातकों को उत्सुक करता हुआ बड़ी विनय से स्वागत करनेवाली वसन्तमाला से बोला। बोलते समय वह अपने दाँतों को कान्ति से बालक को कान्ति को मिश्रित कर रहा था ॥326-327॥ उसने कहा कि हे सुमर्यादे ! बता यह किसकी लड़ की है ? किसकी शुभपत्नी है और किस कारण इस महावन में आ पड़ी है ? ॥328॥ इसकी आकृति से निन्दित आचार का मेल नहीं घटित होता। फिर यह समस्त बन्धुजनों के साथ इस विरह को कैसे की प्राप्त हो गयी? ॥329॥ अथवा यह संसार है इसमें माध्यस्थ्यभाव से रहनेवाले लोगों के पूर्व कर्मों से प्रेरित अकारण वैरी हुआ ही करते हैं ॥330॥ तदनन्तर दुःख के भार से अत्यधिक निकलते हुए वाष्पों से जिसका कण्ठ रुक गया था ऐसी वसन्तमाला पृथ्वीपर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे बोली ॥331॥ कि हे महानुभाव ! आपके वचन से ही आपके विशिष्ट शुभ हृदय का पता चलता है क्योंकि जो वृक्ष रोग का कारण होता है उसकी छाया स्निग्ध अथवा आनन्ददायिनी नहीं होती है ॥332॥ चूंकि आप-जैसे गुणी मनुष्य अभिप्राय प्रकट करने के पात्र हैं अतः आपके लिए जिसे आप जानना चाहते हैं वह कहती हैं, सुनिए ॥333॥ यह नीति है कि सज्जन के लिए बताया हुआ दुःख नष्ट हो जाता है क्योंकि आपत्ति में पड़े हुए का उद्धार करना यह महापुरुषों को शैली है ॥334॥ सुनिए, यह लोकव्यापी यश से युक्त, निर्मल हृदय के धारक राजा महेन्द्र की पुत्री है, अंजना नाम से प्रसिद्ध है और जिसका चित्त गुणों का सागर

है ऐसे राजा प्रह्लाद के पुत्र पवनवेग की प्राणों से अधिक प्यारी पत्नी है ॥335336॥ किसी एक समय वह आत्मीयजनों की अनजान में इसके गर्भ धारण कर पिता की आज्ञा से युद्ध के लिए चला गया। वह रावण का मित्र जो था ॥337॥ यद्यपि यह अंजना निर्दोष थी तो भी स्वभाव की दुष्टता के कारण दयाशून्य मूर्ख सास ने इसे पिता के घर भेज दिया ॥238॥ परन्तु अपकीति के भय से पिता ने भी इसके लिए स्थान नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि प्रायःकर सज्जन पुरुष मिथ्यादोष से भी डरते रहते हैं ॥339॥ अन्त में इस कुलवती बाला को जब सब सहारों ने छोड़ दिया तब यह निराश्रय हो मेरे साथ हरिणी के समान इस महावन में रहने लगी ॥340 / इस सुहृदया की मैं कुल-परम्परा से चली आयो सेवि का हूँ सो सदा प्रसन्न रहनेवाली इसने मुझे अपना विश्वासपात्र बनाया है ॥341॥ इसी अंजना ने आज नाना उपसर्गो से भरे वन में पुत्र उत्पन्न किया है। मैं नहीं जानती कि यह साध्वी पतिव्रता सुख का आश्रय कैसे की होगी ॥342॥ आप सत्पुरुष हैं इसलिए संक्षेप से मैंने इसका यह वृत्तान्त कहा है। इसने जो दुःख भोगा है उसे सम्पूर्ण रूप में कहने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥343॥ अथानन्तर उस विद्याधर के हृदय से वाणी निकली सो ऐसी जान पड़ती थी मानो अंजना के सन्ताप से पिघले हुए स्नेह से उसका हृदय पूर्णरूप से भर गया था अतः वाणी को भीतर ठहर ने के लिए स्थान ही नहीं बचा हो ॥344॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तू मेरी भानजी है। चिरकाल के वियोग से प्रायः तेरा रूप बदल गया है इसलिए मैं पहचान नहीं सका हूँ ॥345॥ मेरे पिता विचित्रभानु और माता सुन्दरमालिनी हैं। मेरा नाम प्रतिसूर्य है और हनूरुह नामक द्वीप का रहनेवाला हूँ ॥346॥ इतना कहकर जो-जो घटनाएँ कुमारकाल में हुई थीं वे सब उसने रोते-रोते अंजना से कहलायीं ॥347॥ तदनन्तर जब पूर्ववृत्तान्त कहने से अंजना ने मामा को पहचान लिया तब वह उसके गले में लगकर चिरकाल तक सिसक-सिसककर रोती रही ॥348॥ अंजना का वह समस्त दुःख आँसुओं के साथ निकल गया सो ठीक ही है क्योंकि आत्मीयजनों के मिलनेपर संसार को ऐसी ही स्थिति होती है ॥349॥ इस तरह स्नेह के भार से जब दोनों रो रहे थे तब पास में बैठी वसन्तमाला भी जोर से रो पड़ी ॥350॥ उन सब के रोनेपर विद्याधर की स्त्रियाँ भी करुणावश रो ने लगीं और. इन सब को रोते देख हरिणियाँ भी रो ने लगीं ॥351॥ उस समय गुफारूपी मुख से जोर की प्रतिध्वनि निकल रही थी इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो पर्वत भी झरनों के बहा ने बड़े-बड़े आँसू ढालता हुआ रो रहा था ॥352॥ और पक्षी भी दयावश आकुल होकर शब्द कर रहे थे इसलिए वह सम्पूर्ण वन उस समय शब्दमय हो गया था ॥353॥ तदनन्तर प्रतिसूर्य विद्याधर ने सान्त्वनादेने के बाद जल लानेवाले नौकर के द्वारा दिये हुए जल से अंजना का और अपना मुँह धोया ॥354॥ पहले जिस क्रम से वन शब्दायमान हो गया था उसी क्रम से अब पुनः शब्दरहित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो इन दोनों को वार्ता सुनने के लिए ही चुप हो रहा हो ॥355॥ तदनन्तर क्षण-भर ठहरकर जब दोनों दुःखरूपी गर्त से बाहर निकले तब उन्होने परस्पर कुशल-वार्ता पूछी और अपने-अपने कुल का हाल एक दूसरे को बताया ॥356॥ इसके बाद अंजना ने प्रतिसूर्य की स्त्रियों के साथ क्रम से सम्भाषण किया सो ठीक हो है क्योंकि गुणीजन करने योग्य कार्य में कभी नहीं चूकते हैं ॥357॥ अंजना ने मामा से कहा कि पूज्य ! मेरे पुत्र के समस्त ग्रह कैसी दशा में हैं सो बताइए ॥358॥ ऐसा कहनेपर मामा ने ज्योतिष विद्या में निपुण पाश्वंग नामक ज्योतिषी से पुत्र के यथावस्थित जातकर्म को पूछा **अर्थ**ात् पुत्र की ग्रह-स्थिति पूछी ॥359॥ तब ज्योतिषी ने कहा कि इस कल्याणस्वरूप पुत्र का जन्म-समय बताओ। ज्योतिषी के ऐसा पूछनेपर अंजना ने समय बताया ॥360॥ साथ ही प्रमाद को दूर करनेवाली सखी वसन्तमाला ने भी कहा कि आज रात्रि में जब अर्धप्रहर बा की था तब बालक उत्पन्न हुआ था॥३६१॥ तदनन्तर मुहूर्त के जाननेवाले ज्योतिषी ने कहा कि इसका शरीर जैसा शभलक्षणों से यक्त है उससे जान पडता है कि बालक सब प्रकार की सिद्धियों का भाजन होगा ॥362॥ फिर भी यदि सन्तोष नहीं है अथवा ऐसा ख्याल है कि यह क्रिया लौकि की है तो सुनो मैं संक्षेप से इसका जीवन कहता हूँ ॥363॥ आज यह चैत्र के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, सूर्य दिन का स्वामी है ॥364॥ सूर्य मेष का है सो उच्च स्थान में बैठा है और चन्द्रमा मकर का है सो मध्यगृह में स्थित है ॥365॥ मंगल वृष का है सो मध्य स्थान में बैठा है। बुध मीन का है सो भी मध्य स्थान में स्थित है और बृहस्पति कर्क का है सो भी अत्यन्त उच्च स्थान में बैठा है ॥366॥ शुक्र और शनि दोनों ही मीन के तथा उच्च स्थान में आरूढ हैं। हे राजाधिराज! उस समय मीन का ही उदय था ॥367॥ सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनि को देखता है और मंगल सूर्य को अर्धदृष्टि से देखता है ॥368॥ बृहस्पति पौन दृष्टि से सूर्य को देखता है और सूर्य बृहस्पति को अर्धदृष्टि से देखता है ॥369॥ बृहस्पति चन्द्रमा को पूण दृष्टि से देखता है और चन्द्रमा भी अर्धदृष्टि से बृहस्पति को देखता है ॥370॥ बृहस्पति शनि को पौन दृष्टि से देखता है और शनि बृहस्पति को अधंदृष्टि से देखता है ॥371॥ बृहस्पति शुक्र को पौन दृष्टि से देखता है और शुक्र भो बृहस्पतिपर पौन दृष्टि डालता है ॥372॥ अवशिष्ट ग्रहों की पारस्परिक अपेक्षा नहीं है। उस समय इसके ग्रहों के उदय-क्षेत्र और काल का

अत्यधिक बल है ॥373॥ सूर्य, मंगल और बृहस्पति इसके राज्ययोग को सूचित कर रहे हैं और शनि मुक्तिदायी योग को प्रकट कर रहा है ॥374॥ यदि एक बृहस्पति ही उच्च स्थान में स्थित हो तो समस्त कल्याण की प्राप्ति का कारण होता है फिर इसके तो समस्त शभग्रह उच्च स्थान में स्थित हैं ॥375॥ उस समय ब्राह्मनामक योग और शुभ नाम का मुहूर्त था सो ये दोनों ही बाह्यस्थान अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी सुख के समागम को सूचित करते हैं ॥376॥ इस प्रकार इस पुत्र का यह ज्योतिश्चक्र सर्व वस्तु को सर्व दोषों से रहित सूचित करता है ॥377॥ तदनन्तर राजा ने हजार मुद्रा द्वारा ज्योतिषी का सम्मान कर हर्षित हो अंजना से कहा कि ॥378॥ आओ बेटी! अब हम लोग हनूरुह नगर चलें। वहीं इस बालक का सब जन्मोत्सव होगा ॥379॥ मामा के ऐसा कहनेपर अंजना पुत्र को गोद में लेकर जिनेन्द्र देव की वन्दना कर और गुहा के स्वामी गन्धर्वदेव से बार-बार क्षमा कराकर आत्मीयजनों के साथ गुहा से बाहर निकली। विमान के पास खड़ी अंजना वनलक्ष्मी के समान जान पड़ती थी ॥380-381॥ तदनन्तर जो वायु से प्रेरित क्षुद्रघण्टिकाओं के समूह से शब्दायमान था, जो लटकते हुए अतिशय निर्मल मोतियों के उत्तम हारों से ऐसा जान पड़ता था मानो झरनों से सहित ही हो, जिसमें गोले फानूस लटक रहे थे, जो काचनिर्मित केलों के वनों से सुशोभित था, जिसमें लगे हुए सुवर्ण के गोले सूर्य की किरणों का सम्पर्क पाकर चमक रहे थे, नाना रत्नों की किरणों के संगम से जिसमें इन्द्रधनुष उठ रहा था, रंग-बिरंगी सैकड़ों पताकाओं से जो कल्पवृक्ष के समान जान पड़ता था, चित्र-विचित्र रत्नों से जिसकी रचना हुई थी, जो नाना प्रकार के रत्नों से खचित था, दिव्य था और ऐसा जान पड़ता था मानो सब ओर से स्वर्गलोक से घिरा हुआ ही हो ऐसे विमान को देखकर कोतक से मसकराता हआ बालक उछलकर स्वयं प्रवेश करने की इच्छा करता मानो माता की गोद से छूटकर पर्वत की गुफा में जा पड़ा ॥382-386 तदनन्तर माता अंजना के साथ-साथ सब लोग हाहाकार कर उस बालक का समाचार जान ने के लिए शीघ्र ही विह्वल होते हुए वहाँ गये ॥387॥ अंजना ने दीनता से ऐसा विलाप किया कि जिसे सुनकर तिर्यंचों के भी मन करुणा से कोमल हो गये ॥388॥ वह कह रही थी कि हाय पुत्र ! यह क्या हुआ ? रत्नों से परिपूर्ण खजाना दिखाकर फिर उसे हरते हुए विधाता ने यह क्या किया ? ॥389॥ पति के वियोग दुःख से ग्रसित जो मैं हूँ सो मेरे जीवन का अवलम्बन एक तू ही था पर देव ने उसे भी छोन लिया ॥390॥ तदनन्तर सब लोगों ने देखा कि पतन सम्बन्धी वेग से हजार टुकड़े हो जाने के कारण जो महाशब्द कर रही थी ऐसी शिलापर बालक सुख से पड़ा है ॥391॥ वह मुख के भीतर अंगूठा देकर खेल रहा है, मन्द मुसकान से सुशोभित है, चित्त पड़ा है, हाथ पैर हिला रहा है, शुभ शरीर का धारक है, मन्द-मन्द वायु से हिलते हुए लाल तथा नीले कमलवन के समान उसकी कान्ति है, और अपने तेज से पर्वत की समस्त गुफा को पीत वर्ण कर रहा है ॥392-393॥ तदनन्तर निर्दोष शरीर के धारक बालक को आश्चर्य से भरी माता ने उठाकर तथा शिरपर सूंघकर छाती से लगा लिया ॥394॥ राजा प्रतिसूर्य ने कहा कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है कि बालक ने वज्र की तरह शिलाओं का समूह चूर्ण कर दिया ॥395॥ जब बालक होनेपर भी इसकी यह देवातिशायिनी शक्ति है तब तरुण होनेपर तो कहना ही क्या है ? निश्चित ही इसका यह शरीर अन्तिम शरीर है ॥396॥ ऐसा जानकर उसने, हस्त-कमल शिर से लगा, तथा तीन प्रदक्षिणाएँ देकर अपनी स्त्रियों के साथ बालक के उस चरम शरीर को नमस्कार किया ॥397॥ प्रतिसूर्य को स्त्रियों ने अपने सफेद, काले तथा लोल नेत्रों की कान्ति से उसे हँसते हुए देखा सो ऐसा जान पड़ता था मानो उन्होने सफेद, नीले और लाल कमलों की मालाओं से उसकी पूजा ही की हो ॥398॥ तदनन्तर प्रतिसूर्य पूत्रसहित अंजना को विमान में बैठाकर ध्वजाओं और तोरणों से सुशोभित अपने नगर की ओर चला ॥329॥ तत्पश्चात् नाना मंगलद्रव्यों को धारण करनेवाले नगरवासी लोगों ने जिसकी अगवानी की थी ऐसे राजा प्रतिसूर्य ने नगर में प्रवेश किया। उस समय नगर का आकाश तुरही आदि वादित्रों के शब्द से व्याप्त हो रहा था ॥400 / जिस प्रकार इन्द्र का जन्म होनेपर स्वर्ग में देव लोग महान् उत्सव करते हैं उसी प्रकार हनूरुह नगर में विद्याधरों ने उस बालक का बहुत भारो जन्मोत्सव किया ॥401॥ चूंकि बालक ने शैल अर्थात् पर्वत में जन्म प्राप्त किया था और उसके बाद शैल अर्थात् शिलाओं के समूह को चूर्ण किया था इसलिए माता ने मामा के साथ मिलकर उसका 'श्रीशैल' नाम रखा था ॥402॥ चूंकि उस बालक ने हनूरुह नगर में जन्म संस्कार प्राप्त किये थे इसलिए वह पृथिवीतलपर 'हनूमान्' इस नाम से भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥403॥ जिस के शरीर की क्रियाएँ समस्त मनुष्यों के मन और नेत्रों को महोत्सव उत्पन्न करनेवाली थी, तथा जिसकी आभा देवकुमार के समान थी ऐसा वह उत्तम कान्ति का धारी बालक उस नगर में क्रीड़ा करता था ॥404॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! पूर्व जन्म में संचित पुण्य कर्म के बल से प्राणियों के लिए पर्वतों को चूर्ण करनेवाला वज्र भी फूल के समान कोमल हो जाता है। अग्नि भी चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल विशाल कमलवन हो जाती है, और खड्गरूपी

लता भी सुन्दर स्त्रियों की सुकोमल भुजलता बन जाती है ॥405॥ ऐसा जानकर दुःख देने में निपुण जो पापकर्म है उससे विरत होओ और श्रेष्ठ सुख देने में चतुर जो जिनेन्द्रदेव का चरित है उस में लीन होओ। अहो! हजारों रोगरूपी किरणों से युक्त यह जन्मरूपी सूर्य समस्त संसार को निरन्तर बड़ी दृढ़ता के साथ सन्तप्त कर रहा है ॥406॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में हनूमान् के जन्म का वर्णन करनेवाला सत्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 17॥

## पवनंजय और अंजना का पुन: समागम

अठारहवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे मगध देश के मण्डनस्वरूप श्रेणिक ! यह तो मैंने तुम्हारे लिए महात्मा श्रीशैल के जन्म का वृत्तान्त कहा। अब पवनंजय का वृत्तान्त सुनो ॥1॥ पवनंजय वायु के समान शीघ्र ही रावण के पास गया और उसकी आज्ञा पाकर नानाशस्त्रों से व्याप्त युद्ध-क्षेत्र में वरुण के साथ युद्ध करने लगा ॥2॥ चिरकाल तक युद्ध करने के बाद वरुण खेद-खिन्न हो गया सो पवनंजय ने उसे पकड़ लिया। खर-दूषण को वरुण ने पहले पकड़ रखा था सो उसे छड़ाया और वरुण को रावण के समीप ले जाकर तथा सन्धि कराकर उसका आज्ञाकारी किया। रावण ने पवनंजय का बड़ा सम्मान किया ॥3-4॥ तदनन्तर रावण की आज्ञा लेकर हृदय में कान्ता को धारण करता हआ पवनंजय महासामन्तों के साथ शीघ्र ही अपने नगर में वापस आ गया ॥5॥ उत्तमोत्तम मंगल द्रव्यों को धारण करनेवाले नगरवासी जनों ने जिसकी अगवानी की सा पवनंजय देदीप्यमान ध्वजाओं. तोरणों तथा मालाओं से अलंकत नगर में प्रविष्ट हआ ॥6॥ तदनन्तर अपना प्रारम्भ किया हआ कर्म छोड झरोखों में आकर खडी हई नगरवासिनी स्त्रियों के समूह जिसे बड़े हर्ष से देख रहे थे ऐसा पवनंजय अपने महल की ओर चला ॥7॥ तत्पश्चात् जिसका **अर्थ** आदि के द्वारा सम्मान किया गया था और आत्मीयजनों ने मंगलमय वचनों से जिसका अभिनन्दन किया था ऐसे पवनंजय ने महल में प्रवेश किया ॥8॥ वहाँ जाकर इसने गुरुजनों को नमस्कार किया और अन्य जनों ने इसे नमस्कार किया। फिर कुशलवार्ता करता हुआ क्षणभर के लिए सभामण्डप में बैठा ॥9॥ तदनन्तर उत्कण्ठित होता हुआ अंजना के महल में चढ़ा। उस समय वह पहले की भावना से युक्त था और अकेला प्रहसित मित्र ही उसके साथ था ॥10॥ वहाँ जाकर जब उसने महल को प्राण-वल्लभा से रहित देखा तो उसका मन् क्षण एक में ही निर्जीव शरीर की तरह नीचे गिर गया ॥11॥ उसने प्रहसित से कहा कि मित्र ! यह क्या है ? यहाँ कमल-नयना अंजना सुन्दरी नहीं दिख रही है ॥12॥ उसके बिना यह घर मुझे वन अथवा आकाश के समान जान पड़ता है। अतः शीघ्र ही उसका समाचार मालम किया जाये॥१३॥ तदनन्तर आप्तवर्ग से सब समाचार जानकर प्रहसित ने हृदय को क्षुभित करनेवाला सब समाचार ज्यों का त्यों पवनंजय को सुना दिया ॥14॥ उसे सुन, पवनंजय आत्मीयजनों को छोड़ उसी क्षण मित्र के साथ उत्कण्ठित होता हुआ महेन्द्रनगर जाने के उद्यत हआ ॥15॥ महेन्द्रनगर के निकट पहुँचकर पवनंजय. प्रिया को गोद में आयी समझ हर्षित होता हुआ मित्र से बोला कि हे मित्र ! देखो, इस नगर की सुन्दरता देखो जहाँ सुन्दर विभ्रमों को धारण करनेवाली प्रिया विद्यमान है ॥16-17॥ और जहाँ वर्षाऋतु के मेघों के समान कान्ति के धारक उद्यान के वृक्षों से घिरी महलों की पंक्तियाँ कैलास पर्वत के शिखरों के समान जान पड़ती है ॥18 / इस प्रकार कहता और अभिन्न चित्त के धारक मित्र के साथ वार्तालाप करता हुआ वह महेन्द्रनगर में पहुंचा ॥19॥

तदनन्तर लोगों के समूह से पवनंजय को आया सुन इसका श्वसुर अर्घादि की भेंट लेकर आया ॥20॥ आगे चलते हुए श्वसुर ने प्रेमपूर्ण मन से उसे अपने स्थान में प्रविष्ट किया और नगरवासी लोगों ने उसे बड़े आदर से देखा ॥21॥ प्रिया के दर्शन की लालसा से इसने श्वसुर के घर में प्रवेश किया। वहाँ यह परस्पर वार्तालाप करता हुआ मुहूर्त भर बैठा ॥22॥ परन्तु वहाँ भी जब इसने कान्ता को नहीं देखा तब विरह से आतुर होकर इसने महल के भीतर रहनेवाली किसी बालि का से पूछा कि हे बाले ! क्या तू जानती है कि यहाँ मेरी प्रिया अंजना है ? बालिका ने यही दुःखदायी उत्तर दिया कि यहाँ तुम्हारी प्रिया नहीं है ॥23-24॥ तदनन्तर इस उत्तर से पवनंजय का हृदय मानो वज्र से ही चूणं हो गया, कान तपाये हुए खारे पानी से मानो भर गये और वह स्वयं निर्जीव की भांति निश्चल रह गया। शोकरूपी तुषार के सम्पर्क से उसका मुखकमल कान्तिरहित हो गया ॥25-26॥ तदनन्तर वह किसी 'छल से श्वसुर के नगर से निकलकर अपनी प्रिया का समाचार जान ने के लिए पृथिवी में भ्रमण करने लगा ॥27॥

इधर जब प्रहसित मित्र को मालूम हुआ कि पवनंजय मानो वायु की बीमारी से ही दुःखी हो रहा है तब उसके दुःख से अत्यन्त दुःखी होते हुए उसने सान्त्वना के साथ कहा कि हे मित्र! खिन्न क्यों होते हो ? चित्त को निराकुल करो। तुम्हें शीघ्र ही प्रिया दिखलाई देगी, अथवा यह पृथिवी है ही कितनी-सी ? ॥28-29॥ पवनंजय ने कहा कि हे मित्र ! तुम शीघ्र ही सूर्यपुर जाओ और वहाँ गुरुजनों को मेरा यह समाचार बतला दो ॥30॥ मैं पृथिवी की अनन्य सुन्दरी प्रिया को प्राप्त किये बिना अपना जीवन नहीं मानता इसलिए उसे खोज ने के लिए समस्त पृथिवी में भ्रमण करूंगा ॥32॥ यह कहनेपर प्रहसित बड़े दुःख से किसी तरह पवनंजय को छोड़कर दीन होता हआ सूर्यपुर की ओर गया ॥32॥ इधर पवनंजय भी अम्बरगोचर हाथीपर सवार होकर समस्त पृथिवी में विचरण करता हुआ ऐसा विचार करने लगा कि जिसका कमल के समान कोमल शरीर शोकरूपी आताप से मुरझा गया होगा ऐसी मेरी प्रिया हृदय से मुझे धारण करती हुई कहाँ गयी होगी? ॥ 33-34॥ जो विधुरतारूपी अटवी के मध्य में स्थित थी, विरहाग्नि से जल रही थी और निरन्तर भयभीत रहती थी ऐसी वह बेचारी किस दिशा में गयी होगी ? ॥35॥ वह सती थी, सरलता से सहित थी तथा गर्भ का भार धारण करनेवाली थी। ऐसा न हुआ हो कि वसन्तमाला ने उसे महावन में अकेली छोड़ दो हो ॥36॥ जिस के नेत्र शोक से अन्धे हो रहे होंगे ऐसी वह प्रिया विषम मार्ग में जाती हुई कदाचित् किसी पुरा ने कुएं में गिर गयी हो अथवा किसी भूखे अजगर के मुंह में जा पड़ी हो ॥37॥ अथवा गर्भ के भार से क्लेशित तो थी ही जंगली जानवरों का भयंकर शब्द सुन भयभीत हो उसने प्राण छोड़ दिये हों ॥38॥ अथवा विन्ध्याचल के निर्जल वन में प्यास से पीड़ित होने के कारण जिस के तालु और कण्ठ सूख रहे होंगे ऐसी मेरी प्राणतुल्य प्रिया प्राणरहित हो गयी होगी ॥39॥ अथवा वह बड़ी भोली थी कदाचित् अनेक मगरमच्छों से भरी गंगा में उतरी हो और तीव्र वेगवाला पानी उसे बहा ले गया हो ॥40॥ अथवा डाभ की अनियों से विदीर्ण हुए जिस के पैरों से रुधिर बह रहा होगा ऐसी प्रिया एक डग भी चलने के लिए असमर्थ हो मर गयो होगी ॥41॥ अथवा कोई आकाशगामी दुष्ट विद्याधर हर ले गया हो। बड़े खेद की बात है कि कोई मेरे लिए उसका समाचार भी नहीं बतलाता ॥42॥ अथवा दुःख के कारण गर्भ-भ्रष्ट हो आर्यिकाओं के स्थान में चली गयी हो ? धर्मानुगामिनी तो वह थी ही ॥43॥ इस प्रकार विचार करते हुए बुद्धि-विह्वल पवनंजय ने पृथिवी में विहारकर जब समस्त इन्द्रियों और मन को हरनेवाली प्रिया को नहीं देखा ॥44॥ तब विरह से जलते हुए उसने समस्त संसार को सूना देख चित्त में मरने का दृढ़ निश्चय किया ॥45॥ अंजना ही पवनंजय की सर्वस्वभूत थी अतः उसके बिना उसे न पर्वतों में आनन्द आता था, न वृक्षों में और न मनोहर नदियों में ही ॥46॥ योंही पवनंजय ने उसका समाचार जान ने के लिए वृक्षों से भी पूछा सो ठीक ही है क्योंकि दुःखीजन विवेक से रहित हो ही जाते हैं ॥47॥ अथानन्तर भूतरव नामक वन में जाकर वह हाथी से उतरा और प्रिया का ध्यान करता हुआ क्षण-भर के लिए मुनि के समान स्थिर बैठ गया ॥48॥ सघन वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग उसपर पड़ते हुए घाम को रो के हुए थे। वहाँ उसने शस्त्र तथा कवच उतारकर अनादर से पृथिवीपर फेंक दिये ॥49॥ अम्बरगोचर नाम का हाथी बड़ी विनय से उसके सामने बैठा था और पवनंजय अत्यधिक थकावट से युक्त थे। उन्होने अत्यन्त मधुर वाणी में हाथी से कहा कि ॥50॥ हे गजराज ! अब तुम जाओ, जहाँ तुम्हारी इच्छा चाहे भ्रमण करो, अंजना का समाचार जान ने के लिए मोह से युक्त होकर मैंने तुम्हारा जो पराभव किया है उसे क्षमा करो ॥51॥ इस नदी के किनारे हरी-हरी घास और शल्ल के वृक्ष के पल्लवों को खाते हुए तुम हस्तिनियों के झुण्ड के साथ यथेच्छ भ्रमण करो ॥52॥ पवनंजय ने हाथी से यह सब कहा अवश्य पर वह किये हुए उपकार को जाननेवाला था और स्वामी के साथ स्नेह करने में उदार था इसलिए उसने उत्तम बन्धु की तरह शोकपीड़ित स्वामी का समीप्य नहीं छोड़ा ॥53॥ पवनंजय ने यह निश्चय कर लिया था कि यदि मैं उस मनोहारिणी प्रिया को नहीं पाऊँगा तो इस वन में मर जाऊँगा ॥54॥ जिसका मन प्रिया में लग रहा था ऐसे पवनंजय की नाना संकल्पों से युक्त एक रात्रि वन में चार वर्ष से भी अधिक बड़ी मालूम हुई थी ॥55॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! यह वृत्तान्त तो मैंने तुझ से कहा। अब पवनंजय के घर से चले जानेर माता-पिता को क्या चेष्टा हुई यह कहता हूँ सो सुन ॥56॥ मित्र ने जाकर जब पवनंजय का वृत्तान्त कहा तब उसके समस्त भाई-बन्धु परम शोक को प्राप्त हुए ॥57॥ अथानन्तर पुत्र के शोक से पोड़ित केतुमती अश्रुओं की धारा से दुर्दिन उपजाती हुई प्रहसित से बोली कि हे प्रहसित! क्या तझे ऐसा करना उचित था जो त मेरे पत्र को छोडकर अकेला आ गया ॥58-59॥ इसके उत्तर में प्रहसित ने कहा कि हे अम्ब ! उसी ने प्रयत्न कर मुझे भेजा है। उसने मुझे किसी भी भाव से वहाँ नहीं ठहर ने दिया ॥60॥ केतुमती ने कहा कि वह कहाँ गया है ? प्रहसित ने कहा कि जहाँ अंजना है। अंजना कहाँ है ? ऐसा केतुमती ने पुनः पूछा तो प्रहसित ने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता हूँ। जो मनुष्य बिना परीक्षा किये सहसा कार्य कर बैठते हैं उन्हें पश्चात्ताप होता ही है ॥61-62 / प्रहसित ने केतुमती से यह भी कहा कि तुम्हारे पुत्र ने यह निश्चित प्रतिज्ञा

की है कि यदि मैं प्रिया को नहीं देखूगा तो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होऊँगा ॥63॥ यह सुनकर केतुमती अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगी। उस समय जिनके नेत्रों से अश्रु झर रहे थे ऐसी स्त्रियों का समूह उसे घेरकर बैठा था ॥64॥ वह कहने लगी कि सत्य को जाने बिना मुझ पापिनी ने क्या कर डाला जिससे पुत्र जीवन के संशय को प्राप्त हो गया ॥65॥ क्रूर अभिप्राय को धारण करनेवाली कुटिलचित्त तथा बिना विचारे कार्य करनेवाली मुझ मूर्खा ने क्या कर डाला? ॥66॥ वायुकुमार के द्वारा छोड़ा हुआ यह नगर शोभा नहीं देता। यही नगर क्यों? विजयार्द्ध पर्वत ही शोभा नहीं देता और न रावण की सेना ही उसके बिना सुशोभित है ॥67॥ जो रावण के लिए भी कठिन थी ऐसी सन्धि युद्ध में जिसने करा दी मेरे उस पुत्र के समान पृथ्वीपर दूसरा मनुष्य है हो कौन ? ॥68॥ हाय बेटा ! तू तो विनय का आधार था, गुरुजनों की में सदा तत्पर रहता था. जगत-भर में अद्वितीय सन्दर था. और तेरे गण सर्वत्र प्रसिद्ध थे फिर भी तू कहाँ चला गया ॥69॥ हे मातृवत्सल ! जो तेरे दुःखरूपी अग्नि से सन्तप्त हो रही है ऐसी अपनी माता को प्रत्युत्तर देकर शोकरहित कर ॥70॥ इस प्रकार विलाप करती और अत्यधिक छाती कूटती हुई केतुमती को राजा प्रह्लाद सान्त्वना दे रहे थे पर शोक के कारण उनके नेत्रों से भी टप-टप आंसू गिरते जाते थे ॥71॥ तदनन्तर पुत्र को पा ने के लिए उत्सुक राजा प्रह्लाद समस्त बन्धुजनों के साथ प्रहसित को आगे कर अपने नगर से निकले ॥72॥ उन्होने दोनों श्रेणियों में रहनेवाले समस्त विद्याधरों को बुलवाया सो अपने-अपने परिवार सहित समस्त विद्याधर प्रेमपूर्वक आ गये ॥73॥ जिनके नाना प्रकार के वाहन आकाश में देदीप्यमान हो रहे थे और जिनके नेत्र नीचे गुफाओं में पड़ रहे थे ऐसे वे समस्त विद्याधर बड़े यत्न से पृथ्वी की खोज करने लगे ॥74॥ इधर प्रह्लाद के दूत से राजा प्रतिसूर्य को जब यह समाचार मालूम हुआ तो हृदय से शोक धारण करते हुए उसने यह समाचार अंजना से कहा ॥75॥ अंजना पहले से ही दुःखी थी अब इस भारी दुःख से और भी अधिक दुःखी होकर वह करुण विलाप करने लगी। विलाप करते समय उसका मुख अश्रुओं से धुल रहा था ॥76॥ वह कहने लगी कि हाय नाथ ! आप ही तो मेरे हृदय के बन्धन थे फिर निरन्तर क्लेश भोगनेवाली अबला को छोड़कर आप कहां चले गये ? ॥77॥ क्या आज भी आप उस पुरातन क्रोध को नहीं छोड़ रहे हैं जिससे समस्त विद्याधरों के लिए अदृश्य हो गये हैं ॥78॥ हे नाथ ! मेरे लिए अमृततुल्य एक भी प्रत्युत्तर दीजिए क्योंकि महापुरुष आपत्ति में पड़े हुए प्राणियों का हित करना कभी नहीं छोड़ते ॥79॥ मैंने अब तक आपके दर्शन की आकांक्षा से ही प्राण धारण किये हैं। अब मुझे इन पापी प्राणों से क्या प्रयोजन है ? |80॥ मैं पति के साथ समागम को प्राप्त होऊँगी, ऐसे जो मनोरथ मैंने किये थे वे आज दैव के द्वारा निष्फल कर दिये गये ॥81॥ मुझ मन्दभागिनी के लिए प्रिय उस अवस्था को प्राप्त हुए होंगे जिसकी कि यह क्रूर हृदय बार-बार आशंका करता रहा है ॥82॥ वसन्तमाले ! देख तो यह क्या हो रहा है? मुझे असह्य विरह के अंगाररूपी शय्यापर कैसे की लोटना पड़ रहा है ? ॥83॥ वसन्तमाला ने कहा कि हे देवि ! ऐसी अमांगलिक रट मत लगाओ। मैं निश्चित कहती हूँ कि भर्ता तुम्हारे समीप आयेगा ॥84॥ 'हे कल्याणि ! मैं तेरे भर्ता की अभी हाल ले आता हूँ' इस प्रकार अंजना को बड़े दुःख से आश्वासन देकर राजा प्रतिसूर्य मन के समान तीव्र वेगवाले सुन्दर विमान में चढ़कर आकाश में उड़ गया। वह पृथिवी को अच्छी तरह देखता हुआ जा रहा था ॥85-86॥ इस प्रकार विजयावासी विद्याधर और त्रिकूटाचलवासी राक्षस राजा प्रतिसूर्य के साथ मिलकर बड़े प्रयत्न से पृथिवी का अवलोकन करने लगे ॥87॥ अथानन्तर उन्होने भूतरव नामक अटवी में वर्षा ऋतु के मेघ के समान विशाल आकार को धारण करनेवाला एक बड़ा हाथी देखा ॥48॥ उस हाथी को उन्होने पहले अनेक बार देखा था इसलिए 'यह पवनकुमार का कालमेघ नामक हाथी है' इस प्रकार पहचान लिया ॥89॥ 'यह वही हाथी है' इस प्रकार सब विद्याधर हर्षित हो जोर से हल्ला करते हुए परस्पर एक दूसरे से कहने लगे ॥90॥ जो नीलगिरि अथवा अंजनगिरि के समान सफेद है तथा जिसकी सूंड योग्य प्रमाण से सहित है ऐसा यह हाथी जिस स्थान में है निःसन्देह उसी स्थान में पवनंजय को होना चाहिए यह हाथी मित्र के समान सदा उसके समीप ही रहता है ॥ 91-92॥ इस प्रकार कहते हए सब विद्याधर उस हाथी के पास गये। चूंकि वह हाथी निरंकुश था इसलिए विद्याधरों का मन कुछ. कुछ भयभीत हो रहा था ॥93॥ उन विद्याधरों के महाशब्द से वह महान् हाथी सचमुच ही क्षुभित हो गया। उस समय उसका रोकना कठिन था, उसका समस्त भयंकर शरीर चंचल हो रहा था और वेग अत्यन्त तीव्र था॥९४॥ उसके दोनों कपोल मद से भीगे हुए थे, कान खड़े थे और वह जोर-जोर से गर्जना कर रहा था। वह जिस दिशा में देखता था उसी दिशा के विद्याधर क्षुभित हो जाते थे-भय से भाग ने लगते थे ॥ 95॥ उस जनसमूह को देखकर स्वामी की रक्षा करने में तत्पर हाथी पवनंजय को समीपता को नहीं छोड़ रहा था ॥96॥ वह लीलासहित सूंड़ को घुमाता और अपने तीक्ष्ण दशन से हो समस्त विद्याधरों को भयभीत करता हुआ पवनंजय के चारों ओर मण्डलाकार भ्रमण कर रहा था ॥97॥ तदनन्तर विद्याधर यत्नपूर्वक हस्तिनियों से उस हाथी को घेरकर तथा वश में कर उत्सुक योग्य होते हुए उस स्थानपर उतरे

॥98॥ वशीकरण के समस्त उपायों में स्त्रीसमागम को छोड़कर और दूसरा उत्तम उपाय नहीं है ॥99॥ अथानन्तर जिसका समस्त शरीर ढीला हो रहा था, चित्रलिखित के समान जिसका आकार था और जो मौन से बैठा था ऐसे पवनंजय को विद्याधरों ने देखा ॥100॥ यद्यपि सब विद्याधरों ने उसका यथायोग्य उपचार किया तो भी वह मुनि के समान चिन्ता में निमग्न बैठा रहा-किसी से कुछ नहीं कहा ॥101॥ माता-पिता ने पुत्र की प्रीति से उसका मस्तक सूंघा, बार-बार आलिंगन किया और इस हर्ष से उनके नेत्र आँसुओं से आच्छादित हो गये ॥102॥ उन्होने कहा भी कि हे बेटा ! तुम माता-पिता को छोड़कर ऐसी चेष्टा क्यों करते हो? तुम तो विनीत मनुष्यों में सब से आगे थे ॥103॥ तुम्हारा शरीर उत्कृष्ट शय्यापर पड़ने के र तम ने आज इसे भयंकर एवं निर्जन वन के बीच वक्ष की कोटर में क्यों डाल रखा है ? ॥104॥ माता-पिता के इस प्रकार कहने पर भी उसने एक शब्द नहीं कहा। केवल इशारे से यह बता दिया कि मैं मरने का निश्चय कर चु का हूँ ॥105॥ मैंने यह व्रत कर रखा है कि अंजना को पाये बिना मैं न भोजन करूँगा और न बोलूंगा। फिर इस समय वह व्रत के से तोड़ दूँ ? ॥106॥ अथवा प्रिया की बात जाने दो, सत्य-व्रत की रक्षा करता हुआ मैं इन माता-पिता को किस प्रकार सन्तुष्ट करूं यह सोचता हुआ वह कुछ व्याकुल हुआ ॥107॥ तदनन्तर जिसका मस्तक नीचे की ओर झुक रहा था और जो मौन से चुपचाप बैठा था ऐसे पवनंजय को मरने के लिए कृतनिश्चय जानकर विद्याधर शोक को प्राप्त हुए ॥108॥ जिनके हृदय अत्यन्त दीन थे और जो स्वेद को धारण करनेवाले हाथों से पवनंजय के शरीर का स्पर्श कर रहे थे ऐसे सब विद्याधर उसके माता-पिता के साथ विलाप करने लगे।।१०९। तदनन्तर हँसते हुए प्रतिसूर्य ने सब विद्याधरों से कहा कि आप लोग दुःखी न हों। मैं आप लोगों से पवन कुमार को बुलवाता हूँ॥११०॥ तथा पवनंजय का आलिंगन कर क्रमानुसार उससे कहा कि हे कुमार ! सुनो, जो कुछ भी वृत्तान्त हुआ है वह सब मैं कहता हूँ ॥111॥ सन्ध्याभ्र नामक मनोहर पर्वतपर अनंगवीचि नामक मुनिराज को इन्द्रों में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥११२॥ मैं उनको वन्दना कर दीपक के सहारे रात्रि को चला आ रहा था कि मैंने वीणा के शब्द के समान किसी स्त्री के रोने का शब्द सुना ॥113॥ मैं उस शब्द को लक्ष्य कर पर्वत की ऊँची चोटी पर गया। वहाँ मुझे पर्यंक नाम की गुफा में अंजना दिखी ॥114॥ इसके निर्वास का कारण जो बताया गया था उसे जानकर शोक से विह्वल होकर रोती हुई उस बाला को मैंने सांत्वना दी॥११५॥ उसी गफा में उसने शुभ लक्षणों से यक्त ऐसा पुत्र उत्पन्न किया कि जिसकी प्रभा से वह गुफा सुवर्ण से बनी हुई के समान हो गयी ॥116॥ अंजना के पुत्र हो चु का है यह जानकर पवनंजय परम सन्तोष को प्राप्त हुआ और 'फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ ?' यह शीघ्रता से पूछने लगा ॥117॥ प्रतिसूर्य ने कहा कि उसके बाद अंजना के उस सुन्दर चेष्टाओं के धारक पुत्र को विमान में बैठाया जा रहा था कि वह पर्वत की गुफा में गिर गया ॥118॥ यह सुनकर हाहाकार करता हुआ पवनंजय विद्याधरों की सेना के साथ पुनः विषाद को प्राप्त हुआ ॥119॥ तब प्रतिसूर्य ने कहा कि शोक को प्राप्त मत होओ। जो कुछ वृत्तान्त हुआ वह सब सुनो। हे पवन ! पूरा वृत्तान्त तुम्हारे दुःख को दूर कर देगा ॥120॥ प्रतिसूर्य कहता जाता है कि तदनन्तर हाहाकार से दिशाओं को शब्दायमान करते हुए हम लोगों ने नीचे उतरकर पर्वत के बीच उस निर्दोष बालक को देखा ॥121॥ चूंकि उस बालक ने गिरकर पर्वत को चूर-चूर कर डाला था इसलिए हम लोगों ने विस्मित होकर उस को 'श्रीशल' इस नाम से स्तुति की ॥122॥ तदनन्तर पूत्रसहित अंजना को वसन्तमाला के साथ विमान में बैठाकर मैं अपने नगर ले गया ॥123॥ आगे चलकर चूंकि उसका हनूरुह द्वीप में संवर्धन हआ है इसलिए हनुमान यह दूसरा नाम भी रखा गया है॥१२४॥ इस तरह आप जिसका कथन किया है वह शीलवती अंजना आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले पुत्र के साथ मेरे नगर में रह रही है सो ज्ञात कीजिए ॥125॥ तदनन्तर हर्ष से भरे विद्याधर अंजना के देख ने के लिए उत्सुकं हो पवनंजय को आगे कर शीघ्र ही हनूरुह नगर गये ॥126॥ वहाँ अंजना और पवनंजय का समागम हो जाने से विद्याधरों को महान् उत्सव हुआ। दोनों दम्पतियों को जो उत्सव हुआ वह स्वसंवेदन से ही जाना जा सकता था विशेषकर उसका कहना अशक्य था ॥127॥ वहाँ विद्याधरों ने प्रसन्नचित्त से दो महीने व्यतीत किये। तदनन्तर पूछकर सम्मान प्राप्त करते हुए सब यथास्थान चले गये ॥128॥ चिरकाल के बाद पत्नी को पाकर पवनंजय की चेष्टाएँ भी ठीक हो गयीं और वह पुत्र की चेष्टाओं से आनन्दित होता हुआ वहाँ देव की तरह रमण करने लगा ॥129॥ हनूमान् भी वहां उत्तम यौवन-लक्ष्मी को पाकर सब के चित्त को चुरा ने लगा तथा उसका शरीर मेरु पर्वत के शिखर के समान देदीप्यमान हो गया ॥130॥ उसे समस्त विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं, प्रभाव उसका निराला ही था, विनय का वह जानकार था, महाबलवान् था, समस्त शास्त्रों का **अर्थ** करने में कुशल था, परोपकार करने में उदार था, स्वर्ग में भोग ने से बा की बचे पुण्य का भोगनेवाला था और गुरुजनों की पूजा करने में तत्पर था। इस तरह वह उस नगर में बड़े आनन्द से क्रीड़ा करता था ॥131-132॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! जो हनूमान् के साथ-साथ नाना रसों से आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले इस अंजना और पवनं नय के संगम को भाव से सुनता है उसे संसार की समस्त विधि का ज्ञान हो जाता है तथा उस ज्ञान के प्रभाव से उसे आत्म-ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जिससे वह उत्तम कार्य ही प्रारम्भ करता है और अशुभ कार्य में उसकी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती ॥133॥ वह दीर्घ आयु, उदार विभ्रमों से युक्त, सुन्दर नीरोग शरीर, समस्त शास्त्रों के पार को विषय करनेवाली बुद्धि, चन्द्रमा के समान निर्मल कीति, स्वर्ग-सुख का उपभोग करने में चतुर, पुण्य तथा लोक में जो कुछ भी दुर्लभ पदार्थ हैं उन सब को एक बार उस तरह प्राप्त कर लेता है जिस प्रकार कि सूर्य देदीप्यमान कान्ति के मण्डल को ॥134॥

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में पवनंजय और अंजना के समागम का वर्णन करनेवाला अठारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥18॥

## रावण का साम्राज्य

उन्नीसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर रावण को सन्तोष नहीं हुआ सो उसने बहुत भारी क्रोध धारण कर पत्रवाहकों के द्वारा समस्त विद्याधरों को फिर से बुलाया ॥1॥ किष्किन्धा का राजा, दुन्दुभि, अलंकारपुर का अधिपति, रथनूपुर का स्वामी तथा विजयार्द्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों में निवास करनेवाले अन्य समस्त विद्याधर सब प्रकार की तैयारी के साथ रावण के समीप जा पहुँचे ॥2-3॥ तदनन्तर मस्तकपर लेख को धारण करनेवाला एक मनुष्य हनूरुह द्वीप में पवनंजय और प्रतिसूर्य के पास भी आया ॥4॥ लेख का **अर्थ** समझकर दोनों ने रावण के पास जाने का विचार किया सो वहां जाने के पूर्व वे राज्यपर हनूमान् का अभिषेक करने के लिए उद्यत हुए ॥5॥ राज्याभिषेक की बड़ी तैयारी की गयी। तुरही आदि वादित्रों का बड़ा शब्द होने लगा और मनुष्य हाथ में कलश लेकर हनूमान् के सामने खड़े हो गये ॥6॥ हनूमान् ने पवनंजय और प्रतिसूर्य से पूछा कि यह क्या है ? तब उन्होने कहा कि हे वत्स ! अब तुम हनूरुह द्वोप के राज्य का पालन करो ॥7॥ हम दोनों को रावण ने युद्ध में सहायता करने के लिए बुलाया है सो ह में प्रेमपूर्वक यथोचित रूप से आज्ञा-पालन करना चाहिए ॥8॥ रसातलपुर में जो वरुण रहता है वही उसके विरुद्ध खड़ा हुआ है। उसकी बहुत बड़ी सेना है तथा वह पुत्र और दुर्ग के बल से उत्कट होने के कारण दुर्जय है ॥9॥ ऐसा कहनेपर हनूमान् ने विनय से उत्तर दिया कि मेरे रहते हुए आप गुरुजनों को युद्ध के लिए जाना उचित नहीं है ॥10॥ 'हे बेटा ! अभी तुमने रण का स्वाद नहीं जाना है' ऐसा जब उससे कहा गया तब उसने उत्तर दिया कि जो मोक्ष प्राप्त होता वह क्या कभी पहले प्राप्त किया हुआ होता है ? जब रोकनेपर भी उसने रुक ने का मन नहीं किया तब उन दोनों ने उस युवा को जाने की स्वीकृति दे दी ॥11-12॥ तदनन्तर प्रातःकाल स्नान कर जिसने अरहन्त और सिद्ध भगवान् को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम किया था, भोजन कर शरीरपर मंगलद्रव्य धारण किये थे, जो महातेज से सहित था तथा सब विधि-विधान के जानने में निपुण था ऐसा हनूमान् माता-पिता तथा माता के मामा को प्रणाम कर और समस्त लोगों से सम्भाषण कर सूर्य के समान चमकते हुए विमानपर बैठकर शस्त्रों के समूह से दसों दिशाओं को व्याप्त करता हुआ लंकापुरी की ओर चला ॥13-15॥ विमान में बैठकर त्रिकूटाचल के सम्मुख जाता हुआ हनूमान् ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि मेरुके सम्मुख जाता हुआ ऐशानेन्द्र सुशोभित होता है ॥16॥ समुद्र की लहरों को सन्तति जिस के विशाल नितम्ब को चूम रही थी ऐसे जल-वीचि गिरिपर जब वह पहुंचा तब सूर्य अस्त हो गया ॥17॥ सो वहाँ उत्तम योद्धाओं के साथ वार्तालाप करते हुए उसने सुख से रात्रि बितायी और प्रातःकाल होनेपर बड़े उत्साह से लंका की ओर दृष्टि रखकर आगे चला ॥18॥ इस तरह नाना देशों, द्वीपों, तरंगों से आहत, पर्वतों और समुद्र में किलोलें करते मगर-मच्छों को देखता हआ राक्षसों की सेना में जा पहुंचा ॥19॥ हनूमान् को सेना देखकर बड़े-बड़े राक्षसों के शिरोमणि हनूमान् की ओर दृष्टि लगाकर परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥20॥ जिसने पर्वत को चूर्ण किया था यह वही भव्य जनोत्तम है इस शब्द को सुनता हुआ हनूमान् रावण के समीप गया ॥21॥ उस समय रावण उस शिलातलपर बैठा था जो कि फलों से व्याप्त था, सुगन्धि के कारण खिचे हए मदोन्मत्त भ्रमंर जिसपर गंजार कर रहे थे. जिस के ऊपर रत्नों की किरणों से व्याप्त कपडे का उत्तम मण्डप लगा हआ था और जिस के चारों ओर सामन्त लोग बैठे थे। रावण हनूमान् को देखकर उस शिलातल से उठकर खड़ा हो गया ॥22-23॥ तदनन्तर विनय से जिसका शरीर झुक रहा था ऐसे हनूमान् का आलिंगन कर वह प्रीति से हँसता हुआ उसके साथ उसी शिलातलपर बैठ गया ॥24॥ परस्पर की कुशल पूछकर तथा एक दूसरे को सम्पदा देखकर दोनों महाभाग्यशाली इस

तरह रमण करने लगे मानो दो इन्द्र ही परस्पर मिले हों ॥25॥ अथानन्तर जो प्रसन्न चित्त का धारक था और अत्यन्त स्नेहभरी दृष्टि से बार-बार उसी की ओर देख रहा था ऐसा रावण हनूमान् से बोला कि ॥26॥ अहो, सज्जनोत्तम पवनकुमार ने मेरे साथ खूब प्रेम बढ़ाया है जो प्रसिद्ध गुणों के सागरस्वरूप इस पुत्र को भेजा है ॥27॥ इस महा-बलवान् तथा तेजोमण्डल के धारक वीर को पाकर मुझे इस संसार में कोई भी कार्य कठिन नहीं रह जायेगा ॥28॥ जब रावण हनूमान् के गुणों का वर्णन कर रहा था तब वह लज्जित के समान नम्र शरीर का धारक हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों को यही वृत्ति है ॥29॥ तदनन्तर जिसकी किरणों का समूह लाल पड़ गया था ऐसा सूर्य मानो होनेवाले संग्राम के भय से ही अस्त हो गया था ॥30॥ उसके पीछे-पीछे जाती और उत्कट राग अर्थात् लालिमा ( पक्ष में प्रेम) को धारण करती हुई सन्ध्या ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो अपने प्राणनाथ के पीछे-पीछे जाती हुई विनीत स्त्री-कुलवधू ही हो ॥31॥ जो निरन्तर सूर्य के पीछे-पीछे चला करती थी ऐसी रात्रिरूपी वधू चन्द्रमारूपी तिलक धारण कर अतिशय सुशोभित होने लगी ॥32॥ दूसरे दिन जब सूर्य की किरणों से संसार प्रकाशमान हो गया तब रावण तैयार होकर वरुण के नगर की ओर चला। उस समय रावण अपनी समस्त सेना के मध्य में चल रहा था। हनूमान् उसके पास ही स्थित और मंगलद्रव्य उसने शरीरपर धारण कर रखे थे। वह विद्या के द्वारा समुद्र को भेदन कर वरुण के नगर की ओर चला ॥33-34॥ जिस प्रकार परशुराम को लक्ष्य कर चलनेवाले सुभौम चक्रवर्ती को अनुपम दीप्ति थी उसी प्रकार शत्रुके सम्मुख जानेवाले रावण की दीप्ति भी अनुपम थी ॥35॥ सेना को कल-कल से दशानन को आया जान वरुण का समस्त नगर क्षुभित हो गया उस में बड़ा कुहराम मच गया ॥36॥ वरुण का वह नगर पातालपुण्डरीक नाम से प्रसिद्ध था। उस में मजबूत ध्वजाएं लगी हुई थीं और रत्नमयी तोरण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे, पर रावण के पहुंचनेपर सारा नगर युद्ध की तैयारी सम्बन्धी कल-कल से व्याप्त हो गया ॥37॥ असुरों के नगर के समान सब के मन को हरनेवाले उस नगर में खासकर स्त्रियों में बड़ी आकुलता उत्पन्न हो रही थी। भय से उनके नेत्र त्रकित हो गये थे ॥38॥ वहां भवनवासी देवों के समान जो योद्धा थे वे बाहर निकल आये तथा चमरेन्द्र के समान पराक्रम से गर्वीला वरुण भी निकलकर बाहर आया ॥39॥ जिन्हों ने नाना प्रकार के शत्रों के समूह से सूर्य का दिखना रोक दिया था ऐसे वरुण के सौ पराक्रमी पुत्र भी युद्ध करने के लिए उठ खड़े हुए ॥40॥ सो जिस प्रकार असुरकुमार अन्य क्षुद्र देवताओं को क्षण एक में पराजित कर देते हैं उसी प्रकार वरुण के सौ पुत्रों ने क्षण एक में ही राक्षसों की सेना को पराजित कर दिया ॥41॥ जिस के अन्दर सौ भाई अपनी कला दिखा रहे थे ऐसी वरुण की सेना से खण्डित हुई रावण की सेना गायों के झुण्ड के समान भयभीत हो तितर-बितर हो गयी ॥42॥ राक्षसों के हाथ पसी ने से गीले हो गये जिससे चक्र, धनुष, घन, प्रास, शतघ्नी आदि शस्त्र उनसे छूट-छूटकर नीचे गिरने लगे ॥43॥ तदनन्तर रावण ने देखा कि हमारी सेना बाणों के समूह से व्याकुल होकर प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान लाल-लाल हो रही है तब वह बाणों की वेगशाली वर्षा से स्वयं ताडित होता हुआ भी क्रुद्ध हो क्षण एक में शत्रुदल को भेदकर भीतर घुस गया और जिस प्रकार गजराज वृक्षों को नीचे गिराता है उसी प्रकार वरुण की सेना के वीरों को मार-मारकर नीचे गिरा ने लगा ॥44-45॥ तदनन्तर वरुण के सौ पुत्रों ने रावण को इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि वर्षाऋतु के गरजते हुए बादल सूर्य को घेर लेते हैं ॥46॥ यद्यपि सब दिशाओं से आनेवाले बाणों से रावण का शरीर खण्डित हो गया तो भी वह अभिमानी युद्ध के मैदान को नहीं छोड़ रहा था ॥47॥ उधर वरुण ने भी देदीप्यमान कानों को धारण करनेवाले नरश्रेष्ठ इन्द्रजित् तथा राक्षसों के अन्य अनेक राजाओं को अपने सामने किया अर्थात् उनसे युद्ध करने लगा ॥48॥ तदनन्तर वरुण के पुत्र ने जिसे अपने बाणों का निशाना बनाया था और जो रुधिर के बहने से पलाश के फूलों के समूह के समान जान पड़ता था ऐसे रावण को देखकर हनूमान् शीघ्र ही महापुरुषों के बीच में चलनेपर रथपर सवार हुआ। उस समय उसका चित्त रावण के भाई के समान प्रीति से युक्त था तथा वह सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था ॥49-50॥ तत्पश्चात् जो अपने वेग से पवन को जीत रहा था, विजय प्राप्त करने में जिसका आदर था और जो सूर्यमण्डल के समान देदीप्यमान हो रहा था ऐसा हनूमान् यमराज के समान युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ ॥51॥ सो जिस प्रकार महावेगशाली वायु से प्रेरित उन्नत मेघों का समूह इधर-उधर उड़ जाता है उसी प्रकार हनूमान् के द्वारा प्रेरित हुए वरुण के सब पुत्र इधर-उधर भाग खड़े हुए ॥52॥ वह बार-बार शत्रुओं के शरीरों के साथ कदली वन को छेद ने की क्रीड़ा करता था अर्थात् शत्रुओं के शरीर को कदली वन के समान अनायास ही काट रहा था ॥53॥ जिस प्रकार कोई पुरुष स्नेह के द्वारा अपने मित्र को खींच लेता है उसी प्रकार उसने किसी वीर को विद्यानिर्मित लांगूलरूपी पाश से खींच लिया था ॥54॥ और जिस प्रकार कोई जिनभक्त हेतुरूपी मुद्गर के प्रहार से मिथ्यादृष्टि के मस्तकपर प्रहार करता है उसी प्रकार वह किसी के शिरपर उल् का के प्रहार से चोट पहुँचा रहा था ॥55॥ इस प्रकार वानर को ध्वजा से सुशोभित हनूमान्

को कोड़ा करते देख क्रोध से लाल-लाल नेत्र करता हुआ वरुण उसके सामने आया ॥56॥ ज्योंही रावण ने वरुण को हनूमान् के सामने दौड़ता आता देखा त्यों ही उसने शत्रु को बीच में उस प्रकार रोक लिया जिस प्रकार कि पहाड़ नदी के जल को रोक लेता है ॥57॥ इधर जबतक वरुण का रावण के साथ घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही तथा शस्त्रों के समूह से व्याप्त युद्ध हुआ ॥58॥ तबतक हनुमान् ने वरुण के सौ के सौ ही पुत्र बांध लिये। वे चिरकाल तक युद्ध करतेकरते थक गये थे तथा उनके सैनिक मारे गये थे ॥59॥ सौ के सौ ही पुत्रों को बँधा सुनकर वरुण शोक से विह्वल हो गया। वह विद्या का स्मरण भूल गया और उसका पराक्रम ढीला पड़ गया ॥60॥ रण-निपुण रावण ने छिद्र पाकर वरुण की योधिनी नामा विद्या छेद डाली तथा उसे जीवित पकड़ लिया ॥61॥ उस समय जिस के पुत्ररूपी किरणों की शोभा नष्ट हो गयी थी तथा जो उदय से रहित था ऐसे वरुणरूपी चन्द्रमा के लिए रावण ने राहु का काम किया था ॥62॥ जो शत्रुरूपी पिंजड़े के मध्य में स्थित था, जिसका मान नष्ट हो गया था और जिसे लोग बड़े आश्चर्य से देखते थे ऐसा वरुण रक्षा करने के लिए आदर के साथ कुम्भकर्ण को सौंपा गया ॥63॥ तदनन्तर बहुत दिन बाद निश्चिन्तता को प्राप्त हुआ रावण सेना को विश्राम देता हुआ भवनोन्माद नामक उत्कृष्ट उद्यान में ठहरा रहा ॥64॥ वृक्षों को छाया के नीचे ठहरी हुई इसकी सेना का युद्धजनित खेद समुद्र के सम्बन्ध से शीतल वायु ने दूर कर दिया था ॥65॥ स्वामी को पकड़ा जानकर वरुण की समस्त सेना भयभीत हो व्याकुलता से भरे पुण्डरीक नगर में घुस गयी ॥66॥ यद्यपि वही सेना थी, और वे ही महायोद्धा थे तो भी प्रधान पुरुष के बिना सब व्यर्थ हो गये ॥67॥ अहो ! पुण्य का माहात्म्य देखो कि पुण्यवान् के उत्पन्न होते ही अनेक पुरुषों का उद्भव हो जाता है और उसके नष्ट होनेपर अनेक पुरुषों का पतन हो जाता है ॥68॥ अथानन्तर कुम्भकर्ण घबड़ाये हुए समस्त मनुष्यों के समूह से व्याप्त शत्रुके उस नगर को नष्ट-भ्रष्ट करने लगा ॥69॥ योद्धाओं ने उस नगर की धन-रत्न आदिक समस्त कीमती वस्तुएं लूट लीं। यह लूट शत्रुके नगरपर क्रोध होने के कारण ही की गयी थी न कि लोभ के वशीभूत होकर ॥70॥ जो रति के समान विभ्रम को धारण करनेवाली थीं, जिनके नेत्र झरते हुए आंसुओं से व्याप्त थे तथा जो विलाप कर रही थीं ऐसी बेचारी उत्तमोत्तम स्त्रियां पकड़कर लायी गयीं ॥71॥ जिनके शरीर स्तनों के भार से नम्र थे, जिनके पल्लवों के समान कोमल हाथ हिल रहे थे और जो समस्त बन्धुजनों को चिल्ला-चिल्लाकर पुकार रही थीं ऐसी उन स्त्रियों को निष्ठुर मनुष्य पकड़कर ला रहे थे॥७२॥ जिसका मखरूपी पर्ण चन्द्रमा शोकरूपी राह के द्वारा प्रसा गया था ऐसी विमान के भीतर डाली गयी कोई स्त्री सखी से कह रही थी कि हे सखि ! यदि कदाचित् मेरे शील का भंग होगा तो मैं वस्त्र की पट्टी से लटककर मर जाऊँगी इसमें संशय नहीं है ॥73-74॥ जिस के मरने में सन्देह था ऐसे पति को बार-बार पुकारती हुई म्लान लोचनोंवाली कोई स्त्री उसके गुणों का स्मरण कर मूर्छा को प्राप्त हो रही थी ॥75॥ जो माता, पिता, भाई, मामा और पुत्र को बुला रही थीं तथा जिनके नेत्रों से आँसू झर रहे थे ऐसी वे स्त्रियाँ मुनि के लिए भी दुःखदायिनी हो रही थी **अर्थ**ात् उनकी दशा देख मुनि के हृदय में भी दुःख उत्पन्न हो जाता था॥७६।। कुम्भकर्ण की शोभा से जिस के नेत्र हरे गये थे ऐसी कोई एक कमल-लोचना स्त्री एकान्त पाकर विश्वासपूर्वक सखी से कह रही थी कि हे सखि ! इस श्रेष्ठ नर को देखकर मुझे कोई अद्भुत ही आनन्द उत्पन्न हुआ है और जिस आनन्द से मानो मेरा समस्त शरीर पराधीन ही हो गया है ॥77-78॥ इस प्रकार कर्मों की विचित्रता से उन खियों में शुद्ध तथा विरुद्ध दोनों प्रकार के विकल्प उत्पन्न हो रहे थे सो ठोक ही है क्योंकि लोगों की चेष्टाएँ विचित्र हुआ करती हैं ॥79॥ तदनन्तर जो कुबेर के समान समीचीन विभूति का धारक था, अत्यन्त बलवान् योद्धा जिसकी सेवा कर रहे थे, जो जय-जय की ध्वनि से मुखर था और सुन्दर लीला से सहित था ऐसे कुम्भकर्ण ने विमान से उतरकर बड़े हर्ष के साथ उन धूसर ओठोंवाली अपहृत स्त्रियों को रावण के सामने खड़ा कर दिया ॥80-81॥ वे स्त्रियाँ विषाद से युक्त थीं, उनके नेत्र आंसुओं से भरे हुए थे, बन्धुजनों से रहित थीं, नम्र थीं, उनके शरीर कांप रहे थे, वे इच्छानुसार कुछ दयनीय शब्दों का उच्चारण कर रही थीं तथा लज्जा से युक्त थीं। उन स्त्रियों को देखकर रावण करुणायुक्त हो कुम्भकर्ण से इस प्रकार कहने लगा ॥82-83॥ कि अहो बालक ! जो तू कुलवती स्त्रियों को बन्दी के समान पकड़कर लाया है यह तूने अत्यन्त दुश्चरित का कार्य किया है ॥84॥ इन बेचारी भोलीभाली स्त्रियों का इसमें क्या दोष था जो तूने व्यर्थ ही इन्हें कष्ट पहुँचाया है ? ॥85॥ जो चेष्टा मुग्धजनों का पालन करनेवाली है, शत्रुओं का नाश करनेवाली है और गुरुजनों की शुश्रूषा करने पथार्थ में वही महापरुषों की चेष्टा कहलाती है ॥86॥ ऐसा कहकर उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़वा दिया जिससे वे अपने-अपने घर चली गयीं। यही नहीं उसने साध्वी स्त्रियों को अपनी वाणी से आश्वासन भी दिया जिससे उन सब का भय शीघ्र ही कम हो गया ॥87॥

अथानन्तर जो लज्जा से सहित था तथा जिसने सुभटों के देख ने मात्र से राक्षसों का मुख नीचा कर दिया था ऐसे वरुण को बुलाकर

रावण ने कहा कि हे प्रवीण ! युद्ध में पकड़े जाने का शोक मत करो क्योंकि युद्ध में वीरों का पकड़ा जाना तो उनकी उत्तम कीर्ति का कारण है ॥88-89॥ मानशाली वीर युद्ध में दो ही वस्तुएँ प्राप्त करते हैं एक तो पकड़ा जाना और दूसरा मारा जाना। इन के सिवाय जो कायर लोग हैं वे भाग जाना प्राप्त करते हैं ॥90॥ तुम पहले के समान ही समस्त मित्र और बन्धुजनों से सम्पन्न हो सकल उपद्रवों से रहित अपने सम्पूर्ण राज्य का अपने ही स्थान में रहकर पालन करो ॥91॥ इस प्रकार कहनेपर वरुण ने हाथ जोड़कर वीर रावण से कहा कि इस संसार में आपका पुण्य विशाल है जो आपके साथ वैर रखता है वह मूर्ख है ॥92॥ अहो! यह तुम्हारा बड़ा धैर्य है, यह मुनि के धैर्य के समान हजारों स्तवन करने के योग्य है, कि जो तुमने दिव्य रत्नों का प्रयोग किये बिना ही मुझे जीत लिया। यथार्थ में तुम्हारा शासन उन्नत है ॥93॥ अथवा आश्चर्यकारी कार्य करनेवाले हनुमान का ही प्रभाव कैसे की कहा जाये? क्योंकि हे सत्पुरुष! वह महानुभाव भी आपके ही शुभोदय से यहाँ आया था ॥94॥ पराक्रमरूपी कोश से जिसकी रक्षा की गयी ऐसी यह पृथिवी गोत्र की परिपाटी के अनुसार किसी को प्राप्त नहीं हुई। यह तो वोर मनुष्य के भोग ने योग्य है और आप वीर मनुष्यों में अग्रसर हो अतः आप लोक का पालन करो ॥95॥ हे उदार यश के धारक ! आप हमारे स्वामी हो। मेरे दुर्वचनों से आप को जो दुःख हुआ हो उसे क्षमा करो। हे नाथ ! ऐसा कहना चाहिए, इसीलिए कह रहा हूँ। वै से आपकी अत्यन्त उदार क्षमा तो देख ही ली है ॥96॥ आप अत्यन्त चेष्टा के धारक हो इसलिए आपके साथ सम्बन्ध कर मैं कृतकृत्य होना चाहता हूँ। आप मेरी पुत्री स्वीकृत कीजिए क्योंकि इसके योग्य आप ही हैं ॥97॥ ऐसा कहकर उसने सुन्दर रूप की धारक, सुदेवी रानी से उत्पन्न, कमल के समान मुखवाली, सत्यवती नाम से प्रसिद्ध अपनी विनीत कन्या रावण के लिए समर्पित कर दी ॥98॥ उन दोनों के विवाह में ऐसा बड़ा भारी उत्सव हुआ था कि जिसमें सब लोगों का सम्मान किया गया तो ठीक ही है क्योंकि दोनों ही समस्त समृद्धि को प्राप्त थे, अतः उन्हें कोई भी वस्तु खोजनी नहीं पड़ी थी ॥99॥ इस प्रकार सम्मान को प्राप्त हुए रावण ने जिसका सम्मान किया था तथा रावण स्वयं जिसे भेज ने के लिए पीछे-पीछे गया था ऐसा वरुण अपनी राजधानी में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पुत्री के वियोग से कुछ दिन तक उसकी अन्तरात्मा दुःखी रही ॥100॥ कैलास को कम्पित करनेवाले रावण ने भी लंका में आकर तथा बहुत भारी सम्मान कर हनूमान् के लिए चन्द्रनखा को कान्तिमती पुत्री समर्पित की। उस कन्या का नाम लोक में 'अनंगपुष्पा' प्रसिद्ध था। वह गुणों की राजधानी थी और उसके नेत्र कामदेव के पुष्परूपी शस्त्र **अर्थ**ात् कमल के समान थे। उसे पाकर हनूमान् अत्यधिक सन्तोष को प्राप्त हुआ ॥101-102॥ कन्या ही नहीं दी किन्तु लक्ष्मी से भरपूर कर्णकुण्डलनामा नगर में उसका राज्याभिषेक भी किया सो जिस प्रकार स्वर्गलोक में इन्द्र रहता है उसी प्रकार वह उस नगर में उत्तम भोग भोगता हुआ रहने लगा ॥103॥ किष्कुपुर के राजा नल ने भी रूपसम्पदा के द्वारा लक्ष्मी को जीतनेवाली अपनी हरिमालिनी नाम की प्रसिद्ध पुत्री बड़े वैभव के साथ हनूमान् को दी ॥104॥ इसी प्रकार किन्नरगीत नामा नगर में भी उसने किन्नरजाति के विद्याधरों की सौ कन्याएँ प्राप्त की। इस तरह उस महात्मा के यथाक्रम से एक हजार से भी अधिक स्त्रियाँ हो गयीं ॥105॥ चकि श्रीशैल नाम को धारण करनेवाले हनूमान् भ्रमण करते हुए उस पर्वतपर आकर ठहर गये थे इसलिए सुन्दर शिखरोंवाला वह पर्वत पृथिवी में 'श्रीशैल' इस नाम से ही प्रसिद्ध हो गया ॥106॥ अथानन्तर उस समय किष्किन्धपुर नामा नगर में विद्याधरों के राजा उदारचेता सुग्रीव रहते थे। उनकी चन्द्रमा के समान मुखवाली तथा सुन्दरता में रति की समानता करनेवाली तारा नाम की स्त्री थी ॥107॥ उन दोनों के एक पद्मरागा नाम की पुत्री थी। उस पुत्री का रंग नूतन कमल के समान था, गुणों के द्वारा वह पृथिवी में अत्यन्त प्रसिद्ध थी, रूप से लक्ष्मी के समान जान पड़ती थी, उसके नेत्र विशाल थे, उसका मुखकमल कान्ति के समूह से आवृत था, उसके स्तन किसी बड़े हाथी के गण्डस्थल के समान उन्नत और स्थूल थे, उसका उदर इन्द्रायुध अर्थात् वज्र के पकड़ ने को जगह के समान कृश था, वह अत्यधिक सौन्दर्यरूपो सरोवर के मध्य में संचार करनेवाली थी तथा सर्व मनुष्यों की अन्तरात्मा को चुरानेवाली थी ॥108-109॥ सुन्दर विभ्रमों से युक्त उस कन्या के योग्य वर की खोज करते हुए माता-पिता न रात में सुख से नींद लेते थे और न दिन में चैन / उनका चित्त सदा इसी उलझन में उलझा रहता था ॥110॥

तदनन्तर जो नाना गुणों के धारक थे, जिन की कान्ति अत्यन्त मनोहर थी, और साथ ही जिनके शील तथा वंश का परिचय दिया गया था ऐसे इन्द्रजित् आदि प्रधान विद्याधरों के चित्रपट लिखाकर माता-पिता ने पुत्री को दिखलाये ॥111॥ अनुक्रम से उन चित्रपटों को देखकर कन्या ने बार-बार अपनी दृष्टि संकुचित कर लो। अन्त में हनूमान् का चित्रपट उसे दिखाया गया तो उस ओर उसकी दृष्टि शीघ्र ही आकर्षित होकर निश्चल हो गयी। उसे वह अनुराग से देखती रही ॥112॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर सदृशता से रहित था ऐसे चित्रपट में स्थित हनूमान् को देखकर वह कन्या एक ही साथ कामदेव के पाँचों दुःसह बाणों से ताड़ित हो गयी ॥113॥ उसे हनूमान् में

अनुरक्त देख गुणों को जाननेवाली सखी ने कहा कि हे बाले! यह पवनंजय का श्रीशैल नाम से प्रसिद्ध पुत्र है ॥114॥ इसके गुण तो तुम्हें पहले से ही विदित थे और सुन्दरता तुम्हारे नेत्रों के सामने है इसलिए इसके साथ कामभोग को प्राप्त करो तथा माता-पिता को चिरकाल बाद निद्रा प्रदान करो **अर्थ**ात् निश्चिन्त होकर सो ने दो ॥115॥ आश्चर्य की बात है कि हनूमान् ने चित्रगत होकर भी तेरे मन में विकार उत्पन्न कर दिया ऐसा कहती हुई सखी को कन्या ने लज्जावनत हो लीलाकमल से ताड़ित किया ॥116॥ तदनन्तर जब पिता को पता चला कि कन्या का मन पवनपुत्र हनूमान के द्वारा हरा गया है तब उसने शीघ्र ही हनूमान् के पास कन्या का चित्रपट भेजा ॥117॥ सो सुग्रीव का भेजा हुआ दूत श्रीनगर पहुंचा। वहां जाकर उसने अपना परिचय दिया, प्रणाम किया और उसके बाद हनूमान् के लिए तारा की पुत्री पद्मरागा का चित्रपट दिखलाया ॥118॥ जैसा कि इस संसार में प्रसिद्ध है कि कामदेव के पांच बाण हैं यदि यह बात सत्य हे तो कन्या ने एक ही समय सी बाणों के द्वारा हनूमान् को कैसे की घायल किया ॥119॥ यदि मैं इस कन्या को नहीं प्राप्त करता है तो मेरा जन्म लेना व्यर्थ है ऐसा मन में विचारकर हनुमान् बड़े वैभव के साथ क्षण एक में सुग्रीव के नगर की ओर चल पड़ा ॥120॥ उसे अत्यन्त निकट में आया सुन सुग्रीव राजा हर्षित होता हुआ शीघ्र ही उसकी अगवानी के लिए गया। तत्पश्चात् जिसे सैकड़ों अर्घ दिये गये थे ऐसे हनूमान् ने श्वसुर के साथ नगर में प्रवेश किया ॥121॥ उस समय जब हनूमान् राजमहल की ओर जा रहा था तब नगर की स्त्रियाँ अन्य सब काम छोड़कर महलों के मणिमय झरोखों में जा खड़ी हुई थी और उस समय उनके नेत्रकमल हनूमान् को देख ने के लिए व्याकुल हो रहे थे ॥122॥ सुकुमार शरीर की धारक सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा झरोखे से हनूमान् का रूप देखकर मन-ही-मन अपने आपके द्वारा अनुभव करने योग्य किसी अद्भुत अवस्था को प्राप्त हुई ॥123॥ सखि! यह वह पुरुष नहीं है, यह तो कोई दूसरा है, अथवा नहीं सखि ! यह वही है, इस प्रकार स्त्रियाँ जिस के विषय में तर्कणा कर रहीं थी ऐसे हनूमान् ने नगर में प्रवेश किया ॥124॥ तदनन्तर बड़े वैभव के साथ उन दोनों का विवाह हुआ। विवाह में समस्त बन्धुजन सम्मिलित हुए और अत्यन्त सुन्दर रूप के धारक दोनों दम्पति परम-प्रमोद को प्राप्त हुए ॥125॥ जिसका चित्त सन्तुष्ट हो रहा था ऐसे हनूमान् पुत्री तथा अपने आपके वियोग से परिवार सहित सास-श्वसुर को शोकयुक्त करता हुआ नववधू के साथ अपने स्थानपर चला गया ॥126॥ इस प्रकार जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही थी ऐसे शोभा अथवा लक्ष्मी सम्पन्न पुत्र के रहते हुए राजा पवनंजय और अंजना महासुखानुभव रूपी सागर के मध्य में गोता लगा रहे थे ॥127॥ अथानन्तर हनूमान् जैसे उत्तमोत्तम विद्याधर राजा जिसका सम्मान करते थे, जो अत्यधिक मान को धारण करनेवाला था. तीन खण्ड का स्वामी था और हरिकण्ठ के समान थ रावण समस्त शत्रओं से रहित हो गया ॥128 / जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गलोक में क्रीडा करता है उसी प्रकार समस्त लोकों को आनन्द प्रदान करता हुआ विशाल कान्ति का धारक रावण विशाल भोगों से समुत्पन्न सुख से लंका नगरी में क्रीड़ा करने लगा ॥122॥ स्त्रियों के मुखरूपी कमल का भ्रमर रावण स्त्रीजनों के स्तनोंपर हाथ चलाता हुआ बोते हुए बहुत भारी काल को भी नहीं जान पाया **अर्थ**ात् कितना अधिक काल बीत गया इसका उसे पता ही नहीं चला ॥130॥ जिस मनुष्य के पास एक ही विरूप तथा निरन्तर झगड़नेवाली स्त्री होती है वह भी सांसारिक सुख में निमग्न हो अपने आप को रतिपति अर्थात् कामदेव समझता है ॥131॥ फिर रावण तो लक्ष्मी की उपमा धारण करनेवाली अठारह हजार स्त्रियों से युक्त था, महाप्रभावशाली था, तीन खण्ड का स्वामी था, अनुपम कान्ति का धारी था अतः उसके विषय में क्या कहना है ? ॥132॥ इस प्रकार समस्त विद्याधर जिसकी स्तुति करते थे, सब लोग घबड़ाकर नम्राभूत मस्तकपर जिसकी आज्ञा धारण करते थे और तीन खण्ड के राज्यपर जिसका अभिषेक किया गया था ऐसा रावण जनसमूह के द्वारा स्तुत साम्राज्य को प्राप्त हुआ ॥133॥ समस्त विद्याधर राजा जिस के चरणकमलों की पूजा करते थे और जिसका शरीर श्री, कीर्ति और कान्ति से मनोज्ञ था ऐसा रावण सर्वग्रहों से परिवृत चन्द्रमा के समान किस का मन हरण नहीं करता था ॥134॥ जिसकी मध्यजाली मध्याह्न के सूर्य को किरणों के समान थी, जो उद्दण्ड शत्रु राजाओं के नष्ट करने में समर्थ था, जिस के अर स्पष्ट दिखाई देते थे, तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान रत्नों से चित्र-विचित्र जान पड़ता था ऐसा इसका सुदर्शन नाम का अमोघ देवोपनीत चक्र अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥135॥ जिसका उग्रतेज सब ओर फैल रहा था ऐसा रावण, दुष्टजनों को तो ऐसा भय उत्पन्न कर रहा था मानो शरीरधारी दण्ड अथवा मृत्यु ही हो। जब वह शस्त्रशाला में शस्त्रों की पूजा करता था तब ऐसा जान पडता था मानो इकदा हआ प्रचण्ड उल्काओं का समूह ही हो ॥136॥ इस प्रकार विशाल तथा सुन्दर कीति को धारण करनेवाला रावण स्वकीय कर्मोदय से वंशपरम्परागत लंकापुरी को पाकर सर्वकल्याणयुक्त आश्चर्यकारक ऐश्वर्य को तथा संसार सम्बन्धी श्रेष्ठ सुख को प्राप्त हुआ था ॥137॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति का कारण जो मुनिसुव्रत

भगवान का तीर्थ था उसे व्यतीत हुए जब बहुत दिन हो गये तब परमार्थ से दूर रहनेवाले अत्यन्त मूढ़ कवियों ने इस प्रधान पुरुष का लोक में अन्यथा ही कथन कर डाला ॥138॥ जो विषयों के अधीन हैं, जिनका तत्त्वज्ञान नष्ट हो गया है, जो अत्यन्त कुशील हैं और निरन्तर पाप में अनुरक्त रहते हैं ऐसे कवि लोग स्वरचित पापवर्धक ग्रन्थरूपी जाल से मन्दभाग्य तथा अत्यन्त सरल मनुष्यरूपी मृगों के समूह को नष्ट करते रहते हैं। इसलिए जिसने वस्तु का यथार्थस्वरूप समझ लिया है, जिसने मिथ्यादृष्टि जनों के द्वारा रचित कुशास्त्ररूपी कीचड़ का प्रसंग नष्ट कर दिया है, जिसका सूर्य के समान विशाल तेज है और जो लक्ष्मी से विशाल है ऐसे है श्रेणिक! त इन्द्रद्वारा वन्दनीय जिनशास्त्ररूपी रत्न की उपासना कर-उसी का अध्ययन-मनन कर ॥139-140॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्म वरित में रावण के साम्राज्य का कथन करनेवाला उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 19॥

इस प्रकार विद्याधरकाण्ड नामक प्रथम काण्ड समाप्त हुआ।

## तीर्थकरादि के भव

बीसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर जिसकी आत्मा अत्यन्त नम्र थी और बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ थी ऐसा श्रेणिक विद्याधरों का वर्णन सुन आश्चर्यचकित होता हुआ गणधर भगवान् के चरणों को नमस्कार कर फिर बोला कि ॥1॥ हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मैंने अष्टम प्रतिनारायण का जन्म तथा वानर बंश और राक्षस वंश का भेद जाना। अब इस समय हे नाथ! चौबीस तीर्थंकरों तथा बारह चक्र वतियों का चरित्र उनके पूर्वभवों के साथ सुनना चाहता हूँ क्योंकि वह बुद्धि को शुद्ध करने का कारण है ॥2-3॥ इन के सिवाय जो आठवाँ बलभद्र समस्त संसार में प्रसिद्ध है वह किस वंश में उत्पन्न हुआ तथा उसकी क्या-क्या चेष्टाएँ हुई ! ॥4॥ हे उत्तम मुनिराज ! इन सब के पिता आदि के नाम भी मैं जानना चाहता हूँ सो हे नाथ! यह सब कहने के योग्य हो ॥5॥ श्रेणिक के इस प्रकार कहनेपर महाधैर्यशाली, परमार्थ के विद्वान् गणधर भगवान् उत्तम प्रश्न से प्रसन्न होते हुए इस प्रकार के वचन बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, मैं तीर्थंकरों का वह भवोपाख्यान कहूँगा जो कि पाप को नष्ट करनेवाला है और इन्द्रों के द्वारा नमस्कृत है ॥6-7॥ ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त ), शीतल, श्रेयान्स, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, (मुनि ) सुव्रतनाथ, नमि, नेमि, पार्श्व और महावीर ये चौबीस तीर्थकरों के नाम हैं। इन में महावीर अन्तिम तीर्थंकर हैं तथा इस समय इन्हीं का शासन चल रहा है ॥8-10॥ अब इनकी पूर्व भव की नगरियों का वर्णन करते हैं-अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्डरीकिणी, सुसीमा, अत्यन्त मनोहर क्षेमा, और उत्तमोत्तम रत्नों से प्रकाशमान रत्नसंचयपुरी ये चार नगरियाँ अत्यन्त उत्कृष्ट तथा उत्तम व्यवस्था से युक्त थीं। ऋषभदेव को आदि लेकर वासुपूज्य भगवान् तक क्रम से तीन-तीन तीर्थंकरों की ये पूर्व भव की राजधानियाँ थीं। इन नगरियों में सदा उत्सव होते रहते थे ॥11-13॥ अवशिष्ट बारह तोथंकरों की पूर्वभव की राजधानियां निम्न प्रकार थीं-सुमहानगर, अरिष्टपुर, सुमाद्रिका, पुण्डरीकिणी, सुसीमा, क्षेमा, वीतशोका, चम्पा, कौशाम्बी, नागपुर, साकेता और छत्राकारपुर। ये सभी राजधानियाँ स्वर्गपुरी के समान सुन्दर, महाविस्तृत तथा उत्तमोत्तम भवनों से सुशोभित थीं ॥14-17॥ अब इन के पूर्वभव के नाम कहता हूँ१ वज्रनाभि, 2 विमलवाहन,३ विपलख्याति.४ विपलवाहन. 5 महाबल, 6 अतिबल, 7 अपराजित, 8 नन्दिषेण, 9 पद्म, 10 महापद्म, 11 पद्मोत्तर, 12 कमल के समान मुखवाला पंकजगुल्म, 13 नलिनगुल्म, 14 पद्मासन, 15 पद्मरथ, 16 दृढ़रथ, 17 महामेघरथ, 18 सिंहरथ, 19 वैश्रवण, 20 श्रीधर्म, 21 उपमारहित सुरश्रेष्ठ, 22 सिद्धार्थ, 23 आनन्द और 24 सुनन्द / हे मगधराज ! ये बुद्धिमान् चौबीस तीर्थंकरों के पूर्वभव के नाम तुझ से कहे हैं। ये सब नाम संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध थे ॥18-24॥ अब इन के पूर्वभव के पिताओं के नाम सुन-१ वज्रसेन, 2 महातेज, 3 रिपुंदम, 4 स्वयंप्रभ, 5 विमलवाहन, 6 सीमन्धर, 7 पिहितास्रव, 8 अरिन्दम, 9 युगन्धर, 10 सार्थक नाम के धारक सर्वजनानन्द, 11 अभयानन्द, 12 वज्रदन्त, 13 वज्रनाभि, 14 सर्वगुप्ति, 15 गुप्तिमान्, 16 चिन्तारक्ष, 17 विपुलवाहन, 18 घनरव, 19 धीर, 20 उत्तम संवर को धारण करनेवाले संवर, 21 उत्तम धर्म को धारण करनेवाले त्रिलोकीय, 22 सुनन्द, 23 वीतशोक डामर और 24 प्रोष्ठिल। इस प्रकार ये चौबीस तीर्थंकरों के पूर्वभव सम्बन्धी चौबीस पिताओं के नाम जानना चाहिए ॥25-30॥ अब चौबीस तीर्थंकर जिस-जिस स्वर्गलोक से आये उनके नाम सुन-१ सर्वार्थसिद्धि, 2 वैजयन्त, 3 ग्रैवेयक, 4 वैजयन्त, 5 वैजयन्त, 6 ऊर्ध्व ग्रैवेयक, 7 मध्यम ग्रैवेयक, 8 वैजयन्त, 9 अपराजित, 10 आरण, 11 पुष्पोत्तर, 12

कापिष्ट, 13 महाशुक्र, 14 सहस्रार, 15 पुष्पोत्तर, 16 पुष्पोत्तर, 17 पुष्पोत्तर, 18 सर्वार्थसिद्धि, 19 विजय, 20 अपराजित, 21 प्राणत, 22 आनत, 23 वैजयन्त और 24 पुष्पोत्तर / ये चौबीस तीर्थंकरों के आने के स्वर्गों के नाम कहे ॥31-35॥ अब आगे चौबीस तीर्थंकरों की जन्मनगरी.जन्मनक्षत्र. माता. पिता. वैराग्य का वृक्ष और मोक्ष का स्थान कहता हूँ-विनीता(अयोध्या)नगरी, नाभिराजा पिता, मरुदेवी रानी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, वट वृक्ष, कैलासपवंत और प्रथम जिनेन्द्र हे श्रेणिक ! तेरे लिए ये मंगलस्वरूप हों ॥36-37॥ साकेता ( अयोध्या ) नगरी, जितशत्रु पिता, विजया माता, रोहिणी नक्षत्र, सप्तपर्ण वृक्ष और अजितनाथ जिनेन्द्र, हे श्रेणिक ! ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥38॥ श्रावस्ती नगरी, जितारि पिता, सेना माता, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, शाल वृक्ष और सम्भवनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥39॥ अयोध्या नगरी, संवर पिता, सिद्धार्था माता, पुनर्वसु नक्षत्र, सरल **अर्थ**ात् देवदारु वृक्ष और अभिनन्दन जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥40॥ साकेता (अयोध्या) नगरी, मेघप्रभ राजा पिता, सुमंगला माता, मघा नक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष और सुमतिनाथ जिनेन्द्र, ये जगत् के लिए उत्तम मंगलस्वरूप हों ॥41॥ वत्सनगरी ( कौशाम्बीपुरी ), धरणराजा पिता, सुसीमा माता, चित्रा नक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष और पद्मप्रभ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥42॥ काशी नगरी, सुप्रतिष्ठ पिता, पृथ्वी माता, विशाखा नक्षत्र, शिरीष वृक्ष और सुपाय जिनेन्द्र, हे राजन् ! ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥43॥ चन्द्रपुरी नगरी, महासेन पिता, लक्ष्मणा माता, अनुराधा नक्षत्र, नाग वृक्ष और चन्द्रप्रभ भगवान्, ये तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥44॥ काकन्दी नगरी, सुग्रीव राजा पिता, रामा माता, मूल नक्षत्र, साल वृक्ष और पुष्पदन्त अथवा सुविधिनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे चित्त को पवित्र करनेवाले हों ॥45॥ भद्रिकापुरी, दृढ़रथ पिता, सुनन्दा माता, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, प्लक्ष वृक्ष और शीतलनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए परम मंगलस्वरूप हों ॥46॥ सिंहपुरी नगरी, विष्णुराज पिता, विष्णुश्री माता, श्रवण नक्षत्र, तेंदू का वृक्ष और श्रेयान्सनाथ जिनेन्द्र हे राजन् ! ये तेरे लिए कल्याण करें ॥47॥ चम्पापुरी, वसुपूज्य राजा पिता, जया माता, शतभिषा नक्षत्र, पाटला वृक्ष, चम्पापुरी सिद्धक्षेत्र और वासुपूज्य जिनेन्द्र, ये तेरे लिए लोकप्रतिष्ठा प्राप्त करावें ॥48॥ काम्पिल्य नगरी, कृतवर्मा पिता, शर्मा माता, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, जम्बू वृक्ष, विमलनाथ जिनेन्द्र ये तुझे निर्मल करें ॥49॥ विनीता नगरी, सिंहसेन पिता, सर्वयशा माता, रेवती नक्षत्र, पीपल का वृक्ष और अनन्तनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए मंगल स्वरूप हों ॥50॥ रत्नपुरी नगरी, भानुराजा पिता, सुव्रता माता, पुष्य नक्षत्र, दधिपर्ण वृक्ष और धर्मनाथ जिनेन्द्र, हे श्रेणिक! ये तेरी धर्मयक्त लक्ष्मी को पष्ट करें ॥5॥ हस्तिनागपर नगर. विश्वसेन राजा पिता. ऐर णी माता, भरणी नक्षत्र, नन्द वृक्ष और शान्तिनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे लिए सदा शान्ति प्रदान करें ॥ 52 ॥ हस्तिनागपुर नगर, सूर्य राजा पिता, श्रीदेवी माता, कृत्ति का नक्षत्र, तिलक वृक्ष और कुन्थुनाथ जिनेन्द्र, हे राजन् ! ये तेरे पाप दूर करने में कारण हो ॥53॥ हस्तिनागपुर नगर, सुदर्शन पिता, मित्रा माता, रोहिणी नक्षत्र, आम्र वृक्ष और अर जिनेन्द्र, ये तेरे पाप को नष्ट करें ॥54॥ मिथिला नगरी, कुम्भ पिता, रक्षिता माता, अश्विनी नक्षत्र, अशोक वृक्ष और मल्लिनाथ जिनेन्द्र, हे राजन् ! ये तेरे मन को शोकरहित करें ! 55॥ कुशाग्र नगर ( राजगृह ), सुमित्र पिता, पद्मावती माता, श्रवण नक्षत्र, चम्पक वृक्ष और सुव्रतनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे मन को प्राप्त हों अर्थात् तू हृदय से इन का ध्यान कर ॥56॥ मिथिला नगरी, विजय पिता, वप्रा माता, अश्विनी नक्षत्र, वकुल वृक्ष और नेमिनाथ तीर्थंकर, ये तेरे लिए धर्म का समागम प्रदान करें ॥57॥ शौरिपुरनगर, समुद्रविजय पिता, शिवा माता, चित्रा नक्षत्र, मेषशृंग वृक्ष, ऊर्जयन्त ( गिरनार ) पर्वत और नेमि जिनेन्द्र, ये तेरे लिए सूखदायक हों ॥58॥ वाराणसी (बनारस ) नगरी. अश्वसेन पिता. वर्मादेव विशाखा नक्षत्र, धव (धौ ) वृक्ष और पार्श्वनाथ जिनेन्द्र, ये तेरे मन में धैर्य उत्पन्न करें ॥59॥ कुण्डपुर नगर, सिद्धार्थ पिता, प्रियकारिणी माता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, साल वृक्ष, पावा नगर और महावीर जिनेन्द्र, ये तेरे लिए परम मंगलस्वरूप हों ॥60 / इनमें- से वासुपूज्य भगवान् का मोक्ष-स्थान चम्पापुरी ही है। ऋषभदेव, नेमिनाथ तथा महावीर इन के मोक्षस्थान क्रम से कैलास, ऊर्जयन्त गिरि तथा पावापुर ये तीन पहले कहे जा चु के हैं और शेष बीस तीर्थंकर सम्मेदाचल से निर्वाण धाम को प्राप्त हुए हैं ॥61॥ शान्ति, कुन्थु और अर ये तीन राजा चक्रवर्ती होते हुए तीर्थंकर हुए। शेष तीर्थंकर सामान्य राजा हुए ॥62॥ चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त ये चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के धारक थे । सुपार्श्व जिनेन्द्र प्रियंगु के फूल के समान हरित वर्ण के थे। पार्श्वनाथ भी कच्ची धान्य के समान हरित वर्ण के थे। धरणेन्द्र ने पार्श्वनाथ भगवान् की स्तुति भी की थी। पद्मप्रभ जिनेन्द्र कमल के भीतरी दल के समान लाल कान्ति के धारक थे ॥63-64॥ वासुपूज्य भगवान् पलाश पुष्प के समूह के समान लालवर्ण के थे। मुनिसुव्रत तीर्थंकर नीलगिरि अथवा अंजनगिरि के समान श्याम- . वर्ण के थे ॥65॥ यदुवंश शिरोमणि नेमिनाथ भगवान् मयूर के कण्ठ के समान नील वर्ण के थे और बा की के समस्त तीर्थंकर तपाये हुए स्वर्ण के समान लाल-पीत वर्ण के धारक थे ॥ 66॥ वासुपूज्य, मल्लि, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्था में ही घर से निकल गये थे, बा की तीर्थंकरों ने

राज्यपाट स्वीकार कर दीक्षा धारण की थी ॥67॥ इन सभी तीर्थंकरों को देवेन्द्र तथा धरणेन्द्र नमस्कार करते थे, इनकी पूजा करते थे, इनकी स्तुति करते थे और सुमेरु पर्वत के शिखरपर सभी परम अभिषेक को प्राप्त हुए थे ॥68॥ जिनकीसेवा समस्त कल्याणों की प्राप्ति का कारण है तथा जो तीनों लोकों के परम आश्चर्यस्वरूप थे, ऐसे ये चौबीसों जिनेन्द्र निरन्तर तुम सब की रक्षा करें ॥69॥ अथानन्तर राजा श्रेणिक ने गौतमस्वामी से कहा कि हे गणनाथ! अब मुझे इन चौबीस तीर्थंकरों की आयु का प्रमाण जानने के लिए मन की पवित्रता का कारण जो परम तत्त्व है वह कहिए ॥70॥ साथ ही जिस तीर्थकर के अन्तराल में रामचन्द्रजी हुए हैं हे पूज्य ! वह सब आपके प्रसाद से जानना चाहता हूँ ॥71॥ राजा श्रेणिक ने जब बड़े आदर से इस प्रकार पूछा तब क्षीरसागर के समान निर्मल चित्त के धारक परम शान्त गणधर स्वामी इस प्रकार कहने लगे ॥72॥ कि हे श्रेणिक ! काल नामा जो पदार्थ है वह संख्या के विषय को उल्लंघन कर स्थित है अर्थात् अनन्त है, इन्द्रियों के द्वारा उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता फिर भी महात्माओं ने बुद्धि में दृष्टान्त की कल्पना कर उसका निरूपण किया है ॥73॥ कल्पना करो कि एक योजन प्रमाण आकाश सब ओर से दीवालों से वेष्टित अर्थात् घिरा हुआ है तथा तत्काल उत्पन्न हुए भेड़ के बालों के अग्रभाग से भरा हुआ है ॥74 / इसे ठोक-ठोककर बहुत ही कड़ा बना दिया गया है, इस एक योजन लम्बे-चौड़े तथा गहरे गर्त को द्रव्यपल्य कहते हैं / जब यह कह दिया गया है कि यह कल्पित दृष्टान्त है तब यह गर्त किस ने खोदा, किस ने भरा आदि प्रश्न निरर्थक हैं ॥75॥ उस भरे हुए रोमगर्न में से सौ-सौ वर्ष के बाद एक-एक रोमखण्ड निकाला जाय जित ने समय में खाली हो जाय उतना समय एक पल्य कहलाता है। दश कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है और दश कोड़ा-कोड़ी सागरों की एक अवसर्पिणी होती है ॥ 76-77॥ उतने ही समय की एक उत्सर्पिणी भी होती है। हे राजन् ! जिस प्रकार शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष निरन्तर बदलते रहते हैं उसी प्रकार काल-द्रव्य के स्वभाव से अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल निरन्तर बदलते रहते हैं ॥78॥ महात्माओं ने इन दोनों में से प्रत्येक के छह-छह भेद बतलाये हैं। संसर्ग में आनेवाली वस्तुओं के वीर्य आदि में भेद होने से इन छह-छह भेदों की विशेषता सिद्ध होती है ॥79॥ अवसर्पिणी का पहला भेद सुषमा-सुषमा काल कहलाता है। इसका चार कोड़ा-कोड़ो सागर प्रमाण काल कहा जाता है ॥80॥ दूसरा भेद सुषमा कहलाता है। इसका प्रमाण तीन कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। तीसरा भेद सुषमा-दुःषमा कहा जाता है। इसका प्रमाण दो कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। चौथा भेद दुःषमा-सुषमा कहलाता है। इसका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ी-कोड़ी सागर प्रमाण है। पांचवां भेद दुःषमा और छठा भेद दुःषमा-दुःषमा काल कहलाता है इन का प्रत्येक का प्रमाण इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का जिनेन्द्र देव ने कहा है ॥81-82॥ अब तीर्थंकरों का अन्तर काल कहते हैं । भगवान ऋषभदेव के बाद पचास लाख करोड़ सागर का अन्तर बीतनेपर द्वितीय अजितनाथ तीर्थंकर हुए। उसके बाद तीस लाख करोड़ सागर का अन्तर बीतनेपर तृतीय सम्भवनाथ उत्पन्न हुए। उनके बाद दश लाख करोड़ सागर का अन्तर बीतनेपर चतुर्थ अभिनन्दननाथ उत्पन्न हुए ॥83॥ उनके बाद नौ लाख करोड़ सागर के बीतनेपर पंचम सुमतिनाथ हए, उनके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीतनेपर छठे पद्मप्रभ हुए, उनके बाद नौ हजार करोड़ सागर बीतनेपर सातवें सुपार्श्वनाथ हुए, उनके बाद नौ सौ करोड़ सागर बीतनेपर आठवें चन्द्रप्रभ हुए, उनके बाद नब्बे करोड़ सागर बीतनेपर नवें पुष्पदन्त हुए, उनके बाद नौ करोड़ सागर बीतनेपर दशवें शीतलनाथ हुए, उनके बाद सौ सागर कम एक करोड़ सागर बीतनेपर ग्यारहवें श्रेयांसनाथ हुए, उनके बाद चौवन सागर बीतनेपर बारहवें वासुपूज्य स्वामी हुए, उनके बाद तीस सागर बीतने पर तेरहवें विमलनाथ हुए, उनके बाद नौ सागर बीत ने पर चौदहवें अनन्तनाथ हुए, उनके बाद चार सागर बीतनेपर पन्द्रहवें श्रीधर्मनाथ हुए, उनके बाद पौन पल्य कम तीन सागर बीतनेपर सोलहवें शान्तिनाथ हुए, उनके बाद आधा पल्य बीतनेपर सत्रहवें कुन्थुनाथ हुए, उनके बाद हजार वर्ष कम पावपल्य बीतनेपर अठारहवें अरनाथ हुए, उनके बाद पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष कम हजार करोड़ सागर बीतनेपर उन्नीसवें मल्लिनाथ हुए, उनके बाद चौवन लाख वर्ष बोतनेपर बीसवें मुनिसुव्रतनाथ हुए, उनके बाद छह लाख वर्ष बीतनेपर इक्कीसवें नमिनाथ हुए, उनके बाद पाँच लाख वर्ष बीतनेपर बाईसवें नेमिनाथ हुए, उनके बाद पौने चौरासी हजार वर्ष बीतनेपर तेईसवें श्रीपार्श्वनाथ हुए और उनके बाद ढाई सौ वर्ष बीतनेपर चौबीसवें श्री वर्धमानस्वामी हए हैं। भगवान वर्धमान स्वामी का धर्म ही इस समय पंचम काल में व्याप्त हो इन्द्रों के मुकुटों की कान्तिरूपी जल से जिनके दोनों चरण धुल रहे हैं, जो धर्म-चक्र का प्रवर्तन करते हैं तथा महान् ऐश्वर्य के धारक थे, ऐसे महावीर स्वामी के मोक्ष चले जाने के बाद जो पंचम काल आवेगा, उस में देवों का आगमन बन्द हो जायेगा, सब अतिशय नष्ट हो जावेंगे, केवलज्ञान की उत्पत्ति समाप्त हो जावेगी। बलभद्र, नारायण तथा चक्रवर्तियों का उत्पन्न होना भी बन्द हो जायेगा। और आप जैसे महाराजाओं के योग्य गुणों से समय शून्य हो जायेगा। तब प्रजा अत्यन्त दुष्ट हो जावेगी, एक दूसरे को धोखा देने में ही उसका मन निरन्तर उद्यत रहेगा। उस

समय के लोग निःशील तथा निर्वत होंगे, नाना प्रकार के क्लेश और व्याधियों से सहित होंगे, मिथ्यादृष्टि तथा अत्यन्त भयंकर होंगे ॥ 84-94॥ कहीं अतिवृष्टि होगी, कहीं अवृष्टि होगी और कहीं विषम वृष्टि होगी। साथ ही नाना प्रकार की दुःसह रीतियाँ प्राणियों को दुःसह दुःख पहुँचावेंगी ॥95॥ उस समय के लोग मोहरूपी मदिरा के नशा में चूर रहेंगे, उनके शरीर राग-द्वेष के पिण्ड के समान जान पड़ेंगे, उनकी भौंहें तथा हाथ सदा चलते रहेंगे, वे अत्यन्त पापी होंगे, बार-बार अहंकार से मुसकराते रहेंगे, खोटे वचन बोल ने में तत्पर होंगे, निर्दय होंगे, धनसंचय करने में ही निरन्तर लगे रहेंगे और पृथ्वीपर ऐसे विचरेंगे जैसे कि रात्रि में जुगुनू अथवा पटवीजना विचरते हैं अर्थात् अल्प प्रभाव के धारक होंगे ॥९६-९७॥ वे स्वयं मूर्ख होंगे और गोदण्ड पथ के समान जो नाना कुधर्म हैं उन में स्वयं पड़कर दूसरे लोगों को भी ले जायेंगे। दुर्जय प्रकृति के होंगे, दूसरे के तथा अपने अपकार में रात-दिन लगे रहेंगे। उस समय के लोग होंगे तो दुर्गति में जानेवाले पर अपने आप को ऐसा समझेंगे जैसे सिद्ध हुए जा रहे हों अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेवाले हों ॥98-99॥ जो मिथ्या शास्त्रों का अध्ययन कर अहंकारवश हुंकार छोड़ रहे हैं, जो कार्य करने में म्लेच्छों के समान हैं, सदा मद से उद्धत रहते हैं, निरर्थक कार्यों में जिनका उत्साह उत्पन्न होता है, जो मोहरूपी अन्धकार से सदा आवृत रहते हैं और सदा दाव-पेंच लगा ने में ही तत्पर रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणादिक के द्वारा उस समय के अभव्य जीवरूपी वृक्ष, हिंसाशास्त्र रूपी कुठार से सदा छेदे जावेंगे। यह सब हीन काल का प्रभाव ही समझना चाहिए ॥ 100-101॥ दुःषम नाम पंचम काल के आदि में मनुष्यों की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होगी फिर क्रम से हानि होती जावेगी। इस प्रकार क्रम से हानि होतेहोते अन्त में दो हाथ ऊँचे रह जावेंगे। बीस वर्ष की उनकी आयु रह जावेगी। उसके बाद जब छठा काल आवेगा तब एक हाथ ऊँचा शरीर और सोलह वर्ष की आयु रह जावेगी। उस समय के मनुष्य सरीसृपों के समान एक दूसरे को मारकर बड़े कष्ट से जीवन बितावेंगे ॥102-104॥ उनके समस्त अंग विरूप होंगे, वे निरन्तर पाप-क्रिया में लीन रहेंगे, तिर्यंचों के समान मोह से दुःखी तथा रोग से पीड़ित होंगे ॥105॥ छठे काल में न कोई व्यवस्था रहेगी, न कोई सम्बन्ध रहेंगे, न राजा रहेंगे, न सेवक रहेंगे। लोगों के पास न धन रहेगा, न घर रहेगा, और न सुख ही रहेगा ॥106॥ उस समय की प्रजा धर्म, अर्थ, काम सम्बन्धी चेष्टाओं से सदा शून्य रहेगी और ऐसी दिखेगी मानो पाप के समूह से व्याप्त ही हो ॥107॥ जिस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा ह्रास को प्राप्त होता है और शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार अवसर्पिणी काल में लोगों की आयु आदि में ह्रास होने लगता है तथा उत्सपिणीकाल में वृद्धि होने लगती है ॥108॥ अथवा जिस प्रकार रात्रि में उत्सवादि अच्छे-अच्छे कार्यों की प्रवृत्ति का ह्रास होने लगता है और दिन में वृद्धि होने लगती है उसी प्रकार अवसपिणी और उत्सपिणीकाल का हाल जानना चाहिए ॥109॥ अवसपिणी काल में जिस क्रम से क्षय का उल्लेख किया है उत्सर्पिणीकाल में उसी क्रम से वृद्धि का उल्लेख जानना चाहिए ॥110॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! मैंने चौबीस तीर्थंकरों का अन्तर तो कहा । अब क्रम से उनकी ऊँचाई कहूँगा सो सावधान होकर सुन ॥111॥

पहले ऋषभदेव भगवान के शरीर की ऊंचाई पाँच सौ धनुष कही गयी है ॥112॥ उसके बाद शीतलनाथ के पहले-पहले तक **अर्थ**ात् पुष्पदन्त भगवान् तक प्रत्येक की पचास-पचास धनुष कम होती गयी है। शीतलनाथ भगवान् की ऊंचाई नब्बे धनुष है। उसके आगे धर्मनाथ के पहले-पहले तक प्रत्येक की दश-दश धनुष कम होती गयी है। धर्मनाथ की पैंतालीस धनुष प्रमाण है। उनके आगे पाश्वनाथ के पहले-पहले तक प्रत्येक की पाँच-पाँच धनुष कम होती गयी है। पार्श्व वर्धमान स्वामी के उनसे दो हाथ कम अर्थात् सात हाथ की ऊंचाई है। भावार्थ-१ ऋषभनाथ की 500 धनुष, 2 अजितनाथ की 450 धनुष, 3 सम्भवनाथ की 400 धनुष, 4 अभिनन्दननाथ की 350 धनुष, 5 सुमतिनाथ की 300 धनुष, 6 पद्मप्रभ की 250 धनुष, 7 सुपार्श्वनाथ की 200 धनुष, 8 चन्द्रप्रभ की 150 धनुष, 9 पुष्पदन्त की 100 धनुष, 10 शीतलनाथ की 90 धनुष, 11 श्रेयान्सनाथ की 80 धनुष, 12 वासुपूज्य की 70 धनुष, 13 विमलनाथ की 60 धनुष, 14 अनन्तनाथ की 50 धनुष, 15 धर्मनाथ की 45 धनुष, 16 शान्तिनाथ की 40 धनुष, 17 कुन्थुनाथ की 35 धनुष, 18 अरनाथ की 30 धनुष, 19 मल्लिनाथ की 25 धनुष, 20 मुनिसुव्रतनाथ की 20 धनुष, 21 नमिनाथ की 15 धनुष, 22 नेमिनाथ की 10 धनुष, 23 पार्श्वनाथकी 9 हाथ और 24 वर्धमान स्वामी की 7 हाथ की ऊँचाई है ॥113-115॥

अब कुलकर तथा तीर्थंकरों की आयु का वर्णन करता हूँ - हे राजन् ! लोक तथा अलोक के देखनेवाले सर्वज्ञदेव ने प्रथम कुलकर की आयु पल्य के दशवें भाग बतलायो है। उसके आगे प्रत्येक कुलकर की आयु दशवें-दशवें भाग बतलायी गयी हैं **अर्थ**ात् प्रथम कुलकर की आयु में दश का भाग देनेपर जो लब्ध आये वह द्वितीय कुलकर को आयु है और उस में दश का भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह तृतीय कुलकर की आयु है। इस तरह चौदह कुलकरों की आयु जानना चाहिए ॥116-117॥ प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान् की चौरासी लाख पूर्व,

द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान् की बहत्तर लाख पूर्व, तृतीय तीर्थंकर श्री सम्भवनाथकी साठ लाख पूर्व, उनके बाद पांच तीर्थंकरों में प्रत्येक को दश-दश लाख पूर्व, कम अर्थात् चतुर्थ अभिनन्दननाथ को पचास लाख पूर्व, पंचम सुमतिनाथकी चालीस लाख पूर्व, षष्ठ पद्मप्रभ की तीस लाख पूर्व, सप्तम सुपार्श्वनाथकी बीस लाख पूर्व, अष्टम चन्द्रप्रभ की दश लाख पूर्व, नवम पुष्पदन्त की दो लाख पूर्व, दशम शीतलनाथ को एक लाख पूर्व, ग्यारहवें श्रेयान्सनाथकी चौरासी लाख वर्ष, बारहवें वासुपूज्य की बहत्तर लाख वर्ष, तेरहवें विमलनाथकी साठ लाख वर्ष, चौदहवें अनन्तनाथकी तीस लाख वर्ष, पन्द्रहवें धर्मनाथकी दश लाख वर्ष, सोलहवें शान्तिनाथकी एक लाख वर्ष, सत्रहवें कुन्थुनाथकी पंचानबे हजार वर्ष, अठारहवें अरनाथ की चौरासी हजार वर्ष, उन्नीसवें मल्लिनाथ की पचपन हजार वर्ष, बीसवें मुनिसुव्रतनाथ की तीस हजार वर्ष, इक्कीसवें नमिनाथ की दश हजार वर्ष, बाईसवें नेमिनाथकी एक हजार वर्ष, तेईसवें पाश्वनाथ की सौ वर्ष और चौबीसवें महावीर की बहत्तर वर्ष को आयु थी ॥118-122॥ हे श्रेणिक ! मैंने इस प्रकार क्रम से तीर्थंकरों की आयु का वर्णन किया। अब जिस अन्तराल में चक्रवर्ती हुए हैं उनका वर्णन सुन ॥123॥

भगवान् ऋषभदेव की यशस्वती रानी से भरत नामा प्रथम चक्रवर्ती हुआ। इस चक्रवर्ती के नाम से ही यह क्षेत्र तीनों जगत् में भरत नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥124॥ यह भरत पूर्व जन्म में पुण्डरीकिणी नगरी में पीठ नाम का राजकुमार था। तदनन्तर कुशसेन मुनि का शिष्य होकर सर्वार्थसिद्धि गया। वहाँ से आकर भरत चक्रवर्ती हुआ। इसके परिणाम निरन्तर वैराग्यमय रहते थे जिससे केशलोंच के अनन्तर ही लोकालोकावभासी केवलज्ञान उत्पन्न कर निर्वाण धाम को प्राप्त हुआ ॥125-126॥ फिर पृथ्वीपुर नगर में रोजा विजय था जो यशोधर गुरु का शिष्य होकर मुनि हो गया। अन्त में सल्लेखना से मरकर विजय नाम का अनुत्तम विमान में गया । वहाँ उत्तम भोग भोगकर अयोध्या नगरी में राजा विजय और रानी सुमंगला के सगर नाम का द्वितीय चक्रवर्ती हुआ। वह इतना प्रभावशाली था कि देव भी उसकी आज्ञा का सम्मान करते थे। उसने उत्तमोत्तम भोग भोगकर अन्त में पुत्रों के शोक से प्रवृत्ति हो जिन दीक्षा धारण कर ली और केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालय प्राप्त किया ॥127-130॥ तदनन्तर पुण्डरीकिणी नगरी में शशिप्रभ नाम का राजा था। वह विमल गुरु का शिष्य होकर ग्रेवेयक गया। वहाँ संसार का उत्तम सुख भोगकर वहाँ से च्युत हो श्रावस्ती नगरी में राजा सुमित्र और रानी भद्रवतीं के मघवा नाम का तृतीय चक्रवर्ती हुआ। यह चक्रवर्ती को लक्ष्मीरूपी लता के लिपट ने के लिए मानो वृक्ष ही था। यह धर्मनाथ और शान्तिनाथ तीर्थंकर के बीच में हुआ था तथा मुनिव्रत धारण कर समाधि के अनुरूप सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था ॥131-133॥ इसके बाद गौतमस्वामी चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार की बहुत प्रशंसा करने लगे तब राजा श्रेणिक ने पूछा कि हे भगवन् ! वह किस पुण्य के कारण इस तरह अत्यन्त रूपवान् हुआ था ॥134॥ इसके उत्तर में गणधर भगवान् ने संक्षेप से ही पुराण का सार वर्णन किया क्योंकि उसका पूरा वर्णन तो सौ वर्ष में भी नहीं कहा जा सकता था ॥135॥ उन्होने कहा कि जबतक यह जीव जैनधर्म को प्राप्त नहीं होता है तबतक तिर्यंच नरक तथा कुमानुष सम्बन्धी दुःख भोगता रहता है ॥136॥ पूर्वभव का वर्णन करते हुए उन्होने कहा कि मनुष्यों से भरा एक गोवर्धन नाम का ग्राम था उस में जिनदत्त नाम का उत्तम गृहस्थ रहता था ॥137॥ जिस प्रकार समस्त जलाशयों में सागर, समस्त पर्वतों में सुन्दर गुफाओं से युक्त सुमेरु पर्वत, समस्त ग्रहों में सूर्य, समस्त तृणों में इक्षु, समस्त लताओं में नागवल्ली और समस्त वक्षों में हरिचन्दन वृक्ष प्रधान है, उसी प्रकार समस्त कूलों में श्रावकों का कुल सर्वप्रधान है क्योंकि वह आचार को अपेक्षा पवित्र है तथा उत्तम गति प्राप्त करा ने में तत्पर है ॥138-140॥ वह गृहस्थ श्रावक कुल में उत्पन्न हो तथा श्रावकाचार का पालनकर गुणरूपी आभूषणों से युक्त होता हुआ उत्तम गति को प्राप्त हुआ ॥141॥ उसकी विनयवती नाम की पतिव्रता तथा गृहस्थ का धर्म पालन करने में तत्पर रहनेवाली स्त्री थी सो पति के वियोग से बहुत दुःखी हुई ॥142॥ उसने अपने घर में जिनेन्द्र भगवान् का उत्तम मन्दिर बनवाया तथा अन्त में आर्यि का की दीक्षा ले उत्तम तपश्चरण कर देवगति प्राप्त की ॥143॥ उसी नगर में हेमबाहु नाम का एक महागृहस्थ रहता था जो आस्तिक, परमोत्साही और दुराचार से विमुख था ॥144॥ विनयवती ने जो जिनालय बनवाया था तथा उस में जो भगवान् की महापूजा होती थी उसकी अनुमोदना कर वह आयु के अन्त में यक्ष जाति का देव हुआ ॥145॥ वह यक्ष चतुर्विध संघ की सेवा में सदा तत्पर रहता था। सम्यग्दर्शन से सहित था और जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने में सदा तत्पर रहता था ॥146॥ वहाँ से आकर वह उत्तम मनुष्य हुआ, फिर देव हुआ। इस प्रकार तीन बार मनुष्यदेवगति में आवागमन कर महापुरी नगरी में धर्मरुचि नाम का राजा हुआ। यह धर्मरुचि सनत्कुमार स्वर्ग से आकर उत्पन्न हुआ था। इसके पिता का नाम सुप्रभ और माता का नाम तिलकसुन्दरी था। तिलकसुन्दरी उत्तम स्त्रियों के गुणों की मानो मंजूषा ही थी ॥147-148॥ राजा धर्मरुचि सुप्रभ मुनि का शिष्य होकर पाँच महाव्रतों, पांच समितियों और तीन गुप्तियों का धारक हो गया ॥149॥ वह सदा आत्मनिन्दा में तत्पर

रहता था, आगत उपसर्गादि के सहने में धीर था, अपने शरीर से अत्यन्त निःस्पृह रहता था, दया और दम को धारण करनेवाला था, बुद्धिमान् था, शीलरूपी काँवर का धारक था, शं का आदि सम्यग्दर्शन के आठ दोषों से बहुत दूर रहता था, और साधुओं की यथायोग्य वैयावृत्त्य में सदा लगा रहता था ॥150-151॥ अन्त में आयु समाप्त कर वह माहेन्द्र स्वर्ग में उत्पन्न हुआ और वहाँ देवियों के समूह के मध्य में स्थित हो परम भोगों को प्राप्त हुआ ॥१५२॥ तदनन्तर वहाँते च्युत होकर हस्तिनापुर में राजा विजय और रानी सहदेवी के सनत्कुमार नाम का चतुर्थ चक्रवती हुआ ॥153॥ एक बार सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा में कथा के अनुक्रम से सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूप की प्रशंसा की। सो आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उसके रूप को देखने के लिए कुछ देव आये ॥154॥ जिस समय उन देवों ने छिपकर उसे देखा उस समय वह व्यायाम कर निवृत्त हुआ था, उसके शरीर की कान्ति अखाड़े की धूलि से धूसरित हो रही थी, शिर में सुगन्धित आँवले का पंक लगा हुआ था, शरीर अत्यन्त ऊंचा था, स्नान के समय धारण करने योग्य एक वस्त्र पह ने था, स्नान के योग्य आसनपर बैठा था, और नाना वर्ण के सुगन्धित जल से भरे हुए कलशों के बीच में स्थित था ॥155156॥ उसे देखकर देवों ने कहा कि अहो ! इन्द्र ने जो इसके रूप की प्रशंसा की है सो ठीक ही की है । मनुष्य होनेपर भी इसका रूप देवों के चित्त को आकर्षित करने का कारण बना हुआ है ॥157॥ जब सनत्कुमार को पता चला कि देव लोग हमारा रूप देखना चाहते हैं तब उसने उनसे कहा कि आप लोग थोडी देर यहीं ठहरिए । मझे स्नान और भोजन करने के बाद आभषण धारण कर ले ने दीजिए फिर आप लोग मुझे देखें ॥158॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहनेपर चक्रवर्ती सनत्कुमार सब कार्य यथायोग्य कर सिंहासन पर आ बैठा । उस समय वह ऐसा जान पड़ता था मानो रत्नमय पर्वत का शिखर ही हो ॥159॥ तदनन्तर पुनः उसका रूप देखकर देव लोग आपस में निन्दा करने लगे कि मनुष्यों की शोभा असार तथा क्षणिक है, अतः इसे धिक्कार है ॥160॥ प्रथम दर्शन के समय जो इसकी शोभा यौवन से सम्पन्न देखी थी वह बिजली के समान नश्वर होकर क्षण-भर में ही ह्रास को कैसे की प्राप्त हो गयी? ॥161॥ लक्ष्मी क्षणिक है ऐसा देवों से जानकर चक्रवर्ती सनत्कुमार का राग छूट गया। फलस्वरूप वह मुनि-दीक्षा लेकर अत्यन्त कठिन तप करने लगा ॥162॥ यद्यपि उसके शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो गये थे तो भी वह उन्हें बड़ी शान्ति से सहन करता रहा। तप के प्रभाव से अनेक ऋद्धियाँ भी उसे प्राप्त हुई थीं। अन्त में आत्मध्यान के प्रभाव से वह सनत्कुमार स्वर्ग में देव हुआ ॥163॥ अब पंचम चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं पुण्डरीकिणी नगर में राजा मेघरथ रहते थे। वे अपने पिता घनरथ तीर्थंकर के शिष्य होकर सर्वार्थसिद्धि गये। वहाँ से च्युत होकर हस्तिनागपूर में राजा विश्वसन और रानी ऐरादेवी के मनुष्यों को शान्ति उत्पन्न करनेवाले शान्तिनाथ नामक प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥164-165॥ उत्पन्न होते ही देवों ने सुमेरु पर्वतपर इन का अभिषेक किया था। इन्द्र ने स्तुति की थी और इस तरह वे चक्रवर्ती के भोगों के स्वामी हुए ॥166॥ ये पंचम चक्रवर्ती तथा सोलहवें तीर्थंकर थे। अन्त में तृण के समान राज्य छोड़कर इन्हों ने दीक्षा धारण को थी ॥167॥ इन के बाद क्रम से कुन्थुनाथ और अरनाथ नाम के छठे तथा सातवें चक्रवर्ती हुए। ये पूर्वभव में सोलह कारण भावनाओं का संचय करने के कारण तीर्थकर पद को भी प्राप्त हुए थे ॥168॥ सनत्कुमार नाम का चौथा चक्रवर्ती धर्मनाथ और शान्तिनाथ तीर्थंकर के बीच में हुआ था और शान्ति, कुन्थु तथा अर इन तीन तीर्थंकर तथा चक्रवतियों का अन्तर अपना-अपना ही काल जानना चाहिए ॥169॥ अब आठवें चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं धान्यपुर नगर में राजा कनकाभ रहता था। वह विचित्रगुप्त मुनि का शिष्य होकर जयन्त नाम का अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ ॥170॥ वहाँ से आकर वह ईशावती नगरी में राजा कार्तवीर्य और रानी तारा के सुभूम नाम का आठवां चक्रवर्ती हुआ। यह उत्तम चेष्टाओं को धारण करनेवाला था तथा इसने भूमि को उत्तम किया था इसलिए इसका सुभूम नाम सार्थक था॥१७१-१७२।। परशुराम ने युद्ध में इसके पिता को मारा था सो इसने उसे मारा। परशुराम ने क्षत्रियों को मारकर उनके दन्त इकट्ठे किये थे। किसी निमित्तज्ञानी ने उसे बताया था कि जिस के देखने से ये दन्त खीर रूप में परिवर्तित हो जायेंगे उसो के द्वारा तेरो मृत्यु होगी। सुभूम एक यज्ञ में परशुराम के यहाँ गया था। जब वह भोजन करने को उद्यत हुआ तब परशुराम ने वे सब दन्त एक पात्र में रखकर उसे दिखाये। के पूण्य प्रभाव से वे दन्त खीर बन गये और पात्र चक्र के रूप में बदल गया। सुभूम ने उसी चक्र के द्वारा परशुराम को मारा था। परशुराम ने पृथ्वी को सात बार क्षत्रियों से रहित किया था इसलिए उसके बदले इसने इक्कीस बार पृथ्वी को ब्राह्मणरहित किया था ॥173-175॥ जिस प्रकार पहले परशुराम के भय से क्षत्रिय धोबी आदि के कुलों में छिपते फिरते थे उसी प्रकार अत्यन्त कठिन शासन के धारक सुभूम चक्रवर्ती से ब्राह्मण लोग भयभीत होकर धोबी आदि के कुलों में छिपते फिरते थे ॥176॥ यह सुभूम चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथ के बीच में हुआ था तथा भोगों से विरक्त न होने के कारण मरकर सातवें नरक गया था ॥177॥ अब नौवें चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं वीतशो का नगरी में चिन्त नाम का राजा था। वह सुप्रभमुनि का शिष्य होकर ब्रह्मस्वर्ग

गया ॥178॥ वहाँ से च्युत होकर हस्तिनागपुर में राजा पद्मरथ और रानी मयूरी के महापद्म नाम का नवाँ चक्रवर्ती हुआ ॥179॥ इसकी आठ पुत्रियाँ थीं जो सौन्दर्य के अतिशय से गर्वित थीं तथा पृथ्वीपर किसी भर्ता की इच्छा नहीं करती थीं। एक समय विद्याधर इन्हें हरकर ले गये। पता चलाकर चक्रवर्ती ने उन्हें वापस बुलाया परन्तु विरक्त होकर उन्होने दीक्षा धारण कर ली तथा आत्म-कल्याण कर स्वर्गलोक प्राप्त किया ॥180-181॥ जो आठ विद्याधर उन्हें हरकर ले गये थे वे भी उनके वियोग से तथा संसार की विचित्र दशा के देखने से भयभीत हो दीक्षित हो गये ॥182॥ इस घटना से महागुणों का धारक चक्रवर्ती प्रतिबोध को प्राप्त हो गया तथा पद्म नामक पुत्र के लिए राज्य दे विष्णु नामक पुत्र के साथ घर से निकल गया **अर्थ**ात् दीक्षित हो गया ॥183॥ इस प्रकार महापद्म मुनि ने परम तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अन्त में लोक के शिखर में जा पहुँचा। यह चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथ के बीच में हुआ था ॥184॥ अब दशवें चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं विजय नामक नगर में महेन्द्रदत्त नाम का राजा रहता था। वह नन्दन मुनि का शिष्य बनकर महेन्द्र स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥185॥ वहाँ से च्युत होकर काम्पिल्यनगर में राजा हरिकेतु और रानी वप्रा के हरिषेण नाम का दशवाँ प्रसिद्ध चक्रवर्ती हुआ ॥186॥ उसने अपने राज्य की समस्त पृथिवी को जिन-प्रतिमाओं से अलंकृत किया था तथा मुनिसुव्रतनाथ भगवान् के तीर्थ में सिद्धपद प्राप्त किया था ॥187॥

अब ग्यारहवें चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं राजपुर नामक नगर में एक अमितांक नाम का राजा रहता था। वह सूधर्म मित्र नामक मुनिराज का शिष्य होकर ब्रह्म स्वर्ग गया ॥188॥ वहाँ से च्युत होकर उसो काम्पिल्यनगर में राजा विजय को यशोवती रानी से जयसेन नाम का ग्यारहवाँ चक्रवर्ती हुआ ॥189॥ वह अन्त में महाराज्य का परित्याग कर पैगम्बरी दीक्षा को धारण कर रत्नत्रय की आराधना करता हुआ सिद्धपद को प्राप्त हुआ ॥190॥ यह मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथ के अन्तराल में हुआ था। अब बारहवें चक्रवर्ती का वर्णन करते हैं काशी नगरी में सम्भूत नाम का राजा रहता था। वह स्वतन्त्रलिंग नामक मुनिराज का शिष्य हो कमलगुल्म नामक विमान में उत्पन्न हुआ ॥191॥ वहाँ से च्युत होकर काम्पिल्यनगर में राजा ब्रह्मरथ और रानी चूला के ब्रह्मदत्त नाम का बारहवां चक्रवर्ती हुआ ॥192॥ यह चक्रवर्ती लक्ष्मी का उपभोगकर उससे विरत नहीं हुआ और उसी अविरत अवस्था में मरकर सातवें नरक गया। यह नेमिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थकर के बीच में हुआ था।॥१९३॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे मगधराज ! इस प्रकार मैंने छह खण्ड के अधिपति-चक्रवतियों का वर्णन किया। ये इतने प्रतापी थे कि इनकी गति को देव तथा असुर भी नहीं रोक सकते थे ॥194॥ यह मैंने पुण्यपाप का फल प्रत्यक्ष कहा है, उसे सुनकर, अनुभव कर तथा देखकर लोग योग्य कार्य क्यों नहीं करते हैं ? ॥195॥ जिस प्रकार कोई पथिक अपूप आदि पाथेय ( मार्ग हितकारी भोजन ) लिये बिना ग्रामान्तर को नहीं जाता है उसी प्रकार यह जीव भी पुण्य-पापरूपी पाथेय के बिना लोकान्तर को नहीं जाता है ॥196॥ उत्तमोत्तम स्त्रियों से भरे तथा कैलास के समान ऊंचे उत्तम महलों में जो मनुष्य निवास करते हैं वह पुण्यरूपी वृक्ष का ही फल है ॥197॥ और जो दरिद्रतारूपी कीचड़ में निमग्न हो सरदी, गरमी तथा हवा की बाधा से युक्त खोटे घरों में रहते हैं वह पापरूपी वृक्ष का फल है ॥198॥ जिनपर चमर दुल रहे हैं ऐसे राजा महाराजा जो विन्ध्याचल के शिखर के समान ऊँचे-ऊंचे हाथियोंपर बैठकर गमन करते हैं वह पुण्यरूपी शालि (धान ) का फल है ॥199॥ जिनके दोनों ओर चमर हिल रहे हैं ऐसे सुन्दर शरीर के धारक घोड़ोंपर बैठकर जो पैदल सेनाओं के बीच में चलते हैं वह पुण्यरूपी राजा की मनोहर चेष्टा है ॥200॥ जो मनुष्य स्वर्ग के भवन के समान सुन्दर रथपर सवार हो गमन करते हैं वह उनके पुण्यरूपी हिमालय से भरा हुआ स्वादिष्ट झरना है ॥201॥ जो पुरुष मलिन वस्त्र पहनकर फटे हुए पैरों से पैदल ही भ्रमण करते हैं वह पापरूपी विषवृक्ष का फल है ॥202॥ जो मनुष्य सुवर्णमया पात्रों में अमृत के समान मधुर भोजन करते हैं उसे श्रेष्ठ.मुनियों ने धर्मरूपी रसायन का प्रभाव बतलाया है ॥203॥ जो उत्तम भव्य जीव इन्द्रपद, चक्रवर्ती का पद तथा सामान्य राजा का पद प्राप्त करते हैं वह अहिंसारूपी लता का फल है ॥204॥ तथा उत्तम मनुष्य जो बलभद्र और नारायण की लक्ष्मी प्राप्त करते हैं वह भी धर्म का ही फल है। हे श्रेणिक ! अब मैं उन्हीं बलभद्र और नारायणों का कथन करूंगा ॥205॥ प्रथम ही भरत क्षेत्र के नौ नारायण की पूर्वभव सम्बन्धी नगरियों के नाम सुनो-१ मनोहर हस्तिनापुर, 2 पताकाओं से सुशोभित अयोध्या, 3 अत्यन्त विस्तृत श्रावस्ती, 4 निर्मल आकाश से सुशोभित कौशाम्बी, 5 पोदनपुर, 6 शैलनगर, 7 सिंहपुर, 8 कौशाम्बी और, 9 हस्तिनापुर ये क्रम से नौ नगरियाँ कही गयी हैं। ये सभी नगरियाँ सर्वप्रकार के धन-धान्य से परिपूर्ण थीं, भय के सम्पर्क से रहित थीं, तथा वासुदेव **अर्थ**ात् नारायणों के पूर्वजन्म सम्बन्धी निवास से सुशोभित थीं ॥206-208॥ अब इन वासुदेवों के पूर्वभव के नाम सुनो-१ महाप्रतापी विश्वनन्दी, 2 पर्वत, 3 धनमित्र, 4 क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के समान शब्द करनेवाला सागरदत्त, 5 विकट, 6 प्रियमित्र, 7 मानसचेष्टित, 8 पुनर्वसु

और, 9 गंगदेव ये नारायणों के पूर्व जन्म के नाम कहे ॥209-211॥ ये सभी पूर्वभव में अत्यन्त विरूप तथा दुर्भाग्य से युक्त थे। मूलधन का अपहरण 1, युद्ध में हार 2, स्त्री का अपहरण 3, उद्यान तथा वन में क्रीड़ा करना 4, वन क्रीड़ा की आकाङ्क्षा 5, विषयों में अत्यन्त आसक्ति 6, इष्टजनवियोग 7, अग्निबाधा 8 और दौर्भाग्य 9 क्रमशः इन निमित्तों को पाकर ये मुनि हो गये थे। निदान अर्थात् आगामी भोगों की लालसा रखकर तपश्चरण करते थे तथा तत्त्वज्ञान से रहित थे / इसी अवस्था में मरकर ये नारायण हुए थे। ये सभी नारायण बलभद्र के छोटे भाई होते हैं ॥212-214॥ हे श्रेणिक ! निदान सहित तप प्रयत्नपूर्वक छोड़ना चाहिए क्योंकि वह पीछे चलकर महाभयंकर दुःखदेने में निपुण होता है ॥215॥ अब नारायणों के पूर्वभव के गुरुओं के नाम सुनो-तप की मूर्तिस्वरूप सम्भूत 1, सुभद्र 2, वसुदर्शन 3, श्रेयान्स 4, सुभूति 5, वसुभूति 6, घोषसेन 7, पराम्भोधि 8, और द्रुमसेन 9 ये नौ इन के पूर्वभव के गुरु थे अर्थात् इन के पास इन्हों ने दीक्षा धारण की थी ॥216-217॥ अब जिस-जिस स्वर्ग से आकर नारायण हुए उनके नाम सुनो-महाशुक्र 1, प्राणत 2, लान्तव 3, सहस्रार 4, ब्रह्म 5, माहेन्द्र 6, सौधर्म 7, सनत्कुमार 8, और महाशुक्र 9 / पुण्य के फलस्वरूप नाना अभ्युदयों को प्राप्त करनेवाले ये देव इन स्वर्गों से च्युत होकर अवशिष्ट पुण्य के प्रभाव से नारायण हुए हैं ॥218-220॥ अब इन नारायणों की जन्म-नगरियों के नाम सुनो-पोदनपुर 1, द्वापुरी 2, हस्तिनापुर 3, हस्तिनापुर 4, चक्रपुर 5, कुशाग्रपुर 6, मिथिलापुरी 7, अयोध्या 8 और मथुरा 9 ये नगरियाँ क्रम से नौ नारायणों की जन्म नगरियां थीं। ये सभी समस्त धन से परिपूर्ण थीं तथा सदा उत्सवों से आकुल रहती थीं ॥221-222॥ अब इन नारायणों के पिता के नाम सुनो-प्रजापति 1, ब्रह्मभूति 2, रौद्रनाद 3, सोम 4, प्रख्यात 5, शिवाकर 6, सममूर्धाग्निनाद 7, दशरथ 8 और वसुदेव 9 ये नौ कम से नारायणों के पिता कहे गये हैं ॥२२३-२२४॥ अब इनकी माताओं के नाम सुनो -- मगावती 1, माधवी 2, पृथ्वी 3, सीता 4, अम्बिका 5, लक्ष्मी 6, केशिनी 7, कैकयी (सुमित्रा होना चाहिए) 8 और देवकी 9 ये क्रम से नौ नारायणों की मातायें थीं। ये सभी महासौभाग्य से सम्पन्न तथा उत्कृष्ट रूप से युक्त थीं ॥225-226॥ *अब इन नारायणों के नाम सुनो-त्रिपृष्ठ 1, द्विपृष्ठ 2. स्वयम्भू 3, पुरुषोत्तम 4, पुरुषसिंह 5, पुण्डरीक 6, दत्त 7, लक्ष्मण 8 और कृष्ण 9 ये नौ नारायण हैं । अब इनकी पट्टरानियों का नाम सुनो-सुप्रभा 1, रूपिणी 2, प्रभवा 3, मनोहरा 4, सुनेत्रा 5, विमलसुन्दरी 6, आनन्दवती 7, प्रभावती 8 और रुक्मिणी 9 ये नौ नारायणों की क्रमशः नौ पट्टरानियाँ कहीं गयी है ॥227-228॥

* हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों में नारायणों के नाम बतलानेवाले श्लोक उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु उनका होना आवश्यक है। पं. दौलतरामजी ने भी उनका अनुवाद किया है। अत: प्रकरण संगति के लिए कोष्ठकान्तर्गत पाठ अनुवाद में दिया है।

अथानन्तर अब नौ बलभद्रों का वर्णन करते हैं। सो सर्वप्रथम इनकी पूर्वजन्म-सम्बन्धी नगरियों के नाम सुनो-उत्तमोत्तम धवल महलों से सहित पुण्डरीकिणी 1 पृथ्वी के समान अत्यन्त विस्तृत पृथिवीपुरी 2 आनन्दपुरी 3 नन्दपुरी 4 वीतशो का 5 विजयपुर 6 सुसीमा 7 क्षेमा 8 और हस्तिनापुर 9 ये नौ बलभद्रों के पूर्व जन्मसम्बन्धी नगरों के नाम हैं ॥229-231॥ अब बलभद्रों के पूर्वजन्म के नाम सुनो-बल 1 मारुतवेग 2 नन्दिमित्र 3 महाबल 4 पुरुषर्षभ 5 सुदर्शन 6 वसुन्धर 7 श्रीचन्द्र 8 और सखिसंज्ञ 9 ये नौ बलभद्रों के पूर्वनाम जानना चाहिए ॥232233॥ अब इन के पूर्वभव सम्बन्धी गुरुओं के नाम सुनो-अमृतार 1 महासुव्रत 2 सुव्रत 3 वृषभ 4 प्रजापाल 5 दमवर 6 सुधर्म 7 अर्णव 8 और विद्रुम 9 ये नौ बलभद्रों के पूर्वभव के गुरु हैं **अर्थ**ात् इन के पास इन्हों ने दीक्षा धारण की थी ॥234-235॥ अब ये जिस स्वर्ग से आये उसका वर्णन करते हैं-तीन बलभद्र का अनुत्तर विमान, तीन का सहस्रार स्वर्ग, दो का ब्रह्म स्वर्ग और एक का अत्यन्त सशोभित महाशक्र स्वर्ग पूर्वभव का निवास था। ये सब यहाँ से च्यत होकर उत्तम चेष्टाओं के धारक बलभद्र हुए थे ॥236-237॥ अब इनकी माताओं के नाम सुनो-भद्राम्भोजा 1 सुभद्रा 2 सुवेषा 3 सुदर्शना 4 सुप्रभा 5 विजया 6 वैजयन्ती 7 उदार अभिप्राय को धारण करनेवाली तथा महाशीलवती अपराजिता (कौशिल्या) 8 और रोहिणी 9 ये नौ बलभद्रों की क्रमशः माताओं के नाम हैं ॥238-239॥ इनमें- से त्रिपृष्ठ आदि पांच नारायण और पाँच बलभद्र श्रेयान्सनाथ को आदि लेकर धर्मनाथ स्वामी के समय पर्यन्त हुए। छठे और सातवें नारायण तथा बलभद्र अरनाथ स्वामी के बाद हुए। लक्ष्मण नाम के आठवें नारायण और राम नामक आठवें बलभद्र मुनिसुव्रतनाथ और नमिनाथ के बीच में हुए तथा अद्भुत क्रियाओं को करनेवाले श्री कृष्ण नामक नौवें नारायण तथा बल नामक नौवें बलभद्र भगवान नेमिनाथकी वन्दना करनेवाले हए ॥240-241॥ * [ अब बलभद्रों के नाम सुनो-अचल 1 विजय 2 भद्र 3 सुप्रभ 4 सुदर्शन 5 नन्दिमित्र *नारायण के नाम की तरह बलभद्रों के नाम गिनानेवाले श्लोक भी उपलब्ध प्रतियों में नहीं मिले हैं पर पं. दौलतरामजी ने इन का अनुवाद किया है तथा उपयोगी भी है। अतः कोष्ठकों के अन्तर्गत अनुवाद किया है।

6 नन्दिषेण 7 रामचन्द्र ( पद्म ) और बल ] नारायणों के प्रतिद्वन्द्वी नौ प्रतिनारायण होते हैं। उनके नगरों के नाम इस प्रकार जानना चाहिए। अलकपुर 1 विजयपुर 2 नन्दनपुर 3 पृथ्वीपुर 4 हरिपुर 5 सूर्यपुर 6 सिंहपुर 7 लंका 8 और राजगृह 9 । ये सभी नगर मणियों की किरणों से देदीप्यमान थे ॥242-243॥ अब प्रतिनारायणों के नाम सनो-अश्वग्रीव 1 तारक 2 मेरक 3 मधुकैटभ 4 निशुम्भ 5 बलि 6 प्रह्लाद 7 दशानन 8 और जरासन्ध 9 ये नौ प्रतिनारायणों के नाम जानना चाहिए ॥244-245॥ सुवर्णकुम्भ 1 सत्कीर्ति 2 सुधर्म 3 मृगांक 4 श्रुतिकीर्ति 5 सुमित्र 6 भवनश्रुत 7 सुव्रत 8 और सुसिद्धार्थ 9 बलभद्रों के गुरुओं के नाम हैं। इन सभी ने तप के भार से उत्पन्न कोर्ति के द्वारा समस्त संसार को व्याप्त कर रखा था ॥246-247॥ नौ बलभद्रोंमें- से आठ बलभद्र तो बलभद्र का वैभव प्राप्त कर तथा संसार से उदासीन हो उस कर्मरूपी महावन को भस्म कर निर्वाण को पधारे जिसमें कि क्षोभ को प्राप्त हुए नाना प्रकार के रोगरूपी जन्तु भ्रमण कर रहे थे, जो मृत्युरूपी व्याघ्र से अत्यन्त भयंकर था तथा जिसमें जन्मरूपी बड़े-बड़े ऊँचे वृक्षो के खण्ड लग रहे थे। अन्तिम बलभद्र कर्म-बन्धन शेष रहने के कारण ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त हुआ था ॥248॥

गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! मैंने तीर्थंकरों को आदि लेकर भरत क्षेत्र को जीतनेवाले चक्रवतियों, नारायणों तथा बलभद्रों का अत्यन्त आश्चर्य से भरा हुआ पूर्व-जन्म आदि का वृत्तान्त तुझ से कहा। इन में से कित ने ही तो विशाल तपश्चरण कर उसी भव से मोक्ष जाते हैं, किन्हीं के कुछ पाप कर्म अवशिष्ट रहते हैं तो वे कुछ समय तक संसार में भ्रमण कर मोक्ष जाते हैं और कुछ कर्मों की सत्ता अधिक प्रबल होने से दीर्घ काल तक अनेक जन्म-मरणों से सघन इस संसार-अटवी में निरन्तर घूमते रहते हैं ॥249॥ ये संसार के विविध प्राणी कलिकालरूपी अत्यन्त मलिन महासागर की भ्रमर में मग्न हैं तथा नरकादि नीच गतियों के महादुःखरूपी अग्नि में सन्तप्त हो रहे हैं। ऐसा जानकर कित ने ही निकट भव्य तो इस संसार की इच्छा ही नहीं करते हैं। कुछ लोग पुण्य का परिचय करना चाहते हैं और कुछ लोग सूर्य के समान मोह का अवसान कर निर्मल केवलज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥250॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में तीर्थकरादि के भवों का वर्णन करनेवाला बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 20॥

## भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, वज्रबाहु तथा राजा कीर्तिधर का माहात्म्य

इक्कीसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! अब आठवें बलभद्र श्रीराम का सम्बन्ध बतला ने के लिए कुछ महापुरुषों से उत्पन्न वंशों का कथन करता हूँ सो सुन ॥1॥ दशवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ भगवान् के मोक्ष चले जाने के बाद कौशाम्बी नगरी में एक सुमुख नाम का राजा हुआ। उसी समय उस नगरी में एक वीरक नाम का श्रेष्ठी रहता था। उसकी स्त्री का नाम वनमाला था। राजा सुमुख ने वनमाला का हरणकर उसके साथ इच्छानुसार कामोपभोग किया और अन्त में वह मुनियों के लिए दान देकर विजया पर्वतपर गया। वहाँ विजयाध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में एक हरिपुर नाम का नगर था। उस में वे दोनों दम्पती उत्पन्न हुए **अर्थ**ात् विद्याधर-विद्याधरी हुए। वहां क्रीड़ा करता हुआ राजा सुमुख का जीव विद्याधर भोगभूमि गया। उसके साथ उसकी स्त्री विद्याधरी भी थी। इधर स्त्री के विरहरूपी अंगार से जिसका शरीर जल रहा था ऐसा वीरक श्रेष्ठी तप के प्रभाव से अनेक देवियों के समूह से युक्त देवपद को प्राप्त हुआ ॥2-5॥ उसने अवधि ज्ञान से जब यह जाना कि हमारा वैरी राजा सुमुख हरिक्षेत्र में उत्पन्न हुआ है तो पाप बुद्धि में प्रेम करनेवाला वह देव उसे वहाँ से भरतक्षेत्र में रख गया तथा उसकी दुर्दशा की ॥6॥ चूंकि वह अपनी भार्या के साथ हरिक्षेत्र से हरकर लाया गया था इसलिए समस्त संसार में वह हरि इस नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥7॥ उसके महागिरि नाम का पुत्र हुआ, उसके हिमगिरि, हिमगिरि के वसुगिरि, वसुगिरि के इन्द्रगिरि, इन्द्रगिरि के रत्नमाला, रत्नमाला के सम्भूत और सम्भूत के भूतदेव आदि सैकड़ों राजा क्रमशः उत्पन्न हुए। ये सब हरिवंशज कहलाये ॥8-9॥ आगे चलकर उसी हरिवंश में कुशाग्न नामक महानगर में सुमित्र नामक प्रसिद्ध उत्कृष्ट राजा हुआ ॥10॥ यह राजा भोगों से इन्द्र के समान था, कान्ति से चन्द्रमा को जीतनेवाला था, दीप्ति से सूर्य को पराजित कर रहा था और प्रताप से समस्त शत्रुओं को नम्र करनेवाला था ॥11॥ उसकी पद्मावती नाम की स्त्री थी। पद्मावती बहुत ही सुन्दरी थी। उसके नेत्र कमल के समान थे, वह विशाल कान्ति की धारक थी, शुभ लक्षणों से सम्पूर्ण थी तथा उसके सर्व मनोरथ पूर्ण हुए थे ॥12॥ एक दिन वह रात्रि के समय सुन्दर महल में सुखकारी शय्यापर सो रही थी कि उसने पिछले पहर में निम्नलिखित सोलह उत्तम स्वप्न देखे ॥13॥ गज 1 वृषभ 2 सिंह 3

लक्ष्मी का अभिषेक 4 दो मालाएँ 5 चन्द्रमा 6 सूर्य 7 दो मीन 8 कलश 9 कमलकलित सरोवर 10 समुद्र 11 रत्नों से चित्रविचित्र सिंहासन 12 विमान 13 उज्ज्वल भवन 14 रत्नराशि 15 और अग्नि 16 ॥14-15॥ - तदनन्तर जिसका चित्त आश्चर्य से चकित हो रहा था ऐसी बुद्धिमती रानी पद्मावती जागकर तथा प्रातःकाल सम्बन्धी यथायोग्य कार्य कर बड़ी नम्रता से पति के समीप गयी ॥16॥ वहाँ जाकर जिसका मुखकमल फूल रहा था ऐसी न्याय की जाननेवाली रानी भद्रासनपर सुख से बैठी। तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर पति से अपने स्वप्नों का फल पूछा ॥17॥ इधर पति ने जबतक उससे स्वप्नों का फल कहा तबतक उधर आकाश से रत्नों की वृष्टि पड़ने लगी ॥18॥ इन्द्र की आज्ञा से प्रसन्न यक्ष प्रतिदिन इसके घर में साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा करता था ॥19॥ पन्द्रह मास तक लगातार पड़ती हुई धनवृष्टि से वह समस्त नगर रत्न तथा सुवर्णादिमय हो गया ॥20॥ पद्म, महापद्म आदि सरोवरों के कमलों में रहनेवाली श्री-ह्री आदि देवियां अपने परिवार के साथ मिलकर जिनमाता की सब प्रकार को सेवा बड़े आदरभाव से करती थीं ॥21॥

अथानन्तर भगवान् का जन्म हुआ। सो जन्म होते ही इन्द्र ने लोकपालों के साथ बड़े वैभव से सुमेरु पर्वतपर भगवान् का क्षीरसागर के जल से अभिषेक किया ॥22॥ अभिषेक के बाद इन्द्र ने भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजा की, स्तुति की, प्रणाम किया और तदनन्तर प्रेमपूर्वक माता की गोद में लाकर विराजमान कर दिया ॥23॥ जब भगवान् गर्भ में स्थित थे तभी से उनकी माता विशेषकर सुव्रता **अर्थ**ात् उत्तम व्रतों को धारण करनेवाली हो गयी थीं इसलिए वे मुनिसुव्रत नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥24॥ जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान था ऐसे सुव्रतनाथ भगवान् यद्यपि अंजनागिरि के समान श्यामवर्ण थे तथापि उन्होने अपने तेज से सूर्य को जीत लिया था ॥25॥ इन्द्र के द्वारा कल्पित ( रचित ) उत्तम भोगों को धारण करते हुए उन्होने अहमिन्द्र का भारी सुख दूर से ही तिरस्कृत कर दिया था ॥26॥ हा-हा, हू-हू, तुम्बुरू, नारद और विश्वावसु आदि गन्धर्वदेव सदा उनके समीप गाते रहते थे तथा किन्नर देवियां और अनेक अप्सराएँ वीणा, बांसुरी आदि बाजों के साथ नृत्य करती रहती थीं। अनेक देवियां उबटन आदि लगाकर उन्हें स्नान कराती थीं ॥27-28॥ सुन्दर शरीर को धारण करनेवाले भगवान् ने यौवन अवस्था में मन्द मुसकान, लज्जा, दम्भ, ईर्ष्या, प्रसाद आदि सुन्दर विभ्रमों से युक्त स्त्रियों को इच्छानुसार रमण कराया था।॥२९॥

अथानन्तर एक बार शरदऋतु के मेघ को विलीन होता देख वे प्रतिबोध को प्राप्त हो गये जिससे दीक्षा ले ने की इच्छा उनके मन में जाग उठी। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की ॥30॥ तदनन्तर जिसमें समस्त सामन्तों के समूह नम्रीभूत थे तथा सुख से जिसका पालन होता था ऐसा राज्य उन्होने अपने सुव्रत नामक पुत्र के लिए देकर सब प्रकार की इच्छा छोड़ दी ॥31॥ तत्पश्चात् जिसने अपनी सुगन्धि से दशों दिशाओं को व्याप्त कर रखा था, जिसमें शरीरपर लगा हुआ दिव्य विलेपन ही सुन्दर मकरन्द था, जिसने अपनी सुगन्धि से आतुर भ्रमरियों के भारी समूह को अपनी ओर खींच रखा था, जो हरे मणियों की कान्तिरूपी पत्तों के समूह से व्याप्त था, जो दांतों की पंक्ति की सफेद कान्तिरूपी मृणाल के समूह से युक्त था, जो नाना प्रकार के आभूषणों की ध्वनिरूपी पक्षियों की कलकूजन से परिपूर्ण था, बलिरूपी तरंगों से युक्त था और जो स्तनरूपी चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित था ऐसी उत्तम स्त्रियोंरूपी कमल-वन से वे कीर्तिधवल राजहंस ( श्रेष्ठ राजा भगवान् मुनिसुव्रतनाथ) इस प्रकार बाहर निकले जिस प्रकार कि किसी कमल-वन से राजहंस (हंस विशेष ) निकलता है ॥32-35॥ तदनन्तर मनुष्यों के चूड़ामणि भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, देवों तथा राजाओं के द्वारा उठायी हुई अपराजिता नाम की पालकी में सवार होकर विपुल नामक उद्यान में गये ॥36॥ तदनन्तर पाल की से उतरकर हरिवंश के आभूषणस्वरूप भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने कई हजार राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥37॥ भगवान् ने दीक्षा लेते समय दो दिन का उपवास किया था। उपवास समाप्त होनेपर राजगृह नगर में वृषभदत्त ने उन्हें परमान्न **अर्थ**ात् खीर से भक्तिपूर्वक पारणा करायी ॥38॥ जिनशासन में आचार को वृत्ति किस तरह है यह बतला ने के लिए ही भगवान् ने आहार ग्रहण किया था। आहारदान के प्रभाव से वृषभदत्त पंचातिशय को प्राप्त हुआ ॥39॥ तदनन्तर चम्पक वृक्ष के नीचे शुक्ल-ध्यान से विराजमान भगवान् को घातिया को का क्षय होने के उपरान्त केवलज्ञान उत्पन्न हआ ॥40॥ तदनन्तर इन्द्रों सहित देवों ने आकर स्तति की. प्रणाम किया तथा उत्तम गणधरों से युक्त उन मुनिसुव्रतनाथ भगवान से उत्तम धर्म का उपदेश सुना ॥41॥ भगवान् ने सागार और अनगार के भेद से अनेक प्रकार के धर्म का निरूपण किया सो उस निर्मल धर्म को विधिपूर्वक सुनकर वे सब यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर गये ॥42॥ हर्ष से भरे नम्रीभूत सुरासुर जिनकीस्तुति करते थे ऐसे भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने भी धर्मतीर्थ को प्रवृत्ति कर महाधैर्य के धारक तथा गण की रक्षा करनेवाले गणधरों एवं अन्यान्य साधुओं के साथ पृथिवीतलपर विहार किया ॥43-44॥ तदनन्तर सम्मेदाचल के शिखरपर आरूढ़ होकर तथा चार अधातिया कर्मों का क्षय कर वे

लोक के चूड़ामणि हो गये अर्थात् सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये ॥45॥ जो मनुष्य उत्तम भाव से मुनिसुव्रत भगवान् के इस माहात्म्य को पढ़ते अथवा सुनते हैं उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥46॥ वे पुनः आकर रत्नत्रय को निर्मल कर उस परम स्थान को प्राप्त होते हैं जहाँ से कि फिर आना नहीं होता ॥47॥ तदनन्तर मुनिसुव्रतनाथ के पुत्र सुव्रत ने भी चिरकाल तक निश्चल राज्य कर अन्त में अपने पुत्र दक्ष के लिए राज्य सौंप दिया और स्वयं दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया ॥48॥ राजा दक्ष के इलावर्धन, इलावधन के श्रीवर्धन, श्रीवर्धन के श्रीवृक्ष, श्रीवृक्ष के संजयन्त, संजयन्त के कुणिम, कुणिम के महारथ और महारथ के पुलोमा इत्यादि हजारों राजा हरिवंश में उत्पन्न हुए। इन में से कित ने ही राजा निर्वाण को प्राप्त हुए और कित ने ही स्वर्ग गये ॥49-51॥ इस प्रकार क्रम से अनेक राजाओं के हो चुकनेपर इसी वंश में मिथिला का राजा वासवकेतु हुआ ॥52॥ उसकी विपुला नाम की पट्टरानी थी। वह विपुला, विपुल अर्थात् दीर्घ नेत्रों को धारण करनेवाली थी और उत्कृष्ट लक्ष्मी की धारक होकर भी मध्यभाग से दरिद्रता को प्राप्त थी अर्थात् उसकी कमर अत्यन्त कृश थी ॥53॥ उन दोनों के नीतिनिपुण जनक नाम का पुत्र हुआ। वह जनक, जनक अर्थात् पिता के समान ही निरन्तर प्रजा का हित करता था ॥54॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह मैंने तेरे लिए राजा जनक की उत्पत्ति कही। अब जिस वंश में राजा दशरथ हुए उसका कथन करता हूँ सो सुन ॥55॥

अथानन्तर इक्ष्वाकुओं के रमणीय कुल में जब भगवान् ऋषभदेव निर्वाण को प्राप्त हो गये और उनके बाद चक्रवर्ती भरत, अर्ककीर्ति तथा वंश के अलंकारभूत सोम आदि राजा व्यतीत हो चु के तब असंख्यात काल के भीतर उस वंश में अनेक राजा हुए। उनमें कित ने ही राजा अत्यन्त कठिन तपश्चरण कर निर्वाण को प्राप्त हुए, कित ने ही स्वर्ग में जाकर भोगों में निमग्न हो क्रीड़ा करने लगे, और कित ने ही पुण्य का संचय नहीं करने से शुष्क हो गये **अर्थ**ात् नरकादि गतियों में जाकर रोते हुए अपने कर्मों का फल भोग ने लगे ॥56-58॥ हे श्रेणिक ! इस संसार में जो व्यसनकष्ट हैं वे चक्र की नाईं बदलते रहते हैं अर्थात् कभी व्यसन महोत्सवरूप हो जाते हैं और कभी महोत्सव व्यसनरूप हो जाते हैं, कभी इस जीव में धीरे-धीरे माया आदि दोष वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं ॥52॥ कभी ये जीव निधन होकर क्लेश उठाते हैं और कभी पूर्वबद्ध आयु के क्षीण हो जाने अथवा किसी कारणवश कम हो जाने से बाल्य अवस्था में ही मर जाते हैं ॥60॥ कभी ये जीव नाना रूपता को धारण करते हैं, कभी ज्यों-के-त्यों स्थिर रह जाते हैं, कभी एक दूसरे को मारते हैं, कभी शोक करते हैं, कभी रोते हैं, कभी खाते हैं, कभी बाधा पहुंचाते हैं, कभी विवाद करते हैं, कभी गमन करते हैं, कभी चलते हैं, कभी प्रभावशील होते हैं, अर्थात् स्वामी बनते हैं, कभी भार ढोते हैं, कभी गाते हैं, कभी उपासना करते हैं, कभी भोजन करते हैं, कभी दरिद्रता को प्राप्त करते हैं, कभी शब्द करते हैं ॥61-62॥ कभी जीतते हैं, कभी देते हैं, कभी कुछ छोड़ते हैं, कभी विराजमान होते हैं, कभी अनेक विलास धारण करते हैं, कभी सन्तोष धारण करते हैं, कभी शासन करते हैं, कभी शान्ति अर्थात् क्षमा की अभिलाषा करते हैं, कभी शान्ति का हरण करते हैं ॥3॥ कभी लज्जित होते हैं, कभी कुत्सित चाल चलते हैं, कभी किसी को सताते हैं, कभी सन्तप्त होते हैं, कभी कपट धारण करते हैं, कभी याचना करते हैं, कभी सम्मुख दौड़ते हैं, कभी मायाचार दिखाते हैं, कभी किसी के द्रव्यादि का हरण करते हैं ॥64॥ कभी क्रीड़ा करते हैं, कभी किसी वस्तु को नष्ट करते हैं, कभी किसी को कुछ देते हैं, कभी कहीं वास करते हैं, कभी किसी को लोंचते हैं, कभी किसी को नापते हैं, कभी दुःखी होते हैं, कभी क्रोध करते हैं, कभी विचलित होते हैं, ॥65॥ कभी सन्तुष्ट होते हैं, कभी किसी की पूजा करते हैं, कभी किसी को छलते हैं, कभी किसी को सान्त्वना देते हैं, कभी कुछ समझते हैं, कभी मोहित होते हैं, कभी रक्षा करते हैं, कभी नृत्य करते हैं, कभी स्नेह करते हैं, कभी विनय करते हैं, ॥66॥ कभी किसी को प्रेरणा देते हैं, कभी दाने-दा ने बीनकर पेट भरते हैं, कभी खेत जोतते हैं, कभी भाड़ दूंजते हैं, कभी नमस्कार करते हैं, कभी क्रीड़ा करते हैं, कभी लुनते हैं, कभी सुनते हैं, कभी होम करते हैं, कभी चलते हैं, कभी जागते हैं ॥67॥ कभी सोते हैं, कभी डरते हैं, कभी नाना चेष्टा करते हैं, कभी नष्ट करते हैं, कभी किसी को खण्डित करते हैं, कभी किसी को पीड़ा पहुंचाते हैं, कभी पूर्ण करते हैं, कभी स्नान करते हैं, कभी बांधते हैं, कभी रोकते हैं, कभी चिल्लाते हैं, ॥68॥ कभी सोते हैं, कभी घूमते हैं, कभी जीणं होते हैं, कभी पीते हैं, कभी रचते हैं, कभी वरण करते हैं, कभी मसलते हैं, कभी फैलाते हैं, कभी तपंण करते हैं ॥69॥ कभी मीमांसा करते हैं, कभी घृणा करते हैं, कभी इच्छा करते हैं, कभी तरते हैं, कभी चिकित्सा करते हैं, कभी अनुमोदना करते हैं, कभी रोकते हैं और कभी निगलते हैं ॥70॥ हे राजन् ! इत्यादि क्रियाओं के जाल से जिनके मन व्याप्त हो रहे थे तथा शुभ-अशुभ कार्यों में लीन थे ऐसे अनेक मानव उस इक्ष्वाकुवंश में क्रम से हुए थे ॥71॥ इस प्रकार जिसमें समस्त मानवों की

चेष्टाएँ चित्रपट के समान नाना प्रकार की हैं ऐसा यह अवसर्पिणी नाम का काल धीरे-धीरे समाप्त होता गया ॥72॥ अथानन्तर जिसमें देवों का आगमन जारी रहता था ऐसे बोसवें वर्तमान तीर्थकर का अन्तराल शुरू होनेपर अयोध्यानामक विशाल नगरी में विजय नाम का बड़ा राजा हुआ। उसने समस्त शत्रुओं को जीत लिया था। वह सूर्य के समान प्रताप से संयुक्त था तथा प्रजा का पालन करने में निपुण था ॥73-74॥ उसकी हेमचूला नाम की महातेजस्विनी पट्टरानी थी सो उसके सुरेन्द्रमन्य नाम का महागुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥75॥ सुरेन्द्रमन्यु की कीर्तिसमा स्त्री हुई सो उसके चन्द्रमा और सूर्य के समान कान्ति को धारण करनेवाले दो पुत्र हुए। ये दोनों ही पुत्र गुणों से सुशोभित थे। उनमें से बड़े पुत्र का नाम वज्रबाहु और छोटे पुत्र का नाम पुरन्दर था। दोनों ही सार्थक नाम को धारण करनेवाले थे और संसार में सुख से क्रीड़ा करते थे॥७६-७७।। उसी समय अत्यन्त मनोहर हस्तिनापुर नगर में इभवाहन नाम का राजा रहता था। उसकी स्त्री का नाम चूड़ामणि था। उन दोनों के मनोदया नाम की अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी सो उसे मनुष्यों में अत्यन्त प्रशंसनीय वज्रबाहु कुमार ने प्राप्त किया ॥78-79॥ कदाचित् कन्या का भाई उदयसुन्दर उस कन्या को ले ने के लिए वज्रबाहु के घर गया सो जिसपर अत्यन्त सुशोभित सफ़ेद छत्र लग रहा था ऐसा वज्रबाहु स्वयं भी उसके साथ चलने के लिए उद्यत हुआ ॥80॥ वह कन्या अपने सौन्दर्य से समस्त पृथ्वी में प्रसिद्ध थी, उसे मन में धारण करता हुआ वज्रबाहु बड़े वैभव के साथ श्वसुर के नगर की ओर चला ॥8॥ अथानन्तर चलते-चलते उस को दृष्टि वसन्त ऋतु के फूलों से व्याप्त वसन्त नामक मनोहर पर्वतपर पड़ी ॥82॥ वह जैसे-जैसे उस पर्वत के समीप आता जाता वैसे-वै से ही उसकी परम शोभा को देखता हुआ हर्ष को प्राप्त हो रहा था ॥83॥ फूलों की धूलि से मिली सुगन्धित वाय उसका आलिंगन कर रही थी सो ऐसा जान पड़ता था मानो चिरकाल के बाद प्राप्त हुआ मित्र ही आलिंगन कर रहा हो ॥84॥ जहां वृक्षों के अग्रभाग वायु से कम्पित हो रहे थे ऐसा वह पर्वत पुंस्कोकिलाओं के शब्दों के बहा ने मानो वज्रबाहु का जय-जयकार ही कर रहा था ॥85॥ वीणा की झंकार के समान मनोहर मदशाली भ्रमरों के शब्द से उसके श्रवण तथा मन साथ-ही-साथ हरे गये ॥86॥ 'यह आम है, यह कनेर है, यह फूलों से सहित लोध्र है, यह प्रियाल है और यह जलती हुई अग्नि के समान सुशोभित पलाश है' इस प्रकार क्रम से चलती हुई उसकी निश्चल दृष्टि दूरी के कारण जिसमें मनुष्य के आकार का संशय हो रहा था ऐसे मुनिराजपर पड़ी ॥87-88॥ कायोत्सर्ग से स्थित मुनिराज के विषय में वज्रबाहु को वितर्क उत्पन्न हुआ कि क्या यह ठूठ है ? या साधु हैं, अथवा पर्वत का शिखर है ? ॥89॥ तदनन्तर जब अत्यन्त समीपवर्ती मार्ग में पहुंचा तब उसे निश्चय हुआ कि ये महायोगी-मुनिराज हैं ॥90॥ वे मुनिराज ऊंची-नीची शिलाओं से विषम धरातल में स्थिर विराजमान थे, सूर्य की किरणों से आलिंगित होने के कारण उनका मुखकमल म्लान हो रहा था, किसी बड़े सर्प के समान सुशोभित उनकी दोनों उत्तम भुजाएं नीचे की ओर लटक रही थीं, उनका वक्षःस्थल सुमेरुके तट के समान स्थूल तथा चौड़ा था, उनकी देदीप्यमान दोनों उत्कृष्ट जाँचे दिग्गजों के बांधने के खम्भों के समान स्थिर थीं, यद्यपि वे तप के कारण कृश थे तथापि कान्ति से अत्यन्त स्थूल जान पड़ते थे, उन्होने अपने अत्यन्त सौम्य निश्चल नेत्र नासि का के अग्रभाग पर स्थापित कर रखे थे, इस प्रकार एकाग्र रूप से ध्यान करते हुए मुनिराज को देखकर राजा वज्रबाहु इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥91-94॥ अहो! इन अत्यन्त प्रशान्त उत्तम मानव को धन्य है जो समस्त परिग्रह का त्याग कर मोक्ष की इच्छा से तपस्या कर रहे हैं !॥95॥ इन मुनिराजपर मुक्ति-लक्ष्मी ने अनुग्रह किया है, इन की बुद्धि आत्मकल्याण में लीन है, इन की आत्मा परपीड़ा से निवृत्त हो चुकी है, ये अलौकिक लक्ष्मी से अलंकृत हैं, शत्रु और मित्र, तथा रत्नों की राशि और तृण में समान बुद्धि रखते हैं, मान एवं मत्सर से रहित हैं, सिद्धिरूपी वधू का आलिंगन करने में इन की लालसा बढ़ रही है, इन्हों ने इन्द्रियों और मन को वश में कर लिया है, ये सुमेरुके समान स्थिर हैं, वीतराग हैं तथा कुशल कार्य में मन स्थिर कर ध्यान कर रहे हैं ॥ 96-98॥ मनुष्य में जन्म का पूर्ण-फल इन्हों ने प्राप्त किया है, इन्द्रियरूपी दुष्ट चोर इन्हें नहीं ठग सके हैं ॥99॥ और मैं ? मैं तो कर्मरूपी पाशों से उस तरह निरन्तर वेष्टित हूँ जिस तरह कि आशीविष जाति के बड़े-बड़े सो से चन्दन का वृक्ष वेष्टित होता है ॥100॥ जिसका चित्त प्रमाद से भरा हुआ है ऐसे जड़तुल्य मुझ पापी के लिए धिक्कार है। मैं भोगरूपी पर्वत की बड़ी गोल चट्टान के अग्रभाग पर बैठकर सो रहा हूँ ॥101॥ यदि मैं इन मुनिराज की इस अवस्था को धारण कर सकूँ तो मनुष्य-जन्म का फल मुझे प्राप्त हो जावे ॥102॥ इस प्रकार विचार करते हुए राजा वज्रबाहु की दृष्टि उन निर्ग्रन्थ मुनिराजपर खम्भे में बँधी हुई के समान अत्यन्त निश्चल हो गयी॥१०३॥ इस तरह वज्रबाहु को निश्चल दृष्टि देख उदयसुन्दर ने सुसकराकर हँसी करते हुए कहा कि आप इन मुनिराज को बड़ी देर से देख रहे हैं सो क्या इस दीक्षा को ग्रहण कर रहे हो? इसमें आप अनुरक्त दिखाई पड़ते हैं ॥104-105॥ तदनन्तर अपने भाव को छिपाकर वज्रबाहु ने कहा कि हे उदय ! तुम्हारा क्या भाव है सो तो कहो ॥106॥ उसे अन्तर से विरक्त न जानकर उदयसुन्दर ने परिहास के अनुरागवश दाँतों की

किरणों से ओठों को व्याप्त करते हुए कहा कि ॥107॥ यदि आप इस दीक्षा को स्वीकृत करते हैं तो मैं भी आपका सखा अर्थात् साथी होऊँगा। अहो कुमार! आप इस मुनि दीक्षा से अत्यधिक सुशोभित होओगे ॥108॥ 'ऐसा हो' इस प्रकार कहकर विवाहक आभूषणों से युक्त वज्रबाहु हाथी से उतरा और पर्वतपर चढ़ गया ॥109॥ तब विशाल नेत्रों को धारण करनेवाली स्त्रियां जोर-जोर से रोने लगीं। उनके नेत्रों से टूटे हुए मोतियों के हार के समान आँसुओं की बड़ी-बड़ी बँदें गिरने लगीं ॥110॥ उदयसुन्दर ने भी आँखों में आँसू भरकर कहा कि हे देव ! प्रसन्न होओ, यह क्या कर रहे हो ? मैंने तो हँसी की थी ॥111॥ तदनन्तर मधुर शब्दों में सान्त्वना देते हुए वज्रबाह ने उदयसुन्दर से कहा कि हे उत्तम अभिप्राय के धारक ! मैं कुएँ में गिर रहा था सो तुमने निकाला है ॥112॥ तीनों लोकों में तुम्हारे समान मेरा दूसरा मित्र नहीं है। हे सुन्दर ! संसार में जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जो मरता है उसका जन्म अवश्यंभावी है ॥113॥ यह जन्म-मरणरूपी घटीयन्त्र बिजली, लहर तथा दुष्ट सर्प की जिह्वा से भी अधिक चंचल है तथा निरन्तर घूमता रहता है ॥114॥ दुःख में फं से हुए संसार के जीवन की ओर तुम क्यों नहीं देख रहे हो? ये भोग स्वप्नों के भोगों के समान हैं, जीवन बुद्बुद के तुल्य है, स्नेह सन्ध्या की लालिमा के समान है और यौवन फूल के समान है। हे भद्र ! तेरी हंसी भी मेरे लिए अमृत के समान हो गयी ॥115-116॥ क्या हंसी में पो गयी औषधि रोग को नहीं हरती? चूंकि तुमने मेरी कल्याण की ओर प्रवृत्ति करायी है इसलिए आज तुम्ही एक मेरे बन्धु हो॥११७।। मैं संसार के आचार में लीन था सो आज तुम उससे विरक्ति के कारण हो गये। लो, अब मैं दीक्षा लेता हूँ। तुम अपने अभिप्राय के अनुसार कार्य करो ॥118॥ इतना कहकर वह गुणसागर नामक मुनिराज के पास गया और उनके चरणों में प्रणाम कर बड़ी विनय से हाथ जोड़ता हुआ बोला कि हे स्वामिन् ! आपके प्रसाद से मेरा मन पवित्र हो गया है सो आज मैं इस भयंकर संसाररूपी कारागृह से निकलना चाहता हूँ ॥119-120॥ तदनन्तर ध्यान समाप्त होनेपर मुनिराज ने उसके इस कार्य की अनुमोदना की। सो महासंवेग से भरा वज्रबाह वस्त्राभूषण त्याग कर उनके समक्ष शीघ्र ही पद्मासन से बैठ गया। उसने पल्लव के समान लाल-लाल हाथों से केश उखाड़कर फेंक दिये। उसे उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उसका शरीर रोगरहित होने से हल का हो गया हो। इस तरह उसने विवाह-सम्बन्धी दीक्षा का परित्याग कर मोक्ष प्राप्त करानेवाली दीक्षा धारण कर ली ॥121-123॥ तदनन्तर जिन्हों ने राग, द्वेष और मद का परित्याग कर दिया था, संवेग की ओर जिनका वेग बढ़ रहा था, तथा जो काम के समान सुन्दर विभ्रम को धारण करनेवाले थे, ऐसे उदयसुन्दर आदि छब्बीस राजकुमारों ने भी परमोत्साह से सम्पन्न हो मुनिराज को प्रणाम कर दीक्षा धारण कर ली ॥124-125॥ यह समाचार जानकर भाई के स्नेह से भीरु मनोदया ने भी बहुत भारी संवेग से युक्त हो दीक्षा ले ली ॥126॥ सफेद वस्त्र से जिसका विशाल स्तनमण्डल आच्छादित था, जिसका उदर अत्यन्त कृश था और जिस के शरीरपर मैल लग रहा था ऐसी मनोदया बड़ी तपस्विनी हो गयी ॥127॥ वज्रबाहु के बाबा विजयस्यन्दन को जब उसके इस समाचार का पता चला तब शोक से पीड़ित होता हुआ वह सभा के बीच में इस प्रकार बोला कि अहो! आश्चर्य की बात देखो, प्रथम अवस्था में स्थित मेरा नाती विषयों से विरक्त हो दैगम्बरी दीक्षा को प्राप्त हुआ है ॥128-129॥ मेरे समान वृद्ध पुरुष भी दुःख से छोड़ ने योग्य जिन विषयों के अधीन हो रहा है वे विषय उस कुमार ने कैसे की छोड़ दिये ॥130॥ अथवा उस भाग्यशालीपर मुक्तिरूपी लक्ष्मी ने बड़ा अनुग्रह किया है जिससे वह भोगों को तृण के समान छोड़कर निराकुल भाव को प्राप्त हुआ है ॥131॥ प्रारम्भ में सुन्दर दिखनेवाले पापी विषयों ने जिसे चिरकाल से ठगा है तथा जो वृद्धावस्था से पीड़ित है ऐसा मैं अभागा इस समय कौन-सी चेष्टा को धारण करूँ?॥१३२॥ मेरे जो केश इन्द्रनील मणि की किरणों के समान श्याम वर्ण थे वे ही आज कास के फूलों की राशि के समान सफ़ेद हो गये हैं ॥133॥ सफ़ेद काली और लाल कान्ति को धारण करनेवाले मेरे जो नेत्र मनुष्यों के मन को हरण करनेवाले थे, अब उनका मार्ग भृकुटी रूपी लताओं से आच्छादित हो गया है अर्थात् अब वे लताओ से आच्छादित गर्त के समान जान पड़ते हैं ॥134॥ मेरा जो यह शरीर कान्ति से उज्ज्वल तथा महाबल से युक्त था वह अब वर्षा से ताड़ित चित्र के समान निष्प्रभ हो गया ॥135॥ अर्थ, धर्म और काम ये तीन पुरुषार्थ तरुण मनुष्य के योग्य हैं। वृद्ध मनुष्य के लिए इन का करना कठिन है ॥136॥ चेतनाशून्य, दुराचारी, प्रमादी तथा भाई-बन्धुओं के मिथ्या स्नेहरूपी सागर को भंवर में पड़े हुए मुझ पापी को धिक्कार हो ॥137॥ इस प्रकार कहकर तथा समस्त बन्धुजनों से पूछकर उदारहृदय वृद्ध राजा विजयस्यन्दन ने निःस्पृह हो छोटे पोते पुरन्दर के लिए राज्य सौंप दिया और स्वयं निर्वाणघोष नामक निर्ग्रन्थ महात्मा के समीप अपने पुत्र सुरेन्द्रमन्यु के साथ दीक्षा ले ली ॥138-139॥ तदनन्तर पुरन्दर को भार्या पृथिवीमती ने कीर्तिधर नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वह पुत्र समस्त प्रसिद्ध गुणों का मानो सागर ही था ॥140॥ अपनी सुन्दर चेष्टा से समस्त बन्धुओं की प्रसन्नता को बढ़ाता हुआ विनयी कीर्तिधर क्रम-क्रम से यौवन को प्राप्त हुआ ॥141॥ तब राजा परन्दर ने उसके लिए

कौशल देश के राजा की पुत्री स्वीकृत की। इस तरह पत्र का विवाहकर राजा पुरन्दर विरक्त हो घर से निकल पड़ा ॥142॥ गुणरूपी आभूषणों को धारण करनेवाले राजा पुरन्दर ने क्षेमंकर मुनिराज के समीप दीक्षा लेकर कर्मों की निर्जरा का कारण कठिन तप करना प्रारम्भ किया ॥143॥ इधर शत्रुओं को जीतनेवाला राजा कीर्तिधर कुल-क्रमागत राज्य का पालन करता हुआ देवों के समान उत्तम भोगों के साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगा ॥144॥ अथानन्तर किसी दिन शत्रुओं को भयभीत करनेवाला प्रजा-वत्सल राजा कीर्तिधर, अपने सुन्दर भवन के ऊपर नलकूबर विद्याधर के समान सुख से बैठा हुआ सुशोभित हो रहा था कि उसकी दृष्टि राह विमान को नील कान्ति से आच्छादित सूर्यमण्डल (सूर्यग्रहण ) पर पड़ी। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि अहो ! उदय में आया कम दूर नहीं किया जा सकता ॥145-146॥ भीषण अन्धकार को नष्ट कर चन्द्रमण्डल को कान्तिहीन कर देता है तथा कमलों के वन को विकसित करता है वह सूर्य राहु को दूर करने में समर्थ नहीं है ॥147॥ जिस प्रकार यह सूर्य नष्ट हो रहा है उसी प्रकार यह यौवनरूपी सूर्य भी जरारूपी ग्रहण को प्राप्त कर नष्ट हो जावेगा। मजबूत पाश से बँधा हुआ यह बेचारा प्राणी अवश्य ही मृत्यु के मुख में जाता है ॥148॥ इस प्रकार समस्त संसार को अनित्य मानकर राजा कीर्तिधर ने सभा में बैठे हुए मन्त्रियों से कहा कि अहो मन्त्री जनो! इस सागरान्त पथिवी की आप लोग रक्षा करो। मैं तो मुक्ति के मार्ग में प्रयाण करता हूँ ॥149॥ राजा के ऐसा कहनेपर विद्वानों तथा बन्धुजनों से परिपूर्ण सभा विषाद को प्राप्त हो उससे इस प्रकार बोली कि हे राजन! इस समस्त पथिवी के तम्ही एक अद्वितीय पति हो ॥150॥ यह पृथिवी आपके आधीन है तथा आप ने समस्त शत्रुओं को जीता है, इसलिए आपके छोड़नेपर सुशोभित नहीं होगी। उन्नत पराक्रम के धारक ! अभी आपकी नयो अवस्था है इसलिए इन्द्र के समान राज्य करो ॥151॥ इसके उत्तर में राजा ने कहा कि जो जन्मरूपी वृक्षों से संकुल है, व्याप्त है, बुढ़ापा, वियोग तथा अरतिरूपी अग्नि से प्रज्वलित है, तथा अत्यन्त दीर्घ है ऐसी इस व्यसनरूपी अटवी को देखकर मुझे भारी भय उत्पन्न हो रहा है ॥152॥ जब मन्त्रीजनों को राजा के दृढ़ निश्चय का बोध हो गया तब उन्होने बहुत से बुझे हुए अंगारों का समूह बुझाकर उस में किरणों से सुशोभित उत्तम वैडूर्यमणि रखा सो उसके प्रभाव से वह बुझे हुए अंगारों का समूह प्रकाशमान हो गया ॥153॥ तदनन्तर वह रत्न उठाकर बोले कि हे राजन् ! जिस प्रकार इस उत्तम रत्न से रहित अंगारों का समूह शोभित नहीं होता है उसी प्रकार आपके बिना यह संसार शोभित नहीं होगा ॥154॥ हे नाथ ! तुम्हारे बिना यह बेचारी समस्त प्रजा अनाथ तथा विकल होकर नष्ट हो जायेगी। प्रजा के नष्ट होनेपर धर्म नष्ट हो जायेगा और धर्म के नष्ट होनेपर क्या नहीं नष्ट होगा सो तुम्हीं कहो ॥155॥ इसलिए जिस प्रकार आपके पिता ने प्रजा की रक्षा के लिए आप को देकर मोक्ष प्रदान करने में दक्ष तपश्चरण किया था उसी प्रकार आप भी अपने इस कुलधर्म की रक्षा कीजिए ॥156॥ अथानन्तर कुशल मन्त्रियों के इस प्रकार कहने पर राजा कीर्तिधर ने नियम किया कि जिस समय मैं पुत्र को उत्पन्न हुआ सुनूँगा उस समय मुनियों का उत्कृष्ट पद अवश्य धारण कर लँगा ॥157॥ तदनन्तर जिस के भोग और पराक्रम इन्द्र के समान थे तथा जिसकी आत्मा सदा सावधान रहती थी ऐसे राजा कीर्तिधर ने सब प्रकार के भय से रहित तथा व्यवस्था से युक्त दीर्घ पृथ्वी का चिरकाल तक पालन किया ॥158॥ तदनन्तर राजा कीर्तिधर के साथ चिरकाल तक सुख का उपभोग करती हुई रानी सहदेवी ने सवंगुणों से परिपूर्ण एवं पृथ्वी के धारण करने में समर्थ पुत्र को उत्पन्न किया ॥159॥ पुत्र-जन्म का समाचार राजा के कानों तक न पहुँच जावे इस भय से पुत्र जन्म का उत्सव नहीं किया गया तथा इसी कारण कित ने ही दिन तक प्रसव का समय गुप्त रक्खा गया ॥160॥ तदनन्तर उगते हुए सूर्य के समान वह बालक चिरकाल तक छिपाकर कैसे की रक्खा जा सकता था ? फलस्वरूप किसी दरिद्र मनुष्य ने पुरस्कार पा ने के लोभ से राजा को उसकी खबर दे दी ॥161॥ राजा ने हर्षित होकर उसके लिए मुकुट आदि दिये तथा विपुल धन से युक्त सौ गाँवों के साथ घोष नाम का मनोहर शाखानगर दिया ॥162॥ और माता की महा तेजपूर्ण गोद में स्थित उस एक पक्ष के बालक को बुलवाकर उसे बड़े वैभव के साथ अपने पदपर बैठाया तथा सब लोगों का सन्मान किया ॥163॥ चूंकि उसके उत्पन्न होनेपर वह कोसला नगरी वैभव से अत्यन्त मनोहर हो गयी थी इसलिए उत्तम चेष्टाओं को धारण करनेवाला वह बालक 'सुकोसल' इस नाम को प्राप्त हुआ ॥164॥ तदनन्तर राजा कीर्तिधर भवनरूपी कारागार से निकलकर तपोवन में पहुँचा और तप सम्बन्धी तेज से वर्षाकाल से रहित सूर्य के समान अत्यन्त सुशोभित होने लगा ॥165॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, वज्रबाहु तथा राजा कीर्तिधर के माहात्म्य को कथन करनेवाला इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥21॥

## राजा दशरथ की उत्पत्ति

बाईसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर जो घोर तपस्वी थे, पृथ्वी के समान क्षमा के धारक थे, प्रभु थे, जिनका शरीर मैलरूपी कंचुक से व्याप्त था, जिन्हों ने मान को नष्ट कर दिया था, जो उदार हृदय थे, जिनका समस्त शरीर तप से सूख गया था, जो अत्यन्त धीर थे, केश लोंच करने को जो आभूषण के समान समझते थे, जिनकीलम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं, जो युगप्रमाण **अर्थ**ात् चार हाथ प्रमाण मार्ग में दृष्टि डालते हुए चलते थे, जो स्वभाव से ही मत्त हाथी के समान मन्दगति से चलते थे, विकार-शून्य थे, समाधान अर्थात् चित्त की एकाग्रता से सहित थे, विनीत थे, लोभरहित थे, आगमानुकूल आचार का पालन करते थे, जिनका मन दया से निर्मल था, जो स्नेहरूपी पंक से रहित थे, मुनिपदरूपी लक्ष्मी से सहित थे और जिन्हों ने चिरकाल का उपवास धारण कर रखा था, ऐसे कीर्तिधर मुनिराज भ्रमण करते हुए गृहपंक्तिकें क्रम से प्राप्त अपने पूर्व घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करने लगे ॥1-5॥ उस समय उनकी गृहस्थावस्था की स्त्री सहदेवी झरोखे में दृष्टि लगाये खड़ी थी सो उन्हें आते देख परमक्रोध को प्राप्त हुई। क्रोध से उसका मुंह लाल हो गया । ओंठ चाबती हुई उस दुष्टा ने द्वारपालों से कहा कि यह मुनि घर को फोड़नेवाला है इसलिए यहाँ से शीघ्र ही निकाल दिया जाय ॥६-७|मुग्ध, सर्वजन प्रिय और स्वभाव से ही कोमल चित्त का धारक, सुकुमार कुमार जबतक इसे नहीं देखता है तबतक शीघ्र ही दूर कर दो। यही नहीं यदि मैं और भी नग्न मनुष्यों को महल के अन्दर देखूगी तो हे द्वारपालो! याद रखो मैं अवश्य ही तुम्हें दण्डित करूंगी। यह निर्दय जबसे शिशुपुत्र को छोड़कर गया है तभी से इन लोगों में मेरा सन्तोष नहीं रहा ॥8-10॥ ये लोग महाशूर वीरों से सेवित राज्यलक्ष्मी से द्वेष करते हैं तथा महान् उद्योग करने में तत्पर रहनेवाले मनुष्यों को अत्यन्त निर्वेद प्राप्त करा देते हैं ॥11॥ सहदेवी के इस प्रकार कहनेपर जिनके मुख से दुर्वचन निकल रहे थे तथा जो हाथ में वेत्र धारण कर रहे थे ऐसे दुष्ट द्वारपालों ने उन मुनिराज को दूर से ही शीघ्र निकाल दिया ॥12॥ इन्हें ही नहीं, 'राज विद्यमान राजकुमार धर्म का शब्द न सन ले' इस भय से नगर में जो और भी मनि विद्यमान थे उन सब को नगर से बाहर निकाल दिया ॥ 13॥

इस प्रकार वचनरूपी वसूली के द्वारा छीले हुए मुनिराज को सुनकर तथा देखकर जिसका भारी शोक फिर से नवीन हो गया था, तथा जो भक्ति से युक्त थी ऐसी सुकोसल धाय चिरकाल बाद अपने स्वामी कीर्तिधर को पहचानकर गला फाड़-फाड़कर रोने लगी ॥14-15॥ उसे रोती सुनकर सुकोशल शीघ्र ही उसके पास आया और सान्त्वना देता हुआ बोला कि हे माता! कह तेरा अपकार किस ने किया है ? ॥16॥ माता ने तो इस शरीर को गर्भमात्र में ही धारण किया है पर आज यह शरीर तेरे दुग्ध-पान से ही इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ॥17॥ तू मेरे लिए माता से भी अधिक गौरव को धारण करती है। बता, यमराज के मुख में प्रवेश करने की इच्छा करनेवाले किस मनुष्य ने तेरा अपमान किया है ? ॥18॥ यदि आज माता ने भी तेरा पराभव किया होगा तो मैं उसकी अविनय करने को तैयार हूँ फिर दूसरे प्राणी की तो बात ही क्या है ? ॥19॥ तदनन्तर वसन्तलता नामक धाय ने बड़े दुःख से आँसुओं को धारा को कमकर सुकोशल से कहा कि तुम्हारा जो पिता शिशु अवस्था में ही तुम्हारा राज्याभिषेक कर संसाररूपी दुःखदायी पंजर से भयभीत हो तपोवन में चला गया था आज वह भिक्षा के लिए आपके घर में प्रविष्ट हुआ सो तुम्हारी माता ने अपने अधिकार से उसे द्वारपालों के द्वारा अपमानित कर बाहर निकलवा दिया | अपमानित होते देख मुझे बहुत शोक हुआ और उस शोक को मैं रोक नहीं सकी। इसलिए हे वत्स ! मैं रो रही हूँ ॥23॥ जिसे आप सदा गौरव से देखते हैं उसका पराभव कौन कर सकता है ? मेरे रोने का कारण यही है जो मैंने आप से कहा है ॥24॥ उस समय स्वामी कीर्तिधर ने हमारा जो उपकार किया था वह स्मरण में आते ही शरीर को स्वतन्त्रता से जला ने लगता है ॥25॥ पाप के उदय से दुःख का पात्र बनने के लिए ही मेरा यह शरीर रु का हुआ है। जान पड़ता है कि यह लोहे से बना है इसलिए तो स्वामी का वियोग होनेपर भी स्थिर है ॥26॥ निर्ग्रन्थ मुनि को देखकर तुम्हारी बुद्धि वैराग्यमय न हो जावे इस भय से नगर में मुनियों का प्रवेश रोक दिया गया है ॥27॥ परन्तु तुम्हारे कुल में परम्परा से यह धर्म चला आया है कि पुत्र को राज्य देकर तपोवन की सेवा करना ॥28॥ तुम कभी घर से बाहर नहीं निकल सकते हो इतने से ही क्या मन्त्रियों के इस निश्चय को नहीं जान पाये हो ॥29॥ इसी कारण नीति के जाननेवाले मन्त्रियों ने तुम्ह आदि को व्यवस्था इसी भवन में कर रखी है ॥30॥

तदनन्तर वसन्तलता धाय के द्वारा निरूपित समस्त वृत्तान्त सुनकर सुकोशल शीघ्रता से महल के अग्रभाग से नीचे उतरा ॥31॥ और छत्र चमर आदि राज-चिह्नों को छोड़कर कमल के समान कोमल कान्ति को धारण करनेवाले पैरों से पैदल ही चल पड़ा। वह लक्ष्मी से

सुशोभित था तथा मार्ग में लोगों से पूछता जाता था कि यहां कहीं आप लोगों ने उत्तम मुनिराज को देखा है ? इस तरह परम उत्कण्ठा से युक्त सुकोशल राजकुमार पिता के समीप पहुँचा ॥32-33॥ इसके जो छत्र धारण करनेवाले आदि सेवक थे वे सब व्याकुल चित्त होते हुए हड़बड़ाकर उसके पीछे दौड़ते आये ॥34॥ जाते हो उसने प्रासुक विशाल तथा उत्तम शिलातल पर विराजमान अपने पिता कीर्तिधर मुनिराज की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उस समय उसके नेत्र आँसुओं से व्याप्त थे, और उसकी भावनाएँ अत्यन्त उत्तम थीं ॥35॥ उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये तथा घुटनों और मस्तक से पृथिवी का स्पर्श कर बड़े स्नेह के साथ उनके चरणों में नमस्कार किया ॥36॥ वह हाथ जोड़कर विनय से मुनिराज के आगे बैठ गया। अपने घर से मुनिराज का तिरस्कार होने के कारण मानो वह लज्जा को प्राप्त हो रहा था ॥37॥ उसने मुनिराज से कहा कि जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त घर में सोते हुए मनुष्यों को तीव्र गर्जना से युक्त मेघों का समूह जगा देता है उसी प्रकार जन्म-मरणरूपी अग्नि से प्रज्वलित इस संसाररूपी घर में मैं मोहरूपी निद्रा से आलिंगित होकर सो रहा था सो हे प्रभो ! आप ने मुझे जगाया है ॥38-39॥ आप प्रसन्न होइए तथा आप ने स्वयं जिस दीक्षा को धारण किया है वह मेरे लिए भी दीजिये। हे भगवन् ! मुझे भी इस संसार के व्यसनरूपी संकट से बाहर निकालिए ॥40॥ नीचे की ओर मुख किये सुकोशल जबतक मुनिराज से यह कह रहा था तब तक उसके समस्त सामन्त वहाँ आ पहँचे ॥41॥ सकोशल की स्त्री विचित्रमाला भी गर्भ के भार को धारण करती, विषादभरी, अन्तःपुर के साथ वहाँ आ पहुँची ॥42॥ सुकाशल को दोक्षा के सम्मुख जानकर अन्तःपुर से एक साथ भ्रमर की झंकार के समान कोमल रा ने का आवाज उठ पड़ी ॥43॥

तदनन्तर सुकोशल ने कहा कि 'यदि विचित्रमाला के गर्भ में पुत्र है तो उसके लिए मैंने राज्य दिया' इस प्रकार कहकर उसने निःस्पृह हो, आशारूपी पाश को छेदकर, स्नेहरूपी पंजर को जलाकर, स्त्रीरूपी बेड़ी को तोड़कर, राज्य को तृण के समान छोड़कर, अलंकारों का त्याग कर अन्तरंगबहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह का उत्सर्ग कर, पर्यकासन से बैठकर, केशों का लोंचकर पिता से महाव्रत धारण कर लिये। और दढ निश्चय हो शान्त चित्त से पिता के साथ विहार करने लगा ॥44-47॥ जब वह विहार के योग्य पृथिवीपर भ्रमण करता था तब पैरों की लाल-लाल किरणों से ऐसा जान पड़ता था मानो कमलों का उपहार ही पृथिवीपर चढ़ा रहा हो। लोग उसे आश्चर्यभरे नेत्रों से देखते थे ॥48॥

मिथ्यादृष्टि तथा पाप करने में तत्पर रहनेवाली सहदेवी आर्तध्यान से मरकर तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुई ॥49॥ इस प्रकार पिता-पुत्र आगमानुकूल विहार करते थे। विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वे वहीं सो जाते थे। तदनन्तर दिशाओं को मलिन करता हुआ वर्षा काल आ पहुंचा ॥50॥ काले-काले मेघों के समूह से आकाश ऐसा जान पड़ने लगा मानो गोबर से लीपा गया हो और कहीं-कहीं उड़ती हुई वलाकाओं से ऐसा जान पड़ता था मानो उसपर कुमुदों के समूह से अर्चा ही की गयी हो ॥51॥ जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे ऐसी कदम्ब की बड़ी-बड़ी बोडियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो वर्षाकालरूपी राजा का यशोगान ही कर रहे हों ॥52॥ जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो ऊंचे-ऊँचे पर्वतों के समान नीलांजन के समूह से ही व्याप्त हो गया हो और चन्द्रमा तथा सूर्य कहीं चले गये थे मानो मेवों की गर्जना से तर्जित होकर ही चले गये थे ॥53॥ आकाशतल से अखण्ड जलधारा बरस रही थी सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशतल पिघल-पिघलकर बह रहा हो और पृथिवी में हरी-हरी घास उग रही थी उससे ऐसा जान पड़ता था मानो उसने सन्तोष से घासरूपी कंचुक ( चोली ) ही पहन रखी हो ॥54॥ जिस प्रकार अतिशय दुष्ट मनुष्य का चित्त ऊंच-नीच सब को समान कर देता है उसी प्रकार वेग से बहनेवाले जल के पूर ने ऊंची-नीची समस्त भूमि को समान कर दिया था ॥55॥ पृथिवीपर जल के समूह गरज रहे थे और आकाश में मेघों के समूह गर्जना कर रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था मानो वे भागे हुए ग्रीष्मकालरूपी शत्रु को खोज ही रहे थे ॥56॥ झरनों से सुशोभित पर्वत अत्यन्त सघन कन्दलों से आच्छादित हो गये थे। उससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जल के बहुत भारी भार से मेघ ही नीचे गिर पड़े हों ॥57॥ वन की स्वाभाविक भूमि में जहाँ-तहां चलते-फिरते इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़े दिखाई देते थे। जो ऐसे जान पड़ते थे मानो मेघों के द्वारा चूर्णीभूत सूर्य के टुकड़े ही पृथिवीपर आ पड़े हों ॥58॥ बिजली का तेज जल्दी-जल्दी समस्त दिशाओं में घूम रहा था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश का नेत्र 'कौन देश जल से भरा गया और कौन देश नहीं भरा गया' इस बात को देख रहा था ॥59॥ अनेक प्रकार के तेज को धारण करनेवाले इन्द्रधनुष से आकाश ऐसा सुशोभित हो गया मानो अत्यन्त ऊंचे सुन्दर तोरण से हो सुशोभित हो गया हो ॥60॥ जो दोनों तटों को गिरा रही थीं, जिन में भयंकर आवर्त उठ रहे थे, और जो बड़े वेग से बह रही थीं ऐसी कलुषित नदियां व्यभिचारिणी स्त्रियों के समान जान पड़ती थीं ॥61॥ जो मेघों की गर्जना से भयभीत हो रहीं थीं, तथा जिनके नेत्र हरिणी

के समान चंचल थे ऐसी प्रोषितभर्त का स्त्रियां शीघ्र ही खम्भों का आलिंगन कर रही थीं ॥62॥ अत्यन्त भयंकर गर्जना से जिनकीचेतना जर्जर हो रही थी ऐसे प्रवासी-परदेशी मनुष्य जिस दिशा में स्त्री थी उसी दिशा में नेत्र लगाये हुए विह्वल हो रहे थे ॥63॥ सदा अनुकम्पा ( दया ) के पालन करने में तत्पर रहनेवाले दिगम्बर मुनिराज प्रासुक स्थान पाकर चातुर्मास व्रत का नियम लिये हुए थे ॥64॥ जो शक्ति के अनुसार नाना प्रकार के व्रत-नियम आखड़ी आदि धारण करते थे तथा सदा साधुओं की सेवा में तत्पर रहते थे ऐसे श्रावकों ने दिग्व्रत धारण कर रखा था ॥65॥ इस प्रकार मेघों से युक्त वर्षाकाल के उपस्थित होनेपर आगमानुकूल आचार को धारण करनेवाले दोनों पिता-पुत्र निर्ग्रन्थ साधु कीतिधर मुनिराज और सुकोशलस्वामी इच्छानुसार विहार करते हुए उस श्मशानभूमि में आये जो वृक्षों के अन्धकार से ्भीर था, अनेक प्रकार के सर्प आदि हिंसक जन्तुओं से व्याप्त था, पहाड़ की छोटी-छोटी शाखाओं था, भयंकर जीवों को भी भय उत्पन्न करनेवाला था, काक, गीध, रीछ तथा शृगाल आदि के शब्दों से जिस के गर्त भर रहे थे. जहाँ अधजले मरदे पडे हए थे, जो भयंकर था, जहाँ की भूमि ऊँची-नीची थी, जो शिर की हड्डियों के समूह से कहीं-कहीं सफेद हो रहा था, जहाँ चर्बी की अत्यन्त सड़ी बास से तीक्ष्ण वायु बड़े वेग से बह रही थी, जो अट्टहास से युक्त घूमते हुए भयंकर राक्षस और वेतालों से युक्त था तथा जहाँ तृणों के समूह और लताओं के जाल से बड़े-बड़े वृक्ष परिणद्ध-व्याप्त थे। ऐसे विशाल श्मशान में एक साथ विहार करते हुए, तपरूपी धन के धारक तथा उज्ज्वल मन से युक्त धीरवीर पिता-पुत्र-दोनों मुनिराज आषाढ सुदी पूर्णिमा को अनायास ही आ पहुँचे ॥66-71॥ सब प्रकार को स्पृहा से रहित दोनों मुनिराज, जहाँ पत्तों के पड़ने से पानी प्रासुक हो गया था ऐसे उस श्मशान में एक वृक्ष के नीचे चार मास का उपवास लेकर विराजमान हो गये ॥72॥ वे दोनों मुनिराज कभी पर्यकासन से विराजमान रहते थे, कभी कायोत्सर्ग धारण करते थे, और कभी वीरासन आदि विविध आसनों से अवस्थित रहते थे। इस तरह उन्होने वर्षाकाल व्यतीत किया ॥73॥

तदनन्तर जिसमें समस्त मानव उद्योग-धन्धों से लग गये थे तथा जो प्रातःकाल के समान समस्त संसार को प्रकाशित करने में निपुण थी ऐसी शरद् ऋतु आयी ॥74 / उस समय आकाशांगण में कहीं-कहीं ऐसे सफेद मेघ दिखाई देते थे जो फूले हुए काश के फूलों के समान थे तथा मन्दमन्द हिल रहे थे ॥75॥ जिस प्रकार उत्सर्पिणी काल के दुःषमा-काल बीतनेपर भव्य जीवों के बन्धु श्रीजिनेन्द्रदेव सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार मेघों के आगमन से रहित आकाश में सूर्य सुशोभित होने लगा ॥76 / जिस प्रकार कुमुदों के बीच में तरुण राजहंस सुशोभित होता है उसी प्रकार ताराओं के समूह के बीच में चन्द्रमा सुशोभित होने लगा ॥77॥ रात्रि के समय चन्द्रमारूपी प्रणाली के मुख से निकली हुई क्षीरसागर के समान सफेद चांदनी से समस्त संसार व्याप्त हो गया ॥78॥ जिनके रेतीले किनारे तरंगों से चिह्नित थे, तथा जो क्रौंच सारस चकवा आदि पक्षियों के शब्द के बहा ने मानो परस्पर में वार्तालाप कर रही थीं ऐसी नदियाँ प्रसन्नता को प्राप्त हो गयी थीं ॥79॥ जिनपर भ्रमर चल रहे थे ऐसे कमलों के समूह तालाबों में इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो मिथ्यात्व रूपी मैल के समूह को छोड़ते हुए भव्य जीवों के समूह ही हों ॥80॥ भोगी मनुष्य, फूलों के समूह से सुन्दर ऊंचे-ऊँचे महलों के तल्लों से रात्रि के समय अपनी वल्लभाओं के साथ रमण करने लगे ॥81॥ जिन में मित्र तथा बन्धुजनों के समूह सम्मानित किये गये थे तथा जिन में महान् उत्सव की वृद्धि हो रही थी ऐसे वियुक्त स्त्री-पुरुषों के समागम होने लगे ॥82॥ कार्तिक मासकी पूर्णिमा व्यतीत होनेपर तपस्वीजन उन स्थानों में विहार करने लगे जिन में भगवान् के गर्भ जन्म आदि कल्याणक हुए थे तथा जहां लोग अनेक प्रकार को प्रभावना करने में उद्यत थे ॥83॥ अथानन्तर जिनका चातुर्मासोपवास का नियम पूर्ण हो गया था ऐसे वे दोनों मुनिराज आगमानुकूल गति से गमन करते हुए पारणा के निमित्त नगर में जाने के लिए उद्यत हुए ॥84॥ उसी समय एक व्याघ्री जो पूर्वभव में सुकोशलमुनि की माता सहदेदी थी उन्हें देखकर क्रोध से भर गयी, उसकी खून से लाल-लाल दिखनेवाली बिखरी जटाएं काँप रही थीं, उसका मुख दाढ़ों से भयंकर था, पीले-पीले नेत्र चमक रहे थे, उसकी गोल पूंछ मस्तक के ऊपर आकर लग रही थी, नखों के द्वारा वह पृथिवी को खोद रही थी, गम्भीर हुंकार कर रही थी, ऐसी जान पड़ती थी मानो शरीर को धारण करनेवाली मारी ही हो, उसकी लाल-लाल जिह्वा का अग्रभाग लपलपा रहा था, वह देदीप्यमान शरीर को धारण कर रही थी और मध्याह्न के सूर्य के समान जान पड़ती थी। बहुत देर तक क्रीड़ा करने के बाद उसने सुकोशलस्वामी को लक्ष्य कर ऊंची छलांग भरी ॥85-88॥ सुन्दर शोभा को धारण करनेवाले दोनों मुनिराज, उसे छलांग भरती देख 'यदि इस उपसर्ग से बचे तो आहार पानी ग्रहण करेंगे अन्यथा नहीं' इस प्रकार की सालम्ब प्रतिज्ञा लेकर निर्भय हो कायोत्सर्ग से खड़े हो गये ॥89॥ वह दयाहीन व्याघ्री सुकोशल मुनि के ऊपर पड़ी और नखों के द्वारा उनके मस्तक आदि अंगों को विदारती हुई पृथिवीपर आयी ॥90॥ उसने उनके समस्त शरीर को चीर डाला जिससे खून की धाराओं को छोड़ते हुए वे उस पहाड़ के समान जान पड़ते थे जिससे गेरू आदि धातुओं से

मिश्रित पानी के निर्झर झर रहे हों ॥11॥ तदनन्तर वह पापिन उनके सामने खड़ी होकर तथा नाना प्रकार की चेष्टाएँ कर उन्हें पैर की ओर से खा ने लगी ॥92॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मोह की चेष्टा तो देखो जहां माता ही प्रिय पुत्र के शरीर को खाती है ॥93॥ इस से बढ़कर और क्या कष्ट की बात होगी कि दूसरे जन्म से मोहित हो बान्धवजन ही अनर्थकारी शत्रुता को प्राप्त हो जाते हैं ॥94॥

तदनन्तर मेरुके समान स्थिर और शुक्ल ध्यान को धारण करनेवाले सुकोशल मुनि को शरीर छूट ने के पहले ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥95॥ सुर और असुरों ने इन्द्र के साथ आकर बड़े हर्ष से दिव्य पुष्पादि सम्पदा के द्वारा उनके शरीर को पूजा की ॥96॥ सुकोशल के पिता कीर्तिधर मुनिराज ने भी उस व्याघ्री को मधुर शब्दों से सम्बोधा जिससे संन्यास ग्रहण कर वह स्वर्ग गयी ॥97॥ तदनन्तर उसी समय कीर्तिधर मुनिराज को भी केवलज्ञान उत्पन्न हुआ सो महिमा को करनेवाले देवों की वही एक यात्रा पिता और पुत्र दोनों का केवलज्ञान महोत्सव करनेवाली हई॥९८॥ सर और असर केवलज्ञान को परम महिमा फैलाकर तथा दोनों केवलियों के चरणों को नमस्कार कर यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर गये ॥99॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जो पुरुष सुकोशलस्वामी के माहात्म्य को पढ़ता है वह उपसर्ग से रहित हो चिरकाल तक सुख से जीवित रहता है ॥100॥

अथानन्तर सुकोशल की स्त्री विचित्रमाला ने गर्भ का समय पूर्ण होनेपर सुन्दर लक्षणों से चिह्नित शरीर को धारण करनेवाला पुत्र उत्पन्न किया ॥101॥ चूंकि उस बालक के गर्भ में स्थित रहनेपर माता सुवर्ण के समान सुन्दर हो गयी थी इसलिए वह बालक हिरण्यगर्भ नाम को प्राप्त हुआ ॥102॥ आगे चलकर हिरण्यगर्भ ऐसा राजा हुआ कि उसने अपने गुणों के द्वारा भगवान् ऋषभदेव का समय ही मानो पुनः वापस लाया था। उसने राजा हरि की अमृतवती नाम की शुभ पुत्री के साथ विवाह किया ॥103॥ राजा हिरण्यगर्भ समस्त मित्र तथा बान्धवजनों से सहित था, सर्व शास्त्रों का पारगामी था, अखण्ड धन का स्वामी था, श्रीमान् था, सुमेरु पर्वत के समान सुन्दर था, और उदार हृदय था। वह उत्कृष्ट भोगों को भोगता हुआ समय बिताता था कि एक दिन उसने अपने भ्रमर के समान काले केशों के बीच एक सफ़ेद बाल देखा ॥104-105॥ दर्पण के मध्य में स्थित उस सफेद बाल को देखकर वह ऐसा शोक को प्राप्त हुआ मानो अपने आप को बुलाने के लिए यम का दूत ही आ पहुँचा हो ॥१०६॥ वह विचार करने लगा कि हाय बड़े कष्ट की बात है कि इस समय शक्ति और कान्ति को नष्ट करनेवाली इस वृद्धावस्था के द्वारा मेरे अंग बलपूर्वक हरे जा रहे हैं ॥107॥ मेरा यह शरीर चन्दन के वृक्ष के समान सुन्दर है सो अब वृद्धावस्थारूपी अग्नि से जलकर अंगार के समान हो जावेगा ॥108॥ जो वृद्धावस्था रोगरूपी छिद्र की प्रतीक्षा करती हुई चिरकाल से स्थित थी अब वह पिशाची की नाईं प्रवेश कर मेरे शरीर को बाधा पहुँचावेगी ॥109॥ ग्रहण करने में उत्सुक जो मृत्यु व्याघ्र की तरह चिरकाल से बद्धक्रम होकर स्थित था अब वह हठात् मेरे शरीर का भक्षण करेगा ॥110॥ वे श्रेष्ठ तरुण धन्य हैं जो इस कर्मभूमि को पाकर तथा व्रतरूपी नावपर सवार हो संसाररूपी सागर से पार हो चु के हैं ॥111॥ ऐसा विचारकर उसने अमृतवती के पुत्र नघुष को राज्य-सिंहासनपर बैठाकर विमल योगी के समीप दीक्षा धारण कर ली ॥112॥ चूँकि उस पुत्र के गर्भ में स्थित रहते समय पृथिवीपर अशुभ की घोषणा नहीं हुई थी **अर्थ**ात् जबसे वह गर्भ में आया था तभी से अशुभ शब्द नहीं सुनाई पड़ा था इसलिए वह 'नघुष' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने अपने गुणों से समस्त संसार को नम्रीभूत कर दिया था ॥113॥

अथानन्तर किसी समय राजा नधुष अपनी सिंहि का नामक रानी को नगर में रखकर प्रतिकूल शत्रुओं को वश करने के लिए उत्तर दिशा की ओर गया ॥114॥ इधर दक्षिण दिशा के राजा नघुष को दूरवर्ती जानकर उसकी अयोध्या नगरी को हथिया ने के लिए आ पहुँचे। वे राजा बहुत भारी सेना से सहित थे ॥115॥ परन्तु अत्यन्त प्रतापिनी सिंहि का रानी ने उन सब को युद्ध में जीत लिया। इतना ही नहीं वह एक विश्वासपात्र राजा को नगर की रक्षा के लिए नियुक्त कर युद्ध में जीते हुए सामन्तों के साथ शेष राजाओं को जीत ने के लिए दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ी। शस्त्र और शास्त्र दोनों में ही उसने अच्छा परिश्रम किया था ॥116-117॥ वह प्रतिकूल सामन्तों को अपने प्रताप से ही जीतकर विजयनाद से दिशाओं को पूर्ण करती हुई नगरी में वापस आ गयी ॥118॥ उधर जब राजा नघुष उत्तर दिशा को वश कर वापस आया तब स्त्री के पराक्रम की बात सुनकर वह परम क्रोध को प्राप्त हुआ ॥119॥ अखण्डशील को धारण करनेवाली कुलांगना की ऐसी धृष्टता नहीं हो सकती ऐसा निश्चय कर वह सिंहि का से विरक्त हो गया ॥120॥ वह उत्तम चेष्टाओं से सहित थी फिर भी राजा ने उसे महादेवी के पद से च्युत कर दिया। इस तरह महादरिद्रता को प्राप्त हो वह कुछ समय तक बड़े कष्ट से रही ॥121॥

अथानन्तर किसी समय राजा को ऐसा महान् दाहज्वर हुआ कि जो समस्त वैद्यों के द्वारा प्रयुक्त ओषधियों से भी अच्छा नहीं हो सका ॥

122॥ जब सिंहि का को इस बात का पता चला तब वह शोक से बहुत ही आकुल हुई। उसी समय उसने अपने आप को निर्दोष सिद्ध करने के लिए यह काम किया ॥123॥ कि उसने समस्त बन्धुजनों, सामन्तों और प्रजा को बुलाकर अपने करपुट में पुरोहित के द्वारा दिया हुआ जल धारण किया और कहा कि यदि मैंने अपने चित्त में किसी दूसरे भर्ता को स्थान नहीं दिया हो तो इस जल से सींचा हुआ भर्ता दाहज्वर से रहित हो जावे ॥124-125॥ तदनन्तर सिंहि का रानी के हाथ में स्थित जल का एक छींटा ही राजापर सींचा गया था कि वह इतना शीतल हो गया मानो बर्फ में ही डबा दिया गया हो। शीत के कारण उसकी दन्तावली वीणा के समान शब्द करने लगी ॥126॥ उसी समय 'साधु'-'साधु' शब्द से आकाश भर गया औ अदृष्टजनों के द्वारा छोड़े हुए फूलों के समूह बरस ने लगे ॥127॥ इस प्रकार राजा नघुष ने सिंहि का रानी को शीलसम्पन्न जानकर फिर से उसे महादेवी पदपर अधिष्ठित किया तथा उसकी बहुत भारी पुजा को ॥128॥ शत्रुरहित होकर उसने चिरकाल तक उसके साथ भोगों का अनुभव किया और अपने पूर्वपुरुषों के द्वारा आचारित समस्त कार्य किये। उसकी यह विशेषता थी कि भोगरत रहनेपर भी वह मन में सदा भोगों से निःस्पृह रहता था ॥129॥ अन्त में वह धीरवोर सिंहिकादेवी से उत्पन्न पुत्र को राज्य देकर अपने पिता के द्वारा सेवित मार्ग का अनुसरण करने लगा **अर्थ**ात् पिता के समान उसने जिनदीक्षा धारण कर ली ॥130॥

राजा नघुष समस्त शत्रुओं को वश कर ले ने के कारण सुदास कहलाता था। इसलिए उसका पुत्र संसार में सौदास ( सुदासस्यापत्यं पुमान् सौदासः) नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥131॥ प्रत्येक चार मास समाप्त होनेपर जब अष्टाह्निका के आठ दिन आते थे तब उसके गोत्र में कोई भी मांस नहीं खाता था भले ही उसका शरीर मांस से ही क्यों न वृद्धिंगत हुआ हो ॥132॥ किन्तु इस राजा सौदास को किसी अशुभ कर्म के उदय से इन्हीं दिनों में मांस खा ने की इच्छा उत्पन्न हुई ॥133॥ तब उसने रसोइया को बुलाकर एकान्त में कहा कि हे भद्र ! आज मेरे मांस खा ने की इच्छा उत्पन्न हुई है ॥134॥ रसोइया ने उत्तर दिया कि देव ! आप यह जानते हैं कि इन दिनों में समस्त पृथ्वी में बड़ी समृद्धि के साथ जिनपूजा होती है तथा जीवों के मार ने की मनाही है ॥135॥ यह सुन राजा ने रसोइया से कहा कि यदि आज मैं मांस नहीं खाता हूँ तो मर जाऊंगा। ऐसा निश्चय कर जो उचित हो सो करो। बात करने से क्या लाभ है ? ॥136॥ राजा की ऐसी दशा जानकर रसोइया नगर के बाहर गया। वहाँ उसने उसी दिन परिखा में छोड़ा हुआ एक मृतक बालक देखा ॥137॥ उसे वस्त्र से लपेटकर वह ले आया और स्वादिष्ट वस्तुओं से पकाकर खा ने के लिए राजा को दिया ॥138॥ महामांस ( नरमांस ) के रसास्वाद से जिसका मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था ऐसा राजा उसे खाकर जब उठा तब उसने आश्चर्यचकित हो रसोइया से कहा कि भद्र ! जिस के इस अत्यन्त मधुर रस का मैंने पहले कभी स्वाद नहीं लिया ऐसा यह मांस तुमने कहाँ से प्राप्त किया है ? ॥139-140॥ इसके उत्तर में रसोइया ने अभयदान की याचना कर सब बात ज्योंकी-त्यों बतला दी। तब राजा ने कहा कि सदा ऐसा ही किया जाये ॥141॥

अथानन्तर रसोइया ने छोटे-छोटे बालकों के लिए लड्डू देना शुरू किया, उसके लोभ से बालक प्रतिदिन उसके पास आने लगे ॥142॥ लड्डू लेकर जब बालक जाने लगते तब उनमें जो पीछे रह जाता था उसे मारकर तथा पकाकर वह निरन्तर राजा कोदेने लगा ॥143॥ जब प्रतिदिन नगर के बालक कम होने लगे तब लोगों ने इसका निश्चय किया और रसोइया के साथसाथ राजा को नगर से निकाल दिया ॥144॥ सौदासकी कनकाभा स्त्री से एक सिंहरथ नाम का पुत्र हुआ था। नगरवासियों ने उसे ही राज्यपदपर आरूढ़ किया तथा सब राजाओं ने उसे प्रणाम किया ॥145॥ राजा सौदास नरमांस में इतना आसक्त हो गया कि उसने अपने रसोइया को ही खा लिया। अन्त में वह छोड़े हुए मुर्दो को खाता हुआ दुःखी हो पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा ॥146॥ जिस प्रकार सिंह का आहार मांस है उसी प्रकार इसका भी आहार मांस हो गया था। इसलिए यह संसार में सिंहसौदास के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥147॥

अथानन्तर वह दक्षिण देश में जाकर एक दिगम्बर मुनि के पास पहुंचा और उनसे धर्म श्रवण कर बड़ा भारी अणव्रतों का धारी हो गया ॥148॥ तदनन्तर उसी समय महापर नगर का राजा मर गया था। उसके कोई सन्तान नहीं थी। सो लोगों ने निश्चय किया कि पट्टबन्ध हाथी छोड़ा जावे। वह जिसे कन्धेपर बैठाकर लावे उसे ही राजा बना दिया जाये। निश्चयानुसार पट्टबन्ध हाथी छोड़ा गया और वह सिंहसौदास को कन्धेपर बैठाकर नगर में ले गया। फलस्वरूप उसे राज्य प्राप्त हो गया ॥149॥ कुछ समय बाद जब सौदास बलिष्ठ हो गया तब उसने नमस्कार करने के लिए पुत्र के पास दूत भेजा। इसके उत्तर में पुत्र ने निर्भय होकर लिख दिया कि चूंकि तुम निन्दित आचरण करनेवाले हो अतः तुम्हें नमस्कार नहीं करूंगा ॥150॥ तदनन्तर सौदास पुत्र के ऊपर चढ़ाई करने के लिए चला सो 'कहीं यह खा न ले' इस भय से समस्त देशवासी लोगों ने भागना शुरू कर दिया ॥151॥ अन्त में सौदास ने युद्ध में पुत्र को जीतकर उसे ही राजा बना दिया और स्वयं

कृतकृत्य हो वह महावैराग्य से युक्त होता हुआ तपोवन में चला गया ॥152॥
तदनन्तर सिंहरथ के ब्रह्मरथ, ब्रह्मरथ के चतुर्मुख, चतुर्मुख के हेमरथ, हेमरथ के शतरथ, शतरथ के मान्धाता, मान्धाता के वीरसेन, वीरसेन के प्रतिमन्यु, प्रतिमन्यु के दीप्ति से सूर्य की तुलना करनेवाला कमलबन्धु, कमलबन्धु के प्रताप से सूर्य के समान तथा समस्त मर्यादा को जाननेवाला रविमन्यु, रविमन्यु के वसन्ततिलक, वसन्ततिलक के कुबेरदत्त, कुबेरदत्त के कीर्तिमान् कुन्थुभक्ति, कुन्थुभक्ति के शरभरथ, शरभरथ के द्विरदरथ, द्विरदरथ के सिंहदमन, सिंहदमन के हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपु के पुंजस्थल, पुंजस्थल के ककुत्थ और ककुत्थ के अतिशय पराक्रमी रघु पुत्र हुआ ॥153-158॥ इस प्रकार इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए राजाओं का वर्णन किया। इन में से अनेक राजा दिगम्बर व्रत धारण कर मोक्ष को प्राप्त हुए ॥159॥ तदनन्तर राजा रघु के अयोध्या में अनरण्य नाम का ऐसा पुत्र हुआ कि जिसने लोगों को बसाकर देश को अनरण्य **अर्थ**ात् वनों से रहित कर दिया ॥160॥ राजा अनरण्य की पृथिवीमती नाम की महादेवी थी जो महागुणों से युक्त थी, कान्ति के समूह के मध्य में स्थित थी और समस्त इन्द्रियों के सुख धारण करनेवाली थी ॥161॥ उसके उत्तम लक्षणों के धारक दो पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम अनन्तरथ और छोटे पुत्र का नाम दशरथ था ॥162॥ माहिष्मती के राजा सहस्ररश्मि की अनरण्य के साथ उत्तम मित्रता थी ॥१६३॥ परस्पर के आने-जाने से जिनका प्रेम वृद्धि को प्राप्त हुआ था ऐसे दोनों राजा अपने-अपने घर सौधर्म और ऐशानेन्द्र के समान रहते थे ॥164॥
अथानन्तर रावण से पराजित होकर राजा सहस्ररश्मि प्रतिबोध को प्राप्त हो गया जिससे उत्तम संवेग को धारण करते हुए उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥165॥ दीक्षा धारण करने के पहले उसने राजा अनरण्य के पास दूत भेजा था सो उससे सब समाचार जानकर राजा अनरण्य, जिसे उत्पन्न हुए एक माह ही हुआ था ऐसे दशरथ के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर अभयसेन नामक निर्ग्रन्थ महात्मा के समीप ज्येष्ठ पुत्र अनन्तरथ के साथ अत्यन्त निःस्पृह हो दीक्षित हो गया ॥166-167॥ अनरण्य मुनि तो मोक्ष चले गये और अनन्तरथ मुनि सर्व प्रकार के परिग्रह से रहित हो यथायोग्य पृथिवीपर विहार करने लगे ॥168॥ अनन्तरथ मुनि अत्यन्त दुःसह बाईस परीषहों से क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए थे इसलिए पृथिवीपर 'अनन्तवीर्य' इस नाम को प्राप्त हुए ॥169॥
अथानन्तर राजा दशरथ ने नवयौवन से सुशोभित तथा नाना प्रकार के फूलों से सुभूषित पहाड़ के शिखर के समान ऊँचा शरीर प्राप्त किया ॥170॥ तदनन्तर उसने दर्भस्थल नगर के स्वामी तथा सुन्दर विभ्रमों को धारण करनेवाले राजा सुकोशल की अमृतप्रभावा नाम की उत्तम स्त्री से उत्पन्न अपराजिता नाम की पुत्री के साथ विवाह किया। अपराजिता इतनी उत्तम स्त्री थी कि स्त्रियों के योग्य गुणों के द्वारा रति भी उसे पराजित नहीं कर सकी थी ॥171-172॥ तदनन्तर कमलसंकूल नाम का एक महासुन्दर नगर था। उस में सुबन्धतिलक नाम का राजा राज्य था। उसकी मित्रा नाम की स्त्री थी। उन दोनों के कैकयी नाम की गुणवती पुत्री थी। वह इतनी सुन्दरी थी कि उसके नेत्ररूपी नील कमलों की माला से मस्तक मालारूप हो गया चूंकि यह मित्रा नामक माता से उत्पन्न हुई थी, उत्तम चेष्टाओं से युक्त थी, तथा रूपवती थी इसलिए लोक में सुमित्रा इस नाम से भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी। राजा दशरथ ने उसके साथ भी विवाह किया था ॥175॥ इन के सिवाय लावण्यरूपी सम्पदा के द्वारा लक्ष्मी को भी लज्जा उत्पन्न करनेवाली सुप्रभा नाम की एक अन्य राजपुत्रो के साथ भी उन्होने विवाह किया था ॥176॥ राजा दशरथ ने सम्यग्दर्शन तथा परम वैभव से युक्त राज्य इन दोनों वस्तुओं को प्राप्त था। सो प्रथम जो सम्यग्दर्शन है उसे वह रत्न समझता था और अन्तिम जो राज्य था उसे तृण मानता था ॥177॥ इस प्रकार मानने का कारण यह है कि यदि राज्य का त्याग नहीं किया जाये तो उससे अधोगति होती है और सम्यग्दर्शन के सुयोग से निःसन्देह ऊध्वंगति होती है ॥178॥ भरतादि राजाओं ने जो पहले जिनेन्द्र भगवान् के उत्तम मन्दिर बनवाये थे वे यदि कहीं भग्नावस्था को प्राप्त हुए थे तो उन रमणीय मन्दिरों को राजा दशरथ ने मरम्मत कराकर पुनः नवीनता प्राप्त करायी थी ॥179॥ यही नहीं, उसने स्वयं भी ऐसे जिनमन्दिर बनवाये थे जिनकीकि इन्द्र स्वयं स्तुति करता था तथा रत्नों के समूह से जिनकीविशाल कान्ति स्फुरायमान हो रही थी ॥180॥
गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! अन्य भवों में जो धर्म का संचय करते हैं वे देवों की अत्यन्त रमणीय लक्ष्मी प्राप्त कर संसार में पुनः राजा दशरथ के समान भाग्यशालो जीव होते हैं और सूर्य के समान कान्ति को धारण करते हुए समृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥181॥
इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरित में सुकोशल स्वामी के माहात्म्य से युक्त राजा दशरथ की उत्पत्ति का कथन करनेवाला बाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥22॥

## विभीषण का व्यसन

तेईसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर किसी समय विशाल तेज के धारक तथा इन्द्र के समान शोभा से सम्पन्न राजा दशरथ जिनराज की कथा करते हुए सभा में सुख से बैठे थे कि सहसा शरीर के तेज से प्रकाश उत्पन्न करते हुए शिष्ट पुरुष तथा उत्तम बुद्धि के धारक नारदजी वहां आ पहुँचे ॥1-2॥ राजा ने उठकर उनका सम्मान किया तथा सुखदायक आसनपर बैठाया। नारद ने राजा को आशीर्वाद दिया। तदनन्तर बद्धिमान राजा ने कुशल-समाचार प्रछा ॥3॥ जब नारद कशल-समाचार कह च के तब राजा ने क्षेम **अर्थ**ात् कल्याणरूप हो? यह पूछा। इसके उत्तर में 'राजन् ! सब कल्याण रूप है' यह उत्तर दिया ॥4॥ इतनी वार्ता हो चुक ने के बाद राजा दशरथ ने फिर पूछा कि हे भगवन् ! आप किस स्थान से आ रहे हैं ? और कहाँ आपका विहार हो रहा है ? आप ने क्या देखा क्या सुना सो कहिए ? ऐसा कोई देश नहीं जहाँ आप न गये हों ॥5॥

तदनन्तर मन में स्थित जिनेन्द्रदेव सम्बन्धी वर्णन से जिन्हें आनन्द उत्पन्न हो रहा था तथा इसी कारण जो उन्नत रोमांच धारण कर रहे थे ऐसे नारदजी कहने लगे कि हे राजन् ! उत्तम जन जिसकी सदा इच्छा करते हैं तथा जो जिनमन्दिरों के आधारभूत मेरु, गजदन्त, विजयाद्ध आदि पर्वतों से सुशोभित है ऐसे विदेह क्षेत्र में गया था ॥6-7॥ वहाँ नाना रत्नों के विशाल तेज से युक्त पुण्डरीकिणी नगरी में मैंने सीमन्धर स्वामी का दीक्षा कल्याणक देखा ॥8॥ पताकाओं और छत्रों से सुशोभित रंग-बिरंगे विमानों, तथा विविध प्रकार के वाहनों से व्याप्त देवों का आगमन देखा ॥9॥ मैंने वहाँ सुना था कि जिस प्रकार अपने इस भरत क्षेत्र में इन्हों ने मुनिसुव्रतनाथ भगवान् का सुमेरु पर्वतपर अभिषेक किया था वैसा ही वहाँ उन भगवान का इन्हों ने सुमेरु पर्वतपर अभिषेक किया था ॥10॥ मुनिसुव्रत भगवान् का जैसा बाँचा गया चरित्र यहाँ सुना है वैसा ही वहाँ उनका चरित्र अपनी आँखों से देखा है ॥11॥ जो नाना प्रकार के रत्नों की प्रभा से व्याप्त हैं, ऊँचे हैं, विशाल हैं तथा जिन में निरन्तर पूजा होती रहती है ऐसे वहाँ के जिन-मन्दिर देखे हैं ॥12॥ हे राजन् ! वहां नन्दनवन में जो अत्यन्त मनोहर चैत्यालय हैं वे भी देखे हैं। उन मन्दिरों में अनेक प्रकार के मणियों के बेलबूटे निकाले गये हैं तथा उनकी कुर्सियाँ सुवर्णनिर्मित हैं ॥13॥ सो सुवर्णमय खम्भों से युक्त हैं, जिन में नाना प्रकार की किरणें देदीप्यमान हो रही हैं, जो सूर्य-विमान के समान जान पड़ते हैं, जो हार तथा तोरणों से मनोहर हैं, जो रत्नमयी मालाओं से समृद्ध हैं, जिनकीभूमियों में बड़ी विस्तृत वेदिकाएँ बनी हुई हैं, जिनकीवैदूर्यमणि निर्मित उत्तम दीवालें हाथी, सिंह आदि के चित्रों से अलंकृत हैं और जिनके भीतरी भाग संगीत करनेवाली दिव्य स्त्रियों से भरे हुए हैं, ऐसे देवारण्य के चैत्यालयों में जो जिनप्रतिमाएं हैं उन सब के लिए मैंने नमस्कार किया ॥14-16॥ आकृत्रिम प्रतिमाओं की प्रभा के विकास से युक्त जो मेरु पर्वत है उसकी प्रदक्षिणा देकर तथा मेघ-पटल को भेदन कर बहुत ऊंचे आकाश में गया ॥17॥ तथा कुलाचलों के शिखरोंपर जो महादेदीप्यमान अनेक जिनचैत्यालय हैं उनकी वन्दना की है॥१८॥ हे राजन! उन समस्त चैत्यालयों में जिनेन्द्र भगवान की महादेदीप्यमान अकृत्रिम प्रतिमाएं हैं मैं उन सब को वन्दना करता हूँ ॥19॥ नारद के इस प्रकार कहनेपर 'देवाधिदेवों को नमस्कार हो' शब्दों का उच्चारण करते हुए राजा दशरथ ने दोनों हाथ जोड़े तथा शिर नम्रीभूत किया ॥20॥

अथानन्तर संकेत द्वारा नारद की प्रेरणा पाकर राजा दशरथ ने प्रतिहारी के द्वारा आदर के साथ सब लोगों को वहाँ से अलग कर दिया ॥21॥ तदनन्तर जब एकान्त हो गया तब नारद ने कोसलाधिपति राजा दशरथ से कहा कि हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनो मैं तुम्हारे लिए एक उत्तम बात कहता हूँ ॥22॥ मैं बड़ी उत्सुकता के साथ वन्दना करने के लिए त्रिकूटाचल के शिखरपर गया था सो मैंने वहां अत्यन्त मनोहर शान्तिनाथ भगवान् के जिनालय की वन्दना की ॥23॥ तदनन्तर आपके पुण्य के प्रभाव से मैंने लंकापति रावण के विभीषणादि मन्त्रियों का एक निश्चय सुना है ॥24॥ वहां सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी ने रावण को बताया है कि राजा दशरथ का पुत्र तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा ॥25॥ इसी प्रकार राजा जनक की पुत्री भी इसमें कारणप ने को प्राप्त होगी। यह सुनकर जिसकी आत्मा विषाद से भर रही थी ऐसे विभीषण ने निश्चय किया कि जबतक राजा दशरथ और जनक के सन्तान होती है उसके पहले ही मैं इन्हें मारे डालता हूँ ॥26-27॥ यह निश्चय कर वह तुम लोगों की खोज के लिए चिरकाल तक पृथ्वी में घूमता रहा पर पता नहीं चला सका। तदनन्तर इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले उसके गुप्तचर ने स्थान, रूप आदि लक्षणों से तुम दोनों का उसे परिचय कराया है ॥28॥ मुनि होने के कारण मेरा विश्वास कर उसने मुझ से पूछा कि हे मु ने ! पृथ्वीपर कोई दशरथ तथा जनक नाम के राजा हैं सो उन्हें तुम जानते हो

॥29॥ इस प्रश्न के बदले मैंने उत्तर दिया कि खोजकर बतलाता हूँ। हे नरपुंगव ! मैं उसके अभिप्राय को अत्यन्त कठोर देखता हूँ ॥30॥ इसलिए हे राजन् ! यह विभीषण जबतक तुम्हारे विषय में कुछ नहीं कर लेता है तबतक तुम अपने आप को छिपाकर कहीं गुप्तरूप से रहने लगो ॥31॥ सम्यग्दर्शन से युक्त तथा गुरुओं की पूजा करनेवाले पुरुषोंपर मेरी समान प्रीति रहती है और तुम्हारे जैसे पुरुषोंपर विशेषरूप से विद्यमान है ॥32॥ तुम जैसा उचित समझो सो करो। तुम्हारा भला हो / अब मैं यह वार्ता कहने के लिए शीघ्र ही राजा जनक के पास जाता हूँ ॥33॥

तदनन्तर जिसे राजा दशरथ ने नमस्कार किया था ऐसे नारद मुनि इस प्रकार कहकर तथा आकाश में उड़कर बड़े वेग से मिथिला की ओर चले गये ॥34॥ वहाँ जाकर राजा जनक के लिए भी उन्होने यह सब समाचार बतलाया सो ठीक ही है क्योंकि भव्य जीव उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारे थे ॥35॥ नारद मुनि के चले जानेपर जिस के मन में मरण को आशंका उत्पन्न हो गयी थी ऐसे राजा दशरथ ने समुद्रहृदय नामक मन्त्री को बुलवाया ॥36॥ वक्ताओं में श्रेष्ठ तथा स्वामिभक्ति में तत्पर मन्त्री ने राजा के मुख से महाभय को निकटस्थल सुन कहा ॥37॥ कि हे नाथ! प्राणी जितना कुछ कार्य करते हैं वह जीवन के लिए ही करते हैं। आप ही कहिए, जीवन से रहित प्राणी के लिए यदि तीन लोक का राज्य भी मिल जाये तो किस काम का है ॥38॥ इसलिए जबतक मैं शत्रुओं के नाश का प्रयत्न करता हूँ तबतक तुम किसी की पहचान में रूप न आ सके इस प्रकार वेष बदलकर पृथ्वी में विहार करो ॥39॥ मन्त्री के ऐसा कहनेपर राजा दशरथ उसी समुद्रहृदय मन्त्री के लिए खजाना, देश, नगर तथा प्रजा को सौंपकर नगर से बाहर निकल गया सो ठीक ही है क्योंकि वह मन्त्री राजा का अच्छी तरह परीक्षा किया हुआ था ॥40॥ राजा के चले जानेपर मन्त्री ने राजा दशरथ के शरीर का एक पुतला बनवाया। वह पुतला मूल शरीर से इतना मिलता-जुलता था कि केवल एक चेतना को अपेक्षा हो भिन्न जान पड़ता था ॥41॥ उसके भीतर लाख आदि का रस भराकर रुधिर की रचना की गयी थी तथा सचमुच के प्राणी के शरीर में जैसी कोमलता होती है वैसी ही कोमलता उस पुतले में रची गयी थी ॥42॥ राजा का वह पुतला पहले के समान ही समस्त परिकर के साथ महल के सातवें खण्ड में उत्तम आसनपर विराजमान किया गया था ॥43॥ वह मन्त्री तथा पुतला को बनानेवाला चित्रकार ये दोनों ही राजा को कृत्रिम राजा समझते थे और बा की सब लोग उसे सचमुच का हो राजा समझते थे। यही नहीं उन दोनों को भी देखते हुए जब कभी भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती थी ॥44॥

उधर यही हाल राजा जनक का भी किया गया सो ठीक ही है क्योंकि विद्वानों की बुद्धियां प्रायः ऊपर-ऊपर ही चलती हैं **अर्थ**ात् एक-से-एक बढ़कर होती हैं ॥45॥ जिस प्रकार वर्षाऋतु के समय चन्द्रमा और सूर्य छिपे-छिपे रहते हैं उसी प्रकार संसार की स्थिति के जानकार दोनों राजा भी आपत्ति के समय पृथिवीपर छिपे-छिपे रहने लगे ॥46॥ गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे मगधाधिपते ! जो राजा पहले बडे-बडे महलों में रहते थे, उदार भोग से सम्पन्न थे। उत्तमोत्तम स्त्रियां जिनकीसेवा करती थीं वे ही राजा अन्य मनुष्यों के समान असहाय हो पृथिवीपर पैरों से पैदल भटकते फिरते थे, सो इस संसार की दशा को धिक्कार हो ॥47-48॥ ऐसा निश्चय कर जो प्राणियों के लिए अभयदान देता है, सत्पुरुषों के अग्रभाग में स्थित रहनेवाले उस पुरुष ने क्या नहीं दिया ? अर्थात् सब कुछ दिया ॥49॥ गुप्तचरों के समूह ने जहां-जहाँ उनका सद्भाव जाना वहाँ-वहाँ विभीषण ने उन्हें स्वयं देखा तथा बहुत- से वधक भेजे ॥50॥ जिनके हाथों में शस्त्र विद्यमान थे, जो स्वभाव से क्रूर थे, जिनके शरीर नेत्रों से दिखाई नहीं देते थे तथा जिनके नेत्र अत्यन्त चंचल थे, ऐसे वधक रात-दिन नगरी में घूम ने लगे ॥51॥ हीन शक्ति के धारक वे वधक राजमहल में प्रवेश करने के लिए समर्थ नहीं हो सके इसलिए जब उन्हें अपने कार्य में विलम्ब हुआ तब विभीषण स्वयं ही आया ॥52॥ संगीत के शब्द से उसने दशरथ का पता लगा लिया, जिससे निःसन्देह तथा निर्भय हो राजमहल में प्रवेश किया। वहां जाकर उसने अन्तःपुर के बीच में स्थित राजा दशरथ को स्पष्ट रूप से देखा ॥53॥ उसी समय उसके द्वारा प्रेरित विद्युद्विलसित नामक विद्याधर ने दशरथ का शिर काटकर बड़े हर्ष से अपने स्वामी-विभीषण को दिखाया ॥54॥ तदनन्तर जिसने अन्तःपुर के रुदन का शब्द सुना था ऐसे पर के मदन का शब्द सना था ऐसे विभीषण ने उस कटे हए शिर को समुद्रम गिरा दिया और राजा जनक के विषय में भी ऐसी ही निर्दय चेष्टा की ॥55॥ तदनन्तर भाई के स्नेह से भरा विभीषण अपने आप को कृतकृत्य मानकर हर्षित होता हुआ लंका चला गया ॥56॥ दशरथ का जो परिजन था उसने पहले बहुत ही विलाप किया पर अन्त में जब उसे यह विदित हुआ कि वह पुतला था तब आश्चर्य करता हुआ धैर्य को प्राप्त हुआ ॥57॥ विभीषण ने भी नगरी में जाकर अशुभ कर्म को शान्ति के लिए बड़े उत्सव के साथ दान-पूजा आदि शुभ कर्म किये ॥58॥

तदनन्तर किसी समय जब उसका चित्त शान्त हुआ तब कर्मों की इस विचित्रता से पश्चात्ताप करता हुआ इस प्रकार विचार करने लगा कि

॥59॥ मिथ्या भय से मैंने उन बेचारे भूमिगोचरियों को व्यर्थ ही मारा क्योंकि सर्प आशीविष के शरीर से उत्पन्न होनेपर भी क्या गरुड़ के ऊपर प्रहार करने के लिए समर्थ हो सकता है ? **अर्थ**ात् नहीं ॥60॥ अत्यन्त तुच्छ पराक्रम को धारण करनेवाला भूमिगोचरी कहाँ और इन्द्र के समान पराक्रम को धारण करनेवाला रावण कहाँ ? शं का से सहित तथा मद से धीरे-धीरे गमन करनेवाला हाथी कहां और वायु के समान वेगशाली सिंह कहाँ ? ॥61॥ जिस पुरुष को जहां जिससे जिस प्रकार जितना और जो सुख अथवा दुःख मिलना है कर्मों के वशीभूत हुए उस पुरुष को उससे उस प्रकार उतना और वह सुख अथवा दुःख अवश्य ही प्राप्त होता है ॥62॥ यदि कोई अच्छी तरह निमित्त को जानता है तो वह अपनी आत्मा का कल्याण क्यों नहीं करता ? जिससे कि इस लोक में तथा आगे चलकर शरीर का त्याग मैंने जो उन दो राजाओं का प्राणघात किया है उससे जान पड़ता है कि मेरा विवेक निमित्तज्ञानी के द्वारा अत्यन्त मूढ़ता को प्राप्त हो गया था। सो ठीक ही है क्योंकि होन बुद्धि मनुष्य दुःशिक्षित मनुष्यों की प्रेरणा से अकार्य में प्रवृत्ति करने ही लगते हैं ॥64॥ यह लंकानगरी पातालतल को भेदन करनेवाले इस समुद्र के मध्य में स्थित है तथा देवों को भी भय उत्पन्न करने में समर्थ है फिर भूमिगोचरियों के गम्य कैसे की हो सकती है ? ॥65॥ 'मैं ने जो यह कार्य किया है वह सर्वथा मेरे योग्य नहीं है अब आगे कभी भी ऐसा अविचारपूर्ण कार्य नहीं करूंगा' ऐसा विचारकर सूर्य के समान उत्तम कान्ति से युक्त विभीषण अपने महल में क्रीड़ा करने लगा ॥66॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में विभीषण के व्यसन का वर्णन करनेवाला तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ।

## केकया को वरदान

चौबीसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! प्राण-रक्षा के लिए भ्रमण करते समय राजा दशरथ का जो आश्चर्यकारी वृत्तान्त हुआ वह मैं तेरे लिए कहता हूँ सो सुन / यहाँ से उत्तर दिशा में पर्वत के समान ऊंचे कोट से सुशोभित कौतुकमंगल नाम का नगर है ॥1-2॥ वहाँ सार्थक नाम को धारण करनेवाला शुभमति नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पृथुश्री नाम की स्त्री थी जो कि स्त्रियों के योग्य गुणरूपी आभूषण से विभूषित थी ॥3॥ उन दोनों के केकया नाम की पुत्री और द्रोणमेघ का नाम का पुत्र ये दो सन्तानें हुईं। ये दोनों ही अपने अत्यन्त निर्मल गुणों के द्वारा आकाश तथा पृथिवी के अन्तराल को व्याप्त कर स्थित थे ॥4॥ उनमें जिस के सवं अंग सुन्दर थे, जो उत्तम लक्षणों को धारण करनेवाली तथा समस्त कलाओं की पारगामिनी थी, ऐसी केकया नाम की पुत्री अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥5॥ अंगहाराश्रय, अभिनयाश्रय और व्यायामिक के भेद से नृत्य के तीन भेद हैं तथा इन के अन्य अनेक अवान्तर भेद हैं सो वह इन सब को जानती थी ॥6॥ वह उस संगीत को अच्छी तरह जानती थी जो कण्ठ, शिर और उरस्थल इन तीन स्थानों से अभिव्यक्त होता था, तथा नीचे लिखे सात स्वरों में समवेत रहता था ॥7॥ षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहलाते हैं ॥8॥ जो द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीन लयों से सहित था, तथा अस्र और चतुरस्र इन ताल की दो योनियों को धारण करता था ॥9॥ स्थायी, संचारी, आरोही और अवरोही इन चार प्रकार के वर्णो से सहित होने के कारण जो चार प्रकार के पदों से स्थित था॥१०॥ प्रातिपदिक, तिङन्त, उपसर्ग और निपातों में संस्कार को प्राप्त संस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी यह तीन प्रकार की भाषा जिसमें स्थित थी ॥11॥ धैवती, आर्षभी, षड्ज-षड्जा, उदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी और षड्जमध्यमा ये आठ जातियां हैं अथवा गान्धारोदीच्या, मध्यमपंचमी, गान्धारपंचमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कैशिकी ये दश जातियां हैं। सो जो संगीत इन आठ अथवा दश जातियों से युक्त था तथा इन्हीं और आगे कहे जानेवाले तेरह अलंकारों से सहित था ॥12-15॥ प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पद के अलंकार हैं ॥16॥ निवृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, खोलित, तार-मन्द्र और प्रसन्न ये छह संचारी पद के अलंकार हैं ॥17॥ आरोही पद का प्रसन्नादि नाम का एक ही अलंकार है और अवरोही पद के प्रसन्नान्त तथा कुहर ये दो अलंकार हैं। इस प्रकार तेरह अलंकार हैं सो इन सब लक्षणों से सहित उत्तम संगीत को वह अच्छी तरह जानती थी ॥18-19॥ तन्त्री **अर्थ**ात् वीणा से उत्पन्न होनेवाला तत, मृदंग से उत्पन्न होनेवाला अवनद्ध, बाँसुरी से उत्पन्न होनेवाला शुषिर और ताल से उत्पन्न होनेवाला घन ये चार प्रकार के वाद्य हैं, ये सभी वाद्य नाना भेदों से सहित हैं। वह केकया इन सब को इस तरह जानती थी कि उसकी समानता करनेवाला दूसरा व्यक्ति विरला ही था ॥20-21॥ गीत, नृत्य और वादित्र इन तीनों का एक साथ होना नाट्य कहलाता है। शृंगार, हास्य, करुणा, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स और शान्त ये नौ रस कहे गये हैं। वह बाला केकया उन्हें अनेक अवान्तर

भेदों के साथ उत्कृष्टता से जानती थी ॥22-23॥ जो लिपि अपने देश में आमतौर से चलती है उसे अनुवृत्त कहते हैं। लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते हैं उसे विकृत कहते हैं। प्रत्यंग आदि वर्गों में जिसका प्रयोग होता है उसे सामयिक कहते हैं और वर्णो के बदले पुष्पादि पदार्थ रखकर जो लिपि का ज्ञान किया जाता है उसे नैमित्तिक कहते हैं। इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, यौधेय, समाद्र आदि देशों की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद होते हैं सो केकया उन सब को अच्छी तरह जानती थी॥२४-२६॥ जिस के स्थान आदि के अपेक्षा अनेक भेद हैं ऐसी उक्तिकोशल नाम की कला है। स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थत्व, और भाषा ये जातियाँ कही गयी हैं ॥27-28॥ इन में से उरस्थल, कण्ठ और मूर्द्धा के भेद से स्थान तीन प्रकार का माना गया है। स्वर के षड्ज आदि सात भेद पहले कह ही आये हैं ॥29॥ लक्षण और उद्देश अथवा लक्षणा और अभिधा की अपेक्षा संस्कार दो प्रकार का कहा गया है। पदवाक्य, महावाक्य आदि के विभागसहित जो कथन है वह विन्यास कहलाता है ॥30॥ सापेक्षा और निरपेक्षा की अपेक्षा काकु दो भेदों से सहित है। गद्य, पद्य और मिश्र अर्थात् चम्पू की अपेक्षा समुदाय तीन प्रकार का कहा गया है ॥31॥ किसी विषय का संक्षेप से उल्लेख करना विराम कहलाता है। एकार्थक अर्थात् पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना सामान्याभिहित कहा गया है ॥32॥ एक शब्द के द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन करना समानार्थता है। आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के नियम से भाषा तीन प्रकार की कही गयी है ॥33॥ इन के सिवाय जिसका पद्यरूप व्यवहार होता है उसे लेख कहते हैं। ये सब जातियां कहलाती हैं। व्यक्तवाक्, लोकवाक् और मार्गव्यवहार ये मातृकाएँ कहलाती हैं। इन सब भेदों के भी अनेक भेद हैं जिन्हें विद्वज्जन जानते हैं। इन सब से सहित जो भाषण-चातुर्य है उसे उक्तिकौशल कहते हैं। केकया इस उक्ति-कौशल को अच्छी तरह जानती थी ॥34-35॥

नानाशुष्क और वर्जित के भेद से शुष्कचित्र दो प्रकार का कहा गया है तथा चन्दनादि के द्रव से उत्पन्न होनेवाला आर्द्रचित्र अनेक प्रकार का है ॥36॥ कृत्रिम और अकृत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इस को रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है। शुभ लक्षणोंवाली केकया इस समस्त चित्रकला को जानती थी ॥37॥ क्षय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का कहा गया है। लकड़ी आदि को छील-छालकर जो खिलौना आदि बनाये जाते हैं उसे क्षयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं। ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर जो खिलौना आदि बनाये जाते हैं उसे उपचयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं तथा जो प्रतिबिम्ब **अर्थ**ात् सांचे आदि गढ़ाकर बनाये जाते हैं उसे संक्रमजन्य पुस्तकम कहते हैं ॥38-39॥ यह पुस्तकर्म, यन्त्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र आदि के भेदों से सहित है, अर्थात् कोई खिलौना यन्त्रचालित होते हैं, और कोई बिना यन्त्र के होते हैं, कोई छिद्रसहित होते हैं, कोई छिद्ररहित। वह केकया पुस्तकर्म को ऐसा जानती थी जैसा दूसरों के लिए दुर्लभ था ॥40॥ पत्रच्छेद के तीन भेद हैं-बुष्किम, छिन्न और अच्छिन्न / सुई अथवा दन्त आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे बुष्किम कहते हैं। जो कैंची से काटकर बनाया जाता है तथा जो अन्य अवयवों के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे छिन्न कहते हैं / जो कैंची आदि से काटकर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से रहित होता है उसे अच्छिन्न कहते हैं ॥41-42॥ यह पत्रच्छेद्यक्रिया पत्र, वस्त्र तथा सुवर्णादि के ऊपर की जाती है तथा स्थिर और चंचल दोनों प्रकार को होती है / सुन्दरी केकया ने इस कला का अच्छी तरह निर्णय किया था॥४३।। आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्र के भेद से मालानिर्माण को कला चार प्रकार की है। इन में से गीले अर्थात् ताजे पुष्पादि से जो माला बनायी जाती है उसे आर्द्र कहते हैं, सूखे पत्र आदि से जो बनायी जाती है शुष्क कहते हैं। चावलों के सीथ अथवा जवा आदि से जो बनायी जाती है उसे तदुज्झित कहते हैं और जो उक्त तीनों चीजों के मेल से बनायी जाती है उसे मिश्र कहते हैं ॥44-45॥ यह माल्यकर्म रणप्रबोधन, व्यूहसंयोग आदि भेदों से सहित होता है वह बुद्धिमती केकया इस समस्त कार्य को करना अच्छी तरह जानती थी ॥46॥ योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुण-दोष विज्ञान तथा कौशल ये गन्धयोजना अर्थात् सुगन्धित पदार्थ निर्माणरूप कला के अंग हैं। जिन से सुगन्धित पदार्थों का निर्माण होता है ऐसे तगर आदि योनिद्रव्य हैं, जो धूपबत्ती आदि का आश्रय है उसे अधिष्ठान कहते हैं, कषायला, मधुर, चिरपरा, कड़आ और खट्टा यह पांच प्रकार का रस कहा गया है जिसका सुगन्धित द्रव्य में खासकर निश्चय करना पड़ता है ॥47-49॥ पदार्थों की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का वोर्य है। अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है ॥50॥ तेल आदि पदार्थों का शोधना तथा धोना आदि परिकम कहलाता है, गुण अथवा दोष का जानना सो गुण-दोष विज्ञान है और परकीय तथा स्वकीय वस्तु को विशिष्टता जानना कौशल है ॥51॥ यह गन्धयोजना की कला स्वतन्त्र और अनुगत के भेद से सहित है। केकया इस सब को अच्छी तरह जानती थी ॥52॥ भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य के भेद से भोजन सम्बन्धी पदार्थो के पांच भेद हैं। इन में से जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे भक्ष्य कहते हैं। यह

कृत्रिम तथा अकृत्रिम के भेद से दो प्रकार का है ॥53॥ जो क्षुधा-निवृत्ति के लिए खाया जाता है उसे भोज्य कहते हैं, इसके भी मुख्य और साभक की अपेक्षा दो भेद हैं ? ओदन. रोटी आदि मख्य भोज्य हैं और लप्सी. दाल, शाक आदि साधक भोज्य हैं ॥54॥ शीतयोग ( शर्बत), जल और मद्य के भेद से पेय तीन प्रकार का कहा गया है ॥55॥ इन सब का ज्ञान होना आस्वाद्यविज्ञान है। यह आस्वाद्यविज्ञान पाचन, छेदन, उष्णत्वकरण तथा शीतत्वकरण आदि से सहित है, केकया को इस सब का सुन्दर ज्ञान था ॥56॥

वह वज्र **अर्थ**ात् हीरा, मोती, वैडूयं ( नीलम ), सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र-शंखादि रत्नों को उनके लक्षण आदि से अच्छी तरह जानती थी ॥57॥ वस्त्रपर धागे से कढ़ाई का काम करना तथा वस्त्र को अनेक रंगों में रंगना इन कार्यों को वह बड़ी सुन्दरता और उत्कृष्टता के साथ जानती थी ॥58॥ वह लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदि से बननेवाले नाना उपकरणों को बनाना बहुत अच्छी तरह जानती थी ॥59॥ मेय, देश, तुला और काल के भेद से मान चार प्रकार का है। इसमें से प्रस्थ आदि के भेद से जिस के अनेक भेद हैं उसे मेय कहते हैं ॥60॥ वितस्ति हाथ देशमान कहलाता है, पल, छटाक, सेर आदि तुलामान कहलाता है और समय, घड़ी, घण्टा आदि कालमान कहा गया है ॥61॥ यह मान आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रिया से उत्पन्न होता है। इस सब को वह अच्छी तरह जानती थी ॥62॥ भतिकर्म अर्थात बेलबटा खींच ने का ज्ञान, निधिज्ञान अर्थात् गड़े हुए धन का ज्ञान, रूपज्ञान, वणिग्विधि अर्थात् व्यापार कला तथा जीवविज्ञान अर्थात् जन्तुविज्ञान इन सब को वह विशेष रूप से जानती थी॥६३।। वह मनुष्य, हाथी, गौ तथा घोड़ा आदि की चिकित्सा को निदान आदि के साथ अच्छी तरह जानती थी॥६४॥ विमोहन अर्थात् मूर्छा के तीन भेद हैं-मायाकृत, पीडा अथवा इन्द्रजाल कृत और मन्त्र तथा ओषधि आदि द्वारा कृत / सो इस सब को वह अच्छी तरह जानती थो ॥65॥ पाखण्डीजनों के द्वारा कल्पित सांख्य आदि मतों को वह उनमें वर्णित चारित्र तथा नाना प्रकार के पदार्थों के साथ अच्छी तरह जानती थी॥६६॥

चेष्टा, उपकरण, वाणी और कला व्यासंग के भेद से क्रीड़ा चार प्रकार की कही गयी है। उस में शरीर से उत्पन्न होनेवाली क्रीडा को चेष्टा कहा है ॥67॥ गेंद आदि खेलना उपकरण है, नाना प्रकार के सुभाषित आदि कहना वाणी-क्रीड़ा है और जुआ आदि खेलना कलाव्यासंग नामक क्रीड़ा है इस प्रकार वह अनेक भेदवाली क्रीड़ा में अत्यन्त निपुण थी ॥68-69॥ आश्रित और आश्रय के भेद से लोक दो प्रकार का कहा गया है। इन में से जीव और अजीव तो आश्रित हैं तथा पथ्वी आदि उनके आश्रय हैं ॥70॥ इसी लोक में जीव की नाना पर्यायों में उत्पत्ति हई है, उस यह स्थिर रहा है तथा उसी में इसका नाश होता है यह सब जानना लोकज्ञता है। यह लोकज्ञता प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है ॥71॥ पूर्वापर पर्वत, पृथ्वी, द्वीप, देश आदि भेदों में यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है । केकया को इसका उत्तम ज्ञान था ॥ 72॥

संवाहन कला दो प्रकार को है-उनमें से एक कर्मसंश्रया है और दूसरी शय्योपचारि का / त्वचा, मांस, अस्थि और मन इन चार को सुख पहुँचा ने के कारण कर्मसंश्रया के चार भेद हैं **अर्थ**ात् किसी संवाहन से केवल त्वचा को सुख मिलता है, किसी से त्वचा और मांस को सुख मिलता है, किसी से त्वचा, मांस और हड्डी को सुख मिलता है और किसी से त्वचा, मांस, हड्डी एवं मन इन चारों को सुख प्राप्त होता है। इसके सिवाय इसके संपृष्ट, गृहीत, भुक्तित, चलित, आहत, भंगित, विद्ध, पीडित और भिन्नपीडित ये भेद भी हैं। ये ही नहीं मृदु, मध्य और प्रकृष्ट के भेद से तीन भेद और भी होते हैं ॥73-75॥ जिस संवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह . मृदु अथवा सुकुमार कहलाता है। जो त्वचा और मांस को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहा जाता है और जो त्वचा, मांस तथा हड्डी को सुख देता है वह प्रकृष्ट कहलाता है। इसके साथ जब कोमल संगीत और होता है तब वह मनःसुखसंवाहन कहला ने लगता है ॥76॥ इस संवाहन कला के निम्नलिखित दोष भी हैं--शरीर के रोमों को उलटा उद्वर्तन करना, जिस स्थान में मांस नहीं है वहाँ अधिक दबाना, केशाकर्षण, अद्भुत, भ्रष्टप्राप्त, अमार्गप्रयात, अतिभुग्नक, अदेशाहत, अत्यर्थ और अवसुप्तप्रतीपक, जो इन दोषों से रहित है, योग्यदेश में प्रयुक्त है तथा अभिप्राय को जानकर किया गया है ऐसा सुकुमारसंवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है ॥77-79॥ जो संवाहन क्रिया अनेक कारण अर्थात् आसनों से की जाती है वह चित्त को सुख देनेवाली शय्योपचारि का नाम की क्रिया जाननी चाहिए ॥8॥ अंग-प्रत्यंग से सम्बन्ध रखनेवाली इस संवाहनकला को जिस प्रकार वह कन्या जानती थी उस प्रकार अन्य स्त्री नहीं जानती थी ॥81॥ स्नान करना, शिर के बाल गूंथना तथा उन्हें सुगन्धित आदि करना यह शरीर संस्कार वेषकौशल नाम की कला है सो वह कन्या इसे भी अच्छी तरह जानती थीं ॥82॥ इस तरह सुन्दर शील की धारक तथा विनयरूपी उत्तम आभूषण से सुशोभित वह कन्या इन्हें आदि लेकर लोगों के मन को हरण करनेवाली समस्त कलाओं को धारण कर रही थी ॥83॥

कलागुण के अनुरूप उत्पन्न तथा लोगों के मन को आकृष्ट करनेवाली उसकी कीर्ति तीनों लोकों में अद्वितीय **अर्थ**ात् अनुपम सुशोभित हो रही थी ॥84॥ हे राजन् ! अधिक कहने से क्या ? संक्षेप में इतना ही सुनो कि उसके रूप का वर्णन सौ वर्षों में भी होना संभव है ॥85॥ पिता ने विचार किया कि इसके योग्य वर कौन हो सकता है ? अच्छा हो कि यह स्वयं ही अपनी इच्छानुसार वर को ग्रहण करे ॥86॥ ऐसा निश्चय कर उसने स्वयंवर के लिए पृथिवीपर के हरिवाहन आदि समस्त राजा एकत्रित किये / वे राजा स्वयंवर के पूर्व ही नाना प्रकार के विभ्रमों अर्थात् हावभावों से सुशोभित हो रहे थे ॥87॥ राजा जनक के साथ घूमते हुए राजा दशरथ वहाँ जा पहुंचे। राजा दशरथ यद्यपि साधारण वेषभूषा में थे तो भी वे अपनी शोभा से उपस्थित अन्य राजाओं को आच्छादित कर वहाँ विराजमान थे ॥88॥ सुसज्जित मंचों के ऊपर बैठे हुए उदार राजाओं का परिचय प्रतीहारी दे रही थी और मनुष्यों के लक्षण जानने में पण्डित वह साध्वी कन्या घूमती हुई प्रत्येक राजा को देखती जाती थी। अन्त में उसने अपनी दृष्टिरूपी नीलकमल की माला दशरथ के कण्ठ में डालो ॥89-90॥ जिस प्रकार बगलो के बीच में स्थित राजहंस के पास हंसी पहेंच जाती है उसी प्रकार सुन्दर हाव-भाव को धारण करनेवाली वह कन्या राजसमूह के बीच में स्थित राजा दशरथ के पास जा पहुँची ॥21॥ उसने दशरथ को भावमाला से तो पहले ही ग्रहण कर लिया था फिर लोकाचार के अनुसार जो द्रव्यमाला डाली थी वह पुनरुक्तता को प्राप्त हुई थी ॥92॥ उस मण्डप में प्रसन्नचित्त के धारक कित ने ही राजा जोर-जोर से कह रहे थे कि अहो ! इस उत्तम कन्या ने योग्य तथा अनुपम पुरुष वरा है ॥93॥ और कित ने ही राजा अत्यन्त धृष्टता के कारण कुपित हो अत्यधिक कोलाहल करने लगे ॥94॥ वे कहने लगे कि अरे! प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न तथा महाभोगों से सम्पन्न हम लोगों को छोड़कर इस दुष्ट कन्या ने जिस के कुल और शील का पता नहीं ऐसे परदेशी किसी मनुष्य को वरा है सो इसका अभिप्राय दुष्ट है। इसके केश पकड़कर खींचो और इसे जबरदस्ती पकड़ लो ॥95-97॥ ऐसा कहकर वे राजा बड़े-बड़े शस्त्र उठाते हुए युद्ध के लिए तैयार हो गये तथा क्रुद्धचित्त होकर राजा दशरथकी ओर चल पड़े ॥98॥

तदनन्तर कन्या के पिता शुभमति ने घबड़ाकर दशरथ से कहा कि हे भद्र ! जबतक मैं इन क्षुभित राजाओं को रोकता हूँ तबतक तुम कन्या को रथपर चढ़ाकर कहीं अन्तहित हो जाओछिप जाओ क्योंकि समय का ज्ञान होना सब नयों के शिरपर स्थित है **अर्थ**ात् सब नीतियों में श्रेष्ठ नीति है ॥99-100 / इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त धीर-वीर बुद्धि के धारक राजा दशरथ ने मुसकराकर कहा कि हे माम! निश्चिन्त रहो और अभी इन सब को भय से भागता हुआ देखो ॥101॥ इतना कहकर वे प्रौढ़ घोड़ों से जुते रथपर सवार हो शरदऋतु के मध्याह्न काल सम्बन्धी सूर्य के समान अत्यन्त भयंकर हो गये ॥102॥ केकया ने रथ के चालक सारथि को तो उतार दिया और स्वयं शीघ्र ही साहस के साथ चाबुक तथा घोड़ों की रास सँभालकर युद्ध के मैदान में जा खड़ी हुई ॥103॥ और बोली कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, किसके ऊपर रथ चलाऊँ ? आज मृत्यु किसके साथ अधिक स्नेह कर रही है ? ॥104॥ दशरथ ने कहा कि यहाँ अन्य क्षुद्र राजाओं के मार ने से क्या लाभ है ? अतः इस सेना के मस्तकस्वरूप प्रधान पुरुष को ही गिराता हूँ। हे चतुर वल्लभे। जिस के ऊपर यह चन्द्रमा के समान सफेद छत्र सुशोभित हो रहा है इसी के सन्मुख रथ ले चलो ॥105-106॥ ऐसा कहते ही उस धीर वीरा ने जिसपर सफेद छत्र लग रहा था तथा बड़ी भारी ध्वजा फहरा रही थी ऐसा रथ आगे बढ़ा दिया ॥107॥ जिसमें पता का की कान्तिरूपी बड़ी-बड़ी ज्वालाएँ उठ रही थीं तथा दम्पती ही जिसमें देवता थे ऐसे रथरूपी अग्नि में हजारों योधारूपी पतंगे नष्ट होते हुए दिखने लगे ॥108॥ दशरथ के द्वारा छोड़े बाणों से पीड़ित राजा एक दूसरे को लांघते हुए क्षण-भर में पराङ्मुख हो गये ॥109॥

तदनन्तर पराजित होने से लज्जित हुए राजाओं को हेमप्रभ ने ललकारा, जिससे वे लौटकर पुनः दशरथ के रथ को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे ॥110॥ जो घोडों. रथों. हाथियों तथा पैदल सैनिकों से घिरे थे, सिंहनाद कर रहे थे तथा बहुत बड़े समूह के साथ वर्तमान थे ऐसे अनेक राजा अकेले राजा दशरथ को लक्ष्य कर तोमर, बाण, पाश, चक्र और कनक आदि शस्त्र बड़ी तत्परता से चला रहे थे ॥ 111-112॥ बड़े आश्चर्य की बात थी कि राजा दशरथ एकरथ होकर भी दशरथ थे तो और उस समय तो अपने पराक्रम से शतरथ अथवा असंख्यरथ हो रहे थे ॥113॥ चक्राकार धनुष के धारक राजा दशरथ ने जिनके खींच ने और रख ने का पता नहीं चलता था ऐसे बाणों से एक साथ शत्रुओं के शस्त्र छेद डाले ॥114॥ जिसकी ध्वजा और छत्र कटकर नीचे गिर गये थे तथा जिसका वाहन थककर अत्यन्त व्याकुल हो गया था ऐसे राजा हेमप्रभ को दशरथ ने क्षणभर में रथरहित कर दिया ॥115॥ तदनन्तर जिसका मन भय से व्याप्त था ऐसा हेमप्रभ दूसरे रथपर सवार हो अपने यश को मलिन करता हुआ शीघ्र ही भाग गया ॥116॥ राजा दशरथ ने शत्रुओं तथा शस्त्रों को छेद डाला और अपनी तथा स्त्री की रक्षा की। उस समय एक दशरथ ने जो काम किया था वह अनन्तरथ के योग्य था ॥117॥ जो बाणरूपी

जटाओं को हिला रहा था ऐसे दशरथरूपी सिंह को देखकर योद्धारूपी हरिण आठो दिशाएँ पकड़कर भाग गये ॥118॥ उस समय अपनी तथा शत्रु की सेना में यही जोरदार शब्द उठ रहा था कि अहो! इस मनुष्य की कैसी अद्भुत शक्ति है ? और इस कन्या ने कैसा कमाल किया ? ॥119॥ उन्नत प्रताप को धारण करनेवाले राजा दशरथ को लोग पहचान सके थे तो वन्दीजनों के द्वारा घोषित जयनाद अथवा उनकी अनुपम शक्ति से ही पहचान सके थे ॥120॥

तदनन्तर अन्य लोगों ने जहाँ कौतुक एवं मंगलाचार किये थे ऐसे कौतुकमंगल नामा नगर में राजा दशरथ ने कन्या का पाणिग्रहण किया ॥121॥ तत्पश्चात् बड़े भारी वैभव से जिनका विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ था ऐसे राजा दशरथ अयोध्या गये और राजा जनक मिथिलापुरी गये ॥122॥ वहाँ हर्ष से भरे परिजनों ने बड़े वैभव से साथ राजा दशरथ का पुनर्जन्मोत्सव और पुनर्राज्याभिषेक किया ॥123॥ जो सब प्रकार के भय से रहित थे तथा जिनकीआज्ञा को सब शिरोधार्य करते थे ऐसे पुण्यवान् राजा दशरथ स्वर्ग में इन्द्र को तरह अयोध्या में क्रीड़ा करते थे वहाँ राजा दशरथ ने अन्य सपत्नियों तथा राजाओं के समक्ष पास बैठी हुई केकया से कहा कि हे पूर्णचन्द्रमुखि ! प्रिये ! जो वस्तु तुम्हें इष्ट हो वह कहो, मैं उसे पूर्ण कर दूँ। आज मैं बहत प्रसन्न हूँ ॥125-126॥ यदि तुम उस समय बड़ी चतुराई से उस प्रकार रथ नहीं चलातीं तो मैं एक साथ उठे हुए कुपित शत्रुओं के समूह को किस प्रकार जीतता? ॥127॥ यदि अरुण सारथि नहीं होता तो समस्त जगत् में व्याप्त होकर स्थित अन्धकार को सूर्य किस प्रकार नष्ट कर सकता? तदनन्तर गुणग्रहण से उत्पन्न लज्जा के भार से जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसी केकया ने बारबार प्रेरित होनेपर भी किसी प्रकार यह उत्तर दिया कि हे नाथ ! मेरी इच्छित वस्तु की याचना आपके पास धरोहर के रूप में रहे। जब मैं मागूंगी तब आप बिना कुछ कहे दे देंगे ॥128-130॥ केकया के इतना कहते ही पूर्णचन्द्रमा के समान मुख को धारण करनेवाले राजा दशरथ ने कहा कि हे प्रिये ! हे स्थूलनितम्बे ! हे सौम्यवर्णे ! तीन रंग के अत्यन्त सुन्दर, स्वच्छ एवं विशाल नेत्रों को धारण करनेवाली ! ऐसा ही हो ॥131॥ राजा दशरथ ने अन्य लोगों से कहा कि अहो ! महाकूल में उत्पन्न, कलाओं की पारगामिनी तथा महाभोगों से सहित इस केकया की बुद्धि अत्यधिक नीति से सम्पन्न है कि जो इसने अपने वर की याचना धरोहररूप कर दी ॥132॥ यह पुण्यशालिनी धीरेधीरे विचारकर किसी अभिलषित उत्तम **अर्थ** को मांग लेगी ऐसा विचारकर उसके सभी इष्ट परिजन उस समय अत्यधिक परम आनन्द को प्राप्त हुए थे ॥133॥

गौतमस्वामी श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! मैंने बुद्धि के अनुसार तेरे लिए यह राजा दशरथ का सुवृत्तान्त कहा है। अब इस से अपने उदार वंश को प्रकाशित करनेवाले महामानवों की उत्पत्ति का वर्णन सुन ॥134॥ तीन लोक का वृत्तान्त जानने के लिए विस्तार को आवश्यकता नहीं। अतः मैं संक्षेप से ही तेरे लिए यह कहता हूँ कि दुराचारी मनुष्य अत्यन्त दुःख प्राप्त करते हैं और सूर्य के समान दीप्ति को धारण करनेवाले सदाचारी मनुष्य सुख प्राप्त करते हैं ॥135॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में केकया के वरदान का वर्णन करनेवाला चौबीसवाँ पर्व समाप्त हआ ॥24॥

## राम आदि चार भाइयों की उत्पत्ति

पच्चीसवाँ पर्व

कथा :

अथानन्तर उत्तम महल में रत्नों के प्रकाशरूपी सरोवर के मध्य में स्थित अत्यन्त सुन्दर शय्यापर सुख से सोती हुई अपराजिता रानी ने रात्रि के पिछले पहर में महापुरुष के जन्म को सूचित करनेवाले अत्यन्त आश्चर्यकारक स्वप्न देखे। वे स्वप्न उसने इतनी स्पष्टता से देखे थे जैसे मानो जाग ही रही थी ॥१-२॥ पहले स्वप्न में उसने सफेद हाथी, दूसरे में सिंह, तीसरे में सूर्य और चौथे में चन्द्रमा देखा था। इन सब को देखकर वह तुरही के मांगलिक शब्द से जाग उठी ॥3॥ तदनन्तर जिसका मन आश्चर्य से भर रहा था ऐसी अपराजिता प्रातःकाल सम्बन्धी शारीरिक क्रियाएँ कर, जब सूर्य के प्रकोश से समस्त संसार सुशोभित हो गया तंब बड़ी विनय से पति के पास गयी। स्वप्नों का फल जानने के लिए उसका हृदय अत्यन्त आकूल हो रहा था तथा अनेक सखियाँ उसके साथ गयी थीं। जाकर वह उत्तम सिंहासन को अलंकृत करने लगी ॥4-5॥ जिसका शरीर संकोचवश कुछ नीचे की ओर झुक रहा था ऐसी अपराजिता ने हाथ जोड़कर स्वामी के लिए सब मनोहर स्वप्न जिस क्रम से देखे थे उसी क्रम से सुना दिये और स्वामी ने भी बड़ी सावधानी से सु ने ॥6॥ तदनन्तर समस्त ज्ञानों के पारदर्शी एवं विद्वत्समूह के बीच में स्थित राजा दशरथ ने स्वप्नों का फल कहा ॥7॥ उन्होने कहा कि हे कान्ते ! तुम्हारे परम आश्चर्य का कारण ऐसा पुत्र

उत्पन्न होगा जो अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के शत्रओं का नाश करेगा ॥8॥ पति के ऐसा कहनेपर अपराजिता परम सन्तोष को प्राप्त हुई। उसने हाथ से उदर का स्पर्श किया तथा उसका मुखरूपी कमल मन्द मुसकानरूपी केशर से व्याप्त हो गया ॥2॥ प्रशस्त भावना से युक्त अपराजिता ने परम प्रसन्नता को प्राप्त पति के साथ जिन-मन्दिरों में भगवान् को महापूजा की ॥10॥ उस समय से दिन-प्रति-दिन उसकी कान्ति बढ़ ने लगी तथा उसका चित्त यद्यपि महाप्रताप से युक्त था तो भी उस में अद्भुत शान्ति उत्पन्न हो गयी थी ॥11॥ तदनन्तर अतिशय सुन्दरी सुमित्रा रानी ने स्वप्न देखे। स्वप्न देखते समय वह आश्चर्य से चकित हो गयी थी, उसके समस्त शरीर में रोमांच निकल आये थे और उसका अभिप्राय अत्यन्त निर्मल हो गया था ॥12॥ उसने देखा कि लक्ष्मी और कीर्ति आदरपूर्वक, जिनके मुखपर कमल रखे हुए थे तथा जिन में सुन्दर जल भरा हुआ था ऐसे कलशों से सिंह का अभिषेक कर रही हैं ॥13॥ फिर देखा कि मैं स्वयं किसी ऊँचे पर्वत के शिखरपर चढ़कर समुद्ररूपी मेखला से सुशोभित विस्तृत पृथिवी को देख रही हूँ ॥14॥ इसके बाद उसने देदीप्यमान किरणों से युक्त, सूर्य के समान सुशोभित, नाना रत्नों से खचित तथा घूमता हुआ सुन्दर चक्र देखा ॥15॥ इन वप्नों को देखकर वह मंगलमय वादित्रों के शब्द से जाग उठी। तदनन्तर उसने बडी विनय से जाकर अत्यन्त मधुर शब्दों द्वारा पति के लिए स्वप्न-दर्शन का समाचार सुनाया ॥16॥ इसके उत्तर में राजा दशरथ ने बताया कि हे उत्तम मुख को धारण करनेवाली प्रिये ! तुम्हारे ऐसा पुत्र होगा कि जो युग का प्रधान होगा, शत्रुओं के समूह का क्षय करनेवाला होगा, महातेजस्वी तथा अद्भुत चेष्टाओं का धारक होगा ॥17॥ पति के इस प्रकार कहनेपर जिसका चित्त आनन्द से व्याप्त हो रहा था ऐसी सुमित्रा रानी अपने स्थान पर चली गयी। उस समय वह समस्त लोक को ऐसा देख रही थी मानो नीचे ही स्थित हो ॥18॥

अथानन्तर समय पूर्ण होनेपर, जिस प्रकार पूर्व दिशा पूर्ण चन्द्रमा को उत्पन्न करती है उसी प्रकार अपराजिता रानी ने कान्तिमान् पुत्र उत्पन्न किया ॥19॥ इस भाग्य-वृद्धि को सूचना करनेवाले लोगों को जब राजा दशरथ धनदेने बैठे तो उनके पास छत्र, चमर तथा वस्त्र ही शेष रह गये बा की सब वस्तुएँ उन्होने दान में दे दी ॥20॥ महा विभव से सम्पन्न समस्त भाईबान्धवों ने इसका बड़ा भारी जन्मोत्सव किया। ऐसा जन्मोत्सव कि जिसमें सारा संसार उन्मत्तसा हो गया था ॥21॥ - मध्याह्न के सूर्य के समान जिसका वर्ण था, जिसका वक्षःस्थल लक्ष्मी के द्वारा आलिंगित था तथा जिस के नेत्र कमलों के समान थे ऐसे उस पुत्र का माता-पिता ने पद्म नाम रखा ॥22॥ तदनन्तर जिस प्रकार रत्नों की भूमि **अर्थ**ात् खान छाया आदि गुणों से सम्पन्न उत्तम रत्न को उत्पन्न करती है उसी प्रकार सुमित्रा ने श्रेष्ठ कान्ति के धारक पुत्र को उत्पन्न किया ॥23॥ पद्म के जन्मोत्सव का मानो अनुसन्धान ही करते हुए बन्धु-वर्ग ने उसका भी बहुत भारी जन्मोत्सव किया था ॥24॥ शत्रुओं के नगरों में आपत्तियों की सूचना देनेवाले हजारों उत्पात होने लगे और बन्धुओं के नगरों में सम्पत्तियों की सूचना देनेवाले हजारों शुभ चिह्न प्रकट होने लगे ॥25॥ प्रौढ नील कमल के भीतरी भाग के समान जिसकी आभा थी, जो कान्तिरूपी जल में तैर रहा था और अनेक अच्छे-अच्छे लक्षणों से सहित था ऐसे उस पुत्र का माता-पिता ने लक्ष्मण नाम रखा ॥26॥ उन दोनों बालकों का रूप अत्यन्त मनोहर था, उनके ओंठ मूंगा के समान लाल थे, हाथ और पैर लाल कमल के समान कान्तिवाले थे, उनके विभ्रम अर्थात् हावभाव देखते ही बनते थे, उनका स्पर्श मक्खन के समान कोमल था, तथा जन्म से ही वे उत्तम सुगन्धि को धारण करनेवाले थे। बाल-क्रीड़ा करते हुए वे किस का मन हरण नहीं करते थे ॥27-28॥ चन्दन के लेप से शरीर को लिप्त करने के बाद जब वे ललाटपर कुंकुम का तिलक लगाते थे तब सुवर्ण रस से संयुक्त रजताचल की उपमा धारण करते थे ॥29॥ अनेक जन्मों के संस्कार से बढ़े हुए स्नेह से वे दोनों ही बालक परस्पर एक दूसरे के वंशानुगामी थे, तथा अन्तःपुर में समस्त बन्धु उनका लालन-पालन करते थे ॥30॥ जब वे शब्द करते थे तब ऐसे जान पड़ते थे मानो अमृत का वमन ही कर रहे हों और जब किसी की ओर देखते थे तब ऐसा जान पड़ते थे मानो उस लोक को सुखदायक पंक से लिप्त ही कर रहे हों ॥31॥ जब किसी के बुलानेपर वे उसके पास पहुँचते थे तब ऐसे जान पड़ते थे मानो दरिद्रता का छेद ही कर रहे हों। वे अपनी अनुकूलता से सब के हृदय को मानो तृप्त ही कर रहे थे ॥32॥ उन्हें देखने से ऐसा जान पड़ता था मानो प्रसाद और सम्पद् नामक गुण ही देह रखकर आये हों। जिनकीरक्षक लोग रक्षा कर रहे थे ऐसे दोनों बालक नगरी में सुखपूर्वक जहाँ-तहाँ क्रीड़ा करते थे ॥33॥ जिस प्रकार पहले विजय और त्रिपृष्ठ नामक बलभद्र तथा नारायण हुए थे उसी प्रकार ये दोनों बालक भी उन्हीं के समान समस्त चेष्टाओं के धारक हुए थे ॥34॥ तदनन्तर केकया रानी ने सुन्दर रूप से सहित पुत्र उत्पन्न किया जो महाभाग्यवान् था तथा संसार में 'भरत' इस नाम को प्राप्त हुआ था ॥35॥ तत्पश्चात् सुप्रभा रानी ने सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया जिसकी समस्त संसार में आज भी 'शत्रुघ्न' नाम से प्रसिद्धि है ॥36॥ अपराजिता ने पद्म का दूसरा नाम बल रखा था तथा सुमित्रा ने अपने पुत्र का दूसरा नाम बड़ी

इच्छा से हरि घोषित किया था ॥37॥ केकया ने देखा कि 'भरत' यह नाम सम्पूर्ण चक्रवर्ती भरत में आया है इसलिए उसने अपने पुत्र का अर्ध-चक्रवर्ती नाम प्रकट किया ॥38॥ सुप्रभा ने विचार किया कि जब केकया ने अपने पत्र का नाम चक्रवर्ती के नामपर रखा है तब मैं अपने पुत्र का नाम इस से भी बढ़कर क्यों नहीं रखू यह विचारकर उसने अहंन्त भगवान् के नामपर अपने पुत्र का नाम शत्रुघ्न रखा ॥39॥ जगत् के जीवों को प्रिय लगनेवाले वे चारों कुमार समुद्र के समान गम्भीर थे, सम्यग् नयों के समान परस्पर अनुकूल थे तथा दिग्विभागों के समान उदार थे ॥40॥

तदनन्तर इन कुमारों को विद्या ग्रहण के योग्य देखकर इन के पिता राजा दशरथ ने बड़ी व्यग्रता से योग्य अध्यापक का विचार किया ॥41॥ अथानन्तर एक काम्पिल्य नाम का सुन्दर नगर था उस में शिखी नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी इषु नाम को खो थी ॥42॥ उन दोनों के एक ऐर नाम का पुत्र था जो अत्यधिक लाड़-प्यार के कारण महाअविनयी हो गया था। उसकी चेष्टाएँ हजारों उलाहनों का कारण हो रही थीं॥४३॥ धन का उपार्जन करना, विद्या ग्रहण करना और धर्मसंचय करना ये तीनों कार्य यद्यपि मनुष्य के अपने अधीन हैं फिर भी प्रायःकर विदेश में ही इन की सिद्धि होती है ॥44॥ ऐसा विचारकर माता-पिता ने दुःखी होकर उसे घर से निकाल दिया जिससे केवल दो कपड़ों को धारण करता हुआ वह दुःखो अवस्था में राजगृह नगर पहुँचा ॥45॥ वहाँ एक वैवस्वत नाम का विद्वान् था जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण था और विद्याध्ययन में श्रम करनेवाले एक हजार शिष्यों से सहित था ॥46॥ ऐर उसी के पास विधिपूर्वक धनुर्विद्या सीख ने लगा और कुछ ही समय में उसके हजार शिष्यों से भी अधिक निपुण हो गया ॥47॥ राजगृह के राजा ने जब यह सुना कि वैवस्वत ने किसी विदेशी बालक को हमारे पुत्रों से भी अधिक कुशल बनाया है तब वह यह जानकर क्रोध को प्राप्त हुआ ॥48॥ राजा को कुपित सुनकर अस्त्रविद्या के गुरु वैवस्वत ने ऐर को ऐसी शिक्षा दी कि तू राजा के सामने मूर्ख बन जाना ॥49॥ तदनन्तर राजाने, मैं तुम्हारे सब शिष्यों की शिक्षा देलूँगा, यह कहकर शिष्यों के साथ वैवस्वत गुरु को बुलाया ॥50॥ तदनन्तर राजा ने सब शिष्यों से क्रम से बाण छुड़वाये और सब ने यथायोग्य निशा ने बींध दिये ॥51॥ इसके बाद ऐर से भी बाण छुड़वाये तो उसने इस रीति से बाण छोड़े कि राजा ने उसे मूर्ख समझा ॥52॥ जब राजा ने यह समझ लिया कि लोगों ने इसके विषय में कहा था वह सब झूठ है तब उसने अस्त्राचार्य को सम्मान के साथ विदा किया और वह शिष्यमण्डल के साथ अपने घर चला गया ॥53॥ ऐर गरु को सम्मति से उसकी पुत्री को विवाह कर रात्रि में वहाँ से भाग आया और राजा दशरथकी राजधानी अयोध्यापुरी में आया ॥54॥ वहाँ उसने राजा दशरथ के पास जाकर उन्हें अपना कौशल दिखाया और राजा ने सन्तुष्ट होकर उसे अपने सब पुत्र सौंप दिये ॥55॥ सो जिस प्रकार निर्मल सरोवरों में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा का बिम्ब विस्तार को प्राप्त होता है उसी प्रकार उन शिष्यों में ऐर का अस्त्रकौशल प्रतिबिम्बित होकर विस्तार को प्राप्त हो गया ॥56॥ इसके सिवाय अन्य-अन्य विषयों के गुरु प्राप्त होने से उनके अन्यअन्य ज्ञान भी उस तरह प्रकाशता को प्राप्त हो गये जिस तरह कि ढक्कन के दूर हो जाने से छिपे रत्न प्रकाशता को प्राप्त हो जाते हैं ॥57॥ पुत्रों के नय, विनय और उदार चेष्टाओं से जिनका हृदय हरा गया था ऐसे राजा दशरथ उन पुत्रों का सर्वशास्त्रविषयक अतिशय पूर्णज्ञान देखकर अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त हुए। वे गुणसमूहविषयक ज्ञान और पाण्डित्य से युक्त थे तथा दान में उनकी कीर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध थी, इसलिए उन्होने समस्त गुरुओं का सम्मान कर उन्हें इच्छा से भी अधिक वैभव प्रदान किया था ॥58॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! किसी पुरुष को प्राप्तकर थोड़ा ज्ञान भी उत्कृष्टता को प्राप्त हो जाता है, किसी को पाकर उतना का उतना ही रह जाता है और कर्मों की विषमता से किसी को पाकर उतना भी नहीं रहता। सो ठीक ही है क्योंकि सूर्य को किरणों का समूह स्फटिकगिरि के तट को पाकर अत्यन्त विस्तार को प्राप्त हो जाता है, किसी स्थान में तुल्यता को प्राप्त होता है **अर्थ**ात् उतना का उतना ही रह जाता है और अन्धकारयुक्त स्थान में बिलकुल ही नष्ट हो जाता है ॥59॥

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध रविषणाचार्य कथित पद्मचरित में राम आदि चार भाइयों की उत्पत्ति का कथन करनेवाला पचीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥25॥

## सीता और भामंडल की उत्पत्ति

छब्बीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनक का वृत्तांत कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो

॥ 1 ॥ राजा जनक की विदेहा नाम की सुंदरी स्त्री थी । उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकाल से उसके गर्भ की प्रतीक्षा करने लगा ॥ 2 ॥ यह सुन राजा श्रेणिक ने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारण से विदेहा के गर्भ की रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥ 3 ॥ इसके उत्तर में गौतम स्वामी ने कहा कि चक्रपुर नामा नगर में एक चक्रध्वज नाम का राजा था । उसकी स्त्री का नाम मनस्विनी था ॥4॥ उन दोनों के चित्तोत्सवा नाम की कन्या उत्पन्न हुई । वह कन्या गुरु के घर **अर्थ**ात् चाटशाला में खड़िया मिट्टी के टुकड़ों से वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥ 5 ॥ उसी गुरु के घर राजा के पुरोहित धूमकेश की स्वाहा नाम की स्त्री से उत्पन्न पिंगल नाम का पुत्र भी अध्ययन करता था ॥ 6 ॥ चित्तोत्सवा और पिंगल इन दोनों का चित्त परस्पर में हरा गया इसलिए उन्हें विद्या की प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्म की प्राप्ति स्थिर-चित्त वालों को ही होती है ॥ 7 ॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुष का संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति से रति उत्पन्न होती है, रति से विश्वास उत्पन्न होता है और तदनंतर विश्वास से प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणों से उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापों से जो छूट न सके ऐसे कर्म का बंध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणों से प्राणियों के गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥ 8-6 ॥

अथानंतर जब पिंगल को चित्तोत्सवा के अभिप्राय का पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवती को एकांत पाकर हर ले गया । जिस प्रकार अपयश के द्वारा कीर्ति का अपहरण होता है उसी प्रकार पिंगल के द्वारा चित्तोत्सव का हरण हुआ ॥10॥ जब वह उसे बहुत दूर देश में ले गया तब बंधुजनों को उसका पता चला । जिस प्रकार मोह के द्वारा उत्तम गति का हरण होता है उसी प्रकार प्रमाद के द्वारा उस कन्या का हरण हुआ था ॥11॥ इधर कन्या को चुराने वाला पिंगल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होने के कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकार कि धर्महीन लोभी मनुष्य तृष्णा से सुशोभित नहीं होता है ॥ 12 ॥ पिंगल कन्या को लेकर जहाँ दूसरे देश के लोगों का प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्धनगर में पहुँचा और वहाँ नगर के बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहीं कुटी बनाकर रहने लगा ॥13॥ वह ज्ञान-विज्ञान से रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागर में भी निमग्न था इसलिए तृण, काष्ठ आदि बेचकर अपनी उस पत्नी की रक्षा करता था ॥14॥ उसी नगर में राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानी का पुत्र राजा कुंडल मंडित रहता था जो कि शत्रुओं के देश को भय उत्पन्न करने वाला था ॥ 15॥ एक दिन वह नगर के बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टि में आयी । देखते ही वह काम के पाँचों बाणों से ताड़ित होकर अत्यंत दुःखी हो गया ॥16॥ उसने गुप्तरूप से चित्तोत्सवा के पास दूती भेजी सो उस दूती ने उसे रात्रि के समय राजमहल में उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुख की दूती ने कमलामेला को उसके महल में प्रविष्ट कराया था ॥ 17 ॥ जिस प्रकार अनुराग से भरा नलकूबर उर्वशी के साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीति से भरा कुंडलमंडित उस चित्तोत्सवा के साथ रमण करने लगा ॥18॥

तदनंतर जब वह पिंगल थका-माँदा अपने घर आया तो उस विशाल लोचना को न देखकर दुःखरूपी सागर में निमग्न हो गया ॥19॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अधिक कहने से क्या ? उसके विरह से दुःखी हुआ वह चक्रारूढ़ की तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥ 20 ॥ तदनंतर जिसकी भार्या हरी गयी थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजा के पास गया और जिस किसी तरह राजा का पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसी ने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥21॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥ 22 ॥ यह सुन राजा ने एक धूर्त मंत्री को बुलाकर मायासहित कहा कि विलंब मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्री का पता चलाओ ॥ 23 ॥ तब एक मंत्री ने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्री को तो पथिकों ने पोदनपुर के मार्ग में देखा था ॥24॥ वह आर्यिकाओं के समूह के बीच में स्थित थी तथा शांतिपूर्वक तप करने के लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥ 25 ॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीर को धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियों के गुणों से परिपूर्ण है तथा तरुण जनों को हरने वाली है तब उसका यह तप करने का समय ही कौन-सा है ? ॥26 ॥ मंत्री के ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेग से इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बंधन से छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥27॥ वहाँ जाकर उसने पोदनपुर के मंदिरों तथा उपवनों में अपनी स्त्री की बहुत खोज की । जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगर में वापस आ गया ॥28॥ राजा की आज्ञा से दुष्ट मनुष्यों ने उसे गले में घिच्चा देकर नाना प्रकार की डाँट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरों से मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥ 29 ॥ स्थान भ्रंश, अत्यंत क्लेश, अपमान और मार का अनुभव कर उसने स्त्री के बिना वह कहीं भी रति को प्राप्त नहीं होता था । वह अग्नि में पड़े हुए साँप के समान रात दिन सूखता जाता था ॥31 ॥ वह

कमलों के विशाल वन को दावानल के समान देखता था और सरोवर में प्रविष्ट होता हुआ भी विरहाग्नि से जलने लगता था ॥32॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवी पर घूमता रहा । एक दिन उसने नगर के द्वार पर स्थित आर्यगुप्त नामक दिगंबर आचार्य को देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिर से प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्म का यथार्थ स्वरूप सुना ॥33-34॥ मुनिराज से धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्य को प्राप्त हुआ तथा शांत-चित्त होकर इस प्रकार जिनशासन को प्रशंसा करने लगा ॥35॥ कि अहो ! जिन भगवान् के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभाव से सहित है । मैं अंधकार में पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्य के समान ही उदित हुआ है ॥ 36 ॥

मैं पाप को नष्ट करने वाले जिनशासन को प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्नि से जले हुए स शरीर को आज शांत करता हूँ ॥37॥ तदनंतर संवेग को प्राप्त हो तथा गुरु की आज्ञा लेकर उसने परिग्रह का त्याग कर दिया और दिगंबर दीक्षा धारण कर ली ॥38॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रह से रहित हो पृथिवी पर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवा के विषय में उत्कंठित हो जाता था ॥39॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, श्मशान और अटवियों में निवास करता हुआ वह शरीर को सुखाने वाला परम तपश्चरण करता था ॥40॥ मेघों से अंधकार पूर्ण वर्षाकाल में उसका मन खेद को प्राप्त नहीं होता था और न हेमंत ऋतु में हिम के पंक से उसका शरीर कंपित होता था ॥41 ॥ सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से उसे थोड़ा भी संताप नहीं होता था । वह सदा सत्पुरुषों का स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेह के लिए कौन-सा कार्य दुष्कर **अर्थ**ात् कठिन है ? ॥42॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्नि से जलता रहता था जिसे वह जिनेंद्र भगवान् के वचनरूपी जल के छींटों से पुनः-पुनः शांत करता था ॥ 43 ॥ इस प्रकार निरंतर होने वाले स्त्री के स्मरण तथा उग्र तपश्चरण से उसका वह शरीर अधजले वृक्ष के समान काला हो गया था ॥ 44॥ अथानंतर गौतमस्वामी कहते हैं कि अब यह कथा रहने दो । इसके बाद कुंडलमंडित की कथा कहता हूँ सो सुनो ! यथार्थ में जिस प्रकार रत्नावली बीच-बीच में दूसरे रत्नों के अंतर से निर्मित होती है उसी प्रकार कथा भी बीच-बीच में दूसरी-दूसरी कथाओं के अंतर से निर्मित होती है ॥ 45॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्य में स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समय की यह कथा है सो कथा के अनुक्रम से कही जाने वाली इस अवांतर कथा को सुनो ॥46 ॥ कुंडल मंडित दुर्गम गढ़ का अवलंबन कर सदा अनरण्य की भूमि को उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुल की मर्यादा को विराधित करता रहता है ॥47॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणों को उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्य के बहुत से देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायों का अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुत से सामंतों का अवरोध कर दिया ॥ 48 ॥ यद्यपि वह क्षुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़ने के लिए समर्थ नहीं हो सका । सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़ के बिल में स्थित चूहे का सिंह क्या कर सकता है ? ॥ 49॥ वह रात दिन उसी के पराजय को चिंता से सूखता जाता था । भोजन, पान आदि शरीर-संबंधी कार्य भी वह अनादर से करता था ॥ 50॥

तदनंतर किसी दिन उसके बालचंद्र नामा सेनापति ने उससे कहा कि हे नाथ ! आप सदा उद्विग्न से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥51॥ इसके उत्तर में राजा अनरण्य ने कहा कि हे भद्र ! मेरे उद्वेग का परम कारण कुंडलमंडित है । राजा के यह कहने पर बालचंद्र सेनापति ने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! पापी कुंडलमंडित को वश किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा मैंने यह व्रत लिया है ॥ 52-53 ॥ इस प्रकार राजा के सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरंग सेना के साथ जाने के लिए उद्यत हुआ ॥54॥

उधर चित्तोत्सवा में जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुंडलमंडित अन्य सब चेष्टाएँ छोड़कर प्रमाद से परिपूर्ण था । उसके मंत्री आदि मूल पक्ष के सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे । लोक में कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । सब प्रकार का उद्यम छोड़कर वह एक स्त्री में ही आसक्त हो रहा था । सो अनरण्य के सेनापति बालचंद्र ने जाकर उसे मृग की भाँति अनायास ही बाँध लिया ॥ 55-56॥ चतुर बालचंद्र उसकी सेना और राज्य पर अपना अधिकार कर तथा उसे देश से निकालकर अनरण्य के समीप वापस आ गया ॥ 57॥ इस प्रकार उस उत्तम सेवक के द्वारा जिसकी वसुधा में पुनः सुख-शांति स्थापित की गयी थी ऐसा अनरण्य परम हर्ष को प्राप्त होता हुआ सुख का अनुभव करने लगा ॥58॥

कुंडलमंडित का सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था । ऐसी दशा में वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था, सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥59॥

एक दिन वह भ्रमण करता हुआ दिगंबर मुनियों के तपोवन में पहुँचा । वहाँ आचार्य महाराज को नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्म का

स्वरूप पूछा ॥60॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई- बंधुओं से रहित ओर रोग से पीड़ित मनुष्यों की बुद्धि प्रायः धर्म में लगती ही है ॥ 61 ॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसको मुनि दीक्षा लेने की शक्ति नहीं है उस परिग्रही मनुष्य के लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥ 62 ॥ अथवा चारों संज्ञाओं में तत्पर रहने वाला गृहस्थ पापों से किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइए ॥63॥

तदनंतर मुनिराज ने निम्नांकित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निंदा गर्दा आदि करने से मनुष्य पापों से छूट जाते हैं ॥64॥ यदि तू शुद्ध **अर्थ**ात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसा का भयंकर कारण तथा शुक्र और शोणित से उत्पन्न मांस का कभी भक्षण नहीं कर ॥65॥ जो पापी पुरुष मृत्यु से डरने वाले प्राणियों के मांस से अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥ 66 ॥ शिर मुंडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकार के वेष धारण करना आदि कार्यों से मांस भक्षी मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती ॥67॥ तीर्थ क्षेत्रों में स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांस भोजी मनुष्य को नरक से बचाने में समर्थ नहीं हैं ॥68॥ समस्त जातियों के जीव इस प्राणी के पूर्वभवों में बंधु रह चुके हैं । अतः मांस भक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बंधुओं को खाता है यह समझना चाहिए ॥69॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगों को मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांस भक्षी मनुष्य इन पक्षी आदि से भी अधिक क्रूर गति को प्राप्त होता है ॥70॥ मांस न वृक्ष से उत्पन्न होता है, न पृथिवीतल को भेदन कर निकलता है, न कमल की तरह पानी से उत्पन्न होता है और न औषधि के समान किन्हीं उत्तम द्रव्यों से उत्पन्न होता है । किंतु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, मृग आदि दीनहीन प्राणियों को मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥ 71-72॥ जिसके दूध से शरीर पुष्ट होता है तथा जो माता के समान है ऐसी भैस के मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्ट की बात है ? ॥73 ॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयों का ही भक्षण किया है ॥74॥ यहाँ से मेरुपर्वत के नीचे सात पृथिवियाँ हैं उनमें से रत्नप्रभा नामक पृथिवी में भवनवासी देव रहते हैं । जो मनुष्य कषाय सहित तप करते हैं वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवों में नीच देव कहलाते हैं तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते हैं ॥75-76 ॥ रत्नप्रभा पृथिवी के नीचे छह भयंकर पृथिवियाँ और हैं जिनमें नारकी जीव पापकर्म का फल भोगते हैं ॥ 77 ॥ वे नारकी कुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यंत दारुण होते हैं, वे अंधकार से परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखों के कारण हैं ॥78॥ उन पृथिवियों में कुंभीपाक नाम का भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटों से युक्त शाल्मली वृक्ष है ॥79॥ असिपत्र वन से आच्छादित तथा क्षुरों की धार के समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्नि के समान निरंतर लोहे की तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥80॥ मद्यमांस खाने वाले तथा प्राणियों का घात करने वाले जीव उन नरकों में निरंतर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥81॥ वहाँ अर्ध-अंगुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेष मात्र के लिए भी विश्राम कर सकें ॥82॥ हम यहाँ छिपकर रहेंगे ऐसा सोचकर नारकी भाग कर जाते हैं पर वहीं पर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥ 83 ॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारों से कुटिल अग्नि में जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्नि में पड़कर विरस शब्द करते हैं । यदि अग्नि के भय से भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदी के जल में पहुँचते हैं तो अत्यंत खारी तरंगों के द्वारा अग्नि से भी अधिक जलने लगते हैं ॥ 84-85 ॥ यदि छाया की इच्छा से शीघ्र ही भागकर असिपत्र वन में पहुंचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, खड□ग, गदा आदि शस्त्रों से उनके खंड-खंड हो जाते हैं ॥86॥ जिनके नाक, कान, स्कंध तथा जंघा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खून की मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियों को कुंभीपाक में डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदि में भरकर उन्हें पकाया जाता है ॥87॥ जिनसे कर शब्द निकल रहा है ऐसे कोल्हुओं में उन विह्वल नारकियों को पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥88॥ अंधा कर देने वाले बहुत ऊँचे वृक्षों पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा बड़े-बड़े मुद्गरों की चोट से उनका मस्तक पीटा जाता है ॥ 89 ॥ जो नारकी प्यास से पीड़ित होकर पानी मांगते हैं उनके लिए तामा आदि धातुओं का कलल ( पिघलाया हुआ रस ) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अत्यंत दु:खी हो जाते हैं । 90॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जबर्दस्ती संडाशी से मुँह फाड़कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥ 91 ॥ पाप करने वाले उन नारकियों को जमीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दुष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरों से रूंदते हैं ॥ 92॥ पूर्वोक्त कललपान से उन नारकियों के कंठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं । यही नहीं पेट फोड़कर उनकी आंते भी बाहर निकल आती हैं ॥ 93 ॥ इसके

सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त कराते हैं उसका वर्णन करने के लिए कौन समर्थ है ? ॥ 94 ॥ इस तरह मांस खाने से नरक में महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुष को प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षण का त्याग करना चाहिए ॥95 ॥ इसी बीच में जिसका मन अत्यंत भयभीत हो रहा था ऐसे कुंडलमंडित ने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रत से युक्त मनुष्यों की क्या गति होती है सो कहिए ॥96 ॥ इसके उत्तर में गुरु महाराज ने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यंत दृढ़ता से व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्य को जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥97॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षण से दूर रहता है भले ही वह उपवासादि से रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथ में रहती है ॥98॥ और जो शील से संपन्न तथा जिनशासन की भावना से युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गों में उत्पन्न होता है ॥ 99 ॥ धर्म का उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गयी है । जो मनुष्य मांस-भक्षण से निवृत्त रहता है उसी के अत्यंत निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥100॥ जो परिग्रही म्लेच्छ अथवा चांडाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस भक्षण से दूर रहता है तो वह भी पाप से मुक्त हो जाता है ॥ 101 ॥ ऐसा जीव पाप से मुक्त होते ही पुण्य-बंध करने लगता है और पुण्य-बंध के प्रभाव से वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥ 102 ॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह निश्चित ही देवों के उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥103॥ इस प्रकार आचार्य के वचन सुनकर कुंडलमंडित मंद भाग्य होने से अणुव्रत धारण करने के लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥104॥ अतः उसने शिर से गुरु को नमस्कार कर मधुमांस का परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥105॥

तदनंतर जिन-प्रतिमा और दिगंबराचार्य को नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देश से बाहर निकला कि मेरी माता का सगा भाई यमराज के समान पराक्रम का धारी है सो वह विपत्ति में पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिर से राजा होकर निश्चित ही शत्रु को जीतूंगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुंडलमंडित दुःखी हो दक्षिण दिशा की ओर चला ॥106-108॥ वह थकावट आदि दुःखों से परिपूर्ण होने के कारण धीरे-धीरे चलता था । बीच में पूर्वभव में संचित पापकर्म के उदय से उसके शरीर में अनेक रोग प्रकट हो गये ॥ 109॥ उसकी संधियाँ छिन्न होने लगी और मर्म स्थानों में भयंकर पीड़ा होने लगी । अंत में समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥110॥ जिस समय कुंडल मंडित ने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवा का जीव जो स्वर्ग में देव हुआ था शेष पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग से च्युत हुआ ॥111॥

भाग्यवश वे दोनों ही जीव राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ में उत्पन्न हुए । गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मोदय की यह विचित्र चेष्टा देखो ॥112॥ इसी बीच में वह पिंगल ब्राह्मण अच्छी तरह मरणकर तप के प्रभाव से महातेजस्वी महाकाल नाम का असुर हुआ ॥113॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञान से धर्म के फल का विचार किया और साथ ही इस बात का ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञान से इन सब बातों को अच्छी तरह से जान गया ॥114॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टा से क्या प्रयोजन है ? वह कुंडलमंडित कहाँ है जिसने मुझे विरहरूपी सागर में गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त करायी थी ॥115॥ उसने अवधिज्ञान से यह जान लिया कि कुंडलमंडित राजा जनक की पत्नी के गर्भ में चित्तोत्सवा के जीव के साथ विद्यमान है ॥ 116 ॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भ में ही इसे मारता हैं तो रानी विदेहा मरण को प्राप्त होगी इसलिए यह युगल संतान को उत्पन्न करे पीछे देखा जायेगा । दो गर्भ को धारण करने वाली इस रानी के मारने से मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भ से निकलते ही इस पापी कुंडलमंडित को अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊंगा ॥117-118॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्म के प्रभाव से अत्यंत क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथ से हाथ को मसलता हुआ उस गर्भ की रक्षा करने लगा ॥119॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसी को दुःख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालांतर में वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥120॥

अथानंतर समय आने पर रानी विदेहा ने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल संतान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुर ने पुत्र का अपहरण कर लिया ॥121॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुंडलमंडित के जीव को मैं शिला पर पछाड़ कर मार डालें । फिर कुछ देर बाद वह विचार करने लगा ॥122॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्य के करने से संसार ( जन्म-मरण ) की वृद्धि होती है उस कार्य को बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥123 ॥

पूर्वभव में मुनि अवस्था में जब मैं सब प्रकार के आरंभ से रहित था तथा तपरूपी काँवर को धारण करता था तब मैंने तृण को भी दुःख नहीं पहुंचाया था ॥124॥ उन गुरु के प्रसाद से अत्यंत निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कांति को प्राप्त हुआ हूँ । अतः अब ऐसा पाप कैसे

कर सकता हूँ ॥125 ॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम वृद्धि को प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागर में निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःख से जलता रहता है ॥126 ॥ परंतु जिसकी भावना निर्दोष है, जो दयालु है और जो अपने परिणामों को ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतल में स्थित रहता है ॥127॥ ऐसा विचार करके हृदय में दया उत्पन्न हो गयी जिससे उसने उस बालक को मारने का विचार छोड़ दिया तथा उसके कानों में देदीप्यमान किरणों के धारक कुंडल पहनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥ 128॥ तदनंतर वह देव उस बालक में पर्णलध्वी विद्या का प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थान में छोड़कर इच्छित स्थान पर चला गया ॥ 129॥ तदनंतर चंद्रगति विद्याधर रात्रि के समय अपने उद्यान में स्थित था सो उसने आकाश से पड़ते हुए सुख के पात्र स्वरूप उस बालक को देखा ॥130 ॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई बिजली का टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चंद्रगति विद्याधर ज्योंही आकाश में उड़ा त्योंही उसने उस शुभ बालक को देखा ॥131 ॥ देखते ही उसने बड़े हर्ष से उस बालक को बीच में ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करने वाली पुष्पवती रानी की जांघों के बीच में रख दिया ॥132 ॥ यही नहीं, ऊँची आवाज से वह रानी से बोला भी कि हे सुंदरि! उठो, क्यों सो रही हो? देखो तुमने सुंदर बालक उत्पन्न किया है ॥133 ॥ तदनंतर पति के हस्त स्पर्श से उत्पन्न सुखरूपी संपत्ति से जागृत हो रानी शय्या से सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥134॥

ज्योंही उस सुंदरमुखी ने अत्यंत सुंदर बालक देखा, त्योंही उसकी किरणों के समूह से उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गयी ॥135 ॥ उस सुंदरी ने परम आश्चर्य को प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्री ने उत्पन्न किया है ? ॥136 ॥ इसके उत्तर में चंद्रगति ने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । विश्वास रखो, संशय मत करो, तुम से बढ़कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है ? ॥137 । उसने कहा कि हे प्रिय ! मैं तो वंध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं दैव के द्वारा ही प्रतारित हूँ-ठगी गयी हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥138॥ उसने कहा कि हे देवि ! शंका मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोग से स्त्रियों के प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥139॥ रानी ने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह बताओ कि इसके कुंडल लोकोत्तर क्यों है ? मनुष्य लोक में ऐसे उत्तम रत्न कहाँ से आये ? ॥140॥ इसके उत्तर में चंद्रगति ने कहा कि हे देवि ! इस विचार से क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाश से नीचे गिर रहा था सो बीच में ही मैंने प्राप्त किया है ॥141 ॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उच्चकुल में उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुष से उत्पन्न सूचित करते हैं ॥142॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भ का भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्र लाभ रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥ 143॥ जो मनुष्य कुक्षि से उत्पन्न होकर भी पुत्र का कार्य नहीं करता है हे प्रिये ! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥ 144॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारे पुत्र नहीं है अतः यह तुम्हारा पुत्र हो जायेगा । इस उत्तम वस्तु के भीतर जाने से क्या प्रयोजन है ? ॥145॥

तदनंतर ऐसा ही हो इस प्रकार रानी प्रसूतिका गृह में चली गयी और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्म का समाचार लोक में बड़े हर्ष से प्रकाशित कर दिया गया ॥146॥ तदनंतर रथनूपुर नगर में पुत्र का जन्मोत्सव किया गया । इस उत्सव में आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई बंधु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥147 ॥ चूंकि वह बालक रत्नमय कुंडलों की किरणों के समूह से घिरा हुआ था इसलिए माता-पिता ने उसका भामंडल नाम रक्खा ॥148॥ अपनी लीलाओं से मन को हरने वाला तथा समस्त अंतःपुर के करकमलों में भ्रमर के समान संचार करने वाला वह बालक पोषण करने के लिए धाय को सौंपा गया ॥149 ॥

इधर पुत्र के हरे जाने पर कुररी के समान विलाप करती हुई रानी विदेहा ने समस्त बंधुओं को शोकरूपी सागर में गिरा दिया ॥150॥ चक्र से ताड़ित हुई के समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स ! कठोर कार्य करने वाला कौन पुरुष तुझे हर ले गया है ? ॥ 151॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुझ अबोध बालक को उठाने के लिए उस निर्दय पापी के हाथ कैसे पसरे होंगे ? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थर का बना होगा ॥152॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशा में आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और संध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनी का पुत्र तो अस्त हो गया और संध्या को भाँति यह पुत्री स्थित रह गयी ॥153॥ निश्चित ही भवांतर में मैंने किसी बालक का वियोग किया होगा सो उसी कर्म ने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नहीं होता ॥154॥ पुत्र की चोरी करने वाले उस दुष्ट ने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला । जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥155 ॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोर से विलाप करती हुई रानी के पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर ले गया है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥156-157॥

इष्ट वस्तु पूर्व कर्म के प्रभाव से अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनंतर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥158॥ तुम स्वस्थता को प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार बतलाने के लिए मित्र राजा दशरथ के पास पत्र भेजता हूँ ॥159॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरों से समस्त पृथिवी को आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्र की खोज करेंगे ॥160॥ इस प्रकार स्त्री को सांत्वना देकर उसने मित्र के लिए पत्र दिया । उस पत्र को बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोक से व्याप्त हो गये ॥161॥ उन दोनों ने पृथिवी पर पुत्र की खोज की । पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बंधुजन शोक को मंद कर बड़े कष्ट से चुप बैठ रहे ॥162॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र संबंधी शोक के कारण अश्रुओं से व्याप्त नहीं हुए हों ॥ 163 ॥ उस समय बंधु जनों का शोक भुलाने का कारण यदि कुछ था तो अत्यंत मनोहर और शुभ बाल चेष्टाओं को धारण करने वाली जानकी ही थी ॥164॥

वह जानकी हर्ष को प्राप्त होने वाली स्त्रियों की गोद में निरंतर वृद्धिंगत हो रही थी । वह अपने शरीर की विशाल कांति से दिशाओं के समूह को लिप्त करती थी । वह विपुल कमलों को प्राप्त लक्ष्मी के समान जान पड़ती थी, उसका कंठ सुंदर था, पवित्र हास्य से उसका मुख शुक्ल हो रहा था और कमल के समान उसके नेत्र थे ॥165॥ समस्त भक्तजनों के लिए सुख का समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूंकि उस जानकी में अत्यंत समृद्धि के साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यंत मनोहर और उत्तम लक्षणों से युक्त उस जानकी को लोग भूमि की समानता रखने के कारण सीता भी कहते थे ॥ 166 ॥ उसने अपने मुख से चंद्रमा को जीत लिया था, उसके हाथ पल्लव के समान लालकांति के धारक थे, वह नीलमणि के समान कांति के धारक केशों के समूह से मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनी की चाल को जीत लिया था, उसकी भौंहें सुंदर थीं तथा मौलिश्री के समान सुगंधित उसके मुख के सुवास से उसके पास भौंरों के समूह मंडराते रहते थे ॥167॥ उसकी भुजाएँ अत्यंत सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्र के समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केले के स्तंभ के समान सुंदर थीं, उसके पैर स्थल-कमल के समान उन्नत पृष्ठभाग से सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तन युगल अत्यधिक कांति से युक्त थे ॥168॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलों के विशाल कोष्ठों में अपनी कांति से विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओं के मध्य में स्थित हो बड़ी सुंदरता के साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥169॥ यदि सूर्य की प्रभा, चंद्रमा की चाँदनी, इंद्र की इंद्राणी, और चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकी के शरीर की शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूप की अपेक्षा अधिक सुंदर होती ॥170॥ जिस प्रकार विधाता ने रति को कामदेव की पत्नी निश्चित किया था, उसी प्रकार राजा जनक ने सर्व प्रकार के विज्ञान से युक्त सीता को राजा दशरथ के प्रथम पुत्र राम की पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलों की लक्ष्मी सूर्य को किरणों के साथ संपर्क करने योग्य ही है ॥ 171 ॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य के द्वारा प्रोक्त पद्मचरित में सीता और भामंडल की उत्पत्ति का कथन करने वाला छब्बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥26॥

## म्लेच्छों की पराजय

सत्ताईसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर भामंडल के सुंदर वृत्तांत से आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिक ने नूतन विनय से युक्त हो **अर्थ**ात् पुनः नमस्कार कर गौतम गणधर से पूछा कि हे भगवन् ! राजा जनक ने राम का ऐसा कौन-सा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने राम के लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देने का निश्चय किया ? ॥1-2॥ तदनंतर करतल के आसंग से जिनके दाँतों की कांति दूनी हो गयी थी ऐसे गौतम गणधर चित्त को आह्लादित करने वाले वचन बोले ॥3॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुनो, संक्लेश हीन कार्य को करने वाले रामचंद्र के लिए अत्यंत बुद्धिमान् जनक ने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥4॥ विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण और कैलास पर्वत के उत्तर की ओर बीच-बीच में अंतर देकर बहुत□से देश स्थित हैं ॥5॥ उन देशों में एक अर्धवर्वर नाम का देश है जो असंयमी जनों के द्वारा मान्य है, धूर्त जनों का जिसमें निवास है तथा जो अत्यंत भयंकर म्लेच्छ लोगों से व्याप्त है ॥6॥ उस देश में यमराज के नगर के समान एक मयूरमाल नाम का नगर है । उसमें आंतरंगतम नाम का राजा राज्य करता था ॥7॥ पूर्व से लेकर पश्चिम तक की लंबी भूमि में कपोत, शुक, कांबोज, मंकन आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकार के शस्त्र तथा नाना प्रकार के भीषण अस्त्रों से युक्त हो अपने

सब साधनों के साथ प्रीतिपूर्वक आंतरंगतम राजा की उपासना करते थे ॥ 8-9॥ जिनका गमन बीच-बीच में अत्यंत वेग से होता था तथा जो दया से रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशों को उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥10॥ तदनंतर टिड्डियों के समान उपद्रव करने वाले वे म्लेच्छ राजा जनक के देश को व्याप्त करने के लिए उद्यत हुए ॥11॥ राजा जनक ने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथ से आंतरंगतम के आने की खबर दी ॥ 12 ॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! प्रजा वत्सल राजा जनक आप से निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजा की सेना से आक्रांत हो चुका है ॥ 13 ॥ उन म्लेच्छों ने आर्य देश नष्ट-भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत् को उजाड़ दिया है । वे पापी समस्त प्रजा को एक वर्ण को करने के लिए उद्यत हुए हैं ॥14॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दशा में हम क्या करें ? अथवा किसकी शरण में जावें ? ॥15 ॥ हम मित्रजनों के साथ किस दुर्ग का आश्रय लेकर रहें अथवा नंदी, कलिंद या विपुलगिरि इन पर्वतों का आश्रय लें ?॥16 ॥ अथवा सब सेना के साथ निकुंज गिरि में जाकर शत्रु की आती हुई भयंकर सेना को रोकें ॥17॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकों से व्याप्त इस विह्वल प्रजा को रक्षा कर सकेंगे ॥ 18॥ इसलिए हे राजन् ! मैं आप से कहता हूँ कि चूंकि आप ही पृथिवी की रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत् के स्वामी हैं ॥12॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भाव पूर्वक पूजा करते हैं । अंकुर उत्पन्न होने की शक्ति से रहित पुराने धान आदि के द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकार के यज्ञ करते हैं ॥20॥ निर्ग्रंथ मुनि मुक्ति क्षांति आदि गुणों से युक्त होकर ध्यान में तत्पर रहते हैं तथा मोक्ष का साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥21॥ जिनमंदिर आदि स्थलों में कर्मो को नष्ट करने वाले जिनेंद्र भगवान् की बड़ी-बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥22॥ प्रजा की रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोक में राजाओं के धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥ 23 ॥ बहुत बड़े खजाने का स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नता से पृथिवी को रक्षा करता है और परचक्र के द्वारा अभिभूत होने पर भी जो विनाश को प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्म से रहित एवं यज्ञ आदि में दक्षिणा देने वाले लोगों की जो रक्षा करता है उस राजा को भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥24-25॥ पृथिवीतल पर मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अधिकार है सो राजाओं के द्वारा सुरक्षित मनुष्यों को ही ये अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥26 ॥ राजा के बाहुबल की छाया का आश्रय लेकर प्रजा सुख से आत्मा का ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥27॥ जिस देश का आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षा के कारण राजा तप का छठवाँ भाग प्राप्त करता है ॥28॥

अथानंतर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही राम को बुलाकर राज्य देने के लिए उद्यत हो गये ॥29॥ किंकरों ने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनंद देने वाली भेरी बजायी । हाथी और घोड़ों से व्याकुल समस्त मंत्री लोग आ पहुँचे ॥30॥ देदीप्यमान शूरवीर जल से भरे हुए सुवर्ण कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥31॥ जिनके नूपुरों से सुंदर शब्द हो रहा था तथा जो उत्तमोत्तम वेष धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियाँ पिटारों में वस्त्रालंकार ले-लेकर आ गयीं ॥32॥ यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तब राजा दशरथ ने कहा कि हे पुत्र ! तुम इस पृथिवी का पालन करो ॥33॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवों के द्वारा भी दुर्जेय है । मैं प्रजा के हित को वांछा से जाकर उसे जीतूंगा ॥34॥ तदनंतर कमललोचन रामने राजा दशरथ से कहा कि हे तात ! अस्थान में क्रोध क्यों करते हो ? ॥ 35॥ आप रण की इच्छा से जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशु स्वरूप भाषाहीन दुष्ट मनुष्यों से क्या कार्य हो सकता है ? ॥36॥ चूहों के विरोध करने से उत्तम गजराज क्षोभ को प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रुई को जलाने के लिए तत्पर होता है ॥37॥

वहाँ जाने के लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए । ऐसा कहने पर हर्षित शरीर के धारी पिता ने राम का आलिंगन कर कहा ॥ 38॥ कि हे पद्म ! अभी तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमार है तथा नेत्र कमल के समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥39॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वन को जला देती है इसलिए बड़ों से क्या प्रयोजन है ? ॥40॥ बालसूर्यं अकेला ही घोर अंधकार को तथा नक्षत्र-समूह को कांति को नष्ट कर देता है इसलिए विभूति से क्या प्रयोजन है ? ॥41॥

तदनंतर जिनका शरीर रोमांचित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुनः परम प्रमोद और विषाद को प्राप्त हुए । उनके नेत्रों से आंसू निकल पड़े ॥42॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियों का यही स्वभाव है कि वे युद्ध में प्रस्थान करने के लिए अथवा जीवन का भी त्याग करने के लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥43॥ उन्होंने विचार किया कि जब तक आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्ट

को पाकर भी मरण को प्राप्त नहीं होता ॥44॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम-लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण-कमल को नमस्कार कर बाहर चले गये ॥45॥

तदनंतर जो सर्व शस्त्र चलाने में कुशल थे, सर्व शास्त्रों में निपुण थे, सर्व लक्षणों से परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरंग सेना से सहित थे, विभूतियों से परिपूर्ण थे तथा आत्मतेज से देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथ पर आरूढ़ होकर चले ॥ 46-47॥ राजा जनक अपने भाई के साथ पहले ही निकल पड़ा था । जनक और शत्रुसेना के बीच में दो योजन का ही अंतर रह गया था ॥ 48 । जिस प्रकार सूर्य-चंद्रमा आदि ग्रह मेघसमूह के बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनक के महारथी योद्धा शत्रु के शब्द को सहन नहीं करते हुए मलेच्छ समूह के भीतर प्रविष्ट हो गये ॥49॥ दोनों ही सेनाओं के बीच जिसमें बड़े-बड़े शस्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओं से व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करने वाला महा भयंकर युद्ध हुआ ॥50॥ राजा जनक ने देखा कि भाई कनक संकट में पड़ गया है तब उसने अत्यंत क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियों की घटा को प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥51॥ म्लेच्छों की सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होने पर भी राजा जनक को सब दिशाओं में घेर लिया ॥52॥ इसी बीच में सुंदर नेत्रों को धारण करने वाले राम लक्ष्मण के साथ वहाँ जा पहुँचे । पहुँचते ही उन्होंने शत्रु की अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥53॥ राम के सफेद छत्र को देखकर शत्रु की सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गयी जिस प्रकार कि अंधकार को संतति पूर्णिमा के चंद्रमा को देखकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥54॥ बाणों के समूह से जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनक को रामने उसी तरह आश्वासन दिया-धैर्य बंधाया जिस प्रकार कि जगत् के प्राणस्वरूप धर्म के द्वारा दुःखी प्राणी को आश्वासन दिया जाता है ॥ 55॥ रामचंद्र चंचल घोड़ों से जुते हुए रथ पर सवार थे, उनका शरीर कवच से प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुंडल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥56॥ वे एक हाथ में लंबा धनुष और दूसरे हाथ में बाण लिये हुए थे । उनकी ध्वजा में सिंह का चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवी के समान धीर था ॥57 ॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीला पूर्वक विशाल सेना के बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणों से सहित सूर्य ही हो ॥58॥ प्रसन्नता से भरे रामने जनक और कनक दोनों भाइयों की विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेना को उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केला के वन को नष्ट कर देता है ॥ 59॥ जिस प्रकार वायु से प्रेरित मेघ समुद्र पर जल-वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मण ने शत्रुदल पर कान तक खिचे हुए बाण बरसाये ॥60॥ वह अत्यंत तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, क्रकच और वज्रदंड आदि शस्त्रों की खूब वर्षा कर रहा था ॥61॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ों से वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मण को भुजा से छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रों से म्लेच्छों के शरीर कट रहे थे ॥62॥ म्लेच्छों की इस सेना में बाणों से कितने ही योद्धाओं का वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जाने से नीचे गिर गये थे ॥63 ॥ यद्यपि लोक के शत्रुओं की वह सेना लक्ष्मण से पराङ्मुख हो गयी थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥64॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराज को देखकर म्लेच्छरूपी तेंदुए सब ओर से क्षोभ को प्राप्त हो गये ॥65 ॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजों के शब्द से भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलता से लिये थे और झुंड के झुंड बनाकर पंक्तिरूप में खड़े थे ॥ 66॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्र का साफा बांधे हुए थे, कोई छुरी हाथ में लिये थे और नाना रंग के शरीर धारण कर रहे थे ॥67 ॥ कोई मसले हुए अंजन के समान काले थे, कोई सूखे पत्तों के समान कांति वाले थे, कोई कीचड़ के समान थे और कोई लाल रंग के थे ॥68॥ अधिकतर वे कटिसूत्र में मणि बाँधे हुए थे, पत्तों के वस्त्र पहने हुए थे, नाना धातुओं से उनके शरीर लिप्त थे, फूल की मंजरियों से उन्होंने सेहरा बना रखा था ॥ 69॥

कौड़ियों के समान उनके दांत थे, बड़े मट का के समान उनके पेट थे और सेना के बीच वे फूले हुए कुटज वृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे ॥70॥ जिनके हाथों में भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जांघे, भुजाएँ और स्कंध अत्यंत स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वीले असुरों के समान जान पड़ते थे ॥71॥ वे अत्यंत निर्दय थे, पशुओं का मांस खाने वाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा **अर्थ**ात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥72॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कंक आदि के चिह्न उनकी पताकाओं में थे, उनके सामंत भी अत्यंत भयंकर थे तथा नाना प्रकार के वाहन, चद्दर और छत्र आदि से सहित थे ॥73॥ नाना युद्धों में जिन्होंने अंधकार उत्पन्न किया था, जो समुद्र की लहरों के समान प्रचंड थे, और नाना प्रकार का भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥74॥ अपने सामंत रूपी वायु से प्रेरित होने के कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षोभ को प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघों ने लक्ष्मण रूपी पर्वत को घेर लिया ॥

75॥ जिस प्रकार बैलों के समूह को नष्ट करने के लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसी प्रकार उन सबको नष्ट करने के लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥76॥ लक्ष्मण के दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गयी जिससे वे अपने ही लोगों से कुचले जाकर पृथिवी पर गिर पड़े । तथा भय से जिनके शरीर खंडित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥77॥

तदनंतर आंतरंगतम राजा सेना को रोकता हुआ सब सेना के साथ लक्ष्मण के सम्मुख खड़ा हुआ ॥78॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरंतर बरसते हुए बाणों से लक्ष्मण का धनुष तोड़ डाला ॥79॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथरहित कर दिया **अर्थ**ात् उसका रथ तोड़ डाला । यह देख राम ने वायु के समान वेग वाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥80॥ लक्ष्मण के लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वन को जलाती है, उसी प्रकार राम ने शत्रु की सेना को जला दिया ॥ 81 ॥ उन्होंने कितने ही लोगों को बाणों के समूह से छेद डाला, कितने ही लोगों को कनक और तोमर नामक शस्त्रों से काट डाला तथा जिनके ओठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगों के शिर चक्र रत्न से नीचे गिरा दिये ॥82॥

टूटे-फूटे चमर, छत्र, ध्वजा और धनुषों से व्याप्त म्लेच्छों की वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गयी-इधर-उधर भाग गयी ॥ 83॥ जिस प्रकार साधु कषायों को क्षण-भर में नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करने वाले रामने निमेष मात्र में ही समस्त म्लेच्छों को नष्ट कर दिया ॥ 84॥

जो म्लेच्छ राजा समुद्र के समान अपार सेना के साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दस घोड़ों के साथ बाहर निकला था ॥ 85 ॥ इन विमुख नपुंसकों को मारने से क्या प्रयोजन है ऐसा विचारकर कृतकृत्य राम लक्ष्मण के साथ सुखपूर्वक युद्ध से लौट गये ॥86॥

भय से घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजय की इच्छा छोड़ संधि कर सह्य और विंध्य पर्वतों पर रहने लगे ॥87॥

जिस प्रकार साँप गरुड़ से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार मलेच्छ भी राम से भयभीत रहने लगे । वे कंद-मूल, फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥88॥

तदनंतर युद्ध में जिनका शरीर शांत रहा था ऐसे सानुज **अर्थ**ात् छोटे भाई लक्ष्मण सहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई कनक सहित हर्षित जनक को छोड़कर जनक अर्थात् पिता के सम्मुख चले गये ॥ 89॥

तदनंतर जिसे परम आनंद उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्य से विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनंद से क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुग के समान वैभव से सुशोभित होने लगी ॥20॥

जिस प्रकार हिम के आवरण से रहित नक्षत्रों से आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म-**अर्थ**-काम में आसक्त पुरुषों से संसार सुशोभित होता है ॥91॥

गौतमस्वामी श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! राजा जनक ने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोक-सुंदरी पुत्री जानकी राम के लिए देना निश्चित की थी ॥92॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्यों का अपना क्रिया कर्म ही उत्तम पुरुषों के साथ संयोग अथवा वियोग होने में कारणभाव को प्राप्त होता है ॥ 93॥

परम प्रताप को प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणों से युक्त महात्मा रामचंद्र समस्त संसार में इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणों से युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥ 94॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में म्लेच्छों के पराजय का वर्णन करने वाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥27॥

## राम-लक्ष्मण को स्वयंवर में रत्नमाला की प्राप्ति

अट्ठाईसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जो इस प्रकार के पराक्रम से आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्य से युक्त था ऐसा नारद युद्ध की चर्चा के बिना कहीं भी संतोष को प्राप्त नहीं होता था ॥1॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसार में प्रसिद्ध अपनी सीता नाम की पुत्री उसके पिता राजा जनक ने रामचंद्र के लिए देने की इच्छा की है ॥2॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्या को देखें तो सही कि वह शुभ लक्षणों से

कैसी है जिससे रामचंद्र के लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥3॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीता के महल में पहुँचा जबकि वह एकांत स्थान में कमल की भीतरी कलिका को अपने स्तन तट के समीप करके इस बुद्धि से उसे देख रही थी कि यह मेरी कांति के समान है या नहीं ॥4॥ जिसे सीता के देखने की लालसा थी तथा जिसका हृदय अत्यंत शुद्ध **अर्थ**ात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीता के महल में ऊपर जा चढ़ा ॥5॥ तदनंतर जिसका दर्पण में प्रतिबिंब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुट से भीषण था ऐसा नारद का शरीर देखकर सीता भय से व्याकुल हो गयी ॥6॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्धोच्चारित शब्द कर वह महल के भीतर घुस गयी । उस समय उसका शरीर कंपित हो रहा था ॥ 7 ॥ अत्यंत कुतूहल से भरा नारद भी उसी के पीछे महल में भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वार की रक्षा करने वाली स्त्रियों ने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥8॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियों के बीच बड़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुष को धारण करने वाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥9॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकार का जोरदार शब्द कर रहे थे । जो ओठ चाब रहे थे, शस्त्रों से युक्त थे तथा मारने के लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषों को देखकर नारद अत्यंत भयभीत हो उठा । उसके शरीर से अत्यधिक कंपकंपी छूट रही थी, और रोमांच खड़े हो गये थे । खैर, जिस किसी तरह वह आकाश में उड़कर कैलास पर्वत पर पहुंचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥10-11॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं बड़े कष्ट में पड़ गया था । बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओं से झुलसा पक्षी किसी बड़े दावानल से बाहर निकलता है उसी प्रकार मैं भी उस कष्ट से बाहर निकला हूँ ॥12॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशा में लग रहे थे । तदनंतर धीरे-धीरे उसने शरीर की कंपकंपी छोड़ी और ललाट पर स्थित पसीने की बड़ी-बड़ी बूंदें पोंछी ॥13॥ उसने काँपते हुए हाथ से अपनी बिखरी हुई जटाएं ठीक की । यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटना का स्मरण हो आता था तब वह लंबी-लंबी साँसें छोड़ने लगता था ॥ 14॥ तत्पश्चात् जब भय दूर हुआ तो क्रोध में आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अंग निश्चितरूप से स्थिर थे केवल वह मस्तक को कुछ-कुछ हिला रहा था ॥15॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मन में कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचंद्र के अनुराग से सीता का रूप देखने की इच्छा से ही वहाँ गया था परंतु ऐसी दशा को प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तक की आ शंका हो गयी ॥16॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ़कुमारी की वह चेष्टा कितनी दुष्टता से भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराज की समानता करने वाले मनुष्यों के द्वारा पकड़ लिया गया ॥17॥ वह पापिनी अब जायेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकट में डालूंगा । मैं तो बाजे के बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जायें तो कहना ही क्या है ? ॥18॥ ऐसा विचारकर उसने एक पट पर प्रत्यक्ष के समान सीता का सुंदर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥ 19 ॥ वहाँ जाकर उसने उपवन में जो अत्यंत उत्तुंग क्रीड़ा भवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगर के बाहर रहने लगा । ॥20॥

अथानंतर किसी दिन अनेक कुमारों के साथ क्रीड़ा करता हुआ भामंडल कुमार वहाँ आया ॥ 21 ॥ सो चित्र में अंकित बहन सीता को देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृति से रहित हो गया **अर्थ**ात् सीता के चित्र को देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥ 22 ॥ वह निरंतर शोक करने लगा, अत्यंत लंबे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीर को वह चाहे जहाँ उपेक्षा से डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने-बैठने लगा ॥ 23 ॥ उसे न रात्रि में नींद आती थी न दिन में चैन पड़ता था । वह रात-दिन उसी के ध्यान में निमग्न रहता था । सुंदर उपचारों से उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥24॥ वह पुष्प, सुगंधित पदार्थ तथा आहार से ऐसा द्वेष करता था मानो उन्हें विषम यही समझता हो । वह संताप से युक्त होकर बार-बार जल से सींचे हुए फर्श पर लोटता था ॥25॥ वह मौन बैठा रहता था, कभी हंसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥26 ॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गयों मानो उसे भूत लग गया हो । तदनंतर बुद्धिमान पुरुषों ने उसकी आतुरता के कारणों का पता लगाया ॥27॥वेपरस्पर में इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है ? इस महल में यह चित्रपट किसने रखा है ? जान पड़ता है कि यह सब नारद की चेष्टा है ॥28॥

तदनंतर जब नारद ने सुना कि हमारे कार्य से भामंडल कुमार अत्यंत आकुल हो रहा है तब उसने निःशंक होकर उसके बंधुओं के लिए दर्शन दिया ॥29॥ उन सबने बड़े आदर से नारद की पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने ! कहो आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है ? ॥30॥ यह कोई नागकुमार देव की अंगना है या पृथिवी पर आयी हुई किसी कल्पवासीदेव की स्त्री आपने किसी तरह देखी है ? ॥31॥ तदनंतर परम विनय को धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्य को प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥32॥

कि इसी मध्यम लोक में अत्यंत मनोहर मिथिला नाम की नगरी है । उसमें इंद्रकेतु का पुत्र जनक नाम का राजा रहता है ॥33॥ उसके मन को बाँधने वाली विदेहा नाम की प्रिया है । उन दोनों की ही यह सीता नाम की कन्या है । यह कन्या उन दोनों के गोत्र का मानो सर्वस्व ही है ॥34॥ भामंडल के भाई-बंधुओं से ऐसा कहकर उसने भामंडल से कहा कि हे बालक ! तू विषाद को प्राप्त मत हो । यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥35॥ तू इसके रूपमात्र से ही ऐसी अवस्था को प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करने के लिए कौन समर्थ है ? ॥36 ॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वह तो धर्मध्यान में सुदृढ़रूप से निबद्ध मुनियों के चित्त को भी आकृष्ट कर सकती है ॥37॥ मैंने चित्रपट में उसका यह केवल आकार मात्र ही अंकित किया है । उसका जो लावण्य है वह तो उसी में है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥38॥ वह नवयौवन से उत्पन्न कांतिरूपी समुद्र की तरंगों में ऐसी जान पड़ती है मानो स्तनरूपी कलशों के सहारे तैर ही रही हो ॥39॥ कांति से वस्त्र को तिरोहित करने वाले उसके नितंब यदि देखने में आ जावें तो निश्चित ही वह योगियों के मन को भी समूल उखाड़कर फेंक दें ॥40॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्य में यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥41 ॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थानपर चला गया पर इधर भामंडल काम के बाणों से ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥42॥ चूंकि मेरा मन काम से इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस स्त्रीरत्न को नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ॥43॥

परम कांति को धारण करने वाली यह सुंदरी प्रमदा मेरे हृदय में स्थित है फिर अग्नि की ज्वाला के समान संताप क्यों कर रही है ॥44॥ सूर्य सिर्फ बाहरी चमड़े को जलाता है पर काम भीतरी भाग को जलाता है । इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥45॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं□एक तो उस स्त्री रत्न के साथ समागम और दूसरा काम के बाणों से मारा जाना ॥46॥ इस प्रकार निरंतर उसी का ध्यान करता हुआ भामंडल न भोजन में, न शयन में, न महल में और न उद्यान में□ कहीं भी धैर्य को प्राप्त हो रहा था ॥ 47 ॥

अथानंतर जब स्त्रियों को पता चला कि कुमार के दुःख का कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमार के पिता से यह समाचार कहा ॥48॥ कि इस समस्त अनर्थ का पिटारा नारद ही है । वही कहीं की एक अत्यंत सुंदरी स्त्री को चित्रपट पर अंकित करके लाया था ॥49॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यंत विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तु में धैर्य को प्राप्त नहीं हो रहा है । लज्जा ने उसे दूर से ही छोड़ दिया है ॥50॥ वह सीता शब्द का उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्या को देखता रहता है तथा वायु के वशीभूत हुए के समान नाना प्रकार की चेष्टाएँ करता रहता है ॥ 51 ॥ वह भोजनादि समस्त कार्यों से विमुख हो गया है **अर्थ**ात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है । इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते हैं तब तक उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न कराने के लिए कोई उपाय सोचा जाये ॥52॥ तदनंतर चंद्रगति विद्याधर इस समाचार को सुनकर घबड़ाया हुआ स्त्री के साथ आकर पुत्र से इस प्रकार बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थ चित्त होकर भोजनादि समस्त क्रियाएं करो । मैं तुम्हारे मन में स्थित उस कन्या को वरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥ 53-54॥ इस प्रकार पुत्र को सांत्वना देकर चंद्रगति विद्याधर हर्ष, विषाद और विस्मय को धारण करता हुआ एकांत में अपनी स्त्री से बोला कि ॥55॥ हे आर्ये ! विद्याधरों की अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगों का भूमिगोचरियों से साथ संबंध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥ 56॥ इसके सिवाय एक बात यह है कि भूमिगोचरी के घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करने पर भी यदि उसने कन्या नहीं दी तो उस समय मुख की क्या कांति होगी ? ॥57॥ इसलिए कन्या के प्रिय पिता को किसी उपाय से शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषय में कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥58॥ स्त्री ने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥59॥

तदनंतर राजा ने चपलवेग नामक भृत्य को आदरपूर्वक बुलाकर उसके कान में सब वृत्तांत सूचित कर दिया । ॥60॥ तत्पश्चात् स्वामी की आज्ञा से संतुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही उस प्रकार मिथिला की ओर चला जिस प्रकार कि हर्ष से भरा तरुण हंस सुगंधि से सूचित कमलिनी की ओर चलता है ॥61॥ उसने आकाश से उतरकर सुंदर घोड़े का रूप बनाया और वह गाय, भैंसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओं को भयभीत करने के लिए उद्यत हुआ ॥ 62॥ वह जिस देश के घात करने में प्रवृत्त होता था उसी ओर से रोने का प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था । राजा जनक ने भी जनसमूह से उस घोड़े की चेष्टाएँ सुनीं ॥63 ॥ सुनी ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग और कौतुक से युक्त हो उस घोड़े की चेष्टाएँ देखने के लिए नगर से बाहर भी आया और उसने नवयौवन से युक्त उस घोड़े को देखा ॥64॥ वह घोड़ा अत्यंत ऊंचा

था, मन को अपनी ओर खींचने वाला था, उसके शरीर में अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अंग में महान् आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यंत बलवान् था, टापों के अग्रभाग से वह पृथिवी को ताड़ित कर रहा था । उससे ऐसा जान पडता था मानो मृदंग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उस पर चढ़ने में असमर्थ है तथा उसका नथना कंपित हो रहा था ॥65-66॥ तदनंतर विशद्ध हर्ष को धारण करने वाले राजा जनक ने बार-बार उपस्थित लोगों से कहा कि मालूम किया जाये कि यह किसका घोड़ा बंधन मुक्त हो गया है ? ॥67॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहने में जिनका चित्त उत्कंठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणों ने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़े के समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥68॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवी में जितने राजा हैं उनमें किसी के ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥69॥ हम तो समझते हैं कि सूर्य के रथ में भी इस घोड़े की समानता करने वाला घोड़ा नहीं होगा ॥70॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करने वाले आपको लक्ष्य कर ही विधाता ने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥71॥

तदनंतर उस विनयवान घोड़े को दुहरी रस्सी से बांधकर घुड़साल में ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशर के विलेपन से गीला हो रहा था और उस पर सुंदर चमर हिल रहे थे ॥72॥ घुड़साल में निरंतर योग्य उपचारों से इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिन से घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिन से एक मास का समय व्यतीत हो गया ॥ 73 ॥ इस बीच में वन के एक कर्मचारी ने नमस्कार कर राजा जनक से निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देश में हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥74॥ तदनंतर प्रसन्नता से भरे राजा जनक उत्तुंग गजराज पर सवार होकर चले । वन का कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वन में प्रविष्ट हुए ॥75 ॥ वहाँ उन्होंने सरोवर के दूसरी ओर दुर्गम स्थान में खड़े हुए उत्तम हाथी को देखकर सारथी से कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़े को लाओ ॥76॥ कहने की देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनक के समीप खड़ा कर दिया गया । राजा जनक उस पर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाश में उड़ गया ॥77॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनमें चित्त आश्चर्य से व्याप्त हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोक को धारण करते हुए वापस लौट आये ॥78॥

अथानंतर मन के समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह घोड़ा अनेक नदी, पहाड़, देश और पर्वतों को लाँघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥79॥ तदनंतर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्ष की शाखा में मजबूती से झूम गये ॥ 80॥ तदनंतर वक्ष से नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरों से पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥ 81 ॥ वहाँ उन्होंने अत्यंत ऊँचा सुवर्णमय कोट और उत्तमोत्तम रत्नों से युक्त तोरण से समुद्भासित गोपूर देखा ॥82 ॥ लताओं के समूह से युक्त, फल और फूलों से समृद्ध तथा नाना प्रकार के पक्षियों से सुशोभित वृक्षों को नाना जातियां देखीं ॥83 ॥ जिनके शिखर संध्या के बादलों के समान सुशोभित थे, जो गोलाकार में स्थित थे तथा जो भवनों के राजा **अर्थ**ात् राजभवन की बड़ी तत्परता से सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलों को भी उन्होंने देखा ॥84॥

तदनंतर अतिशय चतुर राजा जनक ने दाहिने हाथ में तलवार लेकर सिंह के समान निःशंक हो गोपुर में प्रवेश किया ॥85॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रंग-बिरंगे अनेक प्रकार के फूल देखे । जिनकी सीढ़ियां मणि और स्वर्ण की बनी हुई थीं तथा जिनमें स्फटिक के समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी बावड़ियाँ देखी ॥86॥ जिन्हें देखकर आनंद उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगंधि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवों के समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुंद पुष्पों के विशाल मंडप भी उन्होंने देखे ॥ 87॥ तदनंतर राजा जनक ने खुले हुए अत्यंत सुंदर स्वच्छ नेत्र से माधवी लताओं की ऊँची जाली के बीच झाँक कर एक ऐसा सुंदर मंदिर देखा जो मोतियों की जाली से सुशोभित रत्नमय झरोखों से युक्त था, जो सुवर्ण निर्मित हजारों बड़े-बड़े खंभे धारण कर रहा था, नाना प्रकार के रूप से व्याप्त था, मेरु की शिखर के समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिवद्ध के समान अत्यंत मजबूत थी ॥ 88-90॥ उसे देखकर वे विचार करने लगे कि क्या यह आकाश से गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्यों के द्वारा हरण किया हुआ इंद्र का क्रीडागृह है ? ॥91॥ अथवा किसी कारणवश सूर्य को किरणों से जिसके खंड हो गये थे ऐसा पाताल से निकला हुआ नागेंद्र का भवन है ? ॥92॥ अहो! उस भले घोड़े ने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुंदर मंदिर को देख सका ॥ 93 ॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मंदिर में प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेंद्र भगवान् के दर्शन किये । जिन दर्शन के प्रभाव से

उनका मुखकमल खिल उठा था ॥94॥ मंदिर में विराजमान जिनेंद्रदेव अग्नि की शिखा के समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चंद्रमा के समान था, वे पद्मासन से विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुट को धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलों से उनकी पूजा की गयी थी, नाना प्रकार के रत्नों से उनको कांति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासन पर विराजमान थे ॥95-96॥ तदनंतर जिसके शरीर में रोमांच उठ रहे थे ऐसे राजा जनक ने हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये और बड़ी सावधानी से जिनेंद्रदेव को नमस्कार किया । नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेक से मूर्च्छित हो गया ॥97॥ क्षण-भर के बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुंदर सुसंस्कृत स्तुति की । तदनंतर वह परम आश्चर्य को धारण करता हुआ निःशंक हो वहीं बैठ गया ॥ 98॥

इधर चपलवेग नाम का विद्याधर जो घोड़े का रूप धरकर जनक को हर ले गया था अपने कार्य में सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रता से सब माया समेटकर तथा खड□गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुंचा ॥ 99 ॥ उसने संतुष्ट होकर अपने स्वामी के लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुंदर वन से वेष्टित जिनमंदिर में उन्हें ठहरा दिया गया है ॥100॥ राजा जनक को आया जानकर चंद्रगति परम हर्ष को प्राप्त हुआ । तदनंतर उदारचित्त को धारण करने वाला एवं नाना वाहनों से युक्त चंद्रगति आप्त वर्ग के साथ पूजा की उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथ पर सवार हो जिनमंदिर गया ॥101-102॥ जिसमें तुरही और शंखों का विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेना को आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥103॥ तदनंतर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस आदि नाना वाहनों पर स्थित पुरुषों के मध्य में एक विमान देखा ॥104॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयार्द्ध पर्वत पर वास करते हैं ॥105॥ इस सेना के बीच में अपने विमान में बैठा हुआ जो कांतिमां पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरों का राजा है ॥106॥ राजा जनक इस प्रकार को चिंता में तत्पर थे ही कि हर्ष से भरा तथा नम्रीभूत शरीर को धारण करने वाला वह चंद्रगति जिनमंदिर में आ पहुँचा ॥107॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम **अर्थ**ात् भय उत्पन्न करने वाला था और कुछ सौम्य अध्यात्मशांति उत्पन्न करने वाला ऐसे दैत्यराज को आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराज के सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥ 108॥ राजा चंद्रगति ने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेंद्रदेव की उत्तम स्तुति की ॥109॥ और प्रिया के समान जिसका स्वर अत्यंत सुखकारी था ऐसी वीणा को गोद में रख बड़ी भावना से युक्त हो जिनराज का गुणगान करने लगा ॥110॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकों के लिए वर देने वाले हैं, अतिशय पूर्ण पूजा के करने में चित्त धारण करने वाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इंद्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय-अविनाशी सुख के धारक हैं, ऐसे जिनेंद्रदेव को हे भव्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥111॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभ देव भगवान को मन से, वचन से शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त हैं, वर देने वाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञान से युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करने से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥112॥ तुम उन जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार करो जो कि अतिशयों से उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पाप को नष्ट कर दिया है, जो परमगति-सिद्धगति को प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणों की पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रु को पराजित कर दिया है ॥ 113 ॥ में भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानी से उन जिनेंद्र भगवान् की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणों से युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्यों के समूह को नम्रीभूत कर दिया है और जिन्हें नमस्कार करने मात्र से भक्तों का भय नष्ट हो जाता है ॥ 114॥ हे भव्यजन ! तुम उन जिनेंद्रदेव को प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणों को धारण करने वाले हैं, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने संसार रूपी समस्त कुचेष्टाओं को नष्ट कर दिया है, जो कलिकाल के पापरूपी सघन पट को दूर करने में समर्थ हैं तथा जो अतिशयों से पवित्र हैं अथवा अत्यंत पवित्र हैं ॥115॥

तदनंतर दैत्यराज के इस प्रकार गाने पर सुंदर शरीर को धारण करने वाला राजा जनक भय छोड़ जिनेंद्रदेव के सिंहासन के नीचे से बाहर निकल आया ॥ 116 ॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चंद्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालय के बीच रहते हैं ॥117॥ आप नागकुमार देवों के स्वामी हैं ? या विद्याधरों के अधिपति हैं ? अथवा किस नाम को धारण करने वाले हैं ? और यहाँ कहाँ से आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझ से कहो ॥118॥ इसके उत्तर में राजा ने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरी से आया हूँ । जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥119॥ जनक के इतना कहने पर दोनो के हृदय

परस्पर अत्यंत प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरे के लिए हाथ जोड़कर सूख से बैठ गये ॥120 ॥ क्षण-भर ठहरकर दोनों ने एक दूसरे के लिए अपना वृत्तांत सुनाया और परस्पर एक दूसरे का सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वास को प्राप्त हुए ॥ 121॥ तदनंतर बीच में ही बात काटकर चंद्रगति ने कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिला के राजा का दर्शन किया ॥122॥
हे राजन् ! मैंने अनेक लोगों के मुख से सुना है कि आपके शुभ लक्षणों से युक्त कन्या है ॥ 123॥ सो वह कन्या मेरे भामंडल नामक पुत्र के लिए दीजिए । आपके साथ संबंध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूंगा ॥124॥ इसके उत्तर में राजा जनक ने कहा कि हे विद्याधर राज ! यह सब हो सकता था परंतु वह कन्या राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र राम के लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥125॥ मित्र चंद्रगति ने कहा कि वह कन्या राम के लिए किस कारण निश्चित की गयी है ? इसके उत्तर में जनक ने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥ 126 ॥
अर्ध-राक्षसों के समान अत्यंत दुष्ट म्लेच्छों ने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्न से परिपूर्ण मिथिला नगरी को बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥127॥ समस्त प्रजा पीड़ित होने लगी, धन-धान्य के समूह चुराये जा ने लगे, और महानुभाव श्रावकों के धार्मिक पूजा-विधान आदि अनुष्ठान नष्ट किये जा ने लगे ॥128॥ तदनंतर उनके साथ मेरा महायुद्ध हआ । सो उस महायुद्ध में रामने मेरो तथा मेरे छोटे भाई की रक्षा कर देवों से भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छों को पराजित किया॥129॥ राम का छोटा भाई लक्ष्मण भी इंद्र के समान महापराक्रमी तथा महा विनय से सहित है । वह सदा राम की आज्ञा का पालन करता है ॥130॥ यदि उन दोनों भाइयों के द्वारा म्लेच्छों की वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छों से भर जाती ॥131॥ वे म्लेच्छ विवेक से रहित तथा लोगों को पीड़ा पहुँचाने के लिए रोगों के समान थे अथवा महा उत्पात के समान अत्यंत भयंकर और विष के समान दारुण थे ॥132॥ गुणों से संपूर्ण तथा लोगों से स्नेह करने वाले उन दोनों पुत्रों को पाकर राजा दशरथ अपने भवन में इंद्र के समान राज्यसुख का उपभोग करते हैं ॥133॥ नय और शूरवीरता से सुशोभित राजा दशरथ के राज्य में इस समय हवा भी संपत्तिशाली प्रजा का कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है ?॥134॥
इस उपकार के बदले में उनका क्या उपकार करूँ इसी बात की आकुलता से चिंता करते हुए मुझे न रात में नींद है न दिन में ही ॥135॥ रामने मेरे प्राणों की जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिक की तो चर्चा ही क्या है ?॥136॥ जो महान् उपकार से दबा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करने में असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृण के समान तुच्छ समझता हूँ । मैं केवल भोगों के भव से पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥137॥ तदनंतर जब मेरी दृष्टि नवयौवन से संपूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोक के स्थान में भी मेरा शोक विरलता को प्राप्त हो गया ॥138॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचंद्रजी के लिए उसको देना संकल्पित कर लिया और नाव की भाँति इस पुत्री ने मुझे शोकरूपी सागर से पार कर दिया ॥132॥
तदनंतर जिनके मुखों पर अंधकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो ! तुम एक साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है॥ 140॥ राम ने म्लेच्छों को पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो क्षुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान होकर भूमिगोचरियों की परमशक्ति की प्रशंसा कर रहे हो ॥141॥ म्लेच्छों को निकालने मात्र से ही तुम राम की स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किंतु निंदा है । अहो ! यह बड़ी हँसी की बात है॥ 142॥
बालकी विषफल में, दरिद्र की बैर आदि तुच्छ फलों में और कौए की सूखे वृक्ष में प्रीति होती है । सो कहना पड़ता है कि प्राणी का स्वभाव कठिनाई से छूटता है ॥143॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियों का खोटा संबंध छोड़कर इस समय विद्याधरों के राजा के साथ संबंध करो ॥ 144॥ महा संपत्तिमान् तथा देवों के समान आकाश में चलने वाले विद्याधर कहाँ ? और सर्व प्रकार से अत्यंत दुःखी क्षुद्र भूमिगोचरी कहाँ ?॥145॥
तदनंतर जनक ने उत्तर दिया कि अत्यंत विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़े से मधुर जल को धारण करने वाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥146॥ अत्यंत सघन अंधकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटे से दीपक के द्वारा लोक की चेष्टा उत्पन्न होती है **अर्थ**ात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥147॥ मद को झराने वाले असंख्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चंद्रबिंब के समान उज्ज्वल जटाओं को धारण करने वाला सिंह का एक बच्चा कर लेता है॥ 148 ।। ऐसा कहने पर कितने ही विद्याधर ऐसा नहीं है इस प्रकार जोर से एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियों की निंदा करने लगे॥ 149॥ वे कहने लगे कि

भूमिगोचरी विद्या के माहात्म्य से रहित हैं, निरंतर पसीना से युक्त रहते हैं, शूर वीरता और संपत्ति से रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं॥ 150॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओं में क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥151॥

तदनंतर धीरवीर जनक ने कहा कि हाय ! बड़े कष्ट की बात है कि मुझ पापी को भूमिगोचरी उत्तमोत्तम राजाओं की निंदा सुननी पड़ी ॥ 152॥ क्या त्रिजगत् में प्रसिद्ध तथा लोक को पवित्र करने वाला भगवान् ऋषभदेव का वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥153॥ त्रिजगत् के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र-जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निंदनीय कैसे हो सकती है ? ॥ 154॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरों की भूमि में पुरुषों को पंच कल्याणकों की प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगों ने स्वप्न में भी देखी है ?॥155॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंश में हुई थी, जिन्होंने संसार को गोष्पद के समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरे का छत्र नहीं देखा, महारत्नों की समृद्धि जिनके पास थी, इंद्र जिनकी उदार कीर्ति का वर्णन करता था, और जो गणों के सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥156 157॥ उसी इक्ष्वाकु वंश में महानुभाव राजा अनरण्य की सुमंगला रानी की कुक्षि से राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं॥ 158॥ जो लोकहित के लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञा को शेषाक्षत के समान शिर से धारण करते हैं ॥159॥ जिसके सर्व प्रकार की शोभा और गुणों से उज्ज्वल, उत्तम अभिप्राय की धारक तथा उत्तम अलंकारों से युक्त चार दिशाओं के समान चार महादेवियाँ हैं ॥160॥ यही नहीं, अपने मुख से चंद्रमा को जीतने वाली पांच सौ स्त्रियाँ और भी अपनी चेष्टाओं से जिसके मन को हरती रहती हैं ॥1611॥ जिसके पद्म (राम) नाम का ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीर का आलिंगन करती है, जिसने अपनी दीप्ति से सूर्य को, कीर्ति से चंद्रमा को, धीरता से सुमेरु की और शोभा से इंद्र को जीत लिया है, जो शूरवीरता से महापद्म नामक चक्रवर्ती को भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रम को धारण करने वाला है॥ 162-163॥ जिसका शरीर लक्ष्मी का निवासस्थल है और जिसके धनुष को देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस राम का छोटा भाई है ॥164॥ विद्याधर आकाश में चलते हैं यह कहा सो आकाश में तो कौए भी चलते हैं । इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणों में मन लगाना चाहिए **अर्थ**ात् गुणों का विचार करना चाहिए । इंद्रजाल में क्या सार है ? ॥165॥ अथवा आप लोगों की तो बात ही क्या है ? जबकि भूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य इंद्रों को भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवी पर रगड़ने पड़ते हैं ॥166॥ अथानंतर जनक के ऐसा कहने पर विद्याधरों ने एकांत में बैठकर पहले सलाह की फिर कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥167॥ 'राम और लक्ष्मण उत्कृष्ट हैं' इस गर्जना को तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो । यदि मेरे इस कहने में कुछ संशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो॥ 168॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो । यह वज्रावर्त नाम का धनुष है, और यह सागरावर्त नाम का धनुष है । देव लोग इन दोनों की रक्षा करते हैं ॥169॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषों को डोरी सहित करने में समर्थ हो जावेंगे तो इसी से हम उनकी शक्ति जान लेंगे । अधिक कहने से क्या लाभ है ? ॥170॥ राम वज्रावर्त धनुष को चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं । यदि वे उक्त धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥171॥

तदनंतर ठीक है ऐसा कहकर जनक ने विद्याधरों की शर्त स्वीकार तो कर ली परंतु उन दुर्ग्राह्य धनुषों को देखकर चित्त में वह कुछ आकुलता को प्राप्त हुआ ॥172॥ तदनंतर भावपूर्वक जिनेंद्र भगवान् की पूजा और स्तुति कर चुकने के बाद गदा, हल आदि शस्त्रों से युक्त उन दोनों धनुषों की भी पूजा की गयी ॥173॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनक को लेकर मिथिला की ओर चल पड़े और चंद्रगति विद्याधर भी रथनूपुर की ओर चल दिया ॥174॥ तदनंतर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गयी थी, और जिसमें महाजन लोग मंगलाचार से सहित थे, ऐसे अपने भवन में राजा जनक ने प्रवेश किया । प्रवेश करते समय नागरिकजनों ने जनक के अच्छी तरह दर्शन किये थे॥ 175॥

बहुत भारी गर्व को धारण करने वाले विद्याधर नगर के बाहर आयुध शाला बनाकर तथा उसी को घेरकर ठहर गये॥ 176॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनक ने कुछ थोड़ा-सा भोजन किया और इसके बाद वह चिंता से व्याकुल हो शय्या पर पड़ रहा । उत्साह तो उसे था ही नहीं ॥177॥ यद्यपि वहाँ विनय से भरी उत्तम स्त्रियाँ, हाव-भाव दिखाती हुई, चंद्रमा की किरणों के समान चमरों से उसे हवा कर रही थीं तथापि वह अत्यंत विषम, उष्ण और लंबे-लंबे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था । उसकी यह दशा देख विविध प्रकार के भाव को धारण करती हुई रानी विदेहा ने कहा ॥178-179॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके

वियोग से इस अवस्था को प्राप्त हुए हो ॥180॥
जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्री के योग्य गुणों से रिक्त है जो इस तरह काम से संतप्त हुए आप पर दया नहीं करती है॥ 181॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइए जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःख से मुझे तथा समस्त लोगों को दुःख हो रहा है॥ 182॥ उत्कृष्ट सौभाग्य के रहते हुए भी उस पाषाण हृदया ने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यंत अधीर हो रहे हैं॥ 183॥ उठिए और राजाओं के योग्य समस्त क्रियाओं का सेवन कीजिए । यदि शरीर है तो अनेक इच्छित स्त्रियाँ हो जावेंगी ॥184॥
विदेहा के ऐसा कहने पर राजा ने प्राणों से भी अधिक प्रिय वल्लभा से कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारण से खिन्न हो रहा है । उसे इस तरह खेद क्यों पहुंचा रही हो ? ॥185॥ हे देवि ! सुनो, मैं जिस कारण से ऐसी अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ । तुम वृत्तांत को जा ने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥186॥ मैं उस मायामय अश्व के द्वारा विजयार्ध पर्वत पर ले जाया गया था । वहाँ विद्याधरों के राजा ने मुझे इस शर्त पर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुष को डोरों-सहित कर देंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्र की होगी॥ 187-188॥ कर्म के प्रभाव से समझो अथवा भय से समझो बंधन अवस्था को प्राप्त हुए मुझ मंदभाग्य ने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥189॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुष के साथ उस धनुष को उग्र विद्याधर ले आये हैं और वह नगर के बाहर स्थित है॥ 190॥ वह धनुष वनाग्नि के समान है तथा तेज के कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है । इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करने में इंद्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा॥ 191॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यंत क्रुद्ध यमराज ही हो । बिना खींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरी के भी वह अत्यंत भयंकर है॥192॥ यदि राम उस धनुष को डोरी सहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्या को विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हरकर ले जावेंगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगाल के मुख से मांस को डली को हर ले जाते हैं ॥193॥ इस कार्य के लिए बीस दिन की अवधि निश्चित की गयी है । इसके बाद यह कन्या जबरदस्ती ले जायी जावेगी । फिर इस बेचारी को हम कहाँ देख सकेंगे ?॥ 194॥
जनक के ऐसा कहते ही विदेहा के नेत्र सहसा आँसुओं से भर गये और इस प्रसंग से उसे अपने अपहृत बालक का स्मरण हो आया ॥ 195॥ वह अतीत और आगामी शोक के द्वारा दोनों ओर से पीड़ित हो रही थी । इसलिए कुररी की तरह शब्द करती हुई नेत्रों से जल बरसाने लगी॥ 196॥ विह्वल चित्त की धारक विदेहा परिजनों के चित्त को अत्यंत द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने दैव का कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे वह पुत्र के द्वारा संतुष्ट नहीं हुआ अब कन्या को हरने के लिए उद्यत हुआ है॥ 197-198॥ उत्तम चेष्टा को धारण करने वाली यही एक बालि का मेरे और आपके स्नेह का आलंबन है तथा भाई-बांधव एवं परिवार के लोगों का प्रेमभाजन है॥ 199॥ मैं पापिनी जब तक एक दुःख का अंत नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है॥ 200॥ राजा जनक स्वयं शोक से आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्त में फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है । निश्चय से पूर्व जन्म में अर्जित कर्म ही समस्त लोक को नचा रहा है । यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥201-202॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहने पर किसी दुष्ट के द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ । देखूँ मेरी कन्या को हरने के लिए कौन समर्थ है ? ॥203॥ हे प्रिये ! आप्तजनों के साथ कार्य का विचार करना चाहिए इस न्याय को न छोड़ते हुए ही मैंने तुम से पूछा था । मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुख को धारण करने वाली ही होगी॥ 204॥ पति के इस प्रकार सारपूर्ण वचनों से जिसे सांत्वना दी गयी थी ऐसी विदेहा बड़े कष्ट से शोक को हलका कर चुप हो रही ॥ 205॥
तदनंतर जहाँ धनुष रखा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनायी गयी और उसमें स्वयंवर के लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥206॥ अयोध्या को भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारों भाई माता-पिता आदि के साथ आये और राजा जनक ने उन सबका सन्मान किया ॥207॥ तदनंतर परम सुंदरी सीता सात सौ अन्य कन्याओं के साथ महल की सुंदर छत पर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे॥ 208॥ उस महल के चारों ओर नाना प्रकार की लीला को करते हुए समस्त सामंत बड़े ठाट-बाट से अवस्थित थे॥ 209॥
तदनंतर अनेक शास्त्रों को जानने वाला तथा हाथ में सुवर्ण की छड़ी धारण करने वाला कंचुकी सीता के सामने खड़ा होकर उच्च स्वर से बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्या के अधिपति राजा दशरथ का आद्य पुत्र पद्म ( राम ) है ॥ 210-211॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कांति को धारण करने वाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बड़ी-बड़ी भुजाओं को धारण करने वाला भरत है

और यह सुंदर चेष्टाओं को धारण करने वाला शत्रुघ्न है॥ 212॥ जिनके हृदय गुणों के सागर हैं ऐसे इन पुत्रों के द्वारा राजा दशरथ पृथिवी का पालन करते हैं । इनकी पृथिवी में भय के समस्त अंकुरों की उत्पत्ति भस्म कर दी गयी है॥ 213॥ यह अत्यधिक कांति को धारण करने वाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुंदर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है॥214॥ यह श्रीसंजय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मंदर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बंध है, यह भद्रबल है और यह शिखी **अर्थ**ात मयूर कुमार है॥ 215॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महापराक्रमी, महाशोभा से युक्त, विशुद्ध कुल में उत्पन्न, चंद्रमा के समान निर्मल कांति के धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणों के धारक, महाविभव से संपन्न तथा अत्यधिक विज्ञान में निपुण हैं॥ 216-217॥ यह पर्वत के समान आभा वाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और आश्चर्यजनक कार्य करने वाला इसका सुभट-योद्धा है॥ 218॥ यह सांकाश्यपुर का स्वामी है, यह रंध्रपुर का अधिपति है, यह गवीधुमद् देश का अधीश है, यह नंदनिका का नाथ है॥ 219॥ यह सूरपुर का विभु है । यह कुंडपुर का अधिप है, यह मगधदेश का राजा है, और यह कांपिल्यपुर का स्वामी है॥ 220॥ यह राजा इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंश में उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुल का आनंददायक है और यह राजा भोज है॥ 221॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णना से युक्त तथा महागुणवान् सुने जाते हैं । तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारंभ किया गया है ॥222॥ हे कुमारि ! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुष को चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा वरा जाना है॥ 223॥
तदनंतर जो मान से सहित थे, अपनी प्रशंसा अपने आप कर रहे थे, और सुंदर विलास से सहित थे ऐसे उन सब राजाओं को वह कंचुकी वज्रावर्त धनुष के पास ले गया ॥224॥ जिसका आकार बिजली की छटा के समान था तथा जिसमें भयंकर साँप फुंकार रहे थे ऐसा वह धनुष राज कुमारों के पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥225॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुष की ज्वालाओं से ताड़ित चक्षु को दोनों हाथों से ढंककर शीघ्र ही वापिस लौट गये॥ 226॥ जिनके समस्त अंग कंपित हो रहे थे तथा नेत्र बंद हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए साँपों को देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥227॥ कितने ही लोग ज्वर से आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगों की बोलती बंद हो गयी, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छा को प्राप्त हो गये ॥228॥
कितने ही लोग साँपों की वायु से सूखे पत्र के समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगों की ऋद्धि शांत हो गयी **अर्थ**ात् वे शोभा रहित हो गये ॥229॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवों को दान देवेंगे । हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागने की पैरों में शक्ति प्रदान करो॥ 230॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियों से काम की सेवा कर लेंगे । भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥231॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्त ने राजाओं के वध के लिए इस माया का प्रयोग किया है॥ 232॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें काम से क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओं के समान ब्रह्मचर्य से समय बिता देवेंगे॥ 233॥
तदनंतर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुष की लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदोन्मत्त गजराज के समान मंथर गति को धारण करते हुए उसके पास पहुँचे॥ 234॥ पुण्यशाली राम के समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूप को उसी तरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरु के समीप आते ही विद्यार्थी अत्यंत सुंदर सौभाग्यरूप को प्राप्त हो जाता है ॥235॥ तदनंतर रामने वस्त्र ऊपर चढ़ाकर निःशंक हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर विपुल गर्जना की॥ 236॥ मयूर उस गर्जना को मेघों की महागर्जना समझ हर्ष से केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छों का मंडल फैलाकर नृत्य करने लगे ॥237॥ सूर्य अलातचक्र के समान हो गया और दिशाएँ सुवर्ण की पराग से ही मानो व्याप्त हो गयीं ॥238॥ आकाश में 'साधु' 'साधु'□ 'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवों का शब्द होने लगा और फलों के समूह की वर्षा करते हुए कितने ही व्यंतर नृत्य करने लगे ॥239॥
तदनंतर अटनी की टंकार से जिसने समस्त विश्व को बहिरा कर दिया था तथा जो चक्रा कारता को मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुष को रामने खींचा ॥240॥ जिनकी समस्त इंद्रियाँ विकल हो गयी थी तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवर में पड़े हुए के समान घूमने लगे ॥241॥ वायु से हिलते हुए कमलदल से भी अधिक जिसकी कांति थी, तथा जो कामदेव के धनुष के समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्र से सीता ने राम को देखा ॥242॥ जिसका समस्त शरीर रोमांचों से सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट मा धारण कर रही थी, तथा लज्जा से जिसका मुख नीचे की ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो राम के समीप पहुँची ॥243॥ पास में खड़ी सीता से सुंदर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपमा में वे इस तरह सुशोभित थे ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था **अर्थ**ात् वे

अनुपम थे ॥244॥
तदनंतर धनुष की डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीता के साथ अपने आसन पर बैठ गये ॥245॥ जो नव समागम के कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदय में कंपन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता राम का मुख देखने की इच्छा से किसी अद्भुत भाव को प्राप्त हो रही थी ॥246॥ इतने में ही क्षुभितसमुद्र के समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त नामक धनुष को लक्ष्मण ने प्रत्यंचासहित कर जोर से उसकी टंकार छोड़ी ॥247॥ तदनंतर बाण पर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मण को देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरों ने फूलों के समूह छोड़े **अर्थ**ात् पुष्प वर्षा की ॥248॥ तदनंतर जिसको डोरी से विशाल शब्द हो रहा था ऐसे धनुष को खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण राम के समीप ही बड़ी विनय से आ बैठा॥ 249॥ इस प्रकार शूरवीरता दिखाने वाले लक्ष्मण के लिए चंद्रवर्धन विद्याधर ने अत्यंत बुद्धिमती अठारह कन्याएँ दी॥250॥ भय से अतिशय भरे हुए विद्याधरों ने वापस आकर जब यह समाचार कहा तब चंद्रगति विद्याधर चिंता में निमग्न हो गया ॥25॥
अथानंतर यह वृत्तांत देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था, जिसे मन में प्रबोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषय में इस प्रकार शोक करने लगा॥ 252॥ कि देखो हम दोनों का एक कुल है, एक पिता हैं । पर इन दोनों **अर्थ**ात् राम-लक्ष्मण ने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्य की मंदता से मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥253॥ अथवा दूसरे की लक्ष्मी से मन को व्यर्थ ही क्यों संतप्त किया जाये ? निश्चित ही तूने पूर्वभव में अच्छे कार्य नहीं किये ॥254॥ कमल के भीतरी दल के समान जिसकी कांति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मी के समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्य के धारक पुरुष को ही प्राप्त हो सकती है ॥255॥
तदनंतर कलाओं के समूह में निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञान को धारण करने वाली केकया ने पुत्र की चेष्टा जानकर कान में हृदय वल्लभ राजा दशरथ से कहा कि हे नाथ ! मुझे भरत का मन शोक युक्त दिखाई देता है । इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्य को प्राप्त न हो जाये ॥256257॥ यहाँ जनक का छोटा भाई कनक है । उसको सुप्रभा रानी से उत्पन्न हुई लोक-सुंदरी नामा कन्या है॥ 258॥ सो स्वयंवर विधि की पुनः घोषणा कर उसे भरत के लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावना को प्राप्त नहीं हो सके ॥259॥ तदनंतर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथ ने यह बात विचारवान राजा कनक के कान तक पहुँचायी ॥260॥ राजा कनक ने भी जो आज्ञा कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥261॥
तदनंतर जो यथायोग्य स्थानों पर बैठे हुए राजाओं के मध्य में स्थित था और नक्षत्रों के समूह के मध्य में स्थित चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरत को पुष्प माला धारण करने वाली एवं सुवर्ण के समान कांति से संयुक्त, राजा कनक की पुत्री लोकसुंदरी ने उस तरह वरा जिस तरह कि उत्तम कांति को धारण करने वाली सुभद्रा ने पहले भरत चक्रवर्ती को वरा था ॥262-263॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मों की अत्यंत विषमता देखो कि प्रबोध को प्राप्त हुआ भरत कन्या के द्वारा पुनः मोहित हो गया ॥264॥ सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानों पर चले गये और अपने बंधु वर्ग के बीच में विकथा करते हुए रहने लगे ॥265॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीव ने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोदों बोये हैं वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥266॥ तदनंतर जो पताका तोरण और मालाओं से सजायी गयी थी, जो महाकांति को धारण कर रही थी, जिसके बाजार के लंबे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फलों से व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शंख एवं तुरही के मधुर शब्दों से भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरी में दोनों का बड़े उत्सव के साथ विवाह किया गया ॥267-268॥ उस समय धन से सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि **अर्थ**ात् देओ' यह शब्द महाप्रलय को प्राप्त हो गया था अर्थात् बिल्कुल ही नष्ट हो गया था ॥269॥ उत्तम चित्त को धारण करने वाले जो राजा विवाहोत्सव देखने के लिए रह गये थे वे परम सम्मान को प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥27॥
अथानंतर जिनकी कीर्ति समस्त संसार में फैल रही थी, जो परम सौंदर्यरूपी सागर में निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिता के लिए हर्षरूप संपदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नों से अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकार की सवारियों से व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्र के समान विशाल शब्द करने वाली तुरही बज रही थी ऐसे दशरथ के पुत्रों तथा बहुओं ने बड़े वैभव के साथ अयोध्या में प्रवेश किया ॥271-272॥ उस समय उत्तम शरीर को धारण करने वाली बहुओं को देखने के लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी व्यग्रता से राजमार्ग में आ गये ॥273॥
जिन्होंने सब लोगों का सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणों के स्तवन से जिनका शरीर विनम्र हो रहा था **अर्थ**ात् लज्जा के भार से

झुक रहा था ऐसे दशरथ के बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलों में रहने लगे॥ 274॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! शुभ कर्म का फल अच्छा होता है और अशुभ कर्म का फल अशुभ होता है ऐसा जानकर विद्वज्जनों के द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्य से भी अधिक कांति के धारक होओ ॥275॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में राम-लक्ष्मण को स्वयंवर में रत्नमाला की प्राप्ति होने का वर्णन करने वाला अट्ठाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥28॥

## राजा दशरथ को वैराग्य

उन्तीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से आष्टाह्निक महापर्व आया । सो राजा दशरथ जिनेंद्र भगवान् की महिमा करने के लिए उद्यत हुआ ॥1॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बांधवजन जिन-प्रतिमाओं के विषय में निम्नांकित कार्य करने के लिए तत्पर हुए ॥2॥ कोई मंडल बनाने के लिए बड़े आदर से पाँच रंग के चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकार की रचना करने में निपुण कोई मालाएं गूंथने लगा॥3॥ कोई जल को सुगंधित करने लगा, कोई पृथिवी को सींचने लगा, कोई नाना प्रकार के उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थ पीसने लगा ॥4॥ कोई अत्यंत सुंदर वस्त्रों से जिनमंदिर के द्वार की शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओं के रस से दीवालों को अलंकृत करने लगा ॥5 ॥इस प्रकार उत्कृष्ट भक्ति को धारण करने वाले एवं आनंद से परिपूर्ण भक्तजनों ने जिनेंद्रदेव की पूजा कर उत्तम पुण्य का संचय किया ॥6॥ तदनंतर सब प्रकार को उत्तमोत्तम सामग्रियों को एकत्र कर राजा दशरथ ने जिसमें तुरही का विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेंद्र भगवान् का अभिषेक किया ॥7॥ आठ दिन का उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज **अर्थ**ात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्वर्ण, रजत आदि से बनाये हुए पुष्पों से महापूजा की॥8॥ जिस प्रकार इंद्र देवों के साथ नंदीश्वर द्वीप में जिनेंद्र पूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथ ने भी सब परिवार के साथ जिनेंद्र पूजा की ॥9॥ तदनंतर जब रानियाँ घर पहुंच गयीं तब बुद्धिमान् राजा दशरथ ने सबके लिए महापवित्र, शांतिकारक गंधोदक पहुँचाया ॥10॥ सो तीन रानियों के लिए तो वह गधोदक तरुण स्त्रियां ले गयीं इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पाप को नष्ट करने वाला वह गंधोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धा से मस्तक पर धारण कर लिया ॥11॥ परंतु सुप्रभा के लिए वृद्ध कंदुकी के हाथ भेजा था इसलिए उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोक को प्राप्त हुई ॥12॥ वह विचार करने लगी कि राजा की यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे गंधोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥13॥ अथवा इसमें राजा का क्या दोष है ? प्रायः कर मैंने पूर्वभव में पुण्य का संचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कार को प्राप्त हुई हूँ ॥14॥ ये तीनों पुण्यवती तथा महासौभाग्य से संपन्न हैं जिनके लिए राजा ने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं उत्तम गंधोदक भेजा है ॥15॥ अपमान से जले हुए मेरे इस हृदय के लिए इस समय मरण ही शूरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ । अन्य प्रकार से मेरा संताप शांत नहीं हो सकता ॥16॥ यह विचार कर उसने विशाख नामक एक भांडारी से कहा कि हे भद्र ! तुम यह बात किसी से कहना नहीं ॥17॥ मुझे विष की अत्यंत आवश्यकता आ पड़ी है । इसलिए यदि तेरी मुझमें भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥18॥ विष के नाम से अत्यंत शंकित होता हुआ भांडारी उसे खोजता हुआ जब तक कुछ विलंब करता है तब तक वह शयनगृह में जाकर तथा शरीर को शिथिल कर पड़ रही ॥19॥ इतने में ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओं को देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥20॥ उन्होंने देखा कि मन को चुराने वाली सुप्रभा वस्त्र से शरीर ढंककर शय्या पर अनादर से इंद्रधनुष के समान पड़ी है ॥21॥

इसी समय उस भांडारी ने आकर कहा कि हे देवि ! यह विष लो । भांडारी के इस शब्द को वहाँ जाकर राजा ने सुन लिया ॥22॥ सुनते ही राजा ने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्खे ! यह क्या प्रारंभ कर रखा है ? ऐसा कहते हुए राजा ने उस भांडारी को वहाँ से दूर हटाया और स्वयं सुप्रभा की शय्यापर बैठ गये ॥23॥ राजा को आया जान वह लजाती हुई सहसा उठी और पृथिवी पर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोद में बैठा लिया ॥24॥ राजा ने कहा कि प्रिये ! तुम इस प्रकार के क्रोध को क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने जीवन से भी निःस्पृह हो रही हो ॥25॥ मरण का दुःख सब दुःखों से अधिक दुःख है । सो जिस अन्य दुःख से दुःखी होकर तुमने मरण को उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह तो बताओ ॥26 ॥हे दयिते ! तुम मेरे हृदय की सर्वस्व हो, अतः हे सुमुखि ! शीघ्र ही वह कारण बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥27 ॥सुगति और दुर्गति के कारणों का निरूपण करने वाले जिनशास्त्र

को तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गयी ? इस प्रगाढ़ अंधकार स्वरूप क्रोध को धिक्कार हो ॥28॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोध का कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियाँ होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥29।।

सुप्रभा ने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरण के बिना शांत नहीं हो सकता ॥30॥ राजा ने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तर में सुप्रभा ने कहा कि आपने अन्य रानियों के लिए तो गंधोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥31॥आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ?॥32॥ सुप्रभा जब तक यह सब कह रही थी कि तब तक वृद्ध कंचुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजा ने तुम्हें यह गंधोदक दिया है ॥33 ॥इसी बीच में दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगी कि अरी भोली ! तू प्रसन्नता के स्थान को प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥34॥ देख, हम लोगों के लिए तो निंदनीय दासियाँ गंधोदक लायी हैं पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कंचुकी लाया है ॥35॥ तेरे प्रति स्वामी की ऐसी उत्तम प्रीति है इसी से यह भेद हुआ है फिर असमय में क्यों कुपित हो रही है ? ॥36॥फिर स्वामी तेरे पीछे बड़े प्रयत्न से लग रहे हैं । अतः इन पर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेह के कारण स्त्रियाँ अपराध होने पर भी संतुष्ट ही रहती हैं ॥37॥ हे कठोर हृदये ! जब तक पति पर क्रोध किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुख में विघ्न हो जानना चाहिए ॥38॥ वास्तव में तो हम लोगों का मरना उचित था पर हमें तो गंधोदक से प्रयोजन था । इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥39॥इस प्रकार सपत्नियों ने भी जब उसे सांत्वना दी तब उसका शरीर रोमांच से सुशोभित हो गया और उसने गंधोदक मस्तक पर धारण किया ॥40॥

तदनंतर राजा ने कुपित होकर उस कंचुकी से कहा कि हे नीच कंचुकी ! बता तुझे यह विलंब कहाँ हुआ ? ॥41॥ भय से जिसका समस्त शरीर विशेषकर कांपने लगा था ऐसा कंचुकी पृथिवी पर घुटने और शिर पर अंजलि रखकर किसी तरह बोला ॥42 ॥उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बड़ी कठिनाई से आये और जो ओठों पर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥43॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओंठ चलाता था, और बड़ी कठिनाई से उठाकर पास ले जाये गये हाथ से हृदय का स्पर्श करता था ॥44॥ उसके मस्तक के पिछले भाग में चंद्रमा की किरणों के समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चरम के समान उसकी दाढ़ी के बाल मंद-मंद वायु से हिल रहे थे ॥45॥ मक्खी के पंख के समान पतली त्वचा से उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रकुटियों की वलि से आच्छादित थे ॥46॥ उसका चंचल शरीर स्पष्ट दिखाई देने वाली नसों के समूह से वेष्टित था, मिट्टी के अधबने खिलौने के समान उसकी आभा थी । वह वस्त्र भी बड़ी कठिनाई से धारण कर रहा था, हिम से ताड़ित हुए के समान दोनो शिथिल कपोलों को कंपित कर रहा था, बोलने की इच्छा से लड़खड़ाती जिह्वा को तालु आदि स्थानों पर बड़ी कठिनाई से ले जा रहा था, यदि एक अक्षर का भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था । कुछ वणं बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वणं बोल जाता था, जिनके बोलने का विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रम को करने वाले टूटे-फूटे वर्गों को वह जीर्ण-शीर्ण काँटे के समान बड़ी कठिनाई से छोड़ता था **अर्थ**ात् उसका उच्चारण करता था ॥49-50॥

हे भृत्यवत्सल, स्वामिन् ! मुझ बुड्ढे का क्या अपराध है ? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषण को धारण करने वाले हे देव ! आप क्रोध को प्राप्त हुए हो ॥51॥ पहले मेरे शरीर की भुजाएं हाथी की सूंड़ के समान थीं, शरीर अत्यंत कठोर और ऊँचा था । सीना विशाल था, जंघाएँ आलान **अर्थ**ात् हाथी बाँधने के खंभे के समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरु के शिखर के समान आकृति वाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्यों का सशक्त कारण था ॥52-53॥ हे देव ! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ़ किवाड़ों के चूर्ण करने में समर्थ थे, हमारे पैर की ठोकर पर्वत के भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमि को मैं वेग से लाँघ जाता था, हे स्वामिन् ! मैं राजहंस पक्षी के समान मनचाहे स्थान को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥54-55 ॥हे राजन् ! मेरी दृष्टि में इतना बल था कि जिससे मैं राजा को भी तृण के समान तुच्छ समझता था ॥56॥ अत्यंत स्थविर और सुंदर विलास से युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनों की दृष्टि और मन को बाँधने के लिए आलान के समान था॥57॥आपके पिता के प्रसाद से मैंने इस शरीर का उत्तमोत्तम भोगों से लाड़-प्यार किया था पर इस समय कुमित्र के समान यह विघट गया है ॥58॥मेरा जो हाथ पहले शत्रुओं को विदारण करने की शक्ति रखता था अब उसी हाथ से लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥59॥मेरी पीठ की हड□डी शूरवीर मनुष्य के द्वारा खींचे हुए धनुष के समान झुक गयी है और मेरा शिर यमराज के पैर से आक्रांत हुए के समान नम्र हो गया है ॥

60॥ दाँतों के स्थान से उच्चरित होने वाले मेरे वर्ण (ल तवर्ग ल और स ) कहीं चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों ( श ष स ह ) की ऊष्मा अर्थात् गरमी से उत्पन्न संताप को सहने में असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥61 ॥यदि मैं प्राणों से भी अधिक प्यारी इस लाठी का सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वी पर गिर जावे ॥62॥

शरीर में बलि **अर्थ**ात् सिकुड़नों की वृद्धि हो रही है और उत्साह का ह्रास हो रहा है । हे राजन् ! इस शरीर से मैं साँस ले रहा हूँ यही आश्चर्य की बात है ॥63॥हे नाथ ! आजकल में नष्ट हो जाने वाले इस जरा जर्जरित शरीर को ही धारण करने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तु की तो कथा ही क्या है ? ॥64॥ पहले मेरी इंद्रियाँ अत्यंत सामर्थ्य को प्राप्त थीं पर इस समय नाम मात्र को ही स्थित हैं । मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥65॥पैर अन्य स्थान पर रखता हूँ पर सँभल नहीं सकने के कारण अन्य स्थान पर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतल को अपनी दृष्टि से काला ही काला देखता हूँ ॥66 ॥चूंकि यह राजकुल मेरी वंश-परंपरा से चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशा को प्राप्त होकर भी इसे छोड़ने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥67॥ मेरा यह शरीर पके हुए फल के समान है सो यमराज सूखे पत्र के समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥68॥हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्यु से वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्य में होने वाली आपके चरणों की सेवा के अभाव से हो रहा है ॥69॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहने का कारण है ऐसे इस शरीर को धारण करते हुए मुझे विलंब अथवा कार्यांतर में आसंग कैसे हो सकता है ?॥70॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीर को जरा के अधीन जानकर आप क्रोध करने के योग्य नहीं हैं । हे धीर ! प्रसन्नता को धारण करो ॥71॥

कंचुकी के वचन सुनकर राजा कुंडल से सुशोभित कपोल को वाम करतल पर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥72 ॥कि अहो, बड़े कष्ट की बात है कि यह अधम शरीर पानी के बबूले के समान निःसार है और अनेक विभ्रमों विलासों से भरा यह यौवन संध्या के प्रकाश के समान भंगुर है ॥73 ॥बिजली के समान नष्ट हो जा ने वाले इस शरीर के पीछे मनुष्य न जाने अत्यंत दुःख के कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारंभ नहीं करते हैं ? ॥74॥ये भोग अत्यंत मत्त स्त्री के कटाक्षों के समान ठगने वाले हैं, साँप के फन के समान भयंकर हैं और संताप की वृद्धि करने वाले हैं ॥75 ॥कठिनाई से प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयों में जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियों के लिए सुख जान पड़ता है ॥76 ॥ये जो विषयादिक हैं वे प्रारंभ में ही मनोहर सुखरूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किंपाक फल के समान इन सुखों की चाह रखते हैं ॥77॥ जो सज्जन इन विषयों को विष के समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोध को प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥78॥ मैं कब इन विषयों को छोड़कर तथा स्नेह रूपी कारागृह से छूटकर मोक्ष के कारणभूत जिनेंद्र-प्रोक्त तप का आचरण करुंगा ॥79॥सुख से पृथिवी का पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बात की प्रतीक्षा की जा रही है ॥80॥

यह हमारा वंशपरंपरागत व्रत है कि हमारे धीर-वीर वंशज विरक्त हो पुत्र के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवन में प्रवेश कर जाते हैं ॥81॥ राजा दशरथ ने इस प्रकार विचार भी किया और भोगों में आसक्ति कुछ शिथिल भी हई तो भी कर्मों के प्रभाव से वे घर में ही प्रीति को प्राप्त होते रहे **अर्थ**ात् गृहत्याग करने के लिए समर्थ नहीं हो सके ॥82 ॥सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥83॥

अथानंतर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगध देश के आभूषण ! कितना ही काल व्यतीत होने पर बड़े भारी संघ से आवृत, सर्व प्राणियों का हित करने वाले, तथा मनःपर्यय ज्ञान के धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवी में विहार करते हुए अयोध्या नगरी में आये ॥ 84-85 ॥जिनके मन-वचन-काय की चेष्टा समीचीन थी और जो पिता की तरह संघ का पालन करते थे ऐसे उन मुनिराज ने अपने थके हुए संघ को सरयू नदी के किनारे ठहराया ॥86॥ संघ के कितने ही मुनि, आचार्य महाराज की आज्ञा प्राप्त कर वन के सघन प्रदेशों में, कितने ही गुफाओं में, कितने ही शून्य गृहों में, कितने ही जिनमंदिरों में और कितने ही वृक्षों की कोटरों में ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥87-88॥तथा आचार्य एकांत स्थान के अभिलाषी थे इसलिए उन्होंने नगरी की उत्तर पश्चिम दिशा **अर्थ**ात् वायव्य कोण में जो महेंद्रोदय नाम का उद्यान था उसमें यूथ सहित गजराज के समान प्रवेश किया । उस महेंद्रोदय नामा उद्यान में तप के योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यंत सुंदर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षों से सहित था । आचार्य के साथ अधिक भीड़ नहीं थी । अपने आपको मिलाकर कुल दस ही मुनिराज थे । वह उद्यान पशुओं, स्त्रियों और नपुंसकों के लिए दुर्गम था, द्वेषी मनुष्यों से रहित था तथा सूक्ष्म जंतुओं से शून्य था । ऐसे उस उद्यान में जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थीं ऐसे एक नाग वृक्ष के नीचे सुंदर, विशाल, निर्मल एवं समान

शिलातल पर विराजमान हुए ॥89-92॥ आचार्य महाराज सूर्यबिंब के समान देदीप्यमान, गंभीर, प्रिय-दर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मों का क्षय करने के लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे॥93॥

तदनंतर जो विदेश में जा ने वाले मनुष्यों को भय उत्पन्न करने वाला था, चमकती हुई बिजली से उग्र था तथा जिसमें आठों दिशाओं के मेघों की कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पचा । वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगों को संताप पहुंचाने वाले सूर्य को डाँट हो रहा हो और बड़ी मोटी धाराओं के अंधकार से भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥94-95 ॥पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कंचुक ही धारण कर रखी हो । तरंगों से तटों को गिराने वाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बढ़ने लगीं ॥96॥और जिन्हें कँपकँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्यों के चित्त में भ्रांति उत्पन्न होने लगी । ऐसे वर्षाकाल में जैनी लोग निरंतर खड□गधारा के समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥97॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाश में चलने की ऋद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकार के नियम धारण करते थे । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥98॥

अथानंतर प्रातःकाल होने पर शंख के शब्द से सुशोभित भेरी के नाद से राजा दशरथ सूर्य के समान जागृत हुए ॥19॥ स्त्री-पुरुषों का वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नदियों में विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर-जोर से शब्द करने लगे ॥100॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदि के मनोहर गीतों से आकर्षित हो बहुत से मनुष्य जिनमंदिरों में उपस्थित होने लगे ॥101॥ जिस प्रकार लज्जा से युक्त मनुष्य प्रिया को छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र घूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्रा को छोड़ रहा था ॥ 102॥ दीपक पांडुवर्ण हो गये थे और चंद्रमा फी का पड़ गया । कमल विकास को प्राप्त हुए और कुमद निमीलित हो गये ॥103॥ जिस प्रकार जिनशास्त्र के ज्ञाता मनुष्य से वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्य की किरणों से समस्त ग्रह परास्त हो गये **अर्थ**ात् छिप गये ॥ 104॥ इस प्रकार अत्यंत निर्मल प्रभात काल होने पर राजा दशरथ ने शरीर-संबंधी कार्य कर पूजनीय जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार किया । तदनंतर मनोहर झूल से सुशोभित हस्तिनी पर सवार हो वह मुनिराज की वंदना के लिए चला । देवों के समान कांति को धारण करने वाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥105-106॥ इस प्रकार छत्र से सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियों और जिनचैत्यालयों को नमस्कार करता हुआ महेंद्रोदय नामा उद्यान में पहुँचा ॥107॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथ की लोक को आनंदित करने वाली जो विभूति थी वह एक वर्ष में भी नहीं कही जा सकती है ॥108॥ गुणरूपी रत्नों के सागर मुनिराज जब देश में पधारे थे तभी उसके कानों में यह समाचार आ पहुँचा था ॥ 109॥ तदनंतर हस्तिनी से उतरकर अपरिमित वैभव के धारक एवं महान् हर्ष से परिपूर्ण राजा ने उद्यान की भूमि में प्रवेश किया ॥110॥ तत्पश्चात् भक्ति से युक्त हो चरणों में पुष्पांजलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्य को शिर से नमस्कार किया ॥111 ॥सिद्धांत से संबंध रखने वाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषों के चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरों को स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणों को बड़े आदर से सुना । तदनंतर संघ के स्वामी सर्वभूतहित आचार्य को नमस्कार कर राजा ने नगर में वापस प्रवेश किया ॥112-114॥

तदनंतर मंत्रियों और राजाओं को क्षण भर के लिए स्थान देकर **अर्थ**ात् उनके साथ वार्तालाप कर जिनराज संबंधी गुणों की कथा कर आश्चर्य से भरे हुए राजा ने अंतःपुर में प्रवेश किया । वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापति की शोभा धारण करने वाले राजा ने बड़ी प्रसन्नता से स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥115॥ तदनंतर जो उत्कृष्ट कांति से युक्त थीं, चंद्रमा के समान सुंदर मुखों को धारण कर रही थीं, नेत्र और हृदय को हरने में निपुण विभ्रमों से सुशोभित थीं, लक्ष्मी के तुल्य थीं और परम विनय को धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियों को, कमलिनियों को सूर्य की भाँति आनंद उपजाता हुआ वह उसी अंतःपुर में ठहर गया ॥116॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में राजा दशरथ के वैराग्य और सर्वमत आचार्य के आगमन का वर्णन करने वाला उंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥29॥

## भामंडल का समागम

तीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर मेघों के आडंबर से युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश माँजे हुए कृपाण के समान निर्मल प्रभा का धारक हो गया॥1॥

कमल उत्पल आदि जल में उत्पन्न होने वाले पुष्प कामीजनों को उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओं के हृदय के समान निर्मल हो गया ॥2॥ कुमुदों के सफेद पुष्पों से प्रकटरूप से हँसता हुआ शरदकाल आ पहुँचा, इंद्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़ से रहित हो गयी ॥3॥ जिनमें बिजली चमकने की संभावना नहीं थी और जो रूई के समूह के समान सफेद कांति के धारक थे ऐसे मेघों के खंड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥4॥ संध्या का लाल-लाल प्रकाश जिसका सुंदर ओंठ था, चाँदनी ही जिसका अत्यंत उज्ज्वल वस्त्र था और चंद्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नववधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥5॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएं कमल वन में घूमते हुए राजहंसों से सुशोभित हो रही थीं॥ 6॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरदऋतु से सुशोभित था तो भी सीता की चिंता करने वाले भामंडल के लिए अग्नि के समान जान पड़ता था॥ 7॥

अथानंतर अरति से जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामंडल एक दिन लज्जा छोड़ पिता के आगे अपने परममित्र वसंत ध्वज से इस प्रकार बोला कि॥8॥आप बड़े दीर्घसूत्री हैं देर से काम करने वाले हैं और दूसरे के कार्य करने में अत्यंत मंद हैं । उस सीता में जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियां व्यतीत हो गयीं । फिर भी तुझे चिंता नहीं है॥ 9॥ जिसमें उद्वेगरूपी बड़ी-बड़ी भंवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्र में मैं डूब रहा हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥10॥ इस प्रकार आर्तध्यान से युक्त भामंडल के वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विषाद को प्राप्त हुए॥ 11॥ तदनंतर उन सबको शोक से संतप्त तथा हाथियों के समान सूखते हुए देख भामंडल शिर नीचा कर क्षणभर के लिए लज्जा को प्राप्त हुआ ॥12॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अबतक इस बात को क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषय में निराश हो जावे ॥ 13॥

तदनंतर उन सबने चंद्रयान को आगे कर लड़खड़ाते अक्षरों में सब समाचार भामंडल से कह दिया ॥14॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हम लोग कन्या के पिता को यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्या की याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्या को राम के लिए देना संकल्पित कर चुका हूँ ॥15॥

उत्तर-प्रत्युत्तर से जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मंत्रणा कर धनुष रत्न की अवधि निश्चित की **अर्थ**ात् राम और भामंडल में से जो भी धनुष-रत्न को चढ़ा देगा वही कन्या का स्वामी होगा ॥16॥ हम लोगों ने धनुष की शर्त इसलिए रखी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्या को प्राप्ति होगी परंतु वह धनुष रत्नरूपी लता पुण्याधिकारी राम के लिए ऐसी हुई जैसे भूख से पीड़ित सिंह के लिए मांस की डली अर्पित की गयी हो अर्थात् राम ने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवर में राम की स्त्री हो गयी । वह कन्या अपने वचनों से हृदय को हरने वाली थी, नवयौवन से उत्पन्न लावण्य से उसका शरीर भर रहा था, तरुण चंद्र के समान उसका मुख था, लक्ष्मी की तुलना करने वाली थी और काम से सहित थी ॥17-19॥

वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकल के धनुष नहीं थे किंतु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रों से सहित थे, देवों से अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जाति के दैत्यों के कारण उनकी ओर देखना भी संभव नहीं था । फिर भी राम-लक्ष्मण ने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुंदरी कन्या प्राप्त कर ली॥ 20-22॥ इस समय वह कन्या देवों के द्वारा भी जबरदस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषों के निकल जा ने से अत्यंत सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगों की तो बात ही क्या है ॥22॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि राम के स्वयंवर के पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावण का जमाई राजा मधु जनक का मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ?॥ 23॥ इसलिए यह सब जान कर हे कुमार ! स्वस्थता को प्राप्त होओ, तुम तो अत्यंत विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इंद्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥24॥

तदनंतर स्वयंवर का वृत्तांत सुनकर भामंडल लज्जा और विषाद से युक्त होता हुआ दुःख के साथ यह विचार करने लगा कि॥25॥अहो ! मेरा यह विद्याधर जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्य की तरह उस प्रिया को प्राप्त नहीं कर सका॥ 26॥ ईर्ष्या और क्रोध से युक्त होकर उसने हँसते हुए सभा से कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरी से भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस काम का ? ॥27॥ मैं भूमिगोचरियों को जोतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्या को ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहर का अपहरण करने वाले यक्षों का निग्रह करता हूँ ॥28॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमान में बैठकर आकाश में जा उड़ा । वहाँ से उसने पुर और वन से भरा पृथ्वीतल

देखा॥29॥तदनंतर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतों से युक्त विदग्ध नामक देश में अपने पूर्वभव के मनोहर नगर पर पड़ी ॥30॥ यह नगर मैंने कभी देखा है-इस प्रकार चिंता करता हुआ वह जातिस्मरण को प्राप्त होकर मूर्च्छित हो गया ॥31॥ तदनंतर घबड़ाये हुए मंत्री उसे पिता के समीप ले आये । वहाँ स्त्रियों ने चंदन के द्रव से उसका शरीर सींचकर उसे सचेत किया ॥32॥ स्त्रियों ने परस्पर नेत्र का इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥33॥ जो तुम बुद्धिमान होकर भी भूचर्या का समस्त प्रयोजन बिना देखे ही गुरुजनों के आगे इस तरह मोह को प्राप्त हुए हो ॥34॥ देवियों से भी अधिक कांति को धारण करने वाली विद्याधर राजाओं की अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ । हे सुंदर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥35।।

तदनंतर लज्जा और शोक से जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामंडल ने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोह में पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिंतवन किया ॥36॥ ऐसा कार्य तो अत्यंत नीचकुल वालों को भी करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यंत अशुभ कर्मों ने कैसी चेष्टा दिखायी ? ॥37॥मैंने उसके साथ एक ही उदर में शयन किया है । आज पापकर्म का उदय मंद हुआ इसलिए किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥38॥ तदनंतर शोक के भार से पीड़ित भामंडल को गोद में रखकर बहुत भारी आश्चर्य से भरा चंद्रगति चुंबन कर पूछने लगा ॥39॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तर में उसने कहा कि हे तात! मेरा कहने योग्य चरित सुनिए ॥40॥

पूर्वजन्म में मैं इसी देश के विदग्धनगर में दूसरे देशों को लूटने वाला, समस्त पृथिवी में प्रसिद्ध, युद्ध का प्रेमी, अपनी प्रजा की रक्षा करने वाला तथा महाविभव से संयुक्त कुंडल मंडित नाम का राजा था ॥41-42॥ वहाँ मैंने अशुभकर्म के उदय से एक ब्राह्मण की स्त्री हरी और ब्राह्मण को माया पूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यंत दुःखी होकर कहीं चला गया॥ 43॥ तदनंतर राजा अनरण्य के सेनापति ने मेरी सब संपत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया । अंत में अत्यंत दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियों के आश्रम में पहुँचा ॥44॥ वहाँ मैंने तीनों लोकों से पूज्य, सब पदार्थों को जानने वाले तथा महान् आत्मा के धारक अरहंत भगवान् का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥45॥ और समस्त जीवों के बांधवभूत श्रीगुरु के उपदेश से निरतिचार मांस त्याग व्रत धारण किया । मैं अत्यंत क्षुद्र शक्ति का धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका॥ 46॥ अहो ! जिनशासन का बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गति को प्राप्त नहीं हुआ ॥47॥ श्रीजिनधर्म की शरण होने से तथा व्रत और नियम के प्रभाव से मेरा जीव किसी अन्य जीव के साथ राजा जनक की विदेहा रानी के उदर में पहुंचा ॥48॥रानी विदेहा ने सुखपूर्वक कन्या के साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांस के टुकड़े को हर लेता है उसी प्रकार किसी ने उस पुत्र को हर लिया ॥49॥ वह व्यक्ति उस बालक को नक्षत्रों से भी अधिक ऊंचे आकाश में ले गया । यथार्थ में व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥50॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परंतु फिर दया कर उसने कुंडलों से अलंकृत कर धीरे से आकाश से छोड़ दिया ॥51॥ उस समय तुम परम उपवन में विद्यमान थे सो रात्रि में पड़ता देख तुमने मुझे ऊपर से ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानी के लिए सौंपा ॥52॥ आपके प्रसाद से रानी की गोद में वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओं का धारक हुआ और बहुत ही लाड़प्यार से मेरा पालन हुआ ॥53॥ यह कहकर भामंडल चुप ही रहा तथा उपस्थित समस्त लोग हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥54॥ राजा चंद्रगति यह अत्यंत आश्चर्यकारी वृत्तांत सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यंत दुर्लभ संवेग को प्राप्त हुआ । उसने लोक धर्म **अर्थ**ात् स्त्री-सेवनरूपी वृक्ष को सुखरूपी फल से रहित तथा संसार का बंधन जाना, इंद्रियों के विषयों में जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्य का ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्र के लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रता से सर्वभूतहित नामक मुनिराज के चरण मूल में प्रस्थान किया॥ 55-57॥

भगवान् सर्वभूतहित भव्य जीवों को आनंद देने वाले गुणरूपी किरणों के समूह से समस्त संसार में प्रसिद्ध थे॥ 58॥ महेंद्रोदय नामा उद्यान में स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराज की पूजा कर नमस्कार कर तथा भावपूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तक से लगाकर राजा चंद्रगति ने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! मैं गृहवास से विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसाद से जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना चाहता हूँ ॥59-60॥ एवमस्तु ऐसा कहने पर भामंडल ने भावपूर्वक परम प्रभावना की । जोर-जोर से भेरियाँ बजने लगी, उत्तम स्त्रियों ने बांसुरी की ध्वनि के साथ मनोहर गीत गाया, करताल के साथ-साथ अनेक वादित्रों के समूह गर्जना करने लगे । राजा जनक का लक्ष्मीशाली पुत्र जयवंत हो रहा है बंदीजनों का यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूंजने लगा॥ 61-63॥ उद्यान से उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्द ने रात्रि के समय अयोध्यावासी समस्त लोगों को निद्रारहित कर दिया ॥64॥ऋषियों से संबंध रखने वाली इस हर्षध्वनि को

सुनकर जैन लोग परम हर्ष को प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषाद से युक्त हो गये ॥65॥ उस शब्द को सुनकर सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृत से ही सींची गयी हो, उसके समस्त अंग रोमांच से, व्याप्त हो गये तथा उसका बायाँ नेत्र फड़कने लगा ॥66॥ वह विचारने लगी कि यह जनक कौन है जिसका कि पुत्र जयवंत हो रहा है । यह अत्यंत उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा है ॥67॥ राजा जनक कनक का बड़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥68॥
ऐसा विचार कर भाई के स्नेह से जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥69॥
तदनंतर सुंदर शरीर के धारी रामने मधुर अक्षरों में कहा कि वैदेहि ! भाई के शोक से विवश हो क्यों रही हो ॥70॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करेंगे इसमें संशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पंडिते! शोक करने से क्या लाभ है ? ॥71॥ क्योंकि जो चतुर जन हैं वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजन का शोक नहीं करते हैं ॥72॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धि हीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥73॥ इस प्रकार दंपती के वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गयी सो मानो दया से ही शीघ्र चली गयी और प्रातःकाल संबंधी मंगलमय शब्द होने लगे॥ 74।।
तदनंतर राजा दशरथ अंग संबंधी कार्य कर आदर सहित पुत्रों और स्त्रीजनों के साथ नगरी से बाहर निकले ॥75॥सैकड़ों सामंत उनके साथ थे । वे जहाँ-तहां फैली हुई विद्याधरों की सेना को देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥76॥ उन्होंने क्षण-भर में ही विद्याधरों के द्वारा निर्मित ऊंचे कोट और गोपुरों से सहित इंद्रपुरी के समान स्थान देखा॥ 77॥तदनंतर उन्होंने पताकाओं और तोरणों से चित्रित, रत्नों से अलंकृत एवं मुनिजनों से व्याप्त उस महेंद्रोदय नामा उद्यान में प्रवेश किया ॥78॥ वहाँ जाकर राजा दशरथ ने गुणों से श्रेष्ठ सर्वभूतहित नामा गुरु को नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदय के समय राजा चंद्रगति का दीक्षा महोत्सव देखा॥ 79॥ उन्होंने विद्याधरों के साथ गुरु की बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई-बंधुओं के साथ एक ओर बैठ गये ॥80॥ कुछ शोक को धारण करता हुआ भामंडल भी समस्त विद्याधरों के साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥81॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेव से मुनि तथा गृहस्थधर्म का व्याख्यान सुन रहे थे ॥82॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियों का धर्म शूरवीरों का धर्म है, अत्यंत शांत दशारूप है, मंगलरूप है, अत्यंत दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और क्षुद्र जनों को भय उत्पन्न करने वाला है॥ 83॥इस मुनिधर्म को पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव निःसंदेह स्वर्ग का महासुख प्राप्त करते हैं॥ 84॥ और कितने ही लोक-अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान को प्राप्त कर लोक के अग्रभाग पर आरूढ़ हो मोक्ष का सुख प्राप्त करते हैं ॥85॥ तिर्यंच और नरक गति के दुःखरूपी अग्नि की ज्वालाओं से भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है॥ 86॥ऐसे मार्ग का कथन उन मुनिराज ने किया था । वे मुनिराज समस्त प्राणियों का हित करने वाले थे, गंभीर गर्जना के समान स्वर को धारण करने वाले थे, समस्त जीवों के चित्त में आह्लाद उत्पन्न करने वाले थे तथा समस्त पदार्थों को जानने वाले थे ॥47॥ जिनके चित्त प्रसन्नता से भर रहे थे ऐसे समस्त लोगों ने संदेहरूपी संताप को नष्ट करने वाले मुनिराज के वचनरूपी जल का अपने-अपने कर्णरूपी अंजलिपुट से खूब पान किया॥88॥
तदनंतर जब वचनों में अंतराल पड़ा तब राजा दशरथ ने पूछा कि हे नाथ ! विद्याधरों के राजा चंद्रगति का वैराग्य किस कारण हुआ है ?॥ 89॥वहीं पास में बैठी निर्मल दृष्टि की धारक सीता अपने भाई को जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करने की इच्छा से नम्र हो उसने मन को अत्यंत निश्चल कर लिया ॥90॥ तब विशुद्ध आत्मा के धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् ! अपने द्वारा अजित कर्मो के द्वारा निर्मित जीवों की इस विचित्रता को सुनो ॥9॥ कर्मरूपी वाय से प्रेरित हआ यह भामंडल का जीव दीर्घकाल तक संसार में भ्रमण कर अत्यंत दुःखी हआ है । अंत में जब भामंडल पैदा हआ तब वह राजा चंद्रगति को प्राप्त हआ । चंद्रगति ने पालन-पोषण करने के लिए अपनी पुष्पवती भार्या को सौंपा । जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिंता को प्राप्त हुआ तब अपनी बहन सीता का चित्रपट देख अत्यंत व्यथा को प्राप्त हुआ॥92-93॥ सीता की मँगनी करने के लिए मायामयी अश्व के द्वारा राजा जनक का हरण हुआ अंत में सीता का धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवर में राजा दशरथ के पुत्र राम को वर लिया । इस घटना से भामंडल परम चिंता को प्राप्त हुआ ॥ 94॥ अकस्मात् इसे पूर्व भव का स्मरण हुआ, जिससे यह मूर्च्छित हो गया । सचेत होने पर राजा चंद्रगति ने इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भव की वार्ता इस प्रकार कहने लगा ॥95॥ कि मैं भरत क्षेत्र के विदग्ध नामा नगर में कुंडल मंडित नाम का राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगर में रहने वाले पिंगल नामक ब्राह्मण की मनोहर स्त्री का हरण किया था ॥96॥ मैं राजा अनरण्य के

राज्य में उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचंद्र ने मेरी सर्व संपदा छीनकर मुझे देश से निकाल दिया । अंत में मैं भटकता हुआ मुनियों के आश्रम में पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिष **अर्थ**ात् मांसत्याग का व्रत धारण किया ॥97॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यान से सहित हो तथा कलुषता से रहित होकर मैंने मरण किया और मरकर राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ में जन्म धारण किया । जिस स्त्री का मैंने हरण किया था भाग्य की बात कि वह भी उसी विदेहा के गर्भ में उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥98॥ पिंगल ने जब जंगल से लौटकर कुटिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटर की अग्नि से झुलस ही गया हो ॥ 19॥ वह उसके बिना पागल-जैसा हो गया, उसके नेत्रों से लगातार दुर्दिन की भाँति आँसुओं की वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसी से पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥100॥ वह हा कांते ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझ में प्रीति होने के कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेम से भरे भाइयों को छोड़कर विदेश में आयी थीं ॥101-102॥ तुमने मेरे पीछे रूखा-सूखा भोजन और अशोभनीय वस्त्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवसुंदरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो ? ॥103॥ खेदखिन्न तथा वियोगरूपी अग्नि से जला हुआ पिंगल पहाड़ों और वनों से सहित पृथिवी में दुःखी होकर चिर काल तक भटकता रहा । अंत में तप करने लगा परंतु उस समय भी उसे स्त्री की उत्कंठा सताती रहती थी ॥104॥

तदनंतर देवपर्याय को पाकर वह इस प्रकार चिंता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सम्यक्त्व से रहित होकर तिर्यंचयोनि को प्राप्त हुई है ॥105॥ अथवा स्वभाव से सरल होने के कारण पुनः मानुषी हुई या आयु के अंत समय में जिनेंद्रदेव का स्मरण कर देव पर्याय को प्राप्त हुई है ? ॥106॥ ऐसा विचार कर तथा सब निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करने वाला दुष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समय के विचार के बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसी के साथ विदेहा रानी की कुक्षि में ही विद्यमान है ॥107॥ रानी विदेहा ने बालक और बालि का को जन्म दिया सो वैर का बदला लेने के लिए वह देव बालक को उठा ले गया परंतु कर्मोदय से उसके परिणाम शांत हो गये जिससे उसने उस बालक को लघुपर्णी विद्या से लघु कर जीते रहो इन शब्दों का उच्चारण कर आकाश से छोड़ा॥ 108॥जिसमें चाँदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रि में आकाश से पड़ते हुए उस बालक को आपने पकड़ा था और अपनी रानी पुष्पवती के लिए सौंपा था । क्या यह आपको स्म है ? ॥109॥ मैंने आपके प्रसाद से विद्याधरपना प्राप्त किया । यथार्थ में विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहन है ॥110॥ भामंडल के ऐसा कहने पर विद्याधरों की समस्त सभा आश्चर्य को प्राप्त हुई तथा चंद्रगति संसार से भयभीत हो भामंडल के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कह कर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोक के कारण दुःख से रह रहे हैं सो उनके नेत्रों को आनंद प्रदान कर॥111-112॥ तदनंतर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भ में स्थित होता है, ऐसा विचारकर चंद्रगति संसार से भयभीत हो वैराग्य को प्राप्त हुआ ॥113॥ इसी बीच में भामंडल ने सर्वभूतहित मुनिराज से पूछा कि हे प्रभो ! चंद्रगति आदि का मुझ पर बहुत भारी स्नेह किस कारण था॥ 114॥ इनके उत्तर में मुनिराज ने कहा कि हे भामंडल ! तेरे माता-पिता पूर्व भव में जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥115॥ दारुग्राम में एक विमुचि नाम का ब्राह्मण था । उसकी स्त्री का नाम अनुकोशा था और पुत्र का नाम अतिभूति था । अतिभूति की स्त्री का नाम सरसा था ॥116॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माता के साथ कयान नाम का एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूति की स्त्री सरसा तथा घर के भीतर का सारभूत धन दोनों का हरण किया **अर्थ**ात् सरसा और धन को लेकर कहीं भाग गया ॥117 । इस निमित्त से अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्री की खोज में पृथिवी पर भ्रमण करने लगा । इधर उसके चले जा ने से घर पुरुषरहित हो गया सो बा की बचा धन भी चोर ले गये ॥118॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणा की इच्छा करता हुआ पहले ही देशांतर चला गया था । वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परंपरा से चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापस आया॥119॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री अनुकोशा अत्यंत विह्वल हो रही है और उसके शरीर पर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े हो शेष रह गये हैं । तब उसने उसे सांत्वना दी और कयान की माता ऊरी के साथ पुत्र को ढूँढ़ने के लिए गया॥ 120॥ उसने पृथिवीतल पर भ्रमण करते हुए लोगों से सुना कि सर्वारिपुर नामा नगर में एक आचार्य है जिन्होंने अपने अवधि ज्ञान से इस जगत् को प्रकाशित कर रखा है सो वह उनसे पुत्र की वार्ता पूछने के उद्देश्य से उनके पास गया । विमुचि महाशोक से भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधू का पता न लगने से अत्यंत दुःखी था ॥121-122॥ वह आचार्य महाराज की तप ऋद्धि देखकर तथा संसार की नाना प्रकार की स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्य को प्राप्त हुआ और उन्हीं के पास दीक्षा लेकर मुनि हो

गया ॥123॥ विमुचि की स्त्री अनुकोशा और कयान की माता ऊरी इन दोनों ब्राह्मणियों ने भी कमलकांता नामक आर्यिका के पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥124॥ विमुचि, अनुकोशा और ऊरी ये तीनों प्राणी महानिस्पृह, धर्मध्यान से मरकर निरंतर प्रकाश से युक्त तथा आकुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में उत्पन्न हुए ॥125॥ अतिभूत तथा कयान दोनों ही हिंसा धर्म के समर्थक तथा मुनियों से द्वेष रखने वाले थे । इसलिए खोटे ध्यान से मरकर दुर्गति में गये ॥126॥ अतिभूति की स्त्री सरसा बलाहक नामक पर्वत की तलहटी में मृगी हुई सो व्याघ्र से भयभीत हो मृगों के झुंड से बिछड़कर दावानल में जल मरी॥ 127॥ तदनंतर दुःख देने में प्रवीण पापकर्म के शांत होने से मनस्विनी देवी के चित्तोत्सवा हुई ॥128॥ और कयान मरकर क्रम से घोड़ा तथा ऊँट हुआ । फिर मरकर धूम्रकेश का पुत्र पिंगल हुआ ॥ 129॥ अतिभूति भवभ्रमण कर क्रम से ताराक्ष नामक सरोवर के तीर पर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियों ने इसका समस्त शरीर नोंच डाला जिससे घायल होकर जिनमंदिर के समीप पड़ा ॥130॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्य को बार-बार अर्हंत भगवान् का स्तोत्र पढ़ा रहे थे उसे सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥131॥ उसके फल स्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वत पर दश हजार वर्ष की आयु वाला किन्नर देव हुआ और वहाँ से च्युत होकर विदग्धनगर में राजा कुंडलमंडित हुआ॥ 132॥ पूर्वभव के संस्कार से चित्तोत्सवा कन्या का पिंगल ने अपहरण किया और उसके पास से कुंडलमंडित राजा ने अपहरण किया । इन सबका जो पूर्वभव का संबंध था वह पहले कहा जा चुका है ॥133॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चंद्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नाम की जो स्त्री थी वही पुष्पवती नाम की फिर से स्त्री हुई ॥134॥ कयान अपहरण करने वाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, ऊरी विदेहा और अतिभूति भामंडल हुआ ॥135॥

तदनंतर इस समस्त वृत्तांत को सुनकर जिनके नेत्र आँसुओं से भर गये थे ऐसे राजा दशरथ ने भामंडल का आलिंगन किया ॥136॥ उस समय सभा में जितने लोग बैठे थे सभी के मस्तक आश्चर्य से चकित रह गये, सभी के शरीर में बहुत भारी रोमांच निकल आये और सभी के नेत्र आनंद के आँसुओं से चंचल हो उठे॥ 137|मुख की आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाई को बड़े प्रेम से देखकर सीता स्नेहवश मृगी की तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुझे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गयी और चिरकाल तक रुदन कर धैर्य को प्राप्त हुई॥ 138-139॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बंधुओं ने भी सहसा उठकर भामंडल का आलिंगन किया तथा आदर सहित उससे वार्तालाप किया ॥140॥

तदनंतर उन श्रेष्ठ मुनिराज को नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उप वन से बाहर निकले । उस समय वे हर्ष से परिपूर्ण थे तथा अत्यंत सुशोभित हो रहे थे ॥141॥ भामंडल के साथ सलाह कर राजा दशरथ ने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधर के हाथ राजा जनक के पास पत्र भेजा ॥142॥ भामंडल का उत्तम विमान आकाश-मार्ग से आ रहा था, हंसों के द्वारा धारण किया गया था तथा बहुत से विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥143॥ तदनंतर भामंडल को लेकर राजा दशरथ ने इंद्र के समान बड़ी विभूति से अयोध्या में प्रवेश किया ॥144॥ अक्षीण कोश के धनी राजा दशरथ ने भामंडल के आने पर प्रसन्न हो सब लोगों के साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥145॥ भामंडल राजा दशरथ के द्वारा बताये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा वापी और बगीचा से सुशोभित महल में सुख से ठहरा ॥146॥ उस परमोत्सव के समय राजा दशरथ ने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतल के दरिद्र मनुष्य इच्छा से अधिक धन पाकर दरिद्रता से मुक्त हो गये ॥147॥ उधर पवन के समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधर ने पुत्र के आगमन का समाचार सूना कर राजा जनक को सहसा हर्षित कर दिया॥148॥राजा जनक दिये हुए पत्र को बाँचकर तथा उसकी सत्यता का दृढ़ विश्वास कर परम प्रमोद को प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया ॥149॥ वे उस विद्याधर से पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या यह स्वप्न है ? अथवा जागृत दशा में होने वाला प्रत्यक्षज्ञान है, आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिंगन करूँ ॥150॥ इतना कहकर आनंद के आँसुओं से जिनके नेत्रों की पुतलियाँ चंचल हो रही थीं ऐसे राजा जनक ने उस पत्र वाहक विद्याधर का ऐसा आलिंगन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥151॥उन्होंने इस हर्ष से नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधर के लिए अपने शरीर पर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीर पर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखें ॥152॥हर्ष की वृद्धि करने वाले राजा जनक के बंधुवर्ग जब तक इकट्ठे होते हैं तब तक अपनी कांति से आकाश को आच्छादित करता हुआ भामंडल का विमान वहाँ आ पहुँचा ॥153॥राजा जनक ने अतृप्त हो बार-बार भामंडल का वृत्तांत पूछा और विद्याधरों ने सब वृत्तांत ज्यों का त्यों बड़े विस्तार से कहा॥ 154॥

तदनंतर राजा जनक समस्त भाई-बंधुओं के साथ विमान पर आरूढ़ हो निमेष मात्र में अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरही के

मधुर शब्द से शब्दायमान हो रही थी ॥155॥ आकाश से शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्र का गाढ़ आलिंगन किया । आलिंगन जन्य सुख से उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षणभर के लिए वे मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥156॥सचेत होने पर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल झर रहा था ऐसे विशाल लोचनों से तृप्ति कर पुत्र का अवलोकन किया तथा हाथ से उसका स्पर्श किया ॥157॥ माता विदेहा भी पुत्र को देखकर तथा आलिंगन कर हर्षातिरेक से मूर्च्छित हो गयी और सचेत होने पर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यंचों को भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥158॥वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरी के द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥159॥ मेरा यह शरीर अग्नि के समान तेरे देखने की चिंता से अब तक जलता रहा है । आज चिरकाल के बाद तेरे दर्शनरूपी जल से शांत हुआ है ॥160॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्था में क्रीड़ा से धूल धूसरित तेरे अंग अपनी गोद में रखे हैं तथा चंदन से लिप्त और केशर के तिलक से सुशोभित तेरे मुख का चुंबन किया है एवं शैशव अवस्था को धारण करने वाले तेरे कुमार कालीन शरीर को देखा है ॥161-162॥माता विदेहा के नेत्रों से आँसू और स्तनों से चिरकाल तक दूध निकलता रहा । वह उत्तम पुत्र का संग पाकर परम आनंद को प्राप्त हुई ॥163॥ जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्र में ज़ंभा नाम की जिनशासन को सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामंडल पर दृष्टि लगाकर **अर्थ**ात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागर में निमग्न होकर रहने लगी ॥164॥ तदनंतर एक मास तक अयोध्या में रहने के बाद भाई-बंधुओं के समागम से प्रसन्न एवं परम विनय को धारण करने वाले भामंडल ने श्रीराम से कहा कि ॥165॥ हे देव ! सीता के आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बांधव हो । आप इसके हृदय में इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेग को प्राप्त न हो ॥166॥ उत्कृष्ट हृदय के धारक भामंडल ने उत्तम चेष्टाओं से सुशोभित बहन का स्नेहवश आलिंगन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥167॥ माता विदेहा ने भी सीता का आलिंगन कर कहा कि हे बेटी! तु अपने सास-ससुर को प्रिय हो, तथा परिजन के साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसा को प्राप्त हो ॥168॥तदनंतर भामंडल सब लोगों से पूछकर तथा मिथिला का राज्य कनक के लिए सौंपकर माता-पिता को साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥169॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! पूर्व भव में किये हुए धर्म का यह माहात्म्य देखो । धर्म के माहात्म्य से ही रामने विद्याधरों का राजा भामंडल-जैसा बंधु प्राप्त किया, गुण तथा रूप से परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवों के समूह से अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदि से युक्त एवं देवों के द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये । लक्ष्मी का भांडार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥170-171॥ जो मनुष्य अत्यंत विशुद्ध हृदय से भामंडल के इस इष्ट समागम को सुनता है सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्टजनों के साथ समागम और आरोग्य को प्राप्त होता है ॥172॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में भामंडल के समागम का वर्णन करने वाला तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥30॥

## राजा दशरथ को वैराग्य

इकतीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामी से पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनों से सहित, राजा अनरण्य के पुत्र राजा दशरथ ने इस विभूति को पाकर क्या किया ? ॥1॥ हे महायश के धारक! राम और लक्ष्मण का पुरातन वृत्तांत आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तांत मुझ से कहिए ॥2॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराज ने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तांत सर्वज्ञदेव ने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥3 ॥वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथ ने समस्त जानने वाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराज को प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥4॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुत से जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमें से एक भी भव को नहीं जानता जबकि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥5॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसाद से मोह नष्ट करने के लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥6॥ इस प्रकार भवांतर सुनने के लिए उद्यत राजा दशरथ से सर्वभूतहित मुनि निम्नांकित वचन कहने लगे ॥7॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धि के धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा! तुमने इस संसार में समंतात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूंगा ॥8॥ दुःख देने वाले इस महान् संसार में केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किंतु कर्मों का संचय करने वाले अन्य लोगों ने भी कर्मोदय से इसमें भ्रमण किया है ॥9॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रय में अपना हित चाहने वाले

प्राणियों की दशाएँ उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार की वर्णित की गयी हैं ॥10॥ उनमें से अभव्य जीव की दशा जघन्य है, भव्य की मध्यम है और सिद्धों की उत्तम है । जिनेंद्र भगवान् ने सिद्धगति को पुनरागमन से रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥11॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुख को देने वाली है । इंद्रियरूपी व्रणरोग से पीड़ित तथा मोह से अंधे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥12॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेग से रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापों से निवृत्त नहीं हैं उनको चतुर्गति में भ्रमण कराने वाली गति **अर्थ**ात् दशा होती है । उनकी यह गति अत्यंत उग्र तमो गुण और रजो गुण से युक्त रहती है ॥13॥अभव्य जीवों की गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाश से रहित है और भव्य जीवों की गति मोक्ष प्राप्त करने वाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गति में ही भ्रमण करते हैं और भव्यजीवों में किन्हीं का निर्वाण भी हो जाता है ॥14॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और बाकी समस्त आकाश अलोक कहलाता है । संसार के समस्त प्राणी पृथिवी आदि षट□काय को धारण करने वाले हैं ॥15 ॥यह जीव राशि अनंत है । इसका क्षय नहीं होता है । इसके लिए बालू के कण, आकाश अथवा चंद्रमा, सूर्य आदि की किरणे दृष्टांत हैं अर्थात् जिस प्रकार बालू के कणों का अंत नहीं है, आकाश का अंत नहीं है और चंद्र तथा सूर्य की किरणों का अंत नहीं है उसी प्रकार जीवराशि का भी अंत नहीं है ॥16 ॥चर-अचर पदार्थों अर्थात् त्रसस्थावर जीवों से सहित ये तीनों लोक अनादि, अनंत है, स्वकीय कर्मों के समूह से सहित हैं तथा नाना योनियों के जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥17॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं और जो अनंतकाल तक सिद्ध होंगे वे जिनेंद्रदेव के द्वारा देखे हुए धर्म के द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकार से नहीं ॥18॥ जो पापकर्म के कारण संशयरूपी कलंक से व्याप्त है तथा धर्म की भावना अर्थात् संस्कार रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है? ॥19॥ जो मनुष्य श्रद्धा से रहित है उसके धर्म और धर्म के फल कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शन से रहित है, जो अत्यंत उग्र कर्मरूपी काँचली से सब ओर से वेष्टित हैं जो मिथ्याधर्म में अनुरक्त हैं और जो आत्महित से दूर रहते हैं उन प्राणियों को अत्यंत दुःख देने वाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥20-21॥

अथानंतर हस्तिनापुर नगर में एक उपास्ति नाम का गृहस्थ था । उसकी दीपिनी नाम की स्त्री थी । वह दीपिनी मिथ्या अभिमान से पूर्ण थी, श्रद्धा से रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विष को धारण करने वाली थी, दुष्ट भावों से युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओं की निंदा करने में तत्पर रहते थे । वह न कभी स्वयं किसी को आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरे की अनुमोदना करती थी । यदि कोई दानादि सत्कार्यों में प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी । इत्यादि अनेक महादोषों से युक्त थी और कुतीर्थ की भावना से युक्त थी । इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयंकर तथा पाररहित संसार सागर में भ्रमण करने लगी ॥22-25 ॥इसके विपरीत उपास्ति देहिदेहि **अर्थ**ात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरों का अच्छी तरह अभ्यास कर-अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्म के प्रभाव से अंद्रकपुरनामा नगर में मद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्री के धारण नाम का भाग्यशाली एवं अनेक बंधुजनों से युक्त पुत्र हुआ । उसकी नयनसुंदरी नाम की स्त्री थी ॥26-27।।

वह योग्य देश तथा काल में प्राप्त हुए साधुओं के लिए शुद्धभाव से आहार देता था । जिसके फलस्वरूप अंत में समाधिपूर्वक शरीर का त्याग कर धातकीखंडद्वीप संबंधी विदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत की उत्तर दिशा में विद्यमान कुरुक्षेत्र में आर्य हुआ । वहाँ तीन पल्य तक भोग भोगकर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥28-29॥ वहाँ से च्युत होकर पुष्कलावती नगरी में राजा नंदिघोष और वसुधा रानी के नंदिवर्धन नाम का पुत्र हुआ ॥30॥ एक दिन राजा नंदिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोध को प्राप्त हुआ और नंदिवर्धन को पृथिवी-पालन का भार सौंप यशोधर मुनिराज के समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा । तथा अंत में विधिपूर्वक शरीर त्याग कर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥31-32॥ इधर नंदिवर्धन गृहस्थ का धर्म धारण करने में लीन एवं पंच-नमस्कार मंत्र की आराधना करने में तत्पर था । वह एक करोड़ पूर्व तक महाभोगों को भोग कर तथा संन्यास से शरीर छोड़कर पंचम स्वर्ग में गया । वहाँ से च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्र में सुमेरु पर्वत के पश्चिम की ओर विजया पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगर में राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लता के सूर्यंजय नाम का पुत्र हुआ ॥33-35॥ अथानंतर एक समय महाबलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करने के लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥36॥वह देदीप्यमान सुंदर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकार के शस्त्रों से अंधकार उत्पन्न करने वाले अत्यंत बलवान् सामंतों से सहित था ॥37 ॥जो क्रोध के कारण ओंठ डंस रहा था, जिसके हाथ में धनुष था, जिसका शरीर कवच से आच्छादित था, जो आग्नेय विद्या से शत्रु का स्थान जलाना चाहता था, जो रथ के अग्रभाग पर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयंकर आकार का धारक था । ऐसे

उस रत्नमाली को आकाश में स्थित देख सहसा किसी देव ने इस प्रकार कहा ॥38-39॥ कि हे रत्न मालिन् ! तूने यह क्या आरंभ कर रखा है ? क्रोध को छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तांत कहता हूँ ॥40॥

इसी भरत क्षेत्र की गांधारीनामा नगरी में एक भूति नाम का राजा था । उपमन्यु उसके पुरोहित का नाम था । राजा और पुरोहित दोनों ही मांसभोजी तथा नीचकार्य करने वाले थे॥41॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनि का व्याख्यान सुनकर राजा भूति ने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पाप का आचरण फिर कभी नहीं करूंगा ॥42॥ इस व्रत के प्रभाव से उसने इतने पुण्य का संचय किया कि उससे स्वर्ग को पाँच पल्य प्रमाण आयु का बंध हो सकता था, परंतु उपमन्यु पुरोहित के उपदेश से उसका यह सब पुण्य भस्म-भाव को प्राप्त हो गया **अर्थ**ात् नष्ट हो गया । उसने उस पुण्यभाव को छोड़ दिया । उसी समय शत्रुओं ने आक्रमण कर पुरोहित के साथ-साथ उसे मार डाला ॥43-44॥ पुरोहित का जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्ध में घायल हो अन्य दुःखी जीवों को जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पंच नमस्कार मंत्र को पाकर उसी गांधारी के राजा भूति के बुद्धिमान् पुत्र की योजनगंधा नामा स्त्री के अरिसूदन नाम का पुत्र हुआ॥45-46॥कमल गर्भ मुनिराज के दर्शन कर अरिसूदन को पूर्व जन्म का स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग में देव हुआ । इस तरह मैं वही पुरोहित का जीव देव हूँ और तू राजा भूति का जीव मरकर मंदारण्यनामा वन में मृग हुआ सो वहाँ दावानल में जलकर उसने अकाम निर्जरा की उसके फलस्वरूप वह क्लिज नाम का नीच पुरुष हुआ । उस पर्याय में तूने जो दारुण कार्य किये-तीव्र पाप किये उनके फलस्वरूप त शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया॥47-49॥तदनंतर स्नेह के संस्कार से मैंने वहाँ जाकर तुझे संबोधा जिसके प्रभाव से निकलकर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥50॥ तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ?इस प्रकार देव के कहते ही रत्न माली का मन नाना दुर्गतियों से भयभीत हो गया । इस वृत्तांत के सुनने से रत्नमाली का पुत्र सूर्यंजय भी परम वैराग्य को प्राप्त हो गया इसलिए उस पुण्यात्मा के साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यंजय के पुत्र कुलनंद को राज्य देकर तिलकसुंदरनामा प्रशांत आचार्य की शरण में पहुँचा ॥51-53 ॥तदनंतर सूर्यंजय तपकर महाशुक्र स्वर्ग में गया और वहाँ से च्युत होकर राजर्षि अनरण्य के दशरथ नाम का पुत्र हुआ ॥54॥ सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्य के द्वारा उपास्ति आदि भवों में वटबीज की तरह शुभोदय से वृद्धि को प्राप्त हुआ है ॥55॥ तू राजा दशरथ उपास्ति का जीव है और नंदिवर्धन की पर्याय में जो तेरा पिता नंदिघोष था वह तप कर ग्रैवेयक गया और वहाँ से च्युत होकर मैं सर्वभूतहित हुआ हूँ॥56॥ तथा उसके अनुकूल रहने वाले जो भूति और उपमन्यु के जीव थे वे पुण्य के प्रभाव से क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥57॥ वास्तव में इस संसार में न तो कोई पर है और न अपना है । शुभाशुभ कर्मों के कारण जीव का यह जन्म-मरण रूप परिवर्तन होता रहता है ॥58॥ इस प्रकार पूर्वभव का वृत्तांत सुन अनरण्य का पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोध को प्राप्त हुआ तथा सब प्रकार का संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करने के सम्मुख हुआ ॥59॥संपूर्ण आदर के साथ उसने गुरु के चरणों की पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनंतर निर्मल हृदय हो नगर में प्रवेश किया ॥60॥ उसने मन में विचार किया कि यह महामंडलेश्वर का पद बुद्धिमान् राम के लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥61॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्त का धारक राम अपने भाइयों के साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत क्षेत्र की पृथ्वी का पालन करने में समर्थ है ॥62 । इस प्रकार राज्य के मोह से विमुख और मुक्ति के लिए चित्त धारण करने वाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चांदनी ही जिसका वस्त्र थी, चंद्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरदऋतुरूपी स्त्री हिम से डरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥63-64॥ और लगातार हिम के पड़ने से जिसने कमलों को कांतिरहित कर दिया था तथा शीतल वायु से जिसने समस्त संसार को व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमंत काल आ पहुँचा ॥65॥ जिनके ओठ तथा पैरों के किनारे फट गये थे, जो पीठ पर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दंत वीणा के समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तक के बाल रूखे तथा बिखरे हुए थे, निरंतर अग्नि के तापने से जिनकी गोद तथा जाँघे तीतर के पंख के समान मटमैली हो गयी थीं, जिनका चित्त पेट भरने की चिंता से दुःखी रहता था, जो शरीर की कांति से पके हुए त्रपुषफल के वल्कल के समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्या के वचनरूपी शस्त्रों से जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदि के लाने में लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्य के द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारों को धारण करते थे तथा जो भट्ट पड़ जाने से कठोर कंधों को धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदि से पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कटियों में उस हेमंत काल को बडे कष्ट से व्यतीत करते थे ॥66-70॥ और इनसे विपरी अक्षीण धन के कारण निश्चिंत थे वे उत्तमोत्तम महलों में रहते थे, शीत के समागम को हरने वाले तथा धूप की सुगंधि से सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रों से उनके शरीर ढ के रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदि के पात्र में रखे हुए, छह रस के स्वादिष्ट, सुगंधित

तथा स्निग्ध आहार को लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशर से लिप्त तथा कालागुरु की धूप से सुवासित रहते थे, उनके नेत्र झरोखों की ओर झाँका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोद को प्राप्त होते रहते थे, माला तथा आभूषणों से युक्त रहते थे, सुभाषितों के कहने में तत्पर रहते थे और विनीत, कला निपुण तथा सुंदर रूप की धारक उत्तम स्त्रियों के साथ पुण्योदय से क्रीड़ा करते थे ॥71-75 ॥आचार्य कहते हैं कि इस संसार में पुण्य से सुख प्राप्त होता है और पाप से दुःख मिलता है । प्राणी अपने कर्मों के अनुरूप ही सब प्रकार का फल प्राप्त करते हैं ॥76 ॥।

तदनंतर उस समय संसारवास से अत्यंत भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्री के आलिंगन की आकांक्षा करते हुए भोग वस्तुओं से विरक्त हो गये॥77॥जिसने पृथिवी पर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपाल को उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मंत्रियों से सहित अपने सामंतों को बुला लाओ ॥78॥द्वारपाल ने द्वार पर अपने ही समान दूसरे पुरुष को नियुक्त कर राजाज्ञा का पालन किया । सामंत और मंत्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥79॥उन्होंने राजा से कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है ? तब राजा ने विनय से भरी सभा से कहा कि मैंने निश्चय किया है कि दीक्षा धारण करूँ।।80॥ तदनंतर मंत्रियों तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओं ने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपकी ऐसी बुद्धि के उत्पन्न होने में क्या कारण है ? ॥81 ॥तब राजा ने कहा कि अये ! यह समस्त संसार सूखे तृण के समान निरंतर मृत्युरूपी अग्नि से जल रहा है इस बात को आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥82 ॥आज मैंने अभी-अभी मुनिराज के मुख से जिनेंद्रप्रणीत उस शास्त्र का श्रवण किया है कि जिसे अभव्य जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवों के ग्रहण करने के योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुख को देने वाला है, तीन लोक में प्रकट है, सूक्ष्म है । विशुद्ध है तथा उपमा से रहित है ॥83-84 ॥समस्त भावों में सम्यक्त्व भाव हो उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है यही मुक्ति का मार्ग है । गरु चरणों के प्रसाद से आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥85 ॥जिसमें नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कीचड़ से भरी है, कुतकरूपी मगरमच्छों से व्याप्त है, महादुःखरूपी तरंगों से युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलों से सहित है, मिथ्यात्वरूपी जल से भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयंकर शब्द हो रहा है, जो विधर्म **अर्थ**ात् मिथ्याधर्मरूपी वेग से बह रही है तथा नरकरूपी समुद्र के पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदी का स्मरण कर देखो । भय से मेरे अंग सब ओर से कंपित हो रहे हैं ॥86-88 । आप लोग मोह के वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थान में सूर्य के विद्यमान रहते अंधकार का निवास कैसे हो सकता है ?॥89॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्र का शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्विघ्न हो तपोवन में प्रवेश कर सकूँ ॥90॥ ऐसा कहने पर महाराज का दृढ़ निश्चय जानकर मंत्री तथा सामंतवर्ग परम शोक को प्राप्त हुए । सभी के मस्तक नीचे हो रहे ॥91॥ वे अँगुली से भूमि को खोदने लगे, उनके नेत्र आंसुओं से व्याप्त हो गये और सभी क्षणभर में प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥92 ॥प्राणनाथ निश्चितरूप से निर्ग्रंथ व्रत को धारण करने वाले हैं । यह सुनकर समस्त अंतःपुर एकत्रित हो परम शोक को प्राप्त हुआ ॥93॥स्त्रियों ने जो विनोद प्रारंभ कर रखे थे उन्हें छोड़कर आँसुओं से नेत्र भर लिये तथा आभूषणों का अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगीं ॥14॥

पिता को विरक्त देख भरत भी प्रतिबोध को प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेह का बंधन बड़ा कष्टकारी तथा दुःख से छेदने योग्य है ॥15 ॥वह सोचने लगा कि सम्यक्ज्ञान को प्राप्त हुए पिता को इस अव्यापार **अर्थ**ात् नहीं करने योग्य चिंता से क्या प्रयोजन है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्य को चिंता क्यों होनी चाहिए ? ॥96॥ मुझे किसी से पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःख से भरे संसार के क्षय का कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥97॥ रोगों के घर स्वरूप इस नश्वर शरीर से भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बंधु जो अपने-अपने कर्म का फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥98॥ मोह से अंधा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षों से व्याप्त इस दुःखदायी अटवी में भ्रमण करता रहता है ॥99॥ तदनंतर कलाओं के कलाप को जानने वालो केकयी चेष्टाओं से भरत का अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥100 ॥वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं **अर्थ**ात् दोनों ही दीक्षा धारण करने के लिए उद्यत हैं । इन दोनों को रोकने के लिए मैं किस निश्चित उपाय का अवलंबन करूँ ? ॥101॥ इस प्रकार चिंता को प्राप्त तथा अत्यंत व्याकुल हृदय को धारण करने वाली केकया के मन में शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगने की बात याद आ गयी ॥102 ॥वह अपने विचारों में दृढ़ राजा दशरथ के पास बड़ी प्रसन्नता से गयी और बहुत भारी तेज के साथ अर्द्धासन पर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियों के सामने कहा था कि जो तू चाहेगी दूंगा । सो हे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्म के कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो

आपकी कीर्ति है, वह दान के प्रभाव से समस्त संसार में फैल रही है ॥103-105 ॥तदनंतर राजा दशरथ ने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्राय को धारण करने वाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो माँग । अभी देता हूँ ॥106॥ राजा के इस प्रकार कहने पर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी आँसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है? बताइए, हम लोगों ने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हम लोगों को छोड़ने के लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके अधीन है ॥107-108॥ जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यंत कठिन है उसे धारण करने की आज आपने बुद्धि क्यों की ?॥109 ॥हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इंद्र के समान भोगों से पालित हुआ है सो अत्यंत कठिन नाना प्रकार का मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥110॥

केकयी के इस प्रकार कहने पर राजा दशरथ ने कहा कि प्रिये ! समर्थ के लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता! जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥111॥पति के इस प्रकार कहने पर प्रदेशिनीनामा अंगुलि से पृथिवी को खोदती हुई केकयी ने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्र के लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥112॥ तब दशरथ ने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जा की क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋणमुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥113-114 ॥उसी समय उन्होंने उत्तम लक्षणों से युक्त नमस्कार करते हुए विनयी राम को बुलाकर कुछ खिन्न चित्त से कहा ॥115॥ कि हे वत्स ! कला की पार गामिनी इस चतुर केकयी ने पहले भयंकर युद्ध में अच्छी तरह मेरे सारथि का काम किया था ॥116 ॥उस समय संतुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की थी जो यह चाहे सो दूं । परंतु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूप में रख छोड़ा था ॥117॥ अब किसी की अपेक्षा नहीं रखने वाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्राय से उस वर को इस प्रकार मांग रही है कि मेरे पुत्र के लिए राज्य दीजिए ॥118॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो संसार के आलंबन से उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥119 ॥और यह पुत्र के शोक से प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहार के कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस संसार में सर्वत्र फैल जावेगी ॥120॥ साथ ही यह मर्यादा भी नहीं है कि समर्थ बड़े पुत्र को छोड़कर छोटे पुत्र को राज्य-लक्ष्मी रूपी स्त्री का समागम प्राप्त कराया जाये ॥12 ॥ जब भरत के लिए समस्त राज्य दे दिया जायेगा तब क्षत्रिय-संबंधी परम तेज को धारण करने वाले तुम लक्ष्मण के साथ कहाँ जाओगे? यह मैं नहीं जानता हूँ । तुम पंडित-निपुण पुरुष हो । अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण बहुत भारी चिंता को बात के मध्य में स्थित रहने वाला मैं क्या करूँ ? ॥122-123॥

तदनंतर उत्तम अभिप्राय के कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पैरों पर लगाये हुए थे ऐसे राम ने उत्तम विनय को धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिताजी ! आप अपने सत्य-व्रत की रक्षा कीजिए और मेरी चिंता छोड़िए । यदि आप अपकीर्ति को प्राप्त होते हैं तो मुझे इंद्र की लक्ष्मी से भी क्या प्रयोजन है ? ॥124-125 ॥निश्चय से उत्पन्न हुए तथा घर की इच्छा रखने वाले पुत्र को वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किंचित् भी शोक को प्राप्त न हों ॥126 ॥जो पिता को पवित्र करे अथवा शोक से उसकी रक्षा करे यही पुत्र का पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥127।।

इधर जब तक पिता-पुत्र के बीच सभा को अनुरक्त करने वाली यह कथा चल रही थी तब तक मैं संसार को नष्ट करूं ऐसा दृढ़ निश्चय कर भरत महल से नीचे उतर पड़ा । यह देख लोग हाहाकार करने लगे । पिता ने स्नेह से दुःखी चित्त होकर उसे रोका । वह पिता का आज्ञाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवी पर खड़ा होना चाहता था; परंतु पिता ने उसे गोद में बैठाकर उसका आलिंगन किया, चुंबन किया और इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! तू राज्य का पालन कर । मैं तपोवन के लिए जा रहा हूँ । इसके उत्तर में भरत ने कहा कि मैं राज्य की सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥128-131॥ यह सुनकर पिता ने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नवीनवय से सुंदर है अतः मनुष्य-जन्म का सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होने पर दीक्षा धारण करना ॥132॥पिता के इस प्रकार कहने पर भरत ने कहा कि हे पिताजी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा तरुण की प्रतीक्षा नहीं करती ॥133॥ इसके उत्तर में पिता ने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम में भी तो धर्म का संचय सुना जाता है । यद्यपि क्षुद्र मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥134 ॥पिता के इस प्रकार कहने पर भरत ने कहा कि हे पिताजी ! जो इंद्रियों के वशीभूत है तथा काम-क्रोधादि से परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्य की मुक्ति कैसे हो सकती है ?॥135 ॥इसके उत्तर में पिता ने कहा कि हे

वत्स ! एक भव में मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियों को प्राप्त होती है । अधिकांश मुनियों को मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए घर में रहकर ही धर्म धारण करो ॥136॥ पिता के इस प्रकार कहने पर भरत ने कहा कि हे पिताजी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रम से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥137॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रम से नहीं होगी । मैं तो इसी भव से प्राप्त करूँगा । अनुक्रम से होने वाली मुक्ति दूसरे ही के योग्य है । क्या गरुड़ वेग से अन्य पक्षियों के समान होता है ? ॥138॥ क्षुद्र मनुष्य कामरूपी ज्वाला से परम दाह को प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इंद्रिय संबंधी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें संतोष प्राप्त नहीं होता ॥139॥ कामरूपी अग्नि में ज्यों-ज्यों भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यंत वृद्धि को प्राप्त होती है और संताप को उत्पन्न करती है ॥140॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाई से प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है । ये देखते-देखते क्षण-भर में नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगने वाला व्यक्ति पाप के कारण नियम से परम दुःख देने वाली दुर्गति को प्राप्त होता है ॥141॥ हे पिताजी! मैं संसार से अत्यंत भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए । जिससे मैं वन में जाकर विधिपूर्वक मोक्ष का कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥142॥ हे पिताजी ! यदि मोक्ष-संबंधी सुख घर में भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महाबुद्धिमान् हैं ॥143 ॥जो पुत्र को दुःख से तारे और तप की अनुमोदना करे यही तात का तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥144॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदि को छोड़कर अकेला ही जाता है ॥145 ॥ जो अभागा चिरकाल तक देवों के भोग भोगने पर भी संतुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भव के तुच्छ भोगों से किस प्रकार संतोष प्राप्त करेगा? ॥146॥

पिता दशरथ भरत के उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये । हर्ष से उनके शरीर में रोमांच निकल आये । वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोध को प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥147 ॥फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेह का भंग नहीं किया । तू विनयी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है ॥148॥ सुन, एक बार युद्ध में मेरे प्राणों का संशय उपस्थित हुआ था । उस समय तेरी माता ने सारथि का कार्य कर मेरी रक्षा की थी । उससे संतुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओं के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि यह जो कुछ चाहेगी वह दूंगा ॥149 ॥मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे मांगा है । इसने बड़े सम्मान के साथ कहा है कि मेरे पुत्र के लिए राज्य दीजिए ॥150॥इसलिए हे पुत्र ! तू इंद्र के समान यह निष्कंटक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञा के कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसार में भ्रमण नहीं करे ॥151॥और जिसका शरीरसुख से निरंतर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोक से दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥152॥अपत्य **अर्थ**ात् पुत्र का अपत्यपना यही है कि जो माता-पिता को शोकरूपी महासागर में नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥153॥

तदनंतर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखते हुए राम ने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दों में इस प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजी ने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्र के रत्नों की उत्पत्ति सरोवर से नहीं हो सकती ॥154-155॥ अभी तेरी अवस्था तप करने के योग्य नहीं है । इसलिए राज्य कर जिससे पिता की चंद्रमा के समान निर्मल कीर्ति फैले ॥156॥ जिसका शरीर शोक से संतप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्र के रहते हुए यदि मरण को प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥157॥ पिता के सत्य की रक्षा करने के लिए हम शरीर को भी छोड़ सकते हैं । फिर तू बुद्धिमान होकर भी लक्ष्मी को क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है? ॥158॥ मैं किसी नदी के किनारे, पर्वत अथवा वन में वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर ॥159॥ हे गणों के आलय ! मैं अपना सब भाग छोड़ मार्ग का ही आश्रय ले रहा हूँ । मैं पृथ्वी पर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥160॥ इसलिए लंबी और गरम साँस मत ले, संसार का भय छोड़, पिता की बात मान और न्याय में तत्पर रहकर पृथ्वी की रक्षा कर ॥161 ॥हे भाई ! जिस प्रकार चंद्रमा ग्रहों के समूह को अलंकृत करता है उसी प्रकार तु इक्ष्वाकुओं के इस लक्ष्मी संपन्न, निर्मल एवं अत्यंत विशाल कुल को अलंकृत कर ॥162 ॥जो पिता के वचन की रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाई का भाईपन है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥163 ॥इतना कहकर राम पृथ्वीतल का स्पर्श करने वाले शिर से भावपूर्वक पिता के चरणों में प्रणाम कर लक्ष्मण के साथ उनके पास से चले गये ॥164 । इसी बीच में यद्यपि राजा दशरथ मूर्च्छा को प्राप्त हो गये तो भी किसी को इसका पता नहीं चला क्योंकि वे जिस खंभा से टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छा के समय भी पुतले के समान उसी खंभा से टिके बैठे रहे ॥165 ॥राम शीघ्र ही धनुष उठाकर माता के पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी **अर्थ**ात देशांतर को जाता है॥166॥राम की बात सुनकर माता भी आ

गयी सो मानो दुःख का ज्ञान रोककर उसने सखी का कार्य किया । तदनंतर क्षणभर के बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब आँखों में आंसू भरकर माता अपराजिता ( कौसल्या ) बोली कि हाय वत्स! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टा के धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागर में डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥167-168॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ों मनोरथों के बाद मैंने तुझे पाया है । जिस प्रकार शाखा का आलंबन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माता का आलंबन पुत्र होता है ॥169 ॥इस प्रकार हृदय में चुभने वाला विलाप करती हुई माता को प्रणाम कर मातृ भक्ति में तत्पर रहने वाले रामने कहा कि माता! तुम विषाद को प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशा में योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥170-171 ॥"पिता ने, केकयी माता को वरदान देने के कारण पृथ्वी भरत के लिए दे दी है यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥172 ॥अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अंत में किसी महाअटवी में, विंध्याचल में, मलयपर्वत पर अथवा समुद्र के निकट किसी अन्य देश में हे माता! अपना स्थान बनाऊंगा ॥173 ॥सूर्य के समान जब तक मैं इस देश के समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चंद्रमा की आज्ञा ऐश्वर्य से संपन्न नहीं हो सकेगी ॥174॥ तदनंतर जो अत्यंत दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेह से कातर हो उठे थे ऐसी माता रोती हुई, नम्रीभूत पुत्र का आलिंगन कर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुझे बिना देखे मैं प्राण धारण करने के लिए कैसे समर्थ हो सकूँगी ? ॥175-176 ॥पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियों के आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवन का आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशा को प्राप्त होऊँ ॥177-178॥ यह सुन राम ने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्थरों से अत्यंत कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वी पर पैरों से किस प्रकार चल सकोगी ? ॥179॥इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीक कर किसी यान के द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका छोड़ना कैसे हुआ ?॥180॥ हे माता ! मैं आपके चरणों का स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जाने के लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्य के समझने में निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे॥181॥राम के ऐसा कहने पर माता ने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सांत्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोध को प्राप्त हो चुके थे इसलिए राम ने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥182॥अपराजिता के सिवाय अन्य माताओं को नमस्कार कर अनेक मधुर वचनों से उन्हें सांत्वना दी, भाई-बंधुओं का आलिंगन कर उनके साथ मधुर संभाषण किया और तदनंतर जिनका उदार हृदय विषाद से रहित था, तथा जो सर्व प्रकार के न्याय में निपुण थे ऐसे राम हृदय को प्रेम से भरकर सीता के महल में पहुँचे ॥183-184॥ राम बोले कि--हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगर को जाता हूँ । तदनंतर उस पतिव्रता ने एक ही उत्तर दिया कि जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी ॥185 ॥इसके पश्चात् रामने समस्त मंत्रियों से, राजाओं से तथा परिवार के अन्य लोगों से बड़े आदर के साथ पूछा । नगर में जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परता से वार्तालाप किया ॥186 ॥इस समय प्रीतिवश बहुत से मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिंगन कर रहे थे, आदर से भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त थे । राम ने अनेक बार कहकर उन्हें वापस लौटाया ॥187 ॥तदनंतर जिनका मन मेरु पर्वत के समान स्थिर था ऐसे राम, मुख्य-मुख्य घोड़ों तथा हाथियों को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए पिता के घर से बाहर निकल पड़े ॥188 । यद्यपि सामंत लोग शीघ्र ही सुंदर घोड़े और हाथी ले आये परंतु परम न्याय के जानने वाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया॥189॥पति को विदेश गमन के लिए उद्यत देख, जिसके शरीर पर सुंदर वस्त्र का आवरण था, जिसके नेत्र फूले हुए कमल के समान थे ऐसी सीता भी, सास-श्वसुर को प्रणाम कर तथा मित्रजनों से पूछकर, जिस प्रकार इंद्राणी इंद्र के पीछे चलती है उसी प्रकार राम के पीछे चलने लगी॥ 190-191 ॥।

तदनंतर जिसका चित्त स्नेह से भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मण ने जब राम को जाते हुए देखा तो नेत्रों में छलकते हुए क्रोध को धारण करता हुआ वह चिंता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरंतर स्वार्थ साधन की ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरे की कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभाव को धिक्कार हो ॥ 192-193 ॥अहो ! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषों में अत्यंत श्रेष्ठ हैं । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनि के भी जब कभी ही होता है ॥194 ॥क्या दुर्जनों को छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूं या बलपूर्वक लक्ष्मी को भरत से विमुख कर दूँ ? ॥195 ॥मैं आज विधाता की बलवती सामर्थ्य को नष्ट करता हूँ और चरणों में पड़कर बड़े भाई को लक्ष्मी में उत्सुक करता हूँ ॥196॥ अथवा क्रोध के वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करने वाले मुनि को भी मोह से अंधा बना देता है ॥197 ॥मुझे इस अनुचित विचार करने से क्या प्रयोजन है ?

क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही यह कार्य उचित है अथवा अनुचित यह अच्छी तरह जानते हैं ॥198॥ हमें पिता की उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करने वाले बड़े भाई के ही साथ जाता हूँ ॥ 199॥इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शांत कर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनों से पूछकर भी राम के पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महाविनय से संपन्न था, मार्ग के योग्य उसकी वेषभूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मी का घर था ॥200-201 ॥उस समय का दृश्य बड़ा ही करुण था । सीता के साथ राम-लक्ष्मण आगे बढ़े जाते थे और माता-पिता परिवार तथा शेष दो पुत्रों के साथ धारा-प्रवाह आँसुओं से मानो वर्षा कर रहे थे ॥ 202॥ परंतु दोनों भाई दृढ़ निश्चय को प्राप्त थे और सांत्वना देने में अत्यंत निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणों में गिरकर माता-पिता को बड़ी कठिनाई से वापस किया ॥203 ॥उन्होंने भाई-बंधुओं को बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अंत में जिस प्रकार स्वर्ग से देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दोनों भाई राजमहल से बाहर निकले ॥204॥हे माता ! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा किसका मत था ? **अर्थ**ात् किसके कहने से यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥205 ॥अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहने से सब दुःख दूर हो जायेगा । ये दोनों ही दुःखरूपी पर्वत की गुहा से उद्धार करने में अत्यंत समर्थ हैं ॥206॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? पति ने इसे साथ चलने की अनुमति दे दी है । देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥ 207॥अहो ! जो विनयरूपी वस्त्र से आवृत होकर पति के पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यंत धन्य है बड़ी भाग्यवती है ॥208॥हमारी स्त्रियों की भी ऐसी ही गति हो । यह पतिव्रता स्त्रियों के लिए उदाहरण स्वरूप है ॥209 ॥अहो ! देखो, जिसका मुख आँसुओं से भीग रहा है ऐसी माता को छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाई के साथ जाने के लिए उद्यत हुआ है ॥210॥ अहो ! इस लक्ष्मण की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनय का समूह धन्य है ॥211 ॥भरत का क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथ ने यह क्या कर दिया ? राम-लक्ष्मण के भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥212॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है । ऐसी विचित्र चेष्टा को और दूसरा कौन कर सकता है ?॥213 ॥यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है । इस स्थान के देवता कहाँ गये ? उस समय लोगों की भीड़ से इस प्रकार के शब्द निकल रहे थे ॥214।।

उस समय समस्त लोग राम-लक्ष्मण के साथ जाने के लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरी के समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरी का समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥215 ॥समस्त घरों के दरवाजों की जो भूमियाँ पहले फूलों के समूह से व्याप्त रहती थीं वे उस समय शोक से भरे मनुष्यों के आंसुओं से पंकिल **अर्थ**ात् कर्दम युक्त हो गयी थी ॥216 ॥जिस प्रकार महापवन से समुद्र की लहरें क्षोभ को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्यों के द्वारा दूर हटाये गये लोगों की पंक्तियां क्षोभ को प्राप्त हो रही थीं ॥217॥ लोग पद-पद पर भक्तिवश राम की पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करने के लिए उद्यत होते थे सो अत्यंत सरल प्रकृति के धारक राम उसे विघ्न मानते थे ॥218॥

तदनंतर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मंद पड़ गयी थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्य को देखने के लिए असमर्थ होने से ही अस्त हो गया था ॥219॥ जिस प्रकार मुक्ति की इच्छा करने वाले प्रथम चक्रवर्ती भरत ने सब संपत्तियां छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिन के अंत में सूर्य ने सब किरणें छोड़ दीं ॥220 ॥जिस प्रकार परम राग **अर्थ**ात् उत्कृष्ट प्रेम को धारण करने वाली तथा उचित-अंबर अर्थात् योग्य वस्त्र से सुशोभित सीता राम के पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अंबर अर्थात् अभ्यस्त आकाश के समागम को प्राप्त संध्या सूर्य के पीछे जा रही थी ॥221॥ तदनंतर वस्तुओं के विशेष ज्ञान को नष्ट करने वाले अंधकार से समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो राम के जाने से उत्पन्न शोक से ही व्याप्त हो गया हो ॥ 222॥ तत्पश्चात् पीछे चलने के लिए उत्सुक मनुष्यों को धोखा देने के लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सायंकाल के समय अरहनाथ भगवान् के मंदिर में पहुँचे ॥223॥संसार को नष्ट करने वाले जिनेंद्र भगवान् का वह मंदिर सदा अलंकृत रहता था, लोग उसकी निरंतर पूजा करते थे, चंदन के जल से वहाँ की भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मंगल द्रव्यों से वह विभूषित रहता था । सो अतिशय बुद्धिमान तथा अन्य की अपेक्षा से रहित राम-लक्ष्मण ने सीता के साथ प्रदक्षिणा देकर उस मंदिर में विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥224-225॥दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परंतु तीसरे दरवाजे पर द्वारपाल ने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्ष की इच्छा करने वाले मिथ्यादृष्टि को मोहनीय कर्म रोक देता है ॥226 ॥कमल के समान नेत्रों को धारण करने वाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान् के दर्शन कर परम संतोष को प्राप्त हुए ॥227॥ तदनंतर जो मणिमयी

चौकी पर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स के चिह्न से सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चंद्रमा के समान था, जिनके नेत्र विकसित कमल के समान थे, और जिनके प्रतिबिंब की रचना भुलायी नहीं जा सकती थी । ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेंद्र को सर्व भाव अर्थात् मन-वचन-काय से प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदर से भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनों को चिंता करते हुए रात्रि के समय उसी मंदिर में स्थित रहे ॥228-230 ॥पुत्र वत्सल माताओं को जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेंद्र के मंदिर में ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आयीं । उस समय उनके नेत्र आंसुओं से व्याप्त थे । उन्होंने बार-बार पुत्रों का आलिंगन किया और बार-बार उनके साथ मंत्रणा-सलाह की । उन्हें पुत्रों को देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्प के कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुई के समान चंचल हो रही थी । अंत में वे पुनः राजा दशरथ के पास चली गयीं ॥231-232 ॥आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियों में मन की शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है । स्त्री पुत्र और पति दोनों का आलिंगन करती है परंतु परिणाम पृथक्-पृथक् रहते हैं ॥233॥

तदनंतर गुण-लावण्य रूप वेष आदि महाअभ्युदय को धारण करने वाली चारों मिष्टवादिनी रानियाँ मेरु के समान निश्चल पति के पास गयी और बोली कि हे वल्लभ ! शोकरूपी समुद्र में डूबते हुए इस कुलरूपी जहाज को रो को और लक्ष्मण सहित राम को वापस बुलाओ ॥ 234-235 ॥इसके उत्तर में राजा दशरथ ने कहा कि यह विकाररूप जगत् मेरे अधीन नहीं । मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों में सदा सुख ही रहे ॥236॥ जन्म, जरा और मरणरूपी व्याधों के द्वारा किसी का घात नहीं हो परंतु कर्मो की स्थिति नाना प्रकार की है अतः कौन विवे की शोक करे ॥237॥बांधवादिक इष्ट पदार्थों के देखने में किसी को तृप्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवन के विषय में भी किसी को संतोष नहीं है ॥238॥ कदाचित् इंद्रिय सुख की पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्ष को छोड़ कर दूसरे वृक्ष पर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त हो जाता है ॥239॥ आप लोग पुत्र वाली हैं **अर्थ**ात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रों को लौटा लो और निश्चिंत होकर पुत्र भोग का अभ्युदय भोगो ॥240॥ मैं तो राज्य का अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पापपूर्ण चेष्टा से निवृत्त हो गया हूँ और संसार से तीव्र भय प्राप्त कर चुका हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूंगा ॥241॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्त में दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्य के समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावों की अभिलाषारूपी दोष से रहित थे ऐसे राजा दशरथ ने सब प्रकार की उदासीनता धारण कर ली ॥242॥ इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य के द्वारा कथित पद्मचरित में राजा दशरथ के वैराग्य का वर्णन करने वाला इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥31॥

## दशरथ की दीक्षा, राम का वनगमन, भरत का राज्याभिषेक

बत्तीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर राम-लक्ष्मण उस मंदिर में कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्धरात्रि के समय जब घोर अंधकार फैल रहा था, लोगों का शब्द मिट गया था, और मनुष्य शांत थे तब जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले । वे सीता को बीच में कर के चल रहे थे । दोनों ही उत्तम वेष के धारक थे तथा दीपक हाथ में लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मंडपादि स्थानों में कामी जनों को देख ही रहे थे ॥1-2॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर संभोग से खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभा को भुजारूप पंजर के मध्य रखकर अत्यंत गाढ़ निद्रा का सेवन कर रहा है ॥3॥ अपराध करने वाले किसी पुरुष ने पहले तो अपनी स्त्री को कुपित कर दिया और पीछे बार-बार झूठी शपथ के द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है॥4॥कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर पृथक् बैठा है और उसकी स्त्री काम से उत्तप्त हो उसे मधुर वचनों से शांत कर रही है॥ 5॥ सुरत के श्रम से जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पति के शरीर में इस तरह लीन होकर गाढ़ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पति के साथ अभेद को ही प्राप्त हो चुकी हो ॥6॥ कोई एक पुरुष लज्जा के कारण विमुख बैठी नवोढ़ा पत्नी को बड़ी कठिनाई से अनुकूल कर हर्षपूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥7॥ कोई एक स्त्री अपने पति के लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिंतता से उसका समाधान कर रहा है॥ 8 । कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीर को संकुचित कर दूसरे के घर पहुंचा है और वहाँ झरोखे में बैठे बिलाव को वहाँ से हटा रहा है॥ 9॥ किसी पुरुष ने अपनी कुलटा प्रेमिका को सूने मठ में आने का संकेत दिया था पर उसने आने में विलंब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-

बार उठकर उसे देख रहा है ॥10॥ किसी अभि सारिका का प्रेमी देर से आया था इसलिए वह अत्यंत कुपित हो उसे मेखला से बांधकर उत्तरीय वस्त्र से पीट रही है ॥11॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिका के साथ समागम प्राप्त कर कुत्ते के भी पैर की आहट सुनकर अत्यधिक भय को प्राप्त हो रहा है॥ 12॥ इस प्रकार बाह्य झरोखों और मंडपों में कामीजनों को देखते तथा उनके वृत्तांत को सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥13॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरी के पश्चिम द्वार से बाहर निकलकर आगे मिलने वाले मार्ग से दक्षिणदिशा की ओर चले गये ॥14॥

इधर जब भक्ति से भरे तथा राम के साथ जाने के लिए उत्सुक सामंतों को कानों कान यह पता चला कि राम तो बंधु जनों को धोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होने के पूर्व जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेग से घोड़े दौड़ा कर मंथर गति से चलने वाले राम के पास जा पहुंचे ॥15-16॥जब उन्हें साथ-साथ चलने वाले राम-लक्ष्मण नेत्रों से दिखने लगे तब वे महाविनय से युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥17॥ सामंत लोग भावपूर्वक प्रणाम कर जब तक उनके साथ यथाक्रम से वार्तालाप करते हैं तब तक उन्हें खोजने के लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुंची ॥18॥ अत्यंत निर्मलचित्त के धारक सामंत लोग सीता की इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसाद से ही राजपुत्रों को प्राप्त कर सके हैं॥ 19॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवन के समान वेगशाली राजपुत्रों को किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥20॥ यह माता अत्यंत सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करने वाली है । इस पृथिवी पर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥22॥ मनुष्यों में उत्तम राम लक्ष्मण सीता की गति का ध्यान कर गव्यूति प्रमाण मार्ग को ही सुख से तय कर पाते थे ॥22॥ वे पृथिवी मंडल पर नाना प्रकार के धान, कमलों से सुशोभित तालाब और गगनचुंबी वृक्षों को देखते हुए जा रहे थे॥ 23॥ जिस प्रकार वर्षाऋतु में गंगा और यमुना के प्रवाह अनेक नदियों से मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मण के पर्यंत भाग भी अनेक वेगशाली राजाओं से मिलते रहते थे ॥24॥ ग्राम, खेट, मटंब, घोष तथा नगरों में लोग उन उत्तम वीरों का भोजनादि सामग्री के द्वारा सत्कार करते थे ॥25॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामंत लोग मार्ग के खेद से दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बात का दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटने वाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे बिना ही लौट गये ॥26॥ भक्ति में तत्पर रहने वाले कितने ही सामंत लज्जा से और कितने ही भय से अपने मन को दुःखी कर विनयपूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥27॥

तदनंतर राम-लक्ष्मण लीलापूर्वक परियात्रा नाम की उस अटवी में पहुंचे जो कि सिंह और हस्तिसमूह के उच्च शब्दों से भयंकर हो रही थी॥ 28॥उस अटवी में बड़े-बड़े वृक्षों से कृष्णपक्ष की निशा के समान घोर अंधकार व्याप्त था । वहीं, जिसके किनारे अनेक शबर **अर्थ** ात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नाम की नदी थी । राम लक्ष्मण वहाँ पहुंचे ॥29॥ नाना प्रकार के मधुर फलों से युक्त उस नदी के तट पर विश्राम कर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओं को तो वापस लौटा दिया ॥30॥पर जिन्होंने राम के साथ जाने का निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करने पर भी नहीं लौटे ॥31॥

तदनंतर जो नदी महानीलमणि के समान सुशोभित हो रही थी, अत्यंत वेगशाली लहरों के समूह से जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उखरते हुए बलवान मगरमच्छों की टक्कर से उत्पन्न होने वाली तरंगों से व्याप्त थीं, लहरों के समूह के आघात पर जिसके कोमल किनारे उसी में टूट-टूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतों की गुफाओं में टकराने से जिसमें सू-सू शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरने वाली मछलियों के शरीर में सूर्य की किरणें प्रतिबिंबित हो रही थीं, जिसमें उत्पात करने वाले नाकों की सूत्कार से जल के छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पास से समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदी को देखकर सब सामंतों के शरीर भय से काँपने लगे । वे लक्ष्मण सहित राम से बोले कि हे नाथ ! हम लोगों को भी नदी से पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्ति से भरे हुए हम सेवकों पर प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो ॥32-37॥ इत्यादि अनेक शब्दों का उच्चारण करते हुए वे दीन सामंत उस नदी में कूद पड़े तथा नाना प्रकार की चेष्टाएँ करते हुए बहने लगे ॥38॥तब किनारे पर निश्चिंतता से खड़े हुए राम ने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयंकर है॥ 39॥ हम लोगों के साथ तुम्हारा इतना ही समागम था । अब हमारे और तुम्हारे बीच में यह नदी सीमा बन गयी है इसलिए उत्सुकता से रहित होओ ॥40॥ पिता ने तुम सबके लिए भरत को राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसी को शरण में रहो॥41॥

तदनंतर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ! हमारी गति तो आप ही हैं इसलिए हे दया निपुण ! प्रसाद करो और हम लोगों को नहीं छोड़ो ॥ 42॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है । आप ही कहो किसकी शरण में जावे ? आपके समान दूसरा है ही

कौन?॥ 43॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेंद्र आदि दुष्ट जीवों के समूह से भरे हुए वन में रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्ग में भी नहीं रहना चाहते ॥44॥हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटे ? यह चित्त ही तो इंद्रियों में प्रधान है॥ 45॥ जब आप-जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवों को घर से क्या प्रयोजन है ? भोगों से क्या मतलब है ? स्त्रियों से क्या **अर्थ** है ? और बंधुओं की क्या आवश्यकता है ? ॥46॥ हे देव ! क्रीड़ाओं में भी कभी आपने हम लोगों को सम्मान से वंचित नहीं किया फिर इस समय अत्यंत निष्ठुर क्यों हो रहे हो ?॥47॥हे भृत्य वत्सल ! हम लोग आपके चरणों की धूलि से ही परम वृद्धि को प्राप्त हुए हैं । बताइए, हमारा क्या अपराध है ?॥ 48॥राम से इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मण को भी संबोधित करते हुए कहा कि हे जानकि! हे लक्ष्मण ! मैं आप दोनों के लिए हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाता हूँ, आप हमारे विषय में स्वामी को प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनों पर प्रसन्न हैं-आपकी बात मानते हैं ॥49॥ लोग सोता तथा लक्ष्मण से इस प्रकार कह रहे थे और अत्यंत सरल प्रकृति के धारक वे दोनों राम के चरणकमलों के आगे दृष्टि लगाये चुपचाप खड़े थे‘क्या उत्तर दिया जाये’ यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था॥ 60॥ तदनंतर रामने कहा कि हे भद्रपुरुषो ! आप लोगों के लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँ से लौट जाइए, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुख से रहें ॥ 51॥ इतना कहकर किसी की अपेक्षा नहीं करने वाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साह से उस अतिशय गहरी महानदी में उतर पड़े ॥52॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर ( सूँड ) में कमलिनी को लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रों वाली सीता को हाथ में लेकर नदी को पार कर रहे थे॥ 53॥ दोनों ही जल-क्रीड़ा के ज्ञान में निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीड़ा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गयी थी ॥54॥उस समय राम की हथेली पर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी घर में स्थित लक्ष्मी ही हो ॥55॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्त को रोकने वाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मण के साथ नदी को पार कर क्षण-भर में वृक्षों से अंतर्हित हो गये ॥56॥

तदनंतर जिनके नेत्रों से आँसू झर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवन की ओर उन्मुख हुए ॥57॥कितने ही लोग उसी दिशा में नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदि के पुतलों के समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े॥ 58 ॥ और कितने ही प्रबोध को प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसार को धिक्कार है तथा सांप के शरीर के समान भय उत्पन्न करने वाले नश्वर भोगों को धिक्कार है॥ 59॥जहाँ इन-जैसे शूरवीरों की भी यह अवस्था है वहाँ एरंड के समान निःसार हम लोगों की तो गिनती ही क्या है ? ॥60॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टों के पात्र तथा जल के बबूले के समान निःसार इस कृतघ्न शरीर को धिक्कार है॥ 61॥ उत्तम चेष्टा के धारक जो मनुष्य वानर की भौंह के समान चंचल लक्ष्मी को छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्ति के धारक भाग्यवान हैं॥ 62॥ इस प्रकार वैराग्य को प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेने के सम्मुख हो नदी के उसी तट पर घूमने लगे ॥ 63॥

तदनंतर उन्होंने हरे-भरे वृक्षों की पंक्ति से घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मंदिर देखा ॥64॥ मंदिर का वह स्थान नाना प्रकार के पुष्पों की जातियों से व्याप्त था तथा मकरंद रस के आस्वाद से गूंजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥65॥ उन लोगों ने वहाँ एकांत स्थानों में बैठे हुए, स्वाध्याय में लीन तथा विशाल तेज के धारक मुनियों को देखा ॥66॥मस्तक पर अंजलि बांधकर सब लोगों ने उन्हें धीरे-धीरे यथा क्रम से नमस्कार किया । तदनंतर उज्ज्वल जिनमंदिर में प्रवेश किया ॥67॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतों के सुंदर नितंबों पर, वनों में तथा नदियों के तटों पर बने हुए जिनमंदिरों से विभूषित थी ॥68॥ वहाँ उज्ज्वल भावना को धारण करने वाले सब जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार कर समुद्र के समान गंभीर मुनिराज के पास गये॥ 69॥वहाँ जाकर वैराग्य को धारण करने वाले सब लोगों ने शिर झुकाकर मुनिराज को नमस्कार किया और तदनंतर यह कहा कि हे नाथ ! हम लोगों को इस संसार-सागर से पार कीजिए ॥70॥ इसके उत्तर में मुनियों के अधिपति सत्यकेतु आचार्य ने ज्यों ही तथास्तु यह शब्द कहा त्योंही अब तो हम संसार से पार हो गये यह कहते हुए सब लोग परम संतोष को प्राप्त हुए॥ 71॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कंटक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओं ने दिगंबर दीक्षा धारण की॥72-73॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी, घोड़ा आदि सेना को लेकर उनके पुत्रों को सौंपने के लिए शीघ्र ही नगर की ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यंत दीन तथा लज्जा से युक्त हो रहे थे॥ 74॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणों को धारण करने वाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहण कर निर्ग्रंथ मुद्रा के धारकों की सेवा करने के लिए उद्यत हुए॥ 75॥ तथा कितने ही लोग संसार को जीतने वाले जिनेंद्र भगवान् का अत्यंत निर्मल धर्म श्रवण कर मात्र सम्यग्दर्शन से

ही संतोष को प्राप्त हुए ॥76॥ अनेक सामंतों ने जाकर यह समाचार भरत के लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुख से बैठा था परंतु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥77॥

अथानंतर सम्यक् प्रबोध को प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्त को धारण करने वाले भरत का राज्याभिषेक कर राम के वियोग से कुछ संतप्त चित्त को धारण करते हुए, सांत्वना देने पर भी जो अत्यंत विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अंतःपुर को छोड़ नगरी से बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागर में डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे॥ 78-80॥नगरी से निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरु के समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरुपूजा कर बहत्तर राजाओं के साथ दीक्षित हो गये ॥81॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यान की इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोक के कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥82॥ एक दिन योगारूढ़ होकर बुद्धिमान दशरथ विचार करने लगे कि संसार संबंधी दुःखों का मूल कारण तथा मुझे बंधन में डालने वाले स्नेह को धिक्कार है॥ 83॥ अन्य जन्मों में जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि संबंधी थे वे सब कहाँ गये ? यथार्थ में इस अनादि संसार में सभी संबंधी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥84॥मैंने अनेकों बार स्वर्ग में नाना प्रकार के विषय प्राप्त किये हैं और भोगों के निमित्त नरकाग्नि के संताप भी सहन किये हैं॥ 85॥ तिर्यंच पर्याय में मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरे का खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं । इस प्रकार नाना योनियों में मैंने दुःखरूपी अनेक शल्य प्राप्त किये ॥86॥मैंने बांसुरी, वीणा आदि मधुर बाजों का अनुगमन करने वाले संगीत के शब्द सुने हैं और हृदय को विदारण करने वाले तीव्र रुदन के शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥87॥मैंने अपना हाथ अप्सराओं के सुंदर स्तनों पर लड़ाया है और कभी कुठार की तीक्ष्ण धारा से उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये हैं॥ 88 ।। मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगंधित छह रसों से युक्त आहार ग्रहण किया है और नरक की भूमि में राँगा, सीसा आदि का कलल भी बार-बार पिया है ॥89॥मन को द्रवीभूत करने वाला अत्यंत सुंदररूप देखा है और अत्यंत भय का कारण तथा कंपन उत्पन्न करने वाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥90॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरों को आनंदित करने वाला मनोहर गंध सूंघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गंध उत्पन्न करने वाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूंघा है॥ 91॥ मन को चुराने वाली तथा लीलारूपी आभूषणों से सुशोभित स्त्रियों का आलिंगन किया है और तीक्ष्ण काँटों से व्याप्त सेमर के मायामयी वृक्षों का भी बार-बार आलिंगन किया है ॥92॥ कर्मों का दास बनकर मैंने इस संसार में क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूंघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥93॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिरकाल से संसार में भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नहीं हुआ है॥ 94॥तीनों लोकों में वह जीवन हीं है जो हजारों बार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥95॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसी का शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं पृथक् हूँ, इंद्रियाँ कर्मों के आने का द्वार हैं, कर्मों को रोक देना संवर है, संवर के बाद कर्मों की निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रय की प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्ट से पाया है॥ 96-98॥ इस प्रकार मुनियों के द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यान से धीरवीर दशरथ मुनि ने क्रम से पूर्वोक्त आर्तध्यान को नष्ट कर दिया ॥99॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथी पर सवार थे ऐसे राजा दशरथ ने पहले जिन देशों में महायुद्धों के बीच अत्यंत उद्धत शत्रुओं को जीता था अब उन्हीं देशों में वे अत्यंत शांत निर्ग्रंथ मुनि होकर विषम परिषहों को सहते हुए विहार कर रहे थे ॥100-101॥

तदनंतर पति के मुनि हो जाने और पुत्र के विदेश चले जाने पर अपराजिता ( कौशल्या) सुमित्रा के साथ परम शोक को प्राप्त हुई ॥102॥ जिनके नेत्रों से निरंतर अश्रु झरते थे ऐसी दोनों विमाताओं को दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्ती को लक्ष्मी के समान विशाल राज्यलक्ष्मी को विष के समान दारुण मानता था ॥103॥ अथानंतर इस तरह उन्हें अत्यंत दुखी देख केकयी के मन में दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरत से इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत हैं ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मण के बिना शोभा नहीं देता है ॥104-105॥ नियम से भरे हुए उन दोनों भाइयों के बिना राज्य क्या है ? देश को शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥106॥ सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त हुए दोनों बालक, बिना किसी वाहन के पाषाण आदि विषम मार्ग में राजकुमारी सीता के साथ कहां भटकते होंगे ? ॥107॥गुणों के सागरस्वरूप उन दोनों की ये माताएं अत्यंत दुःखी हैं, निरंतर विलाप करती रहती हैं सो उनके विरह में मृत्यु को प्राप्त न हो जावें ॥108 । इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनों को वापस ले

आ । उन्हीं के साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवी का पालन कर । ऐसा करने से ही सबकी शोभा होगी॥109॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़े पर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥110॥ माता के इस प्रकार कहने पर भरत बहुत प्रसन्न हुआ । वह साधु-साधु ठीक-ठीक इस प्रकार के शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ों से युक्त हो राम के मार्ग में चल पडा ॥111॥ वह राम के पास से लौटकर आये हुए लोगों को आगे कर बड़ी उत्कंठा से पवन के समान शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होकर चला ॥112॥ तथा कुछ ही समय में उस महाअटवी में जा पहुँचा जो हाथियों के समूह से व्याप्त थी, नाना वृक्षों से जहाँ सूर्य का प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्मी से अत्यंत भयंकर थी ॥113॥सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षों के बड़े-बड़े लटों से नावों के समूह को बाँधकर उनका पुल बना वाहनों के साथ-साथ क्षण-भर में पार कर गया॥114॥ वह मार्ग में मिलने वाले लोगो से पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगों ने एक स्त्री के साथ दो पुरुष देखे हैं और उत्तर को एकाग्र मन से सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था॥115॥ अथानंतर जो सघन वन में एक सरोवर के तीर पर विश्राम कर रहे थे तथ जिनके पास ही धनुष रखे हुए थे ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण को भरत ने देखा ॥116॥ राम लक्ष्मण, सीता के कारण जिस स्थान पर बहुत दिन में पहुंच पाये थे भरत उस स्थान पर छह दिन में ही पहुँच गया॥ 117॥ वह घोड़े से उतर पड़ा और जहाँ से राम दिख रहे थे उतने मार्ग में पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणों का आलिंगन कर मूर्च्छित हो गया ॥118॥ तदनंतर राम ने सचेत किया सो क्रम से वार्तालाप कर नम्रीभूत हो हाथ जोड़ शिर से लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडंबना की है ? आप ही न्याय के जानने वाले अतिशय निपुण हो॥ 119-120॥ उत्तम चेष्टाओं के धारण करने वाले आप से पृथक रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवन से भी क्या प्रयोजन है ?॥ 12॥ हे प्रभो ! उठो, अपनी नगरी को चलें, मुझ पर प्रसन्नता करो, समस्त राज्य का पालन करो, और मुझे सुख की अवस्था देओ ॥122॥ मैं आपका छत्र धारक होऊँगा, शत्रुघ्न चमर डोलेगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मंत्री होगा, ऐसा करने से ही सब ठीक होगा ॥123॥ मेरी माता पश्चात्ताप रूपी अग्नि से अत्यंत संतप्त हो रही है तथा आपकी और लक्ष्मण की माता भी निरंतर शोक कर रही हैं॥124॥ जब तक भरत इस प्रकार कह रहा था तब तक सैकड़ों सामंतों के मध्य गमन करने वाली केकयी वेगशाली रथ पर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥125॥राम लक्ष्मण को देखकर इसका हृदय बहुत भारी शोक से भर गया । हाहाकार करती हुई वह दोनों का आलिंगन कर चिरकाल तक रोती रही ॥126।।

तदनंतर जो विलाप करती-करती अत्यंत खिन्न हो गयी थी ऐसी केकयी अश्रु रूपी नदी की धारा टूटने पर क्रम से वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरी को चलें, छोटे भाइयों के साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य वन के समान जान पड़ता है ॥127–128॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षा के योग्य है **अर्थ**ात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, स्त्रीपना के कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी अतः मेरे इस कुकृत्य को क्षमा करो ॥129॥ तदनंतर राम ने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्य को कभी अन्यथा नहीं करते हैं एक बार कार्य को जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥130॥ पिता की अपकीर्ति जगत्त्रय में न फैले इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है ॥131॥ केकयी से इतना कहकर उन्होंने भरत से कहा कि हे भाई ! तू वैचित्य अर्थात् द्विविधा को प्राप्त मत हो । यदि तू अनाचार से डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्य की तुझे अनुमति दे रहा हूँ ॥132॥ इतना कहकर राम ने मनोहर वन में सब राजाओं के समक्ष भरत का पुनः राज्याभिषेक किया॥133॥ तदनंतर केकयी को प्रणाम कर सांत्वना देते हुए बार-बार संभाषण कर और भाई का आलिंगन कर बड़े कष्ट से सबको वापस विदा किया ॥134॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित राम-लक्ष्मण का यथायोग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥135॥ ।

अथानंतर भरत, पिता के समान, प्रजा पर राज्य करने लगा । उसका राज्य समस्त शत्रुओं से रहित तथा समस्त प्रजा को सुख देने वाला था ॥136॥ तेजस्वी भरत ने अपने मन में असहनीय शोकरूपी शल्य को धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्य में भी उसे क्षणभर के लिए संतोष नहीं होता था ॥137॥वह तीनों काल अरनाथ भगवान् की वंदना करता था, भोगों से सदा उदास रहता था और समीचीन धर्म का श्रवण करने के लिए मंदिर जाता था यही इसका नियम था ॥138॥ वहाँ स्व और पर शास्त्रों के पारगामी तथा अनेक मुनियों का संघ जिनकी निरंतर सेवा करता था ऐसे द्युति नाम के आचार्य रहते थे ॥139॥ उनके आगे बुद्धिमान् भरत ने प्रतिज्ञा की कि मैं राम के दर्शन मात्र से मुनिव्रत धारण करूँगा॥ 140॥ तदनंतर अपनी गंभीर वाणी से मयूर समूह को नृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकार को प्रतिज्ञा करने वाले भरत से बोले ॥141॥ कि हे भव्य ! कमल के समान नेत्रों के धारक राम जब तक आते तब तक तू

गृहस्थ धर्म के द्वारा अभ्यास कर ले ॥142॥ महात्मा निर्ग्रंथ मुनियों की चेष्टा अत्यंत कठिन है पर जो अभ्यास के द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥143॥ मैं आगे तप करूँगा ऐसा कहने वाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥144॥निर्ग्रंथ मुनियों का तप अमूल्य रत्न के समान है ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो हो ही क्या सकती है ? ॥145॥ गृहस्थों के धर्म को जिनेंद्र भगवान् ने मुनिधर्म का छोटा भाई कहा है सो बोधि को प्रदान करने वाले इस धर्म में भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिए॥ 146॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्न को उठाता है वही उसके लिए अमूल्यता को प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्र की प्रवृत्ति करने वाले जिनेंद्र भगवान के शासन में जो कोई इस नियमरूपी द्वीप में आकर जिस किसी नियम को ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥147-148॥ जो अत्यंत श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्न को लेकर भक्तिपूर्वक जिनेंद्रदेव की पूजा करता है वह स्वर्ग में परम वृद्धि को प्राप्त होता है॥ 149॥ जो सत्य व्रत का धारी होकर मालाओं से भगवान् की अर्चा करता है उसके वचनों को सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्ति से वह समस्त संसार को व्याप्त करता है॥ 150॥ जो अदत्तादान **अर्थ**ात् चोरी से दूर रहकर जिनेंद्र भगवान् की पूजा करता है वह रत्नों से परिपूर्ण निधियों का स्वामी होता है॥ 151॥ जो जिनेंद्र भगवान् की सेवा करता हुआ परस्त्रियों में प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रों को हरण करने वाला परम सौभाग्य को प्राप्त होता है॥ 152॥ जो परिग्रह को सीमा नियत कर भक्तिपूर्वक जिनेंद्र भगवान् की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभों को प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥153॥ आहार-दान के पुण्य से यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकार के भोग इसे प्राप्त होते हैं । यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥154॥ अभयदान के पुण्य से यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकट में पड़कर भी उसका शरीर उपद्रव से शून्य रहता है ॥155॥ ज्ञानदान से यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और कलारूपी सागर से निकले हुए अमृत के कुल्ले करता है ॥156॥ जो मनुष्य रात्रि में आहार का त्याग करता हैं वह सब प्रकार के आरंभ में प्रवृत्त रहने पर भी सुखदायी गति को प्राप्त होता है ॥157॥जो मनुष्य तीनों काल में जिनेंद्र भगवान् को वंदना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥158॥ जो पृथिवी तथा जल में उत्पन्न होने वाले सुगंधित फूलों से जिनेंद्र भगवान् की अर्चा करता है वह पुष्पक विमान को पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥159॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलों से जिनेंद्रदेव की पूजा करता है वह लोगों के द्वारा पूजनीय तथा अत्यंत सुंदर होता है ॥160॥जो बुद्धिमान् चंदन तथा कालागुरु आदि से उत्पन्न धूप जिनेंद्र भगवान के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है॥ 16॥ जो जिनमंदिर में शुभ भाव से दीपदान करता है वह स्वर्ग में देदीप्यमान शरीर का धारक होता है॥ 162॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नूस, पता का तथा दर्पण आदि के द्वारा जिनमंदिर को विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मी को प्राप्त होता है ॥163॥ जो मनुष्य सुगंधि से दिशाओं को व्याप्त करने वाली गंध से जिनेंद्र भगवान् का लेपन करता है वह सुगंधि से युक्त, स्त्रियों को आनंद देने वाला प्रिय पुरुष होता है ॥164॥ जो मनुष्य सुगंधित जल से जिनेंद्र भगवान् का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है ॥165॥ जो दूध की धारा से जिनेंद्र भगवान् का अभिषेक करता है वह दूध के समान धवल विमान में उत्तमकांति का धारक होता है॥ 166॥ जो दही के कलशों से जिनेंद्र भगवान का अभिषेक करता है वह दही के समान फर्श वाले स्वर्ग में उत्तम देव होता है ॥167 ।। जो घी से जिनदेव का अभिषेक करता है वह कांति, द्युति और प्रभाव से युक्त विमान का स्वामी देव होता हैं ॥168॥पुराण में सुना जाता है कि अभिषेक के प्रभाव से अनंतवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्ग की भूमि में अभिषेक को प्राप्त हुए हैं॥ 169॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमंदिर में रंगावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदय का धारक होकर परम विभूति और आरोग्य को प्राप्त होता है॥ 170॥ जो जिनमंदिर में गीत, नृत्य तथा वादित्रों से महोत्सव करता है वह स्वर्ग में परम उत्सव को प्राप्त होता है॥ 17॥ जो मनुष्य जिनमंदिर बनवाता है उस सुचेता के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है ? ॥172॥ जो मनुष्य जिनेंद्र भगवान् की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परम पद को प्राप्त होता है॥ 173॥ तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य-कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते ॥174-175॥ इस कहे हुए फल को जीव स्वर्ग में प्राप्त कर जब मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदि का पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥ 176॥ जो कोई मनुष्य इस विधि से धर्म का सेवन करता है वह संसार-सागर से पार होकर तीन लोक के शिखर पर विराजमान होता है ॥ 177॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिंतवन करता है वह वेलाका, जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह तेलाका, जो जाने का

आरंभ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता है वह पंद्रह उपवास का, जो मंदिर के दर्शन करता है वह मासोपवास का, जो मंदिर के आँगन में प्रवेश करता है वह छह मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्षोपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेंद्रदेव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनंत उपवास के फल को प्राप्त करता है । यथार्थ में जिन भक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है॥ 178-182॥ आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत! जिनेंद्रदेव को भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते वह अनुपम सुख से संपन्न परम पद को प्राप्त होता है॥ 183॥ ऐसा कहने पर अत्यंत समीचीन भक्ति से युक्त भरत ने गुरु के चरणों को नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥184॥ अनेक शास्त्रों का ज्ञाता, धर्म के मर्म को जानने वाला, विनयवान् और श्रद्धा गुण से युक्त भरत अब साधुओं के लिए विशेष रूप से यथायोग्य दान देने लगा ॥185॥ उत्तम आचरण के पालन में तत्पर रहने वाला भरत हृदय में सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को धारण करता हुआ विशाल राज्य का पालन करता था ॥ 186॥ गुणों के सागरस्वरूप भरत का प्रताप और अनुराग दोनों ही बिना किसी रुकावट के समस्त पृथिवी में भ्रमण करते थे॥ 187॥ उसके देवियों के समान कांति को धारण करने वाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें आसक्ति को प्राप्त नहीं होता था । जिस प्रकार कमल जल में रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता है उसी प्रकार वह उन स्त्रियों के बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥188॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरत के मन में सदा यही चिंता विद्यमान रहती थी कि मैं निर्ग्रंथ दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रह से रहित हो पृथिवी पर विहार करता हुआ घोर तप कब करूंगा ? ॥189॥ पृथिवीतल पर वे धीर-वीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व परिग्रह का त्यागकर तथा तपोबल से समस्त कर्मो को भस्म कर संतोषरूपी सुख से श्रेष्ठ मोक्ष पद को प्राप्त हो च के हैं ॥10॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत् को क्षणभंगुर देखता हुआ भी संसार के दुःख में मग्न हूँ । इस संसार में जो मनुष्य पूर्वाह्न काल में देखा गया है वही अपराह्न काल में नहीं दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ़ बना हूँ ॥191॥ दीन हीन मुख को धारण करने वाले बंधुजनों के बीच में बैठा हुआ यह प्राणी सर्प से, जल से, विष से, अग्नि से, वज्र से, शत्रु के द्वारा छोड़े हुए शस्त्र से, अथवा तीक्ष्ण शूल से मरण को प्राप्त हो जाता है ॥192॥ यह प्राणी अनेक प्रकार के मरणों से हजारों प्रकार के दुःख भोगता हुआ भी निश्चिंत बैठा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेग से फैलने वाली लहरों के समूह से निर्भय हो लवणसमुद्र के तट पर सोया है॥193॥ हाय हाय, मैं राज्य कर तीव्र पाप से लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शाल्मली आदि वृक्षों और पहाड़ों के कारण घोर अंधकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरक में पड़ूंगा अथवा अनेक योनियों से युक्त तिर्यंच पर्याय को प्राप्त होऊँगा ? ॥194॥ मेरा यह मन जैनधर्म को पाकर भी पापों से लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहता को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ मुनिधर्म को धारण नहीं कर रहा है॥ 195॥ इस प्रकार जो पाप कर्म के नाश में कारण भूत चिंता को निरंतर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियों की कथा में सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्य की ओर देखता था न चंद्रमा की ओर ॥196॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में राजा दशरथ की दीक्षा, राम का वनगमन और भरत के राज्याभिषेक का वर्णन करने वाला बत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥32॥

## वज्रकर्ण

तैंतीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर राम मनुष्यों के उपभोग के योग्य स्थानों से हटकर तपस्वियों के सुंदर आश्रम में पहुँचे । वहाँ वृक्षों के समान जटिल **अर्थ**ात् जटाधारी (पक्ष में जड़ों से युक्त ), नाना प्रकार के वल्कलों को धारण करने वाले और स्वादिष्ट फलों से युक्त बहुत से तापस रहते थे ॥ 1-2॥ उस आश्रम में अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तों से छाये थे । सबके आगे बैठने के लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रखी हुई पलाश तथा ऊमर की लकड़ियों की गड्डियों से सहित थे ॥3॥ बिना जोते बोये अपने-आप उत्पन्न होने वाले धान उनके आँगनों में सूख रहे थे तथा निश्चिंतता से रोमंथ करते हुए हरिणों से वे सुशोभित थे ॥4॥ निरंतर जोर-जोर से रटने वाले जटाधारी बालकों से युक्त गायों के बछड़े अपनी सुंदर पूंछ ऊपर उठाकर उन मठों के आंगनों में चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥5॥ फूलों से सुंदर लताओं की छाया में बैठकर स्पष्ट उच्चारण करने वाले तोता, मैना तथा उलूक आदि पक्षियों से वे मठ सहित थे ॥6॥ कन्याओं ने भाई समझकर घड़ों द्वारा मधुर जल से

जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठों की शोभा बढ़ा रहे थे ॥7 ॥ उन तपस्वियों ने नाना प्रकार के मधुर फल, सुगंधित पुष्प, मीठा जल, आदर से भरे स्वागत के शब्द, अर्घ के साथ दिये गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटी का दान और कोमल पत्तों की शय्या आदि थकावट को दूर करने वाले उपचार से उनका बहुत सम्मान किया ॥8-9॥ तापस लोग स्वभाव से ही सर्वत्र अतिथि सत्कार करने में निपुण थे फिर इस प्रकार के सुंदर पुरुषों के मिलने पर तो उनका वह गण और अधिक प्रकट हो गया था ॥10॥ राम-लक्ष्मण वहाँ बसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्ग में आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणों को भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरों की तो बात ही क्या थी? ॥11॥ उस आश्रम में जो तापस रहते थे उन्होंने सुंदर रूप कहाँ देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायु का पान कर जीवन बिताते थे इसलिए सीता का रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरज को दूर छोड़ दिया ॥12॥ वृद्ध तपस्वियों ने शांत वचनों से उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रम में नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिए ॥13॥ यद्यपि ये अटवियां सर्व प्रकार के आतिथ्य-सत्कार से सहित हैं तो भी नारियों और नदियों के समान इनका विश्वास नहीं कीजिए । आप स्वयं बुद्धिमान् है ॥14 ॥तपस्वियों की स्त्रियों ने कमल के समान नेत्रों वाले राम और लक्ष्मण को देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया॥15॥उत्कंठा से भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियां उनके मार्ग में नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्य के बहाने बहुत दूर तक चली गयीं ॥16॥कोई स्त्रियां मधुर शब्दों में कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रम में क्यों नहीं रहते हैं ? हम आपका सब कार्य यथायोग्य रीति से कर देंगी॥17॥यहाँ से तीन कोश आगे चलकर मनुष्यों के संचार से रहित बड़े-बड़े भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जंतुओं से व्याप्त एक महाअटवी है ॥18॥ वह अत्यंत भयंकर है तथा डाभ की सूचियों से व्याप्त है । ईंधन तथा फल-फूल लाने के लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥19॥ आगे अत्यंत दुर्लध्य तथा बहुत भारी चित्रकूट नाम का पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोध को प्राप्त हो रहे हैं ॥20॥ इसके उत्तर में राम-लक्ष्मण ने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगों को अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहने पर वे बड़ी कठिनाई से लौटी और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हीं की कथा करती रहीं ॥21॥

अथानंतर उन्होंने ऐसे महावन में प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतों के अग्रभाग के चट्टानों के समूह से अत्यंत कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षों पर चढ़ी हुई लताओं के समूह से जो व्याप्त था ॥22॥ जहाँ भूख से अत्यंत क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखों से वृक्षों को क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहों के द्वारा मारे गये हाथियों के गंडस्थल से निकले रुधिर तथा मोतियों की कीच से युक्त था ॥23॥ जहाँ उन्नत हाथियों ने अपने स्कंधों से बड़े-बड़े वृक्षों के स्कंध छील दिये थे । जहाँ सिंहों की गर्जना से भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥24॥जहाँ सोये हुए अजगरों की श्वासोच्छ्वास वायु से गुफाएँ भरी हुई थीं । तथा सूकर समूह के मुख के अग्रभाग के आघात से छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे॥25 ॥बड़े-बड़े भैंसाओं के सींगों के अग्रभाग से जहाँ वामियों के शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलने वाले सांपों से भयंकर था ॥26 ॥जहाँ भेड़ियों के द्वारा मारे गये मृगों के रुधिर पर मक्खियां भिनभिना रही थी और कटीली झाड़ियों में पूछ के बाल उलझ जाने से जहाँ चमरी मृगों के झुंड बेचैन हो रहे थे॥27॥ जो अहंकार से भरी सेहियों के द्वारा छोड़ी हुई सूचियों से चित्रविचित्र था तथा विष पुष्पों की पराग के सूंघने से जहाँ अनेक जंतु इधर-उधर घूम रहे थे ॥28॥ जहाँ गेंडा, हाथियों के गंडस्थलों के आघात से खंडित हुए वृक्षों के तनों से पानी झर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूह ने जहाँ वृक्षों के पल्लव तोड़ डाले थे ॥29 ॥जहाँ नाना पक्षियों के समूह की क्रूर ध्वनि गूंज रही थी तथा वानर समूह के आक्रमण से जहाँ वृक्षों के ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥30॥ तीव्र वेग से बहने वाले सैकड़ों पहाड़ी झरनों से जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गयी थी तथा वृक्षों के अग्रभाग पर जहाँ सूर्य को किरणों का समूह देदीप्यमान होता था ॥31॥ जो नाना प्रकार के फूलों और फलों से व्याप्त था, विचित्र प्रकार की सुगंधि से सुवासित था, नाना औषधियों से परिपूर्ण था, और जंगली धान्यों से युक्त था ॥32॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिंगल वर्ण था ॥ 33 ॥वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूट के सुंदर निर्झरों में क्रीड़ा करते, सुंदर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरे को दिखाते स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पद पर किन्नरियों को लज्जित करने वाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थल में उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरे को भूषित करते और वृक्षों से निकले हुए सुगंधित द्रव से शरीर को लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे मानो उद्यान की सैर करने के लिए ही निकले हों । उनके सुंदर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीर की सजावट करते थे तथा प्राणियों के नेत्रों का अपहरण करते थे ॥34-37॥ वे बार-बार नेत्रों को हरण करने वाले निकुंजों में विश्राम करते थे, नाना प्रकार की कथावार्ता करते थे और तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते थे ॥38॥ स्वभाव से ही अत्यंत सुंदर लीला के साथ गमन करते हुए वे उस सुंदर वन में इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे

जिस प्रकार कि नंदन वन में देव ॥39 ॥इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मास में वे उस स्थान को पार कर मनुष्यों से भरे हुए अत्यंत सुंदर अवंती देश में पहुंचे । वह देश गायों की गरदनों में बँधे घंटाओं के शब्द से परिपूर्ण था, नाना प्रकार के धान्य से सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरों से व्याप्त था ॥40-41।।

तदनंतर सुंदर आकार को धारण करने वाले वे तीनों, कितना ही मार्ग उल्लंघकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थान में पहुंचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥42॥ एक वट वृक्ष की छाया में बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्यों से रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥43॥ यहाँ अनेकों धान के प के खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचों के ये वृक्ष फलों और फूलों से सुशोभित हैं ॥44॥ ऊँची भूमि पर बसे गाँव पौंडों और ईखों के बागों से युक्त हैं, जिनके कमलों को किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकार के पक्षियों से युक्त हैं ॥ 45॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, कँड़ों, कुंडिकाओं और चटाई आदि आसनों से व्याप्त है ॥46 ॥यहाँ चावल, उड़द, मूंग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥47॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्यों से रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेने वाला साधु विषयों की आसक्ति में पड़कर शोभित नहीं होता ॥48॥

तदनंतर देश के ऊजड़ होने की चर्चा करते हुए राम अत्यंत कोमल स्पर्श वाले रत्न कंबल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥49 ॥जो प्रशस्त चेष्टा की धारक और प्रेमरूपी जल की मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमल के भीतरी दल के समान कोमल हाथों से शीघ्र ही राम को विश्राम दिलाने **अर्थ**ात् उनके पादमर्दन करने के लिए तैयार हुई ॥50॥ तब आदरपूर्ण क्रम को जानने वाला लक्ष्मण, बड़े भाई की आज्ञा प्राप्त कर जाँघों से लगी सीता को अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥53॥ राम ने लक्ष्मण से कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गयी है इसलिए शीघ्र ही किसी गांव, नगर अथवा अहीरों की बस्ती को देखो ॥52॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्ष की शिखर पर चढ़ा । राम ने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥53॥ लक्ष्मण ने कहा कि हे देव ! जो चाँदी के पर्वत के समान हैं, शरद्ऋतु के बादलों के समान ऊंचे शिखरों से सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भाग पर जिन-प्रतिमाओं से सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचों से युक्त हैं तथा जिन पर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमंदिरों को देख रहा हूँ ॥54-55॥ लंबी-चौड़ी वापिकाओं तथा धान के हरे-भरे खेतों से घिरे गांव और गंधर्व नगरों की तुलना धारण करने वाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं । इस प्रकार बहुत भारी वसतिकाएँ दिखाई दे रही हैं परंतु उनमें आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥56-57॥क्या यहाँ की प्रजा अपने समस्त परिवार के साथ नष्ट हो गयी है अथवा क्रूर कर्म करने वाले म्लेच्छों ने उसे बंदी बना लिया है ? ॥58॥ बहुत दूर, एक पुरुष-जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूंठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चंचल है ॥59 ॥परंतु यह जा रहा हैं या आ रहा है इसका पता नहीं चलता । कुछ देर तक गौर से देखने के बाद लक्ष्मण ने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्ग पर आने दो तभी इसे विशेषता से जान सकूँगा ॥60॥ लक्ष्मण ने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृग के समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिर के बाल रूखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैल से दूषित है, पसीना झर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्म को दिखा रहा है ॥61-62॥ राम ने लक्ष्मण से कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ । तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्चर्य के साथ उसके पास गया ॥63 ॥लक्ष्मण को देखकर उस पुरुष को रोमांच उठ आये । वह आश्चर्य से भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मन में इस प्रकार विचार करने लगा ॥ 64॥ कि यह जो वृक्ष को कंपित करने वाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इंद्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चंद्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीर का धारी कौन है ? ॥65-66॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभय से बंद हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥67॥यह देख लक्ष्मण ने कहा कि भद्र ! उठ-उठ, डर मत । कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे राम के पास ले गया ॥68॥

तदनंतर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकार से सुंदर थे, मानो कांति के समुद्र में ही स्थित थे, नेत्रों को उत्सव प्रदान करने वाले थे, और पास में बैठी हुई अतिशय नम्र सीता से सुशोभित थे ऐसे राम को देखकर उस पुरुष ने क्षुधा आदि से उत्पन्न हुए श्रम को शीघ्र ही छोड़ दिया ॥69-70॥ उसने हाथ जोड़ मस्तक से भूमि का स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा छाया में विश्राम कर इस प्रकार कहे जाने पर वह बैठ गया ॥71॥ तदनंतर राम ने वाणी से मानो अमृत झराते हुए उससे पूछा कि हे भद्र! तू कहाँ से आ रहा है और तेरा क्या नाम है ?॥72

॥उसने कहा कि मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ और सीरगुप्ति मेरा नाम है । यह देश मनुष्यों से रहित क्यों है ? इस प्रकार राम के पूछने पर वह पुनः कहने लगा ॥73॥ कि जिसने अपने प्रताप से बड़े-बड़े सामंतों को नम्रीभूत कर दिया है तथा जो देवों के समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नाम से प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी का राजा है ॥74॥दशांगपुरु का राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्चर्य जनक कार्य किये हैं इसका अत्यंत प्रिय सेवक है ॥75॥वह तीन लोक के अधिपति जिनेंद्र भगवान् और निर्ग्रंथ मुनियों को छोड़कर किसी अन्य को नमस्कार नहीं करता है ॥76॥ 'साधु के प्रसाद से उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवी में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥77॥ इसी बीच में राम का अभिप्राय जानने वाल लक्ष्मण ने उससे पूछा कि हे भाई ! साधु ने इस पर किस तरह प्रसाद किया है ? सो तो बता ॥78॥इसके उत्तर में उस पथिक ने कहा कि हे देव! साधने जिस तरह इस पर प्रसाद किया यह मैं संक्षेप से कहता हूँ ॥79॥ एक समय शिकार खेलने के लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरु के समीप में स्थित जीवों से भरी अटवी में प्रविष्ट हुआ ॥80॥ यह वज्रकर्ण जन्म से ही लेकर समस्त संसार में अत्यंत क्रूर प्रसिद्ध था, इंद्रियों का वशगामी था, मूर्ख था, सदाचार से विमुख था, लोभ **अर्थ**ात् परिग्रह संज्ञा में आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्व के विचार से शून्य था, और भोगों से उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच ग्रह से दूषित था ॥81-82 ॥उस अटवी में घूमते हुए उसने कनेर वन के बीच में शिला पर विद्यमान उत्तम शांति के धारक एक साधु देखे ॥83 ॥उन साधु के ऊपर किसी प्रकार का आवरण नहीं था, वे घाम में बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पक्षी के समान निःशंक और सिंह के समान निर्भय थे ॥84॥ जिस प्रकार दुर्जन के अत्यंत तीखे सैकड़ों कुवचनों से सज्जन संतप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरों और ऊपर से सूर्य की किरणों के द्वारा सब ओर से संतप्त हो रहे थे ॥85॥ जो यमराज के समान दिखाई देता था ऐसे वज्रकर्ण ने घोड़े पर चढ़े-चढ़े, समुद्र के समान गंभीर, परमार्थ के ज्ञाता, पापों का विनाश करने वाले, समस्त प्राणियों की दया से युक्त एवं श्रमण लक्ष्मी से विभूषित साधु से भाला हाथ में लेकर कहा ॥86-87॥ कि हे साधो! यह क्या कर रहे हो ? साधु ने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ों जन्मों में भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्मा का हित करता हूँ ॥88॥ राजा वज्रकर्ण ने हँसते हुए कहा कि इस अवस्था में तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्मा का हित कैसा ? ॥89॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थ से रहित है, जिसके शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥90॥ स्नान तथा अलंकार से रहित एवं पर के द्वारा प्रदत्त भोजन पर निर्भर रहने वाले आप-जैसे लोगों के द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥91 ॥कामभोग से पीड़ित राजा वज्रकर्ण को देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बंधन को तोड़ने वाले मुझ से हित क्या पूछ रहा है ? उनसे पूछ कि जो इंद्रियों के द्वारा ठगे गये हैं, हित के उपायों से दूर हैं और अत्यंत बढ़े हुए मोह से जो संसार-सागर में भ्रमण कर रहे हैं ॥92-93 ॥यह जो तू हजारों प्राणियों का घात करने वाले, आत्मा के अनर्थ करने में तत्पर एवं सद्-असद् के विचार से रहित है सो अवश्य ही भयंकर नरक में पड़ेगा ॥94॥ जो तू उठ-उठकर पापों में परम प्रीति कर रहा है सो जान पड़ता है कि तूने भयंकर नरक की पृथिवियों को अब तक जाना नहीं है ॥25॥ इस पृथिवी के नीचे नरकों की सात पृथिवियाँ हैं जो अत्यंत भयंकर हैं, अत्यंत दुर्गंध से युक्त हैं, जिनका देखना अत्यंत कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यंत दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यंत दुःखकारक है ॥16 ॥लोहे के तीक्ष्ण काँटों से व्याप्त हैं, नाना प्रकार के यंत्रों से युक्त हैं, क्षुरा की धारा के समान पैने पर्वतों से युक्त हैं, जिनका तल भाग तपे हुए लोहे से भी अधिक दुःख-दायी है ॥97॥जो रौरव आदि बिलों से युक्त हैं, महाअंधकार से भरी हैं, महाभय उत्पन्न करने वाली हैं, असिपत्र वन से आच्छादित हैं और अत्यंत खारे जल से भरी नदियों से युक्त हैं ॥98॥ जो पाप कार्यों से संक्लेश को प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियों के समान निरंकुश अर्थात् स्वच्छंद रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियों में हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥19 ॥मैं आप से ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयों से पीड़ित तथा पापों में लीन मनुष्य आत्मा का कैसा हित करते हैं ? ॥100॥ किंपाक फल के समान जो इंद्रियजंय सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्मा का हित मान रहा है ॥101 ॥अरे! आत्मा का हित तो वह करता है जो प्राणियों पर दया करने में तत्पर रहता हो, विवे की हो, निर्मल अभिप्राय का धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥102॥ आत्मा का कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करने में तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतों से युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःख के ही पात्र हैं ॥103 ॥तू परलोक में उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोक में पाप कर दुर्गति को जायेगा ॥104॥ ये वन के निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग; जो अनाथ हैं, चंचल नेत्रों के धारक हैं, निरंतर उद्विग्न रहते हैं, जंगल के तृण और पानी से बने शरीर को धारण करते हैं, अनेक दुःखों से व्याप्त हैं, पूर्व भव में किये पाप को भोग रहे हैं और भय भीत होने के कारण जो रात्रि में भी निद्रा को नहीं प्राप्त होते हैं; उत्तम आचार के धारक कुलीन मनुष्यों के द्वारा मारे जाने के योग्य नहीं हैं ॥

105-107 ॥इसलिए हे राजन् ! मैं तुझ से कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन-वचन-काय से हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसा का पालन कर ॥108 ॥इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनों से जब राजा संबोधा गया तब वह फलों से वृक्ष के समान नम्रता को प्राप्त हो गया ॥109॥वह घोड़े से उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवी पर घुटने टेक, हाथ जोड़, शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराज को नमस्कार किया ॥110॥ सौम्य दृष्टि से दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनंदन किया कि अहो! आज मैंने परिग्रह रहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराज के दर्शन किये ॥111॥ वन में निवास करने वाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातल पर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनि का दर्शन करते हैं ॥112 ॥आज जो मैं त्रिभुवन के द्वारा वंदनीय इस साधु समागम को प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य हो गया हूँ, पापकर्म से छूट गया हूँ ॥113॥ये प्रभु सिंह के समान ज्ञानरूपी नखों के द्वारा बंधुओं के स्नेहरूपी बंधन को छोड़कर संसाररूपी पिंजड़े से बाहर निकले हैं ॥114॥ देखो, इन साधु के द्वारा मनरूपी शत्रु को वश कर नग्नता के उपकार से शील स्थान की किस प्रकार रक्षा की जा रही है? ॥115॥ किंतु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है । अतः मैं इस गृहस्थाश्रम में रहकर रमणीय अणुव्रत के पालन में ही संतोष धारण करता हूँ ॥116॥इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराज से गृहस्थ धर्म अंगीकार किया और भाव से प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधि देव तथा गुणों से अच्युत परमात्मा जिनेंद्र देव और उदार अभिप्राय के धारक निर्ग्रंथ मुनियों को छोड़कर अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूंगा॥117-118॥इस प्रकार उसने बड़े आदर से उन प्रीतिवर्धन मुनिराज की बड़ी भारी पूजा को और स्थिर चित्त होकर उस दिन का उपवास किया ॥119॥समीप में बैठे हुए राजा वज्रकर्ण को मुनिराज ने उस परम हित का उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसार से मुक्त हो जाते हैं ॥120॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्र के दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनगार । इनमें से पहला चारित्र बाह्य वस्तुओं के आलंबन से सहित है तथा गृहस्थों के होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा से रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्र के धारक मुनियों के ही होता है ॥121॥उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञान के संयोग से दर्शन में विशुद्धता उत्पन्न होती है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासन में प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदि का वर्णन भी किया ॥122॥ यह सब सुनने के बाद भी राजा ने निर्ग्रंथ मुनियों का चरित्र अत्यंत कठिन समझकर अणुव्रत धारण करने का ही बार-बार विचार किया ॥123॥ यह जानकर राजा परम संतोष को प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्मध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धन को उत्तम खजाना ही मिल गया ॥124॥अत्यंत क्रूर कार्य करने वाला यह राजा शांत हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्ष को प्राप्त हुए ॥125 ॥तदनंतर पुण्यरूपी यज्ञ के धारक मुनिराज तप के योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूति से युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभ की प्राप्ति हुई थी इसलिए सुख से संतृप्त था ॥126 ॥दूसरे दिन अतिथि का सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराज के चरणों को प्रणाम कर अपने नगर में प्रवेश किया ॥127॥

अथानंतर जो परम भक्ति-भाव से गुरु को सदा हृदय में धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकार का संदेह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिंता करने लगा ॥128॥ कि मैं पुण्यहीन राजा सिंहोदर का सेवक होकर यदि उसकी विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा दंड देवेगा तब इस दशा में भोगों का सेवन किस प्रकार करूंगा ॥129 ॥इस प्रकार चिंता करते-करते भाग्य से प्रेरित राजा वज्रकर्ण को अपनी स्वच्छ अंतरात्मा से यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥130 ॥कि मैं मुनिसुव्रत भगवान् की प्रतिमा से युक्त एक स्वर्ण की अंगूठी बनवाकर दाहिने हाथ के अंगूठा में धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसी को कहलावेगा ॥131 ॥इस प्रकार विचारकर उस नीति निपुण राजा ने, जिसकी पीठिका हाथ में सुशोभित थी ऐसी अंगूठी बनवायी और अत्यंत हर्षित होकर धारण की ॥132॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदर के आगे खड़ा होकर तथा अंगूठे को आगे कर सदा उस प्रतिमा को नमस्कार करने लगा ॥133॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरी ने यह समाचार सिंहोदर से कह दिया जिससे वह पापी परम कोप को प्राप्त हुआ ॥134॥ तदनंतर पराक्रमरूपी संपदा से मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करने के लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरु में रहने वाले वज्रकर्ण को छल से अपने यहाँ बुलाया ॥135 ॥ बृहद्गति का पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुड़सवार साथ ले उसके पास जाने के लिए तैयार हो गया । उसी समय जिसके हाथ में लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशर के तिलक से सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला॥136-137॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरीर से उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥138॥ हे राजन् ! तुम सिंहोदर को नमस्कार नहीं करते हो इस अपराध से वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करने के लिए तैयार हुआ है । अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥139॥उस पुरुष के ऐसा कहने पर वज्रकर्ण ने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्य ने

भेद करना चाहा है **अर्थ**ात् मुझ में और सिंहोदर में फूट डालने का उद्योग किया है । इस प्रकार विचारकर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किंचित् खेद को प्राप्त था ऐसे उस दूत से पूछा कि तु कौन है ? कहाँ से आया है ? ॥140-141 ॥और इस दुर्गम मंत्र का तुझे कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह । मैं सब जानना चाहता हूँ ॥142॥ वह बोला कि कुंदनगर में धनसंचय करने में तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्री का नाम यमुना था । मैं उन्हीं का पुत्र हूँ । चूंकि मेरी माता ने मुझे उस समय जन्म दिया जो बिजली की ज्वालाओं से व्याप्त रहता है इसलिए बंधुजनों ने मेरा विद्युदंग नाम रखा॥143-144॥ क्रम से यौवन को धारण करता हुआ मैं व्यापार की विद्या से युक्त हो धनोपार्जन करने के लिए इस उज्जयिनी नगरी में आया था ॥145 ॥सो यहाँ कामलता नामक वेश्या को देख कर कामबाण से ताड़ित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिन में चैन को पाता हूँ और न रात्रि में ॥146॥ मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लूँ इस प्रीति ने मुझे इस प्रकार अत्यंत मजबूत बाँध रखा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिण को बाँध रखता है॥147॥ मेरे पिता ने अनेक वर्षों में जो धन संचित किया था मुझ सुपूत ने उसे केवल छह माह में नष्ट कर दिया ॥148 ॥जिस प्रकार भ्रमर कमल में आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन काम से दुःखी हो उस वेश्या में आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियों के लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥149 ॥एक दिन मैंने सुना कि वह वेश्या सखी के सामने अपने कुंडल की निंदा करती हुई कह रही है कि कानों के भार स्वरूप इस कुंडल से मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महासौभाग्य का उपभोग करने वाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कान में वह रत्नमयी मनोहर कुंडल शोभित होता है ॥150-151 ॥मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुंडल को चुराकर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥152 ॥तदनंतर उस कुंडल को अपहरण करने की इच्छा से मैं अपने प्रिय जीवन की उपेक्षा कर रात्रि के समय अंधकार से आवृत होकर राजा के घर गया ॥153॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधरा को सिंहोदर से यह पूछती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींद को क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्न से क्यों मालूम होते हो ? ॥154॥ उसने कहा कि हे देवि ! जब तक मैं नमस्कार से विमुख रहने वाले शत्रु वज्रकर्ण को नहीं मारता हैं तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥155 ॥जो अपमान से जल रहा हो, ऋण की चिंता से व्याकुल हो, जो शत्रु को नहीं जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुष के चक्र में पड़ गयी हो, जो शल्य से सहित दरिद्र हो तथा जो संसार के दुःख से भयभीत हो ऐसे मनुष्य से दया युक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥156-157॥यदि मैं नमस्कार से विमुख रहने वाले इस वज्रकर्ण को नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेज को जीवन से क्या प्रयोजन है ? ॥158॥ तदनंतर यह सुनकर जिसके हृदय में मानो वज्र की ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य रूपी रत्न को लेकर और कुंडल की भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन सदा धर्म में तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओं की सेवा करते हैं । हे नाथ ! यह जानकर आप लौट जाइए, उज्जैन मत जाइए ॥159-160॥ उसकी आज्ञा पाकर नगर का यह समस्त मार्ग, जिनके गंडस्थल से मद झर रहा है ऐसे अंजनगिरि के समान आभा वाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचों से आवृत योद्धाओं तथा आपको मारने के लिए उद्यत कर सामंतों से घिरा हुआ है ॥161-162॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापस जाओ, मैं आपके, चरणों में पड़ता है । आप मेरा वचन मानो ॥163 ॥हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलि के समूह से व्याप्त तथा महा कल-कल शब्द करता हुआ यह शत्रु का दल आ पहुंचा है ॥164॥ इतने में शत्रुदल को आया देख वज्रकर्ण विद्युदंग के साथ वेगशाली घोड़े से वापस लौटा ॥165 ॥और अपने दुर्गम नगर में प्रवेश कर धीरता के साथ युद्ध की तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामंत गोपुरों को रोककर खड़े हो गये ॥166॥

तदनंतर वज्रकर्ण को नगर में प्रविष्ट सुन, क्रोध से जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेना के साथ वहाँ आया ॥167॥ वज्रकर्ण का नगर अत्यंत दुर्गम था । इसलिए सेना के क्षय से भयभीत हो राजा सिंहोदर ने उस पर तत्काल ही आक्रमण करने की इच्छा नहीं की ॥168॥ किंतु सेना को समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्ण के पास जाकर बड़ी निष्ठुरता से बोला ॥169 ॥कि जिन शासन के वर्ग से जिसका मन सदा अहंकारपूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावों से रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्य का कंटक बन रहा है ॥170॥ कुटुंबों के भेदन करने में चतुर, तथा खोटी चेष्टाओं से युक्त मुनियों के द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्था को प्राप्त हुआ है, स्वयं नीति से रहित है ॥171 ॥मेरे द्वारा प्रदत्त देश का उपभोग करता है और अरहंत को नमस्कार करता है । अहो, तुझ दृष्ट हृदय की यह बड़ी माया ॥172॥ तु सुबुद्धि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणाम कर अन्यथा देख, अभी मृत्यु के साथ समागम को प्राप्त होता है॥173॥

तदनंतर वज्रकर्ण का उत्तर ले दूत ने वापस जाकर सिंहोदर से कहा कि हे नाथ ! निश्चय को धारण करने वाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्म का द्वार प्रदान कीजिए **अर्थ**ात् मेरी धर्माराधना में बाधा नहीं डालिए ॥174-175 ॥मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहंत देव और निर्ग्रंथ गुरु को छोड़ अन्य किसी को नमस्कार नहीं करूँगा सो मरते-मरते इस प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ें गा । आप मेरे धन के स्वामी हैं शरीर के नहीं ॥176 ॥इतना कहने पर भी सिंहोदर ने क्रोध नहीं छोड़ा और नगर पर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देश को उजाड़ दिया ॥177 ॥इस प्रकार हे देव ! मैंने आप से इस देश के उजड़ होने का कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उजड़े गाँव को जाता हूँ ॥178 ॥उस गाँव में विमान के तुल्य जो अच्छे-अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठ से निर्मित मेरी टूटी-फूटी कुटिया भी जल गयी ॥179 ॥उस कुटिया में एक जगह सूपा घट तथा मट का छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलने वाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥180॥ सूने गाँवों में घर-गृहस्थी के बहुत से उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ इस प्रकार वह बार-बार मुझ से कहती रहती है ॥181 ॥अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदय से मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥182 ॥इस प्रकार उस पथिक को दुःखी देख दया से स्वयं दुःखी होते हुए राम ने उसके लिए अपना रत्नजटित स्वर्णसूत्र दे दिया ॥183॥

वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वासपूर्वक उन्हें प्रणाम कर अपने घर वापस लौट गया और राजा के समान संपन्न हो गया ॥184॥ अथानंतर राम ने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकाल का सूर्य जब तक अत्यंत दुःसह अवस्था को प्राप्त नहीं हो जाता है तब तक उठो इस नगर के समीपवर्ती प्रदेश में चलें । यह जान की प्यास से पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहार की विधि मिलाओ॥185-186 ॥इस प्रकार कहने पर वे तीनों दशांगनगर के समीप चंद्रप्रभ भगवान् के उत्तम चैत्यालय में पहुँचे ॥187॥वहाँ जिनेंद्र देव को नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालय में सुख से ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्ति के लिए निकला ॥188॥जब वह राजा सिंहोदर की छावनी में प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषों ने जोर से ललकार कर उसे उस तरह रो का जिस तरह कि पर्वत वाय को रोक लेते हैं ॥189 ॥इन नीच कुली लोगों के साथ विरोध करने से मुझे क्या प्रयोजन है ऐसा विचारकर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगर की ओर गया ॥190 ॥जब वह अनेक योद्धाओं के द्वारा सुरक्षित उस गोपुरु द्वार पर पहुंचा जिस पर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्न से बैठा था ॥191 ॥तब उसके, भृत्यों ने कहा कि तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि मैं बहुत दूर से अन्न प्राप्त करने की इच्छा से आया हूँ ॥192 ॥तदनंतर उस बालक को सुंदर देख आश्चर्यचकित हो वज्रकर्ण ने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥193 ॥तत्पश्चात् संतुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेष में वज्रकर्ण के पास गया । वहाँ सब लोगों ने उसे बड़े आदर से देखा ॥194॥ वज्रकर्ण ने एक आप्त पुरुष से कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है यह इसे शीघ्र ही आदर के साथ खिलाओ ॥195 ॥यह सुन लक्ष्मण ने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥196॥एवमस्तु ऐसा ही हो कहकर राजा ने उसे उत्तमोत्तम व्यंजन और पेय पदार्थों से युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥197॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेग से राम के पास गया । सबने उसे यथाक्रम से खाया और खाकर परम तृप्ति को प्राप्त हुए ॥198॥

तदनंतर राम ने संतुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्र कर्ण की भद्रता देखो जो इसने परिचय के बिना ही यह किया है ॥199 ॥ऐसा सुंदर भोजन तो जमाई के लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थों की शीतलता और व्यंजनों की मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करने वाली है ॥200॥ इस अमृत तुल्य अन्न के खाने से हमारा मार्ग से उत्पन्न हुआ गर्मी का समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥201॥ जो कोमलता को धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदी के कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चंद्रमा के बिंब को चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धान के चावल हैं ॥202 ॥जो अत्यंत स्वच्छता से युक्त है तथा जो अपनी सुगंधि से भ्रमरों को आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चंद्रमा की किरणों को दुहकर ही बनाया गया है ॥203 ॥यह घी और दूध तो मानो कामधेनु के स्तन से ही । उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यंजनों में रसों की ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥204॥ पथिक ने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतों का धारी है अन्यथा अतिथियों का ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥205॥ जो संसार को पीडा को नष्ट करने वाले जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरे को नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्मा का धारक सुना जाता है ॥206 ॥ऐसे शील और गुणों से सहित होने पर भी यदि यह हम लोगों के आगे शत्रु से घिरा रहता है तो हमारा जीवन

व्यर्थ है ॥207॥यह अपराध से रहित है, अपने आपको सदा साधुओं की सेवा में तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामंत अपने इस अद्वितीय स्वामी के अनुकूल हैं ॥208 ॥दुष्ट राजा सिंहोदर के द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्ण की रक्षा करने के लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥209॥ इसलिए अन्य रक्षकों से रहित बुद्धिमान् की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदर से कहो ॥ 210॥ यह कहना, यह कहना यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाये क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभा के साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रज्ञा के साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥211॥

अथानंतर अपने गुणों की प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण राम की आज्ञा शिरोधार्य कर जैसी आपकी आज्ञा यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला । वह उस समय विनीत वेष को धारण कर रहा था, धनुष साथ में नहीं ले गया था, वेग से संपन्न था और पृथ्वी को कपाता हुआ जा रहा था । 212-213 ॥रक्षक पुरुषों ने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि मैं राजा भरत का आदमी हूँ और दूत के कार्य से आया हूँ ॥214॥ क्रम-क्रम से बहुत बड़ी छावनी को उलंघकर वह राजा के निवास स्थान में पहुंचा और द्वारपालों के द्वारा खबर देकर राजा सिंहोदर की सभा में प्रविष्ट हुआ ॥215॥ वहाँ जाकर राजा को तृण के समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा कि हे सिंहोदर ! तू मुझे बड़े भाई का संदेशवाहक समझ ॥216 ॥उत्तम गुणों को धारण करने वाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैर से क्या लाभ है ? ॥ 217॥

तदनंतर कठोर मन को धारण करने वाला सिंहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओर से अयोध्या के राजा भरत से इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकों को विनय में लाने के लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥218-219 ॥यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यंत नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्र की निंदा करने में तत्पर है, आलस्य से युक्त है, मूढ़ है, वायु अथवा किसी पिशाच ने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचार से रहित है, पंडितम्मन्य है, और दुष्ट चेष्टाओं से युक्त है । ये दोष इसे या तो दमन से छोड़ सकते हैं या मरण से; इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषय में आप चुप बैठिए ॥220-222॥ तदनंतर लक्ष्मण ने कहा कि इस विषय में अधिक उत्तरों से क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाये ॥223 ॥लक्ष्मण के इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पडा था, और जो संधि से विमुख था ऐसा सिंहोदर अपने सामंतों की ओर देख गरज कर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किंतु उसके कार्य की इच्छा से आया हुआ यह दत भी वैसा ही मानी है ॥224-225 ॥अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पाषाण से ही बना है अयोध्यापति का यह दुष्ट भृत्य, रंचमात्र भी नम्रता को प्राप्त नहीं है **अर्थ**ात् इसने बिल्कुल भी नमस्कार नहीं किया ॥226॥सचमुच ही उस देश के सब लोग तेरे ही जैसे हैं जिस प्रकार बटलोई के दो-चार सीथ जानने से सब सीथों का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँ के सब लोगों का परोक्षज्ञान हो रहा है ॥227 ॥।

सिंहोदर के इस प्रकार कहने पर कुछ क्रोध को प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करने के लिए यहाँ आया हूँ तुझे नमस्कार करने के लिए नहीं ॥228॥ सिंहोदर ! इस विषय में बहुत कहने से क्या ? संक्षेप से सुन, या तो तू संधि कर या आज ही मरण का आश्रय ले ॥229 ॥यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभ को प्राप्त हो गयी, नाना प्रकार के दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकार की चेष्टाएँ करने लगी ॥230॥ जिनके शरीर क्रोध से काँप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारें निकालकर उसका वध करने के लिए उद्यत हो गये ॥231 ॥जो वेग से हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यंत व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओं ने लक्ष्मण को चारों ओर से उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वत को घेर लेते हैं ॥232 ॥शीघ्रता से कार्य करने में निपुण धीर-वीर लक्ष्मण ने जो पास में नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओं को चरणों की चपेट से विह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥233 ॥ शीघ्रता से घूमते हुए लक्ष्मण ने कितने ही लोगों को घुटनों से, कितने ही लोगों को कोहनी से, और कितने ही लोगों को मुठ्ठियों के प्रहार से शतखंड कर दिया **अर्थ**ात् एक-एक के सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥234॥ कितने ही लोगों के बाल खींचकर तथा पृथिवी पर पटककर उन्हें पैरों से चूर्ण कर डाला और कितने हो लोगों को कंधे के प्रहार से गिरा दिया ॥235 ॥कितने ही लोगों को परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरे के शिर की चोट से चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगों को जंघा के प्रहार से मूर्च्छित कर दिया ॥236 ॥इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मण ने सिंहोदर की उस सभा को भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥237॥

इस प्रकार सभा को विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवन से बाहर आंगण में निकला तब सैकड़ों अन्य योद्धाओं ने उसे घेर लिया ॥

238॥तदनंतर युद्ध के लिए तैयार खड़े हुए सामंतों, हाथियों, घोड़ों और रथों के द्वारा उत्पन्न परस्पर की धक्काधूमी से बहुत भारी आकुलता उत्पन्न हो गयी ॥239॥हाथों में नाना प्रकार के शस्त्र धारण करने वाले उन सामंतों के साथ वीर लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृंगालों के साथ सिंह करता है ॥240॥ तदनंतर वर्षा ऋतु के मेघ के समान आकार को धारण करने वाले हाथी पर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मण को रोकने के लिए उद्यत हुआ ॥241 ॥जो सामंत पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदर के रणाग्र में आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारण कर फिर से वापस आ गये ॥242॥ जिस प्रकार मेघों के झुंड चंद्रमा को घेरते हैं उसी प्रकार उन सामंतों ने लक्ष्मण को घेरा परंतु जिस प्रकार तीव्र वायु रुई के ढेर को उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामंतों को उड़ा दिया-दूर भगा दिया ॥243 ॥जिन्होंने गालों पर हाथ लगा रखे थे, जो अत्यंत आकुलता को प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भय से चंचल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओं की स्त्रियाँ परस्पर में कह रही थीं कि हे सखियो! इस महा भयंकर पुरुष को देखो । इस एक को बहुत से क्रूर सामंतों ने घेर रखा है यह अत्यंत अनुचित बात है ॥244-245॥ उन्हीं में कुछ स्त्रियां इस प्रकार कह रही थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओं को चपेट कर विह्वल कर दिया है ॥246॥

अथानंतर सामने सेना को इकट्ठी होती देख लक्ष्मण ने हंसकर हाथी बाँधने का एक बड़ा खंभा उखाड़ा ॥247॥और जिस प्रकार वन में जोरदार अग्नि वृद्धिंगत होती है उसी प्रकार सघन हुंकारों से भयंकरता को प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेना पर वेग से टूट पडा ॥248॥ दशांगपुरु का राजा वज्रकर्ण गोपुरु के अग्रभाग पर बैठा-बैठा इस दृश्य को देख आश्चर्य से चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्ष से विकसित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामंतों ने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परमतेज को धारण करने वाला यह कोई पुरुष सिंहोदर की सेना को नष्ट कर रहा है । उसने उसकी सेना के ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥249-250॥ तलवारों और धनुषों की छाया के बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यंत विह्वल हो भंवर में पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है॥251॥ जिस प्रकार सिंह से भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदर की सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥252॥ ये दूर खड़े हुए सामंत परस्पर कह रहे हैं कि कवच उतार दो, तलवार छोड़ दो, धनुष फेंक दो, घोड़ा छोड़ दो, हाथी से नीचे उतर जाओ, गदा गड्ढे में गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रों का समूह देखकर यह अतिशय भयंकर पुरुष वेग से कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े; इस स्थान से हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथी को यहाँ से दूर हटा, चुपचाप क्यों खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढ़ा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकट में पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओं का वेष छोड़कर नपुंसकों के समान एक ओर स्थित हैं ॥253-258॥क्या युद्ध में यह कोई देव क्रीड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नाम का कोई व्यक्ति संसार में प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अत्यंत तीक्ष्ण और बिजली के समान चंचल है ॥259-260॥ सेना को इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर के अब यह आगे क्या करेगा? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शं का को प्राप्त हो रहा है ॥261 ॥देखो, रोमांचकारी युद्ध में उछलकर भयभीत सिंहोदर को हाथी से खींचकर उसी के वस्त्र से गले में बाँध लिया है और यह बेल की तरह वश कर उसे आगे कर आश्चर्य से चकित होता हुआ आ रहा है ॥262-263 ॥इस प्रकार सामंतों के कहने पर वज्रकर्ण ने कहा कि हे मानवो! स्वस्थ होओ, देव शांति करेंगे, इस विषय में बहुत चिंता करने से क्या लाभ है ? ॥264॥महलों के शिखरों पर बैठी दशांगनगर की स्त्रियाँ परम आश्चर्य को प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रही थीं॥265 ॥कि हे साथी ! इस वीर की परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजा को वस्त्र से बाँध लिया ॥266 ॥धन्य इसकी कांति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥267 । यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्री का पति है ? अथवा आगे होगा? यह समस्त पृथिवी का स्वामी है ॥268॥

अथानंतर वृद्ध और बालकों से सहित सिंहोदर को रानियाँ भय से अत्यंत विह्वल हो रोती हुई लक्ष्मण के चरणों में आ पड़ी ॥269 ॥वे बोली कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पति की भिक्षा देओ, आज से यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है॥270॥ लक्ष्मण ने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्ष खंड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारी को उस पर लटकाऊँगा ॥271॥ तदनंतर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोली कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगों को मारो और इसे छोड़ दो ॥272॥प्रसन्नता करो, हग लोगों को पति का दुःख न दिखाओ । उत्तम पुरुष स्त्रियों पर दया करते ही हैं ॥273 ॥तब लक्ष्मण ने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थता को प्राप्त होओ । इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालय में गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥274॥ वहाँ जाकर लक्ष्मण ने राम से कहा कि यह वज्रकर्ण का शत्रु हैं इसे मैं ले आया है । अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥275 ॥तब जिसका

शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तक से लगा राम के चरणकमलों में गिरा ॥276 ॥और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता । आप कांतिमां हैं, उत्कृष्ट तेज से युक्त हैं और सुमेरु के समान स्थिर हैं ॥277॥ हे गंभीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव ! इस विषय में बहुत कहने से क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥278॥वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणों की शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥279 ॥सिंहोदर की स्त्रियाँ भी अत्यंत करुण विलाप करती हुई, राम के चरणों में प्रणाम कर बोली कि हमारे लिए पति की भिक्षा दीजिए ॥280॥ हे देवि ! तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हम पर दया करो इस प्रकार कहकर वे सीता के चरणकमलों में भी पड़ी ॥281॥ तदनंतर वापिकाओं में स्थित हंसों को मेघध्वनि से होने वाला भय उत्पन्न करते हुए राम ने नीचा मुख कर बैठे हुए सिंहोदर से कहा ॥282॥ कि हे सुधी ! तुझे वज्रकर्ण जो कहे सो कर ! इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥283 ॥तदनंतर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हित कारी पुरुषों के द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालय में आया ॥284॥ उसने हाथ जोड़ मस्तक से लगा जिनालय की तीन प्रदक्षिणाएँ दी फिर भक्ति से रोमांचित हो चंद्रप्रभ भगवान् को नमस्कार किया ॥285॥ तत्पश्चात् विधि-विधान के जानकार वज्रकर्ण ने विनयपूर्वक जाकर राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों की क्रम से स्तुति की और सीता से शरीर-संबंधी आरोग्य पूछा ॥286 ॥तदनंतर राम ने अत्यंत मधुर ध्वनि में उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशल से ही हम सबको कुशल है ॥287॥ इस प्रकार शुभ लीला के धारक राम और वज्रकर्ण के बीच जब तक यह वार्तालाप चलता है तब तक सुंदर वेष का धारक विद्युदंग सेना के साथ वहाँ आ पहुँचा ॥288 ॥क्रम के जानने में पंडित प्रतापी विद्युदंग राम-लक्ष्मण को प्रणाम कर वज्रकर्ण के पास आ बैठा ॥289॥उसी समय सभा में यह जोरदार शब्द गूंजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदंग वज्रकर्ण का परम मित्र है ॥290 ॥तदनंतर राम ने मंद हास्य से मुख को धवल कर वज्रकर्ण से कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह दृष्टि अत्यंत श्रेष्ठ है ॥22 ॥जिस प्रकार मेरुपर्वत की चूलिका प्रलयकाल की वाय के आघात से कंपित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतों से रंचमात्र भी कंपित नहीं हुई ॥292 ॥मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यंत मनोहर तथा शांत है ॥293॥ अथवा शुद्ध तत्त्व के जानकार पुरुष को क्या कठिन है ? खासकर धर्मानुरागी सम्यग्दृष्टि के मनुष्य को ॥294॥जिस उन्नत शिर से तीन लोक के द्वारा वंदनीय परम कल्याणस्वरूप जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार किया जाता है उसी शिर से दूसरे लोगों को कैसे प्रणाम किया जाये ? ॥295॥ मकरंद रस के आस्वादन में निपुण भौंरा उन्मत्त होने पर भी क्या गधे की पूंछ पर अपना स्थान जमाता है ? ॥296 ॥तुम बुद्धिमान हो, धन्य हो, निकट भव्यपना धारण कर रहे हो और चंद्रमा से भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसार में भ्रमण कर रही है ॥297॥मुझे मालूम है कि यह विद्युदंग भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी भव्य है जो कि तुम्हारी सेवा करने के लिए उद्यत रहता है ॥298॥

अथानंतर यथार्थ गुणों के कथन से जो लज्जा को प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचे को ओर झुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है तो भी हे महाभाग ! आप मेरे परम बांधव हुए हैं ॥299-300 । इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियम का पालन आपके ही प्रसाद से हुआ है और मेरे भाग्य से ही आप पुरुषोत्तम यहाँ पधारे हैं ॥301 ॥इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्ण से लक्ष्मण ने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूं ॥302॥ यह सुनकर वज्रकर्ण ने कहा कि आप-जैसे अत्यंत दुर्लभ मित्र को पाकर इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमत का धारक होने से यह नहीं चाहता हूँ कि तृण को भी पीड़ा हो । इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाये ॥303-304 ॥ वज्रकर्ण के इतना कहते ही लोगों के मुख से धन्य-धन्य शब्द निकल पड़ा । देखो यह भद्र पुरुष शत्रु के ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥305॥ अपकारी के ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है । वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करने वाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥ 306॥

तदनंतर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मण ने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनों की मित्रता करा दी ॥ 307॥ निर्मल बुद्धि के धारक सिंहोदर ने उज्जयिनी का आधा भाग तथा देश को उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्ण के लिए दे दिया ॥308 ॥अपनी चतुरंग सेना, देश, गणि का तथा धन का भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥309॥ जिनभक्ति के प्रसाद से अतिशय प्रसिद्ध विद्युदंग ने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुंडल और सेनापति का पद प्राप्त किया ॥310॥ तदनंतर वज्रकर्ण ने राम-लक्ष्मण की परम पूजा कर शीघ्र हो अपनी आठ पुत्रियाँ बुलवायी ॥31 ॥चूंकि बड़े भाई राम स्त्री से सहित दिखाई देते थे

इसलिए उसने उत्तम आभूषणों को धारण करने वाली तथा विनय से युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मण को ब्याह दी ॥312 ॥इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओं ने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं । इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मण को तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुई ॥313॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्ण ने सिंहोदर आदि राजाओं के साथ लक्ष्मण से कहा कि हे देव ! ये आपकी स्त्रियाँ हैं॥314॥

तदनंतर उसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि मैं जब तक अपने बाहुबल से अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तब तक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥315॥ राम ने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है । स्वर्ग के समान भरत के राज्य में जो देश हैं उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्र के पास अपना घर बनवावेंगे । वहाँ उत्कंठा से भरी अपनी माताओं को ले जाने से लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे । हे राजाओ ! उसी समय आपको इन कन्याओं को ले आवेंगे । तुम्हीं कहो जिसके रहने का ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा ? ॥316-319॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओं का समूह तुषार वायु से आहत कमलवन के समान आकुल होता हुआ शोभित हुआ ॥320॥ कन्याएँ विचार करने लगी कि यदि हम पति के विरह में प्राण छोड़ देवेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायन को कैसे प्राप्त कर सकेंगी? ॥321॥और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देदीप्यमान विरहानल से मन जलता है ॥322॥ अहो ! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यंत निर्दय व्याघ्र है । अतः अत्यंत दु:ख से भरी हुई हम किस आधार को प्राप्त हों ? ॥323 ॥अथवा इस समय हम समागम की अभिलाषारूपी विद्या से विरहरूपी व्याघ्र को कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥324॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओं के साथ राजा लोग राम आदि का यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥325॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृ वर्ग जिनका निरंतर सत्कार करता था और जो नाना प्रकार के विनोद में आसक्त थीं ऐसी कन्याएं लक्ष्मण में मन लगाकर रह गयीं ॥326 ॥तदनंतर विद्युदंग ने भाई-बांधवों से सहित पिता को बड़े ठाट-बाट से अपने देश में बुलाया और पहुँचने पर उनके समागम का बहुत भारी उत्सव किया ॥327॥

अथानंतर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीता के साथ-साथ घनघोर आधी रात के समय भगवान् को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालय से निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥328॥ प्रभात होने पर चैत्यालय को शून्य देख सब लोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो गये ॥329॥सिंहोदर की वज्रकर्ण के साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने जाने से वृद्धि को प्राप्त हुई ॥ 330॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि राम-लक्ष्मण-सीता को धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरों से युक्त वनों के मध्य में ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलों का इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुंदर चेष्टाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए, कूबर नामक उस देश में पहुंचे जो नाना प्रकार के भवनों के ऊँचे-ऊंचे शिखरों से सुंदर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानों से व्याप्त थी, जो मंदिरों के समूह से पवित्र था, स्वर्ग के समान कांति वाला था, जहाँ के नगरवासी लोग निरंतर होने वाले उत्सवों से उत्कृष्ट थे, जो श्रीमानों के शब्द से युक्त था तथा सूर्य के समान कांति और प्रसिद्धि से युक्त था ॥331-332॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य रचित पद्मचरित में वज्रकर्ण का वर्णन करने वाला तैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥33॥

## बालिखिल्य

चौंतीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जो फल और फूलों के भार से नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरों के समूह गूंज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यंत सुंदर वन में राम तो सुख से विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेने के लिए समीपवर्ती सरोवर में गये ॥1-2॥ इसी अवसर में जो अत्यंत सुंदर रूप से सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रों को चुराने वाले थे, जो एक होने पर भी सर्व लोगों के हृदय में एक साथ निवास करता था महाविनय संपन्न था । कांतिरूपी निर्झर के उत्पन्न होने के लिए पर्वत स्वरूप था, उत्तम हाथी पर सवार था । मनोहर पैदल सैनिकों के बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करने में लीन था । जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगर का स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवर में क्रीड़ा करने के लिए आया ॥3-5॥ सो उस महासरोवर के तट पर विद्यमान, नील कमलों के समूह के समान श्याम और सुंदर लक्षणों से युक्त लक्ष्मण को देख वह मनुष्य कामबाण से ताड़ित होकर अत्यंत आकुल हो गया । फलस्वरूप उसने अपने एक आदमी से कहा कि इस पुरुष को ले आओ ॥6-7॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मण से इस प्रकार बोला कि आइए,

यह राजकुमार प्रसन्नता से आपके साथ मिलना चाहता है॥8॥क्या दोष है इस प्रकार विचारकर परम कौतुक को धारण करते हुए लक्ष्मण सुंदर लीला से उसके पास गये॥ 9॥ तदनंतर वह राजकुमार हाथी से उतरकर तथा कमल के समान कोमल हाथ से लक्ष्मण को पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तंबू में भीतर चला गया ॥10॥ वहाँ अत्यंत विश्वस्त हो एक ही आसन पर लक्ष्मण के साथ सुख से बैठा । कुछ समय बाद उसने लक्ष्मण से पूछा कि हे सखे ! तुम कौन हो? और कहाँ से आये हो ? ॥11॥ लक्ष्मण ने कहा कि मेरे वियोग से मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥12॥ अथानंतर शालि के चावलों का भात, दाल, ताजा घृत, पुए, घेवर, नाना प्रकार के व्यंजन, दूध, दही, अनेक प्रकार के पानक, शक्कर और खांड के लड्डू, पूड़ियां, कचौड़ियाँ, साधारण पूड़ियां गडमिश्रित पूड़ियाँ, वस्त्र, अलंकार, मालाएं, लेपन आदि की सामग्री, नाना प्रकार के बर्तन और हाथ धोने का सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मंगवा ली ॥13-16॥ तदनंतर उसकी आज्ञा पाकर अंतरंग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला॥17॥कि हे देव! उस तंबू में आपके भाई विराजमान हैं वहीं इस नगर का राजा भी विद्यमान है सो वह आदर के साथ प्रार्थना करता है कि चूंकि इस तंबू को छाया शीतल तथा मन को हरण करने वाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छा से चलकर आप यहाँ पधारिए ॥18-19॥प्रतिहारी के इतना कहने पर मत्त हाथी की शोभा को धारण करते हुए रामचंद्र सीता के साथ कल पड़े उस सर ऐसे जान पड़ते थे मानो चांदनी के सहित चंद्रमा ही हों ॥20॥ राम को दूर से ही आते देख राजकुमार ने लक्ष्मण के साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥ 21॥ राम सीता के साथ अत्यंत उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमार के द्वारा प्रदत्त अर्घ दान आदि सम्मान को प्राप्त हुए॥ 22॥ तदनंतर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमार ने अन्य सब लोगों को दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये॥ 23॥ मेरे पिता के पास से दूत आया है ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरे में गया । वहाँ उसने नाना प्रकार के शस्त्र धारण करने वाले अनेक योद्धाओं को द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥24-25॥

तदनंतर यथार्थ भाव के प्रकट करने में जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेता ने राम, लक्ष्मण और सीता के साम ने बीच का आवरण फाड़ डाला॥26॥ तत्पश्चात् आवरण के दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्ग से ही कोई उत्तम कन्या नोचे आकर पड़ी है । अथवा पाताल से ही निकली है । उस कन्या का मुख लज्जा के कारण कुछ नम्रीभूत हो रहा था॥ 27॥ उसकी कांति से लिप्त हुआ कपड़े का तंबू ऐसा दिखने लगा मानो उसमें आग ही लग गयी हो तथा लज्जा से युक्त मंद मुसकान की किरणों से लिप्त होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चंद्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥28॥ उसे देख, चतुर हंसों ने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमल को छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही वहाँ आ बैठी हो ॥29॥ उसकी कांति से वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौंदर्य के सागर में उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नों और स्वर्ण की पराग से मानो आच्छादित ही किया गया हो॥30॥ उसके स्तनों से ऐसा जान पड़ता था मानो कांतिरूपी जल के कल्लोल ही निकल रहे हों और त्रिबलि से शोभित मध्यभाग में ऐसा लगता था मानो तरंगें ही उठ रही हों ॥31॥ जिस प्रकार मेध के पतले आवरण को लाँघकर चंद्रमा का प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लहँगा को भेदकर उसके नितंबस्थल का सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥32॥ वह घर, एक मेघ के समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या बिजली के समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोक में चंचलता के कारण बिजली के यश में जो मल चिरकाल से लगा हुआ था उसने उसे बिलकुल ही धो डाला था ॥33॥ वह स्वर्ण निर्मित की तरह देदीप्यमान नितंब स्थल से उत्पन्न महानीलमणि के समान श्याम, अत्यंत चिकनी एवं पतली रोमरा जिसे सुशोभित थी ॥34॥ तदनंतर जिसने सहसा पुरुष का वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यंत सुंदर थे, ऐसी वह कन्या सीता के पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकार की लज्जा से रति की श्री सुशोभित होती है॥ 35॥लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो काम से युक्त हो किसी अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त हुए । उस समय उनके चंचल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे ॥36॥ तदनंतर निर्मल बुद्धि से युक्त राम ने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! विविध वेष को धारण करने वाली त कौन है ? जो इस तरह क्रीड़ा करती है ? ॥37॥ उसके उत्तर में मधुर भाषण करने वाली कन्या ने वस्त्र से शरीर ढंककर कहा कि हे देव ! सद्भाव को सूचित करने वाला मेरा वृत्तांत सुनिए ॥38॥

इस नगर का स्वामी 'बालिखिल्य' इस नाम से प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियों के समान निरंतर सदाचार का पालन करने वाला

और लोगों के साथ स्नेह करने वाला है॥ 39॥ उसकी प्रिया का नाम पृथिवी है । जिस समय पृथिवी गर्भाधान को प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजा के साथ युद्ध हुआ, सो युद्ध में म्लेच्छ राजा ने उसे पकड़ लिया ॥40॥ राजा सिंहोदर बालखिल्य के स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्य की रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भ में पुत्र होगा तो राज्य करेगा॥41॥ तदनंतर दुर्भाग्य से पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परंतु वसुबुद्धि मंत्री ने राज्य की आकांक्षा से सिंहोदर के लिए पुत्र उत्पन्न होने की खबर दी॥ 42॥ माता ने मेरा कल्याणमाला यह **अर्थ**हीन नाम रखा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मंगलमय व्यवहार में ही प्रवृत्त होते हैं॥ 43॥ अब तक मंत्री और मेरी भाता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं । आज पुण्योदय से आप लोगों के दर्शन हुए ॥44॥ बंदीगृह के निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्ट में हैं । सिंहोदर भी उन्हें छुड़ाने के लिए समर्थ नहीं है ॥45॥ इस देश में जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुगं की रक्षा करने वाले म्लेच्छ राजा के लिए भेज दिया जाता है॥46॥वियोगरूपी अग्नि से अत्यंत संताप को प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्र से अवशिष्ट चंद्रमा के समान कांतिहीन हो गयी है॥ 47॥ इतना कहकर दुःख के समान भार से जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कांति रहित हो गयी तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥48॥

तदनंतर राम ने अत्यंत मधुर शब्दों में उसे सांत्वना दी; सीता ने गोद में बैठाकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मण ने कहा कि हे सुंदरि ! शोक छोड़ो, इसी वेष से राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो॥ 49-50॥ हे शुभे ! हे कल्याणरूपिणी ! धैर्य के साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । मेरे लिए म्लेच्छराज का पकड़ना कौनसी बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिता को छूटा देखोगी॥51॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना संतोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो । उस कन्या के समस्त अंग हर्ष से उल्लसित हो उठे और वह कांति से भर गयी ॥52॥ तदनंतर उस मनोहरवन में नाना प्रकार का वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवों के समान स्वतंत्र हो सुख से रहे ॥53॥ तत्पश्चात् रात्रि के समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित राम-लक्ष्मण छिद्र पाकर वन के उस तंबू से बाहर निकल गये ॥54॥ जागने पर जब कन्या ने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ । वह हाहाकार करती हुई परम शोक को प्राप्त हुई ॥55॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥56॥ अंत में बड़े दुःख से शोक को रोककर तथा उत्तम हाथी पर सवार हो उसने कूबर नगर में प्रवेश किया और वहाँ पहले के समान दीन हृदय से वह निवास करने लगी ॥57॥

अथानंतर कल्याणमाला के रूप और विनय से जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रम से नर्मदा नदी को प्राप्त हुए ॥58॥क्रीड़ा करते हुए उस नदी को पार कर तथा अनेक सुंदर देशों को उल्लंघन कर वे विंध्याचल को महाअटवी में पहुँचे ॥59॥ वे बड़ी भारी सेना के संचार से खुदे हुए मार्ग से जा रहे थे, इसलिए मार्ग में चलने वाले ग्वालों तथा हल वाहकों ने उन्हें रो का कि इस मार्ग से आगे न जाओ पर वे रु के नहीं ॥60॥ बहुत भारी सुगंधि से भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओं से आलिंगित सागौन आदि के वृक्षों से नंदनवन के समान अत्यंत सुशोभित है और कहीं दावानल के कारण समीप स्थित वृक्षों के जल जाने से कुपुत्र के द्वारा कलंकित गोत्र के समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥61-62॥ कुछ आगे बढ़ने पर सीता ने कहा कि देखो, कनेर वन के बीच में बायीं ओर कंटीले वृक्ष की चोटी पर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो शीघ्र ही कलह होने वाली है यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्ष पर बैठा दूसरा कौआ हम लोगों की विजय होगी यह सूचित कर रहा है ॥63-64॥इसलिए आप लोग मुहूर्त मात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहांतर जय प्राप्त करना भी मेरे मन में बहुत अच्छा नहीं जंचता ॥65॥ तदनंतर क्षण-भर विलंब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अंतर पर वही निमित्त फिर हुआ॥ 66॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें म्लेच्छों की सेना मिली, सो उत्तम धनुष के धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मण को आते देख वह सेना भयभीत हो क्षण-भर में भाग गयी ॥67-68॥ तदनंतर भागती सेना से समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो साम ने आये परंतु वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम लक्ष्मण ने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥69॥ तदनंतर जो अत्यंत भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोर से चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छों ने जाकर अपने स्वामी से निवेदन किया ॥70॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुष को धारण करता हआ म्लेच्छों का स्वामी निकला । बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अंधकार से आच्छादित था ॥72॥ वे म्लेच्छ पृथिवी पर काकोनद इस नाम से प्रसिद्ध थे, अत्यंत भयंकर थे, सब जंतुओं का मांस खाने वाले थे और राजाओं के द्वारा भी दूर्जेय थे ॥72॥ जब लक्ष्मण ने देखा कि आगे की दिशा मेघसमूह के समान श्यामवर्ण म्लेच्छों से आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुष की

डोरी चढ़ा ली॥73॥और उस प्रकार से उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरों को कँपकँपी उत्पन्न करने वाला ज्वर उत्पन्न हो गया॥74॥लक्ष्मण को डोरी पर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीन के समान चक्राकार घूम ने लगे ॥75॥ तदनंतर अत्यंत भय से भरा म्लेच्छों का स्वामी रथ से उतरकर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशांबी नाम की प्रसिद्ध नगरी है, निरंतर अग्नि में होम करने वाला विश्वानल नाम का पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है । विश्वानल की स्त्री का नाम प्रतिसंध्या है । मैं उन्हीं दोनों का पुत्र हूँ, रौद्रभूति नाम से प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुए के कला का पारगामी हूँ ॥76-78॥ मैं बाल्य अवस्था से ही निरंतर खोटे कार्य करने में निपुण था । किसी समय चोरी के अपराध में पकड़ा गया और मुझे शूली पर चढ़ाने का निश्चय किया गया ॥72॥ शूली का नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तव विश्वास रखने वाले एक भले धनिक ने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया । तदनंतर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया॥ 80॥ कर्मो के प्रभाव से इन काकोनद म्लेच्छों की स्वामिता को प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचार से भ्रष्ट हो पशुओं के समान यहाँ रहता हूँ ॥81॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओं से युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होने के लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने दृष्टिमात्र से ही दीन कर दिया । मैं धन्य हूँ जिससे पुरुषों में उत्तम आप महानुभावों के दर्शन किये ॥82-83॥ हे नाथ ! आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूं ? क्या पवित्र करने में निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूं ? ॥84॥ यह विंध्याचल निधियों तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियों से परिपूर्ण है इसलिए हे देव ! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्व की इच्छा प्रकट करो॥ 85॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ा को प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ा ॥86॥

तदनंतर जो वीर जनों के लिए दयारूपी लता से आलिंगित कल्पवृक्ष के समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्था को प्राप्त हुए मलेच्छ राजा से इस प्रकार बोले कि हे सुबुद्धि ! उठ-उठ, डर मत, बालिखिल्य को बंधन रहित कर तथा उत्तम सम्मान को प्राप्त कराकर शीघ्र ही यहाँ ला॥ 87-88॥उसी का इष्ट मंत्री हो सज्जनों की संगति कर और म्लेच्छों की संगति छोड़, देश का हितकारी हो॥ 89॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुझे शांति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायेगा ॥90॥ हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ इस प्रकार कहकर उसने बड़े आदर से राम को प्रणाम किया और विनय के साथ जाकर महारथ के पुत्र बालिखिल्य को छोड़ दिया ॥9॥

तदनंतर जिसे तेल-उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारों से अलंकृत किया गया था ऐसे बालिखिल्य को रथ पर बैठाकर वह राम के पास ले जाने के लिए उद्यत हुआ॥ 92॥ जो इस तरह आदर के साथ लाया जा रहा था ऐसा बालिखिल्य परम आश्चर्य को प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्राय: अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी॥ 13॥ कहाँ तो यह कुकर्म करने वाला अत्यंत निर्दय महावैरी म्लेच्छ ? और कहाँ यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेंगे ॥24॥ इस प्रकार बालिखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मण को देखकर वह परम संतोष को प्राप्त हुआ । उसने रथ से उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदय से अतिशय सुंदर रूप को धारण करने वाले आप दोनों महानुभाव पधारे हैं इसीलिए मैं बंधन से मुक्त हुआ हूँ ॥95-96॥ राम-लक्ष्मण ने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनों के साथ समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुंचने पर तुम हम लोगों को जान सकोगे । इस प्रकार कहने पर बुद्धिमान् बालिखिल्य अपने घर चला गया॥ 97॥ तदनंतर विश्वानल के पुत्र रौद्रभूति को बालिखिल्य का निश्चल मित्र बनाकर अतिशय कुशल राम-लक्ष्मण सीता के साथ अपने इष्ट स्थान को चले गये॥ 98॥ बांधवजनों की चेष्टा का स्मरण करता हुआ बालिखिल्य, रौद्रभूति के साथ जब अपने नगर की समीपवर्ती भूमि में पहुँचा तब निकट वर्ती पिता को परम विभूति से युक्त कर पुत्री कल्याणमालिनी संतुष्ट हो उसका सत्कार करने के लिए नगर से बाहर निकली॥ 99-100॥ तदनंतर नमस्कार करती हुई पुत्री को पहचानकर राजा बालिखिल्य ने उसका मस्तक सूंघा फिर अपने रथ पर बैठाकर कूबर नगर में प्रवेश किया॥ 10॥ बालिखिल्य की रानी पृथिवी के शरीर में हर्षातिरेक से रोमांच निकल आये और वह कांतिरूपी सागर में वर्तमान अपने पुराने शरीर को क्षण-भर में पुनः प्राप्त हो गयी ॥102॥ सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याण माला के गुणों से परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥103॥ रौद्रभूति ने चिरकाल तक चोरी में तत्पर रहकर नाना देशों में उत्पन्न जो विविध प्रकार का विशाल धन इकट्ठा किया था वह सब बालिखिल्य के घर में प्रविष्ट हुआ ॥104॥ जब म्लेच्छों की सुदुर्गम भूमि को वश करने वाला रौद्रभूति बालिखिल्य का आज्ञाकारी हो गया तब शंका को प्राप्त हुआ सिंहोदर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥105॥ इस प्रकार महारथी बालिखिल्य राम-लक्ष्मण के प्रसाद से परमविभूति को पाकर अपनी प्राणप्रिया से इस तरह सुशोभित होने लगा जिस तरह

कि शरद्ऋतु से सूर्य सुशोभित होता है ॥106॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में बालिखिल्य का वर्णन करने वाला चौंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥34॥

## कपिल

पैंतीसवाँ पर्व
कथा :
अथानंतर देवों के समान शोभा को धारण करने वाले वे तीनों, नंदनवन के समान सुंदर वन में सुख से विहार करते हुए एक ऐसे अत्यंत उज्ज्वल देश में पहुँचे, जिसके मध्य में प्रसिद्ध जल को बहाने वाली, पक्षी समूह से शब्दायमानतापी नाम की प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥ 1-2॥ वहाँ के निर्जल वन में जब सीता अत्यंत थक गयी तब राम से बोली कि नाथ ! मेरा कंठ बिल्कुल सूख गया है ॥3 ॥जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करने से खेद को प्राप्त हुआ भव्य, अरहंत भगवान् के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासा से आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥4॥ इतना कहकर वह रोकने पर भी एक उत्तम वृक्ष के नीचे बैठ गयी । राम ने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषाद को प्राप्त मत होओ ॥5॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलों से युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलें, वहीं शीतल पानी पीना ॥ 6॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीता के साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुंब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राम में पहुँचे॥ 7॥वहाँ प्रतिदिन होम करने वाला एक कपिल नाम का ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथाक्रम से प्राप्त हुए, उसी के घर उतरे॥8॥ यहाँ यज्ञ-शाला में क्षण-भर विश्राम कर सीता ने उसकी ब्राह्मणी के द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥9॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतने में बेल पीपल और पलाश की लकड़ियों का भार लिये ब्राह्मण जंगल से वापस आ पहुंचा ॥10॥ निरंतर क्रोध करने वाले उस ब्राह्मण का मन दावानल के समान था, वचन कालकूट के समान थे, और मुख उल्लू के सदृश था ॥11 ॥वह हाथ में कमंडलु लिये था, उसने शिर पर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुख पर लंबी-चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कंधे पर यज्ञोपवीत का सूत्र धारण किया था, इन सब चीजों से वह अत्यंत कुटिल वेष को धारण कर रहा था तथा उच्छवृत्ति से अपनी जीविका चलाता था ॥12॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहों से अत्यंत कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणी से इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनों से उसे छील ही रहा हो ॥13॥उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुझे पशु से भी अधिक दुःसह बंधन में डालता हूँ ॥14॥ देख, जिनका शरीर धलि से धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, ढीठ व्यक्ति मेरी यज्ञशाला को दूषित कर रहे हैं ॥15॥
तदनंतर सीता ने राम से कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपशब्द कहने वाले इस ब्राह्मण का यह अधम स्थान छोड़ो ॥ 16 ॥फूलों और फलों से आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदि से युक्त अत्यंत निर्मल सरोवरों से सुशोभित वन में स्वेच्छा से साथ-साथ क्रीड़ा करने वाले हरिणों के साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकार के अत्यंत कठोर शब्द सुनाई नहीं पड़ते ॥17-18 ॥हे राघव ! स्वर्ग के समान आभा वाले इस अतिशय सुंदर देश में समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यंत निष्ठुर हैं ही ॥19॥ ब्राह्मण के रूक्ष वचनों से क्षोभ को प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥20॥ गाँव के लोगों ने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकान में एक ओर क्षण-भर के लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते हैं ॥21॥उसने क्रोध से लाल होकर सब लोगो को डाँटते हुए, राम-लक्ष्मण से कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घर से निकलो । ब्राह्मण का राम-लक्ष्मण के प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियों के प्रति रोष दिखाता है उन्हें देखकर भोंकता है । तदनंतर उसके इस प्रकार के वचन संबंधी आघात से लक्ष्मण को क्रोध आ गया । वे रुधिर के समान लाल-लाल नेत्रों के धारक तथा अमांगलिक अपशब्द बकने वाले उस नीच ब्राह्मण को ऊर्ध्वपाद और अधोनीव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवी पर पछाड़ने के लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणा के धारी राम ने उन्हें यह कहते हुए रो का ॥22-25 ॥कि हे लक्ष्मण ! तुम इस बेचारे दोन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतक के समान है, इसके मारने से क्या लाभ है ? ॥26 ॥जब तक यह निष्प्राण नहीं होता है तब तक इस क्षुद्र को शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरने पर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥27॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर भी शूरवीरों के द्वारा बध्य नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥28॥ इतना कहकर राम ने उसे छुड़ाया और लक्ष्मण को आगे कर वे सीता सहित उस ब्राह्मण की कुटिया से बाहर निकल आये ॥29॥ जो दुर्वचन सुनने का कारण है मन में विकार उत्पन्न करने वाला है और महापुरुष जिसे दूर से ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्यों की संगति को धिक्कार है ॥30॥ शीतऋतु के समय दुर्गम वन में वृक्ष

के नीचे बैठा रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसार में भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुखपूर्वक मर जाना अच्छा है परंतु तिरस्कार के साथ दूसरे के घर में एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥31-32॥ हम नदियों के तटों और पर्वतों की अतिशय मनोहर गुफाओं में रहेंगे परंतु अब फिर दुर्जनों के घर में प्रवेश नहीं करेंगे इस प्रकार दुर्जन संसर्ग की निंदा करते तथा परम अभिमान को धारण करते हुए राम ने गाँव से निकलकर वन का मार्ग लिया॥33-34॥

तदनंतर समस्त आकाश को नीला करता और तीव्र गर्जना के समूह से गुफाओं को प्रति ध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥35॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रों के पटल को सब ओर से छिपाकर कड़कती हुई बिजली के प्रकाश के बहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥36॥ ग्रीष्म काल के भयंकर विस्तार को दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजलीरूपी अंगुली के द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्यों को डांट ही दिखा रहा हो ॥37॥ धाराओं के द्वारा आकाश को अंधकारयुक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीता का अभिषेक करने के लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मी का अभिषेक करने के लिए तैयार होता है ॥38॥ तदनंतर वे भोगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृक्ष के नीचे पहुंचे कि जिसका स्कंध धर के समान सुरक्षित था तथा जो अत्यंत ऊँचा था ॥39।।

अथानंतर उनके तेज से अभिभूत हुआ इभकर्ण नाम का यक्ष, विंध्याचल के वन में रहने वाले अपने स्वामी के पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ ! स्वर्ग से आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घर में ठहरे हैं जिन्होंने अपने तज से अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घर के बाहर कर दिया है ॥40-41 ॥इभकर्ण के वचन सुनकर मंद हास्य करता हुआ यक्षराज, अपनी स्त्रियों के साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्ष के पास जाने के लिए चला ॥42॥ यक्षों का वह अधिपति महावैभव से युक्त था, रम्य वनों में क्रीड़ा करता आ रहा था और पूतन नाम से सहित था ॥43॥ यक्षराज ने अत्यंत सुंदर रूप के धारक राम-लक्ष्मण को दूर से हो देख अवधिज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥44॥ तदनंतर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्य से उसने उनके लिए क्षण-भर में एक सुंदर नगरी की रचना कर दी ॥45॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुख से सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीत के शब्द से प्रबोध को प्राप्त हुए ॥46॥ उन्होंने अपने आपको रत्नों से सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खंड का अत्यंत मणीय उज्ज्वल महल देखा, आदर के साथ शरीर की सेवा करने में व्यग्र सेवकों का समूह देखा और महाशब्द, प्राकार तथा गोपुरों से शोभित नगर देखा ॥47-48॥ सहसा इस नगर को दिखने पर उन महानुभावों का मन आश्चर्य को प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार क्षुद्र चेष्टा थी ॥49॥ सुंदर चेष्टाओं को धारण करने वाले राम, सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओं से युक्त हो देवों के समान भोग भोगते हुए उस नगरी में सुख से रहने लगे ॥50॥ चूंकि वह नगरी यक्षराज ने राम के लिए बनायी थी इसलिए महीतल पर रामपुरी इसी नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई ॥51॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मंत्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकार के नगरवासी जिस प्रकार अयोध्या में थे उसी प्रकार इस रामपुरी में भी थे ॥52॥ तदनंतर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामी से पूछा कि हे नाथ ! राम-लक्ष्मण के साथ उस प्रकार व्यवहार करने वाले उस कपिल ब्राह्मण का क्या हाल हुआ? सो कहिए ॥53॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथ में लेकर वन की ओर चला ॥54॥ वह इंधन आदि की प्राप्ति के लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका मुख आश्चर्य से चकित हो गया ॥55॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रंगों की अनेक पताकाओं और शरद्ऋतु के मेघों के समान अतिशय देदीप्यमान भवनों से सुशोभित थी ॥56॥ नगरी के मध्य में सफेद कमलरूपी छत्र से सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलास का बच्चा ही हो ॥57 ॥यह सब देख, वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा मृगों से सेवित वही अटवी है ? जिसमें मैं ईंधन तथा कुशा आदि के लिए निरंतर दुःखपूर्वक भटकता रहता था ॥58॥यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरों की माला से शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतों के समान दिखने वाले भवनों से अकस्मात् ही सुशोभित हो रही है ॥59 ॥ यहाँ कमल आदि से आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥60॥ यहाँ मनुष्यों के द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से युक्त मंदिर दिखाई पड़ते हैं ॥61॥इस नगर की निकटवर्ती भूमि, हाथियों, घोड़ों, गायों और भैंसों से संकीर्ण तथा घंटा आदि के शब्दों से पूर्ण है ॥62॥

क्या यह नगरी यहाँ स्वर्ग से अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्मा के प्रभाव से पाताल से निकली है ॥63 ॥क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसी की माया है ? या गंधर्व का नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्त से व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥64॥ अथवा क्या मेरा निकट काल में मरण होने वाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विवाद को प्राप्त

हुआ ॥65॥ उसी समय उसे नान धारण करने वाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥66॥ उसने कहा कि यह राम की नगरी है, क्या तुम ने कभी सुना नहीं ? उन राम की कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥67 ॥हे ब्राह्मण ! नगरी के बीच में जो यह शरद् ऋतु के मेष के समान कांतिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसी में वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥68॥जिनका दर्शन अत्यंत दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तम ने मन वांछित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्यों को राजा के समान बना दिया है ॥69 ॥ब्राह्मण ने कहा कि हे सुंदरि! मैं किस उपाय से राम के दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुम से सद्भाव से पूछ रहा हूँ अतः बतलाने के योग्य हो ॥70॥ इतना कहकर उस ब्राह्मण ने ईंधन का भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्री के चरणों में गिर पड़ा, सो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती
थी ?॥71 ॥।

तदनंतर दया से आकृष्ट हुई उस सुमाया नाम की यक्षी ने ब्राह्मण से कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥72॥ तू इस नगरी को समीपवर्ती भूमि में कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥73॥ इस नगरी के तीन द्वारों में तो देवों को भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूल के समान मुख वाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियंत्रण रखने वाले रक्षकों से अशून्य रहते हैं । इन रक्षकों के द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसंदेह मरण को प्राप्त हो जाते हैं ॥74-75 ॥इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगला के पंख के समान कांति वाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणों से रमणीय तथा नाना ध्वजाओं की पंक्ति से सुशोभित जिन-मंदिर हैं । उनमें इंद्रों के द्वारा वंदनीय अरहंत भगवान् की प्रतिमाएं हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हंत् सिद्धेभ्यो नमः' **अर्थ**ात् अरहंत तथा सिद्धों को नमस्कार हो इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओं का स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रंथ गुरु का उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्व द्वार में प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओं को नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥76-79 ॥जो मनुष्य अणुव्रत का धारी तथा गुण और शील से अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नता से इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥80॥

तदनंतर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्ति का उपाय प्राप्त कर वह ब्राह्मण परम हर्ष को प्राप्त हुआ ॥81 ॥उसका समस्त शरीर रोमांचों से सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यंत अद्भुत भावों से युक्त हो गया । वह उस स्त्री को नमस्कार कर तथा बार-बार उसकी स्तुति कर चारित्र पालन करने में शूर-वीर मुनिराज के पास गया और अंजलि बाँध शिर से प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करने वालों की क्रिया पूछी ॥82-83॥तदनंतर उस चतुर बुद्धिमान ब्राह्मण ने मुनिराज के द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अंगीकृत किया तथा अनुयोगों का स्वरूप सुना ॥84॥ पहले तो वह ब्राह्मण धन के लोभ से अभिभूत होकर धर्मश्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करने के भाव को प्राप्त हो गया ॥85॥मुनिराज से धर्म का स्वरूप जानकर जिसका हृदय अत्यंत शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेश से तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥86॥ जिस प्रकार प्यास से पीड़ित मनुष्य को उत्तम जल मिल जाये, आश्रय की इच्छा करने वाले पुरुष को छाया मिल जाये, भूख से पीड़ित मनुष्य को मिष्टान्न मिल जाये, रोगी के लिए उत्तम औषधि मिल जाये, कुमार्ग में भट के हुए को इच्छित स्थान पर भेजने वाला मार्ग मिल जाये, और बड़ी व्याकुलता से समुद्र में डूबने वालों को जहाज मिल जाये, उसी प्रकार आपके प्रसाद से सर्व दुःखों को नष्ट करने वाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्यों के लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥87-89॥ चूंकि आपने यह ऐसा जिन प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोक में भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥90 । इस प्रकार कहकर तथा अंजलि बद्ध शिर से मुनिराज के चरणों में नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥21॥

तदनंतर जिसके नेत्र कमल के समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यंत हर्ष से युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्री से बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरु से परम आश्चर्य सुना है ॥92 ॥ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिता ने, पिता के पिता ने अथवा बहुत कहने से क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥93 ॥हे ब्राह्मणि ! वन में जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरु के उपदेश से आश्चर्य करने वालो नहीं रही ॥94॥ ब्राह्मणी ने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम ने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणी के इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्ष के कारण कहने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥95॥ तदनंतर कौतुक से भरी ब्राह्मणी ने जब आदर के साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्ये ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥96।।

मैं लकड़ियाँ लाने के लिए जंगल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥97 ॥मैंने उस नगरी के पास एक आभूषणों से विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करने वाली वह कोई देवी होगी ॥98 ॥मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नाम की नगरी है, यहाँ राजा रामचंद्र श्रावकों के लिए बहुत भारी धन देते हैं ॥19 ॥तदनंतर मैंने मुनिराज के पास जाकर जिनेंद्र भगवान् के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शन से संतप्त थी अत्यंत संतुष्ट हो गयी ॥100 ॥मुक्ति के आलिंगन की लालसा रखने वाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्म का आश्रय ले समस्त परिग्रह का त्यागकर तप करते हैं वह अरहंत का धर्म मैंने प्राप्त कर लिया । वह धर्म तीनों लोकों को महानिधि है इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥101-102॥ तदनंतर उस धर्मात्मा ने मुनिराज से जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदय से उसने ब्राह्मणी के लिए कह दिया॥103 ॥उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मण से बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसाद से जिनेंद्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥104॥ मेरा यह भाग्य का योग तो देखो कि जो मोहवश विषफल की इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रंचमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुम ने अर्हंत का नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥105 ॥जिस प्रकार किसी मूर्ख के हाथ में मणि आ जाये और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्ख के गृहांगण में साधु आये और मैंने उनका अपमानकर उन्हें दूर कर दिया ॥106 ॥उस दिन आहार के समय उपवास से खिन्न दिगंबर मुनि घर आये सो उन्हें हटाकर मैंने दूसरे साधु का मार्ग देखा ॥107॥ जिन्हें इंद्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हंत को छोड़कर मैंने ज्योतिषी तथा व्यंतरादिक देवों को शिर झुका-झुकाकर नमस्कार किया ॥108॥ अर्हंत भगवान् का धर्मरूपी रसायन अहिंसा से निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विष का भक्षण किया है ॥109॥ बडे खेद की बात है कि मैंने मनुष्य द्वीप को पाकर द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अंगीकार किया ॥110 ॥जो इंद्रियों के विषयों में प्रवृत्त हैं, रात दिन इच्छानुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शील से शून्य हैं, ऐसे साधुओं के लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥111 ॥जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहार के समय आये हुए अतिथि का अपनी सामर्थ्य के अनुसार सन्मान नहीं करता है उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥112॥ जिसने उत्सव को तिथि का परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकार के परिग्रह से बिलकुल निःस्पृह है तथा घर से रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥113 ॥जिनके हाथ में न भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्र में भोजन करते हैं ऐसे निर्ग्रंथ साधु ही संसार-समुद्र से पार करते हैं ॥114॥जो अपने शरीर में भी निःस्पृह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयों में नहीं लुभाते और मुक्ति के लक्षण **अर्थ**ात् चिह्न स्वरूप दिगंबर मुद्रा से विभूषित रहते हैं उन्हें निर्ग्रंथ जानना चाहिए ॥115 ॥इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मल से रहित थी ऐसी सुशर्मा नाम की ब्राह्मणी पति के साथ बुध ग्रह के साथ भरणी नक्षत्र के समान सुशोभित हो रही थी ॥116॥

तदनंतर उस ब्राह्मण ने हर्ष से ब्राह्मणी को उन्हीं गुरु के पादमूल में ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण कराया ॥117 ॥जो पहले आशीविष सांप के समान अत्यंत उग्र थे ऐसे ब्राह्मणों के कुल, कपिल को जिनशासन में अनुरक्त जानकर शांतिभाव को प्राप्त हो गये ॥118॥उनमें जो सुबुद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान् का अत्यंत सुदृढ़ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मों के भार से वजनदार थे, अहंकार से हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरंतर प्रमाद से युक्त रहते थे परंतु अब जिन धर्म के प्रसाद से भयंकर नरक में नहीं जावेंगे॥119-120 ॥इस जिन शासन को हमने सैकड़ों जन्मों में भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किंतु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्ट से प्राप्त किया है ॥121॥अब हम मनरूपी होता के साथ मिलकर भावरूपी घी के साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओं को ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्नि में होमेंगे ॥122॥इस प्रकार मन को स्थिर कर संवेग से भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्व परिग्रह से विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥123॥ परंतु कपिल श्रावक धर्म में आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखने वाली ब्राह्मणी से बोला ॥124 ॥कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टा के धारक तथा कमल के समान नेत्रों से युक्त उन श्रीराम के दर्शन करने के लिए राम पुरी क्यों नहीं चलें ? ॥125 ॥वे भव्य जीवों पर अनुकंपा करने वाले हैं तथा जो निरंतर आशा में तत्पर रहता है, जिसका मन निरंतर धनोपार्जन के उपाय जुटाने में ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी समुद्र में मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्य का वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनंद दायिनी उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है । ॥126-127॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलों का पिटारा तुम ले लो और मैं इस सूकुमार बच्चे को कंधे पर रख लेता हूँ ॥128॥ इस प्रकार कहकर तथा वैसा ही कर हर्ष से भरे दोनों दंपती जाने के लिए तत्पर हुए । अपनी शक्ति के अनुसार वे निर्मल

वेष से विभूषित थे ॥129॥जब वे चले तो उनके मार्ग में उग्र सर्प फण तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डाँढों से विकराल थे और जो जोर-जोर से हंस रहे थे ऐसे वेताल मार्ग में आड़े आ गये ॥130 ॥परंतु इन सब भयंकर वस्तुओं को देखकर भी उनके हृदय निष्कंप रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥131॥ जो त्रिलोक द्वारा वंदनीय हैं, जो भयंकर संसाररूपी कर्दम से पार हो चुके हैं तथा जो उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करने वाले हैं ऐसे जिनेंद्र भगवान् को मन, वचन, काय से सदा नमस्कार हो ॥132॥इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनों की जिनभक्ति को जानकर यक्ष शांत हो गये और वे रामपुरी के जिनालय में पहुंच गये ॥133॥ तदनंतर भगवान् की वसतिका के लिए नमस्कार हो यह कहकर दोनों ने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनों ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥134॥ हे नाथ ! महादुर्गति के दुःख देने वाले लौकिक मार्ग को छोड़कर हम चिरकाल के बाद आपकी शरण में आये हैं ॥135॥उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् संबंधी तीर्थंकरों की चौबीसी को हम नमस्कार करते हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में जो तीर्थंकर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, काय से नमस्कार करते हैं ॥136-137॥ जो संसार समुद्र से स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरों को पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों संबंधी तीर्थंकरों को हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥138॥उन मुनि सुव्रत भगवान् को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकों में प्रकाशमान हो रहा है ॥139॥इस प्रकार स्तुति कर घुटनों और मस्तक से पृथिवीतल का स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार किया । उस समय भक्ति के कारण उन दोनों के शरीर में रोमांच उठ रहे थे ॥140॥

तदनंतर वंदना का कार्य पूर्ण कर चुकने के बाद शांत तथा मधुर भाषी रक्षकों ने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ राम के दर्शन करने के लिए चला ॥141॥ वह, राजमार्ग में पर्वतों के समान ऊँचे, निर्मल कांति के धारक, तथा दिव्य स्त्रियों से भरे जो महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्री के लिए दिखाता जाता था ॥142॥उसने स्त्री से कहा कि हे भद्रे ! कुंद के समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथों को पूर्ण करने वाले गुणों से सहित, भवनों से जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर राम का यह भवन समीपवर्ती अन्य महलों से घिरा कैसा सुंदर जान पड़ता है ? ॥143-144॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मण ने राम के भवन में प्रवेश किया । वहाँ वह दूर से ही लक्ष्मण को देखकर अत्यंत आकुलता को प्राप्त हुआ ॥145॥ उसके शरीर में कंपकंपी छूटने लगी । वह विचार करने लगा कि नीलकमल से समान प्रभा वाला यह वही पुरुष है जिसने उस समय मुझ मूर्ख को नाना प्रकार के वध से दुःखी किया था ॥146 ॥उसकी बोलती बंद हो गयी । वह मन ही मन अपनी जिह्वा से कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानों के लिए अत्यंत दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यों है ? बाहर निकल ॥147॥वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस बिल में घुस जाऊँ ? आज मुझ शरण हीन का यहाँ कौन शरण होगा ? ॥148 ॥यदि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तरदिशा को लांघकर देश त्याग ही कर देता ॥149 ॥इस प्रकार उद्वेग को प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणी को छोड़ भागने के लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मण ने उसे देख लिया ॥150 ॥हँसकर लक्ष्मण ने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँ से आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वन में ही हुआ है, यह इस तरह आकुलता को क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥151 ॥सांत्वना देकर उस ब्राह्मण को शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टा को देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥152॥ नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए, लौटो, इस प्रकार कहने पर वह सांत्वना को प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापस लौटा ॥153॥

तदनंतर श्वेत वस्त्र को धारण करने वाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम-लक्ष्मण के सम्मुख गया तथा अंजलि में पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो स्वस्ति शब्द का उच्चारण करने लगा ॥154॥ तदनंतर जो प्राप्त हुए आसन पर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करने में समर्थ ऋचाओं के द्वारा राम-लक्ष्मण को स्तुति करने लगा ॥155॥ स्तुति के बाद राम ने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हम लोगों का वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥156॥ ब्राह्मण ने कहा, हे देव ! मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्म से आच्छादित अग्नि के समान मोह वह मुझ से आपका अनादर हो गया ॥157॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्व की यही रीति है कि शीत ऋतु में सूर्य के समान धनवान् की ही सदा पूजा होती है ॥158॥ यद्यपि इस समय में जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थ में धन की ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥159॥ हे देव ! लोग निरंतर धनवान् मनुष्य का ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रता का प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्य को छोड़ देते हैं ॥160॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बांधव हैं, जिसके

पास धन है लोक में वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पंडित है ॥161 ॥जब मनुष्य धन रहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई । पर वही मनुष्य जन-धन सहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥162 ॥धन वही है जो धर्म से सहित है, धर्म वही है जो दया से सहित है और निर्मल दया वही हैं जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥163 ॥मांस भोजन से दूर रहने वाले समस्त प्राणियों के अन्य त्याग चूंकि मूल से सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥164 ॥हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगों को तो कोई जानता ही नहीं है ॥165 ॥अथवा आपकी बात जाने दीजिए आप जैसे लोग जिनकी वंदना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषों से पराभव प्राप्त करते हैं ॥166 ॥क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखने के लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियों को धारण करने वाले देव आये थे परंतु वे भी मुनिपद धारणकर पराभव को प्राप्त हुए । आचार-शास्त्र के जानने में निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परंतु उन्हें कहीं भिक्षा नहीं मिली ॥167-168॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगर में वनस्पति से आजीविका करने वाली एक स्त्री ने आहार देकर उन्हें संतुष्ट किया और पंचाश्चर्यरूपी गुणों का ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥169॥ जिनकी भुजा बाजूबंद से विभूषित थी ऐसे सुभूम ने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ बेर के लिए बढ़ाया परंतु यह दरिद्र है यह समझकर उनके लिए किसी ने एक बेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि विशेष को नहीं जानने वाला मनुष्य किसी विशेष को कब प्राप्त हुआ है ? ॥170-171 ॥यह अथवा और कोई सभी लोग, स्वकृत कर्म को भोगने वाले मनुष्यों से विवश हैं । जिस मनुष्य का जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती॥172 ॥मुझ मंदभाग्य ने उस समय आपकी आतिथ्य क्रिया क्यों नहीं की? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यंत संताप को प्राप्त है ॥173 ॥आपके अतिशय सुंदर रूप को देखने वाला मनुष्य ही अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त नहीं होता किंतु आपके प्रति अत्यंत क्रोध प्रकट करने वाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त नहीं हुआ हो ॥174॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रांत हो रोने लगा, तब राम ने शुभ वचनों से उसे सांत्वना दी और सीता ने उसकी स्त्री सुशर्मा को समझाया ॥175 ॥तदनंतर राम की आज्ञा से किंकरों ने भार्या सहित कपिल श्रावक को सुवर्ण घटों में रखे हुए जल से प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥176॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नों से उसे अलंकृत किया । तदनंतर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापस गया ॥177 ॥यद्यपि वह बुद्धिमान् ब्राह्मण, लोगों को आश्चर्य में डालने वाले तथा सर्व प्रकार के उपकरणों से युक्त भोगोपभोग के पदार्थों को प्राप्त हुआ था, तो भी चूंकि वह सम्मानरूपी बाणों से विद्ध था, गुणरूपी महासर्पो से डसा गया था और सेवा शुश्रूषा के कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह संतोष को प्राप्त नहीं होता था । भावार्थ राम ने तिरस्कार के बदले उसका सत्कार किया था अपने अनेक गणों से उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषा से उसे सुखी किया था इसलिए वह रात दिन इसी शोक में पड़ा रहता था कि देखो कहां तो मैं दुष्ट कि जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहाँ ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥178-179॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गांव में इतना अधिक दरिद्र था कि कंधे पर लकड़ियों का गट्टा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गांव में मैं राम के प्रसाद से यक्षराज के समान हो गया हूँ तथा सब चिंता और दुःखों से छूट गया हूँ ॥180-181 ॥पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था, अनेक छिद्रों से जर्जर था, काक आदि पक्षियों की अशुचि से लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्रीराम के प्रसाद से अनेक गायों से व्याप्त है, नाना महलों से संकीर्ण तथा प्राकार-कोट से घिरा हुआ है ॥182-183 ॥हाय, बड़े खेद की बात है कि मैंने कमल के समान नेत्रों के धारक तथा चंद्रतुल्य मुख से सुशोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयों का अपराध के बिना ही तिरस्कार किया॥184॥ग्रीष्मऋतु के आताप से जिनके शरीर संतप्त हो रहे थे ऐसे दोनों भाई देवी **अर्थ**ात् सीता के साथ घर से बाहर निकले, वह मेरे हृदय में सदा शल्य की तरह गड़ा हुआ चंचल हो उठता है ॥185 ॥निःसंदेह मेरे दुःख का अंत तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निरारंभ ही दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥186 ॥तदनंतर कपिल के वैराग्य का समाचार जानकर इसके घबड़ाये हुए दीन-हीन भाई-बंधु, सुशर्मा ब्राह्मणी के साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥187॥ मोक्ष प्राप्त करने में उत्सुक कपिल, अपने परिजन को शोकरूपी सागर में निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धि से बोला कि हे मानवो ! बड़े-बड़े मनोरथों से युक्त कुटुंबीजनों के विचित्र स्नेह से मोहित हुआ यह प्राणी निरंतर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥188-189 ॥इस प्रकार संवेग को प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःख से मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दुःख का अनुभव करने वाले बंधुजनों को छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नों से परिपूर्ण तथा दास-दासियों से युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणी के लिए सौंपकर आरंभ रहित दिगंबर साधु हो गया ॥190-192॥ सह्यानंदमति के शिष्य तथा गुण और शील के महासागर अतिशय

तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥193॥ तदनंतर जो निर्मल चारित्ररूपी कांवर को धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थ में लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रंथ व्रतरूपी लक्ष्मी से आलिंगित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥194॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिल की इस कथा को पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्य के समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवास का फल प्राप्त करता है ॥195॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य रचित पद्मचरित में कपिल का वर्णन करने वाला पैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥34॥

## वनमाला

छत्तीसवाँ पर्व

कथा :

तदनंतर घोर अंधकार से व्याप्त और बिजली की चमक से भीषण वर्षा काल, दुष्काल के समान जब क्रम-क्रम से व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गयी तब राम ने वहाँ से प्रस्थान करने का विचार किया । उसी समय यक्षों का अधिपति आकर राम से कहता है कि हे देव ! हमारी जो कुछ त्रुटि रह गयी हो वह क्षमा कीजिए क्योंकि आप-जैसे महानुभावों के योग्य समस्त कार्य करने के लिए कौन समर्थ है ?॥1-3॥ यक्षाधिपति के ऐसा कहने पर राम ने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतंत्रता को क्षमा कीजिए **अर्थ**ात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिए॥4॥ राम के इस वचन से यक्षाधिप अत्यंत प्रसन्न हुआ । उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, राम के लिए स्वयं प्रभ नाम का अद्भुत हार दिया । लक्ष्मण के लिए उगते सूर्य के समान देदीप्यमान दो मणिमय कुंडल दिये, और सीता के लिए महामांगलिक देदीप्यमान चूड़ामणि तथा महाविनोद करने में समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करने वाली वीणा दी ॥5-7॥ तदनंतर जब वे इच्छानुसार वहाँ से चले गये तब यक्षराज ने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी संबंधी माया समेट ली ॥8॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करने से हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है॥ 9॥ अथानंतर स्वेच्छानुसार पृथिवी में विहार करते, नाना रस के स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएं करते और देवों के समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहों से व्याप्त महावन को पार कर मनुष्यों के द्वारा सेवित वैजयंतपुर के समीपवर्ती मैदान में पहुँचे ॥10-11॥ तदनंतर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओं का समूह अंधकार से आवृत हो गया और आकाशरूपी आंगन नक्षत्रों के समूह से व्याप्त हो गया तब वे क्षुद्र मनुष्यों को भय उत्पन्न करने वाले पश्चिमोत्तर दिग्भाग में नगर के समीप हो किसी इच्छित स्थान में ठहर गये ॥12-13॥ अथानंतर इस नगर का राजा पृथिवीधर नाम से प्रसिद्ध था उसकी रानी का नाम इंद्राणी था जो कि स्त्रियों के योग्य समस्त गुणों से सहित थी ॥14॥ उन दोनों के वनमाला नाम की अत्यंत सुंदरी पुत्री थी, वनमाला बाल्य अवस्था से ही लक्ष्मण के गुण श्रवणकर उनमें अनुरक्त थी ॥15॥ इसके माता-पिता ने सुना कि राम अपने पिता दशरथ के दीक्षा लेने के समय कथित वचनों का पालन करने के लिए लक्ष्मण के साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इंद्रनगर के राजा के बालमित्र नामक अत्यंत योग्य सुंदर पुत्र के लिए वनमाला देने का निश्चय किया ॥16-17॥ जिसके हृदय में लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमाला ने जब यह समाचार सुना तो वह विरह से भयभीत हो इस प्रकार चिंता करने लगी ॥18॥ कि वस्त्र से कंठ लपेट वृक्ष पर लटककर भले ही मर जाऊँगी परंतु अन्य पुरुष के साथ समागम को प्राप्त नहीं होऊंगी॥ 19॥ मैं किसी कार्य के बहाने सायंकाल के समय वन में जाकर आज ही निर्विघ्नरूप से मृत्यु प्राप्त करूंगी॥ 20॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रि को जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणों में पड़ती हूँ । जाकर रात्रि से कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिन को वर्ष के समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥21-22॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करने वाली वह बाला, सूर्यास्त होने पर माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर उत्तम रथ पर सवार हो सखी जनों के साथ वैभव पूर्वक वन देवी की पूजा करने के लिए गयी ॥23-24॥

भाग्य की बात कि जिस रात्रि में तथा वन के जिस प्रदेश में राम, सीता और लक्ष्मण पहले से जाकर ठहरे थे उसी रात्रि में उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुंची । 25॥ वहाँ उसने वन देवता की पूजा की । तदनंतर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशंक हो सो गये तब जिसके पैर रखने का भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वन की मृगी की नाईं उस शिविर से निकल निर्भय हो आगे चली ॥26-27॥ तत्पश्चात् वनमाला के शरीर से निकलने वाली अत्यंत मनोहर सुगंध को सूंघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे॥

28॥कि यहाँ कोई ज्योति की रेखा के समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥29॥बहुत भारी शोक के भार से इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करने का दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥30॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तु के न मिलने से आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ॥31॥ इस प्रकार विचारकर कौतुक-भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्ष के नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्पवृक्ष के नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥32॥ तदनंतर जिसकी चाल हंसों के समान थी, : जो स्तनों के भार से झु की हुई-सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चंद्रमा के समान था तथा जिसका उदर अत्यंत कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्ष के नीचे पहुंची ॥33॥ उसे उस प्रकार की देख लक्ष्मण ने विचार किया कि इसके शब्दों से ठीक-ठीक मालूम तो करूं कि इसे किससे कार्य है ? ॥34॥ तदनंतर जल के समान स्वच्छ वर्ण वाले वस्त्र से फांसी बनाकर वह कन्या योगियों का भी मन हरण करने में समर्थ वाणी से इस प्रकार कहने लगी कि अहो, इस वृक्ष के निवासी देवताओ ! सुनिए, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझ पर प्रसन्नता कीजिए ॥35-36॥ कुमार लक्ष्मण इस वन में अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्नपूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओर से उनसे कहें ॥37॥ कि तुम्हारे विरह में कुमारी वनमाला अत्यंत दुखी होकर तथा तुम्हीं में मन लगाकर मृत्युलोक को प्राप्त हुई है ॥38॥ वटवृक्ष पर कपड़े से अपने आपको टाँग कर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशांगों को हमने देखा है ॥39॥ और यह कह गयी है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्म में आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्म में प्रसन्नता करने के योग्य हो ॥40॥

इतना कहकर वह ज्यों ही शाखा पर फांसी बांधती है त्यों ही घबड़ाये हुए लक्ष्मण ने उसका आलिंगन कर यह कहा कि हे मूर्खे ! यह कंठ तो मेरी भुजा के आलिंगन के योग्य है, हे सुमुखि ! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सज़ा रही है ? ॥41-42॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परमसुंदरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुझे विश्वास न हो तो जैसा सुन रखा हो वैसा देख लो॥ 43॥ इस प्रकार कहकर सांत्वना देने में निपुण लक्ष्मण ने जिस प्रकार कोई कमल से फेन को दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फांसी छीन ली ॥44॥ तदनंतर नेत्रों को चुराने वाले रूप से सुशोभित लक्ष्मण को मंथर दृष्टि से देखकर वह कन्या लज्जा से युक्त हो गयी॥ 45॥ नव समागम के कारण कुछ-कुछ काँपती हुई वनमाला परम आश्चर्य को प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥46॥ कि क्या मेरे संदेश वचनों से परम दयालुता को प्राप्त हुई वनदेवियों ने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ?॥47॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रो के हैं ऐसे ये प्राणनाथ देवयोग से ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥48॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीना को धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मण का आलिंगन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥49॥

तदनंतर इधर कोमल तथा महासुगंधित फूलों की उत्कृष्ट शय्यापर पड़े राम को जब निद्रा हटी तो उन्होंने लक्ष्मण को ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मण को न देखकर वे उठे और सीता से पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ?॥50-51॥ सायंकाल के समय तो वह फूल तथा पत्तों से हमारी शय्या कर यहीं पास में सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥52॥ सीता ने उत्तर दिया कि हे नाथ! आवाज देकर बुलाइए । तब राम ने यथाक्रम से उच्च वाणी में इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहाँ चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहाँ हो, शीघ्र आवाज देओ ॥53-54॥ राम की आवाज सुन लक्ष्मण ने हड़बड़ाकर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमाला के साथ अग्रज के समीप आ पहुँचे ॥55॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चंद्रमा का उदय हो चुका था और कुमुदों के गर्भ से मिलकर सुगंधित तथा शीतल वायु बह रही थी॥56॥ तदनंतर जिसने कमल के समान सुंदर हाथों से अंजलि बाँध रखी थी, वस्त्र से जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जा से जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्य को जानती थी तथा परम विनय को धारण कर रही थी ऐसी वनमाला ने आकर राम तथा सीता के चरणयुगल को नमस्कार किया॥ 57-58॥ तदनंतर लक्ष्मण को स्त्री सहित देख सीता ने कहा कि हे कुमार ! तुम ने तो चंद्रमा के साथ मित्रता कर ली ॥59॥राम ने सीता से कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ? इसके उत्तर में सीता ने कहा कि हे देव ! मैं समान प्रवृत्त चेष्टा से जानती हूँ सुनिए॥ 60॥ जिस समय चंद्रमा चंद्रिका **अर्थ**ात् चांदनी के साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बाला के साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चंद्रमा के साथ मित्रता है ॥61॥जैसा आप समझ रही हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जा से कुछ नतानन हो पास ही में बैठ गये॥ 62॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनंद से विभोर थे, जिनके मुखरूपी चंद्रमा अत्यंत प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्य से सहित थे, देवों के समान कांति के धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गयी थी ऐसे वे सब, स्थान की अनुकूलता को प्राप्त मंद

हास्य युक्त कथाएं करते हुए वहाँ सुख से विराजमान थे ॥63-64॥ यहाँ समय पर जब वनमाला की सखियाँ जागी तो शय्या को सूनी देख भयभीत हो गयीं ॥65॥ तदनंतर जिसके नेत्र आंसुओं से व्याप्त थे तथा जो वनमाला की खोज के लिए छटपटा रही थीं ऐसी उन सखियों की हाहाकार से योद्धा जाग उठे ॥66॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो घोड़ों पर आरूढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथ में ले पैदल ही चलने के लिए तैयार हुए ॥67॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबड़ा रहे थे, जो भय और प्रीति से युक्त थे तथा जो शीघ्र गति में वायु के बच्चों के समान जान पड़ते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओं को आच्छादित कर दौड़े ॥68।।

तदनंतर कितने ही योद्धाओं ने वनमाला के साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देखकर शीघ्रगामी वाहनों से चलकर शेष जनों के लिए इसकी खबर दी ॥69॥ तदनंतर समस्त समाचार को ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाओं ने पृथिवीधर राजा के लिए भाग्य वृद्धि की सूचना दी ॥70॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो! उपायारंभ से रहित होने पर भी आज आपके नगर में स्वयं ही महारत्नों का खजाना प्रकट हुआ है ॥71॥ आज आकाश से बिना मेघ के ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना, बखेरना आदि क्रियाओं के बिना ही खेत से धान्य उत्पन्न हुआ है ॥72॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगर के निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़ने की इच्छा करने वाली वनमाला के साथ उसका मिलाप हो गया है॥ 73॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यंत प्रिय हैं इंद्राणी सहित इंद्र के समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥74 । इस प्रकार कहने वाले भृत्यों के प्रिय सूचक वचनों से जिसके हृदय में सुख का झरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवी पर हर्षातिरेक से क्षण-भर के लिए मूर्च्छित हो गया ॥75॥ तदनंतर सचेत होने पर जो परम हर्ष को प्राप्त था तथा जिसका मुखरूपी चंद्रमा मंद मुसकान से धवल हो रहा था ऐसे राजा ने उन भृत्यों के लिए बहुत भारी धन दिया ॥76॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्री का बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥77॥ समस्त जीवों को धन, इष्ट का समागम तथा जो भी आत्म-सुख का कारण है वह सब पुण्य योग से प्राप्त होता है॥78॥जिसके बीच में सौ योजन का भी अंतर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवों को मुहूर्त मात्र में प्राप्त हो जाती है ॥79॥इसके विपरीत जो प्राणी पुण्य से रहित हैं वे निरंतर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथ में आयी हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है॥ 80॥ अटवियों के बीच में, पहाड़ की चोटी पर विषम मार्ग तथा समुद्र के मध्य में भी पुण्यशाली मनुष्यों को इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥81॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्री को उठाया और उसके लिए हर्षातिरेक के कारण कष्ट से निकलने वाले वचनों के द्वारा सब समाचार कहा॥82॥ उस सुमुखी ने कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ इस आशंका से बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसंवेद्य सुख को प्राप्त हुई॥ 83॥

तदनंतर जब स्त्री के ओठ के समान लाल-लाल कांति को धारण करने वाला सूर्य उदित हो रहा था तब प्रेम से भरा, सर्व बंधुजनों से सहित, परम कांति से युक्त और परम प्रिय समागम देखने के लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथी पर सवार हो चला॥84-85॥ आठों पुत्रों से सहित वनमाला की माता भी मनोहर पालकी पर सवार हो पति के मार्ग में चली॥ 86॥इसके पीछे राजा की आज्ञानुसार सेवकों के द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गंध, माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे॥87॥ ।

तदनंतर दूर से ही विकसित नेत्र कमलों के धारी राम को देखकर राजा पृथिवीधर हाथी से उतरकर आदर के साथ उनके पास पहुँचा॥88॥ तत्पश्चात् विधि-विधान के वेत्ता तथा शुद्ध हृदय के धारक राजा ने बड़े प्रेम से राम-लक्ष्मण का आलिंगन कर उनसे तथा सीता से कुशल समाचार पूछा॥89॥ जिसके नेत्रों से स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकार का आचार जानने में निपुण थी ऐसी रानी ने भी राम-लक्ष्मण से कुशल पूछकर सीता का आलिंगन किया ॥90॥ उन सबने भी राजा-रानी का यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषय में अतिशय निपुणता को प्राप्त थे ॥91॥

तदनंतर जो वीणा, बांसुरी, मृदंग आदि के शब्द से सहित था, जो क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र की तुलना धारण कर रहा था और जिसमें वंदीजनों के द्वारा उच्चारित विरुदावली का नाद गूंज रहा था ऐसा संगीत का शब्द होने लगा ॥92॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनों का सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करने वाले मनुष्यों के चरण निक्षेप से जिसमें भूतल कांप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव संपन्न हुआ ॥93॥ तुरही के शब्द से जिनमें प्रतिध्वनि गूंज रही थी ऐसी दिशाएं हर्ष से ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रही थीं ॥94॥ अथानंतर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शांत हुआ तब उन्होंने स्नान, भोजन आदि शरीर संबंधी सब कार्य किये ॥15॥

तदनंतर जो हाथी-घोड़ों पर बैठे हुए सैकड़ों सामंतों से घिरे थे, मृग तुल्य पैदल सिपाहियों का बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साह से भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर वंदीजन जिनके आगे मंगल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्षःस्थल हारों से सुशोभित

थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचंदन से लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नाना रत्नों की किरणों के संपर्क से इंद्रधनुष उठ रहे थे, चंद्र और सूर्य के समान जिनके आकार थे,, जिनके गुणों का वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेंद्र के समान जिनकी कांति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गले में वरमालाएँ पड़ी थी, सुगंधि के कारण जिनके आस-पास भ्रमरों ने मंडल बाँध रखे थे, जिनके मुख चंद्रमा के समान थे तथा जो विनीत आकार को धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मण ने नगर में प्रवेश किया ॥96-101॥ जिस प्रकार पहले, यक्ष के द्वारा निर्मित नगर में इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधर के नगर में भी वे इच्छानुसार उत्कृष्ट भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥102॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्य से सुसंस्कृत हैं तथा जो सूर्य के समान दीप्ति के धारक हैं ऐसे मनुष्य सघन वनों में पहुंचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणों से युक्त पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं॥ 103 ॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में वनमाला का वर्णन करने वाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥36॥

## राजा अतिवीर्य की दीक्षा

सैंतीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामंडप में सुख से विराजमान थे, पास ही में राम भी सभा को अलंकृत कर रहे थे तथा उन्हीं से संबंध रखने वाली कथा चल रही थी कि इतने में दूर मार्ग से आने के कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजा को प्रणाम कर बैठने के बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥1-2॥ वह पत्र जिसे दिया जा था उसके नाम से अंकित था । राजा ने पत्रवाहक से पत्र लेकर संधि विग्रह को अच्छी तरह जानने वाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥3॥वह लेखक सब लिपियों के जानने में निपुण था, राजा के नेत्र द्वारा सम्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला । एक बार स्वयं बांचा और फिर उच्च स्वर से इस प्रकार बांचकर सुनाया ॥4॥ उसमें लिखा था कि जो इंद्र के समान उदार प्रभाव का धारक तथा बुद्धिमान् है, लक्ष्मीमान् है तथा नम्रीभूत राजाओं के लिए सुख देने वाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है, मंगलरूप है ॥5 ॥जो नागराज **अर्थ**ात् सुमेरु के समान (उदार) है, महायश का धारी है, शस्त्र में निपुण है, राजाधिराजपना से आलिंगित है, जिसने अपने प्रताप से शत्रुओं को वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवी को अनुरंजित कर लिया है, उगते हुए सूर्य के समान जिसकी कांति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्यों में महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नंद्यावर्तपुर से विजयनगर में वर्तमान राजा पृथिवीधर को लेख में लिखित अक्षरों से कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवीतल पर मेरे जो सामंत हैं वे खजाना और सेना के साथ मेरे पास हैं ॥6-10॥ जिनके हाथ में नाना प्रकार के शस्त्र देदीप्यमान है तथा जो एक सदृश विभूति के धारक हैं ऐसे मलेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरंग सेना के साथ यहाँ आ गये हैं ॥11 ॥जो महाभोगी और महाप्रतापी हैं तथा जिसको मन हमारे गुणों से आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अंजनगिरि के समान आभा वाले आठ सौ-सौ हाथियों और वायु के पुत्र के समान चपल तीन हजार घोड़ों के साथ आज हमारे पास आ गया है ॥12-13॥बहुत भारी उत्साह के देने वाले तथा नीति-निपुण बुद्धि के धारक जो मृगध्वज, रणोमि, कलभ और केसरी नाम के अंग देश के राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोड़ों से समावृत हो आ पहुंचे हैं ॥14-15॥ जो छलपूर्ण युद्ध करने में निपुण है, नीतिशास्त्र का पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करने वाला है तथा युद्ध की सब गति विधियों का जानकार है ऐसे पंचाल देश के राजा को उत्साहित करता हुआ पौंड्र देश का परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ों के साथ आ गया है ॥16-17॥ जिस प्रकार रेवा नदी के प्रवाह में सैकड़ों नदियां आकर मिलती हैं इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे हैं ऐसा मगधदेश का राजा भी पौंड्राधिपति से भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥18॥ वज्र को धारण करने वाला राजा सुकेश, मेघ के समान कांति को धारण करने वाले आठ हजार हाथियों और जिसका अंत पाना कठिन है ऐसी घोड़ों की सेना के साथ आ पहुँचा है ॥19॥ जो इंद्र के समान पराक्रम के धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधु भद्र और नंदन नामक भवनों के राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥20॥ जो अवार्य वीर्य से संपन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वंग देश का राजा सिंहरथ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेना से सुशोभित होते हुए आये हैं ॥21॥ वत्सदेश का राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ों के साथ आया है ॥22॥ अंबष्ठ देश का राजा प्रोष्ठिल और सुवीर देश का स्वामी धीर मंदिर ये दोनों असंख्यात सेना के साथ आ पहुँचे हैं ॥

23 ॥तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवों की उपमा धारण करने वाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवण कर सेनाओं के साथ आ चुके हैं ॥24॥इन सब राजाओं को साथ लेकर मैंने अयोध्या के राजा भरत के प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखने के बाद तुरंत ही यहाँ आना चाहिए । तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्य के प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे । जिस प्रकार किसान वर्षा को बड़े आदर से देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदर से देखते हैं॥25-26॥ इस प्रकार पत्र बाँचे जाने पर राजा पृथिवीधर जब तक कुछ नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धि के धारक दूत ! तुझे मालूम है कि राजा अतिवीर्य के उस तरह रुष्ट होने में भरत की कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरत में विरोध होने का क्या कारण है ? ॥27-28॥ इस प्रकार लक्ष्मण के पूछने पर उस वायुगति नामक दूत ने कहा कि मैं चूंकि राजा का अत्यंत अंतरंग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥29॥ इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जाने पर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥30॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्य ने श्रुतबुद्धि नाम का निपुण दूत भरत के पास भेजा, सो उसने जाकर भरत से कहा कि जो इंद्र के समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नय के प्रयोग करने में अत्यंत निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्य का मैं दूत हूँ ॥31-32॥ जो मनुष्यों में सिंह के समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रुरूप मृग अपनी वसतिकाओं में निद्रा को प्राप्त नहीं होते ॥33॥ चार समुद्र ही जिसकी कटि मेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी स्त्री के समान बड़ी विनय से जिसकी आज्ञा का पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओं का आचरण करने वाला है तथा सब ओर से जिसकी आत्मा अत्यंत बलिष्ठ है ऐसे राजा पृथिवी पर मेरे मुख में स्थापित किये हुए अक्षरों से आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्र के उस पार भाग जा ॥34-36॥
तदनंतर जिसका शरीर क्रोध से व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानल के समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणी से बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यता को उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़ने की बात कही सो अभ्युदय को धारण करने वाले राजा भरत अयोध्या को मंत्रियों पर छोड़ क्षुद्र मनुष्यों को वश करने के लिए अभी हाल समुद्र के पार जाते हैं ॥37-39॥ परंतु मैं तुझसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी के प्रति गधे की गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरत के प्रति तेरे स्वामी की यह गर्जना बिल्कुल ही उचित नहीं है ॥40॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्यु को सूचित करते हैं । जान पड़ता है कि वह उत्पातरूपी भूत से ग्रस्त है अथवा वायुरोग के वशीभूत है ॥41॥ अथवा वैराग्य के योग से पिता राजा दशरथ के तपोवन के लिए चले जाने पर दुष्टों से घिरा तुम्हारा राजा ग्रह से आक्रांत हो गया है ॥42॥ यद्यपि मोक्ष की आकांक्षा से पितारूपी अग्नि शांत हो चुकी है तथापि मैं उस अग्नि से निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजा को अभी भस्म करता हूँ ॥43॥ बड़े-बड़े हाथियों के रुधिररूपी पंक से जिसकी गरदन के बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंह के शांत हो जाने पर भी उसका बच्चा हाथियों का विघात करता ही है ॥44॥ इस प्रकार जलते हुए बांसों के बड़े वन के समान भयंकर वचन कहकर तेज से समस्त सभा को ग्रसता हुआ शत्रुघ्न जोर से हंसा ॥45॥ और बोला कि बयाने के समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूत का तिरस्कार शीघ्र ही किया जाये ॥46॥ शत्रु के इस प्रकार कहते ही क्रोध से भरे योद्धाओं ने उस दूत के दोनों पैर पकड़कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्ते के समान काय-काय करने लगा ॥47॥ इस तरह नगरी के मध्य तक घसीटकर उसे छोड़ दिया । तदनंतर दुःखी दुर्वचनों से जला और धूलि से धूसर हुआ वह दूत वहाँ से चला गया ॥48।।
तदनंतर जो समुद्र के समान गंभीर थे, परमार्थ के जानने वाले थे तथा जो दूत के पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर कुछ क्रोध को प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मंत्रियों को साथ ले, शत्रु का प्रतिकार करने के लिए नगरी से बाहर निकले ॥49-50॥ वह सुनकर मिथिला का राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरत से आ मिला तथा भक्ति में तत्पर रहने वाले सिंहोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥51 ॥इस प्रकार जो पिता के समान प्रजा की रक्षा करते थे, तथा जो न्याय-नीति में निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेना से युक्त हो नंद्यावर्त नगर की ओर चले ॥52॥
उधर अपने अपमान को दिखाने वाले दूत ने जिसे अत्यंत कुपित कर दिया था, जो क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान भयंकर था, जो अग्नि के समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्यपूर्ण कार्य करने वाले सामंत जिसे घेरे थे ऐसे राजा अतिवीर्य ने भी भरत के प्रति चढ़ाई करने का निश्चय किया ॥53-54 ॥तदनंतर ललाट से तरुण चंद्रमा की आकृति के धारण करने वाले राम ने वनमाला के पिता राजा

पृथिवीधर को संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिता के समान बड़े भाई को अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्य का ऐसा करना उचित ही है ॥55-56॥तदनंतर मैं अभी आता हूँ इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधर ने दूत को तो विदा किया और राम के साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि अतिवीर्य का निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छल से जाता हूँ । राजा पृथिवीधर के इस प्रकार कहने पर राम ने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगों को यह कार्य अज्ञात रूप से चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! बड़े आडंबर की आवश्यकता नहीं है ॥57-59॥ आप सुचारु रूप से अपना काम करते हुए यहीं रहिए में आपके पुत्र तथा जवाई के साथ शत्रु के सम्मुख जाता है ॥6॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण सीता के साथ रथ पर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधर के पुत्रों को साथ ले नंद्यावर्तपुरी की ओर चले तथा वेग से चलकर नगरी के निकट जाकर ठहर गये ॥61-62 ॥वहाँ स्नान, भोजन आदि शरीर संबंधी कार्य कर चुकने के बाद राम, लक्ष्मण तथा सीता की पृथिवीधर के पुत्रों के साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥63॥ सलाह के बीच सीता ने राम से कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहने का अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्य के रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥64॥तथापि हे देव ! हित की इच्छा से प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंश की लता से उत्पन्न हुआ मणि भी तो ग्राह्य होता है ॥65॥ सीता ने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यंत बलवान, बड़ी भारी सेना से सहित तथा क्रूरतापूर्ण कार्य करने वाला है सो भरत के द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥66॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतने का उपाय सोचिए क्योंकि सहसा प्रारंभ किया हुआ कार्य संशय में पड़ जाता है ॥ 67॥यद्यपि तीन लोक में भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मण के असाध्य हो किंतु जो कार्य प्रकृत कार्य को न छोडकर प्रारंभ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥68॥तदनंतर लक्ष्मण ने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो, तुम कल ही अणुवीर्य ( अतिवीर्य) को रण में मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥69॥ राम की चरण-धलि से जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे सामने देव भी खड़े होने के लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्य की तो बात ही क्या है ? ॥70॥ अथवा कुतूहल से भरा सूर्य जब तक अस्त नहीं होता है तब तक आज ही अणुवीर्य की मृत्यु देख लेना ॥71॥ तरुण लक्ष्मण के गर्व से फूले राजा पृथिवीधर के पुत्रों ने भी प्रतिध्वनि के समान यही जोरदार शब्द कहे ॥72॥

तदनंतर धैर्य से समुद्र को कुल्ले के समान तुच्छ करनेवाले महामना राम ने भृकुटि के भंग से पृथिवीधर के पुत्रों को रोककर लक्ष्मण से कहा कि हे तात ! सीता ने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाये इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है॥ 73-74 ॥उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूंकि अतिवीर्य बल से उद्धत है अतः भरत के द्वारा रणांगण में वश करने के योग्य नहीं है ॥75॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानल के समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥76 ॥यद्यपि भरत घोड़ों से समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियों से समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विंध्याचल का कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्य का कुछ नहीं कर सकता ॥77॥ वह भरत को जीत लेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है अथवा दो में से किसी की जीत होगी पर उससे प्राणियों का विनाश तो होगा ही ॥78॥ जब बिना कारण ही दो व्यक्तियों में परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्ष के मनुष्यों का विवश होकर क्षय होता ही है ॥79॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्य ने भरत को वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंश का कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥80॥ इस विषय में संधि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानी शत्रुघ्न ने लड़कपन के कारण अत्यंत उद्धत शत्रु के बहुत दोष अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूति के साथ मिलकर शत्रुघ्न ने अंधेरी रात में छापा मार-मारकर उसके बहुत से निद्रा निमग्न वीरों को तथा जिन पर चढ़ना कठिन था और जिनसे मद के निर्झर झर रहे थे ऐसे बहुत□से हाथियों को मारा । पवन के समान वेगशाली चौंसठ हजार घोड़े और अंजनगिरि के समान आभा वाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगर के बाहर स्थित थे, तीन दिन तक चुराकर भरत के पास ले गया सो क्या लोगों के मुंह से तुमने सुना नहीं है ? ॥81-85॥

कलिंगाधिपति अतिवीर्य ने जब देखा कि बहुत से राजाओं को गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्प्राण हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेना का अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोध को प्राप्त हुआ । अब वह सब ओर से सावधान है और बुद्धि में वैरी से बदला लेने का विचार कर रण की प्रतीक्षा कर रहा है ॥86-87॥ भरत मानियों में श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतने में एक युद्धरूपी उपाय को छोड़कर अन्य उपाय प्रयोग में नहीं लाना चाहता ॥88 इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीत नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुझ में तो सूर्य को भी गिराने की शक्ति है किंतु भरत इसी प्रदेश में विद्यमान है **अर्थ**ात् यहाँ से बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्या से निकलकर प्रकट होना उचित नहीं है ॥89-90॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्यों को आश्चर्य

में डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरसकर गये हुए रात्रि के मेघों के समान अत्यंत प्रशंसनीय हैं ॥11॥ इस प्रकार सलाह करते-करते राम को, अतिवीर्य के वश करने का उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाह का काम समाप्त हो गया ॥92॥
अथानंतर आत्मीय जनों के साथ मिले हुए राम ने, प्रमादरहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुख से रात्रि व्यतीत की ॥93॥ दूसरे दिन डेरे से निकलकर राम ने आर्यिकाओं से सहित जिनमंदिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति से उसमें प्रवेश किया ॥94॥ भीतर प्रवेश कर जिनेंद्र भगवान् तथा आर्यिकाओं को नमस्कार किया । वहाँ आर्यिकाओं की जो वरधर्मा नाम की गणिनी थी उसके पास सीता को रखा तथा सीता के पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े । तदनंतर अतिशय चतुर राम ने अपने आपका नृत्यकारिणी का वेश बनाया और साथ ही अत्यंत सुंदररूप को धारण करने वाले लक्ष्मण आदि ने भी स्त्रियों के वेष धारण किये ॥95-96 ॥तत्पश्चात् जिनेंद्र भगवान् की मंगलमयी पूजा कर सब लोगों के साथ राम ने लीला पूर्वक राजमहल के द्वार की ओर प्रस्थान किया ॥97॥ इंद्र नर्तकी की तुलना करने वाली उन नर्तकियों को देखकर आश्चर्य से भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥98॥तदनंतर उत्तम चेष्टाओं और सुंदर आभूषणों को धारण करने वाली वे नृत्यकारिणी सब लोगों के नेत्र और मन को हरती हुईं राजमहल के द्वार पर पहुंचीं ॥99॥
तदनंतर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारती की गंभीर तान खींचने में आसक्त थीं ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियों ने भक्ति में तत्पर रहने वाली हम सब चौबीस तीर्थंकरों को भक्ति पूर्वक नमस्कार करती हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-लेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणों में प्रतिपादित वस्तुओं का गाना शुरू किया ॥100-101 ॥उन नृत्यकारिणियों की अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणों से खिंचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानी में गुण **अर्थ**ात् रस्सी से खिंचा काष्ठ का भार खींचने वाले के पास आता है ॥102॥तदनंतर फिर की लेकर सुंदर अंगों को मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजा के सम्मुख गयी ॥103॥वहाँ उसका मंद-मंद मुसकान के साथ देखना, भौंहों का चलाना, विज्ञ मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुंदर स्तनों का कंपाना, धीमी-धीमी सुंदर चाल से चलना, स्थूल नितंब का मटकाना, भुजारूप लताओं का चलाना, उत्तम लीला के साथ हस्तरूपी पल्लवों का किराना, जिन में शीघ्रता से स्पर्श कर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रता से नृत्य की अनेक मुद्राओं का बदलना, केशपाश का चलाना, कटि की अस्थि का हिलाना, तथा नाभि आदि शरीर के अवयवों का दिखलाना आदि काम के बाणों से समस्त मनुष्य ताड़े गये थे॥104-107 । वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूच्छंनाओं, स्वरों तथा ग्रामों-स्वरों के समूह से सखियों के स्वर को अपने स्वर में मिलाकर बहुत सुंदर गा रही थी ॥108॥
वह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थान में ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थान में अपने नेत्र लगा देती थी ॥109॥सारी सभा के नेत्र उसके रूप से, कान मधुर स्वर से और मन, रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बंध गये थे ॥110॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामंत लोग उन नर्तकियों को पुरस्कार देते-देते अलंकार रहित हो गये थे उनके शरीर पर केवल पहनने के वस्त्र ही बाकी रह गये थे॥111॥गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन-वादन से सहित उस नृत्यकारिणी का वह नृत्य देवों को भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल बात थी ऐसे अन्य मनुष्यों की तो बात ही क्या थी ? ॥112॥ इस तरह संक्षेप से ऋषभ आदि तीर्थंकरों के चरित्र का कीर्तन कर जब उस नर्तकी ने समस्त सभा को अत्यंत वशीभूत कर लिया तब वह संगीत से परम दीप्ति को धारण करती हुई राजा को इस प्रकार का असह्य उलाहना देने के लिए तत्पर हुई ॥113-114॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीति से रहित है, किसने तुझे इस कार्य में लगाया है ? ॥115 ॥जिस तरह शृंगाल सिंह को कुपित करता है उस तरह तूने शांत चित्त भरत को अपना नाश करने के लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥116॥इतना सब होने पर भी यदि तुझे अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनय को धारण करता हुआ जाकर भरत को प्रसन्न कर ॥117॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुल में उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ा की भूमि स्वरूप तेरी ये स्त्रियाँ विधवा न हों ॥118 ॥तुझ से रहित होने पर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चंद्रमा से रहित ताराओं के समान निश्चित ही शोभित नहीं होंगी ॥119॥ इसलिए अशुभ ध्यान में जाने वाले अपने चित्त को शीघ्र ही लौटा, उठ, जा और मान रहित हो भरत को नमस्कार कर । तू बुद्धिमान् है ॥120॥अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायेगा इसमें संशय नहीं है ॥121॥अनरण्य के पोता भरत के जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्य के देदीप्यमान रहते चंद्रमा की क्या शोभा है ? ॥122॥ जिस प्रकार कांति के लोभी तथा कमजोर पंखों वाले मूर्ख शलभ का मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हम लोगों के रूप पर आसक्त तथा खोटे सहायकों से युक्त तुझ मूढ़ का आज मरण आ पहुँचा है॥123॥तू जल के साँप के समान तुच्छ

होकर भी गरुड़ के समान जो महात्मा राजा भरत हैं उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥124।।
तदनंतर नृत्यकारिणी के मुख से अपना तर्जन और भरत की प्रशंसा सुनकर राजा अतिवीर्य सभा के साथ लाल-लाल नेत्रों का धारक हो गया **अर्थ**ात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥125 ॥जिसका मन अत्यंत रूक्ष हो गया था, जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रकुटिरूपी तरंगों से व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्र की वेला के समान क्षोभ को प्राप्त हुई ॥126॥क्रोध से काँपते हुए अतिवीर्य ने ज्यों ही तलवार उठायी त्यों ही नर्तकी ने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उछलकर तलवार छीन ली और सब राजाओं के देखते-देखते अतिवीर्य को जीवित पकड़कर मजबूती से उसके केश बाँध लिये॥127-128॥ नर्तकी ने तलवार उठाकर राजाओं की ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह निःसंदेह मेरे द्वारा होगा ॥129॥यदि आप लोगों को अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्य का पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषण से युक्त हो शीघ्र ही भरत के चरणों में नमस्कार करो ॥130॥ जो लक्ष्मी से युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणों का समूह है, जो लोगों को परम आनंद का देने वाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्य से निर्मुक्त होकर परम विकास को प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यंत आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथ के वंश का चंद्रमा भरत जयवंत है ॥ 131-132॥
तदनंतर लोगों के मुख से इस प्रकार के शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इंद्रजाल के समान है ॥133॥ जिसकी नृत्यकारिणियों की यह ऐसी चेष्टा है उस भरत की शक्ति का क्या ठिकाना ? वह तो इंद्र को भी जीत लेगा ॥134 ॥न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करने वालों पर वह अवश्य ही मार्दवभाव को प्राप्त होगा ॥135 ॥तदनंतर राम अतिवीर्य को पकड़ हाथी पर सवार हो अपने परिजन के साथ जिनमंदिर गये ॥136॥ वहाँ उन्होंने हाथी से उतरकर बड़े हर्ष से मंदिर के भीतर प्रवेश किया और मंगलमय शब्दों का उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥137 ॥मंदिर में सर्व संघ के साथ जो वरधर्मा नाम की गणिनी ठहरी हुई थीं राम ने सीता के साथ संतुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥138 । यहाँ राम ने अतिवीर्य को लक्ष्मण के लिए सौंप दिया और वे उसका वध करने के लिए उद्यत हुए तब सीता ने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्राय के धारी हो इसकी ग्रीवा मत छेदो और न जोर से इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यता को प्राप्त होओ ॥139-140 ॥इस बेचारे का क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मों की सामर्थ्य से आपत्ति को प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनता को धारण करने वाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥141॥
जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्य को भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओं का पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥142॥ हे भद्र ! इसे आपने वश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्य को जानता हुआ यह अब कहाँ जायेगा ? ॥ 143 ॥प्रबल शत्रुओं को पकड़कर तदनंतर संधि के अनुसार सम्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकाल की मर्यादा है ॥144॥ सीता के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने हस्तकमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥ 145॥हे स्वामिनि, आपकी आज्ञा से इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसाद से ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओं का भी पूज्य हो जाये ॥146॥
इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मण के शांत होने पर प्रतिबोध को प्राप्त हुआ अतिवीर्य राम की स्तुति कर कहने लगा ॥147॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सो बड़ा भला किया । मेरी जो बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आज उत्पन्न हो गयी ॥148॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकार को धारण करने वाले दयालु राम ने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दीनता को प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियों से सहित संपदाएं महापुरुषों को ही प्राप्त होती हैं ॥149-150॥अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इस क्रमागत नंद्यावर्त नगर में भरत का आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥151॥
तदनंतर अतिवीर्य ने कहा कि अब मुझे राज्य की इच्छा नहीं है । राज्य ने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्था में लगना चाहता हूँ ॥ 152॥ उत्कट मान को धारण करते हुए मैंने हिमवान् से लेकर समुद्र तक की सारी पृथिवी जीतने की इच्छा की थी सो मैं अपने मान को उखाड़कर निःसार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्व को धारण करता हुआ अन्य को नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥153-154॥ जिन महापुरुषों ने इस छह खंड की रक्षा की है वे भी संतोष को प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गांवों से कैसे संतुष्ट हो सकता हूँ ? ॥155॥ जंमांतर में किये हुए इस कर्म की बलवत्ता तो देखो कि जिस प्रकार राह चंद्रमा को कांतिरहित कर देता है उसी प्रकार इसने मुझे कांति रहित-निस्तेज कर दिया ॥156 ॥जिस मनुष्य पर्याय के लिए देव भी चर्चा करते हैं औरों की तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्याय को मैंने

अब तक निःसार खोया ॥157॥ अब मैं दूसरा जन्म धारण करने से भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आप से प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥158 ॥इस प्रकार कहकर परिजन सहित राम से क्षमा कराकर सिंह के समान शूरवीरता को धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराज के पास गया और अंजलि युक्त शिर से नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मैं दैगंबरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥159-160॥ एवमस्तु इस प्रकार आचार्य के कहते ही वह वस्त्रादि त्यागकर तथा केश लोंचकर महाव्रत का धारी हो गया ॥161॥ आत्मा के **अर्थ** में तत्पर, तथा राग-द्वेष आदि परिग्रह से रहित होकर वह धीर-वीर पृथिवी में विहार करने लगा । विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥162 ॥सिंह आदि दुष्ट जानवरों से युक्त सघन वनों तथा पर्वतों की गुफाओं में वह निर्भय होकर निवास करता था ॥163॥ जिसने समस्त परिग्रह की आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्र का भार धारण किया था, जो उत्तम शील से युक्त था, नाना प्रकार के तप से जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्य को नमस्कार करो ॥164॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणों से जो सहित थे, दिशाएँ हो जिनके अंबर-वस्त्र थे, मुनियों के अट्ठाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओं को हरने के लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्ति के योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्य को नमस्कार करो ॥165॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनि के इस उत्कृष्ट चरित को जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह सभा के बीच बुद्धि को प्राप्त होता है तथा सूर्य के समान प्रभा को धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥166॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध , रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में राजा अतिवीर्य की दीक्षा का वर्णन करनेवाला सैंतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥37॥

## जितपद्मा

अड़तीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर न्याय के वेत्ता श्रीराम ने अतिवीर्य के पुत्र विजयरथ का उसके पिता के पद पर अभिषेक किया ॥1॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविंदा की पुत्री अपनी रत्न माला नामक बहन लक्ष्मण के लिए देनी कही सो राम ने उसे एवमस्तु कहकर स्वीकृत किया । रत्नमाला को पा, मानो लक्ष्मी ही गोद में आयी है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥2-3॥ तदनंतर लक्ष्मण आदि से सहित राम, जिनेंद्र भगवान् की आश्चर्य दायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधर के विजयपुर नगर वापस आये ॥4॥ नर्तकी के पकड़ने के कारण राजा अतिवीर्य ने दीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरत ने मना कर कहा ॥5॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयों को छोड़कर परम शांति को प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महा धन्य है । उसकी तू क्या हंसी करता है ? ॥6॥ जो देवों के लिए भी दुर्लभ है ऐसा तप का प्रभाव देख । जो हमारा शत्रु था अब मुनि होनेपर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥7॥ इस प्रकार अतिवीर्य को प्रशंसा करता हुआ भरत जब तक बैठा था तब तक अनेक सामंतों के साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँच वह भरत को प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हआ क्षण भर बैठा । तदनंतर उसने रतिमाला की बड़ी बहन विजयसुंदरी नाम की शुभ कन्या जो कि नाना अलंकारों को धारण कर रही थी भरत के लिए समर्पित की । साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टि से बहुत भारी खजाना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥9-10॥ तदनंतर उस अद्वितीय कन्या को पाकर भरत बहुत प्रसन्न हुआ । उसने विजयरथ की इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों को यही रीति है ॥11॥

अथानंतर जिसका मन कौतुक और उत्कंठा से व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ों से अतिवीर्य मुनिराज के दर्शन करने के लिए चला ॥12॥ वह उत्तम भावना से सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहाँ हैं ? और सेवक कहते जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥13।।

तदनंतर जो ऊंचे-नीचे पाषाणों के समूह से अत्यंत दुर्गम था, नाना प्रकार के वृक्षों से व्याप्त था, फूलों की सुगंधि से सुवासित था, और जंगली जानवरों से युक्त था ऐसे जानकार सेवकों के द्वारा बताये हुए पर्वत पर भरत चढ़ा और घोड़े से उतरकर विनीत वेष से शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराज के दर्शन के लिए चला । ॥14-15॥ वे मुनिराज हर्ष-विषाद से रहित थे, शांत इंद्रियों के धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिंह के समान निर्भय थे, घोर तप में स्थित थे, शुभ ध्यान में लीन थे और मुनिपने की लक्ष्मी से

देदीप्यमान थे॥16-17 ॥मुनिराज के दर्शन कर सब लोगों के नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीर में हर्ष से रोमांच निकल आये । सभी ने परम आश्चर्य को प्राप्त हो अंजलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥18 । जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरत ने उन मुनिराज की बड़ी भारी पूजा की, चरणों में प्रणाम किया और फिर भक्ति से नत शरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! जिसने यह जिनेंद्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थ के जानने वाले हो ।।19-20॥ विशुद्ध कूल में उत्पन्न तथा संसार के सार को जानने वाले महापुरुषों की ऐसी ही चेष्टा होती है ॥21 ॥मनुष्य लोक पाकर जिस फल की इच्छा की जाती है हे साधो! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यंत दु:खी हैं ॥22 ॥हे नाथ ! हम लोगों से आपके विषय में जो कुछ अनिष्ट-पापरूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए । आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यता को प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥23 ॥इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्य से कहकर तथा अंजलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हीं से संबंध रखने वाली कथा करता हुआ भरत पर्वत से नीचे उतरा ॥24॥ तदनंतर हजारों सामंत जिसके साथ थे तथा जो विभवरूपी समुद्र के बीच में गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनी के पृष्ठ पर सवार हो अयोध्या के लिए वापस चला ॥25 ॥बड़ी भारी सेना और सामंतों के बीच में स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपों के मध्य में स्थित जंबूद्वीप ही हो ॥26 ॥भरत प्रसन्न चित्त से इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवन का भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगों को अनुरंजित करने वाली वे नर्तकियाँ कहां गयी होंगी? ॥27॥ राजा अतिवीर्य के सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियों ने जो काम किया । अहो ! वह बड़े आश्चर्य की बात है ॥28॥ अथवा समस्त संसार में स्त्रियों की ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चय से यह कार्य जिनशासन को देवियों ने किया है । तदनंतर जो नाना प्रकार के धान्य से युक्त पृथिवी को देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसार में व्याप्त थी, जो परम प्रभाव को धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदय से युक्त था ऐसे भरत ने शत्रुघ्न के साथ अयोध्या में प्रवेश किया ॥29-31 ॥वहाँ विजयसुंदरी के साथ प्रीति को धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान सुख से रहने लगा ॥32॥

अथानंतर सब लोगों को आनंद उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधर के नगर में रहे फिर जानकी के साथ सलाह कर आगे का कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थान पर जाने के लिए उद्यत हुए ॥33-34॥ तदनंतर जो सुंदर लक्षणों से युक्त थी और आंसुओं से भीगे चंचल कनीनिका वाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मण से बोली कि हे प्रिय ! यदि मुझ मंदभाग्या को तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरने से क्यों बचाया था सो कहो ॥35-36 ॥तब लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने! विषाद को प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥37 ॥हे उत्तम विलासों को धारण करने वाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापस न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य जिस गति को प्राप्त होते हैं उसी गति को प्राप्त होऊं ॥38॥ हे प्रिये ! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओं की निंदा करनेवाले अहंकारी मनुष्यों के पाप से लिप्त होऊँ ॥39॥ हे प्राणवल्लभे ! हमें पिता के वचन की रक्षा करनी है और बिना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्र के तट जाना है ॥40॥ वहाँ मलयाचल की उपत्यका में जाकर उत्तम भवन बनाऊंगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुंदर जाँघों वाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥41 ॥इस प्रकार उत्तम शब्दों से युक्त शपथों के द्वारा वनमाला को शांत कर लक्ष्मण राम के पास जा पहुंचे ॥42॥

तदनंतर जब सब लोग सो गये तब किसी के बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीता के साथ नगर से निकलकर आगे के लिए चल पड़े ॥43॥ जब प्रभात हुआ तब नगर को उनसे रहित देख समस्त जन परम शोक को प्राप्त हुए तथा बड़े कष्ट से शरीर को धारण कर सके ॥44॥ वनमाला भी घर को लक्ष्मण से रहित देख बहुत शोक को प्राप्त हुई तथा लक्ष्मण के द्वारा की हुई शपथों का आश्रय ले जीवित रही ॥45॥ तदनंतर महान् धैर्य के धारक राम-लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनंद को प्राप्त हुए । उन्हें देख लोगों को आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥46 ॥वे तरुण स्त्री लताओं के मन और नेत्ररूपी पल्लवों को कामरूपी तुषार से जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥47॥ हे सखि ! इन दोनों ने किस पुण्यात्मा का कुल अलंकृत किया है ? वह कौनसी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनों को जन्म दिया है ? ॥48॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है । यदि ऐसा रूप देवों का होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥49॥ ये सुंदर पुरुष कहाँ से आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनको यह ऐसी रचना कैसे हो गयी ? ॥50॥ जिनके नेत्रकमल के समान तथा मुख चंद्रमा के तुल्य है ऐसे दो पुरुष एक स्त्री के साथ इस मार्ग से जा रहे थे सो हे सखियो ! तुमने देखे ॥51॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हों अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किसलिए धारण कर रही है ? ॥52॥ अयि मूर्खे ! ऐसे मनुष्यों

का रूप बहुत भारी पुण्य के बिना चिरकाल तक देखने को प्राप्त नहीं होता ॥53 ॥इसलिए लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्र को संभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रों को खेद मत प्राप्त करा ॥54॥अरी बाले ! नेत्र और मन को चुराने वाले इन कठोर पुरुषों के देखने से क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥55 ॥इस प्रकार स्त्री जनों को वार्तालाप करने में तत्पर करते हुए शुद्ध चित्त के धारक वे दोनों स्वेच्छा से विहार कर रहे थे ॥56॥ इस प्रकार नाना देशों से व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए वे क्षेमांजलि नाम के परम सुंदर नगर में पहुंचे ॥57 ॥ उस नगर के निकट ही वे मेघ समूह के समान सुंदर एक उद्यान में सुख पूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि सौमनस वन में देव ठहर जाते हैं ॥58॥ वहाँ लक्ष्मण के द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर राम ने सीता के साथ दाखों का मधुर पेय दिया ॥59 ।। तदनंतर बड़े-बड़े महलरूपी पर्वतों की पंक्तियों से जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनयपूर्वक राम से आज्ञा प्राप्त कर इच्छानुसार क्षेमांजलि नगर देखने के लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीत वस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुंदर विलास से सहित थे ॥ 60-61 ॥नाना लताओं से आलिंगित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जल से भरी तथा शुक्ल मेघों के समान उज्ज्वल तटों से शोभित नदियों, नाना प्रकार की धातुओं से रंग-बिरंगे क्रीड़ा-पर्वतों, ऊँचे-ऊँचे जिनमंदिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकार के मनुष्यों को देखते हुए उन्होंने नाना प्रकार के व्यापार-कार्यों से युक्त नगरी में बड़ी धीरता से प्रवेश किया । लोग उन्हें बड़े आश्चर्य से देख रहे थे ॥62-64॥ जब ये नगर के प्रधान मार्ग में पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासी से निश्चिंतता पूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥65॥ वह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसार में ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजा के हाथ से छोड़ी हुई शक्ति को सहकर जितपद्मा कन्या को ग्रहण करेगा? ॥66॥यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्ग का राज्य देता हूँ तो भी शक्ति से संबंध रखने वाली इस कथा से क्या प्रयोजन है ? ॥67॥यदि कोई शक्ति झेलने के लिए सम्मुख हुआ और प्राणों से रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥68॥ संसार में समस्त वस्तुओं से जीवन ही प्यारा है और उसी के लिए अन्य सब प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥69 ।।

अथानंतर इस प्रकार के शब्द सुनकर लक्ष्मण ने कौतुकवश किसी मनुष्य से पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ! जिसके लिए लोग इस प्रकार वार्ता कर रहे हैं ॥70 ॥इसके उत्तर में उस मनुष्य ने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसार में व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पंडित मानती है ऐसी इस कालकन्या को क्या तुम नहीं जानते ? ॥71 ॥यह इस नगर के राजा शत्रुंदमन को कनकाभा रानी से उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥72 ॥चूंकि इसने मुख को कांति से कमल को अथवा सर्व शरीर से लक्ष्मी को जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥73 ॥नवयौवन से संपन्न तथा कलारूपी अलंकारों को धारण करने वाली यह कन्या पुंवेदधारी देवों से भी द्वेष करती है फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? ॥74॥ जो शब्द व्याकरण को दृष्टि से पुर्लिंग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब पुरुषों के प्रयोजन से रहित है ॥75 ॥सामने जो कैलास पर्वत के समान बड़ा भवन देख रहे हो उसी में यह सैकड़ों प्रकार की सेवाओं से लालित होती हुई रहती है ॥76॥जो मनुष्य इसके पिता के हाथ से छोड़ी हुई शक्ति को सहन करेगा उसे ही यह वरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले रखी है ॥77॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्य से युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या कैसी होगी जो इस प्रकार की चेष्टा करती है ॥78 ॥दुष्ट चेष्टा से युक्त तथा गर्व से भरी इस कन्या को देखूं तो सही । अहो! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रखा है ॥79॥इस प्रकार विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभ की नाईं सुंदर चाल से चलकर मनोहर राजमार्ग में आगे बढ़े । वहाँ वे विमान के समान आभा वाले तथा चंद्रमा के समान धवल उत्तमोत्तम भवनों, मेघों के समान हाथियों, चंचल चमरों से सुशोभित घोड़ों, छपरियों और नृत्यशालाओं को धीमी दृष्टि से देखते जाते थे ॥80-81 ॥तदनंतर जो नाना प्रकार के नियूहों से युक्त था, रंग बिरंगी ध्वजाओं से सुशोभित था, तथा जो सफ़ेद मेघावली के समान था ऐसे राजा शत्रुंदम के महल पर पहुँचे ॥42॥ महल का द्वार सैकड़ों देदीप्यमान बेलबूटों से सहित था, ऊँचे प्राकार से युक्त था, और इंद्रधनुष के समान रंग-बिरंगे तोरणों से सुशोभित था ॥83॥ तदनंतर जो शस्त्रधारी पहरेदारों के समूह से आवृत था, नाना प्रकार के उपहारों से युक्त था और जहाँ बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामंतों की बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वार में लक्ष्मण प्रवेश करने लगे तो द्वारपाल ने सौम्यवाणी से कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही राजमहल में प्रवेश कर रहा है ॥ 84-85॥ तब लक्ष्मण ने कहा कि मैं राजा के दर्शन करना चाहता हूँ सो राजा को खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरे को नियुक्त कर द्वारपाल ने भीतर जाकर राजा से निवेदन किया कि ।।86॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है, जिसकी प्रभा नील

कमल के समान है, जिसके नेत्र कमलों के समान सुशोभित हैं तथा जो अत्यंत सौम्य है ऐसा एक शोभा संपन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥87 ॥मंत्री के मुख की ओर देख राजा ने कहा कि प्रवेश करे । तदनंतर द्वारपाल के कहने पर लक्ष्मण ने भीतर प्रवेश किया ॥88॥ यद्यपि वह सभा गंभीर थी तो भी जिस प्रकार चंद्रमा को देखकर समुद्र क्षोभ को प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुंदर आकार के धारक लक्ष्मण को देखकर क्षोभ को प्राप्त हो गयी ॥89 ॥प्रणाम रहित, विशाल कंधों के धारक तथा अतिशय देदीप्यमान लक्ष्मण को देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुंदम ने पूछा कि तू कहाँ से आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तर में वर्षा ऋतु के मेघ के समान गंभीर ध्वनि को धारण करने वाले लक्ष्मण ने कहा ॥90-91॥ कि मैं राजा भरत का सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमने में निपुण हूँ, सब विषयों का पंडित हूँ और तुम्हारी पुत्री का मान भंग करने के लिए आया हूँ ।।92॥ जिसके मान रूपी सींग अभग्न हैं ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकनी गाय तुमने पाल रक्खी है वह सब लोगों को दुःख देने वाली है ॥93॥ राजा शत्रुंदम ने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्ति को सहन करने में समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्मा का मान खंडित करने वाला हो ॥94॥ लक्ष्मण ने कहा कि मैं एक शक्ति को क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्य के साथ मुझ पर पांच शक्तियां छोड़ ॥95॥ यहाँ जब तक दोनों अहंकारियों के बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहल के सधन झरोखे स्त्रियों के मुखों से आच्छादित हो गये 196॥ जितपद्मा भी लक्ष्मण को देख मोहित हो गयी और पुरुषों के साथ द्वेष को छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मण को मना करने लगी ॥97॥तब हर्ष से भरे लक्ष्मण ने भयभीत तथा हाथ जोड़कर बैठी हुई जितपद्मा को इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥98॥और राजा से कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुंदम नाम रखे फिरता है शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥99॥ इस प्रकार कहने पर राजा ने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्नि के समान एक शक्ति उठायी ॥100॥ तदनंतर यदि मरना ही चाहता है तो ले झेल यह कहकर भौंह को धारण करने वाले विधि-विधान के ज्ञाता राजा ने आलीढ़ आसन से खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी ॥101॥लक्ष्मण ने बिना किसी यत्न के ही दाहिने हाथ से वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि बटेर के पकड़ने में गरुड़ का कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥102॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथ से तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलों में धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतों को धारण करने वाले ऐरावत हाथी के समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥103॥अथानंतर अत्यंत कुपित सांप को फण की नाईं जो पाँचवीं शक्ति आयी उसे लक्ष्मण ने दाँतों के अग्रभाग से उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांस की डली को पकड़ रखता है ॥104॥ तदनंतर आकाश में खड़े देवों के समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्ष से शब्द करते हुए दुंदुभि बाजे बनाने लगे ॥105॥

अथानंतर शत्रुंदम ! अब तू मेरी शक्ति झेल इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर सब लोग अत्यंत भय को प्राप्त हुए ॥106॥ राजा शत्रुंदम लक्ष्मण को अक्षत शरीर देख विस्मय में पड़ गया और लज्जा से उसका मुख नीचा हो गया ॥107॥ तदनंतर मंद मुसकान की छाया से जिसका मुख नीचे की ओर हो रहा था ऐसा जितपद्मा रूप तथा आचरण से खिंचकर लक्ष्मण के पास आयी ॥108॥ शक्तियों को धारण करने वाले लक्ष्मण के पास वह कृशांगी, इस तरह अत्यंत सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्र के धारक इंद्र के पास खड़ी नतमुखी इंद्राणी सुशोभित होती है ॥109॥ लक्ष्मण का जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामों में भी कभी कंपित नहीं हुआ था वह जितपद्मा के नूतन समागम से कंपित हो गया ॥110॥ तदनंतर लज्जा के भार से जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्मा ने पिता तथा अन्य अनेक राजाओं के सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मण का वरण किया ॥111॥ तत्काल ही विनय से जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मण ने राजा से कहा कि हे माम ! लड़कपन के कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करने के योग्य हैं ॥112 ॥बालकों के विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनों से आप जैसे महागंभीर पुरुष विकार भाव को प्राप्त नहीं होते ॥113॥

तदनंतर हर्ष और संभ्रम से सहित राजा शत्रुंदम ने भी हाथी की सूंड के समान लंबी तथा सुपुष्ट भुजाओं से लक्ष्मण का आलिंगन किया ॥ 114॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने भयंकर युद्धों में मदस्रावी कुपित हाथियों को क्षणभर में जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥115॥ जिसने गोल काली चट्टानों वाले पर्वत के समान कांति के धारक बड़े-बड़े जंगली हाथियों को मदरहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥116॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय । अहो शोभनीक ! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥117 ॥ इस प्रकार सभा में बैठा राजा शत्रुंदम जब लक्ष्मण के गुणों का वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जा के कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभर के लिए कहीं चले ही गये हों ॥118॥

अथानंतर राजा की आज्ञा से मेघसमूह की गर्जना के समान विशाल शब्द करने वाली भेरियां बजायी गयीं और हाथियों की चिंघाड़ का संशय उत्पन्न करने वाले शंख फूंके गये ॥119॥ इच्छानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगर को क्षोभित करने में समर्थ बहुत भारी आनंद प्रवृत्त हुआ ॥120॥ तदनंतर राजा ने लक्ष्मण से कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ पुत्री का पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥121॥ इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि इस नगर के निकटवर्ती प्रदेश में मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥122॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्मा को रथ पर बैठाकर स्त्रियों तथा भाई-बंधुओं से सहित राजा शत्रुंदम बड़े आदर के साथ राम के समीप चला ॥123 ॥तदनंतर क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र को गर्जना के समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटल को देखकर घुटनों पर बार-बार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्ट से उठी और घबड़ाकर स्खलित वाणी में राम से बोली कि हे राघव ! जान पड़ता है लक्ष्मण ने कोई उद्धत चेष्टा की है । यह दिशा अत्यंत आकुल दिखाई देती है इसलिए सावधान होओ और जो कुछ करना हो सो करो ॥124-126 ॥तब सीता का आलिंगन कर हे देवि ! भयभीत मत होओ यह कहते तथा शीघ्र ही धनुष पर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥127 ॥ इतने में ही उन्होंने विशाल नर-समूह के आगे उच्च स्वर से मंगल गीत गाने वाली स्त्रियों का समूह देखा ॥128 ॥वह स्त्रियों का समूह जब क्रम-क्रम से पास आया तब सुंदर स्त्रियों के शरीर से उत्पन्न होने वाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥129॥ तदनंतर जिनके नूपुरों की जोरदार झनकार फैल रही थी ऐसी स्त्रियों के समूह को नृत्य करता देख राम निश्चिंत हो सीता के साथ पुनः बैठ गये ॥130॥

अथानंतर जिनके हाथों में मंगल द्रव्य थे, जो सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत थीं, अतिशय मनोहर थीं और जिनके नेत्र मद से फूल रहे थे ऐसी स्त्रियाँ राम के पास आयीं ॥111 ॥कमल के समान मुख को धारण करने वाले लक्ष्मण जितपद्मा के साथ रथ से उतरकर शीघ्र ही राम के चरणों में जा पड़े ॥132 ॥तदनंतर राम और सीता को प्रणाम कर लजाते हुए लक्ष्मण राम से कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥133॥ शत्रुंदम आदि राजा भी क्रम-क्रम से राम तथा सीता को नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥134 ॥कुशल समाचार पूछकर सब वार्तालाप करते हुए सुख से बैठे तथा राजाओं ने आनंद-नृत्य किया ॥135॥ तदनंतर परम संपदा से युक्त तथा हर्ष से भरे राम लक्ष्मण और सीता ने रथ पर सवार हो नगर में प्रवेश किया ॥136 ॥वहाँ राजमहल में पहुंचे । वह राजमहल एक सरोवर के समान जान पड़ता था क्योंकि सौंदर्य रूपी केशर से युक्त स्त्रियों रूपी नील कमलों से वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियों से युक्त था ॥137॥ सत्यव्रत रूपी सिंह की गर्जना के भय से जिनके चित्त अत्यंत संकुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मी से सहित थे, राजा शत्रुंदम जिनको इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुख से सहित थे तथा जो समस्त लोगों के चित्त को आनंद देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहल में कुछ समय तक सुख से रहे ॥138-139।।

तदनंतर राम अर्ध रात्रि के समय सीता के साथ इच्छानुसार राजमहल से बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमाला के समान विरह से भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्मा को प्रिय वचनों द्वारा आदरपूर्वक सांत्वना दे राम के साथ चले । इन सबके जाने से नगरवासियों का धैर्य जाता रहा ॥140-141॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने जंमांतर में बहुत भारी पुण्य का संचय किया है ऐसे सर्व प्राणियों को प्रिय पुरुष, नाना प्रकार के उत्तम कार्य करते हुए जिस-जिस देश में जाते हैं उसी-उसी देश में उन्हें बिना किसी चिंता के समस्त इंद्रियों के सुख देने में निपुण मधुर आहार आदि की सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोक में जो दूसरों के लिए दुर्लभ रहती है ॥142॥ मुझे इन लोगों से प्रयोजन नहीं है । ये दुष्ट नाश को प्राप्त हों, इस प्रकार भोगों से अतिशय द्वेष रखने वाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगों की निंदा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वत के शिखर पर भी चला जाता है तो भी अपनी कांति से सूर्य को जीतने वाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणों की प्राप्ति कराने में समर्थ इन भोगों के साथ सदा समागम को प्राप्त होता है **अर्थ**ात् पुण्यात्मा मनुष्य को इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकार की सुख सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥143॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में जितपद्मा का वर्णन करने वाला अड़तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥38॥

## देशभूषण, कुलभूषण केवली

उनतालीसवां पर्व

कथा :

अथानंतर जिनकी शरीर-स्थिति के समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण रमण करते हुए वन को उन भूमियों में आये

जो नाना प्रकार के वृक्षों से सहित थी, जिन में नाना फूलों को सुगंधि फैल रही थी, जो लतामंडपों से सहित थीं तथा मृगगण जिन में सुख से निवास करते थे ॥1-2॥ कहीं राम, मूंग के समान कांति वाले पल्लव को तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर यह ठीक रहेगा इस प्रकार कहते हुए सीता के कान में पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीता को बैठाकर बगल में दोनों ओर खड़े हो राम-लक्ष्मण उसे झूला झुलाते थे ॥3-4॥ कहीं सघन पत्तों वाले द्रुम-खंड में बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओं से उसका मनोविनोद करते थे ॥ 5॥ कहीं सीता राम से कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥6॥ कहीं मुख की सुगंधि के लोभी भ्रमरों के समूह सीता को पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी कठिनाई से उसकी रक्षा करते थे ॥7॥ जिस प्रकार देव स्वर्ग के वनों में विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाओं के धारक दोनों भाई सीता को साथ लिये नाना प्रकार के वनों में धीरे-धीरे विहार करते थे ॥8॥ नाना मनुष्यों से उपभोग्य देशों में दृष्टि डालते हुए वे धीर-वीर क्रम से वंशस्थाति नामक नगर में पहुंचे ॥9॥ सीता के साथ भ्रमण करते हुए उन पूण्यानुगामी महापुरुषों को यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देने वाला नहीं हुआ था ॥10॥

उस नगर के समीप ही उन्होंने वंशधर नाम का पर्वत देखा जो बाँसों के समूह से अत्यंत व्याप्त था, पृथिवी को भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊंचे शिखरों की कांति से जो मानो सदा संध्या को धारण कर रहा था और निर्झरनों के छींटों से ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥11-12 ॥उन्होंने यह भी देखा कि प्रजा के लोग नगर से निकल-निकलकर कहीं अन्यत्र जा रहे हैं । तब राम ने किसी एक मनुष्य से पूछा कि हे भद्र! यह बहुत भारी भय किस कारण से है ? ॥13 ॥इसके उत्तर में उस मनुष्य ने कहा कि इस पर्वत के शिखर पर रात्रि के समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥14 ॥जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूंज उठती है तथा वह अत्यंत भयंकर है । किस व्यक्ति का शब्द है ? यह बहुविज्ञानी वृद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥15॥ इस शब्द से मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और वृक्ष मानो उखड़ने लगते हैं ॥16॥ रौद्रता में नरक के शब्द की तुलना करनेवाले इस भारी शब्द से समस्त लोगों के कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहे के घनों से ही ताड़ित होते हों ॥17॥जान पड़ता है कि रात्रि के समय हम लोगों का वध करने के लिए उद्यत हुआ यह कोई लोक का कंटक क्रीड़ा करता फिरता है ॥18 । ये लोग उस शब्द के भय से रात्रि प्रारंभ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं॥ 19॥यहाँ से कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हल का हो जाता है कि लोग परस्पर का वार्तालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं ॥20॥

यह सुनकर सीता ने राम-लक्ष्मण से कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चलें ॥21॥ नीतिशास्त्र के ज्ञाता पुरुष देश काल को समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥22॥ राम-लक्ष्मण ने घबड़ायी हुई सीता से हँसकर कहा कि तुझे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा ॥23 ॥प्रभात होने पर इन लोगों के साथ हम दोनों को खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वत के समीप आ जाना ॥24॥इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यंत भयंकर शब्द किसका होता है । यह आज हम देखेंगे ऐसा निश्चय किया है ॥25॥ ये दीन लोग बाल-बच्चों से व्याकुल तथा पशुओं से सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥26॥ तब जैसे ज्वर चढ़ रहा हो ऐसी कांपती हुई आवाज में सीता ने कहा कि हमेशा आप लोगों की हठ केंकड़े की पकड़ के समान विलक्षण ही है उसे दूर करने के लिए कौन समर्थ है ? ॥27॥ ऐसा कहती हुई वह राम के पीछे और लक्ष्मण के आगे खड़ी हो चलने लगी ॥28 ॥ जिसके चरणकमल खेदखिन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघ के शिखर पर चंद्रमा की निर्मल रेखा ही है ॥29॥राम और लक्ष्मण के बीच में खड़ी सीता चंद्रकांतमणि और नीलमणि के मध्य में स्थित स्फटिकमणि की शलाका के समान पर्वत का आभूषण हो रही थी ॥30॥जहाँ कहीं सीता को गोल चट्टानों से नीचे गिरने का भय होता था वहाँ वे दोनों उसे ऊपर उठाकर ले जाते थे और जहाँ गिरने का भय नहीं होता था वहाँ निश्चिंततापूर्वक हाथ का सहारा देकर ले जाते थे ॥31॥ इस प्रकार ऊंची-नीची चट्टानों का समूह पार कर भय से रहित राम-लक्ष्मण सीता के साथ पर्वत के चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥32॥

अथानंतर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यान में आरूढ़ थे, जिनकी लंबी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं, जो अत्यंत दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमा को सिद्ध कर रहे थे, परम तेज से युक्त थे, समुद्र के समान गंभीर थे पर्वत के समान स्थिर थे, शरीर और

आत्मा की भिन्नता को जानने वाले थे, मोह से रहित थे, दिगंबर-मुद्रा को धारण करने वाले थे, कांति के सागर थे, नूतन तारुण्य से युक्त थे, उत्तम आकार के धारक थे और आगमोक्त आचरण करने वाले थे ॥33-35॥आश्चर्य को प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मों के आश्रय का परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसार में प्राणियों की समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःख के कारण हैं ॥36 ॥मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बंधु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुख का कारण है ॥37॥ तदनंतर जो भक्ति से युक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्खे थे, जो परम संतोष को धारण कर रहे थे, और विनय से जिनके शरीर नम्रीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजों के पास गये ॥38॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यंत भयंकर थे, इधर-उधर चल रहे थे विकट शब्द कर रहे थे मसले हुए अंजन के समान कांति वाले थे, तथा जिनकी जीभें लपलपा रही थीं ऐसे साँपों से और जिन्होंने अपनी पूंछ ऊपर उठा रक्खी थी, जो अत्यंत भयंकर थे, रात-दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रंग के थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओं से उन दोनों मुनियों को घिरा देखा ॥ 39-40॥ उक्त प्रकार के मुनियों को देख, राम भी लक्ष्मण के साथ सहसा भय को प्राप्त हुए तथा क्षणभर के लिए निश्चल रह गये ॥41॥ सीता भयभीत हो पति से लिपट गयी, तब राम ने क्षण एक में भय छोड़कर सीता से कहा कि डरो मत ॥42॥ तदनंतर राम-लक्ष्मण ने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटाने पर भी बार-बार वहीं लौटकर आते थे ऐसे सांप, बिच्छुओं को धनुष के अग्रभाग से दूर किया ॥43॥ अथानंतर भक्ति से भरी सीता ने निर्झर के जल से देर तक उन मुनियों के पैर धोकर मनोहर गंध से लिप्त किये ॥44॥ तथा जीवन को सुगंधित कर रहे थे एवं लक्ष्मण ने जो तोड़कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओं के फूलों से उनकी खूब पूजा की ॥45॥ तदनंतर अंजलिरूपी कमल को बोड़ियों से जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधान के जानने में निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराज को वंदना की ॥46 ॥अत्यंत उत्तम तथा मधुर अक्षरों में गाते हुए राम ने मनोहर स्त्री के समान वाणी को गोद में रखकर बजाया ॥ 47॥ इनके साथ ही लक्ष्मण ने भी बड़े आदर से तत्त्वपूर्ण गान गाया । उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लता से आलिंगित वृक्ष के समान जान पडते थे और उनका मधुर शब्द कोयल की मीठी तान के समान मालूम होता था ॥48॥ वे गा रहे थे कि जो महायोग के स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओं से सहित हैं, उत्तम भाग्य के धारक जिन मुनियों ने उपमा से रहित, अखंडित, तथा तीन लोक में प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया हैं । जिन्होंने ध्यानरूपी दंड के द्वारा महामोहरूपी शिलातल को तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरण से रहित विश्व को दोन समझते हैं ऐसे साधु देवों के द्वारा भी मन से, शिर से तथा वचन से वंदनीय हैं ॥49-51॥ मान की विधि को जानने वाले राम-लक्ष्मण जव इस प्रकार के अक्षर गा रहे थे तब तिर्यंचों के भी चित्त कोमलता को प्राप्त हो गये थे ॥52॥
तदनंतर जो समस्त सुंदर नृत्यों के लक्षण जानती थी, मनोहर वेषभूषा से युक्त थी, हार माला आदि से अलंकृत थी, परमलीला से सहित थी, स्पष्टरूप से अभिनय दिखला रही थी, जिसकी बहुरूपी लताओं का भार अत्यंत सुंदर था, जो हाव-भाव आदि के दिखलाने में निपुण थी, लय बदलने के समय जिसके सुंदर स्तनों का मंडल कुछ ऊपर उठकर कंपित हो रहा था, जिसके चरण-कमलों का विन्यास शब्द रहित था; जिसकी एक जांच चल रही थी । जिसके शरीर की समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्र के अनुरूप थीं, तथा जो भक्ति से प्रेरित थी, ऐसी सीता ने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेंद्र के जन्माभिषेक के समय सुमेरु पर श्रीदेवी ने किया था ॥53-56 ॥तदनंतर उपसर्ग से त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसी के पीछे चंचल तेज को धारण करने वाली संध्या भी जब चली गयी तब नक्षत्र मंडल के प्रकाश को नष्ट करने वाला तथा नील मेघ के समान आभा वाला सघन अंधकार समस्त दिशाओं को व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥57-58॥ उसी समय किसी का ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओं में परम क्षोभ उत्पन्न करने वाला था तथा जो आकाश को भेदन करता हुआ-सा जान पड़ता था ॥59॥ जिसके अग्रभाग में बिजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लंबी धन-घटा से आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भय से व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥60॥ जिनके आकार अत्यंत भय उत्पन्न करने वाले थे तथा जिनके मुख दाढ़ों की पंक्ति से कुटिल थे, ऐसे भूतों के झुंड महा भयंकर अट्टहास करने लगे ॥61॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमंगलरूप शृंगालियां अग्नि उगलती हुई शब्द करने लगी, सैकड़ों कलेवर भयंकर नृत्य करने लगे, ॥62॥मेघ, दुर्गंधित खून की बड़ी मोटी बूंदों से सहित मस्तक, वक्षःस्थल, भुजा तथा जंघा आदि अवयवों की वर्षा करने लगे ॥63॥जो हाथ में तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यंत क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यंत लंबे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियों का समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी फूटी आंखें मांसखंड के समान थी, जिसने नरमुंड का सेहरा पहिन रखा था, जिसकी जीभ ऊपर की ओर उठकर ललाट का स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रुधिर की वर्षा कर रही थी ऐसी डाकिनी दिखाई देने लगी ॥64-65॥ जिनके

मुख सिंह तथा व्याघ्र के समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्र के सदृश थे, जिनके हाथ में शूल विद्यमान थे, जो ओंठ को डस रहे थे, जिनके ललाट भौंहों से कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यंत कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसों से भरा हुआ वहाँ का भूतल क्षोभ को प्राप्त हो गया और पर्वत की चट्टानें हिल उठीं ॥66-67॥ यह सब हो रहा था परंतु उन महामुनियों को इस व्यर्थ की चेष्टा का कुछ भी भान नहीं था, उस समय उनका ज्ञानोपयोग अंतरंग में शुक्लध्यान मय हो रहा था अथवा उन महामुनियों का ज्ञान कर्मों का क्षय करने वाले शुक्लध्यान से तन्मय हो रहा था ॥68॥अच्छे-अच्छे पुरुषों को भय उत्पन्न करने वाला ऐसा वृत्तांत देख सीता नृत्य छोड़ कांपती हुई पति से लिपट गयी ॥69 ॥तब राम ने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मान से ! भयभीत मत हो ! सब प्रकार का भय दूर करने वाले मुनियों के चरणों का आश्रय ले बैठ जाओ ॥70॥यह कहकर राम ने सीता को मुनिराज के चरणों के समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमार के साथ, युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥71 ॥तदनंतर सजल मेघ के समान गरजने वाले एवं महा कांति के धारक राम लक्ष्मण ने अपने-अपने धनुष टंकोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे हों ॥72॥ तदनंतर ये बलभद्र और नारायण हैं ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥73॥ उस ज्योतिषी देव के चले जाने पर उसकी सबको सब चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गयीं और आकाश निर्मल हो गया ॥74॥

अथानंतर परम हित की इच्छा करने वाले राम-लक्ष्मण के द्वारा प्रतिहारी का कार्य संपन्न होने पर **अर्थ**ात् उपसर्ग दूर किये जाने पर दोनों मुनियों की क्षणभर में केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥75 ॥तदनंतर नाना प्रकार के वाहनों पर बैठे, हर्ष से भरे तथा तप के फल की प्रशंसा करते हुए चारों निकाय के देव आ पहुँचे ॥76॥ वहाँ विधिपूर्वक प्रणाम कर तथा केवल जान की पूजा कर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥77॥ उस समय केवलज्ञान को उत्पत्ति से खिचे हुए देवों का समागम होने से रात-दिन रूप काल भेद से रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिन का व्यवहार समाप्त हो गया ॥78॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबल को धारण करने वाले विद्याधर-सभी लोग केवलियों की पूजा कर यथायोग्य स्थान पर बैठ गये ॥79॥ प्रसन्न चित्त के धारक राम-लक्ष्मण भी सीता के साथ शीघ्र ही केवलियों की पूजा कर यथास्थान बैठ गये ॥80॥

अथानंतर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनों पर विराजमान केवलज्ञानी महा मुनियों को नमस्कार कर राम ने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥81॥ कि हे भगवन् ! रात्रि के समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनों में परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥82॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणाम को प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य ध्वनि में क्रम से बोले ॥83 ॥उन्होंने कहा कि-पद्मिनी नामा नगरी में राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्य की उत्पत्ति के लिए उत्तम क्षेत्र के समान उसकी धारिणी नाम की स्त्री थी ॥84॥राजा विजयपर्वत के एक अमृत स्वर नाम का दूत था जो शास्त्रज्ञान में निपुण था, राजकर्तव्य में कुशल था, लोकव्यवहार का ज्ञाता तथा गुणों में स्नेह करने वाला था ॥85॥ उसकी उपयोगा नाम को स्त्री थी और उसके उदर से उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नाम के दो पुत्र थे । ये दोनों ही पुत्र व्यवहार में अत्यंत कुशल थे ॥86॥ किसी समय राजा ने अमृतस्वर को दूत संबंधी कार्य से बाहर भेजा, सो स्वामी के काय में अत्यंत अनुरक्त बुद्धि को धारण करने वाला अमृतस्वर प्रवास के लिए गया॥87॥ उसके साथ उसी के भोजन से जीवित रहने वाला वसुभूति नाम का मित्र भी गया । वसुभूति अत्यंत दुष्ट चित्त का था तथा अमृतस्वर की स्त्री में आसक्त था ॥88॥ वह सोते हुए अमृतस्वर को तलवार से मारकर नगरी में वापिस लौट आया और आकर उसने लोगों को बताया कि अमृतस्वर ने मुझे लौटा दिया है ॥89 ॥अमृतस्वर की स्त्री उपयोगा ने वसुभूति से कहा कि हमारे दोनों पुत्रों को भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिंतता से रह सकेंगे । सास का यह कहना उसकी बहने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदित के लिए बता दिया, यथार्थ में वह बहू सास का वसुभूति के साथ संगम है यह पहले से जानती थी ॥90-91॥ वसुभूति को खास स्त्री उसको इस रतिक्रिया से सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यंत व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदित की स्त्री से कहा था ॥92॥ उदित को भी पहले से कुछ-कुछ संदेह था और मुदित भी इस बात को पहले से जानता था फिर वसुभूति के पास तलवार देखने से सब बात स्पष्ट हो गयो ॥93॥ तदनंतर क्रोध से युक्त होकर उदित ने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्म में तत्पर रहने वाला वह कुब्राह्मण मलेच्छ पर्याय को प्राप्त हुआ ॥94॥

अथानंतर किसी समय मुनिसंघ के स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥95॥ उसी समय धर्मध्यान में तत्पर रहने वाली, अतिशय श्रेष्ठ और आर्यिकाओं के संघ की रक्षा करने वाली अनुद्धरा नाम की गणिनी भी

विद्यमान थीं ॥96॥ चतुर्विध संघ से सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमि से युक्त वसंततिलक नामक उद्यान में ठहर गये ॥97॥

तदनंतर उद्यान की रक्षा करने वाले किंकर अत्यंत व्यग्र हो राजा के पास पहुंचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! आगे तो बड़ी ऊंची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइए हम किसको शरण में जावें । हमारा तो सब प्रकार से विनाश उपस्थित हुआ है ॥98-99॥भले आदमियो ! क्या ? क्या ?, क्या कह रहे हो इस प्रकार राजा के कहने पर किंकरों ने कहा कि हे नाथ ! मुनियों का एक संघ उद्यान की भूमि में आकर ठहर गया है ॥100॥ यदि इस संघ को हम मना करते हैं तो निश्चित ही शाप को प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगों पर बड़ा संकट आ पड़ा है ॥101 ॥हे राजन् ! आपके प्रसाद से हम लोगों ने वह उद्यान कल्पवृक्षों के उद्यान के समान बना रखा है, उसमें साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ॥102॥ जो तप के तेज से अत्यंत दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रंथ मुनियों को देव भी रोकने में समर्थ नहीं हैं फिर हमारे-जैसे मनुष्यों की बात ही क्या है ? ॥103॥

तदनंतर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किंकरों को सांत्वना देकर बहुत भारी आश्चर्य से युक्त हुआ राजा उद्यान की ओर चला ॥104॥ जो बहुत भारी संपदा से युक्त था, बंदीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यान भूमि में पहुँचा ॥105॥ वहाँ जाकर उसने महाभाग्यवान मुनियों के दर्शन किये । वे मुनि वन की धूलि से व्याप्त थे, मुक्ति के योग्य क्रियाओं में तत्पर थे तथा अत्यंत प्रशांत चित्त थे ॥106॥ उनमें से कितने ही मुनि दोनों भुजाओं को नीचे की ओर लटकाकर प्रतिमा के समान अवस्थित थे, तथा वेला-तेला आदि कठिन उपवासों से उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥107॥ कितने ही स्वाध्याय में तत्पर हो भ्रमरों के समान मधुर ध्वनि से गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्याय में चित्त लगाकर पद्मासन से विराजमान थे ॥108 । इस प्रकार के मुनियों को देखकर राजा का गर्वरूपी अंकुर भग्न हो गया तथा उसने हाथी से नीचे उतरकर मुनियों को नमस्कार किया । राजा का नाम विजयपर्वत था ॥109॥ भोगों में समीचीन बुद्धि को धारण करने वाला राजा क्रम-क्रम से सब मुनियों को नमस्कार करता हुआ आचार्य के पास पहुंचा और उनके चरणों में प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणों से युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतल में स्थित क्यों नहीं हैं ?॥110-111॥ आचार्य ने उत्तर दिया कि तेरे शरीर में यह क्या बुद्धि है ? तेरी वह बुद्धि शरीर को स्थिर समझने वाली है सो झूठी है और संसार को बढ़ाने वाली है ॥112॥ निश्चय से यह जीवन हस्ति शिशु के कानों के समान चंचल है तथा मनुष्य का यह जीतव्य केले के सार की सदृशता धारण करता है ॥113॥ यह ऐश्वर्य और बंधुजनों का समागम स्वप्न के समान है, ऐसा जानकर इसमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदि का ज्यों-ज्यों विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यंत दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥114॥ जो नरक के समान है, अत्यंत भयंकर है, दुर्गंधि से भरा है, कीड़ों से युक्त है, रक्त तथा कफ आदि का मानो सरोवर है, जहाँ अत्यंत अशुचि पदार्थों की कीच मच रही है तथा जो अत्यंत संकीर्ण है ऐसे गर्भ में इस जीवने अनेकों बार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अंधकार से आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥115-116॥ जो सर्व प्रकार के अशुचि पदार्थों का भांडार है, क्षण-भर में नष्ट हो जाने वाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोह से पूरित है, नसों के समूह से वेष्टित है, अत्यंत पतली चर्म से घिरा है, अनेक रोगों से खंडित है, और बुढ़ापा के आगमन से निंदित है, ऐसे इस शरीर को धिक्कार है ॥117-118॥ जो मनुष्य ऐसे शरीर में धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य **अर्थ**ात् विचारा विचार की शक्ति से रहित उन मनुष्यों का कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥119॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोक के लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगों को जबरदस्ती लूटने वाले ये इंद्रियरूपी चोर उसे रोककर बैठे हैं ॥120॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धिरूपी स्त्री से घिरकर क्रीड़ा कर रहा है और मृत्यु उसे अचानक ही दुःखी करना चाहती है ॥121॥ विषयों के मार्ग में मदोन्मत्त हाथी के समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अंकुश को धारण करने वाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुष के द्वारा ही रो का जा सकता है ॥122॥ जो शरीररूपी धान्य में उत्तम लोभ को धारण कर रहे हैं तथा जो महामोहरूपी वेग को धारण कर लंबी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इंद्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथ को कुमार्ग में गिरा देते हैं, इसलिए मनरूपी लगाम को अत्यंत दृढ़ करो ॥123-124॥ भक्ति पूर्वक जिनेंद्र भगवान् को नमस्कार करो और निरंतर उन्हीं का स्मरण करो जिससे निश्चयपूर्वक संसार-सागर को पार कर सको ॥125॥ तप और संयमरूपी शस्त्रों के द्वारा मोहशत्रुरूपी कंटक को नष्ट कर मोक्षरूपी नगर को प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँ का राज्य करी ॥126॥ इस प्रकार जैनाचार्य का व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धि को धारण करने वाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभव का परित्यागकर श्रेष्ठ मुनि

हो गया ॥127॥ दूत के पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तप को धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥128 ॥निर्वाण क्षेत्र की वंदना की अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचल को जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवी में जा पहुंचे ॥129॥ वसुभूति का जीव मरकर उसी अटवी में पुष्ट म्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यंत ऋद्ध होकर कठोर वाणी से उन्हें बुलाया ॥130॥ उसे मारने के लिए उत्सुक देख बड़े भाई उदित ने मुदित से कहा कि हे भाई ! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥131 ॥दुष्ट आकृति को धारण करने वाला या म्लेच्छ हम दोनों को मारने के लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगों ने चिरकाल के अभ्यास से जिस क्षमा को समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षा का अवसर है॥132॥ मुदित ने बड़े भाई को उत्तर दिया कि जिनेंद्र भगवान् के वचनों में स्थिर रहने वाले हम लोगों को भय किस बात का है ? निश्चय से हम लोगों ने भी इसका वध किया होगा॥133॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार पूर्वक खड़े हो गये और शरीर आदि से ममता छोड़ प्रतिमा योग को प्राप्त हुए ॥134॥ तदनंतर मारने की इच्छा रखता हुआ वह भील उनके पास आया परंतु देवयोग से भीलों के सेनापति ने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥135॥ यह सुन, राम ने केवली से पूछा कि भील इन्हें क्यों मारना चाहता था और सेनापति ने किस कारण से छुड़ाकर इनकी रक्षा की ॥136॥ तब केवली भगवान् के मुख से इस प्रकार की दिव्य ध्वनि प्रकट हुई कि भवांतर में यक्षस्थान नामक नगर में सुरप और कर्षक नाम के दो भाई रहते थे ॥137॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षी को पकड़कर उस गांव में आया सो दया से युक्त होकर सुरप और कर्षक ने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥138॥ तदनंतर वह पक्षी मरकर मलेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्षक मरकर उदित तथा मुदित हुए ॥139॥चूंकि पक्षी अवस्था में इन दोनों ने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षी ने भी सेनापति होकर इन दोनों मुनियों की रक्षा की 140॥ शिकारी का जीव मरकर कर्मयोग से उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नाम का ब्राह्मण हुआ ॥141 ॥यह जीव पूर्वभव में जैसा करता है इस भव में उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । संसारी प्राणियों की ऐसी ही दशा है ॥142॥यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रों के पढ़ने से क्या होता है ? सुख के कारणभूत एक पुण्य का ही संचय करना चाहिए ॥143॥ पुण्य के प्रभाव से उपसर्ग से निकले हुए दोनों मुनियों ने निर्वाण क्षेत्र-सम्मेदाचल पहुंचकर जिनवंदना की ॥144 ॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानों में भ्रमण करत था चिरकाल तक रत्नत्रय की आराधना कर मरकर दोनों मुनि स्वर्ग गये ॥145॥ और वसुभूति अनेक खोटा योनियों में भ्रमण कर बड़ी कठिनाई से मनुष्यभव को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापस के व्रत धारण किये॥146॥ तदनंतर दुःखदायी बालतप कर वह मरा और अग्निकेतु नाम का दुष्ट ज्योतिषी देव हुआ ॥147॥

तदनंतर इसी भरतक्षेत्र में एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नाम का महा भोगवान् राजा राज्य करता था ॥148॥ उसकी स्त्रियों के गुणों से सहित दो महादेवियाँ थीं एक कांचनाभा और दूसरी पद्मावती ॥149॥ उदित और मुदित के जीव स्वर्ग से चयकर रानी पद्मावती के रत्नरथ और विचित्ररथ नाम के सुंदर पत्र हुए ॥150॥वसुभूति का जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजा की दूसरी महादेवी कांचनाभा के अनुंधर नाम का पुत्र हुआ । पृथिवी पर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणों से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥151॥ राजा प्रियव्रत पुत्रों के ऊपर राज्य छोड़ जिनालय में छह दिन की उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥152॥ अथानंतर एक राजा की पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थ में श्रीप्रभा **अर्थ**ात् लक्ष्मी के समान प्रभा की धारक थी, रत्नरथ ने उससे विवाह कर लिया । इसी पुत्री को कांचनाभा का पुत्र अनुंधर भी चाहता था । वह द्वेष रखकर उसकी भूमि को उजाड़ करने के लिए उद्यत हो गया ॥153-154॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथ ने उसे युद्ध में जीतकर तथा पांच प्रकार के दंड देकर देश से निकाल दिया ॥155 ॥अनुंधर इस अपमान से तथा पूर्वभव संबंधी बर से कुपित होकर जटा और बल्कल को धारण करने वाला विषवृक्ष के समान तापसी हो गया ॥15॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोध को प्राप्त हुए सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए ॥157॥ महातेज को धारण करने वाले दोनों भाई वहाँ देवों के योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँ से च्युत हुए और सिद्धार्थनगर के राजा क्षेमंकर की विमला नामक महादेवी के दो सुंदर पुत्र हुए । प्रथम पुत्र का नाम देशभूषण और दूसरे पुत्र का नाम कुलभूषण था ॥ 158-159॥ विद्या उपार्जन करने की योग्य अवस्था में वर्तमान दोनों भाई घर पर क्रीड़ा करते रहते थे । एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नाम का महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजा ने उसे रख लिया । उत्कृष्ट विनय से युक्त दोनों भाइयों ने उस विद्वान् के पास समस्त कलाएं सीखी ॥160-161॥दोनों पुत्रों का विद्या में इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवार के लोगों को भी नहीं जानते थे । यथार्थ में उनका संपूर्ण चित्त विद्या और विद्यालय में ही लगा रहता था ॥162॥उपाध्याय चिरकाल के बाद पुत्रों को निपुण बनाकर पिता के पास ले

गया सो पिता ने पुत्रों को योग्य देख उपाध्याय का यथायोग्य सम्मान किया ॥163॥तदनंतर पिता ने हम दोनों के विवाह के लिए राज-कन्याएं बुलवायी हैं यह समाचार उनके कर्ण मार्ग तक पहुंचा ॥164॥

तदनंतर परम कांति से युक्त दोनों भाई एक दिन नगर के बाहर जाने के लिए उद्यत हुए सो उन्होंने झरोखे में बैठी नगर की शोभा स्वरूप एक कन्या देखी॥165॥ उस कन्या का समागम प्राप्त करने के लिए दोनों ही भाइयों ने अपने मन में परस्पर एक दूसरे के वध करने का विचार किया । तदनंतर वंदी के मुख से उसी समय यह शब्द निकला ॥166॥कि विमला देवी के साथ वह राजा क्षेमंकर सदा जयवंत रहे जिसके कि देवों के समान ये दो पुत्र हैं ॥167॥तथा झरोखे में बैठी यह कमलोत्सवा नाम की कन्या भी धन्य है जिसके कि सुंदर गुणों से उत्कट ये दो भाई हैं ॥168॥तदनंतर वंदी के कहने से यह हमारी बहन है ऐसा जानकर परम वैराग्य को प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥169॥ अहो ! हम लोगो के द्वारा इच्छित इस भारी पाप को धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो! मोह की दारुणता देखो कि जिससे हमने बहन ही की इच्छा की ॥170॥ हम लोग तो प्रमाद से ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान बूझकर सदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिए ॥171॥ अहो ! दुःख से भरा यह संसार बिलकुल ही असार है जिसमें पापी मनुष्यों के ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं ॥172 ॥किसी पाप के उदय से सहसा कार्य करने वाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥173 ॥ऐसा विचारकर दु:ख से मूर्च्छित माता और स्नेह से आकुल पिता को छोड़कर दोनों ने दैगंबरी दीक्षा धारण कर ली ॥174॥उत्तम तपरूपी धन को धारण करने वाले दोनों मुनियों ने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत् के नाना तीर्थ क्षेत्रों में विहार किया ॥175 ॥राजा क्षेमंकर उस शोकाग्नि से दग्ध होकर एक साथ समस्त आहार छोड़ मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥176 ॥राजा क्षेमंकर पहले कहे हुए भव से ही लेकर हम दोनों का पिता होता आया है इसलिए हम दोनों के प्रति उसका निरंतर भारी स्नेह रहता था ॥177॥ अब वह मरकर भवनवासी देवों में सुपर्ण कुमार जाति के देवों का अधिपति, प्रसिद्ध, सुंदर, अद्भुत-पराक्रम का धारी महालोचन नाम का देव हुआ है ॥178॥ वह बली अपने आसन के कंपित होने से क्षुभित हो अवधिज्ञान के द्वारा सब जानकर यहाँ आया है तथा व्यंतर देवों की सभा में बैठा है ॥179 ॥उधर तपस्वियों का आचार पालन करने में तत्पर अनुंधर, शिष्य समूह के साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरी में आया॥180॥ वहाँ का राजा सुमुख था और रतवती उसकी स्त्री थी जो सैकड़ों स्त्रियों में प्रधान तथा परम सुंदरी थी ॥181 ॥उसी राजा के उत्तम चेष्टा को धारण करने वाली एक मदना नाम की विलासिनी ( वेश्या ) स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसार को जीतकर कामदेव के द्वारा प्राप्त की हुई पता का ही हो ॥182॥ उस मदना ने साधुदत्त मुनि के पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्य धर्मो को तृण के समान तुच्छ मानती थी ॥183 ॥अथानंतर किसी दिन राजा ने मदना के सामने कहा कि अहो! यह तापस महातपों का स्थान है ॥184॥ यह सुन मदना ने कहा कि हे नाथ ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगों को ठगने वाले लोगों का तप कैसा ? ॥185॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणों में वर्तमान देखिए ॥186॥ यह कहकर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नाम की सुंदरी पुत्री को सिखाकर उस तापस के आश्रम में भेजा ॥187॥

सुंदर हाव भाव और उत्तम वेष-भूषा को धारण करने वाली नागदत्ता देवकन्या के समान जान पड़ती थी । वह एकांत में योग लेकर बैठे हुए उस तापस के पास जाकर खड़ी हो गयी ॥188॥ हवा से हिलते हुए वस्त्र के बहाने उसने कामदेव के अंतःपुर के समान, सौंदर्यरस से भरे अपने ऊरू दिखाये ॥189॥ समाधान के बहाने केशर के द्रव से पीले तथा कामदेव के गंडस्थल की तुलना धारण करने वाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥190॥ पुष्प ग्रहण के बहाने नीवी ढीली कर जघन स्थान दिखाया, देदीप्यमान नाभिमंडल और सुंदर बगलें भी दिखलायी ॥191॥ उस तापस के नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योग का भेदन कर उस नागदत्ता के उन-उन प्रदेशों पर पड़ने लगे तथा वहीं बंधन से युक्त हो गये ॥192॥ तदनंतर काम के बाणों से ताड़ित तपस्वी अत्यंत व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरे से उससे पूछने लगा कि हे बाले ! तू कौन है ? और यहाँ कहाँ आयी है ? ॥193॥ इस संध्या के समय छोटे-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यंत सुकुमार है ॥194॥ नागदत्ता मधुर वर्णों से उसका हृदयस्थल भेदती, लीला पूर्वक भुजलता को मुख की और ऊपर उठाती, चंचल नील कमल के समान कांति के धारक नेत्रों को धारण करती, कुछ-कुछ दीनता को प्राप्त होती तथा अधरोष्ठ को बार-बार हिलाती हुई बोली ॥195-196॥ कि हे नाथ ! हे दया के आधार! हे शरणागत वत्सल! सुनिए, आज मेरो माता ने मुझे अपराध के बिना ही घर से निकाल दिया है ॥197॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारण कर आपकी इस वृत्ति का आचरण करूंगी, आप अनुमति देकर

मुझ पर प्रसाद कीजिए ॥198॥ रात-दिन आपकी सेवा करने से मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥199॥ धर्म, **अर्थ** और काम में ऐसा कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथों के भांडार हैं । पुण्य से ही आपके दर्शन हुए हैं ॥200 । इस प्रकार कहने पर उसका मन वशीभूत जान काम से जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥201॥ कि हे भद्रे ! प्रसाद करने के लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तम ! तुम्हीं मुझ पर प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन-पर्यंत तुम्हारी भक्ति करूंगा ॥202॥ ऐसा कहकर उसने आलिंगन करने के लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आदर के साथ उसे हाथ से रोकती हुई कन्या ने कहा ॥203 ॥कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घर में जाकर मेरी माता से पूछो ॥204 ॥आपकी बुद्धि के समान वह परम दया से युक्त है, उसे प्रसन्न करो, वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे देगी ॥205 ॥इस प्रकार नागदत्ता के कहने पर वह सूर्यास्त के अनंतर अटपटे पैर रखता हुआ उसके साथ वेश्या के घर गया ॥206 ॥जिसके समस्त इंद्रियों के विषय काम से आकृष्ट हो चुके थे, ऐसा वह तापस वारी (बंधन) में प्रवेश करने वाले हाथी के समान कुछ भी उपाय नहीं जानता था ॥207॥सो ठीक ही है, क्योंकि काम से ग्रस्त मनुष्य न सुनता है, न सूंघता है, न देखता है, न दूसरे का स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित ही होता है ॥208 । जिस प्रकार अंधा मनुष्य साँपों से भरे कुएं में गिरकर कष्ट और संताप को प्राप्त होता है उसी प्रकार यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और संताप को प्राप्त होता है, यह आश्चर्य की बात है ॥209 ॥तदनंतर वह तापस वेश्या के चरणों में शिर झुकाकर कन्या की याचना करता है और उसी समय पूर्व संकेतानुसार राजा प्रवेश करता है॥210॥ राजा ने उसे बंधवाकर रात्रि-भर रखा और सवेरे छान-बीनकर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥211 ॥तदनंतर अपमान से जला तापस परम दुःख को धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अंत में मरकर दुःखदायी योनियों में भटकता रहा ॥212 ॥तदनंतर कर्मो के प्रभाव से मनुष्य भव को प्राप्त हुआ सो दरिद्रतारूपी कीचड़ में निमग्न तथा लोगों के आदर से रहित नीच कुल में उत्पन्न हुआ ॥213॥ जब वह गर्भ में था तभी कलह के समय क्रूर वचन कहने वाली स्त्री से उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥214॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छों के द्वारा देश पर आक्रमण होने से इसकी माता मर गयी । इस तरह सर्व बंधुओं से रहित होकर वह परम दुःख को प्राप्त होता रहा ॥215 ॥तदनंतर तापस होकर तथा कठिन बालतप कर ज्योतिष लोक में अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥216॥

अथानंतर एक समय धर्म की चिंता में जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्य ने देवों के द्वारा सेवित अनंतवीर्य नामा केवली से पूछा कि हे नाथ ! मुनिसुव्रत भगवान के इस तीर्थ में आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्र से पार होने का कारण होगा ॥217-218॥ तब अनंतवीर्य केवली ने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चले जाने के बाद मुनियों की इस भूमि में एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत् के सारभूत तथा केवलज्ञान और दर्शन के धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागर से पार होंगे ॥219-220॥ वह अग्निप्रभदेव केवली के मुख से यह सुनकर तथा उन्हीं के कथन का ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥221 ॥एक दिन अवधिज्ञान से वह हम दोनों मुनियों को इस पर्वतपर विद्यमान जानकर मैं अनंतवीर्य सर्वज्ञ के वचन मिथ्या करता हूँ इस प्रकार कहकर तीन मोहरो मोहित होता हुआ पूर्व वैर के कारण परम उपद्रव करने के लिए यहाँ आया ॥222-223॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इंद्र के क्रोध से भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधान को प्राप्त हुआ **अर्थ**ात् भाग गया ॥224॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्मों का क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ॥225 ॥इस प्रकार वैर करने वाले प्राणियों की गति-आगति को सुनकर हे प्राणियो ! परस्पर का वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूप में लीन होओ ॥226॥इस प्रकार केवली भगवान् के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसार के दुःखों से भयभीत हुए सुर और असुरों ने उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥227।।

इतने में ही परमऐश्वर्य को प्राप्त सुवर्ण कुमारों के पति ने हाथ जोड़कर मस्तक से लगा केवली भगवान् के चरणकमल में नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुंडलों के धारक राम से कहा । उस समय वह गरुडेंद्र राम की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेम से उसका मन संतुष्ट हो रहा था ॥228-229॥ उसने कहा कि चूंकि तुमने हमारे पुत्रों की परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह मांग लो ॥230॥ राम क्षण-भर चिंता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनंतर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो तो आपत्ति के समय हम लोगों का स्मरण रखना ॥231॥ साधुसेवा के प्रसाद से ही यह प्राप्त हुआ कि आप-जैसे सत्पुरुषों के साथ मिलाप हुआ तथा संसार के द्वार से निकलने का मार्ग मिला ॥232 ॥'ऐसा ही हो' इस प्रकार गरुडेंद्र के कहने पर देवों ने शंख फूंके तथा अनेक प्रकार के

वादित्रों के साथ मेघों के समान शब्द करने वाली भेरियाँ बजायीं ॥233॥ मुनियों के पूर्वभव सुनकर परम संवेग को प्रात हुए कितने ही लोगों ने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतों के धारी हुए ॥234॥ जगत् के द्वारा पूजनीय तथा संसार के समस्त दुःखरूपी मल के समागम से राहत देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणा से युक्त ग्राम, पूर, पर्वत तथा मटंब आदि रमणीय स्थानों में विहारकर धर्म का उपदेश देने लगे ॥235॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियों के इस अतिशय पवित्र चरित्र को उत्तम भावों से युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरों को सुनाते हैं वे सूर्य के समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापों का त्याग करते हैं ॥236॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में देशभूषण, कुलभूषण केवली का व्याख्यान करने वाला उनतालीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥39॥

## रामगिरि

चालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर केवली भगवान् के मुख से राम को चरम शरीरी जानकर समस्त राजाओं ने जयध्वनि के साथ स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया ॥1॥ और उदार चित्त के धारक वंश स्थलपुर नगर के राजा सुरप्रभ ने लक्ष्मण तथा सीता सहित राम की भक्ति की ॥2॥ जो महलों के शिखरों की कांति से आकाश को धवल कर रहा था ऐसे नगर में चलने के लिए राजा ने राम से बहुत याचना की परंतु उन्होंने स्वीकृत नहीं किया ॥3॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरि के शिखर के समान था, जहाँ एक समान लंबे-चौड़े अच्छे रंग के मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओं से व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगंधित वायु से पूर्ण था, नाना प्रकार के पुष्पों और फलों से युक्त था, कमल और उत्पल के वनों से युक्त वापिकाओं से जो अत्यंत शोभित था, तथा सब ऋतुओं के साथ आकर वसंतऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वत के शिखर पर शुद्ध दर्पणतल के समान उत्कृष्ट भूमि तैयार की गयी । उस भूमि पर पाँच वर्ण की धूलि से अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥4-7॥ अनेक प्रकार के भावों से रमणीय चेष्टाओं को धारण करने वाली स्त्रियों ने वहाँ उसी पंचवर्ण की पराग से कुंद, अतिमुक्तकलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुंदर पल्लवों से युक्त अशोकवृक्ष, तथा इनके सिवाय सुंदर कांति और सुगंधि को धारण करने वाले बहुत से अन्य वृक्ष बनाये ॥8-9॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओं के धारक, मंगलमय वार्तालाप में तत्पर और स्वामीभक्ति में निपुण मनुष्यों ने बड़ी तैयारी के साथ नाना चित्रों को धारण करने वाले बादली रंग के वस्त्र फैलाये, सैकड़ों सघन पताकाएँ फहरायीं ॥10-11॥ छोटी-छोटी घंटियों से युक्त सैकड़ों मोतियों की मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिन पर सूर्य को किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊंचे तोरणों तथा ध्वजाओं में लगाये ॥12-13॥ पृथिवी पर जहां-तहां विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखे गये थे जो कमलिनी के वन में बैठे हुए हंसों के समान सुशोभित हो रहे थे ॥14॥श्रीराम जहां-जहां चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवीतल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे ॥15॥ जहां-तहां मणियों और सुवर्ण से चित्रित तथा अतिशय सुखदायक स्पर्श को धारण करने वाले आसन और सोने के स्थान बनाये गये थे ॥16॥ लवंग आदि से सहित तांबूल, उत्तम वस्त्र, महा सुगंधित गंध और देदीप्यमान आभूषण जहां-तहां रखे गये थे ॥17॥ जो सब ओर से नाना प्रकार की भोजन-सामग्री से युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलग से बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजन शालाएँ वहाँ निर्मित की गयी थीं ॥18॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड़, घी और दही से पंकिल (कीच से युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्य पालन करने में तत्पर आदर से युक्त मनुष्यों से सहित थी॥ 19॥ कहीं मधुर आहार से तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छा से बैठे थे तो कहीं निश्चिंतता के साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरे को प्रसन्न कर रहे थे ॥20॥ कहीं से हरे को धारण करने वाला और मदिरा के नशा में झूमते हुए नेत्रों से युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्री की सुगंधि को धारण करने वाली नशा से भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥21॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुंदर विलासों से सहित स्त्रियां पतियों के साथ क्रीड़ा कर रही थीं ॥22॥ कहीं मुसकराते तथा लीला से सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियों के समान वेश्याएं सुशोभित हो रही थीं ॥23॥इस प्रकार सीता सहित राम-लक्ष्मण के जो क्रीड़ास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करने के लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥24॥ जिनके शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥25॥ और अखंड सौभाग्य को

धारण करने वाली तथा पाप के समागम से रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओं से उज्ज्वल क्रीड़ा करती थी ॥26॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वंश गिरि पर जगत् के चंद्रस्वरूप राम ने जिनेंद्र भगवान् की हजारों प्रतिमाएं बनवायीं थीं ॥27॥ तथा जिनमें महा मजबूत खंभे लगवाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदि की रचना से शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणों से युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखा से सहित थे, सफ़ेद और सुंदर पताकाओं से युक्त थे, बड़े-बड़े घंटाओं के शब्द से व्याप्त थे, जिन में मृदंग, बांसुरी और मुरज का संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा । था, जो झांझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियों के शब्द से अत्यंत शब्दायमान थे और जिन में सदा ऐसे राम के बनवाये जिनमंदिरों की पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं॥28-31॥ उन मंदिरों में सब लोगों के द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण को जितप्रतिमाएं सुशोभित थीं ॥32॥

अथानंतर एक दिन कमललोचन राजा रामचंद्र ने लक्ष्मण से कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥33॥इस उत्तम पर्वत पर समय सुख से व्यतीत किया तथा जिनमंदिरों के निर्माण से उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥34॥ इस राजा की सैकड़ों प्रकार की उत्तमोत्तम सेवाओं के वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो संकल्पित कार्य नष्ट होता है ॥35॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगों से प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगों को संतति क्षणभर के लिए भी नहीं छोड़ती है ॥36॥

जो कर्म इस लोक में किया जाता है उसका उपभोग पर लोक में होता है और पूर्वभव में किये हुए पुण्य कर्मों का फल इस भव में प्राप्त होता है ॥37॥ यहाँ रहते तथा सुख-संपदा को धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिर से आगमन नहीं हो सकता ॥38॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेग से बहने वाली नदियों, आयु के दिन और यौवन का जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥39॥कर्णरवा नदी के उस पार रोमांच उत्पन्न करने वाला तथा भूमि गोचरियों का जहाँ पहुंचना कठिन है ऐसा दंडकवन सुना जाता है ॥40॥ देशों से रहित उस वन में भरत की आज्ञा का प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्र का किनारा प्राप्त कर घर बनावेंगे॥41॥जो आज्ञा हो इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इंद्र सदृश भोग छोड़कर वहाँ से निकल गये ॥42॥ वंशस्थविलपुर का राजा सुरप्रभ अपनी सेना के साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुंचाने के लिए गया । राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाई से लौटा सके । तदनंतर शोक को धारण करता हुआ वह अपने नगर में वापस आया ॥43।।

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभा से संपन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओं से युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओं के समूह को लिप्त करने वाली जिनमंदिरों की पंक्ति से अतिशय सुशोभित होता था ॥44॥ चूंकि उस पर्वत पर रामचंद्र ने जिनेंद्र भगवान् के उत्तमोत्तम मंदिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला वह पर्वत 'रामगिरि' के नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥45॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में रामगिरि का वर्णन करने वाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥40॥

## जटायु

इकतालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखने की इच्छा थी तथा जो निरंतर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीता के साथ नगर और ग्रामों से व्याप्त बहुत देशों को पार कर नाना प्रकार के मृगों से व्याप्त महावन में प्रविष्ट हुए ॥1-2॥ ऐसे सघन वन में प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्यों के द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलों के लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतों से व्याप्त था, नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से सघन था, जिसमें अत्यंत विषम गर्त थे, जो गुहाओं के अंधकार से गंभीर जान पड़ता था, और जहाँ झरने तथा अनेक नदियाँ बह रही थीं ॥3-4॥ उस वन में वे जानकी के कारण धीरे-धीरे एक कोश ही चलते थे । इस तरह भय से रहित तथा क्रीड़ा करने में उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदी के पास पहुँचे ॥5॥ जिसके कि किनारे अत्यंत रमणीय, बहुत भारी तृणों से व्याप्त, समान, लंबे-चौड़े और सुखकारी स्पर्श को धारण करने वाले थे ॥6॥ उस कर्ण रवानदी के समीपवर्ती पर्वत, किनारे के उन वृक्षों से सुशोभित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यंत घनी थी तथा जो फल और फूलों से युक्त थे ॥7॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यंत सुंदर हैं ऐसा विचार कर वे एक वृक्ष की मनोहर छाया में सीता के साथ बैठ गये ॥8॥ क्षण-भर वहाँ बैठकर

तथा मनोहर किनारों पर अवगाहन कर वे सुंदर क्रीड़ा के योग्य जलावगाहन करने लगे **अर्थ**ात् जल के भीतर प्रवेश कर जलक्रीड़ा करने लगे ॥9॥तदनंतर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वन के पके मधुर फल तथा फूलों का इच्छानुसार उपभोग किया ॥10॥ वहाँ लक्ष्मण ने नाना प्रकार की मिट्टी, बांस तथा पत्तों से सब प्रकार के बरतन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥11॥ इन सब बरतनों में राजपुत्री सीता ने स्वादिष्ट तथा सुंदर फल और वन की सुगंधित धान के भोजन बनाये ॥12॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षण के समय सीता ने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति नाम के दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशांगण में विहार कर रहे थे, कांति के समूह से उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुंदर थे, मति-श्रुत-अवधि इन तीन ज्ञानी से सहित थे, महाव्रतों के धारक थे, परम तप से युक्त थे, खोटी इच्छाओं से उनके मर रहित थे, उन्होंने एक मास का उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणों से सहित थे, शुभ चेष्टा के धारक थे, बध और चंद्रमा के समान नेत्रों को आनंद प्रदान करते थे और यथोक्त आचार से सहित थे ॥13-16॥ तदनंतर हर्ष के भार से जिसके नेत्रों की शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीर में रोमांच उठ रहे थे ऐसी सीता ने राम से कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो-देखो, तप से जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगंबर मुनियों का यह युगल देखो॥ 17-18॥ राम ने संभ्रम में पड़कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पंडिते ! हे सुंदरदर्शने ! हे गुणमंडने ! तुमने निर्ग्रंथ मुनियों का युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥19॥ वह युगल कि जिसके देखने से हे सुंदरि ! भक्त मनुष्यों का चिरसंचित पाप क्षण-भर में नष्ट हो जाता है ॥20॥ राम के इस प्रकार कहने पर सीता ने संभ्रम पूर्वक कहा कि ये हैं, ये हैं । उस समय राम कुछ आकुलता को प्राप्त हुए ॥ 21॥

तदनंतर युग प्रमाण पृथिवी में जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यंत शांति पूर्ण था और जिनके शरीर प्रमाद से रहित थे, ऐसे दो मुनियों को देखकर दंपती **अर्थ**ात् राम और सीता ने उठकर खड़े होना, सम्मुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओं से उन दोनों मुनियों को पुण्यरूपी निर्झर के झराने के लिए पर्वत के समान किया था॥ 22-23॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धा से युक्त थी ऐसी सीता ने पति के साथ मिलकर दोनों मुनियों के लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥24॥ वह आहार वन में उत्पन्न हुई गायों और भैंसों के ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थों से बना था ॥25॥ खजूर, इंगुद, आम, नारियल, रसदार बेर तथा भिलामा आदि फलों से निर्मित था ॥26॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धि से सहित नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों से उन मुनियों ने पारणा की । उन मुनियों के चित्त भोजन विषयक गृध्रता के संबंध से रहित थे ॥27॥ इस प्रकार समस्त भावों से मुनियों का सन्मान करने वाले राम इन दोनों मुनियों की सेवा कर सीता के साथ बैठे ही थे कि उसे समय आकाश में अदृष्टजनों से ताड़ित दुंदुभि बाजे बजने लगे, घ्राण इंद्रिय को प्रसन्न करने वाल वायु धीरे-धीरे बहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवों का मधुर शब्द होने लगा, आकाश पाँच वर्ण के फूल बरसाने लगा और पात्रदान के प्रभाव से आकाश को व्याप्त करने वाली, महाकांति की धारक, सब रंगों को दिव्य रत्न वृष्टि होने लगी॥28-31॥

अथानंतर वन के इसी स्थान में सघन महावृक्ष के अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छा से बैठा ॥32॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजों को देखकर कर्मोदय के प्रभाव से उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥33॥ कि यद्यपि मैं पूर्व पर्याय में विवे की था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भव में करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकी को धिक्कार हो ॥34॥ हे हृदय ! अब क्यों संताप कर रहा है ? इस समय तो इस कुयोनि में आकर पाप चेष्टाओं में निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥35॥ मित्र संज्ञा को धारण करने वाले तथा अनुकूलता दिखाने वाले पापी बैरियों से प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्न का परित्याग किया है ॥36॥ मोहरूपी अंधकार से व्याप्त होकर मैंने गुरुओं का उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पाप का आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥37॥ अथवा इस विषय में बहुत विचार करने से कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखों का क्षय करने के लिए लोक में मेरी दूसरी गति नहीं है-अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवों को सुख देने वाले इन्हीं दोनों मुनियों की शरण को प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थ की प्राप्ति होगी ॥38-39॥इस प्रकार पूर्वभव का स्मरण होने से जो परम शोक को प्राप्त हुआ था तथा महामुनियों के दर्शन से जो अत्यधिक हर्ष को प्राप्त था ऐसा शीघ्रता से सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रों का धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओं से सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पंख फड़फड़ाकर वृक्ष के शिखर से नीचे आया ॥40-41॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहल से हाथी तथा सिंहादिक बड़े-बड़े जंतु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा । हा मातः ! इस पापी गृध्र की धृष्टता तो देखो; इस प्रकार

विचारकर जिसका चित्त क्रोध से आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दों का उच्चारण किया था ऐसी सीता ने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षी को रोका था तथापि वह बड़े उत्साह से मुनिराज के चरणोदक को पीने लगा ॥42-44॥ चरणोदक के प्रभाव से उसका शरीर उसी समय रत्नराशि के समान नाना प्रकार के तेज से व्याप्त हो गया ॥45॥ उसके दोनों पंख सुवर्ण के समान हो गये, पैर नीलमणि के समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नों की कांति का धारक हो गया और चोंच मूंगा के समान दिखने लगी ॥46॥ तदनंतर अपने आपको अन्यरूप देख वह अत्यंत हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करने के लिए उद्यत हुआ ॥47॥ उस समय जो देव-दुंदुभि का नाद हो रहा था वही उस तेजस्वी की अपनी वाणी से मिलता-जुलता अत्यंत सुंदर साज का काम दे रहा था ॥48॥ दोनों मुनियों की प्रदक्षिणा देकर हर्षाश्रु को छोड़ता हुआ वह नृत्य करने वाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतु के मयूर के समान सुशोभित हो रहा था॥ 49॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणा कर वैडूर्यमणि के समान जो शिलातल था उस पर विराजमान हो गये ॥50॥ और पद्म राग मणि के मान नेत्रों का धारक गृध्र पक्षी भी अपने पंख संचित कर तथा मुनिराज के चरणों में प्रणाम कर अंजली बाँध सुख से बैठ गया ॥51॥ विकसित कमल के समान नेत्रों को धारण करने वाले राम, क्षणभर में तेज से जलती हुई अग्नि के समान उस गृध्र पक्षी को देखकर परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥52॥ उन्होंने पक्षी पर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुण और शीलरूपी आभूषण को धारण करने वाले मुनिराज के चरणों में नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह पक्षी पहले तो अत्यंत विरूप शरीर का धारक था पर अब क्षण-भर में सवर्ण तथा रत्नराशि के समान कांति का धारक कैसे हो गया ? ॥ 53-54॥ महाअपवित्र, सब प्रकार का मांस खाने वाला तथा दुष्ट हृदय का धारक यह गृध्र आपके चरणों में बैठकर अत्यंत शांत कैसे हो गया है ? ॥55॥

तदनंतर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन् । पहले यहाँ नाना जनपदों से व्याप्त एक बहुत बड़ा सुंदर देश था ॥56॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटंब, पुटभेदन, घोष और द्रोण मुख आदि रचनाओं से सुशोभित था ॥57॥ इसी देश में एक कर्णकुंडल नाम का मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था । यह तीव्र पराक्रम से युक्त, शत्रुरूपी कंटकों को भग्न करने वाला, महामानी एवं साधन संपन्न दंडक नाम का धारक था ॥58-59॥हे रघुनंदन ! धर्म की श्रद्धा से युक्त इस राजा ने पापपोषक शास्त्र को समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृत की इच्छा से जल का ही मंथन किया ॥60॥ राजा दंडक की जो रानी थी वह परिव्राजकों की बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकों के स्वामी के द्वारा वह उत्तम भोग को प्राप्त हुई थी ॥61॥ राजा दंडक रानी के वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशा का आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियों का चित्त हरण करने में उद्यत मनष्य क्या नहीं करते हैं ?॥62॥ एक दिन राजा नगर से बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधु को देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मी से सहित थे तथा जिनका मन ध्यान में रु का हुआ था ॥63॥ पाषाण के समान कठोर चित्त के धारक राजा ने उन मुनि के गले में, विषमिश्रित लार से जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला साँप डलवा दिया॥ 64॥'जब तक इस साँप को कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योग को संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थानपर खड़े रहे ॥65॥ तदनंतर बहुत रात्रियाँ व्यतीत हो जाने के बाद उसी मार्ग से निकले हुए राजा ने उन महामुनि को उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देखा ॥66॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराज के गले से सांप अलग कर रहा था । राजा मुनिराज को सरलता से आकृष्ट हो उनके पास गया और साँप निकालने वाले मनुष्य से पूछता है कि यह क्या है ?इसके उत्तर में वह मनुष्य कहता है कि राजन् ! देखो, नरक की खोज करने वाले किसी मनुष्य ने इन ध्यानारूढ़ मुनिराज के गले में सांप डाल रखा है ॥67-68॥जिस सांप के संपर्क से इनके शरीर की आकृति श्याम, खेदखिन्न, दुर्दशनीय तथा अत्यंत भयंकर हो गयी है ॥69॥कुछ भी प्रतिकार नहीं करने वाले मुनि को उसी प्रकार ध्यानारूढ़ देख राजा ने प्रणाम कर उनसे क्षमा माँगी और तदनंतर वह यथास्थान चला गया ॥70॥ उस समय से राजा दिगंबर मुनियों की उत्तम भक्ति करने में तत्पर हो गया और उसने मुनियों के सब उपद्रव कष्ट दूर कर दिये ॥ 71॥ रानी के साथ गुप्त समागम करने वाले परिव्राजकों के अधिपति ने जब राजा के इस परिवर्तन को जाना तब क्रोध से युक्त होकर उसने यह करने की इच्छा की ॥72॥ दूसरे प्राणियों को दुःख देने में जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवन का स्नेह छोड़ निर्ग्रंथ मुनि का रूप धर रानी के साथ संपर्क किया ॥73॥ जब राजा को इस कार्य का पता चला तब वह अत्यंत क्रोध को प्राप्त हुआ । मंत्री आदि अपने उपदेश में निर्ग्रंथ मुनियों की जो निंदा किया करते थे वह सब इसकी स्मृति में झूलने लगा ॥74॥उसी समय मुनियों से द्वेष रखने वाले अन्य दुष्ट लोगों ने भी राजा को प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकों के लिए समस्त मुनियों को घानी में पेलने को

आज्ञा दे दी ॥75॥ जिसके फलस्वरूप गणनायक के साथ-साथ जितना मुनियों का समूह था वह सब, पापी मनुष्यों के द्वारा धानी में पिलकर मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥76॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लोटकर उसी नगरी की ओर आ रहे थे । उन्हें किसी दयालु मनुष्य ने यह कहकर रो का कि हे निर्गंथ ! हे दिगंबरमुद्रा के धारी ! तुम अपने पहले का निर्ग्रंथ वेष धारण करते हुए नगरी में मत जाओ, अन्यथा घानी में पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँ से भाग जाओ ॥77-78॥राजा ने ऋद्ध होकर समस्त निर्ग्रंथ मुनियों को घानी में पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्था को प्राप्त मत होओ, धर्म का आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो॥79।।

तदनंतर समस्त संघ की मृत्यु के दुःख से जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षण-भर के लिए व्रज के स्तंभ की नाईं अकंप-निश्चल हो गये । उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गयी थी **अर्थ**ात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत ? ॥80॥ अथानंतर उन निर्ग्रंथ मुनिरूपी पर्वत को शांतिरूपी गुफा से सैकड़ों दुःखों से प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला॥81॥ उनके नेत्र के अशोक के समान लाल-लाल तेज से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानी उसमें संध्या ही व्याप्त हो गयी हो ॥82॥ क्रोध से तपे हुए मुनिराज के समस्त शरीर में स्वेद की बूंदें निकल आयीं और उनमें लोक का प्रतिबिंब पड़ने लगा॥ 83 ॥ तदनंतर उन मुनिराज ने मुख से 'हाँ' शब्द का उच्चारण किया उसी के साथ मुख से धुआँ निकला जो कालाग्नि के समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥84॥ उस धुआँ के साथ ऐसी ही निरंतर अग्नि निकली कि जिसने इंधन के बिना ही समस्त आकाश को देदीप्यमान कर दिया ॥85॥क्या यह लोक उल्काओं से व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महाप्रलय काल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यंत दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे वेगशाली बड़ी-बड़ी संडासियों से नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणों के खींचने में उद्यत बाँसों का वन ही जल रहा है, इस प्रकार अत्यंत व्याकुलता से भरा यह शब्द जब तक लोक में गूंजता है तब तक उस अग्नि ने समस्त देश को भस्म कर दिया ॥86-89॥उस समय न अंतःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियाँ, न जंगल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥90॥ महान् संवेग से युक्त मुनिराज ने चिरकाल से जो तप संचित कर रखा था यह सबका शब्द क्रोधाग्नि में दग्ध हो गया जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचती ही कैसे ?॥ 21॥ यह दंडक देश था तथा दंडक ही यहाँ का राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दंडक नाम से ही प्रसिद्ध है ॥92॥बहुत समय बीत जाने बाद यहाँ की भूमि कुछ सुंदरता को प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियाँ दिखाई देने लगी हैं ॥93॥ उन मुनि के प्रभाव से यह वन देवों के लिए भी भय उत्पन्न करने वाला है फिर विद्याधरों की तो बात ही क्या है ? ॥94॥ आगे चलकर यह वन सिंह-अष्टापद आदि क्रूर जंतुओं, नाना प्रकार के पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जंगली धान्यों से युक्त हो गया॥ 95॥ आज भी इस वन की प्रचंड दावानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटना का स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥96॥ राजा दंडक बहुत समय तक संसार में भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्र पर्याय को प्राप्त हो इस वन में प्रीति को प्राप्त हुआ है ॥97॥इस समय इस वन में आये हुए अतिशय युक्त हम दोनों को देखकर पापकर्म की मंदता होने से यह पूर्वभव के स्मरण को प्राप्त हुआ है॥98॥ जो दंडक राजा पहले परम शक्ति से युक्त था वह देखो, आज पापकर्मों के कारण कैसा हो गया है? ॥99॥इस प्रकार पापकर्म का नीर सफल जानकर धर्म में क्यों नहीं लगा जाये और पाप से क्यों नहीं विरक्त हुआ जाये ? ॥ 100॥ दूसरे का उदाहरण भी शांति का कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥ 101॥ राम से इतना कहकर मुनिराज ने गृध्र से कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होने वाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥102॥ धैर्य धरो, निश्चिंत होकर कँपकँपी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहाँ ? और सीता सहित राम कहाँ ? ॥103॥ हमारा पड़गाहन कहाँ ? और आत्मकल्याण के लिए दुःख का अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ ? कर्मों की ऐसी ही चेष्टा है ॥104॥ कर्मों की विचित्रता के कारण यह संसार अत्यंत विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है, अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥105॥ पक्षी को समझाने के लिए राम का अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शांति का कारण कहने लगे ॥106॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरी में एक अचल नाम का प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नों से विभूषित गिरिदेवी नाम की स्त्री थी ॥ 107॥किसी दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नाम को धारण करने वाले तथा शुद्ध चेष्टाओं के धारक मुनिराज ने आहार के लिए उसके घर प्रवेश किया ॥108॥ सो विधिपूर्वक परम श्रद्धा को धारण करने वाली गिरिदेवी ने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥109॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणों में मस्तक झुकाकर किसी दूसरे के बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होने की

बात पूछी ॥110॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बात का निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिए ॥ 111॥ तदनंतर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियों के धारक थे तथापि रानी की भक्ति के अनुरोध से वचनगुप्ति को तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुंदर पुत्र होंगे ॥112॥ तदनंतर उन त्रिगुप्त मुनिराज के कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिता ने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥113॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओं के जानकार, कुमार लक्ष्मी से सुशोभित, अनेक भावों से रमण करते तथा लोगों के अत्यंत प्रिय थे ॥114॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तांत हुआ कि गंधवती नाम की नगरी के राजा के सोम नामक पुरोहित था उसकी स्त्री के सुकेतु और अग्निकेतु नाम के दो पुत्र थे । उन दोनों ही पुत्रों में अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेम के कारण बड़े होनेपर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे । समय पाकर सुकेतु का विवाह हो गया । जब स्त्री घर आयी तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस स्त्री के द्वारा अब हम दोनों भाइयों की शय्या पृथक्-पृथक् की जा रही है॥ 115-117॥ इस प्रकार शुभ कर्म के प्रभाव से प्रतिबोध को प्राप्त हो सुकेतु अनंतवीर्य मुनि के पास दीक्षित हो गया ॥118॥ भाई के वियोग से अग्निकेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करने की भावना से वाराणसी में उग्र तापस हो गया ॥ 119॥ स्नेह के बंधन में बँधे सुकेतु ने जब भाई के तापस होने का समाचार सुना तब वह उसे समझाने के **अर्थ** जाने के लिए उद्यत हुआ॥ 120॥ जब वह जाने लगा तब गुरु ने उससे कहा कि । हे सुकेतो ! तुम अपने भाई से यह वृत्तांत कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशांत हो जायेगा॥ 12॥ हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तांत है? इस प्रकार सुकेतु के कहने पर गुरु ने कहा कि दुष्ट भावना को धारणा करने वाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥122॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीर को धारणा करने वाली एक सुंदर कन्या तीन स्त्रियों के साथ गंगा आवेगी । वह दिन के पिछले प्रहर में आवेगी तथा विचित्र वस्त्र को धारण कर रही होगी । इन चिह्नों से उसे जानकर तुम अपने भाई से कहना कि यदि तुम्हारे धर्म में कुछ ज्ञान है तो बताओ इस कन्या का क्या शुभ-अशुभ होने वाला है ? ॥ 123-125॥ तब वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुम से कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चय से सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगर में एक संपत्तिशाली प्रवर नाम का वैश्य रहता है यह उसी की लड़की है तथा रुचिरा नाम से प्रसिद्ध है ॥ 126-127॥यह बेचारी आज से तीसरे दिन मर जायेगी और कंबर नामक ग्राम में विलास नामक वैश्य के यहाँ बकरी होगी । भेड़िया उस बकरी को मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसी के घर भैस होगी और उसके बाद उसी विलास के पुत्री होगी । वह विलास इस कन्या के पिता का मामा होता है ॥128-129॥ ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर तथा गुरु को प्रणाम कर हर्ष से भरा सुकेतु क्रम-क्रम से तापसों के आश्रम में पहुँचा ॥130॥ गुरु ने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्या को देखकर सुकेतु ने अपने भाई अग्निकेतु से कहा और वह सबका सब वृत्तांत उसी प्रकार अग्निकेतु के सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥131॥

तदनंतर वह कन्या जब मरकर चौथे भव में विलास के विधुरा नाम की पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठ ने उस सुंदरी को याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गयी ॥132॥ जब विवाह का समय आया तब अग्निकेतु ने प्रवर से कहा कि यह कन्या भवांतर में तुम्हारी पुत्री थी । ॥ 133॥ यह कहकर उसने कन्या के वर्तमान पिता विलास के लिए भी उसके वे सब भव कह सुनाये । उन भवों को सुनकर कन्या को जातिस्मरण हो गया ॥134॥ जिससे संसार से भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करने का विचार कर लिया । इधर प्रवर ने समझा कि विलास किसी छल के कारण मेरे साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दुषित अभिप्राय को धारण करने वाले प्रवर ने हमारे पिता को सभा में विलास के विरुद्ध अभियोग चलाया परंतु अंत में प्रवर को हार हुई, कन्या आर्यिका पद को प्राप्त हुई और अग्निकेतु तापस दिगंबर मुनि बन गया ॥135-136॥ वृत्तांत को सुनकर हमने भी विरक्त हो अनंतवीर्य नामक मुनिराज के समीप जिनेंद्र दीक्षा धारण कर ली ॥137॥ इस प्रकार मोही जीवों से संसार की संतति को बढ़ाने वाले अनेक खोटे आचरण हो जाया करते हैं॥ 138॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मों के अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख-दुःखादिक को भव-भव में प्राप्त होता है ॥ 139॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार संबंधी दुःखों से अत्यंत भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करने की इच्छा से बार-बार शब्द करने लगा॥ 140॥तब मुनिराज ने कहा कि हे भद्र ! भय मत करो । इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखो की संतति प्राप्त न हो॥ 141॥ अत्यंत शांत हो जाओ, किसी भी प्राणी को पीड़ा मत पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परस्त्री का त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमा से युक्त हो रात्रि भोजन का त्याग करो, उत्तम चेष्टाओं से युक्त होओ, बड़े प्रयत्न से रात-दिन जिनेंद्र भगवान् को हृदय में

धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमों का आचरण करो, प्रमादरहित होकर इंद्रियों को व्यवस्थित कर आत्मध्यान में उत्सुक करो और साधुओं की भक्ति में तत्पर होओ ॥ 142-145॥ मुनिराज के इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षी ने अंजलि बाँध बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्द का उच्चारण कर मुनिराज का उपदेश ग्रहण किया ॥146॥विनीत आत्मा को धारण करने वाला यह श्रावक हम लोगों का विनोद करने वाला हो गया यह कहकर मंद हास्य करने वाली सीता ने उस पक्षी का दोनों हाथों से स्पर्श किया ॥147॥ तदनंतर दोनों मुनियों ने राम आदि को लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगों को इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शांत चित्त को धारण करने वाला यह बेचारा पक्षी कहाँ जायेगा? ॥148॥क्रूर प्राणियों से भरे हुए इस सघन वन में तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की सदा रक्षा करनी चाहिए॥ 149॥ तदनंतर गुरु के वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेह से भरी सीता ने उसके पालन की चिंता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया **अर्थ**ात् अपने पास ही रख लिया ॥150॥ पल्लव के समान कोमल स्पर्श वाले हाथों से उसका स्पर्श करती हुई सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुड़ का स्पर्श करती हुई उसकी माँ विनता ही हो ॥ 151॥

तदनंतर जिनका भ्रमण अनेक जीवों का उपकार करने वाला था ऐसे दोनों निर्ग्रंथ साधु, राम आदि के द्वारा स्तुति पूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थानपर चले गये ॥152॥ आकाश में उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दानधर्म रूपी समुद्र की दो बड़ी लहरें ही हों॥ 153॥ उसी समय एक मदोन्मत्त हाथी को वश कर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥154॥ नाना वर्ण की प्रभाओं के समूह से जिसमें इंद्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वत के समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्ण की राशि देखकर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुक से युक्त थे ऐसे लक्ष्मण को प्रसन्न हृदय राम ने सब समाचार विदित कराया ॥155-156॥ जिसे रत्नत्रय को प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराज के समस्त वचनों का बड़ी तत्परता से पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीता के बिना कहीं नहीं जाता था॥157॥अणुव्रताश्रम में स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियों के उपदेश का स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम-लक्ष्मण के मार्ग में रमण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता था॥ 158॥ अहो ! धर्म का माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्म में शाकपत्र के समान निष्प्रभ था वही कमल के समान सुंदर हो गया ॥159॥पहले जो अनेक प्रकार के मांस को खाने वाला, दुर्गंधित एवं घृणा का पात्र था वही अब सुवर्ण कलश में स्थित जल के समान मनोज्ञ एवं सुंदर हो गया ॥ 160॥ उसका आकार कहीं तो अग्नि की शिखा के समान था, कहीं नीलमणि के सदृश था, कहीं स्वर्ण के समान कांति से युक्त था और कहीं हरे मणि के तुल्य था ॥16॥ राम लक्ष्मण के आगे बैठा तथा अनेक प्रकार के मधुर शब्द कहने वाला वह पक्षी सीता के द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥162॥ जिसका शरीर चंदन से लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियों से अलंकृत था तथा जो रत्नों की किरणों से व्याप्त शिर को धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था॥ 163॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्ण निर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थी इसलिए राम आदि उसे जटायु इस नाम से बुलाते थे । वह उन्हें अत्यंत प्यारा था ॥164॥ जिसने हंस की चाल को जीत लिया था, जो स्वयं सुंदर था और सुंदर विलासों से जो युक्त था ऐसे उस जटायु को देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे॥ 165॥ वह भक्ति से नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओं में सीता के साथ अरहंत, सिद्ध तथा निर्ग्रंथ साधुओं को नमस्कार करता था ॥166॥ धर्म से स्नेह करने वाली दयालु सीता बड़ी सावधानी से उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥167॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृत के समान स्वादिष्ट फलों को खाता और जंगल में उत्तम जल को पीता हुआ निरंतर उत्तम आचरण करता था ॥168॥जब सीता ताल का शब्द देती हुई धर्ममय गीतों का उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वर में स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्य के समान कांति को धारण करने वाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥169॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में जटायु का वर्णन करने वाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥41॥

## दंडक वन में निवास

बयालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर पात्रदान के प्रभाव से सीता सहित राम-लक्ष्मण इसी पर्याय में रत्न तथा सुवर्णादि संपत्ति से युक्त हो गये ॥1॥ तदनंतर जो स्वर्णमयी अनेक बेल-बूटों के विन्यास से सुंदर था, जो उत्तमोत्तम खंभों, वेदि का तथा गर्भगृह से सहित था, ऊँचा था, जिसके झरोखे बड़े-

बड़े मोतियों की माला से सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस, तथा खंडचंद्र आदि सजावट की सामग्री से अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गंध आदि से भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो विमान के समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सब बिना किसी बाधा के जटायु पक्षी के साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्यों के मन को हरण करने वाले वन में विचरण करते थे ॥2-5॥वे उस मनोहर वन में इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥6॥ हम यहाँ निवास करेंगे यहाँ ठहरेंगे इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बैल की नयी घास खाने की इच्छा के समान वन में सुखपूर्वक विचरण करते बड़े-बड़े निर्झरों से गंभीर थे तथा जिन में ऊंचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे-नीचे प्रदेशों को पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥8॥ सिंहों के समान निर्भय हो स्वेच्छा से घूमते हुए वे, भीरु मनुष्यों को भय देने वाले दंडक वन के उस मध्य भाग में प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरि के समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियों के हार के समान सुंदर निर्झर और नदियाँ स्थित थीं ॥9-10॥ जहाँ का वन, पीपल, इमली, बैरी, बहेड़े, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदंब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रंग को धारण करने वाले जामुन, गुलाब, आम, अंवाडा, चंपा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियंगु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नंदी, कौहा, बकौली, चंदन, नीप, भोजपत्र, हिंगुलक, बरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुंद, रंभा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुंद, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैनार, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कथा, रसोंद, आँवला, शमी, हरड, कचनार, करंज, कुष्ट, कालीय, उत्कच, अजमोद कंकोलदालचीनी लौंगमिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कृर्षक, अतिमुक्तक, सुपारी पान, इलायची, लालचंदन, बेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्र, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी चंदन, अरडूक, सेंम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षों से सुशोभित था ॥11-21॥उस वन के लंबे-चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के धान्यों तथा रसीले पौंडों और ईखों से व्याप्त थे ॥22॥ नाना प्रकार की लताओं से युक्त विविध वृक्षों के समूह से वह वन ठीक दूसरे नंदनवन के समान सुशोभित हो रहा था । ॥23॥ मंद-मंद वायु से हिलते हुए अत्यंत कोमल किसलयों से वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदि के आगमन से उत्पन्न हर्ष से नृत्य ही कर रही हो । ॥24॥ वायु के द्वारा हरण की हुई पराग से वह अटवी ऊपर उठी हुई-सी जान पड़ती थी और उत्तम गंध को धारण करने वाली वायु मानो उसका आलिंगन कर रही थी ॥25 ॥वह भ्रमरों की झंकार से ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्झरों के उड़ते हुए जल कणों से ऐसे विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुंदर हास्य ही कर रही हो ॥26॥ चकोर, भेरुंड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुरर, तोता, उलूक, मैना, कबूतर, भृंगराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवी में क्रीड़ा करते थे॥ 27-28॥ पक्षियों के उस मधुर कोलाहल से वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्य में निपुण होने से संभ्रम के साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो॥29॥कलरव करते हुए पक्षी कोमल वाणी से मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँ से आ रही हो और कहाँ आयी हो ॥30॥ सफेद, नीले तथा लाल कमलों से व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरों से वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतूहलवश देखने के लिए उद्यत ही हुआ हो ॥31॥फलों के भार से झुके हुए अग्र भागों से वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो बड़े आदर से राम आदि को नमस्कार ही कर रहा हो और सुगंधित वायु से ऐसा सुशोभित होता था मानो आनंद के श्वासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥32॥ तदनंतर सौमनसवन के समान सुंदर वन को देख-देखकर राम ने विकसित कमल के समान खिले हुए नेत्रों को धारण करने वाली सीता से कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताओं तथा निकटवर्ती गुल्मों और झाड़ियों से ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुटुंब सहित ही हों ॥ 33-34॥ वकुल वृक्ष के वक्षस्थल से लिपटी हुई इस प्रियंगु लता को देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो पति के वक्षःस्थल से लिपटी प्रेम भरी सुंदरी ही हो ॥35॥यह माधवी लता हिलते हुए पल्लव से मानो सौहार्द के कारण ही आम का स्पर्श कर रही है ॥36॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मद से आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओं के समूह को भ्रमरों से रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वन में प्रवेश कर रहा है ॥37॥जो अत्यधिक गर्व को धारण कर रहा है, जो लीला से सहित है, तथा जिसके खुरों के अग्रभाग सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यंत नील भैंसा वज्र के समान सींग के द्वारा वामी के उच्च शिखर को भेद रहा है ॥38॥ इधर देखो, इस साँप के शरीर का बहुत कुछ भाग बिल से बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इंद्रनील मणि के समान नीलवर्ण वाले मयूर को देखकर भयभीत हो फिर से उसी बिल में प्रवेश कर रहा है ॥39॥ हे सिंह के समान नेत्रों को धारण करने वाली तथा फैलती हुई कांति से युक्त प्रिये ! इस मनोहर पर्वत पर गुहा के अग्रभाग में स्थित सिंह की उदात्त चेष्टा को देखो जो इतना दृढ़ चित्त है कि रथ का शब्द सुनकर क्षणभर के लिए निद्रा छोड़ता है और कटाक्ष से उसकी ओर देखकर तथा धीरे से जमुहाई लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठा है ॥40॥

इधर नाना मृगों का रुधिर पान करने से जिसका मुख अत्यंत लाल हो रहा है, जो अहंकार से फूल रहा है, जिसका मुख नेत्रों की पीली-पीली कांति से युक्त है, तथा चमकीले बालों से युक्त जिसकी पूँछ पीछे से घूमकर मस्तक के समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनों के द्वारा वृक्ष के मूलभाग को खोद रहा है ॥41॥ जिन्होंने स्त्रियों के साथ-साथ अपने बच्चों के समूह को बीच में कर रखा है, जिनके चंचल नेत्र बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान हैं, जो कुछ-कुछ दूर्वा के ग्रहण करने में चतुर हैं और कौतुकवश जिनके नेत्र अत्यंत विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीप में आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥42॥ हे सुंदरि ! धीरे-धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाँढों में मोथा लग रहा है, जिसका बल अत्यंत उन्नत है, जिसने अभी हाल नयी कीचड़ अपने शरीर में लगा रखी है, तथा जिसकी नाक बहुत लंबी है ॥43॥ हे सुलोचने ! प्रयत्न के बिना ही जिसका शरीर नाना प्रकार के वर्गों से चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस तृण बहुल वन के एकदेश में अपने बच्चों के साथ अत्यधिक क्रीड़ा कर रहा है ॥44॥ इधर जिसके पंख जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरुण बाज-पक्षी दूर से ही सब ओर देखकर सोते हुए शरभ के मुख से बड़ी शीघ्रता के साथ मांस को छीन रहा है ॥45॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आवर्त से सुशोभित है; जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची काँदौर को धारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रम से सहित है ऐसा यह बैल सुशोभित हो रहा है ॥46॥ कहीं तो यह वन उत्तमोतम सघन वृक्षों से युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकार के तृणों से व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगों के बड़े-बड़े झुंडों से सहित है, कहीं अत्यंत भयभीत कृष्ण मृगों के लिए सघन झाड़ियों से युक्त है ॥47॥ कहीं अतिशय मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा गिराये हुए वृक्षों से सहित है, कहीं नवीन वृक्षों के समूह से युक्त है, कहीं भ्रमर-समूह की मनोहारी झंकार से सुंदर है, कहीं अत्यंत तीक्ष्ण शब्दों से भरा हुआ है ॥48॥ कहीं प्राणी भय से इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निश्चिंत बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जल से रहित हैं, कहीं गुफाओं से जल बह रहा है ॥49॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं नीरस-शुष्क है, कहीं तरुण-हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विषम है, और कहीं अत्यंत सम है ॥50॥ हे प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दंडकवन कर्मों के प्रपंच के समान अनेक प्रकार का हो रहा है ॥51॥ हे सुमुखि ! शिखरों के समूह से आकाशरूपी आँगन को व्याप्त करने वाला यह दंडक नाम का पर्वत है जिसके नाम से ही यह वन दंडक वन कहलाता है ॥52॥ इस पर्वत के शिखर पर गेरू आदि-आदि धातुओं से उत्पन्न हो ऊँची उठने वाली लाल-लाल कांति से आच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल फूलों के समूह से ही व्याप्त हो रहा हो ॥53 ॥इधर इस पर्वत की गुफाओं में दूर से ही अंधकार के समूह को नष्ट करने वाली देदीप्यमान औषधियों की बड़ी-बड़ी शिखाएँ वायुरहित स्थान में स्थित दीपकों के समान जान पड़ती हैं ॥54॥इधर पाषाण-खंडों के बीच अत्यधिक शब्द के साथ बहुत ऊँचे से पड़ने वाले ये झरने मोतियों के समान जलकणों को छोड़ते हुए सूर्य को किरणों के साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥55॥ हे कांते ! इस पर्वत के कितने ही प्रदेश सफेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावली से व्याप्त होकर अत्यंत सुंदर दिखाई देने हैं ॥56 ॥हे वरोष्ठि ! सघन वन में वायु से हिलते हुए वृक्षों के अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्य को किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खंड ही हों ॥57॥हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलों के भार से झुके हुए वृक्षों के समूह से युक्त है; कहीं पड़े हुए पुष्परूपी वस्त्रों से सुशोभित है, और कहीं कलरव करने वाले पक्षियों से व्याप्त है ऐसा यह दंडकवन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥58 ॥इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चंद्रमा के समान सफेद कांति का धारक है, और जो अपने बच्चों पर चंचल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरी मृगों का समूह दुष्ट जीवों के द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मंदगति को नहीं छोड़ रहा है तथा बाल टूट जाने के भय से कठोर एवं सघन झाड़ी में प्रवेश नहीं कर रहा है ॥59॥हे कांते ! इधर इस पर्वत की गुफाओं के आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अंधकार का समुह व्याप्त है ? इधर यह वृक्षों के मध्य में आकाश स्थित है अथवा स्फटिकमणि की शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ़ निद्रा का सेवन कर रहा है इस तरह अत्यंत सादृश्य के कारण इस पर्वत के भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥60॥ हे प्रिये । यह वह क्रौंचरवा नाम की जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टा के समान अत्यंत उज्ज्वल है ॥61॥हे सुकेशि ! जो मंद-मंद वायु से प्रेरित होकर लहरा रहा है, जो तट पर स्थित वृक्षों के पुष्प समूह को धारण कर रहा है और जो कैलास के समान शुक्ल रूप से सुंदर है ऐसा इस नदी का जल अत्यंत सुशोभित हो रहा है ॥62॥ यह जल कहीं तो हंस समूह के समान उज्ज्वल फेन समूह से युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलों के समूह से सहित है, कहीं भ्रमरों के समूह से इसका कमलवन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पाषाणों के समूह से उपलक्षित है ॥63॥यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छों के संचार से विषम है,

कहीं इसका जल अत्यंत वेग से सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी-साधुओं की चेष्टा के समान अत्यंत प्रशांत भाव से बहती है॥64॥ हे शुक्ल दाँतों को धारण करने वाली सीते ! इस नदी का जल एक ओर तो अत्यंत नील शिला समूह की किरणों से मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीप में स्थित सफेद पाषाण खंडों की किरणों से मिलकर सफेद हो रहा है । इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेव के शरीर के समान अत्यंत सुशोभित हो रहा है ॥65 ॥लाल-लाल शिलाखंडों की किरणों से व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदय कालीन पूर्व दिशा के समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंग के पाषाणखंड की किरणों के समूह से जल के मिश्रित होने से शेवाल की शंका से आने वाले पक्षियों को विरस कर रही है ॥66॥हे कांते ! इधर निरंतर चलने वाली वायु के संग से हिलते हुए कमल-समूह पर जो इच्छानुसार अत्यंत मधुर शब्द कर रहा है, निरंतर भ्रमण कर रहा है और उसकी पराग से जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरों का समूह तुम्हारे मुख से निकली सुगंधि के समान उत्कृष्ट सुगंधि से उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥67॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ है तथा बहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदी का जल कहीं तो तुम्हारे मन के समान परम गांभीर्य को धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरों से व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलों से उत्तम स्त्री के देखने से समुत्पन्न नेत्रों की शोभा धारण कर रहा है ॥68॥ इधर कहीं जो नाना प्रकार के कमल वनों में विचरण कर रहा है, प्रेम से युक्त है, उच्च शब्द कर रहा है और तीन मद से विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियों का समूह सुशोभित हो रहा है ॥69 ॥मेघरहित आकाश में विद्यमान चंद्रमा के समान उज्ज्वल मुख को धारण करने वाली हे प्रिये ! इधर जिस पर स्त्रियों सहित क्रीड़ा करने वाले पक्षियों के समूह ने अपने चरण-चिह्न बना रखे हैं ऐसा इस नदी का यह बालुमय तट तुम्हारे नितंबस्थल की सदृशता धारण कर रहा है ॥70 ॥जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों-हावभावरूप चेष्टाओं से सहित तरंग के समान उत्तम भौंहों से युक्त एवं उत्तम शील को धारण करने वाली सुभद्रा सुंदर एवं विस्तृत गुणसमूह से युक्त, शुभ चेष्टाओं के धारक तथा संसार में सर्वसुंदर भरत चक्रवर्ती को प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों पक्षियों के संचार से युक्त जल को धारण करने वाली, भौंहों के समान उत्तम तरंगों से युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यंत सुंदर तथा विस्तृत गुणसमूह से सहित शुभ चेष्टा से युक्त एवं जगत् सुंदर लवणसमुद्र को प्राप्त हुई है ॥71॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलों से अलंकृत हैं, नाना प्रकार के पक्षियों से व्याप्त हैं, निरंतर हैं तथा जल से भरे मेघ-समूह के समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारे के वृक्ष हम दोनों को प्रीति उत्पन्न करने के लिए ही मानो इस नदी कूल में प्राप्त हुए हैं ॥72 ॥इस प्रकार जब राम ने अत्यंत विचित्र शब्द तथा **अर्थ** से सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीता ने आदरपूर्वक कहा ॥73 ॥कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जल से भरी है, लहरों से रमणीय है, हंसादि पक्षियों के समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जल में हम लोग भी क्यों नहीं क्षण-भर क्रीड़ा करें ॥4॥

तदनंतर छोटे भाई लक्ष्मण के साथ-साथ राम ने सीता के वचनों का समर्थन किया और सब रथरूपी घर से उतरकर मनोहर भूमि पर आये॥75॥सर्वप्रथम लक्ष्मण ने नवीन पकड़े हुए हाथी को जंगली मार्गों के बीच चलने से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करने वाला स्नान कराया । उसके बाद उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्ते और फूलों का समूह इकट्ठा किया तथा उसकी योग्य परिचर्या की ॥76॥ तदनंतर जिनका मन नाना प्रकार के गुणों की खान था ऐसे लक्ष्मण ने राम के साथ-साथ नदी में स्नान करना प्रारंभ किया । वे कभी जल के प्रवाह में आगे बढ़े हुए वृक्षों के समूह पर चढ़कर जल में कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना प्रकार की जलक्रीड़ा संबंधी उत्तमोत्तम विधियों का प्रयोग करते थे ॥77॥जो फेन के वलय **अर्थ**ात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियों से सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरंगरूपी मालाओं से युक्त थी, जो मसले हुए सफेद -नीले और लाल कमलपत्रों से व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न हो रहा था और जो एकांत समागम से सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी मानो रघुकुल के चंद्र-रामचंद्र के साथ उपभोग ही कर रही हो ॥78॥ रामचंद्रजी पानी में गोता हत दूर लंबे जाकर कमल वन में छिप गये तदनंतर पता चलने पर शीघ्र ही सीता उनके पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥79॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियों के साथ जल में क्रीड़ा कर रहे थे और कमलों के वन में विचरण करने से उत्पन्न पराग से जिनके पंख सुशोभित हो रहे थे वे अब शीघ्र ही किनारों पर आकर नाना प्रकार के मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों की आसक्ति छोड़कर तथा मन को विषयांतर से रहित कर राम-लक्ष्मण-सीता की श्रेष्ठ जलक्रीड़ा देखने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यंच भी कोमल चित्त के धारक मनुष्यों की मनोहर चेष्टा को समझते हैं जानते हैं ॥80-81 ॥तदनंतर राम ने सीता के साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियों के आघात से जल का बाजा बजाया । उस जलवाद्य का शब्द मृदंग के शब्द से भी अधिक मधुर,

सुंदर और विचित्र था ॥82॥ उस समय राम का चित्त जलक्रीड़ा में आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकार की उत्तम चतुर चेष्टाओं के करने में तत्पर थे । भाई के स्नेह से भरे एवं समुद्रघोष धनुष से सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे । यद्यपि लक्ष्मण अत्यंत वेग से युक्त थे तो भी उस समय वेग को दूर कर सुंदर चाल के चलने में तत्पर थे ॥83 ॥इस प्रकार उज्ज्वल लीला को धारण करने वाले राम भाई और स्त्री के साथ, तट पर स्थित मृगों को हर्ष उपजाने वाली जलक्रीड़ा इच्छानुसार कर गजराज के समान किनारे पर आने के लिए उद्यत हुए॥84॥स्नान के बाद वन में उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओं के द्वारा शरीर वृत्ति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकार की कथाएँ करते हुए जहाँ लताओं के मंडप से सूर्य का संचार रुक गया था ऐसे दंडक वन में देवों के समान आनंद से बैठ गये ॥85॥ तदनंतर जटायु के मस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थी ऐसे राम निश्चिंत चित्त हो इस प्रकार बोले ॥86॥ कि हे भाई ! यहाँ स्वादिष्ट फलों से युक्त नाना प्रकार के वृक्ष हैं, स्वच्छ जल से भरी नदियाँ हैं और लताओं से निर्मित नाना मंडप हैं ॥87 ॥यह दंडक नाम का महापर्वत अनेक रत्नों से परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीड़ा के योग्य नाना प्रदेशों से युक्त है ॥88॥ हम लोग इस पर्वत के समीप अत्यंत मनोहर नगर बनायें और वन में उत्पन्न हुई पोषण करने वाली अनेक भैंसें रख लें ॥89॥ जहाँ दूसरों का आना कठिन है ऐसे इस अत्यंत सुंदर वन में हम लोग देश बसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा संतोष हो रहा है॥90॥ जिनका चित्त हम लोगों में लग रहा है और जो निरंतर शोक के वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओं को, अपना हित करने वाले समस्त परिकर एवं परिवार के साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमें मेरा मन शुद्धता को प्राप्त नहीं हो रहा है ॥91-92॥ऋतु आने पर मैं स्वयं जाऊँगा, तुम सीता के प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥93॥ तदनंतर राम की पहली बात सुनकर लक्ष्मण बड़ी नम्रता से जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये । उसी समय जिनका चित्त प्रेम से आर्द्र हो रहा था ऐसे राम ने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्य से दारुण यह ग्रीष्मकाल तो व्यतीत हुआ अब यह अत्यंत भयंकर वर्षाकाल उपस्थित हुआ है॥94-95॥ जो क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते-फिरते अंजनगिरि के समान जान पड़ते हैं ऐसे बिजली से युक्त ये मेघ दिशाओं को अंधकार से युक्त कर रहे हैं॥96॥ जिस प्रकार जिनेंद्र भगवान् के जन्म के समय देव रत्नराशि की वर्षा करते हैं, उसी प्रकार मेघों का शरीर धारण करने वाले देव निरंतररूप से आकाश को आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं पानी बरसा रहे हैं ॥97॥ जो स्वयं महान् है, अत्यधिक गर्जना करने वाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओं से पर्वतों को और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशांगण में निरंतर विचरण कर रहे हैं तथा जिनमें बिजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं॥98॥ वेगशाली वायु के द्वारा प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ असंयमी मनुष्यों के तरुण हृदयों के समान इधर-उधर घूम रहे हैं ॥99॥ जिस प्रकार विशेषता का निश्चय नहीं करने वाला धनाढ्य मनुष्य कुपात्र के लिए धन देता है उस प्रकार यह मेघ धान्य की भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है॥100॥ इस समय बड़े वेग से नदियां बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़ से युक्त हो जाने के कारण पृथिवी पर विहार करना दुर्भर हो गया है और जल के संबंध से शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥101॥ इस प्रकार राम के कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ । इस तरह अपने सुंदर निवास स्थल में वे नाना प्रकार को स्नेहपूर्ण कथाएं करते हुए सूर्य के परिचय से रहित वर्षाकाल तक सुख से रहे ॥102॥ इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरित में दंडक वन में निवास का वर्णन करने वाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥42॥

## शंबूक वध

तैंतालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चंद्रमा की किरणरूपी बाणों के द्वारा मेघसमूह को जीतकर समस्त विश्व में व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥1॥ जिनका चित्त स्नेह से भर रहा था ऐसी • दिशारूपी स्त्रियों ने उस शरद् ऋतु के स्वागत के लिए ही मानो खिले हुए पुष्प समूह से सुशोभित

वृक्षरूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥2॥ मेघरूपी मल से रहित आकाशरूपी आंगन, मुदित अंजन के समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानी से धुल जाने के कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥3॥ वर्षा कालरूप हाथी, मेघरूपी कलशों के द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्मी का अभिषेक कर बिजलीरूपी कक्षाओं में सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥4॥ भ्रमरों के

समूह बहुत समय बाद कमलिनी के घर जाकर मधुरालाप करते हुए सुख से बैठे थे ॥5॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मग्न हो रहे हैं ऐसी स्वच्छ जल से भरी नदियाँ शरत्कालरूपी वल्लभ को पाकर परम कांति को प्राप्त हो रहीं थीं ॥6॥ वर्षा काल की तीक्ष्ण वायु से रहित वन चिरकाल बाद सुख से बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रा से संगत ही थे नींद ही ले रहे थे ॥7॥ कमलों से युक्त सरोवर तटों पर उत्पन्न हुए वृक्षों के साथ पक्षियों के शब्द के बहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥8॥ जिसने नाना प्रकार के फूलों की सुगंधि धारण की थी तथा जो आकाशरूपी स्वच्छ वस्त्र से सुशोभित थी ऐसी रात्रिरूपी स्त्री उत्तमकालरूपी पति को पाकर मानो चंद्रमारूपी तिलक को धारण कर रही थी ॥9॥ केतकी के फूलों से उत्पन्न पराग के द्वारा शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनी जनों को उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे बह रही थी ॥10 ॥इस प्रकार जिसमें समस्त संसार उत्साह से युक्त था ऐसे उस शरत्काल के प्रसन्नता को प्राप्त होने पर सिंह के समान निर्भय विचरने वाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई राम से आज्ञा प्राप्त कर दिशाओं की ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दंडक वन के समीप घूम रहे थे ॥11-12॥ उसी समय उन्होंने विनयो पवन के द्वारा लायी हुई दिव्य सुगंधि सूंघो । उसे सूंघते ही वे विचार करने लगे कि यह मनोहर गंध किसकी होनी चाहिए ? ॥13 ॥क्या यह गंध विकसित फूलों को धारण करने वाले इन वृक्षों की है अथवा पुष्पसमूहपर शयन करने वाले मेरे शरीर की है ? ॥14॥ अथवा ऊपर सीता के साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥15॥ तदनंतर मगधदेश के सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामी से पूछा कि हे भगवन् ! वह किसकी गंध थी जिसने लक्ष्मण को आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥16 ॥तदनंतर लोगों की चेष्टाओं को जानने वाले, संदेहरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य एवं पापरूपी धूलि को उड़ाने के लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान बोले ॥17॥ कि द्वितीय जिनेंद्र श्रीअजितनाथ के समवसरण मेघवाहन नाम का विद्याधर भयभीत होकर प्रभु की शरण में आया था । उस समय राक्षसों के अधिपति बुद्धिमान् महाभीम ने करुणावश मेघवाहन के लिए इस प्रकार वर दिया था ॥18-19॥कि हे मेघवाहन ! दक्षिणसमुद्र में एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीप में त्रिकूट नाम का पर्वत है सो तू निश्चिंत होकर उसी त्रिकूट पर्वत पर चला जा । वहाँ जंबूद्वीप की जगती (वेदिका) का आश्रय कर दक्षिणदिशा में राक्षसों ने एक लंका नाम की नगरी बसायी है । वहाँ ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य गुप्तवार्ता और सुन । जंबूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र की दक्षिणदिशा में लवणसमुद्र के उत्तरतट का आश्रय कर पृथिवी के भीतर एक लंबा-चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजन के आठवें भाग विस्तृत है । दंडक पर्वत के गुफा द्वार से नीचे जाने पर मणिमय तोरणों से देदीप्यमान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करने पर अलंकारोदय नाम का एक उत्कृष्ट सुंदर नगर दिखाई देता है ॥20-25॥ वह नगर नाना प्रकार के रत्नों की किरणों के समूह से सुशोभित है तथा देवों को भी आश्चर्य उत्पन्न करने में समर्थ है । आकाश में गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्या से रहित मनुष्यों के लिए वह अत्यंत दुर्गम है । वह सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने वाले गुणों से सहित है तथा विविध प्रकार के भवनों से व्याप्त है ॥26-27॥ यदि कदाचित् आपत्ति के समय पर चक्र के द्वारा आक्रांत हो तो उस दुर्ग का आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥28॥ इस प्रकार महाभीम राक्षसेंद्र के कहने पर जो विद्याधर बालक, लंकापुरी गया था उसी से अनेक उत्तमोत्तम संतति उत्पन्न हुई॥29॥जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान् करना सो परमसुख है और मिथ्या कल्पित पदार्थों का ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥30॥ विद्याधरों और देवों के बीच बुद्धिमान् मनुष्यों को शक्ति, कांति आदि गुणों के कारण तिल तथा पर्वत के समान भारी भेद समझना चाहिए ॥31॥ जिस प्रकार कीचड़ और चंदन तथा पाषाण और रत्न में भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवों में भेद है ॥32॥विद्याधर तो गर्भवास का दुःख भोगकर बाद में कर्मोदय की अनुकूलता से विद्या मात्र के धारक होते हैं । ये विद्याधरों के क्षेत्र-विजयार्धपर्वत पर तथा उनके योग्य कुलों में उत्पन्न होते हैं तथा आकाश में चलते हैं इसलिए खेचर कहलाते हैं । परंतु देवों का स्वभाव ही मनोहर है ॥33-34॥ देव सुंदर रूप तथा पवित्र शरीर के धारक हैं, गर्भावास से रहित हैं, मांस-हड्डी तथा स्वेद आदि से दूर हैं और टिमकार रहित नेत्रों के धारक हैं ॥35 ॥वे वृद्धावस्था तथा रोगों से रहित हैं, सदा यौवन से सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेज से युक्त, सूख और सौभाग्य के सागर, स्वाभाविक विद्याओं से संपन्न, अवधिज्ञानरूपी नेत्रों के धारक, इच्छानुसार रूप रखने वाले, धीर, वीर और स्वच्छंद गति से विचरण करने वाले हैं ॥36-37॥हे राजन् ! लंका में रहने वाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किंतु राक्षस द्वीप की रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥38॥ अनेक युगांतरों के साथ उनके वंश का अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परंपरा के अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है॥39॥राक्षस आदि बहुत से प्रशंसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओं के व्यतीत हो चुकने पर उसी वंश में तीन खंड का स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥40॥ उसकी एक दुर्नखा नाम की बहन है जो पृथ्वी पर अपने सौंदर्य की

उपमा नहीं रखती । उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥41॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्यों का विश्वास प्राप्त सेनापति है ॥42॥ वह दिक्कुमार-भवनवासीदेव के समान उदार है । पृथ्वी के मध्य में स्थित अलंकारपुर नाम का नगर उस महाप्रतापी का निवास स्थान है॥43॥ उसके शंबूक और सुंद नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । साथ ही वह अपने संबंधी रावण से भी पृथ्वी पर गौरव को प्राप्त हुआ था ॥44॥ जिसे मृत्यु का फंदा देख रहा था ऐसे शंबूक ने गुरुजनों के द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड□ग प्राप्त करने के लिए भयंकर वन में प्रवेश किया ॥45॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड□ग को प्राप्त करने के लिए उद्यत हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्मा का धारक है, ब्रह्मचारी है और इंद्रियों को जीतने वाला है, ॥46॥ उपयोग पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टि के सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत परवंश की एक झाड़ी में जा बैठा ॥47॥ वह दंडकवन के अंत में क्रौंचरवा नदी और समुद्र के उत्तरतट के बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है ॥48॥ तदनंतर बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड□ग प्रकट हुआ जो सात दिन ठहरकर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करने वाले को ही मार डालता ॥49॥दुर्नखा (चंद्रनखा) पुत्र के स्नेह से उसे बार-बार देखने के लिए उस स्थान पर आती रहती थी सो उसने उसी क्षण उत्पन्न उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड□ग को देखा ॥50॥ जिसका मुख प्रसन्नता से भर रहा था ऐसी दुर्नखा ने अपने पति खरदूषण से कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देकर तीन दिन में आ जायेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं हुआ है ॥51-52॥ इस प्रकार इधर शंबूक की माता चंद्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथ का सदा ध्यान कर रही थी उधर लक्ष्मण वन में घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥53॥ एक हजार देव जिसकी पूजा करते थे, जिसको स्वाभाविक उत्तम गंध थी, जिसका न आदि था न अंत था, जो दिव्य गंध से लिप्त था और दिव्य मालाओं से जो अलंकृत था ऐसे सूर्यहास नामक खड□ग रत्न की गंध लक्ष्मण तक पहुँची ॥ 54-55॥ आश्चर्य को प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्ग से गंध आ रही थी उसी मार्ग से सिंह के समान निर्भय हो चल पड़े ॥ 56॥ । वहाँ जाकर उन्होंने वृक्षों से आच्छादित, लताओं के समूह से घिरा तथा ऊँचे-ऊंचे पाषाणों से वेष्टित एक अत्यंत दुर्गम स्थान देखा ॥ 57॥इसी वन के बीच में एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नों से बना था तथा सुवर्णमय कमलों से अचित था ॥58 ।। उसी समान धरातल के मध्य में एक बांसों का विस्तृत स्तंभ ( भिड़ा ) था जो किसी अज्ञात कुतूहल के कारण सौधर्म स्वर्ग को देखने के लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥59॥

अथानंतर उस बाँसों के स्तंभ में देदीप्यमान किरणों के समूह से सुशोभित एक खड□ग दिखाई दिया जिससे बाँसों के साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥60॥ आश्चर्य चकित लक्ष्मण ने नि:शंक हो वह खड□ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णता को परख करने के लिए उसी वंश स्तंभ को उन्होंने काट डाला ॥61॥ खड□गधारी लक्ष्मण को देखकर वहाँ सब देवताओं ने आप हमारे स्वामी हो यह कहकर नमस्कार के साथ-साथ उनकी पूजा की ॥62॥

अथानंतर जिनके नेत्र कुछ-कुछ आँसुओं से भर रहे थे ऐसे राम ने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ?॥63 ॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाश में दूर तक उड़कर लक्ष्मण कुमार की अच्छी तरह खोज करो ॥64 ॥इस प्रकार राम के करुणा पूर्वक कहने पर जटायु उड़ने को तैयारी करता है कि इतने में सीता अंगुलि ऊपर उठाकर कहती है ॥65॥ कि जिनका शरीर केशर की पंक से लिप्त है, जो नाना प्रकार की मालाओं और वस्त्रों को धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारों से अलंकृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥66॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान खड□ग ले रखा है और इससे ये सिंह से पर्वत के समान अत्यंत सुशोभित हो रहे हैं ॥67॥ लक्ष्मण को वैसा देख राम का मन आश्चर्य से व्याप्त हो गया तथा वे हर्ष को रोकने के लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिंगन किया ॥68॥ पूछने पर लक्ष्मण ने अपना सब वृत्तांत बतलाया । इस तरह राम-लक्ष्मण और सीता□ तीनों प्राणी नाना प्रकार की कथाएँ करते हुए सुख से वहाँ ठहरे ॥69॥

अथानंतर जो चंद्रनखा प्रतिदिन खड□ग को तथा नियम में स्थित पुत्र को देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आयी ॥70॥ आते ही उसने बाँसों के उस समस्त वन को सब ओर से कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवी में रहकर अब कहाँ चला गया ?॥ 71॥ जिस वन में यह रहा तथा जहाँ यह खड□ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षा के लिए उसी वन को काटते हुए पुत्र ने अच्छा नहीं किया ॥72॥ इतने में ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमंडल के समान निष्प्रभ, तथा कुंडलों से युक्त शिर और एक ठूँठ के बीच पड़ा हुआ पुत्र का धड़ देखा ॥73॥उसी क्षण मूर्च्छा ने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्र की मृत्यु से उत्पन्न दुःख से वह पीड़ित नहीं हुई । सचेत होनेपर

हाहाकार से मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाई से पुत्र के शिर पर दृष्टि डाली ॥74-75॥झरते हुए आँसुओं से जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शौक से पीड़ित चंद्रनखा, वन में अकेली कुररी के समान विलाप करने लगी ॥76 ॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा । हाय दैव ! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥77॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्र को निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥78॥निश्चय ही मुझ पापिनी ने अन्य जन्म में किसी का पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ है ॥79॥हे पुत्र! तू मुझ से उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशा को कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्था में तू दुःख को दूर करने वाला एक वचन तो मुझे हे----एक बार तो मुझ से बोल ॥80॥आओ वत्स ! अपना मनोहर रूप धरकर आओ । यह तेरी अमंगल रूप छल क्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥81 ॥हाय वत्स ! भाग्यवश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है । यह कार्य अन्य प्रकार से सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥82 ॥तूने कभी भी माता के प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अब यह अकारण विनय का त्याग क्यों कर रहा है ?॥83 ॥सूर्यहास खड□ग सिद्ध होनेपर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसार में चंद्रहास से आवृत की तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा ? ॥84॥ चंद्रहास खड□ग मेरे भाई के पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड□ग को सहन नहीं किया है ॥85॥ तू इस भयंकर वन में अकेला रहकर नियम का पालन करता था किसी का कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रु का हाथ तुझे मारने के लिए आगे बढ़ा ?॥86 ॥तुम्हें मारते हुए उस शत्रु ने शीघ्र ही प्रकट होने वाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है । अब वह अविचारी पापी कहाँ जायेगा? ॥87॥ इस प्रकार उत्तम पुत्र को गोद में रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूंगा के समान लाल हो गये थे ऐसी चंद्रनखा ने हाथ में लेकर पुत्र का चुंबन किया ॥88॥
तदनंतर क्षण एक में शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओं की धारा नष्ट हो गयी और तीव्र क्रोध धारण करने से उसका मुख दमकने लगा ॥89॥ वह मार्ग के समीप में ही स्थित उस स्थानार इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्त को बाँधने वाले दोनों तरुण-राम-लक्ष्मण को देखा ॥90 ॥उन्हें देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेश के समान उसके स्थानपर परम रागरूपी रस आ जमा ॥11 ॥इसके बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषों में से मैं अपने इच्छुक पुरुष को वरूँगी इस प्रकार उसके मन में ऊँची तरंगें उठने लगीं ॥12॥ ऐसा विचार कर वह कन्या भाव को प्राप्त हुई । वह उस समय भावरूपी गुफा में वर्तमान हृदय से अत्यंत आतुर हो रही थी ॥13॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनी के झुंड में, महिषी (भैंस) महासरोवर में और हरिणी धान्य में अभिलाषा से युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मण में अभिलाषा से युक्त हो गयी ॥94॥ वह हाथ की अंगुलियाँ चटखाती हुई भयभीत मुद्रा में पुन्नाग वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगी ॥95॥ जो अत्यंत दीन शब्द कर रही थी, तथा वन की धूलि से धूसरित थी ऐसी उस कन्या को देख सीता का हृदय दया से द्रवीभूत हो गया ॥96 ॥वह उठकर उसके पास गयी तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी । तदनंतर डरो मत यह कहकर उसका हाथ पकड़कर पति के पास ले आयी । उस समय वह कुछ-कुछ लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्र को धारण किये हुई थी । सीता उसे शुभ वचनों से सांत्वना दे रही थी ॥97-98।।
तदनंतर राम ने उससे कहा कि हे कन्ये! जंगली जानवरों से भरे इस वन में अतिशय दुःख से युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है ?॥ 99 ॥तदनंतर संभाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमल के समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूह का अनुकरण करने वाली वाणी से बोली ॥100॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्छा आने पर मेरी माता मर गयी और उसके उत्पन्न शोक से पिता भी मर गये ॥101 ॥इस तरह पूर्वोपाजित पाप के कारण बंधुजनों से रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दंडकवन में प्रविष्ट हुई थी ॥102 ॥पाप का माहात्म्य तो देखो कि मैं यद्यपि मृत्यु की इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वन में दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥103 ॥चिरकाल से इस निर्जन वन में भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्म के क्षय से आज आप सज्जनों के दर्शन किये हैं ॥104॥ जो पहले का अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्य से मैत्रीभाव प्रकट करता है, विना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा बिना आदर के शून्य चित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता? ॥105-106॥ ऐसी होनेपर भी हे सुंदर ! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दुःखिनी पर दया करो ॥107॥ जो न्याय से संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की बाधाओं से रहित है, तथा जिसकी कल्याणरूप प्रकृति है ऐसी कन्या को इस संसार में कौन नहीं चाहता ?॥108॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जा शून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरे को देखते हुए चुप रह गये ॥109॥ समस्त शास्त्रों के **अर्थ**ज्ञानरूपी जल से धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्यों में अत्यंत प्रकाशित हो रहा था ॥110 ॥दुःख-भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं

जाती हूँ तब राम आदि ने उत्तर दिया कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ॥111 ॥उसके जाते ही उसकी अकुलीनता से प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीता के साथ आश्चर्य से चकित हो हँसने लगे ॥112॥

तदनंतर शोक से व्याकुल चंद्रनखा मन मार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गयी ॥113॥ लक्ष्मण उसकी सुंदरता से हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चंचल हो रहे थे । वे उसे पुनः देखने की इच्छा करते हुए विरह से आकुल हो गये ॥114॥ वे किसी अन्य कार्य के बहाने राम के पास से उठकर चंद्रनखा की खोज में व्यग्र होते हुए पैदल ही वन में भ्रमण करने लगे ॥115॥ जिनका हृदय अत्यंत खिन्न था, जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषय में प्रकट हुए चंद्रनखा के प्रेम की उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेम से परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप-यौवन-सौंदर्य तथा अनेक गुणों से परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनी के समान चलती थी ऐसी उस सती का मैंने आने तथा दिखने के साथ ही स्तनों को पीड़ित करने वाला आलिंगन क्यों नहीं किया ॥116-118॥ उसके वियोग से मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु□ करने योग्य कार्य से च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्नि के द्वारा निर्वाध रूप से जल रहा है ॥119॥ वह किस देश में उत्पन्न हुई है । किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्रों की धारक झुंड से बिछुड़ी हरिणी के समान यहाँ कहाँ से आयी थी ? ॥120॥ इस प्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देखकर जो अत्यंत व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मण ने उस वन को सब ओर से आकाशपुष्प के समान माना था ॥121॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्त के धारक मनुष्यों को इस तरह परमार्थ के जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारंभ नहीं करना चाहिए । क्योंकि जो बालकों के समान निर्बुद्धि मनुष्य अयोग्य विषय में चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्ति से रहित हो परम शोक को धारण करते हैं ॥122॥यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिए ? वह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्यों का अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख-शांति प्राप्त कर पाते हैं । इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विवेक का कर्ता होता है वह सूर्य की तरह निर्मल होता हुआ लोक के मार्ग में सुशोभित होता है ॥123॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में शंबूक के वध का वर्णन करने वाला तैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 43॥

## सीताहरण और रामविलाप

चौवालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जब अनिच्छा से चंद्रनखा का काम नष्ट हो गया तब तट को भग्न करने वाले नद के समान दुःख का पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥ 1॥ जिसका शरीर शोकरूपी अग्नि से संतप्त हो रहा था ऐसी चंद्रनखा, मृतवत्सा गाय के समान व्याकुल होकर नाना प्रकार का विलाप करने लगी॥ 2॥ जो पूर्वोक्त अपमान को धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनता में स्थित था तया जिसके नेत्रों से अश्रु झर रहे थे ऐसी चंद्रनखा को खरदूषण ने देखा॥3॥जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवी की धूलि से धूसरित थी, जिसके केशों का समूह बिखरा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गयी थी, जिसकी बगलों, जाँघों तथा स्तनों की भूमि नखों से विक्षत थी, जो रुधिर से युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्य से रहित थी,जिसकी चोली फट गयी थी, जिसके शरीर का स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मदोन्मत्त हाथी के द्वारा मुदित कमलिनी के समान जान पड़ती थी ऐसी चंद्रनखा को सांत्वना देकर खरदूषण ने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्ट के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त करायी गयी हो ? ॥4-7॥ आज किसका आठवाँ चंद्रमा है ? मृत्यु के द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़ की चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्प के साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥8॥ कौन अंधा कुएँ में आकर पड़ा है ? किसका देव अशुभ है ? और मेरी प्रज्वलित क्रोधाग्नि में कौन पतंग बनकर गिरना चाहता है ?॥ 9॥ जिसका मन विवेक से रहित है, जो अपवित्र आचरण करने वाला है और जिसने दोनों लोकों को दूषित किया है उस पशुतुल्य पापी को धिक्कार है॥ 10॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्री के समान थोड़े ही हो । वडवानल की शिखा के समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो॥ 11॥ निरंकुश हाथी को सिंह के समान मैं आज ही उसे हस्ततल से पीसकर यमराज के घर भेज दूंगा॥ 12॥ इस प्रकार कहने पर कड़े कष्ट से रोना छोड़कर वह गद्गद वाणी में बोली । उस समय उसके कपोल आंसूओं से भीग रहे थे तथा बिखरे हुए बालों से आच्छन्न थे ॥13॥ उसने कहा कि मैं अभी वन के मध्य में स्थित पुत्र को देखने के लिए गयी थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥

14॥ निरंतर निकली हुई रुधिर की धाराओं से वंशस्थल का मूल भाग अग्नि से प्रज्वलित के समान दिखाई देता है॥ 15॥ शांति से बैठे हुए मेरे सुपुत्र को किसीने मारकर पूजा के साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड□ग रत्न ले लिया है ॥16॥ जो हजारों दुःखों का पात्र तथा भाग्य से हीन है ऐसी मैं पुत्र के मस्तक को गोद में रखकर विलाप कर रही थी ॥17॥ कि शंबूक का वध करने वाले उस दुष्ट ने दोनों भुजाओं से मेरा आलिंगन किया तथा कुछ अनर्थ करने की इच्छा की ॥18॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्श के वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥19॥ उसने उस निर्जन वन में नखों तथा दांतों से छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशा को प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिए कि अबला कहां और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥20॥ इतना सब होनेपर भी किसी अवशिष्ट पुण्य ने मेरी रक्षा की और मैं चारित्र को अखंडित रखती हुई बड़े कष्ट से आज उससे बचकर निकल सकी हूँ॥ 21॥ जो समस्त विद्याधरों का स्वामी है, तीन लोक के क्षोभ का कारण है, और इंद्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नामधारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैवयोग से मैं इस अवस्था को प्राप्त हुई हैं ॥22-23॥

तदनंतर चंद्रनखा के वचन सुनकर शोक और क्रोध से ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषण ने स्वयं जाकर पुत्र को मरा देखा ॥24॥ यद्यपि वह पहले मृग के समान नेत्रों को धारण करने वाला और पूर्ण चंद्रमा के समान उज्ज्वल था तो भी पुत्र को मरा देख ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान भयंकर हो गया ॥25॥ उसने शीघ्र ही वापस आकर और अपने भवन में प्रवेश कर मित्रों के साथ स्वल्पकालीन मंत्रणा की॥ 26॥ उनमें से कठोर अभिप्राय के धारक तथा सेवा में तत्पर रहने वाले कितने ही मंत्री राजा का अभिप्राय जानकर शीघ्र हो कहने लगे कि जिसने शंबुक को मारा है तथा खड□ग रत्न हथिया लिया है । हे राजन् ! यदि उसकी उपेक्षा की जायेगी तो वह क्या नहीं करेगा? ॥27-28॥ कुछ विवेकी मंत्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ! यह कार्य जल्दी करने का नहीं है इसलिए सब सामंतों को बुलाओ और रावण को भी खबर दी जाये॥ 29 । जिसे खड□ग रत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वश में कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूह के द्वारा करने योग्य इस कार्य में उतावली करना ठीक नहीं है ॥30॥

तदनंतर उसने गुरुजनों के वचनों के अनुरोध से रावण को खबर देने के लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लंका को भेजा ॥31॥ उधर कार्य सिद्ध करने में तत्पर रहने वाला वह दूत, किसी राज्य धैर्य के कारण चिर काल तक रावण के पास बैठा रहा ॥32॥ इधर तीन क्रोध से जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्र के गुणों में बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि माया से रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियों के द्वारा, क्षोभ को प्राप्त हुआ दिव्य सेनारूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥33-34॥ हमारी इस शूरवीरता को धिक्कार है जो अन्य सहायकों की वांछा करती है । मेरी वह भुजा किस काम को जो अपनी ही दूसरी भुजा की इच्छा करती है ॥35॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमान को धारण कर रहा था तथा क्रोध के कारण जिसका मुख कंपित हो रहा था ऐसा शीघ्रता से भरा खरदूषण मित्रों के बीच से उठकर आकाश में जा उड़ा ॥36॥उसे हठ में तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहले से तैयार थे क्षण भर में नगर से बाहर निकल पड़े ॥37॥राक्षसों की उस सेना के, क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के समान शब्द वाले वादित्रों का शब्द सुनकर सीता सय को प्राप्त हई ॥38॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दों का उच्चारण करती हुई वह भर्तार से उस प्रकार लिपट गयी जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्ष से लिपट जाती है॥ 39॥ नहीं डरना चाहिए, नहीं डरना चाहिए इस प्रकार उसे सांत्वना देकर राम ने विचार किया कि यह अत्यंत दुर्धर शब्द किसका होना चाहिए ?॥40॥ क्या यह सिंह का शब्द है या मेघ को ध्वनि है अथवा समुद्र की गर्जना समस्त आकाश को व्याप्त कर रही है ॥41॥ उन्होंने सीता से कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है ये मनोहर गमन करने वाले तथा पंखों को हिलाने वाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आँगन में शब्द करते हुए जा रहे हैं॥ 42॥ अथवा तुझे भय उत्पन्न करने वाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलय को प्राप्त करा दूं ॥43॥ तदनंतर नाना प्रकार के शस्त्रों से युक्त, वायु से प्रेरित मेघसमूह के समान दिखने वालो बड़ी भारी सेना को समीप में आती देख राम ने कहा कि क्या ये महातेज के धारक देव भक्तिपूर्वक जिनेंद्र देव की वंदना करने के लिए नंदीश्वर द्वीप को जा रहे हैं॥ 44-45॥ अथवा बाँस के भिड़े को छेदकर तथा किसी मनुष्य को मारकर यह खड□गरत्न लक्ष्मण ने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुंचे हैं ॥46॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्री ने हम लोगों को दुःख देने के लिए आत्मीय जनों को क्षोभित किया है॥ 47॥ अब निकट में आयी हुई सेना की उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर राम ने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥48॥ तब लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥49॥आप राजपुत्री की रक्षा कीजिए और मैं शत्रु की ओर जाता हूँ । यदि मुझ पर आपत्ति आवेगी तो मेरे

सिंहनाद से उसे समझ लेना ॥50॥ इतना कहकर जो कवच से आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्ध के लिए तत्पर हो शत्रु की ओर मुख कर खड़े हो गये॥ 51॥ उत्तम आकार के धारक, मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मण को देखकर आकाश में स्थित विद्याधरों ने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वत को घेर लेते हैं॥ 52॥ विद्याधरों के द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, भाले और बाणों का लक्ष्मण ने अपने शस्त्रों से अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥53॥ तदनंतर वे विद्याधरों के द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रों को रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोड़ने को तत्पर हुए॥ 54॥अकेले लक्ष्मण ने विद्याधरों की वह बड़ी भारी सेना अपने बाणों से उस प्रकार रोक लो जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञान के द्वारा खोटी इच्छा को रोक लेते हैं ॥55॥ मणिखंडों से युक्त तथा कुंडलों से सुशोभित शत्रुओं के शिर आकाशरूपी सरोवर के कमलों के समान कट-कटकर आकाश से पृथिवी पर गिरने लगे ॥56॥ पर्वतों के समान बड़े-बड़े हाथी-घोड़ों के साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठों को डंसने वाले बड़े-बड़े योद्धा भयंकर शब्द करने लगे ॥57 । उन सबको मारते हुए लक्ष्मण को यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपर की ओर जाने वाले बाणों से योद्धाओं को उनके वाहनों के साथ ही छेद देते थे **अर्थ**ात् एक ही प्रहार में वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओं को नष्ट कर देते थे ॥58॥
तदनंतर इसी बीच में शंबूक के वधकर्ता को मारने के लिए विचार करने वाला, क्रोध से भरा रावण पुष्पक विमान में बैठकर वहाँ आया ॥ 59॥आते ही उसने महामोह में प्रवेश कराने वाली तथा रति और अरति को धारण करने वाली साक्षात् लक्ष्मी के समान स्थित सीता को देखा ॥60॥ उस सीता का मुख चंद्रमा के समान सुंदर था, वह बंधक पुष्प के समान उत्तम ओष्ठों को धारण करने वाली थी, कृशांगी थी, लक्ष्मी के समान थी, कमलदल के समान उसके नेत्र थे॥61॥ किसी बड़े हाथी के गंडस्थल के अग्रभाग के समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवन के उदय से संपन्न तथा समस्त स्त्री गुणों से सहित थी ॥62॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुष को अनायास ही मारने के लिए कामदेव के द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो । कांति ही उस धनुष रूपी लता की डोरी थी और नेत्र ही उस पर चढ़ाये हुए बाण थे ॥63॥वह सबकी स्मृति को चुराने वाली थी, अत्यंत रूपवती थी और कामरूपी महाज्वर को उत्पन्न करने वाली थी ॥64॥ उसे देखते ही रावण का क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मन की गति विचित्र है ॥65॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके विना मेरे घर की शोभा क्या है ? ॥66॥ इसलिए जब तक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुंदरी का अपहरण करता हूँ ॥67॥ यद्यपि इस कार्य को बलपूर्वक सिद्ध करने की शक्ति मुझ में विद्यमान है किंतु यह कार्य ही ऐसा है कि छिपाने के योग्य है ॥68॥ लोक में अपने गुणों को प्रकट करने वाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुता को प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकार के दोषों को प्रकट करने वाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥69॥ मेरी चंद्रमा की किरणों के समान निर्मल कीर्ति समस्त संसार में व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करनेपर मलिन न हो जाये ॥70॥ इसलिए अकीर्ति की उत्पत्ति को बचाता हुआ वह स्वार्थ सिद्ध करने में तत्पर हो एकांत में प्रयत्न करता है सो ठीक ही हे क्योंकि लोक परमगुरु है **अर्थ**ात् संसार के प्राणी बड़े चतुर हैं ॥71॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्या के द्वारा सीता के हरण करने का वास्तविक उपाय जान लिया । राम-लक्ष्मण तथा सीता के नाम-कुल आदि सबका उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो गया॥72॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणों से प्रसिद्ध सीता है॥ 73॥ इसके बाद उस रावण ने इस धनुर्धारी राम के लिए आपत्ति स्वरूप सिंहनाद कर के सीता को ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीध के मुख की मांसपेशी को ले लेता है॥ 74॥ स्त्री के बेर से अत्यंत क्रोध को प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रों से इन दोनों भाइयों को क्षण-भर में मार डालेगा॥ 75॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यंत तीव्र है ऐसे नद में दोनों तटों को गिराने की शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥76॥ ऐसा विचारकर काम से पीड़ित तथा बालक के समान विवेकशून्य हृदय को धारण करने वाले रावण ने सीता के हरण करने का उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारने के लिए विषपान का निश्चय करता है॥ 77॥
अथानंतर जब लक्ष्मण और खरदूषण के बीच शस्त्रों के अंधकार से युक्त महायुद्ध हो रह था तब रावण ने सिंहनाद कर बार-बार राम ! राम॥ इस प्रकार उच्चारण किया ॥78॥ उस सिंहनाद को सुनकर राम ने समझा कि यह लक्ष्मण ने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरति को प्राप्त हुए ॥79॥ तदनंतर उन्होंने सीता को अत्यधिक मालाओं से अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षण-भर यहाँ ठहरो, भय मत करो ॥80 । सीता से इतना कहने के बाद उन्होंने जटायु से भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकार का स्मरण रखते हो तो मित्र को स्त्री की प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥81॥ इतना कहकर यद्यपि क्रंदन करने वाले

पक्षियों ने उन्हें रो का भी था तो भी वे निर्जन वन में सीता को छोड़कर वेग से युद्ध में प्रविष्ट हो गये ॥82॥
इसी बीच में विद्या के आलोक से निपुण रावण, कपालिनी को हाथी के समान दोनों भुजाओं से सीता को उठाकर आकाश में स्थित पुष्पक विमान में चढ़ाने का प्रयत्न करने लगा । उस समय उसकी आत्मा काम की दाह से दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्मबुद्धि को भुला दिया था ॥83-84॥ तदनंतर स्वामी को प्रिय वनिता को हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जटायु, वेग से आकाश में उड़कर खून से गीले रावण के वक्षःस्थलरूपी खेत को अत्यंत तीक्ष्ण अग्रभाग को धारण करने वाले नखरूपी हलों के द्वारा जोतने लगा ॥85-86॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायु ने वायु के द्वारा वस्त्रों को फाड़ने वाले कठोर तथा वेगशाली पंखों के आघात से रावण के समस्त शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला॥87॥ तदनंतर इष्ट वस्तु में बाधा डालने से क्रोध को प्राप्त हुए रावण ने हस्ततल के प्रहार से ही जटायु को मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया **अर्थ**ात् नीचे गिरा दिया॥ 88॥ तदनंतर कठोर प्रहार से जिसका मन अत्यंत विकल हो रहा था ऐसा दुःख से भरा जटायु पक्षी कें-कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया॥ 89॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधा के सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर काम को ठीक जानने वाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥90॥सीता का राम में अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोक के वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥11॥ तदनंतर अपने भर्ता में जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीता को रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥92॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदय में मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरे के लिए ही करुण रुदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उसी के विरह से आकुल हो रही है ॥93॥ सत्पुरुषों को इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष संबंधी गुणों का बार-बार कथन करती हुई यह अत्यंत शोक के धारण करने में तत्पर है॥ 94॥ तो क्या इस खड□ग से इस मूर्खा को मार डालूँ अथवा नहीं, स्त्री को मारने के लिए चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥95॥ अथवा अधीर होने की बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार इष्टवस्तु का पाना, कांति अथवा कीर्ति का प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मन को आनंद देने वाली भार्या अथवा ओर भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते□ उन्हें प्राप्त करने के लिए समय लगता ही है॥ 96-97॥ मैंने साधुओं के समक्ष पहले यह नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मुझ पर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूंगा ॥28॥ इसलिए इस व्रत की रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नता को प्राप्त कराता हूँ, संभव है कि यह समय पाकर मेरी संपदा के कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥99॥ ऐसा विचार कर रावण ने सीता को गोद से हटाकर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्म से प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समय की प्रतीक्षा करती ही है ॥100॥
अथानंतर बाणरूपी जल की धाराओं से आकुल युद्ध के मैदान में राम को प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा॥ 101॥ कि हाय देव ! बड़े दुःख की बात है आप विघ्नों से व्याप्त वन में सीता को अकेली छोड़ इस भूमि में किस लिए आये ? ॥102॥ राम ने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रता से यहाँ आया हूँ । इसके उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइए, आपने अच्छा नहीं किया॥ 103॥ परम उत्साह से भरे हुए तुम बलवान् शत्रु को सब प्रकार से जीतो इस प्रकार कह कर शंका से युक्त तथा चंचल चित्त के धारक राम जानकी की ओर वापस चले गये ॥104॥ जब गम क्षण-भर में वहाँ वापस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटना से राम ने अपने वित्त को नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥105॥ हा सीते! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ता के द्वारा आलिंगित भूमि सुशोभित हो उठी॥ 106॥ तदनंतर जब संज्ञा को प्राप्त हुए तब वृक्षों से व्याप्त वन में इधर-उधर दृष्टि डालते हुए प्रेमपूर्ण आत्मा के धारक राम, अत्यंत व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥107॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गयी हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करने से क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें वृक्षों के मध्य चलती हुई देखा है॥ 108॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करने से क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करने से मुझे सुख नहीं होता है ॥ 109॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओं से युक्त उस स्थान में भ्रमण करते हुए राम ने धोरे-धीरे कें-कें करते हुए मरणोन्मुख जटायु को देखा ॥110॥ तदनंतर अत्यंत दुःखित होकर राम ने उस मरणोन्मुख पक्षो के कान में णमोकार मंत्र का जाप दिया और उसके प्रभाव से वह पक्षी देवपर्याय को प्राप्त हुआ ॥111॥ वियोगाग्नि से व्याप्त राम उस पक्षी के मरने पर शोक से पीड़ित हो निर्जन वन में पुनः मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥112॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशता के कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥113॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयंकर वन में छिद्र पाकर कठोर कार्य करने वाले किसी दुष्ट ने सीता का हरण कर मुझे

नष्ट किया है ॥114॥अब बिछुड़ी हुई उस सीता को दिखाकर समस्त शोक को दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वन में मेरे परम बांधवपने को प्राप्त होगा॥ 115॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चंपा के फूल के समान कांति है, कमलदल के समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यंत सुकुमार है, जो स्वभाव से भीरु है, उत्तम गति से युक्त है, हृदय में आनंद उत्पन्न करने वाली है, जिसके मुख की वायु कमल की पराग के समान सुगंधित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है॥ 116-117॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कहकर उसके गुणों से आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥118॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुष को चढ़ाकर टंकार का विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरश्रेष्ठ राम ने बार-बार अत्यंत तीक्ष्ण सिंहनाद किया । उनका वह सिंहनाद सिंहों को भय उत्पन्न करने वाला था तथा हाथियों ने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥ 119-120॥ पुनः विषाद को प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छद को उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देने वाले अपने प्रमाद के प्रति शोक करने लगे ॥121॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धि को हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मण के सिंहनाद को अच्छी तरह नहीं श्रवण कर विचार के बिना ही शीघ्रता से जाते हुए मैंने प्रिया को हरा दिया है ॥122॥ जिस प्रकार संसाररूपी वन में एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभ कार्य करने वाले प्राणी को पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रिया का पुनः पाना कठिन है । अथवा समुद्र में गिरे हुए त्रिलोकी मूल्य रत्न को कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकाल में भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥123-124॥ यह महागुणों से युक्त वनितारूपी अमृत मेरे हाथ में स्थित होनेपर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपाय से प्राप्त हो सकेगा? ॥125॥ इस निर्जन वन में किसे दोष दिया जाये ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोध से वह बेचारी कहीं चली गयी है ॥126॥ मैं पापचारी निर्जन वन में किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछ जो मुझे प्रिया का समाचार बता सके॥ 127॥ "यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है" इस प्रकार अमृत को प्रदान करने वाले वचन से कौन पुरुष मेरे मन और कानों को परम आनंद प्रदान कर सकता है ?॥128॥ इस संसार में ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी मुसकुराती हुई निष्पाप कांता को मुझे दिखला सकता है ? ॥129॥ प्रिया के विरहरूपी अग्नि से जलते हुए मेरे हृदयरूपी घर को कौन मनुष्य समाचार रूपी जल देकर शांत करेगा ? ॥130॥ इस प्रकार कहकर जो परम उद्वेग को प्राप्त थे, पृथ्वी पर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यंत निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥131॥ अथानंतर कुछ ही दूरी पर उन्होंने चकवी का मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशा में दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥132॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वत के समीप ही गंध से सूचित होने वाला कमलवन है सो क्या वह कुतूहल वश उस कमलवन में गयी होगी ? ॥ 133॥ नाना प्रकार के फूलों से व्याप्त तथा मन को हरण करने वाला वह स्थान उसका पहले से देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षण-भर के लिए उसके चित्त को हर रहा हो ॥134॥ऐसा विचारकर वे उस स्थान पर गये जहाँ चकवी थी । फिर मेरे बिना वह कहाँ जाती है यह विचारकर वे पुनः उद्वेग को प्राप्त हो गये ॥135॥ अब वे पर्वत को लक्ष्य कर कहने लगे कि हे नाना प्रकार की धातुओं से व्याप्त पर्वत राज ! राजा दशरथ का पुत्र पद्म ( राम ) तुम से पूछता है॥136॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनों से नम्रीभूत है, जिसके ओठ बिंब के समान हैं । जो हंस के समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितंब हैं ऐसी मन को आनंद देने वाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥137॥ उसी समय पर्वत से टकराकर राम के शब्दों की प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हाँ देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होने पर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकार को प्रतिध्वनि ही है ॥138॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती बाला दुर्दैव से प्रेरित होकर कहाँ गयी होगी ? जिस प्रकार को इच्छा विद्या को हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण तरंगें उठ रही हैं । जो अत्यंत वेग से बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रिया को नहीं हर लिया हो ॥139-140॥अथवा अत्यंत भूख से पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्त के धारक किसी सिंह ने साधुओं के साथ स्नेह करने वाली उस प्रिया को खा लिया है॥ 141॥ जिसका कार्य अत्यंत भयंकर है तथा जिसकी गरदन के बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंह के देखने मात्र से नखादि के स्पर्श के बिना ही वह मर गयी होगी ॥142॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्ध में संशय को प्राप्त है और इधर यह सीता के साथ विरह या पडा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥143॥

मैं इस समस्त संसार को संशय में पडा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशा को प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःख की बड़ी विचित्रता है ॥144॥ जब तक मैं एक दुःख के अंत को प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है ।

अहो ! यह दुःखरूपी सागर बहुत विशाल है ॥145॥
प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लँगड़ा होता है उसी में चोट लगती है, जो वृक्ष तुषार से सूख जाता है उसी में आग लगती है और जो फिसलता है वही गर्त में पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहुसंख्या में आते हैं॥ 146॥ तदनंतर वन में भ्रमण कर मृग और पक्षियों को देखते हुए राम अपने रहने के स्थान स्वरूप वन में पुनः प्रविष्ट हुए । वह वन उस समय सीता के बिना शोभा से शून्य जान पड़ता था ॥147॥ तदनंतर जिनका मुख अत्यंत दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रखा था ऐसे राम धनुष को डोरी रहित कर पृथिवी पर पड़ रहे ॥148॥ वे बार-बार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षण में उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशता को प्राप्त थे तथा सत्कार शब्द से उनका मुख शब्दायमान हो रहा था ॥149।।
गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्म के उदय से बड़े-बड़े पुरुषों को अतिशय दुःखी देख, जिनेंद्र कथित धर्म में सदा बुद्धि लगाओ ॥150॥
जो मनुष्य संसार संबंधी विकारों की संगति से दूर रहकर जिनेंद्र भगवान् के वचनों की उपासना नहीं करते हैं उन शरण रहित तथा इंद्रियों के वशीभूत मनुष्यों को अपना पूर्वोपार्जित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा संतप्त करता रहता है॥ 151॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में सीताहरण और रामविलाप का वर्णन करने वाला चौवालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥44॥

## सीता के वियोग जन्यदाह

पैतालीसवां पर्व
कथा :
अथानंतर इसी बीच में जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषण का शत्रु विराधित, मंत्रियों और शूर-वीरों से सहित अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो वहाँ आया ॥1॥ उसने महातेज से देदीप्यमान लक्ष्मण को अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थ की सिद्धि होगी ॥2 ॥पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तक पर दोनों हाथ लगाकर परम विनय को धारण करने वाले विराधित ने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ! मैं आपका भक्त हूँ । मुझे आप से कुछ निवेदन करना है सो सुनिए क्योंकि आप-जैसे महापुरुषों की संगति दुःखक्षय का कारण है ॥3-4॥ विराधित आधी बात ही कह पाया था कि लक्ष्मण ने उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥5॥
तदनंतर जो महा आश्चर्य से युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणाम कर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषण को तो आप निवारण करो और युद्ध के आँगन में जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥6-7 ॥इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषण की सेना को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया । वह सेना के साथ लहलहाते शस्त्रों के समूह से युक्त हो खरदूषण की सेना की ओर दौड़ा ॥8॥ उसने जाकर कहा कि मैं राजा चंद्रोदर का पुत्र विराधित युद्ध में आतिथ्य पाने के लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥9॥ अब कहां जाइएगा ? जो युद्ध में शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह खड़े हो जावें । आज मैं आप लोगों को वह फल दूंगा जो कि अत्यंत दारुण कठोर यमराज देता है ॥10॥ इतना कहते ही दोनों ओर के योद्धाओं में वैर भरा तथा मनुष्यों का सहारा करने वाला बहुत भारी शस्त्रों का संपात होने लगा दोनों ओर से शस्त्रों की वर्षा होने लगी ॥11 ॥पैदल पैदलों से, घुड़सवार घुड़सवारों से, गज सवार गज सवारों से और रथ सवार रथ सवारों के साथ भिड़ गये ॥12॥ तदनंतर जो परस्पर एक दूसरे को बला रहे थे जो अत्यंत हर्षित हो रहे थे, जो अत्यंत संकुल-व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरे के बड़े-बड़े शस्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओं के द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रण के मैदान में नवीन-नवीन परम तेज को धारण करने वाला लक्ष्मण, दिव्य धनुष उठाकर बाणों से दिशाओं और आकाश को व्याप्त करता हुआ खर के साथ उस तरह अत्यंत भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इंद्र दैत्येंद्र के साथ करता था ॥13-15॥ तदनंतर क्रोध से व्याप्त एवं चंचल और लाल-लाल नेत्रों को धारण करने वाले खरदूषण ने कठोर शब्दों में लक्ष्मण से कहा कि हे अतिशय चपल पापी ! मेरे निर्वैर पुत्र को मारकर तथा मेरी स्त्री के स्तनों का स्पर्श कर अब तू कहाँ जाता है ? ॥16-17॥ आज तीक्ष्ण बाणों से तेरा जीवन नष्ट करता हूँ । तूने जैसा कम किया है वैसा फल भोग ॥18 ॥हे अत्यंत क्षुद्र ! निर्लज्ज ! परस्त्री संग का लोलप ! अब मेरे सम्मुख आकर परलोक को प्राप्त हो ॥19॥

तदनंतर उन कठोर वचनों से जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मण ने समस्त आकाश को गुंजाते हुए निम्नांकित वचन कहे । उन्होंने कहा कि रे क्षुद्र विद्याधर ! तू कुत्ते के समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुझे पहुंचाता हूँ ॥20-21॥इतना कहकर लक्ष्मण ने आकाश में स्थित खरदूषण को रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पता का काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥22॥ तदनंतर जिस प्रकार पुण्य के क्षीण होने पर चंचल शरीर को धारण करने वाला ग्रह पृथिवी पर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोध से लाल-लाल दिखने वाला खरदूषण आकाश से पृथिवी पर नीचे आ पड़ा ॥23॥ खड□ग की किरणों से जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मण की ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड□ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥24॥ इस प्रकार उन दोनों में निकट से नाना प्रकार का भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्ग में स्थित देवों ने साधु-साधु धन्य-धन्य शब्दों के साथ उनपर पुष्पों की वर्षा की ॥25 ॥उसी समय अखंडित शरीर के धारक लक्ष्मण ने कुपित हो खरदूषण के सिर पर यथार्थ नाम वाला सूर्यहास खड□ग गिराया ॥26॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्रलिखित सूर्य के समान उस तरह पृथिवी पर आ पडा जिस तरह कि स्वर्ग से च्युत हुआ कोई देव पृथिवी पर आ पड़ता है ॥27॥पृथिवी पर पडा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीर का धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गज के द्वारा गिराया हुआ रत्न गिरि का एक खंड ही हो ॥28॥

तदनंतर खरदूषण का दूषण नामक सेनापति चंद्रोदर राजा के पुत्र विराधित को रथरहित करने के लिए उद्यत हुआ॥29॥ उसी समय लक्ष्मण ने उसके मर्मस्थल में बाण से इतनी गहरी चोट पहुँचायी कि बेचारा घूमता हुआ पृथिवी पर आ गिरा और तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥30॥ तदनंतर खरदूषण की वह समस्त सेना विराधित के लिए देकर प्रीति से भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥31 ॥जाते ही लक्ष्मण ने सीता रहित राम को पृथिवी पर सोते हुए देखा । देखकर लक्ष्मण ने कहा कि हे नाथ ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गयी हैं ? ॥32॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मण को घाव रहित शरीर का धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिंगन करने लगे ॥33 ॥उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि हे भद्र ! मैं नहीं जानता हूँ कि देवी को क्या किसी ने हर लिया है या सिंह ने खा लिया है । मैंने इस वन में बहुत खोजा पर दिखी नहीं ॥34॥ उसे कोई पाताल में ले गया है या आकाश के शिखर में पहुँचा दी गयी है अथवा वह सुकुमारांगी भय के कारण विलीन हो गयी है ॥35 ॥तदनंतर जिनका शरीर क्रोध से व्याप्त था ऐसे लक्ष्मण ने विषाद युक्त होकर कहा कि है देव ! उद्वेग की परंपरा बढ़ाने से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥36 ॥जान पड़ता है कि जान की किसी दैत्य के द्वारा हरी गयी है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥37॥ इस प्रकार कानों को प्रिय लगने वाले विविध प्रकार के वचनों से सांत्वना देकर बुद्धिमान् लक्ष्मण ने निर्मल जल से राम का मुख धुलाया ॥38॥ तदनंतर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ संभ्रम को धारण करने वाले रामने ऊपर की ओर मुख कर लक्ष्मण से पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाश से यह शब्द आ रहा है ? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रु को शेष रहने दिया है ?॥39-40॥

तदनंतर लक्ष्मण ने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्ध में विद्याधर ने समय पर मेरा बड़ा उपकार किया है । वह विद्याधर राजा चंद्रोदर का पुत्र विराधित है जो हितकारी दैव के द्वारा ही मानो अवसर पर मेरे समीप भेजा गया था ॥41-42॥ उत्तम हृदय को धारण करने वाला वह विद्याधर चार प्रकार की बड़ी भारी सेना के साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसी का सुनाई दे रहा है ॥43 ॥इधर विश्वस्त चित्त के धारक राम-लक्ष्मण के बीच जब तक यह कथा चलती है तब तक बड़ी भारी सेना के साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥44॥ तदनंतर विद्याधरों के राजा विराधित ने नम्रीभूत मंत्रियों के साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्द का उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्यों में उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल बाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्य के विषय में मुझे आज्ञा दीजिए ॥45-46 ॥इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने कहा कि हे सज्जन ! सुनो, किसी दुराचारी ने मेरे अग्रज□ राम की पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोक के वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय हो अग्नि में प्रवेश करूंगा ॥47-48 ॥क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हीं के प्राणों के साथ मजबूत बंधे हुए हैं इसलिए इस विषय में कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥49॥ तब विद्याधरों का राजा विराधित नीचा मुख कर कुछ विचार करने लगा कि अहो! इतना श्रम करने पर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥50 ॥मैं पहले सुख से इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनों में भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनको शरण में सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशय के गर्त में पड़ रहे हैं ॥51॥ दुःखरूपी सागर के तट को प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लता को पकड़ता हूँ सो दैव के द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तव में समस्त संसार कर्मों के अधीन है ॥52 ॥यद्यपि ये अपने कर्म के अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ

भी करें तो भी मैं उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्य को अवश्य करूंगा ॥53॥ इस प्रकार अंतरंग में विचारकर उत्साह को धारण करते हुए धीर वीर विराधित ने तेजपूर्ण वचनों में मंत्रियों से कहा कि इन महामानव की पत्नी महीतल, आकाश, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगर में कहीं भी ले जायी गयी हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओं में सब ओर से उसकी खोज करो । हे महायोद्धाओ ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥54-56॥ इस प्रकार कहने पर हर्ष से युक्त, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित, परमतेज के धारक, नाना प्रकार की वेष-भूषा से सुशोभित और यश के इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओं में गये ॥57।।

अथानंतर अर्कजटी के पुत्र रत्नजटी नामक खड□गधारी विद्याधर ने दूर से शीघ्र ही रोने का शब्द सुना ॥58॥ जिस दिशा से रोने का शब्द आ रहा था उसी दिशा में जाकर उसने समुद्र के ऊपर आकाश में हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण ! इस प्रकार का शब्द सुना ॥59॥ विलाप के साथ आते हुए उस अत्यंत स्पष्ट शब्द को सुनकर जब वह उस स्थान की ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥60 ॥उस विमान के ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीता को देखकर वह क्रोध युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अब तू कहाँ जाता है ? ॥61-62॥ हे दुर्बुद्धे ! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेव को स्त्री और भामंडल की बहन को शीघ्र ही छोड़ ॥63॥ तदनंतर कर्कश शब्द कहने वाले रत्नजटी के प्रति कर्कश शब्दों का उच्चारण कर क्रोध से भरा तथा विह्वल चित्त का धारक रावण युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ ॥64 । फिर उसने विचार किया कि युद्ध होनेपर मैं इस विह्वल सीता को देख नहीं सकूँगा और उस दशा में संभव है कि यह कदाचित् मृत्यु को प्राप्त हो जाये और यदि इस घबड़ायी हुई सीता की रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यंत व्याकुल चित्त होने के कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा॥65-66 ॥इस प्रकार विचारकर हड़बड़ाहट के कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावण ने आकाश में स्थित रत्नजटी विद्याधर को विद्या हर ली ॥ 67॥

अथानंतर भयभीत रत्नजटी किसी मंत्र के प्रभाव से उल्का के समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पडा ॥68॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक् के समान वह आयु का अस्तित्व शेष रहने के कारण समुद्र जल के मध्य में स्थित कंबु नामक द्वीप में पहुँचा ॥69॥वहाँ वह क्षण-भर निश्चल बैठा फिर बार-बार लंबी सांस लेकर वह कंबु पर्वत पर चढ़कर दिशाओं को ओर देखने लगा ॥7॥ तदनंतर समुद्र की शीतल वायु से जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुछ संतुष्ट हुआ ॥71 ॥जो अन्य विद्याधर सीता की खोज करने के लिए गये थे वे शक्ति-भर खोज कर राम के समीप वापस पहुंचे । उस समय प्रयोजन की सिद्धि नहीं होने से उनके मुख का तेज नष्ट हो गया था ॥72॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरों का मन शून्य जानकर म्लान नेत्रों के धारक राम ने लंबी और गरम सांस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो ! आप लोगों ने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्य में प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥ 73-74 ॥अब आप लोग अपनी इच्छानुसार बैठिए अथवा अपने-अपने घर जाइए । जो रत्न हाथ से छुटकर बडवानल में जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है ? ॥75॥ निश्चय ही जो कल कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ॥76 ॥मैंने भाई-बंधुओं से रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वन का आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रु ने मुझ पर दया नहीं की ॥77॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुर्दैव मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा? ॥78 ॥इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सांत्वना देने में निपुण विराधित ने बड़ी धीरता से कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनों में निष्पाप शरीर की धारक प्रिया को देखेंगे ॥79-80॥ यथार्थ में यह शोक कोई बड़ा भारी विष का भेद है जो आश्रित शरीर को नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओं की तो चर्चा ही क्या है ? ॥81॥ इसलिए महापुरुषों के द्वारा सेवित धैर्य का अवलंबन कीजिए । आप-जैसे उत्तम-पुरुष विवेक की उत्पत्ति के उत्तम क्षेत्र है ॥82॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याण को देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धि का धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याण को नहीं देख पाता है ॥83॥ यह विषाद करने का समय नहीं है कार्य करने में मन दीजिए क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करने वाली है ॥84॥ विद्याधरों के राजा खरदूषण के मारे जाने पर दूसरी बात हो गयी है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥85॥ किष्किंधापुरी का राजा सुग्रीव, इंद्रजित, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याओं के धारक तथा महा तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र□खरदूषण के कुटुंबी जनों के दुःख से क्षोभ को प्राप्त होंगे॥86-87॥ इन सब योद्धाओं ने नाना प्रकार के हजारों युद्धों में सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्ध पर्वत पर रहने वाला विद्याधरों का राजा भी इन्हें वश नहीं

कर सकता ॥88॥ पवनंजय का पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओं के झुंड दूर से ही भाग जाते हैं ॥89॥ दैवयोग से देव भी उसका सामना कर विजय की अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थ में वह कोई अद्भत महायशस्वी पुरुष है ॥90 । इसलिए उठिए , अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थान का आश्रय लें वहीं निश्चिंतता से रहकर भामंडल की बहन का समाचार प्राप्त करें ॥91॥ वह अलंकारपुर पृथिवी के नीचे है और हम लोगों की वंश-परंपरा से चला आया है उसी दुर्गम स्थान में स्थित रहकर हम लोग यथायोग्य कार्य को चिंता करेंगे ॥92॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोड़ों से जुते हुए उत्तम देदीप्यमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मण ने प्रस्थान किया ॥93 ॥जिस प्रकार सम्यग्दर्शन से रहित ज्ञान और चारित्र सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीता से रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥94॥ चार प्रकार को महासेनारूपी सागर से घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥95॥ जब तक वह पहुँचा तब तक चंद्रनखा का पुत्र नगर के द्वार से निकलकर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुंदर नगर के भीतर प्रविष्ट हुआ ॥96॥ वह नगर देवों के निवास स्थान के समान रत्नों से देदीप्यमान था । वहाँ जाकर विराधित तथा राम-लक्ष्मण खरदूषण के भवन में यथायोग्य निवास करने लगे ॥97 ॥यद्यपि वह भवन देवभवन के समान था तो भी राम सीता के चले जाने से वहाँ रंच मात्र भी धैर्य को प्राप्त नहीं होते थे वहाँ उन्हें सीता के बिना बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥98॥ स्त्री के समागम में वन भी रमणीयता को प्राप्त होता है और स्त्री के वियोग से जलते हुए मनुष्य को सब कुछ विंध्य वन के समान जान पड़ता है ॥99॥ अथानंतर वृक्षों के समूह से सुशोभित, उस भवन के एकांत स्थान में अनुपम मंदिर देखकर राम वहाँ गये ॥100 ॥उस मंदिर में रत्न तथा पुष्पों से जिसकी पूजा को गयी थी ऐसी जिनेंद्र प्रतिमा के दर्शन कर वे क्षण-भर सब संताप भूलकर परम धैर्य को प्राप्त हुए ॥101॥ उस मंदिर में इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थीं उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे । जिनेंद्र प्रतिमाओं के दर्शन करने से उनके दुःख की लहरें कुछ शांत हो गयी थीं ॥102॥ पिता और भाई के मरने से जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुंद, अपनी सेना से सुरक्षित होता हुआ माता चंद्रनखा के साथ लंका में चला गया ॥103 ॥गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकार के दुःखदायी उपायों से प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकार के दुर्निवार से युक्त हैं ऐसे इन परिग्रहों को नश्वर जानकर हे भव्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥104॥ यद्यपि पूर्व कर्मोदय से प्राणियों के परिग्रह संचित करने की आशा होती है तो भी मुनि-समूह के उपदेश से ज्ञान प्राप्त कर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्य से प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥105॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में सीता के वियोग जन्यदाह का वर्णन करने वाला पैतालीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥45॥

## रावण के माया के विविध रूप

छियालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर विमान के ऊंचे शिखर पर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाश में सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था ॥1॥ रति संबंधी राग से जिसकी आत्मा विमूढ़ हो रही थी ऐसा रावण शोक-संतप्त सीता के मुरझाये हुए मुख-कमल का ध्यान कर रहा था-उसी ओर देख रहा था ॥2॥ जिसके मुख से निरंतर अश्रुओं की वर्षा हो रही थी ऐसी सीता के आगे-पीछे तथा बगल में खड़ा होकर रावण बड़ी दीनता के साथ नाना प्रकार के सैकड़ों प्रिय वचन बोलता था ॥3॥ वह कहता था कि मैं कामदेव के अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणों से घायल होकर यदि मर जाऊंगा तो हे साध्वि ! तुझे नर हत्या लगेगी ॥4॥ हे सुंदरि ! तेरा यह मुखारविंद क्रोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुंदर हैं उनमें सभी प्रकार से सुंदरता रहती है ॥5॥
हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दास के मुख पर एक बार चक्षु डालो । तुम्हारे चक्षु की कांतिरूपी जल से नहाने पर मेरा सब श्रम दूर हो जायेगा ॥6॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टि का प्रसाद नहीं करती हो आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमल से ही एक बार मेरे मस्तक पर आघात कर दो ॥7॥ मैं तुम्हारे मनोहर उद्यान में अशोकवृक्ष क्यों नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमल का प्रशंसनीय तल-प्रहार सुलभ रहता ॥8॥ हे कृशोदरि ! विमान को छत पर बैठकर झरोखे से जरा दिशाओं को तो देखो मैं सूर्य से भी कितने ऊपर आकाश में चल रहा हूँ ॥9॥ हे देवि ! कुलाचलों, मेरुपर्वत और सागर से सहित इस पृथिवी को देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किसी कारीगर के द्वारा ही बनायी गयी हो ॥10॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देकर बैठी हुई सीता बीच में तृण रखकर निम्नांकित

अप्रिय वचन बोली ॥11॥
उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अंग मत छू । तू इस प्रकार की यह निंदनीय वाणी क्यों बोल रहा है ? ॥12॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पापरूप है, आयु को कम करने वाली है, नरक का कारण है, अपकीर्ति को करने वाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करने वाली है ॥13॥ परस्त्री को इच्छा करता हुआ तू महादुःख को प्राप्त होगा तथा भस्म से आच्छादित अग्नि के समान पश्चात्ताप से तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥14॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापंक से व्याप्त है अतः तुझे धर्म का उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अंधे के सामने नृत्य के हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है॥ 15॥ अरे नोच ! परस्त्री की इच्छा मात्र से तू बहुत भारी पाप बांधकर नरक में जायेगा और वहाँ कष्टकारी अवस्था को प्राप्त होगा ॥16॥ इस प्रकार यद्यपि सीता ने कठोर अक्षरों से भरी वाणी के द्वारा रावण का तिरस्कार किया तो भी काम से आहत चित्त होने के कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥17॥
वहां खरदूषण का युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावण का दर्शन न होने से परम स्नेह के भरे शुक, हस्त, प्रहस्त आदि मंत्री परम उद्वेग को प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताका से सुशोभित प्रातःकालीन सूर्य के समान रावण का विमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥18-19॥ उन्होंने दिव्य वस्तुओं की भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अतिशय प्रिय वचन कहकर रावण की अगवानी की तो भी भृत्यों की उन संपदाओं से सीता वशीभूत नहीं हुई ॥20॥ संसार में ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखा का पान कर सके अथवा नागिन के शिर पर स्थित रत्नमयी शलाका का स्पर्श कर सके ॥21॥ यद्यपि सीता ने तृण के अग्रभाग के समान रावण का तिरस्कार किया था तो भी वह दशों अंगुलियों से सहित अंजलि शिर पर धारण कर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥22॥ नाना दिशाओं से आये हुए तथा इंद्र के समान पूर्ण वैभव को धारण करने वाले मंत्रियों ने जिसे घेर लिया था और जय हो, बढ़ते रहो, स्मृद्धिमान् होओ इत्यादि कर्णप्रिय वचनों से जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इंद्रतुल्य रावण ने लंका में प्रवेश किया ॥23-24॥ उस समय सीता ने विचार किया कि यह विद्याधरों का राजा ही जहाँ अमर्यादा का आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥25॥ फिर भी मेरा यह नियम है कि जब तक भर्ता का कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तब तक मेरे आहार कार्य का त्याग है ॥26॥ तदनंतर पश्चिमोत्तर दिशा में विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्ग के समान सुंदर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्ष के समान कांति वाले बड़े-बड़े वृक्षों से व्याप्त उस उद्यान में एक जगह साता का ठहराकर रावण अपने महल में चला गया ॥27-28॥ इतने में ही खरदूषण के मरण का समाचार पाकर रावण को अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोक के कारण महाशब्द करती हुई रावण के सामने विलाप करने लगीं ॥ 29॥ चंद्रनखा भाई के चरणों में जाकर तथा गला फाड़ फाड़कर हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गयी इस तरह अश्रु वर्षा से दुर्दिन को पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥30॥ पति और पुत्र की मृत्युरूपी अग्नि से जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चंद्रनखा से भाई-रावण ने इस प्रकार कहा ॥31॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि संसार के प्राणी पूर्वभव में जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य हो प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥32॥ यदि ऐसा नहीं है तो क्षुद्र शक्ति के धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥33॥ मैंने यह सब पूर्व में संचित किया था सो उसी का यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है ऐसा जानकर किसी मनुष्य को शोक करना उचित नहीं है ॥34॥ जब तक मृत्यु का समय नहीं आता है तब तक वज्र से आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्यु का समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीव के लिए विष हो जाता है॥ 35॥ हे वत्से ! जिसने युद्ध में खरदूषण को मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओं के लिए मैं मृत्यु स्वरूप हूँ **अर्थ**ात् मैं उन सबको मारूँगा ॥36॥ इस प्रकार बहन को आश्वासन तथा जिनेंद्र देव की अर्चा का उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृह में चला गया ॥37॥ वहाँ जाकर रावण आदर की प्रतीक्षा किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्त सिंह के समान अथवा साँस भरते हुए सर्प के समान जान पड़ता था ॥38॥ भर्ता को ऐसा देख, दुःख युक्त की तरह आभूषणों के आदर से रहित मंदोदरी बड़े आदर से उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥39॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषण को मृत्यु से आकुलता को धारण कर रहे हो ? परंतु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूर-वीरों को बड़ी-बड़ी आपत्तियों में भी विषाद नहीं होता ॥40॥ पहले अनेक संग्रामों में तुम्हारे मित्र क्षय को प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किंतु आज खरदूषण के प्रति शोक कर रहे हो ? ॥41॥ राजा इंद्र के संग्राम में श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे बंधुजन थे क्षय को प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥42॥ पहले बड़ी-बड़ी आपत्ति में रहने पर भी तुम्हें किसी का शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोक को धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन्, इसका

कारण बतलाइए ॥43॥

तदनंतर महान् आदर से युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुख के भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥44॥ उसने कहा कि हे सुंदरि ! सुनो एक सद्भाव की बात तुम से कहता हूँ । तुम मेरे प्राणों की स्वामिनी हो और सदा मैंने तुम्हें चाहा है ॥45॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्योंकि प्राण ही तो सब वस्तुओं के मूल कारण हैं ॥46॥ तदनंतर ऐसा ही है इस प्रकार मंदोदरी के कहने पर उसे अनेक प्रकार की शपथों से नियम में लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए की तरह रावण कहने लगा ॥47॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूप से नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥48॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुंदर चेष्टा सभी उस एक सुंदरी को पाकर कृतकृत्यता को प्राप्त हुए हैं ॥49।।

तदनंतर रावण की इस कष्ट कर दशा को जानकर हँसती तथा दांतों को कांतिरूपी चाँदनी को फैलाती हुई मंदोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है । जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्यहीन है जो स्वयं आप से प्रार्थना नहीं कर रही है ॥ 50-51॥ अथवा समस्त संसार में वही एक परम अभ्युदय को धारण करने वाली है । जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष बड़ी दीनता से याचना करते हैं ॥52॥ अथवा बाजूबंद के रत्नों से जटिल तथा हाथी की सूंड़ की उपमा धारण करने वाली इन भुजाओं से बलपूर्वक आलिंगन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ?॥53॥ इसके उत्तर में रावण ने कहा कि हे देवि ! मैं जिस कारण उस सर्वांग सुंदरी को जबर्दस्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥54॥ हे देवि ! मैंने अनंतवीर्य भगवान् के समीप निर्ग्रंथ मुनियों की सभा में साक्षात् एक व्रत लिया था ॥55॥ इंद्रों के द्वारा वंदनीय अनंतवीर्य भगवान् ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तु का त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥56॥दुःखों से भरी भव-परंपरा में भ्रमण करने वाले प्राणियों के पाप से थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसार से पार होने का कारण हो जाती है ॥57॥ जिन मनुष्यों के किसी पदार्थ के त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घट के समान निर्गुण हैं ॥58 । उन मनुष्यों और पशुओं में कुछ भी अंतर नहीं है जिनके कि मोक्ष का कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥59॥ हे भव्य जीवो ! शक्ति के अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धन का संचय करो जिससे जंमांध मनुष्यों के समान चिर काल तक संसार में परिभ्रमण न करना पड़े ॥60॥ इस प्रकार भगवान् के मुखकमल से निकले हुए वचनरूपी मकरंद को पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रंथ अवस्था को प्राप्त हुए और हीन शक्ति को धारण करने वाले कितने ही लोग गृहस्थधर्म को प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदय के कारण सब एक समान क्रिया के धारक नहीं होते ॥61-62॥ उस समय सौम्य चित्त के धारक एक मुनिराज ने मुझ से कहा कि हे दशानन ! शक्ति के अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥63॥ तुम धर्मरूपी उज्ज्वल रत्नद्वीप को प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणों के संग्रह करने में निपुण होकर भी खाली मन एवं खालो हाथ क्यों जाते हो ॥64॥ इस प्रकार कहने पर हे देवि ! मैंने मुनिराज को प्रणाम कर सुर-असुर तथा मुनियों के समक्ष इस तरह कहा कि जब तक मानवती परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दु:खी होने पर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूंगा ॥65-66॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी? ॥67॥ इसलिए हे देवि ! मैं उस मनोहरांगी को स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी बाधा आ पड़ती है॥ 68॥अत: जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक सीता को प्रसन्न करो क्योंकि घर के भस्म हो जाने पर कूप खुदाने का श्रम व्यर्थ है ॥39॥

तदनंतर रावण को वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मंदोदरी बोली कि हे नाथ ! यह तो बहुत छोटी बात है॥ 70॥ तत्पश्चात् कुछ मधुर विलासों को वशवर्तिनी कमललोचना मंदोदरी देवारण्य नामक उद्यान में गयी ॥71॥उसकी आज्ञा पाकर रावण को अठारह हजार मानवती स्त्रियाँ भी वैभव के साथ उसके पीछे चलीं ॥72॥ समस्त नय-नीतियों के विज्ञान से जिसका मन अलंकृत था ऐसी मंदोदरी ने क्रम-क्रम से सीता के पास जाकर इस प्रकार कहा ॥73॥ कि हे सुंदरि ! हर्ष के स्थान में विषाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीनों लोकों में धन्य है जिसका कि रावण पति है॥ 74॥ जो समस्त विद्याधरों का अधिपति है, जिसने इंद्र को पराजित कर दिया है, तथा जो तीनों लोकों में अद्वितीय सुंदर है ऐसे रावण को तुम पति रूप से क्यों नहीं चाहती हो ? ॥75॥तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुःखी क्यों हो ? सर्व लोक से श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥76॥अपने लिए महासुख के साधनभूत कार्य के करने वाले को कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्य के सब प्रयत्न सुख के लिए ही होते हैं ॥77॥इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत

नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओं को प्राप्त हो ॥78॥रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रु से रहित है प्रार्थना भंग करने पर वह काम पीड़ित हो क्रोध को प्राप्त हो जायेगा ॥79॥ जो राम-लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुझे इष्ट हैं सो रावण के कुपित होने पर उन दोनों का भी संदेह ही है॥80॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरों के अधिपति रावण को स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्य को प्राप्त हो देवों संबंधी लीला को धारण करो ॥80॥

इस प्रकार कहने पर जिसके मुख से वाष्प भार के कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सब वचन अत्यंत विरुद्ध है । पतिव्रता स्त्रियों के मुख से ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ?॥ 82-83॥ मेरे इस शरीर को तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परंतु अपने भर्ता के सिवाय अन्य पुरुष को मन में भी नहीं ला सकती हूँ ॥84॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमार के समान रूप का धारक हो अथवा इंद्र के तुल्य हो तो भी भर्ता के सिवाय अन्य पुरुष की मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥85॥ मैं यहाँ आयी हुई तुम सब स्त्रियों से संक्षेप में इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूंगी तुम जो चाहो सो करो ॥86॥

इसी बीच में जिस प्रकार हाथी गंगा की धारा के पास पहुँचता है उसी प्रकार काम के संताप से दुःखी रावण स्वयं सीता के पास पहुँचा॥ 87॥और पास में स्थित हो मुखरूपी चंद्रमा को कुछ-कुछ हास्य से युक्त करता हुआ बड़े आदर के साथ अत्यंत दयनीय वाणी में बोला कि हे देवि ! भय को प्राप्त मत होओ, हे सूंदरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो॥88-89॥बताओ कि मैं तीनों लोकों में वर्तमान किस वस्तु से हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो॥ 90॥ इतना कहकर रावण ने स्पर्श करने की चेष्टा प्रकट की तब सीता ने हड़बड़ाकर कहा कि पापी हृदय ! हट, मेरे अंगों का स्पर्श मत कर ॥91॥ इसके उत्तर में रावण ने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इंद्राणी के समान दिव्य भोगों की स्वामिनी बनो ॥92॥सीता ने कहा कि कुशील मनुष्य की संपदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्य की दरिद्रता भी आभूषण है॥ 93॥ उत्तमकुल में उत्पन्न हुए मनुष्यों को शील की हानि कर दोनों लोकों के विरुद्ध कार्य करने से मरण को शरण में जाना ही अच्छा है॥94॥ तू परस्त्री की आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन वृथा है । जो मनुष्य शील की रक्षा करता हुआ जीता है वास्तव में वह जीता है॥ 95॥ ।

इस प्रकार तिरस्कार को प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करने के लिए प्रवृत्त हुआ । सब देवियाँ भयभीत होकर भाग गयीं और वहाँ का सब कुछ आकुलता से पूर्ण हो गया॥ 96॥ इसी बीच में सूर्य, किरण समूह के साथ-साथ अस्ताचल की गुहा में प्रविष्ट हो गया सो मानो रावण की माया के भय से ही प्रविष्ट हो गया था॥97॥जो अत्यंत क्रोध से युक्त थे, जिनके गंडस्थल से मद चू रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियों से डराये जाने पर भी सीता रावण की शरण में नहीं गयी ॥98॥ जिनके दाँत दाढ़ों से अत्यंत भयंकर दिखाई देते थे और जो दुःसह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रों के द्वारा डराये जाने पर सीता रावण की शरण में नहीं गयी ॥29॥ जिनकी गरदन के बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अंकुश अत्यंत तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहों के द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावण की शरण में नहीं गयीं ॥ 100 । जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगों के समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े साँपों के द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावण की शरण में नहीं गयो ॥101॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपर की ओर उड़ान भरते थे तथा नीचे की ओर गिरते थे ऐसे वानरों के द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावण की शरण में नहीं गयी ॥102॥ जो अंधकार के पिंड के समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालों के द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावण के शरण में नहीं गयी ॥13॥ इस प्रकार क्षण-क्षण में किये जाने वाले नाना प्रकार के भयंकर उपसर्गों के द्वारा डराये जाने पर सीता रावण की शरण में नहीं गयी॥ 104॥

तदनंतर भय से ही मानो रात्रि व्यतीत ही गयी और जिन मंदिरों में शंख-भेरी आदि का शब्द होने लगा ॥105॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलों के द्वार संबंधी किवाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हों ॥106॥ संध्या से रँगी हुई पूर्व दिशा अत्यंत सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आने वाले सूर्य की अगवानी के लिए कुंकुम के पंक से ही लिप्त की गयी हो ॥107॥ रात्रि संबंधी अंधकार को नष्ट कर तथा चंद्रमा को निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलों को विकसित करने लगा ॥108॥ तदनंतर जिसमें पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकाल की निर्मलता को प्राप्त होने पर विभीषण आदि प्रिय बांधव रावण के समीप पहुँचे ॥109॥ खरदूषण के शोक से जिसके मुख चुपचाप नीचे की ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओं से युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमि पर बैठ गये ॥110॥ उसी समय विभीषण ने पट के भीतर स्थित शोक के भार से रोती हुई स्त्री का हृदय-विदारक

शब्द सुना ॥111॥ सुनकर व्याकुल होते हुए, विभीषण ने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पति के साथ वियोग को प्राप्त हुई है ॥112॥ इसका यह शब्द दुःख के भार को धारण करने वाले शरीर के शोकोत्पन्न-उत्कट कंपन को सचित कर रहा है ॥113॥ इस प्रकार विभीषण के उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन के आगे शोक बढ़ता है॥ 114॥ उसने अश्रुपूर्ण मुख से टूटे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बंधु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेह के साथ पूछ रहा है ॥115॥ मैं राजा जनक की पुत्री, भामंडल की बहन, राम की पत्नी और दशरथ की पुत्रवधू सीता हूँ ॥116॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेने के लिए जब तक भाई के युद्ध में गया था तब तक छिद्र देख इस दुष्ट हृदय ने मेरा हरण किया है॥ 117॥ मुझ से बिछुड़े राम जब तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दें ॥118॥ इस प्रकार सीता के शब्द सुनकर विभीषण का चित्त कुपित हो उठा । तदनंतर विनय को धारण करने वाले गुरुजन-स्नेही विभीषण ने भाई से कहा कि हे भाई ! आशीविष सर्प की विषरूपी अग्नि के समान सब प्रकार से भय उत्पन्न करने वाली यह पर-नारी तू मोहवश कहाँ से ले आया है ? ॥119-120॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिए । वचन के विषय में आपने मुझ पर प्रसन्नता की है **अर्थ**ात् मुझे वचन कहने की स्वतंत्रता दी है ॥121॥ हे मर्यादा के जानने में निपुण ! यह दिशाओं का समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओं के जाल से व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न होइए ॥122॥ यह परस्त्री की अभिलाषा अनुचित है, अत्यंत भयंकर है, लज्जा उत्पन्न करने वाली है, घृणित है और दोनों लोकों को नष्ट करने वाली है ॥123॥ सर्वत्र सज्जनों से यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्यों के हृदय के विदारण करने में समर्थ है अर्थात् लोक निंदा विचारवान् मनुष्यों के हृदय को भेदन करने वाली है ॥124॥ आप तो मर्यादा को जानने वाले, विद्याधरों के अधिपति हैं फिर इस जलते हुए उल्मुक को अपने हृदय पर क्यों रख रहे हो ? ॥125॥ जो पापबुद्धि मनुष्य परस्त्रियों का सेवन करता है वह विनय से उस तरह नरक में प्रवेश करता है जिस तरह कि लोह का पिंड जल में प्रवेश करता है ॥126॥

यह सुनकर रावण ने कहा कि हे भाई ! पृथ्वीतल पर वह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न होऊँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥127॥इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदय ने विकथाएँ करना प्रारंभ कर दिया । तदनंतर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥ 128॥ कि हे दशानन ! लोक का सब वृत्तांत जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थ में यह मोह की ही चेष्टा है ॥129॥ बुद्धिमान् मनुष्य को सब तरह से प्रातःकाल उठकर विवेकपूर्वक अपने हिताहित का विचार करना चाहिए ॥130॥इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भाव से यह सब कह रहा था तब बीच में ही सभा के क्षोभ को करता हुआ रावण उठकर खड़ा हो गया ॥ 131॥ तदनंतर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों और अश्वारूढ़ सामंतों से घिरा हुआ रावण त्रिलोकमंडन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥132॥ वह शोक से व्याकुल सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर तथा आगे कर बड़े वैभव से नगरी की ओर चला ॥133॥ भाले, खड ग, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथ में थे और जो संभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥134॥ जिनकी ग्रीवाएँ चंचल थीं, जो सुशोभित खुरों के अग्रभाग से पृथ्वी को खोद रहे थे तथा जिन पर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥ 135॥ जिनके घंटे प्रचंड शब्द कर रहे थे, जो मेघों के समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और गंडशैल काली चट्टानों वाले पर्वतों के समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥136॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे **अर्थ**ात् ठहाका मारकर हँस रहे थे, नाना प्रकार की चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाश को फोड़ते हुए से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥137॥ इस प्रकार हजारों तुरहियों के शब्द से दिशाओं को पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्ण निर्मित तोरणों से अलंकृत लंका नगरी में प्रविष्ट हुआ ॥ 138॥ यद्यपि रावण इस प्रकार को अत्यंत सुंदर संपदाओं से घिरा हुआ था तो भी सीता उसे तृण से भी तुच्छ समझती थी ॥139॥ स्वभाव से ही निर्मल सीता के मन को रावण उस तरह लोभ प्राप्त कराने के लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकार को पानी कमल को लेप प्राप्त कराने के लिए समर्थ नहीं होता है ॥140॥

अथानंतर जिसमें सब ओर से फूल फूल रहे थे, जो नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से युक्त था तथा जो नंदन वन के समान सुंदर था ऐसे प्रमद नामक वन में सीता ले जायी गयी ॥141॥ फूलों के पर्वत के ऊपर स्थिति तथा दृष्टि को बांधने वाले जिस प्रमदवन को देखकर देवों के मन में भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है॥ 142॥ अत्यंत लंबे-लंबे सात उद्यानों से घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनों से घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥143॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक

आश्चर्यों से भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन हैं हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो॥144॥उस पर्वत पर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं 1 प्रकीर्णक, 2 जनानंद, 3 सुखसेव्य, 4 समुच्चय, 5 चारणप्रिय 6 निबोध और 7 प्रमद ॥145॥इनमें से प्रकीर्णक नाम का वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जनानंद नाम का वह वन है जिसमें कि वे ही क्रीड़ा करते हैं जिनका कि आना-जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥146॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुख सेव्य नाम का वन है जो कोमल वृक्षों से व्याप्त है, मेघसमूह के समान है, तथा नदियों और वापिकाओं से मनोहर है । उस वन में सूर्य के मार्ग को रोकने वाले, केत की और जूही से सहित तथा पान की लताओं से लिपटे दशवेवां प्रमाण लंबे-लंबे वृक्ष हैं ॥147148॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमन से युक्त समुच्चय नाम का चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भाव को धारण करने वाली स्त्रियाँ सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं॥ 149॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पांचवां पापापहारी मनोहर वन जिसमें चारणऋद्धिधारी मुनिराज स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं ॥150॥ [ उसके ऊपर छठवाँ निबोध नाम का वन है जो ज्ञान का निवास है] और उसके आगे चढ़कर प्रमद नाम का सातवां वन है जो घोड़े के पृष्ठ के समान उत्तम प्रथा सुख से चढ़ने के योग्य सीढ़ियों से युक्त दिखलाई देता है ॥151॥ इस प्रमद वन में स्नान क्रीड़ा के योग्य, कमलों से सुशोभित मनोहर वापिकाएं हैं, स्थान-स्थान पर पानीय शालाएँ और अनेक खंडों से युक्त सभागृह विद्यमान हैं॥ 152॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षों से घिरे एवं फलों से लदे नारिंग और बीजपूर आदि के वृक्ष हैं ॥153॥ उस प्रमद नामक उद्यान में वृक्षों की सब जातियाँ विद्यमान हैं जो कि फूलों से आच्छादित हैं और मदोन्मत्त भ्रमर जिन पर गुंजार करते हैं॥ 154॥वहाँ मंद-मंद वायु से हिलती और फलों तथा फलों से मनोहर लता अपने कोमल पल्लवों से ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥155॥ वहाँ नीचे लपकते हुए मेघों के समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओं में छाया उत्पन्न करने वाले सघन वृक्षों को हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥156॥ कमलरूपी मुखों से सहित वहाँ की वापिकाएं नील कमलरूपी नेत्रों के द्वारा उस वन की उस विभूति को मानो अतृप्त होकर ही सदा देखती रहती हैं॥ 157॥ जहाँ मंद-मंद वायु से नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहंस पक्षियों के समूह से ऐसी जान पड़ती हैं मानो कोकिलाओं के आलाप से युक्त सघन वनों की हंसी ही कर रही हों ॥158॥ इस विषय में अधिक कहने से क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवों को धारण करने वाला वह प्रमद नामक उद्यान नंदन वन से भी अधिक सुंदर है॥ 159॥

उस प्रमदवन में अशोक मालिनी नाम की वापी है जो कि कमल पत्रों से सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानों से युक्त है, और विचित्र आकार वाले गोपुर से अलंकृत है ॥160॥ इसके सिवाय वह प्रमदवन झरोखे आदि से अलंकृत तथा उत्तमोत्तम लताओं से आलिंगित मनोहर गृहों और जल कणों से युक्त निर्झरों से सुशोभित है ॥161॥ उस प्रमदवन के अशोक वृक्ष से आच्छादित एक देश में बैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्ग से गिरी साक्षात् लक्ष्मी हो ॥162॥ वहाँ रावण की आज्ञानुसार वस्त्र, गंध तथा अलंकारों को हाथों में धारण करने वाली स्त्रियाँ निरंतर सीता को प्रसन्न करने की चेष्टा करती थीं ॥163॥किंतु नृत्य सहित दिव्य संगीतों, अमृत के समान मनोहर वचनों और देवतुल्य संपदा के द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥164॥ इतने पर भी कामरूपी दावानल की प्रचंड ज्वालाओं से व्याकुल हुआ रागी रावण एक के बाद एक दूती भेजता रहता था॥165॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीता से कहो कि अब अनुराग से भरे रावण की उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ॥ 166॥ दूती सीता के पास जाती और वापस आकर तेजरहित रावण से कहती कि हे देव ! वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥167॥ वह चुपचाप बैठी है न कुछ बोलती है न शरीर से कुछ चेष्टा करती है और न महाशोक से युक्त होने के कारण हम लोगों पर दृष्टि ही डालती है ॥168॥ अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट, दूध आदि से युक्त सुगंधित, तथा अनेक वर्ण का विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥169॥दूती की बात सुनकर जो सब ओर से कामरूपी प्रचंड अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागर में निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिंता में पड़ जाता था ॥170॥वह कभी लंबी तथा गरम श्वासोच्छ्वास की वायु को छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जाने से अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥171॥

वह कामरूपी तुषार से जले हुए मुखकमल को बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभर के लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हंसने लगता था ॥172॥ वह रत्नखचित फर्श पर लोटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवों को बार-बार फैलाता था ॥173॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसन पर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्य को देखकर फिर लौट जाता ॥174॥जिस प्रकार हाथी सब दिशाओं में जाने वाली सूंड से किसी का आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशंक हो सब दिशाओं

में घूमने वाले अपने हाथ से कंपित करता हुआ फर्श को आस्फालन करता था **अर्थ**ात् फर्श पर घुमा-घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्श को कंपित करता था ॥175॥ वह मन में आयी हुई सीता का स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्य को उलाहना देने के लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रों से अश्रु निकलने लगते थे ॥176॥ वह किसी को बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुँकार देते थे तब चुप रह जाता था । तदनंतर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्य के बकता रहता था ॥177॥ वह कभी मुख को ऊपर कर सीता-सीता इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नख से पृथिवी को खोदता हुआ चुप बैठा रहता था॥178॥ वह कभी हाथ से वक्षःस्थल को साफ करता था, कभी भुजाओं के अग्रभाग को देखता, कभी हुंकार छोड़ता, कभी बिस्तर पर जा लेटता था ॥179॥ कभी हृदय पर कमल रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृंगार का पाठ करता□शृंगार भरे शब्दों का उच्चारण करता और कभी आकाश की ओर देखने लगता था ॥180॥ कभी हाथ से हाथ का स्पर्श कर पैर से पृथिवी को ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वासरूपी अग्नि से काले पड़े हुए अधरोष्ठ को खींचकर देखता था ॥181॥ कभी कह-कह शब्द करता था, कभी केशों को खोलकर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोध से दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥182॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्षःस्थल को फुलाकर आगे को उभार लेता था, कभी नेत्रों को आंसुओं से आच्छादित करता था, कभी भुजाओं का तोरण ऊपर उठा अंगुलियां चटकाता हुआ उसे तोड़ता था॥ 183॥ कभी हृदय को ओर दृष्टि डालकर वस्त्र के अंचल से हवा करता था, कभी फूलों से रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥184॥ कभी आदर के साथ सीता का चित्र बनाता और फिर उसे आंसुओं से गीला करता था, कभी दीनता के साथ हाहाकार करता और कभी न, नमा, मा शब्दों का उच्चारण करता था ॥185॥ इस प्रकार कामरूपी ग्रह से पीडित रावण अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि काम की चेष्टा विचित्र होती है ॥186॥ जिसमें वासनारूपी महाधम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईंधन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्नि से दीप्त हो हृदय के साथ जल रहा था॥ 187॥ वह कभी विचार करता कि हाय मैं किस अवस्था को प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीर को भी धारण करने के लिए समर्थ नहीं रहा ॥188॥ मैंने दुर्गम समुद्र के बीच में रहने वाले हजारों बड़े-बड़े विद्याधर युद्ध में जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥189॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसार प्रसिद्ध था ऐसे राजा इंद्र को भी मैंने पहले बंदीगृह में डाल रखा था तथा अनेक युद्धों में जिसने राजाओं के समूह को पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोह के द्वारा भस्मीभूत हो रहा है ॥ 190-191॥ गौतम कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्य वस्तुओं का चिंतवन करता हुआ रावण कामरूपी आचार्य के वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥192॥

अथानंतर आकुलता से भरा तथा बड़ी-बड़ी मंत्रणा करने में निपुण विभीषण मंत्रियों के साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करने के लिए तत्पर हुआ ॥193॥ यथार्थ में समस्त शास्त्रों के ज्ञान जल से धुलकर जिसका मन अत्यंत निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकार के श्रम को सहन करने वाला था ऐसा विभीषण ही रावण के राष्ट्र का भार धारण करने वाला था ॥194॥ विभीषण के समान रावण का हित करने वाला दूसरा मनुष्य नहीं था । वह उसके करने योग्य समस्त कार्यों में सर्वप्रकार का उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था ॥ 195॥ विभीषण ने मंत्रियों से कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजा की ऐसी चेष्टा होने पर अब हम लोगों का क्या कर्तव्य है सो कहो ॥196॥ विभीषण का कथन सुनकर संभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यता को प्राप्त हो गया है **अर्थ**ात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥197॥ स्वामी दशानन की दक्षिण भुजा के समान जो खरदूषण था वह दैवयोग से सहसा नष्ट हो गया ॥198॥ वह विराधित नाम का विद्याधर जो कि किसी के लिए कुछ भी नहीं था वहु आज शृंगालपना छोड़कर सिंहपने को प्राप्त हुआ है ॥199॥ पुण्य कर्म के उदय से प्राप्त हुई इसकी इस भव्यता को तो देखो कि उत्तम चेष्टाओं को धारण करने वाला यह युद्ध में लक्ष्मण की मित्रता को प्राप्त हो गया ॥200॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान हो रहे हैं सो ये आक्रमण से ही वश में हो सकते हैं बिना आक्रमण के कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥201॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकार का स्थित है जिस प्रकार सांपों के बाह्य में तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥202॥ खरदूषण की पुत्री अनंगकुसुमा का पति हनुमान् इस समय वानर वंशियों का नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीव का ही पक्ष लेता है । इस प्रकार संभिन्नमति के कह चुकने पर पंचमुख मंत्री अनादर पूर्वक हंसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषण का वृत्तांत गिनने से अर्थात् उसकी मृत्यु का सोच करने से क्या लाभ है ? ॥ 203-204॥ इस वृत्तांत से किसे भय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसी की नहीं क्योंकि युद्ध में शूरवीरों की ऐसी गति होती ही

है॥ 205॥ वायु के द्वारा समुद्र की एक कणिका हर लेने पर समुद्र में क्या न्यूनता आ गयी? अर्थात् कुछ भी नहीं । रावण का बल बहुत है, उसके दोष देखने से क्या । ऐसी बात सोचते हुए मेरे मन में लज्जा आती है । कहाँ यह जगत् का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥206-207॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास खड़ग को धारण करने वाला है तो भी उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है उसका मित्र है इससे भी क्या ? ॥208॥क्योंकि बन सहित एक अत्यंत दुःसह पर्वत यद्यपि सिंह से सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता? ॥209॥ तदनंतर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनों को नीरस बताता हुआ सहस्रमति मंत्री बोला कि मान से भरे इन निरर्थक वचनों के कहने से क्या लाभ है ? स्वामी का हित चाहने वाले व्यक्ति को ऐसी मंत्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत बात से संबंध रखने वाली हो ॥210-211॥ वह छोटा है ऐसा समझकर शत्रु को अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि समय पाकर अग्नि का एक कण समस्त संसार को जला सकता है ॥212॥ बड़ी भारी सेना का स्वामी अश्वग्रीव समस्त संसार में प्रसिद्ध था तो भी रण के अग्रभाग में छोटे से त्रिपृष्ठ के द्वारा मारा गया था ॥213॥ इसलिए बिना किसी विलंब के इस लं का नगरी को बुद्धिमान् मनुष्यों के द्वारा अत्यंत दुर्गम बनाया जावे ॥214॥ ये महाभयानक यंत्र सब दिशाओं में फैला दिये जावें । अत्यंत उन्नत प्राकार के शिखरों पर चढ़कर क्या किया गया क्या नहीं किया गया इसकी देख-रेख की जाये ॥215॥ अनेक प्रकार के सम्मानों से समस्त देश को निरंतर सेवा की जाये और मधुर वचन बोलने वाले राज्याधिकारी सब लोगों को अपने कुटुंबीजनों से अभिन्न देखें ॥216॥ प्रिय करने वाले मनुष्य सब प्रकार के उपायों से राजा दशानन की रक्षा करें जिससे वह सुख को प्राप्त हो सके ॥217॥ जिस प्रकार दूध के द्वारा सर्पिणी को प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओं के दान द्वारा सीता को प्रसन्न किया जाये ॥218॥ किष्कु नगर के स्वामी सुग्रीव तथा नगरी को रक्षा करने में उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओं को नगर के बाहर रखा जावे ॥219॥ ऐसा करने पर बाहर रखे हुए सुग्रीवादि अंतर का भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौंपा जाने के कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रसन्न है ॥220॥ इस तरह जब यहाँ का प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओर से अत्यंत दुर्गम हो जायेगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥221॥ सीता के बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरह में रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥222॥ जब राम मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा तब शोक से दुःखी अकेला अथवा क्षुद्र सहायकों से युक्त लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥223॥ अथवा राम के शोक से उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनों का समागम दीप और प्रकाश के समान अविनाभावी है ॥224॥ विराधित अपराधरूपी समुद्र में मग्न है अतः कहां जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीव के समीप जावेगा ऐसा लोगों से सुना जाता है ॥225॥ सुग्रीव का संदेह उत्पन्न करने वाली माया को जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसार में स्वामी दशानन से बढ़कर दूसरा कौन होगा ? ॥226॥इसलिए उस कठिन काय को सिद्ध करने के लिए सुग्रीव, स्वामी दशानन की सेवा करेगा । और सुग्रीव के साथ दशानन का समागम होना फल काल में शुभदायक होगा ॥227॥ इस विधि से दशानन इन शत्रुओं को तथा अन्य लोगों को भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषय में शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥228॥ इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् मंत्री, करने योग्य कार्य का निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥ 229॥ विभीषण ने यंत्र आदि के द्वारा कोट को अत्यंत दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकार की विद्याओं के द्वारा लंका को गह्वरों एवं पाशों से युक्त कर दिया॥ 230॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्त के धारक मनुष्यों का कोई भी कार्य आप्त वचनों से निरपेक्ष नहीं होता **अर्थ**ात् आप्त के कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप्त भगवान् ने मनुष्यों के लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थ के बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ देव के बिना इष्ट सिद्धि का कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसके प्रसन्न करने में प्रयत्न करो ॥231॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्यों के कर्म का उदय विद्यमान रहता है तब तक नाना प्रकार के कुशल वचन उनके चित्त में प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थिति के अनुसार प्रशस्त पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य संताप उत्पन्न न कर सके॥ 232॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरित में रावण के माया के विविध रूपों का वर्णन करने वाला छियालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥46॥

## साहसगति का वध

सैंतालीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर किष्किंधापुर का स्वामी सुग्रीव स्त्री के विरह से दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूषण तथा लक्ष्मण का युद्ध हुआ था ॥1॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं टूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये हैं, ऐसे घोड़ों के साथ सामंत पड़े हैं ॥2 ॥कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई साँसें भर रहे हैं, कहीं स्वामी के पीछे मरण करने वाले स्वामिभक्त सुभट पड़े हैं ॥3॥ किन्हीं की आधी भुजा कट गयी है, किन्हीं की आधी जांघ टूट चुकी है, किन्हीं की आंतों का समूह निकल आया है, किन्हीं के मस्तक फट गये हैं, किन्हीं को शृंगाल घेरे हुए हैं, किन्हीं को पक्षी खा रहे हैं और किन्हीं के मृत शरीर को रोते हुए कुटुंबीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥4-5॥ यह क्या है ? इस प्रकार पूछने पर किसी ने उसे बताया कि सीता का हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूषण मारे गये हैं ॥6॥

तदनंतर खरदूषण की मृत्यु से किष्किंधपति सुग्रीव बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिंता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि मैं उस बलशाली के लिए निवेदन कर स्त्री संबंधी शोक से छूट जाऊंगा इसी बड़ी आशा से मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथी ने उस आशारूपी महावृक्ष को कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापी को किस प्रकार शांति होगी ॥7-9॥ क्या अब मैं आदर के साथ हनुमान् का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समानरूप का धारण करने वाले मायामयी सुग्रीव का भरण कर सके ॥10॥ उद्योग से रहित मनुष्यों को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःख का नाश करने के लिए उत्तम उद्योग का आश्रय लेता हूँ ॥11॥ अथवा हनुमान् को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चंद्रमा ही लोगों के द्वारा अनुराग के साथ वंदनीय होता है अन्य समय नहीं ॥12॥ इसलिए महाबलवान्, देदीप्यमान और महाविद्याओं में निपुण रावण की शरण में जाता हूँ वही मुझे शांति प्रदान करेगा ॥13॥ अथवा जिसका मन क्रोध से प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेष को न जानता हुआ कदाचित् हम दोनों को ही मारने की इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायेगा ॥14॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रों के लिए, मंत्र दोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मन की दाह नहीं बतलानी चाहिए ॥15॥ इसलिए जिसने युद्ध में खरदूषण को मारा है उसी के शरण में जाता हूँ, वही मेरे लिए शांति उत्पन्न करेगा ॥16 ॥राम को भी स्त्री का विरह हुआ है और मैं भी स्त्री के विरह से दुःखी हूँ इसलिए एक समान दुःख होने से यह समय उनके पास जाने के योग्य है क्योंकि पृथिवी पर समान अवस्था वाले मनुष्य सद्भाव-पारस्परिक प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥17 ॥ऐसा विचार कर जिसे सब ओर से उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीव ने विराधित को अनुकूल करने के लिए उसके पास अपना दूत भेजा ॥18॥जब दूत ने सुग्रीव के आगमन का समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और संतोष से युक्त होकर मन में यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रय को सामर्थ्य से मनुष्यों के क्या नहीं होता है ? ॥19-20॥

तदनंतर मेघ के समान दुन्दुभि का शब्द सुनकर पाताल नगर, ( अलंकारपुर ), भय से व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥21 ॥ तत्पश्चात् लक्ष्मण ने विराधित से पूछा कि कहो कि यह किसकी तुरही का शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥22॥ इसके उत्तर में विराधित ने कहा कि हे देव ! यह महाबल से सहित, वानरवंशियों का स्वामी सुग्रीव प्रेम से युक्त हो आपके पास आया है ॥23 ॥बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किंधा नगरी के स्वामी हैं, राजा सहस्र रश्मि रज के पुत्र हैं तथा पृथिवी पर अत्यंत प्रसिद्ध हैं ॥24॥ इनमें जो बालि नाम से प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणों से विख्यात था तथा अभिमान के लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावण को नमस्कार नहीं किया था ॥25॥ अंत में परम प्रबोध को प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीव के अधीन कर वह सर्व परिग्रह से रहित तपोवन में प्रविष्ट हो गया ॥26॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्री में अत्यंत आसक्त हो राज्यलक्ष्मी सहित निष्कंटक राज्य में इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि इंद्राणी सहित इंद्र क्रीड़ा करता है ॥27॥ उस सुग्रीव का गुणरूपी रत्नों से विभूषित अंगद नाम का ऐसा पुत्र है कि किष्किंधा देश में जिसकी कथा अन्य कथाओं से रहित है **अर्थ**ात् अन्य लोगों की कथा छोड़कर संपूर्ण किष्किंधा देश में उसी एक को कथा होती है ॥28॥ इस प्रकार अनन्य चित्त के धारक लक्ष्मण तथा विराधित के बीच जब तक यह वार्ता चल रही थी कि तब तक सुग्रीव राजभवन में आ पहुंचा ॥29॥ राजा के अधिकारी लोगों ने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया । तदनंतर अनुमति पाकर उसने मंगलाचार का अवलोकन करते हुए राजभवन में प्रवेश किया ॥30॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुखकमल कांति से खिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदि ने उसका आलिंगन किया।।31 ॥शिष्टाचार के उपरांत सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी

तल पर बैठे और अमृत तुल्य वाणी से परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥32॥
तदनंतर वृद्धजनों ने राजा रामचंद्र के लिए परिचय दिया कि हे देव ! यह किष्किंध नगर का राजा सुग्रीव है ॥33॥ यह महाऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी, गुणवान् तथा सज्जनों को अतिशय प्यारा है । परंतु किसी दुष्ट मायावी विद्याधर ने इसे अनर्थ आपत्ति में डाल दिया है ॥34॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्यभोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुतारा को भी ग्रहण करना चाहता है ॥35॥तदनंतर वृद्धजनों के उक्त वचन पूर्ण होने के बाद राम, सुग्रीव के सम्मुख उसकी ओर देखने लगे । राम ने मन में विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥36॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनता को प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही बाधा पहुंचा रहा है ॥37॥ इसका यह कार्य अत्यंत कठिन है सो किस प्रकार होगा । इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥38॥ लक्ष्मण ने सुग्रीव के मन के समान जो जांबूनद नामक धीर-वीर मंत्री था उससे दुःख का समस्त कारण पूछा ॥39।।
तदनंतर मंत्रियों में मुख्य जांबूनद ने बड़ी विनय से मायामय सुग्रीव और वास्तविक सुग्रीव का अंतर बताया ॥40॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लता के पाश से विवश तथा सुतारा के रूप से मोहित कोई पापी विद्याधर माया से इसका रूप बनाकर मंत्रीवर्ग तथा समस्त परिजनों के बिना जाने, संतुष्ट हो सुग्रीव के अंतःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥41-42॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नाम की परम सती महादेवी ने भयभीत होकर अपने परिजन से कहा कि जिसकी आत्मा पाप से पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणों से रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीव का वेष रखकर आता है अतः पहले की तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो । यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपाय से तिरने योग्य है पार करने योग्य है ॥43-45 ॥तदनंतर जिसकी आत्मा शंका से रहित थी, जो गंभीर था और लीला से सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीव के समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥46॥ इसी बीच में बाली राजा का अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रम से वहाँ आया । आते ही उसने अपने परिजन को दीन देखकर व्यग्र हो उनसे पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यंत म्लान मुख एवं म्लान नेत्र होकर विषाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान-स्थानपर इकट्ठे हो रहे हैं ? ॥47-48॥ वंदना की अभिलाषा से अंगद सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आने में विलंब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमाद के कारण किसी पर रोष को प्राप्त हुई है ? ॥49 ॥ अथवा जन्म, मृत्यु और जरा से अत्यंत उग्र संसार के नाना दु:खों से भयभीत होकर विभीषण तपोवन को प्राप्त हुआ है ॥50॥ इस प्रकार चिंता करता हुआ सुग्रीव, मणियों के तेज से देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणों से संयुक्त उन समस्त द्वारों को उल्लंघन कर महल के भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय वार्तालाप से रहित थे, सब ओर से संतप्त हुए के समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शंका से युक्त थे तथा जो अन्यरूपता को प्राप्त हुए के समान जान पडते थे ॥51-52॥ जब उसने महल के उत्तम मध्यभाग में अपनी लंबी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनों के पास बैठे हुए अपनी ही समान आभा वाले एक दुष्ट विद्याधर को देखा ॥53 ॥जो दिव्य हार और वस्त्रों को धारण कर रहा था, परम शोभा का धारक था, चित्र-विचित्र आभूषणों से युक्त था, तथा कांति से जिसका मुखकमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधर को सामने देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर संध्या के मेघ समान लाल नेत्रों की कांति को दिशाओं में फैलाता हुआ वर्षा ऋतु के मेध के समान गरजा ॥54-55॥ तदनंतर सुग्रीव के समान रूप को धारण करने वाला विद्याधर भी क्रोध से रक्त मुख हो हाथी के ससान मद से विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥56॥
अथानंतर ओठों को डँसते हुए उन दोनों बलवानों को युद्ध के लिए उद्यत देख श्रीचंद्र आदि मंत्रियों ने शांतिपूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया॥57॥तत्पश्चात् सुतारा ने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है । यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन और कांति से तुल्य दिखता है परंतु प्रासाद, शंख, कलश आदि लक्षणों से जो कि मेरे पति के शरीर में चिरकाल से स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किंचित् भी मेरे पति के समान नहीं है ॥58-59॥ महापुरुषों के लक्षणों से जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पति को तथा इस किसी नीच की तुल्यता घोड़े और गधे की तुल्यता के समान है ॥60॥
तदनंतर दोनों की सदृशता के कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मंत्रियों ने सुतारा के इन शब्दों को सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्य के वचनों की अवज्ञा कर देते हैं ॥61॥ संदेह ने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धिशाली मंत्रियों ने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यंत वृद्ध, वेश्या व्यसनी, बालक और स्त्रियों के वचन विद्वज्जनों को कभी नहीं मानना चाहिए ॥62-63॥ लोक में गोत्र की शुद्धि अत्यंत दुर्लभ है इसलिए उसके बिना बहुत भारी राज्य से भी प्रयोजन

नहीं है ॥64 ॥निर्मल गोत्र पाकर ही शीलादि आभूषणों से विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अंतःपुर की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥65॥

जिस तरह से सुग्रीव निंदनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनों का सब विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥66॥ अंग नाम का पुत्र पिता को भ्रांति से कृत्रिम बनावटी सुग्रीव के पास गया और अंगद नाम का पुत्र माता के वचनों के अनुरोध से सत्य सुग्रीव के पास गया ॥67 ॥हम लोग भी अत्यंत सदृशता के कारण अपने स्वामी के विषय में संदेह शील हैं परंतु सुतारा के कहने से इसी को आगे कर स्थित हैं ॥68॥ संशय के वश में पड़ी सात अक्षौहिणी सेनाएँ एक सुग्रीव के आश्रय गयी और उतनी ही दूसरे सुग्रीव के अधीन हुईं ॥69॥ नगर के दक्षिणभाग में कृत्रिम सुग्रीव रखा गया और वास्तविक सुग्रीव नगर के उत्तर भाग में विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥70॥

सब ओर से रक्षा करने वाले बालि के पुत्र चंद्ररश्मि ने संशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनों में जो भी सुतारा के भवन के द्वार पर जावेगा वह तरुण इंदीवर-नीलकमल के समान सुशोभित मेरी खड□ग के द्वारा अवश्य ही बध्य होगा□ मेरी तलवार के द्वारा मारा जायेगा ॥71-72॥ तदनंतर इस प्रकार रखे हुए दोनों सुग्रीव सुतारा का मुख न देखते हुए व्यसन रूपी सागर में निमग्न हो गये॥ 73॥

अथानंतर स्त्री के विरह से आकुल सत्य सुग्रीव, शोक दूर करने के लिए अनेक बार खरदूषण के पास आया ॥74॥ फिर हनुमान् के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बांधव ! मैं दुःख से पीडित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥75॥ कोई पाप बुद्धि विद्याधर माया से मेरा रूप रखकर मुझे अत्यंत बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥76॥ उस प्रकार की अवस्था में पड़े शोक युक्त सुग्रीव के वचन सुनकर हनुमान् क्रोध से बडवानल के समान हो गया ॥77 ॥वह परम उत्साह को धारण करता हुआ मंत्रियों के साथ, अत्यंत कांतिमां, नाना अलंकारों से प्रचुर, स्वर्ग तुल्य अप्रतीघात नामक विमान में सवार हो उस तरह किष्किंध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्ग में पहुंचता है ॥78-79॥ हनुमान् को आया सुन वह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नता के साथ सुग्रीव की तरह नगर से बाहर निकला ॥8॥ अत्यंत सादृश्य को प्राप्त हुए उस कपि ध्वज को देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागर में पड़ गया ॥81॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जब तक कि विशेषता नहीं जान पड़ती है तब तक इन दो में से एक को कैसे मारूँ? ॥82॥ इन दोनों वानर राजाओं का अंतर जाने बिना मैं कदाचित् मित्रों में श्रेष्ठ सुग्रीव को ही न मार बैठूं ॥83॥

इस प्रकार मुहूर्त भर मंत्रियों के साथ विधिपूर्वक विचारकर उदासीन भाव से हनुमान अपने नगर को वापस चला गया ॥84॥ हनुमान् के वापस लौट जाने पर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥85॥

यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकार को माया से स्वयं संपन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदय का धारक है, और उल्कारूप अस्त्रों का धारक है तो भी संदेह को प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्ट की बात है ॥86॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छों से भरे हुए संशयरूपी सागर में निमग्न इस सुग्रीव को कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥87।।

हे राघव ! स्त्री वियोगरूपी दावानल से प्रदीप्त तथा कृत उपकार को मानने वाले इस कपिध्वज सुग्रीव की सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥88॥ यह आपको आश्रित वत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थ में आप-जैसे महापुरुष का शरीर पर दुःख का नाश करने वाला है ॥89॥

तदनंतर उसके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्य से व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि सभी लोग धिक् ‘‘अहो" हो आदि शब्दों का उच्चारण करने लगे ॥90॥ राम ने विचार किया कि अब यह दुःख के कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्रायः कर समान मनुष्यों में ही प्रेम होता है ॥91॥यदि यह मेरा प्रत्युपकार करने में समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्ग्रंथ साधु होकर मोक्ष का साधन करूंगा ॥92॥

इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदि के साथ क्षण-भर मंत्रणा कर सुग्रीव को बुला राम ने उससे कहा ॥93॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुग्रीव होओ और चाहे कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मारकर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥ 94॥ तुम पहले की भांति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओं को निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुतारा के साथ समागम को प्राप्त होओ ॥ 95॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करने के बाद यदि तुम मेरी प्राणाधि का तथा गुणों से परिपूर्ण सीता का पता चला सके तो

उत्तम बात है ॥96॥यह सुनकर सुग्रीव ने कहा कि यदि मैं सात दिन के भीतर आपकी प्रिया का पता न चला हूँ तो अग्नि में प्रवेश करूं ॥97।।

चंद्रमा की किरणों के समान सुग्रीव के इन अक्षरों से राम कुमुद की उपमा धारण करते हुए परम आह्लाद को प्राप्त हुए ॥98॥ अमृत के प्रवाह से तर हुए के समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओर से रोमांचों से व्याप्त हो गया ॥99॥ हम दोनों परस्पर द्रोह से रहित हैं□ एक दूसरे के मित्र हैं इस प्रकार आदर के साथ उन दोनों ने उस जिनालय में जिन धर्मानुसार शपथ धारण की ॥100॥ तदनंतर महासामंतों से सेवित राम-लक्ष्मण सुग्रीव के साथ उत्तम रथ पर आरूढ़ हो किष्किंधनगर की ओर चले ॥101॥ नगर के समीप पहुँचकर मुकुट में वानर का चिह्न धारण करने वाले सुग्रीव ने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीव के द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापस आ गया ॥102 ॥तदनंतर क्रोध से भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेना से आवृत होता हुआ युद्ध के लिए निकला ॥103॥ अथानंतर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनों में महायुद्ध प्रारंभ हुआ । उनका वह महायुद्ध कपटी योद्धाओं के विस्तार से युक्त था, संकटपूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दों से सहित था ॥104 ॥जो तीक्ष्ण क्रोध का धारक था, तथा विद्याओं के करने में आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकार से ग्रीवा को ऊपर उठाने वाले कृत्रिम सुग्रीव से दृढ़ युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ ॥105 ॥चिरकाल तक युद्ध करने के बाद भी जिन में थकावट का अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवों में महान् युद्ध हुआ । उनके उस युद्ध में चक्र, बाण तथा खड□ग आदि शस्त्रों से आकाश में अंधकार फैल रहा था ॥106।।

अथानंतर कृत्रिम सुग्रीव, गदा के द्वारा सुग्रीव को चोट पहुंचाकर तथा यह मर गया ऐसा समझकर संतुष्ट होता हुआ नगर में प्रविष्ट हुआ ॥107 ॥इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट पड़ा था ऐसे यथार्थ सुग्रीव को उसके मित्रजन घेरकर अपने शिविर में ले आये ॥108॥ जब सचेत हुआ तब राम से बोला कि नाथ ! हाथ में आया चोर जीवित हो पुनः मेरे नगर में कैसे चला गया ॥109॥

जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःख का अंत नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी । इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥110 ॥तत्पश्चात् राम ने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनों की विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुग्रीव को नहीं मारा है ॥111॥ जिनागम का उच्चारण कर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोष से तुझे ही नष्ट नहीं कर दूं इस भय से मैं चुप रहा ॥112॥

अथानंतर उस कृत्रिम सुग्रीव को फिर से ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्नि से दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा राम ने उसका सामना किया ॥113॥जिस प्रकार पर्वत के द्वारा समुद्र क्षोभ को प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छों के संचार से अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव राम के द्वारा क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥114 ॥इधर लक्ष्मण ने वास्तविक सुग्रीव का दृढ़ आलिंगन कर उसे इस अभिप्राय से रोक लिया कि कहीं यह स्त्री के वैर के कारण क्रोध से शत्रु के पास न पहुँच जावे ॥115॥

तदनंतर युद्ध की प्राप्ति से उत्पन्न विशाल तेज से देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीव को ललकारते हुए आगे बढ़े ॥116॥ अथानंतर राम को आया देख सिद्ध करनेवाले से पूछकर वैताली विद्या उसके शरीर से इस प्रकार निकल गयी कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टा को धारण करने वाली स्त्री निकल जाती है ॥117 ॥तत्पश्चात् जो सुग्रीव की आकृति से रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इंद्रनील मणि के समान जान पड़ता था, और जो आवरण से निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूप में स्थित था ऐसे साहसगति को देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपता को प्राप्त हो गये ॥118-119 ॥नाना शस्त्रों से सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर यह वही है यह वही है देखो-देखो आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥120॥ सो विशाल शक्ति के धारक उस तेजस्वी ने शत्रुओं की उस सेना को जब आगे कर खदेड़ा तब वह दिशाओं को उस प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकार की पवन से प्रेरित रूई प्राप्त होती है ॥121॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघसमूह की उपमा धारण करने वाला साहसगति, धनुष पर बाण चढ़ाकर राम की ओर दौड़ा ॥122॥ उधर जब वह लगातार बाण समूह की वर्षा कर रहा था तब इधर राम भी बाणों के द्वारा मंडप बनाकर स्थित थे□ राम भी घनघोर बाणों की वर्षा कर रहे थे ॥123॥ इस प्रकार राम का साहसगति के साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह राम को आनंददायी होता था ॥124॥ तदनंतर अत्यधिक पराक्रम के धारक रामचंद्र ने चिरकाल तक रण क्रीड़ा कर बाणों से उसका कवच छेद दिया ॥125॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणों से जिसका शरीर चलनी के समान सछिद्र हो गया था ऐसे साहसगति ने प्रभा रहित हो पृथिवी का आलिंगन किया **अर्थ**ात् प्राणरहित हो पृथिवी पर गिर पडा ॥126॥ कुतूहल से भरे सब विद्याधरों ने आकर उसे देखा तथा निश्चय से

जाना कि यह साहसगति ही है ॥127॥
तदनंतर उत्कट हर्ष के धारक सुग्रीव ने भाई-लक्ष्मण सहित राम की पूजा की तथा मनोहर स्तुतियों से स्तुति की ॥128॥ शत्रुरहित नगर में परम शोभा कराने के लिए परम उत्कंठा को धारण करता हुआ वह स्त्री के साथ समागम को प्राप्त हुआ ॥129॥
वह भोगरूपी सागर में ऐसा मग्न हुआ कि रात-दिन का भी उसे ज्ञान नहीं रहा । वह चिरकाल बाद दिखा था अतः सुतारा के लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥130॥ महाबल से सहित राम आदि प्रमुख राजाओं ने एक रात्रि नगर से बाहर बिताकर वैभव के साथ किष्किंध नगर में प्रवेश किया ॥131 ॥वहाँ लोकपाल देवों के समान शोभा को धारण करने वाले राम आदि प्रमुख राजा, नंदनवन को शोभा को विडंबित करने वाले आनंद नामक उद्यान में स्वेच्छा से ठहरे ॥132॥
उस उद्यान को सुंदरता का वर्णन नहीं करना ही उसकी सबसे बड़ी सुंदरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करने में कौन समर्थ है ?॥133॥ उस उद्यान में चंद्रप्रभ भगवान की प्रतिमा से सुशोभित मनोहर दैत्यालय था सो समस्त विघ्नों को नष्ट करने वाले चंद्रप्रभ भगवान को नमस्कार कर राम-लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥134॥ चंद्रोदर के पुत्र-विराधित आदि उस चैत्यालय के बाहर अपनी सेनाएँ ठहराकर श्रम से रहित हुए ॥135॥
तदनंतर राम के गुण श्रवण कर अनुराग से भरी सुग्रीव की तेरह पुत्रियां स्वयंवरण की इच्छा से हर्षपूर्वक वहाँ आयीं ॥136॥वे तेरह पुत्रियां इस प्रकार थी पहली चंद्रमा के समान मुख वाली चंद्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदय के लिए संकट की उपमा धारण करने वाली हृदयधर्मा, चौथी अनुंधरी, पांचवीं द्वितीय लक्ष्मी के समान श्रीकांता, छठी सर्व प्रकार से सुंदर चित्त सुंदरी, सातवीं देवांगना के समान विभ्रम को धारण करने वाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करने में निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थ में उत्तम शोभा को धारण करने वाली चारुश्री, दसवीं मदन के उत्सव स्वरूप मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणों की माला से विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमल के समान मुख को धारण करने वाली पद्मावती और तेरहवीं निरंतर जिन पूजन में तत्पर रहने वाली जिनमती । इन सब कन्याओं को लेकर उनका परिकर राम के पास आया ॥137-142॥
राम को प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ ! आप इन सब कन्याओं के स्वयं-वृत शरण होओ । हे लोकेश ! इन कन्याओं के उत्तम बंधु आप ही हैं ॥143॥ गोत्र की रक्षा करने वाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओं का मन स्वभाव से ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरों के साथ न हो ॥144॥
तदनंतर लज्जा के भार से जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभा से युक्त थीं, जिनकी आभा कमल के समान थी तथा जो नवयौवन से परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचंद्र के पास आयीं ॥145॥
बिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमल के भीतरी दल के समान उनको शरीर की विपुल कांति के विकास से आकाश सुशोभित होने लगा ॥146॥
विनीत, लावण्ययुक्त शरीर की धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओं से युक्त वे सब कन्याएं राम के पास आकर बैठ गईं ॥147॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरुषों में सूर्य समान रामचंद्र का भो चित्त किन्हीं में रमण को प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवों की है ॥148॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में विट सुग्रीव के वध का कथन करने वाला सैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हआ ॥47॥

## लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला उठाना

अड़तालीसवाँ पर्व
कथा :
अथानंतर श्रीराम को प्रसन्न करने को इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएं नाना प्रकार को क्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएं ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोक से ही आयी हों ॥1॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्र बजाती थी, कभी अत्यंत मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओं से राम का मन नहीं हरा गया ॥2॥ यद्यपि उन्हें सब प्रकार की पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीता की ओर आकर्षित मन को उन्होंने भोगों में नहीं लगाया ॥3॥ जिस प्रकार मुनि मुक्ति का ध्यान करते हैं

उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओं को छोडकर अनन्यचित्त हो आदर के साथ सीता का ही ध्यान करते थे ॥4॥ वे न तो उन कन्याओं के शब्दों को सुनते थे और न उनके रूप को ही देखते थे । उन्हें सब संसार सीतामय ही जान पड़ता था ॥5॥
वे एक सीता की ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पास में खड़ी किसी दूसरी स्त्री से बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥6॥ वे कभी मधुरवाणी में कौए से इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देश में भ्रमण करता है अतः तूने कहीं सीता को तो नहीं देखा ॥7॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पों की पराग से जिसका जल अलंकृत था ऐसे सरोवर में क्रीड़ा करते चकवा-चकवी के युगल को देखकर वे कुछ सोच-विचार में पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते॥8॥कभी नेत्र बंद कर बड़े सम्मान के साथ वायु का यह विचार कर आलिंगन करते कि संभव है कभी इसने सीता का स्पर्श किया हो ॥9॥ इस पृथिवी पर सीता बैठी थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चंद्रमा को यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभा से तिरस्कृत किया गया था ॥10॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्नि से जलकर कहीं उस अवस्था को तो प्राप्त नहीं हो गयी होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियों की होती है ॥11॥ क्या यह सीता है ? मंद-मंद वायु से हिलती हुई लता नहीं है ? क्या यह उसका वस्त्र है, चंचल पत्रों का समूह नहीं है ? ॥12॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, भ्रमर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चंचल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥13॥ मैं उसका सुंदर केशपाश मयूरियों में, ललाट की शोभा अर्धचंद्र में, नेत्रों की शोभा तीन रंग के कमलों में, मंद मुस्कान की शोभा लाल-लाल पल्लवों के मध्य में स्थित पुष्प में, स्तनों की शोभा कांति संपन्न उत्तम गुच्छों में, मध्यभाग को शोभा जिनाभिषेक की वेदिकाओं के मध्यभाग में, नितंब की स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओं के ऊर्ध्वभाग में, ऊरुओं की अनुपम शोभा केले के सुंदर स्तंभों में, और चरणों की शोभा स्थल कमलों **अर्थ**ात् गुलाब के पुष्पों में देखता हूँ परंतु इन सबके समुदाय स्वरूप सीता की शोभा किसी में नहीं देखता हूँ॥ 14-18॥
वह सुग्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थों को देखने वाले उसने क्या किसी से सीता का समाचार पूछा होगा ? ॥19॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोग से संतप्त होकर नष्ट हो गयी है ऐसा वह जानता है तो भी कहने में असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥20॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यता को प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनंद में निमग्न हो गया है ॥21॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे राम के अभिप्राय को लक्ष्मण समझ गये॥ 22॥
तदनंतर जिनका चित्त क्षोभ से युक्त था, नेत्र क्रोध से लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुग्रीव को लक्ष्य कर चले ॥23॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मण की जंघाओंरूपी स्तंभों से उत्पन्न वायु के द्वारा समस्त नगर ऐसा कंपायमान हो गया मानो महान् उत्पात से आकुल होकर ही कंपायमान हो गया हो॥ 24 । राजा के समस्त अधिकारी मनुष्यों को अपने वेग से गिराकर वे सुग्रीव के घर में प्रविष्ट हो सुग्रीव से इस प्रकार कहने लगे ॥25॥ अरे पापी ! जब कि परमेश्वर-राम स्त्री के दुःख में निमग्न हैं तब रे दुर्बुद्धे ! तू स्त्री के साथ सुख का उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥26॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुझ भोगासक्त को वहाँ पहुँचाता हैं जहाँ कि राम ने तेरी आकृति को धारण करने वाले कृत्रिम सुग्रीव को पहुँचाया है ॥27॥ इस प्रकार क्रोधाग्नि के कणों के समान उग्र वचन छोड़ने वाले लक्ष्मण को सुग्रीव ने नमस्कार कर शांत किया ॥28॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाये क्योंकि मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्यों की खोटी चेष्टा होती ही है॥29॥जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुग्रीव की घबड़ायी हुई स्त्रियाँ हाथ में अर्घ ले-लेकर बाहर निकल आयीं और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मण के समस्त क्रोध को नष्ट कर दिया ॥30॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणि से उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ संबंधी वचनरूपी जल धाराओं के साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥31॥ निश्चय से महापुरुषों के चित्त को शांति प्रणाम मात्र से सिद्ध हो जाती है जबकि दुर्जन बड़े-बड़े दानों से भी शांत नहीं होते ॥32॥ लक्ष्मण ने प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हुए सुग्रीव का उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी **अर्थ**ात् मुनि ने यक्षदत्त की माता का किया था॥ 33॥
इसी बीच में राजा श्रेणिक ने गौतमस्वामी से पूछा कि हे नाथ ! मैं यक्षदत्त का वृत्तांत जानना चाहता हूँ ॥34॥ तदनंतर गणधर भगवान ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनि ने जिस प्रकार यक्षदत्त की माता को स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥35॥एक क्रौंचपुर नाम का नगर है उसमें यक्ष नाम का राजा था और राजिला नाम से प्रसिद्ध उसकी स्त्री थी॥ 36॥ उन दोनों के यक्षदत्त नाम का पुत्र था ।

एक दिन उसने नगर के बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दरिद्रों की बस्ती में स्थित एक परम सुंदरी स्त्री देखी ॥37॥ देखते ही काम के बाणों से उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रि के समय उसके उद्देश्य से जा रहा था कि अवधिज्ञान से युक्त मुनिराज नेमा **अर्थ**ात् हीन इस प्रकार उच्चारण किया ॥38॥ तदनंतर उसी समय बिजली चमकी सो उसके प्रकाश में हाथ में तलवार धारण करने वाले यक्षदत्त ने एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराज को देखा ॥39॥ उसने बड़ी विनय से उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्द का उच्चारण कर निषेध किसलिए किया । इसका मुझे बड़ा कौतुक है ? ॥40॥ इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्य से जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए मत जाओ यह कहकर मैंने रो का है॥ 4॥ यक्षदत्त ने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ? इसके उत्तर में मुनिराज ने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियों के मन अनुकंपा से युक्त होते ही हैं ॥42॥ उन्होंने कहा कि सुनो, मृत्तिकावती नामक नगरी में एक कनक नाम का वणिक् रहता था, उसकी धुर् नाम की स्त्री में एक बंधुदत्त नाम का पुत्र हुआ था ॥43॥ बंधुदत्त की स्त्री का नाम मित्रवती था जो कि लतादत्त की पुत्री थी । एक बार बंधुदत्त अज्ञातरूप से मित्रवती को गर्भधारण कराकर जहाज से अन्यत्र चला गया ॥44॥ तदनंतर सास श्वसुर ने गर्भ का ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझकर नगर से निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासी को साथ ले एक बड़े बनजारों के संघ के साथ अपने पिता के घर की ओर चली । परंतु जंगल के बीच उत्पलिका को सांप ने डंस लिया जिससे वह मर गयी॥ 45-46॥ तब वह सखी से रहित, एक शीलव्रत रूपी सहायिका से युक्त हो महाशोक से व्याकुल होती हई इस क्रौंचपूर नगरी में आयी॥ 47॥ यहाँ स्फीत नामक देवार्चक के उपवन में उसने पुत्र उत्पन्न किया । तदनंतर पुत्र को रत्नकंबल में लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवर में वस्त्र धोने के लिए गयी तब तक एक कुत्ता उस पुत्र को उठा ले गया॥ 48॥ वह कुत्ता राजा का पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उगने रत्नकंबल में लिपटे हुए उस पुत्र को अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्ष के लिए दे दिया ॥49॥ राजा ने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नाम की रानी के लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्थक नाम रखा क्योंकि यक्ष कुत्ता का नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा दिया गया था । वही यक्षदत्त तू है ॥50॥ जब मित्रवती लौटकर आयो और उसने अपना पुत्र नहीं देखा तब वह दुःख से चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही॥ 51॥ तदनंतर उपवन के स्वामी देवार्चक ने उसे देखकर दया पूर्वक सांत्वना दी और यह कह कर कि तू हमारी बहन है अपनी कुटी में रक्खी ॥ 52॥ सहायक न होने से, लज्जा से अथवा अपकीर्ति के भय से वह फिर पिता के घर नहीं गयी और वहीं रहने लगी ॥53॥ वह अत्यंत शीलवती तथा जिनधर्म के धारण करने में तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चक की कुटी में बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥54॥ उसके पति बंधुदत्त ने परदेश को जाते समय उसे जो रत्नकंबल दिया था वह आज भी राजा यक्ष के घर में सुरक्षित रखा है॥ 55॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी मुनिराज को नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की । तदनंतर वह तलवार लिये ही शीघ्रता से राजा यक्ष के पास गया ॥56॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्म का सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवार से तेरा मस्तक काट डालूंगा ॥57॥ इतना कहने पर राजा यक्ष ने सब कारण ज्यों-का-त्यों बतला दिया और साथ ही वह रत्नकंबल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायु के लेप से लिप्त है ॥58॥ तदनंतर उसका अपने पूर्व माता-पिता के साथ समागम हो गया और महावैभव से आश्चर्य में डालने वाला बड़ा उत्सव हुआ ॥59॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि है राजन् ! प्रकरण आ जाने से यह वृत्तांत मैंने तुझ से कहा अब फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥60॥

तदनंतर सुग्रीव, लक्ष्मण को आगे कर शीघ्र ही राम के समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥61॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रम के गर्व से सदा स्पष्ट चेष्टाओं के करने वाले एवं उच्च कुलों में उत्पन्न समस्त किंकरों को बुलाकर जिन महाभोगी किंकरों ने यह वृत्तांत नहीं सुना था उन्हें राम का अद्भुत कार्य बतलाकर आश्चर्य से चकित किया ॥62-63॥ तथा जो इस वृत्तांत को जानते थे प्रभु का कार्य करने में तत्पर रहने वाले उन किंकरों का वचन द्वारा सम्मान करते हुए उनसे राम का प्रत्युपकार करने के लिए यह कहा ॥64॥ कि हे उत्तम विभ्रमों को धारण करने वाले श्री संपन्न समस्त पुरुषो ! तुम लोग शीघ्र ही सीता का पता चलाओ कि वह कहां है ? ॥65॥ तुम लोग नाना प्रकार की विद्याओं और पराक्रम से युक्त हो अतः इस समस्त भूतल में, पाताल में, आकाश में, जल में, थल में, जंबूद्वीप में, समुद्र में, घातकीखंडद्वीप में, कुलाचलों के निकुंजों में, वन के अंत भागों में, सुमेरु पर्वतों में, विद्याधरों के चित्र-विचित्र मनोहर नगरों में, समस्त दिशाओं में और भूमि के विवरों **अर्थ**ात् कंदराओं में सीता का पता चलाओ ॥66-68॥

तदनंतर हर्ष से भरे अहंकारी वानर शेषाक्षत की तरह सुग्रीव की आज्ञा को शिर पर धारण कर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओं में चले

गये॥ 69॥ एक तरुण विद्याधर के द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामंडल के लिए भी समस्त वृत्तांत से अवगत कराया गया ॥70॥ तदनंतर बहन के दुःख से भामंडल अत्यंत दुखी हुआ और सुग्रीव के समान राम का अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥71॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीता की खोज करने के लिए ताराओं के समूह के साथ आकाशमार्ग से चला ॥72॥ वह दृष्ट विद्याधरों के अनेक नगरों के बीच सीता की खोज करने में तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था । तदनंतर हवा से हिलती हुई ध्वजा को दूर से देखकर वह जंबूद्वीप के एक पर्वत के शिखर से उपलक्षित आकाश में पहुंचा । उस समय उसके वस्त्र का अंचल हवा से हिल रहा था॥ 73-74॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाश से उतरते हुए सूर्य के समान देदीप्यमान सुग्रीव के विमान को देखकर उत्पात की आशंका से युक्त हो गया ॥75॥ विमान को देखकर वह अत्यंत विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुड़ से भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमान से भयभीत हो संकुचित होकर रह गया ॥76॥ जब सुग्रीव बिलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजा से वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्यु के भय से व्याकुल होता हुआ इस प्रकार को चिंता को प्राप्त हुआ॥ 77॥ जान पड़ता है कि मैंने लंकाधिपति-रावण का अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करने के लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥78॥हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्र में गिरकर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया । मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीप में मरण प्राप्त हुआ है-मरने का अवसर प्राप्त हो रहा है ॥79॥ मैं विद्याबल से रहित होकर भी इच्छाओं को आगे कर जीवित रहने की इच्छा से युक्त हूँ सो देखूं अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥80 । इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतने में द्वितीय सूर्य के समान द्वीप को प्रकाशित करता हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥81॥ वन की धूलि से जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था ऐसे उस रत्नकेशी को देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीव ने पूछा ॥82॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याओं से समुन्नत था । हे भद्र ! अब ऐसी दशा को किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥83॥ इस प्रकार दया के धारक सुग्रीव ने उससे सुख समाचार पूछा तो भी भय के कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यंत दोन जान पड़ता था॥ 84॥ तदनंतर सुग्रीव ने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्य धारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरों में कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीता के हरने में तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएं छीनकर मुझे ऐसा कर दिया॥ 85-86॥ हे कपिश्रेष्ठ ! दैवयोग से जीवित रहने को आशा से मैं यहाँ इस ध्वजा को ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ-रह रहा हूँ ॥87॥ तदनंतर समाचार प्राप्त हो जाने से जो हर्षजन्य उद्वेग को धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटी को लेकर अपने नगर की ओर गया॥ 88 ॥

अथानंतर विनय से भरे रत्नजटी ने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े-बड़े विद्याधरों के सामने राम से कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लंकापुरी के राजा क्रूर रावण ने पतिव्रता सीतादेवी को तथा क्रोध करने वाले मुझ रत्नजटी की विद्या को हरा है॥ 89-90॥ जो चित्त को हरण करने वाली ध्वनि से महारुदन करती हुई मृगी के समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीता को वह बलवान् हरकर ले गया है ॥91॥ जिसने भयंकर संग्राम में अत्यंत बलवान्, विद्याधरों के अधिपति इंद्र को जीतकर कारागार में डाला था ॥92॥ जो भरतक्षेत्र के तीन खंडों का अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वत के उठाने में विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रांत पृथ्वी दासी के समान जिसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतने के लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानों में श्रेष्ठ है तथा धर्म-अधर्म के विवेक से युक्त है, उसी रावण ने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवों का मोह बड़ा प्रबल है॥ 93-95॥ यह सुनकर नाना प्रकार के स्नेह को धारण करते हुए राम ने आदर के साथ रत्नजटी के लिए अपने शरीर का स्पर्श दिया **अर्थ**ात् उसका आलिंगन किया॥॥96॥ और देवोपगीत नामक नगर का स्वामित्व रत्नजटी के वंश परंपरा से चला आता था पर बीच में शत्रुओं ने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया वहाँ का राजा बनाया ॥97॥ राम, बार-बार आलिंगन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्खलित होते हुए अक्षरों में बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥98॥

तदनंतर अत्यंत उत्सुकता से भरे राम ने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ?॥99॥ इस प्रकार राम के कहने पर सब विद्याधर मोह को प्राप्त हो गये । उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्र मुख, कांतिहीन और वचनों से रहित हो गये ॥100॥ तदनंतर जिनके हृदय भय से विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरों का अभिप्राय जानकर राम ने उनकी ओर अवज्ञा पूर्ण दृष्टि से देखा ॥101॥ तत्पश्चात् हम श्रीराम की दृष्टि में भयभीत जाने गये हैं । इस विचार से जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरों ने हाथ जोड़ मस्तक से लगा मन को धीर कर कहा कि ॥102॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भय से ज्वर उत्पन्न कर देता है

उसके विषय में हम आपके सामने क्या कहें ? ॥103॥ क्षुद्र शक्ति के धारक हम लोग कहां और लंका का स्वामी रावण कहाँ ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तु की हठ छोड़िए ॥104॥अथवा हे प्रभो! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहने में क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥105॥ दष्ट मगरमच्छों से भरे हुए इस लवण से अनेक आश्चर्यकारी स्थानों से युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥106॥ जो सब ओर से सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥107॥ उसके बीच में सुमेरु पर्वत के समान त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नो योजन ऊंचा और पचास योजन चौड़ा है ॥108॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकार के मणियों से देदीप्यमान एवं शिलाओं के समूह से व्याप्त है । राक्षसों के इंद्र भीम ने मेघवाहन के लिए वह दिया था ॥109॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकार के चित्र-विचित्र वृक्षों से सुशोभित उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नाम की नगरी है जो मणि और रत्नों की किरणों तथा स्वर्ग के विमानों के समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदि के योग्य सुंदर प्रदेशों से अत्यंत शोभायमान है॥ 110-11॥जो सब ओर से तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परिखा से युक्त होने के कारण दूसरी पृथिवी के समान जान पड़ती है ॥112॥लंका के समीप में और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्न, मणि तथा स्वर्ण से निर्मित हैं ॥113॥वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरों से युक्त हैं, राक्षसों की क्रीड़ा-भूमि हैं तथा महाभोगों से युक्त विद्याधरों से सहित हैं ॥114॥संध्याकार, सुवेल, कांचन, लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्धस्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगों को देने वाले हैं, वन-उपवन आदि से विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशों के समान जान पड़ते हैं ॥115-116॥लंकाधिपति रावण भृत्य वर्ग से आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनों के साथ उन प्रदेशों में क्रीड़ा किया करता है ॥117॥ क्रीड़ा करते हुए उस विद्याधरों के अधिपति को देखकर मैं समझता हूँ कि इंद्र भी आशंका को प्राप्त हो जाता है॥118॥ जिसका भाई विभीषण लोक में अत्यधिक बलवान् है, युद्ध में बड़े-बड़े लोगों के द्वारा भी अजेय है और राजाओं में श्रेष्ठ है ॥119॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करने वाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है । जगत् प्रभु रावण को उसी एक भाई का संसर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है॥120॥ उसका गुणरूपी आभूषणों से सहित एक छोटा भाई भी है जो कुंभकर्ण इस नाम से प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्र से सहित है ॥121॥युद्ध में यमराज की कुटी के समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रकुटी को देव भी देखने के लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? ॥122॥युद्ध में ख्याति को प्राप्त होने वाला इंद्रजित्, उसी का पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथ में सारा संसार जान पड़ता है॥ 123॥ इन सबको आदि लेकर रावण के ऐसे अनेक किंकर हैं जो नाना प्रकार की विद्याओं के आश्चर्य से सहित हैं तथा प्रताप से जिन्होंने शत्रुओं को नम्रीभूत बना दिया है॥124॥ पूर्णचंद्र के समान आभा वाले जिसके छत्र को देखकर शत्रु युद्ध में अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते हैं ॥125॥ सहसा दृष्टि में आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओं को भय उत्पन्न करने में समर्थ है ॥126॥इस प्रकार के इस रावण को युद्ध में जीतने के लिए कौन बलवान् समर्थ है ? **अर्थ**ात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िए, कोई दूसरा उपाय सोचिए ॥127॥

तदनंतर अनादर से उनमें प्रत्येक की ओर देखकर मेघ के समान गंभीर शब्द को धारण करनेवाले लक्ष्मण ने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्री का चोर क्यों होता? ॥ 128-129॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूरवीरता कहाँ है ? ॥130॥ राम ने भी कहा कि इस विषय में अधिक कहने से क्या ? जिस समाचार का मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैव की अनुकूलता से हमने प्राप्त कर लिया है ॥ 131॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचने की आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षस को क्षोभित किया जाये । कर्मरूपी वायु से प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥132॥

अथानंतर क्षण-भर ठहर कर वृद्ध लोगों ने आदर पूर्वक कहा कि पद्माभ ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणों से अप्सराओं की समानता करने वाली विद्याधर कुमारियों के भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनंद से लोक में भ्रमण करो ॥133–134॥ राम ने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियों से प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इंद्राणी की महालीला को जीतती हों॥ 135॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगों की मुझ पर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीता को दिखाओ ॥136॥ तदनंतर जांबूनद ने कहा कि हे प्रभो! इस मूर्ख हठ को छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूर के विषय में क्षुद्रनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥137॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो वेणातट नामक नगर में सर्व रुचि नाम का एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्णा नामक स्त्री से उत्पन्न विनयदत्त नाम का पुत्र था॥ 138॥ विनयदत्त का एक विशालभूति नामक अत्यंत प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्त को स्त्री गृहलक्ष्मी में आसक्त हो

गया॥ 132॥ एक दिन उसी स्त्री के कहने से विशालभूति विनयदत्त को भ्रमण करने के छल से वन में ले गया और उसे वृक्ष के ऊपर बाँध आया ॥140॥ दुष्ट अभिप्राय को धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशालभूति घर आकर कृतकृत्य की तरह आनंद से रहने लगा तथा पूछने पर विनयदत्त के विषय में कुछ इधर-उधर का उत्तर देकर चुप हो जाता ॥141॥ इसी बीच में क्षुद्र नाम का एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्ग से च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँ से निकला और उसने उस वृक्ष को देखा ॥142॥ वृक्ष की सघन छाया देखकर विश्राम करने की इच्छा से वह वृक्ष के नीचे गया । वहाँ उसने विनयदत्त के कराहने का मंद-मंद शब्द सुन ऊपर को मुख उठाकर देखा ॥143॥ तो उसे अत्यंत ऊँची शाखा के अग्रभाग पर मजबूत रस्सियों से बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीर का धारक विनयदत्त दिखा ॥144॥जिसका चित्त दया में आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुष ने ऊपर चढ़कर उसे बंधन मुक्त किया । तदनंतर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्र को साथ ले अपने घर चला गया ॥145॥ विनयदत्त के लाने से उसके घर में महान् आनंद से युक्त उत्सव हुआ और विशालभूति उसे देख दूर भाग गया ॥146॥ क्षुद्र, विनयदत्त के घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्र का बना हुआ एक मयूर का खिलौना था सो वह खिलौना एक दिन हवा में उड़ गया और राजा के पुत्र को मिल गया ॥147॥ उस कृत्रिम मयूर के निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्र से बोला कि हे मित्र! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥148॥ मैंने तुझे उस तरह वृक्ष पर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकार का बदला मेरे लिए देओ ॥149॥ तब विनयदत्त ने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँ से दूँ ॥150॥ इसके उत्तर में वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वहीं मयूर देओ । सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसो हठ कर रहे हैं ॥151॥ आप ही कहो कि राजपुत्र के हाथ में पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी । राजपुत्र से तो केवल मांगने वालों को मृत्यु ही मिल सकती थी ॥152॥ इसलिए हे रघुनंदन ! सीता की इच्छा छोड़ो और जिनके नेत्र सफेद, काले तथा लाल रंग के हैं, जिनकी कांति सुवर्ण के समान है, जिनके स्तनकलश अत्यंत स्थूल हैं, जिनके जघन की शोभा विशाल है, जिन्होंने मुख को कांति से चंद्रमा को जीत लिया है तथा जो अनेक सुंदर गुणों से युक्त हैं ऐसी कन्याओं के पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥153-154॥ इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठ को छोड़ो और हे विद्वन् ! क्षुद्र के समान मयूररूपी तृण के शोक से पीड़ित नहीं होओ ॥155॥मयूररूपी तृण के समान स्त्रियां पुरुष को सदा सुलभ हैं इसलिए हे राघव ! मैं आप से कह रहा हूँ । बुद्धिमान मनुष्य कभी शोक धारण नहीं करते ॥156।।

तदनंतर वचनों के मार्ग में अतिशय निपुण लक्ष्मण ने कहा कि हे जांबूनद ! यह बात ऐसी नहीं है किंतु ऐसी है सो सुनो ॥157॥कुसुमपुर नामक नगर में एक प्रभव नाम का प्रसिद्ध गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्री का नाम यमुना था ॥158॥उन दोनों के धनपाल, बंधुपाल, गृहपाल, क्षेत्रपाल और पशुपाल नाम के पांच पुत्र थे ॥159॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और कुटुंब के पालन के लिए सदा तत्पर रहते थे तथा क्षणभर के लिए भी अपने कार्य से विश्राम नहीं लेते थे ॥160॥ इनमें सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदय से देवकुमार के समान भोग भोगता था ॥16॥

कुछ करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता-पिता निरंतर कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे । एक दिन वह मानी घर से निकलकर नगर के बाहर चला गया ॥162॥ अत्यंत सुकुमार शरीर का धारक था इसलिए कुछ कर सकने के लिए समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेद को प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥163॥ उसी समय पूर्व कर्मोदय से प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला कि हे मनुष्य ! सुन ॥164॥ मैं पृथुस्थान नगर के राजा का पुत्र सुभानु हूँ । निमित्तज्ञानी के आदेश का पालन करता हुआ मैं अब तक अनेक देशो में भ्रमण करता रहा हूँ॥165॥

इस पृथ्वी पर भ्रमण करता हुआ मैं दैवयोग से कूर्मपुर नामा नगर में पहुंचा । वहाँ एक उत्तम आचार्य के साथ समागम को प्राप्त हुआ ॥166॥ मैं मार्ग के दुःख से दुःखी था इसलिए दयालु चित्त के धारक उन आचार्य ने मुझे यह लोहे का कड़ा दिया था ॥167॥ यह कड़ा समस्त रोगों को शांत करने वाला तथा बुद्धि को बढ़ानेवाला है और ग्रह, उरग, पिशाच आदि का उत्तम वशीकरण है ॥168॥ निमित्तज्ञानी ने मुझे भ्रमण करने के लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गयी है इसलिए मैं अपना राज्य करने के लिए अपने नगर को जाता हूँ ॥169॥राज्यकार्य में स्थिर रहने वाले पुरुष के अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमाद को पाकर यह कड़ा निश्चित हो नाश का कारण बन सकता है ॥170॥इसलिए यदि तू उपसर्गरहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़े को ले ले मैं तुझे देता हूँ ॥171॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तु का दूसरे के लिए दे देना महाफल कारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥172॥

तदनंतर उससे ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर तथा लोहे का कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥173॥ इतने में ही राजा की पत्नी को सांप ने डंस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गयी थी तथा जलाने के लिए श्मशान में लायी गयी थी । आत्मश्रेय ने उसे देखा ॥174 । और देखते ही उस लोह निर्मित कड़े के प्रसाद से उसे जिलाकर उसने राजा से बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥175॥ अब पुण्य कर्म के प्रभाव से उसके लिए समस्त बंधुओं के साथ-साथ परम सुख देने वाले बड़े-बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥176॥ एक बार उसने उस कड़े को उत्तरीय वस्त्र के ऊपर रखकर जब तक सरोवर में प्रवेश किया तब तक एक उद्दंड गुहेरा उसे लेकर चला गया॥ 177॥ वह गुहेरा एक महावृक्ष के नीचे बने हुए अपने बड़े बिल में घुस गया । उसका वह बिल शिलाओं के समूह से आच्छादित, प्रवेश करने के अयोग्य तथा भयंकर शब्द से युक्त था ॥178॥ वह गुहेरा उस बिल में बैठकर निरंतर शब्द करता रहता था जिससे उस बिल को देख मन में प्रलय की आशंका होती थी ॥179॥ तदनंतर आत्मश्रेय ने शिलाओं से सघन उस वृक्ष के मूल को उखाड़कर तथा गुहेरे को मारकर कड़े के साथ-साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥180॥ सो राम तो आत्मश्रेय के समान हैं, सीता कड़े के समान है लाभ की इच्छा प्रमाद के समान है, शत्रु का शब्द गुहेरे के शब्द के समान है, लंका महानिधान के समान है, रावण गुहेरे के समान है, इसलिए हे विद्याधरो! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥181-182॥

इस प्रकार जांबूनद के कथन को खंडित करने वाला लक्ष्मण का उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्य को प्राप्त हो मंद हास्य करने लगे ॥ 183॥ तत्पश्चात् जांबूनद आदि सभी विद्याधर परस्पर में विचार कर राम से यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनिए ॥ 184॥ पहले बार रावण ने हर्ष पूर्वक अनंतवीर्य नामा योगींद्र को नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्यु का कारण पूछा था सो उन योगींद्र ने कहा था कि जो देवों के द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला कोटिशिला को उठावेगा वही तेरी मृत्यु का कारण होगा॥ 185-186॥ सर्वज्ञ के यह वचन सुन रावण ने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलाने के लिए समर्थ होगा ॥187॥भगवान् के कहने का तात्पर्य यह है कि मेरे मरण का कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि **अर्थ** के प्रकट करने में विद्वानों की वचन योजना विचित्र होती है ॥188॥

तदनंतर लक्ष्मण ने कहा कि हम लोग अभी चलते हैं विलंब करना हितकारी नहीं है, अन्य जीवों को आनंद देने वाली सिद्धशिला के अभी दर्शन करेंगे ॥189॥ तत्पश्चात् सब लोग परस्पर में मंत्रणा कर तथा सब ओर से निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मण के साथ जाने के लिए उद्यत हुए ॥190॥ महा बुद्धिमान् जांबूनद, किष्किंधा का स्वामी-सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सम्मान के साथ राम और लक्ष्मण को विमान पर बैठाकर रात्रि के सघन अंधकार में शीघ्र ही आकाशमार्ग से चले ॥191-192॥ और जहाँ वह अत्यंत मनोहर परम गंभीर एवं सुर-असुरों के द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पास में थी वहाँ उतरे ॥193॥ तदनंतर सावधान चित्त होकर आगे गये हुए दिशा रक्षकों को नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तक से लगा उस सिद्धशिला के समीप गये ॥194॥ वहाँ जाकर उन्होंने अत्यंत सुगंधित तथा पूर्ण चंद्रमा के बिंब के समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकार के अन्य पुष्पों से उस शिला की पूजा की ॥195॥ जिसके ऊपर सफेद चंदन का लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्र को धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारों से अलंकृत थी ऐसा वह शिला उस समय इंद्राणी के समान मनोहर जान पड़ती थी॥196॥उस शिला से जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तक से लगाये थे तथा जो सब प्रकार की विधि-विधान में निपुण थे ऐसे उन सब लोगों ने भक्तिपूर्वक क्रम से उस शिला की प्रदक्षिणा दी ॥197।।

तदनंतर विनय को धारण करनेवाले, नमस्कार करने में तत्पर एवं भक्ति से भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करने के लिए उद्यत हुए ॥ 198॥ हर्ष से भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्द का उच्चारण कर सिद्ध भगवान के निम्नांकित स्तोत्र को पढ़ने लगे ॥199॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देदीप्यमान तीन लोक के शिखर पर स्वयं विराजमान हैं, आत्मा की स्वरूपभूत स्थिति से युक्त हैं तथा पुनर्जन्म से रहित हैं ॥200॥जो संसार सागर से पार हो चुके हैं, परमकल्याण से युक्त हैं, मोक्ष सुख के आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शन से सहित हें ॥201॥ जो अनंत बल से युक्त हैं, आत्मस्वभाव में स्थित हैं, श्रेष्ठता से युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥202॥ जो अवगाहन गुण से युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुण से सहित हैं, गुरुता और लघुता से रहित तथा असंख्यात प्रदेशो हैं॥ 203॥ जो अपरिमित-अनंतगुणों के आधार हैं, क्रम आदि से रहित हैं, आत्मस्वरूप की अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजन को अंतिम सीमा को प्राप्त हैं-कृतकृत्य हैं॥ 204॥ जिनके भाव सर्वथा

शुद्ध हैं, जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थों को जान लिया है, जो निरंजन कर्म कालिमा से रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवी को भस्म कर दिया है॥ 205॥ संसार से भयभीत तथा तेजरूपी पट से परिवृत इंद्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥206॥ जो संसाररूप धर्म से रहित हैं, सिद्धरूप धर्म को प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकार की सिद्धियों को धारण करनेवाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेष्ठियों को हम नमस्कार करते हैं॥ 207॥शील को धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिला से सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, पुराणों में जिनका कथन है, जो सर्व कर्मों से रहित हैं, जिनेंद्र देव की समानता को प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महाप्रताप के धारक हैं उन सबको हम भक्तिपूर्वक मंगल स्मरण करते हुए बार-बार वंदना करते हैं ॥208-209॥ इस प्रकार चिरकाल तक स्तुति कर एकाग्रचित्त के धारण उन विद्याधरों ने लक्ष्मण को लक्ष्य कर कहा कि इस शिला से जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषों ने पाप कर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों ॥210-211॥ अरहंत भगवान् तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मंगलरूप हों । सर्व साधु परमेष्ठी मंगलस्वरूप हों और जिनशासन मंगलरूप हो ॥212॥इस प्रकार विद्याधरों की मंगल ध्वनि के साथ, महातेज को धारण करने वाले लक्ष्मण ने शीघ्र ही उस शिला को हिलादिया॥213॥तदनंतर लक्ष्मण कुमार ने कुलवधू के समान नाना अलंकारों से सुशोभित उस शिला को बाजूबंदों से सुशोभित अपनी भुजाओं से ऊपर उठा लिया ॥ 214॥ उसी समय आकाश में देवों का महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥215॥

तदनंतर हर्ष से भरे सब लोग भय से रहित सिद्धपरमेष्ठियों, सम्मेदशिखर पर विराजमान श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्र की तथा ऋषभ आदि तीर्थंकरों के निर्वाण स्थान कैलास आदि को विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्र में घूमे ॥216-217॥ तदनंतर वंदना करने के बाद सौम्य शरीर के धारक तथा महावैभव से संपन्न सब लोगों से सायंकाल के समय मन के समान वेगशाली दिव्य विमानों द्वारा जयनंद आदि शब्दों के साथ महापराक्रमी राम-लक्ष्मण को घेरकर किष्किंधनगर में प्रवेश किया ॥218-219॥सबने यथास्थान शयन किया । तदनंतर आश्चर्यचकित चित्त से एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नता से परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥220॥ कि तुम लोग परम शक्ति को धारण करने वाले इन दोनों का कुछ ही दिनों में पृथिवी पर समस्त कंटकों **अर्थ**ात् शत्रुओं से रहित राज्य देखोगे ॥221॥ जिसने उस निर्वाण शिला को चलाकर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावण को मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥222॥ कुछ लोग इस प्रकार कहने लगे कि उस समय जिसने कैलास उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वाले के समान है ? ॥223।।

कुछ अन्य लोग कहने लगे कि यदि रावण ने कैलास पर्वत उठाया था तो इससे क्या हुआ क्योंकि विद्याबल के रहते हुए उसके इस कार्य में किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥224॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थ के विवादों से क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करने के लिए संधि का उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥225॥ इसलिए रावण की पूजा कर सीता को लाया जावे उसे हम राम के लिये सौंप देंगे फिर युद्ध का क्या प्रयोजन है ? ॥226॥ संग्राम में तारक, महा बलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओं से सहित कृतवीर्य के पुत्र आदि मारे गये हैं ॥227॥ ये सभी तीन खंड के स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे । इनके सिवाय और भी अनेक राजा रण में सब ओर नष्ट हुए हैं ॥228॥ इस प्रकार विद्याओं के प्रयोग करने में निपुण सब लोग परस्पर सलाह कर विनय सहित आदरपूर्वक मिलकर राम के पास आये॥ 229॥ नेत्रों को आनंद उत्पन्न करनेवाले राम के चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि अमरेंद्र के चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥230॥ तदनंतर राम ने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीप में सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥231॥ शीघ्र ही दीर्घ सूत्रता को छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचल पर चलने के लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ?॥232॥ तब नीति के विस्तार में निपुण वृद्ध मंत्रियों ने कहा कि हे देव ! इस विषय में संशय को क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥233॥ आप सीता को चाहते हैं या राक्षसों के साथ युद्ध? यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाई से प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसों का और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध-बराबरी वालों का युद्ध नहीं है॥ 234॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरों में प्रसिद्ध, तीन खंड भरत का शत्रुरहित एक-अद्वितीय ही प्रभु है॥ 235॥ धातकीखंड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शंकित रहता है, वह ज्योतिषी देवों को भी भय उत्पन्न करनेवाला है तथा जंबूद्वीप में परम महिमा को प्राप्त अद्वितीय विद्याधरों का स्वामी है ॥236॥ जो समस्त संसार के लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥237॥ इसलिए हे देव ! रण की भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न होइए और शांति के लिए उद्योग कीजिए ॥238॥ उसके कुपित होनेपर यह संसार महाभय से युक्त न हो, प्राणियों के समूह का विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥239॥ रावण का भाई

विभीषण अत्यंत प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है । वह दुष्टता पूर्ण कार्यों से सदा दूर रहता है और अणुव्रतों का दृढ़ता से पालन करता है ॥240॥ उसके वचन अलंघ्य हैं वह जो कहता है रावण वही करता है । यथार्थ में उन दोनों में निर्वाध परम प्रेम है॥241॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारता से, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्राय से अथवा लज्जा के कारण रावण सीता को भेज देगा ॥242॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुष को खोज की जाये जो निवेदन करने वाले वचनों की योजना में कुशल हो, नीतिनिपुण हो और रावण को प्रसन्न करने वाला हो ॥243।।

तदनंतर महोदधि नाम से प्रसिद्ध विद्याधरों के राजा ने कहा कि क्या यह वृत्तांत आप लोगों के श्रवण में नहीं आया ॥244॥ कि लंका अनेक जनों का विघात करने वाले यंत्रों से निरंतर अगम्य कर दी गयी है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यंत भयंकर गंभीर गर्तों से युक्त हो गयी है ॥245॥इन सबके बीच में महाविद्याओं के धारक एक भी ऐसे विद्याधर को नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटने के लिए समर्थ हो ॥246॥ हाँ, पवनंजय राजा का पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रताप से सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाये ॥247॥इसका दशानन के साथ उत्तम संबंध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाये तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्नरूप से शांति स्थापित कर सकता है॥248॥तदनंतर सब विद्याधरों ने एवमस्तु कहकर महोदधि विद्याधर का प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नाम का दूत भेजा ॥249॥गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्ति के धारक राजा को भी प्रारंभ करने योग्य कार्य के विषय में परमविवेक को प्राप्त कर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्य के समान समय आने पर अभ्युदय को प्राप्त होता है॥ 250॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में कोटिशिला उठाने का वर्णन करने वाला अड़तालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥48॥

## हनुमान का प्रस्थान

उनचासवां पर्व

कथा :

तदनंतर-वायु के समान वेग का धारक श्रीभूति दूत, आकाश में उड़कर अत्यंत ऊँचे-ऊँचे महलों से परिपूर्ण, लक्ष्मी के घर स्वरूप श्रीपुर नगर में पहुँचा ॥1॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैल के उस भवन में प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानी के लेप से उत्पन्न तेज से अत्यंत देदीप्यमान था, कुंद के समान उज्ज्वल अट्टालिकाओं से सुशोभित था, रत्नमयी शिखरों से जगमगा रहा था, मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, झरोखों से सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-बगीचों से व्याप्त था ॥2-3॥ वहाँ लोगों को अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूति का मन बड़ी कठिनाई से धीरता को प्राप्त हुआ ॥4॥ जब आश्चर्य में पड़े हुए श्रीभूति दूत ने हनुमान के घर में प्रवेश किया तब चंद्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा उत्पात को प्राप्त हुई ॥5॥ दक्षिण नेत्र को फड़कते देख उसने विचार किया कि दैवयोग से जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥6॥ हीन शक्ति के धारक मनुष्य तो दूर रहें देवों के द्वारा भो कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥7॥ तदनंतर अनंगकुसुमा की प्रहासिका सखी ने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेद के कणों से जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूत को प्रतीहारी ने सभा के भीतर प्रविष्ट कराया ॥8॥

अथानंतर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तांत ज्यों का त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दंडक वन में आये, शंबूक का वध हुआ, खरदूषण के साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्यों के साथ खरदूषण मारा गया ॥9-10॥ तदनंतर यह वार्ता सुन अनंगकुसुमा शोक से विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गयी तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥11॥ उसका हलन-चलन बंद हो गया तथा चंदन के द्रव से उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अंतःपुररूपी सागर परम क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥12॥ अंतःपुर की समस्त स्त्रियां एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके रुदन का शब्द ऐसा उठा मानो वीणाओं के हजारों तार कोण के ताड़न को प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥13॥ तदनंतर अनंगकुसुमा बड़े कष्ट से प्राणों के समागम को प्राप्त हुई **अर्थ**ात् सचेत हुई । सचेत होनेपर अश्रुओं से स्तनों को सिक्त करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोर से विलाप करने लगी ॥14॥ वह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये; मुझे वचन देओ-मुझ से वार्तालाप करो । हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥15 ॥हे तात ! अत्यंत भयंकर वन में रण के सम्मुख हुए तुम भूमिगोचरियों के द्वारा मरण को कैसे प्राप्त हो गये ? ॥16॥ इस प्रकार जब श्रीशैल का भवन शोकाकुल मनुष्यों से भर गया तब

अनंगकुसुमा की नर्मदा-सखी दूत को बात करने योग्य स्थानपर ले गयी ॥17॥ पिता और भाई के दुःख से संतप्त चंद्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा, सांत्वना देने में निपुण सत्पुरुषों के द्वारा बड़ी कठिनाई से शांति को प्राप्त करायी गयो ॥18॥ जिनमार्ग में प्रवीण अनंगकुसुमा ने संसार को स्थिति जानकर लोकाचार के अनुकूल पिता को मरणोत्तर क्रिया की ॥19॥

अथानंतर दूसरे दिन शोक से व्याप्त तथा मंत्री आदि मौलवर्ग से परिवृत श्रीशैल हनुमान् ने दूत को बुलाकर पूछा कि हे दूत ! खरदूषण की मृत्यु का जो कुछ कारण हुआ है वह सब कहो, यह कहकर हनुमान् खरदूषण का स्मरण करने लगा ॥20-21॥ तदनंतर क्रोध से जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमान की फड़कती हुई भौंह चंचल बिजली की रेखा के समान जान पड़ती थी ॥22॥ तत्पश्चात् भय से जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान् ने हनुमान् का क्रोध दूर करने वाले निम्नांकित मधुर वचन कहे ॥23॥ उसने कहा कि हे देव ! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किंधा के अधिपति सुग्रीव को उसी के समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधर के कारण स्त्रीसंबंधी दुःख उपस्थित हुआ था ॥24॥ उस दुःख से दुखी हुआ सुग्रीव राम की शरण में आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर किष्किंधनगर गये थे॥25॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुग्रीव का, उसकी आकृति के चौर कृत्रिम सुग्रीव के साथ बड़े-बड़े योद्धाओं को थ का देनेवाला चिरकाल तक महायुद्ध हुआ ॥26॥ तदनंतर महातेजस्वी राम ने उठकर उसे ललकारा । उन्हें देखते ही चोरी का कारण जो वेताली विद्या थी वह नष्ट हो गयी ॥27॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूप को प्राप्त हो गया, सबकी पहचान में आया और राम के द्वारा छोड़े हुए बाणों से मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥28 ॥यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया । प्रसन्नता से उसका मुख कमल खिल उठा और संतुष्ट होकर उसने बार-बार कहा कि अहो ! राम ने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्ति में डूबते हुए सुग्रीव के कूल का शीघ्र ही उद्धार कर लिया ॥29-30॥ स्वर्ण कलश के समान सुग्रीव का कुल अपयशरूपी कूप के गर्त में पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धि के धारक राम ने गुणरूपी रस्सी हाथ में ले उसे निकाला है ॥31॥इस प्रकार रामलक्ष्मण को अत्यधिक प्रशंसा करता हुआ हनुमान् किसी अद□भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागर में निमग्न हो गया ॥32॥

हनुमान् की दूसरी स्त्री सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा थी सो पिता के शोक का क्षय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ । उसने दान-पूजा आदि के द्वारा महाउत्सव किया ॥33॥ उस समय हनुमान् के भवन में एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था । वह एक ओर तो कांति से शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था । इस प्रकार दो स्त्रियों के कारण वह दो प्रकार के रस से युक्त था ॥34॥ इस प्रकार जब कुटुंब के लोग विषमता को प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान् कुछ-कुछ मध्यस्थता को धारण कर किष्किंधा नगर की ओर चला ॥35॥ वैभव के साथ जाते हुए हनुमान् की बहुत बड़ी सेना से उस समय संसार आकाश से रहित होने के कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥36॥मणियों और रत्नों से जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणों से सूर्य की प्रभा को हर रहा था ॥37॥ जाते हुए उस महाभाग्यशाली के पीछे सैकड़ों मित्र राजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इंद्र के पीछे उत्तमोत्तम देव चलते हैं ॥38॥ उसके आगे-पीछे और दोनों ओर चलने वाले विद्याधर राजाओं की जयध्वनि से आकाश शब्दमय हो गया था ॥39॥ आकाश तल में चलने वाले उसके घोड़ों से आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियों की अपने शरीर के अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥40॥ जिनमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिन पर पताकाएं फहरा रही थीं ऐसे रथों से उस समय आकाश तल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षों से व्याप्त ही हो ॥41॥ धवल छत्रों के विशाल समूह से आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदों के समूह से ही व्याप्त हो ॥42॥ दूसरों की ध्वनि को नष्ट करनेवाला उसकी दुंदुभि का धीर गंभीर शब्द दिशाओं के मंडल को व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥43 ॥उसकी चलती हुई सेना से व्याप्त आकाशांगण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीच में खंड-खंडों से आच्छादित हो ॥44॥ उसके नाना प्रकार के भूषणों के समूह की कांति से रंगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट-कुशल शिल्पी के द्वारा रंगा वस्त्र ही हो ॥45 ॥हनुमान् की तुरही का गंभीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार संतोष को प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघ का शब्द सुनकर मयूर संतोष को प्राप्त होते हैं ॥46 ॥उस समय किष्किंधनगर के बाजारों में महाशोभा की गयी; ध्वजाओं तथा मालाओं से नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणों से युक्त किया गया ॥47॥ देवों के समान अनेक विद्याधरों ने बड़े वैभव से जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीव के विशाल महल में प्रविष्ट हुआ ॥48॥ सुग्रीव ने यथायोग्य आदर कर उसका सम्मान किया तथा राम आदि की समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥49 ॥तदनंतर हनुमान् से युक्त सुग्रीव आदि राजा परम हर्ष को धारण करते हुए राम के समीप आये ॥50॥ तत्पश्चात् हनुमान् ने उन श्रीराम को देखा जो मनुष्यों में श्रेष्ठ थे, लक्ष्मण के अग्रज थे,

जिनके केश काले, घुंघराले, सूक्ष्म तथा अत्यंत स्निग्ध थे ॥51॥
जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लता से आलिंगित था, जो बालसूर्य के समान जान पड़ते थे अथवा जो कांतिरूपी पंक के आकाश को लिप्त करते हुए चंद्रमा के समान सुशोभित थे ॥52॥ जो नेत्रों को आनंद देने वाले थे, मन के हरण करने में निपुण थे, अपूर्व कर्मों की मानो सृष्टि ही थे और स्वर्ग से आये हुए के समान जान पड़ते थे ॥53॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्ण-कमल के भीतरी भाग के समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासा का अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथवा सज्जनों को प्रिय थे ॥54॥ जो मूर्तिधारी कामदेव के समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्रकमल के समान थे, जिनकी भौंह चढ़े हुए धनुष के समान नम्रीभूत थी, जिनका मुख शरद्ऋतु के पूर्णचंद्रमा के समान था ॥55॥ जिनका ओंठ बिंब अथवा मूंगा या किसलय के समान लाल था जिसकी दाँतों की पंक्ति कुंद कुसुम के समान शुक्ल थी, कंठ शंख के समान था, जो सिंह के समान विस्तृत वक्षःस्थल के धारक थे, महाभुजाओं से युक्त थे ॥56॥ जिनके स्तनों का मध्यभाग श्रीवत्सचिह्न की कांति से परिपूर्ण महाशोभा को धारण करने वाला था, जो गंभीर नाभि से युक्त तथा पतली कमर से सुशोभित थे ॥57 ॥जो प्रशांत गुणों से युक्त थे, नाना लक्षणों से विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यंत सुकुमार थे, जिनकी दोनों जाँघे गोल तथा स्थूल थीं ॥58॥ जिनके दोनों चरण कछुवे के पृष्ठ भाग के समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चंद्रमा की किरणरूपी अंकुरों से लाल-लाल दिखने वाली नखावली से उज्ज्वल थे ॥59॥जो अक्षोभ्य धैर्य से गंभीर थे जिनका शरीर मानो वज्र का समूह ही था, अथवा समस्त सुंदर वस्तुओं को एकत्रित कर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥60॥ जो महाप्रभाव से युक्त थे, न्यग्रोध **अर्थ**ात् वट-वृक्ष के समान जिनका मंडल था, जो प्रिय स्त्री के विरह के कारण बालसिंह के समान व्याकुल थे ॥61॥ जो इंद्राणी से रहित इंद्र के समान, अथवा रोहिणी से रहित चंद्रमा के समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनों से युक्त थे, समस्त शास्त्रों में निपुण थे ॥62॥शूर-वीरता के माहात्म्य से युक्त थे तथा मेधा-सद्बुद्धि आदि गुणों से युक्त थे । ऐसे श्रीराम को देखकर हनुमान क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥63।। तदनंतर जो राम के प्रभाव से वशीभूत हो गया था और उनके शरीर को कांति के समूह से जिसका शरीर आलिंगित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रम में पड़ विचार करने लगा ॥64॥ कि यह वही दशरथ के पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचंद्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥65॥ उस समय युद्ध में जिनका चंद्र तुल्य छत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गयो ॥66 ॥मेरा जो हृदय पहले इंद्र को देखकर भी कंपित नहीं हुआ वह आज इन्हें देखकर परम क्षोभ को प्राप्त हुआ है ॥67॥इस प्रकार आश्चर्य को प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणों का अनुसरण कर कमललोचन राम के पास पहुँचा ॥68॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदि ने इसे देख दूर से ही उठकर यथाक्रम से इसका आलिंगन किया ॥69॥ परस्पर एक दूसरे को देखकर तथा विनय के योग्य वार्तालाप कर सब नाना प्रकार तालियों से सुशोभित अपने-अपने आसनों पर बैठ गये॥70॥ वहाँ जो उत्तम आसन पर विराजमान थे, जिनको भुजा बाजूबंद से सुशोभित थी, जो लक्ष्मी के द्वारा सब ओर से देदीप्यमान थे, जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हार से सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चंद्रमा के समान जान पड़ते थे ॥71-72 ॥दिव्य पीतांबर को धारण करनेवाले तथा हार, केयूर और कुंडलों से अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे ॥73॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानर के चिह्न से युक्त था, तथा देवगज-ऐरावत के समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीव राजा भी अतिशय बलवान् लोकपाल के समान सुशोभित हो रहा था ॥74॥ लक्ष्मण के पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेज से ऐसा दिखाई देता था मानो नारायण के समीप रखा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥75॥
अतिशय बुद्धिमान् रामचंद्र के समीप हनुमान भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचंद्र के समीप उदित हुआ अत्यंत देदीप्यमान बुध ग्रह ही हो ॥76॥ सुगंधित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारों से अलंकृत अंग और अंगद यम तथा वैश्रवण के समान सुशोभित हो रहे थे ॥77॥ इनके सिवाय राम को घेरकर बैठे हुए नल, नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे॥78॥ नाना प्रकार की उत्तम गंध से युक्त तांबूल तथा सुगंधित अन्य पदार्थों के समागम से जहाँ वायु सुगंधित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणों के द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इंद्र की सभा के समान जान पड़ती थी ॥7॥
तदनंतर चिरकाल तक आश्चर्य में पड़कर प्रीति युक्त हनुमान् ने राम से कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोक में भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करने की उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता हैं उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणों का कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥80-82॥ जिनका बलपूर्ण

लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहले से सुन रखा था उन प्राणिहितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रों से देख रहा हूँ॥83 ॥हे राजन् ! आप संपूर्ण सौंदर्य से युक्त हैं, तथा गुणरूपी रत्नों को आकर **अर्थ**ात् खान अथवा समुद्र हैं । आपके शुक्ल यश से यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥83॥ हे नाथ! वज्रावर्त धनुष की प्राप्ति से जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीता के स्वयंवर में आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥84॥ दशरथ जिनका पिता है, भामंडल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत् के स्वामी राजा राम हैं ॥85 ॥अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुष का स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करने में तत्पर है ॥86॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो! आपका त्याग अद्भुत है जो पिता के वचन का पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दंडक वन में प्रविष्ट हुए हैं ॥87॥हे नाथ! आपने हम लोगों का जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इंद्र ही ॥88॥ आपने सुग्रीव का रूप धारण करनेवाले साहसगति को युद्ध में मारकर वानरवंश का कलंक दूर किया है ॥89॥ विद्याबल की विधि के जानने वाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीर को सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगों के लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगति ने वानर वंशी सेना को प्राप्त करने के लिए कितना प्रयत्न किया परंतु आपके दर्शनमात्र से उसका वह रूप निकल गया ॥90-91 ॥जो अत्यंत उपकारी मनुष्य का प्रत्युपकार करने के लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषय में भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जबकि यह भावशुद्धि बिलकुल ही सुलभ है ॥12 ॥जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषता को नहीं जानता है उसकी एक अज्ञ के लिए भी न्याय में बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥93॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चांडाल से भी अधिक पापी है, शिकारी से भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषों से निरंतर वार्तालाप करने के लिए भी योग्य नहीं है ॥94॥ हे प्रभो! हम सब किसी अन्य की शरण में न जाकर आपकी ही शरण में आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करने के लिए उद्यत हैं ॥95॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावण को समझाऊँगा । वह बुद्धिमान है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नी को वापस ले आता हूँ ॥96॥ हे राघव ! इसमें संदेह नहीं कि तुम उदित हुए चंद्रमा के समान निर्मल सीता का मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥97॥
तदनंतर सुग्रीव के मंत्री जांबनद ने परमहितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमान ! हम लोगों का आधार एक तू ही है ॥98॥ अतः तुझे सावधान होकर रावण के द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसी के साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥19॥ एवमस्तु-ऐसा ही हो यह कहकर उदार हनुमान् लंका की ओर प्रस्थान करने के लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परमप्रीति को प्राप्त हुए ॥100॥
विदलित कमललोचन राम ने सुंदर लक्षणों के धारक हनुमान को बार-बार बुलाकर बड़े आदर के साथ यह कहा कि तुम मेरी ओर से सीता से कहना कि हे साध्वि ! इस समय राम तुम्हारे वियोग से किसी भी वस्तु में मानसिक शांति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं उनका मन किसी भी पदार्थ में नहीं लगता है ॥101-102॥ मेरे रहते हुए जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध-रुकावट को प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुष का अत्यधिक धात समझता हूँ ॥103॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रत से सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोग से योग से दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी खोटे परिणामों से मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि ! प्राण धारण करो । जीवन का त्याग करना उचित नहीं है ॥104-105 ॥सर्व वस्तुओं का पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहंत भगवान के मुखारविंद से प्रकट हुआ धर्म है ॥106॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरण के बिना यह जीवन तुष के समान साररहित देखा गया है ॥107॥ और प्रिया के लिए मेरे जीवित रहने का प्रत्यय-विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदा को परिचित उत्तम अँगूठी उसे दे देना ॥108 ॥तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीता का महाकांतिमां चूड़ामणि यहाँ ले आना ॥109॥ जैसी आज्ञा हो यह कहकर रत्नमय वानर से चिह्नित मुकुट को धारण करने वाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मण को हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया । उस समय वह अत्यंत हर्षित था, विभूतियों से युक्त था और अपने तेज से सुग्रीव के भवन संबंधी समस्त आंगन को क्षोभ युक्त कर रहा था ॥110-111 ॥उसने सुग्रीव से कहा कि जब तक मैं न आ जाऊँ तब तक आपको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥112॥
तदनंतर हनुमान् सुंदर शिखर से युक्त विमानपर आरूढ़ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरु के शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥113 ॥तत्पश्चात् उसने परम कांति से युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सफेद छत्र से सुशोभित था और उड़ते हुए हंसों की समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे॥114॥ वह वायु के समान वेगशाली घोड़ों, चलते-फिरते पर्वतों के

समान हाथियों और देवों के समान सैनिकों से घिरा हुआ जा रहा था॥115 ॥इस प्रकार जो महाविभूति से युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपर को दृष्टि कर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्य के मार्ग का उल्लंघन कर निरंतर आगे बढ़ा जाता था॥116॥गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकार के उत्तम भोगों से युक्त जंतुओं से भरा हुआ है । उनमें से कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्य में लगता है तथा परम यश को प्राप्त होता है ॥117 ॥जो उत्तम मनुष्य दूसरे के द्वारा किये हुए उपकार का निरंतर स्मरण रखते हैं इस संसार में उनके समान न चंद्रमा है, न कुबेर हैं, न सूर्य है और न इंद्र ही है ॥118॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित, पद्मपुराण में हनुमान के प्रस्थान का वर्णन करने वाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥49॥

## महेंद्र का पुत्री के साथ समागम

पचासवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर परम अभ्युदय को धारण करनेवाला हनुमान् आकाश में जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहन सीता को लेने के लिए भामंडल ही जा रहा हो ॥1॥ मित्र श्रीराम की आज्ञा में प्रवृत्त, विनयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभाव के धारक हनुमान् के हृदय में उस समय कोई अद्भुत आनंद छाया हुआ था ॥2॥ सूर्य के मार्ग में स्थित हनुमान् जब प्रौढ़ दृष्टि से दिङमंडल की ओर देखता था तब उसे दिङमंडल शरीर के अवयवों के समान जान पड़ता था॥ 3॥ लंका की ओर जाने के लिए इच्छुक हनुमान् की दृष्टि के सामने राजा महेंद्र का नगर आया जो इंद्र के नगर के समान जान पड़ता था ॥4॥ वह नगर पर्वत के शिखर पर स्थित था तथा वेदि का पर स्थित सफेद कमलों के समान आभा को धारण करनेवाले चंद्रतुल्य धवल भवनों के द्वारा दूर से ही प्रकाशित हो रहा था॥ 5॥ जिस प्रकार बालि के नगर में इंद्र को प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेंद्र के उस नगर में हनुमान् को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥6॥ कि यह पर्वत के शिखर पर राजा महेंद्र का नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेंद्र निवास करता है॥7॥मेरे गर्भवास के समय दुःख से भरी मेरी माता इसके नगर आयी पर इस दुष्ट ने उसे निकाल दिया ॥8॥ तब मेरी माता निर्जन वन की उस गुफा में जिनमें कि पर्यंक योग से अमितगति नामा मुनि विराजमान थे रहीं ! इसी गुफा में उन दयालु मुनिराज ने उत्तम वचनों के द्वारा उसे सांत्वना दी और बंधुजनों से रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥9-10॥ इसी गुफा में माता को सिंह से उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफा में उसे मुनिराज का सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यंत प्रिय है॥ 11॥ जो मेरी शरणागत माता को निकालकर कृतकृत्य हुआ था उस महेंद्र को अब मैं कष्ट का बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥12॥यह महेंद्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरंतर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ । 13॥ तदनंतर ऐसा विचार कर उसने घूमते हुए मेघसमूह के समान उच्च शब्द करने वाली दुंदुभियाँ, महाविकट शब्द करने वाली भेरियां और नगाड़े बजवाये ॥14॥ उत्कृष्ट चेष्टाओं को धारण करनेवाले योद्धाओं ने जगत् को कँपा देने वाले शंख फूंके तथा शस्त्रों को चमकाने वाले रणवीर योद्धाओं ने जोर से गर्जना की ॥15॥ पर बल को आया सुन, राजा महेंद्र सर्व सेना के साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूह को रोकता है उसी प्रकार उसने हनुमान् के दल को रो का ॥16॥ तदनंतर लगी हुई चोटों से अपनी सेना को नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथ पर बैठा हुआ राजा महेंद्र का पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥17॥ सो हनुमान् ने तीन बाण छोड़कर उसके लंबे धनुष को उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियों के द्वारा उठते हुए मान को छेद डालते हैं ॥18॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनुमान् ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चंचल घोड़े रथ से छुड़ा दिये ॥19॥सो रथ से छूटे हुए वे चंचल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्य की मन से छटी हई इंद्रियाँ इधर-उधर घूमने लगती हैं ॥20॥ अथानंतर महेंद्र का पुत्र घबडाकर उत्तम विमान पर आरूढ़ हुआ सो हनुमान् के वाणों से वह विमान भी उस तरह खंडित हो गया जिस तरह कि किसी दुर्बुद्धि का मत खंडित हो जाता है॥ 21॥ तदनंतर विद्या के बल से विकार को प्राप्त हुआ महेंद्र पुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्र के समान देदीप्यमान बाण, चक्र तथा कनक नामक शस्त्रों से युद्ध करने लगा ॥22॥ तब हनुमान् ने भी विद्या के द्वारा उस शस्त्र समूह को उस तरह रो का जिस तरह कि योगी आत्मध्यान के द्वारा परीषहों के समूह को रोकता है ॥23॥ तदनंतर जो निर्दयता के साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचंड अग्नि के समान सब ओर से आच्छादित कर रहा था ऐसे महेंद्र पुत्र को हनुमान ने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्प को पकड़ लेता है॥ 24॥

पुत्र को पकड़ा देख क्रोध से लाल होता हुआ महेंद्र रथ पर सवार हो हनुमान् के सम्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीव का रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव राम के सम्मुख आया था ॥25॥

तदनंतर जिसका रथ सूर्य के समान देदीप्यमान था, जो सुंदर हार का धारक था, धनुर्धारी था, शूरों में श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनुमान भी माता के पिता राजा महेंद्र के सम्मुख गया ॥26॥ तदनंतर वायु के वशीभूत दो मेघों में जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनों में करोंत, खड□ग तथा बाणों के द्वारा परस्पर एक दूसरे का घात करने वाला महायुद्ध हुआ ॥27॥ जो सिंहों के समान महाक्रोधी तथा उत्कट बल से सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगों के समान लाल थे, जो सर्पों के समान साँसें भर रहे थे□ फुंकार रहे थे, जो एक दूसरे पर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहंकारपूर्ण हास्य का स्फुट शब्द हो रहा था, तेरी शूर-वीरता को धिक्कार है, अहो ! युद्ध करने चला है जो इस प्रकार के शब्द कह रहे थे, जो माया बल से सहित थे और जो अपने पक्ष के लोगों से कभी हाहाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनुमान् तथा राजा महेंद्र दोनों ही चिरकाल तक परम युद्ध करते रहे ॥28-30॥ तदनंतर जो महाबलवान् था, विक्रियाशक्ति से संगत था और क्रोध से जिसके शरीर की शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेंद्र हनुमान् के ऊपर शस्त्रों का समूह छोड़ने लगा ॥31॥ भुषुंडो, परशु, बाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ों के शिखर और सागौन तथा वट के वृक्ष उसने हनुमान् पर छोड़े॥32॥सो इनसे तथा नाना प्रकार के अन्य शस्त्रों के समूह से हनुमान उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघों के समूह से पर्वत विचलित नहीं होता है ॥33॥राजा महेंद्र की दिव्य माया से उत्पन्न शस्त्रों की उस वर्षा को पवन-पुत्र हनुमान् ने अपनी उल्का-विद्या के प्रभाव से चूर-चूर कर डाला॥34॥और उसी समय वेग से भरे, दिग्गजों के शुंडादंड के समान विशाल हाथों से युक्त तथा उत्तम बल को धारण करने वाले हनुमान् ने मातामह महेंद्र के रथ पर उछलकर उसे रोकने पर भी पकड़ लिया । शूरवीरों ने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामह को लेकर अपने रथ पर आरूढ़ हो गया ॥35-36॥वहाँ जिसकी विक्रियाकृत लांगल और हाथों से उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदय को धारण करने वाला था ऐसे दौहित्र-हनुमान् की वह महेंद्र सौम्यवाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥37॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहले से सुन रखा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥38॥विजयार्धपर्वत के ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रों से आकुल इंद्र विद्याधर के युद्ध में भी जो किसी के द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्य से युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बंधन को प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥39-40॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्ध की सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥41॥ हे वत्स ! निश्चय को धारण करने वाले तुमने हमारे पुण्योदय से जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है॥ 42॥ तू विनयादि गुणों से युक्त है, परमतेज की राशि है, कल्याण की मूर्ति है तथा कल्पवृक्ष के समान उदय को प्राप्त हुआ है ॥43॥ तू जगत् का गुरु है, बांधवजनों का आधार है और दुःखरूपी सूर्य से संतप्त समस्त मनुष्यों के लिए मेघ स्वरूप है॥॥44॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेह के कारण जिसके नेत्रों से अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेंद्र ने उसका मस्तक सूंघा और रोमांचित हो उसका आलिंगन किया ॥45॥ वायुपुत्र-हनुमान् ने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामह को प्रणाम किया तथा क्षमा के प्रभाव से विनीतात्मा होकर वह क्षणभर में ऐसा हो गया मानो अन्यरूपता को ही प्राप्त हुआ हो ॥46॥उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपन के कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराध को आप क्षमा करने के योग्य हैं ॥47॥

उसने रामचंद्र के आगमन को आदि लेकर अपने आगमन तक का समस्त वृत्तांत बड़े आदर के साथ प्रकट किया । 48॥उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावश्यक कारण से त्रिकूटाचल को जाता हूँ तब तक तुम किष्किंधपुर जाओ और श्रीराम का काम करो ॥49॥ इतना कह हनुमान् आकाश में उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचल की ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्ग की ओर जाता है॥ 50॥ नीतिनिपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेंद्रकेतु ने अपने प्रिय पुत्र प्रसन्नकीर्ति के साथ जाकर पुत्री-अंजना का सम्मान किया ॥51॥ अंजना सुंदरी, माता पिता के साथ समागम तथा भाई का दर्शन प्राप्त कर परम धैर्य को प्राप्त हुई ॥52॥ राजा महेंद्र को आया सुनकर किष्किंधा का पति सुग्रीव उसे लेने के लिए सम्मुख गया तथा विराधित आदि उत्तम संतोष को प्राप्त हुए ॥53॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता तथा उत्तम सुंदर तेज को धारण करने वाले पुण्यात्मा जीवों का पूर्वचरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्व से सुशोभित बलशाली मनुष्य उनके अधीन आज्ञाकारी होते हैं॥ 54॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओर से मन की रक्षा कर सदा उस शुभ कार्य में यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्य के समान दीप्तता को प्राप्त होओ ॥55॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में महेंद्र का पुत्री के साथ समागम का वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥50॥

## राम को गंधर्व कन्याओं की प्राप्ति

इक्यावनवां पर्व

कथा :

अथानंतर जब हनुमान् विमान में बैठकर आकाश में बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणों से युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीच में पड़ा ॥1॥ उस दधिमुख द्वीप में एक दधिमुख नाम का नगर था जो दही के समान सफेद महलों से सुशोभित तथा लंबायमान स्वर्ण के सुंदर तोरणों से युक्त था ॥2॥ नवीन मेघ के समान श्याम तथा पुष्पों से उज्ज्वल उद्यानों से उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रों से सहित आकाश के प्रदेश ही हों ॥3॥ उस नगर में जहाँ-तहाँ स्फटिक के समान स्वच्छ जल से भरी, सीढ़ियों से सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदि से आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥4॥ नगर से दूर चलकर एक महाभयंकर वन मिला जो बड़े-बड़े तृणों, लताओं, बेलों, वृक्षों और काँटों से व्याप्त था ॥5॥ वह वन सूखे वृक्षों से घिरा था, भयंकर जंगली पशुओं के शब्द से शब्दायमान था, भयंकर था, अत्यंत कठोर था, प्रचंड वायु से चंचल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षों के समूह से युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यंत खारे जल के सरोवरों से सहित था, कंक, गृद्ध आदि पक्षियों से सेवित था तथा मनुष्यों से रहित था । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वन में दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आठ दिन का कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचे को ओर लटक रही थीं ॥6-8॥ उन मुनियों से पावकोश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यंत मनोहर थे, जो शुक्ल वस्त्र से सहित थीं, जटाएं धारण कर रही थीं, शुद्ध हृदय से युक्त थीं, तीन लोक की मानो शोभा थीं । और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥9-10॥

तदनंतर हनुमान् ने देखा कि दोनों मुनि महा अग्नि से ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगल के समान निश्चल खड़े हैं ॥11 ॥जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्य से युक्त थी ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूम से स्पृष्ट हो रही थीं ॥12॥ उन्हें देख हनुमान् के हृदय में उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनंतर जो योग **अर्थ**ात् ध्यान से युक्त थे, मोक्ष को इच्छा से सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रह की इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचे की ओर लट का रखी थीं, जिनके मुख की आकृति अत्यंत शांत थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योग से विराजमान थे, जीवन और मरण की आकांक्षा से रहित थे, निष्पाप थे, शांतचित्त थे, इष्ट-अनिष्ट समागम में मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और कांचन में जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियों को अत्यंत निकटवर्ती बड़ी भारी दावानल से आक्रांत देख, हे राजन् ! हनुमान् वात्सल्यभाव प्रकट करने के लिए उद्यत हुआ ॥13-16॥

भक्ति से भरे हनुमान् ने शीघ्रता से समुद्र का जल खींच, मेघ हाथ में धारण किया और आकाश में ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥17॥ उस बरसे हुए जलप्रवाह से वह दावाग्नि उस प्रकार शांत हो गयी जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनि के क्षमाभाव से शांत हो जाता है ॥18॥ भक्ति से भरा हनुमान् जब तक नाना प्रकार को पुष्पादि सामग्री से उन दोनों मुनियों की पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गयीं ॥19-20॥

उन्होंने ध्यान में तत्पर दोनों मुनियों को हनुमान् के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनुमान की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेंद्रदेव में बड़ी भक्ति है जो शीघ्रता से कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियों के आश्रय से हम सबकी रक्षा की ॥21-22 ॥ हमारे निमित्त से यह महाउपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियों को रंच मात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया । अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥23॥ अथानंतर पवित्र हृदय के धारक हनुमान् ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यंत भयंकर निर्जन वन में आप लोग कौन हैं ? ॥24 ॥ तदनंतर उन कन्याओं में जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगर के राजा गंधर्व की अमरानामक रानी की पुत्रियां हैं ॥25 ॥इनमें प्रथम कन्या चंद्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरंगमाला है । हम सभी अपने समस्त कुल के लिए अत्यंत प्यारी हैं ॥26 ॥इस संसार में अपने कूलरूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान, विजयार्ध आदि स्थानों में उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर कुमार हैं वे सब हम लोगों के अत्यंत इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं । उन कुमारों में अंगारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूप से संताप को धारण कर रहा है ॥27-28॥ किसी एक दिन हमारे पिता ने अष्टांग निमित्त के ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् !

मेरी पुत्रियाँ किन स्थानों में जावेंगी ॥29॥ इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा था कि जो युद्ध में साहसगति की मारेगा वह कुछ ही दिनों में इनका भर्ता होगा ॥30 ॥तदनंतर अमोघ वचन के धारक मुनिराज का वह वचन सुन हमारे पिता मुख को मंद हास्य से युक्त करते हुए विचार करने लगे कि॥31॥संसार में इंद्र के समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में श्रेष्ठ साहसगति को मार सकेगा॥32॥अथवा मुनि के वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचारकर माता-पिता आदि आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥33 ॥चिरकाल तक याचना करनेपर भी जब अंगारक हम लोगों को नहीं पा सका तब वह हम लोगों को दुःख देने वाले कारणों की चिंता में निमग्न हो गया ॥ 34॥ उस समय से लेकर हम लोगों का यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगति को नष्ट करने वाले उस वीर को कब देखेंगी॥35॥ हम तीनों कन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करने के लिए कठोर वृक्षों से युक्त इस वन में आयी थीं ॥36 ॥यहाँ रहते हुए हम लोगों का यह बा दिन है और इन दोनों मुनियों को आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥37॥ तदनंतर उस दुष्ट अंगारकेतु ने हम लोगों को यहाँ देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कार के कारण वह क्रोध से परिपूर्ण हो गया ॥38 । तत्पश्चात् हम लोगों का वध करने के लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओं को धूम तथा अंगार की वर्षा करने वाली अग्नि से पिंजर वर्ण-पीत वर्ण कर दिया ॥39॥ जो विद्या छह वर्ष से भी अधिक समय में बड़ी कठिनाई से सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्ग का निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गयी॥40॥हे महाभाग ! यदि इस आपत्ति के समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित हो हम सब दोनों मुनियों के साथ-साथ वन में जल जातीं ॥41॥
तदनंतर हनुमान् ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मंदहास पूर्वक कहा कि आप लोगों का श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित हो फल से युक्त है ॥42 ॥अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थान में लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध को ॥43॥ तत्पश्चात् हनुमान् ने राम के आगमन को आदि लेकर अपने यहाँ आने तक का समस्त वृत्तांत ज्यों का त्यों विस्तार के साथ क्रमपूर्वक कहा ॥44 ॥तदनंतर समाचार सुनकर महातेजस्वी गंधर्व राजा अपनी अमरा नाम की रानी और अनुचरों के साथ वहाँ आ पहुँचा ॥45॥ इस प्रकार क्षण-भर में वह समस्त वन देवागमन के समान विद्याधरों का समागम होने से नंदन वन के समान हो गया ॥ 46॥ तदनंतर राजा गंधर्व पुत्रियों को साथ ले बड़े वैभव से किष्किंधपुर गया और वहाँ राम की आज्ञा में रहकर प्रीति को प्राप्त हुआ ॥47 ॥उसने असीम सौभाग्य की धारक तथा परम विभूति से युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शांत चेष्टा के धारक राम के लिए समर्पित की ॥48॥ सो राम इन कन्याओं से तथा अन्य विभूतियों से यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीता को न देखते हुए वे दशों दिशाओं को शून्य मानते ॥ 49॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणों से सहित, शुभ चेष्टाओं के धारक तथा अतिशय सुंदर मनुष्यों से अलंकृत रहे तो भी मन में वास करनेवाले मनुष्य के बिना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥50॥ पूर्वोपार्जित तथा तीव्र रूप से बंध को प्राप्त हुए उत्कट कर्म से यह जीव परम रति को प्राप्त होता है और उस रति के कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्मरूपी सूर्य से प्रकाशमान होता है ॥51॥
इस प्रकार आप नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में राम को गंधर्व कन्याओं की प्राप्ति का वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥5॥

## हनुमान् को लंकासुंदरी कन्या की प्राप्ति

बावनवां पर्व

कथा :

अथानंतर प्रताप से सहित महाबलवान् हनुमान् त्रिकूटाचल के सम्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरु के सन्मुख सोम चलता है॥ 1॥ तदनंतर आकाश में चलते हुए हनुमान को रोना अचानक रुककर किसी बड़े धनुष के समान हो गयी और ऐसो जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघों का समूह ही हो॥ 2॥ यह देख, हनुमान ने कहा कि मेरी सेना की गति किसने रो की है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥3॥ क्या यहाँ असुरों का इंद्र चमर है, अथवा इंद्र है या शिखंडी है ? अथवा इनमें से यहाँ एक का भी होना उचित नहीं जान पड़ता॥4॥किंतु हो सकता है कि इस पर्वत के शिखर पर जिनेंद्र भगवान की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हों॥ 5॥ तदनंतर हनुमान् के वितर्क पूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मंत्री ने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमान् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यंत्रों से युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥6-7॥ तत्पश्चात् कमल लोचन हनुमान् ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोट को देखा । वह कोट विरक्त स्त्री के मन के समान दुष्प्रवेश था॥ 8 । अनेक आकार

के मुखों से सहित था, भयंकर पुतलियों से युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवों के द्वारा भी दुर्गम्य था ॥9॥ जिनके अग्रभाग संकट से उत्कट तथा अत्यंत तीक्ष्ण थे ऐसी करोंतों की श्रेणी से वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिर को उगलने वाली हजारों जिह्वाओं के अग्रभाग से सुशोभित थे । ॥10॥ चंचल सो के तने हुए फणाओं की शूत्कार से शब्दायमान था तथा जिनसे विषैला धूमरूपी अंधकार उठ रहा था ऐसे जलते हुए अंगारों से दुःसह था ॥11॥ शूरवीरता के अहंकार से उद्धत जो मनुष्य उस कोट के पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नही आता जिस प्रकार कि साँप के मुख से मेढक ॥12॥ यह लंका के कोट का घेरा सूर्य के मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लध्य है, दुनिरीक्ष्य है, सब दिशाओं में फैला है, प्रलयकालीन मेघसमूह की गर्जना के समान तीक्ष्ण गर्जना से भयंकर है, तथा हिंसामय शास्त्र के समान अत्यंत पापकर्मा जनों के द्वारा निर्मित है॥ 13-14॥ उसे देखकर हनुमान् ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोट का निर्माण करने वाले रावण ने अपनी पहले की सरलता छोड़ दी है॥ 15॥ मैं विद्याबल से बलिष्ठ इस यंत्र को उखाड़ता हुआ इसके मान को उस तरह उखाड़ दूंगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोह को उखाड़ देता है ॥16॥

तदनंतर बुद्धिमान् हनुमान् ने युद्ध में मन लगाकर **अर्थ**ात् युद्ध का विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेना को तो संकेत देकर आकाश में खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारण कर तथा गदा हाथ में ले पुतली के मुख में उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहु के मुख में सूर्य प्रवेश करता है ॥17-18॥ तत्पश्चात् चारों ओर से हड्डियों से आवृत उस पुतली की उदररूपी गुहा को उसने सिंह की भांति विद्यामयी तीक्ष्ण नखों से अच्छी तरह चीर डाला ॥19॥ और भयंकर शब्द करने वाले गदा के निर्दय प्रहारों से उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावों से घातिया कर्मों की स्थिति को चूर-चूर कर डालता है॥ 20॥ तदनंतर भंग को प्राप्त होती हुई आशालिक विद्या का नील मेघों के समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ॥ 21॥ उस शब्द से यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेंद्र भगवान की स्तुति से पापकर्मों का समूह नष्ट हो जाता है ॥ 22॥

तदनंतर प्रलयकाल के मेघों के समान उन्नत उस शब्द को सुनकर तथा यंत्रमय कोट को नष्ट होता देख, कोट की रक्षा का अधिकारी वज्रमुख नाम का राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो हनुमान् के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानल के सम्मुख जाता है ॥23-24॥तदनंतर हनुमान् को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकार के वाहनों और शस्त्रों से सहित प्रचंड योद्धा युद्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥25॥ इधर वज्रमुख की प्रबल सेना को युद्ध के लिए उद्यत देख परम क्षोभ को प्राप्त हुई हनुमान् की सेना भी युद्ध के लिए उठी॥ 26॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषय में बहुत कहने से क्या ? उन दोनों सेनाओं में उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामी के द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कार में होता है ॥27॥ जो योद्धा स्वामी की दृष्टि के मार्ग में स्थित थे **अर्थ**ात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणों का भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषय में अधिक क्या कहा जाये? ॥28॥ तदनंतर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्ध के योद्धा वानरों के द्वारा क्षणभर में पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये भाग गये॥ 29॥ और हनुमान् ने चक्र के द्वारा शत्रुओं का तेज हर लिया तथा नक्षत्र बिंब के समान शत्रु का शिर काटकर आकाश से नीचे गिरा दिया॥30॥युद्ध में पिता का वध देख वज्रायुध को पुत्री लंका सुंदरी कठिनाई से शोक को रोककर क्रोधरूपी विष से दूषित हो हनुमान् की ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ों के रथ पर बैठी थी, कुंडलों के प्रकाश से उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुष के समान उसका वक्षःस्थल आयत था, उसकी दोनों भृकुटियां टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्य के समान तेज का मंडल धारण कर रही थी, धूम के उद्गार से सहित थी, अर्थात् उसके शरीर से कुछ-कुछ धुआं-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूह के बीच में विद्यमान थी, क्रोध के कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलों के समान जान पड़ते थे, वह क्रोध से अपना ओंठ चाब रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोध से भरी इंद्र की लक्ष्मी ही हो ॥31-34॥वह देखने में सुंदर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर बाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुझे देख लिया है, यदि तुझमें कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥35॥ आज कुपित हुआ विद्याधरों का राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥36॥ यह मैं तुझ पापी को यमराज के घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रांत को तरह आज इस अनिष्ट स्थान में आ पड़ा है ॥37॥ वेग से आती हुई लंका सुंदरी का छत्र जब तक हनुमान् ने नीचे गिराया तब तक उसने एक बाण छोड़कर हनुमान के धनुष के दो टुकड़े कर दिये ॥38॥ लंकासुंदरी जब तक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तब तक हनुमान् ने बाणों से आकाश को आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी

शक्ति को बीच में ही तोड़ डाला ॥39॥ विद्याबल से गंभीर लंका सुंदरी ने हनुमान् के हिमालय के समान ऊंचे रथ पर वज्रदंड के समान बाण, परशु, कुंत, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार बरसायीं जिस प्रकार कि उत्पात के समय उच्च मेघावली नाना प्रकार के जल बरसाती है॥ 40-41॥ उसके पूर्ण वेग से छोड़े हुए नाना प्रकार के शस्त्रसमूह से महातेजस्वी हनुमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघों से आषाढ़ का सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥42॥ इतना सब होनेपर भी खेद से रहित, पराक्रमी एवं माया के विस्तार में निपुण हनुमान् ने अपने शस्त्रों के द्वारा उसके शस्त्रसमूह को बीच में ही दूर कर दिया ॥43॥ उसके बाण बाणों से लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदि के द्वारा, तथा शक्तियाँ शक्तियों के द्वारा खंडित होकर उल्काओं के समान दूर जा गिरी ॥44॥ चक्र, क्रकच, संवर्तक तथा कनक आदि के विस्तार से पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो बिजलियों से ही व्याप्त हो गया हो ॥45॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनंतर रूप से अनुपम, स्वभाव से धीर, कमललोचना, लक्ष्मी के समान लंकासुंदरी, नेत्ररूपी धनुष से छोड़े हुए काम के बाणों अर्थात् कटाक्षों से हनुमान् को उधर पृथक् भेद रही थी और इधर अन्य धनुष से छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणों से पृथक् भेद रही थी । लंकासुंदरी के वे कामबाण, ज्ञान-ध्यान के हरने वाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणों से युक्त थे, लावण्य के द्वारा सौंदर्य को हरने वाले थे, और मन के भीतर भेदने में निपुण थे॥46-48॥इस तरह जगत् को आश्चर्य करने में समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गण से गवित लंकासुंदरी हनुमान् के हृदय के भीतर प्रविष्ट हो गयी॥ 49॥वह हनुमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रों से उस प्रकार पीड़ित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि मर्म को विदारण करनेवाले काम के बाणों से पीड़ित हुआ था॥ 50॥ हनुमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार की धारक, अपनी ललित चेष्टारूपी बाणों से मुझे भीतर और बाहर दोनों हो स्थानों पर घायल कर रही है॥ 51॥ इस युद्ध में बाणों से भरकर मर जाना अच्छा है किंतु इसके बिना स्वर्ग में भी जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥52॥ इधर इस प्रकार हनुमान विचार कर रहा था उधर जिसका मन दया में आसक्त था तथा जो त्रिकुटाचल की अद्वितीय सुंदरी थी ऐसी कन्या लंकासुंदरी ने काम से प्रेरित हो, देदीप्यमान मन तथा शरीर के धारक, कमलदललोचन, तरुण चंद्रवदन, मुकुट पर वानर का चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवन से युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेव के समान सुंदर हनुमान् को मारने के लिए उठायी हुई शक्ति शीघ्र ही संहत कर ली-पीछे हटा ली ॥53-55॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिता के मारने से दोषी है तो भी जो अनुपम रूप से मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥ 56॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदय का सेवन न करूं तो इस लोक में मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥57॥ तदनंतर विह्वल मन से मुग्ध उस लंकासुंदरी ने समीचीन मार्ग के उद्देश्य से अपने नाम से अंकित एक बाण हनुमान् के पास भेजा ॥58॥उस बाण में उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवों के द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा काम के बाणों से पराजित हो गयी॥ 59॥ गोद में आये हुए उस बाण को अच्छी तरह बांच कर परम धैर्य को प्राप्त हुआ हनुमान् शीघ्र ही रथ से उतरा ॥ 60॥ और उसके पास जाकर सिंह के समान पराक्रमी हनुमान उसे गोद में बिठा उसका ऐसा गाढ़ आलिंगन किया मानो कामदेव ने दूसरी रति का ही आलिंगन किया हो ॥61॥

तदनंतर जिसका वैर शांत हो गया था, जिसके नेत्रों से दुर्दिन की भांति अविरल अश्रुओं की वर्षा हो रही थी तथा जो पिता के मरण-संबंधी शोक से पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुंदरी से हनुमान ने कहा ॥62॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्म की तो यही रीति है ॥63॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्य में स्थित मनुष्य, कर्मबल से प्रेरित हो पिता आदि को भी मार डालते हैं ॥64॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तध्यान को छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसार में अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं **अर्थ**ात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥65॥ यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया यह कहना तो छलमात्र है । यथार्थ में तो आयु कर्म के प्रभाव से समय पाकर यह जीव मरता है ॥66॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनों से जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकासुंदरी हनुमान् के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चंद्रमा के साथ सुशोभित होती है ॥67॥ तदनंतर उत्तम हृदय के धारक उन दोनों का संग्राम से उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्झर से परिपूर्ण आलिंगन के द्वारा दूर भाग गया ॥68।।

तदनंतर स्तंभिनी विद्या के द्वारा आकाश के जिस प्रदेश में विद्याधर रोक दिये गये थे उस प्रदेश में आवास बनाकर वह सेना ठहरायी गयी ॥ 69॥संध्या के रक्त मेघ के समान दिखने वाला उसी हनुमान् का वह शिविर देव नगर के तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥70॥उस सेना में जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनुमान से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथों पर सवार हो ध्वजाओं के समूह से युक्त उस नगर में प्रवेश किया ॥71॥ वे शूर-वीरों के संग्राम से उत्पन्न नाना प्रकार की कथाएं करते हुए उस नगर में उत्साह और उल्लास को प्राप्त कर

यथायोग्य ठहरे॥72।।

अथानंतर जिसका मन शीघ्रता से युक्त था ऐसे हनुमान को जाने के लिए उद्यत देख प्रेम से भरी लंकासुंदरी ने एकांत में उससे पूछा कि ॥73॥ हे नाथ ! आप रावण के दुःसह पराक्रम को बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधों से परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जाने को उद्यत हैं सो तो कहो ॥74॥ इसके उत्तर में हनुमान ने उसे सब वृत्तांत कहा और यह बताया कि प्रत्युपकार का करना बंधुजनों के द्वारा अनुमोदित है॥ 75॥ हे भद्रे ! राक्षसों का इंद्र रावण सीता को हर ले गया है सो उसके साथ राम का समागम मुझे अवश्य कराना है॥ 76॥ यह सुन लंकासुंदरी ने कहा कि रावण के साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्र के नष्ट हो जाने से दीप की शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धा के नष्ट हो जाने से रावण का सौहार्द नष्ट हो गया है ॥77॥ एक समय था कि जब आप मार्गों की शोभा से युक्त तथा ध्वजाओं की पंक्ति से अलंकृत लंका में बड़े आदर के साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्ग में प्रवेश करता है॥ 78॥ परंतु आज आप अपराधी होकर यदि लंका में प्रकट रूप से जाते हैं तो कठोर शासन को धारण करनेवाला रावण आप पर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है॥ 79॥ अत: जिस समय देश और काल की उत्तम शुद्धि अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावण का हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है॥ 80॥ इसके उत्तर में हनुमान ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थ में वैसा ही है । किंतु हे सुंदरि ! मैं रावण का अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥81॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरु के समान धीर, वीर रावण का मन विचलित कर दिया है॥ 82॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसी के पास छोड़कर हनुमान् उस विवेकवती से छूटकर त्रिकूटाचल की ओर चला ॥83।।

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसार में यह परम आश्चर्य की बात है कि प्राणी एक रस को छोड़कर उसी क्षण विशुद्धरूप को धारण करने वाले दूसरे रस को प्राप्त हो जाता है॥ 84 ॥ सो इस संसार में यह प्राणियों के कर्म की ही अद्भुत चेष्टा है । जिस प्रकार सूर्य को गति कभी दक्षिण दिशा की ओर होती है और कभी उत्तर दिशा की ओर । उसी प्रकार प्राणियों के शरीर से संबंध रखने वाला यह सब व्यवहार कर्म की चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥85॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में हनुमान् को लंकासुंदरी कन्या की प्राप्ति का वर्णन करनेवाला बावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥52॥

## हनुमान का लौटना

तिरेपनवां पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदय से सहित तथा स्वल्प अनुचरों से युक्त हनुमान् ने निःशंक होकर लंका में प्रवेश किया ॥1 ॥वहाँ जिसके द्वार पर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषण के महल में प्रवेश किया और विभीषण ने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥2 ॥तदनंतर वहाँ परस्पर इधर-उधर की कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनुमान् ने इस प्रकार के सद्वचन कहे कि तीन खंड का अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्य की तरह पर-स्त्री की चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥3-4॥ जिस प्रकार पर्वत नदियों का मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओं का मूल है । यदि राजा स्वयं अनाचार में स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचार में प्रवृत्ति करने लगती है ॥5॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिंदित है सब लोगों की निंदा का पात्र है । इसके करने पर सब लोगों को दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगों को तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥6॥ इसलिए हम सबके कल्याण के लिए शीघ्र ही रावण से ऐसे वचन कहिए जो न्याय की रक्षा करनेवाले हों ॥7 । उन्हें बतलाइए कि हे जगत् के नाथ ! दोनों लोकों में निंदनीय तथा कीर्ति को नष्ट करने वाली चेष्टा मत कीजिए ॥8॥ निर्मल-निर्दोष चरित्र की न केवल इस लोक में चाह है अपितु स्वर्गलोक में देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥9 ॥तदनंतर विभीषण ने कहा कि मैंने रावण से अनेक बार कहा है पर वह उस समय से मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥10॥ फिर भी आपके कहने से मैं कल राजा के पास जाकर कहूँगा किंतु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःख से ही इस हठ को छोड़ेगा ॥11॥ यद्यपि आज सीता को आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लंकाधिपति को कुछ भी विरति नहीं है इस कार्य से रंचमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥12॥ विभीषण के यह वचन सुन महादयाभाव से युक्त हनुमान् प्रमदोद्यान में जाने के लिए उद्यत हुआ ॥13 ॥जाकर उसने उस प्रमदोद्यान को देखा जो कि नयी-नयी लताओं के समूह से व्याप्त था, उत्तम स्त्रियों के हाथों के समान सुंदरलाल-

लाल पल्लवों से युक्त था, भ्रमरों से आच्छादित सुंदर गुच्छों के द्वारा जिस पर सेहरा बंध रहा था, जहाँ फलों के भार से शाखाओं के अग्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायु के द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदि से आच्छादित स्वच्छ सरोवरों से जो अलंकृत था, जो बड़े-बड़े वृक्षों से लिपटी हुई कल्पलताओं से देदीप्यमान था, जो देव कुरु प्रदेश के समान जान पड़ता था, फूलों की पराग से आवृत था, अनेक आश्चर्यों से व्याप्त था तथा नंदनवन को समानता धारण कर रहा था ॥14-17॥ तदनंतर मनोहर लीला को धारण करता हुआ कमल लोचन हनुमान् सीता के दर्शन की इच्छा से उस उत्कृष्ट उद्यान में प्रविष्ट हुआ ॥18॥ वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओं में तथा पल्लवों आदि से सघन नाना वृक्षों के समूह में दृष्टि डाली ॥19॥ वहाँ दूर से ही सीता को देखकर वह अन्य वस्तुओं के दर्शन से रहित हो गया **अर्थ**ात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा । तदनंतर उसने विचार किया कि वह रामदेव की सुंदरी यही है॥20॥ यह स्निग्ध अग्नि के समान है, इसके नेत्र आँसुओं से भर रहे हैं, वह हथेली पर मुखरूपी चंद्रमा को रखे हुई है, केश इसके खुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यंत कृश है ॥21 ॥उसे देखकर हनुमान् विचार करने लगा कि अहो ! लोक में इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थों को पराजित करने वाला है, परम ख्याति को प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओं का कारण है ॥22 ॥कमल से रहित लक्ष्मी अर्थात् कमल से निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती । अहो ! यह दुःखरूपी सागर में निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियों के समान नहीं है ॥23॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वत के शिखर से गिरकर मृत्यु को प्राप्त कर सकती हूँ परंतु राम के विरह में जीवन नहीं धारण करूँगी ॥24 ।। इस प्रकार विचार करती हुई सीता के पास, हनुमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥25॥
तदनंतर हनुमान् ने सीता की गोद के वस्त्र पर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमांचों से युक्त हो गयी ॥26॥ सीता की ऐसी अवस्था होने पर वहाँ जो स्त्रियाँ थीं उन्होंने शीघ्रता से जाकर सीता का समाचार जानने में तत्पर रहने वाले रावण को शुभ समाचार सुना हर्ष से वृद्धिंगत किया ॥27॥ रावण ने संतुष्ट होकर उन स्त्रियों के लिए अपने शरीर पर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीता को प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥28॥ उसके हृदय में इतना उल्लास हुआ मानो अमृत के पूर को ही प्राप्त हुआ हो । उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करने का आदेश दिया ॥29 ॥अपने पति के कहने से पतिव्रता मंदोदरी भी समस्त अंतःपुर के साथ शीघ्र ही वहाँ गयी जहाँ सीता विद्यमान थी ॥30॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमल की कांति विकसित हो रही थी ऐसी सीता को देख मंदोदरी ने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥31॥ जिस प्रकार समस्त संपदाओं से युक्त देवेंद्र की लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावण की सेवा कर ॥32॥ मंदोदरी के इस प्रकार कहने पर सीता ने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधरि ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥33॥ आज मेरे भर्ता का समाचार आया है इसलिए संतोष को प्राप्त हो परम धैर्य को प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुख को मंद हास्य से युक्त किया है ॥34 ॥सीता के यह वचन सुनकर स्त्रियाँ कहने लगी कि क्षुधा के कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हंसती हुई ऐसा बक रही है ॥35॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आश्चर्य को प्राप्त हुई सीता ने अत्यंत उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणी में इस प्रकार कहा कि जो समुद्र के भीतर विद्यमान महा भयदायक इस द्वीप में कष्ट को प्राप्त हई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बंध यहाँ निकट आया है ॥36-37॥
तदनंतर जिसके दर्शन को प्रार्थना की गयी थी तथा जिसका मन सज्जनता से युक्त था ऐसे हनुमान् ने इस प्रकार विचार किया कि ॥38॥ जो मनुष्य दूसरे का कार्य आगे कर **अर्थ**ात् पहले से स्वीकृत कर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यंत भीरु होने के कारण नीच मनुष्य होता है ॥39॥और जो आपत्ति में पड़े हुए दूसरे मनुष्य को आलंबन देते हैं उन दयालु मनुष्यों का जन्म अत्यंत निर्मल होता है ॥40॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकट कर देने में पुरुषत्व की कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकट कर देने पर यशस्विनी लक्ष्मी संसार में गौरव को प्राप्त होती है ॥41॥ तदनंतर हनुमान् भामंडल की नाईं हजारों उत्तम स्त्रियों के बीच बैठी हुई सीता के समीप गया ॥42॥ जो शंका रहित हाथी के समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चंद्रमा के समान सुंदर था, जो दीप्ति से सूर्य के समान था, माला और वस्त्रों से सुशोभित था । रूप से अनुपम था । कांति से मृग रहित चंद्रमा के समान जान पड़ता था, मुकुट में वानर का चिह्न धारण कर रहा था, सुगंधि से जो भ्रमरों को आकर्षित कर रहा था, चंदन से जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपन से सुशोभित था, जिसका बिंबोष्ठ तांबूल के रस से लाल था, जो नीचे लटकते हुए वस्त्र से सुशोभित था, चंचल कुंडलों के प्रकाश से जिसका गंडस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहनन को धारण कर रहा था, जिसके पराक्रम की सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणों से

युक्त था, तथा महाप्रताप से सहित था ऐसा हनुमान् सीता को लक्ष्य कर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभा को प्राप्त हो रहा था ॥43-47 ॥ जिसका मुख कांति से सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त हनुमान् को देखकर वे कमललोचना स्त्रियाँ व्याकुल हो उठीं ॥48॥ जिसके हृदय में कंपकंपी छूट रही थी ऐसी मंदोदरी ने सीता के समीप हनुमान् को आश्चर्य के साथ देखा ॥49॥

तदनंतर सीता के समीप पहुँचकर परम विनीत हनुमान ने झुके हुए मस्तक पर अंजलि बाँध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता-पिता का नाम सुनाया । उसके बाद निश्चिंत हो राम का संदेश कहा ॥50-51॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागर में डूबे राम, स्वर्ग के समान वैभव से युक्त विमान में भी रति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥52॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और मुनि की भांति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥53॥ हे पावने हे पवित्रकारिणि ! बाँसुरी तथा वीणा से युक्त उत्तम स्त्रियों का संगीत कभी भी उनके कर्णमूल में नहीं पहुँचता है ॥54॥ हे स्वामिनि ! वे सदा सबके सामने बड़े हर्ष से तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा से हो प्राणों को बाँधकर धारण किये हुए हैं ॥55॥ इस प्रकार पति के जीवन को सूचित करनेवाले हनुमान् के वचन सुन सीता परम प्रमोद को प्राप्त हुई । उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥56॥

तदनंतर विषाद को प्राप्त, शांत सीता ने नेत्र में जल भरकर सामने बैठे हुए विनयी हनुमान से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्था में निमग्न तथा दुर्भाग्य से युक्त हूँ । संतुष्ट होकर तुझे क्या दूँ ? ॥57-58॥ इसके उत्तर में हनुमान् ने कहा कि हे शुभे हे मंगलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शन से ही मुझे संसार में सब कुछ सुलभ हो गया है ॥59॥ तदनंतर मोतियों के समान बड़ी-बड़ी अश्रुओं की बूंदों से जिसका ओंठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःख से पीड़ित लक्ष्मी के समान जान पड़ती थी ऐसी सीता ने हनुमान से पूछा कि हे भद्र ! मकर-ग्राह तथा नाक आदि से क्षोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लंबे-चौड़े समुद्र को लांघकर तू किस प्रकार आया है ? इस अवस्था अथवा कार्य की सिद्धि को प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किस लिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥60-62॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कांति तथा रूप से सहित, कांतिरूपी सागर से घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्ति से युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥63॥ तूने मेरे प्राणनाथ को कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मण के साथ कहीं जीवित हैं ? ॥64॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरों के द्वारा युद्ध में छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःख से दुःखी हो कमललोचन राम भी उसी की तुल्य अवस्था को प्राप्त हो गये हों ॥65॥ अथवा तुम्हें संदेश देने के बाद मेरे विरह से अत्यंत उग्र दुःख को प्राप्त हो नाथ, किसी वन में लोकांतर को प्राप्त हो गये हों ? ॥66॥ अथवा वे संसार से विरक्त रहने में निपुण थे अतः समस्त परिग्रह का त्यागकर जिनेंद्र प्रणीत मार्ग में दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥67 ॥अथवा वियोग के कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीराम की अँगुली से यह अंगूठी कहीं गिर गयी होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥68॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामी का परिचय पहले नहीं था फिर बिना कारण तू उनको मित्रता को कैसे प्राप्त हो गया ? ॥69॥ तू दयालु होकर यह अंगूठी लाया है सो संतुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥70 ॥हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदय में विद्यमान श्रीजिनेंद्रदेव के कारण सत्य ही कथन करेगा ॥71 ॥इस प्रकार पूछे जाने पर चित्त की एकाग्रता से युक्त, वानर-चिह्नित मुकुट को धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रों से सहित हनुमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तक से लगा इस प्रकार कहने लगा ॥72॥ कि जब लक्ष्मण ने सूर्यहास खड ग अपने अधीन कर लिया और चंद्रनखा को जब राम-लक्ष्मण ने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषण को रोष युक्त कर दिया **अर्थ**ात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया॥73॥ सहायता के लिए जब तक महाबलवान् राक्षसों के स्वामी-रावण को बुलाया तब तक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करने के लिए राम के समीप आया ॥74॥ उधर लक्ष्मण जब तक खरदूषण के साथ विकट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थानपर आता है ॥75 ॥यद्यपि रावण धर्म-अधर्म के विवेक को जाननेवाला एवं समस्त शाखों का विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपको देख मन के वशीभूत हो गया ॥76 ॥तदनंतर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गयी थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावण ने आपको चुराने के लिए मायामय सिंहनाद किया ॥77॥उस सिंहनाद को सुन जब तक राम, युद्ध में स्थित लक्ष्मण के पास गये तब तक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥78॥ उधर लक्ष्मण ने शीघ्र ही युद्धक्षेत्र से राम को वापस किया सो वहाँ से आकर जब वे पुनः उस स्थान पर आये तब हे पतिव्रते ! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥79 ॥तदनंतर तुम्हें खोजने के लिए चिरकाल तक वन में भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरणासन्न जटायु को देखा ॥80॥ तदनंतर उस मरणोन्मुख के लिए जिनेंद्र धर्म का उपदेश देकर वे दुःखी हो वन में बैठ गये । उस समय उनका मन एक आप में ही लग रहा था ॥80॥

लक्ष्मण, खरदूषण को मारकर राम के पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पति के लिए तुम्हारा वृत्तांत ले आया ॥82॥ इसी बीच में सुग्रीव के रूप से युक्त साहसगति नाम का विद्याधर राम को मारने के लिए उद्यत हुआ परंतु राम के प्रभाव से विद्या से रहित होने के कारण वह स्वयं मारा गया ॥83 ॥इस प्रकार रामने हमारे कुल को पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार कि उसका बदला चुकाने के लिए हो गुरुजनों ने मुझे भेजा है ॥84॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ । युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्यों को सब तरह से कार्य की सिद्धि करना ही संसार में इष्ट है ॥85॥ यह लंकापुरी का राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-**अर्थ**-कामरूप त्रिवर्ग से सहित है, धीर है, हृदय से अत्यंत कोमल है ॥86 ॥सौम्य है, क्रूरता से रहित है और सत्यव्रत का पालने वाला है, अतः निश्चित ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे लिए सौंप देगा ॥87॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्ति की भी तो रक्षा करनी है अतः यह विद्वान् लोकापवाद से बहुत डरता है ॥ 48॥

तदनंतर परम हर्ष को प्राप्त हुई विशाललोचना सीता हनुमान से यह वचन बोली कि पराक्रम से, धैर्य से, रूप से और विनय से तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथ के साथ हैं ? 189-90॥ तब मंदोदरी बोली कि जो शूरवीर हैं, सत्त्व और यश से सहित हैं, गुणों से उत्कट हैं तथा धीर-वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥11॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र-भर में इसके समान दूसरा वानरध्वज नहीं है ॥12॥

विमानों तथा नाना प्रकार के वाहनों के समूह की जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राम में यह रावण की परम सहायता करता है ॥93॥ जिसने महायुद्ध में रावण को सहायता की है ऐसा यह हनुमान् इस नाम से प्रसिद्ध अंजना का उत्कृष्ट पुत्र है ॥94॥ एक बार रावण महा विपत्ति में फंस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरों को इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुनने मात्र से मन को पीड़ा होती थी ॥95॥ जिसने चंद्रनखा की पुत्री अनंग कुसुमा प्राप्त की है । जो इतना गंभीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शन की इच्छा करते हैं ॥96॥ जो यहाँ के नागरिक जनरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चंद्रमा के समान मनोहर है और लंका का अधिपति रावण जिसे भाई के समान समझता है ॥97॥ ऐसा यह हनुमान् समस्त संसार में प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणों का धारक है फिर भो भूमिगोचरियों ने इसे दूत बनाया है ॥98॥ यह बड़े आश्चर्य की बात है । इससे अधिक निंदनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्य के समान, भूमिगोचरियों ने दासता प्राप्त करायी है **अर्थ**ात् अपना दास बनाया है ॥29॥ मंदोदरी के इस प्रकार कहने पर दृढ़चित्त के धारक हनुमान् ने इस प्रकार कहा कि अहो! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥10॥

जिसके प्रसाद से वैभव के साथ सुख पूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥101॥ इच्छानुसार काम करने वाला मित्र यदि विष मिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं किया जाता है ? ॥ 102॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्य को कृतज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायक के लाभ को नहीं समझता है उसका जीवन पशु के समान है ॥103 ॥हे मंदोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्व धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूती का कार्य कर रही हो ॥104॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नत रूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्री सक्त पुरुष को दूती बनने बैठी हो? ॥105 ॥जान पड़ता है कि तुम रति कार्य के विषय में अत्यंत साधारण स्त्री हो गयी हो । अब मैं तुम में महिषीत्व (पट्टरानीपना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गयी हो ॥ 106॥

तदनंतर जिसका मन क्रोध से आलिंगित हो रहा था ऐसी मंदोदरी ने कहा कि अहो! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है-बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥107 ॥तू दूत बनकर सीता के पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसी की नहीं हुई होगी ॥108 ॥जिसने दैव योग से चंद्रनखा के पति-खरदूषण को मारा है उसी को आगे कर ये क्षुद्रचेता सुग्रीवादि रावण की दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यम के प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥109-110 ॥जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यंत मूढ़ता से उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्र चेष्टा के धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकार में फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्यु के निकट आ पहुँचे हैं ॥111॥ मंदोदरी के इस प्रकार कहने पर सीता ने कुपित होकर कहा कि हे मंदोदरि ! तू अत्यंत मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥112॥

शूरवीर तथा विद्वानों को गोष्ठी में जिनकी अत्यंत प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रम के धारक हैं ऐसे मेरे पति राम का नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥113 ॥रण के प्रारंभ में जिनके वज्रावर्त धनुष का शब्द सुनकर युद्ध में निपुण मनुष्य ज्वर से काँपते हुए दुःखी होने लगते

हैं ॥114॥ जिसके शरीर में लक्ष्मी का निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखने मात्र से शत्रुपक्ष का क्षय करने में समर्थ है ॥115॥इस विषय में बहुत कहने से क्या? हमारा पति लक्ष्मण के साथ समुद्र को तैरकर अभी आता है ॥116॥
तू कुछ ही दिनों में लोकोत्तर तेज के धारक मेरे पति के द्वारा अपने पति को युद्ध में मरा हुआ देखेगी ॥117॥जो तू पाप में प्रीति रखनेवाले पति की अनुकूलता को प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्य को प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकाल तक रुदन करेगी ॥118॥ इस प्रकार कठोर वचन कहने पर जो अत्यंत कोप को प्राप्त हो रही थी तथा जो काँपते हुए ओठ को धारण कर रही थी ऐसी मंदोदरी परम क्षोभ को प्राप्त हुई ॥119॥ यद्यपि मंदोदरी एक थी तो भी वह संभ्रम को प्राप्त तथा क्रोध से कंपित शरीर को धारण करने वाली अपनी अठारह हजार सपत्नियों के साथ सीता को वेगशाली करतलों से मारने के लिए उद्यत हुई । वह उस समय अत्यंत क्रूर अपशब्दों से उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥120-121॥ उसी समय लक्ष्मी से सुशोभित तथा वेग से युक्त हनुमान उठकर उन सबके बीच में उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियों के बीच कोई पर्वत आ खडा होता है॥122॥ दु:ख को कारण तथा सोता को मारने के लिए उद्यत उन सब स्त्रियों को हनुमान् ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओं को रोक देता है ॥123 ॥तदनंतर जो पैरों से पृथिवी के प्रदेश ताड़ित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करने का आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्राय को धारण करने वाली वे सब स्त्रियाँ रावण के पास गयीं ॥124॥
तदनंतर साधु स्वभाव के धारक हनुमान् ने बड़े आदर के साथ सीता को प्रणाम कर उत्तम वचनों के द्वारा भोजन करने की प्रार्थना की ॥125 ॥सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी, जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश काल का ज्ञाता था ऐसी सीता ने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥126॥प्रार्थना करते समय हनुमान् ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी रामदेव के शासन में है इसलिए यहाँ का यह अन्न छोड़ने के योग्य नहीं है॥127॥ इस प्रकार समझाये जाने पर दया की भूमि सीता ने अन्न ग्रहण करने की इच्छा की थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकार का आचार जानने में निपुण थी ॥128॥तदनंतर हनुमान् ने इरा नाम की कुलपालिता से कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥129॥इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिविर **अर्थ**ात् डेरे में गयी और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनुमान् का विभीषण के साथ समागम हुआ ॥130॥ हनुमान् ने विभीषण के घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥131॥ तदनंतर चतुर्थ मुहूर्त में इरा, सीता के भोजन के योग्य आहार ले आयी ॥132॥ वहाँ की भूमि चंदनादि से लीप कर दर्पण के समान स्वच्छ की गयो, फूलों के उपकार से सजायी गयी जिससे वह कमलिनी पत्र के समान सुशोभित हो उठी ॥133॥ स्वर्ण आदि से बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रों में सुगंधित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥134 ॥वहाँ कितनी ही थालियाँ दाल आदि से भरी हुई सुशोभित हो रही थीं, कितनी ही कुंद के फूल के समान उज्ज्वल धान के भात से युक्त थीं ॥135 ॥कितनी ही थालियाँ रुचि बढ़ाने वाले षट रस के भोजनों से परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतली तथा कितनी ही पिंड बँधने के योग्य व्यंजनों से युक्त थीं ॥136॥ कितनी ही दूध से निर्मित, कितनी ही दही से निर्मित पदार्थों से युक्त थीं, कितनी ही चाटने के योग्य रबड़ी आदि से, कितनी ही महास्वादिष्ट भोजनों से तथा कितनी ही भोजन के बाद सेवन करने योग्य पदार्थों से परिपूर्ण थीं ॥137॥ इस प्रकार इरा अपने परिजन के साथ उत्तम आहार ले आयी, सो हनुमान् को आगे कर जिसके भाई का स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीता ने हृदय में महाश्रद्धा धारण कर जिनेंद्र भगवान को नमस्कार किया, जब तक पति का समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नहीं लूंगी यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरता से समाप्त किया ।
अतिथियों के समागम का विचार किया, स्नानादिक से शरीर को पवित्र किया । तदनंतर अभिराम (मनोहर ) राम को हृदय में धारण कर उस पतिव्रता ने दिन के समय साधुजनों के द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्य की किरणों से प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्य को बढ़ानेवाला है, आरोग्यदायक है और दिन में ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥138-141॥
तदनंतर भोजन करने के बाद जब सीता कुछ विश्राम को प्राप्त हो चुकी तब हनुमान् ने जाकर उससे पुन: इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे! हे गुणभूषणे ! मेरे कंधे पर चढ़ो मैं समुद्र को लाँघकर अभी क्षण-भर में आपको ले चलूंगा ॥142-143॥ तुम वैभव से युक्त एवं तुम्हारे ध्यान में तत्पर रहने वाले राम के दर्शन करो तथा प्रेमीजन मित्रगण आप दोनों के समागम से उत्पन्न होने वाले हर्ष का अनुभव करें ॥144॥ तदनंतर सब स्थिति का यथायोग्य विचार करने वाली एवं आदर से संयुक्त सीता ने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा

कि स्वामी की आज्ञा के बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्था में पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगी ॥145-146॥इस समय लोग मृत्यु के बिना मेरी शुद्धि का प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्य को योग्य जानेंगे ॥147॥ हे भाई ! जब तक रावण की ओर से कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँ से चला जा । यहाँ क्षणभर भी विलंब मत कर ॥148॥तू हाथ जोड़ मस्तक से लगा, इन परिचायक कथानकों के साथ-साथ मेरे वचनों में प्राणनाथ से अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वन में एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्ति से आकाशगामी मुनियों की वंदना की थी ॥149-150।। एक बार निर्मल जल से युक्त तथा कमलिनियों से सुशोभित सरोवर में हम लोग इच्छानुसार सुंदर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतने में एक भयंकर जंगली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जल के मध्य से तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥151-152॥ और सुंदर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उद्दंड महाहस्ती का सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥153॥ एक बार नंदन वन के समान सुंदर तथा फूलों के भार से झुके हुए वन में, मैं नूतन पत्रों के लोभ से प्रयत्नपूर्वक वृक्ष की एक शाखा को झुका रही थी । तब उड़ते हुए चंचल भ्रमरों ने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबड़ायी हुई को आपने अपनी भुजाओं से आलिंगन कर छुड़ाया था ॥154-155॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवन के तट पर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशा के आभूषण स्वरूप सूर्य को उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसा की थी तब आपने कुछ ईर्ष्या रस को प्राप्त हो मुझे नीलकमल की एक छोटी-सी दंडी से मधुर रीति से ताड़ित किया ॥156-157 ॥एक बार रति गिरि के शिखर पर अत्यधिक शोभा के कारण कौतुक को धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलों से परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धता को धारण करने वाले एवं मन के हरण करने में निपुण ये कौन-से वृक्ष हैं ?॥158-159॥तब इस प्रकार पूछे जाने पर आपने प्रसन्न मुखमुद्रा से सुशोभित हुए कहा कि हे देवि ! ये नंदि वक्ष हैं ॥160॥ एक बार हम सब कर्णकुंडल नदी के तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न काल में दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥161॥ तब आपने और मैंने उठकर, भिक्षा के लिए आये हुए उन मुनियों की बड़ी श्रद्धा के साथ विशाल पूजा की थी ॥162॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभाव से वहाँ अत्यंत सुंदर पंच आश्चर्य हुए थे ॥163 ॥आकाश में देवों ने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥164 ॥जिनका शरीर दीख नहीं रहा था ऐसे देवों ने दुंदुभि बाजे बजाये, आकाश से जिस पर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥165 ॥सुखकारी, शीतल, सुगंधित एवं धलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्ण की धारा ने उस आश्रम को भर दिया था ॥166 ॥हे भाई ! इसके बाद दृढ़ विश्वास का कारण यह उत्तम चूड़ामणि प्राणनाथ को दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यंत प्रिय था ॥167॥ ऊपर से यह संदेश कहना कि हे नाथ ! आपका मुझ पर अतिशय प्रसन्नता से भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागम की आशा से प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥168 ॥प्रमाद के कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परंतु इस समय जबकि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनों का समागम निःसंदेह होगा ॥169॥इतना कहकर सीता रोने लगी, तदनंतर उसे प्रयत्नपूर्वक सांत्वना देकर और जैसी आज्ञा हो यह कहकर हनुमान्, सीता के उस स्थान से बाहर निकल आया ॥170॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीता ने अंगूठी को हाथ में पहनकर ऐसा माना था मानो मन को आनंद देनेवाला पति का समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥171॥ अथानंतर उस उद्यान में भयभीत मृग के समान नेत्रों को धारण करने वाली जो स्त्रियाँ थीं वे हनुमान् को देख मंद मुसकान और आश्चर्य से युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं कि अहो ! इस फूलों के पर्वत के ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है ? अथवा पर्वत की शोभा देखने के लिए कोई देव आया है ? ॥172-174॥ उन स्त्रियों में काम से आकुल होकर कोई स्त्री सिर पर माला रख किन्नर के समान मधुर स्वर से वीणा बजाने लगी ॥175 ॥कोई चंद्रमुखी बायें हाथ में दर्पण रख उसमें हनुमान का प्रतिबिंब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गयी ॥176॥कोई स्त्री कुछ-कुछ पहचानकर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वार पर सम्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? ॥177 ॥इस प्रकार वन में स्थित उत्तम स्त्रियों को संभ्रांत चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रों को धारण करनेवाला एवं अग्निकुमार के समान देदीप्यमान हनुमान, अपनो स्वभाव सुंदर चाल से किसी ओर जा रहा था कि रावण ने यह सब समाचार सुना ॥178-179॥सुनते ही जिसका चित्त आग बबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भाव को प्राप्त हो चुका था सब प्रकार का स्नेह भुला चुका था ऐसे रावण ने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किंकरों को आज्ञा दी कि तुम लोगों को विचार करने से प्रयोजन नहीं है । पुष्पोद्यान से जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयु का अंत कराया जाये मारा जाये ॥180-181॥

तदनंतर किंकर आकर आश्चर्य को प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इंद्र को जीतने वाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥182 ॥अथवा कुछ भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कहकर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यान के समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिंत होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यान के बाहर चर्चा सुनी है । कोई एक दुष्ट विद्याधर आनी उद्दंडता से उद्यान में प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनीत को शीघ्र ही मारा जाये अथवा पकड़ा जाये ॥183-185 ॥रावण के प्रधान किंकरों की बात सुनकर उद्यान के किंकरों ने दौड़ो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ ? इस प्रकार का हल्ला मचाया ॥186 ॥उन किंकरों में कोई धनुष लिये हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदा के धारक थे, कोई तलवारों से युक्त थे, कोई भाले संभाले हुए थे, और कोई झुंड-के-झुंड बनाकर बहुसंख्या में आ रहे थे । उन सबको देख हनुमान के मन में कुछ संभ्रम उत्पन्न हुआ परंतु वह तो सिंह के समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर-जैसी कांति से आकाश को देदीप्यमान कर दिया ॥ 187-188 ॥तदनंतर आकुलता से रहित एवं लटकते हुए लंबे वस्त्र को धारण करनेवाला हनुमान् जब उद्यान के उस प्रदेश से नीचे उतर रहा था तब किंकरों ने उसे देखा ॥189 ॥उस समय क्रोध के कारण हनुमान की कांति उदित होते हुए सूर्यमंडल के समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चबा रहा था । उसे देख किंकरों के झुंड भाग खड़े हुए ॥190 ॥तदनंतर जो किंकरों में प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किंकर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किंकरों के दल को इकट्ठा किया ॥191 ॥तदनंतर जिनके हाथ में शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किंकरों ने चिल्लाकर सब ओर से हनुमान को घेर लिया ॥192॥

वे किंकर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्य का प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था । तदनंतर जिस प्रकार जेठ मास की वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥193॥ धीर शिरोमणि पवन-पुत्र हनुमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परंतु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओं के समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥194 ॥भयंकर शेषनाग के शरीर के समान सुशोभित भुजाओं के वेग से फेंके हुए वृक्ष आदि से प्रहार करता हुआ हनुमान् उस समय प्रलयकाल के उन्नत मेघ के समान जान पड़ता था ॥195 ॥ हनुमान् बिना किसी विलंब के पीपल, सागौन, वट, नंदी, चंपक, बकुल, नीम, अशोक, कदंब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमाँ, लोध्र, खजूर तथा कटहल आदि के बड़े मोटे तथा ऊंचे-ऊँचे वृक्षों को उखाड़कर फेंक रहा था ॥196-197॥

उस महाबलवान् ने ही लोगों को शीघ्र ही खंडित कर दिया, कितने ही योधाओं को उखाड़ डाला-पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किंकरों को लात तथा घुसों के प्रहार से पीस डाला॥198 ॥उस अकेले ने ही समुद्र के समान भारी सेना की वह दशा की कि जिससे वह व्याकुल हो क्षण भर में प्राण बचाकर कहीं भाग गयी ॥199॥गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगों पर शासन करनेवाले मृगराज-सिंह को अन्य सहायकों की क्या आवश्यकता है ? और जो स्वाभाविक तेज को छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकों से क्या लाभ है निस्तेज मनुष्य का अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं ?॥200॥

तदनंतर पुष्पगिरि से नीचे उतरे हुए हनुमान का दिङ्मंडल को रोकने वाला तथा जिसमें निकटवर्ती किंकर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥201॥ उस समय हनुमान के प्रहार से जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा बाग बगीचों से सुशोभित मकानों में केवल भूमि ही शेष रह गयी थी ॥202॥ उसके पैदल चलने के मार्गों में जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लंबे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्र के समान हो गये थे ॥203॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊंची दुकानों की पंक्तियाँ तोड़कर गिरा दी गयी थीं, तथा अनेक किंकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्ध की भूमि के समान हो गया था ॥204॥

गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और कांपती हुई ध्वजाओं की पंक्ति से उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पात के कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥205 ॥जंघाओं के वेग से उड़ती हुई रंगबिरंगी धूलियों से ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश में हजारों इंद्रधनुष ही बनाये गये हों ॥206॥ चरणों के प्रहार से विदीर्ण हुई भूमि में महलरूपी पर्वत नीचे को धंस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महलरूपी पर्वत पाताल में ही धंसे जा रहे हों ॥207॥ वह किसी किंकर को दृष्टि से मार रहा था, किसी को हाथ से पीस रहा था, किसी को पैर से पीट रहा था, किसी को वक्षःस्थल से मार रहा था, किसी को कंधे से नष्ट कर रहा था और किसी को वायु से ही उड़ा रहा था ॥ 208॥ आते ही के साथ गिरने वाले हजारों किंकरों के समूह से वह लंबा-चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥ 209॥कहीं नागरिकजन का हा-हा ही आदि का गंभीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमय शिखरों के टूटने से कण-कण शब्द हो रहा था ॥ 210॥ जब हनुमान ऊपर को छलांग भरता था तब उसके वेग से बड़ी-बड़ी ध्वजाएं खिंची चली जाती थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं

मानो घंटा का शब्द करती हुई क्रोध से उसके पीछे ही उड़ी जा रही हों ॥211॥ बड़े-बड़े हाथी खंभे उखाड़कर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायुमंडल से उड़ते हुए पत्तों की तुल्यता को प्राप्त हो गये ॥212॥ वापिकाएँ नीचे से फूटकर बह गयीं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा संपूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुई के समान व्याकुल हो उठी ॥213॥

जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवन को क्षोभित कर ज्यों ही हनुमानरूपी हाथी बाहर आया ॥214॥ त्यों ही हाथियों के रथ पर सवार इंद्रजित मेघवाहन के साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥215॥ हनुमान् जब तक इसके साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ तब तक मेघ-वाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥216॥ तदनंतर लंका की बाह्य भूमि में हनुमान् का विद्याधरों के साथ उस तरह महाभयंकर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मण का खरदूषण के साथ हुआ था ॥217॥हनुमान् चार घोड़ों से जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राक्षसों की ओर दौड़ा ॥218॥ अथानंतर चिरकाल तक युद्ध करने के बाद जो वीर इंद्रजित के द्वारा नागपाश से बाँध लिया गया था ऐसा हनुमान कुछ विचार करता हुआ नगर के भीतर ले जाया गया ॥219॥जो पहले तोड़-फोड़ करता हुआ विद्युद् दंड के समान देखा गया था वही हनुमान् अब नगरवासियों के द्वारा निश्चिंतता पूर्वक देखा गया ॥220 ॥तदनंतर वह रावण की सभा में ले जाया गया वहाँ रावण ने अपने विज्ञपुरुषों के द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥221॥ विज्ञपुरुषों ने उसके विषय में बताया कि यह दूत के द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगर से किष्किंध नगर गया । वहाँ से लंका आते समय इसने राजा महेंद्र का नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रु के अधीन किया ॥222॥दधिमुख नामक द्वीप में मुनि युगल का उपसर्ग दूर किया और गंधर्व राज की तीन कन्याएँ राम को वरने के लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥223 ॥राजा वज्रमुख के वज्रकोट का विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लंकासुंदरी को स्वीकृत कर उसके नगर के बाहर अपनी सेना रक्खी ॥224॥पुष्पगिरि का उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्षक स्त्रियों को विह्वल किया, बहुत से किंकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पीने आदि के स्थान विनष्ट किये ॥225 ॥स्त्रियों ने जिन्हें पुत्र के समान स्नेह से घटरूपी स्तनों से छोड़े हुए जल के द्वारा निरंतर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥226॥ जिनके पल्लव चंचल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षों से अलग कर पृथिवी पर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियों के समान जान पड़ती हैं ॥227 ॥फल और फूलों के भार से झुकी हुई नाना वृक्षों की जातियाँ इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी हैं जिससे वे श्मशान के वृक्षों के समान जान पड़ने लगी हैं ॥228॥हनुमान् के इन अपराधों को सुनकर रावण क्रोध को प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकार के नागपाश से वेष्टित हुए उसे समीप में बुलाकर लोहे की साँकलों से बँधवा दिया ॥229॥

तदनंतर सिंहासन पर बैठा, सूर्य के समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसकी पूजा करता था ऐसे हनुमान् के प्रति निर्दयता के साथ इस प्रकार कठोर वचन बकने लगा ॥230॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखने से क्या लाभ है ? ॥231 ॥नाना अपराधों को करनेवाला यह दुष्ट क्यों नहीं मारा जाय ? अरे ! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यंत उदारता का व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥232 ॥तदनंतर रावण के समीप ही उत्तम चेष्टाओं से युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवन से सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियाँ खड़ी थीं वे क्रोध तथा मंद हास्य से युक्त हो नेत्र बंद करती तथा शिर हिलाती हुई अनादर से इस प्रकार कहने लगी कि हे हनुमान् ! तू जिसके प्रसाद से पृथिवी मंडल पर प्रभुता को प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकार के बल से रहित होकर भी पृथिवी पर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥233-235 ॥उस स्वामी की प्रसन्नता का तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियों की अतिशय निंदनीय दूतता को प्राप्त हुआ है ॥236 ॥रावण के द्वारा किये हुए उपकार को पीछे कर तुमने पृथिवी पर परिभ्रमण करने से खेद को प्राप्त हुए राम-लक्ष्मण को कैसे आगे किया ॥237॥ जान पड़ता है कि तू पवनंजय का पुत्र नहीं है, किसी अन्य के द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्य की चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्य को सूचित कर देती है ॥238॥जार से उत्पन्न हुए मनुष्य के शरीर पर कोई चिह्न नहीं होते, किंतु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥239॥वन में क्या मदोन्मत्त सिंह सियारों की सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीच का आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥240 ॥तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्व के द्वारा पूज्य रहा परंतु अब की बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करने के योग्य है ॥241॥ इन वचनों से हनुमान् को क्रोध आ गया जिससे वह हँसकर बोला कि कौन जानता है पुण्य के बिना विधाता का निग्राह्य दंड देने योग्य कौन है ॥242॥ जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धि के साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनों में देखेंगे कहाँ जाओगे ॥243 ॥प्रचंड बल का धारी लक्ष्मण राम के साथ आ रहा है सो जिस प्रकार पर्वत मेघ को नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक

सकते ॥244॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारों से तृप्त नहीं होनेवाला कोई मनुष्य विष की एक बूंद से नाश को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईंधनों से अग्नि के समान हजारों स्त्रियों के समूह से तृप्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्री की तृष्णा से शीघ्र ही नाश को प्राप्त होगा ॥245-246 ॥जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इंद्र के समान पुरुष भी अन्यथा करने के लिए समर्थ नहीं है ॥247 ॥दुर्बुद्धि मनुष्य के लिए सैकड़ों प्रियवचनों के द्वारा हित का उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है । जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहार से ही नष्ट होता है ॥248॥विनाश का अवसर प्राप्त होनेपर जीव की बुद्धि नष्ट हो जाती है । सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यता के द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदय के अनुसार चेष्टा करता है ॥249 ॥जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगंधित मधुर दुग्ध पीकर विनाश को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुख का लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगा ॥250-251॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबंधु तथा माता आदि को अनसुना कर तू पापकर्म में प्रवृत्त हुआ है ॥252॥ तू दुराचाररूप समुद्र में कामरूपी भ्रमर के बीच फंसकर नीचे नरक में जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥253 ॥हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवा से उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्र ने राक्षसों का वंश नष्ट कर दिया ॥254 ॥तुम्हारे वंशज पृथिवी पर मर्यादा का पालन करने वाले प्रशस्त चेष्टा के धारक उत्तम पुरुष हुए परंतु तू उन सबमें छिलके के समान निःसार हुआ है ॥255॥

इस प्रकार कहने पर रावण क्रोध से लाल हो गया । वह कृपाण की ओर देखकर बोला कि यह उद्दंड अत्यधिक दुर्वचनों से भरा है तथा मृत्यु का भय छोड़कर मेरे सामने बड़प्पन धारण कर रहा है अतः नगर के बीच ले जाकर इस दुष्ट को शीघ्र ही दुर्दशा की जाये ॥256-257॥ शब्द करने वाली लंबी मोटी लोहे की सांकलों से इसे गरदन तथा हाथों और पैरों में कसकर बांधा जाये, धूलि से इसकी शरीर धूसर किया जाये, दुष्ट किंकर इसे घेरकर कठोर वचनों से इसकी हंसी करें तथा घर-घर घुमावें । इस दुर्दशा से यह रो उठेगा ॥258-259॥ इसे देख स्त्रियाँ तथा नगर के लोग धिक्कार देते तथा मुख को विकृत और कंपित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥260॥इसके आगे-आगे नगर में सर्वत्र यह घोषणा की जाये कि यह वही सम्मान को प्राप्त हुआ भूमिगोचरी का दूत है इसे सब लोग देखें ॥26॥ तदनंतर उन विविध प्रकार के अपशब्दों से परम क्रोध को प्राप्त हुआ हनुमान् बंधन को छेदकर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाश को छेदकर चला जाता है ॥262 ॥वह पैर रखने मात्र से उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजों को तोड़कर हर्षपूर्वक आकाश में जा उड़ा ॥263 ॥रावण का जो भवन इंद्रभवन के समान था वह हनुमान् के पैर की आघात से इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खंभे-ही-खंभे शेष रह गये ॥264 ॥यद्यपि वहाँ की पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतों से जकड़ी हुई थी तथापि चरणों के वेग के अनुघात से गिरते हुए उस भवन के द्वारा हिल उठी ॥265 ॥जिसका स्वर्णमय कोट भूमि में मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड□ढे हो गये थे ऐसा रावण का घर वज्र से चूर-चूर हुए पर्वत के समान हो गया ॥266॥मुकुट में कपि का चिह्न धारण करने वाले वानर वंशियों के राजा हनुमान् को इस प्रकार का पराक्रमी सुन सीता हर्ष को प्राप्त हुई तथा बंधन का समाचार सुन बार-बार विषाद को प्राप्त हुई ॥267॥तदनंतर पास में बैठी हुई वज्रोदरी ने कहा कि हे देवि ! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, वह हनुमान् बंधन तोड़कर आकाश में उड़ा जा रहा है ॥268 ॥उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेना के साथ हनुमान् को जाता देख सीता के नयन कमल खिल उठे ॥269॥वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनुमान् अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथ को वार्ता कहेगा॥270॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीता ने हर्षपूर्वक हनुमान् के पीछे उस प्रकार पुष्पांजलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेज के स्वामी के पीछे छोड़ती है ॥271 ॥साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हों तथा तू विघ्नों को नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥272 ॥गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने पूर्वजन्म में उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनकी कीर्ति का समूह समस्त संसार में व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमण से रहित हो वह कर्म करने के लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिंतनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥273॥ इसलिए नीरस फल देने वाले समस्त क्षुद्र कर्म को प्रयत्नपूर्वक छोड़ कर एक पुण्य का ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुख के आस्वाद के लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभा से सूर्य की प्रभा को जीतने वाला एवं मनोहर लीलाओं का धारक होता है ॥274॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में हनुमान के लौटने आदि का वर्णन करनेवाला तिरेपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥53॥

## लंका के लिए प्रस्थान

चौवनवां पर्व

कथा :

अथानंतर जिसकी ध्वजाओं और छत्रादि की सुंदरता नष्ट हो गयी थी ऐसी सेना आगे कर हनुमान् किष्किंधा नगरी को प्राप्त हुआ ॥1॥ तदनंतर किष्किंधा निवासी मनुष्यों की सागर के समान अपार भीड़ ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभाव से ही उत्तम चेष्टाओं का धारक था ऐसे हनुमान् ने नगर में प्रवेश किया ॥2॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीर के धारक महायोधाओं को देखने के लिए जिन्होंने झरोखों में मुख लगा रक्खे थे, ऐसी नगर निवासिनी स्त्रियों में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ॥3॥तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनुमान ने पिता की तरह हितकारी हो सेना को सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥4॥ तदनंतर राजा सुग्रीव के साथ मिलकर, लंका में जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देने के लिए राम के चरण मूल में गया ॥5॥ उस समय श्रीराम इस प्रकार की चिंता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनुमान् आकर मुझ से कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है॥ 6॥ अत्यंत सुंदर शरीर के धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्नि से उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानल से कोई हाथी आकुलित होता है॥ 7 । वे महा शोकरूपी पाताल में विद्यमान थे तथा समस्त संसार से उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनुमान हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तक से लगाकर उनके पास गया ॥8॥ प्रथम तो हनुमान ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्ष से युक्त थे ऐसे मुख के द्वारा जानकी का समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनों के द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥9॥सीता ने जो कुछ अभिज्ञान **अर्थ**ात् परिचय कारक वृत्तांत कहे थे वे सब कह चुकने के बाद उसने राजा रामचंद्र के लिए चूडामणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यता को प्राप्त हुआ॥ 10॥ वह चूडामणि कांति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता मानो चिंता के कारण ही उसकी कांति जाती रही हो । वह राम के हाथ में इस प्रकार विद्यमान था मानो थककर ही बैठा हो और सीता की चोटी में बंधे रहने से मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानो शोक से ही दुःखी होकर मलिन गया हो ॥11॥ वह प्रभाहीन चूडामणि राम की अंजलि में पहुंचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो । राम ने उसे बड़ी उत्सुकता के कारण नेत्रों से देखा था, या पिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहने में नहीं आता ॥12॥ दुर्बलता के कारण जिसको अंगुलियाँ विरल हो गयी थीं ऐसी अंजलि में विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओं का समूह झर रहा था ऐसे उस चूड़ामणि के प्रति राम ने शोक प्रकट किया ॥13॥ तदनंतर किरणों के प्रकाश से जिसने अंजलि भर दी थी ऐसे उस चूड़ामणि को राम ने मस्तक पर धारण किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूड़ामणि ने स्वयं रोकर ही जल की अंजलि भर दी हो ॥14॥ प्रिया के उस अभिज्ञान को राम ने अपने जिस अंग पर धारण किया उसी ने मानो सीता का आलिंगन प्राप्त कर लिया था ॥15॥ उस समय उनके समस्त अंगों में जिसकी संभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमांच निकल आया मानो हर्ष का निर्झर ही फूट पडा हो ॥16॥राम ने बड़े संभ्रम के साथ हनुमान् का आलिंगन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलांगी प्रिया प्राण धारण कर रही है जीवित है? ॥17॥ इसके उत्तर में हनुमान् ने नम्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है । मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुखी होइए ॥18॥किंतु इतना अवश्य है कि गुणों के समूह को नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरहरूपी दावानल के मध्य में वर्तमान है, अश्रुओं के द्वारा दुर्दिन बना रही है निरंतर वर्षा करती रहती है॥19॥वेणी बंधन के छूट जाने से उसके केश कांतिहीन हो गये हैं, वह अत्यंत दुःखी है, बार-बार दीनता पूर्वक साँसें भरती है और चिंतारूपी सागर में डूबी है॥ 20 ॥ वह कृशोदरी तो स्वभाव से ही थी पर अब आपके वियोग से और भी अधिक कृशोदरी जान पड़ती है । रावण को क्रोध भरी स्त्रियां उसकी निरंतर आराधना करती रहती हैं ॥21॥ वह शरीर की सर्व चिंता छोड़ निरंतर आपकी ही चिंता करती रहती हैं । इस तरह हे देव ! आपकी प्रिय वल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥22॥ हनुमान् के उक्त वचन सुनकर राम के नेत्र कमल म्लान हो गये । वे बहुत देर तक चिंता से आकुलित हो अत्यंत दुःखी हो उठे॥ 23॥ शिथिल एवं अलसाये शरीर को धारण करने वाले राम लंबी तथा गरम सांस भरकर अपने जीवन की अनेक प्रकार से अत्यधिक निंदा करने लगे ॥24॥ तदनंतर उनकी चेष्टा जानकर हनुमान् ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! शोक क्यों करते हो ? कर्तव्य में मन दीजिए ॥25॥ किष्किंध नगर के राजा सुग्रीव की दीर्घ सूत्रता जान पड़ती है और सीता का भाई भामंडल बार-बार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥26॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओं से ही शीघ्र समुद्र को तैरकर कल ही निःसंदेह नीच रावण की नगरी लंका को चलेंगे ॥27॥

तदनंतर सिंहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधर ने कहा कि इस तरह अभिमानी के समान मत कहो । आप विद्वान् पुरुष हैं ॥28॥ आपकी जो दशा लंका में हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगों की होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥29॥ पवनपुत्र हनुमान् ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरों से सहित एवं बाग-बगीचों से सुशोभित लंका पुरी को नष्ट किया है ॥30॥ इसलिए महाविद्याधरों का अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैववश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥31॥

तदनंतर चंद्रमरीचि नामक विद्याधर ने अत्यंत ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिंह से समान अत्यंत भय को प्राप्त हो रहे हो ? ॥32॥ भयभीत तो रावण को होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥33॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेगशाली हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥34॥ उनके नाम हैं घनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुंड, गोरति, अंगद, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मंदर, अशनि, अर्णव, चंद्रज्योति, मृगेंद्र, वज्रदंष्ट, दिवाकर, उल्का और लांगूल नामक दिव्य अस्त्रों के समूह में निर्वाध पौरुष को धारण करने वाला हनुमान, महाविद्याओं का स्वामी भामंडल, तीक्ष्णपवन के समान पराक्रम का धारक महेंद्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिवाय किष्किंधनगर के स्वामी राजा सुग्रीव के और भी अनेक महापराक्रमी सामंत हैं जो कार्य को प्रारंभ कर बीच में नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी हैं और आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं॥35-39।।

तदनंतर चंद्रमरीचि के वचन सुनकर विद्याधरों ने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक राम के ऊपर लगाये **अर्थ**ात् उनकी ओर देखा॥ 40॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे राम के मुख पर उन्होंने वह भयंकर भृकुटी का जाल देखा जो कि यमराज के लतागृह-निकुंज के समान जान पड़ता था ॥41॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लंका की ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए हैं, वह राक्षसों का क्षय सूचित करने के लिए उदितकेतु की रेखा के समान जान पड़ती है ॥42॥ तदनंतर उन्होंने देखा कि राम ने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ़ धनुष पर लगा रक्खी है जो चिरकाल से मध्यस्थता को प्राप्त हुआ है, तथा यमराज की भृकुटीरूपी लता की उपमा धारण करने वाला है ॥43॥ उनका केशों का समूह क्रोध से कंपित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अंधकार के द्वारा जगत् को व्याप्त करने के लिए यमराज का खजाना ही खुल गया था ॥44॥ तेजोमंडल के बीच में स्थित उनका उस प्रकार का मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलयकाल का देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥45॥ इस तरह राक्षसों का नाश करने के लिए जो गमन संबंधी उतावली कर रहे थे ऐसे राम को देखकर उन सब विद्याधरों के मन क्षुभित हो उठे तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करने के लिए उद्यत हो गये ॥46॥

अथानंतर राम की चेष्टाओं से प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चंद्रमरीचि की वाणी का सम्मान कर आकाशमार्ग से चल पड़े । उस समय वे सब विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम संपदाओं से सहित थे॥47॥ युद्ध की उत्कंठा से युक्त राम और लक्ष्मण ने, ध्वनि के द्वारा गुफाओं को पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे बजवाकर प्रस्थान किया ॥48॥ मार्गशीर्ष वदी पंचमी के दिन सूर्योदय के समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान काल में होनेवाले निम्नांकित शुभ शकुनों से उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥49॥ उस समय उन्होंने देखा कि निर्धूम अग्नि की ज्वाला दक्षिणावर्त से प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारों से युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगंधि को फैलाने वाली वायु बह रही है ॥50॥ निर्ग्रंथ मुनिराज सामने से आ रहे हैं, आकाश में छत्र फिर रहा है, घोड़ों की गंभीर हिनहिनाहट फैल रही है, घंटा का मधुर शब्द हो रहा है, दही से भरा कलश सामने से आ रहा है ॥51॥ बायीं ओर नवीन गोबर को बार-बार बिखेरता तथा पंखों को फैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है॥ 52॥ भेरी और शंख का शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधा के बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो । इत्यादि मंगल शब्द हो रहे हैं ॥53॥ इन मंगलरूप शुभ शकुनों से उन सबका उत्साह वृद्धिंगत हो रहा था । चारों दिशाओं से आये हुए विद्याधरों से जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसलिए जो शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलने के लिए उद्यत हुआ ॥54॥ जो नाना प्रकार के यान और विमानों से सहित थे तथा जिनका वाहनों पर नाना प्रकार की पताकाएं फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेग से आकाश में जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥55॥किष्किंध नगर के राजा सुग्रीव, हनुमान, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुषेण तथा कुमुद आदि राजा आकाश में उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओं में अत्यंत देदीप्यमान वानर के चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाश को ग्रसने के लिए ही उद्यत हुए हों॥ 56-57॥ विराधित की ध्वजा में निर्झर के समान हार, जांबव को ध्वजा में

महावृक्ष, सिंहरव की ध्वजा में व्याघ्र, मेघकांत की ध्वजा में हाथी तथा अन्य विद्याधरों की ध्वजाओं में वंश-परंपरा से चले आये अनेक चिह्न सुशोभित थे । ये सभी उज्ज्वल छत्रों के धारक थे ॥58-59॥ अत्यंत तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपाल के समान हनुमान् उसके पीछे स्थित था ॥60॥ यथायोग्य सामंतों के समूह से घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्ष से भरे वे सब विद्याधर लंका जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥61॥ जिस प्रकार पहले सुकेश के पुत्र माल्य आदि ने लंका की ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओं ने विमानों के अग्रभाग पर आरूढ़ हो लंका की ओर प्रयाण किया ॥62॥ विराधित विद्याधर राम को बगल में स्थित था और अपने मंत्रियों से सहित जांबव उनके पीछे चल रहा था ॥63॥ बायें हाथ की ओर सुषेण और दाहिने हाथ की ओर सुग्रीव स्थित था । इस प्रकार व्यवस्था से चलते हुए वे सब निमेष मात्र में वेलंधर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥64॥ वेलंधर नगर का स्वामी समुद्र नाम का विद्याधर था सो उसने परम युद्ध के द्वारा नल का आतिथ्य किया ॥65॥ तदनंतर बाहुबल से युक्त नल ने स्पर्धा के साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बाँध लिया ॥66॥ तदनंतर राम का आज्ञाकारी होनेपर उसे सम्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगर का राजा बना दिया । राम आदि संत लोग भी उसके नगर में यथायोग्य ठहरे ॥67॥ राजा समुद्र को सत्यश्री, कमला, गुणमाला और रत्नचूला नाम की कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभा से युक्त थीं, स्त्रियों के गुणों से विभूषित थीं तथा देवांगनाओं के समान जान पड़ती थीं । हर्ष से भरे राजा समुद्र ने वे सब कन्याएँ लक्ष्मण के लिए समर्पित की ॥68-69॥ उस नगर में एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरि को चले गये । वहाँ सुवेल नगर में सुवेल नाम का विद्याधर राज्य करता था॥70॥ सो उसे भी युद्ध में अनायास जीतकर विद्याधरों ने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीड़ा की जिस प्रकार कि देव नंदन वन में रहते हैं॥ 71॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वन में कुशलतापूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम शोभा को धारण करनेवाले विद्याधर लंका जाने के लिए उद्यत हुए ॥72॥

तदनंतर जो ऊँचे प्राकार से युक्त थी, सुवर्णमय भवनों से व्याप्त थी, कैलास के शिखर के समान सफेद कमलों से सुशोभित थी, नाना प्रकार के फर्शों और प्रकाश से देदीप्यमान थी, कमल वनों से युक्त थी, प्याऊ आदि की रचनाओं से अलंकृत थी, नाना रंगों से उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-मंदिरों से अलंकृत तथा पवित्र थी और महेंद्र की नगरी के समान जान पड़ती थी ऐसी लंका को निकटवर्तिनी देख परमवैभव के धारक विद्याधर हंसद्वीप में ठहर गये॥ 73-76॥ वहाँ के हंसपुर नामा नगर में महाबलवान् राजा हंसरथ को जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीड़ा की॥ 77॥ जिसके पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामंडल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे॥ 78।।

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देश में जाते हैं उसी-उसी देश में वे शत्रुओं को जीतकर भोगों का समागम प्राप्त करते हैं । उद्यमशील पुण्यात्मा जीवों के लिए कोई भी वस्तु पर के हाथ में नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथ में आ जाती हैं ॥ 79॥ इसलिए जो भव्य संसार में उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेंद्रदेव के मुखारविंद से उदित सर्वश्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्म का पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगों का नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्म के प्रभाव से सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल मोक्ष को प्राप्त कर लेता है॥ 80॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में लंका के लिए प्रस्थान का वर्णन करने वाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥54॥

## विभीषण का समागम

पचपनवां पर्व

कथा :

अथानंतर शत्रु को बड़ी भारी सेना को निकट में स्थित जानकर लंका, प्रलयकालीन समुद्र की वेला के समान क्षोभ को प्राप्त हुई ॥1॥ जिसका चित्त संभ्रांत हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्रोध को प्राप्त हुआ और गोलाकार झुंडों के बीच बैठे हुए लोग रण की चर्चा करने लगे ॥2॥ जिनका शब्द महासागर की गर्जना के समान था ऐसी भय उत्पन्न करने वाली भेरियां बजायी गयों तथा तुरही और शंखों का विशाल शब्द आकाशरूपी अंगण में घूमने लगा॥3॥उस रणभेरी के शब्द से परम प्रमोद को प्राप्त हुए, स्वामी के हितचिंतक योद्धा तैयार होकर रावण के समीप आने लगे ॥4॥ मारीच, अमलचंद्र, भास्कर, स्यंदन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामी के पास आये ॥5॥

अथानंतर लंका के अधिपति वीर रावण को युद्ध के लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणाम कर शास्त्रानुकूल, अत्यंत श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्यों के लिए अत्यंत इष्ट, आगामी तथा वर्तमान काल में हितकारी, आनंदरूप एवं शांतिपूर्ण निम्नांकित वचन कहने लगा । विभीषण, सौम्यमुख का धारी, पदवाक्य का विद्वान्, प्रमाण शास्त्र में निपुण एवं अत्यंत धीर था ॥6-8॥ उसने कहा कि हे प्रभो! आपकी संपदा इंद्र की संपदा के समान अत्यंत विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपको कुंदकली के समान निर्मल कीर्ति आकाश एवं पृथिवी को व्याप्त कर स्थित है ॥9॥

हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्री के कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति संध्याकालीन मेघ की रेखा के समान क्षणभर में नष्ट न हो जाये अतः प्रसन्न होओ ॥10॥ इसलिए शीघ्र ही सीता राम के लिए सौंप दी जाये । इससे आपको क्या कार्य ही है? सौंप देने में दोष नहीं दिखाई देता है ॥11॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुखरूपी सागर में निमग्न हो सुख से बैठो । तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओर से निर्दोष हैं ॥12॥ श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सम्मान कर सीता उन्हें सौंप दी जाये क्योंकि अपने स्वभाव का संबंध ही सर्व प्रकार से प्रशंसनीय है ॥13॥ तदनंतर पिता के चित्त को जानने वाला इंद्रजित् विभीषण के उक्त वचन सुन, स्वभाव से ही अत्यंत मान पूर्ण तथा आगम के विरुद्ध निम्नांकित वचन बोला ॥14॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुम से किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्त के वचनों के समान वचन बोले जा रहे हो ?॥15॥यदि तुम अत्यंत अधीर-डरपोक या नपुंसक-जैसे दीन हृदय के धारक हो तो अपने घर के बिल में आराम से बैठो । तुम्हें इस प्रकार के शब्द कहने से क्या प्रयोजन है ? ॥16॥ जिसके लिए मदोन्मत्त हाथियों के झुंड से अंधकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शस्त्रों के समूह से सहित एवं अत्यंत भयदायक संग्राम में तलवार की पैनी धारा से उद्दंड शत्रुओं को मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्ट से वीर सुंदरी लक्ष्मी का उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यंत दुर्लभ स्त्री-रत्न को पाकर मूर्ख पुरुष की तरह क्यों छोड़ दिया जाये ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥17-19॥

तदनंतर डाँट दिखाने में तत्पर विभीषण ने इस प्रकार कहा कि तू मलिन चित्त को धारण करने वाले इस रावण का पुत्र नामधारी शत्रु है ॥ 20 ॥तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीत की बाधा से युक्त हो दूसरे की इच्छानुसार शीतल जल में डूब रहा है गोता लगा रहा है ॥ 21॥ तू गृह में लगी अग्नि को सूखे ईधन से पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाच से पीड़ित होने के कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥22 ॥इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनों से युक्त सुवर्णमयी लंका जब तक लक्ष्मण के बाणों से चूर नहीं की जाती है तब तक गंभीर चित्त के धारक राम के लिए शीघ्र पतिव्रता राजपूत्री सीता का सौंप देना सब लोगों के कल्याण के लिए उचित है ॥23-24॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किंतु राक्षसरूपी सर्पों के रहने के लिए बिल स्वरूप इस लंका नगरी में विष की औषधि लाया है॥25॥ लक्ष्मीधरों में श्रेष्ठ एवं क्रोध से युक्त लक्ष्मण सिंह के समान है और तुम लोग हाथियों के तुल्य हो अतः रण के अग्रभाग में उसे घेरने के लिए तुम समर्थ नहीं हो ॥26 ॥जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण हैं तथा भामंडल जिसके पक्ष में है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥27॥ जो महेंद्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, किष्किंधा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलंधर, अलका, केलीकिल, गगनतिलक, संध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदि के बड़े-बड़े अभिमानी राजा तथा विद्याविभव से संपन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहे हैं उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥28-30 ॥इस प्रकार उच्च स्वर से कहने वाले विभीषण को मारने के लिए उधर क्रोध से भरा रावण तलवार उभार कर खड़ा हो गया ॥31 ॥और इधर उपदेश देने के लिए जिसका दृष्टांत दिया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषण ने भी क्रोध के वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा खंभा उखाड़ लिया ॥32 ॥युद्ध के लिए उद्यत, उग्र तेज के धारक इन दोनों भाइयों को मंत्रियों ने बड़ी कठिनाई से रो का । तदनंतर रोके जाने पर वे अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥33॥

तत्पश्चात् कुंभकर्ण, इंद्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्तजनों ने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठोर चित्त को धारण करता हुआ बोला कि जो अग्नि के समान अपने ही आश्रय का अहित करने में तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगर से निकल जावे ॥34-35॥ जिसका चित्त अनर्थ करने में उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहने से क्या लाभ है? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करने वाले अपने अंग से भी कार्य नहीं है ॥36॥यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्यु को प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ ॥37।।

अथानंतर 'क्या मैं भी रत्नश्रवा का पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानो विभीषण लंका से निकल गया ॥38॥ वह सुंदर शस्त्रों को धारण करने वाली कुछ अधिक तीस अक्षौहिणी सेनाओं से परिवृत हो राम के समीप जाने के लिए उद्यत हुआ ॥39॥विद्युद घन, इभवज्र, इंद्रप्रचंड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े-बड़े शूरवीर सामंत विभीषण के आश्रय में रहने वाले थे वे वज्रमय शस्त्र उभार कर अपने-अपने

अंतःपुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रों से सुशोभित होते हुए चल पड़े ॥40-41 ॥नाना प्रकार के वाहनों से आकाश को आच्छादित कर अपने परिवार के साथ जाते हुए वे हंसद्वीप में पहुँचे ॥42॥ और नदियों से सुशोभित उस द्वीप के सूंदर तट पर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नंदीश्वर द्वीप में ठहरते हैं ॥43 ॥जिस प्रकार शीतकाल के आने पर दरिद्रों के शरीर में सब ओर से कँपकंपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषण का आगमन होते ही वानरों के शरीर में सब ओर से कंपकंपी छूटने लगी ॥44॥ सागरावर्त धनुष को धारण करने वाले लक्ष्मण ने सूर्यहास खड्ग की ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करने वाले राम ने वज्रावर्त धनुष का स्पर्श किया ॥ 45॥ घबड़ाये हुए मंत्री एकत्रित हो इच्छानुसार मंत्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंह से भयभीत होकर हाथियों की सेना झुंड के रूप में एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरों की समस्त सेना भयभीत हो झुंड के रूप में एकत्रित होने लगी ॥46॥

तदनंतर विभीषण ने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल राम के पास भेजा ॥47॥ बुलाये जाने पर वह सभा में गया और प्रणाम कर बैठ गया । तदनंतर उसने यथाक्रम से दोनों भाइयों के विरोध की बात कही ॥48॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्य में उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणों में इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्ति से युक्त हो आपकी शरण में आया है, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥49-50॥ इस प्रकार जब द्वारपाल ने कहा तब राम के निकटस्थ मंत्रियों के साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥51 ॥मतिकांत मंत्री ने कहा कि कदाचित् रावण ने छल से इसे भेजा हो क्योंकि राजाओं की चेष्टा विचित्र होती है ॥52॥ अथवा परस्पर के विरोध से कलुषता को प्राप्त हुआ कुल, जल की तरह निश्चित ही फिर से प्रसाद ( पक्ष में स्वच्छता ) को प्राप्त हो जाता है ॥53॥ तदनंतर बुद्धिशाली मतिसागर नामक मंत्री ने कहा कि लोगों के मुख से यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयों में विरोध हो गया है ॥54॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्म का पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जल से उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरंतर अनुग्रह-उपकार करने में तत्पर रहता है ॥55॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किंतु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही कारण है । कर्म के प्रभाव से ही संसार में यह विचित्रता स्थित है ॥56॥ इस प्रकरण में तुम एक कथा सुनो नैषिक नामक ग्राम में गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणों के बालक थे ॥57॥ उसी ग्राम में राजा सूर्यदेव की रानी मतिप्रिया ने पुण्य को इच्छा से एक व्रत के रूप में उन दोनों बालकों के लिए मिट्टी के बड़े-बड़े कपालों में स्वर्ण रखकर तथा ऊपर से भात ढककर दान दिया । उन दोनों बालकों में से गिरि नामक बालक ने देख लिया कि इन कपालों में स्वर्ण है तब उसने स्वर्ण के लोभ से दूसरे बालक को मार डाला और उसका स्वर्ण ले लिया ॥58-59॥दूसरी कथा यह है कि कौशांबी नामा नगरी में एक बृहद्धन नाम का वणिक् रहता था । कुरुविंदा उसकी स्त्री का नाम था और उससे उसके अहिदेव और महीदेव नाम के दो पुत्र हुए थे । जब उन पुत्रों का पिता मर गया तब वे जहाज में बैठकर कहीं गये । 'सूने में कोई धन चुरा न ले' इस भय से वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे । वहाँ सब बर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये । वह रत्न दोनों भाइयों में से जिसके हाथ में जाता था वह दूसरे भाई को मारने की इच्छा करने लगता था ॥60-62॥ दोनों भाई अपने खोटे विचार एक दूसरे को बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनों ने विरक्त होकर वह रत्न माता के लिए दे दिया ॥63॥माता ने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रों को मारने की इच्छा की परंतु पीछे चलकर वह ज्ञान को प्राप्त हो गयी । तदनंतर माता और दोनों पुत्रों ने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदी में फेंक दिया जिसे एक मच्छ ने निगल लिया ॥64॥ उस मच्छ को एक धीवर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनों के घर बेचा गया । तदनंतर इनकी बहन ने मच्छ को काटते समय वह रत्न देखा ॥65॥ सो लोभ और मोह के प्रभाव से वह माता तथा दोनों भाइयों को विष देकर मारने की इच्छा करने लगी, परंतु स्नेहवश पीछे शांत हो गयी ॥66॥ तदनंतर परस्पर एक दूसरे का अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्न को पत्थर से चूर-चूर कर फेंक दिया और उसके बाद संसार की दशा से विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥67 ॥इस कथा से यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदि के लोभ से भाई आदि के बीच भी संसार में वैर होता है इसमें योनि संबंध कारण नहीं है ॥68॥इस कथा में वैर दिखाई तो दिया है परंतु दैवयोग से पुनः शांत होता गया है और पूर्व कथा में गिरि ने अपने सगे भाई गोभूति को मार ही डाला है ॥69॥ इसलिए दूत भेजने वाले इस महाबुद्धिमान् विभीषण को बुलाया जाये । इसके विषय में योनि संबंधी दृष्टांत स्पष्ट नहीं होता **अर्थ**ात् एक योनि से उत्पन्न होने के कारण जिस प्रकार रावण दृष्ट है उसी प्रकार विभीषण को भी दुष्ट होना चाहिए यह बात नहीं है ॥70॥

तदनंतर द्वारपाल को बुलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे । तत्पश्चात् द्वारपाल के द्वारा जाकर खबर दी जाने पर विभीषण राम के पास आया ॥71 ॥उसने आते ही प्रणाम कर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्म में आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्म में भी श्री

जिनेंद्र देव ॥72॥ जब विभीषण निश्छलता की शपथ कर चुका तब रामने संशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा, संदेह रहित होओ ॥73 ॥इधर विभीषण का समागम होने से जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओं को सिद्ध करनेवाला पुष्पवती का पुत्र भामंडल आ पहुँचा ॥74॥विजया के अधिपति, परम प्रभावशाली भामंडल को आया देख राम आदि ने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥75॥ तदनंतर उस हंस नामक नगर में आठ दिन बिताकर और अपने कर्तव्य का अच्छी तरह निश्चित कर सबने लंका की ओर प्रयाण किया ॥76॥

अथानंतर रथों, नाना प्रकार के वाहनों, वायु के समान वेगशाली घोड़ों, वर्षाकालीन मेघों के समान कांति वाले हाथियों के समूहों, अनुराग से भरे भृत्यों और कवचरूपी आभूषणों से विभूषित वीर योद्धाओं के द्वारा जिन्होंने आकाश को सब ओर से आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साह से आ रहे थे ॥77-78 ॥ वे सबके आगे चलने वाले अत्यंत वीर वानरवंशी राजा युद्ध की भूमि में सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिए उचित ही था ॥79॥इस रणभूमि की चौड़ाई बीस योजन थी और लंबाई का कुछ परिमाण ही नहीं था ॥80॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नों को धारण करनेवाले हजारों योद्धाओं से सहित वह युद्ध को भूमि मृत्यु की संसार भूमि के समान जान पड़ती थी ॥81॥ तदनंतर जिसे चिरकाल बाद उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुंदुभियों का शब्द सुन परम हर्ष को प्राप्त हुआ॥82॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामंतों का आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्ध के आनंद से कभी वंचित नहीं किया था ॥83 ॥सूर्याभपुर, मेघपुर, कांचनपुर, गगनवल्लभपुर, गंधर्वगीतनगर, कंपनपुर, शिवमंदिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृत, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुरनूपुर, श्रीमंतपुर, मलयानंदपुर, श्रीगुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुंजयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तंडाभपुर, विशालपुर, ज्योतिदंडपुर, परिक्षोदपुर, अश्वपुर, रत्नपुर और पराजयपुर आदि अनेक नगरों के बड़े-बड़े विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मंत्रियों के साथ रावण के समीप आ गये ॥84-88॥ रावण ने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सब राजाओं का उस तरह सम्मान किया जिस तरह कि इंद्र देवों का सम्मान करता है ॥89॥ विद्वानों ने रावण की सेना का प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी दल बतलाया है । उनका यह दल अपनी सामर्थ्य से परिपूर्ण था ॥90॥ किष्किंधनगर के राजा सुग्रीव को सेना का प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी और भामंडल की सेना का प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी दल था ॥91॥परम उद्योगी सदा सावधान रहने वाले सुग्रीव और भामंडल, अपने-अपने मंत्रियों के साथ सदा राम-लक्ष्मण के समीप रहते थे ॥92 ॥ उस समय युद्ध-भूमि में नानावंश, नानाजातियाँ, नानागुण तथा नानाक्रियाओं से प्रसिद्ध एवं नाना प्रकार के शब्दों का उच्चारण करने वाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥93 ॥गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्य के प्रभाव से महापुरुषों के शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्यों के चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पर हो जाते हैं ॥94॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे अधीन है, यह मेरा बंधु है और यह मेरा सदा सुख देने वाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्य से सहित तथा संसार की विचित्रता को जानने वाले मनुष्य को कभी नहीं विचारना चाहिए ॥95॥

इस प्रकार आप नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में विभीषण के समागम का वर्णन करनेवाला पचपनवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥55॥

## राम और रावण की सेनाओं का प्रयाण

छप्पनवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर मगधपति राजा श्रेणिकने गौतम गणधर से इस प्रकार पूछा कि हे सन्मने ! मेरे लिए अक्षौहिणी का प्रमाण कहिए॥1॥ इसके उत्तर में इंद्रभूति-गौतम गणधर ने कहा कि हे राजन् श्रेणिक ! सुन, मैं तेरे लिए संक्षेप से अक्षौहिणी प्रमाण कहता हूँ ॥2॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेना के चार अंग कहे गये हैं । इनकी गणना करने के लिए नीचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं ॥3॥ प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पाँचवाँ वाहिनी, छठा पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी । अब उक्त चार अंगों में ये जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ॥4-5॥ जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है ॥6॥ तीन पत्ति की एक सेना होती है, तीन सेनाओं का एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुखों का एक गुल्म कहलाता है ॥7॥ तीन गुल्मों की एक वाहिनी होती है, तीन वाहिनियों की एक पृतना होती है तीन पतनाओं की एक चमू होती है और तीन चमू की एक अनीकिनी होती है॥

8॥विद्वानों ने दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी कही है । हे श्रेणिक ! अब मैं तेरे लिए अक्षौहिणी के चारों अंगों की पृथक-पृथक् संख्या कहता हूँ॥ 9॥ विद्वानों ने एक अक्षौहिणी में सूर्य के समान देदीप्यमान रथों की संख्या इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर बतलायी है । हाथियों की संख्या रथों की संख्या के समान जानना चाहिए ॥10-11॥ पदाति एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास होते हैं और घोड़ों की संख्या पैंसठ हजार छह सौ दस कही गयो है॥ 12-13॥ इस प्रकार चार हजार अक्षौहिणी रावण के पास थीं । सो इस प्रकार को सेना से सहित रावण को अतिशय बलवान् जानकर भी किष्किंधपति सुग्रीव की सेना निर्भय होकर रावण के सम्मुख चली ॥14॥ जब राम की सेना निकट आयो तब नाना पक्ष में विभक्त लोगों में इस प्रकार की चर्चा होने लगी॥ 15॥ कोई कहता था कि देखो जो विद्याधररूपी नक्षत्रों के समूह का स्वामी है और जो शास्त्र ज्ञानरूपी किरणों से सहित है ऐसा यह रावणरूपी चंद्रमा परनारी की इच्छारूपी मेघों से आच्छादित हो रहा है ॥16॥ जिसको उत्तम कांति को धारण करने वाली अठारह हजार स्त्रियाँ हैं वह एक सीता के लिए देखो शोक से शल्ययुक्त हो रहा है ॥17॥ देखें राक्षसों और वानरों में से किसका क्षय होता है ? इस प्रकार दोनों सेनाओं के लोगों को संदेह हो रहा था ॥ 18॥ उधर वानरों की सेना में कामदेव के समान जो हनुमान है वह अत्यंत भयंकर है, उसका शौर्यरूपी सूर्य अतिशय देदीप्यमान हो रहा है और इधर राक्षसों की सेना में इंद्रजित् सूर्य के समान है ॥19॥ कोई कह रहे थे कि रावण की यह सेना समुद्र के समान विशाल, अत्यंत उग्र तथा साक्षात् दैत्यों की सेना के समान है ॥20॥ क्या तुम कभी शूर-वीर और अशूर-वीर का अंतर नहीं जानते ? क्या तुम्हें पिछली बात याद नहीं है ? और क्या तुम सबको धीर-वीर मनुष्य की पहचान नहीं है ? ॥21॥ कोई कह रहे थे कि विशाल दंडकवन के मध्य में महाबलवान् लक्ष्मण का जो युद्ध हुआ था और उसमें केवल अपने शरीर के तुल्य चंद्रोदर के पत्र-विराधित को पाकर उसने खरदूषण को यम का अतिथि बना दिया था । इस प्रकार अत्यंत प्रकट पराक्रम के धारक लक्ष्मण का उत्कृष्ट बल क्या आप लोगों को विदित नहीं है ? ॥ 22-24॥ कोई कह रहा था कि उस समय परहित में लगे हुए अकेले हनुमान् ने मंदोदरी को डांटकर तथा सीता को सांत्वना देकर रावण की अत्यंत उग्र सेना जीत ली थी तथा जिसके कोट और तोरण तोड़ दिये गये थे ऐसी लंका को क्षत-विक्षत कर दिया था ॥25-26॥ इस प्रकार तत्त्वज्ञ मनुष्यों के स्पष्ट वचन निकलने पर गर्व से भरा सुमुख राक्षस हँसता हुआ निम्न प्रकार के वचन बोला ॥27॥ वह कहने लगा कि वानर चिह्न को धारण करने वाले वानर वंशियों की यह गोखुर के समान तुच्छ सेना कहाँ ? और यह त्रिकूट वासियों की समुद्र के समान विशाल एवं उत्कट सेना कहाँ ? ॥28॥ जो विद्याधरों का अधिपति रावण इंद्र के द्वारा भी वश में नहीं किया जा सका वह एक धनुर्धारी के वश कैसे हो सकता है ? ॥29॥ जो समस्त तेजस्वी मनुष्यों के मस्तक पर अधिष्ठित है **अर्थ**ात् समस्त प्रतापी मनुष्यों में श्रेष्ठ है ऐसे (अर्ध) चक्रवर्ती रावण का नाम भी सुनने के लिए कौन समर्थ है ? ॥30॥ जिसकी भुजाएँ अत्यंत स्थूल हैं एवं जो देवों के द्वारा भी दुर्धर है रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुंभकर्ण को कौन नहीं जानता ?।।31॥ जो त्रिशूल का धारक, युद्ध में प्रलयकाल की अग्नि के समान देदीप्यमान होता है तथा जिसका पराक्रम संसार में सबसे अधिक है ऐसा यह कुंभकर्ण किसके द्वारा जीता जा सकता है ?॥32॥ उदित हुए शरत्कालीन चंद्रमा के समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओं को सेनारूपी अंधकार सब ओर से नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुंभकर्ण के सामने संसार में ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवन से नि:स्पृह हो खड़ा होने के लिए भी समर्थ हो ॥ 33-34॥इस प्रकार जो नाना भांति के वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेष के आधार थे, जिन्होंने अपने मनोगत विचारों के संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकार की क्रियाएँ देखी गयी थीं ऐसे उभयपक्ष के लोगों की विचारधारा विचित्र एवं शंका को उत्पन्न करने वाली हुई थीं ॥35॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्ति के योग्य समय में भी रागी, द्वेषी बने रहते हैं अन्य भव में पहुँच जाने पर भी उनका मनोमार्ग वास्तव में वैसा ही रहा आता है-राग-द्वेष का अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्य का अपना चारित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म-कार्य में प्रेरित करता रहता है ॥36॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में राम और रावण की सेनाओं के प्रयाण का कथन करनेवाला छप्पनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥56॥

## रावण की सेना लंका से बाहर निकली

सत्तावनवां पर्व

कथा :

अथानंतर परचक्र के आक्रमण को नहीं सहन करने वाले मनुष्य उठते हुए अहंकार से क्षुभित हो हर्षपूर्वक कवच आदिक धारण करने के

लिए उद्यत हुए ॥1॥ सिंह की समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गले में पड़े हुए प्राणवल्लभा के बाहुपाश को बड़ी कठिनाई से दूर कर क्षुभित हो लंका से बाहर निकल आये ॥2॥ जिसने महायुद्ध में अनेक बड़े-बड़े योद्धाओं की चेष्टाओं का वर्णन सुन रखा था, ऐसी किसी वीर पत्नी ने पति का आलिंगन कर इस प्रकार कहा कि ॥3॥ हे नाथ ! यदि संग्राम से घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्र से ही मैं प्राण छोड़ दूँगी ॥4॥ क्योंकि ऐसा होने से वीर किंकरों की गर्वीली पत्नियाँ मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या होगी ? ॥5॥ जिनके वक्षस्थल में घाव आभूषण के समान सुशोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हई विजय से योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गंभीरता के कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्ध से लौटा हुआ यदि देखूँगी तो मैं सुवर्णमय कमलों से जिनेंद्रदेव की पूजा करूँगी ॥6-7॥ महा योद्धाओं का सम्मुखागत मृत्यु को प्राप्त हो जाना अच्छा है किंतु पराङ्मुख को धिक्कार शब्द से मलिन जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥8॥ कोई स्त्री दोनों स्तनों से पति का आलिंगन कर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिंगन करूंगी ॥9॥ आपके वक्षस्थल के गाढ़े-गाढ़े रक्तरूपी चंदनों को चर्चा से मेरे दोनों स्तन सब प्रकार से परम शोभा को प्राप्त होंगे ॥10॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाता है ऐसी पड़ोसी योद्धाओं की पत्नी को भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूँगी ? ॥11 ॥कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभागा पुराना घावरूपी आभूषण रूढ़ हो गया है पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥12 ॥अब नूतन घाव पर रखे हुए स्तनमंडल को सुख पहुंचाने वाले आपको जब देखेंगी तो मेरा मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्नियाँ मुझे बड़े गौरव से देखेंगी ॥13॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुख को चुंबन किया है उसी प्रकार वक्षस्थल पर उत्पन्न हुए घाव के मुख का चुंबन करूँगी ॥14॥कोई नवविवाहि यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि पति के युद्ध के लिए उद्यत होनेपर प्रौढ़ता को प्राप्त हो गयी ॥15 ॥कोई स्त्री चिरकाल से मान की रक्षा करती बैठी थी परंतु जब पति युद्ध के सम्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पति का आलिंगन करने में तत्पर हो गयी ॥16॥ यद्यपि किसी योद्धा की स्त्री पति के मुख की मदिरा पीती-पीती तृप्त नहीं हुई थी तथापि कामाकुलित हो उसने पति के लिए रण के योग्य शिक्षा दी थी ॥17॥ कोई कमललोचना स्त्री पति के ऊपर उठाये हुए मुख को टिमकार रहित नेत्रों से चिरकाल तक देखती रही और उसका चुंबन करती रही ॥18॥ किसी स्त्री ने पति के वक्षःस्थल पर नख का उज्ज्वल घाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका बयाना ही दे दिया था ॥19 ॥

इस प्रकार जब स्त्रियों में नाना प्रकार की चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्ध से सुशोभित योद्धाओं की इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥20 ॥कोई बोला कि हे प्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभाग में जाकर शत्रुओं के समुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं ॥21 ॥शत्रु भी जिनका विरद बखान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्य के बिना मदोन्मत्त हाथियों के दाँतों के अग्रभाग से झूला नहीं झूल सकते ॥22 ॥हाथी दाँत के अग्रभाग से विदीर्ण तथा हाथी के गंडस्थल को विदीर्ण करने वाले श्रेष्ठ मनुष्य को जो सुख होता है उसे कहने के लिए कौन समर्थ है? ॥23 ॥कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखाने वाले एवं शस्त्र डाल देने वाले पुरुष को छोड़ शत्रु के मस्तक पर टूट पड़ेगा ॥24॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण कर तथा रणांगण से लौटकर जब आपको संतुष्ट कर दूंगा तभी आपसे आलिंगन की प्रार्थना करूँगा ॥25 ॥गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार के वार्तालापों से अपनी प्राण वल्लभाओं को सांत्वना देकर युद्ध संबंधी सुख प्राप्त करने में उत्सुक वीर मनुष्य घरों से बाहर निकलने के लिए उद्यत हुए ॥26 ॥किसी का पति हाथ में शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गले में दोनों भुजाएँ डालकर ऐसी झूल गयी मानो किसी गजराज के गले में कमलिनी ही झूल रही हो ॥27॥ किसी स्त्री के पति ने कवच पहन रखा था इसलिए उसके शरीर का संगम न प्राप्त होने से वह गोद में स्थित होने पर भी परम पीड़ा को प्राप्त हो रही थी॥28॥ कोई एक स्त्री पति के वक्षःस्थल पर अर्द्ध बाहुलिका देख ईर्ष्या से भर गयी तथा उसके नेत्र कुछ-कुछ संकुचित हो गये ॥29॥ उसे अप्रसन्न जान पति ने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहना है । इस प्रकार पति के कहने से पुनः संतोष को प्राप्त हो गयी ॥30॥किसी सूखिया स्त्री ने तांबूल याचना के बहाने पति का अधरोष्ठ पाकर उसे दंताघात से विभूषित कर बडी कठिनाई से छोड़ा ॥31॥ रण के अभिलाषी किसी पुरुष ने यद्यपि अपनी स्त्री को लौटा दिया था तथापि वह कवच के कंठ का सूत्र बाँधने के बहाने चली जा रही थी । ॥32॥ एक ओर तो वल्लभा की दृष्टि और दूसरी ओर तुरही का शब्द, इस प्रकार योद्धा का मन दो कारणरूपी दोला के ऊपर आरूढ़ हो रहा था ॥33॥ अमांगलिक अश्रुपात को बचाने वाली स्त्रियों के यद्यपि पति को देखने की इच्छा थी तो भी वे नेत्रों का पलक नहीं झपाती थीं ॥34 ॥जिनके मन उतावली से भर रहे थे ऐसे कितने ही अहंकारी योद्धा, कवच पहने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे

ही लेकर निकल पड़े ॥35 ॥किसी रणवीर का शरीर रण से उत्पन्न संतोष के कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निज का कवच भी शरीर में नहीं माता था ॥36॥ किसी उत्तम योद्धा का शरीर पर-चक्र को तुरही का शब्द सुनकर इतना फूल गया कि वह चिरकाल के भरे घावों से रक्त छोड़ने लगा ॥37॥ किसी योद्धा ने नया मजबूत कवच पहना था परंतु हर्षित होने के कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवच के समान जान पड़ने लगा ॥38॥किसी का टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करने में तत्पर उसकी स्त्री निश्चिंततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोप को चला रही थी ॥39॥किसी की स्त्री ने पति के वक्षःस्थल पर सुगंधि का लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्ध की अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करने को ओर मन नहीं किया था-कवच धारण करने का विचार नहीं किया था ॥40 ॥इस प्रकार जो बड़ी कठिनाई से प्रियाओं को समझा-बुझा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियाँ व्याकुलचित्त होती हुई शय्याओं पर पड़ रहीं ॥41 ॥अथानंतर उत्तम कीर्तिरूपी मधुरस के आस्वादन में जिनका मन लग रहा था, जो हाथियों के रथ पर आरूढ़ थे, जिन्होंने शत्रु सेना का शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निकल चुका था, और जो शूरवीरता से सुशोभित थे ऐसे हस्त और प्रहस्त नाम के दो राजा लंका से सर्वप्रथम निकले ॥42-43॥वे दोनों स्वामी से पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय उनका स्वामी से नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अवसर पर दोष भी गुणरूपता को प्राप्त हो जाता है ॥44 ॥मारीच, सिंहजवन, स्वयंभू, शंभु, उत्तम, विशाल सेना से सुशोभित पृथु, चंद्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, वीभत्स इंद्र के समान कांति को धारण करनेवाला वज्राक्ष, गंभीर-नाद, नक्र, वज्रनाद, उग्रनाथ, सुंद, निकुंभ, संध्याक्ष, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, खरनाद, जंबूमाली, शिखीवीर और महाबलवान दुर्घष ये सब सामंत सिंहों से जुते हुए रथों पर सवार हो बाहर निकले ॥45-48॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतांत, विघटोदर, महावज्ररव, चंद्रनख, मृत्यु, सुभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युज्जिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, क्षोभण, धुंधु, उद्धामा, डिंडि, डिंडिम, डंबर, प्रचंड, डमर, चंड, कुंड और हालाहल आदि सामंत, जिन में व्याघ्र जुते थे, जो ऊंचे थे तथा आकाश को देदीप्यमान करने वाले थे ऐसे रथों पर सवार हो बाहर निकले । ये सभी सामंत महा अहंकारी तथा शत्रु नाश की भावना रखनेवाले थे ॥42-52 ॥उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पवाहु, महाद्युति, शंख, प्रशंख, राग, भिन्नांजनप्रभ, पुष्पचूड, महारक्त, घटास्त्र, पुप्पखेचर, अनंगकुसुम, काम, कामावर्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाभ, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामंत, वायु के समान वेगशाली घोड़ों के रथों में सवार हो यथायोग्य अपने-अपने घरों से निकले । इन सबकी सेनाएँ प्रचंड शब्द कर रही थीं ॥53-56 ॥तदनंतर कदंब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक, शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलांग, विद्युदंबुक, ह्लादन, चपल, चोल, चल और चंचल आदि सामंत हाथियों आदि से जुते हुए देदीप्यमान रथों पर आरूढ़ होकर निकले ॥57-58॥गौतमस्वामी कहते हैं कि है श्रेणिक ! नाम ले-लेकर कितने प्रधान पुरुष कहे जावेंगे? उस समय सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥59॥ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रम के धारी, प्रसिद्ध यश से सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणों को धारण करनेवाले थे ॥60॥ युद्ध के लिए उद्यत इन सब कुमारों से घिरे, काम के समान सुंदर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥61 ॥तदनंतर जो विभूति से सूर्य के समान था और रावण को अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर-वीर बुद्धि का धारक सुंदर इंद्रजित, जयंत के समान बाहर निकला ॥62॥ त्रिशूल शस्त्र का धारी कुंभकर्ण, सूर्य के समान देदीप्यमान ज्योतिःप्रभ नामक विशाल विमानपर आरूढ़ होकर निकला ॥63॥ तदनंतर जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध मेरु के शिखर के समान सुशोभित पुष्पक विमान पर आरूढ़ था, इंद्र के समान पराक्रमी था और सूर्य के समान कांति का धारक था ऐसा रावण हाथों में नाना प्रकार के शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकों से आकाश और पृथ्वी के अंतराल को आच्छादित कर निकला ॥64-65॥ तत्पश्चात् रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नाना प्रकार के पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैं से आदि जलथल में उत्पन्न हुए नाना प्रकार के वाहनों पर सवार होकर सामंत लोग बाहर निकले ॥66-67॥ जो भामंडल और सुग्रीव के प्रति ऋद्ध थे तथा रावण के हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥68॥ अथानंतर जो महाभयंकर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाण के रोकने में तत्पर थे तथा जो मंडल बांधकर खड़े हुए थे ऐसे रीछ दक्षिण की ओर दिखाई दिये ॥69॥ जिन्होंने अपने पंखों से गाढ़ अंधकार उत्पन्न कर रखा था, जिनका शब्द अत्यंत विकृत था तथा जो महाविनाश की सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीध आकाश में उड़ रहे थे ॥70॥ इस प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भय की सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाश में चलने वाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥71॥ शूरवीरता के बहुत भारी गर्व से मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्धत राक्षसों के समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्न को जानते थे तो भी युद्ध करने के लिए बराबर नगरी से बाहर निकल रहे थे ॥72॥ गौतम स्वामी कहते हैं

कि जब कर्मों की अनुकूलता का समय आता है तब देने के योग्य समस्त पर्याय की प्राप्ति निश्चय से होती है उसे रोकने के लिए लोक में इंद्र भी समर्थ नहीं है । फिर दूसरे प्राणियों की तो वार्ता ही क्या है ॥73 ॥जिनका चित्त युद्ध में लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, वाहनों पर सवार थे और शस्त्रों की कांति का समूह जिनके हाथ में था अथवा जिनके हाथ शस्त्रों की कांति से सुशोभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निषेध करने वाले इन समस्त अशकुनों की उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमंडल के प्रति बढ़ता जाता है ॥74॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में रावण की सेना लंका से बाहर निकली इस बात का वर्णन करने वाला सत्तावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥57॥

## हस्त-प्रहस्त का वध

अट्ठावनवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर लहराते हुए सागर के समान व्याप्त होती हुई रावण की उस सेना को देख, श्रीराम के कार्य करने में उद्यत परम उदार चेष्टाओं के धारक नल, नील, हनुमान्, जांबव आदि विद्याधर, महागजों से जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियों से युक्त रथों पर सवार हो कटक से निकले ॥1-2 ॥ सम्मान, जयमित्र, चंद्राभ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेंद्र, भानुमंडल, अनुद्धर, दृढ़रथ, प्रीतिकंठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अमृष्ट, निर्विनष्ट, संत्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्वरक, पाप, लोल, पाटनमंडल और संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रों से जुते हुए परम सुंदर ऊंचे रथों पर सवार हो बाहर निकले । ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रों के समूह को धारण कर रहे थे तथा विशाल तेज धारक थे ॥3-7॥ प्रस्तर, हिमवान्, भंग तथा प्रियरूप आदि ये सब हाथियों से जुते उत्तम रथों पर सवार हो युद्ध के लिए निकले ॥8॥ दुष्प्रेक्ष, पूर्णचंद्र, विधि, सागरनिःस्वन, प्रियविग्रह, स्कंद, चंदनपादप, चंद्रांशु, अप्रतीघात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि, क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इंद्रायुध, गतवास और संकटप्रहार आदि, ये सब सामंत सिंहों से जुते रथों पर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥9-11॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपक्षरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, क्षितिवर, अंगद, विकाल, लोलक, कालि, भंग, चंडोमि, जित, तरंग, तिलक, कोल, सुषेण, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भीषण, कोण, विघट, विराधित, मेरु, रणखान, क्षेम, बेलाक्षेपी, महाधर, नक्षत्रलुब्ध, संग्राम, विजय, रथ, नक्षत्रमालक, क्षोद तथा अतिविजय आदि घोड़ों से जुते मनोहर, इच्छानुसार वेग वाले, तथा महासैनिकों के मध्यस्थित रथों पर सवार हो रणांगण में पहुँचे ॥12-17॥ विद्युद्वाह, मरुद्वाहु, सानु, मेधवाहन, रवियान और प्रचंडालि ये सब सामंत भी मेघों के समान नाना प्रकार के वाहनों से आकाश को देदीप्यमान करने वाले उत्तमोत्तम रथों पर सवार हो युद्ध को अभिलाषा से दौड़े । ये सब वायु के समान तीव्र वेग वाले थे ॥18-19॥ जिसे राम की पक्ष थी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमान पर आरूढ़ हुआ ॥20॥ युद्धावर्त, वसंत, कांत, कौमुदि-नंदन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचंद्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ, जिनसंज्ञ तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करने के लिए बाहर निकले । ये सब नाना वर्णों वाले विमानों की अग्रभूमि में स्थित थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कवचों से कसे हुए थे ॥ 21-23 ॥ पद्मनाभ□ राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और भामंडल ये सब हंसों के विमानों में बैठे हुए आकाश के बीच में अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥ 24 ॥ जो महामेघ के समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ थे, ऐसे विद्याधर राजा लंका की ओर जाने के लिए तत्पर हुए ॥25॥ प्रलयकालीन घनघटा की गर्जना के समान जिनके भयंकर शत्रु थे, तथा जो करोड़ों शंखों के शब्द से मिले हुए थे ऐसे तुरही वादित्रों के शब्द उत्पन्न होने लगे ॥26॥ भंभा, भेरी, मृदंग, लंपाक, धुंधु, मंडुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुंकार, दुंदुकाणक, झर्झर, हेतुगंजा, काहल और दर्दुर आदि बाजे ताड़ित होकर कानों को घुमाने वाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥27-28॥ बाँसों के शब्द, अट्टहास की ध्वनि, तारा तथा हलहला के शब्द, सिंहों और हाथियों के शब्द, भैंसाओं और रथों के शब्द, ऊंटों के विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियों के शब्द उठने लगे । इन सबके शब्दों ने शेष समस्त संसार के शब्दों को आच्छादित कर दिया ॥29-30॥ जब उन दोनों विशाल सेनाओं का परस्पर में समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवन के प्रति संशय में पड़ गये ॥ 31 ॥ पृथिवी अत्यंत क्षोभ को प्राप्त हुई, पर्वत हिलने लगे और क्षुभित हुआ लवण समुद्र शोषण को प्राप्त होने लगा ॥32॥ अपने-अपने वर्ग से निकलकर बाहर आये हुए, असहनशील, अहंकारी योद्धाओं से व्याप्त हुई दोनों सेनाएँ अत्यंत भयंकर दिखने लगीं ॥33॥ कुछ ही समय

बाद दोनों सेनाओं में चक्र, क्रकच, कुंत, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और भिंडिमाल आदि शस्त्रों से भयंकर युद्ध होने लगा ॥34॥ जो एक दूसरे को बुला रहे थे, जो कवचों से युक्त थे, जिनकी भुजाएँ शस्त्रों से देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्र में प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूरवीर योद्धा उछल रहे थे ॥35॥ ये योद्धा अत्यंत वेग से उछलकर पहले तो शत्रुओं के दल में जा चुके अनंतर शस्त्र चलाने के योग्य मार्ग प्राप्त करने की इच्छा से पुनः कुछ पीछे हट गये ॥36॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्ष के योद्धाओं को उस तरह पराजित कर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियों को पराजित कर देते हैं ॥37॥ तदनंतर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओं के द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओं ने राक्षस योद्धाओं को मारना शुरू किया ॥38॥ तत्पश्चात् रावण की सेना को सब ओर से नष्ट होती देख स्वामी के प्रेम से खिचे तथा बड़ी भारी सेना से घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामंत उठकर आगे आये । ये हाथी के चिह्न से सुशोभित ध्वजा से पृथक् ही जान पड़ते थे, हाथियों के रथ पर आरूढ़ थे, डरो मत, डरो मत यह शब्द कर रहे थे, अत्यंत उत्कृष्ट शरीर के धारक थे और महावेगशाली थे । इन्होंने आते ही वानरो की सेना में तीव्र मार-काट मचा दी ॥39-41॥ यह देख जो परम प्रताप को धारण कर रहे थे, सूकर, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीर धारी शूरवीरता और गर्व के समान जान पड़ते थे, परमदीप्ति के धारक थे, अत्यंत क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवंशी नल और नील युद्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥42-43॥

तदनंतर जिसमें क्रम-क्रम से साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छा का शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओं से व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकार के शस्त्रों से हो चुका तब नल ने उछलकर हस्त को रथ रहित तथा विह्वल कर दिया और नील ने प्रहस्त को निर्जीव बना दिया ॥44-45॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनंतर हस्त और प्रहस्त को पृथ्वी पर पडा देख रावण की सेना, नायक से रहित होने के कारण विमुख हो गयी भाग खड़ी हुई ॥46॥ सो ठीक ही है क्योंकि जब तक यह मनुष्य, स्वामी के ऊँचे उठे मुख को देखता रहता है तभी तक निश्चय को धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्ठा बिखर गया है ऐसी गाड़ी के पहिये के समान बिखर जाती है ॥47॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्यों का कार्य किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जाने पर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥ 48॥ प्रधान के साथ संबंध रखने वाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फल को प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहु के द्वारा आक्रांत सूर्य की किरणों का समूह मंद होता हुआ विनाश को ही प्राप्त होता है ॥49॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण में हस्त-प्रहस्त के वध का कथन करनेवाला अट्ठावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥58॥

## हस्त-प्रहस्त और नल-नील के पूर्वभव

उनसठवां पर्व

कथा :

अथानंतर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा कि हे भगवन ! विद्याओं की विधि में निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामंत पहले किसी के द्वारा नहीं जीते जा सके वे बड़ा आश्चर्य है कि नल और नील के द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥1-2॥ तदनंतर श्रुत रहस्य के ज्ञाता गौतम गणधर ने कहा कि हे राजन् ! कर्मों से प्रेरित प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥ 3॥ पूर्व कर्म के प्रभाव से पापी जीवों की यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥4॥ पहले जिसने विपत्ति में पड़े हुए जिस मनुष्य को उस विपत्ति से छुड़ाया है वह उसे भी बंधन तथा व्यसन-संकट आदि के समय छुड़ाता है ॥5॥ इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगर में लौकिक मर्यादा को पालने वाले कुछ दरिद्र कुटुंबी पास-पास में रहते थे ॥6॥ उनमें इंधक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माता के उदर से उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियों के कारण क्लेश को प्राप्त रहते थे, जाति के ब्राह्मण थे, हल चलाने का काम करते थे, स्वभाव से दयालु थे, साधुओं की निंदा से विमुख थे, तथा अपने एक जैन-मित्र की संगति से आहारदान आदि कार्यों में तत्पर रहते थे ॥7-8॥ उन दोनों के पड़ोस में ही एक दूसरा दरिद्र कुटुंबियों का युगल रहता था जो स्वभाव से निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियों से मोहित रहता था ॥9॥ एक बार राजा की ओर से जो दान बँटता था उसमें कलह हो गयी जिससे अत्यंत क्रूर परिणामों के धारक उन दरिद्र कुटुंबियों के द्वारा इंधक और पल्लवक मारे गये ॥10॥ मुनि दान के प्रभाव से दोनों,

हरिक्षेत्र में उत्तम भोगों को भोगने वाले आर्य हुए । वहाँ दो पल्य को उनकी आयु थी । उसके पूर्ण होने पर दोनों ही देवलोक में उत्पन्न हुए ॥11॥दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुंबी थे वे अधर्मरूप परिणाम से मरकर दुःखों से परिपूर्ण कालंजर नामक वन में खरगोश हुए ॥12॥ सो ठीक ही है क्योंकि मिथ्यादर्शन से युक्त तथा साधुओं की निंदा करने वाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥13 ॥तदनंतर तिर्यंचों की नाना योनियों में चिरकाल तक भ्रमण कर दोनों बड़ी कठिनता से मनुष्य पर्याय प्राप्त कर तापस हुए ॥14॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील-डौल के विशाल थे, फल तथा पत्ते आदि का भोजन करते थे और तीव्र तपस्या से दुर्बल हो रहे थे । मिथ्याज्ञान के समय ही दोनों की मृत्यु हुई ॥15॥ दोनों ही मरकर विजयार्ध पर्वत के दक्षिण में वह्निकुमार विद्याधर की अश्विनी नामा स्त्री की कुक्षि से दो पुत्र हुए ॥16 ॥ये दोनों ही शीघ्रता से कार्य करनेवाले असुरों के समान आकार के धारक थे, जगत् में अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावण के हस्त, प्रहस्त नामक मंत्री हुए थे ॥17॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इंधक और पल्लवक स्वर्ग से च्युत होकर उत्तम मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए । तदनंतर गृहस्थाश्रम में ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥18॥ फिर पुण्य का क्षय होने से स्वर्ग से च्युत हो किष्कु नामक नगर में महाबल के धारक नल और नोल हुए ॥19 ॥हस्त और प्रहस्त ने भवांतर में जो नल और नील को मारा था इसका फल लौटकर इस भव में उन्हीं को प्राप्त हुआ **अर्थ**ात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥20॥ पूर्वभव में जो जिसे मारता है वह इस भव में उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभव में जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भव में उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभव में जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भव में उसके प्रति उदासीन रहता है ॥21 ॥जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे निःसंदेह परलोक संबंधी शत्रु जानना चाहिए ॥22 ॥और जिसे देखकर नेत्रों के साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे निःसंदेह पूर्वभव का मित्र जानना चाहिए ॥23 ॥समुद्र के लहराते जल में जर्जर नाव वाले मनुष्य को जो मगर, मच्छ आदि बाधा पहुंचाते हैं तथा स्थल में म्लेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्म का फल है ॥24॥ पर्वतों के समान मदोन्मत्त हाथियों, नाना प्रकार के शस्त्र धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेग के धारक घोड़ों एवं कवच धारण करने वाले अहंकारी भृत्यों के साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्य की रक्षा नहीं होती ॥25-26 ॥इसके विपरीत पुण्यात्मा मनुष्य जहाँ से हटता है, जहाँ से बाहर निकलता है अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थ में न देव रक्षा करते हैं और न भाई-बंधु ही ॥27॥देखा जाता है कि जो भाई-बंधुओं के मध्य में स्थित है, पिता जिसका आलिंगन कर रहा है, जो धनी और अत्यंत शूरवीर है वह भी मृत्यु को प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होता है ॥28॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शन के साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्य की रक्षा करते हैं ॥29 ॥जिसने पूर्व पर्याय में दया, दान आदि के द्वारा धर्म का उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवन की इच्छा करता है सो उसकी वह इच्छा अत्यंत निष्फल है ॥30॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि तप के बिना मनुष्यों के कर्म नष्ट नहीं होते यह जानकर विज्ञ पुरुषों को शत्रुओं पर भी क्षमा करनी चाहिए ॥31 ॥यह उत्तम हृदय का धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है । लोगों को ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण है ॥32 ॥ऐसा जानकर जिन्होंने सुख-दुःख के बाह्य निमित्तों को गौण कर खोटी चेष्टाओं का परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानों को निमित्त कारणों में तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिए ॥33 ॥गाढ़ अंधकार के द्वारा आच्छादित मार्ग जब सूर्य के द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वी के गड्ढों में गिरता है; न पत्थर पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥34॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में हस्त-प्रहस्त और नल-नील के पूर्वभवों का वर्णन करने वाला उनसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥59॥

## राम-लक्ष्मण को विद्याओं की प्राप्ति

साठवां पर्व

कथा :

अथानंतर हस्त और प्रहस्त वीरों को मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोध से भरे बहुत से योद्धा युद्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥1॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं मारीच, सिंहजघन, स्वयंभू, शंभु, अर्जित, शुक, सारण, चंद्र, अर्क, जगद्वीभत्स, निःस्वन, ज्वर, उग्र, नक्र, मकर, वज्राख्य, उद्याम, निष्ठुर और गंभीर निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारण कर युद्ध के लिए तैयार थे, वेग से सहित थे, सिंहों और

परिपुष्ट घोड़ों से जुते हुए रथों पर आरूढ़ थे तथा वानर वंशियों की सेना को क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥2-4॥ उन राक्षसवंशी उत्तमोत्तम राजाओं को आते देख वानरवंश के प्रधान राजा युद्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥5॥इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं मदन, अंकुर, संताप, प्रस्थित, आक्रोश, नंदन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिंकर आदि ॥6॥ आकाश को अत्यंत जटिल करने वाले नाना प्रकार के शस्त्रों से दोनों पक्ष के लोगों का एक दूसरे को ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ ॥7॥

उस समय युद्ध में संताप, मारीच को चाह रहा था; प्रथित, सिंहजघन को; विघ्न, उद्याम को; आक्रोश, सारण को; पाप, शुक को और नंदन, ज्वर को; देख रहा था । इस प्रकार स्पर्धा से भरे हुए इन सब योद्धाओं का विकट युद्ध हुआ ॥8-9॥ तदनंतर क्लेश से भरे हुए मारीच ने संताप को गिरा दिया । नंदन ने वक्षःस्थल में भाले का प्रहार कर बड़े कष्ट से ज्वर को मार डाला ॥10 ॥सिंह जघन ने प्रथित को और उद्याम ने विघ्न को मार गिराया । तदनंतर सूर्य अस्त हुआ और उस दिन के युद्ध का उपसंहार हुआ॥11॥अपने-अपने पति को मरा सुन स्त्रियाँ शोकरूपी सागर में निमग्न हुई और उस रात्रि को अनंत-बहुत भारी मानने लगीं ॥12॥

तदनंतर दूसरे दिन तीव्र क्रोध से भरे वज्राख्य, क्षपितारि, मृगेंद्रदमन, विधि, शंभु, स्वयंभू, चंद्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्ष के और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्ष के योद्धा युद्ध करने के लिए उद्यत हुए ॥13-14॥ जंमांतरों में संचित क्रोध कर्म के तीव्र उदय से वे अपने जीवन से निःस्पृह हो भयंकर युद्ध करने में जुट पड़े ॥15॥ महाक्रोध से भरे संक्रोध ने क्षपितारि को ललकारा, भुजाओं से सुशोभित बलि ने सिंहदमन को बुलाया और वितापि ने विधि को पुकारा । इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होने पर जिनके नामों का पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर-मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों॥16-17॥ जिस पर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूल ने वज्रोदर को मारा । दीर्घकाल तक युद्ध करने वाले संक्रोध को क्षपितारि ने मार डाला ॥18॥ शंभु ने विशालद्युति को मार गिराया, स्वयंभू ने यष्टि की चोट से विजय को मृत्यु प्राप्त करा दी और विधि ने गदा के प्रहार से वितापि को बड़ी कठिनाई से मारा था । इस प्रकार उस समय सामंतों के द्वारा सैकड़ों सामंत मारे गये थे ॥19-20॥ तदनंतर अपनी सेना को नष्ट होती देख परम क्रोध से भरा सुग्रीव जब तक कवच धारण करने के लिए उद्यत हुआ तब तक अपनी सेना से पृथिवी को व्याप्त करने वाला हनुमान् हाथियों से जुते स्वर्णमय रथ पर सवार हो युद्ध करने के लिए उठ खड़ा हुआ ॥21-22॥जिस प्रकार सिंह को देखकर गायों का समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगता है, उसी प्रकार हनुमान् को देख राक्षस-सामंतों का समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगा ॥23॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनुमान् आज ही अनेक स्त्रियों को विधवाएँ कर देगा ॥24॥ तदनंतर युद्ध का अभिलाषी राक्षसों का शिरोमणि, माली हनुमान के आगे आया सो हनुमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुंचा ॥25 ॥कानों तक खींच-खींचकर चढ़ाये हुए बाणों से उन दोनों का ऐसा महायुद्ध हुआ कि जिसमें क्रम-क्रम से ठीक-ठीक शब्द का उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धतता से युक्त था ॥26 ॥योग्य युद्ध करने में तत्पर सचिव सचिवों के साथ, रथी रथियों के साथ और घुड़सवार घुड़सवारों के साथ जूझ पड़े ॥27 ॥हनुमान की शक्ति से माली को नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर उसके सामने आया ॥28 ॥चिरकाल तक युद्ध करने के बाद हनुमान ने जब उसे रथरहित कर दिया तब वह दूसरे रथ पर सवार हो हनुमान् की ओर दौड़ा ॥29 ॥परम अभ्युदय के धारक हनुमान ने उसे पुनः रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायु के समान वेगशाली अपना रथ चढ़ा दिया॥30॥ जिससे रथ को खींचने वाले हाथियों के पैरों से चूर-चूर होकर उसने रणांगण में शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हुँकार से भी रहित हो गया ॥31॥

तदनंतर रावण का जंबूमाली नाम का प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्ष के लोगों की मृत्यु से कुपित हो हनुमान के सामने खड़ा हुआ ॥32॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचंद्र सदृश बाण के द्वारा हनुमान् की वानर चिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥33॥ तदनंतर ध्वजा के छेद से हर्षित हुए हनुमान् ने उसके धनुष और कवच को जीर्ण तृण के समान जर्जरता को प्राप्त करा दी **अर्थ**ात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥34॥तदनंतर मंदोदरी के पुत्र जंबू माली ने तत्काल ही दूसरा मजबूत कवच धारण कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा हनुमान् के वक्षःस्थल पर प्रहार किया ॥35॥सो पहाड़ के समान अत्यंत धीर बुद्धि को धारण करने वाले हनुमान् ने उन बाणों से ऐसे सुख का अनुभव किया मानो बाल नीलकमल के मुरझाये हुए नालों के स्पर्श से उत्पन्न हुए सुख का ही अनुभव कर रहा हो ॥36॥तदनंतर हनुमान् ने षष्ठी के चंद्रमा के समान कुटिल बाण के द्वारा जंबूमाली के रथ में जुते हुए महाउद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जंबूमाली के रथ में जुते सौ सिंह छुट गये ॥37॥जिनके मुख दाढ़ों से भयंकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहों ने उछलकर अपनी समस्त सेना को विह्वल कर दिया ॥38॥ उस सेनारूपी सागर के मध्य में वे सिंह बड़ी-बड़ी तरंगों के समान जान पड़ते थे अथवा

अतिशय बलवान क्रूर मगर-मच्छों के समान दिखाई देते थे॥39॥चमकते हुए विद्युद्दंड के समूह का आकार धारण करने वाले उन सिंहों ने सेनारूपी मेघों के समूह को अत्यंत क्षोभ प्राप्त कराया था ॥40॥ युद्धरूपी संसारचक्र के बीच में सैनिकरूपी प्राणी सिंहरूपी कर्मों के द्वारा सब ओर से अत्यंत दु:खी किये गये थे ॥41॥ घोड़े, मदोन्मत्त हाथी और रथों के सवार सभी लोग विह्वल हो युद्ध संबंधी कार्य छोड़ दशों दिशाओं में भागने लगे ॥42॥तदनंतर यथायोग्य रीति से सब सामंतों के भाग जाने पर हनुमान् ने कुछ दूर सामने स्थित रावण को देखा ॥43।।

तदनंतर वह अत्यंत देदीप्यमान सिंहों से युक्त रथ पर सवार हो बाण खींचकर रावण की ओर दौड़ा ॥44॥ अपनी सेना को सिंहों के द्वारा त्रासित तथा यमराज के समान दुर्धर हनुमान् को पास आया देख, कवच आदि धारण करने में तत्पर रावण ने ज्योंही युद्ध का विचार किया त्यों ही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ ॥45-46 ॥इधर जब तक महोदर और हनुमान् का युद्ध होता है तब तक वे छूटे हुए सिंह धोरे-धीरे बुद्धिमान् स्वामियों के द्वारा पकड़ लिये गये ॥47॥ सिंहों के वशीभूत होनेपर जिनका तीन क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवनपुत्र पर टूट पड़े ॥48॥तथापि अतिशय कुशल हनुमान् ने, बाण समूह को छोड़ने वाले उन समस्त राक्षसों को बाणरूपी मंत्रियों के द्वारा रोक लिया ॥49॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्यों के द्वारा कहे हुए दुर्वचन संयमी मनुष्य के कंपन उत्पन्न करनेवाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसों के द्वारा छोड़े हुए बाणों के समूह हनुमान् के कंपन उत्पन्न करनेवाले नहीं हुए **अर्थ**ात् धीरवीर हनुमान्, राक्षसों के बाणों से कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥50॥

तदनंतर हनुमान् को बहुत से राक्षसों के द्वारा घिरा देख वानर पक्ष के ये योद्धा युद्ध के लिए उद्यत हुए । ॥51॥ सुषेण, नल, नील, प्रीतिकर, विराधित, संत्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जांबूनद के पुत्र आदि । ये सब सिंह, हाथी और घोड़ों से जुते हुए रथों पर सवार हो बड़ी कठिनाई से रावण की सेना को रोकने के लिए उद्यत हुए ॥52-53 ॥जिस प्रकार किसी अत्यंत तुच्छ पुरुष के द्वारा धारण किया हुआ वत परिषहों के द्वारा ध्वस्त नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब ओर से आते हुए वानर पक्ष के योद्धाओं से रावण की सेना ध्वस्त हो गयी ॥54॥ अपने पक्ष के लोगों को व्याकुल देख रावण युद्ध करने का अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महाबलवान् भानुकर्ण (कुंभकर्ण) युद्ध करने के लिए उठा ॥55॥ रण के तेज से देदीप्यमान वीर भानुकर्ण को उठा देख, ये लोग सुषेण आदि को सहारा देने के लिए पहुँचे ॥56॥ चंद्ररश्मि, जयस्कंद, चंद्राभ, रतिवर्धन, अंग, अंगद, सम्मेद, कुमुद, चंद्रमंडल, बलि, चंडतरंग,सार, रत्नजटी, जय, बेलाक्षेपी, वसंत, तथा कोलाहल आदि ॥57-58 ॥ये सब राम पक्ष के अत्यंत बलवान् योद्धा, ऐसा महायुद्ध करने लगे कि जो शत्रु-सामंतों को अत्यंत दुःसह था ॥59 ॥तदनंतर रण को खाज से युक्त उन सब वीरों को क्रोध से भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्या के द्वारा सुला दिया ॥60॥ तत्पश्चात् निद्रा से जिनके नेत्र घूम रहे थे ऐसे शस्त्रों को धारण करनेवाले उन वीरों के हाथ सब ओर से शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥61॥ निद्रा के कारण जिनका युद्ध बंद हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुग्रीव ने शीघ्र ही प्रतिबोधिनी नाम की विद्या छोड़ी ॥62॥ तदनंतर उस विद्या के प्रभाव से प्रतिबुद्ध होने के कारण जिनका तेज अत्यंत बढ़ गया था ऐसे हनुमान् आदि वीर अत्यंत भयंकर युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हुए ॥63 ॥वानरवंशियों की वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, खड्ग तथा वाहनों से व्याप्त थी, उसकी युद्ध की लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करने वाली थी, और क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के समान जान पड़ती थी । इसके विपरीत रावण की सेना की दशा अत्यंत अशोभनीय हो रही थी सो वानरवंशियों की सेना तथा अपनी सेना की दशा देख रावण युद्ध के लिए उत्साही हुआ सो महादीप्ति का धारक इंद्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥64-66 ॥हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्ध के लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होनेपर मेरा जन्म निष्फलता को प्राप्त होता है ॥67 ॥अरे! जो तृण नख के द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशु का प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिंत रहिए आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥68 ॥इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नता से भरा इंद्रजित् पर्वत के समान त्रैलोक्यकंटक नामक अपने परम प्रिय गजेंद्र पर सवार होकर युद्ध के लिए उद्यत हुआ । उस समय जिसने आदररूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इंद्रजित् महामंत्रियों से सहित था, संपदा से इंद्र के समान जान पड़ता था तथा अतिशय धीर-वीर था ॥69-70 ॥उस महाबलवान् मानी इंद्रजित् ने उठते ही नाना शस्त्रों से भरी वानरों की सेना क्षणमात्र में ग्रस ली दबा दी ॥71 ॥सुग्रीव को सेना में ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इंद्रजित ने कान तक खिचे हुए बाणों से घायल नहीं किया हो॥72 ॥उस समय लोगों के मुख से इस प्रकार के वचन निकल रहे थे कि-यह इंद्रजित् नहीं है ? किंतु इंद्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥73॥

तदनंतर अपनी सेना को इंद्रजित् के द्वारा दबी देख स्वयं सुग्रीव और भामंडल युद्ध के लिए उठे ॥74॥तत्पश्चात् उनके योद्धाओं में ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्पर के बुलाने के शब्द से व्याप्त था, शस्त्रों के द्वारा जिसमें आकाश अंधकारयुक्त हो रहा था और जिसमें प्राणों को अपेक्षा नहीं थी ॥75 ॥घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथियों से, रथ रथों से और अपने स्वामी के अनुराग के कारण महोत्साह से युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकों से भिड़ गये॥76।।

अथानंतर क्रोध से भरा इंद्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीव को लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगन स्पर्शी स्वर से बोला॥77॥ कि अरे ! पशुतुल्य नीच वानर ! पापी ! रावण की आज्ञा छोड़कर अब तू मेरे कुपित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥78॥ आज मैं इस नीलकमल के समान श्याम तलवार से तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम-लक्ष्मण तेरी रक्षा करें ॥79॥ तदनंतर सुग्रीव ने कहा कि इन व्यर्थ की गर्जनाओं से क्या लाभ है ? देख तेरा मानरूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥80॥ इतना कहते ही क्रोध के भार को धारण करने वाला इंद्रजित् अद्भुत रूप से धनुष का आस्फालन करता हुआ सुग्रीव के समीप पहुँचा॥81॥ तत्पश्चात् इधर चंद्रमंडल के समान छत्र की छाया से सेवित इंद्रजित् ने सुग्रीव को लक्ष्य कर बाणों का समूह छोड़ा ॥82 ॥उधर अपनी रक्षा करने में अत्यंत चतुर सुग्रीव ने भी कान तक खिचे तथा शब्द से युक्त बाण इंद्रजित् की ओर छोड़े॥83॥ उन विस्तृत बाणों के समूह से निरंतर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥84॥उधर से वीर मेघवाहन ने भामंडल को ललकारा और इधर से राजा विराधित ने वज्रनक्र को पुकारा॥ 85॥ गौतम स्वामी श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! राजा विराधित ने वज्रनक्र राजा की छाती पर देदीप्यमान चक्र की चोट देकर उसे गिरा दिया ॥86॥ इसके बदले वज्रनक्र ने भी संभलकर विराधित की छाती पर चक्र का प्रहार किया सो ठीक ही है क्योंकि बदला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है॥87॥ उस समय चक्र और कवच की टक्कर से जो अग्नि के कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूह से आकाश इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओं के तिलगों के समूह से ही पीला हो रहा हो ॥88॥ युद्ध-निपुण लंकानाथ के पुत्र इंद्रजित् ने सुग्रीव को निःशस्त्र कर दिया फिर भी वह संग्राम से पीछे नहीं हटा ॥89 ॥प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीव ने भी वज्र के द्वारा इंद्रजित् के सर्व शस्त्र दूर कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवों के किसी कार्य में अंतर नहीं पड़ता ॥90 । तदनंतर क्रोध से भरा इंद्रजित् शीघ्र ही हाथा से उतरकर आकाश को पोला करने वाले सिंहों के रथ पर हुआ ॥91 ॥तत्पश्चात् जिसको बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रों के चलाने में निपुण था और जो युद्ध में मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इंद्रजित् मायामय युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ ॥92॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूह के समान गर्जना करनेवाला वारुण अस्त्र छोड़ कर सुग्रीव को दिशाओं को प्रकाश से रहित कर दिया ॥93॥ इसके बदले सुग्रीव ने भी छत्र तथा ध्वजा आदि को छेदने वाला पवन बाण चलाया जिससे इंद्रजित् का वारुण अस्त्र रुई के समूह के समान कहीं चला गया ॥94॥

उधर वीर मेघवाहन ने भी आग्नेय बाण चलाकर राजा भामंडल के धनुष को ईंधन बना दिया **अर्थ**ात् जला दिया॥95॥ उस धनुष के तिलगों के संबंध से अन्य धनुष धारियों के धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे सब सेना ने बड़े भय से देखा ॥26॥ उन धनुषों ने अनेक योद्धाओं के प्राण ग्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो ॥97 ॥तदनंतर अपने चक्र-सेना को रक्षा करते हुए भामंडल ने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़ कर आग्नेय अस्त्र का निराकरण कर दिया ॥98॥ तत्पश्चात् मंदोदरी के पुत्र मेघवाहन ने उस प्रकार के महापराक्रमी एवं आकुलता से रहित भामंडल को रथरहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला ॥99॥यही नहीं प्रयोग करने में कुशल मेघवाहन ने सुंदर तामस बाण भी चलाया जिससे भामंडल की समस्त सेना अंधकार से युक्त हो गयो ॥100 ।। वह उस समय अंधकार के कारण न अपने हाथी तथा पृथिवी को जान पाता था, न शत्रु संबंधी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था । गाढ़ अंधकार से आच्छादित हुआ वह मानो मूर्च्छा को ही प्राप्त हो रहा था ॥101॥ जब भामंडल उस तामस बाण से अंधा हो रहा था तब मेघवाहन ने उसे विषरूपी धूम का समूह छोड़ने वाले नागबाणों से वेष्टित कर लिया ॥102 ॥उठते हुए फनों से सुशोभित उन नागों से जिसका समस्त शरीर व्याप्त था और इसलिए जो चंदन वृक्ष के समान जान पड़ता था ऐसा भामंडल पृथिवी पर गिर पड़ा ॥103 ॥इसी प्रकार तामस और नागपाश इन दो अस्त्रों को चलाने वाले इंद्रजित ने भी सुग्रीव को दशा की अर्थात् उसे तामसास्त्र से अंधा कर नागपाश से बाँध लिया ॥104॥

तदनंतर विद्यामय शस्त्रों से युद्ध करने में कुशल विभीषण ने हाथ जोड़ मस्तक से लगा से कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो ये दिशाएँ इंद्रजित् के द्वारा छोड़े हुए बाणों से आच्छादित हो रही हैं ॥105-106॥ उत्पातकारी नागों के समान

आभा वाले, अत्यंत दुःखदायी उसके निरंतर बाणों से आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है॥107॥मंदोदरी के पुत्रों ने सुग्रीव और भामंडल को अस्त्र रहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग बाणों से उन्हें बाँधकर पृथिवी पर गिरा दिया है ॥108॥हे देव ! अतिशय चतुर भामंडल और अनेक विद्याधरों के राजा वीर सुग्रीव के पराजित होने पर हे राघव ! समझ लीजिए कि हम लोगों की सामूहिक मृत्यु निकटवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्ष के प्रमुख नायक हैं ॥109-110॥इधर देखो, यह विद्याधरों की सेनानायक से रहित होने के कारण दशों दिशाओं में भागने के लिए उद्यत हो रही है ॥111 ॥उधर देखो, कुंभकर्ण ने महायुद्ध में हनुमान् को जीतकर अपने हाथों से उसे कैद कर रखा है ॥112 ॥जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कवच बाणों से जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनुमान् बलात् कैद किया गया है ॥113॥ रणविशारद रावण का पुत्र, जब तक पृथिवी पर पड़े हुए सुग्रीव और भामंडल के समीप शीघ्रता से नहीं पहुँचता है तब तक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनों को मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित इस विद्याधर सेना को आश्रय दो ॥ 114-115॥इस तरह जब तक विभीषण राम और लक्ष्मण से कहता है तब तक सुतारा के पुत्र अंगद ने छिपे-छिपे जाकर कुंभकर्ण का अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जा से व्याकुल हो वस्त्र के सँभालने में लग गया ॥116-117॥ जब तक कुंभकर्ण वस्त्र के संभालने में लगता है तब तक हनुमान् उसके भुजापाश के मध्य से निकल भागा ॥118॥ जिस प्रकार नया बंधा पक्षी पिंजडे के मध्य से निकलने पर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनुमान भी कुंभकर्ण के भुज बंधन से निकलने पर चकित तथा उन तेज से युक्त हो गया ॥119 ॥ तदनंतर प्रसन्नता और संतोष से युक्त वीर हनुमान् और अंगद विमान के अग्रभाग पर बैठ देवों के समान सुशोभित होने लगे ॥120 ॥उधर अंगद के भाई अंग और चंद्रोदर के पुत्र विराधित के साथ लक्ष्मण, विद्याधरों की सेना को धैर्य बंधाने के लिए जा डटे ॥121॥ अब विभीषण, मंदोदरी के पुत्र इंद्रजित् के सामने गया सो वह काका को देख इस चिंता को प्राप्त हुआ ॥122 ॥कि यदि न्याय से देखा जाये तो पिता में और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सम्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥123 ॥ये सुग्रीव और विभीषण नागपाश से बँधे हैं सो निःसंदेह मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँ से चला जाना ही उचित है ॥124 ॥ऐसा विचारकर कृतकृत्यता के अहंकार से भरे इंद्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमि से बाहर निकल गये ॥125॥उन दोनों के अंतर्हित हो जाने पर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यंत चंचल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथ से उतरकर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामंडल निश्चेष्ट पड़े हुए थे । वहाँ जाकर उसने नागपाश से निर्मित दोनों की चिंतनीय दशा देखी ॥126-127॥

तदनंतर बुद्धिमान् लक्ष्मण ने राम से कहा कि हे नाथ ! सुनिए, जहाँ वे महाविद्याधरों के स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओं से सहित और महाशक्ति से संपन्न ये भामंडल और सुग्रीव भी रावण के पुत्रों द्वारा अस्त्ररहित अवस्था को प्राप्त हो नागपाश से बाँध लिये गये हैं वहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है? ॥128-130॥ तब पुण्योदय से स्मरण कर राम ने लक्ष्मण से कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियों का उपसर्ग दूर करने पर हम लोगों को जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥131 ॥ उसी समय राम के स्मरण मात्र से सुख से बैठे हुए महालोचन नामक गरुड़ेंद्र का सिंहासन सहसा कंपायमान हुआ ॥132॥ तदनंतर अवधिज्ञानरूपी नेत्र के द्वारा सब समाचार जानकर गरुड़ेंद्र ने शीघ्र ही दो विद्याओं के साथ अपना चिंतावेग नामक देव भेजा ॥133 ॥वहाँ जाकर जिसने आदर के साथ कुशल संदेश सुनाया था ऐसे उस देव ने राम-लक्ष्मण के लिए परिवार से सहित दो प्रशस्त विद्याएं दीं ॥134॥ राम के लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मण के लिए दिकसमूह को देदीप्यमान करने वाली गरुड़वाहिनी विद्या दी ॥135 ॥धीरवीर राम-लक्ष्मण ने, दोनों विद्याएँ प्राप्त कर चिंतागति देव का बड़ा सम्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनंतर जिनेंद्रदेव को उत्तम पूजा की ॥136 ॥उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर रहने वाले राम-लक्ष्मण ने योग्य अवसर पर प्राप्त हुए गरुड़ेंद्र के उस उत्तम प्रसाद को बड़े हर्ष से स्तुति की प्रशंसा की ॥137॥ उत्तम शोभा को धारण करने वाले राम-लक्ष्मण ने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनात देदीप्यमान शस्त्र सामने खड़े देखे **अर्थ**ात् उस देव ने वे सब शस्त्र उन्हें दिये ॥138॥

सुंदर चमरों से सुशोभित चंद्रमा और सूर्य के समान छत्र तथा अपनी कांति से आच्छादित अनेक रत्न भी उस देव ने प्रदान किये ॥139॥ विद्युद्वक्त्र नामक गदा लक्ष्मण को प्राप्त हुई और दैत्यों को भय उत्पन्न करने वाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र राम को प्राप्त हुए ॥140॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मण के साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमा को प्राप्त कर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ अपने स्थान

को चला गया है ॥141॥
गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! जो योग्य समय पर प्रशंसनीय एवं अनुपम फल की प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्म का ही फल है ऐसा धीरवीर मनुष्यों को जानना चाहिए । धर्म से वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्ष से युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूर से ही छट जाते हैं और वे महाशक्ति से संपन्न हो स्वपर का कल्याण करने में समर्थ होते हैं ॥142 ॥ अथवा मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होनेवाली संपदाओं की बात दूर रहे, स्वर्ग संबंधी संपदाएँ भी इसे इच्छा से भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती हैं । इसलिए सुख को इच्छा रखनेवाले हे भव्यजनो ! निरंतर पुण्य करो जिससे सूर्य के समान कांति के धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओं के संयोग को प्राप्त हो सको ॥143॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में राम-लक्ष्मण को विद्याओं की प्राप्ति का वर्णन करने वाला साठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥60॥

## सुग्रीव और भामंडल का नागपाश दूर होना

इकसठवां पर्व
कथा :
अथानंतर इसी बीच में जिनके शरीर दिव्य कवचों से आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्न के धारक थे, तेजोमंडल के मध्य में गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड़वाहन पर आरूढ़ थे अत्यंत सुंदर थे सेनारूपी सागर के मध्य में स्थित थे सिंह तथा गरुड़चिह्न से चिह्नित पताकाओं से युक्त थे, पर-पक्ष का क्षय करने के लिए उद्यत थे और उत्कट बल के धारक थे, ऐसे परम महिमा संपन्न राम और लक्ष्मण विभीषण के साथ रणभूमि के मध्य में आये ॥1-3॥ जिन्होंने दिव्य छत्र के द्वारा सूर्य की किरणें दूर हटा दी थीं तथा जो मित्रों के साथ स्नेह करने वाले थे ऐसे शीघ्रता से भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥4॥ उस समय लक्ष्मण हनुमान् आदि प्रमुख वानरवंशी वीरों से घिरे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देव सदृशरूप को धारण कर रहे थे ॥5॥ लक्ष्मण के आगे प्रस्थान करने पर आश्चर्यजनक तेज के धारक विभीषण ने देखा कि यह संसार एक साथ उदित हुए बारह सूर्यों से ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥6॥ लक्ष्मण के आते ही वह उस प्रकार का सघन तामस अस्त्र गरुड़ के तेज से न जाने कहाँ चला गया ॥7॥ लवणसमुद्र के जल को क्षोभित करने वाली गरुड़ के पंखों की वायु से सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधु के द्वारा खोटे भाव नष्ट हो जाते हैं॥8॥गरुड़ के पंखों से छोड़ी हुई किरणों के प्रकाश से युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्वर्ण रस से ही बना हो ॥9॥
तदनंतर जिनके नागपाश के बंधन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरों के अधिपति सुग्रीव और भामंडल धैर्य को प्राप्त हुए ॥10॥ जो सुख से निद्रा प्राप्त कर रत्नमयी कंबलों से आवृत थे, सर्परूपी लताओं की रेखाओं से जिनके शरीर अलंकृत थे **अर्थ**ात् जिनके शरीर में नागपाश के गड़रा पड़ गये थे, जो पहले से कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासोच्छवास का निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुख से सोये पुरुष निद्रा क्षय होने पर उठ बैठते हैं ॥11-12॥ तदनंतर आश्चर्य को प्राप्त हुए श्रीवृक्ष आदि विद्याधर राजाओं ने पूजा कर राम लक्ष्मण से पूछा कि हे नाथ ! आप दोनों की विपत्ति के समय जो पहले कभी देखने में नहीं आयी ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिए ॥13-14॥ वाहन, अस्त्र रूपी संपत्ति, छत्र, परम कांति, ध्वजाएँ और नाना प्रकार के रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए हैं वे सब दिव्य हैं, देवोपनीत हैं ऐसा सुना जाता है॥ 15॥ तदनंतर राम ने उन सबके लिए कहा कि एक बार वंशस्थविल पर्वत के अग्रभाग पर देशभूषण और कुलभूषण मुनियों को उपसर्ग हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया॥ 16॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, देवों का आगमन हुआ, गरुडेंद्र हम से संतुष्ट हुआ और उससे हमें घर की प्राप्ति हुई । इस समय उसी गरुड़ेंद्र के ध्यान से इन महाविद्याओं की प्राप्ति हुई॥ 17-18॥ तदनंतर सावधान हो मुनियों की उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोद को प्राप्त हो रहे थे और जिनके मुखकमल हर्ष से विकसित हो रहे थे ऐसे उन सब विद्याधर राजाओं ने कहा कि ॥19॥ भक्तिपूर्वक की हुई साधुसेवा के प्रभाव से मनुष्य इसी भव में विशाल उत्तम यश, बुद्धि की प्रगल्भता, उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधि को प्राप्त होता है ॥20॥ मुनिजन उत्तम बुद्धि को धर्म में लगाकर मनुष्यों का जैसा शुभोदय से संपन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न पिता करता है, न मित्र करता है और न सगा भाई ही करता है ॥21॥ इस प्रकार चिरकाल तक प्रशंसा कर जिन्होंने अपनो भावनाएँ समर्पित की थी और

जिनेंद्रमार्ग की उन्नति से जो परम आश्चर्य को प्राप्त हो रहे थे, ऐसे महावैभव से युक्त राजा, राम और लक्ष्मण का आश्रय पाकर अत्यंत सुशोभित हो रहे थे ॥22॥ इस तरह भव्य जीवरूपी कमलों के उत्सव को करने वाली पवित्र कथा सुनकर जो हर्षरूपी महारस के सागर में निमग्न हो परम प्रीति को धारण कर रहे थे, ऐसे देवों के समान समस्त विद्याधर राजाओं ने, विकसित कमलों के समान नेत्रों को धारण करने वाले उन देव पूजित राम-लक्ष्मण की सब प्रकार से पूजा की॥ 23॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जंमांतर में पुण्य का संचय करने वाला मनुष्य, इस संसार में न केवल अपने आपका ही उत्तम उत्सवों से संयोग करता है किंतु सूर्य के समान समस्त पदार्थों को दिखाकर अन्य लोगों का भी अत्यधिक वैभव के साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभव को प्राप्त होता है और दूसरों को भी वैभव प्राप्त कराता है ॥24॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में सुग्रीव और भामंडल का नागपाश से युक्त हो आश्वासन प्राप्ति का वर्णन करने वाला इकसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥61॥

## लक्ष्मण को शक्ति लगना

बासठवां पर्व

कथा :

अथानंतर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रम को जानने में निपुण थे, एवं युद्ध के लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणबांकुरे वीर युद्ध के लिए उद्यत हुए ॥1॥ वानरों की सेना से समस्त आकाश को निरंतर व्याप्त देख तथा शंखों और दुंदुभियों के शब्दों से मिली हाथियों और घोड़ों की आवाज सुन कैलास को उठाने वाला वीर रावण भी भाइयों आदि के साथ निकला । रावण अत्यंत बलवती बुद्धि का धारक था, मानी था, आदर से युक्त था, देवों के समान शोभा से सहित था, सत्त्व और प्रताप से युक्त था, सेनारूपी सागर से घिरा हुआ था, और शस्त्र से उत्पन्न तेज के द्वारा संसार को जलाता हुआ-सा जान पड़ता था । ॥2-4॥ तदनंतर जिन्होंने उठ कर कवच बाँध रखे थे, जिन्हें संग्राम की उत्कट लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ थे, नाना प्रकार के बडे-बडे शस्त्र जिन्होंने धारण कर रखे थे और जो पूर्वानबद्ध क्रोध के कारण महानारकी के समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर-वीर योद्धा परस्पर मार-काट करने में लग गये॥ 5-6॥ चक्र, कच, पाश, खड्ग, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, कनक तथा परिघ आदि शस्त्रों से आकाश सघन हो गया॥ 7॥ घोड़ों का समूह घोड़ों के साथ जुट पड़ा, हाथियों का समूह हाथियों के समूह के सम्मुख गया, महाधीर-वीर रथों के सवार रथ सवारों के साथ खड़े हो गये॥8॥सिंहों के सवार सिंहों के सवारों के साथ और चंचल तथा समान पराक्रम को धारण करने वाला पैदल सैनिकों का समूह पैदल सैनिकों के साथ महायुद्ध करने के लिए उद्यत हो गया॥ 9॥

तदनंतर प्रथम तो राक्षस योद्धाओं ने वानरों की सेना को पराजित कर दो, परंतु उसके बाद नील आदि वानरोंने उसे पुनः शस्त्र वर्षा करने को योग्यता प्राप्त करा दी **अर्थ**ात् वानरों की सेना पहले तो कुछ पीछे हटो, परंतु ज्यों ही नोल आदि वानर आगे आये कि वह पुनः राक्षसों पर शस्त्र वर्षा करने लगी॥ 10॥ पश्चात् अपनी सेना का पराभव देख, समुद्र की तरंगों के समान चंचल लंका के निम्नांकित राजा पुनः युद्ध के लिए उद्यत हुए ॥11॥ विद्युद्वक्त्र, मारीच, चंद्र, अर्क, शुक, सारण, कृतांत, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि॥ 12॥ इन राक्षस योद्धाओं के द्वारा अपनी सेना को नष्ट होते देख वानर पक्ष के हजारों महायोद्धा आ पहुंचे ॥13॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकार के शस्त्र धारण करने वाले, महाभयंकर, वीर और अत्यंत उदात्त चेष्टाओं के धारक उन योद्धाओं ने राक्षसों की सेना को धर दबाया ॥14॥ तदनंतर शस्त्ररूपी ज्वालाओं से सुशोभित वानररूपी प्रलयाग्नि के द्वारा अपनी सेनारूपी सागर को सब ओर से पिया जाता देख क्रोध से भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकों को सूखे पत्तों के समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करने के लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥15-16॥ तदनंतर महायोद्धाओं को भयभीत करने वाला विभीषण भागने में तत्पर वानरों की शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करने के लिए खड़ा हुआ ॥17॥ युद्ध में भाई को सम्मुख खड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरता के साथ यह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः मुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामने से हट जा, खड़ा मत रह, मैं तुझे देखने के लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥18-19॥तदनंतर विभीषण ने बड़े भाई-रावण से कहा कि तू यम के द्वारा मेरे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥20॥ पश्चात् विभीषण कुमार पर क्रोध प्रकट करते हुए रावण ने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संक्लिष्ट ! नरकाक ! तुझ कुचेष्टी को धिक्कार है ॥21॥तुझे मार डालने पर भी मेरा यश नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न मुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उत्पन्न करने के योग्य हैं॥ 22॥ जिस

प्रकार कोई, कर्मों का अत्यंत अशुभ उदय होने से जिनशासन को छोड़ अन्य शासन को ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुझ मूर्ख ने भी विद्याधर की संतान को छोड़ अन्य भूमिगोचरी को ग्रहण किया है ॥23॥

तदनंतर विभीषण ने कहा कि इस विषय में बहुत कहने से क्या ? हे रावण ! तेरे कल्याण के लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥24॥ इस स्थिति में आने पर भी यदि तू अपना भला करना चाहता है तो राम के साथ मित्रता कर और सीता को समर्पित कर दे॥ 25॥ अहंकार छोड़कर राम को प्रसन्न कर स्त्री के निमित्त अपने वंश को कलंकित मत कर॥ 26॥ अथवा तुझे मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो ठीक ही है क्योंकि बलवान् मनुष्यों को भी इस बलवान् मोह का तिरना अत्यंत कठिन है॥ 27॥ तदनंतर विभीषण के वचन सुन तीव्र क्रोध से युक्त हुआ रावण तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर दौड़ा ॥28॥ स्वामी को संतुष्ट करने में तत्पर रहने वाले, रथों, घोड़ों और हाथियों पर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओं को भय उत्पन्न करने वाले युद्ध में लग गये ॥29॥ तदनंतर बड़े वेग से सम्मुख जाकर विभीषण ने अष्टमी के चंद्र के समान कुटिल घूमने वाले बाण से रावण की ध्वजा छेद डाली ॥30॥ और क्रोध के भार से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावण ने भी एक तीक्ष्ण मुख बाण चलाकर विभीषण के धनुष के दो टुकड़े कर दिये ॥31॥ पश्चात् प्रतिकार करने में निपुण विभीषण ने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावण के धनुष के दो टुकड़े कर दिये ॥32॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषण के बीच अनेक वीरों का क्षय करने वाला महायुद्ध चल रहा था तब पिता का परम भक्त इंद्रजित् युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ ॥33॥सो जिस प्रकार पर्वत समुद्र को रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मण ने उसे रोका और कमललोचन राम ने भानुकर्ण को अपने आगे किया **अर्थ**ात् उससे युद्ध करना प्रारंभ किया ॥34॥नील, सिंहकटि (सिंहजधन) के सम्मुख गया, नल ने युद्ध शंभु का, दुर्मति ने स्वयंभू का, क्रोध से भरे दुर्मर्ष ने कुंभोदर का, दुष्ट ने इंद्रवज्र का, कांति ने चंद्रनख का, स्कंध ने भिन्नांजन का, विराधित राजा ने विघ्न का, देदीप्यमान केयूर के धारक अंगद ने प्रसिद्ध मय नामक महादैत्य का, हनुमान् ने कुंभकर्ण के पुत्र कुंभ का, सुग्रीव ने सुमाली का, भामंडल ने केतु का, दृढ़रथ ने काम का और क्षुब्ध ने क्षोभण नामक बलवान सामंत का सामना किया ॥35-38॥ इनके सिवाय बुलाने के शब्द से जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओं ने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारंभ किया ॥39॥उस समय योद्धाओं में परस्पर इस प्रकार के शब्द हो रहे थे कोई किसी से कहता था कि लो, इसके उत्तर में दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जान से मार डालो, छेदो, भेदो, फेंक दो, उठो, बैठो, खड़े रहो, विदारण करो और धारण करो॥ 40॥ बाँधो, फोड़ डालो, घसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, संधि करो, उन्नत होओ, समर्थ बनो । तू क्यों डर रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, तुझे धिक्कार है, तू बड़ा कातर है, तुझे धिक्कार है, तू क्यों कंपित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? कंपित मत हो, तू अकेला कहां जायेगा ?॥41-42॥यह वह समय है जिसमें शूर और कायर का विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वै सारण में युद्ध नहीं कर रहे हो ॥43॥

इस प्रकार धीर-वीरों की गर्जना और तुरही के उन्नत शब्दों से दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिर को वर्षा से अंधकारयुक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हों॥ 44॥चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आर्ष्टि और घन आदि शस्त्रों से आकाश उस प्रकार अत्यंत भयंकर हो गया मानो सबको निगलने के लिए दाँढ़े ही धारण कर रहा हो ॥45॥ खून से लथपथ घायल सेना को देखकर ऐसा संदेह होता था कि क्या यह अशोक का लाल वन है ? या पलाश का कानन है, या पारिभद्र वृक्षों का वन है ?॥46॥किसी का कवच टूट गया तथा उसके बंधन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उस प्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेह के टूट जाने पर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥47॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतों के अग्रभाग से तलवार दबा तथा हाथों से कमर कसकर श्रमरहित हो फिर से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥48॥मदोन्मत्त हाथी के दंताग्र से जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चंचल कानों से ऊपर उठे हुए कर्ण चामरों से वीजित हो रहा था ॥49॥ जिसने स्वामी का कर्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसारकर हाथी के दाँतों के बीच सो रहा था ॥50॥ जिनसे खून के निर्झर झर रहे थे तथा जो गेरू के पर्वत के समान जान पड़ते थे ऐसे कितने हो योद्धाओं ने जलकणों की वर्षा के सिंचन से सचेत हो मूर्छा छोड़ी थी ॥51॥ जो ओठ डंस रहे थे, हाथों में शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहों से जिनके मुख भयंकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवी पर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे॥ 52॥ कितने ही धीर-वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोध का संकोच तथा शस्त्रों का त्याग कर परब्रह्म का ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥53॥ कितने ही प्रचंड वीर खीसों के अग्रभाग को हाथों से पकड़कर हाथियों के आगे झूला झूल रहे थे ॥54॥ जो रक्त की छटा छोड़ रहे थे तथा हाथों में शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़े उछलते कबंध शिररहित धड़ अत्यंत भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥55॥ जिनके कवच जर्जर हो गये थे

ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवन को आशा से विमुख हो शस्त्र छोड़ पानी में घुस गये ॥56॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओं का क्षय करने वाला, लोक संत्रासकारी महायुद्ध हो रहा था तब इंद्रजित् तीक्ष्ण बाणों से लक्ष्मण को और लक्ष्मण इंद्रजित को आच्छादित करने में लीन थे॥ 57-58॥ इंद्रजित् ने अत्यंत भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र के द्वारा नष्ट कर दिया ॥59॥तदनंतर क्रोध से भरे इंद्रजित् ने नागबाणों के द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मण को वेष्टित करना प्रारंभ किया । तब लक्ष्मण ने गरुडास्त्र के द्वारा उस नागास्त्र को उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी योगी पूर्वोपार्जित पापों के समूह को दूर कर देता है ॥ 60-61॥तदनंतर मंत्रि समूह के मध्य में स्थित तथा हाथियों के समूह से वेष्टित इंद्रजित् को लक्ष्मण ने रथरहित कर दिया ॥62॥ तब वचन तथा क्रिया से अपनी सेना की रक्षा करते हुए इंद्रजित् ने ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महाअंधकार से रावण को छिपा लिया ॥63॥ इसके बदले लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र छोड़कर इंद्रजित् का मनोरथ नष्ट कर दिया और इच्छानुसार आकृति को धारण करने वाले नाग बाण छोड़े ॥64।। इनके फलस्वरूप संग्राम के लिए आते हुए इंद्रजित् का समस्त शरीर नागों के द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामंडल पृथिवी पर गिर पडा था उसी प्रकार वह भी पृथिवी पर गिर पडा ॥65॥ उधर राम ने भी धीरे से सूर्यास्त्र को नष्ट कर तथा नागास्त्र को चलाकर युद्ध में भानुकर्ण को रथरहित कर दिया ॥66॥ पहले जिस प्रकार बाहुबली ने नमि के पुत्र श्री कंठ को जीतकर नागपाश से बाँध लिया था, उसी प्रकार राम ने भी भानुकर्ण को सब ओर से नागपाश से वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवी तल पर गिर पडा ॥67॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे बाण बड़े ही विचित्र थे । जब वे धनुष पर चढ़ाये जाते थे तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्का के समान मुख वाले हो जाते थे और शरीर पर जाकर नागरूप हो जाते थे ॥68॥वे बाण क्षणभर के लिए बाण हो जाते थे, क्षण-भर में दंडरूप हो जाते थे और क्षण-भर में नागपाश रूप हो जाते थे, यथार्थ में ये सब शस्त्रों के भेद देवोपनीत थे तथा मनचाहे रूप को धारण करने वाले थे ॥69॥आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपी पाश से वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाश से वेष्टित हो गया । तदनंतर राम की आज्ञा पाकर भामंडल ने उसे अपने रथ पर डाल लिया ॥70॥उधर जिसका शरीर बेचैन हो रहा था ऐसे नागपाश से बंधे हुए इंद्रजित् को भी लक्ष्मण की आज्ञा से विराधित ने अपने रथ पर रख लिया ॥71।।

उसी समय रण के मैदान में क्रोध से भरे रावण ने, चिरकाल तक रण क्रिया को सहन करने वाले विभीषण से कहा कि ॥72॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रण की खाज से प्रचंड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहार को झेल । 73॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगों से आकाश को व्याप्त करने वाला शूल चलाया, सो लक्ष्मण ने उसे अपने बाणों से बीच में ही समाप्त कर दिया ॥74॥ उस अत्यंत भयंकर शल नामक शस्त्र को भस्मीकृत देख रावण ने अत्यंत कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥75॥ रावण शक्ति उठाकर ज्यों ही सामने देखता है तो उसे आगे खड़े हुए, तरुण नील कमल के समान श्याम, देदीप्यमान पुरुषोत्तम, लक्ष्मण दिखाई दिये ॥76॥ लक्ष्मण को देख प्रलयकालीन मेघसमूह के समान गंभीर शब्द करने वाला रावण ताड़न करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥77॥ कि जब मैंने दूसरे का ही वध करने के लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होने का क्या अधिकार है ? ॥78॥अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार झेल ॥79॥यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनाई से विभीषण को अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करने से खेदखिन्न हो गया था ऐसे रावण के सम्मुख दौड़ा॥ 80॥

तदनंतर क्रोध के भार से भरे रावण ने जिससे ताराओं के समान तिलगों का समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यंत देदीप्यमान थी ऐसी उस शक्ति से महापर्वत के तट के समान लक्ष्मण का वक्षःस्थल खंडित हो गया ॥81-82॥ लक्ष्मण के वक्षस्थल पर लगी देदीप्यमान आकृति से मनोहर वह शक्ति, परम प्रेम से लिपटी स्त्री के समान सुशोभित हो रही थी॥83॥ जो गाढ़ प्रहार जन्य दुःख से दुःखी थे तथा जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्र से ताड़ित पर्वत के समान पृथिवी पर गिर पड़े ॥84॥ उन्हें भूमि पर पड़े देख कमललोचन राम, तीव्र शोक को रोककर शत्रु का घात करने के लिए उद्यत हुए ॥85॥ सिंह जुते रथ पर बैठे एवं क्रोध से भरे बलवान् राम ने सामने जाते ही शत्रु को रथ रहित कर दिया॥ 86॥ जब तक वह दूसरे रथ पर चढ़ता है तब तक राम ने उसका धनुष तोड़ दिया । तदनंतर वह जब तक दूसरा धनुष उठाता है तब तक उसे पुनः रथ रहित कर दिया॥87॥राम के बाणों से ग्रस्त हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो बाण ग्रहण करने के लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥88॥यद्यपि राम ने तीव्र बाणों के द्वारा रावण को पृथिवी पर लिटा दिया था तथापि वह खेद-खिन्न हो पुनः दूसरे रथ पर आरूढ़ हो गया॥89॥इस प्रकार यद्यपि राम ने छह बार उसका धनुष तोड़ा तथा छह बार उसे रथ रहित किया तथापि आश्चर्य से भरा रावण जीता नहीं जा सका॥90॥ तब

परम आश्चर्य को प्राप्त हुए राम ने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥ 91॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओं से छोड़े हुए वेगशाली तीक्ष्ण मुख बाणों से पहाड़ भी ढह जाते हैं फिर दूसरे की तो बात ही क्या है ॥ 92॥इतना होने पर भी जंमांतर में संचित पुण्य कर्म ने तेरी रक्षा की है । अब हे विद्याधर राज ! सुन, मैं तुझ से कुछ वचन कहता हूँ॥ 23॥ संग्राम में सामने आये हुए मेरे जिस भाई को तूने शक्ति के द्वारा घायल किया है वह मरने के सम्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लूँ ॥94॥ तदनंतर जो प्रार्थना भंग करने में दरिद्र था और इंद्र के समान जिसकी शोभा बढ़ रही थी ऐसा रावण एवमस्तु कहकर वैभव के साथ लंका की ओर चला गया ॥95॥ यह एक महाबलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया इस प्रकार हृदय में कुछ धैर्य को प्राप्त हुए रावण ने अपने भवन में प्रवेश किया ॥96॥ पराक्रमी मनुष्यों के साथ स्नेह रखने वाले धीर वीर रावण ने घायल योद्धाओं की खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखा तथा इस तरह उनका खेद दूर कर अंतःपुर में प्रवेश किया ॥97॥भाई कुंभकर्ण और युद्ध करने वाले इंद्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रों को शत्रु के पास रुका सुन रावण शोक करने लगा परंतु प्रिय जनों की ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ाने की आशा की ॥98॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकार के भावों को धारण करने वाले जीव, अपने विविध आचरणों के अनुरूप पूर्व भवों में जो कर्म का संचय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पड़ता है और उसके उदय के अनुरूप ही वे इस जन्म में निरंतर नाना प्रकार का फल भोगते हैं ॥99॥इस संसार में कर्मयोग से कोई नाश को प्राप्त होता है, कोई धीर-वीर शत्रु को नष्ट कर अपने पद को प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्ति के निष्फल हो जाने से बंधन को प्राप्त होता है और कोई सूर्य के समान योग्य पदार्थों को प्रकाशित करने में समर्थ होता है॥ 100॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में लक्ष्मण के शक्ति लगने के दुःख का वर्णन करने वाला बासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥62॥

## शक्तिभेद एवं रामविलाप

तिरेसठवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जिनका चित्त अत्यंत व्याकुल हो रहा था तथा जो शोक से पीड़ित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे॥ 1॥ जिनका वक्षःस्थल शक्ति से आलिंगित था ऐसे पृथिवीतल के अलंकारस्वरूप लक्ष्मण को निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥ 2॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तव महाशोक से युक्त एवं दुःखरूपी अग्नि से जलते हुए अत्यंत विलाप करने लगे ॥3॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोग से इस दुर्लध्य सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यंत कठिन दशा को प्राप्त हआ है ॥4॥ अये वत्स ! तु सदा मेरी भक्ति में सचेष्ट रहता था और मेरे कार्य के लिए सदा तत्पर रहता था, अतः शीघ्र ही मुझे वचन दे मुझ से वार्तालाप कर, मौन से क्यों बैठा है ? ॥5॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त-भर के लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अतः उठ आलिंगन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥6॥ आज बाजूबंद से सुशोभित मेरी ये लंबी भुजाएँ नाममात्र की रह गयीं, तेरे बिना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गयीं ॥7॥ माता-पिता आदि गुरुजनों ने तुझे धरोहर के रूप में प्रयत्नपूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जारहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूंगा ? ॥8॥ प्रेम से भरे समस्त लोग अत्यंत उत्सुक हो मुझ से पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥9॥॥ तू वीर पुरुषों में रत्न के समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थहीन उआ अपने जीवन को नष्ट हुआ समझता हूँ ॥10॥ भवांतर में जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदय में आ रहा है । और उसी का फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे विना सीता से क्या प्रयोजन है ? ॥ 11॥ मुझे उस सीता से क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय -रावण के द्वारा चलायी हई शक्ति से तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथिवी पर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥12॥ इस संसार में पुरुष को काम और **अर्थ** तथा नाना प्रकार के संबंध सर्वत्र सुलभ हैं ॥13॥ समस्त पृथिवी में घूम कर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई, माता तथा पिता पुनः प्राप्त हो सकते हों ॥14॥ हे विद्याधरों के राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखायी । अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामंडल ! तुम भी अपने देश जाओ॥ 15॥ इसमें संशय नहीं कि मैं प्रिया जानकी के समान जीवन की आशा छोड़ कल भाई के साथ अग्नि में प्रवेश करूँगा ॥16॥ हे विभीषण ! मुझे सीता तथा छोटे भाई के वियोग से उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकना ॥17॥ उत्तम मनुष्य कार्य के पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्य के पश्चात् उपकार करते हैं परंतु जो कार्य के पीछे भी

उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टों में नीचता का ही निवास समझना चाहिए ॥18॥ हे विभीषण ! तू साधु पुरुष है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बंधु से विरोध किया है फिर भी मैं तेरा कुछ भी उपकार नहीं कर सका इससे मन ही मन जल रहा हूँ ॥19॥ हे भामंडल और सुग्रीव ! शीघ्र ही चिता बनाओ । मैं परलोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो । जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥20॥

तदनंतर राम ने लक्ष्मण के स्पर्श करने की इच्छा की सो उन्हें महाबुद्धिमान् जांबूनद ने मना किया॥ 2॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्य अस्त्र से मूर्च्छित लक्ष्मण को मत छुओ क्योंकि ऐसा करने से प्रायः प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रों की ऐसी ही स्थिति है॥ 22॥ आप धीरता को प्राप्त होओ, कातरता जोड़ो, विपत्ति में पड़े हुए लोगों के प्रतीकार इस संसार में अधिकांश विद्यमान हैं॥ 23॥ क्षुद्र मनुष्यों के योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदय को यथार्थ में धैर्य युक्त किया जाये ॥24॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जीवित होगा क्योंकि यह नारायण है, नारायण का असमय में मरण नहीं होता॥ 25॥ तदनंतर विषाद से भरे सब विद्याधर राजा उपाय के चिंतन में तत्पर हो मन में इस प्रकार विचार करने लगे कि यह दिव्य शक्ति औषधियों के द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्योदय होने पर लक्ष्मण बड़ी कठिनाई से जीवित रह सकेंगे **अर्थ**ात् सूर्योदय के पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित रहना कठिन हो जायेगा ॥26-27॥

तदनंतर किंकरों ने आधे निमेष में ही शिर रहित धड़ आदि को हटाकर उस युद्धभूमि को शुद्ध किया और वहाँ कपड़े के ऊँचे-ऊँचे डेरे-कनातें तथा मंडप आदि खड़े कर दिये॥ 28॥ उस भूमि को सात चौकियों से युक्त किया, दिशाओं में आवागमन बंद किया और कवच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धाओं ने बाहर खड़े रह उसकी रक्षा की ॥29॥ पहले गोपुर पर धनुष हाथ में लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुर में गदा हाथ में धारण करने वाला मेघ तुल्य नल खड़ा हुआ, तीसरे गोपुर में हाथ में शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ । वहाँ जिसकी मालाओं में लगे नाना प्रकार के रत्नों की किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेंद्र के समान सुशोभित हो रहा था ॥30-31॥ कवच और तरकस को धारण करने वाला कुमुद चौथे गोपुर पर खड़ा हुआ । पांचवें गोपुर में भाला हाथ में लिये प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ ॥32॥ जिसकी भुजाएँ अत्यंत स्थूल थीं और भिंडिमाल नामक शस्त्र से इंद्र के समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठवें गोपुर में सुशोभित हो रहा था । तथा सातवें गोपुर में बड़े-बड़े शत्रु राजाओं की सेना को मौत के घाट उतारने वाला भामंडल स्वयं तलवार खींचकर खड़ा था ॥33-34॥ पूर्व द्वार के मार्ग में शरभ चिह्न से चिह्नित ध्वजा को धारण करने वाला शरभ पहरा दे रहा था, पश्चिम द्वार में जांबव कुमार सुशोभित हो रहा था और मंत्रि समूह से युक्त उत्तर द्वार को घेरकर चंद्ररश्मि नाम का बालि का महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था ॥35-36॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओं के द्वारा रची हुई वह भूमि, निर्मल नक्षत्रों के समूह से आकाश के समान अत्यंत सुशोभित हो रही थी ॥37॥ इनके सिवाय युद्ध से नहीं लौटने वाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशा को व्याप्त कर खड़े हो गये ॥38॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर योग्य रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मण के जीवित होने में संदेह था, जो आश्चर्य से युक्त थे, बहुत भारी शोक से सहित थे एवं मानी थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथास्थान खड़े हो गये ॥39॥ अपने ही द्वारा अजित कर्मरूपी सूर्य के प्रकाश स्वरूप जो फल मनुष्यों को प्राप्त होने वाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न घोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥40॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में शक्तिभेद एवं रामविलाप का वर्णन करने वाला तिरेसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥63॥

## विशल्या का पूर्वभव

चौसठवां पर्व

कथा :

अथानंतर रावण लक्ष्मण का मरण निश्चित जान अत्यंत दुखी होता हुआ मन में पुत्रों और भाई के बध का विचार करने लगा । भावार्थ रावण को यह निश्चय हो गया कि शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा और उसके प्रतिकार स्वरूप रामपक्ष के लोगों ने कैद किये हुए इंद्रजित तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुंभकर्ण भाई को अवश्य मार डाला होगा । इस विचार से वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥1॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यंत उदार था और मेरा हित करने में सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त बंधन की

अवस्था को कैसे प्राप्त हो गया ? ॥2॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महाबलवान् और मेरी भुजाओं के समान दृढ़ थे । कर्म के नियोग से ही तुम इस नूतन बंधन को प्राप्त हुए हो ॥3॥ शत्रु तुम लोगों का क्या करेगा? यह सोचकर मेरा मन अत्यंत व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रु के कर्तव्य को नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा **अर्थ**ात् तुम्हें मारेगा ही ॥4॥ आप-जैसे उत्तम, प्रीति के पात्र पुरुष बंधन के दुःख को प्राप्त हुए हैं इसलिए मैं अत्यधिक पीडा को प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्यों रहा है ? ॥5॥ इस प्रकार जिसके यूथ-झुंड का महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराज की तरह वह रावण निरंतर अप्रकट रूप से मन ही मन शोक का अनुभव करने लगा ॥6॥

तदनंतर जब सीता ने सुना कि लक्ष्मण शक्ति से घायल हो पृथिवी पर गिर पड़े हैं तब वह शोक को प्राप्त हो विलाप करने लगी॥ 7॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनीत ! हाय गुण रूपी आभूषण से सहित ! तुम मुझ अभागिनी के लिए इस अवस्था को प्राप्त हुए हो ॥8॥ यद्यपि मैं इस तरह संकट में पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥9॥ आप-जैसे वीर को मारते हुए पापी शत्रु ने किस वीर के मारने का संदेह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? **अर्थ**ात् जब उसने आप-जैसे वीर को मार डाला है तब वह प्रत्येक वीर को मार सकता है॥ 10॥ तुम भाई का भला करने में चिंता लगा पहले बंधुजनों से बिछोह को प्राप्त हुए और अब बडी कठिनाई से समुद्र को पार कर इस अवस्था को प्राप्त हुए हो ॥11॥ क्या मैं क्रीड़ा करने में निपुण विनयी, सुंदर वचन बोलने वाले एवं परम आश्चर्य के कार्य करने वाले तुम्हें फिर भी देख सकूँगी ? ॥12॥ देव सब प्रकार से तुम्हारे जीवन की रक्षा करें और सब लोगों के मन को हरण करने वाले तुम शीघ्र ही शल्यरहित अवस्था को प्राप्त होओ ॥13॥ इस प्रकार विलाप करने वाली शोकवती सीता को भाव से स्नेह रखने वाली विद्याधरियों ने सांत्वना प्राप्त करायी ॥14॥ उन्होंने समझाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवर का अभी तक निश्चय नहीं जान पडा है इसलिए इसके विषय में विलाप करना उचित नहीं है॥ 15॥ धैर्य धारण करो, वीरों की तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसके प्रतीकार होते हैं यथार्थ में पृथिवी की चेष्टा विचित्र है॥ 16॥ इस प्रकार विद्याधरियों के कहने से सीता कुछ निराकुल हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्व में जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥17॥ अथानंतर इसी बीच में एक सुंदर मनुष्य डेरे के द्वार पर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामंडल ने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँ से आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खड़ा रह, खड़ा रह, सब बात ठीक-ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगों का आगमन निषिद्ध है ॥18-19॥ इसके उत्तर में उस पुरुष ने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं राम का दर्शन करना चाहता हूँ परंतु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥20॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगों की लक्ष्मण को शीघ्र ही जीवित देखने की इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥21॥ उसके इतना कहते हो राजा भामंडल बहुत संतुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे राम के समीप ले गया॥ 22॥ उस पुरुष ने बड़े आदर से राम को प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! खेद मत कीजिए, कुमार निश्चित ही जीवित हैं ॥23॥ मेरी माता का नाम सुप्रभा तथा पिता का नाम चंद्रमंडल है । मैं देवगति पर का रहने वाला हूँ तथा चंद्रप्रतिम मेरा नाम है ॥24॥ किसी समय मैं आकाश में धूम रहा था उसी समय राजा वेलाध्यक्ष के पुत्र सहस्रविजय ने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया॥ 25॥ तदनंतर स्त्री संबंधी वैर का स्मरण कर वह क्रोध को प्राप्त हो गया जिससे उसका मेरे साथ योद्धाओं को भय उत्पन्न करने वाला कठिन युद्ध हुआ ॥26॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चंडरवा नामक शक्ति से मारा जिससे मैं रात्रि के समय आकाश से अयोध्या के महेंद्रोदय नामक सघन वन में गिरा ॥27॥ आकाश से पड़ते हुए ताराबिंब के समान मुझे देख अयोध्या के राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥28॥ शक्ति लगने से जिसका वक्षःस्थल शल्ययुक्त था ऐसे मुझ को देख राजा भरत दया से दुखी हो उठे । तदनंतर जीवन दान देने वाले उन सत्पुरुष ने मुझे चंदन के जल से सींचा ॥29॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गयी और मेरा रूप पहले के समान हो गया तथा उस सुगंधित जल से मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥30॥ पुरुषों में इंद्र के समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरत ने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है । भावार्थ-शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसी के फलस्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥31॥ इसी बीच में परम हर्ष को प्राप्त हुए, सुंदर रूप के धारक राम ने उससे पूछा कि हे भद्र ! उस गंधोदक की उत्पत्ति भी जानते हो ?॥32॥ इसके उत्तर में उसने कहा कि हे देव ! जानता हूँ सुनिए, मैं आपके लिए बताता हूँ । मैंने राजा भरत से पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥33॥ कि नगर-ग्रामादि से सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगों से आक्रांत हो गया ॥34॥ उरोघात जिसमें वक्षःस्थल-पसली आदि में दर्द होने

लगता है, महादाहज्वर जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापरिस्राव जिसमें मुंह से लार बहने लगती है, सर्व-शूल जिसमें सर्वांग में पीड़ा होती है, अरुचि जिसमें भोजनादि की रुचि नष्ट हो जाती है, छदि जिसमें वमन होने लगते हैं, श्वयथु जिसमें शरीर पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे । इस देश में ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥35-36॥ केवल द्रोणमेघ नाम का राजा मंत्रियों, पशुओं तथा बंधु आदि परिवार के साथ अपने नगर में देव के समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुनने में आया ॥37॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम ! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अविलंब नीरोग करने के योग्य हो ॥38॥ तदनंतर उसने बुलाकर अपनी सुगंधि से दूर-दूर तक के दिङ्मंडल को व्याप्त करने वाला जल मुझ पर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा दी ॥39॥ उस जल से न केवल मैं ही नीरोग हुआ किंतु मेरा अंतःपुर, नगर और समस्त देश रोगरहित हो गया ॥40॥ हजारों रोगों को उत्पन्न करने वाली, अत्यंत दुःसह, एवं मर्म घात करने में निपुण दूषित वायु ही उस जल से नष्ट हो गयी ॥41॥ मैंने राजा द्रोणमेघ से बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँ से प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगों को नष्ट करने वाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है॥ 42॥ इसके उत्तर में द्रोणमेघ ने कहा कि हे राजन् ! सुनिए, मेरी गुणों से सुशोभित तथा सब प्रकार के विज्ञान में निपुण विशल्या नाम की पुत्री है ॥43॥ जिसके गर्भ में आते ही अनेक रोगों से पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगों से रहित हो मेरा उपकार करने वाली हुई थी ॥44॥ वह जिन-शासन में आसक्त है, निरंतर पूजा करने में तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शेषाक्षत के समान सर्व बंधु जनों की पूज्या है ॥45॥ यह महासुगंधि से सहित उसी का स्नान-जल है जो कि क्षण-भर में सब रोगों को नाश कर देता है॥ 46॥ तदनंतर द्रोणमेघ के वह वचन सुन मैं परम आश्चर्य को प्राप्त हआ और बड़े वैभव से मैंने उस पुत्री को पूजा को ॥47॥ नगरी से निकलकर जब वापस आ रहा था तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघ के स्वामी थे वे मिले । मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्या का चरित्र पूछा ॥48॥ राजा भरत विद्याधर से कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनंतर मेरे पूछने पर चार ज्ञान के धारी, महास्नेही मुनिराज विशल्या का दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि ॥49॥

विदेह क्षेत्र में स्वर्ग के समान पुंडरीक नामक देश है । उसके चक्रधर नामक नगर में त्रिभुवनानंद नाम का चक्रवर्ती रहता था । ॥50॥ उसकी अनंगशरा नाम को एक कन्या थी जो गुण रूपी आभूषणों से सहित थी, कर्मों की अपूर्व सृष्टि थी और सौंदर्य का प्रवाह बहाने वाली थी॥51॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानंद का एक पुनर्वसु नाम का सामंत था जो कि प्रतिष्ठपुर नगर का स्वामी था । काम से प्रेरित हो उस दुर्बुद्धि ने विमानपर चढ़ाकर उस कन्या का अपहरण किया॥ 52॥ क्रोध से भरे चक्रवर्ती की आज्ञा पाकर सेवकों ने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमान को अत्यधिक चूर कर डाला ॥53॥ तदनंतर जिसका विमान चूर-चूर किया जा रहा था ऐसे उस पुनर्वसु ने कन्या को विमान से छोड़ दिया जिससे वह चंद्रमा को शरदकालीन कांति के समान आकाश से नीचे गिरी ॥54॥ पुनर्वसु के द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलध्वी नामक विद्या के सहारे स्वेच्छा से उतरती हुई वह श्वापद नामक अटवी में आयी ॥55॥

तदनंतर जो बड़े-बड़े विद्याधरों के लिए भी भय उत्पन्न करने वाली थी, जिसमें प्रवेश करना कठिन था, बड़े-बड़े वृक्षों को सघन झाड़ियों से जिसमें अंधकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकार के ऊँचे वृक्ष नाना लताओं से आलिंगित थे, पल्लवों की सघन छाया से दूर की हुई सूर्य के किरणों ने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा सिंहों आदि से सेवित थी, जहाँ की कठोर भूमि ऊँची-नोची थी, और जो बड़े-बड़े बिलों से सहित थी ऐसी उस महाअटवी में जाकर महाभय को प्राप्त हुई बेचारी अनंगसेना दीपक की शिखा के समान काँपने लगी ॥56-59॥ नदी के तीर आकर और सब दिशाओं की ओर देख महाखेद से युक्त होती हुई वह कुटुंबीजनों को चितार-चितारकर रोने लगी ॥60॥ वह कहती थी कि हाय मैं लोक की रक्षा करने वाले, इंद्र के समान सुशोभित उन चक्रवर्ती पिता से उत्पन्न हुई और महास्नेह से लालित हुई । आज प्रतिकूल दैव से भाग्य की विपरीतता से इस अवस्था को प्राप्त हुई हूँ । हाय, जिसका देखना भी कठिन है ऐसे इस वन में आ पड़ी हूँ क्या करूँ ? ॥61-62॥ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सब लोक को रक्षा करते हो फिर वन में असहाय पड़ी हुई मुझ पर दया क्यों नहीं करते हो ? ॥63॥ हाय माता ! गर्भ धारण का वैसा दुःख सहकर इस समय दया क्यों नहीं कर रही हो ? ॥64॥ हाय मेरे अंतःकरण के समान प्रवृत्ति करने वाले तथा उत्तम गुणों से युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक क्षण के लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥65॥ मैं दुखिया क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूं ? किसे देखें और इस महावन में मैं पापिनी कैसे रहूँ ? ॥66॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा नरक में मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं वही हूँ अथवा यह कौन-सी दशा सहसा प्रकट हई है ? ॥67-68 । इस प्रकार चिरकाल तक विलाप कर वह अत्यंत विह्वल हो गयी ।

उसका वह विलाप क्रूर पशुओं के भी मन को पिघला देने वाला था ॥69॥ तदनंतर भूख-प्यास की बाधा से जिसका शरीर झुलस गया था, जो निरंतर शोकरूपी सागर में निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यंत दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रों से निर्वाह करने लगी ॥70॥ वन के कमल समूह की शोभा का सर्वस्व हरने वाला शीत काल आया सो उसने कर्मों का फल भोगते हुए व्यतीत किया॥ 71॥ जिसमें पशुओं के समूह साँसें भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यंत रूक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतु के सूर्य का आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ॥72॥ जिसमें तीक्ष्ण बिजली कौंध रही थी, शीतल जलधारा से अंधकार फैल रहा था, और नदियों के प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया॥ 73॥ कांतिहीन, फटा, दुबला, बिखरे बालों से युक्त एवं मल से आवृत उसका शरीर वर्षा से भीगे चित्र के समान निष्प्रभ हो गया था॥ 4 । जिस प्रकार चंद्रमा को क्षीण कला सूर्य के प्रकाश से निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्य से रहित हो गया ॥75॥ परिपाक के कारण धूसर वर्ण से युक्त फलों से झु के हुए कैथाओं के वन में जाकर वह बार-बार पिता का स्मरण कर रोने लगती थी॥76॥ मैं चक्रवर्ती से उत्पन्न हो वन में इस दशा को प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जंमांतर में किये हुए पापकर्म के उदय से मेरो यह दशा हुई है ॥77॥ इस प्रकार अविरल अश्रु वर्षा से जिसका मुख दुर्दिन के समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टि से पृथिवी की ओर देख पक जाने के कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शांत हो जाती थी ॥78॥ वेला-तेला आदि उपवासों से जिसका शरीर अत्यंत कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानी से ही पारणा करती थी सो भी एक ही बार॥79॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशों से च्युत हो शय्या पर पड़े फूलों से भी खेद को प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवी पर शयन करती थी ॥80॥ जो पहले पिता का संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदि के द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥81 । इस प्रकार महा सहन करती तथा बीच-बीच में प्रासुक आहार की पारणा करती हुई उस अनंगसेना ने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया॥ 8॥ तदनंतर जब वह निराशता को प्राप्त हो गयी तब विरक्त हो उस धीर-वीरा ने चारों प्रकार का आहार त्यागकर सल्लेखना धारण कर ली॥ 83॥ उसने जिन-शासन में पहले जैसा सुन रखा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथ से बाहर को भूमि में नहीं जाऊँगी ॥84॥

अथानंतर उसे सल्लेखना का नियम लिये हुए जब छह रात्रियाँ व्यतीत हो चुकी तब लब्धि दास नामक एक पुरुष मेरु पर्वत को वंदना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्या को देखा । तदनंतर जब लब्धि दास उसे पिता के घर ले जाने के लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कहकर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ॥85-86॥ तत्पश्चात् लब्धि दास शीघ्र ही चक्रवर्ती के पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थानपर आया ॥87॥ जब वह आया तब अत्यंत भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करने में तत्पर हुआ ॥88ः । तदनंतर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलता के कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्री को देख चक्रवर्ती वैराग्य को प्राप्त हो गया॥ 89॥ जिससे उसने सब प्रकार की इच्छा छोड़ महावैराग्य से युक्त हो बाईस हजार पुत्रों के साथ दीक्षा धारण कर ली ॥10॥ भूख से पीड़ित होने के कारण सामने आये हुए उस अत्यंत स्थूल अजगर के द्वारा खायी हुई वह कन्या मरकर ईशान स्वर्ग में गयी ॥91॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगर से मेरो मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भाव से कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥12॥

तदनंतर जब पुनर्वसु युद्ध में समस्त विद्याधरों को परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशरा को नहीं देख विरह की भूमि में पड़ बहुत दुःखी हुआ । अंत में उसने द्रुमसेन नामक मुनिराज के समीप दिगंबर दीक्षा धारण कर ली और अत्यंत कठिनत पत पाकर इसी का निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से च्युत हो यह अत्यंत सुंदर लक्ष्मण हुआ है॥ 93-95॥ पहले को अनंगशरा देवलोक से च्युत हो राजा द्रोणमेघ की यह विशल्या नाम की पुत्री हुई है॥ 96॥ महागुणों को धारण करने वाली विशल्या इस नगर-देश अथवा भरतक्षेत्र में पूर्व कर्मों के प्रभाव से अत्यंत उत्तम हुई॥ 97॥ यतश्च उसने पूर्वभव में उत्सर्ग सहित महातप किया था इसलिए उसका स्नान जल महागुणों से सहित है॥ 98॥ इस देश में जिसने सब लोगों पर शासन जमा रखा था तथा जो महारोग उत्पन्न करने वाली थी ऐसी विषम वायु इस जल से क्षय को प्राप्त हो गयी है॥ 99॥ यह वायु ऐसी क्यों हो गयी ? इस प्रकार पूछने पर उस समय मुनिराज ने कौतूहल को धारण करने वाले भरत के लिए इस प्रकार कहा कि ॥100॥

विंध्या नाम का एक महाधनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगर से आया और तुम्हारी उस अयोध्या नगरी में ग्यारह माह तक रहा । अनेक वर्षों से सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोग के भार से पीड़ित हो नगर के बीच मरा और अकाम

निर्जरा के योग से देव हुआ ॥101-103॥ वह अश्व चिह्न से चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जाति का देव हुआ । वाय्वावर्त उसका नाम था, वह वायु कुमार देवों का स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगर का स्वामी, रसातल में निवास करने वाला देदीप्यमान, क्रूर और इच्छानुसार क्रियाओं को करने वाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥104-105॥

अवधिज्ञान से सहित होने के कारण उसने पूर्वभव में प्राप्त हुए पराभव को जान लिया । उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्या में आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । भूख-प्यास आदि से मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगों से पीड़ित हुआ मैं मार्ग की कीचड़ में पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे । उस समय मैं गोबर आदि मल से व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मस्तक पर पैर रखकर जाते थे ॥106-108॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयंकर निग्रह नहीं करता हूँ बदला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकार का बड़प्पन युक्त देवपर्याय पाना व्यर्थ है॥ 109॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोध से प्रेरित हो उस देश में नाना रोगों को उत्पन्न करने वाली वायु चलायी ॥110॥ यह वही देव विशल्या के स्नान जल के द्वारा क्षण-भर में विनाश को प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोक में बलवानों के लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥111॥ चंद्रप्रतिम विद्याधर, राम से कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनि ने राजा भरत से जिस प्रकार कही और भरत ने जिस प्रकार मुझ से कही उसी प्रकार हे राम ! मैंने आप से कही हैं ॥ 112॥ इसलिए शीघ्र ही विशल्या का स्नान जल लाने का यत्न करो । लक्ष्मण के जीवित होने का और दूसरा उपाय नहीं है॥ 113॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्यु के मार्ग में स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरण का निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषों के पुण्यकर्म के उदय से जीवन प्रदान करने वाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है॥114॥ अहो ! वे पुरुष अत्यंत महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महाविपत्ति में पड़े हुए जिनके लिए सूर्य के समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्व का निवेदन कर विपत्ति से निकलने का उपाय बतलाते हैं प्रकट करते हैं ॥115॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में विशल्या के पूर्वभव का वर्णन करने वाला चौंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 64॥

## विशल्या का समागम

पैसठवां पर्व

कथा :

अथानंतर प्रतिचंद्र विद्याधर के वचन सुन जिन्हें अत्यंत हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीराम ने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओं के साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥1॥ और शीघ्र ही निश्चित मंत्रणा कर हनुमान् भामंडल तथा अंगद को अयोध्या की ओर रवाना किया ॥2॥ तदनंतर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्ति के धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥3॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठाने से उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामंडल आदि ने सुखदायी संगीत प्रारंभ किया ॥4॥ तदनंतर कर्ण और मन को हरण करने वाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीत को सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥5 ॥हनुमान आदि द्वार के पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीता का हरा जाना तथा शक्ति लगने से लक्ष्मण का गिर जाना यह समाचार कहा ॥6॥ अथानंतर क्षणमात्र में उत्पन्न हुए, अतिशय उग्र शोक रस से राजा भरत परम क्रोध को प्राप्त हुए ॥7॥ उन्होंने उसी समय रण में प्रीति उत्पन्न कराने वाली रणभेरी का महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलता को प्राप्त हो गयी ॥8 ॥लोग कहने लगे कि राजभवन में अत्यंत भय उत्पन्न करने वाला महान् कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ।।9॥क्या इस अर्धरात्रि के समय दुष्ट बुद्धि का धारक तथा आक्रमण करने में निपुण अतिवीर्य का पुत्र आ पहुँचा है ? ॥10 ॥कोई एक योद्धा अंक में स्थित कांता को छोड़ कवच धारण करने के लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवच से निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥11॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुंदर बालक को गोद में ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओं का अवलोकन करने लगी **अर्थ**ात् भय से इधर-उधर देखने लगी ॥12 ॥कोई एक स्त्री ईर्ष्या वश पति से हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रों में नींद नहीं आ रही थी । रणभेरी का शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्या के एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पति से जा मिली उससे सटकर पड़ रही ॥13॥ राजा की तुलना प्राप्त करने वाला कोई धनी मनुष्य अपनी स्त्री से कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्यों सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥14॥ राजभवन में जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथों

के सवार तैयार खड़े हैं और ये मदोन्मत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥15॥ नीति के जानकार पंडित जनों को सदा सावधान रहना चाहिए । उठो उठो धन को प्रयत्नपूर्वक छिपा दो ॥16॥ ये सुवर्ण और चाँदी के घट तथा मणि और रत्नों के पिटारे तलगृह के भीतर कर दो ॥17॥ रेशमी वस्त्र आदि से भरे हुए इन गर्भगृहों को शीघ्र ही बंद कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पडा है उसे ठीक तरह से रख दो ॥18॥ जिसके नेत्र निद्रा से लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घबड़ाया हुआ शत्रुघ्न भी घंटा का शब्द करने वाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरत के महल में जा पहुंचा । शत्रुघ्न, हाथों में शस्त्र धारण करने वाले उत्तमोत्तम मंत्रियों से सहित था, वकुल की सुगंधि को छोड़ रहा था तथा उसका वस्त्र चंचल-चंचल हो रहा था । शत्रुघ्न के सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथों में शस्त्र धारण किये हुए थे, कवचों से युक्त थे तथा राजा का हित करने में तत्पर थे भरत के महल में जा पहुँचे ॥19-21 ॥अयोध्या के स्वामी भरत, राजाओं को आज्ञा देते हुए स्वयं युद्ध के लिए उद्यत हो गये तब भामंडल आदि ने नमस्कार कर कहा कि ॥22॥ हे देव ! लंकापुरी दूर है, वहाँ जाने के लिए आप समर्थ नहीं हैं, जिसकी लहरें और शंख क्षोभ को प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयंकर समुद्र बीच में पडा है ॥23 ॥तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरत के कहने पर उन सबने विशल्या का मनोहर चरित कहा ॥24 ॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोणमेघ की पुत्री का स्नानजल पाप को नष्ट करने वाला, पवित्र और जीवन की रक्षा करने वाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥25॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जायेंगे । शत्रुओं का संहार करने वाले लक्ष्मण शक्ति से घायल हो दुःख में पड़े हैं ॥26 ॥तब भरत ने कहा कि जल का क्या ले जाना, वह द्रोणमेघ की सुंदरी पुत्री स्वयं ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥27॥ मुनिराज ने कहा है कि यह उन्हीं की वल्लभा होगी । यथार्थ में वह उत्तम स्त्री रत्न है सो अन्य किसके योग्य हो सकती है ? ॥28॥

तदनंतर भरत ने द्रोणमेघ के पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करने में उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करने के लिए कुपित हुआ ।। 29॥प्रचंड बल को धारण करने वाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलता को प्राप्त हो क्षुभित हो उठे तथा युद्ध करने के लिए मंत्रियों के साथ-साथ तैयार हो गये ॥30॥ तब भरत की माता केकयी ने स्वयं जाकर उसे बड़े आदर से समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री दे दी ॥31॥ कांति से दिशाओं को पूर्ण करने वाली उस कन्या को भामंडल ने अपने शीघ्रगामी विमान के अग्रभाग पर बैठाया ॥32 ॥इसके सिवाय राजकुल में उत्पन्न हुई एक हजार से भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशल्या के साथ भेजी ॥33॥ तदनंतर निमेष मात्र में युद्धभूमि में पहुँच गयी सो समस्त विद्याधरों ने अर्घ्य आदि से उसका योग्य सन्मान किया । तत्पश्चात् जो कन्याओं से घिरी थी और जिस पर सुंदर चमरों के समूह धीरे-धीरे सूख पूर्वक झेले जा रहे थे ऐसी विशल्या विमान के अग्रभाग से नीचे उतरी ॥35॥ द्वार पर खड़े घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियों को देखती हुई वह आगे बढ़ी । बड़े-बड़े लोग उसकी आज्ञा पालन करने में तत्पर थे तथा कमल के समान उसका मुख था ॥36॥ महाभाग्यशालिनी विशल्या जैसे-जैसे पास आती जाती थी वैसे-वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुख दशा को प्राप्त होते जाते थे ॥37॥

तदनंतर जिस प्रकार दुष्ट स्त्री चकित हो पति के घर से निकल जाती है उसी प्रकार कांति के मंडल को धारण करने वाली शक्ति लक्ष्मण के वक्षःस्थल से बाहर निकल गयी ॥38॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएं निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाश को लांघती हई जाने लगी सो वेगशाली हनुमान ने उछलकर उसे पकड़ लिया ॥39॥ तब वह दिव्य स्त्री के रूप में परिणत हो हाथ जोड़कर हनुमान से बोली । उस समय वह घबड़ायी हुई थी तथा उसके शरीर से कंपकपी छूट रही थी ॥40॥ उसने कहा कि हे नाथ! प्रसन्न होओ, मुझे छोड़ो, इसमें मेरा दोष नहीं है, हमारे जैसे सेवकों की ऐसी ही निंद्य दशा है ॥41॥ मैं तीनों लोकों में प्रसिद्ध अमोघ विजया नाम की विद्या हूँ, प्रज्ञप्ति की बहन हूँ और रावण ने मुझे सिद्ध किया है ॥42॥ कैलास पर्वत पर पहले जब बालिमुनि प्रतिमा योग से विराजमान थे तब रावण ने जिन-प्रतिमाओं के समीप भुजा की नाड़ी रूपी मनोहर तंत्री निकाल कर जिनेंद्र भगवान् का दिव्य एवं शुभचरित वीणा द्वारा गाया था । रावण की भक्ति के प्रभाव से धरणेंद्र का आसन कंपायमान हुआ था जिससे परम प्रमोद को धारण करते हुए उसने वहाँ आकर रावण के लिए मुझे दिया था । यद्यपि राक्षसों का इंद्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणेंद्र ने प्रेरणा कर बड़ी कठिनाई से मुझे स्वीकृत कराया था । यथार्थ में रावण किसी से वस्तु ग्रहण करने में सदा संकुचित रहता था ॥43-46 ॥वह मैं, इस संसार में दुःसह तेज की धारक एक विशल्या को छोड़ और किसी की पकड़ में नहीं आ सकती ॥47॥ मैं अतिशय बलवान् देवों को भी पराजित कर देती हूँ किंतु इस विशल्या ने दूर रहने पर भी मुझे पृथक् कर दिया ॥48॥ यह सय को ठंडा और चंद्रमा को गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वभव में ऐसा ही अत्यंत कठिन तपश्चरण किया है ॥49॥ इसने पूर्वभव में अपना शिरीष के फूल के समान सुकुमार शरीर ऐसे तप में लगाया था

कि जो प्रायः मुनियों के लिए भी कठिन था ॥50॥ मुझे इतने ही कार्य से संसार सारभूत जान पड़ता है कि इसमें जीवों द्वारा ऐसे-ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥51॥ तीव्र वायु से जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा शीत और घाम से यह कृशांगी सुमेरु की चूलिका के समान रंचमात्र भी कंपित नहीं हुई ॥52॥ अहो इसका रूप धन्य है, अहो इसका धैर्य धन्य है और अहो धर्म में दृढ़ रहने वाला इसका मन धन्य है । इसने जो तप किया है अन्य स्त्रियाँ उसका ध्यान भी नहीं कर सकतीं ॥53॥ सर्वथा जिनेंद्र भगवान् के मत में ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकार का फल तीनों लोकों में एक जुदा ही जयवंत रहता है ॥54॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥55॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, इसने मुझे तप से जीत लिया । हे सत्पुरुष ! अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ मेरी दुश्चेष्टा क्षमा की जाये ॥56॥ इस प्रकार वार्तालाप करने वाली उस शक्तिरूपी देवता को छोड़कर तत्त्व का जानकार तथा अद्भुत चेष्टा का धारक हनुमान् अपनी सेना में स्थित हो गया ॥57॥

अथानंतर जिसका शरीर लज्जा से अलंकृत था, जिसने श्रीराम के चरण-कमलों में प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामंत्रियों के वचनों से जिसकी प्रशंसा की गयी थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वंदना कर शुभाशीर्वाद से अभिनंदित किया था, जो उत्तम लक्षणों को धारण करने वाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियों की आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या लक्ष्मण के पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गयी जिस प्रकार मानो इंद्र के पास इंद्राणी ही खड़ी हो ॥58-60॥जो अत्यंत सुंदरी थी, भोली मृगी के समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचंद्र के समान जिसका मुख था, और महा अनुराग के भार से जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्या ने एकांत में पृथिवी तल पर सुख से सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मण का आलिंगन कर उन्हें सुकोमल हस्त कमल में स्थित होने से अत्यंत सुंदर दिखने वाले गोशीर्ष चंदन से खूब अनुलिप्त किया तथा लज्जा से कुछ-कुछ कांपते हुए हाथ से श्रीराम को भी चंदन का लेप लगाया ॥61-63 ॥शेष कन्याओं ने विशल्या के हाथ में स्थित चंदन के द्वारा अन्य विद्याधरों के शरीर का स्पर्श किया ॥64॥श्रीराम के आज्ञानुसार विशल्या के हाथ का छुआ सुंदर चंदन यथाक्रम से इंद्रजित आदि के पास भी भेजा गया ॥65॥ सो उस शीतल चंदन को सूंघकर तथा आदर के साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुख को प्राप्त हुए । सबकी आत्माएँ शुद्ध हो गयी तथा सबका ज्वर जाता रहा ॥66॥

इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीर के धारक जो अन्य योधा, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जल से सींचे जाकर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य प्रातःकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान शरीर से युक्त हो गये ॥67॥अथानंतर जो दूसरे जन्म को प्राप्त हुए के समान सुंदर थे और मानो स्वाभाविक निद्रा का ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मण को बाँसुरी की मधुर तान से मिश्रित उत्तम संगीत के द्वारा उठाया गया ॥68॥ तदनंतर जिनका विशाल वक्षःस्थल धीरे-धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी भुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मण ने कमल के समान लाल नेत्र खोलकर तथा भुजाओं को संकोचित कर मोहरूपी शय्या का परित्याग किया ॥69 ॥जिस प्रकार उपपाद शय्या को छोड़कर उत्तम शरीर का धारक देव उठकर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमि को छोड़ खड़े हो गये और दिशाओं की ओर देख रुष्ट होते हुए बोले कि वह रावण कहां गया ? ॥70॥ तदनंतर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनंद को प्राप्त थे, उत्कट रोमांचों से जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थी ऐसे बड़े भाई श्रीराम ने आलिंगन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्ति के द्वारा आपको मार कृतकृत्य की तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्या के चरित्र से पुनर्जन्म को प्राप्त हुए हो ॥71-72 ॥तत्पश्चात् अत्यंत आश्चर्य को प्राप्त हुए जांबव और सुंदर आदि ने शक्ति लगने से लेकर समस्त वृत्तांत लक्ष्मण के लिए निवेदन किया सुनाया तथा उदार भावना से युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥73॥

तदनंतर जिसके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रंग के कमलों के समान सुशोभित थे, जिसका मुख शरदऋतु के पूर्ण चंद्रमा के समान था, जिसका उदर कृश था, जिसके दोनों स्तन दिग्गज के गंडस्थल के समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्था में स्थित थी जो, मानो शरीर धारिणी काम की क्रीड़ा ही थी, जिसके उत्तम नितंब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिसे कर्मों ने एकाग्रचित्त हो सर्व संसार की शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥74-75॥ ऐसी समीप में स्थित उस विशल्या को देख लक्ष्मण ने आश्चर्य से अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इंद्र की लक्ष्मी है ? या चंद्रमा की कांति है ? अथवा सूर्य की प्रभा है ? ॥76॥ इस प्रकार चिंता करते हुए लक्ष्मण को देख, मंगलाचार करने में निपुण स्त्रियाँ उनसे बोली कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥77॥ यह सुन लक्ष्मण ने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणों का संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्र में यह किस प्रकार उचित हो

सकता है ? इसके उत्तर में सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परंतु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥78॥ हे नाथ ! आपके प्रभाव से जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो । इस प्रकार लोगों की प्रार्थना तथा गौरव पूर्ण वचनों से लक्ष्मण ने विवाह करने की इच्छा की ॥79॥ तदनंतर जिसमें क्षणभर में समस्त प्रशंसनीय कार्यों का योग किया गया था, विद्याधरों ने जिसमें विशाल वैभव का विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव-संपदा से कल्पित आनंद के समान था ऐसा विशल्या और लक्ष्मण का विवाहोत्सव युद्धभूमि में ही संपन्न हुआ ॥80॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्म में उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरण को भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थों के समागम को प्राप्त होते हैं और चंद्रमा तथा सूर्य के गुणों के समान अपनी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥81॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरित में विशल्या के समागम का वर्णन करने वाला पैसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥65॥

## रावण के दूत का राम के पास जाना

छयासठवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर रावण, गुप्तचरों के द्वारा विशल्या के चरित के अनुरूप लक्ष्मण का स्वस्थ होना आदि समाचार सुन आश्चर्य और ईर्ष्या दोनों से सहित हुआ तथा मंद हास्य कर धीमी आवाज से बोला कि क्या हानि है ? तदनंतर मंत्र करने में निपुण मृगांक आदि मंत्रियों ने उससे कहा ॥1-2॥ कि हे देव ! यथार्थ एवं हितकारी बात आपसे कहता हूँ आप कुपित हों चाहें संतुष्ट । यथार्थ में सेवकों को निर्भीक होकर हितकारी उपदेश देना चाहिए ॥3॥ हे देव ! आप देख चुके हैं कि राम-लक्ष्मण को पुण्यकर्म के प्रभाव से यत्न के बिना ही सिंहवाहिनी और गरुड़वाहिनी विद्याएँ प्राप्त हो चुकी हैं ॥4॥ आपने यह भी देखा है कि उनके यहाँ भाई कुंभकर्ण तथा दो पुत्र बंधन में पड़े हैं तथा परमतेज की धारक दिव्य शक्ति व्यर्थ हो गई है ॥5॥ संभव है कि यद्यपि आप शत्रु को जीत लें तथापि यह निश्चित समझिए कि आपके भाई तथा पुत्रों का विनाश अवश्य हो जायगा ॥6॥ हे नाथ ! हम सब याचना करते हैं कि आप यह जानकर हम पर प्रसाद करो हम सब पर प्रसन्न हूजिए । आपने हमारे हितकारी वचन को पहले कभी भग्न नहीं किया ॥7॥ सीता को छोड़ो और अपनी पहले जैसी धर्मबुद्धि को धारण करो । तुम्हारे द्वारा पालित समस्त लोग कुशल-मंगल से युक्त हो ॥6॥ राम के साथ संधि तथा मधुर वार्तालाप करो क्योंकि ऐसा करने में कोई हानि नहीं दिखाई देती अपितु बहुत लाभ ही दिखाई देता है॥समस्त संसार की मर्यादाएँ आपके ही द्वारा सुरक्षित हैं आप ही सब मर्यादाओं का पालन करते हैं । यथार्थ में जिस प्रकार समुद्र रत्नों की उत्पत्ति का कारण है उसी प्रकार आप धर्मों की उत्पत्ति के कारण हैं ॥10॥ इतना कह वृद्ध मंत्री जनों ने शिर पर अंजलि बाँधकर रावण को नमस्कार किया और रावण ने शीघ्रता से उन्हें उठाकर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा॥ 11 ॥

तदनंतर मंत्र के जानने वाले मंत्रियों ने संतुष्ट होकर अत्यंत शोभायमान एवं नीतिनिपुण सामंत को संदेश देकर शीघ्र ही दूत के रूप में भेजने का निश्चय किया ॥12॥ वह दूत दृष्टि के संकेत से अभिप्राय के समझने में निपुण था इसलिए रावण ने उसे संकेत द्वारा अपना रुचिकर संदेश शीघ्र ही ग्रहण करा दिया अपना सब भाव समझा दिया ॥13॥ मंत्रियों ने दूत के लिए जो संदेश दिया था वह यद्यपि बहुत सुंदर था तथापि रावण के अभिप्राय ने उसे इस प्रकार दूषित कर दिया जिस प्रकार कि विष किसी महौषधि को दूषित कर देता है ॥14॥ तदनंतर जो बुद्धि के द्वारा शुक्राचार्य के समान था, महाओजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग जिसकी बात मानते थे और जो कर्णप्रिय भाषण करने में निपुण था, ऐसा सामंत संतुष्ट हो स्वामी को प्रणाम कर जाने के लिए उद्यत हुआ । वह सामंत अपनी बुद्धि के बल से समस्त लोक को गोष्पद के समान तुच्छ देखता था ॥15-16॥ जब वह जाने लगा तब नाना शस्त्रों से देदीप्यमान एक भयंकर सेना जो उसकी बुद्धि से ही मानो निर्मित थी, निर्भय हो उसके साथ हो गई ॥17॥

तदनंतर दूत की तुरही का शब्द सुनकर वानर पक्ष के सैनिक क्षुभित हो गये और रावण के आने की शंका करते हुए भयभीत हो आकाश की ओर देखने लगे॥ 18॥ तदनंतर वह दूत जब निकट आ गया और यह रावण नहीं किंतु दूसरा पुरुष है, इस प्रकार समझ में आ गया तब वानरों की सेना पुनः निश्चिंतता को प्राप्त हुई ॥16॥ तदनंतर भामंडलरूपी द्वारपाल ने जिसकी खबर दी थी तथा डेरे के बाहर जिसने अपने सैनिक ठहरा दिये थे, ऐसा वह दूत कुछ आप्तजनों के साथ भीतर पहुँचा॥ 20 ।। वहाँ उसने राम के दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया ।

दूत के योग्य सब कार्य किये । तदनंतर क्षणभर ठहरकर क्रम पूर्ण निम्नांकित वचन कहे॥ 21॥ उसने कहा कि हे पद्म ! मेरे वचनों द्वारा स्वामी रावण, आप से इस प्रकार कहते हैं सो आप कर्णों को एकाग्र कर क्षणभर श्रवण करने का प्रयत्न कीजिए ॥22॥ वे कहते हैं कि मुझे इस विषय में युद्ध से कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि युद्ध का अभिमान करने वाले बहुत से मनुष्य क्षय को प्राप्त हो चुके हैं॥ 23॥ कार्य की उत्तमसिद्धि प्रीति से ही होती है, युद्ध से तो केवल नरसंहार ही होता है, युद्ध में यदि सफलता नहीं मिली तो यह सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादों से सहित मिलती है॥ 24॥ पहले युद्ध की श्रद्धा से दुवृत्त, नरक, शंख, धवलांग तथा शंबर आदि राजा विनाश को प्राप्त हो चुके हैं॥ 25॥ हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यंत हितकारी है, यथार्थ में सिंह महापर्वत की गुफा पाकर ही सुखी होता है ॥26॥ युद्ध में देवों को भय उत्पन्न करने वाले राजा इंद्र को जिसने सामान्य स्त्रियों के योग्य बंदीगृह में भेजा था ॥27॥ पाताल, पृथिवीतल तथा आकाश में स्वेच्छा से की हुई जिसकी गति को कुपित हुए सुर और असुर भी खंडित करने के लिए समर्थ नहीं हैं ॥28॥ नाना प्रकार के अनेक महायुद्धों में वीर लक्ष्मी को स्वयं ग्रहण करने वाला मैं रावण क्या कभी आपके सुनने में नहीं आया॥ 26॥ हे राजन् ! मैं विद्याधरों से सहित यह समुद्र पर्यंत की समस्त पृथिवी और लंका के दो भागकर एक भाग तुम्हारे लिए देता हूँ ॥30॥ तुम आज अच्छे हृदय से मेरे भाई तथा पुत्रों को भेजकर सीता देना स्वीकृत करो, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा ॥ 31॥ यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो तुम्हारी कुशलता कैसे हो सकती है ? क्योंकि सीता तो हमारे पास है ही और युद्ध में बाँधे हुए भाई तथा पुत्रों को हम बलपूर्वक छीन लावेंगे ॥32॥

तदनंतर श्रीराम ने कहा कि मुझे राज्य से प्रयोजन नहीं है और न अन्य स्त्रियों तथा बड़े-बडे भोगों से मतलब है ॥33॥ यदि तुम परम सत्कार के साथ सीता को भेजते हो तो हे दशानन ! मैं तुम्हारे भाई और दोनों पुत्रों को अभी भेज देता हूँ ॥34॥ मैं इस सीता के साथ मृगादि जंतुओं के स्थानभूत वन में सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा और तुम समग्र पृथिवी का उपभोग करो ॥35॥ हे दूत ! तू जाकर लंका के धनी से इस प्रकार कह दे कि यही कार्य तेरे लिए हितकारी है, अन्य कार्य नहीं ॥ 36॥सबके द्वारा पूजित तथा सुंदरता से युक्त राम के वे वचन सुन सामंत दूत इस प्रकार बोला कि ॥37॥ हे राजन् ! यतश्च तुम भयंकर समुद्र को लाँघकर निर्भय हो यहाँ आये हो इससे जान पड़ता है कि तुम बहु कल्याणकारी कार्य को नहीं जानते हो ॥38॥ सीता के प्रति तुम्हारी आशा बिल्कुल ही अच्छी नहीं है । अथवा सीता की बात दूर रही, रावण के कुपित होने पर अपने जीवन की भी आशा छोड़ो ॥36॥ बुद्धिमान मनुष्य को अपने आपकी रक्षा सदा स्त्रियों और धन के द्वारा भी सब प्रकार से करना चाहिए ॥40॥ यदि गरुडेंद्र ने तुम्हें दो वाहन भेज दिये हैं अथवा छलपूर्वक तुमने मेरे पुत्रों और भाई को बाँध लिया है तो इतने से तुम्हारा यह कौन-सा बढ़ा-चढ़ा अहंकार है ? क्योंकि मेरे जीवित रहते हुए इतने मात्र से तुम्हारी कृतकृत्यता नहीं हो जाती ॥41-42॥ युद्ध में यत्न करने पर न सीता तुम्हारे हाथ लगेगी और न तुम्हारा जीवन ही शेष रह जायगा । इसलिए दोनों ओर से भ्रष्ट न होओ, सीता संबंधी हठ छोड़ो ॥43॥ समस्त शास्त्रों में निपुण इंद्र जैसे बड़े-बड़े विद्याधर राजाओं को मैंने मृत्यु प्राप्त करा दी है ॥44॥ मेरी भुजाओं के बल से क्षय को प्राप्त हुए राजाओं के जो ये कैलास के शिखर के समान हड्डियों के ढेर लगे हुए हैं इन्हें देखो ॥45॥

इस प्रकार दूत के कहने पर, मुख की देदीप्यमान ज्योति से आकाश को प्रज्वलित करता हुआ भामंडल क्रोध से बोला कि अरे पापी ! दूत ! शृगाल ! बातें बनाने में निपुण ! दुर्बुद्ध ! इस तरह व्यर्थ ही निःशंक हो, क्यों बके जा रहा है ॥46-47॥ सीता की तो चर्चा ही क्या है ? राम की निंदा करने के विषय में नीच चेष्टा का धारी पशु के समान नीच राक्षस रावण है ही कौन ? ॥48॥ इतना कहकर ज्यों ही भामंडल ने तलवार उठाई त्यों ही नीतिरूपी नेत्र के धारक लक्ष्मण ने उसे रोक लिया ॥49॥ भामंडल के जो नेत्र लाल कमलदल के समान थे वे क्रोध से दूषित हो संध्या का आकार धारण करते हुए दूषित हो गये संध्या के समान लाल-लाल दिखने लगे ॥50॥ तदनंतर जिस प्रकार विषकणों की कांति को प्रकट करने वाला महासर्प मंत्र के द्वारा शांत किया जाता है उसी प्रकार वह भामंडल मंत्रियों के द्वारा उत्तम उपदेश से धीरे-धीरे शांति को प्राप्त कराया गया ॥51॥मंत्रियों ने कहा कि हे राजन् ! अयोग्य विषय में प्रकट हुए क्रोध को छोड़ो । इस दूत को यदि मार भी डाला तो इससे कौनसा प्रयोजन सिद्ध होने वाला है ? ॥52॥ वर्षाऋतु के मेघ के समान विशाल हाथियों के नष्ट करने में निपुण चंचल केसरों वाला सिंह चूहे पर क्षोभ को प्राप्त नहीं होता॥ 53॥ प्रति ध्वनियों पर, लकड़ी आदि के बने पुरुषाकार पुतलों पर, सुआ आदि तिर्यंचों पर और यंत्र से चलने वाली मनुष्याकार पुतलियों पर सत्पुरुषों का क्या क्रोध करना है ? **अर्थ**ात् इस दूत के शब्द निज के शब्द नहीं हैं ये तो रावण के शब्दों की मानो प्रतिध्वनि ही हैं । यह दीन पुरुष नहीं है, पुरुष तो रावण है और यह उसका आकार

मात्र पुतला है, जिस प्रकार सुआ आदि पक्षियों को जैसा पढ़ा दो वैसा पढ़ने लगता है । इसी प्रकार इस दूत को रावण ने जैसा पढ़ा दिया वैसा पढ़ रहा है और कठपुतली जिस प्रकार स्वयं चेष्टा नहीं करती उसी प्रकार यह भी स्वयं चेष्टा नहीं करता मालिक की इच्छानुसार चेष्टा कर रहा है अतः इसके ऊपर क्या क्रोध करना है ? ॥54॥ इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर भामंडल शांत हो गया । तदनंतर निर्भय हो उस दूत ने राम से पुनः कहा कि ॥55॥ तुम इस प्रकार मूर्ख नीच मंत्रियों के द्वारा अविवेकपूर्ण दुष्प्रवृत्तियों से संशय में डाले जा रहे हो अर्थात् खेद है कि तुम इन मंत्रियों की प्रेरणा से व्यर्थ ही अविचारित रम्य प्रवृत्ति कर अपने आपको संशय में डाल रहे हो ॥56॥तुम इनके द्वारा छले जाने वाले अपने आपको समझो और स्वयं अपनी निपुण बुद्धि से अपने हित का विचार करो ॥57॥ सीता का समागम छोड़ो, समस्त लोक के स्वामी होओ, और वैभव के साथ पुष्पक विमान में आरूढ़ हो इच्छानुसार भ्रमण करो॥ 58॥ मिथ्या हठ को छोड़ो, क्षुद्र मनुष्यों का कथन मत सुनो, करने योग्य कार्य में मन लगाओ और इस तरह महासुखी होओ ॥59॥ तदनंतर इस क्षुद्र का उत्तर कौन देता है ? यह सोचकर भामंडल तो चुप बैठा रहा परंतु अन्य लोगों ने उस दूत का अत्यधिक तिरस्कार किया उसे खूब धौंस दिखायी ॥60॥ अथानंतर वचनरूपी तीक्ष्ण बाणों से बिंधा और परम असत्कार को प्राप्त हुआ वह दूत मन में अत्यंत पीड़ित होता हुआ स्वामी के समीप गया ॥61॥ वहाँ जाकर उसने कहा कि हे नाथ ! आपका आदेश पा आपके प्रभाव से नय-विन्यास से युक्त पद्धति से मैंने राम से कहा कि मैं नाना देशों से युक्त, अनेक रत्नों की खानों से सहित तथा विद्याधरों से समन्वित समुद्रांत पृथिवी, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रथ, देव भी जिसका तिरस्कार नहीं कर सकते ऐसा पुष्पक विमान, अपने-अपने परिकरों से सहित तीन हजार सुंदर कन्याएँ, सूर्य के समान कांतिवाला सिंहासन और चंद्रतुल्य छत्र देता हूँ। अथवा इस विषय में अन्य अधिक कहने से क्या ? यदि तुम्हारी आज्ञा से मुझे सीता स्वीकृत कर लेती है तो इस समस्त निष्कंटक राज्य का सेवन करो ॥62-66॥ हे विद्वान् ! यदि हमारा कहा करते हो तो हम थोड़ी-सी आजीविका लेकर एक बेत के आसन से ही संतुष्ट हो जावेंगे ॥67॥ इत्यादि वचन मैंने यद्यपि उससे बार-बार कहे तथापि वह सीता की हठ नहीं छोड़ता है उसी एक में उसकी निष्ठा लग रही है ॥68॥ जिस प्रकार अत्यंत शांत साधु को अपनी चर्या प्रिय होती है उसी प्रकार वह सीता भी राम को अत्यंत प्रिय है । हे स्वामिन् ! आपका राज्य तो दूर रहा, तीन लोक भी देकर उस सुंदरी को उससे कोई नहीं छुड़ा सकता ॥66॥ और राम ने आप से इस प्रकार कहा है कि हे दशानन ! तुम्हें ऐसा सर्वजन निंदित कार्य करना योग्य नहीं है॥ 70॥ इस प्रकार कहते हुए तुझ पापी नीच मनुष्य की जिह्वा के सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये ॥71॥ मुझे सीता के बिना इंद्र के भोगों की भी आवश्यकता नहीं है । तू समस्त पृथिवी का उपभोग कर और मैं वन में निवास करूँगा ॥72॥ यदि तू पर-स्त्री के उद्देश्य से मरने के लिए उद्यत हुआ है तो मैं अपनी निज की स्त्री के लिए क्यों नहीं प्रयत्न करूँ ?॥ 73 ॥ हे सुंदर ! समस्त लोक में जितनी कन्याएँ हैं उन सबका उपभोग तुम्हीं करो, मैं तो फल तथा पत्तों आदि का खाने वाला हूँ, केवल सीता के साथ ही घूमता रहता हूँ ॥74॥ दूत रावण से कहता जाता है कि हे नाथ ! वानरों के अधिपति सुग्रीव ने तुम्हारी हँसी उड़ाकर यह कहा था कि जान पड़ता है तुम्हारा वह स्वामी किसी पिशाच के वशीभूत हो गया है ॥75॥ अथवा बकवाद का कारण जो अत्यंत तीव्र वायु है उससे तुम्हारा स्वामी ग्रस्त है । यही कारण है कि वह बेचारा इस प्रकार विपरीतता को प्राप्त हो रहा है॥ 76॥ जान पड़ता है कि लंका में कुशल वैद्य अथवा मंत्रवादी नहीं हैं अन्यथा पक्व तैलादि वायुहर पदार्थों के द्वारा उसकी चिकित्सा अवश्य की जाती ॥77॥ अथवा लक्ष्मणरूपी विषवैद्य संग्रामरूपी मंडल में शीघ्र ही बाणों द्वारा आवेश कर इसके सब रोगों को हरेगा ॥78॥ तदनंतर उसके कुवचनरूपी अग्नि से जिसका चित्त प्रज्वलित हो रहा था, ऐसे मैंने उस सुग्रीव को इस प्रकार धौंसा जिस प्रकार कि श्वान हाथी को धौंसता है॥ 79॥ मैंने कहा कि अरे सुग्रीव ! जान पड़ता है कि तू राम के गर्व से मरना चाहता है, जो कुपित हुए विद्याधरों के अधिपति की निंदा कर रहा है ॥80॥ हे नाथ ! विराधित ने भी आप से कहा है कि यदि तेरी शक्ति है तो आ, मुझ एक के लिए ही युद्ध प्रदान कर । बैठा क्यों है ? ॥81॥ मैंने राम से पुनः कहा कि हे राम ! क्या तुमने रणांगण में रावण का परम पराक्रम नहीं देखा है ? ॥82॥ जिससे कि तुम उसे क्षोभ को प्राप्त कराना चाहते हो । जो राजारूपी जुगनुओं को दबाने के लिए सूर्य के समान है, वीर है और तीनों जगत् में जिसका प्रताप प्रख्यात है, ऐसा रावण, इस समय आपके पुण्य प्रभाव से क्षमायुक्त है । साम-शांति का प्रयोग करने का इच्छुक है, उदार-त्यागी है, एवं नम्र मनुष्यों से प्रेम करने वाला है ॥83-84॥ जो बलवान सेना रूपी तरंगों की माला से युक्त है तथा शस्त्ररूपी जल-जंतुओं के समूह से सहित है ऐसे रावणरूपी समुद्र को तुम क्या दो भुजाओं से तैरना चाहते हो ? ॥85॥ घोड़े और हाथी ही जिसमें हिंसक जानवर हैं तथा जो पैदल सैनिक रूपी वृक्षों से संकीर्ण हैं ऐसी दुर्गम रावणरूपी अटवी में तुम क्यों घुसना चाहते हो ? ॥86॥ मैंने कहा कि हे पद्म ! वायु के द्वारा सुमेरु नहीं उठाया जाता, सूर्य की किरणों से समुद्र नहीं

सूखता, बैल की सींगों से पृथिवी नहीं काँपती और और तुम्हारे जैसे लोगों से दशानन नहीं जीता जाता ॥87॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक मेरे कहने पर क्रोध से लाल-लाल नेत्र दिखाता हुआ भामंडल जब तक चमकती तलवार खींचता है तब तक लक्ष्मण ने उसे मना कर दिया । लक्ष्मण ने भामंडल से कहा कि हे विदेहासुत ! क्रोध छोड़ो, सिंह सियार पर क्रोध नहीं करता, वह तो हाथी का गंडस्थल चीरकर मोतियों के समूह से क्रीड़ा करता है। जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरों की चेष्टा को धारण करने वाले हैं वे कभी न भयभीत पर, न ब्राह्मण पर, न मुनि पर, न निहत्थे पर, न स्त्री पर, न बालक पर, न पशु पर और न दूत पर प्रहार करते हैं॥ 90॥ इस प्रकार युक्ति युक्त वचनों से जब लक्ष्मणरूपी पंडित ने उसे समझाया तब कहीं दुःसह दीप्ति चक्र को धारण करने वाले भामंडल ने धीरे-धीरे क्रोध छोड़ा ॥91॥
तदनंतर दुष्टता भरे अन्य कुमारों ने वज्र प्रहार के समान क्रूर वचनों से जिसका अत्यधिक तिरस्कार किया तथा अपूर्व कारणों से जिसकी आत्मा अत्यंत लघु हो रही थी, ऐसा मैं अपने आपको तृण से अधिक निःसार मानता हुआ भय से दुःखी हो आकाश में उड़कर आपके पादमूल में पुनः आया हूँ । हे देव ! यदि लक्ष्मण नहीं होता तो मैं आज अवश्य ही भामंडल से मारा जाता ॥92-93॥ हे देव ! इस प्रकार मैंने शत्रु के चरित्र का जैसा कुछ अनुभव किया है वह निःशंक होकर आप से निवेदन किया है । अब इस विषय में जो कुछ उचित हो सो करो क्योंकि हमारे जैसे पुरुष तो केवल आज्ञापालन करने वाले होते हैं॥ 94॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्हें अनेक शास्त्रों के समूह अच्छी तरह विदित हैं, जो नीति के विषय में सदा उद्यत रहते हैं तथा जिनके समीप अच्छे-अच्छे मंत्री विद्यमान रहते हैं ऐसे मनुष्य भी पुरुष रूपी सूर्य के मोहरूपी सघन मेघ से आच्छादित हो जाने पर मोहभाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥95॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में रावण के दूत का राम के पास जाने और वहाँ से आने का वर्णन करने वाला छयासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥66॥

## शांतिजिनालय

सड़सठवां पर्व

कथा :

अथानंतर राक्षसों का अधीश्वर रावण अपने दूत के वचन सुनकर क्षणभर मंत्र के जानकार मंत्रियों के साथ मंत्रणा करता रहा । तदनंतर कुंडलों के आलोक से देदीप्यमान गंडस्थल को हथेली पर रख अधोमुख बैठ इस प्रकार चिंता करने लगा कि ॥1-2॥ यदि हस्तिसमूह के संघट्ट से युक्त युद्ध में शत्रुओं को जीतता हूँ तो ऐसा करने से कुमारों की हानि दिखाई देती है॥ 3॥ इसलिए जब शत्रु समूह सो जावे तब अज्ञातरूप से धावा देकर कुमारों को वापिस ले आऊँ ? अथवा क्या करूँ ? क्या करने से कल्याण होगा ? ॥4॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! इस प्रकार विचार करते हुए उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि उसका हृदय प्रसन्न हो गया ॥5॥ उसने विचार किया कि मैं बहुरूपिणी नाम से प्रसिद्ध वह विद्या सिद्ध करता हूँ कि जिसमें सदा तत्पर रहने वाले देव भी विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते ॥6॥ ऐसा विचार कर उसने शीघ्र ही किंकरों को बुला आदेश दिया कि शांति जिनालय की उत्तम तोरण आदि से सजावट करो ॥7॥तथा सब प्रकार के उपकरणों से युक्त सर्व मंदिरों में जिनभगवान् की पूजा करो । किंकरों को ऐसा आदेश दे उसने पूजा की व्यवस्था का सब भार उत्तम चित्त की धारक मंदोदरी के ऊपर रक्खा॥8।।
गौतम स्वामी कहते हैं कि वह सुर और असुरों द्वारा वंदित बीसवें मुनिसुव्रत भगवान का महाभ्युदयकारी समय था । उस समय लंबे-चौड़े समस्त भरतक्षेत्र में यह पृथ्वी अर्हंत भवान् की पवित्र प्रतिमाओं से अलंकृत थी॥ 6-10॥ देश के अधिपति राजाओं तथा गाँवों का उपभोग करने वाले सेठों के द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिन-मंदिर खड़े किये गये थे ॥11॥ वे मंदिर, समीचीन धर्म के पक्ष की रक्षा करने में निपुण, कल्याणकारी, भक्ति युक्त शासन देवों से अधिष्ठित थे ॥12॥ देशवासी लोग सदा वैभव के साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्यजीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्ग के विमानों के समान सुशोभित होते थे ॥13॥ हे राजन् ! उस समय पर्वत-पर्वत पर, अतिशय सुंदर गाँव-गाँव में, वन-वन में पत्तन-पत्तन में, महल-महल में, नगर-नगर में, संगम-संगम में, तथा मनोहर और सुंदर चौराहे-चौराहे पर महाशोभा से युक्त जिनमंदिर बने हुए थे॥ 14-15॥ वे मंदिर शरद्ऋतु के चंद्रमा के समान कांति से युक्त थे, संगीत की ध्वनि से मनोहर थे, तथा नाना वादित्रों के शब्द से उनमें क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान शब्द हो रहे थे॥ 16॥ वे मंदिर तीनों संध्याओं में वंदना के लिए उद्यत साधुओं के समूह से व्याप्त रहते थे, गंभीर थे, नाना आचार्यों से सहित थे और विविध

प्रकार के पुष्पों के उपहार से सुशोभित थे ॥17॥ परमविभूति से युक्त थे, नाना रंग के मणियों की कांति से जगमगा रहे थे, अत्यंत विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सहित थे ॥18।। उन मंदिरों में सुवर्ण, चाँदी आदि की बनी छत्रत्रय चमरादि परिवार से सहित पाँच वर्ण की जिनप्रतिमाएँ अत्यंत सुशोभित थीं॥ 19 ॥ विद्याधरों के नगर में स्थान-स्थान पर बने हुए अत्यंत सुंदर जिनमंदिरों के शिखरों से विजयार्ध पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था ॥20॥ इस प्रकार यह समस्त संसार बाग-बगीचों से सुशोभित, नाना रत्नमयी, शुभ और सुंदर जिनमंदिरों से व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था ॥21॥ इंद्र के नगर के समान वह लंका भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमंदिरों से अत्यंत मनोहर थी॥ 22॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि वर्षाऋतु के मेघसमूह के समान जिसकी कांति थी, हाथी की सूँड़ के समान जिसकी लंबी-लंबी भुजाएँ थीं, पूर्णचंद्र के समान जिसका मुख था, दुपहरिया के फूल के समान जिसके लाल-लाल ओंठ थे, जो स्वयं सुंदर था, जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे, जिसकी चेष्टाएँ स्त्रियों के मन को आकृष्ट करने वाली थीं, लक्ष्मीधर-लक्ष्मण के समान जिसका आकार था और जो दिव्यरूप से सहित था, ऐसा दशानन, कमलिनियों के साथ सूर्य के समान अपनी अठारह हजार स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता था ॥23-25॥ जिस पर सब लोगों के नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलों की पंक्ति से घिरा था, नाना रत्नों से निर्मित था और चैत्यालयों से सुशोभित था, ऐसे दशानन के घर में सुवर्णमयी हजारों खंभों से सुशोभित, विस्तृत, मध्य में स्थित, देदीप्यमान और अतिशय ऊँचा वह शांति जिनालय था कि जिसमें शांति जिनेंद्र विराजमान थे ॥26॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि उत्तम भाग्यशाली मनुष्य, धर्म में दृढ़ बुद्धि लगाकर तथा संसार के सब पदार्थों को अस्थिर जानकर जगत् में उन जिनेंद्र भगवान के कांति संपन्न, उत्तम मंदिर बनवाते हैं जो सबके द्वारा वंदनीय हैं तथा इंद्र के मुकुटों के शिखर में लगे रत्नों की देदीप्यमान किरणों के समूह से जिनके चरण नखों की कांति अत्यधिक वृद्धिंगत होती रहती है ॥27॥ बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं कि प्राप्त हुए विशाल धन का फल पुण्य की प्राप्ति करना है और इस समस्त संसार में एक जैनधर्म ही उत्कृष्ट पदार्थ है, यही इष्ट पदार्थ को सूर्य के समान प्रकाशित करने वाला है ॥28॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में शांतिजिनालय का वर्णन करने वाला सड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ॥ 17॥

## फाल्गुन मास की अष्टाह्निकाओं की महिमा

अड़सठवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पौर्णमासी पर्यंत नंदीश्वर अष्टाह्निक महोत्सव आया ॥1॥ उस नंदीश्वर महोत्सव के आने पर दोनों पक्ष की सेनाओं के लोग परम हर्ष से युक्त होते हुए नियम ग्रहण करने में तत्पर हुए ॥2॥ सब सैनिक मन में ऐसा विचार करने लगे कि ये आठ दिन तीनों लोकों में अत्यंत पवित्र हैं ॥3॥ इन दिनों में हम न युद्ध करेंगे और न कोई दूसरी प्रकार की हिंसा करेंगे, किंतु आत्म-कल्याण में तत्पर रहते हुए यथाशक्ति भगवान् जिनेंद्र की पूजा करेंगे ॥4॥ इन दिनों में देव भी भोगादि से रहित हो जाते हैं तथा इंद्रों के साथ जिनेंद्रदेव की पूजा करने में तत्पर रहते हैं ॥5॥ भक्त देव, क्षीरसमुद्र के जल से भरे तथा कमलों से सुशोभित स्वर्णमयी कलशों से श्रीजिनेंद्र का अभिषेक करते हैं ॥6॥ अन्य लोगों को भी चाहिए कि वे भक्तिभाव से युक्त हो कलश न हों तो पत्तों आदि के बने दोनों से भी जिनेंद्रदेव की अनुपम प्रतिमाओं का अभिषेक करें ॥7॥ इंद्र नंदीश्वर द्वीप जाकर भक्तिपूर्वक जिनेंद्रदेव की पूजा करते हैं, तो क्या यहाँ रहने वाले क्षुद्र मनुष्यों के द्वारा जिनेंद्र पूजनीय नहीं हैं ? ॥8॥ देव रत्न तथा स्वर्णमय कमलों से जिनेंद्रदेव की पूजा करते हैं तो पृथ्वी पर स्थित निर्धन मनुष्यों को अन्य कुछ न हो तो मनरूपी कलिका द्वारा भी उनकी पूजा करना चाहिए ॥6॥ इस प्रकार ध्यान को प्राप्त हुए मनुष्यों ने बड़े उत्साह के साथ मनोहर लंका द्वीप में जो मंदिर थे उन्हें पताका आदि से अलंकृत किया ॥10॥ एक से एक बढ़कर सभाएँ, प्याऊ, मंच, पट्टशालाएँ, मनोहर नाट्यशालाएँ तथा बड़ी-बड़ी वापिकाएँ बनाई गई ॥11॥ जो उत्तमोत्तम सीढ़ियों से सहित थे तथा जिनके तटों पर वस्त्रादि से निर्मित जिनमंदिर शोभा पा रहे थे, ऐसे कमलों से मनोहर अनेक सरोवर सुशोभित हो रहे थे ॥12॥ जिनालय, स्वर्णादि की पराग से निर्मित नाना प्रकार के मंडलादि से अलंकृत एवं वस्त्र तथा कदली आदि से सुशोभित उत्तम द्वारों से शोभा पा रहे थे ॥13॥ जो घी, दूध आदि से भरे हुए थे, जिनके मुख पर कमल ढके हुए थे, जिनके कंठ में मोतियों की मालाएँ लटक रही थीं,

जो रत्नों की किरणों से सुशोभित थे, जो नाना प्रकार के बेलबूटों से देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये गये थे ऐसे सैकड़ों हजारों कलश गृहस्थों के घरों में दिखायी देते थे ॥14-15॥ मंदिरों में सुगंधि के कारण जिन पर भ्रमरों के समूह मँडरा रहे थे, ऐसे नंदन-वन में उत्पन्न हुए कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदंब, सहकार, चंपक, पारिजातक, तथा मंदार आदि के फूलों से निर्मित अत्यंत उज्ज्वल मालाएँ सुशोभित हो रही थीं ॥16-17॥ स्वर्ण चाँदी तथा मणिरत्न आदि से निर्मित कमलों के द्वारा श्रीजिनेंद्रदेव की उत्कृष्ट पूजा की गई थी ॥18॥ उत्तमोत्तम नगाड़े, तुरही, मृदंग, शंख तथा काहल आदि वादित्रों से मंदिरों में शीघ्र ही विशाल शब्द होने लगा ॥19॥ जिनका पारस्परिक वैरभाव शांत हो गया था और जो महान् आनंद से मिल रहे थे, ऐसे लंका निवासियों ने जिनेंद्रदेव की परम महिमा प्रकट की ॥20॥ जिस प्रकार नंदीश्वरद्वीप में जिन-बिंब की अर्चा करने में उद्यत देव बड़ी विभूति प्रकट करते हैं उसी प्रकार भक्ति में तत्पर विद्याधर राजाओं ने बड़ी विभूति प्रकट की थीं ॥22॥ विशाल प्रताप के धारक रावण ने भी श्रीशांतिजिनालय में जाकर पवित्र हो पहले जिस प्रकार बलिराजा ने की थी, उस प्रकार भक्ति से श्री जिनेंद्रदेव की मनोहर अर्चा की ॥22॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो योग्य वैभव से युक्त हैं तथा उत्तम भक्ति के भार को धारण करने वाले हैं ऐसे श्रीजिनेंद्रदेव की पूजा करने वाले पुरुषों के पुण्य-समूह का निरूपण करने के लिए कौन समर्थ है ? ॥23॥ ऐसे जीव देवों की संपदा का उपभोग कर तथा चक्रवर्ती के भोगों का सुयोग पाकर और अंत में सूर्य से भी अधिक जिनेंद्र प्रणीत तपश्चरण कर श्रेष्ठ मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥24॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में फाल्गुन मास की अष्टाह्निकाओं की महिमा का निरूपण करने वाला अड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥68॥

## लोगों द्वारा नियम लेना

उनहत्तरवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जो शांति का कारण था, कैलास के शिखर के समान जान पड़ता था, शरद्ऋतु के मेघमंडल की उपमा धारण करता था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य **अर्थ**ात् मनोहर था, महलों की पंक्ति से घिरा था और जंबूद्वीप के मध्य में स्थित महामेरु के समान खड़ा था ऐसा श्रीशांतिजिनेंद्र के मंदिर में, विद्यासाधन की इच्छा से युक्त रावण ने दृढ़ निश्चय के साथ प्रवेश कर श्रीजिनेंद्रदेव की परम अद्भुत पूजा की ॥1-3॥ जो उत्कृष्ट कांति से खड़े हुए इंद्र के समान जान पड़ता था ऐसे शांत चित्त दशानन ने वादित्रसहित अभिषेकों, अत्यंत मनोहर मालाओं, धूपों, नैवेद्य के उपहारों और उत्तमवर्ण के विलेपनों से श्रीशांतिनाथ जिनेंद्र की पूजा की ॥4-5॥ जिसके बंधे हुए केश चूडामणि से सुशोभित थे तथा उन पर मुकुट लगा हुआ था, जो महाकांतिमान था, शुक्ल वस्त्र को धारण कर रहा था, जिसकी मोटी-मोटी उत्तम भुजाएँ बाजूबंदों से अलंकृत थीं, जो हाथ जोड़े हुए था, और घुटनों के समागम से जो पृथ्वी को पीड़ा पहुँचा रहा था ऐसे दशानन ने मन, वचन, काय से श्रीशांतिनाथ भगवान् को प्रणाम किया ॥6-7॥

तदनंतर जो निर्मल पृथ्वीतल में पुष्पराग मणि से निर्मित फर्श पर श्रीशांतिनाथ भगवान के सामने बैठा था, जो हाथों के मध्य में स्फटिकमणि से निर्मित अक्षमाला को धारण कर रहा था, और इसीलिए बलाकाओं को पंक्ति से युक्त नील मेघों के समूह के समान जान पड़ता था, जो एकाग्र ध्यान से युक्त था, जिसने अपने नेत्र नासा के अग्रभाग पर लगा रक्खे थे, तथा जो अत्यंत धीर था ऐसे रावण ने विद्या का सिद्ध करना प्रारंभ किया ॥-10॥ अथानंतर जिसे स्वामी ने पहले ही आज्ञा दे रक्खी थी ऐसी प्रियकारिणी मंदोदरी ने यमदंड नामक मंत्री को आदेश दिया कि जगह-जगह ऐसी घोषणा दिलाई जावे कि जिससे लोग सब ओर नियम-आखड़ियों में तत्पर और उत्तम दया से युक्त होवें ॥11-12॥ अन्य सब कार्य छोड़कर जिनचंद्र की पूजा की जावे और मत्सर भाव को दूर कर याचकों के लिए इच्छानुसार धन दिया जावे ॥13॥ जब तक जगत् के स्वामी-दशानन का यह योग समाप्त नहीं होता है तब तक सब लोग श्रद्धा में तत्पर एवं संयमी होकर रहें ॥14॥ यदि किसी नीच मनुष्य की ओर से अत्यधिक तिरस्कार भी होवे तो भी महाबलवान् पुरुषों को उसे निश्चितरूप से सह लेना चाहिये ॥15॥ इन दिनों में जो भी पुरुष क्रोध से विकार दिखावेगा वह पिता भी हो, फिर शेष की तो बात ही क्या है ? मेरा वध्य होगा ॥16॥ जो मनुष्य इस आदेश का पालन नहीं करेगा वह बोधि और समाधि से युक्त होने पर भी अनंतसंसार को ही प्राप्त होगा उससे छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकेगा ॥17॥

तदनंतर जैसी आपकी आज्ञा हो इस प्रकार शीघ्रता से कहकर तथा हर्षपूर्वक मंदोदरी की आज्ञा शिरोधार्य कर यमदंड मंत्री ने घोषणा

कराई और सब लोगों ने संशय से रहित हो घोषणा के अनुसार ही सब कार्य किये ॥18॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि सूर्य के समान कांति वाले उत्तमोत्तम महलों के भीतर विद्यमान तथा निर्मल और उन्नत भावों को धारण करने वाली लंका की समस्त प्रजा, अन्य सब कार्य छोड़ जिनेंद्रदेव की पूजा करने में ही लीन हो गई ॥16॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में लोगों के नियम करने का वर्णन करने वाला उनहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥69॥

## सम्यग्दृष्टि देवों का प्रातिहार्यपना

सत्तरहवां पर्व
कथा :
अथानंतर रावण बहुरूपिणी विद्या साध रहा है । यह समाचार गुप्तचरों के मुख से राम की सेना में सुनाई पड़ा सो विजय प्राप्त करने में तत्पर विद्याधर राजा कहने लगे कि ऐसा सुनने में आया है कि लंका का स्वामी रावण श्रीशांति-जिनेंद्र के मंदिर में प्रवेश कर विद्या सिद्ध करने में लगा हुआ है ॥1-2॥ वह बहुरूपिणी विद्या चौबीस दिन में सिद्धि को प्राप्त होती है तथा देवों का भी मद भंजन करने वाली है ॥3॥ इसलिए वह भगवती विद्या जब तक उसे सिद्ध नहीं होती है तब तक शीघ्र ही जाकर नियम में बैठे रावण को क्रोध उत्पन्न करो ॥4॥ बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जाने पर वह इंद्रों के द्वारा भी नहीं जीता जा सकेगा फिर हमारे जैसे क्षुद्र पुरुषों की तो कथा ही क्या है ? ॥5॥ तब विभीषण ने कहा कि यदि निश्चित ही यह कार्य करना है तो शीघ्र ही प्रारंभ किया जाय । आप लोग विलंब किसलिए कर रहे हैं॥ 6 ॥ तदनंतर इस प्रकार सलाह कर सब विद्याधरों ने श्रीराम से कहा कि इस अवसर पर लंका ग्रहण की जाय ॥7॥ रावण को मारा जाय और इच्छानुसार कार्य किया जाय । इस प्रकार कहे जाने पर महापुरुषों की चेष्टा से युक्त धीरवीर राम ने कहा कि जो मनुष्य अत्यंत भयभीत हैं उन आदि के ऊपर भी जब हिंसापूर्ण कार्य करना योग्य नहीं हैं तब जो नियम लेकर जिन-मंदिर में बैठा है उस पर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? ॥8-6॥ जो उच्च कुल में उत्पन्न हैं, अहंकार से उन्नत हैं तथा शस्त्र चलाने के कार्य में जिन्होंने श्रम किया है ऐसे क्षत्रियों की यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं हैं ॥10॥
तदनंतर हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं, ये अधर्म में प्रवृत्ति नहीं करेंगे ऐसा निश्चय कर उन्होंने एकांत में अपने-अपने कुमार लंका की ओर रवाना किये॥ 11॥ तत्पश्चात् कल चलेंगे इस प्रकार निश्चय कर लेने पर भी विद्याधर आठ दिन तक सलाह ही करते रहे॥ 12॥ अथानंतर पूर्णिमा का दिन आया तब पूर्ण चंद्रमा के समान मुख के धारक, कमल के समान दीर्घ नेत्रों से युक्त एवं नाना लक्षणों की ध्वजाओं से सुशोभित विद्याधर कुमार सिंह, व्याघ्र, वराह, हाथी और शरभ आदि से युक्त रथों तथा विमानों पर आरूढ़ हो निशंक होते हुए आदर के साथ लंका की ओर चले । उस समय उत्तमोत्तम शस्त्रों को धारण करने वाले तथा रावण को कुपित करने की भावना से युक्त वे वानरकुमार भवनवासी देवों के समान देदीप्यमान हो रहे थे । ॥13-15॥ उन कुमारों से कुछ के नाम इस प्रकार हैं । मकरध्वज, साटोप, चंद्राभ, वातायन, गुरुभर, सूर्यज्योति, महारथ, प्रीतिंकर, दृढ़रथ, समुन्नतबल, नंदन, सर्वद, दुष्ट, सिंह, सर्वप्रिय, नल, नील, समुद्रघोष, पुत्रसहित पूर्णचंद्र, स्कंद, चंद्ररश्मि, जांबव, संकट, समाधिबहल, सिंहजघन, इंद्रवज्र और बल । इनमें से प्रत्येक के रथ में सौ-सौ घोड़े जुते हुए थे॥ 16-19॥ पदातियों के मध्य में स्थित, परम तेजस्वी शेष कुमार मन के समान वेगशाली सिंह, वराह, हाथी और व्याघ्ररूपी वाहनों के द्वारा लंका की ओर चले ॥20॥ जिनके ऊपर नाना चिह्नों को धारण करने वाले छत्र फिर रहे थे, जो नाना तोरणों से चिह्नित थे, आकाशांगण में जो रंग-बिरंगी ध्वजाओं से सहित थे, जिनकी सेनारूपी सागर से अत्यंत गंभीर शब्द उठ रहा था, जो मान को धारण कर रहे थे, तथा अतिशय उन्नत थे ऐसे वे सब कुमार दिशाओं को आच्छादित करते हुए लंकापुरी के बाह्य मैदान में पहुँचकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यह क्या आश्चर्य है ? जो यह लंका निश्चिंत स्थित है ॥21-23॥ इस लंका के निवासी स्वस्थ तथा शांतचित्त दिखाई पड़ते हैं और यहाँ के योद्धा भी ऐसे स्थित हैं मानो इनके यहाँ पहले युद्ध हुआ ही नहीं हो ॥24॥ अहो लंकापति का यह विशाल धैर्य, यह उन्नत गांभीर्य, और यह लक्ष्मी तथा प्रताप से उन्नत सत्त्व-बल धन्य हैं ॥25॥ यद्यपि महाबलवान् कुंभकर्ण, इंद्रजित् तथा मेघनाद बंदीगृह में पड़े हुए हैं, तथा प्रचंड बलशाली भी जिन्हें पकड़ नहीं सकते थे ऐसे अक्ष आदि अनेक शूरवीर युद्ध में मारे गये हैं तथापि इस धनी को कोई शंका उत्पन्न नहीं हो रही है॥ 26-27॥ इस प्रकार विचारकर तथा परस्पर वार्तालाप कर परम आश्चर्य को प्राप्त हुए कुमार कुछ शंकित से हो गये ॥28॥

तदनंतर सुभूषण नाम से प्रसिद्ध विभीषण के पुत्र ने, धैर्यशाली, भ्रांतिरहित वातायन से इस प्रकार कहा कि ॥29॥ भय छोड़ शीघ्र ही लंका में प्रवेश कर कुलांगनाओं को छोड़ इस समस्त लोगों को अभी हिलाता हूँ ॥30॥ उसके वचन सुन विद्याधरों के कुमार समस्त नगरी को ग्रसते हुए के समान सर्वत्र छा गये । वे कुमार महाशूरवीरता से अत्यंत उद्दंड थे, कठिनता से वश में करने योग्य थे, कलह-प्रिय थे, आशीविष-सर्प के समान थे, अत्यंत क्रोधी थे, गर्वीले थे, बिजली के समान चंचल थे, भोगों से लालित हुए थे, अनेक संग्रामों में कीर्ति को उपार्जित करने वाले थे, बहुत भारी सेना से युक्त थे तथा शस्त्रों की किरणों से सुशोभित थे ॥31-33॥ सिंह तथा हाथी आदि के शब्दों से मिश्रित भेरी एवं दुंदुभि आदि के अत्यंत भयंकर शब्द को सुन लंका परम कंपन को प्राप्त हुई सारी लंका काँप उठी ॥34॥ जो आश्चर्यचकित हो भयभीत हो गई थीं, जिनके नेत्र अत्यंत चंचल थे और जिनके आभूषण गिर-गिरकर शब्द कर रहे थे ऐसी स्त्रियाँ सहसा पतियों की गोद में जा छिपी ॥35॥ जो अत्यंत विह्वल थे तथा जिनके वस्त्र वायु से इधर-उधर उड़ रहे थे ऐसे विद्याधरों के युगल आकाश में बहुत ऊँचाई पर शब्द करते हुए चक्राकार भ्रमण करने लगे ॥36॥ रावण का जो भवन महारत्नों की किरणों से देदीप्यमान था, जिसमें मंगलमय तुरही तथा मृदंगों का गंभीर शब्द हो रहा था, जिसमें रहने वाली स्त्रियाँ अविरल उत्तम संगीत तथा नृत्य में निपुण थीं, जो जिनपूजा में तत्पर कन्याजनों से व्याप्त थी और जिसमें उत्तम स्त्रियों के विलासों से भी काम उन्माद को प्राप्त नहीं हो रहा था ऐसे रावण के भवन में जो अंतःपुररूपी सागर विद्यमान था वह तुरही के कठोर शब्द को सुन क्षोभ को प्राप्त हो गया ॥37-38॥ सब ओर से आकुलता से भरा भूषणों के शब्द से मिश्रित ऐसा मनोहर एवं गंभीर शब्द उठा जो मानो वीणा का ही विशाल शब्द था ॥40॥ कोई स्त्री विह्वल होती हुई विचार करने लगी कि हाय-हाय यह क्या कष्ट आ पड़ा । शत्रुओं के द्वारा किये हुए इस क्रूरता पूर्ण कार्य में क्या आज मरना पड़ेगा ? ॥41॥ कोई स्त्री सोचने लगी कि न जाने मुझे पापी लोग बंदीगृह में डालते हैं या वस्त्ररहित कर लवणसमुद्र में फेंकते हैं ॥ 42॥ इस प्रकार जब नगरी के समस्त लोग आकुलता को प्राप्त थे तथा सब ओर से घबड़ाहट के शब्द सुनाई पड़ रहे थे तब क्रोध से भरा एवं उन्नत पराक्रम का धारी, मंदोदरी का पिता मय नामक महा दैत्य कवच पहिनकर, कवच धारण करने वाले मंत्रियों के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो देदीप्यमान हुआ रावण के भवन में उस प्रकार पहुँचा जिस प्रकार कि श्रीसंपन्न हरिणकेशी इंद्र के भवन आता है, ॥ 43-45॥ तब मंदोदरी ने पिता को बड़ी डाँट दिखाकर कहा कि हे तात ! इस तरह आपको दोषरूपी सागर में निमज्जन नहीं करना चाहिए॥ 46॥ जिसकी घोषणा की गई थी ऐसा जैनाचार क्या तुमने सुना नहीं था । इसलिए यदि अपनी भलाई चाहते हो तो प्रसाद करो शांत होओ ॥47॥ पुत्री के स्वहितकारी वचन सुनकर दैत्यपति मय ने शांत हो अपना शस्त्र उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि सूर्य अपनी किरणों के समूह को संकोच लेता है ॥48॥ तदनंतर जो दुर्भेद्य कवच से आच्छादित था, मणिमय कुंडलों से अलंकृत था और जिसका वक्षःस्थल हार से सुशोभित था ऐसे मय ने अपने जिनालय में प्रवेश किया ॥46॥

इतने में ही उद्वेलसागर के समान आकार को धारण करने वाले कुमार, वेग संबंधी वायु से प्राकार को शिखर रहित करते हुए आ पहुँचे ॥ 50॥ महान् उपद्रव करने में जिनकी लालसा थी ऐसे वे धीरवीर कुमार, लंबे-चौड़े गोपुर के वज्रमय किवाड़ तोड़कर नगरी के भीतर घुस गये ॥51॥ उनके पहुँचते ही नगरी में इस प्रकार का हल्ला मच गया कि ये आ गए, जल्दी भागो; कहाँ जाऊँ ? घर में घुस जाओ; हाय मातः यह क्या आ पडा है ? हे तात ! तात ! देखो तो सही; अरे भले आदमी बचाओ; हे भाई ! 'क्या-क्या' 'ही ही' 'क्यों-क्यों' हे आर्य पुत्र ! लौटो, ठहरो, हाय-हाय बड़ा भय है । इस प्रकार भय से व्याकुल हो चिल्लाते हुए नगरवासियों से रावण का भवन भर गया॥ 52-54॥ कोई एक स्त्री इतनी अधिक घबड़ा गई थी कि वह अपनी गिरी हुई मेखला को अपने ही पैर से लाँघती हुई आगे बढ़ गई और अंत में पृथ्वी पर ऐसी गिरी कि उसके घुटने टूट गये॥ 55॥ खिसकते हुए वस्त्र को जिसने हाथ से पकड़ रक्खा था, जो अत्यंत घबड़ाई हुई थी, जिसने बच्चे को उठा रक्खा था और जो कहीं जाने के लिए तैयार थी ऐसी कोई दुबली-पतली स्त्री भय से काँप रही थी ॥56॥ हड़बड़ाहट के कारण हार के टूट जाने से जो मोतियों के समूह की वर्षा कर रही थी ऐसी कोई एक स्त्री मेघ की रेखा के समान बड़े वेग से कहीं भागी जा रही थी॥ 57॥ भयभीत हरिणी के समान जिसके नेत्र थे, तथा जिसके बालों का समूह बिखर गया था ऐसी कोई एक स्त्री पति के वक्षःस्थल से जब लिपट गई तभी उसकी कँपकँपी छूटी ॥58॥

तदनंतर इसी बीच में लोगों को भयभीत देख शांतिजिनालय के आश्रय में रहने वाले शासन देव, अपने पक्ष की रक्षा करने में उद्यत तथा दयालु चित्त हो भावपूर्ण मन से शीघ्र ही द्वार-पालपना करने के लिए प्रवृत्त हुए **अर्थ**ात् उन्होंने किसी को अंदर नहीं आने दिया ॥56॥ जिनके आकार अत्यंत भयंकर थे, जिन्होंने नाना प्रकार के वेष धारण कर रक्खे थे, जिनके मुख दाँढों की पंक्ति से व्याप्त थे, जिनके नेत्र

मध्याह्न के सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य थे, जो क्षुभित थे क्रोध से विष उगल रहे थे, ओंठ चाब रहे थे, डील-डौल के बड़े थे, नाना वर्ण के महाशब्द कर रहे थे और जो शरीर के देखने मात्र से विषम विकारों में युक्त थे ऐसे वे शासन देव शांतिजिनालय से निकलकर वानरों की सेना पर ऐसे झपटे कि उसे अत्यंत विह्वल कर क्षण भर में खदेड़ दिया ॥60-63॥ वे शासनदेव क्षणभर में सिंह, क्षणभर में अग्नि, क्षणभर में मेघ, क्षणभर में हाथी, क्षणभर में सर्प, क्षणभर में वायु और क्षणभर में पर्वत बन जाते थे ॥64॥ शांतिजिनालय के आश्रय में रहने वाले देवों के द्वारा इन वानरकुमारों को पराभूत देख; वानरों के हित में तत्पर रहने वाले जो देव शिविर के जिनालयों में रहते थे वे भी विक्रिया से आकार बदलकर युद्ध करने के लिए आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि जो अपने स्थानों में निवास करते हैं देव लोग उनके रक्षक होते हैं॥ 65-66॥ तदनंतर देवों का परस्पर भयंकर युद्ध प्रवृत्त होने पर उनकी विकृति देख परमार्थ स्वभाव में भी संदेह होने लगा था ॥67॥ अथानंतर अपने देवों को पराजित होते, दूसरे देवों को बलवान होते और अहंकारी वानरों को लंका के सन्मुख प्रस्थान करते देख महाक्रोध को प्राप्त हुआ परम प्रभावी बुद्धिमान पूर्णभद्र नाम का यक्षेंद्र मणिभद्र नामक यक्ष से इस प्रकार बोला ॥68-69॥ कि इन दयाहीन वानरों को तो देखो जो सब शास्त्रों को जानते हुए भी विकार को प्राप्त हुए हैं ॥70॥ ये लोकमर्यादा और आचार से रहित हैं। देखो, रावण तो आहार छोड़ ध्यान में आत्मा को लगा शरीर में भी निस्पृह हो रहा है तथा अत्यंत शांत चित्त है फिर भी ये उसे मारने के लिए उद्यत हैं, पापपूर्ण चेष्टा युक्त हैं, छिद्र देख प्रहार करने वाले हैं, क्षुद्र हैं और वीरों की चेष्टा से रहित हैं ॥71-72॥ तदनंतर जो दूसरे पूर्णभद्र के समान था ऐसा मणिभद्र बोला कि जो सम्यक्त्व की भावना से सहित है, वीर है, जिनेंद्र भगवान के चरणों का सेवक है, उत्तम लक्षणों से पूर्ण है, शांतचित्त है और महादीप्ति का धारक है ऐसे रावण को पराभव प्राप्त कराने के लिए इंद्र भी समर्थ नहीं है फिर इनकी तो बात ही क्या है ?॥ 73-74॥ तदनंतर तेजस्वी पूर्णभद्र के तथास्तु इस प्रकार कहने पर दोनों यक्षेंद्र विघ्न का नाश करने वाले हुए ॥75॥ तत्पश्चात् क्रोध से भरे दोनों यक्षेंद्रों को युद्ध के लिए उद्यत देख दूसरे देव लज्जा से युक्त तथा भयभीत होते हुए अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥ 76॥ दोनों यक्षेंद्र तीव्र आँधी से प्रेरित पाषाणों की वर्षा करने लगे तथा अत्यंत भयंकर विशाल गर्जना करते हुए प्रलयकाल के मेघ के समान हो गये ॥77॥ उन यक्षेंद्रों की अत्यंत वेगशाली जंघाओं की वायु से प्रेरित हुई विद्याधरों की सेना सूखे पत्तों के ढेर के समान हो गई **अर्थ**ात् भय से इधर-उधर भागने लगी॥ 78॥ उन भागते हुए वानरों का पीछा करते हुए दोनों यक्षेंद्र उलाहना देने के अभिप्राय से भी राम के पास आये॥79॥ उनमें से बुद्धिमान पूर्णभद्र राम की अच्छी तरह प्रशंसा कर बोला कि तुम श्रीमान् राजा दशरथ के पुत्र हो॥ 80॥ अप्रशस्त कार्यों से तुम सदा दूर रहते और शुभकार्यों में सदा उद्यत रहते हो । शास्त्रोंरूपी समुद्र के पार को प्राप्त हो तथा शुद्ध गुणों से उन्नत हो ॥81॥ हे भद्र ! इस तरह सामर्थ्यवान होने पर भी क्या यह कार्य उचित है कि आपकी सेना के लोगों ने नगरवासी जनों को नष्ट-भ्रष्ट किया है ॥82॥ जो जिसके प्रयत्नपूर्वक कमाये हुए धन का हरण करता है वह उसके प्राणों को हरता है क्योंकि धन बाह्य प्राण कहा गया ॥83॥ आपके लोगों ने अमूल्य हीरा वैडूर्यमणि तथा मूंगा आदि से व्याप्त लंकापुरी को विध्वस्त कर दिया है तथा उसकी स्त्रियों को व्याकुल किया है॥ 84॥

तदनंतर सब प्रकार की विधियों के जानने में निपुण, प्रौढ़ नीलकमल के समान कांति को धारण करने वाले लक्ष्मण ने ओजपूर्ण वचन कहे ॥25॥ उन्होंने कहा कि जिस दुष्ट राक्षस ने इन रामचंद्र की प्राणों की अधिक, महागुणों की धारक एवं शीलव्रतरूपी अलंकार को धारण करने वाली प्रिया को छल से हरा है उस रावण के ऊपर तुम दया क्यों कर रहे हो ? ॥86-87॥ हम लोगों ने तुम्हारा क्या अपकार किया है और उसने क्या उपकार किया है सो हे यक्षराज ! कुछ थोड़ा भी तो कहो ॥88॥ जिससे संध्या के समान लाल-लाल ललाट पर कुटिल तथा भयंकर भृकुटि कर कुपित हुए हो तथा बिना कार्य ही यहाँ पधारे हो ॥89॥ तदनंतर अत्यंत भयभीत सुग्रीव ने सुवर्णमय पात्र से उसे अर्घ देकर कहा कि हे यक्षराज ! क्रोध छोड़िए॥90॥ आप समभाव से हमारी सेना तथा साक्षात् ईतिपना को प्राप्त हुए लंका के सैन्य सागर की भी स्थिति देखिए । देखिए दोनों में क्या अंतर है ॥91॥

इतना सब होने पर भी राक्षसों के अधिपति रावण का यह प्रयत्न जारी है । यह रावण पहले भी किसके द्वारा साध्य था ? और फिर बहुरूपिणी विद्या के सिद्ध होने पर तो कहना ही क्या है ? ॥92॥ जिस प्रकार जिनागम के निपुण विद्वान के सामने प्रवादी लोग लड़खड़ा जाते हैं उसी प्रकार युद्ध में कुपित हुए रावण के सामने अन्य राजा लड़खड़ा जाते हैं ॥93॥ इसलिए इस समय मैं क्षमाभाव से बैठे हुए रावण को क्षोभ युक्त करूंगा क्योंकि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य सिद्धि को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार क्षोभ युक्त साधारण पुरुष भी विद्या को सिद्ध नहीं कर पाता ॥94॥ रावण को क्षोभित करने का हमारा उद्देश्य यह है कि हम तुल्य विभव के धारक हो उसके साथ युद्ध

करेंगे अन्यथा हमारा और उसका युद्ध विषम युद्ध होगा ॥95॥
तदनंतर पूर्णभद्र ने कहा कि ऐसा हो सकता है किंतु हे सत्पुरुष ! लंका में जीर्णतृण को भी अणुमात्र भी पीड़ा नहीं करना चाहिए ॥96॥ वेदना आदिक न पहुँचाकर रावण के शरीर की कुशलता रखते हुए उसे क्षोभ उत्पन्न करो । परंतु मैं समझता हूँ कि रावण बड़ी कठिनाई से क्षोभ को प्राप्त होगा ॥97॥ इस प्रकार कहकर जिनके नेत्र प्रसन्न थे, जो भव्यजनों पर स्नेह करने वाले थे, भक्त थे, मुनिसंघ की वैयावृत्य करने में सदा तत्पर रहते थे, और चंद्रमा के समान उज्ज्वल मुख के धारक थे ऐसे यक्षों के दोनों अधिपति राम की प्रशंसा करते हुए सेवकों के साथ अंतर्हित हो गये॥ 98-99॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, जो यक्षेंद्र उलाहना देने आये थे वे लक्ष्मण के कहने से अत्यंत लज्जित होते हुए समचित्त होकर चुपचाप बैठ रहे ॥100॥ जब तक निर्दोषता है तभी तक निकटवर्ती पुरुषों में अधिक प्रीति रहती है सो ठीक ही है क्योंकि उत्पात सहित सूर्य की कौन इच्छा करता है ? **अर्थ**ात् कोई नहीं । भावार्थ□ जिस प्रकार लोग उत्पात रहित सूर्य को चाहते हैं उसी प्रकार दोषरहित निकटवर्ती मनुष्य को चाहते हैं ॥101॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में सम्यग्दृष्टि देवों के प्रातिहार्यपने का वर्णन करने वाला सत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥70॥

## रावण को बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि

इकहत्तरवाँ पर्व
कथा :
अथानंतर यक्षराज को शांत सुन अतिशय बलवान् अंगद, लंका देखने के लिए उद्यत हुआ । महामेघमंडल के समान जिसकी आभा थी, जो मोतियों की मालाओं से अलंकृत था, सफेद चामरों से देदीप्यमान था और महाघंटा के शब्द से शब्दायमान था, ऐसे किष्किंधकांड नामक हाथी पर सवार हुआ अंगद मेघ पृष्ठ पर स्थित पौर्णमासी के चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहा था ॥1-3॥ इसके सिवाय जो बड़ी संपदा से सुशोभित थे ऐसे स्कंद तथा नील आदि कुमार भी घोड़े आदि पर आरूढ़ हो जाने के लिए उद्यत हुए॥ 4॥ जिनके शरीर चंदन से अर्चित थे, जिनके ओंठ तांबूल के रंग से लाल थे, जो नाना प्रकार के मस्तकों के समूह से मनोहर थे, जिनकी भुजाओं के अंत प्रदेश **अर्थ**ात् मणि वंधकटकों से देदीप्यमान थे, जिन्होंने अपने कंधों पर तलवारें रख छोड़ी थीं, जिनके कर्णाभरण चंचल थे, जो चित्र-विचित्र उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके मुकुट सुवर्ण-सूत्रों से वेष्टित थे, जो सुंदर चेष्टाओं के धारक थे, जो दर्पपूर्ण वार्तालाप करते जाते थे, तथा जो उत्तम तेज के धारक थे ऐसे पदाति उन कुमारों के आगे-आगे जा रहे थे॥ 5-6॥ चतुर मनुष्य इनके आगे बाँसुरी वीणा मृदंग आदि बाजों के अनुरूप शृंगारपूर्ण उत्तम नृत्य करते जाते थे ॥8॥ जो मन के हरण करने में निपुण था तथा शंख के शब्दों से संयुक्त था, ऐसा तुरहियों का नाना प्रकार का गंभीर शब्द काहला□रण तूर्य के शब्द के समान जोर-शोर से उठ रहा था ॥9॥
तदनंतर विलास और विभूषणों से युक्त उन चपल कुमारों ने स्वर्ग सदृश लंका में असुरकुमारों के समान प्रवेश किया॥ 10॥ तत्पश्चात् महामहिमा से युक्त अंगद को लंका नगरी में प्रविष्ट देख वहाँ की स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगी॥ 11॥ हे सखि ! देख, जिसके एक कान में दंत निर्मित महाकांति से कोमल निर्मल तालपत्रिका सुशोभित हो रही है और दूसरे कान में समस्त ग्रहों के समूह के समान महाप्रभा से युक्त यह चंचल मणिमय कुंडल शोभा पा रहा है तथा जो अपूर्व चाँदनी की सृष्टि करने में निपुण है ऐसा यह अंगदरूपी चंद्रमा रावण की नगरी में निर्भय हो उदित हुआ है ॥12-14॥ देख, इसने यह क्या प्रारंभ कर रक्खा है ? यह कैसे होगा ? क्या इसकी यह सुंदर क्रीड़ा निर्दोष सिद्ध होगी ?॥ 15॥
तदनंतर जब अंगद के पदाति रावण के भवन की मणिमय बाह्य भूमि में पहुँचे तो उसे मगरमच्छ से युक्त सरोवर समझकर भय को प्राप्त हुए ॥16॥ पश्चात् उस भूमि के रूप की निश्चलता देख जब उन्हें निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्श है तब कहीं वे आश्चर्य से चकित होते हुए आगे बढ़े ॥17॥ सुमेरु की गुहा के आकार, बड़े-बड़े रत्नों से निर्मित तथा मणिमय तोरणों से देदीप्यमान जब भवन के विशाल द्वार पर पहुँचे तो वहाँ, जो अंजनगिरि के समान थे, जिनके गंडस्थल अत्यंत चिकने थे, जिनके बड़े-बड़े दाँत थे, तथा जो अत्यंत देदीप्यमान थे ऐसे इंद्रनील मणि निर्मित हाथियों को और उनके मस्तक पर जिन्होंने पैर जमा रक्खे थे, जिनकी पूँछ ऊपर को उठी हुई थी, जिनके मुख दाँढ़ों से अत्यंत भयंकर थे, जिनके नेत्रों से भय टपक रहा था तथा जिनकी मनोहर जटाएँ थीं ऐसे सिंह के बच्चों को देख

सचमुच के हाथी तथा सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत हो गये और परम विह्वलता को प्राप्त होते हुए भागने लगे ॥18-21॥ तदनंतर उनके यथार्थरूप के जानने वाले अंगद ने जब उन्हें समझाया तब कहीं बड़ी कठिनाई से बहुत देर बाद उन्होंने उल्टे पैर रक्खे **अर्थ**ात् वापिस लौटे॥ 22॥ जिनके नेत्र चंचल हो रहे थे ऐसे योद्धाओं ने रावण के भवन में डरते-डरते इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार कि मृगों के झुंड सिंह के स्थान में प्रवेश करते हैं॥ 23॥ बहुत से द्वारों को उल्लंघकर जब वे आगे जाने के लिए असमर्थ हो गये तब सघन भवनों की रचना में जंमांध के समान इधर-उधर भटकने लगे ॥24॥ वे इंद्र नीलमणि निर्मित दीवालों को देखकर उन्हें द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियों से खचित भवनों को आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फलस्वरूप दोनों ही स्थानों में शिलाओं से मस्तक टकरा जाने के कारण वे वेग से गिर जाते थे, अत्यधिक आकुलता को प्राप्त होते थे और वेदना के कारण उनके नेत्र बंद हो जाते थे॥ 25-26॥ किसी तरह उठकर आगे बढ़ते थे तो दूसरी कक्ष में पहुँचकर फिर आकाश-स्फटिक की दीवालों में वेग से टकरा जाते थे ॥27॥ जिनके पैर और घुटने टूट रहे थे तथा जो ललाट की तीव्र चोट से तिलमिला रहे थे, ऐसे वे पदाति यद्यपि लौटना चाहते थे पर उन्हें निकलने का मार्ग ही नहीं मिलता था ॥28॥ जिस किसी तरह इंद्रनील मणिमय भूमि का स्मरण कर वे लौटे तो उसी के समान दूसरी भूमि देख उससे छकाये गये और पृथिवी के नीचे जो घर बने हुए थे उनमें जा गिरे ॥26॥ तदनंतर कहीं पृथिवी तो नहीं फट पड़ी है, इस शंका से दूसरे घर में गये और वहाँ इंद्रनील मणिमय जो भूमियाँ थीं उनमें जान-जानकर धीरे-धीरे डग देने लगे ॥30॥ कोई एक स्त्री स्फटिक की सीढ़ियों से ऊपर जाने के लिए उद्यत थी उसे देखकर पहले तो उन्होंने समझा कि यह स्त्री अधर आकाश में स्थित है परंतु बाद में पैरों के रखने उठाने की क्रिया से निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है ॥31॥ उस स्त्री से पूछने की इच्छा से भीतर की दीवालों में टकराकर रह गये तथा विह्वल होने लगे ॥32॥ वे शांतिजिनालय के ऊँचे शिखर देख तो रहे थे परंतु स्फटिक की दीवालों के कारण वहाँ तक जाने में समर्थ नहीं थे ॥ 33॥ हे विलासिनि ! मुझे मार्ग बताओ इस प्रकार पूछने के लिए शीघ्रता से भरे किसी सुभट ने खंभे में लगी हुई पुतली का हाथ पकड़ लिया ॥34॥ आगे चलकर हाथ में स्वर्णमयी बेत्रलता को धारण करने वाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखा उससे किसी सुभट ने पूछा कि शीघ्र ही शांति-जिनालय का मार्ग कहो ॥35॥ परंतु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो अरे यह अहंकारी तो कुछ कहता ही नहीं है यह कहकर किसी सुभट ने उसे वेग से एक थप्पड़ मार दी पर इससे उसी की अंगुलियाँ चूर-चूर हो गई ॥36॥ तदनंतर हाथ से स्पर्श कर उन्होंने जाना कि यह सचमुच का द्वारपाल नहीं किंतु कृत्रिम द्वारपाल है पत्थर का पुतला है । इसके पश्चात् बड़ी कठिनाई से द्वार मालूम कर वे दूसरी कक्ष में गये ॥37॥ ऐसा तो नहीं है कि कहीं यह द्वार न हो किंतु महानीलमणियों से निर्मित दीवाल हो इस प्रकार के संशय को प्राप्त हो उन्होंने पहले हाथ पसारकर देख लिया ॥38॥ उन सबकी भ्रांति इतनी कुटिल हो गई कि वे स्वयं जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से निकलने में असमर्थ हो गये अतः निरुपाय हो उन्होंने शांति-जिनालय में पहुँचने का ही विचार स्थिर किया ॥ 36॥ तदनंतर किसी मनुष्य को देख और उसकी बोली से उसे सचमुच का मनुष्य जान किसी सुभट ने उसके केश पकड़कर कठोर शब्दों में कहा कि चल आगे चल शांति-जिनालय का मार्ग दिखा । इस प्रकार कहने पर जब वह आगे चलने लगा तब कहीं वे निराकुल हुए ॥ 40-41॥

तदनंतर कुसुमांजलियों के साथ-साथ जय-जय ध्वनि को छोड़ते हुए वे सब हर्ष उत्पन्न करने वाले भी शांति-जिनालय में पहुँचे ॥42॥ वहाँ उन्होंने कितने ही सुंदर प्रदेशों में स्फटिकमणि के खंभों द्वारा धारण किये हुए नगर आश्चर्यचकित हो इस प्रकार देखे मानो आकाश में ही स्थित हों ॥46॥ यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो और यह सबसे बड़ा आश्चर्य देखो इस प्रकार वे सब परस्पर एक दूसरे को जिनालय की उत्तम वस्तुएँ दिखला रहे थे ॥44॥ अथानंतर जिसने वाहन का पहले से ही त्यागकर दिया था, जो मंदिर के आश्चर्यकारी उपकरणों की प्रशंसा कर रहा था, जिसने हस्तरूपी कमल की बीडियाँ ललाट पर धारण कर रक्खी थीं, जिसने प्रदक्षिणाएँ दी थी, जो स्तोत्र पाठ से मुखर मुख को धारण कर रहा था, जिसने समस्त सैनिकों को बाह्य कक्ष में ही खड़ा कर दिया था जो प्रमुख-प्रमुख निकट के लोगों से घिरा था, जो विलासिनी जनों का मन चंचल करने में समर्थ था; जिसके नेत्र-कमल खिल रहे थे जो आद्यमंडप की दीवालों पर मूक चित्रों द्वारा प्रस्तुत जिनेंद्रभगवान के चरित को देखता हुआ उन्हें भाव नमस्कार कर रहा था, अत्यंत धीर था और विशाल आनंद से युक्त था, ऐसे अंगदकुमार ने शांतिनाथ भगवान के उत्तम जिनालय में प्रवेश किया तथा विधिपूर्वक वंदना की ॥45-46॥ तदनंतर वहाँ उसने श्रीशांतिनाथ भगवान के सम्मुख अर्ध पर्यंकासन बैठे हुए रावण को देखा । वह रावण, इंद्रनील मणियों के किरण-समूह के समान कांति वाला था और भगवान के सामने ऐसा बैठा था मानो सूर्य के सामने राहु ही बैठा हो । वह एकाग्रचित्त हो विद्या का उस प्रकार ध्यान कर

रहा था जिस प्रकार कि भरत दीक्षा लेने का विचार करता रहता था ॥50-51॥
उसने रावण से कहा कि रे रावण ! इस समय तेरा क्या हाल है ? सो कह । अब मैं तेरी वह दशा करता हूँ जिसे क्रुद्ध हुआ यम भी करने के लिए समर्थ नहीं है ॥52॥ तूने जिनेंद्रदेव के सामने यह क्या कपट फैला रक्खा है ? तुझ पापी को धिक्कार है । तूने व्यर्थ ही सत्क्रिया का प्रारंभ किया है ॥53॥ ऐसा कहकर उसने उसी के उत्तरीय वस्त्र के एक खंड से उसे पीटना शुरू किया तथा मुंह बनाकर गर्व के साथ कहकहा शब्द किया **अर्थ**ात् जोर का अट्टाहस किया ॥54॥ वह रावण के सामने रखे हुए पुष्पों को उठा कठोर शब्द करता हुआ नीचे स्थित स्त्रीजनों के मुख पर कठोर प्रहार करने लगा । उसने नेत्रों को कुछ संकुचित कर दुष्टतापूर्वक स्त्री के दोनों हाथों से स्वर्णमय कमल छीन लिये तथा उनसे जिनेंद्र भगवान् की पूजा की ॥56॥ फिर आकर दुःखदायी वचनों से उसे बार-बार खिझाकर उस चपल अंगद ने रावण के हाथ से अक्षमाला लेकर तोड़ डाली ॥57॥ जिससे वह माला उसके सामने बिखर गई । थोड़ी देर बाद सब जगह से बिखरी हुई उसी माला को उठा धीरे-धीरे पिरोया और फिर उसके हाथ में दे दी॥58॥ तदनंतर उस चपल अंगद ने रावण का हाथ खींच वह माला पुनः तोड़ डाली और फिर पिरोकर उसके गले में डाली । फिर निकालकर मस्तक पर रक्खी॥ 59॥ तत्पश्चात् वह अंतःपुररूपी कमलवन के बीच में जाकर गरमी के कारण संतप्त जंगली हाथी की क्रीड़ा करने लगा अर्थात् जिस प्रकार गरमी से संतप्त हाथी कमलवन में जाकर उपद्रव करता है उसी प्रकार अंगद भी अंतःपुर में जाकर उपद्रव करने लगा ॥60॥ बंधन से छूटे दुष्ट दुर्दांत घोड़े के समान चंचल अंगद निःशंक हो अंतःपुर के विलोड़न करने में प्रवृत्त हुआ ॥61॥ उसने किसी स्त्री का वस्त्र छीन उसकी रस्सी बना उसी के कंठ में बांधी और उस पर बहुत वजनदार पदार्थ रखवाये । यह सब करता हुआ वह कुछ-कुछ हँसता जाता था ॥62॥ किसी स्त्री के कंठ में उत्तरीय वस्त्र बाँधकर उसे खंभे से लटका दिया फिर जब वह दुःख से छटपटाने लगी तब उसे शीघ्र ही छोड़ दिया ॥63॥ क्रीडा करने में उद्यत अंगद ने मेखला सूत्र से सहित किसी स्त्री को अपने ही आदमी के हाथ में पाँच दीनार में बेच दिया ॥64॥ उसने किसी स्त्री के नूपुर कानों में, और मेखला केशपाश में पहिना दी तथा मस्तक का मणि चरणों में बाँध दिया ॥65॥ उसने भय से काँपती हुई कितनी ही अन्य स्त्रियों को परस्पर एक दूसरे के शिर के बालों से बाँध दिया तथा किसी अन्य स्त्री के मस्तक पर शब्द करता हुआ चतुर मयूर बैठा दिया ॥66॥ इस प्रकार जिस तरह कोई सांड गायों के समूह को अत्यंत व्याकुल कर देता है उसी तरह उसने रावण के समीप ही उसके अंतःपुर को अत्यंत व्याकुल कर दिया था ॥67॥ उसने क्रुद्ध होकर रावण से कहा कि अरे नीच राक्षस ! तूने उस समय पराक्रम से रहित होने के कारण माया से राजपुत्री का अपहरण किया था परंतु इस समय मैं तेरे देखते-देखते तेरी सब स्त्रियों को अपहरण करता हूँ । यदि तेरी शक्ति हो तो प्रतीकार कर ॥68-69॥ इस प्रकार कह वह सिंह के समान रावण के सामने उछला और जो उसे सबसे अधिक प्रिय थी, जो भय से काँप रही थी, जिसके नेत्र अत्यंत चंचल थे और जो अत्यंत कातर थी ऐसी पट्टरानी मंदोदरी की चोटी पकड़कर उस तरह खींच लाया जिस तरह कि राजा भरतराज लक्ष्मी को खींच लाये थे ॥70-71॥ तदनंतर उसने रावण से कहा कि हे शूर ! जो तुझे प्राणों से अधिक प्यारी है तथा जो गुणों की भूमि है, ऐसी यह वही मंदोदरी महारानी हरी जा रही है॥ 72॥ यह सभामंडप में वर्तमान विद्याधरों के राजा सुग्रीव की उत्तम चमर ढोलने वाली होगी ॥73॥ तदनंतर जो कँपकँपी के कारण खिसकते हुए स्तन तट के वस्त्र को अपने चंचल हाथ से बार-बार ठीक कर रही थी, निरंतर झरते हुए अश्रुजल से जिसका अधरोष्ठ बाधित हो रहा था और हिलते हुए आभूषणों के शब्द से जिसका समस्त शरीर शब्दायमान हो रहा था ऐसी कृशांगी मंदोदरी परम दीनता को प्राप्त हो कभी भर्तार के चरणों में पड़ती और कभी भुजाओं के मध्य प्रवेश करती हुई भर्तार से इस प्रकार बोली कि॥ 74-76 ॥ हे नाथ ! मेरी रक्षा करो, क्या मेरी इस दशा को नहीं देख रहे हो ? क्या तुम और ही हो गए हो ? क्या अब तुम वह दशानन नहीं रहे ? ॥77॥ अहो ! तुमने तो निर्ग्रंथ मुनियों जैसी वीतरागता धारणकर ली पर इस प्रकार के दुःख उपस्थित होने पर इस वीतरागता से क्या होगा ?॥78॥ कुछ भी ध्यान करने वाले तुम्हारे इस पराक्रम को धिक्कार हो जो खड्ग से इस पापी का शिर नहीं काटते हो ॥79॥ जिसे तुमने पहले कभी चंद्र और सूर्य के समान तेजस्वी मनुष्यों से प्राप्त होने वाला पराभव नहीं सहा सो इस समय इस क्षुद्र से क्यों सह रहे हो ? ॥80 । यह सब हो रहा था परंतु रावण निश्चय के साथ प्रगाढ़ ध्यान में अपना चित्त लगाये हुआ था वह मानो कुछ सुन ही नहीं रहा था । वह अर्ध पर्यंकासन से बैठा था, मत्सरभाव को उसने दूर कर दिया था, मंदरगिरि की विशाल गुफाओं से प्राप्त हुई रत्नराशि के समान उसकी महाकांति थी, वह समस्त इंद्रियों की क्रिया से रहित था, विद्या की आराधना में तत्पर था, निष्कंप शरीर का धारक था, अत्यंत धीर था और ऐसा जान पड़ता था मानो मिट्टी का पुतला ही हो ॥81-83॥ जिस प्रकार राम सीता का ध्यान करते थे उसी प्रकार वह विद्या का ध्यान कर रहा था । इस तरह वह अपनी स्थिरता से मंदरगिरि की समानता को प्राप्त हो रहा था ॥

84॥
अथानंतर जिस समय मंदोदरी रावण से उस प्रकार कह रही थी उसी समय दशों दिशाओं को प्रकाशित करती एवं जय-जय शब्द का उच्चारण करती बहुरूपिणी विद्या उसके सामने खड़ी हो गई॥85॥ उसने कहा भी कि हे देव ! मैं सिद्ध हो गई हूँ, आपकी आज्ञापालन करने में उद्यत हूँ, हे नाथ ! आज्ञा दी जाय, समस्त संसार में मुझे सब साध्य है॥ 86॥ प्रतिकूल खड़े हुए एक चक्रधर को छोड़ मैं आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हुई समस्त लोक को आपके अधीन कर सकती हैं ॥87॥ हे उत्तमपुरुष ! चक्ररत्न तो तुम्हारे ही हाथ में है । राम लक्ष्मण आदि अन्य पुरुष मेरा क्या ग्रहण करेंगे **अर्थ**ात् उनमें मेरे ग्रहण करने की शक्ति ही क्या है ? ॥88॥ हमारी जैसी विद्याओं का यही स्वभाव है कि हम चक्रवर्ती का कुछ भी पराभव करने के लिए समर्थ नहीं हैं और इसके अतिरिक्त दूसरे का तो कहना ही क्या है ? ॥ 89॥ कहो आज, आप से अप्रसन्न रहने वाले समस्त दैत्यों का संहार करूँ या समस्त देवों का ?॥90॥ क्षुद्र विद्याओं से गर्वीले, तृण के समान तुच्छ दयनीय विद्याधरों में मेरा कुछ भी आदर नहीं है अर्थात् उन्हें कुछ भी नहीं समझती हूँ॥ 91॥ इस तरह प्रणाम कर विद्या जिसकी उपासना कर रही थी, जिसका ध्यान पूर्ण हो चुका था, जो परमदीप्ति के मध्य स्थित था तथा जो उदार चेष्टा का धारक था ऐसा दशानन जब तक शांति-जिनालय की प्रदक्षिणा करता है तब तक सूर्य के समान तेजस्वी अंगद, खेदखिन्न शरीर की धारक सुंदरी मंदोदरी को छोड़ आकाश में उड़कर राम से जा मिला॥92-93॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण नामक पद्मायन में रावण के बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि का वर्णन करने वाला इकहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥71॥

## रावण का युद्ध संबंधी निश्चय

बहत्तरवां पर्व
कथा :
अथानंतर रावण की अठारह हजार स्त्रियां एक साथ रुदन करती उसके चरणों में पड़कर निम्न प्रकार मधुर शब्द कहने लगीं ॥1॥ उन्होंने कहा हे नाथ ! समस्त विद्याधरों के अधिपति जो आप सो आपके विद्यमान रहते हुए भी बालक अंगद ने आकर आज हम सबको अपमानित किया है ॥2॥ तेज के उत्तम स्थान स्वरूप आपके ध्यानारूढ़ रहने पर वह नीच विद्याधररूपी जुगनू विकारभाव को प्राप्त हुआ॥ 3॥ आपके सामने सुग्रीव के दुष्ट बालक ने नि:शंक हो हम लोगों की जो दशा की है उसे आप देखो ॥4॥ उन स्त्रियों के वचन सुनकर जो उन्हें सांत्वना देने में तत्पर था तथा जिसकी दृष्टि निर्मल थी ऐसा रावण कुपित होता हुआ बोला कि हे देवियो ! दुःख छोड़ो और प्रकृतिस्थ होओ शांति धारण करो । वह जो ऐसी चेष्टा करता है सो निश्चित जानो कि वह मृत्यु के पाश में बद्ध हो चुका है ॥5-6॥ हे वल्लभाओ ! मैं कल ही रणांगण में सुग्रीव को निर्ग्रीव ग्रीवारहित और प्रभामंडल को तमोमंडलरूप कर दूंगा ॥7॥ कीट के समान तुच्छ उन भूमिगोचरियों राम लक्ष्मण के ऊपर क्या क्रोध करना है ? किंतु उनके पक्ष पर एकत्रित हुए जो समस्त विद्याधर हैं उन्हें अवश्य मारूँगा॥ 8॥ हे प्रिय स्त्रियों ! शत्रु तो मेरी भौंह के इशारे मात्र से साध्य हैं फिर अब तो बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई अतः उससे वशीभूत क्यों न होंगे ? ॥6॥ इस प्रकार उन स्त्रियों को सांत्वना देकर रावण ने मन में सोचा कि अब तो मैंने शत्रुओं को मार लिया । तदनंतर जिनमंदिर से निकलकर वह स्नान आदि शरीर संबंधी कार्य करने में लीन हुआ ॥10॥
अथानंतर जिसमें नाना प्रकार के वादित्रों से आनंद मनाया जा रहा था तथा जो नाना प्रकार के अद्भुत नृत्यों से सहित था ऐसा, कामदेव के समान सुंदर रावण का स्नान-समारोह संपन्न हुआ ॥11॥ जो कांतिरूपी चाँदनी में निमग्न होने के कारण श्यामा **अर्थ**ात् रात्रि के समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही श्यामा अर्थात् नवयौवनवती स्त्रियों ने पूर्णचंद्र के समान चाँदी के कलशों से उसे स्नान कराया ॥12॥ कमल के समान कांति वाली होने से जो प्रातः संध्या के समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही स्त्रियों ने बालसूर्य के समान देदीप्यमान स्वर्णमय कलशों से आदरपूर्वक उसे नहलाया था ॥13॥ कुछ अन्य स्त्रियों ने नीलमणि से निर्मित उत्तम कलशों से उसे स्नान कराया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमल के पत्र पुटों से लक्ष्मी नामक देवियों ने ही स्नान कराया हो॥ 14॥ कितनी ही स्त्रियों ने प्रातःकालीन घाम के समान लाल वर्ण के कलशों से, कितनी ही स्त्रियों ने कदलीवन के भीतरी भाग के समान सफेद रंग के कलशों से तथा कितनी ही स्त्रियों ने सुगंधि के द्वारा भ्रमर समूह को आकर्षित करने वाले अन्य कलशों से उसे नहलाया था॥ 15॥ स्नान के पूर्व उत्तम लीलावती स्त्रियों ने उससे नाना प्रकार के सुगंधित उबटनों से उबटन लगाया था और उसके बाद उसने नाना प्रकार के मणियों की

फैलती हुई कांति से युक्त उत्तम आसन पर बैठकर स्नान किया था ॥16॥ स्नान करने के बाद उसने अलंकार धारण किये और तदनंतर उत्तम भावों से युक्त हो श्रीशांति-जिनालय में पुनः प्रवेश किया॥ 17 । वहाँ उसने स्तुति में तत्पर रहकर चिरकाल तक अर्हंत भगवान् की उत्तम पूजा की, मन, वचन, काय से प्रणाम किया और उसके बाद भोजनगृह में प्रवेश किया ॥18॥ वहाँ चार प्रकार का उत्तम आहार कर वह विद्या की परीक्षा करने के लिए क्रीडाभूमि में गया ॥19॥ वहाँ उसने विद्या के प्रभाव से अनेक रूप बनाये तथा नाना प्रकार के ऐसे आश्चर्यजनक कार्य किये जो अन्य विद्याधरों को दुर्लभ थे ॥20॥ उसने पृथ्वी पर इतने जोर से हाथ पटका कि पृथ्वी काँप उठी और उस पर स्थित शत्रुओं के शरीर घूमने लगे तथा शत्रु सेना भयभीत हो मरण की शंका से चिल्लाने लगी ॥21॥ तदनंतर विद्या की परीक्षा कर चुकने वाले रावण से मंत्रियों ने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपको छोड़ और कोई दूसरा राम को मारने वाला नहीं है ॥22॥ रणांगण में कुपित हो बाण छोड़ने वाले राम के सामने खड़ा होने के लिए आपके सिवाय और कोई दूसरा समर्थ नहीं है ॥23॥
अथानंतर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों से संपन्न रावण, विद्या के प्रभाव से एक बड़ी सेना बना, चक्ररत्न को धारण करता हुआ उस प्रमद नामक उद्यान की ओर चला जहाँ सीता का निवास था ॥24॥ उस समय धीरवीर मंत्रियों से घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो देवों से घिरा हुआ इंद्र ही हो । अथवा जो बिना किसी रोक-टोक के चला आ रहा था ऐसा रावण सूर्य के समान सुशोभित हो रहा था ॥25॥ । उसे आता देख विद्याधरियों ने कहा कि हे शुभे ! सीते ! देख, रावण की महाकांति देख ॥26॥ जो नाना धातुओं से चित्र-विचित्र हो रहा है ऐसे पुष्पक विमान से उतरकर यह श्रीमान् महाबलवान् ऐसा चला आ रहा है मानो पर्वत की गुफा से निकलकर सूर्य की किरणों से संतप्त हुआ उन्मत्त गजराज ही आ रहा हो । इसका समस्त शरीर कामाग्नि से व्याप्त है तथा यह पूर्णचंद्र के समान मुख को धारण कर रहा है ॥ 27-28॥ यह फूलों की शोभा से व्याप्त तथा भ्रमरों के संगीत से मुखरित प्रमद उद्यान में प्रवेश कर रहा है । जरा, इस पर दृष्टि तो डालो ॥ 29॥ अनुपम रूप को धारण करने वाले इस रावण को देखकर तेरी दृष्टि सफल हो जावेगी । यथार्थ में इसका रूप ही उत्तम है ॥30॥ तदनंतर सीता ने निर्मल दृष्टि से बाहर और भीतर धनुष के द्वारा अंधकार उत्पन्न करने वाले रावण का बल देख इस प्रकार विचार किया कि इसके इस प्रचंड बल का पार नहीं है । राम और लक्ष्मण भी इसे युद्ध में बड़ी कठिनाई से जीत सकेंगे ॥31-32॥ मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ जो युद्ध में राम-लक्ष्मण अथवा भाई भामंडल के मरने का समाचार सुनूंगी ॥33॥ इस प्रकार चिंता को प्राप्त होने से जिसकी आत्मा अत्यंत विह्वल हो रही थी, तथा जो भय से काँप रही थी ऐसी सीता के पास आकर रावण बोला कि हे देवि ! मुझ पापी ने तुम्हें छल से हरा था सो क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए सत्पुरुषों के लिए क्या यह उचित है ? ॥34-35॥ जान पड़ता है कि किसी अवश्यंभावी कर्म की यह दशा है अथवा परम स्नेह और सातिशय बलवान मोह का यह परिणाम है ॥36॥ मैंने पहले अनेक मुनियों के सन्निधान में वंदनीय श्री भगवान् अनंतवीर्य केवली के पादमूल में यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं वरेगी मैं उसके साथ रमण नहीं करूँगा भले ही वह उर्वशी, रंभा अथवा और कोई मनोहारिणी स्त्री हो ॥37-38॥ हे जगत् की सर्वोत्तम सुंदरि ! इस सत्यव्रत का पालन करता हुआ मैं तुम्हारे प्रसाद की प्रतीक्षा करता रहा हूँ और बलपूर्वक मैंने तुम्हारा रमण नहीं किया है ॥36॥ हे वैदेहि ! अब मेरी भुजाओं से प्रेरित बाणों से तुम्हारा आलंबन जो राम था सो छिन्न होने वाला है इसलिए पुष्पक विमान में आरूढ़ हो अपनी इच्छानुसार जगत् में विहार करो ॥40॥ सुमेरु के शिखर, अकृत्रिम चैत्यालय, समुद्र और महानदियों को देखती हुई अपने आपको सुखी करो ॥41॥
तदनंतर अश्रुओं के भार से जिसका कंठ रुंध गया था ऐसी सीता बड़े कष्ट से आदरपूर्वक हाथ जोड़ करुण स्वर में रावण से बोली ॥42॥ कि हे दशानन ! यदि मेरे प्रति तुम्हारी प्रीति है अथवा मुझ पर तुम्हारी प्रसन्नता है तो मेरा यह वचन पूर्ण करने के योग्य हो ॥43॥युद्ध में राम तुम्हारे सामने आवे तो कुपित होने पर भी तुम मेरा संदेश कहे बिना उन्हें नहीं मारना ॥44॥ उनसे कहना कि हे राम ! भामंडल की बहिन ने तुम्हारे लिए ऐसा संदेश दिया है कि कर्मयोग से तुम्हारे विषय की युद्ध में अन्यथा बात सुन महात्मा राजर्षि जनक की पुत्री सीता, अत्यधिक शोक के भार से आक्रांत होती हुई आँधी से ताड़ित दीपक की शिखा के समान क्षणभर में शोचनीय दशा को प्राप्त हुई है । हे प्रभो! मैंने जो अभी तक प्राण नहीं छोड़े हैं सो आपके समागम की उत्कंठा से ही नहीं छोड़े हैं॥45-47॥ इतना कह वह मूर्छित हो नेत्र बंद करती हुई उस तरह पृथिवी पर गिर पड़ी जिस तरह कि मदोन्मत्त हाथी के द्वारा खंडित सुवर्णमयी कल्पलता गिर पड़ती है ॥48॥
तदनंतर सीता की वैसी दशा देख कोमल चित्त का धारी रावण परम दुःखी हुआ तथा इस प्रकार विचार करने लगा कि अहो ! कर्मबंध के कारण इनका यह स्नेह निकाचित स्नेह है-कभी छूटने वाला नहीं है । जान पड़ता है कि इसका संसाररूपी गर्त में रहते कभी अवसान नहीं होगा ॥46-50॥मुझे बार-बार धिक्कार है मैंने यह क्या निंदनीय कार्य किया जो परस्पर प्रेम से युक्त इस मिथुन का विछोह कराया ॥

51॥ मैं अत्यंत पापी हूँ बिना प्रयोजन ही मैंने साधारण मनुष्य के समान सत्पुरुषों से अत्यंत निंदनीय अपयशरूपी मल प्राप्त किया है ॥ 52॥ मुझ दुष्ट ने कमल के समान शुद्ध विशाल कुल को मलिन किया है । हाय-हाय मैंने यह अकार्य कैसे किया ? ॥53॥ जो बड़े-बड़े पुरुषों को सहसा मार डालती है, जो किंपाकफल के समान है तथा दुःखों की उत्पत्ति की भूमि है ऐसी स्त्री को धिक्कार है ॥54॥ सामान्यरूप से स्त्रीमात्र, नागराज के फण पर स्थित मणि की कांति के समान मोह उत्पन्न करने वाली है और परस्त्री विशेषरूप से मोह उत्पन्न करने वाली है ॥55॥ यह नदी के समान कुटिल है, भयंकर है, धर्म **अर्थ** को नष्ट करने वाली है, और समस्त अशुभों की खानि है । यह सत्पुरुषों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़ने के योग्य है ॥56॥ जो सीता पहले इतनी मनोहर थी कि दिखने पर मानो अमृत से ही मुझे सींचती थी और समस्त देवियों से भी अधिक प्रिय जान पड़ती थी आज वही परासक्त हृदया होने से विषभृत कलशी के समान मुझे अत्यंत उद्वेग उत्पन्न कर रही है ॥57-58॥ नहीं चाहने पर भी जो पहले मेरे मन को अशून्य करती थी अर्थात् जो मुझे नहीं चाहती थी फिर भी मैं मन में निरंतर जिसका ध्यान किया करता था वही आज जीर्णतृण के समान अनादर को प्राप्त हुई है ॥56॥ अन्य पुरुष में जिसका चित्त लग रहा है ऐसी यह सीता यदि मुझे चाहती भी है तो सद्भाव से रहित इससे मुझे क्या प्रीति हो सकती है ? ॥60॥ जिस समय मेरा विद्वान भाई विभीषण, मेरे अनुकूल था तथा उसने हित का उपदेश दिया था उस समय यह दुष्ट मन इस प्रकार शांति को प्राप्त नहीं हुआ ॥ 61॥ अपितु उसके उपदेश से प्रमाद के वशीभूत हो उल्टा विकारभाव को प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि प्रायःकर पुण्यात्मा पुरुषों का ही मन वश में रहता है ॥62॥

यह विचार करने के अनंतर रावण ने पुनः विचार किया कि कल संग्राम करने के विषय में मंत्रियों के साथ मंत्रणा की थी फिर इस समय वीर लोगों के द्वारा निंदित मित्रता की चर्चा कैसी ? ॥63॥ युद्ध करना और करुणा प्रकट करना ये दो काम विरुद्ध हैं । अहो ! मैं एक साधारण पुरुष की तरह इस महान संकट को प्राप्त हुआ हूँ ॥64॥ यदि मैं इस समय दयावश राम के लिए सीता को सौंपता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे क्योंकि सबके चित्त को समझना कठिन है ॥65॥ जो चाहे जो करने में स्वतंत्र है ऐसा निर्दय मनुष्य सुख से जीवन बिताता और जिसका मन दया से कोमल है ऐसा मेरे समान पुरुष दुःख से जीवन काटता है ॥66॥ यदि मैं सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओं से युक्त राम-लक्ष्मण को युद्ध में निरस्त कर जीवित पकड़ लूँ और पश्चात् वैभव के साथ राम के लिए सीता को वापिस सौंपूं तो ऐसा करने से मुझे संताप नहीं होगा॥67-68॥ साथ ही भय और अन्याय से उत्पन्न हुआ बहुत भारी लोकापवाद भी नहीं होगा अतः मैं निश्चिंत चित्त होकर ऐसा ही करता हूँ ॥69॥ मन से इस प्रकार निश्चय कर महावैभव से युक्त रावणरूपी हाथी अंतःपुररूपी कमलवन में चला गया ॥70॥

तदनंतर शत्रु की ओर से उत्पन्न महान् परिभव का स्मरण कर रावण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वह स्वयं यमराज के समान भयंकर हो गया ॥71॥ जिसका ओठ काँप रहा था ऐसा रावण वह वचन बोला कि जिससे स्त्रियों के बीच में अत्यंत दुःसह ज्वर उत्पन्न हो आया ॥ 72॥ उसने कहा कि मैं युद्ध में अंगद सहित उस पापी दुर्ग्रीव को पकड़कर किरणों से हँसने वाला तलवार से उसके दो दुकड़े अभी हाल करता हूँ ॥73॥ उस भामंडल को पकड़कर तथा अच्छी तरह बाँधकर लोह के मुद्गरों की मार से उसके प्राण घुटाऊँगा ॥74॥ और अन्यायी हनूमान् को दो लकड़ियों के सिकंजे में कसकर अत्यंत तीक्ष्ण धार वाली करोंत से चीरूँगा ॥75॥ एक राम को छोड़कर मर्यादा का उल्लंघन करने वाले जितने अन्य दुराचारी दुष्ट शत्रु हैं उन सबको युद्ध में शस्त्र-समूह से चूर-चूर कर डालूँगा ॥76॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! जब रावण उक्त प्रकार का निश्चय कर रहा था तब निमित्तज्ञानियों के मुखों में निम्न प्रकार के वचन विचरण कर रहे थे **अर्थ**ात् वे परस्पर इस प्रकार की चर्चा कर रहे थे कि॥77॥ देखो, ये सैकड़ों प्रकार के उत्पात हो रहे हैं । सूर्य के चारों ओर शस्त्र के समान अत्यंत रूक्ष परिवेष-परिमंडल रहता है ॥78॥ पूरी की पूरी रात्रि भर चंद्रमा भय से ही मानों कहीं छिपा रहता है, भयंकर वज्रपात होते हैं, अत्यधिक भूकंप होता है ॥79॥पूर्व दिशा में काँपती हुई रुधिर के समान लाल उल्का गिरी थी और उत्तरदिशा में शृंगाल नीरस शब्द कर रहे थे ॥80॥ घोड़े ग्रीवा को कंपाते तथा प्रखर शब्द करते हुए हींसते हैं और हाथी कठोर शब्द करते हुए सूंड से पृथिवी को ताड़ित करते हैं अर्थात् पृथिवी पर सूंड पटकते हैं ॥81॥ देवताओं की प्रतिमाएँ अश्रुजल की वर्षा के लिए दुर्दिन स्वरूप बन गई हैं । बड़े-बड़े वृक्ष बिना किसी दृष्ट कारण के गिर रहे हैं ॥82॥ सूर्य के सन्मुख हुए कौए अत्यंत तीक्ष्ण शब्द कर रहे हैं, अपने झुंड को छोड़ अलग-अलग जाकर बैठे हैं, उनके पंख ढीले पड़ गये हैं तथा वे अत्यंत व्याकुल दिखाई देते हैं ॥83॥ बड़े से बड़े तालाब भी अचानक सूख गये हैं । पहाड़ों की चोटियाँ नीचे गिरती हैं, आकाश रुधिर की वर्षा करता है॥84॥ प्रायः ये सब उत्पात थोड़े ही दिनों में स्वामी के मरण की

सूचना दे रहे हैं क्योंकि पदार्थों में इस प्रकार के अन्यथा विकार होते नहीं हैं॥85॥अपने पुण्य के क्षीण हो जाने पर इंद्र भी तो च्युत हो जाता है । यथार्थ में जन-समूह कर्मों के अधीन है और पुरुषार्थ गुणीभूत है अप्रधान है॥86॥ जो वस्तु प्राप्त होने वाली है वह प्राप्त होती ही है उससे दूर नहीं भागा जा सकता । दैव के रहते प्राणियों की कोई शूरवीरता नहीं चलती उन्हें अपने किये का फल भोगना ही पड़ता है ॥87॥ देखो, जो समस्त नीतिशास्त्र में कुशल है , लोकतंत्र को जानने वाला है, जैन व्याख्यान का जानकार है और महागुणों से विभूषित है ऐसा रावण इस प्रकार का होता हुआ भी स्वकृत कर्मों के द्वारा कैसा चक्र में डाला गया कि हाय, बेचारा विमूढ़ बुद्धि हो उन्मार्ग में चला गया॥88-89॥संसार में मरण से बढ़कर कोई दुःख नहीं है पर देखो, अत्यंत गर्व से भरा रावण उस मरण की भी चिंता नहीं कर रहा है॥ 90॥यह यद्यपि नक्षत्र बल से रहित है तथा कुटिल-पापग्रहों से पीड़ित है तथापि मूर्ख हुआ रणभूमि में जाना चाहता है ॥91॥ यह प्रताप के भंग से भयभीत है, एक वीररस की ही भावना से युक्त है तथा शास्त्रों का अभ्यास यद्यपि इसने किया है तथापि युक्त-अयुक्त को नहीं देखता है ॥92॥ अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे महाराज ! अब मैं मानी रावण के मन में जो बात थी उसे कहता हूँ तू यथार्थ में सुन॥ 93॥रावण के मन में था कि सब लोगों को जीतकर तथा पुत्र और भाई को छुड़ाकर मैं पुनः लंका में प्रवेश करूँ ? और यह सब पीछे करता रहूँ ॥94॥ इस पृथिवी तल में जितने क्षुद्र भूमिगोचरी हैं मैं उन सबको यहाँ से हटाऊँगा और प्रशंसनीय जो विद्याधर हैं, उन्हें ही यहाँ बसाऊँगा ॥95॥ जिससे कि तीनों लोकों के नाथ के द्वारा स्तुत तीर्थंकर जिनेंद्र, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण तथा हमारे जैसे पुरुष इसी वंश में जन्म ग्रहण करेंगे ॥66॥ जिस मनुष्य ने निकाचित कर्म बाँधा है वह उसका फल नियम से भोगता है । अन्यथा शास्त्ररूपी सूर्य के देदीप्यमान रहते हुए किस मनुष्यरूपी उलूक के अंधकार रह सकता है॥67॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में रावण के युद्ध संबंधी निश्चय का कथन करने वाला बहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥72॥

## युद्ध का उद्योग

तेहत्तरवां पर्व
कथा :
अथानंतर दूसरे दिन दिनकर का उदय होने पर परम देदीप्यमान रावण सभामंडप में विराजमान हुआ ॥1॥ कुबेर, वरुण, ईशान, यम और सोम के समान अनेक राजा उसकी सेवा कर रहे थे जिससे वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इंद्र ही हो॥2॥ कुल में उत्पन्न हुए वीर मनुष्यों से घिरा तथा सिंहासन पर विराजमान रावण ग्रहों से घिरे हुए चंद्रमा के समान परम कांति को धारण कर रहा था ॥3॥ वह अत्यंत सुगंधि से युक्त था, उसके वस्त्र, मालाएं तथा अनुलेपन सभी दिव्य थे, हार से उसका वक्षःस्थल अत्यंत सुशोभित हो रहा था, वह सुंदर था और सौम्य दृष्टि से युक्त था॥4॥वह उदारचेता सभा की ओर देखता हुआ इस प्रकार चिंता करने लगा कि यहाँ वीर मेघवाहन अपने स्थान पर नहीं दिख रहा है ॥5॥ इधर महेंद्र के समान शोभा को धारण करने वाला नयनाभिरामी इंद्रजित् नहीं है और उधर सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला भानुकुर्ण (कुंभकर्ण) भी नहीं दिख रहा है ॥6॥ यद्यपि यह सभारूपी सरोवर शेष पुरुष रूपी कुमुदों से सुशोभित है तथापि उक्त महापुरुष रूपी कमलों से रहित होने के कारण इस समय उत्कृष्ट शोभा को प्राप्त नहीं हो रहा है ॥7॥ यद्यपि उस रावण के नेत्र कमल के समान फूल रहे थे और वह स्वयं अनुपम मनोहर था तथापि चिंताजंय दुःख के विकार से उसकी ओर देखना कठिन जान पड़ता था॥8॥
तदनंतर टेढ़ी भौंहों के बंधन से जिसके ललाटरूपी आँगन में सघन अंधकार फैल रहा था, जो कुपित नाग के समान कांति को धारण करने वाला था, जो यमराज के समान भयंकर था, जो बड़े जोर से अपना ओठ डस रहा था, जो अपनी किरणों के समूह में निमग्न था ऐसे उस रावण को देख, बड़े-बड़े मंत्री अत्यंत भयभीत हो क्या करना चाहिये, इस विचार में गंभीर थे ॥9-10॥ यह मुझ पर कुपित है या उस पर इस प्रकार जिनके मन व्याकुल हो रहे थे तथा जो हाथ जोड़े हुए पृथिवी की ओर देखते बैठे थे ॥11॥ ऐसे मय, उग्र, शुक, लोकाक्ष और सारण आदि मंत्री परस्पर एक दूसरे से लज्जित होते हुए नीचे को मुख कर बैठे थे तथा ऐसे जान पड़ते थे मानो पृथिवी में ही प्रवेश करना चाहते हो ॥12॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनके कुंडल हिल रहे थे ऐसे वे समीपवर्ती सुभट हे देव प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ इस तरह शीघ्रता से बार-बार कह रहे थे॥13॥ कैलास के शिखर के समान ऊँचे तथा रत्नों से देदीप्यमान दीवालों से युक्त महलों में रहने वाली स्त्रियाँ भयभीत हो उसे देख रही थीं ॥14॥ मणिमय झरोखों के अंत में जिसने अपने घबड़ाये हुए नेत्र लगा रक्खे थे, तथा जिसका

मन अत्यंत विह्वल था ऐसी मंदोदरी ने भी उसे देखा॥15॥
अथानंतर लाल-लाल नेत्रों को धारण करने वाला प्रतापी रावण उठकर अमोघ शस्त्ररूपी रत्नों से युक्त उज्ज्वल शस्त्रागार में जाने के लिए उस प्रकार उद्यत हुआ जिस प्रकार कि वज्रालय में जाने के लिए इंद्र उद्यत होता है । जब वह शस्त्रागार में प्रवेश करने लगा तब निम्नांकित अपशकुन हुए ॥16-17॥ पीछे की ओर छींक हुई, आगे महानाग ने मार्ग काट दिया, ऐसा लगने लगा जैसे लोग उससे यह शब्द कह रहे हों कि हा, ही, तुझे धिक्कार है कहाँ जा रहा है ॥18॥ नील मणिमय दंड से युक्त उसका छत्र वायु से प्रेरित हो टूट गया, उसका उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर गया और दाहिनी ओर कौआ काँव-काँव करने लगा॥16॥इनके सिवाय और भी क्रूर अपशकुनों ने उसे युद्ध के लिए मना किया । यथार्थ में वे सब अपशकुन उसे युद्ध के लिए न वचन से अनुमति देते थे न क्रिया से और न काम से ही ॥20॥ तदनंतर नाना शकुनों के ज्ञान में जिनकी बुद्धि निपुण थी ऐसे लोग उन पापपूर्ण महा उत्पातों को देख अत्यंत व्यग्रचित्त हो गए॥21॥
तदनंतर मंदोदरी ने शुक आदि श्रेष्ठ मंत्रियों को बुलाकर कहा कि आप लोग राजा से हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं ॥22॥ निज और पर की क्रियाओं को जानने वाले होकर भी आप अभी तक यह क्या चेष्टा कर रहे हैं ? कुंभकर्णादिक अशक्त हो कितने दिन से बंधन में पड़े हैं ? ॥23॥ लोकपालों के समान जिनका तेज है तथा जिन्होंने अनेक आश्चर्य के काम किये हैं ऐसे ये वीर, शत्रु के यहाँ बंधन को प्राप्त होकर क्या आप लोगों को शक्ति उत्पन्न कर रहे हैं ? ॥24॥ तदनंतर मुख्य मंत्रियों ने प्रणाम कर मंदोदरी से इस प्रकार कहा कि हे देवि ! दशानन का शासन यमराज के शासन के समान है, वे अत्यंत मानी और अपने आपको ही प्रधान मानने वाले हैं ॥25॥ जिस मनुष्य के परमहितकारी वचन को वे स्वीकृत कर सकें हे स्वामिनि ! समस्त लोक में ऐसा मनुष्य नहीं दिखाई देता॥26॥ कर्मानुकूल प्रवृत्ति करने वाले मनुष्यों की जो बुद्धि होने वाली है उसे इंद्र तथा देवों के समूह भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥27॥ देखो, रावण समस्त **अर्थ**शास्त्र और संपूर्ण नीतिशास्त्र को जानते हैं तो भी मोह के द्वारा पीड़ित हो रहे हैं ॥28॥ हम लोगों ने उन्हें अनेकों बार किस प्रकार नहीं समझाया है ? अर्थात् ऐसा प्रकार शेष नहीं रहा जिससे हमने उन्हें न समझाया हो फिर भी उनका चित्त इष्ट वस्तु□ सीता से पीछे नहीं हट रहा है ॥26॥ वर्षा ऋतु के समय जिसमें जल का महा प्रवाह उल्लंघ कर बह रहा है ऐसे महानद को अथवा कर्म से प्रेरित मनुष्य को रोक रखना कठिन काम है॥30॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि हम लोग कह कर हार चुके है तथापि आप स्वयं कहिये । इसमें क्या दोष है ? संभव है कि कदाचित् आपका कहना उन्हें सुबुद्धि उत्पन्न कर सके । उपेक्षा करना अनुचित है ॥31॥
इस प्रकार मंत्रियों का कहा श्रवण कर जिसने रावण के पास जाने का निश्चित विचार किया था, जो भय से काँप रही थी तथा घबड़ाई हुई लक्ष्मी के समान जान पड़ती थी, जो स्वच्छ, लंबे, विचित्र और जल की सदृशता को धारण करने वाले वस्त्र से आवृत्त थी ऐसी मंदोदरी रावण के पास जाने के लिए उद्यत हुई ॥32-33॥ कामदेव के समीप जाने के लिए उद्यत रति के समान, रावण के समीप जाती हुई मंदोदरी को देख परिवार के समस्त लोगों का ध्यान उसी की ओर जा लगा ॥34॥ छत्र तथा चमरों को धारण करने वाली स्त्रियाँ जिसे सब ओर से घेरे हुई थीं ऐसी सुमुखी मंदोदरी ऐसी जान पड़ती थी मानो इंद्र के पास जाती हुई शची ही हो□ इंद्राणी ही हो ॥35॥ जो लंबी साँस भर रही थी, जो चलती-चलती बीच में स्खलित हो जाती थी, जिसकी करधनी कुछ-कुछ ढीली हो रही थी, जो निरंतर पति का कार्य करने में तत्पर थी और जो अनुराग की मानो महानदी ही थी ऐसी आती हुई मंदोदरी को रावण ने लीलापूर्ण चक्षु से देखा । उस समय रावण अपने कवच तथा मुख्य-मुख्य शस्त्रों के समूह का आदरपूर्वक स्पर्श कर रहा था ॥36-37॥ रावण ने कहा कि हे मनोहरे ! हे हंसो के समान सुंदर चाल से चलने वाली प्रिये ! हे देवि ! बड़े वेग से तुम्हारे यहाँ आने का प्रयोजन क्या है ? ॥38॥ हे भामिनि ! स्वप्न में अकस्मात् प्राप्त हुए सन्निधान के समान तुम्हारा आगमन रावण के हृदय को क्यों हर रहा है ? ॥39॥
तदनंतर जिसका मुख निर्मल पूर्णचंद्र की तुलना को प्राप्त था, जिसके नेत्र खिले हुए कमल के समान थे, जो स्वभाव से ही उत्तम हाव-भाव को धारण करने वाली थी, जो मनोहर कटाक्षों के छोड़ने में चतुर थी, जिसका शरीर मानो कामदेव के रहने का स्थान था, जिसके मधुर शब्द बीच-बीच में स्खलित हो रहे थे, जिसका शरीर दाँत तथा ओंठों की रंग-बिरंगी विशाल कांति से पिंजर वर्ण हो रहा था, जिसका उदर स्तनरूपी स्वर्णमय महा कलशों से झुक रहा था, जिसकी त्रिवलिरूपी रेखाएँ स्खलित हो रहीं थीं, जो अत्यंत सुकुमार थी, अत्यधिक सुंदरी थी, और जो पति के प्रसाद की उत्तम भूमि थी ऐसी मंदोदरी प्रणाम कर बोली कि ॥40-43॥ हे देव ! आप परम प्रेम और दया-धर्म से सहित हो अतः मेरे लिए पति की भीख देओ; प्रसन्नता को प्राप्त होओ ॥44॥ हे महाराज ! हे उत्तम संकल्परूपी तरंगों से युक्त ! वियोगरूपी नदी के दुःखरूपी जल में डूबती हुई मुझको आलंबन देकर रोको□ मेरी रक्षा करो॥45॥ हे महाबुद्धिमन् ! तुम अपने

परिजनरूपी आकाश में सूर्य के समान हो इसलिए प्रलय को प्राप्त होते हुए इस विशाल कुलरूपी कमलवन की अत्यंत उपेक्षा न करो ॥46॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मेरे वचन कठोर हैं तथापि कुछ श्रवण कीजिये । यतश्च यह पद मुझे आपने ही दिया है अतः आप मेरा अपराध क्षमा करने के योग्य हैं ॥47॥ मित्रों के जो वचन विरोध रहित हैं, स्वभाव में स्थित हैं और फलकाल में सुख देने वाले हैं वे अप्रिय होने पर भी औषधि के समान ग्रहण करने के योग्य है ॥48॥ आप इस उपमा रहित संशय की तुला पर किसलिए आरूढ़ हो रहे हैं ? और किसलिए किसी रुकावट के बिना ही अपने आपको तथा हम लोगों को संताप पहुँचा रहे हो ॥46॥ आज भी आपका क्या चला गया ? वही आपकी पुरातनी **अर्थ**ात् पहले की भूमि है केवल हे देव ! उन्मार्ग में गए हुए चित्त को रोक लीजिए ॥50॥ आपका यह मनोरथ अत्यंत संकट में प्रवृत्त हुआ है इसलिए इन इंद्रियरूपी घोड़ों को शीघ्र ही रोक लीजिए । आप तो विवेकरूपी मजबूत लगाम को धारण करने वाले हैं॥51॥ आपकी उत्कृष्ट धीरता, गंभीरता और विचारकता उस सीता के लिए जिस कुमार्ग से गई है हे नाथ ! जान पड़ता है कि आप भी किसी के द्वारा उसी कुमार्ग से ले जाये जा रहे हैं॥52॥ जिस प्रकार अष्टापद कुएं के जल में अपनी परछाई देख दुःख को प्राप्त हुआ उसी प्रकार अत्यंत दुःख देने वाली आपत्तियों में तुम किसलिए प्रवृत्त हो रहे हो ॥53॥ अत्यधिक क्लेश उत्पन्न करने वाले अपयशरूपी ऊँचे वृक्ष को भेदन कर सुख से रहिये । आप केले के स्तंभ के समान किस निःसार फल की इच्छा रखते हैं॥54॥ हे समुद्र के समान गंभीर ! अपने प्रशस्त कुल को फिर से अलंकृत कीजिए और कुलीन मनुष्यों के शिर दर्द के समान भूमिगोचरी की स्त्री-सीता को शीघ्र ही छोड़िए॥55॥ हे स्वामिन् ! वीर सामंत जो एक दूसरे का विरोध करते हैं सो धन की प्राप्ति के प्रयोजन से करते हैं अथवा मन में ऐसा विचारकर करते हैं कि या तो पर को मारूँ या मैं स्वयं मरूं । सो यहाँ धन की प्राप्ति तो आपके विरोध का प्रयोजन हो नहीं सकती क्योंकि आपको धन की क्या कमी है ? और दूसरा प्रयोजन अपना, पराया मरना है सो किसलिए मरना ? पराई स्त्री के लिए मरना यह तो हास्य कर बात है॥56॥ अथवा माना कि शत्रुओं के समूह को पराजित करना विरोध का प्रयोजन है सो शत्रु समूह को पराजित करने पर आपका कौन-सा प्रयोजन संपन्न होता है ? अतः हे स्वामिन् ! सीतारूपी हठ छोड़िए ॥57॥और दूसरा व्रत रहने दीजिए एक परस्त्री त्यागव्रत के द्वारा ही उत्तम शील को धारण करने वाला पुरुष दोनों जन्मों में प्रशंसा को प्राप्त होता है॥58॥कज्जल की उपमा धारण करने वाली परस्त्रियों का लोभी मनुष्य, मेरु के समान गौरव से युक्त होने पर भी तृण के समान तुच्छता को प्राप्त हो जाता है॥59॥ देव जिस पर अनुग्रह करते हैं अथवा जो चक्रवर्ती का पुत्र है वह भी परस्त्री की आसक्तिरूपी कर्दम से लिप्त होता हुआ परम अकीर्ति को प्राप्त होता है । जो मूर्ख परस्त्री के साथ प्रेम करता है मानो वह पापी आशी विष नामक सर्पिणी के साथ रमण करता है ॥60-61॥ अत्यंत निर्मल कुल को अपकीर्ति से मलिन मत कीजिए । अथवा आप स्वयं अपने आपको मलिन कर रहे हैं सो इस दुर्बुद्धि को छोड़िए ॥62॥ सुमुख तथा वज्रघोष आदि महाबलवान् पुरुष, परस्त्री की इच्छामात्र से नाश को प्राप्त हो चुके सो क्या वे आपके सुनने में नहीं आये ? ॥63॥

अथानंतर जिसका समस्त शरीर सफेद चंदन से लिप्त था तथा जो स्वयं नूतन मेघ के समान श्यामल वर्ण था ऐसा कमल-लोचन रावण मंदोदरी से बोला कि ॥64॥ हे प्रिये ! तू क्यों इस तरह अत्यंत कातरता को प्राप्त हो रही है ? भीरु **अर्थ**ात् स्त्री होने के कारण ही तू भीरु अर्थात् कातर भाव को धारण कर रही है । अहो ! स्त्री का भीरु यह नाम सार्थक ही है ॥65॥ मैं न अर्ककीर्ति हूँ, न वज्रघोष हूँ और न कोई दूसरा ही मनुष्य हूँ फिर इस तरह क्यों कह रही है ? ॥66॥ वह मैं शत्रुरूप वृक्षों के समूह को भस्म करने वाला मृत्युरूपी दावानल हूँ इसलिए सीता को वापिस नहीं लौटाऊँगा । हे मंदमते ! भय मत कर॥67॥ अथवा इस चर्चा से तुम्हें क्या प्रयोजन है ? तू तो सीता की रक्षा करने के लिए नियुक्त की गई है सो यदि रक्षा करने में समर्थ नहीं है तो मुझे शीघ्र ही वापिस सौंप दे ॥68॥

यह सुन मंदोदरी ने कहा कि आप उसके साथ रति-सुख चाहते हैं इसीलिए निर्लज्ज हो इस प्रकार कह रहे हैं कि उसे मुझे सौंप दो ॥69॥ इतना कह ईर्ष्या संबंधी क्रोध को धारण करने वाली उस दीर्घ लोचना मंदोदरी ने सौभाग्य की इच्छा से कर्णोत्पल के द्वारा रावण को ताड़ा ॥70॥पुनः मन ही मन ईर्ष्या को रोककर उसने कहा कि हे सुंदर ! बताओ तो सही कि तुमने उसका क्या माहात्म्य देखा है ? जिससे उसे इस तरह चाहते हो॥71॥ न तो वह गुणवती जान पड़ी है, न रूप में सुंदर है, न कलाओं में निपुण है और न आपके मन के अनुसार प्रवृत्ति करने वाली है ॥72॥ फिर भी ऐसी सीता के साथ रमण करने की हे वल्लभ ! तुम्हारी कौन बुद्धि है । मेरी दृष्टि में तो केवल अपनी लघुता ही प्रकट हो रही है जिसे आप समझ नहीं रहे हैं ॥73॥ कोई भी पुरुष स्वयं अपने आपकी प्रशंसा करता हुआ गौरव को प्राप्त नहीं होता । यथार्थ में जो गुण दूसरों के मुखों से प्रशंसित होते हैं वे ही गुणपने को प्राप्त होते हैं ॥74॥ इसीलिए मैं ऐसा कुछ नहीं कहती हूं किंतु आप

स्वयं जानते हैं कि बेचारी सीता की तो बात ही क्या, लक्ष्मी भी मेरे समान नहीं है॥75॥ इसलिए हे विभो ! सीता के साथ समागम की जो अत्यधिक लालसा है उसे छोड़िये, जिसका परिहार नहीं ऐसी अपवादरूपी तीव्र अग्नि में मत पड़िये ॥76॥ आप मेरा अनादर कर इस भूमिगोचरी को चाह रहे हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मूर्ख बालक वैडूर्यमणि को छोड़कर काँच की इच्छा करता है॥77॥ इससे आपका मनचाहा दिव्यरूप भी नहीं हो सकता **अर्थ**ात् यह विक्रिया से आपकी इच्छानुसार रूप नहीं परिवर्तित कर सकती फिर हे नाथ ! आप इस ग्रामीण स्त्री को क्यों चाहते हैं ?॥78॥मैं आपकी इच्छानुसार रूप को धरने में अतिशय निपुण हूँ सो मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कैसी हो जाऊँ । हे स्वामिन् ! क्या शीघ्र ही तुम्हारे चित्त को हरण करने वाली एवं कमलरूपी घर में प्रीति धारण करने वाली लक्ष्मी बन जाऊँ ? अथवा हे प्रभो ! इंद्र के नेत्रों की विश्राम भूमि स्वरूप इंद्राणी हो जाऊँ ? ॥76-80॥ अथवा कामदेव के चित्त को रोकने वाली साक्षात् रति ही बन जाऊँ ? अथवा हे देव ! आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने वाली क्या हो जाऊँ ? ॥81॥

तदनंतर जिसका मुख नीचे की ओर था, जिसके नेत्र आधे खुले थे, तथा जो लज्जा से सहित था ऐसा रावण धीरे-धीरे बोला कि हे प्रिये ! तुमने मुझे परस्त्री सेवी कहा सो ठीक है॥82॥ देखो, मैंने यह क्या किया ? परस्त्री में चित्त से आसक्त होने से परम अकीर्ति को प्राप्त होते हुए मैंने इस मूर्ख आत्मा को अत्यंत लघु कर दिया है । ॥82-83॥ जो विषयरूपी मांस में आसक्त है, पाप का भाजन है तथा चंचल है ऐसे इस हृदय को धिक्कार है । रे हृदय ! तेरी यह अत्यंत नीच चेष्टा है ॥84॥ इतना कह जिसके मुखचंद्र की मुसकानरूपी चाँदनी ऊपर की ओर फैल रही थी, तथा जिसके नेत्ररूपी कुमुद विकसित हो रहे थे ऐसे दशानन ने मंदोदरी से पुनः इस प्रकार कहा कि ॥85॥ हे देवि ! विक्रिया निर्मित रूप के बिना स्वभाव में स्थित रहने पर भी तुम मुझे अत्यंत प्रिय हो । हे उत्तमे ! मुझे अन्य स्त्रियों से क्या प्रयोजन है ? ॥86॥

तदनंतर स्वामी की प्रसन्नता प्राप्त होने से जिसका चित्त खिल उठा था ऐसी मंदोदरी ने पुनः कहा कि हे देव ! सूर्य के लिए दीपक का प्रकाश दिखाना क्या उचित है ? **अर्थ**ात् आप से मेरा कुछ निवेदन करना उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह कि सूर्य को दीपक दिखाना ॥27॥ हे दशानन ! मैंने मित्रों के बीच जो यह हितकारी बात कही है सो उसे अन्य विद्वानों से भी पूछ लीजिये । मैं अबला होने से कुछ समझती नहीं हूँ॥88॥ अथवा समस्त शास्त्रों को जानने वाला भी प्रभु यदि कदाचित् दैवयोग से प्रमाद करता है तो क्या हित की इच्छा रखने वाले प्राणी को उसे समझाना चाहिए ॥89॥ जैसे कि विष्णुकुमार मुनि विक्रिया द्वारा आत्मा को भूल गये थे सो क्या उन्हें सिद्धांत के उपदेश द्वारा प्रबोध को प्राप्त नहीं कराया गया था ॥90॥ यह पुरुष है और यह स्त्री है इस प्रकार का विकल्प निर्बुद्धि पुरुषों को ही होता है । यथार्थ में जो बुद्धिमान हैं वे स्त्री-पुरुष सभी से हितकारी वचनों की अपेक्षा रखते हैं ॥91॥हे नाथ ! यदि आपकी मेरे ऊपर कुछ थोड़ी भी प्रसन्नता है तो मैं कहती हूँ कि परस्त्री से रति की याचना छोड़ो अथवा परस्त्री में रत पुरुष का मार्ग तजो ॥92॥ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जानकी को ले जाकर राम को आपकी शरण में ले आती हूँ तथा तुम्हारे इंद्रजित् और मेघवाहन नामक दोनों पुत्रों तथा भाई कुंभकर्ण को वापिस लिये आती हूँ । अधिक जनों की हिंसा से क्या प्रयोजन है ? ॥93-94॥

मंदोदरी के इस प्रकार कहने पर रावण अत्यधिक कुपित होता हुआ बोला कि जा-जा जल्दी जा, वहाँ जा जहाँ कि मैं तेरा मुख नहीं देखूं॥95॥ अहो ! तू अपने आपको बड़ी पंडिता मानती है जो अपनी उन्नति को छोड़ दीन चेष्टा को धारक हो शत्रुपक्ष की प्रशंसा करने में तत्पर हुई है ॥96॥ तू वीर की माता और मेरी पट्टरानी होकर भी जो इस प्रकार दीन वचन कह रही है तो जान पड़ता है कि तुझ से बढ़कर कोई दूसरी कायर स्त्री नहीं है॥97॥

इस प्रकार रावण के कहने पर मंदोदरी ने कहा कि हे नाथ ! विद्वानों ने बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणों का जन्म जिस प्रकार कहा है उसे सुनिये ॥98॥ हे देव ! इस युग में अब तक विजय तथा अचल आदि सात बलभद्र और त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, नृसिंह, पुंडरीक और दत्त ये सात नारायण हो चुके हैं । ये सभी जगत् में अत्यंत धीर, वीर तथा प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं । इस समय पद्म और लक्ष्मण नामक बलभद्र तथा नारायण होंगे । सो हे दशानन ! जान पड़ता है कि ये दोनों ही यहाँ आ पहुँचे हैं । जिस प्रकार अश्वग्रीव और तारक आदि प्रतिनारायण इनसे नाश को प्राप्त हुए हैं उसी प्रकार जान पड़ता है कि तुम भी इनसे नाश को प्राप्त होना चाहते हो ॥99-102॥ हे नाथ ! हित करने में तत्पर तत्त्व का निरूपण करने के लिए तब तक आशंका की जाती है जब तक कि निरूपणादि तत्त्व का पूर्ण निश्चय नहीं दिखाई पड़ता है ॥103॥ बुद्धिमान मनुष्य को वह कार्य करना चाहिए जो इस लोक तथा पर लोक में सुख का देने वाला हो । दुःखरूपी अंकुर की उत्पत्ति का कारण तथा निंदा का स्थान न हो ॥104॥ चिरकाल तक भोगे हुए भोगों से जो तृप्ति को प्राप्त हुआ हो

ऐसा तीन लोक में भी यदि कोई एक पुरुष हो तो हे पाप से मोहित रावण ! उसका नाम कहो ॥105॥ यदि समस्त भोगों को भोगने के बाद भी तुम मुनिपद को धारण नहीं कर सकते हो तो कम से कम गृहस्थ धर्म में तत्पर होकर भी दुःख का नाश करो ॥106॥ हे नाथ ! अणुव्रतरूपी तलवार से जिसका शरीर देदीप्यमान है, जो नियमरूपी छत्र से सुशोभित है, जिसने सम्यग्दर्शनरूपी कवच धारण किया है, जो शीलव्रतरूपी पताका से युक्त है, जिसका शरीर भावनारूपी चंदन से आर्द्र है । सम्यग्ज्ञान ही जिसका धनुष है, जो जितेंद्रियता रूपी बल से सहित है, शुभध्यान रूपी प्रताप से युक्त है, मर्यादारूपी अंकुश से सहित है, जो निश्चयरूपी हाथी पर सवार है, और जिनेंद्र भक्ति ही जिसकी महाशक्ति है ऐसे होकर तुम दुर्गतिरूपी सेना को जीतो । यथार्थ में यह दुर्गतिरूपी सेना अत्यंत कुटिल, पापरूपिणी, और अत्यंत दुःसह है सो इसे जीतकर तुम सुखी होओ ॥107-110॥ हिमवत् तथा मेरु आदि पर्वतों पर जो अकृत्रिम जिनालय हैं उनकी मेरे साथ पूजा करते हुए जंबूद्वीप में विचरण करो ॥111॥ अठारह हजार स्त्रियों के हस्तरूपी पल्लवों से लालित होते हुए तुम मंदरगिरि के निकुंज और गंगानदी के तटों में क्रीड़ा करो ॥112॥ हे सुंदर ! विद्याधर दंपति अपने अभिलषित मनोहर स्थानों में इच्छानुसार सुखपूर्वक विहार करते हैं॥113॥ हे विद्वन् ! अथवा हे यशस्विन् ! युद्ध से कुछ प्रयोजन नहीं है । प्रसन्न होओ और सब प्रकार से सुख उत्पन्न करने वाले मेरे वचन अंगीकृत करो ॥114॥ विष के समान दुष्ट, निंदनीय, तथा परम अनर्थ का कारण जो यह लोकापवाद है सो इसे छोड़ो । व्यर्थ ही अपयश रूप सागर में क्यों डूबते हो ? ॥115॥ इस प्रकार प्रसन्न करती तथा उसका परमहित चाहती हुई मंदोदरी हस्तकमल जोड़कर रावण के चरणों में गिर पड़ी ॥116॥

अथानंतर निर्भय रावण ने हँसते हुए उस भयभीत मंदोदरी को उठाकर कहा कि तू इस तरह कारण के बिना ही भय को क्यों प्राप्त हो रही है ? ॥117॥ हे सुंदरि ! मुझ से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम मनुष्य नहीं है । तू स्त्रीपना के कारण इस किस मिथ्या भीरुता का आलंबन ले रही है ? **अर्थ**ात् स्त्री होने के कारण व्यर्थ ही क्यों भयभीत हो रही है ? ॥118॥ “वे नारायण हैं” □ इस प्रकार दूसरे पक्ष के अभ्युदय को सूचित करने वाली जो बात तूने कही है सो हे देवि ! तुझे स्पष्ट बात बताऊँ कि नारायण और बलदेव इस नाम को धारण करने वाले पुरुष बहुत से हैं । क्या नाम की उपलब्धि मात्र से कार्य की सिद्धि हो जाती है॥116-120॥ हे भीरु ! यदि किसी तिर्यंच या मनुष्य का सिद्ध नाम रख लिया जाय तो क्या नाममात्र से वह सिद्ध संबंधी सुख को प्राप्त हो सकता है ? ॥121॥ जिस प्रकार रथनूपुर नगर के अधिपति इंद्र को मैंने अनिंद्रपना प्राप्त करा दिया था उसी प्रकार तुम देखना कि मैंने इस नारायण को अनारायण बना दिया है ॥122॥ इस प्रकार अपनी कांति के समूह से जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था तथा जिसकी क्रियाएँ यमराज के आश्रित थीं ऐसा प्रतापी परमेश्वर रावण, अपनी सबलता का निरूपण कर मंदोदरी के साथ क्रीड़ागृह में उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि लक्ष्मी के साथ इंद्र प्रवेश करता है॥ 123-124॥

अथानंतर सायंकाल का समय आया तो संध्या के कारण जिसका मंडल अनंतोन्मुख हो गया था ऐसे सूर्य ने किरणों को उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि मुनि अपनी कषायों को संकोच लेता है॥125॥ सूर्य लाल-लाल होकर अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो संध्यावलिरूप ओष्ठ जिसमें डसा जा रहा था ऐसे बहुत भारी क्रोध से लाल-लाल हो दिन को डाँट दिखाता हुआ कहीं चला गया था ॥ 126॥ कमलिनियों के कमल बंद हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमलरूपी अंजलि को बाँधने वाली कमलिनियां चक्रवाक पक्षियों के शब्द के द्वारा अस्त हुए सूर्य को दीनतापूर्वक बुला ही रही थीं ॥127॥ सूर्य के अस्त होते ही उसी मार्ग से ग्रह और नक्षत्रों की सेना आ पहुँची सो ऐसी जान पड़ती थी मानो चंद्रमा ने उसे स्वच्छंदता पूर्वक घूमने के लिए छोड़ ही दिया था उसे आज्ञा ही दे रक्खी थी॥ 128॥ तदनंतर दीपिका रूपी रत्नों से प्रकाशित प्रदोष काल के प्रकट होने पर प्रभा से जगमगाती हुई लंका मेरु की शिखा के समान सुशोभित हो उठी॥ 129॥ उस समय कोई स्त्री पति का आलिंगन कर कांपती हुई बोली कि तुम्हारे साथ यह एक रात तो आनंद से बिता लूँ, कल जो होगा सो होगा ॥130॥ जिसकी चोटी में गूंथी हुई जुही की माला से सुगंधि निकल रही थी तथा जो मधु के नशा में मत्त हो झूम रही थी ऐसी कोई एक स्त्री पति की गोद में उस तरह लोट गई मानो अत्यंत कोमल पुष्प वृष्टि ही बिखेर दी गई हो ॥131॥ जिसके चरण कमल के समान थे तथा जिसकी जाँघ और स्तन अत्यंत स्थूल थे ऐसी सुंदर शरीर की धारक कोई स्त्री सुंदर शरीर के धारक वल्लभ के पास गई ॥132॥ जो स्वभाव से ही सुंदरी थी तथा सुंदर हाव-भाव को धारण करने वाली थी ऐसी किसी स्त्री ने सुवर्ण और रत्नों को कृत-कृत्य करने के लिए ही मानो उसने आभूषण धारण किये थे ॥133॥ विद्याधर और विद्याधरियों के युगल इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे थे और वे घर-घर में ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भोगभूमियों में ही हों॥134॥ संगीत के कामोत्तेजक आलापों और वीणा बाँसुरी आदि के

शब्दों से उस समय लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो रात्रि का आगमन होने पर हर्षित हो वार्तालाप ही कर रही हो ॥135॥ कितने ही अन्य लोग तांबूल गंध माला आदि देवोपम उपभोगों से मदिरा पीते हुए अपनी वल्लभाओं के साथ क्रीड़ा करते थे ॥136॥ नशा में निमग्न हुई कोई एक स्त्री मदिरा के प्याले में प्रतिबिंबित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नीलकमल से पति को पीट रही थी॥137॥ स्त्रियों ने मदिरा में अपने मुख की सुगंधि छोड़ी थी और मदिरा ने उसके बदले स्त्रियों के नेत्रों में अपनी लालिमा छोड़ रक्खी थी॥138॥ वही वस्तु इष्टजनों के संसर्ग से परमसुंदरता को धारण करने लगती है इसीलिए तो स्त्री के पीने से शेष रहा मधु स्वादिष्ट हो गया था ॥136॥ कोई एक स्त्री मदिरा में पड़ी हुई अपने नेत्रों की कांति को नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी सो पति ने उसकी चिरकाल तक हँसी की ॥140॥ कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह काम के योग्य कार्य में प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई **अर्थ**ात् प्रौढ़ा स्त्री के समान कामभोग के योग्य हो गई ॥141॥ उस मदिरारूपी सखी ने लज्जारूपी सखी को दूर कर उन स्त्रियों को पतियों के विषय में ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यंत इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिरा के कारण लज्जा छोड़ पतियों के साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगी॥142॥ जिसमें नेत्र घूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अधकटे शब्दों का उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियों और पुरुषों की मन को हरण करने वाली विकट चेष्टा होने लगी ॥143॥ पीते-पीते जो मदिरा शेष बच रही थी उसे भी दंपती पी लेना चाहते थे इसलिए तुम पियो तुम पियो इस प्रकार जोर से शब्द करते हुए प्याले को एक दूसरे की ओर बढ़ा रहे थे॥144॥ किसी सुंदर पुरुष की प्रीति प्याले में समाप्त हो गई थी इसलिए वह वल्लभा का आलिंगन कर नेत्र बंद करता हुआ उसके मुख के भीतर स्थित कुरले की मदिरा का पान कर रहा था ॥145॥ जो मूंगा के समान थे, जो कुछ-कुछ फड़क रहे थे तथा मदिरा के द्वारा जिनकी कृत्रिम लाली धुल गई थी ऐसे अधरोष्ठों की अत्यधिक शोभा बढ़ रही थी ॥146॥ दाँत, ओष्ठ और नेत्रों की कांति से युक्त प्याले में जो मधु रक्खा था वह सफेद लाल और नीलकमलों से युक्त सरोवर के समान जान पड़ता था ॥147॥ उस समय मदिरा के कारण जिनकी लज्जा दूर हो गई थी ऐसी स्त्रियाँ अपने गुप्त प्रदेशों को दिखा रही थीं तथा जिनका उच्चारण नहीं करना चाहिये ऐसे शब्दों का उच्चारण कर रही थीं ॥148॥ चंद्रोदय, मदिरा और यौवन के कारण उस समय उन स्त्री-पुरुषों का काम अत्यंत उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था ॥149॥जिसमें नख क्षत किये गये थे, जो सीत्कार से सहित था, जिसमें ओष्ठ डंशा गया था तथा जो आकुलता से युक्त था ऐसा स्त्री-पुरुषों का संभोग आगे होने वाले युद्ध का मानो मंगलाचार ही था॥ 150॥ इधर सुंदर चेष्टा से युक्त रावण ने भी समस्त अंतःपुर को एक साथ उत्तम शोभा प्राप्त कराई अर्थात् अंतःपुर की समस्त स्त्रियों को प्रसन्न किया ॥151॥ उत्तम नेत्रों से युक्त मंदोदरी बार-बार आलिंगन कर बड़े स्नेह से पति का मुख देखती थी तो भी तृप्त नहीं होती थी॥152॥ वह कह रही थी कि हे कांत ! जब तुम विजयी हो यहाँ लौटकर आओगे तब मैं सदा तुम्हारा आलिंगन करूँगी॥ 153॥ हे मनोहर ! मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी न छोडूंगी और जिस प्रकार लताएँ बाहुबली स्वामी के समस्त शरीर में समा गई थीं उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे समस्त शरीर में समा जाऊँगी ॥154॥ इधर प्रेम से कातर चित्त को धारण करने वाली मंदोदरी इस प्रकार कह रही थी उधर मुर्गा बोलने लगा और रात्रि समाप्त हो गई ॥155॥

अथानंतर नक्षत्रों को कांति को नष्ट करने वाली संध्या की लाली आकाश में आ पहुँची और अरहंत भगवान् के मंदिर-मंदिर में संगीत का मधुर शब्द होने लगा ॥156॥ प्रलयकालीन अग्नि समूह के समान जिसका आकार था ऐसा लोक लोचन सूर्य, किरणों से दिशाओं को आच्छादित करता हुआ उदयाचल के साथ संबंध को प्राप्त हुआ ॥157॥ प्रातःकाल के समय पति जिन्हें बड़ी कठिनाई से सांत्वना दे रहा था ऐसी स्त्रियाँ व्यग्र होती हुई मन में न जाने क्या-क्या दुःसह विचार धारण कर रही थीं ॥158॥ तदनंतर रावण की आज्ञा से युद्ध का संकेत देने में निपुण शंख फूंके गये और गंभीर भेरियाँ बजाई गई ॥156॥ जो परस्पर अहंकार धारण कर रहे थे तथा अत्यंत उद्धत थे ऐसे योद्धा घोड़े हाथी और रथों पर सवार हो हर्षित होते हुए बाहर निकले ॥160॥ जो खड्ग, धनुष, गदा, भाले आदि चमकते हुए शस्त्र समूह को धारण कर रहे थे, जो हिलते हुए चमर और छत्रों की छाया से सुशोभित थे, जो शीघ्रता करने में तत्पर थे, देवों के समान थे और अतिशय प्रतापी थे ऐसे विद्याधर राजा बड़े ठाट-बाट से युद्ध करने के लिए निकले ॥101-162॥ उस समय निरंतर रुदन करने से जिनके नेत्र कमल के समान लाल हो गये थे ऐसी नगर की स्त्रियों की दीन दशा देख दुष्ट पुरुष का भी चित्त अत्यंत दुःखी हो उठता था ॥163॥ कोई एक योद्धा पीछे-पीछे आने वाली स्त्री से यह कहकर कि अरी पगली ! लौट जा । मैं सचमुच ही युद्ध में जा रहा हूँ बाहर निकल आया ॥164॥ किसी मृगनयनी स्त्री को पति का मुख देखने की लालसा थी इसलिए उसने इस बहाने कि अरे शिर का टोप तो लेते जाओ, पति को अपने सम्मुख किया था ॥165॥ जब पति दृष्टि के ओझल हो गया तब अश्रुओं के साथ-साथ कोई स्त्री मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़ी और

सखियों ने उसे घेर लिया ॥166॥ कोई एक स्त्री वापिस लौट, शय्या की पाटी पकड़, मौन लेकर मिट्टी की पुतली की तरह चुपचाप बैठ गई ॥167॥ कोई एक शूरवीर सम्यग्दृष्टि तथा अणुव्रतों का धारक था इसलिए उसे पीछे से तो उसकी पत्नी देख रही थी और आगे से देवकन्या देख रही थी ॥168॥ जो योद्धा पहले पूर्णचंद्र के समान सौम्य थे वे ही युद्ध उपस्थित होने पर कवच धारण कर यमराज के समान दमकने लगे ॥169॥ जो धनुष तथा छत्र आदि से सहित था ऐसा मारीच चतुरंगिणी सेना ले बड़े तेज के साथ नगर के बाहर आया ॥170॥ धनुष को धारण करने वाले विमलचंद्र, विमलमेघ, सुनंद, आनंद तथा नंद को आदि लेकर सैकड़ों हजारों योद्धा युद्धस्थल में आये सो वे विद्या निर्मित, अग्नि के समान देदीप्यमान रथों से दशों दिशाओं को देदीप्यमान करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अग्निकुमार देव ही हो ॥171-172॥ कितने ही सुभट देदीप्यमान शस्त्रों से युक्त तथा हिमालय के समान भारी-भारी हाथियों से दिशाओं को इस प्रकार आच्छादित कर रहे थे मानो बिजली सहित मेघों से ही आच्छादित कर रहे हों॥173॥ पाँचों प्रकार के शस्त्रों से युक्त कितने ही वेगशाली सुभट उत्तम घोड़ों के समूह से ऐसे जान पड़ते थे मानो नक्षत्र मंडल को सहसा चूर-चूर हो कर रहे हों॥174॥ नाना प्रकार के बड़े-बड़े वादित्रों, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की गर्जना, पैदल सैनिकों के बुलाने के शब्द, योद्धाओं की सिंहनाद, चारणों की जय-जय ध्वनि, नटों के गीत तथा उत्साह बढ़ाने में निपुण अन्य प्रकार के महाशब्द सब ओर से मिलकर एक हो रहे थे इसलिए उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश प्रलयकालीन मेघों से व्याप्त हो दुःख से चिल्ला ही रहा हो ॥175-177॥ उस समय जो घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकों से युक्त थे, जो परस्पर-एक दूसरे से बढ़ी-चढ़ी विभूति से देदीप्यमान थे, जिनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थी तथा जिन्होंने अपने उन्नत वक्षःस्थलों पर कवच धारण कर रक्खे थे ऐसे विजय के अभिलाषी अनेक राजा बिजली के समान जान पड़ते थे ॥178॥ जिनके हाथों में तलवारें लपलपा रही थीं तथा जो स्वामी के संतोष की इच्छा कर रहे थे ऐसे पैदल सैनिक भी उन राजाओं के आगे-आगे जा रहे थे, विविध झुंडों को धारण करने वाले उन सब सैनिकों से आकाश तथा दिशाएँ ठसाठस भर गई थीं ॥179॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार पिछले पूर्वभवों में संचित त्रिभुवन संबंधी, शुभ-अशुभकर्म के विद्यमान रहते हुए यह प्राणी यद्यपि नाना प्रकार की चेष्टाएँ करता है तथापि सूर्य भी उसे अन्यथा करने में समर्थ नहीं है॥180॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में युद्ध के उद्योग का वर्णन करने वाला तेहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥73॥

## रावण और लक्ष्मण का युद्ध

चौहत्तरवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर पूर्वकृत पुण्योदय से हर्ष को धारण करता हुआ रावण आदर के साथ अपनी प्रिय स्त्री मंदोदरी से इस प्रकार पूछता है कि हे प्रिये ! चारुदर्शने ! महाभयकारी युद्ध होना है अतः कौन जाने फिर तुम्हारा दर्शन हो या न हो ॥1-2॥ यह सुन सब स्त्रियों ने कहा कि हे नाथ । सदा वृद्धि को प्राप्त होओ, शत्रुओं को जीतो । तुम्हें हम सब शीघ्र ही युद्ध से लौटा हुआ देखेंगी ॥3॥ ऐसा कहकर जिसे हजारों स्त्रियाँ अपने नेत्रों से देख रही थीं तथा जिसकी प्रभा अत्यंत विशाल थी ऐसा राक्षसों का राजा रावण नगर के बाहर निकला ॥4॥ बाहर निकलते ही उसने बहुरूपिणी विद्या के द्वारा निर्मित तथा शरद्ऋतु के सूर्य के समान देदीप्यमान ऐंद्र नाम का महारथ देखा ॥5॥ वह महारथ वर्षाकालीन मेघों के समान कांति वाले एक हजार हाथियों से जुता था, कांति के मंडल से सहित था, ऐसा जान पड़ता था मानो मेरुपर्वत को ही जीतना चाहता हो ॥6॥ उसमें जुते हुए हाथी मदोन्मत्त थे, इनके गंडस्थलों से झरने झर रहे थे, उनके सफेद पीले रंग के चार-चार खड़े दाँत थे, वे शंखों तथा चमरों से सुशोभित थे, मोतियों की मालाओं से युक्त थे, उनके गले में बँधे बड़े-बड़े घंटा शब्द कर रहे थे, वे ऐरावत हाथी के समान थे, नाना धातुओं के रंग से सुशोभित थे, उनका जीतना अशक्य था, वे विनय की भूमि थे, मेघों के समान गर्जना से युक्त थे, कृष्ण मेघों के समूह के समान थे तथा सुंदर विभ्रम को धारण करते हुए शोभायमान थे॥7-9॥ जिसकी भुजा के अग्रभाग पर मनोहर बाजूबंद बंधा हुआ था तथा जिसकी कांति इंद्र के समान थी, ऐसा रावण उस विद्यानिर्मित रथ पर आरूढ़ हुआ ॥10॥ विशाल नयन तथा अनुपम आकृति को धारण करने वाला रावण उस रथ पर आरूढ़ हुआ अपने तेज से मानो समस्त लोक को ग्रस ही रहा था ॥11॥ जो अपने समान थे, अपना हित करने वाले थे, महाबलवान थे, देवों के समान कांति से युक्त थे और अभिप्राय को जानने वाले थे ऐसे गगनवल्लभनगर के स्वामी को आदि लेकर दश हजार विद्याधर राजाओं से घिरा रावण सुग्रीव और भामंडल को देख

कुपित होता हुआ उनके सन्मुख गया । रावण की दक्षिण दिशा में भालू अत्यंत भयंकर शब्द कर रहे थे और आकाश में सूर्य को आच्छादित करते हुए गीध मँडरा रहे थे ॥12--14॥ शूरवीरता के अहंकार से भरे महासुभट यद्यपि यह जानते थे कि ये अपशकुन मरण को सूचित कर रहे हैं तथापि वे कुपित हो आगे बढ़े जाते थे ॥15॥

अपनी सेना के मध्य में स्थित राम ने भी आश्चर्यचकित हो सैनिकों से पूछा कि हे भद्रपुरुषो ! इस नगरी के बीच में तेज से देदीप्यमान, सुवर्णमयी बड़े-बड़े शिखरों से अलंकृत, तथा बिजली से सहित मेघसमूह के समान कांति को धारण करने वाला यह कौन-सा पर्वत है ? ॥16-17॥ सुपेण आदि विद्याधर स्वयं भ्रांति में पड़ गये इसलिए वे पूछने वाले राम के लिए सहसा उत्तर देने के लिए समर्थ नहीं हो सके । फिर भी राम उनसे बार-बार पूछे जा रहे थे कि कहो यह यहाँ कौन-सा पर्वत दिखाई दे रहा है ? तदनंतर भय से काँपते हुए जांबव आदि ने धीमे स्वर में कहा कि हे राम ! यह बहुरूपिणी विद्या के द्वारा निर्मित वह रथ है जो हम लोगों को कालज्वर उत्पन्न करने में निपुण है ॥18-20॥ सुग्रीव के पुत्र अंगद ने जाकर जिसे कुपित किया था ऐसा वह महा मायामय अभ्युदय को धारण करने वाला रावण इस पर सवार है॥21॥

जांबव आदि के उक्त वचन सुन लक्ष्मण ने सारथि से कहा कि शीघ्र ही रथ लाओ । सुनते ही सारथि ने आज्ञापालन किया **अर्थ**ात् रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥22॥ तदनंतर जिनके शब्द क्षुभित समुद्र के शब्द के समान थे, जिनके शब्दों के साथ करोड़ों शंखों के शब्द मिल रहे थे ऐसी भयंकर भेरियाँ बजाई गई ॥23॥ उस शब्द को सुनकर विकट चेष्टाओं के धारक योद्धा, कवच पहिन तथा तरकस बाँध लक्ष्मण के पास आ खड़े हुए ॥24॥ हे प्रिये ! डर मत, यहीं ठहर, लौट जा, शोक तज, मैं लंकेश्वर को जीतकर आज ही तेरे समीप वापिस आ जाऊँगा इस प्रकार गर्वीले वीर, अपनी उत्तम स्त्रियों को सांत्वना दे कवच आदि से तैयार हो यथायोग्य रीति से बाहर निकले ॥25-26॥ जो परस्पर की प्रतिस्पर्धावश वेग से अपने वाहनों को प्रेरित कर रहे थे, तथा जो शस्त्रों की ओर देख-देखकर चंचल हो रहे थे ऐसे योद्धा रथ आदि वाहनों पर आरूढ़ हो चले ॥27॥ महागज से जुते तथा गंभीर और उदार शब्द करने वाले रथ पर सवार हुआ विद्याधरों का राजा भूतस्वन अलग ही सुशोभित हो रहा था ॥28॥ इसी विधि से दूसरे विद्याधर राजाओं ने भी हर्ष के साथ क्रुद्ध हो युद्ध करने के लिए लंकेश्वर के प्रति प्रस्थान किया॥26॥ क्षुभित समुद्र के समान आकृति को धारण करने वाले रावण के प्रति बड़े वेग से दौड़ते हुए योद्धा, गंगानदी की बड़ी ऊँची तरंगों की भाँति अत्यधिक धक्काधूमी को प्राप्त हो रहे थे ॥30॥

तदनंतर जिन्होंने धवल यश से संसार को व्याप्त कर रक्खा था तथा जो उत्तम आकृति को धारण करने वाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण युद्ध के लिए अपने निवास स्थान से बाहर निकले ॥31॥ जो गरुड़ के रथ पर आरूढ़ थे, जिनकी ध्वजा में गरुड़ का चिह्न था, जिनके शरीर की कांति उन्नत मेघ के समान थी, जिन्होंने अपनी कांति से आकाश को श्याम कर दिया था, जो मुकुट, कुंडल, धनुष, कवच, बाण और तरकस से युक्त थे, तथा जो संध्या की लाली से युक्त अंजनगिरि के समान आभा के धारक थे ऐसे लक्ष्मण अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥32-34॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कांतिरूपी अलंकारों से सुशोभित तथा नाना प्रकार के यान और विमानों से गमन करने वाले अनेक बड़े-बड़े विद्याधर भी युद्ध करने के लिए निकले ॥35॥ जब राम लक्ष्मण का गमन हुआ तब पहले की भाँति इष्ट स्थानों पर बैठकर कोमल शब्द करने वाले पक्षियों ने उन्हें आनंद युक्त किया ॥33॥

अथानंतर क्रोध से युक्त, महाबल से सहित, वेगवान् एवं महादावानल के समान प्रचंड आकृति को धारण करने वाला रावण उनके सामने चला ॥37॥ आकाश में स्थित गंधर्वों और अप्सराओं ने दोनों सेनाओं में रहने वाले सुभटों के ऊपर बार-बार फूलों की वर्षा की ॥38॥ पैदल सैनिकों के समूह जिनकी चारों ओर से रक्षा कर रहे थे, चतुर महावत जिन्हें चला रहे थे तथा जो अंजनगिरि के समान विशाल आकार से युक्त थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी मद झरा रहे थे॥39॥ सूर्य के रथ के समान जिनके आकार थे, जिनमें चंचल घोड़े जुते हुए थे, जो सारथियों से सहित थे, जिनसे विशाल शब्द निकल रहा था तथा जो तीव्र वेग से सहित थे ऐसे रथ आगे बढ़े जा रहे थे ॥40॥ जो अत्यधिक हर्ष से युक्त थे, जिनके शस्त्र चमक रहे थे, तथा जिन्होंने अपने झुंड के झुंड बना रक्खे थे ऐसे गर्वीले पैदल सैनिक रणभूमि में उछलते जा रहे थे ॥41॥ जो घोड़ों के पीठ पर सवार थे, हाथों में तलवार बरछी तथा भाले लिये हुए थे और कवच से जिनके वक्षःस्थल आच्छादित थे ऐसे योद्धाओं ने रणभूमि में प्रवेश किया ॥42॥ वे योद्धा परस्पर एक दूसरे को आच्छादित कर लेते थे, एक दूसरे के सामने दौड़ते थे, एक दूसरे से स्पर्धा करते थे, एक दूसरे को जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीर गर्जना करते थे ॥43॥ कहीं व्यग्र मुद्रा के धारक तेजस्वी घोड़े घूम रहे थे तो कहीं केश मुट्ठी और गदा का भयंकर युद्ध हो रहा था॥44॥ कितने

ही वीरों के वक्षःस्थल में तलवार से घाव हो गये थे, कोई बाणों से घायल हो गये थे और कोई भालों की चोट खाये हुए थे तथा बदला चुकाने के लिए वे वीर भी शत्रुओं को उसी प्रकार ताड़ित कर रहे थे ॥45॥ अभीष्ट पदार्थों के सेवन से जिन्हें निरंतर लालित किया था ऐसी इंद्रियां कितने ही सुभटों को इस प्रकार छोड़ रही थीं, जिस प्रकार कि खोटे मित्र काम निकलने पर छोड़ देते हैं ॥46॥ जिनकी आँतों का समूह बाहर निकल आया था ऐसे कितने ही सुभट अपनी बहुत भारी वेदना को प्रकट नहीं कर रहे थे किंतु उसे छिपा कर दाँतों से ओठ काटते हुए शत्रु पर प्रहार करते थे और उसी के साथ नीचे गिरते थे ॥47॥ देवकुमारों के समान तेजस्वी, महाभोगों के भोगने वाले और स्त्रियों के शरीर से लड़ाये हुए जो सुभट पहले महलों के शिखरों पर क्रीड़ा करते थे वे ही उस समय चक्र तथा कनक आदि शस्त्रों से खंडित हो रणभूमि में सो रहे थे, उनके शरीर विकृत हो गये थे तथा गीध और शियारों के समूह उन्हें खा रहे थे॥48-49॥ जिस प्रकार समागम की इच्छा रखने वाली स्त्री, नख क्षत देने के अभिप्राय से सोते हुए पति के पास पहुँचती है उसी प्रकार नाखूनों से लोंच का अभिप्राय रखने वाली शृगाली रणभूमि में पड़े हुए किसी सुभट के पास पहुँच रही थी ॥50॥ पास पहुँचने पर उसके हलन-चलन को देख जब शृगाली को यह जान पडा कि यह तो जीवित है तब वह हड़बड़ाती हुई डरकर इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि मंत्रवादी के पास से डाकिनी भागती है॥51॥ कोई एक यक्षिणी किसी शूरवीर को जीवित जानकर भयभीत हो धीरे-धीरे इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि कोई व्यभिचारिणी पति को जीवित जान शंका से युक्त हो नेत्र चलाती हुई भाग जाती है ॥52॥ युद्धभूमि में किसी की पराजय होती थी और किसी की हार । इससे जीवों के शुभ अशुभ कर्मों का उदय वहाँ समानरूप से प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा था ॥53॥ कितने ही सुभट पुण्यकर्म के सामर्थ्य से अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते थे और पूर्वभव में पाप करने वाले बहुत से योद्धा पराजय को प्राप्त हो रहे थे ॥54॥ जिन्होंने पूर्व पर्याय में मत्सरभाव से पुण्य और पाप दोनों का मिश्रित रूप से संचय किया था वे युद्धभूमि में दूसरों को जीतते थे और मृत्यु निकट आने पर दूसरों के द्वारा जीते भी जाते थे ॥55॥ इससे जान पड़ता है कि धर्म ही मर्म स्थानों की रक्षा करता है, धर्म ही दुर्जेय शत्रु को जीतता है, धर्म ही सहायक होता है और धर्म ही सब ओर से देख-रेख रखता है ॥56॥ जो मनुष्य पूर्वभव के पुण्य से रहित है उसकी घोड़ों से जुते हुए दिव्य रथ, पर्वत के समान हाथी, पवन के समान वेगशाली घोड़े और असुरों के समान देदीप्यमान पैदल सैनिक भी रक्षा नहीं कर सकते और जो पूर्व पुण्य से रक्षित है वह अकेला ही शत्रु को जीत लेता है॥57-58॥ इस प्रकार प्रचंड बलशाली योद्धाओं से परिपूर्ण युद्ध के होने पर योद्धा, दूसरे योद्धाओं से इतने पिछल जाते थे कि उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता था ॥59॥ शस्त्रों से चमकते हुए कितने ही योद्धा ऊपर को उछल रहे थे और कितने ही मर-मरकर नीचे गिर रहे थे उनसे आकाश ऐसा हो गया था मानो उत्पात के मेघों से ही घिर गया हो ॥60॥

अथानंतर मारीच, चंद्रनिकर, वज्राक्ष, शुक, सारण तथा अन्य राक्षस राजाओं ने शत्रुओं की सेना को पीछे हटा दिया ॥61॥ तब हनूमान्, चंद्ररश्मि, नील, कुमुद तथा भूतस्वन आदि वानरवंशीय राजाओं ने राक्षसों की सेना को नष्ट कर दिया ॥62॥ तत्पश्चात् कुंद, कुंभ, निकुंभ, विक्रम, श्रीजंबूमाली, सूर्यार, मकरध्वज तथा वनरथ आदि राक्षस पक्ष के बड़े-बड़े राजा तथा वेगशाली योद्धा उन्हें सहायता देने के लिए खड़े हुए ॥63-64॥ तदनंतर भूधर, अचल, संमेद, विकाल, कुटिल, अंगद, सुषेण, कालचक्र और ऊर्मितरंग आदि वानर पक्षीय योद्धा, अपने पक्ष के लोगों को आलंबन देने के लिए उद्यत हो उनके सामने आये । उस समय ऐसा कोई योद्धा नहीं दिखाई देता था जो किसी प्रतिद्वंदी से रहित हो ॥65-66॥ जिस प्रकार कमलों से सहित सरोवर में महागज क्रीड़ा करता है उसी प्रकार अंजना का पुत्र हनूमान् हाथियों से जुते रथ पर सवार हो उस युद्धभूमि में क्रीड़ा कर रहा था ॥37॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इच्छानुसार काम करने वाले उस एक शूरवीर ने राक्षसों की बड़ी भारी सेना को उन्मत्त जैसा कर दिया; उसका होश गायब कर दिया ॥68॥ इसी बीच में क्रोध के कारण जिसके नेत्र दूषित हो रहे थे ऐसे महा दैत्य मय ने आकर हनूमान् पर प्रहार किया ॥69॥ सो पुंडरीक के समान नेत्रों को धारण करने वाले हनुमान ने भी बाण निकालकर तीक्ष्ण बाण वर्षा से मय को रथ रहित कर दिया॥70॥ मय को विह्वल देख रावण ने शीघ्र ही बहुरूपिणी विद्या के द्वारा निर्मित रथ उसके पास भेजा ॥71॥ महाकांति के धारक मय ने प्रज्वलितोत्तम नामक उस रथ पर आरूढ़ हो हनुमान के साथ युद्ध कर उसे रथ रहित कर दिया ॥72-73॥ तब वानरों की सेना भाग खड़ी हुई । उसे भागती देख राक्षस पक्ष के सुभट कहने लगे कि इसने जैसा किया ठीक उसके विपरीत फल प्राप्त कर लिया **अर्थ**ात् करनी का फल इसे प्राप्त हो गया ॥74॥ तदनंतर हनूमान को शस्त्र रहित देख भामंडल दौड़ा सो बाण वर्षा करने वाले मय ने उसे भी रथ रहित कर दिया ॥75॥ तदनंतर किष्किंधनगर का राजा सुग्रीव कुपित हो मय के सामने खड़ा हुआ सो मय ने उसे भी शस्त्र रहित कर पृथिवी पर पहुँचा दिया॥76॥ तत्पश्चात् क्रोध से भरे

विभीषण ने मय को आगे किया सो दोनों में परस्पर एक दूसरे के बाणों को काटने वाला महा युद्ध हुआ॥77॥ युद्ध करते-करते विभीषण का कवच टूट गया जिससे रुधिर की धारा बहने लगी और वह फूले हुए अशोकवृक्ष के समान लाल दिखने लगा ॥78॥ सो विभीषण को ऐसा देख तथा वानरों की सेना को विह्वल, भयभीत पराङ्मुख और बिखरी हुई देखकर राम युद्ध के लिए उद्यत हुए॥79॥ वे विद्यामयी सिंहों से युक्त रथ पर सवार हो 'डरो मत' यह शब्द करते तथा मुसकराते हुए शीघ्र ही दौड़े ॥80॥ रावण की सेना बिजली सहित वर्षाकालीन मेघों की सघन घटा के समान थी और राम प्रातःकाल के सूर्य के समान कांति के धारक थे सो इन्होंने रावण की सेना में प्रवेश किया ॥81॥ जब राम, शत्रुसेना का संहार करने के लिए उद्यत हुए तब हनूमान्, भामंडल, सुग्रीव और विभीषण भी धैर्य को प्राप्त हुए॥82॥ राम से बल पाकर जिसका समस्त भय छूट गया था ऐसी वानरों की सेना पुनः युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हुई ॥83॥ उस समय देवों के रोमांच उत्पन्न करने वाले शस्त्रों की वर्षा होने पर लोक में अंधकार छा गया और वह ऐसा लगने लगा मानो दूसरा ही लोक हो ॥84॥ तदनंतर राम, थोड़े ही प्रयास से मय को बाणों से आच्छादित करने के लिए उस तरह अत्यधिक तल्लीन हो गये जिस तरह कि चमरेंद्र को बाणाच्छादित करने के लिए इंद्र तल्लीन हुआ था ॥85॥ तदनंतर राम के बाणों से मय को विह्वल देख तेज से यम की तुलना करने वाला रावण कुपित हो दौड़ा ॥86॥ तब परम प्रतापी वीर लक्ष्मण ने उससे कहा कि ओ विद्याधर ! कहाँ जा रहे हो ? मैं आज तुम्हें देख पाया हूँ ॥87॥ रे क्षुद्र ! चोर ! पापी ! परस्त्री रूपी दीपक पर मर मिटने वाले शलभ ! नीच पुरुष ! दुश्चेष्ट ! खड़ा रह खड़ा रह मुझसे युद्ध कर ॥88॥ आज साहसपूर्वक तेरी वह दशा करता हूँ जिसे कुपित दुष्ट यम भी नहीं करेगा ? ॥89॥ यह भी राघव देव समस्त पृथिवी के अधिपति हैं । धर्ममय बुद्धि को धारण करने वाले इन्होंने तुझ चोर का वध करने के लिए मुझे आज्ञा दी है ॥90॥

तदनंतर क्रोध से भरे रावण ने लक्ष्मण से कहा कि अरे मूर्ख ! क्या तुझे यह ऐसी लोक प्रसिद्ध बात विदित नहीं है कि पृथिवीतल पर जो कुछ सुंदर, श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है मैं ही उसके योग्य हूँ । यतश्च मैं राजा हूँ अतएव वह मुझ में ही शोभा पाती हैं अन्यत्र नहीं ॥91-92॥ हाथी के योग्य घंटा कुत्ता के लिए शोभा नहीं देता । इसलिए योग्य द्रव्य का योग्य द्रव्य के साथ समागम हुआ इसकी आज भी क्या चर्चा करनी है ॥93॥ तू एक साधारण मनुष्य है, चाहे जो बकने वाला है, मेरी समानता नहीं रखता तथा अत्यंत दीन है अतः तेरे साथ युद्ध करने में यद्यपि मुझे लज्जा आती है॥94॥ तथापि इन सबके द्वारा बहकाया जाकर यदि युद्ध करना चाहता है तो स्पष्ट है कि तेरे मरने का काल आ पहुँचा है अथवा तू अपने जीवन से मानो उदास हो चुका है ॥95॥

तब लक्ष्मण ने कहा कि तू जैसा प्रभु है मैं जानता है । अरे पापी ! इस विषय में अधिक कहने से क्या ? मैं तेरी सब गर्जना अभी हरता हूँ ॥96॥ इतना कहने पर रावण ने सनसनाते हुए बाणों से लक्ष्मण को इस प्रकार रोका जिस प्रकार कि वर्षाऋतु का मेघ किसी पर्वत को आ रोकता है ॥97॥ इधर से जिनका वज्रमयी दंड था तथा शीघ्रता के कारण जिन्होंने मानो धनुष का संबंध देखा ही नहीं था ऐसे बाणों से लक्ष्मण ने उसके बाणों को बीच में ही नष्ट कर दिया॥98॥ उस समय टूटे-फूटे और चूर-चूर हुए बाणों के समूह से आकाश और भूमि भेदरहित हो गई थी ॥99॥

तदनंतर जब लक्ष्मण ने रावण को शस्त्ररहित कर दिया तब उसने आकाश को व्याप्त करने वाला माहेंद्र शस्त्र छोड़ा ॥100॥ इधर से शस्त्रों का क्रम जानने में निपुण लक्ष्मण ने पवन बाण का प्रयोग कर उसके उस माहेंद्र शस्त्र को क्षणभर में नष्ट कर दिया ॥101॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! क्रोध से जिसके मुख का तेज दमक रहा था ऐसे रावण ने फिर आग्नेय बाण चलाया जिससे समस्त दिशाएँ देदीप्यमान हो उठीं ॥102॥ इधर से लक्ष्मण ने वारुणास्त्र चलाकर उस आग्नेय बाण को, वह कार्य प्रारंभ करे कि उसके पूर्व ही निमेष मात्र में बुझा दिया ॥103॥ तदनंतर लक्ष्मण ने रावण पर पाप नाम का शस्त्र छोड़ा सो उधर से रावण ने धर्म नामक शस्त्र के प्रयोग से उसका निवारण कर दिया ॥104॥ तत्पश्चात् लक्ष्मण ने इंधन नामक शस्त्र का प्रयोग किया जिसे रावण ने इंधन नामक शस्त्र से ही निरर्थक कर दिया ॥105॥ तदनंतर रावण ने फल और फूलों की वर्षा करने वाले वृक्षों के समूह से आकाश को अत्यंत व्याप्त कर दिया ॥106॥ तब लक्ष्मण ने आकाश को अंधकार युक्त करने वाले तामस बाणों के समूह से रावण को आच्छादित कर दिया ॥107॥ तदनंतर रावण ने सहस्रकिरण अस्त्र के द्वारा तामस अस्त्र को नष्ट कर जिसमें फनों का समूह उठ रहा था ऐसा दंदशूक अस्त्र चलाया ॥108॥ तत्पश्चात् इधर से लक्ष्मण ने गरुड़ बाण चलाकर उस दंदशूक अस्त्र का निराकरण कर दिया जिससे आकाश ऐसा हो गया मानो स्वर्ण की कांति से ही भर गया हो ॥109॥ तदनंतर लक्ष्मण ने प्रलयकाल के मेघ के समान शब्द करने वाला तथा विषरूपी अग्नि के कणों से दुःसह उरगास्त्र छोड़ा॥110॥ जिसे धीर वीर रावण ने वर्हणास्त्र के प्रयोग से दूर कर दिया और उसके बदले जिसका दूर करना अशक्य था ऐसा

विघ्नविनाशक नाम का शस्त्र छोड़ा ॥111॥ तदनंतर इच्छित वस्तुओं में विघ्न डालने वाले उस विघ्नविनाशक शस्त्र के छोड़ने पर लक्ष्मण देवोपनीत शस्त्रों के प्रयोग करने में मोह को प्राप्त हो गये **अर्थ**ात् उसे निवारण करने के लिए कौन शस्त्र चलाना चाहिये इसका निर्णय नहीं कर सके ॥112॥ तब वे केवल वज्रमय दंडों से युक्त बाणों को ही अधिक मात्रा में चलाते रहे और रावण भी उस दशा में स्वाभाविक बाणों से ही युद्ध करता रहा ॥113॥ उस समय लक्ष्मण और रावण के बीच कान तक खींचे बाणों से ऐसा भयंकर युद्ध हुआ जैसा कि पहले त्रिपृष्ठ और अश्वग्रीव में हुआ था ॥114॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जब प्रेरणा देने वाले पूर्वोपार्जित पुण्य-पापकर्म उदय को प्राप्त होते हैं तब मनुष्य उन्हीं के अनुरूप कार्य को सिद्ध अथवा असिद्ध करने वाले फल को प्राप्त होते हैं ॥115॥ जो अत्यधिक क्रोध की अधीनता को प्राप्त हैं और जिन्होंने अपना चित्त प्रारंभ किये हुए कार्य की सिद्धि में लगा दिया है ऐसे मनुष्य न तीव्र शस्त्र को गिनते हैं, न अग्नि को गिनते हैं, न सूर्य को गिनते हैं और न वायु को ही गिनते हैं॥116॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में रावण और लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन करने वाला चौहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥74॥

## लक्ष्मण को चक्ररत्न की उत्पत्ति

पचहत्तरवां पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! युद्ध की यह विधि है कि दोनों पक्ष के खेदखिन्न तथा महाप्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है । क्षुधा से दुःखी मनुष्यों के लिए अमृततुल्य भोजन दिया जाता है । पसीना से युक्त मनुष्यों के लिए आह्लाद का कारण गोशीर्ष चंदन दिया जाता है । पंखे आदि से हवा की जाती है । बर्फ के जल के छींटे दिये जाते हैं तथा इनके सिवाय जिसके लिए जो कार्य आवश्यक हो उसकी पूर्ति समीप में रहने वाले मनुष्य तत्परता के साथ करते हैं । युद्ध की यह विधि जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगों के लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लोगों के लिए भी है । युद्ध में निज और पर का भेद नहीं होता । ऐसा करने से ही कर्तव्य की समग्र सिद्धि होती है ॥1-4॥

तदनंतर जिनके चित्त में हार का नाम भी नहीं था तथा जो अतिशय बलवान थे ऐसे प्रचंड वीर लक्ष्मण और रावण को युद्ध करते हुए दश दिन बीत गये॥5॥ लक्ष्मण का जो युद्ध रावण के साथ हुआ था वही युद्ध रावण का लक्ष्मण के साथ हुआ था **अर्थ**ात् उनका युद्ध उन्हीं के समान था ॥6॥ उनका युद्ध देख यक्ष, किन्नर, गंधर्व तथा अप्सराएँ आदि आश्चर्य को प्राप्त हो धन्यवाद देते और उन पर पुष्पवृष्टि छोड़ते थे ॥7॥ तदनंतर चंद्रवर्धन नामक विद्याधर राजा की आठ कन्याएँ आकाश में विमान की शिखर पर बैठी थीं ॥8॥ महती आशंका से युक्त बड़े-बड़े प्रतीहारी सावधान रहकर जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसी उन कन्याओं से समागम को प्राप्त हुई अप्सराओं ने कुतूहलवश पूछा कि आप लोग देवताओं के समान आकार को धारण करने वाली तथा सुकुमार शरीर से युक्त कौन हैं ? ऐसा जान पड़ता है मानो लक्ष्मण में आप लोग अधिक भक्ति धारण कर रही हैं ॥6-10॥ तब वे कन्याएँ लज्जित होती हुई बोली कि यदि आपको कौतुक है तो सुनिये । पहले जब सीता का स्वयंवर हो रहा था तब हमारे पिता हम लोगों के साथ कौतुक से प्रेरित हो सभामंडप में गये थे वहाँ लक्ष्मण को देखकर उन्होंने हम लोगों को उन्हें देने का संकल्प किया था ॥11-12॥ वहाँ से आकर यह वृत्तांत पिता ने माता के लिए कहा और उससे हम लोगों को विदित हुआ । साथ ही स्वयंवर में जब से हम लोगों ने इसे देखा था तभी से यह हमारे मन में स्थित था ॥13॥ वही लक्ष्मण इस समय जीवन-मरण के संशय को धारण करने वाले इस महासंग्राम में विद्यमान है । सो संग्राम में क्या कैसा होगा यह हम लोग नहीं जानती इसीलिए दुःखी हो रही हैं ॥14॥ मनुष्यों में चंद्रमा के समान इस हृदयवल्लभ लक्ष्मण की जो दशा होगी वही हमारी होगी ऐसा हम सबने निश्चित किया है ॥15॥

तदनंतर उन कन्याओं के मनोहर वचन सुन लक्ष्मण ने ऊपर की ओर नेत्र उठाकर उन्हें देखा ॥16॥ लक्ष्मण के देखने से वे उत्तम कन्याएं परम प्रमोद को प्राप्त हो इस प्रकार के शब्द बोली कि हे नाथ ! तुम सब प्रकार से सिद्धार्थ होओ तुम्हारी भावना सब तरह सिद्ध हो ॥17॥ उन कन्याओं के मुख से सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मण को सिद्धार्थ नामक अस्त्र का स्मरण आ गया जिससे उनका मुख खिल उठा तथा वे कृतकृत्यता को प्राप्त हो गये ॥18॥ फिर क्या था, शीघ्र ही सिद्धार्थ महास्त्र के द्वारा रावण के विघ्नविनाशक अस्त्र को नष्ट कर

लक्ष्मण बड़ी तेजी से युद्ध करने के लिए उद्यत हो गये ॥16॥ शस्त्रों के चलाने में निपुण रावण जिस-जिस शस्त्र को ग्रहण करता था परमास्त्रों के चलाने में निपुण लक्ष्मण उसी-उसी शस्त्र को काट डालता था॥ 20॥ तदनंतर ध्वजा में पक्षिराज गरुड का चिह्न धारण करने वाले लक्ष्मण के बाण समूह से सब दिशाएँ इस प्रकार व्याप्त हो गई जिस प्रकार कि मेघों से पर्वत व्याप्त हो जाते हैं॥ 21॥ तदनंतर रावण भगवती बहुरूपिणी विद्या में प्रवेश कर युद्ध-क्रीड़ा करने लगा ॥22॥ यही कारण था कि उसका शिर यद्यपि लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था तथापि वह बार-बार देदीप्यमान कुंडलों से सुशोभित हो उठता था॥ 23॥ एक शिर कटता था तो दो शिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धि को प्राप्त हो जाते थे ॥24॥ दो भुजाएँ कटती थीं तो चार हो जाती थीं और चार कटती थीं उससे दूनी हो जाती थीं ॥25॥ हजारों शिरों और अत्यधिक भुजाओं से घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलों के समूह से घिरा हो ॥26॥ हाथी की सूंड के समान आकार से युक्त तथा बाजूबंद से सुशोभित भुजाओं और शिरों से भरा आकाश शस्त्र तथा रत्नों की किरणों से पिंजर वर्ण हो गया ॥27॥ जो शिररूपी हजारों मगरमच्छों से भयंकर था तथा भुजाओं रूपी ऊँची-ऊँची तरंगों को धारण करता था ऐसा रावणरूपी महा भयंकर सागर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था ॥28॥ अथवा जो भुजारूपी विद्युद् दंडों से प्रचंड था और भयंकर शब्द कर रहा था ऐसा रावण रूपी मेघ शिररूपी शिखरों के समूह से बढ़ता जाता था ॥26॥ भुजाओं और मस्तकों के संघटन से जिसके छत्र तथा आभूषण शब्द कर रहे थे ऐसा रावण एक होने पर भी महासेना के समान जान पड़ता था ॥30॥ मैंने पहले अनेकों के साथ युद्ध किया है अब इस अकेले के साथ क्या करूँ यह सोचकर ही मानो लक्ष्मण ने उसे अनेकरूप कर लिया था ॥31 आभूषणों के रत्न तथा शस्त्र समूह की किरणों को देदीप्यमान रावण जलते हुए वन के समान हो गया था ॥32॥ रावण अपनी हजारों भुजाओं के द्वारा चक्र, बाण, शक्ति तथा भाले आदि शस्त्रों की वर्षा से लक्ष्मण को आच्छादित करने में लगा था ॥33॥ और क्रोध से भरे तथा विवाद से रहित लक्ष्मण भी सूर्यमुखी बाणों से शत्रु को आच्छादित करने में झुके हुए थे ॥34॥ उन्होंने शत्रु के एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, दश, बीस, सौ, हजार तथा दश हजार शिर काट डाले ॥35॥ हजारों शिरों से व्याप्त तथा पड़ती हुई भुजाओं से युक्त आकाश, उस समय ऐसा हो गया था मानो उल्का दंडों से युक्त तथा जिसमें तारामंडल गिर रहा है ऐसा हो गया था ॥36॥ उस समय भुजाओं और मस्तक से निरंतर आच्छादित युद्ध भूमि सर्पों के फणों से युक्त कमल समूह की शोभा धारण कर रही थी ॥37॥ उसके शिर और भुजाओं का समूह जैसा-जैसा उत्पन्न होता जाता था लक्ष्मण वैसा-वैसा ही उसे उस प्रकार काटता जाता था जिस प्रकार कि मुनिराज नये-नये बँधते हुए कर्मों को काटते जाते हैं ॥38॥ निकलते हुए रुधिर की लंबी चौड़ी धाराओं से व्याप्त आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमें संध्या का निर्माण हुआ है ऐसा दूसरा ही आकाश उत्पन्न हुआ हो ॥39॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, महानुभाव से युक्त द्विबाहु लक्ष्मण ने असंख्यात भुजाओं के धारक रावण को निष्फल शरीर का धारक कर दिया ॥40॥ देखो, पराक्रमी रावण क्षणभर में क्या से क्या हो गया ? उसके मुख से श्वास निकलना बंद हो गया, उसका मुख पसीना की बूंदों के समूह से व्याप्त हो गया और उसका समस्त शरीर आकुल-व्याकुल हो गया ॥41॥ हे श्रेणिक ! जब तक वह अत्यंत भयंकर युद्ध होता है तब तक क्रोध से प्रदीप्त रावण ने कुछ स्वभावस्थ होकर उस चक्ररत्न का चिंतवन किया जो कि प्रलयकालीन मध्याह्न के सूर्य के समान प्रभापूर्ण था तथा शत्रु पक्ष का क्षय करने में उन्मत्त था ॥42-43॥

तदनंतर जो अपरिमित कांति के समूह का धारक था, मोतियों की झालर से युक्त था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य था, वज्रमय मुख से सहित था, महा अद्भुत था, नाना रत्नों से जिसका शरीर व्याप्त था, दिव्य मालाओं और विलेपन से सहित था, जिसकी धारों की मंडलाकार किरणें अग्नि के कोट के समान जान पड़ती थीं, जो वैडूर्यमणि निर्मित हजार आरों से सहित था, जिसका देखना कठिन था, हजार यक्ष जिसकी सदा प्रयत्नपूर्वक रक्षा करते थे, और जो प्रलयकाल संबद्ध यमराज के मुख के समान था ऐसा चक्र, चिंता करते ही उसके हाथ में आ गया॥ 44-47॥ उस प्रभापूर्ण दिव्य अस्त्र के द्वारा सूर्य प्रभाहीन कर दिया गया जिससे वह चित्रलिखित सूर्य के समान कांति मात्र है शेष जिसमें ऐसा रह गया ॥48॥ गंधर्व, अप्सराएं, विश्वावसु, तुंबुरु और नारद युद्ध का देखना छोड़ गायन भूलकर कहीं चले गये ॥46॥ अब तो मरना ही होगा ऐसा निश्चय यद्यपि लक्ष्मण ने कर लिया था तथापि वे अत्यंत धीर बुद्धि के धारक हो उस प्रकार के शत्रु की ओर देख जोर से बोले कि रे नराधम ! इस चक्र को पाकर भी कृपण के समान इस तरह क्यों खड़ा है यदि कोई शक्ति है तो प्रहार कर ॥50-51॥ इतना कहते ही जो अत्यंत कुपित हो गया था, जो दांतों से ओंठ को डस रहा था, तथा जिसके नेत्रों से मंडलाकार विशाल कांति का समूह निकल रहा था ऐसे रावण ने घुमाकर चक्ररत्न छोड़ा । वह चक्ररत्न क्षोभ को प्राप्त हुए मेघमंडल के समान भयंकर शब्द

कर रहा था, महावेगशाली था, और मनुष्यों के संशय का कारण था॥ 52-53॥
तदनंतर प्रलयकाल के सूर्य के समान सामने आते हुए उस चक्ररत्न को देखकर लक्ष्मण वज्रमुखी बाणों से उसे रोकने के लिए उद्यत हुए ॥ 54॥ रामचंद्रजी एक हाथ से वेगशाली वज्रावर्त नामक धनुष से और दूसरे हाथ से घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हल से, अत्यधिक क्षोभ को धारण करने वाला सुग्रीव गदा से, भामंडल तीक्ष्ण तलवार से, विभीषण शत्रु का विघात करने वाले त्रिशूल से, हनूमान् उल्का, मुद्गर, लांगूल तथा कनक आदि से, अंगद परिघ से, अंग अत्यंत तीक्ष्ण कुठार से और अन्य विद्याधर राजा भी शेष अस्त्र-शस्त्रों से एक साथ मिलकर जीवन की आशा छोड़ उसे रोकने के लिए उद्यत हुए पर वे सब मिलकर भी इंद्र के द्वारा रक्षित उस चक्ररत्न को रोकने में समर्थ नहीं हो सके ॥54-56॥ इधर राम की सेना में व्यग्रता बढ़ी जा रही थी पर भाग्य की बात देखो कि उसने आकर लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणाएं दी, उसके सब रक्षक विनय से खड़े हो गये, उसका आकार सुखकारी तथा शांत हो गया और वह स्वेच्छा से लक्ष्मण के हाथ में आकर रुक गया ॥60॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैंने तुझे राम-लक्ष्मण का यह अत्यंत आश्चर्य को करने वाला महाविभूति से संपन्न एवं लोक श्रेष्ठ माहात्म्य संक्षेप से कहा है ॥61॥ पुण्योदय के काल को प्राप्त हुए एक मनुष्य के परम विभूति प्रकट होती है तो पुण्य का क्षय होने पर दूसरे मनुष्य के विनाश का योग उपस्थित होता है । जिस प्रकार कि चंद्रमा उदित होता है और सूर्य अस्त को प्राप्त होता है ॥62॥ इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में लक्ष्मण के चक्ररत्न की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला पचहत्तरवां पर्व पूर्ण हुआ ॥75॥

## रावण का वध

छिहत्तरवां पर्व
कथा :
अथानंतर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे लक्ष्मण सुंदर को देखकर विद्याधर राजाओं ने हर्षित हो उनका इस प्रकार अभिनंदन किया ॥ 1॥ वे कहने लगे कि पहले भगवान अनंतवीर्य स्वामी ने जिस आठवें नारायण का कथन किया था यह वही उत्पन्न हुआ है । चक्ररत्न इसके हाथ में आया है । यह महाकांतिमान, अत्युत्तम शरीर का धारक और श्रीमान है तथा इसके बल का वर्णन करना अशक्य है ॥2-3॥ और यह राम, आठवां बलभद्र है जिसके रथ को खड़ी जटाओं को धारण करने वाले तथा सूर्य के समान देदीप्यमान सिंह खींचते हैं ॥4॥ जिसने रण में मय नामक महादैत्य को बंदीगृह में भेजा था तथा जिसके हाथ में यह हल रूपी रत्न अत्यंत शोभा देता है ॥5॥ ये दोनों ही पुरुषोत्तम पुण्य के प्रभाव से बलभद्र और नारायण हुए हैं तथा परम प्रीति से युक्त हैं॥ 6॥
तदनंतर सुदर्शनचक्र को लक्ष्मण के हाथ में स्थित देख, राक्षसाधिपति रावण इस प्रकार की चिंता को प्राप्त हुआ ॥7॥ वह विचार करने लगा कि उस समय वंदनीय अनंतवीर्य केवली ने जो दिव्यध्वनि में कहा था जान पड़ता है कि वही यह कर्मरूपी वायु से प्रेरित हो आया है ॥8॥ जिसका छत्र देख विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, बड़ी-बड़ी सेनाएं छत्र तथा पताकाएं फेंक विनाश को प्राप्त हो जाती थीं तथा समुद्र का जल ही जिसका वस्त्र है और हिमालय तथा विंध्ययाचल जिसके स्तन हैं ऐसी तीन खंड की वसुधा दासी के समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी ॥6-10॥ वही मैं आज युद्ध में एक भूमिगोचरी के द्वारा पराजित होने के लिए किस प्रकार देखा गया हूँ ? अहो ! यह बड़ी कष्टकर अवस्था है ? यह आश्चर्य भी देखो ॥11॥ कुलटा के समान चेष्टा को धारण करने वाली इस राजलक्ष्मी को धिक्कार हो यह पापी मनुष्यों का सेवन करने के लिए चिर परिचित पुरुषों को एक साथ छोड़ देती है ॥12॥ ये पंचेंद्रियों के भोग किंपाक फल के समान परिपाक काल में अत्यंत विरस हैं, अनंत दुःखों का संसर्ग कराने वाले हैं और साधुजनों के द्वारा निंदित हैं॥ 13॥ वे संसार श्रेष्ठ भरतादि पुरुष धन्य हैं जो चक्ररत्न से सहित निष्कंटक विशाल राज्य को विष मिश्रित अन्न के समान छोड़कर जिनेंद्र संबंधी व्रत को प्राप्त हुए तथा रत्नत्रय की आराधना कर परमपद को प्राप्त हुए ॥14-15॥ मैं दीन पुरुष संसार वृद्धि का अतिशय कारण जो बलवान मोहकर्म है उसके द्वारा पराजित हुआ हूँ । ऐसी चेष्टा को धारण करने वाले मुझ को धिक्कार है ॥16॥
अथानंतर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे विशाल तेज के धारक लक्ष्मण ने विभीषण का मुख देखकर कहा कि हे विद्याधरों के पूज्य ! यदि अब भी तुम सीता को सौंपकर यह वचन कहो कि मैं भी रामदेव के प्रसाद से जीवित हूँ तो तुम्हारी यह लक्ष्मी ज्यों की त्यों अवस्थित है क्योंकि सत्पुरुष मान भंग करके ही कृतकृत्यता को प्राप्त हो जाते हैं ॥17-19॥ तब मंद हास्य करने वाले रावण ने लक्ष्मण से कहा कि अहो ! तुझ क्षुद्र का यह अकारण गर्व करना व्यर्थ है । ॥20॥ अरे नीच ! मैं आज तुझे जो दशा दिखाता हूँ उसका अनुभव कर । मैं वह

रावण ही हूँ और तू वही भूमिगोचरी है ॥21॥ तब लक्ष्मण ने कहा कि इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है ? मैं सब तरह से तुम्हें मारने वाला नारायण उत्पन्न हुआ हूँ॥ 22॥ तदनंतर रावण ने व्यंगपूर्ण चेष्टा बनाते हुए कहा कि यदि इच्छा मात्र से नारायण बन रहा है तो फिर इच्छामात्र से इंद्रपना क्यों नहीं प्राप्त कर लेता॥ 23॥ पिता ने तुझे घर से निकाला जिससे दुःखी होता हुआ वन-वन में भटकता रहा । अब निर्लज्ज हो नारायण बनने चला है सो तेरा नारायणपना मैं खूब जानता हूँ ॥24॥ अथवा तू नारायण रह अथवा जो कुछ तेरे मन में हो सो बन जा परंतु मैं लगे हाथ तेरे मनोरथ को भंग करता हूँ ॥25॥ तू इस अलातचक्र से कृत-कृत्यता को प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि क्षुद्र जंतुओं को दुष्ट वस्तु से भी महान् उत्सव होता है॥26॥ अथवा अधिक कहने से क्या ? मैं आज तुझे इन पापी विद्याधरों के साथ चक्र के साथ और वाहन के साथ सीधा पाताल भेजता हूँ ॥27॥

यह वचन सुन नूतन नारायण-लक्ष्मण ने क्रोधवश घुमाकर रावण की ओर चक्ररत्न फेंका ॥28॥ उस समय वह चक्र वज्र को जन्म देने वाले मेघसमूह की घोर गर्जना के समान भयंकर तथा प्रलयकालीन सूर्य के समान कांति का धारक था ॥26॥ जिस तरह पूर्व में, नारायण के द्वारा चलाये हुए चक्र को रोकने के लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था उसी प्रकार क्रोध से भरा रावण बाणों के द्वारा उस चक्र को रोकने के लिए उद्यत हुआ ॥30॥ यद्यपि उसने तीक्ष्ण दंड और वेगशाली वज्र के द्वारा भी उसे रोकने का प्रयत्न किया तथापि पुण्य क्षीण हो जाने से वह कुटिल चक्र रुका नहीं किंतु उसके विपरीत समीप ही आता गया ॥31॥

तदनंतर रावण ने चंद्रहास खड्ग खींचकर समीप आये हुए चक्ररत्न पर प्रहार किया सो उसकी टक्कर से प्रचुर मात्रा में निकलने वाले तिलगों से आकाश व्याप्त हो गया ॥32॥ तत्पश्चात् उस चक्ररत्न ने सन्मुख खड़े हुए शोभाशाली रावण का वज्र के समान वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥33॥ जिससे पुण्यकर्म क्षीण होने पर प्रलय काल की वायु से प्रेरित विशाल अंजनगिरि के समान रावण पृथिवी पर गिर पड़ा ॥34॥ ओंठों को डसने वाला रावण पृथिवी पर पड़ा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कामदेव ही सो रहा हो अथवा स्वर्ग से कोई देव ही आकर च्युत हुआ हो ॥35॥ स्वामी को पड़ा देख समुद्र के समान शब्द करने वाली जीर्ण-शीर्ण सेना छत्र तथा पताकाएँ फेंक चौड़ी हो गई **अर्थ**ात् भाग गई ॥36॥ रथ हटाओ, मार्ग देओ, घोड़ा इधर ले जाओ, यह पीछे से हाथी आ रहा है, विमान को बगल में करो, अहो ! यह स्वामी गिर पड़ा है, बड़ा कष्ट हुआ इस प्रकार वार्तालाप करती हुई वह सेना विह्वल हो भाग खड़ी हुई ॥37-38॥

तदनंतर जो परस्पर एक दूसरे पर पड़ रहे थे, जो महाभय से कंपायमान थे, और जिनके मस्तक पृथिवी पर पड़ रहे थे ऐसे इन शरणहीन मनुष्यों को देखकर सुग्रीव, भामंडल तथा हनुमान् आदि ने "नहीं डरना चाहिए" "नहीं डरना चाहिए" आदि शब्द कहकर सांत्वना प्राप्त कराई ॥36-40॥ जिन्होंने सब ओर ऊपर वस्त्र का छोर घुमाया था ऐसे उन सुग्रीव आदि महापुरुषों के, कानों के लिए रसायन के समान मधुर वचनों से सेना सांत्वना को प्राप्त हुई ॥41॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! समुद्रांत पृथिवी में अनेक आश्चर्य के कार्य करने वाली उस प्रकार की लक्ष्मी का उपभोग कर रावण, पुण्यकर्म का क्षय होने पर इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ ॥42॥ इसलिए अत्यंत चंचल एवं पुण्य प्राप्ति की आशा से रहित इस लक्ष्मी को धिक्कार है । हे भव्यजनो ! ऐसा मन में विचारकर सूर्य के तेज को जीतने वाले तपोधन होओ तप के धारक बनो ॥43॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में रावण के वध का कथन करने वाला छिहतरवां पर्व समाप्त हुआ ॥ 76॥

## प्रीतिंकर

सतहत्तरवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर भाई को पड़ा देख महादुःख से युक्त विभीषण ने अपना वध करने के लिए छुरी पर हाथ रक्खा ॥1॥ सो उसके इस वध को रोकती तथा शरीर को निश्चेष्ट करती मूर्च्छा ने कुछ काल तक उसका बड़ा उपकार किया ॥2॥ जब सचेत हुआ तब पुनः आत्मघात की इच्छा करने लगा सो राम ने अपने रथ से उतरकर उसे बड़ी कठिनाई से पकड़कर रक्खा ॥3॥ जिसने अस्त्र और कवच छोड़ दिये थे ऐसा विभीषण पुनः मूर्च्छित हो पृथिवी पर पड़ा रहा । तत्पश्चात् जब पुनः सचेत हुआ तब करुणा उत्पन्न करने वाला विलाप करने लगा॥ 4॥ वह कह रहा था कि हे भाई ! हे उदार करुणा के धारी ! हे शूरवीर ! हे आश्रितजन वत्सल ! हे मनोहर ! तुम इस पापपूर्ण दशा को कैसे प्राप्त हो गये ? ॥5॥ हे नाथ । क्या उस समय तुमने मेरे कहे हुए हितकारी वचन नहीं माने इसीलिए युद्ध में तुम्हें चक्र से ताड़ित देख रहा हूँ ॥

6॥ हे देव ! हे विद्याधरों के अधिपति ! हे लंका के स्वामी ! तुम तो भोगों से लालित हुए थे फिर आज पृथिवीतल पर क्यों सो रहे हो ? ॥ 7॥ हे सुंदर वचन बोलने वाले ! हे गुणों के खानि ! उठो मुझे वचन देओ, मुझ से वार्तालाप करो । हे कृपा के आधार ! शोकरूपी सागर में डूबे हुए मुझे सांत्वना देओ ॥8॥

तदनंतर इसी बीच में जिसे रावण के गिरने का समाचार विदित हो गया था ऐसा अंत:पुर शोक की बड़ी-बड़ी लहरों से व्याप्त होता हुआ क्षुभित हो उठा ॥6॥ जिन्होंने अश्रुधारा से पृथिवीतल को सींचा था तथा जिनके पैर बार-बार लड़खड़ा रहे थे ऐसी समस्त स्त्रियां रणभूमि में आ गई ॥10॥ और पृथिवी के चूडामणि के समान सुंदर पति को निश्चेतन देख अत्यंत वेग से भूमि पर गिर पड़ी ॥11॥ रंभा, चंद्राननना, चंद्रमंडला, प्रवरा, उर्वशी, मंदोदरी, महादेवी, सुंदरी, कमलाननना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकांता, श्रीमती, भद्रा, कनकाभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनंदा, अनंगसुंदरी, वसुंधरा, तडिन्माला, पद्मा, पद्मावती, सुखा, देवी, पद्मावती, कांति, प्रीति, संध्यावली, शुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकांता और मनोवती, आदि अठारह हजार स्त्रियाँ पति को घेरकर महाशोक से रुदन करने लगीं ॥12-16॥ जिनके ऊपर चंदन का जल सींचा गया था ऐसी मूर्च्छा को प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ, जिनके मृणाल उखाड़ लिये गये हैं ऐसी कमलिनियों की शोभा धारण कर रहीं थीं ॥17॥ पति का आलिंगन कर गाढ़ मूर्च्छा को प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियां अंजनगिरि से संसक्त संध्या की कांति को धारण कर रहीं थीं ॥18॥ जिनकी मूर्च्छा दूर हो गई थी तथा जो छाती के पीटने में चश्चल थीं ऐसी कितनी ही स्त्रियां मेघ कौंधती हुई विद्युन्माला की आकृति को धारण कर रही थीं ॥19॥ कोई एक स्त्री पति का मुखकमल अपनी गोद में रख अत्यंत विह्वल हो रही थी तथा वक्षःस्थल का स्पर्श करती हुई बार-बार मूर्च्छित हो रही थी ॥20॥

वे कह रही थीं कि हाय-हाय हे नाथ ! तुम मुझ अतिशय भीरु को छोड़ कहाँ चले गये हो ? दुःख में डूबे हुए अपने लोगों की ओर क्यों नहीं देखते हो ? ॥21॥ हे महाराज ! तुम तो धैर्य गुण से सहित हो, कांतिरूपी आभूषण से विभूषित हो, परम कीर्ति के धारक हो, विभूति में इंद्र के समान हो, मानी हो, भरतक्षेत्र के स्वामी हो, प्रधानपुरुष हो, मन को रमण करने वाले हो, और विद्याधरों के राजा हो फिर इस तरह पृथिवी पर क्यों सो रहे हो ? ॥22-23॥ हे कांत ! हे दया तत्पर, हे स्वजन वत्सल ! उठो, एक बार तो अमृततुल्य सुंदर वचन देओ ॥24॥ हे प्राणनाथ ! हम लोग अपराध से रहित हैं तथा हम लोगों का चित्त एक आप ही में आसक्त है फिर क्यों इस तरह कोप को प्राप्त हुए हो ? ॥25॥ हे नाथ ! परिहास की कथा में तत्पर और दांतों की कांतिरूपी चांदनी से मनोहर इस मुखरूपी चंद्रमा को एक बार तो पहले के समान धारण करो ॥26॥ तुम्हारा यह सुंदर वक्षःस्थल उत्तम स्त्रियों का क्रीड़ास्थल है फिर भी इस पर चक्रधारा ने कैसे स्थान जमा लिया ? ॥27॥ हे नाथ ! दुपहरिया के फूल के समान लाल-लाल यह तुम्हारा ओंठ क्रीड़ापूर्ण उत्तर देने के लिए इस समय क्यों नहीं फड़क रहा है ? ॥28॥ प्रसन्न होओ, तुमने कभी इतना लंबा क्रोध नहीं किया अपितु हम लोगों को तुम पहले सांत्वना देते रहे हो ॥29॥ जिसने स्वर्गलोक से च्युत होकर आप से जन्म ग्रहण किया था ऐसा वह मेघवाहन और इंद्रजित् शत्रु के बंधन में दुःख भोग रहा है ॥30॥ सो सुकृत को जानने वाले गुणशाली वीर राम के साथ प्रीति कर अपने भाई कुंभकर्ण तथा पुत्रों को बंधन से छुड़ाओ ॥35॥ हे प्राणनाथ ! उठो, प्रियवचन प्रदान करो । हे देव ! चिरकाल तक क्यों सो रहे हो ? उठो राजकार्य करो ॥32॥ हे सुंदर चेष्टाओं के धारक ! हे कांत ! हे प्रेमियों से प्रेम करने वाले ! प्रसन्न होओ और विरहरूपी अग्नि से जलते हुए हमारे अंगों को शांत करो ॥33॥ रे हृदय ! इस अवस्था को प्राप्त हुए पति के मुखकमल को देखकर तू सौ टूक क्यों नहीं हो जाता है ? ॥34॥ जान पड़ता है कि हमारा यह दुःख का भाजन हृदय वज्र का बना हुआ है इसीलिए तो तुम्हारी इस अवस्था को जानकर भी निर्दय हुआ स्थित है ॥35॥ हे विधातः ! हम लोगों ने तुम्हारा कौन-सा अशोभनीक कार्य किया था जिससे तुमने यह ऐसा कार्य किया जो निर्दय मनुष्यों के लिए भी दुष्कर है कठिन है ॥36॥ हे नाथ ! आलिंगन मात्र से मान को दूर कर परस्पर एक दूसरे के आदान-प्रदान से मनोहर जो मधु का पान किया था ॥37॥ हे प्रिय ! अन्य स्त्री का नाम लेने रूप अपराध होने पर जो मैंने तुम्हें अनेकों बार मेखला सूत्र से बंधन में डाला था ॥38॥ हे प्रभो ! मैंने क्रोध से ओंठ को कंपित करते हुए जो उस समय तुम्हें कर्णाभरण के नीलकमल से ताड़ित किया था और उस कमल की केशर तुम्हारे ललाट में जा लगी थी ॥39॥ प्रणय कोप को नष्ट करने के लिए मधुर वचन कहते हुए जो तुमने हमारे पैर उठाकर अपने मस्तक पर रख लिये थे और उससे हमारा हृदय तत्काल द्रवीभूत हो गया था, और हे परमेश्वर ! हे कांत ! मधुर वचनों से सहित अत्यंत रमणीय जो रत इच्छानुसार आपके साथ सेवन किये गये थे । हे मनोहर! परम आनंद को करने वाले वे सब कार्य इस समय एक-एक कर स्मृति-पथ में आते हुए हृदय में तीव्र दाह उत्पन्न कर रहे हैं॥ 40-42॥ हे नाथ ! प्रसन्न होओ, उठो, मैं आपके चरणों में नमस्कार करती हूँ । क्योंकि प्रियजनों पर चिरकाल तक

रहने वाला क्रोध शोभा नहीं देता॥ 43॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस तरह रावण की स्त्रियों का विलाप सुनकर किस प्राणी का हृदय अत्यंत द्रवता को प्राप्त नहीं हआ था ? ॥44॥

अथानंतर जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त थे, जो करुणा प्रकट करने में उद्यत थे, सांत्वना देने में निपुण थे, तथा लोकव्यवहार के पंडित थे ऐसे राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ विद्याधरों के साथ विभीषण का स्नेहपूर्ण आलिंगन कर यह वचन बोले ॥45-46॥ कि हे राजन् ! इस तरह रोना व्यर्थ है, अब विषाद छोड़ो, आप जानते हैं कि यह कर्मों की चेष्टा है ॥47॥ पूर्वकर्म के प्रभाव से प्रमाद करने वाले मनुष्यों को जो वस्तु प्राप्त होने योग्य है वह अवश्य ही प्राप्त होती है इसमें शोक का क्या अवसर है ? ॥48॥ मनुष्य जब अकार्य में प्रवृत्त होता है वह तभी मर जाता है फिर रावण तो चिरकाल बाद मरा है अतः अब शोक क्यों किया जाता है ? ॥49॥ जो सदा परम प्रीतिपूर्वक जगत् का हित करने में तत्पर रहता था, जिसकी बुद्धि सदा सावधान रूप रहती थी, जो प्रजा के कार्य में पंडित था, और समस्त शास्त्रों के **अर्थ** ज्ञान से जिसकी आत्मा धुली हुई थी ऐसा रावण बलवान मोह के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हुआ है॥ 50-51॥ उस रावण ने इस अपराध से विनाश का अनुभव किया है सो ठीक ही है क्योंकि विनाश के समय मनुष्यों की बुद्धि अंधकार के समान हो जाती है ॥52॥

तदनंतर राम के कहने के बाद अतिशय चतुर भामंडल ने परमोत्कट माधुर्य को धारण करने वाले निम्नांकित वचन कहे ॥53॥ उसने कहा कि हे विभीषण ! भयंकर रण में युद्ध करता हुआ महामनस्वी रावण वीरों के योग्य मृत्यु से मरकर आत्मस्थिति अथवा स्वर्ग स्थिति को प्राप्त हुआ है ॥54॥ जिस प्रभु का मान नष्ट नहीं हुआ उसका क्या नष्ट हुआ ? **अर्थ**ात् कुछ नहीं । यथार्थ में रावण अत्यंत धन्य है जिसने शत्रु के सम्मुख प्राण छोड़े ॥55॥ वह तो महाधैर्यशाली वीर रहा अतः उसके विषय में शोक करने योग्य बात ही नहीं है । लोक में जो क्षत्रिय अरिंदम के समान हैं वे ही शोक करने योग्य हैं ॥56॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि अक्षपुर नामा नगर में लक्ष्मी और हरिध्वज से उत्पन्न हुआ अरिंदम नाम का एक राजा था जो इंद्र के समान संपत्ति से प्रसिद्ध था ॥57॥ वह एक बार नाना देशों में स्थित शत्रुसमूह को जीतकर अपनी स्त्री को देखने की इच्छा से अपने घर की ओर लौट रहा था ॥58॥ तीव्र उत्कंठा से युक्त होने के कारण उसने मन के समान शीघ्रगामी घोड़ों से अकस्मात् ही पताकाओं और तोरणों से अलंकृत नगर में प्रवेश किया ॥59॥ अपने घर को सज़ा हुआ तथा स्त्री को आभूषणादि से अलंकृत देख उसने पूछा कि बिना कहे तुमने कैसे जान लिया कि ये आ रहे हैं ॥60॥ स्त्री ने कहा कि हे नाथ ! आज मुनियों में मुख्य अवधिज्ञानी कीर्तिधर मुनि पारणा के लिए आये थे । मैंने उनसे आपके आने का समय पूछा था तो उन्होंने कहा कि राजा आज ही अकस्मात् आवेंगे ॥61॥ राजा अरिंदम को मुनि के भविष्य ज्ञान पर कुछ ईर्ष्या हुई अतः वह उनके पास जाकर बोला कि यदि तुम जानते हो तो मेरे मन की बात बताओ ॥62॥ मुनि ने कहा कि तुमने मन में यह बात रख छोड़ी है कि मेरी कब और किस प्रकार मृत्यु होगी ? ॥63॥ सो तुम आज से सातवें दिन वज्रपात से मरकर अपने विष्ठागृह में महान् कीड़ा होओगे॥ 64॥ वहाँ से आकर राजा अरिंदम ने अपने पुत्र प्रीतिंकर से कहा कि मैं विष्ठागृह में एक बड़ा कीड़ा होऊँगा सो तुम मुझे मार डालना ॥65॥

तदनंतर जब पुत्र विष्ठागृह में स्थूल कीड़ा को देखकर मारने के लिए उद्यत हुआ तब वह कीड़ा मृत्यु के भय से भाग कर बहुत दूर विष्ठा के भीतर घुस गया ॥66॥ प्रीतिंकर ने मुनिराज के पास जाकर पूछा कि हे भगवन् ! कहे अनुसार जब मैं उस कीड़े को मारता हूँ तब वह दूर क्यों भाग जाता है ? ॥65॥ मुनिराज ने कहा कि इस विषय में विवाद मत करो । यह प्राणी जिस योनि में जाता है उसी में प्रीति को प्राप्त हो जाता है ॥68॥ इसीलिए आत्मा का कल्याण करने वाला वह कार्य करो जिससे कि आत्मा पाप से छूट जाय । यह निश्चित है कि सब प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्म का फल प्राप्त करने में ही लीन हैं ॥66॥ इस प्रकार अत्यंत दुःख को उत्पन्न करने वाली संसारदशा को जानकर प्रीतिंकर निःस्पृह हो महामुनि हो गया ॥67॥ इस प्रकार भामंडल विभीषण से कहता है कि हे विभीषण ! क्या तुझे यह संसार की विविध दशा ज्ञात नहीं है जो शूरवीर, दृढ़निश्चयी एवं कर्मोदय के कारण युद्ध में नारायण के द्वारा सम्मुख मारे हुए प्रधान पुरुष रावण के प्रति शोक कर रहा है । अब तो अपने कार्य में चित्त देओ । इस शोक से क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार प्रतिबोध के देने में कुशल, नाना स्वभाव से सहित, एवं प्रीतिंकर मुनिराज के चरित को निरूपण करने वाली कथा सुनकर सब विद्याधर राजाओं ने ठीक-ठीक यह शब्द कहे और लोकोत्तर सर्वश्रेष्ठ आचार को जानने वाला विभीषणरूपी सूर्य शोकरूपी अंधकार से छूट गया **अर्थ**ात् विभीषण का शोक दूर हो गया ॥71-72॥

इस प्रकार आर्षनाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण या पद्मायन नामक ग्रंथ में प्रीतिंकर का उपाख्यान करने वाला सतहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ॥77॥

## इंद्रजित् आदि की दीक्षा

अठहत्तरवाँ पर्व

कथा :

तदनंतर श्रीराम ने कहा कि अब क्या करना चाहिए ? क्योंकि विद्वानों के वैर तो मरण पर्यंत ही होते हैं ॥1॥ अच्छा हो कि हम लोग परलोक को प्राप्त हुए महामानव लंकेश्वर के सुख से बढ़ाये हुए उत्तम शरीर का दाहसंस्कार करावें ॥2॥ राम के उक्त वचन की सबने प्रशंसा की । तब विभीषण सहित राम लक्ष्मण अन्य सब विद्याधर राजाओं के साथ उस दिशा में पहुँचे जहाँ हजारों स्त्रियों के बीच बैठी मंदोदरी शोक से विह्वल हो कुररी के समान करुण विलाप कर रही थी ॥3-4॥ राम और लक्ष्मण महागज से उतरकर प्रमुख विद्याधरों के साथ मंदोदरी के पास गये ॥5॥ जिन्होंने रत्नों की चूड़ियाँ तोड़कर फेंक दी थीं तथा जो पृथिवी की धूलि से धूसर शरीर हो रही थीं ऐसी सब स्त्रियाँ राम लक्ष्मण को देख गला फाड़-फाड़कर अत्यधिक रोने लगीं ॥6॥ बुद्धिमान राम ने मंदोदरी के साथ-साथ समस्त स्त्रियों के समूह को नाना प्रकार के वचनों से सांत्वना प्राप्त कराई ॥7॥ तदनंतर कपूर, अगुरु, गोशीर्ष और चंदन आदि उत्तम पदार्थों से रावण का संस्कार कर सब पद्मनामक महासरोवर पर गये ॥8॥ उत्तम चित्त के धारक राम ने सरोवर के तीर पर बैठकर कहा कि सब सामंतों के साथ कुंभकर्णादि छोड़ दिये जावें ॥9॥यह सुन कुछ विद्याधर राजाओं ने कहा कि वे बड़े क्रूर हृदय हैं अतः उन्हें शत्रुओं के समान मारा जाय अथवा वे स्वयं ही बंधन में पड़े-पड़े मर जावें ॥10॥ तब राम ने कहा कि यह क्षत्रियों की चेष्टा नहीं । क्या आप लोग क्षत्रियों की इस प्रसिद्ध नीति को नहीं जानते कि सोते हुए, बंधन में बँधे हुए, नम्रीभूत, भयभीत तथा दाँतों में तृण दबाये हुए आदि योद्धा मारने योग्य नहीं हैं । यह क्षत्रियों का धर्म जगत् में सर्वत्र सुशोभित है॥ 11-12॥ तब एवमस्तु कहकर स्वामी की आज्ञापालन करने में तत्पर, नाना प्रकार के शस्त्रों के धारक महायोद्धा कवचादि से युक्त हो उन्हें लाने के लिये गये ॥13॥

तदनंतर इंद्रजित्, कुंभकर्ण, मारीच, मेघवाहन तथा मय महादैत्य को आदि लेकर अनेक उत्तम विद्याधर जो राम के कटक में कैद थे तथा खन-खन करने वालो बड़ी मोटी बेड़ियों से जो सहित थे वे प्रमादरहित सावधान चित्त के धारक शूरवीरों द्वारा लाये गये ॥14-15॥ दिग्गजों के समान उन सबको लाये जाते देख, समूह के बीच बैठे हुए विद्याधर इच्छानुसार परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि यदि कहीं रावण की जलती चिता को देखकर इंद्रजित् अथवा कुंभकर्ण क्रोध को प्राप्त होता है अथवा इन दो में से एक भी बिगड़ उठता है तो उसके सामने खड़ा होने के लिए वानरों की सेना में कौन राजा समर्थ हैं ?॥16-18॥ उस समय जो जहाँ बैठा था उस स्थान से नहीं उठा सो ठीक ही है क्योंकि ये सब रण के अग्रभाग में उनका बल देख चुके थे ॥19॥ भामंडल ने अपने प्रधान योद्धाओं से कह दिया कि विभीषण का अब भी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥20॥ क्योंकि कदाचित् बंधन से छूटे हुए इन आत्मीय जनों को पाकर भाई के दुःख से संतप्त रहने वाले इसके विकार उत्पन्न हो सकता है ॥21॥ इस प्रकार जिन्हें नाना प्रकार की शंकाएँ उत्पन्न हो रही थीं ऐसे भामंडल आदि के द्वारा घिरे हुए कुंभकर्णादि राम लक्ष्मण के समीप लाये गये ॥22॥

वे कुंभकर्णादि सभी पुरुष राग-द्वेष से रहित हो हृदय से मुनिपना को प्राप्त हो चुके थे, सौम्य दृष्टि से पृथिवी को देखते हुए आ रहे थे, सबके मुख अत्यंत शुभ-शांत थे ॥23॥ वे अपने मन में यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि इस संसार में कुछ भी सार नहीं है एक धर्म ही सार है जो सब प्राणियों का महाबंधु है। यदि हम इस बंधन से छुटकारा प्राप्त करेंगे तो निर्ग्रंथ साधु हो पाणि-मात्र से ही आहार ग्रहण करेंगे । इस प्रकार की प्रतिज्ञा को प्राप्त हुए वे सब राम के समीप आये । कुंभकर्ण आदि राजा विभीषण के भी सम्मुख गये ॥24-26॥ तदनंतर जब दुःख के समय का वार्तालाप धीरे-धीरे समाप्त हो गया तब परमशांति को धारण करने वाले कुंभकर्णादि ने राम-लक्ष्मण से इस प्रकार कहा कि अहो ! आप लोगों का धैर्य, गांभीर्य, चेष्टा तथा बल आदि सभी उत्कृष्ट है क्योंकि जो देवों के द्वारा भी अजेय था ऐसे रावण को आपने मृत्यु प्राप्त करा दी ॥27-28॥ अत्यंत अपकारी, मानी और कटुभाषी होने पर भी यदि शत्रु में उत्कृष्ट गुण हैं तो वह विद्वानों का प्रशंसनीय ही होता है ॥29॥

तदनंतर लक्ष्मण ने मनोहर वचनों द्वारा सांत्वना देकर कहा कि आप सब पहले की तरह भोगोपभोग करते हुए आनंद से रहिये॥ 30॥ यह सुन उन्होंने कहा कि विष के समान दारुण, महामोह को उत्पन्न करने वाले, भयंकर तथा महादुःख देने वाले भोगों की हमें आवश्यकता नहीं है ॥31॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! उस समय वे उपाय शेष नहीं रह गये थे जिनसे उन्हें सांत्वना न दी गई हो परंतु फिर भी उन मनस्वी मनुष्यों ने भोगों का संबंध स्वीकृत नहीं किया ॥32॥ यद्यपि नारायण और बलभद्र स्वयं उस तरह उनके पीछे लगे हुए थे

**अर्थ**ात् उन्हें भोग स्वीकृत कराने के लिए बार-बार समझा रहे थे तथापि उनकी दृष्टि भोगों से उस तरह विमुख ही रही जिस तरह कि सूर्य से लगी दृष्टि अंधकार से विमुख रहती है ॥33॥ मसले हुए अंजन के कणों के समान कांति वाले उस सरोवर के सुगंधित जल में बंधन मुक्त कुंभकर्णादि के साथ सबने स्नान किया॥34॥तदनंतर उस पद्म सरोवर से निकलकर सब वानर और राक्षस, यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर चले गये॥ 35॥ कितने ही विद्याधर इस सरोवर के मनोहर तट पर मंडल बाँधकर बैठ गये और आश्चर्य से चकित चित्त होते हुए शूरवीरों की कथा करने लगे ॥36॥ कितने ही विद्याधर क्रूरकर्मा दैव के लिए उपालंभ देने लगे और कितने ही शब्दरहित चुपचाप अत्यधिक अश्रु छोड़ने लगे ॥37॥ स्मृति में आये हुए रावण के गुणों से जिनके चित्त भर रहे थे ऐसे कितने ही लोग गला फाड़-फाड़कर रो रहे थे ॥38॥ कितने ही लोग कर्मों की अत्यंत संकटपूर्ण विचित्रता का निरूपण कर रहे थे और कितने ही अत्यंत दुस्तर संसाररूपी अटवी की निंदा कर रहे थे ॥39॥ कितने ही लोग भोगों में परम विद्वेष को प्राप्त होते हुए राज्यलक्ष्मी को चंचल एवं निरर्थक मान रहे थे ॥40॥ कोई यह कह रहे थे कि वीरों की ऐसी ही गति होती है और कोई उत्तम बुद्धि के धारक अकार्य-खोटे कार्य की निंदा कर रहे थे॥ 41॥ कोई रावण की गर्व भरी कथा कर रहे थे, कोई राम के गुण गा रहे थे और कोई लक्ष्मण की शक्ति की चर्चा कर रहे थे ॥42॥ जिनका मस्तक धीरे-धीरे हिल रहा था तथा जिनका चित्त अत्यंत स्वच्छ था ऐसे कितने ही वीर, राम की प्रशंसा न कर पुण्य के फल की प्रशंसा कर रहे थे ॥ 43॥ उस समय घर-घर में सब कार्य समाप्त हो गये थे केवल बालकों में कथाएँ चल रहीं थीं ॥44॥ उस समय लंका में जबकि सब लोग दुर्दिन की भाँति लगातार अश्रुओं की वर्षा कर रहे थे तब ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँ के फर्श भी बहुत भारी शोक के कारण पिघल गये हों ॥45॥ उस समय लंका में जहाँ देखो वहाँ नेत्रों से पानी ही पानी भर रहा था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो संसार अन्य तीन भूतों को दूर कर केवल जलरूप ही हो गया था॥ 46॥ सब ओर बहने वाले नेत्र-जल के प्रवाहों से भयभीत होकर ही मानो अत्यंत दुःसह संतापों ने हृदयों में स्थान जमा रक्खा था॥ 47॥ धिक्कार हो, धिक्कार हो, हाय-हाय बड़े कष्ट की बात है, अहो हा ही यह क्या अद्भुत कार्य हो गया, उस समय लोगों के मुख से अश्रुओं के साथ-साथ ऐसे ही शब्द निकल रहे थे॥ 48॥ कितने ही लोग मौन से मुँह बंदकर पृथ्वीरूपी शय्या पर निश्चल शरीर होकर इस प्रकार बैठे थे मानो मिट्टी के पुतले ही हों॥ 49॥कितने ही लोगों ने शस्त्र तोड़ डाले, आभूषण फेंक दिये और स्त्रियों के मुखकमल से दृष्टि हटा ली॥ 50॥कितने ही लोगों के मुख से गरम लंबे और कलुषित श्वास के बघरूले निकल रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उनका दुःख अविरल अंकुर ही छोड़ रहा हो ॥51॥ कितने ही लोग संसार से परम निर्वेद को प्राप्त हो मन में जिन-कथित दिगंबर दीक्षा को धारण कर रहे थे॥ 52॥

अथानंतर उस दिन के अंतिम पहर में अनंतवीर्य नामक मुनिराज महासंघ के साथ लंका नगरी में आये ॥53॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यदि रावण के जीवित रहते वे महामुनि लंका में आये होते तो लक्ष्मण के साथ रावण की घनी प्रीति होती ॥54॥ क्योंकि जिस देश में ऋद्धिधारी मुनिराज और केवली विद्यमान रहते हैं वहाँ दो सौ योजन तक की पृथ्वी स्वर्ग के सदृश सर्व प्रकार के उपद्रवों से रहित होती है और उनके निकट रहने वाले राजा निर्वैर हो जाते हैं॥ 55-56॥ जिस प्रकार आकाश में अमूर्तिकपना और वायु में चंचलता स्वभाव से हैं उसी प्रकार महामुनि में लोगों को आह्लादित करने की क्षमता स्वभाव से ही होती है॥ 57॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अनेक आश्चर्यों से युक्त मुनियों से घिरे हुए वे अनंतवीर्य मुनिराज लंका में जिस प्रकार आये थे उसका कथन कौन कर सकता है ? ॥58॥ जो अनेक ऋद्धियों से सहित होने के कारण सुवर्ण कलश के समान जान पड़ते थे, ऐसे वे मुनि लंका में आकर कुसुमायुध नामक उद्यान में ठहरे ॥59॥ वे छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनियों के साथ उस उद्यान में बैठे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रों से घिरा हुआ चंद्रमा ही हो ॥60॥ निर्मल शिलातल पर शुक्लध्यान में आरूढ़ हुए उन मुनिराज को उसी रात्रि में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥61॥ हे श्रेणिक ! मैं पाप को दूर करने वाला परम आश्चर्य से युक्त उनके मनोहर अतिशयों का वर्णन करता हूँ सो सुन ॥62॥

अथानंतर केवलज्ञान उत्पन्न होते ही वे मुनिराज वीर्यांतराय कर्म का क्षय हो जाने से अनंतबल के स्वामी हो गये तथा देव निर्मित सिंहासन पर आरूढ हुए । पृथ्वी के नीचे पाताल लोक में निवास करने वाले वायुकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार तथा सुपर्णकुमार आदि दश प्रकार के भवनवासी, किन्नरों को आदि लेकर आठ प्रकार के व्यंतर, सूर्य, चंद्रमा, ग्रह आदि पाँच प्रकार के ज्योतिषी और सौधर्म आदि सोलह प्रकार के कल्पवासी इस तरह चारों निकाय के देव धातकीखंडद्वीप में उत्पन्न हुए किसी तीर्थंकर के जन्म कल्याणक संबंधी उत्सव में गये हुए थे, वहाँ विशाल पूजा तथा सुमेरू पर्वत के उत्तम शिखर पर विराजमान देवाधिदेव जिनेंद्र बालक का शुभ रत्नमयी एवं सुवर्णमयी कलशों द्वारा अभिषेक कर उन्होंने उत्तम शब्दों से उनकी स्तुति की । तदनंतर वहाँ से लौटकर जिनबालक को माता की गोद में सुख से

विराजमान किया । जो बालक अवस्था होने पर भी बालकों जैसी चपलता से रहित थे ऐसे जिनबालक को नमस्कार कर उन देवों ने हर्षित हो, मेरु से लौटने के बाद तीर्थंकर के घर पर होने वाले तांडव नृत्य आदि योग्य रीति से किये । तदनंतर वहाँ से लौटकर लंका में अनंतवीर्य मुनि का केवलज्ञान महोत्सव देख उनके समीप आये । मुनिराज के प्रभाव से खींचे हुए उन देवों में कितने ही देव रत्नों की बड़ी-बड़ी मालाओं से युक्त, सूर्यबिंब के समान प्रकाशमान एवं योग्य प्रमाण से सहित उत्तम विमानों में आरूढ़ थे, कितने ही शंख के समान सफेद उत्तम राजहँसों पर सवार थे, कितने ही उन हाथियों की पीठ पर आरूढ़ थे, जिनके कि गंडस्थल अत्यधिक मद संबंधी श्रेष्ठ सुगंधि के संबंध से गूंजते हुए भ्रमर समूह की श्यामकांति के कारण कुछ बढ़े हुए से दिखायी देते थे और कितने ही बाल चंद्रमा के समान दाढ़ों से भयंकर मुख वाले व्याघ्र-सिंह आदि वाहनों पर आरूढ़ थे । वे सब देव प्रसन्नचित्त के धारक हो उन मुनिराज के समीप आ रहे थे । उस समय जोर-जोर से बजने वाले पटह, मृदंग, गंभीर और भेरियों के नाद से, बजती हुई बासुरियों और वीणाओं की उत्तम झनकार से, झन-झन करने वाली झाँझों से, शब्द करने वाले अनेक शंखों से, महामेघमंडल की गर्जना के समान गंभीर ध्वनि से युक्त दुंदुभि-समूह के रमणीय शब्दों से और मन को हरण करने वाली देवांगनाओं के सुंदर संगीत से आकाशमंडल व्याप्त हो गया था । उस अर्धरात्रि के समय सहसा अंधकार विलीन हो गया और विमानों में लगे हुए रत्नों आदि का प्रकाश फैल गया, सो उसे देख तथा दुंदुभियों की गंभीर गर्जना सुनकर राम-लक्ष्मण पहले तो कुछ उद्विग्न चित्त हुए फिर क्षण-एक में ही यथार्थ समाचार जानकर संतोष को प्राप्त हुए । वानरों और राक्षसों की सेना में ऐसी हलचल मच गई मानो समुद्र ही लहराने लगा हो । तदनंतर भक्ति से प्रेरित विद्याधर, राम-लक्ष्मण आदि सत्पुरुष और भानुकर्ण, इंद्रजित्, मेघवाहन आदि राक्षस, कोई उत्तम हाथियों पर आरूढ़ होकर और कोई रथ तथा उत्तम घोड़ों पर सवार हो केवल भगवान के समीप चले । उस समय वे अपने सफेद छत्रों, ध्वजाओं और तरुण हंसावली के समान शोभायमान चमरों से युक्त थे तथा आकाश को आच्छादित करते हुए जा रहे थे ।

जिस प्रकार अत्यधिक हर्ष से युक्त गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं के समूह से सेवित इंद्र अपने कामोद्यान में प्रवेश करता है, उसी प्रकार सब लोगों ने अपने-अपने वाहनों से उतरकर तथा ध्वजा छत्रादि के संयोग का त्यागकर लंका के उस कुसुमायुध उद्यान में प्रवेश किया । समीप में जाकर सबने मुनिराज की पूजा की, उनके चरणकमल युगल में प्रणाम किया और उत्तम स्तोत्र तथा मंत्रों से परिपूर्ण वचनों से भक्तिपूर्वक स्तुति की । तदनंतर धर्मश्रवण करने की इच्छा से सब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये और सावधानचित्त होकर मुनिराज के मुख से निकले हुए धर्म का इस प्रकार श्रवण करने लगे

उन्होंने कहा कि इस संसार में नरक तिर्यंच मनुष्य और देव के भेद से चार गतियाँ हैं जिनमें नाना प्रकार के महादुःखरूपी चक्र पर चढ़े हुए समस्त प्राणी निरंतर घूमते रहते हैं तथा अष्टकर्मों से बद्ध हो स्वयं शुभ अशुभ कर्म करते हैं । सदा आर्त्त-रौद्र ध्यान से युक्त रहते हैं तथा मोहनीय कर्म उन्हें बुद्धि रहित कर देता है । ये प्राणी सदा प्राणिघात, असत्यभाषण, परद्रव्यापहरण, परस्त्री समालिंगन और अपरिमित धन का समागम, महालोभ कषाय के साथ वृद्धि को प्राप्त हुए इन पाँच पापों के साथ संसर्ग को प्राप्त होते हैं । अंत में खोटे कर्मों से प्रेरित हुए मानव, मृत्यु को प्राप्त हो नीचे पाताललोक में जन्म लेते हैं । नीचे की पृथिवीयों के नाम इस प्रकार हैं रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा । ये पृथिवियाँ निरंतर महाअंधकार से युक्त, अत्यंत दुर्गंधित, घृणित दुर्दृश्य एवं दुःखदायी स्पर्शरूप हैं । महादारुण हैं, वहाँ की पृथिवी तपे हुए लोहे के समान हैं । सबकी सब तीव्र आक्रंदन, आक्रोशन और भय से आकुल हैं । जिन पृथिवियों में नारकी जीव पाप से बँधे हुए दुष्कर्म के कारण सदा महातीव्र दुःख अनेक सागरों की स्थिति पर्यंत प्राप्त होते रहते हैं । ऐसा जानकर हे विद्वज्जन हो पापबंध से चित्त को द्वेषयुक्त कर उत्तमधर्म में रमण करो जो प्राणी व्रत-नियम आदि से तो रहित हैं परंतु स्वाभाविक सरलता आदि गुणों से सहित हैं ऐसे कितने ही प्राणी मनुष्यगति को प्राप्त होते हैं और कितने ही नाना प्रकार के तपश्चरण कर देवगति को प्राप्त होते हैं । वहाँ से च्युत हो पुनः मनुष्य पर्याय पाकर जो धर्म की अभिलाषा छोड़ देते हैं वे कल्याण से रहित हो पुनः उग्र दुःख से दुःखी होते हुए जन्म-मरण रूपी वृक्षों से युक्त विशाल संसारवन में भ्रमण करते रहते हैं ।

अथानंतर जो भव्य प्राणी देवाधिदेव जिनेंद्र भगवान् के वचनों से अत्यंत प्रभावित हो मोक्षमार्ग के अनुरूप शील, सत्य, शौच, सम्यक् तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के युक्त होते हुए अष्टकर्मों के नाश का प्रयत्न करते हैं, वे उत्कृष्ट वैभव से युक्त हो देवों के उत्तम स्वामी होते हैं और वहाँ अनेक सागर पर्यंत नाना प्रकार का सुख प्राप्त करते रहते हैं । तदनंतर वहाँ से च्युत हो अवशिष्ट धर्म के फलस्वरूप बहुत भारी भोग और लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं और अंत में रत्नत्रय को प्राप्त कर राज्यादि वैभव का त्यागकर जैनलिंग-निर्ग्रंथ मुद्रा धारण करते हैं तथा

अत्यंत तीव्र तपश्चरण कर शुक्लध्यान के धारी हो केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और आयु का क्षय होने पर समस्त कर्मों से रहित होते हुए तीन लोक के अग्रभाग पर आरूढ़ हो सिद्ध बनते हैं एवं अंतरहित आत्मस्वभावमय आह्लाद-रूप अनंत सुख प्राप्त करते हैं ।
अथानंतर इंद्रजित् और मेघवाहन ने अनंतवीर्य मुनिराज से अपने पूर्वभव पूछे । सो इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि कौशांबी नगरी में दरिद्रकुल में उत्पन्न हुए दो भाई रहते थे । पहले का नाम प्रथम था और दूसरा पश्चिम कहलाता था । किसी एक दिन विहार करते हुए भवदत्त मुनि उस नगरी में आये॥63-64॥ उनके पास धर्मश्रवण कर दोनों भाई क्षुल्लक हो गये । किसी दिन उस नगरी का कांतिमान इंदु नाम का राजा उन मुनिराज के दर्शन करने आया, सो उसे देख मुनिराज उपेक्षा भाव से बैठे रहे । उन्होंने राजा के प्रति कुछ भी आदर भाव प्रकट नहीं किया । इसका कारण यह था कि बुद्धिमान् मुनिराज ने यह जान लिया था कि राजा का मिथ्यादर्शन अनुपाय है□ दूर नहीं किया जा सकता ॥65-66॥ तदनंतर राजा के चले जाने के बाद नगर का नंदी नामक जिनेंद्रभक्त सेठ मुनि के दर्शन करने के लिये आया । वह सेठ विभूति में राजा के ही समान था और मुनि ने उसके प्रति यथायोग्य सम्मान प्रकट किया॥ 67॥ नंदी सेठ को मुनिराज के द्वारा आदृत देख पश्चिम नामक क्षुल्लक ने निदान बाँधा कि मैं नंदी सेठ के पुत्र होऊँ । यथार्थ में वह दुर्बुद्धि इसके लिए ही धर्म कर रहा था ॥ 68॥ यद्यपि उसे बहुत समझाया गया तथापि उसका चित्त उस ओर से नहीं हटा, अंत में वह निदान बंध से दूषित चित्त होता हुआ मरा और मरकर नंदी सेठ की प्रशंसनीय गुणों से युक्त इंदुमुखी नामक स्त्री के पुत्र हुआ ॥69॥ जब यह गर्भ में स्थित था तभी इसकी राज्य प्राप्ति की सूचना देने वाले, कोट का गिरना आदि बहुत से चिह्न राजाओं के स्थानों में होने लगे थे ॥70॥ नाना प्रकार के निमित्तों से यह जानकर कि यह आगे चलकर महापुरुष होगा । राजा लोग जन्म से ही लेकर उत्तम दूतों के द्वारा आदरपूर्वक भेजे हुए पदार्थों से उसकी सेवा करने लगे थे ॥71॥ वह सब लोगों की रति **अर्थ**ात् प्रीति की वृद्धि करता था, इसलिए सार्थक नाम को धारण करने वाला रतिवर्द्धन नाम का राजा हुआ । ऐसा राजा कि कौशांबी का अधिपति इंदु भी जिसे प्रणाम करता था॥ 72॥
इस प्रकार प्रथम और पश्चिम इन दो भाइयों में पश्चिम तो महाविभूति पाकर मत्त हो गया उसके मद में भूल गया और पूर्वभव में जो उसका बड़ा भाई प्रथम था वह मरकर स्वर्ग में देवपर्याय को प्राप्त हुआ॥ 73॥ पश्चिम ने प्रथम से उस पर्याय में याचना की थी कि यदि तुम देवता हों और मैं मनुष्य होऊँ तो तुम मुझे संबोधन करना । इस याचना को स्मृति में रखता हुआ प्रथम का जीव देव रतिवर्धन को संबोधने के लिए क्षुल्लक का रूप धरकर उसके घर में प्रवेश कर रहा था कि द्वार पर नियुक्त पुरुषों द्वारा उसने उसे दूर हटा दिया । तदनंतर उस देव ने क्षणभर में रतिवर्धन का रूप रख लिया और असली रतिवर्धन को पागल जैसा बनाकर जंगल में दूर खदेड़ दिया । तदनंतर उसके पास जाकर बोला कि तुमने मेरा अनादर किया था, अब कहो तुम्हारा क्या हाल है ?॥74-76॥ इतना कहकर उस देव ने रतिवर्धन के लिए अपने पूर्व जन्म का यथार्थ निरूपण किया जिससे वह शीघ्र ही प्रबोध को प्राप्त हो सम्यग्दृष्टि हो गया। साथ ही नंदी सेठ आदि भी सम्यग्दृष्टि हो गये ॥77॥ तदनंतर राजा रतिवर्धन दीक्षा धारणकर काल धर्म (मृत्यु) को प्राप्त होता हुआ बड़े भाई प्रथम का जीव जहाँ देव था वहीं जाकर उत्पन्न हुआ । तदनंतर दोनों देव वहाँ से च्युत हो विजय नामक नगर में वहाँ के राजा के उर्व और उर्वस् नामक पुत्र हुए ॥ 78॥ तत्पश्चात् जिनेंद्र प्रणीत धर्मधारण कर दोनों भाई फिर से देव हुए और वहाँ से च्युत हो आप दोनों यहाँ इंद्रजित् और मेघवाहन नामक विद्याधराधिपति हुए हो ॥76॥और जो नंदी सेठ की इंद्रमुखी नाम की भार्या थी वह भवांतर में एक जन्म का अंतर ले स्नेह के कारण जिनधर्म में लीन तुम्हारी माता मंदोदरी हुई है ॥78॥
इस प्रकार अपने अनेक भव सुन संसार संबंधी वस्तुओं में प्रीति छोड़ परम संवेग से युक्त हुए इंद्रजित् और मेघनाद ने कठिन दीक्षा धारण कर ली । इनके सिवाय जो कुंभकर्ण तथा मारीच आदि अन्य विद्याधर थे वे भी अत्यधिक संवेग से युक्त हो कषाय तथा रागभाव छोड़कर उत्तम मुनिपद में स्थित हो गये ॥81-82॥ जिन्होंने विद्याधरों के विभव को तृण के समान छोड़ दिया था, जो विधिपूर्वक उत्तमधर्म का आचरण करते थे, तथा जो नाना प्रकार की ऋद्धियों से सहित थे, ऐसे ये मुनिराज पृथिवी में सर्वत्र भ्रमण करने लगे ॥83॥ मुनिसुव्रत तीर्थकर के तीर्थ में वे परम तप से युक्त तथा भव्य जीवों के वंदना करने योग्य उत्तम मुनि हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥84॥
जो पति और पुत्रों के विरह जन्य दुःखाग्नि से जल रही थी ऐसी मंदोदरी महाशोक से युक्त हो अत्यंत विह्वल हृदय हो गई ॥85॥ दुःखरूपी भयंकर समुद्र में पड़ी मंदोदरी पहले तो मूर्छित हो गई फिर सचेत हो कुररी के समान करुण विलाप करने लगी॥ 86॥ वह कहने लगी कि हाय पुत्र इंद्रजित् ! तूने यह ऐसा कार्य क्यों किया ? हाय मेघवाहन ! तूने दुःखिनी माता की अपेक्षा क्यों नहीं की ?॥87॥तीव्र दुःख से संतप्त माता की उपेक्षाकर अतिशय दुःख से दुःखी हो तुम लोगों ने यह जो कुछ कार्य किया है सो क्या ऐसा करना तुम्हें उचित

था ? ॥88॥ हे पुत्रो ! तुम देवतुल्य भोगों से लड़ाये हुए हो । अब विद्या के विभव से रहित हो, शरीर से स्नेह छोड़ कठोर पृथ्वीतल पर कैसे पड़ोगे ? ॥89॥ तदनंतर मंदोदरी मय को लक्ष्यकर बोली कि हाय पिता ! तुमने भी उत्तम भोग छोड़कर यह क्या किया ? कहो तुमने अपनी संतान का स्नेह एक साथ कैसे छोड़ दिया ? ॥90॥ पिता, भर्ता और पुत्र इतने ही तो स्त्रियों की रक्षा के निमित्त हैं, सो मैं पापिनी इन सबके द्वारा छोड़ी गई हूँ, अब किसकी शरण में जाऊँ ? ॥91॥ इस तरह जो करुण विलाप को प्राप्त होती हुई आँसुओं की अविरल वर्षा कर रही थी ऐसी मंदोदरी को शशिकांता नामक आर्यिका ने उत्तम वचनों के द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कराया ॥92॥ आर्यिका ने समझाया कि अरी मूर्खे ! व्यर्थ ही क्यों रो रही है ? इस अनादिकालीन संसार चक्र में भ्रमण करती हुई तू तिर्यंच और मनुष्यों की नाना योनियों में उत्पन्न हुई है, वहाँ तूने नाना बंधुजनों के वियोग से विह्वल बुद्धि हो अत्यधिक रुदन किया है । अब फिर क्यों दुःख को प्राप्त हो रही है आत्मपद में लीन हो स्वस्थता को प्राप्त हो ॥93॥

तदनंतर जो संसार दशा का निरूपण करने में तत्पर शशिकांता आर्यिका के मनोहारी वचनों से प्रबोध को प्राप्त हो उत्कृष्ट संवेग को प्राप्त हुई थी ऐसी उत्तम गुणों की धारक मंदोदरी गृहस्थ संबंधी समस्त वेष रचना को छोड़ अत्यंत विशुद्ध धर्म में लीन होती हुई एक सफेद वस्त्र से आवृत आर्यिका हो गई ॥94॥ रावण की बहिन चंद्रनखा भी इन्हीं आर्या के पास उत्तम रत्नत्रय को पाकर व्रत रूपी विशाल-संपदा को धारण करने वाली उत्तम साध्वी हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिस दिन मंदोदरी आदि ने दीक्षा ली उस दिन उत्तम हृदय को धारण करने वाली एवं सूर्य की दीप्ति के समान देदीप्यमान अड़तालीस हजार स्त्रियों ने संयम धारण किया ॥95॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथितपद्म पुराण में इंद्रजित् आदि की दीक्षा का वर्णन करने वाला अठहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥78॥

## सीता का समागम

उन्यासीवां पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! अब राम और लक्ष्मण का महावैभव के साथ लंका में प्रवेश हुआ, सो उसकी कथा करना चाहिए॥ 1॥ महा विमानों के समूह, उत्तम हाथियों के घंटा, उत्कृष्ट घोड़ों के समूह, मंदिर तुल्य रथ, लतागृहों में गूंजने वाली प्रतिध्वनि से जिनने दिशाएँ बहरी कर दी थीं तथा जो शंख के शब्दों से मिले थे ऐसे वादित्रों के मनोहर शब्दों से तथा विद्याधरों के महा चक्र से सहित, उत्कृष्ट कांति के धारक, इंद्र समान राम और लक्ष्मण ने लंका में प्रवेश किया ॥2-4॥ उन्हें देख जनता परम हर्ष को प्राप्त हुई और जंमांतर में संचित धर्म का महाफल मानती हुई ॥5॥ जब चक्रवर्ती□लक्ष्मण के साथ बलभद्र□श्रीराम राजपथ में आये तब नगरवासी जनों के पूर्व व्यापार मानों कहीं चले गये **अर्थ**ात् वे अन्य सब कार्य छोड़ इन्हें देखने लगे ॥6॥ जिनके नेत्र फूल रहे थे, ऐसे स्त्रियों के मुखों से आच्छादित झरोखे निरंतर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नीलकमल और लाल कमलों से ही युक्त हों॥ 7॥ जो राम-लक्ष्मण के देखने में आकुल हो महाकौतुक से युक्त थीं ऐसी उन स्त्रियों के मुख से इस प्रकार के मनोहर वचन निकलने लगे ॥8॥ कोई कह रही थी कि सखि ! देख, ये दशरथ के पुत्र राजा रामचंद्र हैं जो अपनी उत्तम शोभा से रत्नराशि के समान सुशोभित हो रहे हैं ॥9॥ जो पूर्णचंद्रमा के समान हैं, जिनके नेत्र पुंडरीक के समान विशाल हैं तथा जिनकी आकृति स्तुति से अधिक है ऐसे ये राम मानों अपूर्व कर्मों की कोई अद्भुत सृष्टि ही हैं ॥10॥ जो कन्या इस उत्तम पति को प्राप्त होती है वही धन्य है तथा उसी सुंदरी ने लोक में अपनी कीर्ति का स्तंभ स्थापित किया है ॥11॥ जिसने जंमांतर में चिरकाल तक परमधर्म का आचरण किया है वही ऐसे पति को प्राप्त होती है । उस स्त्री से बढ़कर और दूसरी उत्तम स्त्री कौन होगी ? ॥12॥ जो स्त्री रात्रि में इसकी सहायता को प्राप्त होती है वही एक मानों स्त्रियों के मस्तक पर विद्यमान है अन्य स्त्री से क्या प्रयोजन है ? ॥13॥ कल्याणवती जानकी निश्चित हो स्वर्ग से च्युत हुई है जो इंद्राणी के समान इस प्रशंसनीय पति को रमण कराती है ॥14॥

कोई कह रही थी कि जिसने रण के अग्रभाग में असुरेंद्र के समान रावण को जीता है ऐसे ये चक्र हाथ में लिये लक्ष्मण सुशोभित हो रहे हैं ॥15॥ श्रीराम की धवल कांति से मिली तथा मसले हुए अंजन कण की समानता रखने वाली इनकी श्यामल कांति प्रयाग तीर्थ की विस्तृत शोभा धारण कर रही है॥ 16॥ कोई कह रही था कि यह चंदोदर का पुत्र राजा विराधित है जिसने नीति के संयोग से यह विपुल लक्ष्मी प्राप्त की है ॥17॥ कोई कह रही थी कि किष्किंध का राजा बलशाली सुग्रीव है जिस पर श्रीराम ने अपना परम प्रेम स्थापित किया है॥

18॥ कोई कह रही थी कि यह जानकी का भाई भामंडल है जो चंद्रगति विद्याधर के द्वारा ऐसे पद को प्राप्त हुआ है ॥19॥ कोई कह रही थी कि यह अत्यंत लड़ाया हुआ वीर अंगदकुमार है जो उस समय रावण के विघ्न करने के लिए उद्यत हुआ था ॥20॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! देख-देख इस ऊँचे सुंदर रथ को देख, जिसमें वायु से कंपित गरजते मेघ के समान हाथी जुते हैं ॥21॥ कोई कह रही थी कि जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा रणांगण में शत्रुओं के लिए अत्यंत भय उपजाने वाली थी ऐसा यह पवनंजय का पुत्र श्रीशैल-हनूमान है ॥22॥ इस तरह नाना प्रकार के वचनों से जिनकी पूजा हो रही थी तथा जो उत्तम प्रताप से युक्त थे ऐसे राम आदि ने सुख से राजमार्ग में प्रवेश किया ॥23॥

अथानंतर प्रेमरूपी रस से जिनका हृदय आर्द्र हो रहा था ऐसे श्रीराम ने अपने समीप में स्थित चमर ढोलने वाली स्त्री से परम आदर के साथ पूछा कि जो हमारे विरह में अत्यंत दुःसह दुःख को प्राप्त हुई है ऐसी भामंडल की बहिन यहाँ किस स्थान में विद्यमान है ? ॥24-25॥ तदनंतर रत्नमयी चूड़ियों की प्रभा से जिसकी भुजाएँ व्याप्त थीं एवं जो स्वामी को संतुष्ट करने में तत्पर थी ऐसी चमरग्राहिणी स्त्री अंगुली पसारकर बोली कि यह जो सामने नीझरनों के जल से अट्टहास को छोड़ते हुए पुष्प-प्रकीर्णक नामा पर्वत देख रहे हो इसी के नंदनवन के समान उद्यान में कीर्ति और शीलरूपी परिवार से सहित आपकी प्रिया विद्यमान है ॥26-28॥

उधर सीता के समीप में भी जो सुप्रियकारिणी सखी थी वह अंगूठी से सुशोभित अंगुली पसारकर इस प्रकार बोली कि जिनके ऊपर यह चंद्रमंडल के समान छत्र फिर रहा है, जो चंद्रमा और सूर्य के समान प्रकाशमान कुंडलों को धारण कर रहे हैं तथा जिनके वक्षःस्थल में शरदऋतु के निर्झर के समान हार शोभा दे रहा है, हे कमललोचने देवि ! वही ये महावैभव के धारी नरोत्तम श्रीराम तुम्हारे वियोग से परम खेद को धारण करते हुए दिग्गजेंद्र के समान आ रहे हैं ॥29-32॥ अत्यधिक विवाद से युक्त सीता ने चिरकाल बाद प्राणनाथ का मुखकमल देख ऐसा माना, मानो स्वप्न ही प्राप्त हुआ हो ॥33॥ जिनके नेत्र विकसित हो रहे थे ऐसे राम शीघ्र ही गजराज से उतरकर हर्ष धारण करते हुए सीता के समीप चले ॥34॥ जिस प्रकार मेघमंडल से उतरकर आता हुआ चंद्रमा रोहिणी को संतोष उत्पन्न करता है उसी प्रकार हाथी से उतरकर आते हुए श्रीराम ने सीता को संतोष उत्पन्न किया ॥35॥ तदनंतर राम को निकट आया देख महासंतोष को धारण करने वाली सीता संभ्रम के साथ मृगी के समान आकुल होती हुई उठकर खड़ी हो गई ॥36॥

अथानंतर जिसके केश पृथिवी की धूलि से धूसरित थे, जिसका शरीर मलिन था, जिसके ओठ मुरझाये हुए वंधूक के फूल के समान निष्प्रभ थे, जो स्वभाव से ही दुबली थी और उस समय विरह के कारण जो और भी अधिक दुबली हो गई थी, यद्यपि दुबली थी तथापि पति के दर्शन से जो कुछ-कुछ उल्लास को धारण कर रही थी, जो नखों से उत्पन्न हुई सचिक्कण किरणों से मानो आलिंगन कर रही थी, खिले हुए नेत्रों की किरणों से मानो अभिषेक कर रही थी, क्षण-क्षण में बढ़ती हुई लावण्यरूप संपत्ति के द्वारा मानो लिप्त कर रही थी और हर्ष के भार से निकले हुए उच्छवासों से मानों पंखा ही चला रही थी, जिसके नितंब स्थूल थी, जो नेत्रों के विश्राम करने की भूमि थी, जिसने कर-किसलय के सौंदर्य से लक्ष्मी के हस्त-कमल को जीत लिया था, जो सौभाग्यरूपी रत्न संपदा को धारण कर रही थी, धर्म ने ही जिसकी रक्षा की थी, जिसका मुख पूर्णचंद्रमा के समान था, अत्यंत धैर्य गुण से सहित थी, जिसके मुखरूपी चंद्रमा के भीतर विशाल नेत्ररूपी कमल उत्पन्न हुए थे, जो कलुषता से रहित थी, जिसके स्तन अत्यंत उन्नत थे, और जो कामदेव की मानो कुटिलता से रहित-सीधी धनुष यष्टि हो ऐसी सीता को कुछ समीप आती देख श्रीराम किसी अनिर्वचनीय भाव को प्राप्त हुए ॥38-45॥ रति के समान सुंदरी सीता विनयपूर्वक पति के समीप जाकर मिलने की इच्छा से आकुल होती हुई सामने खड़ी हो गई । उस समय उसके नेत्र हर्ष के अश्रुओं से व्याप्त हो रहे थे॥ 46॥ उस समय राम के समीप खड़ी सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो इंद्र के समीप इंद्राणी ही आई हो, काम के समीप मानो रति ही आई हो, जिनधर्म के समीप मानो अहिंसा ही आई हो और भरतचक्रवर्ती के समीप मानो सुभद्रा ही आई हो ॥47॥ जो फल के भार से नम्रीभूत हो रहे थे ऐसे सैकड़ों मनोरथों से प्राप्त सीता को चिरकाल बाद देखकर राम ने ऐसा समझा मानो नवीन समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥48॥

अथानंतर जो चिरकाल बाद होने वाले समागम के स्वभाव से उत्पन्न हुए कंपन को हृदय में धारण कर रहे थे, जो महादीप्ति के धारक थे, सुंदर थे और जिनके चंचल नेत्र घूम रहे थे ऐसे श्रीराम ने अपनी उन भुजाओं से रस निमग्न हो सीता का आलिंगन किया, जिनके कि मूलभाग बाजूबंदों से अलंकृत थे तथा क्षणमात्र में ही जो स्थूल हो गई थीं ॥49-50॥ सीता का आलिंगन करते हुए राम क्या विलीन हो गये थे, या सुखरूपी सागर में गये थे या पुनः विरह के भय से मानो हृदय में प्रविष्ट हो गये थे ॥51॥ पति के गले में जिसके भुजपाश पड़े

थे, ऐसी प्रसन्नचित्त की धारक सीता उस समय कल्पवृक्ष से लिपटी सुवर्णलता के समान सुशोभित हो रही थी ॥52॥ समागम के कारण बहुत भारी सुख से जिसे रोमांच उठ आये थे ऐसे इस दंपती की उपमा उस समय उसी दंपती को प्राप्त थी ॥53॥ सीता और श्रीराम देव का सुख समागम देख आकाश में स्थित देवों ने उन पर पुष्पांजलियाँ छोड़ी ॥54॥ मेघों के ऊपर स्थित देवों ने, गुंजार के साथ घूमते हुए भ्रमरों को भय देने वाला गंधोदक वर्षा कर निम्नलिखित वचन कहे ॥55॥ वे कहने लगे कि अहो ! पवित्र चित्त की धारक सीता का धैर्य अनुपम है । अहो ! इसका गांभीर्य क्षोभरहित है, अहो ! इसका शीलव्रत कितना मनोज्ञ है ? अहो ! इसकी व्रत संबंधी दृढ़ता कैसी अद्भुत है ? अहो ! इसका धैर्य कितना उन्नत है कि शुद्ध आचार को धारण करने वाली इसने रावण को मन से भी नहीं चाहा॥ 56-57॥
तदनंतर जो हड़बड़ाये हुए थे और विनय से जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सीता के चरणयुगल को नमस्कार कर सामने खड़े हो गये ॥58॥ उस समय इंद्र के समान कांति के धारक चक्रधर को देख साध्वी सीता के नेत्रों में वात्सल्य के अश्रु निकल आये और उसने बड़े स्नेह से उनका आलिंगन किया ॥59॥ साथ ही उसने कहा कि हे भद्र ! महाज्ञान के धारक मुनियों ने जैसा कहा था वैसा ही तुमने उच्चपद प्राप्त किया है॥ 60॥ अब तुम चक्र चिह्नित राज्य-नारायणपद की पात्रता को प्राप्त हुए हो । सच है कि निर्ग्रंथ मुनियों से उत्पन्न वचन कभी अन्यथा नहीं होते ॥62॥ यह तुम्हारे बड़े भाई बलदेव पद को प्राप्त हुए हैं जिन्होंने विरहाग्नि में डूबी हुई मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥63॥
इतने में ही चंद्रमा की किरणों के समान कांति को धारण करने वाला भामंडल बहिन की समीपवर्ती भूमि में आया ॥63॥ प्रसन्नता से भरे, रण से लौटे उस विजयी वीर को देख, भाई के स्नेह से युक्त सीता ने उसका आलिंगन किया ॥64॥ सुग्रीव, हनूमान, नल, नील, अंगद, विराधित, चंद्राभ, सुषेण, बलवान् जांबव, जीमूत और शल्य देव आदि उत्तमोत्तम विद्याधरों ने अपने-अपने नाम सुनाकर सीता को शिर से अभिवादन किया ॥65-66॥ उन सबने हर्ष से युक्त हो सीता के चरणयुगल की समीपवर्ती भूमि में सुवर्णादि के पात्र में स्थित सुंदर विलेपन, वस्त्र, आभरण और पारिजात आदि वृक्षों की सुगंधित मालाएँ भेंट की ॥67-68॥ तदनंतर सबने कहा कि हे देवि ! तुम उत्कृष्ट भाव को धारण करने वाली हो, तुम्हारा प्रभाव समस्त लोक में प्रसिद्ध है तथा तुम बहुत भारी लक्ष्मी और गुणरूप संपदा के द्वारा अत्यंत श्रेष्ठ मनोहर पद को प्राप्त हुई हो ॥69॥ तुम देवों के द्वारा स्तुत आचाररूपी विभूति को धारण करने वाली हो, प्रसन्न हो, तुम्हारा शरीर मंगलरूप है, तुम विजयलक्ष्मी स्वरूप हो, उत्कृष्ट लीला की धारक हो, ऐसी हे देवि ! तुम सूर्य की प्रभा के समान बलदेव के साथ चिरकाल तक जयवंत रहो ॥70॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में सीता के समागम का वर्णन करने वाला उन्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥79॥

## मय मुनिराज

अस्सीवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर समागमरूपी सूर्य से जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीता का हाथ अपने हाथ से पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलने वाले ऐरावत के समान हाथी पर बैठाकर स्वयं उस पर आरूढ़ हुए । महातेजस्वी तथा संपूर्ण कांति को धारण करने वाले श्रीराम हिलते हुए घंटों से मनोहर हाथीरूपी मेघ पर सीतारूपी रोहिणी के साथ बैठे हुए चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे ॥1-3॥ जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीति को धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारों ओर से बहुत बड़ी संपदा से घिरे थे, बड़े-बड़े अनुरागी विद्याधरों से अनुगत, उत्तम कांतियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मण से जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्य के विमान समान जो रावण का भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए ॥4-6॥ वहाँ उन्होंने भवन के मध्य में स्थित श्रीशांतिनाथ भगवान् का परम सुंदर मंदिर देखा । वह मंदिर योग्य विस्तार और ऊँचाई से सहित था, स्वर्ण के हजार खंभों से निर्मित था, विशाल कांति का धारक था, उसको दीवालों के प्रदेश नाना प्रकार के रत्नों से युक्त थे, वह मन को आनंद देने वाला था, विदेहक्षेत्र के मध्य में स्थित मेरुपर्वत के समान था, क्षीरसमुद्र के फेनपटल के समान कांति वाला था, नेत्रों को बाँधने वाला था, रुणझुण करने वाली किंकिणियों के समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सुशोभित था, मनोज्ञ रूप से युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था॥7-10॥
तदनंतर जो मत्त गजराज के समान पराक्रमी थे, निर्मल नेत्रों के धारक थे तथा श्रेष्ठ लक्ष्मी से सहित थे, ऐसे श्रीराम ने हाथी से उतरकर

सीता के साथ उस मंदिर में प्रवेश किया ॥11॥ तत्पश्चात् कायोत्सर्ग करने के लिए जिन्होंने अपने दोनों हाथ नीचे लटका लिये थे और-जिनका हृदय अत्यंत शांत था, ऐसे श्रीराम ने सामायिक कर सीता के साथ दोनों करकमलरूपी कुड्मलों को जोड़कर श्रीशांतिनाथ भगवान् का पापभंजक पुण्यवर्धक स्तोत्र पढ़ा ॥12-13॥ स्तोत्र पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि जिनके जन्म लेते ही संसार में सर्वत्र ऐसी शांति छा गई कि जो सब रोगों का नाश करने वाली थी तथा दीप्ति को बढ़ाने वाली थी ॥14॥ जिनके आसन कंपायमान हुए थे तथा जो उत्तम विभूति से युक्त थे ऐसे हर्ष से भरे भक्तिमंत इंद्रों ने आकर जिनका मेरु के शिखर पर अभिषेक किया था ॥15॥ जिन्होंने राज्य अवस्था में बाह्य चक्र के द्वारा बाह्य शत्रुओं के समूह को जीता था और मुनि होने पर ध्यानरूपी चक्र के द्वारा अंतरंग शत्रु समूह को जीता था॥16॥ जो जन्म, जरा, मृत्यु, भयरूपी खंग आदि शस्त्रों से चंचल संसाररूपी असुर को नष्ट कर कल्याणकारी सिद्धि पर मोक्ष को प्राप्त हुए थे ॥17॥ जिन्होंने उपमारहित, नित्य, शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यंत दुरासद निर्वाण का साम्राज्य प्राप्त किया था, जो तीनों लोकों की शांति के कारण थे, जो महाऐश्वर्य से सहित थे तथा जिन्होंने अनंत शांति प्राप्त की थी ऐसे श्रीशांतिनाथ भगवान के लिए मन, वचन, काय से नमस्कार हो ॥18-19॥ हे नाथ ! आप समस्त चराचर विश्व से अत्यंत स्नेह करने वाले हैं, शरणदाता हैं, परमरक्षक हैं, समाधिरूप तेज तथा रत्नत्रयरूपी बोधि को देने वाले हैं ॥20॥ तुम्हीं एक गुरु हो, बंधु हो, प्रणेता हो, परमेश्वर हो, इंद्र सहित चारों निकायों के देवों से पूजित हो ॥21॥हे भगवन ! आप उस धर्मरूपी तीर्थ के कर्ता हो जिससे भव्यजीव अनायास ही समस्त दुःखों से छुटकारा देने वाला परमस्थान-मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥22॥ हे नाथ ! आप देवों के देव हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कल्याणरूप कार्य के करने वाले हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कृतकृत्य हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थों को प्राप्त कर चुके हैं इसलिये आपको नमस्कार हो॥23॥ हे भगवन् ! प्रसन्न हूजिये और हम लोगों के लिये महाशांतिरूप स्वभाव में स्थित, सर्वदोषरहित, उत्कृष्ट तथा नित्यपद-मोक्षपद प्रदान कीजिये ॥24॥ इस प्रकार स्तोत्र पाठ पढ़ते हुए कमलायत लोचन तथा पुण्यकर्म में दक्ष श्रीराम ने शांति जिनेंद्र को तीन प्रदक्षिणाएँ दी ॥25॥ जिसका शरीर नम्र था, जो स्तुति पाठ करने में तत्पर थी तथा जिसने हस्तकमल जोड़ रक्खे थे ऐसी भावभीनी सीता श्रीराम के पीछे खड़ी थी ॥26॥

राम का स्वर महा दुंदुभि के स्वर के समान अत्यंत परुष था तो सीता का स्वर वीणा के स्वर के समान अत्यंत कोमल था ॥27॥ तदनंतर विशल्या सहित लक्ष्मण, सुग्रीव, भामंडल तथा हनूमान आदि सभी लोग मंगलमय स्तोत्र पढ़ने में तत्पर थे ॥28॥ जिन्होंने हाथ जोड़ रक्खे थे तथा जो जिनेंद्र भगवान में अपनी भावना लगाये हुए थे, ऐसे वे सब धन्य भाग विद्याधर उस समय ऐसे जान पड़ते थे मानो कमल की बोड़ियाँ ही धारण कर रहे हो ॥29॥ जब वे मृदंग ध्वनि के समान सुंदर शब्द छोड़ रहे थे तब चतुर मयूर मेघगर्जना को शंका करते हुए नृत्य कर रहे थे ॥30॥ इस प्रकार बार-बार स्तुति तथा प्रणाम कर शुद्ध हृदय को धारण करने वाले वे सब जिनमंदिर के चौक में यथोयोग्य सुख से बैठ गये ॥31॥

जब तक इन सबने वंदना की तब तक राजा विभीषण ने सुमाली, माल्यवान् तथा रत्नश्रवा आदि परिवार के लोगों को जो कि महादुःख से पीड़ित हो रहे थे सांत्वना दी । विभीषण संसार की अनित्यता का भाव बतलाने में अत्यंत निपुण था ॥32-33॥ उसने सांत्वना देते हुए कहा कि हे आर्यो ! हे तात ! संसार के प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल को भोगते ही हैं अतः शोक करना व्यर्थ है आत्महित में मन लगाइए ॥34॥ आप लोग तो आगम के दृष्टा, विशाल हृदय और विज्ञपुरुष हैं अतः जानते हैं कि उत्पन्न हुआ प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है या नहीं ॥35॥ जिसका वर्णन करना बड़ा कठिन है ऐसा यौवन फूल के सौंदर्य के समान है, लक्ष्मी पल्लव की शोभा के समान है, जीवन बिजली के समान अनित्य है ॥36॥ बंधुजनों के समागम जल के बबूले के समान हैं, भोग संध्या की लाली के तुल्य है, और क्रियाएँ स्वप्न की क्रियाओं के समान हैं ॥37॥ यदि ये प्राणी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते तो वह रावण भवांतर से आपके गोत्र में कैसे आता ? ॥38॥ अरे ! जब हम लोगों को भी एक दिन नियम से नष्ट हो जाना है तब यह शोक विषयक मूर्खता किसलिए की जाती है ? ॥39॥ यह ऐसा है **अर्थ**ात् नष्ट होना इसका स्वभाव ही है इस प्रकार संसार के स्वभाव का ध्यान करना सत्पुरुषों के शोक को क्षणमात्र में नष्ट करने के लिए पर्याप्त है । भावार्थ जो ऐसा विचार करते हैं कि संसार के पदार्थ नश्वर ही हैं उनका शोक क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है॥40॥ बंधुजनों के साथ कथित, अनुभूत और दृष्ट पदार्थ सत्पुरुषों के मन को एक क्षण ही संताप देते हैं अधिक नहीं ॥41॥ जिसका बंधु-जनों के साथ वियोग होता है यद्यपि उसका स्मृति को नष्ट करने वाले विशाल शोक के साथ समागम मानो बलपूर्वक ही होता है तथापि इस अनादि संसार में भ्रमण करते हुए मेरे कौन-कौन लोग बंधु नहीं हुए हैं ऐसा विचारकर उस शोक को छिपाना चाहिए ॥42-43॥ इसलिए संसार

को नष्ट करने वाले श्रीजिनेंद्रदेव के शासन में यथाशक्ति मन लगाकर आत्मा को आत्मा के हित में लगाइए ॥44॥ इत्यादि हृदय को लगने वाले मधुर वचनों से सबको काम में लगाकर विभीषण अपने घर गया॥45॥

घर आकर उसने एक हजार स्त्रियों में प्रधान तथा सब व्यवहार में विचक्षण विदग्धा नामक रानी को श्रीराम के समीप भेजा ॥46॥ तदनंतर क्रम को जानने वाली विदग्धा ने आकर प्रथम ही सीता सहित राम-लक्ष्मण को कुल के योग्य प्रणाम किया । तत्पश्चात् यह वचन कहे कि हे देव ! हमारे स्वामी के घर को अपना घर समझ चरण-तल के संसर्ग से पवित्र कीजिए ॥47-48॥जब तक उन सबके बीच में यह वार्ता हो रही थी तब तक महाआदर से भरा विभीषण स्वयं आ पहुँचा ॥49॥ आते ही उसने कहा कि उठिए, घर चलें प्रसन्नता कीजिए । इस प्रकार विभीषण के कहने पर राम, अपने अनुगामियों के साथ उसके घर जाने के लिए उद्यत हो गये ॥50॥ राजमार्ग की अविरल सजावट की गई और उससे वे नाना प्रकार के वाहनों, मेघ समान ऊँचे हाथियों, लहरों के समान चंबल घोड़ों और महलों के समान सुशोभित रथों पर यथाक्रम से सवार हो विभीषण के घर की ओर चले ॥51-52॥ प्रलयकालीन मेघों की गर्जना के समान जिनका विशाल शब्द था

जिनमें करोड़ों शंखों का शब्द मिल रहा था तथा गुफाओं में जिनकी प्रतिध्वनि पड़ रही थी ऐसे तुरही के विशाल शब्द उत्पन्न हुए ॥53॥ भंभा, भेरी, मृदंग, हजारों पटह, लंपाक, काहला, धुंधु, दुंदुभि, झांझ, अम्लातक, ढक्का, हैका, गुंजा, हुंकार और सुंदनामक वादित्रों के शब्द से आकाश भर गया ॥54-55॥ अत्यंत विस्तार को प्राप्त हुआ हलहला शब्द, बहुत भारी अट्टहास और नाना वाहनों के शब्दों से दिशाएँ बहिरी हो गई ॥56॥ कितने ही विद्याधर व्याघ्रों की पीठ पर बैठकर जा रहे थे, कितने ही सिंहों की पीठ पर सवार होकर चल रहे थे और कितने ही रथ आदि वाहनों से प्रस्थान कर रहे थे ॥57॥ उनके आगे-आगे नृतकियाँ नट तथा भांड आदि सुंदर नृत्य करते जाते थे तथा चारणों के समूह बड़ी उच्च ध्वनि में उनका विरद बखानते जा रहे थे ॥58॥ असमय में प्रकट हुई चाँदनी के समान मनोहर छत्रों के समूह से तथा नाना शस्त्रों के समूह से सूर्य की किरणें आच्छादित हो गई थी ॥59॥ इस प्रकार सुंदरी स्त्रियों के मुख-कमलों को विकसित करते हुए वे सब विभीषण के राजभवन में पहुँचे ॥60॥ उस समय राम लक्ष्मण आदि को शुभ-लक्षणों से युक्त जो विभूति थी वह देवों के लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी ॥61॥

अथानंतर हाथी से उतरकर, जिनका रत्नों के अर्ध आदि से सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण ने विभीषण के सुंदर भवन में प्रवेश किया ॥62॥ विभीषण के विशाल भवन के मध्य में श्रीपद्मप्रभ जिनेंद्र का वह मंदिर था जो रत्नमयी तोरणों से सहित था, स्वर्ण के समान देदीप्यमान था, समीप में स्थित महलों के समूह से मनोहर था, शेष नामक पर्वत के मध्य में स्थित था, प्रेम की उपमा को प्राप्त था, स्वर्णमयी हजार खंभों से युक्त था, उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लंबाई और विस्तार से सहित था, नाना मणियों के समूह से शोभित था, चंद्रमा के समान चमकती हुई नाना प्रकार की वलभियों से युक्त था, झरोखों के समीप लटकती हुई मोतियों की जाली से सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओं से युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशों से सुंदर था, और पाप को नष्ट करने वाला था ॥63-67॥ इस प्रकार के उस मंदिर में श्रीपद्मप्रभ जिनेंद्र की पद्मरागमणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी जो अपनी प्रभा से मणिमय भूमि में कमल-समूह की शोभा प्रकट कर रही थी । सब लोग उस प्रतिमा की स्तुति-वंदना कर यथायोग्य बैठ गये ॥68-69॥ तदनंतर विद्याधर राजा, हृदय में राम और लक्ष्मण को धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथायोग्य रीति से चले गये ॥70॥ यथानंतर विद्याधर स्त्रियों ने राम-लक्ष्मण और सीता के स्नान की पृथक्-पृथक् विधि प्रस्तुत की॥71॥ सर्वप्रथम उन्हें सुगंधित हितकारी तथा मनोहर वर्ण वाले तेल का मर्दन किया गया, फिर घ्राण और शरीर के अनुकूल पदार्थों का उबटन किया गया॥72॥ तदनंतर स्नान की चौकी पर पूर्वदिशा की ओर मुखकर बैठे हुए उनका बड़े वैभव से क्रमपूर्वक मंगलमय स्नान कराया गया ॥73॥ उस समय शरीर को घिसना पानी छोड़ना आदि की लय से सहित मन को हरण करने वाले तथा सब प्रकार की साज-सामग्री से युक्त बाजे बज रहे थे ॥74॥ गंधोदक से परिपर्ण सुवर्ण, मरकतमणि, हीरा, स्फटिकमणि तथा इंद्रनीलमणि कलशों से उनका अभिषेक पूर्ण हुआ ॥75॥ तदनंतर अच्छी तरह स्नान करने के बाद पवित्र वस्त्र धारण किये, उत्तम अलंकारों से शरीर अलंकृत किया और तदनंतर मंदिर में प्रवेश कर श्री पद्मप्रभ जिनेंद्र की वंदना की॥76॥

अथानंतर उन सबके लिए जो भोजन तैयार किया गया था, उसकी कथा बहुत विस्तृत है । उस समय घी दूध दही आदि की बावड़ियाँ भरी गई थीं और खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थों के मानो पर्वत बनाये गये थे **अर्थ**ात् पर्वतों के समान बड़ी-बड़ी राशियाँ लगाई गई थीं॥77॥

मन घ्राण और नेत्रों के लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ चंदन आदि वनों में उत्पन्न हुई थीं वे लाकर भोजन-भूमि में एकत्रित की गई थीं ॥78॥ वह भोजन स्वभाव से ही मधुर था फिर जानकी के समीप रहते हुए तो कहना ही क्या था ? उस समय श्रीराम के मन की जो दशा थी उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ! ॥79॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पाँचों इंद्रियों की सार्थकता तभी है जब इष्ट पदार्थों का संयोग होने पर उन्हें संतोष उत्पन्न होता है ॥80॥ इस जंतु ने उसी समय भोजन किया है, उसी समय सूंघा है, उसी समय स्पर्श किया है, उसी समय देखा है और उसी समय सुना है जबकि उसे प्रियजन का समागम प्राप्त होता है । भावार्थ□ प्रियजन के विरह में भोजन आदि कार्य निःसार जान पड़ते हैं॥81॥ विरहकाल में स्वर्ग तुल्य भी देश नरक के समान जान पड़ता है और प्रियजन के समागम रहते हुए महावन भी स्वर्ग के समान जान पड़ता है॥82॥ सुंदर अद्भुत और बहुत प्रकार के रसायन संबंधी रसों की तथा नाना प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से उन सबकी भोजन-क्रिया पूर्ण हुई ॥83॥ जो यथायोग्य भूमि पर बैठाये गये थे, जिनका सम्मान किया गया था तथा जो अपने-अपने परिवार इष्टजनों से सहित थे ऐसे समस्त विद्याधर राजाओं को भोजन कराया गया ॥84॥

जिन पर भ्रमरों ने मंडल बाँध रक्खे थे ऐसे चंदन आदि सब प्रकार की गंधों से तथा भद्रशाल आदि वनों में उत्पन्न हुए पुष्पों से सब विभूषित किये गये॥85॥ जो स्पर्श के अनुकूल, हल्के और अत्यंत सघन बुने हुए वस्त्रों से युक्त थे तथा नाना प्रकार के रत्नों की किरणों से जिन्होंने दिशाओं को व्याप्त कर रखा था ऐसे उन सब लोगों का सम्मान किया गया था, उनके सब मनोरथ सफल किये थे, और रात दिन नाना प्रकार की कथाओं से सबको प्रसन्न किया गया था ॥86-87॥अहो ! यह विभीषण राक्षस वंश का आभूषण है, जिसने कि इस प्रकार राम-लक्ष्मण की अनुवृत्ति की□ उनके अनुकूल आचरण किया ॥88॥ यह महानुभाव प्रशंसनीय है तथा जगत् में अत्यंत उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है । जिसके घर में कृतकृत्य हो राम-लक्ष्मण ने निवास किया उसकी महिमा का क्या कहना है ? ॥89॥ इस प्रकार विभीषण में पाये जाने वाले गुणों के ग्रहण करने में जो तत्पर थे तथा मात्सर्य भाव से रहित थे ऐसे सब विद्याधर भी विभीषण के घर सुख से रहे॥90॥उस समय नगरी के समस्त लोक राम, लक्ष्मण, सीता और विभीषण की ही कथा में संलग्न रहते थे□ अन्य सब कथाएँ उन्होंने छोड़ दी थीं ॥91॥

अथानंतर विभीषण आदि समस्त विद्याधर राजा जिन्हें बलदेव पद प्राप्त हुआ था ऐसे हल लक्षण धारी राम और जिन्हें नारायण पद प्राप्त हुआ था ऐसे चक्ररत्न के धारी राजा लक्ष्मण का अभिषेक करने के लिए उद्यत हो विनयपूर्वक आये ॥92-93॥ तब राम लक्ष्मण ने कहा कि पहले पिता दशरथ से जिसे राज्याभिषेक प्राप्त हुआ है ऐसा राजा भरत अयोध्या में विद्यमान है वही तुम्हारा और हम दोनों का स्वामी है ॥94॥इसके उत्तर में विभीषणादि ने कहा कि जैसा आप कह रहे हैं यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषों के द्वारा सेवित इस मंगलमय अभिषेक में क्या दोष दिखाई देता है ? **अर्थ**ात् कुछ नहीं ? ॥95॥आप दोनों के इस किये जाने वाले सत्कार को राजा भरत अवश्य ही स्वीकृत करेंगे क्योंकि वे अत्यंत धीर-गंभीर सुने जाते हैं । वे मन से रंच मात्र भी विकार को प्राप्त नहीं होते ॥96॥ यथार्थ में बलदेवत्व और चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के कारण उनके अनेक प्रकार की पूजा से युक्त प्रतिष्ठा हुई थी ॥97॥ इस प्रकार अत्यंत उन्नत लक्ष्मी को प्राप्त हुए राम-लक्ष्मण लंका में इस प्रकार रहे जिस प्रकार कि स्वर्ग की नगरी में दो देव रहते हैं ॥98॥ इंद्र के नगर के समान अत्यधिक भोगों को देने वाले उस नगर में विद्याधर लोग, नदियों और तालाबों आदि के तटों पर आनंद से बैठते थे ॥99॥ दिव्य अलंकार, पान, वस्त्र, हार और विलेपन आदि से सहित वे सब विद्याधर अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ उस लंका में इच्छानुसार देवों के समान क्रीड़ा करते थे ॥100॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीता का मुख सूर्य की किरणों से व्याप्त सफेद कमल के भीतरी भाग के समान कांति युक्त था, उसे देखते हुए श्रीराम तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥101॥उस अत्यंत सुंदरी स्त्री के साथ राम, निरंतर मनोहर भूमियों में क्रीड़ा करते थे॥102॥ जिन्हें इच्छा करते ही सर्व वस्तुओं का समागम प्राप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मण विशल्या सुंदरी के साथ अलग ही प्रीति को प्राप्त हो रहे थे॥103॥ वे यद्यपि हम कल चले जावेंगे, ऐसा मन में संकल्प करते थे तथापि विभीषणादि का उत्तम प्रेम पाकर जाना इनकी स्मृति से छूट जाता था॥104॥ इस प्रकार रति और भोगोपभोग की सामग्री से युक्त राम लक्ष्मण के सुख से भोगे जाने वाले अनेक वर्ष एक दिन के समान व्यतीत हो गये॥105॥

अथानंतर किसी दिन सुंदर लक्षणों के धारक लक्ष्मण ने स्मरण कर विराधित को कूवरादि नगर भेजा॥106॥ सो महाविभूति के धारक, एवं सब प्रकार की विधि मिलाने में निपुण विराधित ने क्रम-क्रम से जाकर कन्याओं के लिए परिचायक चिह्नों के साथ लक्ष्मण के पत्र दिखाये ॥107॥ तदनंतर शुभ-समाचार से जिन्हें हर्ष उत्पन्न हुआ था और माता-पिता ने जिन्हें अनुमति दे रक्खी थी ऐसी वे कन्याएँ

अनुकूल परिवार के साथ वहाँ आई ॥108॥ कहाँ-कहाँ से कौन-कौन कन्याएँ आई थीं इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है । दशपुर नगर के स्वामी राजा वज्रकर्ण की रूपवती नाम की अत्यंत सुंदरी कन्या आई थी ॥109॥ कूवर स्थान नगर के राजा वालिखिल्य की सर्व कल्याणमाला नाम की सुंदरी पुत्री आई ॥110॥ पृथिवीपुर नगर के राजा पृथिवीधर की प्रसिद्ध पुत्री वनमाला आई ॥111॥ क्षेमांजलिपुर के राजा जितशत्रु की प्रसिद्ध पुत्री जितपद्मा आई॥112॥ इनके सिवाय उज्जयिनी आदि नगरों से आई हुई राजकन्याओं ने जंमांतर में किये हुए परम पुण्य से ऐसा पति प्राप्त किया ॥113॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! दम, दान और दया से युक्त, शील से सहित एवं गुरु को साक्षीपूर्वक लिये हुए उत्तम तप के किये बिना ऐसा पति नहीं प्राप्त हो सकता॥114॥ सूर्यास्त होने पर जिसने भोजन नहीं किया है, जिसने कभी आर्यिका को दोष नहीं लगाया है और दिगंबर मुनि जिसके द्वारा अपमानित नहीं हुए, उसी स्त्री का ऐसा पति होता है ॥115॥ नारायण उन सबके योग्य थे और वे सब नारायण के योग्य थीं, इसीलिए नारायण और उन स्त्रियों ने परस्पर संभोगरूपी अमृत ग्रहण किया था ॥116॥ हे श्रेणिक ! न तो वह संपत्ति थी, न वह शोभा थी, न वह लीला थी और न वह कला थी जो लक्ष्मण और उनकी उन स्त्रियों में न पाई जाती फिर और की क्या कथा की जाय ? ॥117॥सौंदर्य की अपेक्षा उनके मुख को देखकर कहा जाय कि कमल क्या है ? चंद्रमा क्या है ? और उन स्त्रियों को देखकर कहा जाय कि लक्ष्मी क्या है ? और रति क्या है ? ॥118॥ राम-लक्ष्मण की उस-उस प्रकार को संपदा को देखकर विद्याधर जनों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था ॥119॥ यहाँ चंद्रवर्धन की पुत्रियों का समागम कराने तथा उनके विवाह की आनंदमयी सूचना देने वाली कथा का निरूपण करना भी उचित जान पड़ता है ॥120॥ उस समय श्रीराम तथा चंद्रवर्धन की समस्त कन्याओं का समागम कराने वाला वह विवाहोत्सव हुआ जो समस्त लोगों को परमआनंद का करने वाला था॥121॥
इच्छानुसार महाभोगों के संबंध से सुख को प्राप्त होने वाले वे राम लक्ष्मण, अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ लंका में इंद्र-प्रतींद्र के समान क्रीड़ा करते थे ॥122॥ जिनकी समस्त इंद्रियों की संपदा सीता के शरीर के अधीन थी, ऐसे श्रीराम को लंका में रहते हुए छह वर्ष व्यतीत हो गये ॥123॥ उस समय उत्तम चेष्टाओं के धारक रामचंद्र, सुख के सागर में ऐसे निमग्न हुए कि अन्य सब कुछ उनकी स्मृति के मार्ग से च्युत हो गया ॥124॥गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार की यह कथा तो रहने दो अब एकाग्रचित्त हो पाप का क्षय करने वाली दूसरी कथा सुनो ॥125॥
अथानंतर समस्त पापों को नष्ट करने वाले भगवान् इंद्रजित मुनिराज, अनेक ऋद्धियों की प्राप्ति से युक्त हो पृथिवीतल पर विहार करने लगे ॥126॥ उन्होंने वैराग्यरूपी पवन से युक्त तथा सम्यग्दर्शनरूपी वास से उत्पन्न ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी भयंकर वन को भस्म कर दिया था॥127॥ विषयरूपी ईंधन को जलाने के लिए अग्नि के समान जो मेघवाहन मुनिराज थे वे केवलज्ञान प्राप्त कर आत्म स्वभाव को प्राप्त हुए ॥128॥ उन दोनों के बाद सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्□चारित्र को धारण करने वाले कुंभकर्ण मुनिराज भी शुक्ललेश्या के प्रभाव से अत्यंत विशुद्धात्मा हो केवलज्ञान के द्वारा लोक और अलोक को ज्यों का त्यों देखते हुए कर्मधूलि को दूर कर अविनाशी परमपद को प्राप्त हुए॥126-130॥ इनके सिवाय सुरेंद्र, असुरेंद्र तथा चक्रवर्ती जिनकी उत्तम कीर्ति का गान करते थे, जो शुद्ध शील के धारक थे, देदीप्यमान थे, गर्वरहित थे, जो समस्त पदार्थरूपी सघन ज्ञेय को गोष्पद के समान तुच्छ करने वाले तेज से सहित थे, जो संसार के क्लेशरूपी कठिन बंधन के जाल से निकल चुके थे, जहाँ से पुनः लौटकर नहीं आना पड़ता ऐसे मोक्षस्थान की प्राप्तिरूपी स्वार्थ से जो सहित थे, अनुपम तथा निर्विघ्न सुख ही जिनका स्वरूप था, जिनकी आत्मा महान् थी, जो सिद्ध थे तथा शत्रुओं को नष्ट करने वाले थे, ऐसे ये तथा अन्य जो महर्षि थे वे जिनशासन के श्रोता मनुष्यों के लिए रत्नत्रयरूपी आरोग्य प्रदान करें ॥131-134॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उन पर महात्माओं का प्रभाव तो देखो कि आज भी उन परमात्माओं के यश से व्याप्त वे दिखाई देते हैं पर वे साधु नहीं दिखाई देते ॥135॥ विंध्यवन की महाभूमि में जहाँ इंद्रजित के साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे वहाँ आज मेघरव नाम का तीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥136॥
अनेक वृक्षों और लताओं से व्याप्त, नाना पक्षियों के समूह से युक्त एवं नाना जानवरों से सेवित तूणीगति नामक महाशैल पर महाबलवान् जंबुमाली नामक मुनि अहमिंद्र अवस्था को प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योंकि अहिंसादि गुणों से युक्त धर्म के लिए क्या कठिन है ? ॥137-138॥ यह जंबुमाली का जीव ऐरावत क्षेत्र में अवतार ले महाव्रतरूपी विभूषण से अलंकृत तथा केवलज्ञानरूपी तेज से युक्त हो मुक्ति स्थान को प्राप्त होगा॥139॥ रजोगुण तथा तमोगुण से रहित महामुनि कुंभकर्ण योगी नर्मदा के जिस तीर पर निर्वाण को प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरक्षत नाम का तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥140॥ महादीप्ति के धारक मय मुनि ने आकाशगामिनी ऋद्धि पाकर इच्छानुसार निर्वाण-

भूमियों में विहार किया॥141॥ रत्नत्रयरूपी मंडन को धारण करने वाले तथा महान् धैर्य के धारक उन मय मुनि ने देवागमन से सेवित ऋषभादि तीर्थंकरों के कल्याणक प्रदेशों के दर्शन किये ॥142॥ मारीच मुनि कल्पवासी देव हुए तथा अन्य महर्षियों ने जिसका जैसा तपोबल था उसने वैसा ही फल प्राप्त किया॥143॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शीलव्रत की दृढ़ता से उत्पन्न सीता का माहात्म्य तो देखो कि उसने शीलव्रत का पालन किया तथा शत्रुओं को नष्ट कर दिखाया ॥144॥ कल्याणकारी गुणों से परिपूर्ण सीता का धैर्य, रूप, सौभाग्य, बुद्धि और पति विषयक स्नेह का बंधन सभी अनुपम था॥145॥जो शीलव्रत के प्रभाव से स्वर्गगामिनी थी तथा अपने पति में ही संतुष्ट रहती थी ऐसी सीता ने श्रीराम देव के चरित को अच्छी तरह अलंकृत किया था ॥146॥ पर-पुरुष का त्याग करने वाले एक व्रतरूपी रत्न के द्वारा स्त्रियों में भी स्वर्ग प्राप्त करने की सामर्थ्य विद्यमान है॥147॥ जिस विकट मायावी मय ने पहले अनेक जीवों का वध किया था, अब उसने भी वीतराग भाव को धारण कर उत्तम मुनि हो अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त की थीं॥148॥

तदनंतर राजा श्रेणिक ने कहा कि हे नाथ ! मैंने इंद्रजित् आदि का माहात्म्य तो सुन लिया है अब मय का माहात्म्य सुनना चाहता हूँ ॥149॥ हे भगवन् ! इस पृथिवीतल पर मनुष्यों की और भी शीलवती ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं जो कि अपने पति में ही लीन रही हैं सो क्या वे सब भी स्वर्ग को प्राप्त हुई हैं ? ॥150॥ इसके उत्तर में गणधर बोले कि यदि वे निश्चय और व्रत की अपेक्षा सीता के समान हैं, पातिव्रत्यधर्म से सहित एवं अनेक गुणों से युक्त हैं तो नियम से स्वर्ग को ही जाती हैं ॥151॥ हे राजन् ! पुण्य, पाप का फल भोगने में जिनकी आत्मा निश्चल है **अर्थ**ात् जो समताभाव से पूर्वकृत पुण्य, पाप का फल भोगती हैं ऐसी सभी शीलवती स्त्रियाँ अपनी चेष्टाओं से समान ही होती हैं ॥152॥ वैसे हे राजन् ! लता, घोड़ा, हाथी, लोहा, पाषाण, वृक्ष, वस्त्र, स्त्री और पुरुष इनमें परस्पर बड़ा अंतर होता है ॥153॥ जिस प्रकार हर एक लता में न ककड़ी फलती है और न कुम्हड़ाही, इसी प्रकार हे राजन् ! सब स्त्रियों में सदाचार नहीं पाया जाता ॥154॥ पहले अतिवंश में उत्पन्न हुई एक अभिमाना नाम की स्त्री हो गई है जो अपने आपको पतिव्रता प्रकट करती थी किंतु यथार्थ में शीलरूपी अंकुश से रहित हो दुर्मतरूपी वारण को प्राप्त हुई थी । भावार्थ इस प्रकार मूठ-मूठ ही पतिव्रता का अभिमान रखने वाली स्त्री पतिव्रता नहीं है॥ 155॥ यह मनरूपी हाथी लौकिक शास्त्र रूपी निर्बल अंकुश के द्वारा वश नहीं किया जा सकता इसलिए वह इस जीव को कुमति में ले जाता है॥156॥ उत्तम बुद्धि को धारण करने वाला भव्यजीव, जिनवाणीरूपी अंकुश के द्वारा ही मनरूपी हाथी को दया और सुख से सहित समीचीन मार्ग में ले जा सकता है ॥157॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अब मैं विद्वानों के बीच परंपरा से आगत अभिमाना के शील वर्णन की कथा संक्षेप में कहता हूँ सो सुन ॥158॥

वे कहने लगे कि जिस समय समस्त देश रोगरूपी वायु से पीडित था उस समय धान्यग्राम का रहने वाला एक ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ उस ग्राम से बाहर निकला॥159॥ उस ब्राह्मण का नाम नोदन था और उसकी स्त्री का नाम अभिमाना था । अभिमाना अग्नि नामक पिता से मानिनी नामक स्त्री में उत्पन्न हुई थी तथा अत्यधिक अभिमान को धारण करने वाली थी॥160॥ तदनंतर भूख की बाधा से जिसकी आत्मा विह्वल हो रही थी ऐसे नोदन ने अभिमाना को छोड़ दिया । धीरे-धीरे अभिमाना हाथियों के वन में पहुँची वहाँ उसने राजा कररुह को अपना पति बना लिया ॥161॥ राजा कररुह पुष्प प्रकीर्ण नगर का स्वामी था । तदनंतर जिसे पति की प्रसन्नता प्राप्त थी ऐसी उस अभिमाना ने किसी समय रतिकाल में राजा कररुह के शिर में अपने पैर से आघात किया **अर्थ**ात् उसके शिर में लात मारी ॥162॥ दूसरे दिन प्रभात होने पर जब राजा सभा में बैठा तब उसने बहुश्रुत विद्वानों से पूछा कि जो राजा के शिर को पैर के आघात से पीडित करे उसका क्या करना चाहिए ॥163॥ राजा का प्रश्न सुन, सभा में अपने आपको पंडित मानने वाले जो बहुत से सभासद बैठे थे उन्होंने कहा कि उसका पैर काट दिया जाय अथवा उसे प्राणों से वियुक्त किया जाय ? ॥164॥ उसी सभा में राजा के अभिप्राय को जानने वाला एक हेमांक नाम का ब्राह्मण भी बैठा था सो उसने कहा कि राजन्, उसके पैर की अत्यधिक पूजा की जाय अर्थात् अलंकार आदि से अलंकृत कर उसका सत्कार किया जाय ॥165॥ राजा ने उससे पूछा कि तुम इस प्रकार विद्वान् कैसे हुए अर्थात् तुमने यथार्थ बात कैसे जान ली ? तब उसने कहा कि इष्ट स्त्री के इस दंतरूपी शस्त्र ने अपने इष्ट को अपने द्वारा घायल दिखलाया है अर्थात् आपके ओंठ में स्त्री का दंताघात देखकर मैंने सब रहस्य जाना है ॥166॥ यह सुन राजा ने यह अभिप्राय का जानने वाला है ऐसा समझ हेमांक को बहुत संपदा दी तथा अपनी विकटता प्राप्त कराई ॥167॥ हेमांक के घर में अमोघशर नामक ब्राह्मण की मित्रयशा नाम की पतिव्रता पत्नी रहती थी । वह बेचारी विधवा तथा दुःखिनी होकर उसी घर में निवास करती और अपने पति के गुणों का स्मरण कर पुत्र को ऐसी शिक्षा देती थी ॥

168-166॥ कि हे पुत्र ! जिसने बाल्यअवस्था में निश्चिंत चित्त होकर विद्याभ्यास किया था उस विद्वान् हेमांक का प्रभाव देख ॥170॥ जिसने बाण विद्या के द्वारा समस्त ब्राह्मणों अथवा परशुराम की संपदा को तिरस्कृत कर दिया था उस पिता के तू ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है॥ 171॥ आँसुओं से जिसके नेत्र भर रहे थे ऐसी माता के वचन सुन उसका श्रीवर्धित नाम का अभिमानी बालक माता को सांत्वना देकर उसी समय विद्या सीखने के लिए चला गया॥172॥

तदनंतर व्याघ्रपुर नगर में गुरु के घर समस्त कलाओं को सीख विद्वान हुआ और वहाँ के राजा सुकांत की पुत्री का हरण कर वहाँ से निकल भागा ॥173॥ पुत्री का नाम शीला था और उसके भाई का नाम सिंहेंदु था, सो प्रबल पराक्रम का धारक सिंहेंदु बहिन को वापिस लाने क लिए युद्ध की इच्छा करता हुआ निकला ॥174॥ परंतु श्रीवर्धित अस्त्र-शस्त्र में इतना निपुण हो गया था कि उसने अकेले ही सेना से युक्त सिंहेंदु को युद्ध में जीत लिया और वह घर आकर तथा माता से मिलकर परमसंतोष को प्राप्त हुआ ॥175॥ श्रीवर्धित महाविज्ञानी तो था ही धीरे-धीरे उसका यश भी प्रसिद्ध हो गया, अतः उसे राजा कररुह से पोदनपुर नगर का राज्य मिल गया ॥176॥ कालक्रम से जब व्याघ्रपुर का राजा सुकांत मृत्यु को प्राप्त हो गया तब द्युति नामक शत्रु ने उसके पुत्र सिंहेंदु पर आक्रमण किया जिससे भयभीत हो वह अपनी स्त्री के साथ एक सुरंग द्वारा घर से बाहर निकल गया ॥177॥ वह अत्यंत घबड़ा गया था तथा बहुत खिन्न होता हुआ बहिन की शरण में जा रहा था । मार्ग में तंबोलियों का साथ हो गया सो उनका भार शिर पर रखते हुए वह अपनी स्त्री सहित सूर्यास्त होने के बाद पोदनपुर के समीप पहुँचा । वहाँ राजा के योद्धाओं ने उसे पकड़कर धमकाया सो जिस-किसी तरह छूटकर भयभीत होता हुआ वन में पहुँचा ॥178-176॥ सो वहाँ एक महासर्प ने उसे डस लिया जिससे विलाप करती हुई उसकी स्त्री उसे कंधे पर रखकर उस स्थान पर पहुंची जहाँ मय मुनि विराजमान थे ॥107॥ महाऋद्धियों के धारक मय मुनि प्रतिमायोग धारण कर वन स्तंभ के समान निश्चल खड़े थे, सो रानी ने सिंहेंदु को उनके चरणों के समीप लिटा दिया॥181॥ सिंहेंदु की स्त्री ने मुनिराज के चरणों का स्पर्श कर पति के शरीर का स्पर्श किया जिससे वह पुनः जीवित हो गया ॥182॥ तदनंतर सिंहेंदु ने भक्तिपूर्वक प्रतिमा की वंदना की और उसके बाद आकर अपनी स्त्री के साथ बार-बार मुनिराज को प्रणाम किया ॥13॥

अथानंतर सूर्योदय होने पर मुनिराज का नियम समाप्त हुआ, उसी समय वंदना के लिए विनयदत्त नाम का श्रावक उनके समीप आया ॥184॥ सिंहेंदु के संदेश से श्रावक ने नगर में जाकर श्रीवर्धित के लिए बताया कि राजा सिंहेंदु आया है । यह सुन श्रीवर्धित युद्ध के लिए तैयार हो गया ॥185॥ तदनंतर जब यथार्थ बात मालूम हुई तब प्रीतियुक्त चित्त होता हुआ श्रीवर्धित सन्मान करने की भावना से अपने साले के पास गया ॥186॥ तत्पश्चात् इष्ट जनों का समागम प्राप्त कर हर्षित होते हुए श्रीवर्धित ने सुख से बैठे हुए मय मुनिराज से विनयपूर्वक पूछा कि हे भगवन् ! मैं अपने तथा अपने परिवार के लोगों के पूर्वभव जानना चाहता हूँ । तदनंतर उत्तम मुनिराज इस प्रकार वचन बोले कि ॥187-188॥

शोभपुरनगर में एक भद्राचार्य नामक दिगंबर मुनिराज थे । उस नगर का राजा अमल था जो कि गुणों के समूह से सुशोभित था ॥189॥ उत्तम हृदय को धारण करने वाला अमल प्रतिदिन उन आचार्य की सेवा करने के लिए आता था । एक दिन आने पर उसे उस स्थान पर अत्यंत दुःसह दुर्गंध आई॥160॥ कोढ़िनी के शरीर से उत्पन्न हुई वह दुर्गंध इतनी भयंकर थी कि राजा उसे सहन नहीं कर सका और पैदल ही शीघ्र अपने घर चला गया ॥161॥ वह कोढ़िनी स्त्री किसी अन्य स्थान से आकर उस मंदिर के समीप ठहरी थी, उसी के घावों से वह दुर्गंध निकल रही थी॥162॥ उस स्त्री ने भद्राचार्य के पास अणुव्रत धारण किये जिसके फलस्वरूप वह मरकर स्वर्ग गई और वहाँ से च्युत होकर यह शीला नामक तुम्हारी स्त्री हुई है ॥163॥ वहाँ जो अमल नाम का राजा था उसने सब राज्य कार्य पुत्र के लिए सौंप दिया और स्वयं वह आठ गाँवों से संतुष्ट हो श्रावक हो गया ॥164॥ आयु के अंत में वह स्वर्ग गया और वहाँ से च्युत हो श्रीवर्धित हुआ । इतना कहकर मय मुनिराज ने कहा कि अब मैं तुम्हारी माता का पूर्वभव कहता हूँ ॥165॥

एक बार एक विदेशी मनुष्य भूख से पीड़ित हो घूमता हुआ नगर में प्रविष्ट हुआ । नगर की भोजनशाला में भोजन न पाकर वह कुपित होता हुआ कटुक शब्दों में यह कहकर बाहर निकल गया कि मैं समस्त गाँव को अभी जलाता हूँ । भाग्य की बात कि उसी समय गाँव में आग लग गई ॥166-167॥ तब क्रोध से भरे ग्रामवासियों ने उसे लाकर उसी अग्नि में डाल दिया, जिससे दुःखपूर्वक मरकर वह राजा के घर रसोइन हुआ ॥168॥ तदनंतर मरकर घोर वेदना से युक्त नरक पहुँची और वहाँ से निकलकर तुम्हारी माता मित्रयशा हुई है ॥169॥ पोदनपुर में एक गोवाणिज नाम का बड़ा गृहस्थ था, भुजपत्रा उसकी स्त्री का नाम था । गोवाणिज मरकर सिंहेंदु हुआ और भुजपत्रा

उसकी रतिवर्धनी नाम की स्त्री हुई । इन दोनों ने पूर्वभव में गर्दभ आदि पशुओं पर अधिक बोझ लाद-लाद उन्हें पीड़ा पहुँचाई थी इसलिए उन्हें भी तंबोलियों का भार उठाना पडा ॥200-201॥ इस प्रकार कहकर मय मुनिराज आकाश को देदीप्यमान करते हुए अपने इच्छित स्थान पर चले गये और श्रीवर्धित भी इष्टजनों का समागम प्राप्त कर नगर में चला गया॥202॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस विचित्र संसार में पूर्वकृत भाग्य का उदय होने पर कोई राज्य को प्राप्त होता है और किसी का प्राप्त हुआ राज्य नष्ट हो जाता है॥203॥ एक ही गुरु से धर्म की संगति पाकर निदान अथवा निदान रहित मरण से जीवों की गति भिन्न-भिन्न होती है ॥204॥ रत्नों से पूर्णता को प्राप्त हुए कितने ही धनेश्वरी मनुष्य सुखपूर्वक समुद्र को पार करते हैं, कितने ही बीच में डूब जाते हैं और कितने ही तट पर डूब मरते हैं॥ 205॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान मनुष्यों को सदा दया, दम, तपश्चरण की शुद्धि, विनय तथा आगम के अभ्यास से आत्मा का कल्याण करना चाहिए॥206॥ हे राजन् ! उस समय मय मुनिराज के वचन सुनकर समस्त पोदनपुर अत्यंत शांत हो गया तथा धर्म में उसका चित्त लग गया ॥207॥ इस प्रकार के गुणों से युक्त, धर्म की विधि को जानने वाले, प्रशांत चित्त तथा पासुक स्थान में विहार करने वाले मय मुनिराज, पंडितमरण को प्राप्त हो श्रेष्ठ देव हुए ॥208॥

इस तरह जो उत्तम चित्त होकर मय मुनिराज के इस माहात्म्य को पढ़ते हैं, शत्रु अथवा मांसभोजी सिंहादि उनकी कभी भी हिंसा नहीं करते ॥209॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में मय मुनिराज का वर्णन करने वाला अस्सीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 80॥

## अयोध्या का वर्णन

इक्यासीवां पर्व

कथा :

अथानंतर जो स्वर्गलोक की लक्ष्मी के समान राजलक्ष्मी का उपभोग कर रहे थे ऐसे चंद्रांकचूड इंद्र के तुल्य श्रीराम, पति और पुत्र के वियोगरूपी अग्नि की ज्वाला से जिनका शरीर सूख गया था ऐसी माता कौसल्या को एकदम क्यों भूल गये थे ? ॥1-2॥ जो निरंतर उद्विग्न रहती थी, जिसके नेत्र आँसुओं से व्याप्त रहते थे, जो नव प्रसूता गाय के समान अपने पुत्र से मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल थी, पुत्र के प्रति स्नेह प्रकट करने में तत्पर थी, तीव्रशोकरूपी सागर में विद्यमान थी और पुत्र के दर्शन की इच्छा रखती थी, ऐसी कौसल्या सखियों के साथ महल के सातवें खंड पर चढ़कर सब दिशाओं की ओर देखती रखती थी ॥3-4॥ वह पागल की भाँति पताका के शिखर पर बैठे हुए काक से कहती थी कि रे वायस ! उड़-उड़ । यदि मेरा पुत्र राम आ जायगा तो मैं तुझे खीर का भोजन देऊँगी॥5॥ ऐसा कहकर उसकी मनोहर चेष्टाओं का ध्यान करती और जब उसकी ओर से कुछ उत्तर नहीं मिलता तब नेत्रों से आँसुओं की घनघोर वर्षा करती हुई विलाप करने लगती॥6॥ वह कहती कि हाय पुत्र ! तू कहाँ चला गया ? तू निरंतर सुख से लड़ाया गया था । तुझे विदेश भ्रमण की यह कौन-सी प्रीति उत्पन्न हुई है ? ॥7॥ तू कठोर मार्ग में चरण-किसलयों की पीड़ा को प्राप्त हो रहा होगा । **अर्थ**ात् कंकरीले पथरीले मार्ग में चलते-चलते तेरे कोमल पैर दुखने लगते होंगे तब तू अत्यंत थककर किस वन के नीचे विश्राम करता होगा ? ॥8॥ हाय बेटा ! अत्यंत दुःखिनी मुझ मंदभागिनी को छोड़ तू भाई लक्ष्मण के साथ किस दिशा में चला गया है ? ॥9॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वह कौसल्या जिस समय इस प्रकार का विलाप कर रही थी उसी समय आकाश मार्ग में विहार करने वाले देवर्षि नारद वहाँ आये॥10॥वे नारद जटारूपी कूर्च को धारण किये हुए थे, सफेद वस्त्र से उनका शरीर आवृत था, अवद्वार नाम के धारक थे और पृथिवी में सर्वत्र प्रसिद्ध थे॥11॥ उन्हें समीप में आया देख कौसल्या ने उठकर तथा आसन आदि देकर उनका आदर किया ॥12॥ जिसके नेत्र आँसुओं से तरल थे तथा जिसकी आकृति से ही बहुत भारी शोक प्रकट हो रहा था ऐसी कौसल्या को देख नारद ने पूछा कि हे कल्याणि ! तुमने किससे अनादर प्राप्त किया है, जिससे रो रही हो ? तुम्हारे दुःख का कारण तो संभव नहीं जान पड़ता ? ॥13-14॥ तुम सुकोशल महाराज की लोकप्रसिद्ध पुत्री हो, प्रशंसनीय हो तथा राजा दशरथ की अपराजिता नाम की पत्नी हो ॥15॥ मनुष्यों में रत्नस्वरूप श्रीराम की माता हो, उत्तम लक्षणों से युक्त हो तथा देवता के समान माननीय हो । जिस दुष्ट ने तुम्हें क्रोध उत्पन्न कराया है, प्रताप से समस्त संसार को व्याप्त करने वाले श्रीमान राजा दशरथ आज ही उसका प्राणापहारी निग्रह करेंगे अर्थात् उसे प्राणदंड देंगे ॥16-17॥

इसके उत्तर में देवी कौसल्या ने कहा कि हे देवर्षे ! तुम बहुत समय बाद आये हो इसलिए इस समाचार को नहीं जानते और इसीलिए ऐसा

कह रहे हो ॥18॥ जान पड़ता है कि अब तुम दूसरे ही हो गये हो और तुम्हारी निष्ठुरता बढ़ गई है अन्यथा तुम्हारा वह पुराना वात्सल्य शिथिल क्यों दिखाई देता ? ॥19॥आज तक भी तुम इस वार्ता को क्यों नहीं प्राप्त हो सके ? जान पड़ता है कि तुम भ्रमण प्रिय हो और अभी कहीं बहुत दूर से आ रहे हो ॥20॥ नारद ने कहा कि धातकीखंड-द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में एक सुरेंद्र रमण नाम का नगर है वहाँ श्री तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ था॥21॥ सुरासुर सहित इंद्रों ने सुमेरुपर्वत पर आश्चर्यकारी दिव्य वैभव के साथ उनका जन्माभिषेक किया था ॥22॥ सो समस्त पापों को नष्ट करने एवं पुण्यकर्म को बढ़ाने वाला तीर्थंकर भगवान् का वह अभिषेक मैंने देखा है ॥23॥ उस उत्सव में आनंद से भरे देवों ने तथा अत्यंत शोभायमान विभूति को धारण करने वाले विद्याधरों ने आनंद से नृत्य किया था ॥24॥ जिनेंद्र भगवान् के दर्शनों में आसक्त हो मैं उस अतिशय मनोहारी द्वीप में यद्यपि तेईस वर्ष तक सुख से निवास करता रहा॥25॥ तथापि चिरकाल से सेवित तथा महान् धैर्य उत्पन्न करने वाली माता के तुल्य इस भरत-क्षेत्र की भूमि का स्मरण कर यहाँ पुनः आ पहुँचा हूँ ॥26॥ जंबूद्वीप के भरत-क्षेत्र में आकर मैं अभी तक कहीं अन्यत्र नहीं गया हूँ, सीधा समाचार जानने की प्यास लेकर तुम्हारा दर्शन करने के लिए आया हूँ ॥27॥

तदनंतर अपराजिता (कौसल्या) ने जो वृत्तांत जैसा हुआ था वह सब नारद से कहा । उसने कहा कि संघ सहित सर्वभूतहित आचार्य का आगमन हुआ । महाविद्याधरों के राजा भामंडल का संयोग हुआ । राजा दशरथ ने अनेक राजाओं के साथ दीक्षा धारण की, सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन को गये, वहाँ सीता के साथ उनका वियोग हुआ, सुग्रीवादि के साथ समागम हुआ, युद्ध में लंका के धनी-रावण ने लक्ष्मण को शक्ति से ताड़ित किया और द्रोणमेघ की कन्या विशल्या शीघ्रता से वहाँ ले जाई गई ॥28-31॥ इतना कहते ही जिसे तीव्र दुःख का स्मरण हो आया था ऐसी कौसल्या अश्रुधारा छोड़ती हुई पुनः विलाप करने लगी ॥32॥ हाय-हाय पुत्र ! तू कहाँ गया ? कहाँ है ? बहुत समय हो गया, शीघ्र ही आ, मेरे लिए वचन दे मुझ से वार्तालाप कर और शोक सागर में डूबी हुई मेरे लिए सांत्वना दे ॥33॥ हे सत्पुत्र ! मैं पुण्यहीना तुम्हारे मुख को न देखती तथा तीव्र दुःखाग्नि से व्याप्त हुई अपने जीवन को निरर्थक मानती हूँ ॥34॥ सुख से जिसका लालन-पालन हुआ तथा जो वन की हरिणी के समान भोली है ऐसी राजपुत्री बेटी सीता शत्रु के बंदीगृह में पड़ी दुःख से समय काट रही होगी ॥35॥ निर्दय रावण ने लक्ष्मण को शक्ति से घायल किया सो जीवित है या नहीं इसकी कोई खबर नहीं है ॥36॥ हाय मेरे अत्यंत दुर्लभ पुत्रो ! और हाय मेरी पतिव्रते बेटी सीते ! तुम समुद्र के मध्य इस भयंकर दुःख को कैसे प्राप्त हो गई ॥37॥

तदनंतर यह वृत्तांत जानकर नारद ने वीणा पृथ्वी पर फेंक दी और स्वयं उद्विग्न हो दोनों हाथ मस्तक से लगा चुपचाप बैठ गये ॥38॥ उनका शरीर क्षणमात्र में निश्चल पड़ गया । जब विचारकर उनकी ओर अनेक बार देखा तब वे बोले कि हे देवि ! मुझे यह बात अच्छी नहीं जान पड़ती ॥36॥ रावण तीन खंड का स्वामी है, अत्यंत क्रोधी तथा समस्त विद्याधरों का स्वामी है सो उसे भामंडल तथा सुग्रीव ने क्यों कुपित कर दिया ? ॥40॥ फिर भी हे कौसल्ये ! हे शुभे ! अत्यधिक शोक मत करो । यह मैं शीघ्र ही जाकर तुम्हारे लिए समाचार लाता हूँ इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥41॥ हे देवि ! इतना ही कार्य करने की मेरी सामर्थ्य है । शेष कार्य के करने में तुम्हारा पुत्र ही समर्थ है ॥42॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर तथा परम प्यारी सखी के समान वीणा को बगल में दबाकर नारद आकाश में उड़ गये ॥43॥

तदनंतर वायु के समान तीव्र गति से जाते और दुर्लक्ष्य पर्वतों से युक्त पृथिवी को देखते हुए नारद लंका की ओर चले । उस समय उनके मन में कुछ शंका तथा कुछ आश्चर्य दोनों ही उत्पन्न हो रहे थे ॥44॥ चलते-चलते नारद जब लंका के समीप पहुँचे तब ऐसा विचार करने लगे कि मैं उपाय के बिना राम-लक्ष्मण का समाचार किस प्रकार ज्ञात करूँ ? ॥45॥ यदि साक्षात् रावण से राम-लक्ष्मण की वार्ता पूछता हूँ तो इसमें दोष दिखायी देता है । क्या करूँ ? कुछ स्पष्ट मार्ग दिखायी नहीं देता ॥46॥ अथवा मैं इसी क्रम से इच्छित वार्ता को जानूँगा । इस प्रकार मन में ध्यान कर निश्चिंत हो पद्म सरोवर की ओर गये ॥47॥ उस समय उस पद्म सरोवर में उत्तम शोभा को धारण करने वाला अंगद अपने अंतःपुर के साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥48॥ वहाँ जाकर नारद मधुर वार्ता द्वारा तट पर स्थित किसी पुरुष से रावण की कुशलता पूछते हुए क्षण भर खड़े रहे ॥49॥ उनके वचन सुन, जिनके ओंठ काँप रहे थे ऐसे सेवक कुपित हो बोले कि रे तापस ! तू इस तरह दुष्टतापूर्ण वार्ता क्यों कर रहा है ? ॥50॥ रावण के वर्ग का तू दुष्ट तापस यहाँ कहाँ से आ गया ? इस प्रकार कहकर तथा घेरकर किंकर लोग उन्हें अंगद के समीप ले गये ॥51॥ यह तापस रावण की कुशल पूछता है । इस प्रकार जब किंकरों ने अंगद से कहा तब नारद ने उत्तर दिया कि मुझे रावण से कार्य नहीं है॥52॥ तब किंकरों ने कहा कि यदि यह सत्य है तो फिर तू हर्षित हो रावण का कुशल पूछने में परम आदर से युक्त क्यों है ? ॥53॥ तदनंतर अंगद ने हँसकर कहा कि जाओ इस खोटी चेष्टा के धारक मूर्ख तापस को शीघ्र ही

पद्मनाभ के दर्शन कराओ **अर्थ**ात् उनके पास ले जाओ ॥54॥ अंगद के इतना कहते ही कितने ही किंकर नारद की भुजा खींचकर आगे ले जाने लगे और कितने ही पीछे से प्रेरणा देने लगे । इस प्रकार किंकरों द्वारा कष्ट पूर्वक ले जाये गये नारद ने मन में विचार किया कि इस पृथ्वीतल पर पद्मनाभ नाम को धारण करने वाले बहुत से पुरुष हैं । न जाने वह पद्मनाभ कौन है जिसके कि पास मैं ले जाया जा रहा हूँ ? ॥55-56॥ जिनशासन से स्नेह रखने वाली कोई देवी मेरी रक्षा करे, मैं अत्यंत संशय में पड़ गया हूँ ॥57॥

अथानंतर चोटी तक जिनके प्राण पहुँच गये थे, तथा जिन्हें अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसे नारद उत्तम गुहा का आकार धारण करने वाले विभीषण के घर के द्वार में प्रविष्ट हुए ॥58॥ वहाँ दूर से ही राम को देख, जिनका चित्त सहसा हर्ष को प्राप्त हो रहा था ऐसे पसीने से लथपथ नारद ने अहो अन्याय हो रहा है । इस प्रकार जोर से आवाज लगाई ॥59॥ राम ने नारद का शब्द सुन उनकी ओर दृष्टि डालकर पहिचान लिया कि ये तो अवद्वार नामक नारद हैं । उसी समय उन्होंने आदर के साथ सेवकों से कहा कि इन्हें छोड़ो, शीघ्र छोड़ो । तदनंतर सेवकों ने जिन्हें तत्काल छोड़ दिया था ऐसे नारद श्रीराम के पास जाकर हर्षित हो सामने खड़े हो गये ॥60-61॥ जिनका भय छूट गया था ऐसे ऋद्धि मंगलमय आशीर्वादों से राम-लक्ष्मण का अभिनंदन कर दिये हुए सुखासन पर बैठ गये ॥62॥

तदनंतर श्रीराम ने कहा कि आप तो अवद्वारगति नामक क्षुल्लक हैं । इस समय कहाँ से आ रहे हैं ? इस प्रकार श्रीराम के कहने पर नारद ने क्रम-क्रम से कहा कि ॥63॥ मैं दुःखरूपी सागर में निमग्न हुए आपकी माता के पास से उनका समाचार जताने के लिए आपके चरणकमलों के समीप आया हूँ ॥64॥ इस समय आपकी माता माननीय भगवती अपराजिता देवी आपके बिना बड़े कष्ट में हैं, वे रात-दिन आँसुओं से मुख प्रक्षालित करती रहती हैं ॥65॥ जिस प्रकार अपने बालक के बिना सिंही व्याकुल रहती है उसी प्रकार आपके बिना वे व्याकुल रहती हैं । उनके बाल बिखरे हुए हैं तथा वे पृथ्वी पर लोटती रहती हैं ॥66॥ हे देव ! वे ऐसा विलाप करती हैं कि उस समय स्पष्ट ही पत्थर भी कोमल हो जाता है॥67॥ तुम सत्पुत्र के रहते हुए भी वह पुत्रवत्सला, महागुण धारिणी स्तुति के योग्य उत्तम माता कष्ट क्यों उठा रही है ? ॥68॥ यदि अपने वियोगरूपी सूर्य से सूखी हुई उस माता के आप शीघ्र ही दर्शन नहीं करते हैं तो मैं समझता है कि आजकल में ही उसके प्राण छूट जावेंगे ॥69॥ अतः प्रसन्न होओ, चलो, उठो, माता के दर्शन करो । क्यों बैठे हो ? यथार्थ में इस संसार में माता ही सर्वश्रेष्ठ बंधु है ॥70॥ जो बात आपकी माता की है ठीक यही बात दुःख से कैकेयी सुमित्रा की हो रही है । उसने अश्रु बहा-बहाकर महल के फर्श को मानो छोटा-मोटा तालाब ही बना दिया है ॥71॥ आप दोनों के वियोग से उसे न आहार में, न शयन में, न दिन में और न रात्रि में थोड़ा भी आनंद प्राप्त होता है ॥72॥ वह पुत्र-वियोग से कुररी के समान रुदन करती रहती है तथा अत्यंत विह्वल हो दोनों हाथों से छाती और शिर पीटती रहती है॥73॥ हाय लक्ष्मण बेटा ! आओ माता को जीवित करो, शीघ्र ही वचन बोलो इस प्रकार वह निरंतर विलाप करती रहती है॥74॥ पुत्रों के वियोगरूपी तीव्र अग्नि की ज्वालाओं से जिनके शरीर व्याप्त हैं ऐसी दोनों माताओं को दर्शनरूपी अमृत की धाराओं से शांति प्राप्त कराओ ॥75॥ यह सुनकर राम, लक्ष्मण दोनों भाई अत्यंत दुःखी हो उठे, उनके नेत्रों से आँसू निकलने लगे । तब विद्याधरों ने उन्हें सांत्वना प्राप्त कराई॥76॥

तदनंतर किसी तरह धैर्य को प्राप्त हुए राम ने कहा कि अहो ऋषे ! आपने हमारा बड़ा उपकार किया॥77॥ खोटे कर्म के उदय से माता हम लोगों की स्मृति से ही छूट गई थी सो आपने उसका हमें स्मरण करा दिया । इससे प्रिय बात और क्या हो सकती है ?॥78॥ संसार में वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है जो माता की विनय में तत्पर रहता है तथा किंकर भाव को प्राप्त हो उसकी सेवा करता है ॥79॥ इस प्रकार माता के महास्नेह रूपी रस से जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे राजा रामचंद्र ने लक्ष्मण के साथ नारद की बहुत पूजा की ॥80॥ और अत्यंत संभ्रांत चित्त हो विभीषण को बुलाकर भामंडल तथा सुग्रीव के समीप इस प्रकार कहा कि हे विभीषण ! इंद्रभवन के समान आपके इस भवन में हम लोगों का बिना जाने ही बहुत भारी काल व्यतीत हो गया है॥ 81-82॥ जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के समूह से संतापित मनुष्य के हृदय में सदा उत्तम सरोवर विद्यमान रहता है उसी प्रकार हमारे हृदय में यद्यपि चिरकाल से माता के दर्शन की लालसा विद्यमान थी तथापि आज उस वियोगाग्नि के स्मरणमात्र से मेरे अंग-अंग अत्यंत संतप्त हो उठे हैं सो मैं माता के दर्शनरूपी जल के द्वारा उन्हें अत्यंत शांति प्राप्त कराना चाहता हूँ ॥83-84॥ आज अयोध्या नगरी को देखने के लिए मेरा मन अत्यंत उत्सुक हो रहा है क्योंकि वह दूसरी माता के समान मुझे अधिक स्मरण दिला रही है ॥85॥

तदनंतर विभीषण ने कहा कि हे स्वामिन् ! आप जैसी आज्ञा दें, वैसा ही होगा । आपका हृदय शांति को प्राप्त हो यही हमारी भावना है ॥86॥ हम माताओं को यह शुभ वार्ता सूचित करने के लिए अयोध्या नगरी के प्रति दूत भेजते हैं जिससे आपका आगमन जानकर माताएँ

सुख को प्राप्त होंगी॥87॥ हे विभो ! हे आश्रितजनवत्सल ! आप सोलह दिन तक इस नगर में ठहरने के लिए मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये॥88॥ इतना कहकर विभीषण ने अपना मणि सहित मस्तक राम के चरणों में रख दिया और तब तक रखे रहा तब तक कि उन्होंने स्वीकृत नहीं कर लिया ॥89॥

अथानंतर महल के शिखर पर खड़ी अपराजिता (कौशल्या) निरंतर दक्षिण दिशा की ओर देखती रहती थी । एक दिन उसने दूर से विद्याधरों को आते देख समीप में खड़ी कैकयी (सुमित्रा) से कहा कि हे कैकयि ! देख-देख वे बहुत दूरी पर वायु से प्रेरित मेघों के समान विद्याधर शीघ्रता से इसी ओर आ रहे हैं॥60-61॥ हे श्राविके ! जान पड़ता है कि ये छोटे भाई सहित मेरे पुत्र के द्वारा भेजे हुए हैं और आज अवश्य ही शुभ वार्ता कहेंगे ॥62॥ कैकयी ने कहा कि जैसा आप कहती हैं सर्वथा ऐसा ही हो । इस तरह जब तक उन दोनों में वार्ता चल रही थी तब तक वे विद्याधर दूत समीप में आ गये ॥63॥ पुष्पवर्षा करते हुए उन्होंने आकाश से उतरकर भवन में प्रवेश किया और अपना परिचय दे हर्षित होते हुए वे भरत के पास गये॥64॥ राजा भरत ने हर्षित हो उनका सन्मान किया और आशीर्वाद देते हुए वे योग्य आसनों पर आरूढ़ हुए ॥65॥ सुंदर चित्त को धारण करने वाले उन विद्याधर दूतों ने सब समाचार यथायोग्य कहे । उन्होंने कहा कि राम को बलदेव पद प्राप्त हुआ है । लक्ष्मण के चक्ररत्न प्रकट हुआ है तथा उन्हें नारायण पद मिला है । राम लक्ष्मण दोनों को भरतक्षेत्र का उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है । युद्ध में लक्ष्मण के द्वारा घायल हो रावण मृत्यु को प्राप्त हुआ है, वंदीगृह में रहने वाले इंद्रजित् आदि ने जिनदीक्षा धारण कर ली है, देशभूषण और कुलभूषण मुनि का उपसर्ग दूर करने से गरुड़ेंद्र प्रसन्न हुआ था सो उसके द्वारा राम-लक्ष्मण को सिंहवाहिनी तथा गरुडवाहिनी विद्याएँ प्राप्त हुई हैं । विभीषण के साथ महाप्रेम उत्पन्न हुआ है, उत्तमोत्तम भोग-संपदाएँ प्राप्त हुई हैं तथा लंका में उनका प्रवेश हुआ है॥96-99 । इस प्रकार राम-लक्ष्मण के अभ्युदय सूचक समाचारों से प्रसन्न हुए राजा भरत ने उन दूतों को माला पान तथा सुगंध आदि के द्वारा सन्मान किया ॥100॥

तदनंतर भरत उन विद्याधरों को लेकर उन माताओं के पास गया और विद्याधरों ने निरंतर शोक करने तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों को धारण करने वाली उन माताओं को आनंदित किया ॥101॥ राम-लक्ष्मण की माताओं और उन विद्याधर दूतों के बीच मन को प्रसन्न करने तथा उनकी विभूति को सूचित करने वाली यह मनोहर कथा जब तक चलती है तब तक सुवर्ण और रत्नादि से परिपूर्ण हजारों शीघ्रगामी वाहनों से सूर्य का मार्ग रोककर रंग-बिरंगे मेघों का आकार धारण करने वाले हजारों विद्याधरों के झुंड उस तरह आ पहुँचे जिस तरह कि जिनेंद्रावतार के समय महातेजस्वी देव आ पहुँचते हैं॥102-104॥ तदनंतर आकाश में स्थित उन विद्याधरों ने सब ओर से दिशाओं को प्रकाश के द्वारा परिपूर्ण करने वाली नाना रत्नमयी वृष्टि छोड़ी ॥105॥ अयोध्या के भर जाने पर हर एक कुटुंब के घर में पर्वतों के समान सुवर्णादि की राशियाँ लग गई ॥106॥ जान पड़ता था कि अयोध्या निवासी लोगों ने जंमांतर में पुण्यकर्म किये थे अथवा स्वर्ग से चयकर वहाँ आये थे इसीलिए तो उन्हें उस समय उस प्रकार की लक्ष्मी प्राप्त हुई थी ॥207॥ उसी समय भरत ने नगर में यह घोषणा दिलवाई कि जो रत्न तथा स्वर्णादि वस्तुओं से संतोष को प्राप्त नहीं हुआ हो वह पुरुष अथवा स्त्री निर्भय हो राजमहल में प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार द्रव्य से अपने घर को भर ले ॥108-109॥ उस घोषणा को सुनकर अयोध्यावासी लोगों ने आकर कहा कि हमारे घर में खाली स्थान ही नहीं है॥110॥ विस्मयरूपी सूर्य के संपर्क से जिनके मुखकमल खिल रहे थे तथा जिनकी दरिद्रता नष्ट हो चुकी थी ऐसी स्त्रियाँ राम की स्तुति कर रही थीं ॥111॥उसी समय बहुत से चतुर विद्याधर कारीगरों ने आकर चाँदी तथा सुवर्णादि के लेप से भवन की भूमियों को लिप्त किया ॥112॥ अच्छे-अच्छे बहुत से जिन-मंदिर तथा विंध्याचल के शिखरों के समान अत्यंत उन्नत बड़े-बड़े महलों के समूह की रचना की ॥113॥ जो हजारों खंभों से सहित थे, मोतियों की मालाओं से सुशोभित थे, तथा नाना प्रकार के पुतलों से युक्त थे ऐसे विविध प्रकार के मंडप बनाये ॥114॥ दरवाजे किरणों से चमकते हुए बड़े-बड़े रत्नों से खचित किये तथा पताकाओं की पंक्ति से युक्त तोरणों के समूह खड़े किये ॥115॥ इस तरह जो अनेक आश्चर्यों से परिपूर्ण थी तथा जिसमें निरंतर महोत्सव होते रहते थे ऐसी वह अयोध्या नगरी लंका आदि को जीतने वाली हो रही थी ॥116॥ महेंद्रगिरि के शिखरों के समान आभा वाले जिनमंदिरों में निरंतर संगीत ध्वनि के साथ अभिषेकोत्सव होते रहते थे ॥117॥ जो जलभृत मेघों के समान श्याम वर्ण थे तथा जिन पर भ्रमर गुंजार करते रहते थे ऐसे बाग-बगीचे उत्तमोत्तम फूलों और फलों से युक्त हो गये थे ॥118॥ बाहर की समस्त दिशाओं में **अर्थ**ात् चारों ओर प्रमुदित जंतुओं से युक्त नंदनवन के समान सुंदर वनों से वह नगरी अत्यंत मनोहर जान पड़ती थी ॥119॥ वह नगरी नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लंबी और अड़तीस योजन परिधि से सहित थी ॥120॥सोलह दिनों में चतुर विद्याधर कारीगरों ने अयोध्या को ऐसा बना दिया कि सौ वर्षों में भी उसकी स्तुति

नहीं हो सकती थी ॥121॥ जिनमें सुवर्ण की सीढ़ियाँ लगी थी ऐसी वापिकाएँ तथा जिनके सुंदर-सुंदर तट थे ऐसी परिखाएँ कमल आदि के फूलों से आच्छादित हो गई और उनमें इतना पानी भर गया कि ग्रीष्मऋतु में भी नहीं सूख सकती थीं ॥122॥ जो स्नान संबंधी क्रीड़ा से उपभोग करने योग्य थीं, जिनके तटों पर उत्तमोत्तम जिनालय स्थित थे तथा जो हरे भरे वृक्षों की कतारों से सुशोभित थीं ऐसी परिखाएँ उत्तम शोभा धारण करती थीं ॥123॥ अयोध्या पुरी को स्वर्गपुरी के समान की हुई जानकर हल के धारक श्रीराम ने स्थान-स्थान पर आगामी दिन प्रस्थान को सूचित करने वाली घोषणा दिलवाई ॥124॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! आकाशरूपी आँगन में विहार करने वाले नारद ऋषि ने जब से माताओं संबंधी समाचार सुनाया था तभी से राम-लक्ष्मण अपनी-अपनी माताओं को हृदय में धारण कर रहे थे ॥125॥ पूर्वभव में किये हुए पुण्यकर्म के प्रभाव से प्राणियों के समस्त अचिंतित कार्य सुंदरता को प्राप्त होते हैं इसलिए समस्त लोग सदा पुण्य संचय करने में तत्पर रहें जिससे कि उन्हें चिंतारूपी सूर्य का संताप न भोगना पड़े ॥126॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में अयोध्या का वर्णन करने वाला इक्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥81॥

## राम-लक्ष्मण का समागम

बयासीवां पर्व

कथा :

अथानंतर सूर्योदय होने पर शुभचेष्टाओं के धारक राम और लक्ष्मण पुष्पक विमान में आरूढ़ हो अयोध्या की ओर चले ॥1॥ उनकी सेवा में तत्पर रहने वाले अनेक विद्याधरों के अधिपति अपने-अपने परिवार के साथ नाना प्रकार के यानों और वाहनों पर सवार हो साथ चले ॥2॥ छत्रों और ध्वजाओं से जहाँ सूर्य की किरणें रुक गई थीं ऐसे आकाश में स्थित सब लोग पर्वतों से भूषित पृथिवी को दूर से देख रहे थे ॥3॥ जिसमें नाना प्रकार के प्राणियों के समूह क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे लवण-समुद्र को लाँघकर हर्ष से भरे वे विद्याधर लीला धारण करते हुए जा रहे थे ॥4॥ राम के समीप बैठी गुणगण को धारण करने वाली सती सीता लक्ष्मी के समान महाशोभा को धारण कर रही थी । वह सामने की ओर दृष्टि डालती हुई राम से बोली कि हे नाथ ! जंबूद्वीप के मध्य में यह अत्यंत उज्ज्वल वस्तु क्या दिख रही है ? तब राम ने सुंदरी सीता से कहा कि हे देवि ! जहाँ पहले बाल्यावस्था में देवाधिदेव भगवान मुनिसुव्रतनाथ का हर्ष से भरे देवों ने अभिषेक किया था ॥5-7॥ यह वही रत्नमय ऊँचे मनोहारी शिखरों से युक्त मंदर नाम का प्रसिद्ध पर्वतराज सुशोभित हो रहा है॥8॥ अहो ! वेग के कारण विमान दूसरे मार्ग में आ गया है, आओ अब पुनः सेना के पास चलें यह कह तथा सेना के पास जाकर राम बोले कि हे प्रिये ! यह वही दंडक वन है जहाँ काले-काले हाथियों की घटा से महाअंधकार फैल रहा है तथा जहाँ पर बैठी हुई तुम्हें अपना घात करने वाला रावण हरकर ले गया था ॥6-10॥ हे सुंदरि ! यह वही नदी दिखाई देती है जहाँ मेरे साथ तुमने दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों के लिए पारणा कराई थी ॥11॥ हे सुलोचने ! यह वही वंशस्थविल नाम का पर्वत दिखाई देता है जहाँ एक साथ विराजमान देशभूषण और कुलभूषण मुनियों के दर्शन किये थे ॥12॥ जिन मुनियों की मैंने, तुमने तथा लक्ष्मण ने उपसर्ग दूर कर सेवा की थी और जिन्हें मोक्ष सुख का देने वाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ था॥13॥ हे भद्रे ! यह बालिखिल्य का नगर है जहाँ लक्ष्मण ने तुम्हारे समान कल्याणमाला नाम की अद्भुत कन्या प्राप्त की थी ॥14॥ हे प्रिये ! यह दशांगभोग नाम का नगर दिखाई देता है जहाँ रूपवती का पिता वज्रकर्ण नाम का उत्कृष्ट श्रावक रहता था ॥15॥ तदनंतर पृथिवी की ओर देखकर सीता ने पुनः पूछा कि हे कांत ! यह नगरी किस विद्याधर राजा की दिखाई देती है?॥16॥ यह नगरी विमानों के समान उत्तम भवनों से अत्यंत व्याप्त है तथा स्वर्ग की विडंबना करने वाली ऐसी नगरी मैंने कभी नहीं देखी ॥17॥

सीता के वचन सुन तथा धीरे-धीरे दिशाओं की ओर देख राम का चित्त स्वयं क्षणभर के लिए विभ्रम में पड़ गया । परंतु बाद में सब समाचार जानकर मंद हास्य करते हुए बोले कि हे प्रिये ! यह अयोध्या नगरी है । जान पड़ता है कि विद्याधर कारीगरों ने इसकी ऐसी रचना की है कि यह अन्य नगरी के समान जान पड़ने लगी है, इसने लंका को जीत लिया है तथा उत्कृष्ट कांति से युक्त है ॥18-19॥ तदनंतर द्वितीय सूर्य के समान देदीप्यमान तथा आकाश के मध्य में स्थित विमान को सहसा देख नगरी क्षोभ को प्राप्त हो गई ॥20॥ क्षोभ को प्राप्त हुआ भरत महागज पर सवार हो महाविभूति युक्त होता हुआ इंद्र के समान नगरी से बाहर निकला ॥21॥ उसी समय उसने नाना यानों और विमानों में स्थित तथा विचित्र ऋद्धियों से युक्त विद्याधरों से समस्त दिशाओं को आच्छादित देखा ॥22॥ भरत को आता हुआ देख जिन्होंने पुष्पक विमान को पृथिवी पर खड़ा कर दिया था ऐसे राम और लक्ष्मण हर्षित हो समीप में आये ॥23॥ तदनंतर उन दोनों

को समीप में आया देख भरत ने हाथी से उतरकर स्नेहादि से पूरित सैकड़ों अर्घों से उनकी पूजा की ॥24॥ तत्पश्चात् विमान के शिखर से निकलकर बाज़ूबंदों से सुशोभित भुजाओं को धारण करने वाले दोनों अग्रजों ने बड़े प्रेम से भरत का आलिंगन किया॥25॥ एक दूसरे को देखकर तथा कुशल समाचार पूछकर राम-लक्ष्मण पुनः भरत के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए ॥26॥
तदनंतर जिसकी सजावट की गई थी और जो नाना प्रकार की पताकाओं से चित्रित थी ऐसी अयोध्या नगरी में क्रम से सबने प्रवेश किया ॥27॥ धक्काधूमी के साथ चलने वाले यानों, विमानों, घोड़ों, रथों और हाथियों की घटाओं से अयोध्या के मार्ग अवकाश रहित हो गये ॥28॥ लूमते हुए मेघों की गर्जना के समान तुरही के शब्द तथा करोड़ों शंखों के शब्दों से मिश्रित भंभा और भेरियों के शब्द होने लगे ॥29॥ बड़े-बड़े नगाड़ों के जोरदार शब्द तथा बिजली के समान चश्चल लंप और धुंधुओं के मधुर शब्द गंभीरता को प्राप्त हो रहे थे ॥30॥ हैक नामक वादियों की हुँकार से सहित झालर, अम्लातक, हक्का, और गुंजारटित नामक वादित्रों के महाशब्द, काहलों के अस्फुट एवं मधुर शब्द, निविडता को प्राप्त हुए हलहला के शब्द, अट्टहास के शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादि के शब्द, बाँसुरी के स्वर से मिले हुए नाना प्रकार के संगीत के शब्द, भांडों के विशाल शब्द, बंदी जनों के विरद पाठ, सूर्य के समान तेजस्वी रथों की मनोहर चीत्कार, पृथिवी के कंपन से उत्पन्न हुए शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकार की प्रतिध्वनियों के शब्द सब एक साथ मिलकर विशाल शब्द कर रहे थे ॥31-34॥ इस प्रकार परम शोभा को धारण करने वाले विद्याधर राजाओं से घिरे हुए सुंदर शरीर के धारक राम और लक्ष्मण ने नगरी में प्रवेश किया ॥35॥ उस समय विद्याधर देव थे, राम-लक्ष्मण इंद्र थे और अयोध्या नगरी स्वर्ग थी तब उनका वर्णन कैसा किया जाय ? ॥36॥ श्रीराम के मुखरूपी चंद्रमा को देखकर मधुर ध्वनि करने वाला लोकरूपी सागर, बढ़ती हुई वेला के साथ वृद्धि को प्राप्त हो रहा था ॥37॥ पहिचान में आये पुरुष जिन्हें पद-पद पर पूज रहे थे, तथा जयवंत रहो, बढ़ते रहो, जीते रहो, समृद्धिमान होओ, इत्यादि शब्दों के द्वारा जिन्हें स्थान-स्थान पर आशीर्वाद दिया जा रहा था ऐसे दोनों भाई नगर में प्रवेश कर रहे थे ॥38॥ अत्यंत ऊँचे विमान तुल्य भवनों के शिखरों पर स्थित स्त्रियों के नेत्रकमल राम लक्ष्मण को देखते ही खिल उठते थे ॥36॥पूर्ण चंद्रमा के समान कमललोचन राम और वर्षाकालीन मेघ के समान श्याम, सुंदर लक्षणों के धारक लक्ष्मण को देखने के लिए तत्पर स्त्रियाँ अन्य सब काम छोड़ अपने मुखों से झरोखों को कमलवन के समान कर रही थीं ॥40-41॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि राजन् ! उस समय परस्पर में अत्यधिक संपर्क होने पर जिनके हार टूट गये थे ऐसी स्त्रियों के पयोधरों **अर्थ**ात् स्तनरूपी पयोधरों अर्थात् मेघों ने अपूर्व वृष्टि की थी ॥42॥ जिनके चित्त राम-लक्ष्मण में लग रहे थे ऐसी स्त्रियों की मेखला, नूपुर और कुंडल टूट-टूटकर पृथिवी पर पड़ रहे थे तथा उनमें परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था ॥43॥ कोई कह रही थी कि जिनकी गोद में गुणों को धारण करने वाली यह राजा जनक की पुत्री पतिव्रता सीता प्रिया विद्यमान है यही विशाल नेत्रों को धारण करने वाले राम हैं ॥44॥ कोई कह रही थी कि हाँ, ये वे ही राम हैं जिन्होंने सुग्रीव को आकृति के चोर दैत्यराज वृत्र के नाती दुष्ट साहस गति को युद्ध में मारा था ॥45॥ कोई कह रही थी कि ये इंद्र तुल्य पराक्रम के धारी लक्ष्मण हैं जिन्होंने युद्ध में अपने चक्र से वक्षःस्थल पर प्रहार कर रावण को मारा था ॥46॥ कोई कह रही थी कि यह महाशक्तिशाली सुग्रीव है, यह उसका बेटा अंगद है, यह सीतादेवी का सगा भाई भामंडल है जिसे उत्पन्न होते ही देव ने पहले तो हर लिया था फिर दया से छोड़ दिया था और चंद्रगति विद्याधर ने देखा था ॥47-48॥ यही नहीं किंतु हर्ष से युक्त हो उसे वन में झेला था तथा ''यह तुम्हारा पुत्र है'' इस प्रकार कहकर रानी पुष्यवती के लिए सौंपा था । अपने दिव्य रत्नमयी कुंडलों से जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है तथा जो सार्थक नाम का धारी है ऐसा यह विद्याधरों का राजा भामंडल अत्यधिक शोभित हो रहा है ॥46-50॥ हे सखि ! यह चंद्रोदर का लड़का श्रीमान् विराधित है और यह वानर चिह्नित पताका को धारण करने वाला पवनंजय का पुत्र श्रीशैल (हनूमान्) है ॥51॥ इस प्रकार आश्चर्य तथा संतोष को धारण करने वाली नगरवासिनी स्त्रियाँ जिन्हें देख रही थीं ऐसे उत्कट शोभा के धारक सब लोग राजभवन में पहुँचे ॥52॥ जब तक ये सब राजभवन में पहुँचे तब तक जो भवन के शिखर पर स्थित थीं, पुत्रों के प्रति स्नेह प्रकट करने में तैयार थीं तथा जिनके स्तनों से दूध भर रहा था ऐसी दोनों वीर माताएँ ऊपर से उतरकर नीचे आ गई ॥53॥ महागुणों को धारण करने वाली तथा उत्तम शील से युक्त अपराजिता (कौशल्या), कैकयी (सुमित्रा), केकया (भरत की माता) और सुप्रजा (सुप्रभा) उत्तम चेष्टा को धारण करने वाली तथा मंगलाचार में निपुण ये चारों माताएँ साथ-साथ राम-लक्ष्मण के समीप आई मानो भवांतर में ही संयोग को प्राप्त हुई हों ॥54-15॥
तदनंतर जो माताओं को देखकर प्रसन्न थे, जिनके नेत्रकमल के समान थे और जो लोकपालों के तुल्य कांति को धारण करने वाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण दोनों भाई पुष्पक विमान से उतर कर नीचे आये और दोनों ने हाथ जोड़कर नम्रीभूत हो साथ में आये हुए समस्त राजाओं

और अपनी स्त्रियों के साथ क्रम से समीप जाकर माताओं के चरणों में नमस्कार किया॥56-57॥कल्याणकारी हजारों आशीर्वादों को देती हुई उन माताओं ने दोनों पुत्रों का आलिंगन किया । उस समय वे सब स्वसंवेद्य सुख को प्राप्त हो रही थी **अर्थ**ात् जो सुख उन्हें प्राप्त हुआ था उसका अनुभव उन्हीं को हो रहा था अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सकते थे ॥58॥ वे बार-बार आलिंगन करती थीं फिर भी तृप्त नहीं होती थीं, मस्तक पर चुंबन करती थीं, काँपते हुए हाथ से उनका स्पर्श करती थीं, और उनके नेत्र हर्ष के आँसुओं से पूर्ण हो रहे थे । तदनंतर आसन पर आरूढ हो परस्पर का सुख-दुःख पूछकर वे सब परम धैर्य को प्राप्त हुई ॥56-60॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इनके जो हजारों मनोरथ पहले अनेकों बार गुणित होते रहते थे वे अब पुण्य के प्रभाव से इच्छा से भी अधिक फलीभूत हुए ॥61॥ जो साधुओं की भक्त थीं, उत्तम चित्त को धारण करने वाली थीं, सैकड़ों पुत्र-वधुओं से सहित थीं, तथा लक्ष्मी के वैभव को प्राप्त थीं ऐसी उन वीर माताओं ने वीर पुत्रों के प्रभाव और अपने पुण्योदय से लोकोत्तर महिमा तथा गौरव को प्राप्त किया ॥62-63॥ वे एक छत्र से सुशोभित लवणसमुद्रांत पृथिवी में बिना किसी बाधा के इच्छानुसार आज्ञा प्रदान करती थीं॥64॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अत्यंत विशुद्ध बुद्धि को धारण करने वाला जो मनुष्य इस इष्ट समागम के प्रकरण को सुनता है अथवा पढ़ता है वह इष्ट संपत्ति पूर्ण आयु तथा उत्तम पुण्य को प्राप्त होता है ॥65॥ सद्बुद्धि मनुष्य का किया हुआ एक नियम भी अभ्युदय को प्राप्त हो सूर्य के समान उत्तम प्रकाश करता है । हे भव्यजनो ! इस नियम को अवश्य करो॥66॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में राम-लक्ष्मण के समागम का वर्णन करने वाला व्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥82॥

## त्रिलोकमंडन हाथी का क्षुभित होना

तेरासीवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जिसे अत्यंत कौतुक उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिक ने शिर से प्रणाम कर गौतम स्वामी से पूछा कि हे भगवन् ! उन राम-लक्ष्मण के घर में लक्ष्मी का विस्तार कैसा था ? ॥1॥तब गौतम स्वामी ने कहा कि हे राजन् ! यद्यपि राम-लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न के भोगों का वर्णन संपूर्ण रूप से नहीं किया जा सकता तथापि हे राजन् ! बलभद्र और नारायण के प्रभाव से उनके जो वैभव प्रकट हुआ था वह संक्षेप से कहता हूँ सो सुन॥2-3॥
उनके अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरों से युक्त, इंद्रभवन के समान सुंदर लक्ष्मी का निवासभूत नंद्यावर्त नाम का भवन था॥4॥ किसी महागिरि के शिखरों के समान ऊँचा चतुःशाल नाम का कोट था, वैजयंती नाम की सभा थी । चंद्रकांत मणियों से निर्मित सुवीथी नाम की मनोहर शाला थी, अत्यंत ऊँचा तथा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला प्रासाद कूट था, विंध्यगिरी के समान ऊँचा वर्द्धमानक नामक प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकार के उपकरणों से युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटी के अंडे के समान महान् आश्चर्यकारी था, एक खंभे पर खड़ा था, और कल्पवृक्ष के समान मनोहर था, ॥5-8॥उस गर्भगृह को चारों ओर से घेर कर तरंगाली नाम से प्रसिद्ध तथा रत्नों से देदीप्यमान रानियों के महलों की पंक्ति थी ॥6॥ बिजली के खंडों के समान कांति वाला अंभोजकांड नाम का शय्या गृह था, सुंदर, सुकोमल स्पर्श वाली तथा सिंह के शिर के समान पायों पर स्थित शय्या थी, उगते हुए सूर्य के समान उत्तम सिंहासन था, चंद्रमा की किरणों के समूह के समान चमर थे॥10-11॥ इच्छानुकूल छाया को करने वाला चंद्रमा के समान कांति से युक्त बड़ा भारी छत्र था, सुख से गमन कराने वाली विषमोचिका नाम की दो खड़ाऊँ थीं ॥12॥ अनर्घ्य वस्त्र थे, दिव्य आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुंडलों का जोड़ा था, कभी व्यर्थ नहीं जाने वाले गदा, खड्ग, कनक, चक्र, वाण तथा रणांगण में चमकने वाले अन्य बड़े-बड़े शस्त्र थे ॥13-14॥ पचास लाख हल थे, एक करोड़ से अधिक अपने आप दूध देने वाली गायें थीं ॥15॥ जो अत्यधिक संपत्ति के धारक थे तथा निरंतर न्याय में प्रवृत्त रहने थे ऐसे अयोध्या नगरी में निवास करने वाले कुलों की संख्या कुछ अधिक सत्तर करोड़ थी ॥16॥ गृहस्थों के समस्त घर अत्यंत सफेद, नाना आकारों के धारक, अक्षीण खजानों से परिपूर्ण तथा रत्नों से युक्त थे ॥17॥ नाना प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण नगर के बाह्य प्रदेश छोटे मोटे गोल पर्वतों के समान जान पड़ते थे और पक्के फरसों से युक्त भवनों की चौशालें अत्यंत सुखदायी थीं ॥18॥ उत्तमोत्तम बगीचों मध्य में स्थित, नाना प्रकार के फूलों से सुशोभित, उत्तम सीढ़ियों से युक्त एवं क्रीडा के योग्य अनेकों वापिकाएँ थीं ॥19॥ देखने के योग्य **अर्थ**ात् सुंदर-सुंदर गायों और भैंसों के समूह से युक्त वहाँ के कुटुंबी अत्यधिक सुख से सहित होने

के कारण उत्तम देवों के समान सुशोभित हो रहे थे ॥20॥ सेना के नायक स्वरूप जो सामंत थे वे लोकपालों के समान कहे गये थे तथा विशाल तेज के धारक राजा लोग महेंद्र के समान वैभव से युक्त थे॥22॥अप्सराओं के समान संसार के सुख की भूमि स्वरूप अनेक सुंदरी स्त्रियाँ थीं, और इच्छानुकूल सुख के देने वाले अनेक उपकरण थे ॥22॥ जिस प्रकार पहले, चक्ररत्न को धारण करने वाले राजा हरिषेण के द्वारा यह भरत क्षेत्र परम शोभा को प्राप्त हुआ था उसी प्रकार यह भरत क्षेत्र राम के द्वारा परम शोभा को प्राप्त हुआ था ॥23॥ अत्यधिक संपदा को धारण करने वाले भव्यजन जिनकी निरंतर पूजा करते थे ऐसे हजारों चैत्यालय श्री रामदेव ने निर्मित कराये थे । ॥24॥ देश, गाँव, नगर, वन, घर और गलियों के मध्य में स्थित सुखिया मनुष्य मंडल बाँध-बाँधकर सदा यह चर्चा करते रहते थे ॥25॥कि देखो यह समस्त साकेत देश, इस समय आश्चर्यकारी स्वर्ग लोक की उपमा प्राप्त करने के लिए उद्यत है ॥26॥जिस देश के मध्य में जिनका वर्णन करना शक्य नहीं है ऐसे ऊँचे ऊँचे भवनों से अयोध्यापुरी इंद्र की नगरी के समान सुशोभित हो रही है ॥27॥ वहाँ के बड़े-बड़े विद्यालयों को देखकर यह संदेह उत्पन्न होता था कि क्या ये तेज से आवृत देवों के क्रीड़ाचल हैं अथवा शरद् ऋतु के मेघों का समूह है ? ॥28॥इस नगरी का यह प्राकार समस्त दिशाओं को देदीप्यमान कर रहा है, अत्यंत ऊँचा है, समुद्र की वेदिका के समान है और बड़े-बड़े शिखरों से सुशोभित है ॥26॥ जिसने अपनी किरणों से आकाश को प्रकाशित कर रक्खा है तथा जिसका चिंतवन मन से भी नहीं किया जा सकता ऐसे सुवर्ण और रत्नों की राशि जैसी अयोध्या में थी वैसी तीनलोक में भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं थी ॥30॥ जान पड़ता है कि पुण्यजनों के द्वारा भरी हुई यह शुभ और शोभायमान नगरी श्रीरामदेव के द्वारा मानो अन्य ही कर दी गई है ॥31॥ संप्रदाय वश सुनने में आता है कि स्वर्ग नाम का कोई सुंदर पदार्थ है सो ऐसा लगता है मानो उस स्वर्ग को लेकर ही राम-लक्ष्मण यहाँ पधारे हो ॥32॥ अथवा यह वही पहले की उत्तरकोशल पुरी है जो कि पुण्यहीन मनुष्यों के लिए अत्यंत दुर्गम हो गई है ॥32॥ ऐसा जान पड़ता है कि इस कांति को प्राप्त हुई यह नगरी श्री रामचंद्र के द्वारा इसी शरीर तथा स्त्री पशु और धनादि सहित लोगों के साथ ही साथ स्वर्ग भेज दी गई है ॥34॥ इस नगरी में यही एक सबसे बड़ा दोष दिखाई देता है जो कि महानिंदा और लज्जा का कारण है तथा सत्पुरुषों के अत्यंत दुःखपूर्वक छोड़ने के योग्य है ॥35॥वह दोष यह है कि विद्याधरों का राजा रावण सीता को हर ले गया था सो उसने अवश्य ही उसका सेवन किया होगा । अब वही सीता फिर से लाई गई है सो क्या राम को ऐसा करना उचित है ? ॥36॥अहो जनो ! देखो जब क्षत्रिय, कुलीन, ज्ञानी और मानी पुरुष का यह काम है तब अन्य पुरुष का क्या कहना है ॥37॥इस प्रकार क्षुद्र मनुष्यों के द्वारा प्रकट हुआ सीता का अपवाद, पूर्व कर्मोदय से लोक में सर्वत्र विस्तार को प्राप्त हो गया ॥38॥

अथानंतर स्वर्ग को लज्जा करने वाले इस नगर में रहता हुआ भरत इंद्र तुल्य भोगों से भी प्रीति को प्राप्त नहीं हो रहा था ॥36॥ वह यद्यपि डेढ़ सौ स्त्रियों का प्राणनाथ था तथापि निरंतर उस उन्नत राज्यलक्ष्मी के साथ द्वेष करता रहता था ॥40॥ वह ऐसे मनोहर क्रीड़ास्थल में जो कि छपरियों-अट्टालिकाओं, शिखरों और देहलियों की मनोहर कांति से युक्त, पंक्तिबद्ध रचित बड़े-बड़े महलों से सुशोभित था, जहाँ के फर्श नाना प्रकार के रंग-बिरंगे मणियों से बने हुए थे, जहाँ सुंदर सुंदर वापिकाएँ थीं, जो मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, सुवर्ण जटित था, जहाँ वृक्ष फूलों से युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थों से व्याप्त था, समयानुकूल मन को हरण करने वाला था, बांसुरी और मृदंग के बजने का स्थान था, सुंदरी स्त्रियों से युक्त था, जिसके समीप ही मदभीगे कपोलों से युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मद की गंध से सुवासित था, घोड़ों की हिनहिनाहट से मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो रत्नों के प्रकाशरूपी पट से आवृत था, तथा देवों के लिए भी रुचिकर था, धैर्य को प्राप्त नहीं होता था। चकित चित्त का धारक भरत संसार से अत्यंत भयभीत रहता था। जिस प्रकार शिकारी से भय को प्राप्त हुआ हरिण सुंदर स्थानों में धैर्य को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार भरत भी उक्त प्रकार के सुंदर स्थानों में धैर्य को प्राप्त नहीं हो रहा था ॥41-46॥

वह सोचता रहता था कि मनुष्य पर्याय बड़े दुःख से प्राप्त होती है फिर भी पानी की बूंद के समान चंचल है, यौवन फेन के समूह के समान भंगुर तथा अनेक दोषों से संकट पूर्ण है ॥47॥ भोग अंतिम काल में विरस **अर्थ**ात् रस से रहित है, जीवन स्वप्न के समान है और भाई-बंधुओं का संबंध पक्षियों के समागम के समान है ॥48॥ ऐसा निश्चय करने के बाद भी जो मनुष्य मोक्ष-सुखदायी धर्म धारण नहीं करता है वह पीछे जरा से जर्जर चित्त हो शोकरूपी अग्नि से जलता रहता है ॥46॥ जो मूर्ख मनुष्यों को प्रिय है, अपवाद अर्थात् निंदा का कुलभवन है एवं संध्या के प्रकाश के समान विनश्वर है ऐसे नवयौवन में क्या राग करना है ? ॥50॥ जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, नाना व्याधियों का कुलभवन है, और रजवीर्य जिसका मूल कारण है ऐसे इस शरीर रूपी यंत्र में क्या प्रीति करना है ? ॥51॥ जिस प्रकार ईंधन

से अग्नि नहीं तृप्त होती और जल से समुद्र नहीं तृप्त होता उसी प्रकार जब तक संसार है तब तक सेवन किये हुए विषयों से यह प्राणी तृप्त नहीं होता ॥52॥ जिसकी बुद्धि पाप में आसक्त हो रही है ऐसा पापी मनुष्य कुछ भी नहीं समझता है और लोभी मनुष्य पतंग के समान दारुण दुःख को प्राप्त होता है ॥53॥ जिनका आकार गलगंड के समान है तथा जिनसे निरंतर पसीना झरता रहता है, ऐसे स्तन नामक मांस के घृणित पिंडों में क्या प्रेम करना है ? ॥54॥ जो दाँतरूपी कीड़ों से युक्त है तथा जो तांबूल के रसरूपी रुधिर से सहित है ऐसे छुरी के छाप के समान जो मुखरूपी बिल है उसमें क्या शोभा है ? ॥55॥स्त्रियों की जो चेष्टा मानो वायु के दोष से ही उत्पन्न हुई है अथवा उन्माद-जनित है उसके विलासपूर्ण होने पर भी उसमें क्या प्रीति करना है ? ॥56॥ जो घर के भीतर की ध्वनि के समान है तथा जो मन के धैर्य में निवास करता है (रोदन पक्ष में मन के अधैर्य में निवास करता है) ऐसे संगीत तथा रोदन में कोई विशेषता नहीं दिखाई देती ॥57॥ जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओं से तन्मय है तथा जो केवल चमड़े से आच्छादित हैं ऐसी स्त्रियों से उनकी सेवा करने वाले पुरुष को क्या सुख होता है ? ॥8॥ मूर्खमना प्राणी मलभूत घट के समान अत्यंत लज्जाकारी संयोग को प्राप्त हो 'मुझे सुख हुआ है' ऐसा मानता है॥56॥अरे ! जो इच्छामात्र से उत्पन्न होने वाले स्वर्ग संबंधी भोगों के समूह से तृप्त नहीं होता उसे मनुष्य पर्याय के तुच्छ भोगों से कैसे तृप्ति हो सकती है ? ॥60॥ ईंधन बेचने वाला मनुष्य वन में तृणों के अग्रभाग पर स्थित ओस के कणों से तृप्ति को प्राप्त नहीं होता केवल श्रम को ही प्राप्त होता है ॥61॥ उस सौदास को तो देखो जो राजलक्ष्मी से तृप्त नहीं हुआ किंतु इसके विपरीत जिसने नरमांस-भक्षण जैसा अयोग्य कार्य किया ॥62॥ जिस प्रकार प्रवाह युक्त गंगा में मांस के लोभी काक, मृत हस्ती के शव को चींथते हुए तृप्त नहीं होते और अंत में महासागर में प्रविष्ट हो मृत्यु को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार संसार के प्राणी विषयों में तृप्त न हो अंत में भवसागर में डूबते हैं ॥63॥ हे आत्मन् ! मोहरूपी कीचड़ में फंसी यह तेरी प्रजारूपी मेंडकी लोभरूपी तीव्र सर्प के द्वारा ग्रस्त हो आज नरक रूपी बिल में ले जाई जा रही है ॥64॥

इस प्रकार विचार करते हुए उस शांतचित्त के धारक विरागी भरत की दीक्षा में विघ्न करने वाले बहुत से दिन व्यतीत हो गये॥6॥जिस प्रकार समर्थ होने पर भी पिंजड़े में स्थित सिंह दुखी होता है उसी प्रकार भरत दीक्षा धारण करने में समर्थ होता हुआ भी सर्व दुःख को नष्ट करने वाले जिनेंद्र व्रत को नहीं प्राप्त होता हुआ दुःखी हो रहा था ॥66॥ भरत की माता केकया ने उसे रोकने के लिए राम-लक्ष्मण से याचना की सो अत्यधिक स्नेह के धारक राम-लक्ष्मण ने प्रशांत चित्त भरत को रोक कर इस प्रकार समझाया कि हे भाई ! दीक्षा के अभिलाषी पिता ने तुम्हीं को सकल पृथिवीतल का राजा स्थापित किया था ॥67-68॥ यतश्च पिता ने जगत का शासन करने के लिए निश्चय से आपका अभिषेक किया था इसलिए हम लोगों के भी आप हो स्वामी हो । अतः आप ही लोक का पालन कीजिये ॥66॥ यह सुदर्शन चक्र और ये विद्याधर राजा तुम्हारी आज्ञा के साधन हैं इसलिए पत्नी के समान इस वसुधा का उपभोग करो॥70॥मैं स्वयं तुम्हारे ऊपर चंद्रमा के समान सफेद छत्र धारण करता हूँ, शत्रुघ्न चमर धारण करता है और लक्ष्मण तेरा मंत्री है ॥71। इस प्रकार कहने पर भी यदि तुम मेरी बात नहीं मानते हो तो मैं फिर उसी तरह हरिण की नाई आज वन में चला जाऊँगा ॥72॥राक्षस वंश के तिलक रावण को जीत कर हम लोग आपके दर्शन संबंधी सुख की तृष्णा से ही यहाँ आये हैं ॥73॥ अभी तुम इस निर्विघ्न विशाल राज्य का उपभोग करो पश्चात् हमारे साथ तपोवन में प्रवेश करना॥74॥

विषय संबंधी आसक्ति से जिसका हृदय अत्यंत निःस्पृह हो गया था ऐसे भरत ने पूर्वोक्त प्रकार कथन करने में तत्पर एवं उत्तम हृदय के धारक राम से इस तरह कहा कि ॥75॥हे देव ! जिसे छोड़कर तथा उत्तम तप कर वीर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त हुए है मैं उस राज्यलक्ष्मी का शीघ्र ही त्याग करना चाहता हूँ॥76॥हे राजन् ! ये काम और **अर्थ** चंचल हैं, दुःख से प्राप्त होते हैं, अत्यंत मूर्ख जनों के द्वारा सेवित हैं तथा विद्वज्जनों के द्वेष के पात्र हैं ॥77॥ हे हलायुध ! ये नश्वर भोग स्वर्ग लोक के समान हों अथवा समुद्र की उपमा को धारण करने वाले हों तो भी मेरी इनमें तृष्णा नहीं है ॥78॥ हे राजन् ! जो अत्यंत भयंकर है, मृत्यु रूपी पाताल तक व्याप्त है, जन्म रूपी कल्लोलों से युक्त है, जिसमें रति और अरति रूपी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, जो राग-द्वेष रूपी बड़े-बड़े मगर-मच्छों से सहित है एवं नाना प्रकार के दुःखों से भयंकर है, ऐसे इस संसाररूपी सागर को मैं व्रतरूपी जहाज पर आरूढ़ हो तैरना चाहता हूँ ॥76-80॥हे राजन् ! नाना योनियों में बार-बार भ्रमण करता हुआ मैं गर्भवासादि के दुःसह दुःख प्राप्त कर थक गया हूँ ॥1॥

इस प्रकार भरत के शब्द सुन जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त हो रहे थे, जो आश्चर्य को प्राप्त थे तथा जिनके स्वर कंपित थे ऐसे राजा बोले कि हे राजन् ! पिता का वचन अंगीकृत करो और लोक का पालन करो । यदि लक्ष्मी तुम्हें इष्ट नहीं है तो कुछ समय पीछे मुनि हो जाना ॥

82-83॥ इसके उत्तर में भरत ने कहा कि मैंने पिता के वचन का अच्छी तरह पालन किया है, चिरकाल तक लोक की रक्षा की है, भोगसमूह का सम्मान किया है॥84॥ परम दान दिया है, साधुओं के समूह को संतुष्ट किया है, अब जो कार्य पिता ने किया था वही करना चाहता हूँ॥85॥ आप लोग मेरे लिए आज ही अनुमति क्यों नहीं देते हैं ? यथार्थ में उत्तम कार्य के साथ तो जिस तरह बने उसी तरह संबंध जोड़ना चाहिए॥86॥हाथियों की भीड़ से भयंकर युद्ध में शत्रुसमूह को जीतकर नंद आदि पूर्व बलभद्र और नारायणों के समान आपने जो लक्ष्मी उपार्जित की है वह यद्यपि बहुत बड़ी है तथापि मुझे संतोष उत्पन्न करने के लिए समर्थ नहीं है। जिस प्रकार गंगा नदी समुद्र को तृप्त करने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मुझे तृप्त करने में समर्थ नहीं है, इसलिए अब तो मैं यथार्थ मार्ग में ही प्रवृत्त होता हूँ॥ 87-88॥ इस प्रकार कहकर तथा उनसे पूछकर तीव्र संवेग से युक्त भरत संभ्रम के साथ भरत चक्रवर्ती की नाई शीघ्र ही सिंहासन से उठ खड़ा हुआ॥6॥अथानंतर मनोहर गति को धारण करने वाला भरत ज्यों ही वन को जाने के लिए उद्यत हुआ त्योंही लक्ष्मण ने स्नेह और संभ्रम के साथ उसे रोक लिया **अर्थ**ात् उसका हाथ पकड़ लिया॥60॥ अपने हाथ से लक्ष्मण के करपल्लव को अलग करता हुआ भरत जब तक अविरल अश्रु वर्षा करने वाली माता को समझाता है तब तक राम की आज्ञा से, जिनकी लक्ष्मी के समान चेष्टाएँ थीं तथा जिनके नेत्र वायु से कंपित नील कमल के समान थे ऐसी भरत की स्त्रियाँ आकर उसके प्रति रोदन करने लगीं ॥61-62॥इसी बीच में शरीरधारिणी साक्षात् लक्ष्मी के समान सीता, उर्वी, भानुमती, विशल्या, सुंदरी, ऐंद्री, रत्नवती, लक्ष्मी, सार्थक नाम को धारण करने वाली गुणवती, कांता, बंधुमती, भद्रा, कौबेरी, नलकूबरा, कल्याणमाला, चंद्रिणी, मानसोत्सवा, मनोरमा, प्रियानंदा, चंद्रकांता, कलावती, रत्नस्थली, सुरवती, श्रीकांता, गुणसागरा, पद्मावती, तथा जिनका वर्णन करना अशक्य है ऐसी दोनों भाइयों की अन्य अनेक स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँची ॥63-66। उन सब स्त्रियों का आकार मन को हरण करने वाला था, वे सब दिव्य वस्त्राभूषणों से सहित थी, अनेक शुभभावों के उत्पन्न होने की क्षेत्र थीं, स्नेह की वंशज थीं, समस्त कलाओं के समूह एवं फल के दिखाने में तत्पर थीं, घेरकर सब ओर खड़ी थीं, सुंदर चित्त की धारक थीं, लुभावने में उद्यत थीं, मनोहर शब्दों से युक्त थीं, तथा वायु से कंपित कमलिनियों के समूह के समान कांति की धारक थीं। उन सबने बड़े आदर के साथ भरत से कहा ॥17-66॥कि देवर ! हम लोगों पर एक बड़ी प्रसन्नता कीजिए। हम लोग आपके साथ मनोहर जलक्रीडा करना चाहती हैं॥100॥ हे नाथ ! मन को खिन्न करने वाली अन्य चिंता छोड़िए, और अपनी भौजाइयों के समूह की यह प्रिय प्रार्थना स्वीकृत कीजिए ॥101॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि उन सब स्त्रियों ने भरत को घेर लिया था फिर भी उसका चित्त रंचमात्र भी विकार को प्राप्त नहीं हुआ । केवल दाक्षिण्य वश उसने उनकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली ॥102॥

तदनंतर आज्ञा प्राप्त कर राम, लक्ष्मण और भरत की स्त्रियाँ शंका रहित हो परम आनंद को प्राप्त हुई ॥103॥तत्पश्चात् सुंदर चेष्टाओं से युक्त वे कमललोचना स्त्रियाँ भरत को घेरकर महारमणीय सरोवर में उतरी ॥104॥जिसका चित्त तत्त्व के चिंतन करने में लगा हुआ था तथा क्रीड़ा से निःस्पृह था ऐसा भरत केवल स्त्रियों के अनुरोध से ही जल के समागम को प्राप्त हुआ था **अर्थ**ात् जल में उतरा था॥10॥ स्त्रियों से घिरा हुआ विनयी भरत, सरोवर में पहुँचकर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो झुंड का स्वामी गजराज ही हो ॥106॥अपनो विशाल कांति से जल को रंगीन करने वाले, चिकनाई से युक्त, सुंदर तथा सुगंधित तीन उपटन उस भरत की देह पर लगाये गये थे ॥ 107॥ उत्तम चेष्टाओं से युक्त एवं अतिशय मनोहर राजा भरत, कुछ क्रीड़ा कर तथा अच्छी तरह स्नान कर सरोवर से बाहर निकल आये ॥ 108॥तदनंतर कमल और नीलोत्पल आदि से जिसने अर्हंत भगवान की महापूजा की थी ऐसा भरत उन आदरपूर्ण स्त्रियों के समूह से अत्यधिक सुशोभित हो रहा था॥109॥

इसी बीच में महामेघ के समान त्रिलोकमंडन नाम का जो प्रसिद्ध गजराज था वह खंभे को तोड़कर अपने निवासगृह से बाहर निकल आया । उस समय वह महाभयंकर शब्द कर रहा था तथा मदजल से आकाश को वर्षायुक्त कर रहा था॥110-111॥मेघ की सघन विशाल गर्जना के समान उसकी गर्जना सुनकर समस्त अयोध्यापुरी ऐसी हो गई मानो उसके समस्त लोग उन्मत्त ही हो गये हों ॥112॥ जिन्होंने भीड़ के कारण धक्का-मुक्की कर रक्खी थी, तथा जिनके कान और नेत्र भय से स्थिर थे ऐसे इधर-उधर दौड़ने का श्रम उठाने वाले महावतों से युक्त हाथियों से नगर के राजमार्ग भर गये थे ॥113॥ घोड़ों के वेग को ग्रहण करने वाले वे महाभयदायी मदोन्मत्त हाथी इच्छानुकूल दशों दिशाओं में बिखर गये फैल गये ॥114॥ जिसके महाशिखर सुवर्ण तथा रत्नमय थे ऐसे पर्वत के समान विशाल गोपुर को तोड़कर वह त्रिलोकमंडन हाथी जिस ओर भरत विद्यमान था उसी ओर गया ॥115॥ तदनंतर जिनके नेत्र भय से व्याकुल थे और जो बहुत भारी बेचैनी से युक्त थीं ऐसी समस्त स्त्रियाँ रक्षा के निमित्त भरत के समीप उस प्रकार पहुँची जिस प्रकार कि किरणें सूर्य के समीप

पहुँचती हैं ॥116॥उस गजराज को भरत के सन्मुख जाता देख, लोग चारों ओर 'हाय हाय' इस प्रकार जोर से विलाप करने लगे ॥117॥ पुत्र स्नेह में तत्पर माताएँ भी महा उद्वेग से सहित, परम शंका से युक्त तथा अत्यंत विह्वल हो उठीं ॥118॥उसी समय छल तथा महाविज्ञान से युक्त राम और लक्ष्मण, कमर कसकर भय से पीडित विद्याधर महावतों को दूर हटा उस अतिशय चपल गजराज को बलपूर्वक पकड़ने के लिए उद्यत हुए ॥116-120॥वह गजराज क्रोधपूर्वक उच्च चिंघाड़ कर रहा था, दुर्दर्शनीय था, प्रबल वेगशाली था और नागपाशों के द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था ॥121॥

तदनंतर स्त्रीजनों के अंत में स्थित श्रीमान कमललोचन भरत को देखकर उस हाथी को अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया ॥122॥ जिसे बहुत भारी उद्वेग उत्पन्न हुआ था ऐसा वह हाथी सूंड को शिथिल कर भरत के आगे विनय से बैठ गया ॥123॥भरत ने मधुर वाणी में उससे कहा कि अहो गजराज ! तुम किस कारण रोष को प्राप्त हुए हो ॥124॥ भरत के उक्त वचन सुन चैतन्य को प्राप्त हुआ गजराज अत्यंत शांतचित्त हो गया, उसकी चंचलता जाती रही और उसका दर्शन अत्यंत सौम्य हो गया ॥125॥उत्तमोत्तम स्त्रियों के आगे स्थित स्नेहपूर्ण भरत को वह हाथी इस प्रकार देख रहा था मानो स्वर्ग में अप्सराओं के समूह में बैठे हुए इंद्र को ही देख रहा हो ॥126॥

तदनंतर जो परिज्ञानी था, अत्यंत दीर्घ उच्छ्वास छोड़ रहा था ऐसा वह विकाररहित हाथी इस प्रकार की चिंता को प्राप्त हुआ ॥127॥ वह चिंता करने लगा कि यह वही है जो ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में चंद्रमा के समान शुक्ल शोभा को धारण करने वाला मेरा परम मित्र देव था ॥128॥ यह वहाँ से च्युत हो अवशिष्ट पुण्य के कारण उत्तम पुरुष हुआ और खेद है कि मैं निंदित कार्य करता हुआ इस तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुआ हूँ ॥126॥ मैं कार्य-अकार्य के विवेक से रहित इस हस्ती पर्याय को कैसे प्राप्त हो गया ? अहो, इस पापपूर्ण चेष्टा को धिक्कार हो ॥130॥ अब इस समय पूर्व भव की स्मृति को प्राप्त हो व्यर्थ ही क्यों संताप करूँ, अब तो वह कार्य करता हूँ कि जिससे आत्महित की प्राप्ति हो ॥131॥उद्वेग करना दुःख के छूटने का कारण नहीं है इसलिए मैं पूर्ण आदर के साथ वही उपाय करता हूँ जो दुःख के छूटने का कारण है ॥132॥इस प्रकार जिसे पूर्वभव का स्मरण हो रहा था, जो संसार के विषय में अत्यधिक वैराग्य को प्राप्त हुआ था, जिसकी आत्मा पापरूप चेष्टा से अत्यंत विमुख थी तथा जो पुण्य कर्म के संचय करने की चिंता से युक्त था ऐसा वह त्रिलोकमंडन हाथी भरत के आगे शांति से बैठ गया ॥133॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पूर्वभव में किये हुए अशुभकर्म पीछे चलकर उग्र संताप उत्पन्न करते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! शुभ कार्य करो क्योंकि सूर्य के रहते हुए स्खलित होना उचित नहीं है ॥134॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराण में त्रिलोकमंडन हाथी के क्षुभित होने का वर्णन करने वाला तेरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥83॥

## त्रिलोकमंडन हाथी का शांत होना

चौरासीवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जो इस प्रकार विचार कर रहा था जिसका आकार महाश्याम मेघ के समान था तथा जिसके प्रति मधुर शब्दों का उच्चारण किया गया था ऐसे उस हाथी को परम आश्चर्य धारण करने वाले तथा कुछ-कुछ शंकित चित्त वाले राम लक्ष्मण ने धीरे-धीरे पास जाकर पकड़ लिया ॥1-2॥ लक्ष्मण की आज्ञा पाकर उत्तम हर्ष से युक्त अन्य लोगों ने सर्व प्रकार से अलंकार पहिनाकर उस हाथी का बहुत भारी सत्कार किया ॥3॥ उस गजराज के शांत होने पर जिसकी आकुलता छूट गई थी ऐसी वह नगरी मेघरूपी पट से रहित हो शरद् ऋतु के समान सुशोभित हो रही थी ॥4॥ जिसकी अत्यंत प्रचंड गति विद्याधर राजाओं तथा अत्यंत बलवान् देवों के द्वारा भी नहीं रोकी जा सकती थी ॥5॥ ऐसा यह कैलास को कंपित करने वाले रावण का भूतपूर्व वाहन राम और लक्ष्मण के द्वारा कैसे रोक लिया गया ? ॥6॥ उस प्रकार की विकृति को प्राप्त होकर जो यह शांत भाव को प्राप्त हुआ है सो यह उसकी दीर्घायु का कारण पूर्व पर्याय का पुण्य ही समझना चाहिए ॥7॥ इस तरह समस्त नगरी में परम आश्चर्य को प्राप्त हुए लोगों में हाथ तथा मस्तक को हिलाने वाली चर्चा हो रही थी ॥6॥

तदनंतर सीता और विशल्या के साथ उस गजराज पर सवार हो महाविभूति के धारक भरत ने घर की ओर प्रस्थान किया ॥6॥ जो उत्तमोत्तम अलंकार धारण कर रही थीं तथा नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ थीं ऐसी शेष स्त्रियाँ भी भरत को घेरे हुए थीं ॥10॥ घोड़ों

के रथ पर बैठा परम विभूति से युक्त महातेजस्वी शत्रुघ्न, भरत के आगे-आगे चल रहा था॥11॥शंखों के शब्द से मिश्रित तथा कोलाहल से युक्त कम्ला अम्लातक तथा भेरी आदि महावादित्रों का शब्द हो रहा था ॥12॥ जिस प्रकार देव नंदन वन को छोड़कर अपने अत्यंत मनोहर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे सब फूलों की सुगंधि से युक्त कुसुमामोद नामक उद्यान को छोड़कर अपने मनोहर घर को प्राप्त हुए ॥13॥

तदनंतर विशुद्ध बुद्धि के धारक राजा भरत ने हाथी से उतरकर आहार मंडप में प्रवेश कर और विधिपूर्वक प्रणाम कर साधुओं को संतुष्ट किया ॥14॥ तत्पश्चात् मित्रों, मंत्री आदि परिजनों और भौजाइयों के साथ भोजन किया । उसके बाद सब लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥1॥त्रिलोकमंडन हाथी कुपित क्यों हुआ ? फिर शांत कैसे हो गया ? भरत के पास क्यों जा बैठा ? यह सब क्या बात है ? इस प्रकार लोगों की हस्तिविषयक कथा दूर ही नहीं होती थी । भावार्थ जहाँ देखो वहीं हाथी के विषय की चर्चा होती रहती थी ॥16॥ तदनंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सब महावतों ने आकर तथा आदरपूर्वक प्रणाम कर राम लक्ष्मण से कहा ॥17॥ कि हे देव ! अहो ! सब कार्य छोड़े और शिथिल शरीर को धारण किये हुए त्रिलोकमंडन हाथी को आज चौथा दिन है ॥18॥ जिस समय से वह क्षोभ को प्राप्त हो शांत हुआ है उसी समय से लेकर वह ध्यान में आरूढ़ है ॥16॥ वह आँख बंदकर अत्यंत विह्वल होता हुआ बड़ी लंबी सांस भरता है और चिरकाल तक कुछ कुछ ध्यान करता हुआ सूंड से पृथ्वी को ताड़ित करता रहता है **अर्थ**ात् पृथिवी पर सूंड पटकता रहता है ॥20॥ यद्यपि उसकी निरंतर सैकड़ों प्रिय स्तोत्रों से स्तुति की जाती है तथापि वह न ग्रास ग्रहण करता है और न कानों में शब्द ही करता है अर्थात् कुछ भी सुनता नहीं है ॥21॥ वह नेत्र बंदकर दाँतों के अग्रभाग पर सूंड रखे हुए ऐसा निश्चल खड़ा है मानो चिरकाल तक स्थिर रहने वाला हाथी का चित्राम ही है ॥22॥क्या यह बनावटी हाथी है ? अथवा सचमुच का महा गजराज है इस प्रकार उसके विषय में लोगों में तर्क उत्पन्न होता रहता है॥23॥मधुर वचनों के अनुरोध से यदि किसी तरह ग्रास ग्रहण कर भी लेता है तो वह उस मधुर ग्रास को मुख तक पहुँचने के पहले ही छोड़ देता है॥24॥ वह त्रिपदी छेद की लीला को छोड़कर शोक से युक्त होता हुआ किसी खंभे में कुछ थोड़ा अटककर सांस भरता हुआ खड़ा है ॥25॥समस्त शास्त्रों के सत्कार से जिनका मन अत्यंत निर्मल हो गया है ऐसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्यों के द्वारा भी इसके अभिप्राय का पता नहीं चलता ॥26॥ जिसका चित्त किसी अन्य पदार्थ में अटक रहा है ऐसा यह हाथी बड़े आदर के साथ रचित अत्यंत मनोहर संगीत को पहले के समान नहीं सुनता है ॥27॥ वह महान् आदर से प्यार किये जाने पर भी मंगलमय कौतुक, योग, मंत्र, विद्या और औषधि आदि के द्वारा स्वस्थता को प्राप्त नहीं हो रहा है ॥28॥ वह मान को प्राप्त हुए मित्र के समान याचित होने पर भी न विहार में, न निद्रा में, न ग्रास उठाने में और न जल में ही इच्छा करता है ॥26॥ जिसका जानना कठिन है ऐसा यह कौन-सा परम अद्भुत रहस्य इस हाथी के मन में स्थित है यह हम नहीं जानते ॥30॥ यह हाथी न तो संतोष को प्राप्त हो सकता है न कभी लोभ को प्राप्त होता है और न कभी क्रोध को प्राप्त होता है, यह तो चित्रलिखित के समान खड़ा है ॥31॥ हे देव ! अद्भुत पराक्रम का धारी यह हाथी समस्त राज्य का मूल कारण है। हे देव ! यह त्रिलोकमंडन ऐसा ही हाथी है ॥32॥हे देव ! इस प्रकार जानकर अब जो कुछ करना हो सो इस विषय में आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जो कुछ आप जाने सो करें क्योंकि हमारे जैसे लोगों की बुद्धि तो निवेदन करना ही जानती है ॥33॥ इस प्रकार गजराज की पूर्व चेष्टाओं से अत्यंत विभिन्न पूर्वोक्त चेष्टा को सुनकर राम लक्ष्मण राजा क्षणभर में अत्यधिक चिंतित हो उठे ॥34॥ 'यह हाथी बंधन के स्थान से किसलिए बाहर निकला ? फिर किस कारण शांति को प्राप्त हो गया ? और किस कारण आहार को स्वीकृत नहीं करता है।' इस प्रकार रामरूपी सूर्य अनेक वितर्क करते हुए उदित हुए ॥35॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराण में त्रिलोकमंडन हाथी के शांत होने का वर्णन करने वाला चौरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥84॥

## त्रिलोकमंडन हाथी का पूर्वभव

पिच्यासीवां पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! इसी बीच में अनेक मुनियों के साथ-साथ देशभूषण और कुलभूषण केवली अयोध्या में आये ॥1॥ वे देशभूषण कुलभूषण जिन्हें कि वंशस्थविल पर्वत पर चतुरानन प्रतिमा योग को प्राप्त होने पर उनके पूर्वभव के वैरी ने उपसर्ग किया था और वीर राम-लक्ष्मण के द्वारा सेवा किये जाने पर जिन्हें लोकालोक को प्रकाशित करने वाला

केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था॥2-3॥तदनंतर संतोष को प्राप्त हुए गरुडेंद्र ने भक्ति और स्नेह से युक्त हो राम-लक्ष्मण के लिए नाना प्रकार के रत्न, अस्त्र और वाहन प्रदान किये थे ॥4॥ निरस्त होने के कारण रण में संशय अवस्था को प्राप्त हुए राम-लक्ष्मण ने जिनके प्रसाद से शत्रु को जीता था तथा राज्य प्राप्त किया था ॥5॥देव और धरणेंद्र जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा तीनों लोकों में जिनकी प्रसिद्धि थी ऐसे वे मुनिराज देशभूषण तथा कुलभूषण नगरियों में प्रमुख अयोध्या नगरी में आये ॥6॥ जिस प्रकार पहले संजय और नंदन नामक मुनिराज आये थे उसी प्रकार आकर वे नंदनवन के समान महेंद्रोदय नामक वन में ठहर गये ॥7॥ वे केवली, मुनियों के महासंघ से सहित थे, चंद्रमा और सूर्य के समान देदीप्यमान थे तथा परम अभ्युदय के धारक थे । उनके आते ही नगरी के लोगों को इनका ज्ञान हो गया॥8॥तदनंतर वंदना करने के अभिलाषी राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों भाई उन केवलियों के पास जाने के लिए उद्यत हुए ॥6॥ सूर्योदय होने पर उन्होंने नगर में सर्वत्र घोषणा कराई। तदनंतर उन्नत हाथियों पर सवार हो एवं जातिस्मरण से युक्त त्रिलोकमंडन हाथी को आगे कर देवों के समान सुंदर चित्त के धारक होते हुए वे सब उस स्थान की ओर चले जहाँ कि कल्याण के पर्वत स्वरूप दोनों निर्ग्रंथ मुनिराज विराजमान थे ॥10-11॥जिनका उत्तम अभिप्राय जिनशासन में लग रहा था, जो साधुओं की भक्ति करने में तत्पर थीं, सैकड़ों देवियाँ जिनके साथ थीं तथा देवांगनाओं के समान जिनकी आभा थी ऐसी हे श्रेणिक ! उन चारों भाइयों की माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रजा (सुप्रभा) भी जाने के लिए उद्यत हुई जो मुनिराज के दर्शन करने की तृष्णा से ग्रस्त थे तथा महावैभव से सहित थे ऐसे सुग्रीव आदि विद्याधर भी हर्षपूर्वक वहाँ आये थे॥12-14॥ पूर्णचंद्रमा के समान मुनिराज का छत्र देखते ही रामचंद्र आदि हाथियों से उतर कर पैदल चलने लगे ॥15॥ सबने हाथ जोड़कर यथाक्रम से मुनियों की स्तुति की, प्रणाम किया, पूजा की और तदनंतर सब अपने-अपने योग्य भूमियों में बैठ गये ॥16॥

उन्होंने एकाग्र चित्त होकर संसार के कारणों को नष्ट करने वाले एवं धर्म की प्रशंसा करने में तत्पर मुनिराज के वचन सुने ॥17॥ उन्होंने कहा कि अणुधर्म और पूर्णधर्म अणुव्रत और महाव्रत ये दोनों मोक्ष के मार्ग हैं इनमें से अणुधर्म तो परंपरा से मोक्ष का कारण है, पर महाधर्म साक्षात् ही मोक्ष का कारण कहा गया है ॥18॥पहला अणुधर्म महाविस्तार से सहित है तथा गृहस्थाश्रम में होता है और दूसरा जो महाधर्म है वह अत्यंत कठिन है तथा महाशूर वीर निर्ग्रंथ साधुओं के ही होता है ॥16॥इस अनादिनिधन संसार में लोभ से मोहित हुए प्राणी नरक आदि कुयोनियों में तीव्र दुःख पाते हैं ॥20॥ इस संसार में धर्म ही परम बंधु है, धर्म ही महाहितकारी है। निर्मल दया जिसकी जड़ है उस धर्म का फल नहीं कहा जा सकता ॥21॥ धर्म के समागम से प्राणी समस्त इष्ट वस्तुओं को प्राप्त होता है। लोक में धर्म अत्यंत पूज्य है। जो धर्म की भावना से सहित हैं, लोक में वही विद्वान् कहलाते हैं ॥22॥ जो धर्म दयामूलक है वही महाकल्याण का कारण है । संसार के अन्य अधम धर्मों में वह दयामूलक धर्म कभी भी विद्यमान नहीं है **अर्थ**ात् उनसे वह भिन्न है ॥23॥वह दयामूलक धर्म, जिनेंद्र भगवान के द्वारा प्रणीत परम दुर्लभ मार्ग में सदा विद्यमान रहता है जिसके द्वारा तीन लोक का अग्रभाग अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥24॥ जिस धर्म के उत्तम फल को पाताल में धरणेंद्र आदि, पृथिवी पर चक्रवर्ती आदि और स्वर्ग में इंद्र आदि भोगते हैं ॥25॥

उसी समय प्रकरण पाकर लक्ष्मण ने स्वयं हाथ जोड़कर शिर से प्रणाम कर मुनिराज से यह पूछा कि हे प्रभो ! त्रिलोकमंडन नामक गजराज खंभे को तोड़कर किस कारण क्षोभ को प्राप्त हुआ और फिर किस कारण अकस्मात् ही शांत हो गया ? ॥26-27॥हे भगवन् ! आप मेरे इस संशय को दूर करने के लिए योग्य हैं ।

तदनंतर देशभूषण केवली ने निम्न प्रकार वचन कहे ॥28॥ उन्होंने कहा कि यह हाथी अत्यधिक पराक्रम की उत्कटता से पहले तो परम क्षोभ को प्राप्त हुआ था और उसके बाद पूर्वभव का स्मरण होने से शांति को प्राप्त हो गया था ॥26॥ इस कर्मभूमिरूपी युग के आदि में इसी अयोध्या नगरी में राजा नाभिराज और रानी मरुदेवी के निमित्त से शरीर को प्राप्त कर उत्तम नाम को धारण करने वाले भगवान् ऋषभदेव प्रकट हुए थे। उन्होंने पूर्व भव में तीन लोक को क्षोभित करने वाले तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया था उसी के फलस्वरूप वे इंद्र के समान विभूति से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए थे ॥30-31॥विंध्याचल और हिमाचल ही जिसके उन्नत स्तन थे तथा समुद्र जिसकी करधनी थी ऐसी पृथिवी का जिन्होंने सदा अनुकूल चलने वाली अपनी पतिव्रता पत्नी के समान सदा सेवन किया था ॥32॥ तीनों लोक जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे वे भगवान् ऋषभदेव पहले इस अयोध्यापुरी में उस प्रकार रमण करते थे जिस प्रकार कि स्वर्ग में इंद्र रमण करता है ॥33॥ वे श्रीमान् ऋषभदेव द्युति तथा कांति से सहित थे, लक्ष्मी, श्री और कांति से संपन्न थे, कल्याणकारी गुणों के सागर थे, तीन ज्ञान के धारी थे, धीर और गंभीर थे, नेत्र और मन को हरण करने वाली चेष्टाओं से सहित थे, सुंदर शरीर के धारक थे, बलवान थे

और परम प्रतापी थे ॥34-3॥ जन्म के समय भक्ति से भरे सौधर्मेंद्र आदि देवों ने सुमेरु पर्वत पर सुवर्ण तथा रत्नमयी घटों से उनका अभिषेक किया था ॥36॥ इंद्र भी जिनके ऐश्वर्य की निरंतर चाह रखते थे उन ऋषभदेव के गुणों का वर्णन केवली भगवान को छोड़कर कौन कर सकता है ? ॥37॥ बहुत लंबे समय तक लक्ष्मी के उत्कृष्ट वैभव का उपभोग कर वे एक दिन नीलांजना नाम की अप्सरा को देख प्रतिबोध को प्राप्त हुए ॥38॥ लौकांतिक देवों ने जिनकी स्तुति की थीं ऐसे महावैभव के धारी जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों पर राज्यभार सौंपकर घर से निकल पड़े॥36॥यतश्च भगवान् प्रजा से निःस्पृह हो तिलकनामा उद्यान में गये थे इसलिए लोक में वह उद्यान प्रजाग इस नाम का तीर्थ प्रसिद्ध हो गया ॥40॥ वे भगवान् समस्त परिग्रह का त्यागकर एक हजार वर्ष तक मेरु के समान अचल प्रतिमा योग से खड़े रहे **अर्थ**ात् एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की ॥41॥स्वामिभक्ति के कारण उनके साथ जिन चार हजार राजाओं ने मुनिव्रत का धारण किया था, छः महीने के भीतर ही दुःसह परीषहों से पराजित हो उन क्षुद्र पुरुषों ने अपना निश्चय तोड़ दिया, स्वेच्छानुसार नाना प्रकार के व्रत धारण कर लिये और वे अज्ञानी जैसी चेष्टा को प्राप्त हो फल-मूल आदि का भोजन करने लगे ॥43॥ उन भ्रष्ट राजाओं के बीच महामानी, कषायले-गेरू से रंगे वस्त्रों को धारण करने वाला तथा कषाय युक्त बुद्धि से युक्त जो मरीचि नाम का साधु था उसने परिव्राजक का मत प्रचलित किया ॥44॥इसी विनीता नगरी में एक सुप्रभ नाम का राजा था उसकी प्रह्लादना नाम की स्त्री की कुक्षिरूपी भूमि से उत्पन्न हुए महामणियों के समान सूर्योदय और चंद्रोदय नाम के दो पुत्र थे ॥45॥ ये दोनों पुत्र समस्त संसार में प्रसिद्ध थे। उन्होंने भगवान आदिनाथ के साथ ही दीक्षा धारण की थी परंतु मुनिपद से भ्रष्ट होकर वे पारस्परिक तीव्र प्रीति के कारण अंत में मरीचि की शरण में चले गये ॥46॥मायामयी तपश्चरण और व्रत को धारण करने वाले मरीचि के उन दोनों शिष्यों के अनेक शिष्य हो गये जो परिव्राट् नाम से प्रसिद्ध हुए ॥47॥ मिथ्या धर्म का आचरण करने से वे दोनों चतुर्गति रूप संसार में साथ-साथ भ्रमण करते रहे । उन दोनों भाइयों ने पूर्वभवों में जो शरीर छोड़े थे उनसे समस्त पृथिवी भर गई थी ॥48॥

तदनंतर चंद्रोदय का जीव कर्म के वशीभूत हो नाग नामक नगर में राजा हरिपति के मनोलूता नामक रानी से कुलंकर नामक पुत्र हुआ जो आगे चलकर उत्तम राज्य को प्राप्त हुआ । और सूर्योदय का जीव इसी नगर में विश्वांक नामक ब्राह्मण के अग्निकुंडा नाम की स्त्री से श्रुतिरत नाम का विद्वान पुत्र हुआ। अनेक भवों में वृद्धि को प्राप्त हुए पूर्व स्नेह के संस्कार से श्रुतिरत राजा कुलंकर का पुरोहित हुआ ॥ 46-51॥ किसी समय राजा कुलंकर गोत्र परंपरा से जिनकी सेवा होती आ रही थी ऐसे तपस्वियों की सेवा करने के लिए जा रहा था सो मार्ग में उसने किन्हीं दिगंबर मुनिराज के दर्शन किये ॥52॥ उन मुनिराज का नाम अभिनंदित था, वे अवधिज्ञानरूपी नेत्र से सहित थे तथा सब लोगों का हित चाहने वाले थे। जब राजा कुलंकर ने उन्हें नमस्कार किया तब उन्होंने कहा कि हे राजन् ! तू जहाँ जा रहा है वहाँ तेरा संपन्न पितामह जो तापस हो गया था मरकर साँप हुआ है और काष्ठ के मध्य में विद्यमान है। एक तापस उस काष्ठ को चीर रहा है सो तू जाकर उसकी रक्षा करेगा। जब कुलंकर वहाँ गया तब मुनिराज के कहे अनुसार ही सब हुआ ॥53-55॥ तदनंतर उन तापसों को मिथ्याशास्त्र से युक्त देखकर राजा कुलंकर उत्तम प्रबोध को प्राप्त हो मुनिपद धारण करने के लिए उद्यत हुआ॥56॥

अथानंतर राजा वसु और पर्वत के द्वारा अनुमोदित 'अजैर्यष्टव्यम्' इस श्रुति से मोह को प्राप्त हुए पापकर्मा श्रुतिरत नामा पुरोहित ने उन्हें मोह में डालकर इस प्रकार कहा कि हे राजन् ! वैदिक धर्म तुम्हारी वंश परंपरा से चला रहा है इसलिए यदि तुम राजा हरिपति के पुत्र हो तो उसी वैदिक धर्म का आचरण करो ॥57-58॥हे नाथ ! अभी तो वेद में बताई हुई विधि के अनुसार कार्य करो फिर पिछली अवस्था में अपने पद पर पुत्र को स्थापित कर आत्मा का हित करना। हे राजन् ! मुझ पर प्रसाद करो प्रसन्न होओ ॥56॥

अथानंतर राजा कुलंकर ने 'यह बात ऐसी ही है। यह कह कर पुरोहित की प्रार्थना स्वीकृत की। तदनंतर राजा की श्रीदामा नाम की प्रिय स्त्री थी जो परपुरुषासक्त थी। उसने उक्त घटना को देखकर विचार किया कि जान पड़ता है इस राजा ने मुझे अन्य पुरुष में आसक्त जान लिया है इसीलिए यह विरक्त हो दीक्षा लेना चाहता है। अथवा यह दीक्षा लेगा या नहीं लेगा इसकी मन की गति को कौन जानता है ? मैं तो इसे विष देकर मारती हूँ ऐसा विचार कर उस पापिनी ने पुरोहित सहित राजा कुलंकर को मार डाला॥60-62॥

तदनंतर पशुघात का चिंतवन करने मात्र के पाप से वे दोनों मर कर निकुंज नामक वन में खरगोश हुए॥63॥तदनंतर कर्मरूपी वायु के वेग से प्रेरित हो क्रम से मेंढक, चूहा, मयूर, अजगर और मृग पर्याय को प्राप्त हुए ॥64॥तत्पश्चात् अविरत पुरोहित का जीव हाथी हुआ और राजा कुलंकर का जीव मेंढक हुआ सो हाथी के पैर से दबकर मेंढक मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥65॥ पुनः सूखे सरोवर में मेंढक हुआ सो कौओं ने उसे खाया। तदनंतर मुर्गा हुआ और हाथी का जीव मार्जार हुआ॥66॥सो मार्जार ने मुर्गा का भक्षण किया । इस तरह कुलंकर

का जीव तीन भव तक मुर्गा हुआ और पुरोहित का जीव जो मार्जार था वह मनुष्यों में उत्पन्न हुआ सो उसने उस मुर्गा को खाया ॥67॥ तदनंतर राजा और पुरोहित के जीव क्रम से मच्छ और शिशुमार अवस्था को प्राप्त हुए । सो धीवरों ने जाल में फंसाकर उन्हें पकड़ा तथा कुल्हाड़ों से काटा जिससे मरण को प्राप्त हुए॥68॥

तदनंतर उन दोनों में जो शिशुमार था वह मरकर राजगृह नगर में बह्वाश नामक पुरुष और उल्का नामक स्त्री के विनोद नाम का पुत्र हुआ तथा जो मच्छ था वह भी कुछ समय बाद उसी नगर में तथा उन्हीं दंपती के रमण नाम का पुत्र हुआ ॥66॥ दोनों ही अत्यंत दरिद्र तथा मूर्ख थे इसलिए रमण ने विचार किया कि अत्यंत दरिद्रता अथवा मूर्खता के रहते हुए मनुष्य मानो दो पैर वाला पशु ही है। ऐसा विचारकर वह वेद पढ़ने की इच्छा से घर से निकल पड़ा॥70॥ तदनंतर पृथिवी में घूमते हुए उसने गुरुओं के घर जाकर अंगों सहित चारों वेदों का अध्ययन किया । अध्ययन के बाद वह पुनः अपने घर की ओर चला ॥71॥ जिसे भाई के दर्शन की लालसा लग रही थी ऐसा रमण चलता-चलता जब सूर्यास्त हो गया था और आकाश में मेघों में अंधकार छा रहा था तब राजगृह नगर आया॥72॥ वहाँ वह नगर के बाहर एक पुराने बग़ीचा में जो यक्ष का मंदिर था उसमें ठहर गया। वहाँ निम्न प्रकार घटना हुई ॥73॥

रमण का जो भाई विनोद राजगृह नगर में रहता था उसकी स्त्री का नाम समिधा था। यह समिधा दुराचारिणी थी सो अशोकदत्त नामक जार का संकेत पाकर उसी यक्ष मंदिर में पहुंची जहाँ कि रमण ठहरा हुआ था॥ 74॥अशोकदत्त को मार्ग में कोतवाल ने पकड़ लिया इसलिए वह संकेत के अनुसार समिधा के पास नहीं पहुँच सका। इधर समिधा का असली पति विनोद तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे गया ॥75॥वहाँ समिधा के साथ रमण का सद्भावपूर्ण वार्तालाप सुन विनोद ने क्रोधित हो रमण को तलवार से निष्प्राण कर दिया॥76॥ . तदनंतर प्रच्छन्न पापी विनोद हर्षित होता हुआ अपनी स्त्री के साथ घर आया। उसके बाद वे दोनों दीर्घकाल तक संसार में भटकते रहे ॥ 7॥ तत्पश्चात विनोद का जीव भैंसा हुआ और रमण का जीव उसी वन में अंधा रीछ हुआ सो दोनों ही उस शालवन में जलकर मरे ॥78॥ तदनंतर दोनों ही गिरिवन में व्याध हुए, फिर मरकर हरिण हुए। उन हरिणों के जो माता पिता आदि बंधुजन थे वे भय के कारण दिशाओं में इधर-उधर भाग गये। दोनों बच्चे अकेले रह गये। उनके नेत्र अत्यंत सुंदर थे इसलिए व्याधों ने उन्हें जीवित ही पकड़ लिया। अथानंतर तीसरा नारायण राजा स्वयंभूति श्रीविमलनाथ स्वामी के दर्शन करने के लिए गया ॥79-80॥ बहुत भारी ऋद्धि को धारण करने वाला राजा स्वयंभू जब सुरों और असुरों के साथ जिनेंद्रदेव की वंदना करके लौट रहा था तब उसने उन दोनों हरिणों को देखा सो व्याधों के पास से लेकर उसने उन्हें जिनमंदिर में रखवा दिया ॥81॥ वहाँ मुनियों के दर्शन करते और राजदरबार से इच्छानुकूल भोजन ग्रहण करते हुए दोनों हरिण परम धैर्य को प्राप्त हुए ॥82॥उन दोनों हरिणों में एक हरिण आयु क्षीण होने पर समाधिमरण कर स्वर्ग गया और दूसरा तिर्यंचों में भ्रमण करता रहा ॥83॥ तदनंतर विनोद का जीव जो हरिण था उसने कर्मयोग से किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त की मानो स्वप्न में राज्य ही उसे मिल गया हो ॥84॥

अथानंतर जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में कापिल्य नामक नगर के मध्य बाईस करोड़ दीनार का धनी एक धनद नाम का वैश्य रहता था सो रमण का जीव मरकर जो देव हुआ था वह वहाँ से च्युत हो उसकी वारुणी नामक स्त्री से भूषण नाम का उत्तम पुत्र हुआ ॥85-86॥किसी निमित्तज्ञानी ने धनद वैश्य से कहा कि तेरा यह पुत्र निश्चित ही दीक्षा धारण करेगा सो निमित्तज्ञानी के वचन सुन धनद संसार से उद्विग्नचित्त रहने लगा॥87॥ उस उत्तम पुत्र की प्रीति से युक्त धनद सेठ ने एक ऐसा घर बनवाया जो सब कार्य करने के योग्य था । उसी घर में उसका भूषण नामा पुत्र रहता था । भावार्थ उसने सब प्रकार की सुविधाओं से पूर्ण महल बनवाकर उसमें भूषण नामक पुत्र को इसलिए रक्खा कि कहीं बाहर जाने पर किसी मुनि को देखकर वह दीक्षा न ले ले ॥88॥ उत्तमोत्तम स्त्रियाँ नाना प्रकार के वस्त्र आहार और विलेपन आदि के द्वारा जिसकी सेवा करती थीं ऐसा भूषण वहाँ सुंदर चेष्टाएँ करता था॥89॥वह सदा अपने महलरूपी पर्वत के पाँचवें खंड में रहता था इसलिए उसने कभी स्वप्न में भी न तो उदित हुए सूर्य को देखा था और न अस्त होता हुआ चंद्रमा ही देखा था॥ 90॥ धनद सेठ ने सैकड़ों मनोरथों के बाद यह एक ही पुत्र प्राप्त किया था इसलिए वह उसे पूर्व स्नेह के संस्कारवश प्राणों से भी अधिक प्यारा था ॥91॥धनद, पूर्वभव में भूषण का भाई था अब इस भव में पिता हुआ सो ठीक ही है क्योंकि संसार में प्राणियों की चेष्टाएँ नट की चेष्टाओं के समान विचित्र होती हैं॥92॥

तदनंतर किसी दिन रात्रि समाप्त होते ही भूषण ने देव-दुंदुभि का शब्द सुना, देवों का आगमन देखा और उनका शब्द सुना जिससे वह विबोध को प्राप्त हुआ ॥93॥ वह भूषण स्वभाव से ही कोमलचित्त था, समीचीन धर्म का आचरण करने में तत्पर था, महाहर्ष से युक्त था

तथा उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगा रक्खे थे ॥94॥ यह श्रीधर मुनिराज की वंदना के लिए शीघ्रता से सीढ़ियों पर उतरता चला आ रहा था कि साँप के काटने से उसने शरीर छोड़ दिया ॥95॥ वह मरकर माहेंद्र नामक चतुर्थ स्वर्ग में उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्युत होकर पुष्करद्वीप के चंद्रादित्य नामक नगर में राजा प्रकाशयश का पुत्र हुआ । माधवी इसकी माता थी और स्वयं उसका जगद्युति नाम था। यौवन का उदय होने पर वह अत्यंत श्रेष्ठ राज्यलक्ष्मी को प्राप्त हुआ ॥96-97॥ वह संसार से अत्यंत भयभीत रहता था, इसलिए वृद्ध मंत्री उपदेश दे देकर बड़ी कठिनाई से उससे राज्य कराते थे ॥98॥वृद्ध मंत्री उससे कहा करते थे कि हे वत्स ! कुलपरंपरा से आये हुए इस सुंदर राज्य का पालन करो क्योंकि राज्य का पालन करने से ही समस्त प्रजा सुखी होती है॥99॥ भूषण, राज्यकार्य में स्थिर रहता हुआ सदा तपस्वी मुनियों को आहारादि से संतुष्ट रखता था। अंत में वह मरकर देवकुरु नामा भोगभूमि में गया और वहाँ से मरकर ऐशान स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥100॥ वहाँ परम कांति को धारण करने वाले उस भूषण के जीव ने देवीजनों से आवृत होकर तथा नानारूप के धारक हो अनेक पल्यों तक भोगों का उपभोग किया ॥101॥

वहाँ से च्युत हो जंबूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में अचल चक्रवर्ती की बालमृगी के समान सरल, रत्ना नाम की रानी के सब लोगों को आनंदित करने वाला महागुणों का धारी पुत्र हुआ । वह पुत्र शरीर तथा नाम दोनों से ही अभिराम था **अर्थ**ात 'अभिराम' इस नाम का धारी था और शरीर से अत्यंत सुंदर था ॥102-103॥अभिराम महावैराग्य से सहित था तथा दीक्षा धारण करने के लिए उद्यत था परंतु चक्रवर्ती ने उसका विवाह कर उसे जबर्दस्ती ऐश्वर्य में-राज्य पालन में नियुक्त कर दिया॥104॥ सदा तीन हजार स्त्रियाँ, जल में स्थित हाथी के समान उस गुणी पुत्र का सावधानीपूर्वक लालन करती थीं ॥105॥उन सब स्त्रियों से घिरा हुआ अभिराम, रति संबंधी सुख को विष के समान मानता था और शांत चित्त हो केवल मुनिव्रत धारण करने के लिए उत्कंठित रहता था परंतु पिता की परतंत्रता से उसे वह प्राप्त नहीं कर पाता था ॥106॥उन सब स्त्रियों के बीच में बैठा तथा हार केयूर मुकुट आदि से विभूषित हुआ वह अत्यंत कठिन असिधारा व्रत का पालन करता था ॥107॥जिसे चारों ओर से स्त्रियाँ घेरे हुई थीं ऐसा वह श्रीमान् अभिराम, उत्तम आसन पर बैठकर उन सबके लिए जैनधर्म की प्रशंसा करने वाला उपदेश देता था ॥108॥

वह कहा करता था इस संसाररूपी अटवी में चिरकाल से भ्रमण करने वाला प्राणी पुण्य-कर्मोदय से बड़ी कठिनाई से इस मनुष्य भव को प्राप्त होता है ॥106॥उदार अभिप्राय को धारण करने वाला कौन मनुष्य जान-बूझकर अपने आपको कुएँ में गिराता है ? कौन मनुष्य विषपान करता है ? अथवा कौन मनुष्य पहाड़ की चोटी पर शयन करता है ? ॥110॥ अथवा कौन मनुष्य रत्न पाने की इच्छा से नाग के मस्तक को हाथ से छूता है ? अथवा विनाशकारी इन इंद्रियों के विषयों में किसे कब संतोष हुआ है ? ॥111॥ अत्यंत चंचल जीवन में जिनकी स्पृहा शांत हो चुकी है ऐसे मनुष्यों की जो एक पुण्य में प्रशंसनीय आसक्ति है वही उन्हें मुक्ति का सुख देने वाली है ॥112॥ इत्यादि परमार्थ का उपदेश देने वाली वाणी सुनकर उसकी वे स्त्रियाँ शांत हो गई थीं तथा शक्ति अनुसार नियमों का पालन करने लगी थीं ॥113॥वह राजपुत्र अपने सुंदर शरीर में भी राग से रहित था इसलिए वेला आदि उपवासों से कर्म की कलुषता को दूर करता रहता था ॥114॥ जिसका चित्त सदा सावधान रहता था ऐसा वह राजपुत्र विचित्र तपस्या के द्वारा शरीर को उस तरह कृश करता रहता था जिस तरह कि ग्रीष्मऋतु का सूर्य पानी को कृश करता रहता है ॥11॥ निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले उस निश्चल चित्त वीर राजपुत्र ने चौंसठ हजार वर्ष तक अत्यंत दुःसह तप किया ॥116॥ अंत में पंचपरमेष्ठियों के नमस्कार से युक्त समाधिमरण को प्राप्त हो ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्ग में उत्तम देव पर्याय को प्राप्त हुआ है ॥117॥

अथानंतर भूषण के भव में जो उसका पिता धनद सेठ था उसका जीव नाना योनियों में भ्रमण कर जंबूद्वीप संबंधी भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा में स्थित जो पोदनपुर नाम का नगर था उसमें अग्निमुख और शकुना नामक ब्राह्मण-ब्राह्मणी उसके जन्म के कारण हुए । उन दोनों के वह मृदुमति नाम का पुत्र हुआ। वह मृदुमति निरर्थक नाम का धारी था **अर्थ**ात् मृदु बुद्धि न होकर कठोर बुद्धि था ॥118-116॥ जिसकी बुद्धि जुआ तथा अविनय में आसक्त रहती थी, जो मार्गधूलि से धूसरित रहता था तथा जो नाना प्रकार के अपराध करने के कारण लोगों के द्वेष का पात्र था, ऐसा वह अत्यंत दुष्ट चेष्टाओं का धारक था ॥120॥ लोगों के उलाहनों से खिन्न होकर माता पिता ने उसे घर से निकाल दिया जिससे वह पृथिवी में जहाँ तहाँ भ्रमण कर यौवन के समय पुनः पोदनपुर में आया ॥121॥ वहाँ एक ब्राह्मण के घर में प्रविष्ट हो उसने पीने के लिए जल माँगा सो ब्राह्मणी ने उसे जल दिया । जल देते समय उस ब्राह्मणी के नेत्रों से टप-टप कर आंसू नीचे पड़ रहे थे ॥122॥अत्यंत शीतल जल से जिसकी आत्मा संतुष्ट हो गई थी ऐसे उस मृदुमति ने पूछा कि हे दयावति ! तू इस तरह क्यों रो रही

है ? उसके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणी ने कहा कि ॥123॥हे भद्र ! मुझने निर्दया हो अपने पति के साथ मिलकर तेरे ही समान आकृति वाले अपने छोटे से पुत्र को बड़े दुःख की बात है कि घर से निकाल दिया था ॥124॥ सो अनेक देशों में घूमते हुए तूने यदि कहीं उसे देखा हो तो उसका पता बता, वह नीलकमल के समान श्यामवर्ण था ॥125॥

तदनंतर अश्रु छोड़ते हुए उसने कहा कि हे माता ! रोना छोड़, धैर्य धारण कर, वह मैं ही तेरा पुत्र हूँ जो चिरकाल बाद सामने आया हूँ ॥126॥ शकुना ब्राह्मणी, अपने अग्निमुख नामक पति के साथ पुत्र प्राप्ति के महोत्सव को प्राप्त हो सुख से रहने लगी और उसके स्तनों से दूध झरने लगा ॥127॥मृदुमति, अत्यंत तेजस्वी था, सुंदर था, बुद्धिमान था, नाना शास्त्रों में निपुण था, सर्व स्त्रियों के नेत्र और मन को हरने वाला था, धूर्तों के मस्तक पर स्थित था **अर्थ**ात् उनमें शिरोमणि था ॥128॥ वह जुआ में सदा जीतता था, अत्यंत चतुर था, कलाओं का घर था, और कामोपभोग में सदा आसक्त रहता था । इस तरह वह नगर में सदा क्रीड़ा करता रहता था ॥126॥

उस पोदनपुर नगर में एक वसंतडमरा नाम की वेश्या, समस्त वेश्याओं में उत्तम थी । जो कामभोग के विषय में उसकी अत्यंत इष्ट स्त्री थी ॥130॥ उसने अपने माता पिता को अन्य बंधुजनों के साथ-साथ दरिद्रता से मुक्त कर दिया था जिससे वे समस्त इच्छित पदार्थों को प्राप्त कर राजा-रानी जैसी लीला को प्राप्त हो रहे थे॥131॥ उसका पिता कुंडल आदि अलंकारों से अत्यंत देदीप्यमान था तथा माता मेखला आदि अलंकारों से युक्त हो नाना कार्य कलाप में सदा व्यग्र रहती थी ॥132॥ एक दिन वह मृदुमति चोरी करने के लिए शशांक नामा नगर के राजमहल में घुसा । वहाँ का राजा नंदिवर्धन विरक्त हो रानी से कह रहा था सो उसे उसने सुना था ॥133॥ उसने कहा कि आज मैंने शशांकमुख नामक गुरु के चरणमूल में मोक्ष सुख का देने वाला उत्तम धर्म सुना है ॥134॥ हे देवि ! ये विषय विष के समान अत्यंत दारुण हैं इसलिए मैं दीक्षा धारण करता हूँ तुम शोक करने के योग्य नहीं हो ॥135॥ इस प्रकार रानी को शिक्षा देते हुए श्री नंदिवर्धन राजा को सुनकर वह मृदुमति अत्यंत निर्मल बोधि को प्राप्त हुआ ॥136॥संसार की दशा से विरक्त हो उसने शशांकमुख नामा गुरु के पादमूल में सर्व परिग्रह का त्याग कराने वाली जिनदीक्षा धारण कर ली ॥137॥ अब वह शास्त्रोक्त विधि का आचरण करता तथा जब कभी प्रासुक भिक्षा प्राप्त करता हुआ क्षमाधर्म से युक्त हो घोर तप करने लगा ॥138॥

अथानंतर गुणनिधि नामक एक उत्तम मुनिराज ने दुर्गगिरि नामक पर्वत के शिखर पर आहार का परित्याग कर चार माह के लिए वर्षायोग धारण किया ॥136॥ सुर और असुरों ने जिसकी स्तुति की तथा जो चारण ऋद्धि के धारक थे ऐसे वे धीर वीर मुनिराज चार माह का नियम समाप्त कर कहीं विधिपूर्वक आकाशमार्ग से उड़ गये विहार कर गये॥140॥ तदनंतर उत्तम चेष्टाओं के धारक एवं युग मात्र पृथिवी पर दृष्टि डालने वाले मृदुमति नामक मुनिराज भिक्षा के लिए आलोकनामा नगर में आये ॥141॥ सो राजा सहित नगरवासी लोगों ने यह जानकर कि ये वे ही महामुनि हैं जो पर्वत के अग्रभाग पर स्थित थे उन्हें आते देख बड़े संभ्रम से भक्ति सहित उनके दर्शन किये ॥142॥ तथा उनकी पूजा कर उन्हें नाना प्रकार के आहारों से संतुष्ट किया । और जिह्वा इंद्रिय में आसक्त हुए उन मुनि ने पाप कर्म के उदय से माया धारण की॥143॥ नगरवासी लोगों ने कहा कि तुम वही मुनिराज हो जो पर्वत के अग्रभाग पर स्थित थे तथा देवों ने जिनकी वंदना की थी । इस प्रकार कहने पर उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया किंतु यह नहीं कहा कि मैं वह नहीं हूँ ॥144॥इस प्रकार भोजन के स्वाद में लीन मृदुमति मुनि ने अज्ञान अथवा अभिमान के कारण दुःख के बीज स्वरूप इस आत्म वंचना का उपार्जन किया **अर्थ**ात् माया की ॥145॥यतश्च उन्होंने गुरु के आगे अपनी यह माया शल्य नहीं निकाली इसलिए वे इस परम दुःख की पात्रता को प्राप्त हुए ॥146॥ तदनंतर मृदुमति मुनि मरण कर उसी स्वर्ग में पहुँचे जहाँ कि ऋद्धियों सहित अभिराम नाम का देव रहता था ॥147॥ पूर्व कर्म के प्रभाव से परम ऋद्धि को धारण करने वाले उन दोनों देवों को स्वर्ग में अत्यंत प्रीति थी ॥148॥देवियों के समूह से युक्त तथा सुखरूपी सागर में निमग्न रहने वाले वे दोनों देव अपने पुण्योदय से अनेक सागर पर्यंत उस स्वर्ग में क्रीड़ा करते रहे ॥146॥

तदनंतर मृदुमति का जीव, पुण्यराशि के क्षीण होने पर वहाँ से च्युत हो मायाचार के दोष से दूषित होने के कारण जंबूद्वीप में आया ॥150॥ जंबूद्वीप में ऊँचे-ऊँचे शिखरों से सहित निकुंज नाम का एक पर्वत है उस पर अत्यंत सघन शल्लकी नामक वन है ॥151॥उसी वन में यह मेघ-समूह के समान हाथी हुआ है। इसका शब्द क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान है, इसने अपनी गति से वायु को जीत लिया है, क्रोध के समय इसका आकार अत्यंत भयंकर हो जाता है, यह महा अभिमानी है, इसकी दाढ़ें चंद्रमा के समान उज्ज्वल है। यह गजराज के गुणों से सहित है, विजय आदि महागजराजों के वंश में उत्पन्न हुआ है, परम दीप्ति को धारण करने वाला है, मानो ऐरावत हाथी से द्वेष ही रखता है, स्वेच्छानुसार युद्ध करने वाला है, सिंह व्याघ्र बड़े-बड़े वृक्ष तथा छोटी मोटी अनेक गोल चट्टानों का विनाश करने वाला है,

मनुष्यों की बात जाने दो विद्याधरों के द्वारा भी इसका पकड़ा जाना सरल नहीं है, यह अपनी गंधमात्र से समस्त वन्य पशुओं को भय उत्पन्न करता है तथा नाना प्रकार के पल्लवों से युक्त पहाड़ी निकुंजों में क्रीड़ा करता रहता है।॥152-156॥ जिसे कोई क्षोभित नहीं कर सकता तथा जो नाना प्रकार के फूलों से सुशोभित है ऐसे मानस सरोवर में यह अपने अनुयायियों के साथ क्रीड़ा करता है॥157॥यह अनायास दृष्टि में आये हुए कैलास पर्वत पर तथा गंगा नदी के मनोहर ह्रदों में अत्यंत सुखी होता हुआ श्रेष्ठ शोभा को प्राप्त होता है॥158॥ अपने बंधुजनों के महाभ्युदय को बढ़ाने वाला यह हाथी इनके सिवाय अत्यंत मनोहर पहाड़ी वन प्रदेशों में सुंदर क्रीड़ा करता है ॥156॥ अनुकूल आचरण करने में तत्पर रहने वाली हजारों हथिनियों के साथ मिलकर यह यूथपति के योग्य सुख का उपभोग करता है ॥160॥ हाथियों के समूह से घिरा हुआ यह हाथी जब यहाँ-वहाँ विचरण करता है तब पक्षियों के समूह से आवृत गरुड़ के समान सुशोभित होता है ॥161॥

जिसकी गर्जना मेघगर्जना के समान सघन है तथा जो दानरूप झरनों के निकलने के लिए मानो पर्वत ही है ऐसा यह उत्तम गजराज लंका के धनी रावण के द्वारा देखा गया **अर्थ**ात् रावण ने इसे देखा ॥162॥ तथा विद्या और पराक्रम से उग्र रावण ने इसे वशीभूत किया एवं सुंदर-सुंदर लक्षणों से युक्त इस हाथी का त्रिलोककंटक नाम रखा ॥163॥ यह पूर्वभव में स्वर्ग में अप्सराओं के साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर सुखी हुआ अब हस्तिनियों के साथ क्रीड़ा कर सुखी हो रहा है ॥164॥यथार्थ में कर्मों की ऐसी ही विचित्र शक्ति है कि जीव, दुःखों से युक्त नाना योनियों में परम प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥16॥ अभिराम का जीव भी च्युत हो अयोध्या नगरी में राजा भरत हुआ है। यह भरत अत्यंत बुद्धिमान है तथा समीचीन धर्म में इसका हृदय लग रहा है॥166॥ जिसके मोह का समूह विलीन हो चुका है तथा जो भोगों से विमुख है ऐसा यह भरत पुनर्भव दूर करने के लिए मुनि दीक्षा धारण करना चाहता है ॥167॥ श्रीऋषभदेव के समय ये दोनों सूर्योदय और चंद्रोदय नामक भाई थे तथा उन्हीं ऋषभदेव के साथ जिनधर्म में दीक्षित हुए थे किंतु बाद में अभिमान से प्रेरित हो महाव्रत छोड़कर मरीचि के द्वारा चलाये हुए परिव्राजक मत में दीक्षित हो गये जिसके फलस्वरूप संसार के दुःख से दुःखी हो कर्मों का फल भोगते हुए चिरकाल तक संसार में भ्रमण करते रहे ॥168-169॥ सो ठीक ही है क्योंकि संसार में जो मनुष्य तप नहीं करते हैं वे अपने द्वारा किये हुए सुख दुःखदायी कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥170॥

जो चंद्रोदय का जीव पहले कुलंकर और उसके बाद समाधि मरण करने वाला मृग हुआ था वही क्रम-क्रम से उत्तम हृदय को धारण करने वाला राजा भरत हुआ है ॥171॥और सूर्योदय ब्राह्मण का जीव मरकर मृग हुआ फिर क्रम-क्रम से पापकर्म के उदय से इस हस्ती पर्याय को प्राप्त हुआ है ॥172॥अत्यंत उत्कट बल को धारण करने वाला यह हाथी पहले तो बंधन का खंभा उखाड़ कर क्षोभ को प्राप्त हुआ परंतु बाद में भरत के देखने से पूर्वभव का स्मरण कर शांत हो गया ॥173॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे विद्वज्जनो ! इस तरह नाना प्रकार की गति-आगति तथा बाह्य सुख और दुःख को जानकर इस विषम कर्म अटवी को छोड़ धर्म में रमण करो क्योंकि जिन्होंने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिनेंद्र कथित धर्म धारण नहीं किया है वे संसार-भ्रमण को प्राप्त हो आत्म-हित से दूर रहते हैं ॥174॥हे भव्यजनो ! जो श्री जिनेंद्र देव के मुखारविंद से प्रकट हुआ है तथा मोक्ष के देने में तत्पर है ऐसे अनुपम जिनधर्म को पाकर सूर्य की कांति को जीतने वाला पुण्य संचय करो जिससे निर्मल परम पद को प्राप्त हो सको ॥175॥ इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में भरत तथा त्रिलोकमंडन हाथी के पूर्वभवों का वर्णन करने वाला पचासीवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥85॥

## भरत और केकया की दीक्षा

छियासीवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जो अत्यंत पवित्र थे, अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले थे, संसाररूपी घोर सागर के नाना दुःखों का निरूपण करने वाले थे और भरत के पूर्वभवों का वर्णन करने वाले थे ऐसे महामुनि श्री देशभूषण केवली के उक्त वचन सुन कर वह समस्त सभा चित्रलिखित के समान निश्चल हो गई ॥1-2॥तदनंतर जिनके हार और कुंडल हिल रहे थे, जो प्रताप से प्रसिद्ध थे, श्रीमान् थे, इंद्र के समान विभ्रम को धारण करने वाले थे, अत्यधिक संवेग के धारक थे, जिनका शरीर नम्रीभूत था, मन उदार था, जिन्होंने हस्तरूपी कमल की बोड़ियों को बाँध रक्खा था और जो संसार संबंधी निवास से अत्यंत खिन्न थे ऐसे भरत ने पृथिवी पर घुटने टेक कर मुनिराज को नमस्कार कर इस

प्रकार के अत्यंत मनोहारी वचन कहे ॥3-5॥ कि हे नाथ ! मैं संकटपूर्ण हजारों योनियों में चिरकाल से भ्रमण करता हुआ मार्ग के महाश्रम से खिन्न हो चुका हूँ अतः मुझे मोक्ष का कारण जो तपश्चरण है वह दीजिये ॥6॥ हे भगवन् ! मैं जन्म-मरण रूपी ऊँची लहरों से युक्त संसाररूपी नदी में चिरकाल से बहता चला आ रहा हूँ सो आप मुझे हाथ का सहारा दीजिये ॥7॥ इस प्रकार कह कर भरत समस्त परिग्रह का परित्याग कर पर्यंकासन से स्थित हो गये तथा महाधैर्य से युक्त हो उन्होंने अपने हाथ से केशलोंच कर डाले ॥8॥इस प्रकार परम सम्यक्त्व को पाकर महाव्रत को धारण करने वाले भरत तत्क्षण में दीक्षित हो उत्कृष्ट मुनि हो गये ॥9॥उस समय भरत के मुनि अवस्था को प्राप्त होने पर आकाश में देवों का धन्य-धन्य यह शब्द हुआ तथा दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई ॥10॥ भरत के अनुराग से प्रेरित हो कुछ अधिक एक हजार राजाओं ने क्रमागत राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर मुनिदीक्षा धारण की ॥11॥ जिनकी शक्ति हीन थी ऐसे कितने ही लोगों ने मुनिराज को नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म धारण किया ॥12॥ जो निरंतर अश्रुओं की वर्षा कर रही थी, तथा जिसकी चेतना अत्यंत आकुल थी ऐसी भरत की माता केकया घबड़ा कर उनके पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थी सो बीच में ही पृथिवी पर गिर कर मूर्छित हो गई थी ॥13॥ तदनंतर जो पुत्र की प्रीति के भार से युक्त थी, तथा जिसका शरीर निश्चल पड़ा हुआ था ऐसी वह केकया गोशीर्ष आदि चंदन के जल के सींचने पर भी चेतना को प्राप्त नहीं हो रही थी ॥14॥ बहुत समय बाद जब वह स्वयं चेतना को प्राप्त हुई तब बछड़े से रहित गाय के समान करुण रोदन करने लगी ॥15॥ वह कहने लगी कि हाय वत्स ! तू मन को आह्लादित करने वाला था, अत्यंत विनीत था और गुणों की खान था। अब तू कहाँ चला गया ? उत्तर दे और मेरे अंगों को धारण कर ॥16॥ हाय पुत्रक ! तेरे द्वारा छोड़ी हुई मैं दुःखरूपी सागर में निमग्न हो शोक से पीड़ित होती हुई कैसे रहूँगी? यह तूने क्या किया ? ॥17॥इस प्रकार विलाप करती हुई भरत की माता को राम और लक्ष्मण ने अत्यंत सुंदर वचनों से संतोष प्राप्त कराया ॥18॥उन्होंने कहा हे माता ! भरत बड़ा पुण्यवान् और विद्वान् है, तू शोक छोड़ । क्या हम दोनों तेरे आज्ञाकारी पुत्र नहीं हैं ? ॥19॥ इस प्रकार जिससे बड़े भय से उत्पन्न कातरता छुड़ाई गई थी तथा जिसका हृदय अत्यंत शुद्ध था, ऐसी वह केकया सपत्नीजनों के वचनों से शोकरहित हो गई थी ॥20॥ वह शुद्ध हृदया जब सचेत हुई तब अपने आपकी निंदा करने लगी। वह कहने लगी कि स्त्री के इस शरीर को धिक्कार हो जो अनेक दोषों से आच्छादित है ॥21॥ अत्यंत अपवित्र है, ग्लानि पूर्ण है, नगरी निर्भर **अर्थ**ात् गटर के प्रवाह के समान है। अब तो मैं वह कार्य करूँगी जिसके द्वारा पापकर्म से मुक्त हो जाऊँगी॥22॥ वह जिनेंद्रप्रणीत धर्म से तो पहले ही प्रभावित थी, इसलिए महान वैराग्य से प्रयुक्त हो एक सफेद साड़ी से युक्त हो गई ॥23॥ तदनंतर निर्मल सम्यक्त्व को धारण करती हुई उसने तीन सौ स्त्रियों के साथ साथ पृथिवीमती नामक आर्या के पास दीक्षा ग्रहण कर ली ॥24॥ समस्त गृहस्थधर्म के जाल को छोड़ कर तथा आर्यिका का उत्कृष्ट धर्म धारण कर वह केकया मेघ के संगम से रहित निष्कलंक चंद्रमा की रेखा के समान सुशोभित हो रही थी ॥25॥ उस समय देशभूषण मुनिराज की सभा में एक ओर तो उत्तम तेज को धारण करने वाले मुनियों का समूह विद्यमान था और दूसरी ओर आर्यिकाओं का समूह स्थित था इसलिए वह सभा अत्यधिक कमल और कमलिनियों से युक्त सरोवर के समान सुंदर जान पड़ती थी ॥26॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह वहाँ जितने मनुष्य विद्यमान थे उन सभी के चित्त नाना प्रकार की व्रत संबंधी क्रियाओं के संग से पवित्र हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि सूर्योदय होने पर कौन भव्यजन प्रकाश से युक्त नहीं होता ? अर्थात् सभी होते हैं ॥27॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में भरत और केकया की दीक्षा का वर्णन करने वाला छियासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥86॥

## भरत को निर्वाण

सतासीवां पर्व

कथा :

अथानंतर जिसकी आत्मा अत्यंत शांत थी ऐसे उस उत्तम त्रिलोकमंडन हाथी को मुनिराज ने विधिपूर्वक अणुव्रत धारण कराये ॥1॥ इस तरह वह उत्तम हाथी, सम्यग्दर्शन से युक्त, सम्यग्ज्ञान का धारी, उत्तम क्रियाओं के आचरण में तत्पर और गृहस्थ धर्म से सहित हुआ ॥2॥ वह एक पक्ष अथवा एक मास आदि का उपवास करता था तथा उपवास के बाद अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तों से दिन में एक बार पारणा करता था ॥3॥ इस तरह जो संसार से भयभीत था उत्तम चेष्टाओं के धारण करने में तत्पर था, और अत्यंत विशुद्धि से युक्त था ऐसा वह गजराज मनुष्यों के द्वारा पूजित होता हुआ पृथिवी पर भ्रमण करता था ॥4॥ लोग पारणा के समय उसके लिए बड़े सत्कार के साथ मीठे-

मीठे लाडू माँडे और नाना प्रकार की पूरियाँ देते थे ॥5॥ जिसके शरीर और कर्म दोनों ही अत्यंत क्षीण हो गये थे, जो संवेग रूपी खंभे से बँधा हुआ था, तथा यम ही जिसका अंकुश था ऐसे उस हाथी ने चार वर्ष तक उग्र तप किया ॥6॥ जो धीरे-धीरे भोजन का परित्याग कर अपने तपश्चरण को उग्र करता जाता था ऐसा वह हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग को प्राप्त हुआ ॥7॥ वहाँ उत्तम स्त्रियों से सहित तथा हार और कुंडलों से मंडित उस हाथी ने पुण्य के प्रभाव से पहले ही जैसा देवों का सुख प्राप्त किया ॥8॥
इधर जो महातेज के धारक थे, महाव्रती थे, विभु थे, पर्वत के समान स्थिर थे, बाह्याभ्यंतर परिग्रह के त्यागी थे, शरीर की ममता से रहित थे, महाधीर वीर थे, जहाँ सूर्य डूब जाता था वहीं बैठ जाते थे, और चार आराधनाओं की आराधना में तत्पर थे ऐसे भरत महामुनि न्यायपूर्वक विहार करते थे ॥9-10॥ वे वायु के समान बंधन से रहित थे, सिंह के समान निर्भय थे, समुद्र के समान क्षोभ से रहित थे, और मेरु के समान निष्कंप थे ॥11॥ जो दिगंबर मुद्रा को धारण करने वाले थे, सत्यरूपी कवच से युक्त थे, क्षमारूपी बाणों से सहित थे और परीषहों के जीतने में सदा तत्पर रहते थे ऐसे वे भरत मुनि सदा तपरूपी युद्ध में विद्यमान रहते थे ॥12॥ वे शत्रु और मित्र, सुख और दुःख तथा तृण और रत्न में समान रहते थे। इस तरह वे समबुद्धि धारक उत्तम मुनि थे ॥13॥ वे डाभ की अनियों से व्याप्त मार्ग में शास्त्रानुसार ईर्यासमिति से चलते थे तथा शत्रुओं के स्थानों में भी उनका निर्भय विहार होता था ॥14॥ तदनंतर मोहनीय कर्म का अत्यंत प्रलय समूल क्षय कर वे लोक-अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान को प्राप्त हुए ॥15॥ जो इस प्रकार की महिमा से युक्त थे तथा अनुक्रम से जिन्होंने कर्मरज को नष्ट किया था ऐसे वे भरतमुनि उस अभीष्ट स्थान मुक्तिस्थान को प्राप्त हुए कि जहाँ से फिर लौटकर आना नहीं होता ॥16॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य भरतमुनि के इस निर्मल चरित को भक्तिपूर्वक कहता-सुनता है वह अपनी आयु पर्यंत कीर्ति, यश, बल, धनवैभव और आरोग्य को प्राप्त होता है ॥17॥ यह चरित्र सर्व कथाओं का उत्तम सार है, उन्नत गुणों से युक्त है और उज्ज्वल है। हे भव्यजनो ! इसे तुम सब ध्यान से सुनो जिससे शीघ्र ही सूर्य के तेज को जीतने वाले हो सको ॥18॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में भरत के निर्वाण का कथन करने वाला सतासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥87॥

## राज्याभिषेक

अठासीवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अपने शरीर में भी स्पृहा नहीं रखने वाले जो बड़े-बड़े वीर राजा भरत के साथ दीक्षा को प्राप्त हुए थे तथा अत्यंत दुर्लभ मार्ग को प्राप्त हो जिन्होंने परमात्म पद प्राप्त किया था ऐसे उन राजाओं में से कुछ के नाम कहता हूँ सो सुनो ॥1-2॥ जिसके समस्त साध्य पदार्थ सिद्ध हो गये थे ऐसा सिद्धार्थ, रति को देने वाला रतिवर्द्धन, मेघरथ, जांबूनद, शल्य, शशांकपाद् (चंद्रकिरण), विरस, नंदन, नंद, आनंद, सुमति, सुधी, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्यार, जनवल्लभ, इंद्रध्वज, श्रुतधर, सुचंद्र, पृथिवीधर, अलक, सुमति, क्रोध, कुंदर, सत्ववान, हरि, सुमित्र, धर्ममित्राय, पूर्णचंद्र, प्रभाकर, नघुष, सुंदन, शांति और प्रियधर्म आदि ॥3-6॥ ये सभी राजा विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे, सदाचार में तत्पर थे, हजार से अधिक संख्या के धारक थे और संसार में इनकी चेष्टाएँ प्रसिद्ध थीं ॥7॥ ये सब हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक, मूंगा, सोना, मोती, अंतःपुर और राज्य को जीर्ण-तृण के समान छोड़कर महाव्रत के धारी हुए थे। सभी शांतचित्त एवं नाना ऋद्धियों से युक्त थे और अपने-अपने ध्यान के अनुरूप यथायोग्य पद को प्राप्त हुए थे ॥8-9॥
भरत चक्रवर्ती के समान चेष्टाओं के धारक भरत के दीक्षा ले लेने पर उसके गुणों का स्मरण करने वाले लक्ष्मण अपने आपको सूना मानने लगे ॥10॥ यद्यपि उनका चित्त शोक से आकुलित हो रहा था, वे परम विषाद को प्राप्त थे, उनके मुख से सू-सू शब्द निकल रहा था, जिनके नेत्र रूपी नील-कमलों की कांति म्लान हो गई थी और उनका शरीर विराधित की भुजारूपी खंभों के आश्रय स्थित था तथापि वे लक्ष्मी से देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे बोले कि ॥11-12॥ गुणरूपी आभूषणों को धारण करने वाला वह भरत इस समय कहाँ है ? जिसने तरुण होने पर भी शरीर से प्रीति छोड़ दी है ॥13॥इष्ट बंधुजनों को तथा देवों के समान राज्य को छोड़कर सिद्ध होने की इच्छा रखता हुआ वह अत्यंत कठिन जैनधर्म को कैसे धारण कर गया ?॥14॥
तदनंतर समस्त सभा को आह्लादित करते हुए विधि-विधान के वेत्ता राम ने कहा कि वह भरत परम धन्य तथा अत्यंत महान् है॥15। एक उसी की बुद्धि शुद्ध है, और उसी का जन्म सार्थक है कि जो विषमिश्रित अन्न के समान राज्य का त्याग कर दीक्षा को प्राप्त हुआ है॥16॥

जिसके गुणों की खान का वर्णन करने के लिए इंद्र भी समर्थ नहीं है ऐसे उस परम योगी की पूज्यता का कैसे वर्णन किया जाय ? ॥17॥ जिन्होंने भरत के गुणों का वर्णन करना प्रारब्ध किया था, ऐसे राजा मुहूर्त भर सुख-दुःख के रस से मिश्रित होते हुए स्थित थे ॥18॥ तदनंतर उद्वेग से सहित राम और लक्ष्मण जब उठ कर खड़े हुए तब बहुत भारी आश्चर्य से युक्त राजा लोग अपने अपने स्थान पर चले गये ॥16॥

अथानंतर करने योग्य कार्य में जिनका चित्त लग रहा था ऐसे राजा लोग परस्पर विचार कर पुनः राम के पास आये और नमस्कार कर प्रीतिपूर्वक निम्न वचन बोले ॥20॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! हम विद्वान् हों अथवा मूर्ख ! हम लोगों पर प्रसन्नता कीजिये । आप देवों के समान कांति को धारण करने वाले हैं अतः राज्याभिषेक की स्वीकृति दीजिये ॥21॥ हे पुरुषोत्तम ! आप हमारे नेत्रों तथा अभिषेक संबंधी सुख से भरे हुए हमारे हृदय की सफलता करो ॥22॥ यह सुन राम ने कहा कि जहाँ सात गुणों के ऐश्वर्य को धारण करने वाला राजाओं का राजा लक्ष्मण प्रतिदिन हमारे चरणों में नमस्कार करता है वहाँ हमें राज्य की क्या आवश्यकता है ? ॥23॥ इसलिए आप लोगों को मेरे विषय में इस प्रकार के विरुद्ध वचन नहीं कहना चाहिये क्योंकि इच्छानुसार कार्य करना ही तो राज्य कहलाता है ॥24॥ कहने का सार यह है कि आप लोग लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो । राम के इस प्रकार कहने पर सब लोग जयध्वनि के साथ राम का अभिनंदन कर लक्ष्मण के पास पहुंचे और नमस्कार कर राज्याभिषेक स्वीकृत करने की बात बोले । इसके उत्तर में लक्ष्मण श्रीराम के समीप आये ॥25॥ तदनंतर वर्षाऋतु के प्रारंभ में एकत्रित घनघटा के समान जिनका विशाल शब्द था तथा जिनके प्रारंभ में शंखों के शब्द हो रहे थे ऐसी भेरियाँ बजाई गई॥26॥दुंदुभि, ढक्का, झालर, और उत्तमोत्तम सूर्य, बाँसुरी आदि के शब्दों से सहित उन शब्द छोड़ रहे थे॥27॥मंगलमय सुंदर गीत, और नाना प्रकार के मनोहर नृत्य उत्तम आनंद प्रदान कर रहे थे ॥28॥ इस प्रकार उस महोत्सव के होने पर परम विभूति से युक्त राम और लक्ष्मण साथ ही साथ अभिषेक के आसन पर आरूढ हुए ॥26॥ तत्पश्चात् जिनके मुख, कमलों से युक्त थे ऐसे चाँदी सुवर्ण तथा नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित कलशों के द्वारा विधिपूर्वक उनका अभिषेक हुआ ॥30॥दोनों ही भाई मुकुट, अंगद, केयूर, हार और कुंडलों से विभूषित किये गये। दोनों ही दिव्य मालाओं और वस्त्रों से संपन्न तथा उत्तमोत्तम विलेपन से चर्चित किये गये ॥3॥ जिनके हाथ में हलायुध विद्यमान है ऐसे श्रीराम और जिनके हाथ में चक्ररत्न विद्यमान है ऐसे लक्ष्मण की जय हो इस प्रकार जय-जयकार के द्वारा विद्याधरों ने दोनों का अभिनंदन किया ॥32॥ इस प्रकार उन दोनों राजाधिराजों का महोत्सव कर विद्याधर राजाओं ने स्वामिनी सीतादेवी का जाकर अभिषेक किया ॥33॥वह सीतादेवी पहले से ही महा सौभाग्य से संपन्न थी फिर उस समय अभिषेक होने से विशेष कर सब देवियों में प्रधान हो गई थी ॥34॥ तदनंतर जय-जयकार से सीता का अभिनंदन कर उन्होंने बड़े वैभव के साथ विशल्या का अभिषेक किया। उसका वह अभिषेक चक्रवर्ती की पट्ट राज्ञी के विभुत्व को प्रकट करने वाला था ॥35॥ जो विशल्या प्राणदान देने से लक्ष्मण की भी स्वामिनी थी उसका अभिषेक केवल मर्यादा मात्र के लिए हुआ था **अर्थ**ात् वह स्वामिनी तो पहले से ही थी उसका अभिषेक केवल नियोग मात्र था ॥36॥ अथानंतर हे तीन खंड के अधिपति लक्ष्मण की सुंदरि ! तुम्हारी जय हो इस प्रकार के जय-जयकार से उसका अभिनंदन कर सब राजा लोग सुख से स्थित हुए ॥37॥

तदनंतर श्रीराम ने विभीषण के लिए त्रिकूटाचल के शिखर का, वानरवंशियों के राजा सुग्रीव को किष्किंध पर्वत का, हनूमान को श्रीपर्वत का, राजा विराधित के लिए उसकी वंश परंपरा से सेवित श्रीपुर नगर का और नल तथा नील के लिए महासागर की तरंगों से चुंबित अनेक कौतुकों को धारण करने वाले, किष्किंधपुर का विशाल साम्राज्य दिया ॥38-40॥ भामंडल के लिए विजया पर्वत के दक्षिण में स्थित रथनूपुर नगर नामक प्रसिद्ध स्थान में उग्र विद्याधरों को नम्रीभूत करने वाला राज्य दिया ॥41॥ रत्नजटी को देवोपगीत नगर का राजा बनाया और शेष लोग भी यथायोग्य देशों के स्वामी किये गये ॥42॥

इस प्रकार जो अपने-अपने पुण्योदय के योग्य चिरस्थायी राज्य को प्राप्त हुए थे तथा रामचंद्रजी की अनुमति से जिन्हें अनेक हर्ष के कारण उपलब्ध थे ऐसे वे सब देदीप्यमान राजा अपने-अपने स्थानों में स्थित हुए ॥43॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य जगत् में प्रसिद्ध पुण्य के प्रभाव का फल जानकर धर्म में प्रीति करते हैं वे सूर्य की प्रभा को भी कृश कर देते हैं ॥44॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में राज्याभिषेक का वर्णन करने वाला तथा अन्य राजाओं के विभाग को दिखलाने वाला अठासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥88॥

## मधुसुंदर का वध

नवासीवां पर्व

कथा :

अथानंतर अच्छी तरह प्रीति को धारण करने वाले राम और लक्ष्मण ने शत्रुघ्न से कहा कि जो देश तुझे इष्ट हो उसे स्वीकृत कर ॥1॥ क्या तू अयोध्या का आधा भाग लेना चाहता है ? या उत्तम पोदनपुर को ग्रहण करना चाहता है ? या राजगृह नगर चाहता है अथवा मनोहर पौंड्र सुंदर नगर की इच्छा करता है ? ॥2॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मण ने उस तेजस्वी के लिए सैकड़ों राजधानियाँ बताई पर वे उसके मन में स्थान नहीं पा सकी ॥3॥ तदनंतर जब शत्रुघ्न ने मथुरा की याचना की तब राम ने उससे कहा कि मथुरा का स्वामी मधु नाम का शत्रु है यह क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है ? ॥4॥ वह मधु रावण का जमाई है, अनेक युद्धों से सुशोभित है, और चमरेंद्र ने उसके लिए कभी व्यर्थ नहीं जाने वाला वह शूल रत्न दिया है, कि जो देवों के द्वारा भी दुर्निवार है, जो ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान अत्यंत दुःसह है, और जो हजारों के प्राण हरकर पुनः उसके हाथ में आ जाता है ॥5-6॥ जिसके लिए मंत्रणा करते हुए हम लोग चिंतातुर हो सारी रात निद्रा को नहीं प्राप्त होते हैं॥7। जिस प्रकार सूर्य उदित होता हुआ ही समस्त लोक को परमप्रकाश प्राप्त कराता है उसी प्रकार जिसने उत्पन्न होते ही विशाल हरिवंश को परमप्रकाश प्राप्त कराया था ॥8॥ और जिसका लवणार्णव नाम का पुत्र विद्याधरों के द्वारा भी दुःसाध्य है उस शूरवीर को जीतने के लिए तू किस प्रकार समर्थ हो सकेगा ? ॥9॥

तदनंतर शत्रुघ्न ने कहा कि इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिये मैं उससे स्वयं ले लूँगा ॥10॥ यदि मैं युद्ध में मधु को मधु के छत्ते के समान नहीं तोड़ डालूँ तो मैं पिता दशरथ से अहंकार नहीं धारण करूँ **अर्थ**ात् उनके पुत्र होने का गर्व छोड़ दूं ॥11॥ जिस प्रकार अष्टापद सिंहों के समूह को नष्ट कर देता है उसी प्रकार यदि मैं उसके बल को चूर्ण नहीं कर दूं तो आपका भाई नहीं होऊँ ॥12॥ आपका आशीर्वाद ही जिसकी रक्षा कर रहा है ऐसा मैं यदि उस शत्रु को दीर्घ निद्रा नहीं प्राप्त करा दूं तो मैं सुप्रजा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ नहीं कहलाऊँ॥13॥ इस प्रकार उत्तम तेज का धारक शत्रुघ्न जब पूर्वोक्त प्रतिज्ञा को प्राप्त हुआ तब विद्याधर राजा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए ॥14॥ तदनंतर वहाँ जाने के लिए उद्यत शत्रुघ्न को सामने से दूर हटाकर श्रीराम ने कहा कि हे धीर ! मैं तुझसे याचना करता हूँ तू मुझे एक दक्षिणा दे ॥15॥ यह सुन शत्रुघ्न ने कहा कि असाधारण दाता तो आप ही हैं सो आप ही जब याचना कर रहे हैं तब मेरे लिए इससे बढ़कर अन्य प्रशंसनीय क्या होगा ? ॥16॥ आप तो मेरे प्राणों के भी स्वामी हैं फिर अन्य वस्तु की क्या कथा है ? एक युद्ध के विघ्न को छोड़कर कहिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥17॥

तदनंतर राम ने कुछ ध्यान कर उससे कहा कि हे वत्स ! मेरे कहने से तू एक बात मान ले । वह यह कि जब मधु शूल रत्न से रहित हो तभी तू अवसर पाकर उसे क्षोभित करना; अन्य समय नहीं ॥18॥ तत्पश्चात् 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कहकर तथा सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार और उनकी पूजा कर भोजनोपरांत शत्रुघ्न सुख से बैठी हुई माता के पास आकर तथा प्रणाम कर पूछने लगा ॥16॥ रानी सुप्रजा ने पुत्र को देखकर उसका मस्तक सूंघा और उसके बाद कहा कि हे पुत्र ! तू तीक्ष्ण बाणों के द्वारा शत्रु समूह को जीते ॥20॥ वीरप्रसविनी माता ने पुत्र को अर्धासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर ! तुझे युद्ध में शत्रुओं को पीठ नहीं दिखाना चाहिए ॥21॥ हे पुत्र ! तुझे युद्ध से विजयी हो लौटा देखकर मैं सुवर्ण कमलों से जिनेंद्र भगवान् की परम पूजा करूँगी॥22॥ जो तीनों लोकों के लिए मंगल स्वरूप हैं, तथा सुर और असुर जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे वीतराग जिनेंद्र तेरे लिए मंगल प्रदान करें ॥23॥ जिन्होंने संसार के कारण अत्यंत दुर्जय मोह को जीत लिया है ऐसे अर्हंत भगवान् तेरे लिए मंगल स्वरूप हों ॥24॥ जो तीन काल संबंधी चतुर्गति के विधान का निरूपण करते हैं ऐसे स्वयंबुद्ध जिनेंद्र भगवान् तेरे लिए शत्रु के जीतने में बुद्धि प्रदान करें॥25॥ जो अपने तेज से समस्त लोकालोक को हाथ पर रक्खे हुए आमलक के समान देखते हैं ऐसे केवलज्ञानी तुम्हारे लिए मंगल स्वरूप हों ॥26॥ जो आठ प्रकार के कर्मों से रहित हो त्रिलोक शिखर पर विद्यमान हैं ऐसे सिद्धि के करने वाले सिद्ध परमेष्ठी, हे वत्स ! तेरे लिए मंगल स्वरूप हो ॥27॥ जो कमल के समान निर्लिप्त, सूर्य के समान तेजस्वी, चंद्रमा के समान शांतिदायक, पृथिवी के समान निश्चल, सुमेरु के समान उन्नत उदार, समुद्र के समान गंभीर और आकाश के समान निःसंग हैं तथा परम आधार स्वरूप हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तेरे लिए मंगलरूप हो ॥2॥ जो निज और पर शासन के जानने वाले हैं तथा जो अपने अनुगामी जनों को सदा उपदेश करते हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन् ! तेरे लिए मंगल रूप हो ॥26॥ और जो बारह प्रकार के तप के द्वारा मोक्ष सिद्ध करते हैं निर्वाण प्राप्त करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र ! तेरे लिए मंगल स्वरूप हों ॥30॥ इस प्रकार विघ्नों को नष्ट करने वाले दिव्य मंगल स्वरूप आशीर्वाद को स्वीकृत कर तथा माता को प्रणाम कर

शत्रुघ्न घर से बाहर चला गया ॥31॥
सुवर्णमयी मालाओं से युक्त महागज पर बैठा शत्रुघ्न मेघ पृष्ठ पर स्थित पूर्ण चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहा था ॥32॥ नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ सैकड़ों राजाओं से घिरा हुआ वह शत्रुघ्न, देवों से घिरे इंद्र के समान सुशोभित हो रहा था ॥33॥ अत्यधिक प्रीति को धारण करने वाले भाई राम और लक्ष्मण तीन पड़ाव तक उसके साथ गये थे । तदनंतर उसने कहा कि हे पूज्य ! आप लौट जाइये । अब मैं निरपेक्ष हो शीघ्र ही आगे जाता हूँ ॥34॥ उसके लिए लक्ष्मण ने सागरावर्त नाम का धनुषरत्न और वायु के समान वेगशाली अग्निमुख बाण समर्पित किये ॥35॥ तत्पश्चात् अपनी समानता रखने वाले कृतांतवक्त्र को सेनापति बनाकर रामचंद्रजी चिंता युक्त होते हुए लक्ष्मण के साथ वापिस लौट गये ॥36॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! बड़ी भारी सेना अथवा अत्यधिक पराक्रम से युक्त वीर शत्रुघ्न ने मधु राजा के द्वारा पालित मथुरा की ओर प्रयाण किया ॥37॥ क्रम-क्रम से पुण्यभागा नदी का तट पाकर उसने दीर्घ मार्ग को पार करने वाली अपनी सेना संभ्रम सहित ठहरा दी ॥38॥
वहाँ जिन्होंने समस्त क्रिया पूर्ण की थी, जिनका श्रम दूर हो गया था और जिनकी बुद्धि अत्यंत सूक्ष्म थी ऐसे मंत्रियों के समूह ने संशयारूढ़ हो परस्पर इस प्रकार विचार किया ॥36॥ कि अहो ! मधु के पराजय की आकांक्षा करने वाली इस बालक की बुद्धि तो देखो जो नीतिरहित हो केवल अभिमान से ही युद्ध के लिए प्रवृत्त हुआ है ॥40॥ जो विद्याधरों के द्वारा भी दुःसाध्य था ऐसा महाशक्तिशाली मांधाता जिसके द्वारा पहले युद्ध में जीता गया था वह मधु इस बालक के द्वारा कैसे जीता जा सकेगा ? ॥41॥ जिसमें चलते हुए पैदल सैनिक रूपी ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं तथा जो शस्त्ररूपी मगरमच्छों से व्याप्त है ऐसे मधुरूपी सागर को यह भुजाओं से कैसे तैरना चाहता है ? ॥42॥ जो पैदल सैनिक रूपी बड़े-बड़े वृक्षों से युक्त तथा मदोन्मत्त हाथियों से भयंकर है ऐसे मधुरूपी वन में प्रवेश कर कौन पुरुष जीवित निकलता है ? ॥43॥
इस प्रकार मंत्रियों का कहा सुनकर कृतांतवक्त्र सेनापति ने कहा कि तुम लोग अभिमान को छोड़कर इस तरह भयभीत क्यों हो रहे हो ? ॥44॥ यद्यपि मधु, अमोघ शूल के कारण गर्व पर आरूढ है-अहंकार कर रहा है तथापि शत्रुघ्न से मारने के लिए समर्थ है॥45॥ जिसके मद की धारा झर रही है ऐसा बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूंड से वृक्षों को गिरा देता है तथापि वह सिंह के द्वारा मारा जाता है॥46॥ यतश्च शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रताप से सहित है, धैर्यवान है, बलवान् है, बुद्धिमान् है, और उत्तम सहायकों से युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रु को नष्ट करने वाला होगा ॥47॥
अथानंतर मंत्रिजनों के आदेश से जो गुप्तचर मथुरा नगरी गये थे उन्होंने लौटकर विधिपूर्वक यह समाचार कहा कि हे देव ! सुनिये, यहाँ से उत्तर दिशा में मथुरा नगरी है। वहाँ नगर के बाहर राजलोक से घिरा हुआ एक अत्यंत सुंदर उद्यान है॥48-46॥ सो जिस प्रकार देवकुरु के मध्य में इच्छाओं को पूर्ण करने वाला कुबेरच्छंद नाम का विशाल उपवन सुशोभित है उसी प्रकार वहाँ वह उद्यान सुशोभित है । ॥50॥ अपनी जयंती नामक महादेवी के साथ राजा मधु इसी उद्यान में निवास कर रहा है। जिस प्रकार हथिनी के वश में हुआ हाथी बंधन में पड़ जाता है उसी प्रकार राजा मधु भी महादेवी के वश में हुआ बंधन में पड़ा है ॥51॥ वह राजा अत्यंत कामी है, उसने अन्य सब काम छोड़ दिये हैं वह महा अभिमानी है तथा प्रमाद के वशीभूत है। उसे उद्यान में रहते हुए आज छठवाँ दिन है॥52॥ जिसकी बुद्धि काम के वशीभूत है ऐसा वह मधु राजा, न तो तुम्हारी प्रतिज्ञा को जानता है और न तुम्हारे आगमन का ही उसे पता है। जिस प्रकार वैद्य किसी रोगी की उपेक्षा कर देते हैं उसी प्रकार मोह की प्रबलता से विद्वानों ने भी उसकी उपेक्षा कर दी है ॥53॥ यदि इस समय मथुरा पर अधिकार नहीं किया जाता है तो फिर वह मधुरूपी सागर अन्य पुरुषों की सेनारूपी नदियों के प्रवाह से दुःसह हो जायगा उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥54॥ गुप्तचरों के यह वचन सुनकर क्रम के जानने में निपुण शत्रुघ्न एक लाख घोड़ा लेकर मथुरा की ओर चला ॥55॥
तदनंतर अर्धरात्रि व्यतीत होने पर जब सब लोग आलस्य में निमग्न थे, तब महान ऐश्वर्य को प्राप्त हुए शत्रुघ्न ने लौटकर मथुरा के द्वार में प्रवेश किया ॥56॥ वह शत्रुघ्न योगी के समान था, द्वार कर्मों के समूह के समान चूर चूर हो गया था, और अत्यंत मनोहर मथुरा नगरी सिद्धभूमि के समान थी ॥57॥ 'राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न की जय हो' इस प्रकार वंदीजनों के मुखों से बड़ा भारी शब्द उठ रहा था ॥58॥
अथानंतर जिस प्रकार लंका में अंगद के पहुंचने पर लंका के निवासी लोग भय से क्षोभ को प्राप्त हुए थे उसी प्रकार नगरी को शत्रु के द्वारा आक्रांत जान मथुरावासी लोग भय से क्षोभ को प्राप्त हो गये ॥59॥ भय के कारण जिनके नेत्र चंचल हो रहे थे तथा जो आकुलता को

प्राप्त थीं ऐसी स्त्रियों के गर्भ उनके हृदय के साथ-साथ अत्यंत विचलित हो गये ॥60॥ शब्द की प्रेरणा होने पर जो जाग उठे थे ऐसे निर्भय शूर-वीर सिंहों के समान सहसा उठ खड़े हुए ॥61॥ तत्पश्चात् अत्यंत प्रबल पराक्रम को धारण करने वाला शत्रुघ्न, शब्दमात्र से ही शत्रु समूह को नष्ट कर राजा मधु के घर में प्रविष्ट हुआ॥62॥ वहाँ वह अतिशय प्रतापी शत्रुघ्न दिव्य शस्त्रों से व्याप्त आयुधशाला की रक्षा करता हुआ स्थित था। वह प्रसन्न था तथा यथायोग्य अभ्युदय को प्राप्त था ॥63॥ वह मधुर तथा मनोज्ञ वाणी के द्वारा सबको सांत्वना प्राप्त कराता था इसलिए सबने भय का परित्याग किया था ॥64॥

तदनंतर शत्रुघ्न को मथुरा में प्रविष्ट जानकर वह महाबलवान् मधुसुंदर रावण के समान क्रोधवश उद्यान से बाहर निकला ॥65॥ उस समय जिस प्रकार निर्ग्रंथ मुनि के द्वारा रक्षित आत्मा में मोह प्रवेश करने के लिए समर्थ नहीं है उसी प्रकार शत्रुघ्न के द्वारा रक्षित अपने स्थान में राजा मधु प्रवेश करने के लिए समर्थ नहीं हुआ ॥66॥ यद्यपि मधु नाना उपाय करने पर भी मथुरा में प्रवेश को नहीं पा रहा था, और शूल से रहित था तथापि वह अभिमानी होने के कारण शत्रुघ्न से संधि की प्रार्थना नहीं करता था॥67॥ तत्पश्चात् अहंकार से उत्कट शत्रु सेना को देखने के लिए असमर्थ हुए शत्रुघ्न के घुड़सवार सैनिक अपनी सेना से बाहर निकले ॥68॥ वहाँ युद्ध प्रारंभ होते-होते शत्रुघ्न की समस्त सेना आ पहुँची और दोनों ही पक्ष की सेनारूपी सागरों के बीच संयोग हो गया **अर्थ**ात् दोनों ही सेनाओं में मुठभेड़ शुरू हुई ॥69॥ उस समय शक्ति से संपन्न तथा नाना प्रकार के शस्त्र धारण करने वाले रथ हाथी तथा घोड़ों के सवार एवं पैदल सैनिक, वेगशाली रथ, हाथी तथा घोड़ों के सवारों एवं पैदल सैनिकों के साथ भिड़ गये ॥70॥

शत्रु सेना के भयंकर शब्द करने वाले दर्प को सहन नहीं करता हुआ कृतांतवक्त्र बड़े वेग से शत्रु की सेना में जा घुसा॥71॥ सो जिस प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र में इंद्र विना किसी रोक-टोक के क्रीड़ा करता है उसी प्रकार वह कृतांतवक्त्र भी विना किसी रोक-टोक के युद्ध में क्रीड़ा करने लगा ॥72॥ तदनंतर जिस प्रकार मेघ, जल के द्वारा महापर्वत को आच्छादित करता है उसी प्रकार मधुसुंदर के पुत्र लवणार्णव ने, कृतांतवक्त्र का सामना कर उसे बाणों से आच्छादित किया॥73॥ इधर कृतांतवक्त्र ने भी, कान तक खींचे हुए सर्प तुल्य बाणों के द्वारा उसके बाण काट डाले और उनसे पृथिवी तथा आकाश को व्याप्त कर दिया ॥74॥ सिंहों के समान बल से उत्कट दोनों योद्धा परस्पर एक दूसरे के रथ तोड़कर हाथी की पीठ पर आरूढ़ हो क्रोध सहित युद्ध करने लगे॥75॥ प्रथम ही लवणार्णव ने कृतांतवक्त्र के वक्षःस्थल पर बाण से प्रहार किया सो उसके उत्तर में कृतांतवक्त्र ने भी बाणों तथा शस्त्रों के प्रहार से शत्रु और कवच को अंतर से रहित कर दिया **अर्थ**ात् शत्रु का कवच तोड़ डाला॥76॥ तदनंतर क्रोध से जिसके नेत्रों की कांति देदीप्यमान हो रही थी ऐसे लवणार्णव ने तोमर उठाकर कृतांतवक्त्र पर पुनः प्रहार किया ॥77॥ जो अपने रुधिर के निषेक से युक्त थे तथा महाक्रोधपूर्वक जो भयंकर युद्ध कर रहे थे ऐसे दोनों वीर फूले हुए पलाश वृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे ॥78॥ उन दोनों के बीच, अपनी-अपनी सेना के हर्ष विषाद करने में उत्कट गदा खड्ग और चक्र नामक शस्त्रों की भयंकर वर्षा हो रही थी॥79॥ तदनंतर चिरकाल तक युद्ध करने के बाद जिसके वक्षःस्थल पर शक्ति नामक शस्त्र से प्रहार किया गया था ऐसा लवणार्णव पृथिवी पर इस प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार कि पुण्य क्षय होने से कोई देव पृथिवी पर आ पड़ता है॥80॥

रणाग्र भाग में पुत्र को गिरा देख मधु कृतांतवक्त्र को लक्ष्य कर दौड़ा परंतु शत्रुघ्न ने उसे बीच में धर ललकारा॥1॥ जो दुःख से सहन करने योग्य शोक और क्रोध के वशीभूत था ऐसा मधुरूपी प्रवाह शत्रुघ्नरूपी पर्वत से रुककर समीप में वृद्धि को प्राप्त हुआ॥2॥ आशीविष सर्प के समान उसकी दृष्टि को देखने के लिए असमर्थ हुई शत्रुघ्न की सेना उस प्रकार भाग उठी जिस प्रकार कि तीक्ष्ण वायु से सूखे पत्तों का समूह भाग उठता है॥83॥ तदनंतर शत्रुघ्न को उसके सामने जाते देख जो अभिमानी योद्धा थे वे पुनः लौट आये ॥84॥ सो ठीक ही है क्योंकि अनुगामी-सैनिक भय से तभी तक पराजय को प्राप्त होते हैं जब तक कि वे सामने प्रसन्नमुख स्वामी को नहीं देख लेते हैं ॥85॥ अथानंतर जो उत्तम रथ पर आरूढ़ हुआ दिव्य धनुष को धारण कर रहा था, जिसका वक्षःस्थल हार से सुशोभित था, जो शिर पर मुकुट धारण किये हुए था, जिसके कुंडल हिल रहे थे, जो शरत् ऋतु के सूर्य के समान देदीप्यमान था, जिसकी चाल को कोई रोक नहीं सकता था, जो सब प्रकार से समर्थ था, और अत्यंत तीक्ष्ण क्रोध से युक्त था ऐसा शत्रुघ्न शत्रु के सामने जा रहा था ॥86-87॥ जिस प्रकार दावानल, सूखे पत्तों की राशि को क्षण भर में जला देता है उसी प्रकार शत्रुओं को नष्ट करने वाला वह शत्रुघ्न सैकड़ों योद्धाओं को क्षण भर में जला देता था॥88॥ जिस प्रकार जिनशासन में निपुण विद्वान के सामने अन्य मत से दूषित मनुष्य नहीं ठहर पाता है उसी प्रकार कोई भी वीर युद्ध में उसके आगे नहीं ठहर पाता था ॥89॥ जो कोई भी मानी मनुष्य, उसके साथ युद्ध करने की इच्छा करता था वह सिंह

के आगे हाथी के समान क्षणभर में विनाश को प्राप्त हो जाता था ॥90॥ जो उन्मत्त के समान अत्यंत आकुल थी तथा जो अधिकांश घायल होकर गिरे हुए योद्धाओं से प्रचुर थी ऐसी राजा मधु की सेना मधु की शरण में पहुँची ॥91॥

अथानंतर मधु ने वेग से जाते हुए शत्रुघ्न की ध्वजा काट डाली और शत्रुघ्न ने भी तुरा के समान तीक्ष्ण बाणों से उसके रथ और घोड़े छेद दिये ॥92॥ तदनंतर जिसका चित्त अत्यंत संभ्रांत था, और जिसका शरीर क्रोध से प्रज्वलित हो रहा था ऐसा मधु पर्वत के समान विशाल गजराज पर आरूढ़ होकर निकला ॥93॥ सो जिस प्रकार महामेघ सूर्य के बिंब को आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार मधु भी निरंतर छोड़े हुए बाणों से शत्रुघ्न को आच्छादित करने के लिए उद्यत हुआ ॥94॥ इधर चतुर शत्रुघ्न ने भी उसके बाण और कसे हुए कवच को छेदकर रण के पाहुने का जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा पुष्कलता के साथ उसका सत्कार किया **अर्थ**ात् खूब खबर ली ॥95॥

अथानंतर जो अपने आपको शूल नामक शस्त्र से रहित जानकर प्रतिबोध को प्राप्त हुआ था तथा पुत्र की मृत्यु का महाशोक जिसे पीड़ित कर रहा था ऐसे मधु ने शत्रु को दुर्जेय देख कर विचार किया कि अब मेरा अंत होने वाला है। भाग्य की बात कि उसी समय उसके प्रबल कर्म का उदय क्षीण हो गया जिससे उसने बड़ी धीरता और पश्चात्ताप के साथ दिगंबर मुनियों के वचन का स्मरण किया ॥96-97॥ वह विचार करने लगा कि यह समस्त आरंभ क्षणभंगुर तथा दुःख देने वाला है । इस संसार में एक वही कार्य प्रशंसा योग्य है जो धर्म का कारण है ॥98॥ जो पुण्यात्मा प्राणी मनुष्य जन्म पाकर धर्म में बुद्धि नहीं लगाता है वह यथार्थ में मोह कर्म के द्वारा ठगा गया है ॥66 पुनर्जन्म अवश्य ही होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापी ने उस समय अपना हित नहीं किया जिस समय कि काल अपने आधीन था अतः प्रमाद करने वाले मुझ मूर्ख को धिक्कार है ॥100॥ मैं पापी जब स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यों नहीं उत्पन्न हुई ? अब जब कि शत्रु मुझे अपने सामने किये हुए है तब मैं अभागा क्या करूँ ? ॥101॥ जब भवन जलने लगता है तब कुआं खुदवाने के प्रति आदर कैसा? और जिसे साँप ने डस लिया है उसे मंत्र सिद्ध करने का समय क्या है ? **अर्थ**ात् ये सब कार्य तो पहले से करने के योग्य होते हैं॥102॥ इस समय तो सब प्रकार से यही उचित जान पड़ता है कि मैं निराकुल हो मन का शुभ समाधान करूं क्योंकि वही आत्महित का कारण है ॥103॥ अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचों परमेष्ठियों के लिए मन, वचन काय से बार-बार नमस्कार हो ॥104॥ अर्हंत, सिद्ध, साधु और केवली भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म ये चारों पदार्थ मेरे लिए सदा मंगल स्वरूप हैं॥105॥ अढाई द्वीप संबंधी पंद्रह कर्मभूमियों में जितने अर्हंत हैं मैं उन सबको मन वचन काय से नमस्कार करता हूँ ॥106॥ मैं जीवन पर्यंत के लिए सावद्य योग का त्याग करता हूँ उसके विपरीत शुद्ध आत्मा का त्याग नहीं करता हूँ तथा प्रत्याख्यान में तत्पर होकर पूर्वोपार्जित पाप कर्म की निंदा करता हूँ ॥107॥ इस आदि रहित संसार रूप अटवी में मैंने जो पाप किया है वह मिथ्या हो । अब मैं तत्त्व विचार करने में लीन होता हूँ॥108॥ यह मैं छोड़ने योग्य समस्त कार्य को छोड़ता हूँ और ग्रहण करने योग्य कार्य को ग्रहण करता हूँ, ज्ञान दर्शन ही मेरी आत्मा है, पर पदार्थ के संयोग से होने वाले अन्य भाव सब पर-पदार्थ हैं ॥109॥ समाधिमरण के लिए यथार्थ में न तृण ही सांथरा है और न उत्तम भूमि ही सांथरा है किंतु कलुषित बुद्धि से रहित आत्मा ही उत्तम सांथरा है ॥110॥

इस प्रकार समीचीन ध्यान पर आरूढ़ हो उसने अंतरंग तथा बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह छोड़ दिये और बाह्य में हाथी पर बैठे-बैठे ही उसने केश उखाड़कर फेंक दिये ॥111॥ यद्यपि उसके शरीर में गहरे घाव लग रहे थे, तथापि वह अत्यंत दुर्धर धैर्य को धारण कर रहा था। उसने शरीर आदि की ममता छोड़ दी थी और अत्यंत विशुद्ध बुद्धि धारण की थी ॥112॥

जब शत्रुघ्न ने यह हाल देखा तब उसने आकर उसे नमस्कार किया और कहा कि हे साधो ! मुझ पापी के लिए क्षमा कीजिए ॥113॥ उस समय जो अप्सराएँ युद्ध देखने के लिए आई थीं उन्होंने आश्चर्य से चकित हो विशुद्ध भावना से उस पर पुष्प छोड़े ॥114॥ तदनंतर समाधिमरण कर मधु क्षण मात्र में ही जिसका हृदय उत्तम सुखरूपी सागर में निमग्न था ऐसा सनत्कुमार स्वर्ग में उत्तम देव हुआ ॥115॥ इधर वीर शत्रुघ्न भी कृतकृत्य हो गया। अब उत्तम तेज के धारक उस शत्रुघ्न ने बड़ी प्रसन्नता से प्रवेश किया और जिस प्रकार हस्तिनापुर में मेघेश्वर जयकुमार रहते थे उसी प्रकार वह मथुरा में रहने लगा ॥116॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस प्रकार समाधि धारण करने वाले पुरुष जो भव धारण करते हैं उसमें उन्हें दिव्य रूप प्राप्त होता है इसलिए हे भव्य जनो ! सदा शुभ कार्य ही करो जिससे सूर्य से भी अधिक उत्कृष्ट कांति को प्राप्त हो सको ॥117॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में मधुसुंदर के वध का वर्णन करने वाला नवासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥8॥

## मथुरा पर उपसर्ग

नब्बेवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर मधु सुंदर का वह दिव्य शूल रत्न यद्यपि अमोघ था तथापि शत्रुघ्न के प्रभाव से निष्फल हो गया था, उसका तेज छूट गया था और वह अपनी विधि से च्युत हो गया था ॥1॥ अंत में वह खेद शोक और लज्जा को धारण करता हुआ निर्वेग की तरह अपने स्वामी असुरों के अधिपति चमरेंद्र के पास गया ॥2॥ शूल रत्न के द्वारा मधु के मरण का समाचार कहे जाने पर उसके सौहार्द का जिसे बार-बार स्मरण आ रहा था ऐसा चमरेंद्र खेद और शोक से पीड़ित हुआ ॥3॥ तदनंतर वेग से युक्त, अत्यंत देदीप्यमान और क्रोध से सहित वह चमरेंद्र पाताल से उठकर मथुरा जाने के लिए उद्यत हुआ ॥4॥ अथानंतर भ्रमण करते हुए गरुड़कुमार देवों के इंद्र वेणुदारी ने चमरेंद्र को देखा और देखकर उससे पूछा कि हे दैत्यराज ! तुमने कहाँ जाने की तैयारी की है ? ॥5॥ तब चमरेंद्र ने कहा कि जिसने मेरे परम मित्र मधुसुंदर को मारा है उस मनुष्य की विषमता करने के लिए यह मैं उद्यत हुआ हूँ ॥6॥ इसके उत्तर में गरुडेंद्र ने कहा कि क्या तुमने कभी विशल्या का माहात्म्य कर्ण में धारण नहीं किया नहीं सुना जिससे कि ऐसा कह रहे हो ? ॥7॥ यह सुन चमरेंद्र ने कहा कि अब अत्यंत आश्चर्य को करने वाला वह समय व्यतीत हो गया जिस समय कि विशल्या का वैसा अचिंत्य माहात्म्य था ॥8॥ जब वह कौमार व्रत से युक्त थी तभी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली थी अब इस समय तो नारायण के संयोग से वह विष रहित भुजंगी के समान हो गई है ॥6॥ जो मनुष्य नियमित आचार का पालन करते हैं, बुद्धिमान हैं तथा सब प्रकार के अतिचारों से रहित हैं उन्हीं के पूर्व पुण्य से उत्पन्न हुए प्रशंसनीय भाव अपना प्रभाव दिखाते हैं ॥10॥ अत्यधिक गर्व को धारण करने वाली विशल्या ने तभी तक विजय पाई है जब तक कि उसने काम चेष्टा को धारण करने वाला नारायण का मुख नहीं देखा था ॥11॥ व्रत का आचरण करने वाले मनुष्यों से सुर-असुर तथा पिशाच आदि तभी तक डरते हैं जब तक कि वे निश्चय रूपी तीक्ष्ण खड्ग को नहीं छोड़ देते हैं ॥12॥ जो मनुष्य मद्य मांस से निवृत्त है, सैकड़ों प्रतिपक्षियों को नष्ट करने वाले उसके अंतर को दुष्ट जीव तब तक नहीं लाँघ सकते जब तक कि इसके नियमरूपी कोट विद्यमान रहता है ॥13॥ रुद्रों में एक कालाग्नि नामक भयंकर रुद्र का नाम क्या तुमने नहीं सुना जो आसक्त होने के कारण विद्यारहित हो स्त्री के साथ ही साथ मृत्यु को प्राप्त हुआ था ॥14॥ अथवा जाओ, तुझे इससे क्या प्रयोजन ? इच्छानुसार काम करो, मैं स्वयं ही मित्र और शत्रु का कर्तव्य ज्ञात करूंगा ॥15॥

इतना कहकर अत्यंत दुष्ट चित्त को धारण करने वाला वह चमरेंद्र आकाश को लाँघकर मथुरा पहुँचा और वहाँ पहुँच कर उसने समस्त लोगों में व्याप्त बहुत भारी उत्सव देखा ॥16॥ वह विचार करने लगा कि ये मथुरा के लोग अकृतज्ञ तथा महादुष्ट हैं जो घर अथवा देश में दुःख का अवसर होने पर भी परम संतोष को प्राप्त हो रहे हैं **अर्थ**ात् खेद के समय हर्ष मना रहे हैं ॥17॥ जिसकी भुजाओं की छाया प्राप्त कर जो चिरकाल तक देवों जैसा सुख भोगते रहे वे अब उस मधु की मृत्यु से दुःखी क्यों नहीं हो रहे हैं ? ॥18॥ शूर-वीर मनुष्य कायर मनुष्यों के द्वारा सेवनीय है और पंडित-जन हजारों शूर वीरों के द्वारा सेव्य है सो कदाचित मूर्ख की तो सेवा की जा सकती है पर अकृतज्ञ मनुष्य को छोड़ देना चाहिए ॥13॥ अथवा यह सब रहें, जिसने हमारे स्नेही राजा को मारा है मैं उसके निवास स्वरूप इस समस्त देश को पूर्णरूप से क्षय प्राप्त कराता हूँ ॥20॥

इस प्रकार विचारकर महा रौद्र परिणामों के धारक चमरेंद्र ने क्रोध के भार से प्रेरित हो लोगों पर दुःसह उपसर्ग करना प्रारंभ किया ॥21॥ जिस प्रकार प्रलयकाल का दावानल विशाल वन को जलाने के लिए उद्यत होता है उसी प्रकार वह निर्दय चमरेंद्र अनेक महारोग फैलाकर लोगों को जलाने के लिए उद्यत हुआ॥22॥ जो मनुष्य जिस स्थान पर खड़ा था, बैठा था अथवा सो रहा था वह वहीं अचल हो दीर्घ निद्रा-मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥23॥

उपसर्ग देखकर कुल देवता से प्रेरित हुआ शत्रुघ्न अपनी सेना के साथ अयोध्या चला गया॥24॥ विजय प्राप्त कर महायुद्ध से लौटे हुए शूरवीर शत्रुघ्न का राम, लक्ष्मण आदि ने हर्षित हो अभिनंदन किया ॥25॥ जिसकी आशा पूर्ण हो गई थी ऐसी शत्रुघ्न की माता सुप्रजा ने जिनपूजा कर धर्मात्माओं तथा दीन-दुःखी मनुष्यों के लिए दान दिया॥26॥यद्यपि अयोध्या नगरी सुवर्णमयी महलों से अत्यंत सुंदर थी, कामधेनु के समान समस्त मनोरथों के प्रदान करने में चतुर थी और स्वर्ग जैसे भोगोपभोगों से सहित थी तथापि शत्रुघ्न कुमार का हृदय मथुरा में ही अत्यंत अनुरक्त रहता था वह, जिस प्रकार सीता के बिना राम, धैर्य को प्राप्त नहीं होते थे उसी प्रकार मथुरा के बिना धैर्य को

प्राप्त नहीं होता था॥27-28॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! प्राणियों को सुंदर वस्तुओं का समागम जब स्वप्न के समान अल्प काल के लिए होता है तब वह ग्रीष्मऋतु संबंधी सूर्य की किरणों से उत्पन्न संताप से भी कहीं अधिक संताप को उत्पन्न करता है ॥29॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में मथुरा पर उपसर्ग का वर्णन करने वाले नब्बेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ 90॥

## शत्रुघ्न के भव

एकानवेवां पर्व
कथा :
अथानंतर अद्भुत कौतुक को धारण करने वाले राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से पूछा कि हे भगवन् ! वह शत्रुघ्न किस कार्य से उसी मथुरा की याचना करता था ॥1॥ स्वर्गलोक के समान अन्य बहुत-सी राजधानियाँ हैं उनमें से केवल मथुरा के प्रति ही वीर शत्रुघ्न की प्रीति क्यों है ?॥2॥तब दिव्य ज्ञान के सागर एवं गुणरूपी नक्षत्रों के बीच चंद्रमा के समान गौतम गणधर ने कहा कि जिस कारण शत्रुघ्न की मथुरा में प्रीति थी उसे मैं कहता हूँ तू चित्त में धारण कर ॥3॥ यतश्च उसके बहुत से भव उसी मथुरा में हुए थे इसलिए उसी के प्रति वह अत्यधिक स्नेह धारण करता था ॥4॥ संसार रूपी सागर का सेवन करने वाला एक जीव कर्मस्वभाव के कारण जंबूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र की मथुरा नगरी में यमुनदेव नाम से उत्पन्न हुआ। वह स्वभाव का क्रूर था तथा धर्म से अत्यंत विमुख रहता था। मरने के बाद वह क्रम से सूकर, गधा और कौआ हुआ ॥5-6॥ फिर बकरा हुआ, तदनंतर भवन में आग लगने से मर कर लंबे-लंबे सींगों को धारण करने वाला भैंसा हुआ। यह भैंसा पानी ढोने के काम आता था ॥7॥ यह यमुनदेव का जीव छह बार तो नाना दुःखों को प्राप्त करने वाला भैंसा हुआ और पाँच बार नीच कुलों में निर्धन मनुष्य हुआ॥8॥सो ठीक ही है क्योंकि जो प्राणी मध्यम आचरण करते हैं वे आर्य मनुष्य हो कुछ-कुछ कर्मों का क्षय करते हैं॥9॥
तदनंतर वह साधुओं की सेवा में तत्पर रहने वाला कुलंधर नाम का ब्राह्मण हुआ। वह कुलंधर रूपवान तो था पर शील की आराधना से रहित था ॥10॥ एक दिन उस नगर का राजा विजय प्राप्त करने की आशा से निःशंक की तरह दूसरे देश को गया था और उसकी ललिता नाम की रानी महल में अकेली थी। एक दिन वह झरोखे पर दृष्टि डाल रही थी कि उसने संकेत करने वाले उस दुश्चेष्ट ब्राह्मण को देखा ॥ 11-12॥ क्रीड़ा करते हुए उस कुलंधर ब्राह्मण को देख कर रानी काम के बाणों से घायल हो गई जिससे उसने एक विश्वासपात्र सखी के द्वारा उस हृदयहारी को अत्यंत एकांत स्थान में बुलवाया ॥13॥ महल में जाकर वह रानी के साथ जिस समय एक आसन पर बैठा था उसी समय राजा भी कहीं से अकस्मात् आ गया और उसने उसकी वह चेष्टा देख ली ॥14॥ यद्यपि मायाचार में प्रवीण रानी ने जोर से रोदन करते हुए कहा कि यह वंदी जन है तथापि राजा ने उसका विश्वास नहीं किया और योद्धाओं ने उस भयभीत ब्राह्मण को पकड़ लिया ॥15॥
तदनंतर आठों अंगों का निग्रह करने के लिए वह कुलंधर विप्र नगरी के बाहर ले जाया गया । वहाँ जिनकी इसने कई बार सेवा की थी ऐसे कल्याण नामक साधु ने इसे देखा और देखकर कहा कि यदि तू दीक्षा ले ले तो तुझे छुड़ाता हूँ । कुलंधर ने दीक्षा लेना स्वीकृत कर लिया जिससे साधु ने राजा के दुष्ट मनुष्यों से उसे छुड़ाया और छुड़ाते ही वह श्रमण साधु हो गया ॥16-17॥ तदनंतर बहुत बड़ी भावना के साथ अत्यंत कष्टदायी तप तपकर वह सौधर्मस्वर्ग के ऋतुविमान का स्वामी हुआ सो ठीक ही है क्योंकि धर्म के लिए क्या कठिन है ? ॥18॥
अथानंतर मथुरा में चंद्रभद्र नाम का उदारचित्त राजा था, उसकी स्त्री का नाम धरा था और धरा के तीन भाई थे□ सूर्यदेव, सागरदेव और यमुनादेव । इन भाइयों के सिवाय उसके श्रीमुख, सन्मुख, सुमुख, इंद्रमुख, प्रभामुख, उग्रमुख, अमुख और अपरमुख ये आठ पुत्र थे । ॥ 19-20॥उसी चंद्रभद्र राजा की द्वितीय होने पर भी जो अद्वितीय□ अनुपम थी ऐसी कनकप्रभा नाम की द्वितीय पत्नी थी सो कुलंधर विप्र का जीव ऋतु-विमान से च्युत हो उसके अचल नाम का पुत्र हुआ॥21॥वह अचल कला और गुणों से समृद्ध था, सब लोगों के मन को हरने वाला था और समीचीन क्रीड़ा करने में उद्यत रहता था इसलिए देव कुमार के समान सुशोभित होता था ॥22॥
अथानंतर कोई अंक नाम का मनुष्य धर्म की अनुमोदना कर श्रावस्ती नामा नगरी में कंप नामक पुरुष की अंगिका नामक स्त्री से अप नाम का पुत्र हुआ ॥23॥कंप कपाट बनाने की आजीविका करता था **अर्थ**ात् जाति का बढ़ई था और उसका पुत्र अत्यंत अविनयी था

इसलिए उसने उसे घर से निकाल दिया था। फलस्वरूप वह भय से दुःखी होता हुआ इधर-उधर भटकता रहा ॥24॥ अथानंतर पूर्वोक्त अचलकुमार पिता का अत्यंत प्यारा था इसलिए इसकी सौतेली माता धरा के तीन भाई तथा मुखांत नाम को धारण करने वाले आठों पुत्र एकांत में मारने के लिए उसके साथ ईर्ष्या करते रहते थे। अचल की माता कनकप्रभा को उनकी इस ईर्ष्या का पता चल गया इसलिए उसने उसे कहीं बाहर भगा दिया।

एक दिन अचल तिलक नामक वन में जा रहा था कि उसके पैर में एक बड़ा भारी काँटा लग गया। काँटा लग जाने के कारण दुःख से अत्यंत दुःखदायी शब्द करता हुआ वह उसी तिलक वन में एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय लकड़ियों का भार लिये हुए अप वहाँ से निकला और उसने अचल को देखा ॥25-27॥अपने लकड़ियों का भार छोड़ छुरी से उसका काँटा निकाला । इसके बदले अचल ने उसे अपने हाथ का कड़ा देकर कहा कि यदि तू कभी किसी लोक प्रसिद्ध अचल का नाम सुने तो तुझे संशय छोड़कर उसके पास जाना चाहिए ॥28-29॥

तदनंतर अप यथायोग्य स्थान पर चला गया और राजपुत्र अचल भी दुःखी होता हुआ धैर्य से युक्त हो कौशांबी नगरी के बाह्य प्रदेश में पहुँचा ॥30॥ वहाँ कौशांबी के राजा कोशावत्स का पुत्र इंद्रदत्त, बाण चलाने के स्थान में बाण विद्या का अभ्यास कर रहा था सो उसका कलकल शब्द सुन अचल उसके पास चला गया ॥31॥ वहाँ इंद्रदत्त के साथ जो उसका विशिखाचार्य **अर्थ**ात् शस्त्र विद्या सिखाने वाला गुरु था उसे अचल ने पराजित किया था। तदनंतर जब राजा कोशावत्स को इसका पता चला तब उसने अचल का बहुत सन्मान किया और सम्मान के साथ नगरी में प्रवेश कराकर उसे अपनी इंद्रदत्ता नाम की कन्या विवाह दी ॥32॥ तदनंतर वह क्रम-क्रम से अपने प्रभाव और पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म से पहले तो उपाध्याय इस नाम से प्रसिद्ध था और उसके बाद राजा हो गया ॥33॥

तत्पश्चात् वह प्रतापी अंग आदि देशों को जीत कर मथुरा आया और उसके बाह्य स्थान में डेरे देकर सेना के साथ ठहर गया ॥34॥ यह चंद्रभद्र राजा 'पुत्र को मारने वाला है' ऐसे यथार्थ शब्द कहकर उसने उसके समस्त सामंतों को अपनी ओर फोड़ लिया॥35॥जिससे चंद्रभद्र अकेला रह गया । अंत में परम विषाद को प्राप्त होते हुए उसने संधि की इच्छा से अपने सूर्यदेव, अब्धिदेव और यमुनादेव नामक तीन साले भेजे ॥36॥ सो वे उसे देख तथा पहिचान कर लज्जित हो भय को प्राप्त हुए और धरा रानी के आठों पुत्रों के साथ-साथ सेवकों से रहित हो गये **अर्थ**ात् भय से भाग गये ॥37॥ अचल को माता के साथ मिलकर बड़ा उल्लास हुआ और जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत थे तथा जो गुणों से पूजित था ऐसा राज्य उसे प्राप्त हुआ ॥38॥

अथानंतर किसी एक समय पैर का काँटा निकालने वाला अप नटों की रंगभूमि में आया सो प्रतीहारी लोग उसे मार रहे थे । राजा अचल ने उसे देखते ही पहिचान लिया ॥39॥और अपने पास बुलाकर उसका अपरंग नाम रक्खा तथा उसकी जन्मभूमि स्वरूप श्रावस्ती नगरी उसके लिए दे दी ॥40॥ ये दोनों ही मित्र साथ-साथ ही रहते थे। परम संपदा को धारण करने वाले दोनों मित्र एक दिन क्रीड़ा करने के लिए उद्यान गये थे सो वहाँ यशःसमुद्र नामक आचार्य के दर्शन कर उनके समीप दोनों ही निर्ग्रंथ अवस्था को प्राप्त हो गये॥41॥ सम्यग्दर्शन की भावना से युक्त दोनों मुनियों ने परम संयम धारण किया और दोनों ही आयु के अंत में समाधि मरण कर स्वर्ग में देवेंद्र हुए ॥42॥ सन्मान से सुशोभित वह अचल का जीव, स्वर्ग से च्युत हो अवशिष्ट पुण्य के प्रभाव से माता सुप्रजा के नेत्रों को आनंदित करने वाला यह राजा शत्रुघ्न हुआ है ॥43॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक भवों में प्राप्ति का संबंध होने से इसकी मथुरा के प्रति परम प्रीति है ॥44॥ जिस घर अथवा वृक्ष की छाया का आश्रय लिया जाता है अथवा वहाँ एक दिन भी ठहरा जाता है उसकी उसमें प्रीति हो जाती है ॥45॥ फिर जहाँ अनेक जन्मों में बार-बार रहना पड़ता है उसका क्या कहना है ? यथार्थ में संसार में परिभ्रमण करने वाले जीवों की ऐसी ही गति होती है ॥46॥ अपरंग का जीव भी स्वर्ग से च्युत हो पुण्य शेष रहने से कृतांतवक्त्र नाम का प्रसिद्ध एवं बलवान् सेनापति हुआ है।॥47॥ इस प्रकार धर्मार्जन के प्रभाव से ये दोनों परम संपदा को प्राप्त हुए हैं सो ठीक ही है क्योंकि धर्म से रहित प्राणी किसी सुखदायक वस्तु को नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥48॥ इस प्राणी ने अनेक भवों में पाप का संचय किया है सो दुःखरूपी मल का क्षय करने वाले धर्मरूपी तीर्थ में शुद्धि को प्राप्त करना चाहिए; इसके लिए जलरूपी तीर्थ का आश्रय लेना निरर्थक है ॥46॥ इस प्रकार आचार्य परंपरा से आगत, अत्यंत आश्चर्यकारी एवं उत्कृष्ट शत्रुघ्न के इस चरित को जानकर हे विद्वज्जनो ! सदा धर्म में अनुरक्त होओ ॥50॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस परमधर्म को सुनकर जिनको उत्तम चेष्टा में प्रवृत्ति नहीं होती शुभ नेत्रों को धारण करने वाले उन लोगों के लिए उदित हुआ सूर्य भी

निरर्थक हो जाता है॥5॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में शत्रुघ्न के भवों का वर्णन करने वाला एकानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ।

## सप्तर्षियों द्वारा उपसर्ग नाश

बानवेवां पर्व

कथा :

अथानंतर किसी समय गगनगामी एवं सूर्य के समान कांति के धारक सात निर्ग्रंथ मुनि विहार करते हुए मथुरापुरी आये। उनमें से प्रथम सुरमन्यु, द्वितीय श्रीमन्यु, तृतीय श्रीनिचय, चतुर्थ सर्वसुंदर, पंचम जयवान्, षष्ठ विनयलालस और सप्तम जयमित्र नाम के धारक थे। ये सभी चारित्र से सुंदर थे **अर्थ**ात् निर्दोष चारित्र के पालक थे। राजा श्रीनंदन की धरणी नामक रानी से उत्पन्न हुए पुत्र थे, निर्दोष गुणों से जगत् में प्रसिद्ध थे तथा प्रभापुर नगर के रहने वाले थे ॥1-4॥ ये सभी, प्रीतिकर मुनिराज के केवलज्ञान के समय देवों का आगमन देख प्रतिबोध को प्राप्त हो पिता के साथ धर्म करने के लिए उद्यत हुए थे ॥5॥ वीर शिरोमणि राजा श्रीनंदन, डमरमंगल नामक एक माह के बालक को राज्य देकर अपने पुत्रों के साथ प्रीतिंकर मुनिराज के समीप दीक्षित हुए थे ॥6॥ समय पाकर श्रीनंदन राजा तो केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालय में प्रविष्ट हुए और उनके उक्त पुत्र उत्तम मुनि हो सप्तर्षि हुए ॥7॥

जहाँ परस्पर का अंतर कंदों के समूह से आवृत्त था ऐसे वर्षाकाल के समय वे सब मुनि मथुरा नगरी के समीप वटवृक्ष के नीचे वर्षायोग लेकर विराजमान हुए ॥8॥ उन मुनियों के तप के प्रभाव से चमरेंद्र के द्वारा निर्मित महामारी उस प्रकार नष्ट हो गई जिस प्रकार कि श्वसुर के द्वारा देखी हुई विट मनुष्य के पास गई नारी नष्ट हो जाती है ॥9॥ अत्यधिक मेघों से सींची गई मथुरा के देशों की उपजाऊ भूमि बिना जोते बखरे **अर्थ**ात् अनायास ही उत्पन्न होने वाले बहुत भारी धान्य के समूह से व्याप्त हो गई ॥10॥ उस समय रोग और ईतियों से छूटी शुभ मथुरा नगरी उस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार कि पिता के देखने से संतुष्ट हुई नई बहू सुशोभित होती है ॥11॥ वे सप्तर्षि नाना प्रकार के रस परित्याग आदि तथा वेला तेला आदि उपवासों के साथ अत्यंत उत्कट तप करते थे ॥12॥ वे अत्यंत दूरवर्ती आकाश को निमेष मात्र में लाँघकर विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूरवर्ती नगरों में पारणा करते थे ॥13॥ वे उत्तम मुनिराज परगृह में प्राप्त एवं हस्तरूपी पात्र में स्थित भिक्षा को केवल शरीर की स्थिरता के लिए ही भक्षण करते थे ॥14॥

अथानंतर किसी एक दिन जब कि सूर्य आकाश के मध्य में स्थित था तब महाशांति को धारण करने वाले वे धीर-वीर मुनिराज जूड़ा प्रमाण भूमि को देखते हुए अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए ॥15॥ जो शुद्ध भिक्षा ग्रहण करने के अभिप्राय से युक्त थे और जिनकी लंबी-लंबी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं ऐसे वे मुनि विधिपूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हदत्त सेठ के घर पहुँचे ॥16॥ उन मुनियों को देखकर संभ्रम से रहित अर्हदत्त सेठ इस प्रकार विचार करने लगा कि यह ऐसा वर्षाकाल कहाँ और यह मुनियों की चेष्टा कहाँ ? ॥17॥ इस नगरी के आस-पास प्राग्भार पर्वत की कंदराओं में, नदी के तट पर, वृक्ष के मूल में, शून्य घर में, जिनालय में तथा अन्य स्थानों में जहाँ कहीं जो मुनिराज स्थित हैं उत्तम चेष्टाओं को धारण करने वाले वे मुनिराज समय का खंडन कर **अर्थ**ात् वर्षायोग पूरा किये बिना इधर-उधर परिभ्रमण नहीं करते ॥18-19॥ परंतु ये मुनि आगम के अर्थ को विपरीत करने वाले हैं, ज्ञान से रहित हैं, आचार्यों से रहित हैं और आचार से भ्रष्ट हैं इसीलिए इस समय यहाँ घूम रहे हैं ॥20॥

यद्यपि वे मुनि असमय में आये थे तो भी अर्हदत्त सेठ की भक्त एवं अभिप्राय को ग्रहण करने वाली वधू ने उन्हें आहार देकर संतुष्ट किया था ॥21॥ आहार के बाद वे शुद्ध-निर्दोष प्रवृत्ति करने वाले मुनियों से व्याप्त अर्हंत भगवान् के उस मंदिर में गये जहाँ कि तीन लोक को आनंदित करने वाले श्री मुनिसुव्रत भगवान की प्रतिमा विराजमान थी ॥22॥ अथानंतर जो पृथिवी से चार अंगुल ऊपर चल रहे थे ऐसे उन ऋद्धिधारी उत्तम मुनियों को मंदिर में विद्यमान श्री द्युतिभट्टारक ने देखा ॥23॥ उन मुनियों ने उत्तम श्रद्धा के साथ पैदल चल कर ही जिन मंदिर में प्रवेश किया तथा द्युतिभट्टारक ने खड़े होकर नमस्कार करना आदि विधि से उनकी पूजा की ॥24॥ 'यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वंदना करने के लिए उद्यत हो जाते हैं।' यह जानकर द्युतिभट्टारक के शिष्यों ने उन सप्तर्षियों की निंदा का विचार किया ॥25॥ तदनंतर सम्यक् प्रकार से स्तुति करने में तत्पर वे सप्तर्षि, जिनेंद्र भगवान् की वंदना कर आकाशमार्ग से पुनः अपने स्थान को चले गये ॥26॥ जब वे आकाश में उड़े तब उन्हें चारण ऋद्धि के धारक जान कर द्युतिभट्टारक के शिष्य जो अन्य मुनि थे वे अपनी निंदा गर्हा आदि करते हुए निर्मल हृदय को प्राप्त हुए **अर्थ**ात् जो मुनि पहले उन्हें उन्मार्गगामी समझकर उनकी निंदा का विचार कर रहे थे वे ही मुनि अब

उन्हें चारण ऋद्धि के धारक जान कर अपने अज्ञान की निंदा करने लगे तथा अपने चित्त की कलुषता को उन्होंने दूर कर दिया ॥27॥ इसी बीच में अर्हद□दत्त सेठ जिन-मंदिर में आया सो द्युतिभट्टारक ने उससे कहा कि आज तुमने उत्तम मुनि देखे होंगे ? ॥28॥ वे मुनि सबके द्वारा वंदित हैं, पूजित हैं, महाधैर्यशाली हैं, एवं महाप्रतापी हैं। वे मथुरा के निवासी हैं और उन्होंने मेरे साथ वार्तालाप किया है ॥26॥ महातपश्चरण ही जिनका धन है, जो शुभ चेष्टाओं के धारक हैं, अत्यंत उदार हैं, वंदनीय हैं और आकाश में गमन करने वाले हैं ऐसे उन मुनियों के आज हमने दर्शन किये हैं॥30॥ तदनंतर द्युतिभट्टारक से साधुओं का प्रभाव सुनकर अर्हद्दत्त सेठ बहुत ही खिन्नचित्त हो पश्चात्ताप से संतप्त हो गया ॥31॥ वह विचार करने लगा कि यथार्थ **अर्थ** को नहीं समझने वाले मुझ मिथ्यादृष्टि को धिक्कार हो । मेरा अनिष्ट आचरण अयुक्त था, अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक नहीं है ॥32॥ इस समय मुझसे बढ़कर दूसरा मिथ्यादृष्टि कौन होगा जिसने उठ कर मुनियों की पूजा नहीं की तथा नमस्कार कर उन्हें आहार से संतुष्ट नहीं किया ॥33॥ जो मुनि को देखकर आसन नहीं छोड़ता है तथा देख कर उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है ॥34॥ मैं पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पाप का पात्र हूँ अथवा जिनागम की श्रद्धा से दूर रहने वाला जो कोई निंद्यतम है वह मैं हूँ ॥35॥ जब तक मैं हाथ जोड़कर उन मुनियों की वंदना नहीं कर लेता तब तक शरीर एवं मर्मस्थल में मेरा मन दाह को प्राप्त होता रहेगा ॥36॥ अहंकार से उत्पन्न हुए इस पाप का प्रायश्चित्त उन मुनियों को वंदना के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता॥37॥

अथानंतर कार्तिकी पूर्णिमा को निकटवर्ती जानकर जिसकी उत्सुकता बढ़ रही थी, जो महासम्यग्दृष्टि था, राजा के समान वैभव का धारक था, मुनियों के माहात्म्य को अच्छी तरह जानता था, तथा अपनी निंदा करने में तत्पर था ऐसा अर्हद□दत्त सेठ सप्तर्षियों की पूजा करने के लिए अपने बंधुजनों के साथ मथुरा की ओर चला ॥38-36॥ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों के समूह के साथ वह सप्तर्षियों की पूजा करने के लिए बड़ी शीघ्रता से जा रहा था ॥40॥ परम समृद्धि से युक्त एवं शुभध्यान करने में तत्पर रहने वाला वह सेठ कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन सप्तर्षियों के स्थान पर पहुँच गया ॥41॥ वहाँ उत्तम सम्यक्त्व को धारण करने वाला वह श्रेष्ठ मुनियों की वंदना कर पूर्ण प्रयत्न से पूजा की तैयारी करने के लिए उद्यत हुआ ॥42॥ प्याऊ, नाटक-गृह तथा संगीत शाला आदि से सुशोभित वह आश्रम का स्थान स्वर्ग प्रदेश के समान मनोहर हो गया ॥43॥ यह वृत्तांत सुन राजा दशरथ का चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न महातुरंग पर सवार हो सप्तर्षियों के समीप गया ॥44॥ मुनियों की परम भक्ति और पुत्र के अत्यधिक स्नेह से उसकी माता सुप्रजा भी खजाना लेकर उसके पीछे आ पहुँची ॥4॥

तदनंतर भक्त हृदय एवं हर्ष से भरे शत्रुघ्न ने नियम को पूर्ण करने वाले मुनियों को नमस्कार कर उनसे पारणा करने की प्रार्थना की ॥46॥ तब उन मुनियों में जो मुख्य मुनि थे उन्होंने कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! जो आहार मुनियों के लिए संकल्प कर बनाया जाता है उसे ग्रहण करने के लिए मुनि प्रवृत्ति नहीं करते ॥47॥ जो न स्वयं की गई है, न दूसरे से कराई गई और न मन से जिसकी अनुमोदना की गई है ऐसी भिक्षा को विधिपूर्वक ग्रहण करने वाले योगियों का तप पुष्ट होता है ॥48॥ तदनंतर शत्रुघ्न ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठो ! आप प्रार्थना करने वालों पर अत्यधिक स्नेह रखते हैं अतः हमारे ऊपर यह प्रसन्नता करने के योग्य हैं कि आप कुछ काल तक मेरी इस नगरी में और ठहरिये जिससे कि इसमें रहने वाली प्रजा को आनंददायी सुभिक्ष की प्राप्ति हो सके ॥46-50॥ आप लोगों के आने पर यह नगरी उस तरह सब ओर से समृद्ध हो गई है जिस तरह कि वर्षा के नष्ट हो जाने पर कमलिनी सब ओर से समृद्ध हो जाती है□ खिल उठती है ॥51॥ इतना कहकर श्रद्धा से भरा शत्रुघ्न चिंता करने लगा कि मैं प्रमादरहित हो विधिपूर्वक मुनियों के लिए मनवांछित आहार कब दूंगा ॥52॥

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! शत्रुघ्न को नतमस्तक देखकर उन उत्तम मुनिराज ने उसके लिए यथायोग्य काल के प्रभाव का निरूपण किया ॥53॥ उन्होंने कहा कि जब अनुक्रम से तीर्थंकरों का काल व्यतीत हो जायगा तब यहाँ धर्म-कर्म से रहित अत्यंत भयंकर समय होगा ॥54॥ दुष्ट पाखंडी लोगों के द्वारा यह परमोन्नत जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायगा जिस तरह कि धूलि के छोटे-छोटे कणों के द्वारा सूर्य का बिंब तिरोहित हो जाता है ॥55॥ उस समय ग्राम श्मशान के समान, नगर यमलोक के समान और देश क्लेश से युक्त निंदित तथा दुष्ट चेष्टाओं के करने वाले होंगे ॥56॥ यह संसार चोरों के समान कुकर्म में निरत तथा क्रूर दुष्ट पाखंडी लोगों से निरंतर व्याप्त होगा ॥57॥ यह पृथिवीतल दुष्ट तथा निर्धन गृहस्थ से व्याप्त होआ; साथ ही यहाँ हिंसा संबंधी हजारों दुःख निरंतर प्राप्त होते रहेंगे ॥58॥ पुत्र, माता-पिता के प्रति और माता-पिता पुत्रों के प्रति स्नेहरहित होंगे तथा कलिकाल के प्रकट होने पर राजा लोग चोरों के समान धन के अपहर्ता होंगे ॥59॥ कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होंगे तथापि उनके मन में पाप होगा और वे दुर्गति को प्राप्त

कराने में समर्थ कथाओं से परस्पर एक दूसरे को मोहित करते हुए क्रीड़ा करेंगे ॥60॥ हे शत्रुघ्न ! कषायबहुल समय के आने पर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जावेंगे ॥61॥ तीव्र मिथ्यात्व से युक्त मनुष्य व्रत रूप गुणों से सहित एवं दिगंबर मुद्रा के धारक मुनियों को देखकर ग्लानि करेंगे ॥62॥ अप्रशस्त को प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुहृदय लोग भय के पक्ष में उस तरह जा पड़ेंगे जिस तरह कि पतंगे अग्नि में जा पड़ते हैं ॥63॥ हँसी करने में उद्यत कितने ही मूढ मनुष्य शांतचित्त मुनियों को तिरस्कृत कर मूढ मनुष्यों के लिए आहार देवेंगे ॥64॥ इस प्रकार अनिष्ट भावना को धारण करने वाले गृहस्थ उत्तम मुनि का तिरस्कार कर तथा मोही मुनि को बुलाकर उसके लिए योग्य आहार आदि देंगे ॥65॥ जिस प्रकार शिलातल पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सींचा जाय तथापि निरर्थक होता है उसमें फल नहीं लगता है उसी प्रकार शीलरहित मनुष्यों के लिए दिया हुआ गृहस्थों का दान भी निरर्थक होता है ॥66॥ जो गृहस्थ मुनियों की अवज्ञा कर गृहस्थ के लिए आहार आदि देता है वह मूर्ख चंदन को छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करता है ॥67॥

इस प्रकार दुःषमता के कारण अधम काल को आया जान आत्मा का हित करने वाला कुछ शुभ तथा स्थायी कार्य कर ॥68॥ तू नामी पुरुष है अतः निर्ग्रंथ मुनियों को भिक्षावृत्ति देने का निश्चय कर। यही तेरी धन-संपदा का सार है ॥69॥ हे राजन् ! आगे आने वाले काल में थके हुए मुनियों के लिए भिक्षा देना अपने गृहदान के समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा इसलिए हे वत्स ! तू यह दान देकर इस समय गृहस्थ के शीलव्रत का नियम धारण कर तथा अपना जीवन सार्थक बना ॥70-71॥ मथुरा के समस्त लोग समीचीन धर्म के धारण करने में तत्पर, दया और वात्सल्य भाव से संपन्न तथा जिन शासन को भावना से युक्त हों ॥72॥ घर-घर में जिन-प्रतिमाएं स्थापित की जावें, उनकी पूजाएँ हों, अभिषेक हों और विधिपूर्वक प्रजा का पालन किया जाय ॥73॥ हे शत्रुघ्न ! इस नगरी की चारो दिशाओं में सप्तर्षियों की प्रतिमाएं स्थापित करो। उसी से सब प्रकार की शांति होगी ॥74॥ आज से लेकर जिस घर में जिन-प्रतिमा नहीं होगी उस घर को मारी उस तरह खा जायगी जिस तरह कि व्याघ्री अनाथ मृग को खा जाती है ॥7॥ जिसके घर में अँगूठा प्रमाण भी जिन-प्रतिमा होगी उसके घर में गरुड़ से डरी हुई सर्पिणी के समान मारी का प्रवेश नहीं होगा ॥76॥ तदनंतर 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार हर्ष से युक्त सुग्रीव ने कहा और उसके बाद उत्तम अभिप्राय को धारण करने वाले वे सभी साधु आकाश में उड़कर चले गये ॥77॥ अथानंतर निर्वाण क्षेत्रों की प्रदक्षिणा देकर शुभगति को धारण करने वाले वे मुनिराज सीता के घर में उतरे ॥78। सो अत्यधिक हर्ष को धारण करने वाली एवं श्रद्धा आदि गुणों से सुशोभित सीता ने उन्हें विधिपूर्वक उत्तम अन्न से पारणा कराई ॥79 ॥ जानकी के द्वारा भक्तिपूर्वक दिये हुए सर्वगुणसंपन्न अन्न को अपने हस्ततल में ग्रहणकर तथा आशीर्वाद देकर वे मुनि चले गये ॥80॥ तदनंतर शत्रुघ्न ने नगर के भीतर और बाहर सर्वत्र उपमा रहित जिनेंद्र भगवान् की प्रतिमाएं स्थापित कराई ॥81॥ और सुंदर अवयवों की धारक तथा समस्त ईतियों का निवारण करने वाली सप्तर्षियों की प्रतिमाएँ भी चारों दिशाओं में विराजमान कराई ॥82॥ उसने एक दूसरी ही नगरी की रचना कराई जो ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्ग के ऊपर ही रची गई हो। वह सब ओर से मनोहर थी, विस्तृत थी, सब प्रकार के उपद्रवों से रहित थी, तीन योजन विस्तार वाली थी, सब ओर से त्रिगुण थी, विशाल थी, मंडलाकार में स्थित थी और उत्तम तेज की धारक थी॥83-84॥ जिनकी जड़ें पाताल तक फूटी थीं ऐसी सुंदर वहाँ की भूमियाँ थीं तथा जो बड़े-बड़े वृक्षों के निवास गृह के समान जान पड़ती थीं ऐसी परिखा उसके चारों ओर सुशोभित हो रही थी ॥85॥ वहाँ के बाग-बगीचे फूलों और फलों से युक्त अत्यधिक शोभा को धारण कर रहे थे और कमल तथा कुमुदों से आच्छादित वहाँ की वापिकाएँ पक्षियों के नाद से मुखरित हो रही थीं ॥86॥ जो कैलास के शिखरों के समान थे, सुंदर-सुंदर लक्षणों से युक्त थे, तथा नेत्रों के चोर थे ऐसे वहाँ के भवन विमानों के समान सुशोभित हो रहे थे ॥87॥ वहाँ के सर्व कुटुंबी सुवर्ण अनाज तथा रत्न आदि से संपन्न थे, सम्मेद शिखर की उपमा धारण करते थे, राजाओं के समान प्रसिद्धि से युक्त तथा अत्यंत प्रशंसनीय थे ॥88॥ वहाँ के राजा देवों के समान अनुपम विभूति के धारक थे, धर्म, **अर्थ** और काम में सदा आसक्त रहते थे तथा उत्तम चेष्टाओं के करने में निपुण थे ॥89॥ इच्छानुसार उन राजाओं पर आज्ञा चलाता हुआ विशिष्ट ज्ञानी शत्रुघ्न मथुरा नगरी में उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि देवों पर आज्ञा चलाता हुआ वरुण सुशोभित होता है ॥90॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस प्रकार मथुरापुरी में सप्तर्षियों के निवास और उनके आश्चर्यकारी प्रभाव को सुनता अथवा कहता है वह शीघ्र ही चारों प्रकार के मंगल को प्राप्त होता है ॥91॥ जो मनुष्य साधुओं के समागम में सदा तत्पर रहते हैं वे सर्व मनोरथों को प्राप्त होते हैं इसीलिए हे सत्पुरुषो ! साधुओं का समागम कर सदा सूर्य के समान देदीप्यमान होओ ॥32॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में मथुरापुरी में सप्तर्षियों के निवास, दान, गुण तथा उपसर्ग के नष्ट

होने का वर्णन करने वाला बानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥92॥

## मनोरमा की प्राप्ति

तेरानवेवां पर्व

कथा :

अथानंतर विजयार्ध पर्वत की दक्षिण दिशा में रत्नपुर नाम का नगर है । वहाँ विद्याधरों का राजा रत्नरथ राज्य करता था ॥1॥ उसकी पूर्ण चंद्राननना नाम की रानी के उदर से उत्पन्न मनोरमा नाम की रूपवती पुत्री थी ॥2॥ पुत्री का नव-यौवन देख विचारवान् राजा वर के अन्वेषण की बुद्धि से परम आकुल हुआ ॥3॥ यह कन्या किस योग्य वर के लिए देवें, इस प्रकार उसने मंत्रियों के साथ मिलकर विचार किया ॥4॥ इस तरह राजा के चिंता कुल रहते हुए जब कितने ही दिन बीत गये तब किसी समय नारद आये और राजा से उन्होंने सन्मान प्राप्त किया ॥5॥

जिनकी बुद्धि समस्त लोक की चेष्टा को जानने वाली थी ऐसे नारद जब सुख से बैठ गये तब राजा ने आदर के साथ उनसे प्रकृत बात कही ॥6॥ इसके उत्तर में अवद्वार नाम के धारक नारद ने कहा कि हे राजन्! क्या आप इस युग के प्रधान पुरुष श्रीराम के भाई लक्ष्मण को नहीं जानते ? वह लक्ष्मण उत्कृष्ट लक्ष्मी को धारण करने वाला है, सुंदर लक्षणों से सहित है तथा चक्र के प्रभाव से उसने समस्त शत्रुओं को नतमस्तक कर दिया है ॥7-8॥ सो जिस प्रकार चंद्रिका कुमुदवन को आनंद देने वाली है उसी प्रकार हृदय को आनंद देने वाली यह परम सुंदरी कन्या उसके अनुरूप है ॥9॥

नारद के इस प्रकार कहने पर रत्नरथ के हरिवेग, मनोवेग तथा वायुवेग आदि अभिमानी पुत्र कुपित हो उठे ॥10॥ आत्मीय जनों के घात से उत्पन्न अत्यधिक नूतन वैर का स्मरण कर वे प्रलय काल को अग्नि के समान प्रदीप्त हो उठे तथा उनके शरीर क्रोध से काँपने लगे। उन्होंने कहा कि जिस दुष्ट को आज ही जाकर तथा शीघ्र ही बुलाकर हम लोगों को मारना चाहिए उसके लिए कन्या नहीं दी जाती है ॥ 11-12॥ इतना कहने पर राजपुत्रों की भौंहों के विकार से प्रेरित हुए किंकरों के समूह ने नारद के पैर पकड़ कर खींचना चाहा परंतु उसी समय देवर्षि नारद शीघ्र ही आकाश तल में उड़ गये और बड़े आदर के साथ अयोध्या नगरी में लक्ष्मण के समीप जा पहुँचे ॥13-14॥ पहले तो नारद ने विस्तार के साथ लक्ष्मण के लिए समस्त संसार की वार्ता सुनाई और उसके बाद मनोरमा कन्या की वार्ता विशेष रूप से बतलाई । उसी समय कौतुक के चिह्न प्रकट करते हुए नारद ने चित्रपट में अंकित वह अद्भुत कन्या दिखाई। वह कन्या नेत्र तथा हृदय को हरने वाली थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोक को सुंदरियों की शोभा को एकत्रित कर ही बनाई गई हो ॥15-16॥ उस कन्या को देखकर जिसके नेत्र मृण्मय पुतले के समान निश्चल हो गये थे ऐसा लक्ष्मण वीर होने पर भी काम के वशीभूत हो गया ॥17॥ वह विचार करने लगा कि यदि यह स्त्रीरत्न मुझे नहीं प्राप्त होता है तो मेरा यह राज्य निष्फल है तथा यह जीवन भी सूना है ॥18॥ आदर को धारण करते हुए लक्ष्मण ने नारद से कहा कि हे भगवन् ! मेरे गुणों का निरूपण करते हुए आपको उन कुमारों ने दुःखी क्यों किया ? ॥ 19॥ कार्य का विचार नहीं करने वाले उन हृदयहीन पापी क्षुद्र पुरुषों की इस प्रचंडता को मैं अभी हाल नष्ट करता हूँ ॥20॥ हे महामुने ! उन कुमारों ने जो पादप्रहार किया है सो उसकी धूलि आपके मस्तक का आश्रय पाकर शुद्ध हो गई है और उस पादप्रहार को मैं समझता हूँ कि वह मेरे मस्तक पर ही किया गया है अतः आप स्वस्थता को प्राप्त हों ॥21॥ इतना कहकर क्रोध से भरे लक्ष्मण ने विराधित नामक विद्याधरों के राजा को बुलाकर कहा कि मुझे शीघ्र ही रत्नपुर पर चढ़ाई करनी है ॥22॥ इसलिए मार्ग दिखाओ। इस प्रकार कहने पर कठिन आज्ञा को धारण करने वाले उस रणवीर विराधित ने पत्र लिखकर समस्त विद्याधर राजाओं को बुला लिया ॥23॥

तदनंतर महेंद्र, विंध्य, किष्किंध और मलय आदि पर्वतों पर बसे नगरों के अधिपति, विमानों के द्वारा आकाश को आच्छादित करते हुए अयोध्या आ पहुँचे ॥24॥ बहुत भारी सेना से सहित उन विद्याधर राजाओं के द्वारा घिरा हुआ लक्ष्मण विजय के सम्मुख हो रामचंद्रजी को आगे कर उस प्रकार चला जिस प्रकार कि लोकपालों से घिरा हुआ देव चलता है ॥25॥ जिन्होंने नाना शस्त्रों के समूह से सूर्य की किरणें आच्छादित कर ली थीं तथा जो सफेद छत्रों से सुशोभित थे ऐसे राजा रत्नपुर पहुँचे ॥26॥

तदनंतर परचक्र को आया जान, रत्नपुर का युद्ध निपुण राजा समस्त सामंतों के साथ बाहर निकला ॥27॥ महावेग को धारण करने वाले उस राजा ने निकलते ही दक्षिण की समस्त सेना को क्षण भर में ग्रस्त जैसा कर लिया ॥28॥ तदनंतर चक्र, क्रकच, बाण, खड्ग, कुंत, पाश, गदा आदि शस्त्रों के द्वारा उन सबका उद्दंडता के कारण गहन युद्ध हुआ ॥29॥ आकाश में योग्य स्थान पर स्थित अप्सराओं का

समूह आश्चर्य से युक्त स्थानों पर पुष्पांजलियाँ छोड़ रहे थे ॥30॥ तत्पश्चात् जो योद्धारूपी जल जंतुओं का क्षय करने वाला था ऐसा लक्ष्मणरूपी बड़वानल पर-चक्ररूपी समुद्र के बीच अपना विस्तार करने के लिए उद्यत हुआ ॥31॥ रथ, उत्तमोत्तम घोड़े, तथा मदरूपी जल को बहाने वाले हाथी, उसके वेग से तृण के समान दशों दिशाओं में भाग गये ॥32॥ कहीं इंद्र के समान शक्ति को धारण करने वाले राम युद्ध-क्रीड़ा करते थे तो कहीं वानर रूप चिह्न से उत्कृष्ट सुग्रीव युद्ध की क्रीड़ा कर रहे थे ॥33॥ और किसी एक जगह प्रभाजाल से युक्त, महावेगशाली, उग्र हृदय एवं नाना प्रकार की अद्भुत चेष्टाओं को करने वाला हनूमान् युद्ध क्रीड़ा का अनुभव कर रहा था ॥34॥ जिस प्रकार शरदऋतु के प्रातःकालीन मेघ वायु के द्वारा कहीं ले जाये जाते हैं तितर-बितर कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इन महा योद्धाओं के द्वारा विजयार्ध पर्वत की बड़ी भारी सेना कहीं ले जाई गई थी पराजित कर इधर उधर खदेड़ दी गई थी ॥35॥ तदनंतर जिनके युद्ध के मनोरथ नष्ट हो गये थे ऐसे विजयार्ध पर्वत पर के राजा अपने अधिपति-स्वामी के साथ अपने-अपने स्थानों की ओर भाग गये ॥36॥

तीव्र क्रोध से भरे, रत्नरथ के उन वीर पुत्रों को भागते हुए देख कर जिन्होंने आकाश में ताली पीटने का बड़ा शब्द किया था, जिनका शरीर चञ्चल था, मुख हास्य से युक्त था, तथा नेत्र खिल रहे थे ऐसे कलहप्रिय नारद ने कल-कल शब्द कर कहा कि ॥37-38॥ अहो ! ये वे ही चपल, क्रोधी, दुष्ट चेष्टा के धारक तथा मंदबुद्धि से युक्त रत्नरथ के पुत्र भागे जा रहे हैं जिन्होंने कि लक्ष्मण के गुणों की उन्नति सहन नहीं की थी ॥36॥ अरे मानवो ! इन उद्दंड लोगों को शीघ्र ही बलपूर्वक पकड़ो। उस समय मेरा अनादर कर अब कहाँ भागना हो रहा है ? ॥40॥ इतना कहने पर जिन्होंने जीत का यश प्राप्त किया था तथा जो प्रताप से श्रेष्ठ थे, ऐसे कितने ही धीर-वीर उन्हें पकड़ने के लिए उद्यत हो उनके पीछे दौड़े ॥41॥ उस समय उन सबके निकटस्थ होने पर रत्नपुर नगर उस वन के समान हो गया था जिसके कि समीप बहुत बड़ा दावानल लग रहा था ॥42॥

अथानंतर उसी समय, जो दृष्टि में आये हुए मनुष्यमात्र के मन को आनंदित करने वाली थी, घबड़ाई हुई थी, घोड़ों के रथ पर आरूढ़ थी, तथा महाप्रेम के वशीभूत थी ऐसी रत्नस्वरूप मनोरमा कन्या वहाँ लक्ष्मण के समीप उस प्रकार आई जिस प्रकार कि इंद्राणी इंद्र के पास जाती है ॥43-44॥ जो प्रसाद करने वाले लोगों से सहित थी तथा जो स्वयं प्रसाद कराने के योग्य थी ऐसी उस कन्या को पाकर लक्ष्मण की कलुषता शांत हो गई तथा उसका मुख भृकुटियों से रहित हो गया ॥4॥ तत्पश्चात् जिसका मान नष्ट हो गया था, जो देशकाल की विधि को जानने वाला था, जिसने अपना-पराया पौरुष देख लिया था और जो योग्य भेंट से सहित था ऐसे राजा रत्नरथ ने प्रीतिपूर्वक पुत्रों के साथ नगर से बाहर निकल कर सिंह और गरुड की पताकाओं को धारण करने वाले राम-लक्ष्मण की अच्छी तरह स्तुति की ॥46-47॥ इसी बीच में नारद ने आकर बहुत बड़ी भीड़ के मध्य में स्थित रत्नरथ को मंद हास्यपूर्ण वचनों से इस प्रकार लज्जित किया कि अहो ! अब तेरा क्या हाल है ? तू रत्नरथ था अथवा रजोरथ ? तू बहुत बड़े योद्धाओं के कारण गर्जना कर रहा था सो अब तेरी कुशल तो है ? ॥48-46॥ जान पड़ता है कि तू गर्व का महा पर्वत स्वरूप वह रत्नरथ नहीं है किंतु नारायण के चरणों की सेवा में स्थित रहने वाला कोई दूसरा ही राजा है ॥50॥ तदनंतर कहकहा शब्द कर तथा एक हाथ से दूसरे हाथ की ताली पीटते हुए कहा कि अहो ! रत्नरथ के पुत्रो ! सुख से तो हो ? ॥51॥ यह वही नारायण है कि जिसके विषय में उस समय अपने घर में ही उद्धत चेष्टा दिखाने वाले आप लोगों ने उस तरह हृदय को पकड़ने वाली बात कही थी ॥52॥ इस प्रकार यह होने पर भी उन सबने कहा कि हे नारद ! तुम्हें कुपित किया उसी का यह फल है कि हम लोगों को जिसका मिलना अत्यंत दुर्लभ था ऐसा महापुरुषों का संपर्क प्राप्त हुआ ॥53॥

इस प्रकार विनोदपूर्ण कथाओं से वहाँ क्षणभर ठहर कर सब लोगों ने बड़े वैभव के साथ नगर में प्रवेश किया ॥54॥ उसी समय जो रति के समान रूप की धारक थी तथा देवों को भी आनंदित करने वाली थी ऐसी श्रीदामा नाम की कन्या राम के लिए दी गई। ऐसी स्त्री को पाकर जिनका मेरु के समान प्रभाव था तथा जिन्होंने उसका पाणिग्रहण किया था ऐसे श्रीराम अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥55॥ तदनंतर राजा रत्नरथ ने रावण का क्षय करने वाले लक्ष्मण के लिए सार्थक नाम वाली मनोरमा कन्या दी और उन दोनों का उत्तम पाणिग्रहण हुआ ॥56॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यतश्च इस तरह मनुष्यों के पुण्य प्रभाव से अत्यंत क्रोधी मनुष्य भी शांति को प्राप्त हो जाते हैं और अमूल्य रत्न उन्हें प्राप्त होते रहते हैं इसलिए हे भव्यजनो ! सूर्य के समान निर्मल पुण्य का संचय करो ॥57॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में मनोरमा की प्राप्ति का कथन करने वाला तेरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥93॥

## राम-लक्ष्मण की विभूति

चौरानवेवां पर्व

कथा :

अथानंतर विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रत्नरथ के सिवाय जो अन्य विद्याधर थे शस्त्रों के अंधकार से युक्त युद्ध में लक्ष्मण ने उन सबको भी वश कर लिया ॥1॥ जो विद्याधर पहले महानाग के समान अत्यंत दुःसह थे वे अब शूर-वीरता रूपी विष से रहित हो राम के सेवक हो गये ॥2॥ हे राजन् ! अब मैं स्वर्ग के समान तेज को धारण करने वाली उन नगरियों के कुछ नाम तेरे लिए कहूँगा सो श्रवण कर ॥3॥ रविप्रभ, वह्निप्रभ, काश्चन, मेघ, शिवमंदिर, गंधर्वगीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधर, किन्नरोद्गीत, जीमूतशिखर, मानुगीत, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, मलय, श्रीगृह, भास्कराभ, अरिंजय, ज्योतिःपुर, शशिच्छाय, गांधार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, यक्षपुर और तिलकपुर । हे पुरुषोत्तम ! इन्हें आदि लेकर अनेक उत्तमोत्तम नगर उन महापुरुष लक्ष्मण ने वश में किये ॥4-9॥ इस प्रकार लक्ष्मण सुंदर समस्त पृथिवी को वश कर सात रत्नों से सहित होता हुआ संपूर्ण नारायण पद को प्राप्त हुआ ॥10॥ चक्र, छत्र, धनुष, शक्ति, गदा, मणि और खड्ग ये सात रत्न लक्ष्मण को प्राप्त हुए थे ॥11॥ [ तथा हल, मुसल, गदा और रत्नमाला ये चार रत्न राम को प्राप्त थे।] तदनंतर श्रेणिक ने गौतम स्वामी से कहा कि हे भगवन् ! मैंने आपके प्रसाद से विधिपूर्वक राम और लक्ष्मण का माहात्म्य जान लिया है अब लवणांकुश की उत्पत्ति तथा लक्ष्मण के पुत्रों का जन्म जानना चाहता हूँ सो आप कहने के योग्य हैं ॥12-13॥

तदनंतर मुनिसंघ के स्वामी श्री गौतम गणधर ने उच्च स्वर में कहा कि हे राजन् ! सुन, मैं तेरी इच्छित कथावस्तु कहता हूँ ॥14॥ अथानंतर युग के प्रधान पुरुष जो राम, लक्ष्मण थे वे निष्कंटक महा राज्य से उत्पन्न भोगोपभोग की सामग्री से सहित थे तथा दोढुंदक नामक देव के द्वारा अनुज्ञात महासुख में आसक्त थे । इस तरह उनके दिन, पक्ष, मास, वर्ष और युग व्यतीत हो गये ॥15-16॥ जो देवांगनाओं के समान थीं तथा उत्तम कुल में जिनका जन्म हुआ था ऐसी सत्तरह हजार स्त्रियां लक्ष्मण की थीं ॥17॥ उन स्त्रियों में कीर्ति, लक्ष्मी और रति की समानता प्राप्त करने वाली गुणवती, शीलवती, कलावती, सौम्य और सुंदर चेष्टाओं को धारण करने वाली आठ महादेवियाँ थीं ॥18॥ हे राजन् ! अब मैं यथा क्रम से उन महादेवियों के सुंदर नाम कहता हूँ सो सुन ॥16॥ सर्वप्रथम राजा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या, उसके अनंतर उपमा से रहित रूपवती, फिर तीसरी वनमाला, जो कि वसंत की लक्ष्मी से मानो सहित ही थी, जिसके नाम से ही महागुणों की सूचना मिल रही थी ऐसी चौथी कल्याणमाला, जो रतिमाला के समान रूपवती थी ऐसी पाँचवीं रतिमाला, जिसने अपने मुख से कमल को जीत लिया था ऐसी छठवीं जितपद्मा, सातवीं भगवती और आठवीं मनोरमा ये लक्ष्मण की आठ प्रमुख स्त्रियाँ थीं ॥20-23॥

रामचंद्रजी को देवांगनाओं के समान आठ हजार स्त्रियाँ थीं। उनमें जगत् प्रसिद्ध कीर्ति को धारण करने वाली चार महादेवियाँ थीं ॥24॥ प्रथम सीता, द्वितीय प्रभावती, तृतीय रतिनिभा और चतुर्थ श्रीदामा ये उन महादेवियों के नाम हैं ॥25॥ इन सब स्त्रियों के मध्य में स्थित सुंदर लक्षणों वाली सीता, ताराओं के मध्य में स्थित चंद्रकला के समान सुशोभित होती थी ॥26॥ लक्ष्मण के अढाई सौ पुत्र थे उनमें से कुछ के नाम कहता हूँ सो सुन ॥27॥ वृषभ, धरण, चंद्र, शरभ, मकरध्वज, धारण, हरिनाग, श्रीधर, मदन और अच्युत ॥28॥ जिनके गुणों में अनुरक्त हुए पुरुष अनन्यचित्त हो जाते थे ऐसे सुंदर चेष्टाओं को धारण करने वाले आठ कुमार उन पुत्रों में प्रमुख थे ॥29॥ उनमें से श्रीधर, विशल्या सुंदरी का पुत्र था जो अयोध्यापुरी में उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि आकाश में चंद्रमा सुशोभित होता है ॥30॥ रूपवती के पुत्र का नाम पृथिवीतिलक था जो उत्तम कांति को धारण करता हुआ पृथिवीतल पर अत्यंत प्रसिद्ध था ॥31॥ कल्याणमाला का पुत्र मंगल नाम से प्रसिद्ध था । वह अनेक कल्याणों का पात्र था तथा मांगलिक क्रियाओं के करने में सदा तत्पर रहता था ॥32॥ पद्मावती के विमलप्रभ नाम का पुत्र हुआ था।

वनमाला ने अर्जुन वृक्ष नामक पुत्र को जन्म दिया था ॥33॥ राजा अतिवीर्य की पुत्री ने श्रीकेशी नामक पुत्र उत्पन्न किया था । भगवती का पुत्र सत्यकीर्ति इस नाम से प्रसिद्ध था ॥34॥ और मनोरमा ने सुपार्श्वकीर्ति नामक पुत्र प्राप्त किया था। ये सभी कुमार महाशक्तिशाली तथा शस्त्र और शास्त्र दोनों में निपुण थे ॥35॥ इन सब भाइयों की नख और मांस के समान सुदृढ़ संगति थी तथा इन सबकी समान एवं उचित चेष्टा लोक में सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती थी ॥36॥ सो परस्पर एक दूसरे के हृदय में विद्यमान थे तथा जिनके चित्त प्रेम से परिपूर्ण थे ऐसे ये आठों कुमार स्वर्ग में आठ वसुओं के समान नगर में अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥37॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने पूर्व पर्याय में पुण्य उत्पन्न किया है तथा जिनका चित्त शुभभाव रूप रहा है ऐसे प्राणियों की समस्त

चेष्टाएँ जन्म से ही अत्यंत मनोहर होती हैं इस प्रकार उस नगरी में सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार थे जो उत्कृष्ट शक्ति से प्रसिद्ध तथा अत्यंत मनोहर थे ॥38-36॥ जो नाना देशों में निवास करते थे, जिनके मस्तक पर मुकुट बंधे हुए थे, तथा जिनका तेज सूर्य के समान था ऐसे सोलह हजार राजा राम और लक्ष्मण के चरणों की सेवा करते थे ॥40॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में राम-लक्ष्मण की विभूति को दिखाने वाला चौरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥94॥

## सीता को जिनेंद्र पूजारूप दोहला

पंचानवेवां पर्व

कथा :

अथानंतर इस प्रकार भोगों के समूह से युक्त तथा धर्म, **अर्थ** और काम के संबंध से अत्यंत प्रीति उत्पन्न करने वाले दिनों के व्यतीत होने पर किसी दिन सीता विमान तुल्य भवन में शरद् ऋतु की मेघमाला के समान कोमल शय्या पर सुख से सो रही थी कि उस कमललोचना ने रात्रि के पिछले प्रहर में स्वप्न देखा और देखते ही दिव्य वादित्रों के मंगलमय शब्द से वह जागृत हो गई ॥1-3॥ तदनंतर अत्यंत निर्मल प्रभात के होने पर संशय को प्राप्त सीता, शरीर संबंधी क्रियाएँ करके सखियों सहित पति के पास गई ॥4॥ और पूछने लगी कि हे नाथ ! आज मैंने जो स्वप्न देखा है हे विद्वन् ! आप उसका फल कहने के लिए योग्य हैं ॥5॥ मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शरदऋतु के चंद्रमा के समान जिनकी कांति थी, क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के समान जिनका शब्द था, कैलाश के शिखर के समान जिनका आकार था, जो सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत थे, जिनकी उत्तम दाढ़ें कांतिमां एवं सफेद थीं और जिनकी गरदन की उत्तम जटाएं सुशोभित हो रही थीं ऐसे अत्यंत श्रेष्ठ दो अष्टापद मेरे मुख में प्रविष्ट हुए हैं ॥6-7॥ यह देखने के बाद दूसरे स्वप्न में मैंने देखा है कि मैं वायु से प्रेरित पताका के समान अत्यधिक संभ्रम से युक्त हो पुष्पक विमान के शिखर से गिरकर नीचे पृथिवी पर आ पड़ी हूँ ॥8॥ तदनंतर राम ने कहा कि हे वरोरू ! अष्टापदों का युगल देखने से तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी ॥9॥ हे प्रिये ! यद्यपि पुष्पक विमान के अग्रभाग से गिरना अच्छा नहीं है तथापि चिंता की बात नहीं है क्योंकि शांतिकर्म तथा दान करने से पापग्रह शांति को प्राप्त हो जावेंगे ॥10॥
अथानंतर जो तिलकपुष्परूपी कवच को धारण किये हुए था, कदंबरूपी गजराज पर आरूढ था, आम्ररूपी धनुष साथ लिये था, कमलरूपी बाणों से युक्त था, बकुल रूपी भरे हुए तरकसों से सहित था, निर्मल गुंजार करने वाले भ्रमरों के समूह जिसका सुयश गा रहे थे, जो कदंब से सुवासित सघन सुंदर वायु से मानो सांस ही ले रहा था, मालती के फूलों के प्रकाश से जो मानो दूसरे शत्रुओं की हँसी कर रहा था और कोकिलाओं के मधुर आलाप से जो मानो अपने योग्य वार्तालाप ही कर रहा था ऐसा लोक में आकुलता उत्पन्न करने वाली राजा की शोभा को धारण करता हुआ वसंतकाल आ पहुँचा ॥11-14॥ अंकोट पुष्प ही जिसके नाखून थे, जो कुरवक रूपी दाढ को धारण कर रहा था, लाल लाल अशोक ही जिसके नेत्र थे, चंचल किसलय ही जिसकी जिह्वा थी, जो परदेशी मनुष्य के मन को परम भय प्राप्त करा रहा था और बकुल पुष्प ही जिसकी गरदन के बाल थे ऐसा वसंतरूपी सिंह आ पहुँचा ॥15-16॥ अयोध्या का महेंद्रोदय उद्यान स्वभाव से ही सुंदर था परंतु उस समय वसंत के कारण विशेष रूप से नंदन वन के समान सुंदर हो गया था ॥17॥ जिनमें रंग-बिरंगे फूल फूल रहे थे तथा जिनके नाना प्रकार के पल्लव हिल रहे थे, ऐसे वृक्ष दक्षिण के मलय समीर से मिलकर मानो पागल की तरह झूम रहे थे ॥18॥ जो कमल तथा नील कमल आदि से आच्छादित थीं, पक्षियों के समूह जहाँ शब्द कर रहे थे, और जिनके तट मनुष्यों से सेवित थे ऐसी वापिकाएँ अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं ॥19। रागी मनुष्यों के लिए जिनका सहना कठिन था ऐसे हंस, सारस, चकवा, कुरर और कारंडव पक्षियों के मनोहर शब्द होने लगे ॥20॥ उन पक्षियों के उत्पतन और विपतन से क्षोभ को प्राप्त हुआ निर्मल जल हर्ष से ही मानो तरंग युक्त होता हुआ व्याकुल हो रहा था ॥21॥ वसंत का विस्तार होने पर जल, कमल आदि से, स्थल कुरवक आदि से और आकाश उनकी पराग से व्याप्त हो गया था ॥22॥ उस समय गुच्छे, गुल्म, लता तथा वृक्ष आदि जो वनस्पति की जातियाँ अनेक प्रकार से स्थित थीं वे सब ओर से परम शोभा को प्राप्त हो रही थीं ॥23॥
उस समय गर्भ के द्वारा की हुई थकावट से जिसका शरीर कुछ-कुछ भ्रांत हो रहा था ऐसी जनकनंदिनी को देखकर राम ने पूछा कि हे कांते ! तुझे क्या अच्छा लगता है ? सो कह । मैं अभी तेरी इच्छा पूर्ण करता हूँ तू ऐसी क्यों हो रही है ? ॥24-25॥ तब कमलमुखी सीता ने मुस्करा कर कहा कि हे नाथ ! मैं पृथिवीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयों के दर्शन करना चाहती हूँ ॥26॥ जिनका स्वरूप तीनों लोकों

के लिए मंगल रूप है ऐसी पंचवर्ण की जिन-प्रतिमाओं को आदर पूर्वक नमस्कार करने का मेरा भाव है ॥27॥ सुवर्ण तथा रत्नमयी पुष्पों से जिनेंद्र भगवान की पूजा करूँ यह मेरी बड़ी श्रद्धा है। इसके सिवाय और क्या इच्छा करूँ ? ॥28॥
यह सुनकर हर्ष से मुसकराते हुए राम ने तत्काल ही नम्रीभूत शरीर को धारण करने वाली द्वारपालिनी से कहा कि हे कल्याणि ! विलंब किये बिना ही मंत्री से यह कहो कि जिनालयों में अच्छी तरह विशाल पूजा की जावे ॥26-30॥ सब लोग बहुत भारी आदर के साथ महेंद्रोदय उद्यान में जाकर जिन-मंदिरों को शोभा करें ॥31॥ तोरण, पताका, घंटा, लंबूष, गोले, अर्धचंद्र, चंदोवा, अत्यंत मनोहर वस्त्र, तथा अत्यंत सुंदर अन्यान्य समस्त उपकरणों के द्वारा लोग संपूर्ण पृथिवी पर जिन-पूजा करें ॥32-33॥ निर्वाण क्षेत्रों के मंदिर विशेष रूप से विभूषित किये जावें तथा सर्व संपत्ति से सहित महा आनंद-बहुत भारी हर्ष के कारण प्रवृत्त किये जावें ॥34॥ उन सबमें पूजा करने का जो सीता का दोहला है वह बहुत ही उत्तम है सो मैं पूजा करता हुआ तथा जिन शासन की महिमा बढ़ाता हुआ इसके साथ विहार करूंगा ॥35॥ इस प्रकार आज्ञा पाकर द्वारपालिनी ने अपने स्थान पर अपने ही समान किसी दूसरी स्त्री को नियुक्त कर राम के कहे अनुसार मंत्री से कह दिया और मंत्री ने भी अपने सेवकों के लिए तत्काल आज्ञा दे दी ॥36॥
तदनंतर महान् उद्योगी एवं हर्ष से सहित उन सेवकों ने शीघ्र ही जाकर जिन-मंदिरों में सजावट कर दी ॥37॥ महापर्वत की गुफाओं के समान जो मंदिरों के विशाल द्वार थे उन पर उत्तम हार आदि से अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये गये ॥38॥ मंदिरों की सुवर्णमयी लंबी चौड़ी दीवालों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये ॥38॥ खंभों के ऊपर अत्यंत निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण लगाये गये और झरोखों के अग्रभाग में स्वच्छ झरने के समान मनोहर हार लटकाये गये ॥40॥ मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियों में पाँच वर्ण के रत्नमय सुंदर चूर्णों से नाना प्रकार के बेल-बूटे खींचे गये थे ॥41॥ जिनमें सौ अथवा हजार कलिकाएँ थीं तथा जो लंबी डंडी से युक्त थे ऐसे कमल उन मंदिरों की देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रक्खे गये थे ॥42॥ हाथ से पाने योग्य स्थानों में मत्त स्त्री के समान शब्द करने वाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियों के समूह लगाये गये थे ॥43॥ जिनकी मणिमय डंडियाँ थीं ऐसे पाँच वर्ण के कामदार चमरों के साथ-साथ बड़ी-बड़ी हाँड़ियाँ लटकाई गई थीं ॥44॥ जो सुगंधि से भ्रमरों को आकर्षित कर रही थीं तथा उत्तम कारीगरों ने जिन्हें निर्मित किया था ऐसी नाना प्रकार की मालाएँ फैलाई गई थीं ॥45॥ अनेकों की संख्या में जगह-जगह बनाई गई विशाल वादनशालाओं और प्रेक्षकशालाओं दर्शकगृहों से वह उद्यान अलंकृत किया गया था ॥46॥ इस प्रकार अत्यंत सुंदर विशाल विभूतियों से वह महेंद्रोदय उद्यान नंदनवन के समान सुंदर हो गया था ॥47॥
अथानंतर नगरवासी तथा देशवासी लोगों के साथ, स्त्रियों के साथ, समस्त मंत्रियों के साथ, और सीता के साथ रामचंद्रजी इंद्र के समान बड़े वैभव से उस उद्यान की ओर चले ॥48॥ सीता के साथ-साथ उत्तम हाथी पर बैठे हुए राम ठीक उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह इंद्राणी के साथ ऐरावत के पृष्ठ पर बैठा हुआ इंद्र सुशोभित होता है ॥49॥ यथायोग्य ऋद्धि को धारण करने वाले लक्ष्मण तथा हर्ष से युक्त एवं अत्यधिक अन्न पान की सामग्री से सहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार जा रहे थे ॥50॥ वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहों में तथा अतिमुक्तक लता के सुंदर निकुंजों में महावैभव के साथ ठहर गई तथा अन्य लोग भी यथायोग्य स्थानों में सुख से बैठ गये ॥51॥ हाथी से उतर कर राम ने कमलों तथा नील कमलों से व्याप्त एवं समुद्र के समान विशाल, निर्मल जल वाले सरोवर में सुखपूर्वक उस तरह क्रीड़ा की जिस तरह कि क्षीरसागर में इंद्र करता है ॥52॥ तदनंतर सरोवर में चिर काल तक क्रीड़ा कर, उन्होंने फूल तोड़े और जल से बाहर निकल कर पूजा की दिव्य सामग्री से सीता के साथ मिलकर जिनेंद्र भगवान की पूजा की ॥53॥ वनलक्ष्मियों के समान उत्तमोत्तम स्त्रियों से घिरे हुए मनोहारी राम उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शरीरधारी श्रीमान् वसंत ही आ पहुँचा हो ॥54॥ आठ हजार प्रमाण अनुपम देवियों से घिरे हुए, निर्मल शरीर के धारक राम उस समय ताराओं से घिरे हुए चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे ॥55॥ उस उद्यान में राम ने अमृतमय आहार, विलेपन, शयन, आसन, निवास, गंध तथा माला आदि से उत्पन्न होने वाले शब्द, रस, रूप, गंध और स्पर्श संबंधी उत्तम सुख प्राप्त किया था ॥56॥ इस प्रकार जिनेंद्र मंदिर में प्रतिदिन पूजा-विधान करने में तत्पर सूर्य के समान तेजस्वी, उत्तम स्त्रियों से सहित राम को अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई ॥57॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में जिनेंद्र पूजारूप दोहले का वर्णन करने वाला पंचानवेवां पर्व पूर्ण हुआ ॥95॥

## राम द्वारा लोकनिंदा की चिंता

छियानवेवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर जब इस प्रकार शुद्ध हृदय के धारक राम महेंद्रोदय नामक उद्यान में अवस्थित थे तब उनके दर्शन की आकांक्षा से प्रजा उनके समीप इस प्रकार पहुँची मानो प्यासी ही हो ॥1॥ 'प्रजा का आगमन हुआ है।' यह समाचार परंपरा से प्रतिहारियों ने सीता को सुनाया, सो सीता ने जिस समय इस समाचार को जाना उसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी ॥2॥ सीता ने विचार किया कि अधोभाग में फड़कने वाला नेत्र मेरे लिए किस भारी दुःख के आगमन की सूचना दे रहा है ॥3॥ पापी विधाता ने मुझे समुद्र के बीच दुःख प्राप्त कराया है सो जान पड़ता है कि वह दुष्ट उससे संतुष्ट नहीं हुआ, देखूँ अब वह और क्या प्राप्त कराता है ? ॥4॥ प्राणियों ने जो निरंतर स्वयं कर्म उपार्जित किये हैं उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है उसका निवारण करना शक्य नहीं है ॥5॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि चंद्रमा का पालन करता है परंतु प्रयत्नपूर्वक अपने तेज से उसे तिरोहित कर पालन करता है इसलिए वह निरंतर अपने कर्म का फल भोगता है (?) व्याकुल होकर सीता ने अन्य देवियों से कहा कि अहो देवियो ! तुमने तो आगम को सुना है इसलिए अच्छी तरह विचार कर कहो कि मेरे नेत्र के अधोभाग के फड़कने का क्या फल है ? ॥6-7॥ उन देवियों के बीच निश्चय करने में निपुण जो अनुमति नाम की देवी थी वह बोली कि हे देवि ! इस संसार में विधि नाम का दूसरा कौन पदार्थ दिखाई देता है ? ॥8॥ पूर्व पर्याय में जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतांत, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है ॥6॥ 'मैं पृथक् रहने वाले कृतांत के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त कराई गई हूँ', ऐसा जो मनुष्य का निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है ॥10॥

तदनंतर गुण दोष को जानने वाली गुणमाला नाम की दूसरी देवी ने सांत्वना देने में उद्यत हो दुःखिनी सीता से कहा कि हे देवि ! प्राणनाथ को तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो और तुम्हारे ही प्रसाद से दूसरे लोगों को सुख का योग प्राप्त होता है ॥11-12॥ इसलिए सावधान चित्त से भी मैं उस पदार्थ को नहीं देखती जो हे सुचेष्टिते ! तुम्हारे दुःख का कारणपना प्राप्त कर सके ॥13॥ उक्त दो के सिवाय जो वहाँ अन्य देवियाँ थीं उन्होंने कहा कि हे देवि ! इस विषय में अत्यधिक तर्क वितर्क करने से क्या लाभ है ? शांतिकर्म करना चाहिए ॥14॥ जिनेंद्र भगवान के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दान के द्वारा अशुभ कर्म को दूर हटाना चाहिए ॥15॥ इस प्रकार कहने पर सीता ने कहा कि हे देवियो ! आप लोगों ने ठीक कहा है क्योंकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मों को नष्ट करने वाला है ॥16॥ दान विघ्नों का नाश करने वाला है, शत्रुओं का वैर दूर करने वाला है, पुण्य का उपादान है तथा बहुत भारी यश का कारण है ॥17॥ इतना कहकर सीता ने भद्रकलश नामक कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि प्रसूति पर्यंत प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे ॥18॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर उधर कोषाध्यक्ष चला गया और इधर यह सीता भी जिनपूजा आदि संबंधी आदर में निमग्न हो गई ॥19॥

तदनंतर जिन मंदिरों में करोड़ों शंखों के शब्द में मिश्रित, एवं वर्षाकालिक मेघ गर्जना की उपमा धारण करने वाले तुरही आदि वादित्रों के शब्द उठने लगे ॥20॥ जिनेंद्र भगवान के चरित्र से संबंध रखने वाले चित्रपट फैलाये गये और दूध, घृत आदि से भरे हुए कलश बुलाये गये ॥21॥ आभूषणों से आभूषित तथा श्वेत वस्त्र को धारण करने वाले कंचुकी ने हाथी पर सवार हो अयोध्या में स्वयं यह घोषणा दी कि कौन किस पदार्थ की इच्छा रखता है ? ॥22॥ इस प्रकार विधिपूर्वक बड़े उत्साह से दान दिया जाने लगा और देवी सीता ने अपनी शक्ति के अनुसार नाना प्रकार के नियम ग्रहण किये ॥23॥ उत्तम वैभव के अनुरूप महापूजाएँ और अभिषेक किये गये तथा मनुष्य पापपूर्ण वस्तु से निवृत्त हो शांतचित्त हो गये ॥24॥ इस प्रकार जब शांत चित्त की धारक सीता दान आदि क्रियाओं में आसक्त थी तब रामचंद्र इंद्र के समान सभामंडप में आसीन थे।॥25॥

तदनंतर द्वारपालों ने जिन्हें द्वार छोड़ दिये थे तथा जिनके चित्त व्यग्र थे ऐसे देशवासी लोग सभा मंडप में उस तरह डरते-डरते पहुँचे जिस तरह कि मानो सिंह के स्थान पर ही जा रहे हों ॥26॥ रत्न और सुवर्ण से जिसकी रचना हुई थी तथा जो पहले कभी देखने में नहीं आई थी ऐसी उस गंभीर सभा को देखकर प्रजा के लोगों का मन चंचल हो गया ॥27॥ हृदय को आनंदित करने वाले और नेत्रों को उत्सव देने वाले श्रीराम को देखकर जिनके चित्त खिल उठे थे ऐसे प्रजा के लोगों ने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥28॥ जिनके शरीर कंपित थे तथा जिनका मन बार-बार काँप रहा था ऐसे प्रजाजनों को देखकर राम ने कहा कि अहो भद्रजनो ! अपने आगमन का कारण कहो ॥26॥ अथानंतर विजय, सुराजि, मधुमान, वसुल, धर, काश्यप, पिंगल, काल और क्षेम आदि बड़े-बड़े पुरुष, राजा रामचंद्रजी के प्रभार से आक्रांत हो कुछ भी नहीं कह सके। वे चरणों में नेत्र लगाकर निश्चल खड़े रहे और सबका ओज समाप्त हो गया ॥30-31॥ यद्यपि उनकी

बुद्धि कुछ कहने के लिए चिरकाल से उत्साहित थी तथापि उनकी वाणी रूपी वधू मुखरूपी घर से बड़ी कठिनाई से नहीं निकलती थी ॥32॥

तदनंतर राम ने सांत्वना देने वाली वाणी से पुनः कहा कि आप सब लोगों का स्वागत है। कहिये, आप सब किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ॥33॥ इतना कहने पर भी वे पुनः समस्त इंद्रियों से रहित के समान खड़े रहे। निश्चल खड़े हुए वे सब ऐसे जान पड़ते थे कि मानो किसी कुशल कारीगर ने उन्हें मिट्टी आदि के खिलौने के रूप में रच कर निक्षिप्त किया हो-वहाँ रख दिया हो ॥34॥ जिनके कंठ लज्जा रूपी पाश से बंधे हुए थे, जो मृगों के बच्चों के समान कुछ कुछ चंचल लोचन वाले थे तथा जिनके हृदय अत्यंत आकुल हो रहे थे ऐसे वे प्रजाजन उल्लास से रहित हो गये म्लान मुख हो गये ॥35॥

तदनंतर उनमें जो मुखिया था वह जिस किसी तरह टूटे-फूटे अक्षरों में बोला कि हे देव ! अभय दान देकर प्रसन्नता कीजिये ॥36॥ तब राजा रामचंद्र ने कहा कि हे भद्र पुरुषो ! आप लोगों को कुछ भी भय नहीं है, हृदय में स्थित बात को प्रकट करो और स्वस्थता को प्राप्त होओ ॥37॥ मैं इस समय समस्त पाप का परित्याग कर उस तरह निर्दोष वस्तु को ग्रहण करता हूँ जिस प्रकार कि हंस मिले हुए जल को छोड़कर केवल दूध को ग्रहण करता है ॥38॥ तदनंतर अभय प्राप्त होने पर भी जो बड़ी कठिनाई से अक्षरों को स्थिर कर सका था ऐसा विजय नामक पुरुष हाथ जोड़ मस्तक से लगा मंद स्वर में बोला कि हे नाथ ! हे राम! हे नरोत्तम ! मैं जो निवेदन करना चाहता हूँ उसे सुनिये, इस समय समस्त प्रजा मर्यादा से रहित हो गई है ॥36-40॥ यह मनुष्य स्वभाव से ही महाकुटिल चित्त है फिर यदि कोई दृष्टांत प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता ॥41॥ वानर स्वभाव से ही परम चंचलता धारण करता है फिर यदि चंचल यंत्र रूपी पंजर पर आरूढ़ हो जावे तो कहना ही क्या है ॥42॥ जिनके चित्त में पाप समाया हुआ है ऐसे बलवान् मनुष्य अवसर पाकर निर्बल मनुष्यों की तरुण स्त्रियों को बलात् हरने लगे हैं ॥43॥ कोई मनुष्य अपनी साध्वी प्रिया को पहले तो परित्यक्त कर अत्यंत दुःखी करता है फिर उसके विरह से स्वयं अत्यंत दुखी हो किसी की सहायता से उसे घर बुलवा लेता है ॥44॥ इसलिए हे नाथ ! धर्म की मर्यादा छूट जाने से जब तक पृथ्वी नष्ट नहीं हो जाती है तब तक प्रजा के हित की इच्छा से कुछ उपाय सोचा जाय ॥45॥ आप इस समय मनुष्य लोक के राजा होकर भी यदि विधिपूर्वक प्रजा की रक्षा नहीं करते हैं तो वह अवश्य ही नाश को प्राप्त हो जायगी ॥46॥ नदी, उपवन, सभा, ग्राम, प्याऊ, मार्ग, नगर तथा घरों में इस समय आपके इस एक अवर्णवाद को छोड़कर और दूसरी चर्चा ही नहीं है कि राजा दशरथ के पुत्र राम समस्त शास्त्रों में निपुण होकर भी विद्याधरों के अधिपति रावण के द्वारा हृत सीता को पुनः वापिस ले आये ॥47-48॥ यदि हम लोग भी ऐसे व्यवहार का आश्रय लें तो उसमें कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि जगत् के लिए तो विद्वान् ही परम प्रमाण हैं। दूसरी बात यह है कि राजा जैसा काम करता है वैसा ही काम उसका अनुकरण करने वाले हम लोगों में भी बलात् होने लगता है ॥46-50॥ इस प्रकार दुष्ट हृदय मनुष्य स्वच्छंद होकर पृथिवी पर अपवाद कर रहे हैं सो हे काकुत्स्थ ! उनका निग्रह करो ॥51॥ यदि आपके राज्य में एक यही दोष नहीं होता तो यह राज्य इंद्र के भी साम्राज्य को विलंबित कर देता ॥52॥

इस प्रकार उक्त निवेदन को सुनकर एक क्षण के लिए राम, विषाद रूपी मुद्गर की चोट से जिनका हृदय अत्यंत विचलित हो रहा था ऐसे हो गये ॥53॥ वे विचार करने लगे कि हाय हाय, यह बड़ा कष्ट आ पड़ा । जो मेरे यशरूपी कमलवन को जलाने के लिए अपयशरूपी अग्नि लग गई ॥54॥ जिसके द्वारा किया हुआ विरह का दुःसह दुःख मैंने सहन किया है वही क्रिया मेरे कुल रूपी चंद्रमा को अत्यंत मलिन कर रही है ॥55॥ जिस विनयवती सीता को लक्ष्य कर वानरों ने वीरता दिखाई वही सीता मेरे गोत्ररूपी कुमुदिनी को मलिन कर रही है ॥56॥ जिसके लिए मैंने समुद्र उतर कर शत्रुओं का संहार करने वाला युद्ध किया था वही जानकी मेरे कुलरूपी दर्पण को मलिन कर रही है ॥57॥ देश के लोग ठीक ही तो कहते हैं कि जिस घर का पुरुष दुष्ट है, ऐसे पराये घर में स्थित लोकनिंद्य सीता को मैं क्यों ले आया ? ॥58॥ जिसे मैं क्षणमात्र भी नहीं देखता तो विरहाकुल हो जाता हूँ इस अनुराग से भरी प्रिय दयिता को इस समय कैसे छोड़ दूँ ? ॥56॥ जो मेरे चक्षु और मन में निवास कर अवस्थित है उस गुणों की भांडार एवं निर्दोष सीता का परित्याग कैसे कर दूँ ? ॥6॥ अथवा उन स्त्रियों के चित्त की चेष्टा को कौन जानता है जिनमें दोषों का कारण काम साक्षात् निवास करता है ॥61॥ जो समस्त दोषों की खान है । संताप का कारण है तथा निर्मलकुल में उत्पन्न हुए मनुष्यों के लिए कठिनाई से छोड़ने योग्य पंक स्वरूप है उस स्त्री के लिए धिक्कार है ॥62॥ यह स्त्री समस्त बलों को नष्ट करने वाली है, राग का आश्रय है, स्मृतियों के नाश का परम कारण है, सत्यव्रत के स्खलित होने के लिए खाईरूप है, मोक्ष सुख के लिए विघ्न स्वरूप है, ज्ञान की उत्पत्ति को नष्ट करने वाली है, भस्म से आच्छादित अग्नि के समान है, डाभ की

अनी के तुल्य है अथवा देखने मात्र में रमणीय है । इसलिए जिस प्रकार साँप काँचुली को छोड़ देता है उसी प्रकार मैं महादुःख को छोड़ने की इच्छा से सीता को छोड़ता हूँ ॥63-65॥ उत्कट स्नेह रूपी बंधन से वशीभूत हुआ मेरा हृदय सदा जिससे अशून्य रहता है उस मुख्य सीता को कैसे छोड़ दूँ ? ॥66॥ यद्यपि मैं दृढचित्त हूँ तथापि समीप में रहने वाली सीता ज्वाला के समान मेरे मन को विलीन करने में समर्थ है ॥67॥ मैं मानता हूँ कि जिस प्रकार चंद्रमा की रेखा दूरवर्तिनी होकर भी कुमुदिनी को विचलित करने में समर्थ है उसी प्रकार यह सुंदरी सीता भी मेरे धैर्य को विचलित करने में समर्थ है ॥68॥ इस ओर लोक निंदा है और दूसरी ओर कठिनाई से छूटने योग्य स्नेह है। अहो ! मुझे भय और राग ने सघन वन के बीच में ला पटका है ॥69॥ जो देवांगनाओं में भी सब प्रकार से श्रेष्ठ है तथा जो प्रीति के कारण मानो एकता को प्राप्त है उस साध्वी सीता को कैसे छोड़ दूं ॥70॥ अथवा उठी हुई साक्षात् अपकीर्ति के समान इसे यदि नहीं छोड़ता हूँ तो पृथिवी पर इसके विषय में मेरे समान दूसरा कृपण नहीं होगा ॥71॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनका मन स्नेह, अपवाद और भय से संगत था, जो मिश्रित तीव्र रस के वेग से वशीभूत थे, तथा जो अत्यधिक संताप से व्याकुल थे ऐसे राम का वह समय उन्हें अनुपम दुःखस्वरूप हुआ था ॥72॥ जिसमें पूर्वापर विरोध पड़ता था, जो अत्यंत आकुलता रूप था, जो स्थिर अभिप्राय से रहित था और दुःख के अनुभव से सहित था ऐसा यह राम का चिंतन उन्हें ग्रीष्मऋतु संबंधी मध्याह्न के सूर्य से भी अधिक अत्यंत दुःसह था ॥73॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में लोकनिंदा की चिंता का उल्लेख करने वाला छियानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥96॥

## सीता का निर्वासन, विलाप

सतानवेवां पर्व

कथा :

अथानंतर किसी तरह एक वस्तु में चिंता को स्थिर कर श्रीराम ने लक्ष्मण को बुलाने के लिए द्वारपाल को आज्ञा दी ॥1॥ कार्यों के देखने में जिनका मन लग रहा था ऐसे लक्ष्मण, द्वारपाल के वचन सुन हड़बड़ाहट के साथ चंचल घोड़े पर सवार हो श्रीराम के निकट पहुंचे और हाथ जोड़ नमस्कार कर उनके चरणों में दृष्टि लगाये हुए मनोहर पृथिवी पर बैठ गये ॥2-3॥ जिनका शरीर विनय से नम्रीभूत था तथा जो परम आज्ञाकारी थे ऐसे लक्ष्मण को स्वयं उठाकर राम ने अर्धासन पर बैठाया ॥4॥ जिनमें शत्रुघ्न प्रधान था ऐसे विराधित आदि राजा भी आज्ञा लेकर भीतर प्रविष्ट हुए और सब यथायोग्य स्थानों पर बैठ गये ॥5॥ पुरोहित, नगर सेठ, मंत्री तथा अन्य सज्जन कुतूहल से युक्त हो यथायोग्य स्थान पर बैठ गये ॥6॥
तदनंतर क्षण भर ठहर कर राम ने यथाक्रम से लक्ष्मण के लिए अपवाद उत्पन्न होने का समाचार सुनाया ॥7॥ सो उसे सुनकर लक्ष्मण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने उसी समय योद्धाओं को तैयार होने का आदेश दिया तथा स्वयं कहा कि मैं आज दुर्जनरूपी समुद्र के अंत को प्राप्त होता हूँ और मिथ्यावादी लोगों की जिह्वाओं से पृथिवी को आच्छादित करता हूँ ॥8-6॥ अनुपम शील के समूह को धारण करने वाली एवं गुणों से गंभीर सीता के प्रति जो द्वेष करते हैं मैं उन्हें आज क्षय को प्राप्त कराता हूँ ॥10॥ तदनंतर जो क्रोध के वशीभूत हो दुर्दशनीय अवस्था को प्राप्त हुए थे तथा जिन्होंने सभा को क्षोभ युक्त कर दिया था ऐसे लक्ष्मण को राम ने इन वचनों से शांत किया कि हे सौम्य ! यह समुद्रांत पृथिवी भगवान् ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती जैसे उत्तमोत्तम पुरुषों के द्वारा चिरकाल से पालित है ॥11-12॥ अर्ककीर्ति आदि राजा इक्ष्वाकुवंश के तिलक थे। जिस प्रकार कोई चंद्रमा की पीठ नहीं देख सकता उसी प्रकार इनकी पीठ भी युद्ध में शत्रु नहीं देख सके थे ॥13॥ चाँदनी रूपी पट के समान सुशोभित उनके यश के समूह से ये तीनों लोक निरंतर सुशोभित हैं ॥14॥ निष्प्रयोजन प्राणों को धारण करता हुआ मैं, पापी एवं भंगुर स्नेह के लिए उस कुल को मलिन कैसे कर दूँ ? ॥15॥ अल्प भी अकीर्ति उपेक्षा करने पर वृद्धि को प्राप्त हो जाती है और थोड़ी भी कीर्ति इंद्रों के द्वारा भी प्रयोग में लाई जाती है गाई जाती है ॥16॥ जब कि अकीर्ति रूपी अग्नि के द्वारा हरा-भरा कीर्तिरूपी उद्यान जल रहा है तब इन नश्वर विशाल भोगों से क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है ? ॥17॥ मैं जानता हूँ कि देवी सीता, सती और शुद्ध हृदय वाली नारी है पर जब तक वह हमारे घर में स्थित रहती है तब तक यह अवर्णवाद शस्त्र और शास्त्रों के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता ॥18॥ देखो, कमल वन को आनंदित करने वाला सूर्य रात्रि होते ही अस्त हो जाता है सो उसे रोकने वाला कौन है ? ॥16॥ महाविस्तार को प्राप्त होने वाली अपवाद रूपी रज से मेरी कांति का ह्रास किया जा रहा है सो यह

अनिवारित न रहे-इसकी रुकावट होना चाहिए ॥20॥ हे भाई! चंद्रमा के समान निर्मल कुल मुझे पाकर अकीर्ति रूपी मेघ की रेखा से आवृत न हो जाय इसीलिए मैं यत्न कर रहा हूँ ॥21॥ जिस प्रकार सूखे ईंधन के समूह में जल के प्रवाह से रहित अग्नि बढ़ती जाती है उस प्रकार उत्पन्न हुआ यह अपयश संसार में बढ़ता न रहे ॥22॥ मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यंत निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जब तक कलंकित नहीं होता है तब तक शीघ्र ही इसका उपाय करो ॥23॥ जो जनता के सुख के लिए अपने आपको अर्पित कर सकता है ऐसा मैं निर्दोष एवं शील से सुशोभित सीता को छोड़ सकता हूँ परंतु कीर्ति को नष्ट नहीं होने दूंगा ॥24॥

तदनंतर भाई के स्नेह में तत्पर लक्ष्मण ने कहा कि हे राजन् ! सीता के विषय में शोक नहीं करना चाहिए ॥25॥ समस्त सतियों के मस्तक पर स्थित एवं सर्व प्रकार से अनिंदित सीता को आप मात्र लोकापवाद के भय से क्यों छोड़ रहे हैं ? ॥26॥ दुष्ट मनुष्य शीलवान मनुष्यों की बुराई कहें पर उनके कहने से उनकी परमार्थता नष्ट नहीं हो जाती ॥27॥ जिनके नेत्र विष से दूषित हो रहे हैं ऐसे मनुष्य यद्यपि चंद्रमा को अत्यंत काला देखते हैं पर यथार्थ में चंद्रमा शुक्लता नहीं छोड़ देता है ॥28॥ शीलसंपन्न प्राणी की आत्मा साक्षिता को प्राप्त होती है **अर्थ**ात् वह स्वयं ही अपनी वास्तविकता को कहती है । यथार्थ में वस्तु का वास्तविक भाव ही उसकी यथार्थता के लिए पर्याप्त है बाह्यरूप नहीं ॥29॥ साधारण मनुष्य के कहने से विद्वज्जन क्षोभ को प्राप्त नहीं होते क्योंकि कुत्ता के भौंकने से हाथी लज्जा को प्राप्त नहीं होता ॥30॥ तरंग के समान चेष्टा को धारण करने वाला यह विचित्र लोक दूसरे के दोष कहने में आसक्त है सो इसका निग्रह स्वयं इनका आत्मा करेगी ॥31॥ जो मूर्ख मनुष्य शिला उखाड़ कर चंद्रमा को नष्ट करना चाहता है वह नि:संदेह स्वयं ही नाश को प्राप्त होता है ॥32॥ चुगली करने में तत्पर एवं दूसरे के गुणों को सहन नहीं करने वाला दुष्कर्मा दुष्ट मनुष्य निश्चित ही दुर्गति को प्राप्त होता है ॥33॥

तदनंतर बलदेव ने कहा कि लक्ष्मण ! तुम जैसा कह रहे हो सत्य वैसा ही है और तुम्हारी मध्यस्थ बुद्धि भी शोभा का स्थान है ॥34॥ परंतु लोक विरुद्ध कार्य का परित्याग करने वाले शुद्धिशाली मनुष्य का कोई दोष दिखाई नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध गुण ही एकांत रूप से संभव मालूम होता है ॥35॥ उस मनुष्य को संसार में क्या सुख हो सकता है ? अथवा जीवन के प्रति उसे क्या आशा हो सकती है जिसकी दिशाएं सब ओर से निंदारूपी दावानल की ज्वालाओं से व्याप्त हैं ॥36॥ अनर्थ को उत्पन्न करने वाले **अर्थ** से क्या प्रयोजन है ? विष सहित औषधि से क्या लाभ है ? और उस पराक्रम से भी क्या मतलब है जिससे भय में पड़े प्राणियों की रक्षा नहीं होती ? ॥37॥ उस चारित्र से प्रयोजन नहीं है जिससे आत्मा अपना हित करने में उद्यत नहीं होता और उस ज्ञान से क्या लाभ जिससे अध्यात्म का ज्ञान नहीं होता ॥38॥ उस मनुष्य का जन्म अच्छा नहीं कहा जा सकता जिसकी कीर्ति रूपी उत्तम वधू को अपयश रूपी बलवान् हर ले जाता है। अरे ! इसकी अपेक्षा तो उसका मरना ही अच्छा है ॥36॥ लोकापवाद जाने दो, मेरा भी तो यह बड़ा भारी दोष है जो मैं पर पुरुष के द्वारा हरी हुई सीता को फिर से घर ले आया ॥40॥ सीता ने राक्षस के गृहोद्यान में चिरकाल तक निवास किया, कुत्सित वचन बोलने वाली दूतियों ने उससे अभिलषित पदार्थ की याचना की, समीप की भूमि में वर्तमान रावण ने उसे कई बार दुष्ट दृष्टि से देखा तथा इच्छानुसार उससे वार्तालाप किया। ऐसी उस सीता को घर लाते हुए मैंने लज्जा का अनुभव क्यों नहीं किया ? अथवा मूर्ख मनुष्यों के लिए क्या कठिन है ? ॥41-43॥ कृतांतवक्त्र सेनापति को शीघ्र ही बुलाया जाय और अकेली गर्भिणी सीता आज ही मेरे घर से ले जाई जाय ॥44॥ इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर विनम्र भाव से कहा कि हे देव ! सीता को छोड़ना उचित नहीं है ॥45॥। जिसके चरण कमल अत्यंत कोमल हैं, जो कृशांगी है, भोली है और सुखपूर्वक जिसका लालन-पालन हुआ है ऐसी अकेली सीता उपद्रव पूर्ण मार्ग से कहाँ जायगी ? ॥46॥ जो गर्भ के भार से आक्रांत है ऐसी सीता तुम्हारे द्वारा त्यक्त होने पर अत्यंत खेद को प्राप्त होती हुई किसकी शरण में जायगी ? ॥4॥ रावण ने सीता को देखा यह कोई अपराध नहीं है क्योंकि दूसरे के द्वारा देखे हुए वलि पुष्प आदिक को क्या भक्तजन जिनेंद्रदेव के लिए अर्पित नहीं करते ? **अर्थ**ात् करते हैं अतः दूसरे के देखने में क्या दोष है ? ॥48॥ हे नाथ ! हे वीर ! प्रसन्न होओ कि जो निर्दोष है, जिसने कभी सूर्य भी नहीं देखा है, जो अत्यंत कोमल है, तथा आपके लिए जिसने अपना हृदय अर्पित कर दिया है ऐसी सीता को मत छोड़ो ॥49॥

तदनंतर जिनका विद्वेष अत्यंत दृढ़ हो गया था, जो क्रोध के भार को प्राप्त थे, और जिनका मुख अप्रसन्न था ऐसे राम ने छोटे भाई-लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मीधर ! अब तुम्हें इसके आगे कुछ भी नहीं कहना चाहिए । मैंने जो निश्चय कर लिया है वह अवश्य किया जाएगा चाहे उचित हो चाहे अनुचित ॥50-51॥ निर्जन वन में सीता अकेली छोड़ी जायगी । वहाँ वह अपने कर्म से जीवित रहे अथवा मरे ॥52॥ दोष की वृद्धि करने वाली सीता भी मेरे इस देश में अथवा किसी उत्तम संबंधी के नगर में अथवा किसी घर में क्षण भर के लिए निवास न करे ॥

53॥
अथानंतर जो चार घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर जा रहा था, सेना से घिरा था, वंदीजन 'जय' 'नंद' आदि शब्दों के द्वारा जिसकी पूजा कर रहे थे, जिसके शिर पर सफेद छत्र लगा हुआ था, जो धनुष को धारण कर रहा था तथा कवच और कुंडलों से युक्त था ऐसा कृतांतवक्त्र सेनापति स्वामी के समीप चला ॥54-55॥ उसे उस प्रकार आता देख, जिनके चित्त तर्क वितर्क में लग रहे थे ऐसी नगर की स्त्रियों में अनेक प्रकार की चर्चा होने लगी ॥56॥ यह क्या है ? यह किस कारण उतावला दिखाई देता है ? किसके प्रति यह कुपित है ? आज किसका क्या होने वाला है ? हे मात ! जो शस्त्रों के अंधकार के मध्य में स्थित है तथा जो ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान तेज से युक्त है ऐसा यह कृतांतवक्त्र यमराज के समान भयंकर है ॥57-58॥ इत्यादि कथा में आसक्त नगर की स्त्रियाँ जिसे देख रही थीं ऐसा सेनापति श्रीराम के समीप आया ॥56॥
तदनंतर उसने पृथिवी का स्पर्श करने वाले शिर से स्वामी को प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए यह कहा कि हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिए ॥60॥ राम ने कहा कि जाओ, सीता को शीघ्र ही छोड़ आओ । उसने जिनमंदिरों के दर्शन करने का दोहला प्रकट किया था इसलिए मार्ग में जो जिनमंदिर मिलें उनके दर्शन कराते जाना। तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि सम्मेदाचल पर निर्मित, एवं आशाओं के पूर्ण करने में निपुण जो प्रतिमाओं के समूह हैं उनके भी उसे दर्शन कराते जाना । इस प्रकार दर्शन कराने के बाद इसे सिंहनाद नाम की निर्जन अटवी में ले जाकर तथा वहाँ ठहरा कर हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही वापिस आ जाओ ॥61-63॥
तदनंतर विना किसी तर्क-वितर्क के 'जो आज्ञा' यह कह कर सेनापति सीता के पास गया और इस प्रकार बोला कि हे देवि ! उठो, रथ पर सवार होओ, इच्छित कार्य कर जिनमंदिरों के दर्शन करो और इच्छानुकूल फल का अभ्युदय प्राप्त करो ॥64-65॥ इस प्रकार सेनापति जिसे मधुर शब्दों द्वारा प्रसन्न कर रहा था तथा जिसका हृदय अत्यंत हर्षित हो रहा था ऐसी सीता रथ के समीप आई ॥66॥ रथ के समीप आकर उसने कहा कि सदा चतुर्विध संघ की जय हो तथा उत्तम आचार के पालन करने में एकनिष्ठ जिनभक्त रामचंद्र भी सदा जयवंत रहें ॥67॥ यदि हमसे प्रमादवश कोई असुंदर चेष्टा हो गई है तो जिनालय में निवास करने वाले देव मेरे उस समस्त अपराध को क्षमा करें ॥ 68॥ अत्यंत उत्सुक हृदय को धारण करने वाली सीता ने पति में लगे हुए हृदय से समस्त सखीजनों को यह कह कर लौटा दिया कि हे उत्तम सखियो ! तुम लोग सुख से रहो । मैं जिनालयों को नमस्कार कर अभी आती हूँ, अधिक उत्कंठा करना योग्य है ॥66-70॥ इस प्रकार सीता के कहने से तथा पति का आदेश नहीं होने से सुंदर भाषण करने वाली अन्य स्त्रियों ने उसके साथ जाने को इच्छा नहीं की थी ॥71॥
तदनंतर परम प्रमोद को प्राप्त, प्रसन्नमुखी सीता, सिद्धों की नमस्कार कर उज्ज्वल रथ पर आरूढ़ हो गई ॥72॥ रत्न तथा सुवर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ हुई सीता उस समय इस तरह सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि विमान पर आरूढ़ हुई रत्नमाला से अलंकृत देवांगना सुशोभित होती है ॥73॥ कृतांतवक्त्र सेनापति के द्वारा प्रेरित, उत्तम घोड़ों से जुता हुआ वह रथ भरत चक्रवर्ती के द्वारा छोड़े हुए बाण के समान बड़े वेग से जा रहा था ॥74॥ उस समय सूखे वृक्ष पर अत्यंत व्याकुल कौआ, पंख तथा मस्तक को बार-बार कँपाता हुआ विरस शब्द कर रहा था ॥75॥ जो महाशोक से संतप्त थी, जिसने अपने बाल कंपित कर छोड़ दिये थे, तथा जो विलाप कर रही थी ऐसी एक स्त्री सामने आकर रोने लगी ॥76॥ यद्यपि सीता इन सब अशकुनों को देख रही थी तथापि जिनेंद्र भगवान में आसक्त चित्त होने के कारण वह दृढ़ निश्चय के साथ आगे चली जा रही थी ॥77॥ पर्वतों के शिखर, गड्ढे, गुफाएँ और वन इन सब से ऊँची नीची भूमि को उल्लंघन कर वह रथ निमेष मात्र में एक योजन आगे बढ़ जाता था ॥78॥ जिसमें गरुड़ के समान वेगशाली घोड़े जुते थे, जो सफेद पताकाओं से सुशोभित तथा जो कांति में सूर्य के रथ के समान था ऐसा वह रथ विना किसी रोक-टोक के आगे बढ़ता जाता था ॥79॥ जिस पर रामरूपी इंद्र की प्रिया-इंद्राणी आरूढ़ थी, जिसका वेग मनोरथ के समान तीव्र था, और जिसके घोड़े कृतांतवक्त्र रूपी मातलि के द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक शोभित हो रहा था ॥80॥ वहाँ जो तकिया के सहारे उत्तम आसन से बैठी थी ऐसी सीता नाना प्रकार की भूमि को इस प्रकार देखती हुई जा रही थी ॥81॥ वह कहीं गाँव में, कहीं नगर में और कहीं जंगल में कमल आदि के फूलों से अत्यंत मनोहर तालाबों को बड़ी उत्सुकता से देखती जाती थी ॥82॥ वह कहीं वृक्षों की उस विशाल झुरमुट को देखती जाती थी जहाँ मेघरूपी पट से आच्छादित आकाश वाली रात्रि के समान सघन अंधकार था और जिसका पृथकपना बडी कठिनाई से दिखाई पड़ता था ॥ 83॥ कहीं जिसके फल फूल और पत्ते गिर गये थे, जो कृश थी जिसकी जड़े विरली विरली थी, तथा जो छाया (पक्ष में कांति) से रहित थी

ऐसी कुलीन विधवा के समान अटवी को देखती जाती थी ॥84॥ उसने देखा कि कहीं आम्रवृक्ष से लिपटी सुंदर माधवी लता, चपल वेश्या के समान निकटवर्ती अशोक वृक्ष पर अभिलाषा कर रही है ॥85॥ उसने देखा कि कहीं दावानल से नाश को प्राप्त हुए बड़े-बड़े वृक्षों का समूह दुर्जन के वाक्यों से ताड़ित साधु के हृदय के समान सुशोभित नहीं हो रहा है ॥86। कहीं उसने देखा कि मंद मंद वायु से हिलते हुए उत्तम पल्लवों वाली लताओं के समूह से वनराजी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो वसंत की पत्नी नृत्य ही कर रही हो ॥87॥ कहीं उसने देखा कि भीलों के समूह की तीव्र कल-कल ध्वनि से जिसने पक्षियों को उड़ा दिया है ऐसी हरिणों की श्रेणी बहुत दूर आगे निकल गई है।॥88॥ वह कहीं विचित्र धातुओं से निर्मित, कौतुकपूर्ण नेत्रों से, मस्तक ऊपर उठा पर्वत की ऊँची चोटी को देख रही थी ॥89॥ कहीं उसने देखा कि स्वच्छ तथा अल्प जल वाली नदियों से यह अटवी उस संतापवती विरहिणी स्त्री के समान जान पड़ती है कि जिसका पति परदेश गया है और जिसके नेत्र आँसुओं से परिपूर्ण हैं ॥90॥ यह अटवी कहीं तो ऐसी जान पड़ती है मानो नाना पक्षियों के शब्द के बहाने मनोहर वार्तालाप ही कर रही हो और कहीं उज्ज्वल निर्झरों से युक्त होने के कारण ऐसी विदित होती है मानो हर्ष से अट्टहास ही कर रही हो ॥91॥ कहीं मकरंद की लोभी भ्रमरियों से ऐसी जान पड़ती है मानो मद से मंथर ध्वनि में भ्रमरियाँ उसकी स्तुति ही कर रही हों और फलों के भार से वह संकोचवश नम्र हुई जा रही हो ॥92॥ कहीं उसने देखा कि वायु से हिलते हुए उत्तमोत्तम पल्लवों और महाशाखाओं से युक्त वृक्षों के द्वारा यह अटवी विनय प्रदर्शित करने में संलग्न की तरह पुष्पवृष्टि छोड़ रही है ॥93॥ जिसका मन राम की अपेक्षा कर रहा था ऐसी सीता उपर्युक्त क्रियाओं में आसक्त एवं वन्य पशुओं से युक्त अटवी को देखती हुई आगे जा रही थी ॥94॥

तदनंतर उसी समय अत्यंत पुष्ट मधुर शब्द सुनकर वह विचार करने लगी कि क्या यह राम के दुंदुभि का विशाल शब्द है ? ॥95॥ इस प्रकार का तर्क कर तथा आगे गंगा नदी को देखकर उसने जान लिया कि यह अन्य दिशा में सुनाई देने वाला इसी का शब्द है ॥96॥ उसने देखा कि यह गंगानदी कहीं तो भीतर क्रीड़ा करने वाले नाके, मच्छ तथा मकर आदि से विघट्टित है, कहीं उठती हुई बड़ी-बड़ी तरंगों के संसर्ग से इसमें कमल कंपित हो रहे हैं ॥97॥ कहीं इसने किनारे पर स्थित ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को जड़ से उखाड़ डाला है, कहीं इसके वेग ने बड़े-बड़े पर्वतों की चट्टानों के समूह को विदारित कर दिया है ॥98॥ यह समुद्र की गोद में फैली है, राजा सगर के पुत्रों द्वारा निर्मित है, रसातल तक गहरी है, सफेद पुलिनों से शोभित है ॥99॥ फेन के समूह से सहित बड़ी-बड़ी भँवरों से भयंकर है, और समीप में स्थित पक्षियों के समूह से सुशोभित है ॥100॥ पवन के समान वेगशाली वे घोड़े उस गंगानदी को उस तरह पार कर गये जिस तरह कि साधु सम्यग्दर्शन के सार पूर्ण योग से संसार को पार कर जाते हैं ॥101॥

तदनंतर कृतांतवक्त्र सेनापति यद्यपि मेरु के समान सदा निश्चल चित्त रहता था तथापि उस समय वह दया सहित होता हुआ परम विषाद को प्राप्त हो गया ॥102॥ कुछ भी कहने के लिए जिसकी आत्मा अशक्त थी, जो महादुःख से ताड़ित हो रहा था, तथा जिसके बलात् आँसू निकल रहे थे ऐसा कृतांतवक्त्र अपने आप पर नियंत्रण करने तथा खड़े होने के लिए असमर्थ हो गया ॥103॥ तदनंतर जिसका समस्त शरीर ढीला पड़ गया था और जिसकी कांति नष्ट हो गई थी ऐसा सेनापति रथ खड़ा कर और मस्तक पर दोनों हाथ रखकर जोर-जोर से रुदन करने लगा ॥104॥ तत्पश्चात् जिसका हृदय टूट रहा था ऐसी सती सीता ने कहा कि हे कृतांतवक्त्र ! तू अत्यंत दुःखी मनुष्य के समान इस तरह क्यों रो रहा है ? ॥105॥ तू इस अत्यधिक हर्ष के अवसर में मुझे भी विषाद युक्त कर रहा है। बता तो सही कि तू इस निर्जन महावन में क्यों रो रहा है ॥106॥

स्वामी का आदेश पालन करना चाहिए अथवा अपने नियोग के अनुसार यथार्थ बात अवश्य कहना चाहिए इन दो कारणों से जिस किसी तरह रोना रोक कर उसने यथार्थ बात का निरूपण किया ॥107। उसने कहा कि हे शुभे ! विष, अग्नि अथवा शस्त्र के समान दुर्जनों का कथन सुनकर जो अपकीर्ति से अत्यधिक भयभीत हो गये थे ऐसे श्रीराम ने दुःख से छूटने योग्य स्नेह छोड़कर दोहलों के बहाने हे देवि ! तुम्हें उस तरह छोड़ दिया है जिस तरह कि मुनि रति को छोड़ देते हैं ॥108-206॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि ऐसा कोई प्रकार नहीं रहा जिससे कि लक्ष्मण ने आपके विषय में उन्हें समझाया नहीं हो तथापि उन्होंने अपनी हठ नहीं छोड़ी ॥110॥ जिस प्रकार धर्म के संबंध से रहित जीव की सुख स्थिति को कहीं शरण नहीं प्राप्त होता उसी प्रकार उन स्वामी के निःस्नेह होने पर आपके लिए कहीं कोई शरण नहीं जान पड़ता ॥111॥ हे देवि ! तेरे लिए न माता शरण है, न भाई शरण है, और न कुटुंबीजनों का समूह ही शरण है। इस समय तो तेरे लिए मृगों से व्याप्त यह वन ही शरण है ॥112॥

तदनंतर सीता उसके वचन सुन हृदय में वज्र से ताड़ित के समान अत्यधिक दुःख से व्याप्त होती हुई मोह को प्राप्त हो गई ॥113॥ बड़ी

कठिनाई से चेतना प्राप्त कर उसने लड़खड़ाते अक्षरों वाली वाणी में कहा कि कुछ पूछने के लिए मुझे एक बार स्वामी के दर्शन करा दो ॥114। इसके उत्तर में कृतांतवक्त्र ने कहा कि हे देवि ! इस समय तो वह नगरी बहुत दूर रह गई है अतः अत्यधिक कठोर आज्ञा देने वाले स्वामी-राम को किस प्रकार देख सकती हो ? ॥115॥ तदनंतर सीता यद्यपि अश्रुजल की धारा में मुखकमल का प्रक्षालन कर रही थी तथापि अत्यधिक स्नेह रस से आक्रांत हो उसने यह कहा कि ॥116॥ हे सेनापते ! तुम मेरी ओर से राम से यह कहना कि हे प्रभो ! आपको मेरे त्याग से उत्पन्न हुआ विषाद नहीं करना चाहिए ॥117॥ हे महापुरुष ! परम धैर्य का अवलंबन कर सदा पिता के समान न्याय वत्सल हो प्रजा की अच्छी तरह रक्षा करना ॥118॥ क्योंकि जिस प्रकार प्रजा पूर्ण कलाओं को प्राप्त करने वाले शरद् ऋतु के चंद्रमा की सदा इच्छा करती है-उसे चाहती है उसी प्रकार कलाओं के पार को प्राप्त करने वाले एवं आह्लाद के कारणभूत राजा की प्रजा सदा इच्छा करती है-उसे चाहती है ॥119॥ जिस सम्यग्दर्शन के द्वारा भव्य जीव दुःखों से भयंकर संसार से छूट जाते हैं उस सम्यग्दर्शन की अच्छी तरह आराधना करने के योग्य हो ॥120॥ हे राम ! साम्राज्य की अपेक्षा वह सम्यग्दर्शन ही अधिक माना जाता है क्योंकि साम्राज्य तो नष्ट हो जाता है परंतु सम्यग्दर्शन स्थिर सुख को देने वाला है ॥121॥ हे पुरुषोत्तम ! अभव्यों के द्वारा की हुई जुगुप्सा से भयभीत होकर तुम्हें वह सम्यग्दर्शन किसी भी तरह नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वह अत्यंत दुर्लभ है ॥122॥ हथेली में आया रत्न यदि महासागर में गिर जाता है तो फिर वह किस उपाय से प्राप्त हो सकता है ? ॥123॥ अमृत फल को महा आपत्ति से भयंकर कुएँ में फेंककर पश्चात्ताप से पीड़ित बालक परम दुःख को प्राप्त होता है ॥124॥ जिसके अनुरूप जो होता है वह उसे बिना किसी प्रतिबंध के कहता ही है क्योंकि इस संसार का मुख बंधन करने के लिए कौन समर्थ है ? ॥125॥ हे गुणभूषण ! यद्यपि आत्म हित को नष्ट करने वाली अनेक बातें आप श्रवण करेंगे तथापि अहिल (पागल) के समान उन्हें हृदय में नहीं धारण करना; विचारपूर्वक ही कार्य करना ॥126॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि अत्यंत तेजस्वी रहता है तथापि संसार के समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने से यथाभूत है एवं कभी विकार को प्राप्त नहीं होता इसलिए लोगों को प्रिय है उसी प्रकार यद्यपि आप तीव्र शासन से युक्त हो तथापि जगत् के समस्त पदार्थों को ठीक-ठीक जानने के कारण यथाभूत यथार्थ रूप रहना एवं कभी विकार को प्राप्त नहीं होने से सूर्य के समान सबको प्रिय रहना ॥127॥ दुष्ट मनुष्य को कुछ देकर वश करना, आत्मीय जनों को प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रु को उत्तम शील **अर्थ**ात् निर्दोष आचरण से वश करना और मित्र को सद्भाव पूर्वक की गई सेवाओं से अनुकूल रखना ॥128॥ क्षमा से क्रोध को, मार्दव से चाहे जहाँ होने वाले मान को, आर्जव से माया को और धैर्य से लोभ को कृश करना ॥129-130॥ हे नाथ ! आप तो समस्त शास्त्रों में प्रवीण हो अतः आपको उपदेश देना योग्य नहीं है, यह जो मैंने कहा है वह आपके प्रेम रूपी ग्रह से संयोग रखने वाले मेरे हृदय की चपलता है ॥131॥ हे स्वामिन् ! आपके वशीभूत होने से अथवा परिहास के कारण यदि मैंने कुछ अविनय किया हो तो उस सबको क्षमा कीजिये ॥132॥ हे प्रभो ! जान पड़ता है कि आपके साथ मेरा दर्शन इतना ही था इसलिए बार-बार कह रही हूँ कि मेरी प्रवृत्ति उचित हो अथवा अनुचित; सब क्षमा करने योग्य है ॥133॥
जो रथ के मध्य से पहले ही उतर चुकी थी ऐसी सीता इस प्रकार कहकर तृण तथा पत्थरों से व्याप्त पृथिवी पर गिर पड़ी ॥134॥ उस पृथिवी पर पड़ी, मूर्च्छा से निश्चल सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नों का समूह ही बिखर गया हो ॥535॥ चेष्टाहीन सीता को देखकर सेनापति ने अत्यंत दुःखी हो इस प्रकार विचार किया कि यह प्राणों को बड़ी कठिनाई से धारण कर सकेगी ॥136॥ हिंसक जीवों के समूह से भरे हुए इस महा भयंकर वन में धीर वीर मनुष्य भी जीवित रहने की आशा नहीं रख सकता ॥137॥ इस विकट वन में इस मृगनयनी को छोड़कर मैं वह स्थान नहीं देखता जहाँ मुझे शांति प्राप्त हो सकेगी ॥138॥ इस ओर अत्यंत भयंकर निर्दयता है और उस ओर स्वामी की सुदृढ़ आज्ञा है । अहो ! मैं पापी दुःख रूपी महाआवर्त के बीच आ पड़ा हूँ ॥136॥ जिसमें इच्छा के विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतंत्र हो जाती है, और क्षुद्र मनुष्य ही जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिंद्य दासवृत्ति को धिक्कार है ॥140॥ जो यंत्र की चेष्टाओं के समान है तथा जिसकी आत्मा निरंतर दुःख ही उठाती है ऐसे सेवक के जीवन की अपेक्षा कुक्कुर का जीवन बहुत अच्छा है ॥141॥ जो नरेंद्र **अर्थ**ात राजा (पक्ष में मांत्रिक) की शक्ति के आधीन है तथा निंद्य नाम का धारक है ऐसा सेवक पिशाच के समान क्या नहीं करता है ? और क्या नहीं बोलता है ? ॥142॥ जो चित्र लिखित धनुष के समान है, जो कार्य रहित गुण अर्थात डोरी (पक्ष में ज्ञानादि ) से सहित है तथा जिसका शरीर निरंतर नम्र रहता है ऐसे भृत्य का जीवन निंद्य जीवन है ॥143॥ सेवक कचड़ा घर के समान है। जिस प्रकार लोग कचड़ा घर में कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित्त दूर हटा लेते हैं उसी प्रकार लोग सेवक से काम लेकर पीछे उससे चित्त हटा लेते हैं उसके गौरव को भूल जाते हैं, जिस प्रकार कचड़ा घर निर्माल्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओं को धारण करता है उसी प्रकार सेवक भी

स्वामी की उपभुक्त वस्तुओं को धारण करता है। इस प्रकार सेवक नाम को धारण करने वाले मनुष्य के जीवित रहने को बार-बार धिक्कार है ॥144॥ जो अपने गौरव को पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करने के लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुला यंत्र की तुल्यता को धारण करने वाले भृत्य का जीवित रहना धिक्कार पूर्ण है ॥145॥ जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निज की इच्छा से रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टी के पुतले के समान क्रियाहीन है ऐसे सेवक का जीवन किसी को प्राप्त न हो ॥146॥ जो विमान अर्थात् व्योमयान ( पक्ष में मान रहित ) होकर भी गति से रहित है तथा जो गुरुता के साथ-साथ निरंतर नीचे जाता है ऐसे भृत्य के जीवन को धिक्कार है ॥147॥ जो स्वयं शक्ति से रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मद से शून्य है और परतंत्र है ऐसे भृत्य के जीवन को धिक्कार है ॥148॥ जिसके उदय में भृत्यता करनी पड़ती है ऐसे कर्म से मैं विवश हो रहा हूँ इसीलिए तो इस दारुण अवसर के समय भी इस भृत्यता को नहीं छोड़ रहा हूँ ॥149॥ इस प्रकार विचार कर धर्म बुद्धि के समान सीता को छोड़कर सेनापति लज्जित होता हुआ अयोध्या के सम्मुख चला गया ॥150॥ तदनंतर इधर जिसे चेतना प्राप्त हुई थी ऐसी सीता अत्यंत दुःखी होती हुई यूथ से बिछुड़ी हरिणी के समान रोदन करने लगी ॥151॥ करुण रोदन करनेवाली सीता के दुःख से दुःखी होकर वृक्षों के समूह ने भी मानो पुष्प छोड़ने के बहाने ही रोदन किया था ॥152॥ तदनंतर महाशोक से वशीभूत सीता स्वभाव सुंदर स्वर से विलाप करने लगी ॥153॥ वह कहने लगी कि हे कमललोचन ! हा पद्म ! हा नरोत्तम ! हा प्रभो ! हा देव ! उत्तर देओ; मुझे सांत्वना करो ॥154॥ आप निरंतर उत्तम चेष्टा के धारक हैं, सद्गुणों से सहित हैं, सहृदय हैं और महापुरुषता से युक्त हैं। मेरे त्याग में आपका लेश मात्र भी दोष नहीं है ॥155॥ मैंने पूर्व भव में जो स्वयं कर्म किया था उसी का यह फल प्राप्त हुआ है अतः यह बहुत भारी दुःख मुझे अवश्य भोगना चाहिए ॥156॥ जब मेरा अपना किया कर्म उदय में आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवार के लोग क्या कर सकते हैं ॥157॥ निश्चित ही मैंने पूर्व भव में पाप का उपार्जन किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी निर्जन वन में परम दुःख को प्राप्त हुई हूँ ॥158॥ निश्चित ही मैंने गोष्ठियों में किसी का मिथ्या दोष कहा होगा जिसके उदय से मुझे यह ऐसा संकट प्राप्त हुआ है ॥159॥ निश्चित ही मैने अन्य जन्म में गुरु के समक्ष व्रत लेकर भग्न किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥160॥ अथवा अन्य भव में मैंने विष फल के समान कठोर वचनों से किसी का तिरस्कार किया होगा इसीलिए मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है ॥161॥ जान पड़ता है कि मैंने अन्य जन्म में कमलवन में स्थित चकवा-चकवी के युगल को अलग किया होगा इसीलिए तो मैं भर्ता से रहित हुई हूँ ॥162॥ अथवा जो कमल आदि से विभूषित सरोवर में निवास करता था, जो उत्तम पुरुषों की गमन संबंधी लीला में विलंब उत्पन्न करनेवाला था, जो अपने कल-कूजन और सौंदर्य में स्त्रियों की उपमा प्राप्त करता था, जो लक्ष्मण के महल के समान उत्तम कांति से युक्त था, और जिसके मुख तथा चरण कमल के समान लाल थे ऐसे हंस-हंसियों के युगल को मैंने पूर्वभव में अपनी कुचेष्टा से जुदा-जुदा किया होगा इसीलिए तो मैं अभागिनी इस घोर निष्कासन को प्राप्त हुई हूँ घर से अलग की गई हूँ ॥163-165॥ अथवा गुंजा फल के अर्ध भाग के समान जिसके नेत्र थे, परस्पर एक दूसरे के लिए जिसने अपना हृदय सौंप रक्खा था, जो काला गुरु चंदन से उत्पन्न हुए सघन धूम के समान धूसर वर्ण था, जो सुख से क्रीडा कर रहा था, और कंठ में मनोहर अव्यक्त शब्द विद्यमान था ऐसे कबूतर-कबूतरियों के युगल को मैंने पाप पूर्ण चित्त से जुदा किया होगा। अथवा अनुचित स्थान में उसे रक्खा होगा अथवा बाँधा होगा अथवा मारा होगा, अथवा सन्मान-लालन-पालन आदि से रहित किया होगा इसीलिए मै ऐसे दुःख को प्राप्त हुई हूँ ॥166-168॥ अथवा जब सब वृक्ष फूलों से युक्त हो जाते हैं ऐसे रमणीय वसंत के समय कोकिल और कोकिलाओं के युगल को मैंने पृथक् पृथक् किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥166॥ अथवा मैंने क्षमा के धारक, सदाचार के पालक, इंद्रियों को जीतने वाले तथा विद्वानों के द्वारा वंदनीय मुनियों की निंदा की होगी जिसके फलस्वरूप इस महादुःख को प्राप्त हुई हूँ ॥170॥ आज्ञा मिलते ही हर्षित होने वाले उत्तम भृत्यों के समूह जिसकी सदा सेवा करते थे ऐसी जो मैं पहले स्वर्ग तुल्य घर में रहती थी वह मैं इस समय बंधुजन से रहित इस सघन वन में कैसे रहूँगी ? मेरे पुण्य का समूह क्षय हो गया है, मैं दुःखों के सागर में डूब रही हूँ तथा मैं अत्यंत पापिनी हूँ ॥171॥ जिस पर नाना रत्नों की किरणों का प्रकाश फैल रहा था, जो उत्तर चादर से आच्छादित था, महा रमणीय था तथा सब प्रकार के उपकरणों से सहित था ऐसे उत्तम शयन पर सुख से निद्रा का सेवन करती थी तथा प्रातःकाल के समय बाँसुरी, त्रिसरिका और वीणा के संगीतमय मधुर स्वर से जागा करती थी ॥172-174॥ वही मैं अपयश रूपी दावानल से जली दुःखिनी, श्री रामदेव की प्रधान रानी पापिनी अकेली इस दुःखदायी वन के बीच कीड़े, कठोर डाभ और तीक्ष्ण पत्थरों के समूह से युक्त पृथिवीतल में कैसे रहूँगी? ॥ 175-176॥ यदि ऐसी अवस्था पाकर भी ये प्राण मुझमें स्थित हैं तब तो कहना चाहिए कि मेरे प्राण वज्र से निर्मित हैं ॥177॥ अहो

हृदय ! ऐसी अवस्था को पाकर भी जो तुम सौ टुकड़े नहीं हो जाते हो उससे जान पड़ता है कि तुम्हारे समान दूसरा साहसी नहीं है ॥178॥ क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ! किसका आश्रय लूँ ? कैसे ठहरूँ ? हाय मातः ! यह ऐसा क्यों हुआ ? ॥176॥ हे सद्गुणों के सागर राम ! हा भक्त लक्ष्मण ! हा पिता! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो ? हा मात ! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करती हो ? ॥180॥ अहो विद्याधरों के अधीश भाई कुंडलमंडित ! यह मैं कुलक्षणा दुःखरूपी आवर्त में भ्रमण करती यहाँ पड़ी हूँ ॥181॥ खेद है कि मैं पापिनी पति के साथ बड़े वैभव से, पृथिवी पर जो जिनमंदिर हैं उनमें जिनेंद्र भगवान की पूजा नहीं कर सकी ॥182॥

अथानंतर जब विह्वल चित्त सीता विलाप कर रही थी तब एक वज्रजंघ नामक राजा उस वन के मध्य आया ॥183॥ वज्रजंघ पुंडरीकपुर का स्वामी था, हाथी पकड़ने के लिए उस वन में आया था और हाथी पकड़कर बड़े वैभव से लौटकर वापिस आ रहा था ॥184॥ उसकी सेना के अग्रभाग में जो सैनिक उछलते हुए जा रहे थे वे यद्यपि अपने हाथों में नाना प्रकार के शस्त्र लिये थे, सुंदर थे, शूरवीर थे और छुरियाँ बाँधे हुए थे तथापि सीता का वह अतिशय मनोहर रोदन का शब्द सुनकर वे संशय में पड़ गये तथा इतने भयभीत हो गये कि एक डग भी आगे नहीं दे सके ॥185-186॥ सेना के आगे चलने वाला जो घोड़ों का समूह था वह भी रुक गया तथा उस रोदन का शब्द सुन आशंका से युक्त घुड़सवार भी उसे प्रेरित नहीं कर सके ॥187॥ वे विचार करने लगे कि जहाँ मृत्यु के कारणभूत अनेक प्राणी विद्यमान हैं ऐसे इस अत्यंत भयंकर वन में यह स्त्री के रोने का मनोहर शब्द हो रहा है सो यह बड़ी विचित्र क्या बात है ? ॥188॥ जो मृग, भैंसा, भेड़िया, चीता और तेंदुआ से चंचल है जहाँ अष्टापद और सिंह घूम रहे हैं, तथा जो सुअरों की दाँढों से भयंकर है ऐसे इस वन के मध्य में अत्यंत निर्मल चंद्रमा की रेखा के समान यह कौन हृदय के हरने में निपुण रो रही है ? ॥189॥ क्या यह सौधर्म स्वर्ग से इंद्र के द्वारा छोड़ी और पृथिवीतल पर आई हुई कोई इंद्राणी है अथवा मनुष्यों के सुख संगीत को नष्ट करने वाली एवं प्रलय के कारण को उत्पन्न करने वाली कोई देवी कहीं से आ पहुँची है ? ॥190॥ इस प्रकार जिसे तर्क उत्पन्न हो रहा था, जिसने अपनी चेष्टा छोड़ दी थी, वेग से चलने वाले मूल पुरुष जिसमें आकर इकट्ठे हो रहे थे, जिसमें अत्यधिक बाजे बज रहे थे, जो किसी बड़ी भँवर के समान जान पड़ती थी और जो आश्चर्य से युक्त थी ऐसी वह विशाल सेना निश्चल खड़ी हो गई ॥191॥

घोड़ों के समूह ही जिसमें मगर थे, तेजस्वी पैदल सैनिक ही जिसमें मीन थे, हाथियों के समूह ही जिसमें ग्राह थे, जो प्रचंड शब्द से युक्त थी और सूर्य की किरणों के पड़ने से चमकती हुई तलवार रूपी तरंगों से जो भय उत्पन्न करने वाली थी ऐसी वह सेना समुद्र के समान जान पड़ती थी ॥192॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा विरचित श्री पद्मपुराण में सीता के निर्वासन, विलाप और वज्रजंघ के आगमन का वर्णन करनेवाला सतानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥97॥

## सीता को सांत्वना

अठानवेवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर आगे महाविद्या से रुकी गंगानदी के समान चक्राकार परिणत सेना को देख, हाथी पर चढ़े हुए वज्रजंघ ने निकटवर्ती पुरुषों से पूछा कि तुम लोग इस तरह क्यों खड़े हो गये ? गमन में किसने किस कारण रुकावट डाली ? और तुम लोग व्याकुल क्यों हो रहे हो ? ॥1-2॥ निकटवर्ती पुरुष जब तक परंपरा से सेना के रुकने का कारण पूछते हैं तब तक कुछ निकट बढ़कर राजा ने स्वयं रोने का शब्द सुना ॥3॥ समस्त लक्षणों में जिसने श्रम किया था ऐसा राजा वज्रजंघ बोला कि जिस स्त्री का यह अत्यंत मनोहर रोने का शब्द सुनाई पड़ रहा है वह बिजली के मध्य भाग के समान कांति वाली, पतिव्रता तथा अनुपम गर्भिणी है। यही नहीं उसे निश्चय ही किसी श्रेष्ठ पुरुष की स्त्री होना चाहिए ॥4-5॥ हे देव ! ऐसा ही है आपके इस कथन में संदेह कैसे हो सकता है ? क्योंकि आपने पहले अनेक आश्चर्यजनक कार्य देखे हैं ॥6॥

इस प्रकार सेवकों और राजा वज्रजंघ के बीच जब तक यह वार्ता होती है तब तक आगे चलने वाले कुछ साहसी पुरुष सीता के समीप जा पहुँचे ॥7॥ उन्होंने पूछा कि हे देवि ! इस निर्जन वन में तुम कौन हो ? तथा असंभाव्य शोक को प्राप्त हो यह करुण विलाप क्यों कर रही हो ? ॥8॥ इस संसार में आपके समान शुभ आकृतियाँ दिखाई नहीं देती । क्या तुम देवी हो ? अथवा कोई अन्य उत्तम सृष्टि हो ? ॥9॥ जब कि तुम इस प्रकार के क्लेश रहित उत्तम शरीर को धारण कर रही हो तब यह बिलकुल ही नहीं जान पड़ता कि तुम्हें यह दूसरा दुःख

क्या है ? ॥10॥ हे कल्याणि ! यदि यह बात कहने योग्य है तो कहो, हम लोगों को बड़ा कौतुक है । ऐसा होने पर कदाचित् दुःख का अंत भी हो सकता है ॥11॥

तदनंतर महाशोक के कारण जिसे समस्त दिशाएँ अंधकार रूप हो गई थी ऐसी सीता अचानक नाना शस्त्रों की किरणों से देदीप्यमान उन पुरुषों को देखकर भय से एकदम काँप उठी । उसके नेत्र चश्चल हो गये और वह इन्हें आभूषण देने के लिए उद्यत हो गई ॥12-13॥ तदनंतर यथार्थ बात के समझने में मूढ पुरुषों ने भयभीत होकर पुनः कहा कि हे देवि ! भय तथा शोक छोड़ो, धीरता का आश्रय लेओ॥ 14॥ हे सरले ! इन आभूषणों से हमें क्या प्रयोजन है ? ये तुम्हारे ही पास रहें। भाव योग को प्राप्त होओ **अर्थ**ात् हृदय को स्थिर करो और बताओ कि विह्वल क्यों हो ? दुःखी क्यों हो रही हो ? ॥15॥ जो समस्त राजधर्म से सहित है तथा पृथिवी पर वज्रजंघ नाम से प्रसिद्ध है ऐसा यह श्रीमान् उत्तम पुरुष यहाँ आया है ॥13॥ सावधान चित्त से सहित यह वज्रजंघ सदा उस सम्यग्दर्शन रूपी रत्न को हृदय से धारण करता है जो सादृश्य से रहित है, अविनाशी है, अनाधेय है, अहार्य है, श्रेष्ठ सुख को देने वाला है, शंकादि दोषों से रहित है, सुमेरु के समान निश्चल है और उत्कृष्ट आभूषण स्वरूप है॥17-18॥ हे साध्वि ! हे प्रशंसनीये ! जिसके ऐसा सम्यग्दर्शन सुशोभित है उसके गुणों का हमारे जैसे पुरुष कैसे वर्णन कर सकते हैं ? ॥16। वह जिन शासन के रहस्य को जाननेवाला है, शरण में आये हुए लोगों से स्नेह करने वाला है, परोपकार में तत्पर है, दया से आर्द्र चित्त है, विद्वान् है, विशुद्ध हृदय है, निंद्य कार्यों से निवृत्त बुद्धि है, पिता के समान रक्षक है, प्राणिहित में तत्पर है, दीन-हीन आदि का तथा खास कर मातृ-जाति का रक्षक है, शुद्ध कार्य को करनेवाला है, शत्रुरूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए महावन है। शस्त्र और शास्त्र का अभ्यासी है, शांति कार्य में थकावट से रहित है, परस्त्री को अजगर सहित कूप के समान जानता है, संसार-पात के भय से धर्म में सदा अत्यंत आसक्त रहता है, सत्यवादी है और अच्छी तरह इंद्रियों को वश करनेवाला है ॥ 20-24॥ हे देवि ! जो इसके समस्त गुणों को कहना चाहता है वह मानो मात्र शरीर से समुद्र को तैरना चाहता है ॥25॥ जब तक उन सबके बीच मन को बाँधने वाली यह कथा चलती है तब तक कुछ आश्चर्य से युक्त राजा वज्रजंघ भी वहाँ आ पहुँचा ॥26॥ हस्तिनी से उतर कर योग्य विनय धारण करते हुए राजा वज्रजंघ ने स्वभाव शुद्ध दृष्टि से देखकर इस प्रकार कहा कि ॥27॥ अहो ! जान पड़ता है कि वह पुरुष वज्रमय तथा चेतनाहीन है इसलिए इस वन में तुम्हें छोड़ता हुआ वह हजार टूक नहीं हुआ है ॥28॥ हे शुभाशये ! अपनी इस अवस्था का कारण कहो, निश्चिंत होओ, डरो मत तथा गर्भ को कष्ट मत पहुँचाओ ॥29॥

तदनंतर सती सीता यद्यपि कुछ कहने के लिए क्षण भर को दुःख से विरत हुई थी तथापि शोकरूपी विशाल चक्र से हृदय के अत्यंत पीड़ित होने के कारण वह पुनः रोने लगी ॥30॥ तत्पश्चात् मधुर भाषण करने वाले राजा ने जब बार बार पूछा तब वह जिस किसी तरह शोक को रोककर दुःखी हंस के समान गद्गद वाणी से बोली ॥31॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यदि तुम्हें जानने की इच्छा है तो इस ओर मन लगाओ क्योंकि मुझ अभागिनी की यह कथा अत्यंत लंबी है ॥32॥ मैं राजा जनक की पुत्री, भामंडल की बहिन, दशरथ की पुत्रवधू और राम की पत्नी सीता हूँ ॥33॥ राजा दशरथ, केकया के वरदान से भरत के लिए अपना पद देकर तपस्वी के पद को प्राप्त हो गये ॥34॥ फलस्वरूप राम लक्ष्मण को मेरे साथ वन को जाना पड़ा सो हे पुण्यचेष्टित ! जो कुछ हुआ वह सब तुमने सुना होगा ॥35॥ राक्षसों के अधिपति रावण ने मेरा हरण किया, स्वामी राम का सुग्रीव के साथ समागम हुआ और ग्यारहवें दिन समाचार पाकर मैंने भोजन किया ॥ 36॥ आकाशगामी वाहनों से समुद्र तैरकर तथा युद्ध में रावण को जीतकर मेरे पति मुझे पुनः वापिस ले आये ॥37॥ भरत चक्रवर्ती के समान भरत ने राज्यरूपी पंक का परित्याग कर परम दिगंबर अवस्था धारण कर ली और कर्मरूपी धूलि को उड़ाकर निर्वाणपद प्राप्त किया ॥38॥ पुत्र के शोक से दुःखी केकया रानी दीक्षा लेकर तथा अच्छी तरह तपश्चरण कर स्वर्ग गई ॥39॥ पृथिवी तल पर मर्यादाहीन दुष्ट-हृदय मनुष्य निःशंक होकर मेरा अपवाद कहने लगे कि रावण ने परम विद्वान् होकर परस्त्री ग्रहण की और धर्मशास्त्र के ज्ञाता राम उसे वापिस लाकर पुनः सेवन करने लगे ॥40-41॥ दृढ़ निश्चय को धारण करने वाला राजा जिस दशा में प्रवृत्ति करता है वही दशा हम लोगों के लिए भी हितकारी है इसमें दोष नहीं है ॥42॥ कृश शरीर को धारण करने वाली वह मैं जब गर्भवती हुई तब मैंने ऐसा विचार किया कि पृथिवी तल पर जितने जिनबिंब हैं उन सबकी मैं पूजा करूँ ॥43॥ तदनंतर अत्यधिक वैभव से सहित स्वामी राम, जिनेंद्र भगवान के अतिशय स्थानों में जो जिनबिंब थे उनकी वंदना करने के लिए मेरे साथ उद्यत हुए ॥44॥ उन्होंने कहा कि हे सीते ! सर्व प्रथम कैलास पर्वत पर जाकर जगत् को आनंदित करने वाले श्री ऋषभ जिनेंद्र की पूजा कर उन्हें नमस्कार करेंगे ॥45॥ फिर इस अयोध्या नगरी में जन्मभूमि में प्रतिष्ठित जो ऋषभ आदि तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं उन्हें उत्तम वैभव के साथ नमस्कार करेंगे ॥46॥ फिर कांपिल्य नगर में

श्री विमलनाथ को भावपूर्वक नमस्कार करने के लिए जायेंगे और उसके बाद रत्नपुर नगर में धर्म के सद्भाव का उपदेश देने वाले श्रीधर्मनाथ को नमस्कार करने के लिए चलेंगे ॥47॥ श्रावस्ती नगरी में शंभवनाथ को, चंपापुरी में वासुपूज्य को, काकंदी में पुष्पदंत को, कौशांबी में पद्मप्रभ को, चंद्रपुरी में चंद्रप्रभ को, भद्रिकावनि में शीतलनाथ को, मिथिला में मल्लि जिनेश्वर को, वाराणसी में सुपार्श्व को, सिंहपुरी में श्रेयान्स को, हस्तिनापुरी में शांति कुंथु और अरनाथ को और हे देवि ! उसके बाद कुशाग्रनगर-राजगृही में उन सर्वज्ञ मुनिसुव्रतनाथ की वंदना करने के लिए चलेंगे जिनका कि आज भी यह अत्यंत उज्ज्वल धर्मचक्र देदीप्यमान हो रहा है ॥48-51॥ तदनंतर हे वैदेहि ! जिनेंद्र भगवान के अतिशयों के योग से अत्यंत पवित्र, सर्वत्र प्रसिद्ध देव असुर और गंधर्वों के द्वारा स्तुत एवं प्रणत जो अन्य स्थान हैं तत्पर चित्त होकर उन सबकी वंदना करेंगे ॥52-53॥ तदनंतर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो शीघ्र ही आकाश को उल्लंघ कर मेरे साथ सुमेरु के शिखरों पर विद्यमान जिन प्रतिमाओं की पूजा करना ॥54॥ हे प्रिये ! भद्रशाल वन, नंदन वन और सौमनस वन में उत्पन्न पुष्पों से जिनेंद्र भगवान की पूजा करना ॥55॥ फिर हे दयिते ! इस लोक में जो कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं उन सबकी वंदना कर अयोध्या वापिस आयेंगे ॥56॥

अर्हंत भगवान के लिए भाव-पूर्वक किया हुआ एक ही नमस्कार इस प्राणी को जंमांतर में किये हुए पाप से छुड़ा देता है ॥57॥ हे कांते ! तुम्हारी इच्छा से महापवित्र चैत्यालयों के दर्शन कर लूँगा इस बात का मेरे मन में भी परम संतोष है ॥58॥ पहले जब यह काल अज्ञानांधकार से आच्छादित था तथा कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने से मनुष्य एकदम अकिंचन हो गये थे तब जिन आदिनाथ भगवान के द्वारा यह जगत् उस तरह सुशोभित हुआ था जिस तरह की चंद्रमा से सुशोभित होता है ॥59॥ जो प्रजा के अद्वितीय स्वामी थे, ज्येष्ठ थे, तीन लोक के द्वारा वंदित थे, संसार से डरने वाले भव्यजीवों के लिए मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले थे ॥60॥ जिनका अष्ट प्रातिहार्य रूपी ऐश्वर्य नाना प्रकार के अतिशयों से सुशोभित था, निरंतर परम आश्चर्य से युक्त था और सुरासुरों के मन को हरने वाला था ॥61॥ जो भव्य जीवों के लिए जीवादि निर्दोष तत्त्वों का स्वरूप दिखाकर अंत में कृतकृत्य हो निर्वाण पद को प्राप्त हुए थे ॥62॥ चक्रवर्ती भरत ने कैलास पर्वत पर सर्वरत्नमय दिव्य मंदिर बनवा कर उन भगवान की जो प्रतिमा विराजमान कराई थी वह सूर्य के समान देदीप्यमान है, पाँच सौ धनुष ऊँची है, दिव्य है, तथा आज भी उसकी महापूजा गंधर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि सदा यत्नपूर्वक करते है ॥ 63-65 जो ऋषभदेव भगवान् अनंत हैं--परम पारिणामिक भाव की अपेक्षा अंत रहित हैं, परम हैं-अनंत चतुष्टयरूप उत्कृष्ट लक्ष्मी से युक्त हैं, सिद्ध हैं-कृतकृत्य हैं, शिव हैं-आनंदरूप हैं, ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत हैं, कर्ममल से रहित होने के कारण अमल हैं, प्रशस्तरूप होने से अर्हंत हैं, त्रैलोक्य की पूजा के योग्य हैं, स्वयंभू हैं और स्वयं प्रभु हैं। मैं उन भगवान् ऋषभदेव की कैलास नामक उत्तम पर्वत पर जा कर तुम्हारे साथ कब पूजा करूँगा और कब स्तुति करूँगा ? ॥66-67॥ इस प्रकार निश्चय कर बहुत भारी धैर्य से उन्होंने मेरे साथ प्रस्थान कर दिया था परंतु बीच में ही दावानल के समान दुःसह लोकापवाद को वार्ता आ गई ॥68॥ तदनंतर विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मेरे स्वामी ने विचार किया कि यह स्वभाव से कुटिल लोक अन्य प्रकार से वश नहीं हो सकते ॥66॥ इसलिए प्रिय जन का परित्याग करने पर यदि मृत्यु का भी सेवन करना पड़े तो अच्छा है परंतु कल्पांत काल तक स्थिर रहनेवाला यह यश का उपघात श्रेष्ठ नहीं है ॥70॥ इस तरह यद्यपि मैं निर्दोष हूँ तथापि लोकापवाद से डरने वाले उन बुद्धिमान स्वामी ने मुझे इस बीहड़ वन में छुड़वा दिया है ॥71॥ सो जो विशुद्ध कुल में उत्पन्न है, उत्तम हृदय का धारक है और सर्व शास्त्रों का ज्ञाता है ऐसे क्षत्रिय की यह चेष्टा होती ही है ॥72॥ इस तरह वह दीन सीता अपने निर्वाण से संबंध रखने वाला अपना सब समाचार कह कर शोकाग्नि से संतप्त होती हुई पुनः रोने लगी ॥73॥

तदनंतर जिसका मुख आँसुओं के जल से पूर्ण था तथा जो पृथिवी की धूलि से सेवित थी ऐसी उस सीता को देखकर उत्तम सत्त्वगुण का धारक राजा वज्रजंघ भी क्षोभ को प्राप्त हो गया ॥74॥ तत्पश्चात् उसे राजा जनक की पुत्री जान राजा वज्रजंघ ने पास जाकर बड़े आदर से उसे सांत्वना दी थी ॥75॥ साथ ही यह कहा कि हे देवि ! शोक छोड़, रो मत, तू जिन शासन की महिमा से अवगत है । दुःख का बढ़ानेवाला जो आर्तध्यान है उसे क्यों करती है ? ॥76॥ हे वैदेहि ! क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि संसार की स्थिति ऐसी ही अनित्य अशरण एकत्व और अन्यत्व आदि रूप है ॥77॥ जिससे तू मिथ्यादृष्टि स्त्री के समान बार-बार शोक कर रही है। हे सुंदर भावना वाली ! तूने तो निरंतर साधुओं से यथार्थ बात को सुना है ॥78॥ निश्चय से सम्यग्दर्शन को न जान कर संसार भ्रमण करने में आसक्त मूढ हृदय प्राणी ने क्या-क्या दुःख नहीं प्राप्त किया है ? ॥79॥ संसार रूपी सागर में वर्तमान तथा क्लेश रूप भँवर में निमग्न हुए इस जीव ने अनेकों बार संयोग और वियोग प्राप्त किये हैं ॥80॥ तिर्यंच योनियों में इस जीव ने खेचर जलचर और स्थलचर होकर वर्षा शीत और आतप आदि से

उत्पन्न होनेवाला दुःख सहा है ॥81॥ मनुष्य पर्याय में भी अपमान निंदा विरह और गाली आदि से उत्पन्न होनेवाला कौन-सा महादुःख इस जीव ने नहीं प्राप्त किया है ? ॥82॥ देवों में भी हीन आचार से उत्पन्न, बढ़ी-चढ़ी उत्कृष्ट ऋद्धि के देखने से उत्पन्न एवं वहाँ से च्युत होने के कारण उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआ है ॥83॥ और हे शुभे ! नरकों में शीत, उष्ण, क्षार जल, शस्त्र समूह, दुष्ट जंतु तथा परस्पर के मारण ताड़न आदि से उत्पन्न जो दुःख इस जीवने प्राप्त किया है वह कैसे कहा जा सकता है ? ॥84॥ हे मैथिलि ! इस जीव ने संसार में अनेकों बार वियोग, उत्कंठा, व्याधियाँ, दुःख पूर्ण मरण और शोक प्राप्त किये हैं ॥85॥ इस संसार में ऊर्ध्व मध्यम अथवा अधोभाग में वह स्थान नहीं है जहाँ इस जीव ने जन्म मृत्यु तथा जरा आदि के दुःख प्राप्त नहीं किये हों ॥86॥ अपने कर्मरूपी वायु के द्वारा संसार-सागर में निरंतर भ्रमण करनेवाले इस जीव ने मनुष्य पर्याय में भी स्त्री का ऐसा शरीर प्राप्त किया है ॥87॥ शेष बचे हुए शुभाशुभ कर्मों से युक्त जो तू है सो तेरा गुणों से सुंदर तथा शुभ अभ्युदय से युक्त राम पति हुआ है ॥88॥ पुण्योदय के अनुसार उसके साथ सुख का अभ्युदय प्राप्त कर अब पाप के उदय से तू दुःसह दुःख को प्राप्त हुई है ॥89॥ देख, रावण के द्वारा हरी जा कर तू लंका पहुँची, वहाँ तूने माला तथा लेप आदि लगाना छोड़ दिया तथा ग्यारहवें दिन श्रीराम के प्रसाद से पुनः सुख को प्राप्त हुई अब फिर गर्भवती हो पापोदय से निंदारूपी साँप के द्वारा डंसी गई है और बिना दोष के ही यहाँ छोड़ी गई है ॥90-92॥ जो साधुरूपी फूलों के महल को दुर्वचन के द्वारा जला देता है वह अत्यंत कठिन पाप अग्नि के द्वारा भस्मीभूत हो **अर्थ**ात् तेरा पापकर्म शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो ॥93॥ अहो देवि ! तू परम धन्य है, और अत्यंत प्रशंसनीय चेष्टा की धारक है जो तू चैत्यालयों को वंदना के दोहला को प्राप्त हुई है ॥94॥ हे उत्तम शीलशोभिते ! आज भी तेरा पुण्य है ही जो हाथी के निमित्त वन में आये हुए मैंने तुझे देख लिया ॥95॥ मैं इंद्रवंश में उत्पन्न, एक शुभ आचार का ही पालन करनेवाले राजा द्विरदवाह की सुबंधु नामक रानी से उत्पन्न हुआ वज्रजंघ नाम का पुत्र हूँ, मैं पुंडरीकनगर का स्वामी हूँ। हे गुणवति ! तू धर्म विधि से मेरी बड़ी बहिन है ॥96-97॥ हे उत्तमे, चलो उठो नगर चलें, शोक छोड़ो क्योंकि हे राजपुत्रि! इस शोक के करने पर भी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥98॥ हे पतिव्रते ! तुम वहाँ रहोगी तो पश्चात्ताप से आकुल होते हुए राम फिर से तुम्हारी खोज करेंगे इसमें संशय नहीं है ॥99॥ प्रमाद से गिरे, महामूल्य गुणों के धारक उज्ज्वल रत्न को कौन विद्वान् बड़े आदर से फिर नहीं चाहता है ? अर्थात् सभी चाहते हैं ॥100॥

तदनंतर धर्म के रहस्य से कुशल **अर्थ**ात् धर्म के मर्म को जानने वाले उस वज्रजंघ के द्वारा समझाई गई सीता इस प्रकार धैर्य को प्राप्त हुई मानो उसे भाई ही मिल गया हो ॥101॥ उसने वज्रजंघ की इस तरह प्रशंसा की कि हाँ तू मेरा वही भाई है, तू अत्यंत शुभ है, यशस्वी है, बुद्धिमान है, धैर्यशाली है, शूरवीर है, साधु-वत्सल है, सम्यग्दृष्टि है, परमार्थ को समझने वाला है, रत्नत्रय से पवित्रात्मा है, साधु की भाँति आत्मचिंतन करने वाला है तथा व्रत गुण और शील की प्राप्ति के लिए निरंतर तत्पर रहता है ॥102-103॥ निर्दोष एवं परोपकार में तत्पर सत्पुरुष का चरित, किस जिनमत के प्रगाढ़ श्रद्धानी का शोक नहीं नष्ट करता ? अर्थात सभी का करता है ॥104॥ निश्चित ही तू पूर्वभव में मेरा यथार्थ प्रेम करने वाला भाई रहा होगा इसीलिए तो तू सूर्य के समान निर्मल आत्मा का धारक होता हुआ मेरे विस्तृत शोक रूपी अंधकार को हरण कर रहा है ॥105॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्मपुराण में सीता को सांत्वना देने का वर्णन करने वाला अठानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥8॥

## राम को शोक

निन्यानवेवां पर्व

कथा :

अथानंतर राजा वज्रजंघ ने क्षण भर में एक ऐसी पालकी बुलाई जिसमें उत्तम खंभे लगे हुए थे, जो नाना प्रकार के बेल-बूटों से सुशोभित थी, विमान के समान थी, रमणीय थी, योग्य प्रमाण से बनाई गई थी, उत्तम दर्पण, फन्नूस, तथा चंद्रमा के समान उज्ज्वल चमरों से मनोहर थी, हार के बुदबुदों से सहित थी, रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुशोभित थी, जिस पर बड़ी-बड़ी मालाएँ फैलाकर लगाई गई थीं, जो चित्र रचना से सुंदर थी, और उत्तमोत्तम झरोखों से युक्त थी। ऐसी पालकी पर सवार हो सीता ने प्रस्थान किया। उस समय सीता उत्कृष्ट संपदा से सहित थी, महा सैनिकों के मध्य चल रही थी, कर्मों की विचित्रता का चिंतन कर रही थी तथा आश्चर्य से चकित थी ॥1-4॥ उत्तम चेष्टा को धारण करने वाली सीता, तीन दिन में उस भयंकर अटवी को पारकर पुंडरीक देश में प्रविष्ट हुई ॥5॥ समस्त प्रकार की धान्य संपदाओं से

जिसकी भूमि आच्छादित थी, तथा कुक्कुट संपात्य **अर्थ**ात् निकट-निकट बसे हुए पुर और नगरों से जो सुशोभित था ॥6॥ स्वर्गपुर के समान कांति वाले नगरों से जो इतना अधिक सुंदर था कि देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी, तथा जो बाग-बगीचे आदि से विभूषित था ऐसे पुंडरीक देश को देखती हुई वह आगे जा रही थी ।॥7॥ हे मान्ये ! हे भगवति ! हे श्लाघ्ये ! तुम्हारे दर्शन से हम संसार के प्राणी निष्पाप एवं कृतकृत्य हो गये ॥8॥ इस प्रकार राजा की कांति को धारण करने वाले गाँव के बड़े-बूढ़े लोग भेंट ले लेकर उसकी बार-बार वंदना करते थे ॥9॥ अर्घ आदि के द्वारा सम्मान करने वाले देव तुल्य राजा उसे प्रणाम कर पद-पद पर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करते जाते थे ॥10॥ अनुक्रम से वह अत्यंत मनोहर तथा पुरवासी लोगों से सेवित पुंडरीकपुर के समीप पहुँची ॥11॥

सीता का आगमन सुन स्वामी के आदेश से अधिकारी लोगों ने शीघ्र ही नगर में बहुत भारी सजावट की ॥12॥ तिराहों और चौराहों से सहित बड़े-बड़े मार्ग सब ओर से सजाये गये, सुगंधित जल से सींचे गये तथा फूलों से आच्छादित किये गये ॥13॥ इंद्रधनुष के समान रंग-बिरंगे तोरण खड़े किये गये, द्वारों पर जल से भरे तथा मुखों पर पल्लवों से सुशोभित कलश रखे गये ॥14॥ जो फहराती हुई ध्वजाओं और मालाओं से सहित था, तथा जहाँ शुभ शब्द हो रहा था ऐसा वह नगर आनंद-विभोर हो मानो नृत्य करने के लिए ही तत्पर था ॥15॥ गोपुर के साथ साथ जिस पर बहुत भारी लोग चढ़कर बैठे हुए थे ऐसा नगर का कोट इस प्रकार जान पड़ता था मानो हर्ष के कारण कोलाहल करता हुआ परम वृद्धि को ही प्राप्त हो गया हो ॥16॥ भीतर बाहर सब जगह सीता के दर्शन की इच्छा करने वाले चलते-फिरते जन-समूह से उस नगर का प्रत्येक स्थान ऐसा जान पड़ता था मानो जंगमपना को हो प्राप्त हो गया हो **अर्थ**ात् चलने-फिर लगा हो ॥17॥ तदनंतर शंखों के शब्द से मिश्रित एवं वंदीजनों के विरदगान से पल नाना प्रकार के वादित्रों का शब्द जब दिग्दिगंत को व्याप्त कर रहा था तब सीता ने नगर में उस तह प्रवेश किया जिस तरह कि लक्ष्मी स्वर्ग में प्रवेश करती है। उस समय आश्चर्य से जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे नगरवासी लोग सीता का बार-बार दर्शन कर रहे थे ॥18-19॥ तत्पश्चात् जो उद्यान से घिरा हुआ था, वापिकाओं से अलंकृत था, मेरु के शिखर के समान ऊँचा था और बलदेव की कांति के समान सफेद था ऐसे वज्रजंघ के घर के समीप स्थित अत्यंत सुंदर महल में राजा की स्त्रियों से पूजित होती हुई सीता ने प्रवेश किया ॥20-21॥ वहाँ परम संतोष को धारण करने वाला, बुद्धिमान एवं उत्तम हृदय का धारक राजा वज्रजंघ, भाई भामंडल के समान जिसकी पूजा करता था ॥22॥ 'हे ईशाने ! हे देवते ! हे पूज्ये ! हे स्वामिनि ! तुम्हारी जय हो, जीवित रहो, आनंदित होओ, बढ़ती रहो और आज्ञा देओ, इस प्रकार जिसका निरंतर विरदगान होता रहता था ॥23॥ परम संभ्रम के धारक, हाथ जोड़, मस्तक झुका आज्ञा प्राप्त करने के इच्छुक सुंदर परिजन सदा जिसके साथ रहते थे, तथा इच्छा करते ही जिसके मनोरथ पूर्ण होते थे ऐसी सीता वहाँ निरंतर धर्म संबंधी तथा राम संबंधी कथाएँ करती हुई निवास करती थी। ॥24-25॥ राजा वज्रजंघ के पास सामंतों की ओर से जितनी भेंट आती थी वह सब सीता के लिए दे देता था और उसी से वह धर्मकार्य का सेवन करती थी ॥26॥

अथानंतर जिसका मन अत्यंत संतप्त हो रहा था, जो अत्यधिक खेद से युक्त था, जो थके हुए घोड़ों को विश्राम देने वाला था और जिसे शीघ्रता करने वाले राजाओं ने सब ओर से घेर लिया था ऐसा कृतांतवक्त्र सेनापति, मुख को नीचा किये हुए श्रीरामदेव के समीप गया ॥27-28॥ और बोला कि हे प्रभो ! हे राजन् ! आपके कहने से मैं एक गर्भ ही जिसका सहायक था ऐसी सीता को भयंकर वन में ठहरा आया हूँ ॥26॥ हे देव ! आपके कहने से मैं सीता को उस वन में छोड़ आया हूँ जो नाना प्रकार के अत्यंत भयंकर शब्द करने वाले वन्य पशुओं के समूह से सेवित है, वेतालों का आकार धारण करने वाले दुर्दृश्य वृक्षों के समूह से जहाँ घोर अंधकार व्याप्त है, जहाँ स्वाभाविक द्वेष से निरंतर युद्ध करने वाले व्याघ्र और जंगली भैंसा अधिक हैं, जहाँ कोटर में टकराने वाली वायु से निरंतर दुंदुभि का शब्द होता रहता है, जहाँ गुफाओं के भीतर सिंहों के शब्द की प्रतिध्वनि बढ़ती रहती है, जहाँ सोये हुए अजगरों का शब्द लकड़ी पर चलने वाली करोंत से उत्पन्न शब्द के समान भयंकर है, जहाँ प्यासे भेड़ियों के द्वारा हरिणों के लटकते हुए पोते नष्ट कर डाले गये हैं । जहाँ रुधिर की आशंका करने वाले सिंह धातकी वृक्ष के गुच्छों को चाटते रहते हैं और जो यमराज के लिए भी भय का समूह उत्पन्न करने में निपुण है ॥30-34॥ हे देव ! जिसका मुख अश्रुओं की वर्षा से दुर्दिन के समान हो रहा था तथा जो महाशोक से अत्यंत प्रज्वलित थी ऐसा सीता का संदेश मैं कहता हूँ सो सुनो ॥35॥

सीता देवी ने आपसे कहा है कि यदि अपना हित चाहते हों तो जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेंद्रदेव में भक्ति को नहीं छोड़ना ॥36॥ स्नेह तथा अनुराग से युक्त जो मानी राजा मुझे छोड़ सकता है निश्चय ही वह जिनेंद्रदेव में भक्ति भी छोड़ सकता है ॥37॥

वचन बल को धारण करने वाला दुष्ट मनुष्य बिना विचारे चाहे जिसके विषय में चाहे जो निंदा की बात कह देता है परंतु बुद्धिमान् मनुष्य को उसका विचार करना चाहिए ॥38॥ साधारण मनुष्य मुझ निर्दोष के दोष उस प्रकार नहीं कहते जिस प्रकार कि सम्यग्ज्ञान से रहित मनुष्य सद्धर्म रूपी रत्न के दोष कहते फिरते हैं। भावार्थ दूसरे के कहने से जिस प्रकार आपने मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार सद्धर्म रूपी रत्न को नहीं छोड़ देना क्योंकि मेरी अपेक्षा सद्धर्म रूपी रत्न की निंदा करने वाले अधिक हैं ॥39॥ हे राम ! आपने मुझे भयंकर निर्जन वन में छोड़ दिया है सो इसमें क्या दोष है ? परंतु इस तरह आप सम्यग्दर्शन की शुद्धता को छोड़ने के योग्य नहीं हैं ॥40॥ क्योंकि मेरे साथ वियोग को प्राप्त हुए आपको इसी एक भव में दुःख होगा परंतु सम्यग्दर्शन के छूट जाने पर तो भव-भव में दुःख होगा ॥41॥ संसार में मनुष्य को खजाना स्त्री तथा वाहन आदि का मिलना सुलभ है परंतु सम्यग्दर्शन रूपी रत्न साम्राज्य से भी कहीं अधिक दुर्लभ है ॥42॥ राज्य में पाप करने से मनुष्य का नियम से नरक में पतन होता है परंतु उसी राज्य में यदि सम्यग्दर्शन साथ रहता है तो एक उसी के तेज से ऊर्ध्वगमन होता है स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥43॥ जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से अलंकृत है । उसके दोनों लोक कृतकृत्यता को प्राप्त होते हैं ॥44॥ इस प्रकार स्नेह पूर्ण चित्त को धारण करने वाली सीता ने जो संदेश दिया है उसे सुनकर किस वीर के उत्तम बुद्धि उत्पन्न नहीं होती ? ॥45॥ जो स्वभाव से ही भीरु है यदि उसे दूसरे भय उत्पन्न कराते हैं तो उसके भीर होने में क्या आश्चर्य ? परंतु उग्र एवं भयंकर विभीषिकाओं से तो पुरुष भी भयभीत हो जाते हैं। भावार्थ जो भयंकर विभीषिकाएँ स्वभाव-भीरु सीता को प्राप्त हैं वे पुरुष को भी प्राप्त न हों ॥46॥

हे देव ! जो अत्यंत देदीप्यमान दुष्ट हिंसक जंतुओं के समूह से यमराज को भी भय उत्पन्न करने वाला है, जहाँ अर्ध शुष्क तालाब की दल-दल में फँसे हाथी शूत्कार कर रहे हैं, जहाँ बेरी के काँटों से पूँछ के उलझ जाने से सुरा गायों का समूह दुःखी हो रहा है, जहाँ मृगमरीचि में जल की श्रद्धा से दौड़ने वाले हरिणों के समूह व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ करेंच की रज के संग से वानर अत्यंत चश्चल हो उठे हैं, जहाँ लंबी-लंबी जटाओं से मुख ढंक जाने के कारण रीछ चिल्ला रहे हैं, जहाँ प्यास से पीड़ित भेड़ियों के समूह अपनी जिह्वा रूपी पल्लवों को बाहर निकाल रहे हैं, जहाँ गुमची की फलियों के चटकने तथा उनके दाने ऊपर पड़ने से साँप कुपित हो रहे हैं, जहाँ वृक्षों का आश्रय लेने वाले जंतु, तीव्र वायु के संचार से 'कहीं वृक्ष टूट कर ऊपर न गिर पड़े, इस भय से क्रूर क्रंदन कर रहे हैं, जहाँ क्षण एक में उत्पन्न वघरूले में धूलि और पत्तों के समूह एकदम उड़ने लगते है, जहाँ बड़े-बड़े अजगरों के संचार से अनेक वृक्ष चूर-चूर हो गये हैं, जहाँ उद्दंड मदोन्मत्त हाथियों के द्वारा भयंकर प्राणी नष्ट कर दिये गये हैं, जो सूकरों के समूह से खोदे गये तालाबों के मध्य भाग से कठोर है, जहाँ का भूतल काँटे, गड्ढ, वयाठे और मिट्टी के टीलों से व्याप्त है, जहाँ फूलों का रस सूख जाने से घाम से पीड़ित भौंरें छटपटाते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं और जो कुपित सेहियों के द्वारा छोड़े हुए काँटों से भयंकर है ऐसे महावन में छोड़ी हुई सीता क्षणभर भी प्राण धारण करने के लिए समर्थ नहीं है ऐसा मैं समझता हूँ ॥47-55॥

तदनंतर जो शत्रु से भी अधिक कठोर थे ऐसे सेनापति के वचन सुनकर राम विषाद को प्राप्त हुए और उतने से ही उन्हें अपने आपका बोध हो गया अपनी त्रुटि अनुभव में आ गई ॥56॥ वे विचार करने लगे कि मुझ मूर्ख हृदय ने दुर्जनों के वचनों के वशीभूत हो यह अत्यंत निंदित कार्य क्यों कर डाला ? ॥57॥ कहाँ वह वैसी राजपुत्री ? और कहाँ यह ऐसा दुःख ? इस प्रकार विचार कर राम नेत्र बंद कर मूर्छित हो गये ॥58॥ तदनंतर जिनको हृदय स्त्री में लग रहा था ऐसे राम उपाय करने से चिरकाल बाद सचेत हो अत्यंत दु:खी होते हुए परम विलाप करने लगे ॥59॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरे नेत्र तीन रंग के कमल के समान हैं, तू निर्मल गुणों का सागर है, तूने अपने मुख से चंद्रमा को जीत लिया है, तू कमल के भीतरी भाग के समान कोमल है ॥60॥ हे वैदेहि ! हे वैदेहि ! शीघ्र ही वचन देओ । यह तो तू जानती ही है कि मेरा हृदय तेरे बिना अत्यंत कातर है ॥61॥ तू अनुपम शील को धारण करने वाली है, सुंदरी है, तेरा वार्तालाप हितकारी तथा प्रिय है। तेरा मन पाप से रहित है ॥62॥ तू अपराध से रहित थी फिर भी निर्दय होकर मैंने तुझे छोड़ दिया। हे मेरे हृदय में वास करने वाली ! तू किस दशा को प्राप्त हुई होगी ? ॥63॥ हे देवि ! महाभयदायक एवं दुष्ट वन्य पशुओं से भरे हुए वन में छोड़ी गई तू भोगों से रहित हो किस प्रकार रहेगी ? ॥64॥ तेरे नेत्र मदोन्मत्त चकोर के समान हैं, तू सौंदर्य रूपी जल की वापिका है, लज्जा और विनय से संपन्न है। हाय मेरी देवि ! तू कहाँ गई ? ॥65॥ हाय देवि ! श्वासोच्छ्वास की सुगंधि से भ्रमर तेरे मुख के समीप इकट्ठे होकर झंकार करते होंगे उन्हें कर कमल से दूर हटाती हुई तू अवश्य ही खेद को प्राप्त होगी ॥66॥ जो विचार करने पर भी अत्यंत दुःसह है ऐसे भयंकर वन में झुंड से बिछुड़ी मृगी के समान तू अकेली शून्य हृदय हो कहाँ जायगी ? ॥67॥ कमल के भीतरी भाग के समान कोमल एवं सुंदर लक्षणों

से युक्त तेरे पैर कठोर भूमि के साथ समागम को किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥68॥ अथवा जिनका मन, कृत्य और अकृत्य के विवेक से बिल्कुल ही रहित है ऐसे म्लेच्छ लोग तुझे पकड़ कर अत्यंत भयंकर पल्ली में ले गये होंगे ॥69॥ हे प्रिये ! हे साध्वि ! मुझ दुष्ट ने तुझे वन में छोड़ा है अतः अब की बार पहले दुःख से भी कहीं अधिक दुःख को प्राप्त हुई है ॥70॥ अथवा तू खेदखिन्न एवं वन की धूली से व्याप्त हो रात्रि के सघन अंधकार में सो रही होगी सो तुझे हाथी ने दबा दिया होगा ॥71॥ जो गीध रीछ भालू शृंगाल खरगोश और उल्लुओं से व्याप्त है तथा जहाँ मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता ऐसे बीहड़ वन में दु:खी होती हुई तू कैसे रहेगी ? ॥72॥ अथवा हे प्रिये ! जिसका मुख दांढों से भयंकर है, अंगड़ाई लेने से जिसका शरीर कंपित है तथा जो तीव्र भूख से युक्त है ऐसे किसी व्याघ्र ने तुम्हें शब्दागोचर अवस्था को प्राप्त करा दिया है ? ॥73॥ अथवा जिसकी जिह्वा लप-लपा रही है और जिसकी गरदन के बालों का समूह सुशोभित है ऐसे किसी सिंह ने तुम्हें शब्दातीत दशा को प्राप्त करा दिया है क्योंकि ऐसा कौन है जो स्त्रियों के विषय में शक्तिशाली न हो ? ॥74॥ अथवा हे देवि ! ज्वालाओं के समूह से युक्त, तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षों का अभाव करने वाले दावानल के द्वारा तू क्या अशोभन अवस्था को प्राप्त कराई गई है ? ॥75॥ अथवा तू छाया में जाने के लिए असमर्थ रही होगी इसलिए क्या सूर्य की अत्यंत दुःसह किरणों से मरण को प्राप्त हो गई है ॥ 76॥ अथवा तू प्रशस्त शील की धारक थी और मैं अत्यंत क्रूर प्रकृति का था। फिर भी तूने मुझमें अपना चित्त लगाया। क्या इसी असमंजस भाव से तेरा हृदय विदीर्ण हो गया होगा और तू मृत्यु को प्राप्त हुई होगी ॥77॥ हनूमान् और रत्नजटी के समान इस समय कौन है ? जो सीता की कुशल वार्ता प्राप्त करा देगा ? ॥78॥ हा प्रिये ! हा महाशीलवति ! हा मनस्विनि ! हा शुभे ! तू कहाँ है ? कहाँ चली गई ? क्या कर रही है। क्या कुछ भी नहीं जानती ? ॥79॥ अहो कृतांतवक्त्र ! क्या सचमुच ही तुमने प्रिया को अत्यंत भयानक वन में छोड़ दिया है ? नहीं, नहीं, तुम ऐसा कैसे करोगे ? ॥80॥ इस मुखचंद्र से अमृत के समूह को झराते हुए के समान तुम कहो, कहो कि मैंने तुम्हारी उस कांता को नहीं छोड़ा है ॥81॥ इस प्रकार कहने पर लज्जा के भार से जिसका मुख नीचा हो गया था, जिसकी प्रभा समाप्त हो गई थी, और जो स्वीकृति से रहित था ऐसा सेनापति व्याकुल हो गया ॥82॥ जब कृतांतवक्त्र चुप खड़ा रहा तब अत्यंत दुःख से युक्त सीता का ध्यान कर राम पुनः मूर्च्छा को प्राप्त हो गये और बड़ी कठिनाई से सचेत किये गये ॥83॥

इसी बीच में लक्ष्मण ने आकर हृदय में शोक धारण करने वाले राम का स्पर्श करते हुए कहा कि हे देव ! इस तरह व्याकुल क्यों होते हो ? धैर्य धारण करो ॥84॥ यह पूर्वोपार्जित कर्म का फल समस्त लोक को प्राप्त हुआ है न केवल राजपुत्री को ही ॥85॥ संसार में जिसे जो दुःख अथवा सुख प्राप्त करना है वह उसे किसी निमित्त से स्वयमेव प्राप्त करता है ॥86॥ यह प्राणी चाहे आकाश में ले जाया जाय, चाहे वन्य पशुओं से व्याप्त वन में ले जाया जाय और चाहे पर्वत की चोटी पर ले जाया जाय सर्वत्र अपने पुण्य से ही रक्षित होता है ॥87॥ हे देव ! सीता के परित्याग का समाचार सुनकर इस भरतक्षेत्र की समस्त वसुधा में साधारण से साधारण मनुष्यों के भी मन में दुःख ने अपना स्थान कर लिया है ॥88॥ दुःख से संतप्त एवं सब ओर से द्रवीभूत प्रजाजनों के हृदय अश्रुधारा के बहाने मानो गल-गलकर बह रहे हैं ॥ 89॥ राम से इतना कहकर अत्यंत व्याकुल हो लक्ष्मण स्वयं विलाप करने लगे और उनका मुख हिम से ताड़ित कमल-वन के समान निष्प्रभ हो गया ॥90॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरा शरीर दुष्टजनों के वचन रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है, तू गुणरूपी धान्य की उत्पत्ति के लिए भूमि स्वरूप है तथा उत्तम भावना से युक्त है ॥91॥ हे राजपुत्रि! तू कहाँ गई ? तेरे चरण-किसलय अत्यंत सुकुमार थे । तु शीलरूपी पर्वत को धारण करने के लिए पृथिवी रूप थी, हे सीते ! तू बड़ी ही सौम्य और मनस्विनी थी ॥92॥ हे मातः ! देख, दुष्ट मनुष्यों के वचनरूपी तुषार से गुणों से सुशोभित तथा राजहंसों से निषेवित यह कमलिनी सब ओर से दग्ध हो गई है। भावार्थ□ यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा विसिनी शब्द से सीता का उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार कमलिनी गुण **अर्थ**ात् तंतुओं से सुशोभित होती है उसी प्रकार सीता भी गुण अर्थात् दया दाक्षिण्य आदि गुणों से सुशोभित थी और जिस प्रकार कमलिनी राजहंस पक्षियों से सेवित होती है उसी प्रकार सीता भी राजहंस अर्थात् राजशिरोमणि रामचंद्र से सेवित थी ॥93॥ हे उत्तमे ! तू सुभद्रा के समान भद्र और सर्व आचार के पालन करने में निपुण थी तथा समस्त लोक को मूर्तिधारिणी सुख स्थिति स्वरूप थी। तू कहाँ गई ? ॥94॥ सूर्य के बिना आकाश क्या ? और चंद्रमा के बिना रात्रि क्या? उसी प्रकार उस स्त्री रत्न के बिना अयोध्या कैसी ? भावार्थ□ जिस प्रकार सूर्य के बिना आकाश की और चंद्रमा के बिना रात्रि की शोभा नहीं है उसी प्रकार सीता के बिना अयोध्या की शोभा नहीं है ॥95॥ हे देव ! समस्त नगरी बाँसुरी वीणा तथा मृदंग आदि के शब्द से रहित तथा करुण क्रंदन से पूर्ण हो रही है । ॥96॥ गलियों में, बाग-बगीचों के प्रदेशों में, वनों में, नदियों में, तिराहों चौराहों में, महलों में और बाजारों में निरंतर निकलने वाली समस्त लोगों की अश्रुधाराओं से वर्षा ऋतु के समान कीचड़ उत्पन्न हो गया है ॥

97-98॥ यद्यपि जानकी परोक्ष हो गई है तथापि उसी एक में जिसका मन लग रहा है ऐसा समस्त संसार उससे गद्गद वाणी के द्वारा बड़ी कठिनाई से उच्चारण करता हुआ गुणरूप फूलों की वर्षा से उसकी पूजा करता है सो ठीक ही है क्योंकि गुणों से उज्ज्वल रहने वाली उस जानकी ने समस्त सती स्त्रियों के मस्तक पर स्थान किया था अर्थात् समस्त सतियों में शिरोमणि थी ॥99-100। स्वयं सीतादेवी ने जिनका पालन किया था तथा जो उसके अभाव में उत्कंठा से विवश हैं ऐसे शुक आदि चतुर पक्षी भी शरीर को कँपाते हुए अत्यंत दीन रुदन करते रहते हैं ॥101॥ इस प्रकार समस्त मनुष्यों के चित्त के साथ जिसके गुणों का संबंध था ऐसी जानकी के लिए किस मनुष्य को भारी शोक नहीं है ? ॥102॥ किंतु हे विद्वन् ! पश्चात्ताप करना इच्छित वस्तु के प्राप्त करने का उपाय नहीं है ऐसा विचार कर धैर्य धारण करना योग्य है ॥103॥

इस प्रकार लक्ष्मण के वचन से प्रसन्न राम ने कुछ शोक छोड़कर कर्तव्य करने योग्य कार्य में मन लगाया ॥104॥ उन्होंने जानकी के मरणोत्तर कार्य के विषय में आदर सहित लोगों को आदेश दिया तथा भद्रकलश नामक खजान्ची को शीघ्र ही बुलाकर यह आदेश दिया कि हे भद्र ! सीता ने तुझे पहले जिस विधि से दान देने का आदेश दिया था उसी विधि से उसे लक्ष्य कर अब भी दान दिया जाय ॥ 105-106॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर शुद्ध हृदय को धारण करने वाला कोषाध्यक्ष नौ मास तक याचकों के लिए इच्छित दान देता रहा ॥107॥ यद्यपि आठ हजार स्त्रियाँ निरंतर राम की सेवा करती थीं तथापि राम पल भर के लिए भी मन से सीता को नहीं छोड़ते थे ॥ 108॥ उनका सदा सीता शब्द रूप ही समालाप होता था **अर्थ**ात् वे सदा 'सीता-सीता' कहते रहते थे और उसके गुणों से आकृष्ट चित्त हो सबको सीतारूप ही देखते थे अर्थात् उन्हें सर्वत्र सीता-सीता ही दिखाई देती थी ॥106॥ पृथिवी की धूलि से जिसका शरीर व्याप्त है, जो पर्वत की गुफा में वास कर रही है तथा अश्रुओं की जो लगातार वर्षा कर रही है ऐसी सीता को वे स्वप्न में देखते थे ॥110॥ अत्यधिक शोक को धारण करने वाले राम जब जागते थे तब सशल्य मन से आंसुओं से नेत्रों को आच्छादित करते हुए सू-सू शब्द के साथ चिंता करने लगते थे कि अहो ! बड़े कष्ट की बात है कि सुंदर चेष्टा को धारण करने वाली सीता लोकांतर में स्थित होने पर भी मुझे नहीं छोड़ रही है । वह साध्वी पूर्व संस्कार से सहित होने के कारण अब भी मेरा हित करने में उद्यत है ॥111-112॥

तदनंतर धीरे-धीरे सीता का शोक विरल होने पर राम अवशिष्ट स्त्रियों से धैर्य को प्राप्त हुए ॥113॥ जो परम न्याय से सहित थे, अविरल प्रीति से युक्त थे, प्रशस्त गुणों के सागर थे, और समुद्रांत पृथिवी का अच्छी तरह पालन करते थे ऐसे हल और चक्र नामक दिव्य अस्त्र को धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण सौधर्मेंद्र के समान अत्यधिक सुशोभित होते थे ॥114-115॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन् ! जहाँ देवों के समान मनुष्य थे ऐसी उस अयोध्या नगरी में उत्तम कांति को धारण करने वाले दोनों पुरुषोत्तम, इंद्रों के समान परम भोगों को प्राप्त हुए थे ॥116॥ अपने द्वारा किये हुए पुण्य कर्म के उदय से जिनका चरित समस्त मनुष्यों के लिए आनंद देने वाला था, तथा जो सूर्य के समान कांति वाले थे ऐसे राम लक्ष्मण अज्ञात काल तक सुखसागर में निमग्न रहे ॥11॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराण में राम के शोक का वर्णन करने वाला निन्यानवेवां पर्व समाप्त हुआ ॥99॥

## लवणांकुश की उत्पत्ति

सौवां पर्व

कथा :

अथानंतर श्री गौतम स्वामी कहते हैं कि हे नरेश्वर ! इस प्रकार यह वृत्तांत तो रहा अब दूसरा लवणांकुश से संबंध रखने वाला वृत्तांत कहता हूँ सो सुन ॥1॥ तदनंतर जनक नंदिनी के कृश शरीर ने धवलता धारण की, सो ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त प्रजाजनों के निर्मल पुण्य ने उसे ग्रहण किया था, इसलिए उसकी धवलता से ही उसने धवलता धारण की हो ॥2॥ स्तनों के सुंदर चूचुक संबंधी अग्रभाग श्यामवर्ण से युक्त हो गये, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो पुत्र के पीने के लिए स्तनरूपी घट मुहर बंद करके ही रख दिये हों ॥3॥ उसकी स्नेहपूर्ण धवल दृष्टि उस प्रकार परम माधुर्य को धारण कर रही थी मानो दूध के लिए उसके मुख पर लंबी-चौड़ी दूध की नदी ही लाकर रख दी हो ॥4॥ उसकी शरीरयष्टि सब प्रकार के मंगलों के समूह से युक्त थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अपरिमित एवं विशाल कल्याणों का गौरव प्रकट करने के लिए ही युक्त थी ॥5॥ जब सीता मणिमयी निर्मल फर्श पर धीरे-धीरे पैर रखती थी तब उनका प्रतिबिंब नीचे पड़ता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी प्रतिरूपी कमल के द्वारा उसकी पहले से ही सेवा कर रही हो ॥6॥

प्रसूति काल में जिसकी आकांक्षा की जाती है ऐसी जो पुत्तलिका सीता की शय्या के समीप रखी गई थी उसका प्रतिबिंब सीता के कपोल में पड़ता था उससे वह पुत्तलिका लक्ष्मी के समान दिखाई देती थी ॥7। रात्रि के समय सीता महल की छत पर चली जाती थी, उस समय उसके वस्त्ररहित स्तनमंडल पर जो चंद्रबिंब का प्रतिबिंब पड़ता था वह ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भ के ऊपर सफेद छत्र ही धारण किया गया हो ॥8॥ जिस समय वह निवास-गृह में सोती थी उस समय भी चंचल भुजाओं से युक्त एवं नाना प्रकार के चमर धारण करनेवाली स्त्रियाँ उस पर चमर ढोरती रहती थीं ॥9॥ स्वप्न में अलंकारों से अलंकृत बड़े-बड़े हाथी, कमलिनी के पत्र पुट में रखे हुए जल के द्वारा उसका आदरपूर्वक अभिषेक करते थे ॥10॥ जब वह जागती थी तब बार-बार जय-जय शब्द होता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो महल के ऊर्द्ध भाग में सुशोभित पुत्तलियाँ ही जय-जय शब्द कर रही हों ॥11॥

जब वह परिवार के लोगों को बुलाती थी तब 'आज्ञा देओ' इस प्रकार के संभ्रम सहित शरीर रहित परम कोमल वचन अपने-आप उच्चरित होने लगते थे ॥12॥ वह मनस्विनी क्रीड़ा में भी किये गये आज्ञा भंग को नहीं सहन करती थी तथा अत्यधिक शीघ्रता के साथ किये हुए कार्यों में भी विभ्रमपूर्वक भौहें घुमाती थी ॥13॥ यद्यपि समीप में इच्छानुकूल मणियों के दर्पण विद्यमान रहते थे तथापि उसे उभारी हुई तलवार के अग्रभाग में मुख देखने का व्यसन पड़ गया था ॥14॥ वीणा आदि को दूर कर स्त्रीजनों को नहीं रुचने वाली धनुष की टंकार का शब्द ही उसके कानों में सुख उत्पन्न करता था ॥15॥ उसके नेत्र पिंजड़ों में बंद सिंहों के ऊपर परम प्रीति को प्राप्त होते थे और मस्तक तो बड़ी कठिनाई से नम्रीभूत होता मानो खड़ा ही हो गया हो ॥16॥

तदनंतर नवम महीना पूर्ण होने पर जब चंद्रमा श्रवण नक्षत्र पर था, तब श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन, उत्तम मंगलाचार से युक्त समस्त लक्षणों से परिपूर्ण एवं पूर्ण चंद्रमा के समान मुख वाली सीता ने सुखपूर्वक सुखदायक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥17-18॥ उन दोनों के उत्पन्न होने पर प्रजा नृत्यमयी के समान हो गई और शंखों के शब्दों के साथ भेरियों एवं नगाड़ों के शब्द होने लगे ॥19॥ बहिन की प्रीति से राजा ने ऐसा महान उत्सव किया जो उन्मत्त मनुष्य लोक के समान था और सुंदर संपत्ति से सहित था।॥20॥ उनमें से एक ने अनंगलवण नाम को अलंकृत किया और दूसरे ने सार्थक भाव से मदनांकुश नाम को सुशोभित किया । ॥21॥

तदनंतर माता के हृदय को आनंद देने वाले, प्रवीर पुरुष के अंकुर स्वरूप वे दोनों बालक क्रम-क्रम से वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥22॥ रक्षा के लिए उनके मस्तक पर जो सरसों के दाने डाले गये थे वे देदीप्यमान प्रतापरूपी अग्नि के तिलगों के समान सुशोभित हो रहे थे ॥23॥ गोरोचना की पंक से पीला पीला दिखने वाला उनका शरीर ऐसा जान पड़ता था मानो अच्छी तरह से प्रकट होनेवाले स्वाभाविक तेज से ही घिरा हो ॥24॥ सुवर्णमाला में खचित व्याघ्र संबंधी नखों की बड़ी-बड़ी पंक्ति उनके हृदय पर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो दर्प के अंकुरों का समूह ही हो ॥25॥ सब लोगों के मन को हरण करनेवाला जो उनका अव्यक्त प्रथम शब्द था वह उनके जन्म दिन की पवित्रता के सत्यंकार के समान जान पड़ता था **अर्थ**ात् उनका जन्म दिन पवित्र दिन है, यह सूचित कर रहा था ॥26॥ जिस प्रकार पुष्प भ्रमरों के समूह को आकर्षित करते हैं, उसी प्रकार उनकी भोली भाली मनोहर मुसकाने सब ओर से हृदयों को आकर्षित करती थीं ॥27॥ माता के क्षीर के सिंचन से उत्पन्न विलास हास्य के समान जो छोटे-छोटे दाँत थे उनसे उनका मुख रूपी कमल अत्यंत सुशोभित हो रहा था ॥28॥ धाय के हाथ की अँगुली पकड़ कर पाँच छह डग देने वाले उन दोनों बालकों ने किसका मन हरण नहीं किया था ॥29॥ इस प्रकार सुंदर क्रीड़ा करने वाले उन पुत्रों को देखकर माता सीता शोक के समस्त कारण भूल गई ॥30॥ इस तरह क्रम-क्रम से बढ़ते तथा स्वभाव से उदार विभ्रम को धारण करते हुए वे दोनों सुंदर बालक विद्या ग्रहण के योग्य शरीर की अवस्था को प्राप्त हुए ॥31॥

तदनंतर उनके पुण्य योग से सिद्धार्थ नामक एक प्रसिद्ध शुद्ध हृदय क्षुल्लक, राजा वज्रजंघ के घर आया ॥32॥ वह क्षुल्लक महाविद्याओं के द्वारा इतना पराक्रमी था कि तीनों संध्याओं में प्रतिदिन मेरुपर्वत पर विद्यमान जिन-प्रतिमाओं की वंदना कर क्षण भर में अपने स्थान पर आ जाता था ॥33॥ वह प्रशांत मुख था, धीर वीर था, केश लुंच करने से उसका मस्तक सुशोभित था, उसका चित्त शुद्ध भावनाओं से युक्त था, वह वस्त्र मात्र परिग्रह का धारक था, उत्तम अणुव्रती था, नानागुण रूपी अलंकारों से अलंकृत था, जिन शासन के रहस्य को जानने वाला था, कलारूपी समुद्र का पारगामी था, धारण किये हुए सफेद चंचल वस्त्र से ऐसा जान पड़ता था मानो मृणालों के समूह से वेष्टित मंद मंद चलने वाला गजराज ही हो, जो पीछी को प्रिय सखी के समान बगल में धारण कर अमृत के स्वाद के समान मनोहर 'धर्मवृद्धि' शब्द का उच्चारण कर रहा था, और घर घर में भिक्षा लेता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था, इस तरह भ्रमण करता हुआ संयोगवश उस उत्तम घर में पहुंचा, जहाँ सीता बैठी थी ॥34-38॥

जिनशासन देवी के समान मनोहर भावना को धारण करनेवाली सीता ने ज्यों ही क्षुल्लक को देखा, त्योंही वह संभ्रम के साथ नौखंडा महल से उतर कर नीचे आ गई ॥36॥ तथा पास जाकर और दोनों हाथ जोड़कर उसने इच्छाकार आदि के द्वारा उसकी अच्छी तरह पूजा की । तदनंतर विधि के जानने में निपुण सीता ने उसे आदरपूर्वक विशिष्ट अन्न पान देकर संतुष्ट किया, सो ठीक ही है क्योंकि वह जिन शासन में आसक्त पुरुषों को अपना बंधु समझती है ॥40-411॥ भोजन के बाद अन्य कार्य छोड़ वह क्षुल्लक निश्चिंत हो सुख से बैठ गया। तदनंतर पूछने पर उसने सीता के लिए अपने भ्रमण आदि की वार्ता सुनाई ॥42॥ अत्यधिक उपचार और विनय के प्रयोग से जिसका मन हरा गया था, ऐसे क्षुल्लक ने अत्यंत संतुष्ट होकर लवणांकुश को देखा ॥43॥ अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता उस क्षुल्लक ने वार्तालाप बढ़ाने के लिए श्राविका के व्रत धारण करनेवाली सीता से उसके पुत्रों से संबंध रखने वाली वार्ता पूछी ॥44॥ तब नेत्रों से अश्रु की वर्षा करती हुई सीता ने क्षुल्लक के लिए सब समाचार सुनाया, जिसे सुनकर क्षुल्लक भी शोकाक्रांत हो दुःखी हो गया ॥45॥ उसने कहा भी कि हे देवि ! जिसके देवकुमारों के समान ये दो बालक विद्यमान हैं ऐसी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए ॥46॥

अथानंतर अत्यधिक प्रेम से जिसका हृदय वशीभूत था ऐसे उस क्षुल्लक ने थोड़े ही समय में लवणांकुश को शस्त्र और शास्त्र विद्या ग्रहण करा दी ॥47॥ वे पुत्र थोड़े ही समय में ज्ञान विज्ञान से संपन्न, कलाओं और गुणों में विशारद तथा दिव्य शस्त्रों के आह्वान एवं छोड़ने के विषय में अत्यंत निपुण हो गये ॥48॥ महापुण्य के प्रभाव से वे दोनों, जिनके आवरण का संबंध नष्ट हो गया था, ऐसे खजाने के कलशों के समान परम लक्ष्मी को धारण कर रहे थे ॥49॥ यदि शिष्य शक्ति से सहित है, तो उससे गुरु को कुछ भी खेद नहीं होता, क्योंकि सूर्य के द्वारा नेत्रवान् पुरुष के लिए समस्त पदार्थ सुख से दिखा दिये जाते हैं ॥50॥ पूर्व परिचय को धारण करनेवाले मनुष्यों को गुणों की प्राप्ति सुख से हो जाती है सो ठीक ही है क्योंकि मानस-सरोवर में उतरने वाले हंसों को क्या खेद होता है ? **अर्थ**ात् कुछ भी नहीं ॥51॥ पात्र के लिए उपदेश देने वाला गुरु कृतकृत्यता को प्राप्त होता है। क्योंकि जिस प्रकार उल्लू के लिए किया हुआ सूर्य का प्रकाश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार अपात्र के लिए दिया हुआ गुरु का उपदेश व्यर्थ होता है ॥52॥

अथानंतर बढ़ते हुए यश और प्रताप से जिन्होंने लोक को व्याप्त कर रक्खा था ऐसे वे दोनों पुत्र चंद्र और सूर्य के समान सुंदर तथा दुरालोक हो गये **अर्थ**ात् वे चंद्रमा के समान सुंदर थे और सूर्य के समान उनकी ओर देखना भी कठिन था ॥53॥ प्रकट तेज और बल के धारण करनेवाले वे दोनों पुत्र परस्पर मिले हुए अग्नि और पवन के समान जान पड़ते थे अथवा जिनके शरीर के कंधे शिला के समान दृढ़ थे ऐसे वे दोनों भाई हिमाचल और विंध्याचल के समान दिखाई देते थे ॥54॥ अथवा वे कांत युग संयोजन अर्थात् सुंदर जुवा धारण करने के योग्य (पक्ष में युग की उत्तम व्यवस्था करने में निपुण) महावृषभों के समान थे अथवा धर्माश्रमों के समान रमणीय और सुख को धारण करनेवाले थे ॥55॥ अथवा वे समस्त तेजस्वी मनुष्यों के उदय तथा अस्त करने में समर्थ थे, इसलिए लोग उन्हें पूर्व और पश्चिम दिशाओं के समान देखते थे ॥56॥ यह विशाल पृथिवी, निकटवर्ती समुद्र से घिरी होने के कारण उन्हें छोटी-सी कुटिया के समान जान पड़ती थी और इस पृथिवी रूपी कुटिया में यदि उनकी छाया भी तेज से विमुख जाती थी तो उसकी भी वे निंदा करते थे ॥57॥ पैर के नखों में पड़ने वाले प्रतिबिंब से भी वे लज्जित हो उठते थे और बालों के भंग से भी अत्यधिक दुःख प्राप्त करते थे ॥58॥ चूड़ामणि में प्रतिबिंबित छत्र से भी वे लज्जित हो जाते थे और दर्पण में दिखने वाले पुरुष के प्रतिबिंब से भी खीझ उठते थे ॥59॥ मेघ के द्वारा धारण किये हुए धनुष से भी उन्हें क्रोध उत्पन्न हो जाता था और नमस्कार नहीं करने वाले चित्रलिखित राजाओं से भी वे खेदखिन्न हो उठते थे ॥60॥ अपने विशाल तेज की बात दूर रहे अत्यंत अल्प मंडल में संतोष को प्राप्त हुए सूर्य के भी तेज में यदि कोई रुकावट डालता था तो वे उसे अनादर की दृष्टि से देखते थे ॥61॥ जिसका शरीर दिखाई नहीं देता था ऐसी बलिष्ठ वायु को भी वे खंडित कर देते थे तथा चमरी गाय के बालों से वीजित हिमालय के ऊपर भी उनका क्रोध भड़क उठता था ॥62॥ समुद्रों में भी जो शंख पड़ रहे थे उन्हीं से उनके चित्त खिन्न हो जाते थे तथा समुद्रों के अधिपति वरुण को भी वे सहन नहीं करते थे ॥63॥ छत्रों से सहित राजाओं को भी वे निश्छाय अर्थात छाया से रहित (पक्ष में कांति से रहित) कर देते थे और सत्पुरुषों के द्वारा सेवित होनेपर प्रसन्न हो मुख से मधु छोड़ते थे अर्थात् उनसे मधुर वचन बोलते थे ॥64॥ वे साथ-साथ उत्पन्न हुए प्रताप से दूरवर्ती दुष्ट राजाओं के वंश को भी ग्लानि उत्पन्न कर रहे थे अर्थात् दूरवर्ती दुष्ट राजाओं को भी अपने प्रताप से हानि पहुँचाते थे फिर निकटवर्ती दुष्ट राजाओं का तो कहना ही क्या है ? ॥65॥ निरंतर शस्त्र धारण करने से उनके हस्ततल काले पड़ गये थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शेष अन्य राजाओं के प्रताप रूप अग्नि को बुझाने से ही काले पड़ गये थे ॥66॥ अभ्यास के समय उत्पन्न धनुष के गंभीर शब्दों से ऐसा जान पड़ता था मानो निकटवर्ती समस्त दिशारूपी स्त्रियों से वार्तालाप ही कर

रहे हों ॥67॥
'जैसा लवण है वैसा ही अंकुश है' इस प्रकार उन दोनों के विषय में लोगों के मुख से शब्द प्रकट होते थे तथा दोनों ही शुभ अभ्युदय से सहित थे ॥68॥ जो नव यौवन से संपन्न थे और महासुंदर चेष्टाओं के धारक थे, ऐसे लवण और अंकुश पृथिवी में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए ॥69॥ वे दोनों समस्त लोगों के द्वारा अभिनंदन करने के योग्य थे और सभी लोगों की उत्सुकता को बढ़ाने वाले थे । पुण्य से उनके स्वरूप की रचना हुई थी तथा उनका दर्शन सबके लिए सुख का कारण था ॥70॥ युवती स्त्रियों के मुखरूपी कुमुदिनी के विकास के लिए वे दोनों शरद् ऋतु के पूर्ण चंद्रमा थे और सीता के हृदय संबंधी आनंद के लिए मानो चलते फिरते सुमेरु ही हों॥71॥ वे दोनों अन्य कुमारों में सूर्य के समान थे, सफेद कमलों के समान उनके नेत्र थे। वे द्वीपकुमार नामक देवों के समान थे तथा उनके वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत थे ॥72॥ अनंत पराक्रम के आधार थे, संसार-समुद्र के तट पर स्थित थे, परस्पर महाप्रेमरूपी बंधन से बँधे थे ॥73॥ वे धर्म के मार्ग में स्थित होकर भी मन के हरण करने में लीन थे-मनोहारी थे और कोटि स्थित गुणों **अर्थ**ात् धनुष के दोनों छोरों पर डोरी के स्थित होने पर भी वक्रता अर्थात् कुटिलता से रहित थे (परिहार पक्ष में उनके गुण करोड़ों की संख्या में स्थित थे तथा वे मायाचार रूपी कुटिलता से रहित थे) ॥74॥ वे तेज से सूर्य को, कांति से चंद्रमा को, ओज से इंद्र को, गांभीर्य से समुद्र को, स्थिरता के योग से सुमेरु को, क्षमाधर्म से पृथिवी को, शूर-वीरता से जयकुमार को और गति से हनुमान को जीतकर स्थित थे ॥75-76॥ वे छोड़े हुए बाण को भी अपने वेग से पास ही में पकड़ सकते थे तथा विशाल जल में मगरमच्छ तथा नाके आदि जल जंतुओं के साथ क्रीड़ा करते थे ॥77॥ मदमाते महागजों के साथ युद्ध कर भी वे श्रम संबंधी सुख को प्राप्त नहीं होते थे तथा उनके शरीर की प्रभा से भयभीत होकर ही मानो सूर्य की किरणों का समूह स्खलित हो गया था ॥78॥ वे धर्म की अपेक्षा साधु के समान, सत्त्व अर्थात् धैर्य की अपेक्षा अर्ककीर्ति के समान, सम्यग्दर्शन की अपेक्षा पर्वत के समान और दान की अपेक्षा श्री विजय बलभद्र के समान थे ॥79॥ अभिमान से अयोध्य थे अर्थात् उनके साथ कोई युद्ध नहीं कर सकता था, साहस से मधुकैटभ थे और महायुद्ध संबंधी उद्योग से इंद्रजित् तथा मेघवाहन थे ॥50॥ वे गुरुओं की सेवा करने में तत्पर रहते थे, जिनेंद्रदेव की कथा अर्थात् गुणगान करने में लीन रहते थे तथा नाम के सुनने मात्र से शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले थे ॥81॥ इस प्रकार वे दोनों भाई लवण और अंकुश गुणरूपी रत्नों के उत्तम पर्वत थे, विज्ञान के सागर थे, लक्ष्मी श्री द्युति कीर्ति और कांति के घर थे, मनरूपी गजराज के लिए अंकुश थे, सौराज्यरूपी घर का भार धारण करने के लिए मजबूत खंभे थे, पृथिवी के सूर्य थे, मनुष्यों में श्रेष्ठ थे, आश्चर्यपूर्ण कार्यों की खान थे ॥2॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा सूर्य के तेज को लज्जित करने वाले वे दोनों कुमार प्रपौंड नगर में बलभद्र और नारायण के समान इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥3॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में लवणांकुश की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला सौवां पर्व पूर्ण हुआ ॥100॥

## लवणांकुश की दिग्विजय

एक सौ एकवां पर्व
कथा :
अथानंतर उन सुंदर कुमारों को विवाह के योग्य देख, राजा वज्रजंघ ने कन्याओं के खोजने में तत्पर बुद्धि की ॥1॥ सो प्रथम ही अपनी लक्ष्मी रानी से उत्पन्न शशिचूला नाम की पुत्री को अन्य बत्तीस कन्याओं के साथ लवण को देना निश्चित किया ॥2॥ राजा वज्रजंघ दोनों कन्याओं का विवाह मंगल एक साथ देखना चाहता था। इसलिए वह द्वितीय पुत्र के योग्य कन्याओं की सब ओर खोज करता रहा ॥3॥ उत्तम कन्या को न देख एक दिन वह मन में खेद को प्राप्त हुए के समान बैठा था कि अकस्मात् उसे शीघ्र ही स्मरण आया और उससे वह मानो कृतकृत्यता को ही प्राप्त हो गया ॥4॥ उसने स्मरण किया कि 'पृथिवी नगर के राजा की अमृतवती रानी के गर्भ से उत्पन्न कनकमाला नाम की एक शुद्ध तथा श्रेष्ठ पुत्री है ॥॥ वह चंद्रमा की रेखा के समान सब लोगों को हरण करने वाली है, लक्ष्मी को जीतती है और कमलों से रहित मानो कमलिनी ही है ॥6॥ वह शशिचूला की समानता को प्राप्त है तथा शुभ है। इस प्रकार विचार कर उसके निमित्त से राजा वज्रजंघ ने दूत भेजा ॥7॥ बुद्धिमान् दूत ने क्रम-क्रम से पृथिवीपुर पहुँच कर तथा सन्मान कर वहाँ के राजा पृथु से वार्तालाप किया ॥8॥
उसी समय राजा पृथु ने विशुद्ध दृष्टि से दूत की ओर देखा और दूत जब तक कन्या की याचना से संबंध रखने वाला वचन ग्रहण नहीं कर

पाता है कि उसके पहले ही राजा पृथु बोल उठे कि रे दूत ! इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है क्योंकि तू पराधीन है और पर के वचनों का अनुवाद करने वाला है ॥9-10॥ जो स्वयं ऊष्मा-आत्मगौरव (पक्ष में गरमी) से रहित हैं, जिनकी आत्मा चंचल है तथा जो बहुभंगों अनेक अपमानों (पक्ष में अनेक तरंगों) से व्याप्त हैं इस तरह जल के प्रवाह के समान जो आप जैसे लोग हैं, वे इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाये जाते हैं ॥11॥ यद्यपि यह सब है तथापि तूने पापपूर्ण वचनों का उच्चारण किया है, अतः तेरा निग्रह करना योग्य है क्योंकि दूसरे के द्वारा चलाया हुआ विघातक यंत्र क्या नष्ट नहीं किया जाता ? ॥12॥ हे दूत ! मैं जानता हूँ कि तू धूली पान के समान है, और कुछ भी करने में समर्थ नहीं है इसलिए यहाँ से हटा देना मात्र ही तेरा सत्कार (?) **अर्थ**ात् निग्रह है ॥13॥ यद्यपि कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्यागम ये नौ वर के गुण कहे गये हैं तथापि उत्तम पुरुष उन सबमें एक कुल को ही श्रेष्ठ गुण मानते हैं इसका होना आवश्यक समझते हैं, शेष गुणों में इच्छानुसार प्रवृत्ति है अर्थात् हों तो ठीक न हों तो ठीक ॥14-15॥ परंतु वही कुल नाम का प्रथम गुण जिस वर में न हो उसे सब ओर से माननीय कन्या कैसे दी जा सकती है ? ॥16॥ सो इस तरह निर्लज्जतापूर्वक विरुद्ध वचन कहने वाले उसके लिए कुमारी अर्थात् पुत्री का देना तो युक्त नहीं है परंतु कुमारी अर्थात् खोटा मरण मैं अवश्य देता हूँ ॥17॥ इस प्रकार जिसके वचन सर्वथा उपेक्षित कर दिये गये थे ऐसे दूत ने निरुपाय हो वापिस जाकर वज्रजंघ के लिए सब समाचार कह सुनाया ॥18॥

तदनंतर यद्यपि राजा वज्रजंघ ने स्वयं आधे मार्ग तक जाकर किसी महादूत के द्वारा पृथु से कन्या की याचना को ॥19॥ और उसके प्रति आदर व्यक्त किया तथापि वह कन्या को प्राप्त नहीं कर सका । फलस्वरूप वह क्रोध से प्रेरित हो पृथु का देश उजाड़ने के लिए तत्पर हो गया ॥20॥ राजा पृथु के देश को सीमा का रक्षक एक व्याघ्ररथ नाम का राजा था उसे वज्रजंघ ने संग्राम में जीत कर बंधन में डाल दिया ॥21॥ महाबलवान् अथवा बड़ी भारी सेना से सहित व्याघ्ररथ सामंत को युद्ध में बद्ध तथा वज्रजंघ को देश उजाड़ने के लिए उद्यत जानकर राजा पृथु ने सहायता के निमित्त पोदनदेश के अधिपति अपने मित्र राजा को जो कि उत्कृष्ट सेना से युक्त था जब तक बुलवाया तब तक वज्रजंघ ने भी अपने पुत्रों को बुलाने के लिए शीघ्र ही एक पत्र सहित आदमी पौंडरीकपुर को भेज दिया ॥22-24॥ पिता की आज्ञा सुनकर राजपुत्रों ने शीघ्र ही युद्ध के लिए भेरी तथा शंख आदि के शब्द दिलवाये ॥25॥ तदनंतर पौंडरीकपुर में लहराते हुए समुद्र के समान क्षोभ उत्पन्न करनेवाला बहुत बड़ा कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥26॥ वह अश्रुतपूर्व युद्ध की तैयारी का शब्द सुन लवण और अंकुश ने निकटवर्ती पुरुषों से पूछा कि यह क्या है ? ॥27॥ तदनंतर यह सब वृत्तांत हमारे ही निमित्त से हो रहा है, यह सब ओर से सुन युद्ध की इच्छा रखने वाले सीता के दोनों पुत्र जाने के लिए उद्यत हो गये ॥28॥ जो अत्यंत उतावली से सहित थे, जो पराभव की उत्पत्ति को रंचमात्र भी सहन नहीं कर सकते थे और जिनका विशाल तेज प्रकट हो रहा था ऐसे उन दोनों वीरों ने वाहन का विलंब भी सहन नहीं किया था ॥29॥ वज्रजंघ के पुत्र, समस्त अंतःपुर तथा परिकर के समस्त लोग उन्हें यत्नपूर्वक रोकने के लिए उद्यत हुए परंतु उन्होंने उनके वचन अनसुने कर दिये।

तदनंतर पुत्र स्नेह से जिसका हृदय द्रवीभूत हो रहा था ऐसी सीता ने उन्हें युद्ध के लिए उद्यत देख कहा कि हे बालको ! यह तुम्हारा युद्ध के योग्य समय नहीं है क्योंकि महारथ की धुरा के आगे बछड़े नहीं जोते जाते ॥30-32॥ इसके उत्तर में दोनों पुत्रों ने कहा कि हे मातः! तुमने ऐसा क्यों कहा ? इसमें वृद्धजनों की क्या आवश्यकता है ? पृथिवी तो वीरभोग्या है ॥33॥ महावन को जलाने वाली अग्नि के लिए कितने बड़े शरीर से प्रयोजन है ? **अर्थ**ात् अग्नि का बड़ा शरीर होना अपेक्षित नहीं है, इस विषय में तो उसे स्वभाव से ही प्रयोजन है ॥34॥ इस प्रकार के वचनों का उच्चारण करने वाले पुत्रों को देखकर सीता के नेत्रों में मिश्र रस से उत्पन्न आँसुओं ने कुछ आश्रय लिया अर्थात् उसके नेत्रों से हर्ष और शोक के कारण कुछ-कुछ आँसू निकल आये ॥35॥

तदनंतर जिन्होंने अच्छी तरह स्नान कर आहार किया; शरीर को अलंकारों से अलंकृत किया और मन, वचन, काय से सिद्ध परमेष्ठी को बड़ी सावधानी से नमस्कार किया, ऐसे समस्त विधि-विधान के जानने में निपुण दोनों कुमार माता को नमस्कार कर उत्तम मंगलाचार पूर्वक घर से बाहर निकले ॥36-37॥ तदनंतर जिनमें वेगशाली घोड़े जुते थे और जो नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण थे ऐसे उत्तम रथों पर सवार होकर दोनों भाइयों ने राजा पृथु के ऊपर प्रस्थान किया ॥38॥ बड़ी भारी सेना से सहित एवं धनुषमात्र को सहायक समझने वाले दोनों कुमार ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरधारी उद्योग और पराक्रम ही हों ॥39॥ जिनका हृदय अत्यंत उदार था तथा जो संग्राम के बहुत भारी कौतुक से युक्त थे ऐसे महाभ्युदय के धारक दोनों भाई छह दिन में वज्रजंघ के पास पहुँच गये ॥40॥

तदनंतर परमोद्योगी शत्रु की सेना को निकटवर्ती सुनकर बड़ी भारी सेना के मध्य में स्थित राजा पृथु अपने पृथिवीपुर से बाहर निकला ॥

41॥ उसके भाई, मित्र, पुत्र, मामा, मामा के लड़के तथा एक बर्तन में खाने वाले परमप्रीति से युक्त अन्य लोग एवं सुह्म, अंग, वंग, मगध आदि के महाबलवान् राजा उसके साथ चले ॥42-43॥ कटक-सेना से घिरे हुए परम प्रतापी रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सैनिक क्रुद्ध होकर वज्रजंघ की ओर बढ़े चले आ रहे थे।॥44॥ रथ, हाथी और घोड़ों के स्थान को तुरही के शब्द से युक्त सुनकर वज्रजंघ के सामंत भी युद्ध करने के लिए उद्यत हो गये ॥45॥ तदनंतर जब दोनों सेनाओं के अग्रभाग अत्यंत निकट आ पहुँचे तब अत्यधिक उत्साह को धारण करने वाले लवण और अंकुश शत्रु की सेना में प्रविष्ट हुए ॥46॥ अत्यधिक शीघ्रता से घूमने वाले वे दोनों कुमार, महाक्रोध को धारण करते हुए के समान शत्रुदलरूपी महा सरोवर में सब ओर क्रीड़ा करने लगे ॥47॥ बिजलीरूपी लता की उपमा को धारण करने वाले वे कुमार कभी यहाँ और कभी वहाँ दिखाई देते थे और फिर अदृश्य हो जाते थे। शत्रु जिनका पराक्रम नहीं सह सका था ऐसे वे दोनों वीर बड़ी कठिनाई से दिखाई देते थे **अर्थ**ात् उनकी ओर आँख उठाकर देखना भी कठिन था ॥48॥ बाणों को ग्रहण करते, डोरी पर चढ़ाते और छोड़ते हुए वे दोनों कुमार दिखाई नहीं देते थे, केवल मारे हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥49॥ तीक्ष्ण बाणों द्वारा घायल होकर गिरे हुए वाहनों से व्याप्त हुआ पृथिवीतल अत्यंत दुर्गम हो गया था ॥50॥ शत्रु की सेना पागल के समान निमेषमात्र में पराभूत हो गई तितर-बितर हो गई और हाथियों का समूह सिंह से डराये हुए के समान इधर-उधर दौड़ने लगा ॥51॥ तदनंतर पृथु राजा की सेनारूपी नदी, लवणांकुशरूपी सूर्य की बाणरूपी किरणों से क्षणमात्र में सुखा दी गई ॥52॥ जो योद्धा शेष बचे थे वे भय से पीड़ित हो अर्कतूल के समूह के समान उन कुमारों की इच्छा के बिना ही दिशाओं में भाग गये ॥53॥

असहाय एवं खेदखिन्न पृथु पराजय के मार्ग में स्थित हुआ **अर्थ**ात् भागने लगा तब धनुर्धारी कुमारों ने उसका पीछा कर उससे इस प्रकार कहा कि अरे नीच नरपृथु ! अब व्यर्थ कहाँ भागता है ? जिनके कुल और शील का पता नहीं ऐसे ये हम दोनों आ गये ॥54-55॥ जिनका कुल और शील अज्ञात है ऐसे हम लोगों से भागता हुआ तू इस समय लज्जित क्यों नहीं होता है ? ॥56॥ अब हम बाणों के द्वारा अपने कुल और शील का पता देते हैं, सावधान होकर खड़े हो जाओ अथवा बलात् खड़े किये जाते हो ॥57॥ इस प्रकार कहने पर पृथु ने लौटकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि हे वीरो ! मेरा अज्ञानजनित दोष क्षमा करने के योग्य हो ॥58॥ जिस प्रकार सूर्य का तेज कुमुद-समूह के मध्य नहीं आता उसी प्रकार आप लोगों का माहात्म्य मेरी बुद्धि में नहीं आया ॥59॥ धीर, वीर मनुष्यों का अपने कुल, शील का परिचय देना ऐसा ही होता है । वचनों द्वारा जो परिचय दिया जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि उसमें संदेह हो सकता है ॥60॥ ऐसा कौन मंद मनुष्य है जो जलने मात्र से, वन के जलाने में समर्थ अग्नि की उत्पत्ति को नहीं जान लेता है ?। भावार्थ अग्नि प्रज्वलित होती है इतने मात्र से ही उसकी वनदाहक शक्ति का अस्तित्व मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी स्वीकृत कर लेता है ॥61॥ आप दोनों परम धीर, महाकुल में उत्पन्न एवं यथेष्ट सुख देने वाले हमारे स्वामी हो ॥62॥ इस प्रकार जिनकी प्रशंसा की जा रही थी ऐसे दोनों कुमार नतमस्तक, शांतचित्त तथा शांत मुख हो गये और उनका सब क्रोध दूर हो गया ॥63॥ तदनंतर जब वज्रजंघ आदि प्रधान राजा आ गये तब उनकी साक्षीपूर्वक दोनों वीरों की पृथु के साथ मित्रता हो गई ॥64॥ आचार्य कहते हैं कि मानशाली मनुष्य प्रणाम मात्र से प्रसन्न हो जाते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि नदियों के प्रवाह नम्रीभूत वेतस के पौधों को नहीं उखाड़ते ॥65॥

तदनंतर राजा पृथु ने सब लोगों को आनंद उत्पन्न करने वाले दोनों वीरों को बड़े वैभव के साथ नगर में प्रविष्ट कराया ॥66॥। वहाँ पृथु ने महाविभव से सहित अपनी कनकमाला कन्या वीर मदनांकुश के लिए देना निश्चित किया ॥67॥ तदनंतर कार्य करने में निपुण दोनों वीर वहाँ एक रात्रि व्यतीत कर इस समस्त पृथिवी को जीतने के लिए नगर से बाहर निकल पड़े ॥68॥ सुह्म, अंग, मगध, वंग तथा पोदनपुर आदि के राजाओं से घिरे हुए दोनों कुमार लोकाक्षनगर को जाने के लिए उद्यत हुए ॥69॥ बहुत बड़ी सेना से सहित दोनों वीर उससे संबंध रखने वाले अनेक देशों पर सुख से आक्रमण करते हुए लोकाक्ष नगर के समीप पहुँचे ॥70॥ वहाँ जिस प्रकार गरुड़ के पंख नाग को क्षोभित करते हैं उसी प्रकार उन दोनों ने वहाँ के कुबेरकांत नामक अभिमानी राजा को क्षोभ युक्त किया ॥71॥ तदनंतर चतुरंग सेना से युक्त अत्यंत भयंकर रणांगण में कुबेरकांत को जीतकर वे आगे बढ़े, उस समय उनकी सेना अत्यधिक बढ़ती जाती थी ।॥72॥ वहाँ से चलकर आधीनता को प्राप्त हुए हजारों राजाओं से घिरे हुए लंपाक देश को गये । वहाँ स्थल मार्ग से जाना कठिन था इसलिए नौकाओं के द्वारा जाना पड़ा ॥73॥ वहाँ एक कर्ण नामक राजा को अच्छी तरह जीतकर मार्ग की अनुकूलता होने से दोनों ही कुमार विजयस्थली गये ॥74॥ वहाँ देखने मात्र से ही सौ भाइयों को जीतकर तथा गंगा नदी उतरकर दोनों कैलास की ओर उत्तर दिशा में गये ॥75॥ वहाँ उन्होंने नंदनवन के समान सुंदर-सुंदर देशों में अच्छी तरह गमन किया तथा नाना प्रकार की भेंट हाथ में लिये हुए उत्तम मनुष्यों ने उनकी पूजा

की॥7॥ तदनंतर भाषकुंतल, कालांबु, नंदी, नंदन, सिंहल, शलभ, अनल, चौल, भीम तथा भूतरव आदि देशों के राजाओं को वशकर वे सिंधु के दूसरे तट पर गये तथा वहाँ पश्चिम समुद्र के दूसरे तट पर स्थित राजाओं को नम्रीभूत किया ॥77-78॥ पुरखेट तथा मटंब आदि के स्वामी एवं अन्य जिन देशों के अधिपतियों को उन दोनों कुमारों ने वश किया था हे श्रेणिक ! मैं यहाँ तेरे लिए उनका कुछ वर्णन करता हूँ ॥79॥ ये देश कुछ तो आर्य देश थे, कुछ म्लेच्छ देश थे, और कुछ नाना प्रकार के आचार से युक्त दोनों प्रकार के थे ॥80॥ भीरु, यवन, कक्ष, चारु, त्रिजट, नट, शक, केरल, नेपाल, मालव, आरुल, शर्वर, वृषाण, वैद्य, काश्मीर, हिडिंब, अवष्ट, वर्वर, त्रिशिर, पारशैल, गौशील, उशीनर, सूर्यारक, सनत, खश, विंध्य, शिखापद, मेखल, शूरसेन, वाह्लीक, उलूक, कोसल, दरी, गांधार, सौवीर, पुरी, कोषेर, कोहर, अंध्र, काल और कलिंग इत्यादि अनेक देशों के स्वामी रणांगण में जीते गये थे और कितने ही प्रताप से ही आधीनता को प्राप्त हो गये थे। इन सब देशों में अलग-अलग नाना प्रकार की भाषाएँ थीं, पृथक-पृथक गण थे, नाना प्रकार रत्न तथा वस्त्रादि का पहिराव था, वृक्षों की नाना जातियाँ थीं, अनेक प्रकार की खानें थीं और सुवर्णादि धन से सब सुशोभित थे ॥81-86॥ महावैभव से युक्त तथा अनुराग से सहित नाना देशों के मनुष्य लवणांकुश की इच्छानुसार कार्य करते हुए पृथिवी में भ्रमण करते थे ॥87॥ इस प्रकार इस पृथिवी को प्रसन्न कर वे दोनों पुरुषोत्तम, अनेक हजार बड़े-बड़े राजाओं के ऊपर स्थित थे ॥88॥ नाना प्रकार की सुंदर कथाओं में तत्पर तथा अत्यधिक हर्ष को धारण करने वाले वे दोनों कुमार देशों की अच्छी तरह रक्षा करते हुए पौंडरीकपुर की ओर चले ॥89॥ राष्ट्रों के प्रथम अधिकारी राजाओं के द्वारा अत्यधिक सन्मान को प्राप्त कराये गये दोनों भाई क्रम-क्रम से पौंडरीकपुर की समीपता को प्राप्त हुए ॥90॥ तदनंतर महल की सातवीं भूमि पर सुख से बैठी एवं उत्तम स्त्रियों से घिरी सीता ने चंचल पतले मेघ के समान धूसर वर्ण धूलिपटल को उठते देखा तथा सखीजनों से पूछा कि हे सखियो ! दिशाओं पर आक्रमण करने में चंचल **अर्थ**ात् सब ओर फैलने वाली यह क्या वस्तु दिखाई देती है? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि यह सेना का धूलिपटल होना चाहिये ॥91-93॥ इसीलिए तो देखो स्वच्छ जल के समान इस धूलिपटल के बीच में मगरमच्छों के तैरते हुए समूह के समान घोड़ों का समूह दिखाई दे रहा है ॥94॥ हे स्वामिनि ! जान पड़ता है कि ये दोनों कुमार कृतकृत्य होकर आये हैं, हाँ देखो, वे ही लोकोत्तम कुमार दिखाई दे रहे हैं ॥95॥ इस तरह जब तक सीता देवी की मनोहर कथा चल रही थी कि तब तक इष्ट समाचार को सूचना देने वाले अग्रगामी पुरुष आ पहुँचे ॥96॥

तदनंतर उत्तम संतोष को धारण करने वाले आदर युक्त मनुष्यों ने नगर में सब प्रकार की विशाल शोभा की ॥97॥ कोट के शिखरों के ऊपर निर्मल ध्वजाएँ फहराई गई, मार्ग दिव्य तोरणों से सुंदर किये गये ॥98॥ राजमार्ग घुटनों तक सुगंधित फूलों से भरा गया एवं पद-पद पर सुंदर वंदन मालाओं से युक्त किया गया ॥66॥ द्वारों पर पल्लवों से युक्त कलश रक्खे गये और बाजार की गलियों में रेशमी वस्त्रादि से शोभा की गई ॥100॥ उस समय पौंडरीकपुर अयोध्या के समान दिखाई देता था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो विद्याधरों ने, देवों ने अथवा लक्ष्मी ने ही स्वयं उसकी वैसी रचना की हो ॥101॥ महा वैभव के साथ प्रवेश करते हुए उन दोनों कुमारों को देखकर नगर को स्त्रियों में जो चेष्टा हुई उसका वर्णन करना अशक्य है ॥102॥ कृतकृत्य होकर पास आये हुए पुत्रों को देखकर सीता तो मानो अमृत के समुद्र में ही डूब गई ॥103॥ तदनंतर जिन्होंने कमल के समान अंजलि बाँध रक्खी थी, जो अत्यधिक आदर से सहित थे, जिनके शिर झुके हुए थे तथा जो सेना की धूलि से धूसर थे ऐसे दोनों वीरों ने पास आकर माता को नमस्कार किया ॥104॥ जो पुत्रों के प्रति स्नेह प्रकट करने में निपुण थी, हस्ततल से जो उनका स्पर्श कर रही थी तथा जो उत्तम आनंद से युक्त थी ऐसी राम की पत्नी-सीता ने उनका मस्तक चूमा ॥105॥ तदनंतर वे माता के द्वारा किये हुए परम प्रसाद को पुनः पुनः नमस्कार के द्वारा स्वीकृत कर सूर्य चंद्रमा के समान लोक व्यवहार को संपन्न करते हुए यथायोग्य सुख से रहने लगे ॥106॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा रचित श्रीपद्मपुराण में लवणांकुश की दिग्विजय का वर्णन करने वाला एक सौ एकवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥101॥

## लवणांकुश द्वारा युद्ध

एक सौ दूसरा पर्व

कथा :

अथानंतर परम ऐश्वर्य को प्राप्त हुए वे दोनों पुरुषोत्तम बड़े-बड़े राजाओं को आज्ञा प्रदान करते हुए स्थित थे॥1॥ उसी समय कृतांतवक्त्र सेनापति से सीता के छोड़ने का स्थान पूछकर उसकी खोज करने वाले दुखी नारद भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे । सो दोनों ही वीर उनकी

दृष्टि में पड़े। गृहस्थ मुनि **अर्थ**ात् क्षुल्लक का वेष धारण करने वाले उन नारदजी का दोनों ही कुमारों ने आसनादि देकर सम्मान किया ॥2-3॥ तदनंतर सुख से बैठे परम संतोष को धारण करते एवं स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए नारद ने उन कुमारों से कहा कि राजा राम लक्ष्मण की जैसी विभूति है सर्वथा वैसी ही विभूति शीघ्र ही आप दोनों की भी हो ॥4-5॥ इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि हे भगवन् ! वे राम लक्ष्मण कौन हैं ? कैसे उनके गुण और समाचार हैं तथा किस कुल में उत्पन्न हुए हैं ? ॥6॥

तदनंतर क्षणभर के लिए निश्चल शरीर बैठकर मुख को आश्चर्य से चकित करते एवं करपल्लव को हिलाते हुए नारद बोले ॥7॥ कि मनुष्य भुजाओं से मेरु को उठा सकता है और समुद्र को तैर सकता है परंतु इन दोनों के गुण कहने के लिए कोई समर्थ नहीं है ॥8। यह सबका सब संसार, अनंतकाल तक और अनंत जिह्वाओं के द्वारा भी उनके गुण कहने के लिए समर्थ नहीं है ॥9॥ आपने उनके गुणों का प्रश्न किया सो इनके उत्तर स्वरूप प्रतिकार से आकुल हुआ हमारा हृदय काँपने लगा है । आप कौतुक के साथ देखिये ॥10॥ फिर भी आप लोगों के कहने से स्थूलरूप में उनके कुछ पुण्यवर्धक गुण कहता हूँ सो सुनो ॥11॥

इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाश के पूर्णचंद्रमा तथा दुराचाररूपी ईंधन के लिए अग्नि-स्वरूप एक दशरथ नाम के राजा थे ॥12॥ जो महातेजस्वरूप थे । उत्तर कोसल देश पर शासन करते थे तथा सूर्य के समान समस्त संसार में प्रकाश करते थे ॥13॥ जिस पुरुषरूपी पर्वतराज से निकली और समुद्र में गिरी हुई कीर्तिरूपी उज्ज्वल नदियाँ समस्त संसार को आनंदित करती हैं ॥14॥ राज्य का महाभार उठाने में जिनकी चेष्टाएँ समर्थ हैं तथा जो गुणों से संपन्न हैं ऐसे उनके सुनय के समान चार पुत्र हैं ॥15॥ उन सब पुत्रों में राम प्रथम पुत्र हैं जो सब ओर से सुंदर हैं तथा सर्व शास्त्रों के ज्ञाता होनेपर भी जो समस्त संसार में विभ्रम **अर्थ**ात शास्त्र से रहित (पक्ष में प्रसिद्ध) हैं ॥16॥ अपने छोटे भाई लक्ष्मण और स्त्री सीता के साथ जो कि राजा जनक की पुत्री थी तथा अत्यंत भक्त थी, पिता के सत्य की रक्षा कराते हुए अयोध्या को सूनी कर छद्मस्थ वेष में पृथिवी पर भ्रमण करने लगे तथा भ्रमण करते हुए दंडकवन में प्रविष्ट हुए ॥17-18॥ वहाँ महाविद्याधरों के लिए भी अत्यंत दुर्गम स्थान में वे रहते थे और वहीं चंद्रनखा संबंधी स्त्री का वृत्तांत हुआ अर्थात् चंद्रनखा ने अपना त्रिया चरित्र दिखाया ॥19॥ उधर राम, छोटे भाई की वार्ता जानने के लिए युद्ध में गये उधर कपटवृत्ति रावण ने सीता का हरण कर लिया ॥20॥ तदनंतर महेंद्र, किष्किंध, श्रीशैल और मलय के अधिपति तथा विराधित आदि प्रधान प्रधान वानरवंशी राजा जो कि महासाधन से संपन्न और विद्यारूप महापराक्रम के धारक थे, राम के गुणों के अनुराग से अथवा अपने पुण्योदय से इनके समीप आये और युद्ध में रावण को जीतकर सीता को वापिस ले आये । विद्याधरों ने अयोध्या को स्वर्गपुरी के समान कर दिया ॥21-23॥ परम ऐश्वर्य से सेवित, पुरुषों में उत्तम श्रीराम लक्ष्मण वहाँ नागेंद्रों के समान एक दूसरे के सम्मुख आनंद से समय बिताते थे ॥24॥ अथवा अभी तक आप दोनों को उन राम का ज्ञान क्यों नहीं हुआ जिनका कि वह लक्ष्मण अनुज हैं, जिनके पास कभी व्यर्थ नहीं जाने वाला सुदर्शन चक्र विराजमान है ॥25॥ इसके सिवाय जिसके पास ऐसे और भी रत्न हैं जिनकी एकाग्रचित्त होकर प्रत्येक की हजार-हजार देव रक्षा करते हैं तथा जो उसके राजाधिराजत्व के कारण हैं ॥26॥ जिन्होंने प्रजा के हित की इच्छा से सीता का परित्याग कर दिया, इस संसार में ऐसा कौन है जो राम को नहीं जानता हो ।॥27॥ अथवा इस लोक की बात जाने दो इसके गुणों से स्वर्ग में भी देवों के समूह शब्दायमान तथा तत्पर चित्त हो रहे हैं ॥28॥

तदनंतर अंकुश ने कहा कि हे मुने ! राम ने सीता किस कारण छोड़ी सो कहो मैं जानना चाहता हूँ ॥26॥ तत्पश्चात् सीता के गुणों से जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा था तथा जिनके नेत्रों में आँसू छलक आये थे ऐसे नारद ने कथा पूरी करते हुए कहा ॥30॥ कि उसका गोत्र, चारित्र तथा हृदय अत्यंत शुद्ध है, वह गुणों से सुशोभित हैं, आठ हजार स्त्रियों की अग्रणी हैं, अतिशय पंडिता हैं, अपनी पवित्रता से सावित्री, गायत्री, श्री, कीर्ति, धृति और ह्री देवी को पराजित कर विद्यमान हैं तथा जिनवाणी के समान हैं ॥31-32॥ निश्चित ही जंमांतर में उपार्जित पाप कर्म के प्रभाव से केवल लोकापवाद के कारण उन्होंने उसे निर्जन वन में छोड़ा है ॥33॥ सुख से वृद्धि को प्राप्त हुई वह सती दुर्जनरूपी सूर्य की कटूक्तिरूपी किरणों से संतप्त होकर प्रायः नष्ट हो गई होगी ॥34॥ क्योंकि सुकुमार प्राणी थोड़े ही कारण से दुःख को प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि मालती की माला दीपक के प्रकाशमात्र से मुरझा जाती है ॥35॥ जिसने अपने नेत्रों से कभी सूर्य नहीं देखा ऐसी सीता हिंसक जंतुओं से भरे हुए भयंकर वन में क्या जीवित रह सकती है ? ॥36॥ पापी मनुष्य की जिह्वा दुष्ट भुजंगी के समान निरपराध लोगों को दूषित कर निवृत्त क्यों नहीं होती है ? ॥37॥ आर्जवादि गुणों से प्रशंसनीय और अत्यंत निर्मल सीता जैसी सती का जो अपवाद करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह दुःख को प्राप्त होता है ॥38॥ अथवा अपने द्वारा संचित कर्म आश्रित

प्राणी के नष्ट करने के लिए जहाँ सदा जागरूक रहते हैं वहाँ किससे क्या कहा जाय ? इस विषय में तो यह संसार ही निंदा का पात्र है ॥39॥ इतना कहकर जिनका मन शोक के भार से आक्रांत हो गया था ऐसे नारदमुनि आगे कुछ भी नहीं कह सके अतः चुप बैठ गये ॥40॥ अथानंतर अंकुश ने हँस कर कहा कि हे ब्राह्मण ! भयंकर वन में सीता को छोड़ते हुए राम ने कुल की शोभा के अनुरूप कार्य नहीं किया ॥41॥ लोकापवाद के निराकरण करने के अनेक उपाय हैं फिर उनके रहते हुए क्यों उन्होंने इस तरह सीता को विद्ध किया घायल किया ॥42॥ अनंगलवण नामक दूसरे कुमार ने भी कहा कि हे मुने ! यहाँ से अयोध्या नगरी कितनी दूर है ? इसके उत्तर में भ्रमण के प्रेमी नारद ने कहा कि वह अयोध्या यहाँ से साठ योजन दूर है जिसमें चंद्रमा के समान निर्मल प्रिया के स्वामी राम रहते हैं ॥43-44॥ यह सुन दोनों कुमारों ने कहा कि हम उन्हें जीतने के लिए चलते हैं। इस पृथिवीरूपी कुटिया में किसी दूसरे की प्रधानता कैसे रह सकती है ? ॥45॥ उन्होंने वज्रजंघ से भी कहा कि हे माम ! इस वसुधा तल पर जो सुह्म, सिंधु तथा कलिंग आदि सर्वसाधन संपन्न राजा हैं उन्हें आज्ञा दी जाय कि आप लोग अयोध्या के प्रति चलने के लिए रण के योग्य सब वस्तुएँ लेकर शीघ्र ही तैयार हो जावें ॥46-47॥ मद रहित तथा मद सहित बड़े-बड़े हाथी, महाशब्द करने वाले तथा वायु के समान शीघ्रगामी घोड़े, सेना में प्रसिद्ध तथा युद्ध से नहीं भागने वाले योद्धा देखे जावें, उत्तम शस्त्रों का निरीक्षण किया जाय, कवच आदि साफ किये जावें और महायुद्ध के प्रारंभ की खबर देने में निपुण तथा शंख के शब्दों से मिश्रित तुरही के शब्द दिलाये जावें ॥48-50॥ इस प्रकार राजाओं को आज्ञा दे जो प्राप्त हुए युद्ध संबंधी आनंद को हृदय में धारण कर अत्यधिक हर्ष से युक्त थे ऐसे धीर-वीर तथा महावैभव से संपन्न दोनों कुमार उन इंद्रों के समान जो देवों को आज्ञा देकर निश्चिंत हो जाते हैं निश्चिंत हो यथायोग्य सुख से विद्यमान हुए ॥51-52॥

तदनंतर उनकी राम के प्रति चढ़ाई सुन अत्यधिक उत्कंठा को धारण करती हुई सीता रोने लगी ॥53॥ तत्पश्चात् सीता के समीप खड़े नारद से सिद्धार्थ ने कहा कि तुमने यह ऐसा अशोभन कार्य क्यों प्रारंभ किया ? ॥54॥ रण के कौतुकी एवं रण का प्रोत्साहन देने वाले तुमने देखो यह कुटुंब का बड़ा भेद कर दिया है घर में बड़ी फूट डाल दी है ॥55॥ नारद ने कहा कि मैं इस वृत्तांत को ऐसा थोड़े ही जानता था। मैंने तो केवल उनके सामने राम-लक्ष्मण संबंधी चर्चा ही रक्खी थी ॥56॥ किंतु ऐसा होने पर भी डरो मत; कुछ भी अशोभन कार्य नहीं होगा यह मैं जानता हूँ अतः मन को स्वस्थ करो ॥57॥

तदनंतर दोनों कुमार समीप जाकर सीता से बोले कि हे अंब ! क्यों रो रही हो ? बिना किसी विलंब के शीघ्र ही कहो ॥8॥ किसने तुम्हारे विरुद्ध काम किया है अथवा किसने तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहा है ? आज किस दुष्ट हृदय के प्राणों का वियोग करूँ ? ॥56॥ औषधि जिसके हाथ में नहीं ऐसा वह कौन मनुष्य साँप के साथ क्रीड़ा करता है ? वह कौन मनुष्य अथवा देव है जो तुम्हें शोक उत्पन्न करता है ? ॥60॥ हे मातः ! आज किस क्षीणायुष्क पर कुपित हुई हो ? हे अंब ! शोक का कारण बतलाने की प्रसन्नता करो ॥61॥ इस प्रकार कहने पर सीता देवी ने अश्रु धारण करते हुए कहा कि हे कमललोचन पुत्रो ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ ॥62॥ आज मुझे तुम्हारे पिता का स्मरण हो आया है इसीलिए दुःखी हो गई हूँ और इसीलिए बलात् अश्रु डालती हुई रो रही हूँ ॥63॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीता के इस प्रकार कहने पर उन दोनों वीरों की यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि सिद्धार्थ हमारा पिता नहीं है ॥64॥ तत्पश्चात् उन दोनों ने पूछा कि हे मातः ! हमारा पिता कौन है ? कहाँ है ? इस प्रकार पूछने पर सीता ने अपना सब वृत्तांत कह दिया ॥65॥ अपना जन्म, राम का जन्म, वन में जाना, वहाँ हरण होना तथा पुनः वापिस आना आदि जैसा वृत्तांत नारद ने कहा था वैसा सब विस्तार से कह सुनाया क्योंकि वृत्तांत के छिपाने का अब कौन-सा अवसर है ? ॥66-67॥

यह कह कर सीता ने कहा कि जब तुम दोनों गर्भ में थे तब लोकापवाद के भय से तुम्हारे पिता ने मुझे वन में छोड़ दिया था ॥68॥ मैं उस सिंहरवा नाम की अटवी में रो रही थी कि हाथी पकड़ने के लिए गये हुए वज्रजंघ ने मुझे देखा ॥69॥ जो हाथी प्राप्त कर अटवी से लौट रहा था, जो विशुद्ध शक्ति रूपी रत्न का धारक था, महात्मा था एवं दयालु चित्त था, ऐसा यह श्रावक वज्रजंघ मुझे बहिन कह इस स्थान पर ले आया और बड़े सन्मान के साथ उसने हमारा पालन किया ॥70-71॥ जो तुम्हारे पिता के ही समान है ऐसे इस वज्रजंघ के वैभवशाली घर में मैंने तुम दोनों को जन्म दिया है। तुम दोनों श्रीराम के शरीर से उत्पन्न हो ॥72॥ हे वत्सो ! लक्ष्मण नामक छोटे भाई से सहित उन श्रीराम ने हिमालय से लेकर समुद्रपर्यंत की इस समस्त पृथिवी को अपनी दासी बनाया है ॥73॥ अब आज उनके साथ तुम्हारा महायुद्ध होने वाला है सो मैं क्या पति की अमांगलिक वार्ता सुनूँगी ? या तुम्हारी? अथवा देवर की ? ॥74॥ इसी ध्यान के कारण खिन्न चित्त होने से मैं रो रही हूँ। हे भले पुत्रो ! यहाँ और दूसरा कारण क्या हो सकता है ?॥75॥

यह सुनकर लवणांकुश परम हर्ष को प्राप्त हो आश्चर्य करने लगे, और उनके मुखकमल खिल उठे। उन्होंने कहा कि अहो ! वह सुधन्वा, लोकश्रेष्ठ, श्रीमान् , विशाल एवं उज्ज्वल कीर्ति के धारक तथा अनेक महान आश्चर्य के करने वाले श्रीराम हमारे पिता हैं ॥76-77॥ हे मातः ! 'मैं वन में छोड़ी गई हूँ।' इस बात का विषाद मत करो। तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मण का अहंकार खंडित देखो ॥78॥ तब सीता ने कहा कि हे पुत्रो ! पिता के साथ विरोध करना रहने दो । यह करना उचित नहीं है। तुम लोग शांतचित्तता को प्राप्त करो ॥79॥ हे वत्सो ! बड़ी विनय के साथ जाओ और नमस्कार कर पिता के दर्शन करो यही मार्ग न्यायसंगत है ॥80॥

यह सुन लवणांकुश ने कहा कि वे हमारे शत्रु के स्थान को प्राप्त हैं अतः हे मातः ! हम लोग जाकर यह दीन वचन उनसे किस प्रकार कहें कि हम तुम्हारे लड़के हैं ॥81॥ संग्राम के अग्रभाग में यदि हम लोगों को मरण प्राप्त होता है तो अच्छा है परंतु वीर मनुष्यों के द्वारा निंदित ऐसा विचार रखना अच्छा नहीं है ॥82॥ अथानंतर जिसका चित्त चिंता से दुःखी हो रहा था ऐसी सीता चुप हो रही और लवणांकुश ने स्नान आदि कार्य संपन्न किये ॥83॥ तत्पश्चात जिन्होंने मंगलमय मुनिसंघ की सेवा की थी, सिद्ध भगवान को नमस्कार किया था तथा माता को सांत्वना देकर प्रणाम किया था ऐसे मंगलमय वेष को धारण करने वाले दोनों कुमार दो हाथियों पर उस प्रकार आरूढ़ हुए जिस प्रकार कि चंद्रमा और सूर्य पर्वत के शिखर पर आरूढ़ होते हैं । तदनंतर दोनों ने अयोध्या की ओर उस तरह प्रयाण किया जिस तरह कि राम-लक्ष्मण ने लंका की ओर किया था ॥84-85॥

तत्पश्चात् तैयारी के शब्द से उन दोनों का निर्गमन जानकर हजारों योधा शीघ्र ही पौंडरीकपुर से बाहर निकल पड़े ॥86॥ परस्पर की प्रतिस्पर्धा से जिनका चित्त बढ़ रहा था ऐसे अपनी-अपनी सेनाएँ दिखलाने वाले राजाओं में बड़ी धकम-धका हो रही थी ॥87॥ तदनंतर जो एक योजन तक फैली हुई बड़ी भारी सेना से सहित थे जो नाना प्रकार के धान्य से सुशोभित पृथिवी का अच्छी तरह पालन करते थे, जिनका उत्कृष्ट प्रताप आगे आगे चल रहा था और जो उन-उन देशों में स्थापित राजाओं के द्वारा पूजा प्राप्त कर रहे थे, ऐसे दोनों भाई प्रजा की रक्षा करते हुए चले जा रहे थे ॥88-89॥ बड़े-बड़े कुल्हाड़े और कुदालें धारण करने वाले दश हजार पुरुष उनके आगे-आगे चलते थे ॥90॥ वे वृक्षों आदि को काटते हुए ऊँची-नीची भूमि को सब ओर से दर्पण के समान करते जाते थे ॥91॥ सबसे पहले खजाने के भार को धारण करने वाले भैंसे, ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल जा रहे थे। फिर कोमल शब्द करते हुए गाड़ियों के सेवक चल रहे थे। तदनंतर तरुण हरिण के समान उछलने वाले पैदल सैनिकों के समूह और उनके बाद उत्तम चेष्टाएँ करने वाले घोड़ों के समूह जा रहे थे ॥92-93॥ उनके पश्चात् जो सुवर्ण की मालाओं से अत्यधिक सुशोभित थे, जिनके गले में बंधे हुए बड़े-बड़े घंटा शब्द कर रहे थे, जो शंखों और चामरों को धारण कर रहे थे, काँच के छोटे-छोटे गोले तथा दर्पण तथा फन्नूसों आदि से जिनका वेष बहुत सुंदर जान पड़ता था, जो महाउद्दंड थे, जिनकी सफेद रंग की बड़ी-बड़ी खीसें लोहा तामा तथा सुवर्णादि से जड़ी हुई थीं, जो रत्न तथा सुवर्णादि से निर्मित कंठमालाओं से विभूषित थे, चलते-फिरते पर्वतों के समान जान पड़ते थे, नाना रंग के चित्राम से सहित थे, जिनमें से किन्हीं के गंडस्थलों से अत्यधिक मद झर रहा था, कोई नेत्र बंद कर रहे थे, कोई हर्ष से परिपूर्ण थे, किन्हीं के मद की उत्पत्ति होने वाली थी, कोई वेग से तीक्ष्ण थे और कोई मेघों के समान थे, जो कवच आदि से युक्त, नाना शास्त्रों में निपुण, महाशब्द करने वाले और अत्यंत तेजस्वी पुरुषों से अधिष्ठित थे, जो अपनी तथा परायी सेना में उत्पन्न हुए शब्द के जानने में निपुण थे, सर्वप्रकार की शिक्षा से संपन्न थे और सुंदर चेष्टा को धारण करने वाले थे ऐसे हाथी जा रहे थे ॥94-99॥

उनके पश्चात् जो सुंदर कवच धारण कर रहे थे, जिन्होंने पीछे की ओर ढाल टाँग रक्खी थी तथा भाले जिनके हाथों में थे ऐसे घुड़सवार सुशोभित हो रहे थे ॥100॥ अश्वसमूह के खुराघात से उठी धूलि से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो सफेद मेघों के समूह से ही व्याप्त हो गया हो ॥1011। उनके पश्चात् जो शस्त्रों के अंधकार से आच्छादित थे, नाना प्रकार की चेष्टाओं को करने वाले थे, अहंकारी थे तथा उदात्त आचार से युक्त थे ऐसे पदाति चल रहे थे।॥102॥

उस विशाल सेना में शयन, आसन, पान, गंध, माला तथा मनोहर वस्त्र, आहार और विलेपन आदि से कोई दुःखी नहीं था **अर्थ**ात् सबके लिए उक्त पदार्थ सुलभ थे ॥103॥ राजा की आज्ञानुसार नियुक्त होकर जो मार्ग में सब जगह व्याप्त थे, अत्यंत चतुरता से कार्य करने के लिए जो सदा कमर कसे रखते थे और उत्तम हृदय से युक्त थे ऐसे मनुष्य प्रति बड़े आदर के साथ सबके लिए मधु, स्वादिष्ट पेय, घी, पानी और नाना प्रकार के रसीले भोजन सब ओर प्रदान करते रहते थे ॥104-105॥ उस सेना में न तो कोई मनुष्य मलिन दिखाई देता था, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करने वाला और न चिंतातुर ही दिखाई पड़ता था ॥106॥ उस सेनारूपी महासागर में

नाना आभरणों से युक्त, उत्तम वेश से सुसज्जित एवं उत्तम कांति से युक्त पुरुष और स्त्रियाँ सुशोभित थीं ॥107। इस प्रकार परमविभूति से युक्त सीता के दोनों पुत्र उस तरह अयोध्या के उस देश में पहुँचे जिस तरह कि इंद्र देवों के स्थान में पहुँचते हैं ॥108॥
जौ, पौंडे, ईख तथा गेहूँ आदि उत्तमोत्तम धान्यों से जहाँ की भूमि निरंतर सुशोभित है ॥106॥ वहाँ की नदियाँ राजहंसों के समूहों से, तालाब कमलों और कुवलयों से, पर्वत नाना प्रकार के पुष्पों से और बाग-बगीचों की भूमियाँ सुंदर संगीतों से सुशोभित हैं ॥110॥ जहाँ के वन बड़े-बड़े बेलों के शब्दों से, सुंदर गायों और भैंसों के समूह से तथा मचान पर बैठी गोपालिकाओं से सुशोभित हैं ॥111॥ जहाँ की सीमाओं पर स्थित गाँव नगरों के समान और नगर स्वर्गपुरी के समान सुशोभित हैं ॥112॥ इस तरह पंचेंद्रिय के विषयों से प्रिय उस देश का इच्छानुसार उपभोग करते हुए, परमतेज के धारक लवणांकुश आनंद से चले जाते थे ॥113॥ रण के कारण तीव्र क्रोध को प्राप्त हुए हाथियों के गंडस्थल से झरने वाले जल से मार्ग की समस्त धूलि कीचड़पने को प्राप्त हो गई थी ॥114॥ चञ्चल घोड़ों के तीक्ष्ण खुराघात से उस कोमल देश को भूमि माने अत्यंत जर्जर अवस्था को प्राप्त हो गई थी ॥115॥
तदनंतर लवणांकुश, दूर से ही आकाश को संध्याकालीन मेघों के समूह सहित जैसा देखकर बोले कि हे माम ! जिसकी लाल-लाल विशाल कांति बहुत ऊँची उठ रही है ऐसा यह क्या दिखाई दे रहा है ? यह सुन वज्रजंघ ने बहुत देर तक पहिचानने के बाद कहा कि हे देवो! यह वह उत्कृष्ट अयोध्या नगरी दिखाई दे रही है जिसके सुवर्णमय कोट की यह कांति इतना ऊँची उठ रही है ॥116-118॥ इस नगरी में वह श्रीमान् बलभद्र रहते हैं जो कि तुम दोनों के पिता हैं तथा नारायण और महागुणवान् शत्रुघ्न जिनके भाई हैं ॥116॥ इस तरह शूर-वीरता और गौरव से सहित कथाओं से जो अत्यंत प्रसन्न थे ऐसे सुख से जाते हुए उन दोनों के बीच नदी आ पड़ी ॥120॥ जो अपने चालू वेग से ही उस नगरी को ग्रहण करने की इच्छा रखते थे ऐसे उन दोनों वीरों के बीच वह नदी उस प्रकार आ पड़ी जिस प्रकार कि मोक्ष के लिए प्रस्थान करने वाले के बीच तृष्णा आ पड़ती है ॥121॥ जिस प्रकार नंदनवन की नदी के समीप देवों की विशाल सेना ठहराई जाती है उसी प्रकार उस नदी के समीप थकी मांदी सेना ठहरा दी गई ॥122॥
अथानंतर शत्रु की सेना को निकटवर्ती स्थान में स्थित सुन परम आश्चर्य को प्राप्त होते हुए राम-लक्ष्मण ने कहा कि ॥123॥ यह कौन मनुष्य शीघ्र ही मरना चाहता है जो युद्ध का बहाना लेकर हम दोनों के पास चला आ रहा है ॥124॥ लक्ष्मण ने उसी समय राजा विराधित को आज्ञा दी कि बिना किसी विलंब के युद्ध के लिए सेना तैयार की जाय ॥125॥ रण का कार्य उपस्थित हुआ है इसलिए वृष, नाग तथा वानर आदि की पताकाओं को धारण करने वाले विद्याधर राजाओं को सब समाचार का ज्ञान कराओ **अर्थ**ात उनके पास सब समाचार भेजे जाय ॥126॥ 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कह कर राजा विराधित सुग्रीव आदि राजाओं को बुला कर युद्ध के लिए उद्यत हो गया ॥127॥ दूत के देखते ही वे सब विद्याधर राजा बड़ी-बड़ी सेनाएं लेकर अयोध्या आ पहुँचे ॥128॥
अथानंतर जिनकी आत्मा अत्यंत आकुल हो रही थी ऐसे सिद्धार्थ और नारद ने शीघ्र ही जाकर भामंडल के लिए सब खबर दी ॥129॥ बहिन सीता का जो हाल हुआ था उसे सुन कर वात्सल्य गुण के कारण भामंडल बहुत दुखी हुआ ॥130॥ तदनंतर विषाद विस्मय और हर्ष को धारण करने वाला, शीघ्रता से सहित एवं स्नेह से भरा भामंडल, किंकर्तव्यविमूढ़ हो पिता सहित मन के समान शीघ्रगामी विमान पर आरूढ़ हो सब सेना के साथ पौंडरीकपुर की ओर चला ॥131-132॥ भामंडल, पिता और माता को आया देख जिसका शोक नया हो गया था ऐसी सीता शीघ्रता से उठ सबका आलिंगन कर आंसुओं की लगातार वर्षा करती हुई विलाप करने लगी। वह उस समय अपने परित्याग आदि के दुःख को बतलाती हुई विह्वल हो उठती थी ॥133-134॥ भामंडल ने उसे बड़ी कठिनाई से सांत्वना देकर कहा कि हे देवि ! तेरे पुत्र संशय को प्राप्त हुए है। उन्होंने यह अच्छा नहीं किया ॥135॥ उन्होंने जाकर उन बलभद्र और नारायण को क्षोभित किया है जो पुरुषोत्तम वीर देवों के भी अजेय हैं ॥136॥ जब तक उन कुमारों का प्रमाद नहीं होता है तब तक आओ, शीघ्र ही चलें और रक्षा का उपाय सोचें ॥137॥ तदनंतर पुत्र-वधुओं सहित सीता भामंडल के विमान में बैठ उस ओर चली जिस ओर कि वज्रजंघ और सेना से सहित दोनों पुत्र गये थे ॥138॥
अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! राम लक्ष्मण की पूर्ण लक्ष्मी का वर्णन के लिए कौन समर्थ है ? इसलिए संक्षेप से ही यहाँ कहते हैं सो सुन ॥136॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक रूप महासागर से घिरे हुए राम लक्ष्मण क्रोध को धारण करते हुए के समान निकले ॥140॥ जो घोड़े जुते हुए रथ पर सवार था, जिसका वक्षःस्थल हार से सुशोभित था तथा जिसका मन युद्ध में लग रहा था ऐसा प्रतापी शत्रुघ्न भी निकल कर बाहर आया ॥141॥ जिस प्रकार हरिणकेशी देव सैनिकों का अग्रणी होता है उसी प्रकार मानी कृतांतवक्त्र

सब सेना का अग्रसर हुआ ॥142॥ जिसमें धनुषों की छाया हो रही थी तथा जो महाकांति से युक्त थी ऐसी उसकी अपरिमित चतुरंगिणी सेना उसके प्रताप को बढ़ा रही थी ॥143॥ जिसमें बीच के खंभा के ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, तथा जो शत्रुओं की सेना के द्वारा दुर्निरीक्ष्य था ऐसा उसका बड़ा भारी रथ देवों के महल के समान सुशोभित हो रहा था ॥144॥ कृतांतवक्त्र के पीछे त्रिमूर्ध, फिर अग्निशिख, फिर सिंहविक्रम, फिर दीर्घबाहु, फिर सिंहोदर, सुमेरु, महाबलवान् बालिखिल्य, अत्यंत क्रोधी रौद्रभूति, शरभ, स्यंदन, क्रोधी वनकर्ण, युद्ध का प्रेमी मारिदत्त, और मदोन्मत्त मन के धारक मृगेंद्रवाहन आदि पाँच हजार सामंत बाहर निकले। ये सभी सामंत नाना शस्त्र रूपी अंधकार को धारण करने वाले थे तथा चारणों के समूह उनके करोड़ों गुणों का उद्गान कर रहे थे ॥145-148॥ इसी प्रकार जो कुटिक्त सेनाओं से सहित थी, जिन्होंने विश्वासप्रद शस्त्र के ऊपर क्षण भर के लिए अपनी दृष्टि डाली था, युद्ध संबंधी हर्ष से जिनका उत्साह बढ़ रहा था, जो स्वामी की भक्ति में तत्पर थीं, महाबलवान् थीं, शीघ्रता से सहित थीं और जिन्होंने पृथिवी को कंपित कर दिया था ऐसी कुमारों की अनेक श्रेणियाँ भी बाहर निकली ॥146-150॥ नाना प्रकार के वादित्रों से जिन्होंने दिशाओं को बहिरा कर दिया था, जो कवच और टोप से सहित थे, जिनके चित्त क्रोध से व्याप्त थे, तथा जिनके सेवक पूर्व दृष्ट, परम पराक्रमी और प्रसन्नता प्राप्त करने में तत्पर थे ऐसे कितने ही लोग पर्वतों के समान ऊँचे रथों से, कितने ही मेघों के समान हाथियों से, कितने ही महासागर की तरंगों के समान घोड़ों से, कितने ही पालकी के शिखरों से और कितने ही अत्यंत योग्य वृषभों से **अर्थ**ात् इन पर आरूढ हो बाहर निकले ॥151-153॥ तदनंतर परकीय सेना का शब्द सुनकर संभ्रम से सहित वज्रजंघ ने अपनी सेना को आदेश दिया कि तैयार होओ ॥154॥ तदनंतर पर-सेना का शब्द सुनकर कवच आदि से आवृत सब सैनिक तैयार हो वज्रजंघ के पास स्वयं आ गये ॥155॥ प्रलय काल की अग्नि के समान प्रचंड अंग, बंग, नेपाल, वर्वर, पौंड, मागध, सौस्न, पारशैल, सिंहक, कालिंगक तथा रत्नांक आदि महाबलवान् एवं उत्तमतेज से युक्त ग्यारह हजार राजा युद्ध के लिए तैयार हुए ॥156-157॥ इस प्रकार जिसने शत्रुसेना की ओर मुख किया था, तथा जिसमें शस्त्र चल रहे थे ऐसी वह चंचल उत्कृष्ट सेना उत्तम संघट्ट को प्राप्त हुई **अर्थ**ात् दोनों सेनाओं में तीव्र मुठभेड़ हुई ॥158॥ उन दोनों सेनाओं में ऐसा भयंकर समागम हुआ जो पहले हुए देव और असुरों के समागम से भी कहीं आश्चर्यकारी था तथा क्षोभ को प्राप्त हुए दो समुद्रों के समागम के समान महाशब्द कर रहा था ॥159॥ 'अरे क्षुद्र ! पहले प्रहार कर, शस्त्र छोड़, क्यों उपेक्षा कर रहा है ? मेरा शस्त्र पहले प्रहार करने के लिए कभी प्रवृत्त नहीं होता ॥160॥ अरे, उसने हलका प्रहार किया इससे मेरी भुजा स्वस्थ रही आई अर्थात् उसमें कुछ हुआ ही नहीं, जरा दृढ़ मुट्ठी कस कर शरीर पर जोरदार प्रहार कर ॥161॥ कुछ सामने आ, युद्ध में बाण का संचार ठीक नहीं हो रहा है, अथवा फिर बाण को छोड़; छुरी उठा ॥162॥ क्यों काँप रहा है ? मैं तुझे नहीं मारता, मार्ग छोड़, युद्ध की महाखाज से चपल यह दूसरा प्रबल योद्धा सामने खड़ा हो ॥163॥ अरे क्षुद्र ! व्यर्थ क्यों गरज रहा है ? वचन में शक्ति नहीं रहती, यह मैं तेरी चेष्टा से ही रण की पूजा करता हूँ ॥164॥ इन्हें आदि लेकर, पराक्रम से सुशोभित योद्धाओं के मुखों से सब ओर अत्यंत गंभीर महाशब्द निकल रहे थे ॥165॥ जिस प्रकार भूमिगोचरी राजाओं की ओर से भयंकर शब्द आ रहा था उसी तरह विद्याधर राजाओं की ओर से भी अत्यंत महान् शब्द आ रहा था ॥166॥ भामंडल, वीर पवन वेग, बिजली के समान उज्ज्वल मृगांक तथा महा विद्याधर राजाओं के प्रतिनिधि देवच्छंद आदि जो कि बड़ी बड़ी सेनाओं से युक्त तथा महायुद्ध में निपुण थे, लवणांकुश के पक्ष में खड़े हुए ॥167-16॥

अथानंतर जब कर्तव्य के ज्ञान और प्रयोग में अत्यंत निपुण हनुमान् ने लवणांकुश की वास्तविक उत्पत्ति सुनी तब वह विद्याधर राजाओं के संघट्ट को शिथिल करता हुआ लवणांकुश के पक्ष में आ गया ॥169-170॥ लांगूल नामक शस्त्र को हाथ में धारण कर राम की सेना से निकलते हुए हनुमान् ने भामंडल का चित्त हर्षित कर दिया ॥171॥ तदनंतर विमान के शिखर पर आरूढ जानकी को देखकर सब विद्याधर राजा उदासीनता को प्राप्त हो गये ॥172॥ और हाथ जोड़ बड़े आदर से उसे प्रणाम कर अत्यधिक आश्चर्य को धारण करते हुए उसे घेरकर खड़े हो गये ॥173॥ सीता ने जब दोनों सेनाओं की मुठभेड़ देखी तब उसके नेत्र भयभीत हरिणी के समान चंचल हो गये, उसके शरीर में रोमांच निकल आये और कँपकँपी छूटने लगी ॥174॥

अथानंतर चंचल ध्वजाओं से युक्त उस विशाल सेना को क्षोभित करते हुए लवणांकुश, जिस ओर राम लक्ष्मण थे उसी ओर बढ़े ॥175॥ इस तरह प्रतिपक्ष भाव को प्राप्त हुए दोनों कुमार सिंह और गरुड़ की ध्वजा धारण करने वाले राम-लक्ष्मण के सामने आ डटे ॥176॥ आते ही के साथ अनंगलवण ने शस्त्र चलाकर रामदेव की ध्वजा काट डाली और धनुष छेद दिया ॥177॥ हँसकर राम जब तक दूसरा धनुष लेने के लिए उद्यत हुए तब तक वीर लवण ने वेग से उन्हें रथ रहित कर दिया ॥178॥ अथानंतर प्रबल पराक्रमी राम, भौंह तानते

हुए, दूसरे रथ पर सवार हो क्रोधवश अनंगलवण की ओर चले ॥176॥ ग्रीष्म काल के सूर्य के समान दुनिरीक्ष्य नेत्रों से युक्त एवं धनुष उठाये हुए राम अनंगलवण के समीप उस प्रकार पहुँचे जिस प्रकार कि असुर कुमारों के इंद्र चमरेंद्र के पास इंद्र पहुँचता है ॥180॥ इधर सीता सुत अनंगलवण भी बाण सहित धनुष उठाकर रण की भेट देने के लिए राम के समीप गये ॥181॥ तदनंतर राम और लवण के बीच परस्पर कटे हुए शस्त्रों के समूह से कठिन परम युद्ध हुआ ॥182॥

इधर जिस प्रकार राम और लवण का महायुद्ध हो रहा था उधर उसी प्रकार लक्ष्मण और अंकुश का भी महायुद्ध हो रहा था ॥183॥ इसी प्रकार स्वामी के राग को प्राप्त तथा अपने-अपने वीरों की शोभा चाहने वाले सामंतों में भी द्वंद्व-युद्ध हो रहा था ॥184॥ कहीं परचक्र से रुका और तरंगों के समान चंचल ऊँचे घोड़ों का समूह रणांगण को सघन कर रहा था वहाँ की भीड़ बढ़ा रहा था ॥185॥ कवच टूट गया था ऐसे सामने खड़े शत्रु को देख रण की खाज से युक्त योद्धा दूसरी ओर मुख कर रहा था ॥186॥ कितने ही योद्धा स्वामी को छोड़ शत्रु की सेना में घुस पड़े और अपने स्वामी का नाम लेकर जो भी दिखे उसे मारने लगे ॥187॥ तीव्र अहंकार से भरे कितने ही महायोद्धा, मनुष्यों की उपेक्षा कर मदस्रावी हाथियों की शत्रुता को प्राप्त हुए ॥188॥ कोई एक उत्तम योद्धा मदोन्मत्त हाथी की दंतरूपी शय्या का आश्रय ले रण निद्रा के उत्तम सुख को प्राप्त हुआ **अर्थ**ात् हाथी के दांतों से घायल हो कर कोई योद्धा मरण को प्राप्त हुआ ॥189॥ जिसका शस्त्र टूट गया था ऐसे किसी योद्धा ने सामने आते हुए घोड़े के लिए मार्ग तो नहीं दिया किंतु हाथ ठोक कर प्राण दे दिये ॥190॥ कोई एक योद्धा प्रथम प्रहार में ही गिर गया था इसलिए उसके बकने पर भी उदारचेता किसी महायोद्धा ने लज्जित हो उस पर पुनः प्रहार नहीं किया ॥191॥ जिसका हृदय नहीं टूटा था ऐसा कोई योद्धा, सामने के वीर को शस्त्र रहित देख, अपना भी शस्त्र फेंककर मात्र भुजाओं से ही युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ था ॥192॥ कितने ही वीरों ने सदा के सुप्रसिद्ध दानी हो कर भी युद्ध क्षेत्र में आकर अपने प्राण तो दे दिये थे पर पीठ के दर्शन किसी को नहीं दिये ॥193॥ किसी सारथि का रथ रुधिर की कीचड़ में फँस जाने के कारण बड़ी कठिनाई से चल रहा था इसलिए वह चाबुक से ताड़ना देने में तत्पर होने पर भी शीघ्रता को प्राप्त नहीं हो रहा था ॥194॥ इस प्रकार उन दोनों सेनाओं में वह महायुद्ध हुआ जिसमें कि शब्द करने वाले घोड़ों के द्वारा खींचे गये रथ ची-ची शब्द कर रहे थे, जो घोड़ों के वेग से उड़े हुए सामंत भटों से व्याप्त था ॥195॥ जिसमें महायोद्धाओं के शब्द निकलते हुए खून के उद्गार से सहित थे, जहाँ वेगशाली शस्त्रों के पड़ने से अग्नि कणों का समूह उत्पन्न हो रहा था ॥196॥ जहाँ हाथियों के सू-सू शब्द के साथ जल के छींटों का समूह निकल रहा था, जहाँ हाथियों के द्वारा विदीर्ण वक्षःस्थल वाले योद्धाओं से भूतल व्याप्त था ॥197॥ जहाँ इधर-उधर पड़े हुए हाथियों से युद्ध का मार्ग रुक जाने के कारण यातायात में गड़बड़ी हो रही थी। जहाँ हाथी रूपी मेघों से मुक्ताफल रूपी महोपलों बड़े-बड़े ओलों की वर्षा हो रही थी, ॥198॥ जो मोतियों की वर्षा के समाघात से विकट था, नाना प्रकार के कर्मों की रंगभूमि था, जहाँ हाथियों के द्वारा उखाड़ कर ऊपर उछाले हुए पुंनाग के वृक्ष, विद्याधरों का संगम कर रहे थे ॥199॥ जहाँ शिरों के द्वारा यशरूपी रत्न खरीदा गया था, जहाँ मूर्च्छा से विश्राम प्राप्त होता था, और मरण से जहाँ निर्वाण मिलता था ॥200॥ इस प्रकार वीरों की चाहे बड़ी टुकड़ी हो चाहे छोटी, सबमें वह युद्ध हुआ कि जो जीवन की तृष्णा से रहित था, जिसमें योद्धाओं के समूह धन्य-धन्य शब्दरूपी समुद्र के लोभी थे तथा जो समरस से सहित था- किसी भी पक्ष की जय पराजय से रहित था ॥201॥ स्वामी में अटूट भक्ति, जीविका प्राप्ति का बदला चुकाना और रण की तेज खाज यही सब सूर्य के समान तेजस्वी योद्धाओं के संग्राम के कारणपने को प्राप्त हुए थे ॥202॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में लवणांकुश के युद्ध का वर्णन करने वाला एक सौ दूसरा पर्व समाप्त हुआ ॥102॥

## राम तथा लवणांकुश के समागम

एक सौ तीसरा पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे मगधराजेंद्र ! सावधान चित्त होओ अब मैं तेरे लिए युद्ध का विशेष वर्णन करता हूँ ॥1॥ अनंगलवण रूपी सागर का सारथि वज्रजंघ था, मदनांकुश का प्रसिद्ध पराक्रमी राजा पृथु, लक्ष्मण का चंद्रोदर का पुत्र विराधित और राम रूपी इंद्र का सारथि कृतांतवक्त्र रूपी सूर्य था ॥2-3॥ विशाल गर्जना करने वाले रामने गंभीर वाणी द्वारा वज्रावर्त नामक धनुष उठा कर कृतांतवक्त्र सेनापति से कहा ॥4॥ कि हे कृतांतवक्त्र ! शत्रु की ओर शीघ्र ही रथ बढ़ाओ । इस तरह शरीर के भार को शिथिल

करते हुए क्यों अलसा रहे हो ? ॥5॥ यह सुन कृतांतवक्त्र ने कहा कि हे देव ! इस नर वीर के द्वारा अत्यंत तीक्ष्ण बाणों से जर्जर हुए इन घोड़ों को देखो ॥6॥ वे शरीर को दूर करने वाली निद्रा को ही मानो प्राप्त हो रहे है अथवा विकार से निर्मुक्त हो वेग रहित हो रहे हैं ? ॥7॥ अब ये न तो सैकड़ों मीठे शब्द कहने पर और न हथेलियों से ताड़ित होने पर शरीर को लंबा करते हैं शीघ्रता से चलते हैं किंतु अत्यधिक शब्द करते हुए स्वयं ही लंबा शरीर धारण कर रहे हैं ॥8॥ ये रुधिर की धारा से पृथिवीतल को लाल लाल कर रहे हैं सो मानों आपके लिए अपना महान अनुराग ही दिखला रहे हों ॥9॥ और इधर देखो, ये मेरी भुजाएं कवच को भेदन करने वाले बाणों से फूले हुए कदंब पुष्पों की माला के सादृश्य को प्राप्त हो रही हैं ॥10॥ यह सुन रामने भी कहा कि इसी तरह मेरा भी धनुष शिथिल हो रहा है और चित्रलिखित धनुष की तरह क्रिया शून्य हो रहा है ॥11॥ यह मुशल रत्न कार्य से रहित हो गया है और सूर्यावर्त धनुष के कारण भारी हुए भुजदंड को पीड़ा पहुँचा रहा है ॥12॥ जो दुर्वार शत्रु रूपी हाथियों को वश करने के लिए अनेकों बार अंकुशपने को प्राप्त हुआ था ऐसा यह मेरा हल रत्न निष्फल हो गया है ॥13॥ शत्रुपक्ष को नष्ट करने में समर्थ एवं अपने पक्ष की रक्षा करने वाले अमोघ महा शस्त्रों की भी ऐसी दशा हो रही है ॥14॥ इधर लवणांकुश के विषय में जिस प्रकार राम के शस्त्र निरर्थक हो रहे थे उधर उसी प्रकार मदनांकुश के विषय में लक्ष्मण के शस्त्र भी निरर्थक हो रहे थे ॥15॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि इधर लवणांकुश को तो राम लक्ष्मण के साथ अपने जाति संबंध का ज्ञान था अतः वे उनको अपेक्षा रखते हुए युद्ध करते थे **अर्थ**ात् उन्हें घातक चोट न लग जावे इसलिए बचा बचा कर युद्ध करते थे पर उधर राम लक्ष्मण को कुछ ज्ञान नही था इस लिए वे निरपेक्ष हो कर युद्ध कर रहे थे ॥16॥ यद्यपि इस तरह लक्ष्मण के शस्त्र निरर्थक हो रहे थे तथापि वे दिव्यास्त्र से सहित होने के कारण विषाद से रहित थे। अबकी बार उन्होंने अंकुश के ऊपर भाले सामान्य चक्र तथा बाणों की जोरदार वर्षा की सो उसने वज्रदंड तथा बाणों के द्वारा उस वर्षा को दूर कर दिया। इसी तरह अनंगलवण ने भी राम के द्वारा छोड़ा अस्त्र-वृष्टि को दूर कर दिया था ॥17-18॥ तदनंतर इधर लवण ने वक्षःस्थल के समीप राम को प्राप्त नामा शस्त्र से घायल किया और उधर चातुर्य से युक्त वीर मदनांकुश ने भी लक्ष्मण के ऊपर प्रहार किया ॥19॥ उसकी चोट से जिसके नेत्र और हृदय घूमने लगे थे ऐसे लक्ष्मण को देख विराधित ने घबड़ा कर रथ उलटा अयोध्या की ओर फेर दिया ॥20॥ तदनंतर चेतना प्राप्त होने पर जब लक्ष्मण ने रथ को दूसरी ओर देखा तब लक्ष्मण ने क्रोध से लाल-लाल नेत्र करते हुए कहा कि हे बुद्धिमन् ! विराधित ! तुमने यह क्या किया ? शीघ्र ही रथ लौटाओ । क्या तुम नहीं जानते कि युद्ध में पीठ नहीं दी जाती है ? ॥21-22॥ बाणों से जिसका शरीर व्याप्त है ऐसे शूर वीर का शत्रु के सन्मुख खड़े-खड़े मर जाना अच्छा है पर यह घृणित कार्य अच्छा नहीं है ॥23॥ जो मनुष्य, पुरुषों के मस्तक पर स्थित हैं **अर्थ**ात् उनमें प्रधान हैं वे देवों और मनुष्यों के बीच परम आपत्ति को प्राप्त हो कर भी कातरता को कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? ॥24॥ मैं दशरथ का पुत्र, राम का भाई और पृथिवी पर नारायण नामसे प्रसिद्ध हूँ उसके लिए यह काम कैसे योग्य हो सकता है ? ॥25॥ इस प्रकार कह कर लक्ष्मण ने शीघ्र ही पुनः रथ लौटा दिया और पुनः जिसमें सैनिक लौट कर आये थे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ ॥26॥

तदनंतर कोप वश लक्ष्मण ने संग्राम का अंत करने की इच्छा से देवों और असुरों को भी भय उत्पन्न करने वाला अमोघ चक्ररत्न उठाया ॥27॥ और ज्वालावली से व्याप्त, दुष्प्रेक्ष्य एवं सूर्य के सदृश वह चक्ररत्न क्रोध से देदीप्यमान लक्ष्मण ने अंकुश को मारने के लिए चला दिया ॥28॥ परंतु वह चक्र अंकुश के समीप जा कर निष्प्रभ हो गया और लौट कर पुनः लक्ष्मण के ही हस्ततल में आ गया ॥29॥ तीव्र क्रोध के कारण वेग से युक्त लक्ष्मण ने कई बार वह चक्र अंकुश के समीप फेंका परंतु वह बार-बार लक्ष्मण के ही समीप लौट जाता था ॥30॥

अथानंतर परम विभ्रम को धारण करने वाले रणशाली, सुधीर अंकुश कुमार ने अपने धनुष दंड को उस तरह घुमाया कि उसे वैसा देख रण में जितने लोग उपस्थित थे उन सबका चित्त आश्चर्य से व्याप्त हो गया तथा सबके यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि अब यह परम शक्तिशाली दूसरा चक्रधर नारायण उत्पन्न हुआ है जिसके कि घूमते हुए चक्र ने सबको संशय में डाल दिया है ॥31-33॥ क्या यह चक्र स्थिर है अथवा भ्रमण को प्राप्त है ? अत्यधिक गर्जना सुनाई पड़ रही है ॥34॥ चक्ररत्न कोटिशिला आदि लक्षणों से प्रसिद्ध है सो यह मिथ्या जान पड़ता है क्योंकि इस समय यह चक्र यहाँ दूसरे को ही उत्पन्न हो गया है ॥35॥ अथवा मुनियों के वचनों में अन्यथापन कैसे हो सकता है ? क्या जिनेंद्र भगवान के भी शासन में कही हुई बातें व्यर्थ होती हैं ? ॥36॥ यद्यपि वह धनुष दंड घुमाया गया था तथापि जिनकी बुद्धि मारी गई थी ऐसे लोगों के मुख से व्याकुलता से भरा हुआ यही शब्द निकल रहा था कि यह चक्ररत्न है ॥37॥ उसी समय परम शक्ति को धारण

करने वाले लक्ष्मण ने भी कहा कि जान पड़ता है ये दोनों बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए ॥38॥
अथानंतर लक्ष्मण को लज्जित और निश्चेष्ट देख नारद की संमति से सिद्धार्थ लक्ष्मण के पास जा कर बोला कि हे देव ! नारायण तो तुम्हीं हो, जिन शासन में कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है ? वह तो मेरु पर्वत से भी कहीं अधिक निष्कंप है ॥36-40॥ ये दोनों कुमार जानकी के लवणांकुश नामक वे पुत्र हैं जिनके कि गर्भ में रहते हुए वह वन में छोड़ दी गई थी ॥41॥ मुझे यह ज्ञात है कि आप सीता-परित्याग के पश्चात् दुःखरूपी सागर में गिर गये थे **अर्थ**ात् आपने सीता परित्याग का बहुत दुःख अनुभव किया था और आपके दुःखी रहते रत्नों की सार्थकता नहीं थी ।॥42॥
तदनंतर सिद्धार्थ से लवणांकुश का माहात्म्य जान कर शोक से कृश लक्ष्मण ने कवच और शस्त्र छोड़ दिये ॥43॥ अथानंतर इस वृत्तांत को सुन जो विषाद के भार से पीड़ित थे, जिन्होंने धनुष और कवच छोड़ दिये थे, जिनके नेत्र घूम रहे थे, जिन्हें पिछले दुःख का स्मरण हो आया था, जो बड़े वेग से रथ से उतर पड़े थे तथा मूर्च्छा के कारण जिनके नेत्र निमीलित हो गये थे ऐसे राम पृथिवीतल पर गिर पड़े ॥ 44-45॥ तदनंतर चंदन मिश्रित जल के सींचने से जब सचेत हुए तब स्नेह से आकुल हृदय होते हुए शीघ्र ही पुत्रों के समीप चले ॥46॥ । तदनंतर स्नेह से भरे हुए दोनों पुत्रों ने रथ से उतर कर हाथ जोड़ शिर से पिता के चरणों को नमस्कार किया ॥47॥ तत्पश्चात् जिनका हृदय स्नेह से द्रवीभूत हो गया था और जिनका मुख आंसुओं से दुर्दिन के समान जान पड़ता था ऐसे राम दोनों पुत्रों का आलिंगन कर विलाप करने लगे ॥48। वे कहने लगे कि हाय पुत्रो ! जब तुम गर्भ में स्थित थे तभी मुझ मंदबुद्धि ने तुम दोनों निर्दोष बालकों को सीता के साथ भीषण वन में छोड़ दिया था ॥49॥ हाय पुत्रो ! बड़े पुण्य के कारण मुझसे जन्म लेकर भी तुम दोनों ने उदरस्थ अवस्था में वन में परम दुःख कैसे प्राप्त किया ? ॥50॥ हाय पुत्रो ! यदि उस समय उस वन में यह वज्रजंघ नहीं होता तो तुम्हारा यह मुखरूपी पूर्ण चंद्रमा किस प्रकार देख पाता ? ॥51॥ हाय पुत्रो ! जो तुम इन अमोघ शस्त्रों से नहीं हने गये हो सो जान पड़ता है कि देवों ने अथवा परम अभ्युदय से युक्त पुण्य ने तुम्हारी रक्षा की है ॥52॥ हाय पुत्रो ! बाणों से विधे और युद्धभूमि में पड़े तुम दोनों को देखकर जानकी क्या करती यह मैं नहीं जानता ॥53॥ निर्वासन-परित्याग का दुःख तो अन्य मनुष्यों को भी दुःसह होता है फिर आप जैसे सुपुत्रों के द्वारा छोड़ी गुणशालिनी सीता की क्या दशा होती ? ॥54॥ आप दोनों पुत्रों का मरण जान शोक से विह्वल सीता निश्चित ही जीवित नहीं रहती ॥55॥
जिनके नेत्र अश्रुओं से पूर्ण थे, तथा जो संभ्रांत हो शोक से विह्वल हो रहे थे ऐसे लक्ष्मण ने भी विनय से नम्रीभूत दोनों पुत्रों का बड़े स्नेह के साथ आलिंगन किया ॥56॥ शत्रुघ्न आदि राजा भी इस वृत्तांत को सुन उस स्थान पर गये और सभी उत्तम आनंद को प्राप्त हुए ॥57॥ तदनंतर जब दोनों सेनाओं के स्वामी समागम होने पर सुख और आश्चर्य से पूर्ण हो गये तब दोनों सेनाओं का परस्पर समागम हुआ ॥58॥ सीता भी पुत्रों का माहात्म्य तथा समागम देख निश्चिंत हृदय हो विमान द्वारा पौंडरीकपुर वापिस लौट गई ॥59॥
तदनंतर संभ्रम से भरे भामंडल ने आकाश से उतर कर घाव रहित दोनों भानेजों को साश्रुदृष्टि से देखते हुए उनका आलिंगन किया ॥60॥ प्रीति प्रकट करने में तत्पर हनुमान ने भी 'बहुत अच्छा हुआ' इस शब्द का बार-बार उच्चारण कर उन दोनों का आलिंगन किया ॥61॥ विराधित तथा सुग्रीव भी इसी तरह सत्समागम को प्राप्त हुए और विभीषण आदि राजा भी कुमारों से वार्तालाप करने में तत्पर हुए ॥62॥ अथानंतर देवों के समान भूमिगोचरियों तथा विद्याधरों का वह समागम अत्यधिक महान् आनंद का कारण हुआ ॥63॥ अत्यंत सुंदर पुत्रों का समागम पाकर जिनका हृदय धैर्य से भर गया था ऐसे राम ने उत्कृष्ट लक्ष्मी धारण की ॥64॥ किसी अनिर्वचनीय भाव को प्राप्त हुए श्रीराम ने उन सुपुत्रों के लाभ को तीनलोक के राज्य से भी कहीं अधिक सुंदर माना ॥65॥ विद्याधरों की स्त्रियाँ बड़े हर्ष के साथ आकाशरूपी आँगन में और भूमिगोचरियों की स्त्रियाँ उन्मत्त संसार की नाई पृथ्वी पर नृत्य कर रही थीं ॥66॥ हर्ष से जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे नारायण ने अपने आपको कृतकृत्य माना और समस्त संसार को जीता हुआ समझा ॥67॥ मैं सगर हूँ और ये दोनों वीर भीम तथा भगीरथ हैं इस प्रकार बुद्धि से उपमा को करते हुए लक्ष्मण परम दीप्ति को धारण कर रहे थे ॥68॥ परमप्रीति को धारण करते हुए राम ने वज्रजंघ का खूब सम्मान किया और कहा कि सुंदर हृदय से युक्त तुम मेरे लिए भामंडल के समान हो ॥69॥
तदनंतर वह अयोध्या नगरी स्वर्ग के समान तो पहले ही की जा चुकी थी उस समय और भी अधिक सुंदर की गई थी ॥70॥ जो स्त्री कला और ज्ञान की विशेषता से स्वभावतः सुंदर है उसका आभूषण संबंधी आदर पद्धति मात्र से किया जाता है **अर्थ**ात् वह पद्धति मात्र से आभूषण धारण करती है ॥71॥ तदनंतर जो गजघटा के पृष्ठ पर स्थित सूर्य के समान कांति संपन्न था ऐसे पुष्पक विमान पर राम अपने पुत्रों सहित आरूढ हो सूर्य के समान सुशोभित होने लगे ॥72॥ जिस प्रकार बिजली से सहित महामेघ, सुमेरु के शिखर पर आरूढ होता

है उसी प्रकार उत्तम अलंकारों से सहित लक्ष्मण भी उसी पुष्पक विमान पर आरूढ हुए ॥73॥ इस प्रकार वे सब नगरी के बाहर के उद्यान, मंदिर और ध्वजाओं से व्याप्त कोट को देखते हुए नाना प्रकार के वाहनों से धीरे-धीरे चले ॥4॥ जिनके तीन स्थानों से मद भर रहा था ऐसे हाथी, घोड़ों के समूह, रथ तथा पैदल सैनिकों से व्याप्त नगर के मार्ग, धनुष, ध्वजा और छत्रों के द्वारा अंधकार युक्त हो रहे थे ॥75॥ महलों के झरोखे, लवणांकुश को देखने के लिए महा कौतूहल से युक्त उत्तम स्त्रियों के समूह से परिपूर्ण थे ॥76॥ नयन रूपी अंजलियों के द्वारा लवणांकुश का पान करने के लिए प्रवृत्त उदार हृदया स्त्रियाँ संतोष को प्राप्त नहीं हो रहीं थीं ॥77॥ उन्हीं एक में जिनका चित्त लग रहा था ऐसी देखने वाली स्त्रियों के पारस्परिक धक्का धूमी के कारण हार और कुंडल टूट कर गिर गये थे पर उन्हें पता भी नहीं चल सका था ॥78॥ हे मातः ! जरा मुख यहाँ से दूर हटा, क्या मुझे कौतुक नहीं है ? हे अखंडकौतुके ! तेरी यह स्वार्थपरता कितनी है ? ॥79॥ हे सखि ! प्रसन्न होकर मस्तक कुछ नीचा कर लो, इतनी तनी क्यों खड़ी हो । यहाँ से चोटी को हटा लो ॥80॥ हे प्राणहीने ! हे क्षिप्त हृदये ! इस तरह दूसरे को क्यों पीड़ित कर रही है ? क्या आगे इस पीड़ित लड़की को नहीं देख रही है ? ॥81॥ जरा हटकर खड़ी होओ, मैं गिर पड़ी हूँ, इस तरह तू क्या निश्चेतनता को प्राप्त हो रही है ? अरे कुमार को क्यों नहीं देखती है ? ॥82॥ हाय मातः ! कैसी स्त्री है ? यदि मैं देखती हूँ तो तुझे इससे क्या प्रयोजन ? हे दुर्बले ! मेरी इस प्रेरणा देने वाली को क्यों मना करती है ? ॥83॥ जो ये दो कुमार श्रीराम के दोनों ओर बैठे हैं ये ही अर्धचंद्रमा के समान ललाट को धारण करने वाले लवण और अंकुश हैं ॥84॥ इनमें अनंग लवण कौन है और मदनांकुश कौन है ? अहो ! ये दोनों ही कुमार अत्यंत सदृश आकार के धारक हैं ॥85॥ जो यह महारजत के रंग से रंगे-लाल रंग के कवच को धारण करता है वह लवण है और जो तोता के पंख के समान हरे रंग के वस्त्र पहने है वह अंकुश है ॥86॥ अहो ! सीता बड़ी पुण्यवती है जिसके कि ये दोनों उत्तम पुत्र हैं। अहो ! वह स्त्री अत्यंत धन्य है जो कि इनकी स्त्री होगी ॥87॥ इस प्रकार उन्हीं एक में जिनके नेत्र लग रहे थे ऐसी उत्तमोत्तम स्त्रियों के बीच मन और कानों को हरण करने वाली अनेक कथाएँ चल रही थीं ॥88॥ उनमें जिसका चित्त लग रहा था ऐसी किसी स्त्री ने उस समय अत्यधिक धक्काधूमी के कारण कुंडल रूपी साँप की दाँढ़ से विमान-घायल हुए अपने कपोल को नहीं जानती थी ॥89॥ अन्य स्त्री की भुजा के उत्पीड़न से बंद चोली के भीतर उठा हुआ किसी का स्तन मेघ सहित चंद्रमा के समानसुशोभित हो रहा था ॥90॥ किसी एक स्त्री की मेखना शब्द करती हुई नीचे गिर गई फिर भी उसे पता नहीं चला किंतु लौटते समय उसी करधनी से पैर फंस जाने के कारण वह गिर पड़ी ॥91॥ किसी स्त्री की चोटी में लगी मकरी की डाँढ़ से फटे हुए वस्त्र को देखकर कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री किसी से कुछ कह रही थी ॥92॥ जिसका मन ढीला हो रहा था ऐसे किसी दूसरे मनुष्य के शरीर के शिथिलता को प्राप्त करने पर उसकी नीचे की ओर लटकती हुई बाहुरूपी लता के अग्रभाग से कड़ा नीचे गिर गया ॥93॥ किसी एक स्त्री के कर्णाभरण में उलझा हुआ हार टूटकर गिर गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो फूलों की अंजलि ही बिखेर दी गई हो ॥94॥ उन दोनों कुमारों को देखकर किन्हीं स्त्रियों के नेत्र निर्निमेष हो गये और उनके दूर चले जाने पर भी वैसे ही निर्निमेष रहे आये ॥95॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम भवनरूपी पर्वतों पर विद्यमान स्त्री रूपी लताओं के द्वारा छोड़े हुए फूलों के समूह से निकली धूली से जिन्होंने आकाश के प्रदेशों को धूसर वर्ण कर दिया था तथा जो परम वैभव को प्राप्त थे ऐसे श्रीराम आदि अत्यंत सुंदर राजाओं ने मंगल से परिपूर्ण महल में प्रवेश किया ॥96॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि पुण्यरूपी सूर्य के द्वारा जिसका उत्तम मनरूपी कमल विकसित हुआ है ऐसा मनुष्य इस प्रकार के अचिंतित तथा उत्तम प्रियजनों के समागम से उत्पन्न आनंद को प्राप्त होता है ॥97॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में राम तथा लवणांकुश के समागम का वर्णन करने वाला एक सौ तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥103॥

## सकलभूषण का केवलज्ञानोत्सव

एक सौ चौथा पर्व

कथा :

अथानंतर किसी दिन हनुमान, सुग्रीव तथा विभीषण आदि प्रमुख राजाओं ने श्रीराम से प्रार्थना की कि हे देव ! प्रसन्न होओ, सीता अन्य देश में दुःख से स्थित है इसलिए लाने की आज्ञा की जाय ॥1-2॥ तब लंबी और गरम श्वास ले तथा क्षण भर कुछ विचार कर भाषा से दिशाओं को मलिन करते हुए श्रीराम ने कहा कि यद्यपि मैं उत्तम हृदय को धारण करने वाली सीता के शील को निर्दोष जानता हूँ तथापि वह यतश्च लोकापवाद को प्राप्त है अतः उसका मुख किस प्रकार देखूं ॥3-4॥ पहले सीता पृथिवीतल पर समस्त लोगों को विश्वास उत्पन्न

करावे उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्य प्रकार नहीं ॥5॥ इसलिए इस संसार में देशवासी लोगों के साथ समस्त राजा तथा समस्त विद्याधर बड़े प्रेम से निमंत्रित किये जावें ॥6॥ उन सब के समक्ष अच्छी तरह शपथ कर सीता इंद्राणी के समान निष्कलंक जन्म को प्राप्त हो ॥7॥ 'एवमस्तु'□'ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर उन्होंने बिना किसी विलंब के उक्त बात स्वीकृत की; फलस्वरूप नाना देशों और समस्त दिशाओं से राजा लोग आ गये ॥8॥

बालक वृद्ध तथा स्त्रियों से सहित नाना देशों के लोग महाकौतुक से युक्त होते हुए अयोध्या नगरी को प्राप्त हुए ॥9॥ सूर्य को नहीं देखने वाली स्त्रियाँ भी जब संभ्रम से सहित हो वहाँ आई थीं तब साधारण अन्य मनुष्य के विषय में तो कहा ही क्या जावे ? ॥10॥ अत्यंत वृद्ध अनेक लोगों का हाल जानने में निपुण जो राष्ट्र के श्रेष्ठ प्रसिद्ध पुरुष थे वे तथा अन्य सब लोग वहाँ एकत्रित हुए ॥11॥ उस समय परम भीड़ को प्राप्त हुए जन समूह ने समस्त दिशाओं में समस्त पृथिवी को मार्ग रूप में परिणत कर दिया था ॥12॥ लोगों के समूह घोड़े, रथ, बैल, पालकी तथा नाना प्रकार के अन्य वाहनों के द्वारा वहाँ आये थे ॥13। ऊपर विद्याधर आ रहे थे और नीचे भूमिगोचरी, इसलिए उन सबसे उस समय यह जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो जंगम ही हो **अर्थ**ात् चलने फिरने वाला ही हो ॥14॥ क्रीड़ा-पर्वतों के समान लंबे चौड़े मंच तैयार किये गये, उत्तमोत्तम विशाल शालाएँ, कपड़े के उत्तम तंबू , तथा जिनकी अनेक गाँव समा जावें ऐसे खंभों पर खड़े किये गये, बड़े बड़े झरोखों से युक्त तथा विशाल मंडपों से सुशोभित महल बनवाये गये ॥15-16॥ उन सब स्थानों में स्त्रियाँ स्त्रियों के साथ और पुरुष पुरुषों के साथ, इस प्रकार शपथ देखने के इच्छुक सब लोग यथायोग्य ठहर गये ॥17॥ राजाधिकारी पुरुषों ने आगंतुक मनुष्यों के लिए शयन आसन तांबूल भोजन तथा माला आदि के द्वारा सब प्रकार की सुविधा पहुँचाई थी ॥18॥

तदनंतर राम की आज्ञा से भामंडल, विभीषण, हनुमान्, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े-बड़े बलवान् राजा क्षणभर में आकाश मार्ग से पौंडरीकपुर गये ॥16-20॥ वे सब, सेना को बाहर ठहरा कर अंतरंग लोगों के साथ सूचना देकर तथा अनुमति प्राप्त कर सीता के स्थान में प्रविष्ट हुए ॥21॥ प्रवेश करते ही उन्होंने सीतादेवी का जय जयकार किया, पुष्पांजलि बिखेरी, हाथ जोड़ मस्तक से लगा चरणों में प्रणाम किया, सुंदर मणिमय फर्श से सुशोभित पृथिवी पर बैठे और सामने बैठ विनय से नम्रीभूत हो क्रमपूर्वक वार्तालाप किया ॥ 22-23॥

तदनंतर संभाषण करने के बाद अत्यंत गंभीर सीता, आंसुओं से नेत्रों को आच्छादित करती हुई अधिकांश आत्म निंदा रूप वचन धीरे धीरे बोली ॥24॥ उसने कहा कि दुर्जनों के वचन रूपी दावानल से जले हुए मेरे अंग इस समय क्षीरसागर के जल से भी शांति को प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥25॥ तब उन्होंने कहा कि हे देवि ! हे भगवति ! हे उत्तमे ! हे सौम्ये ! इस समय शोक छोड़ो और मन को प्रकृतिस्थ करो ॥ 26॥ संसार में ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारे विषय में अपवाद करने वाला हो। वह कौन है जो पृथिवी चला सके और अग्निशिखा का पान कर सके ? ॥27॥ सुमेरु पर्वत को उठाने का किसमें साहस है ? चंद्रमा और सूर्य के शरीर को कौन मूर्ख जिह्वा से चाटता है ? ॥ 28॥ तुम्हारे गुण रूपी पर्वत को चलाने के लिए कौन समर्थ है ? अपवाद से किसकी जिह्वा के हजार टुकड़े नहीं होते ? ॥29॥ हम लोगों ने भरत क्षेत्र की भूमि में किंकरों के समूह यह कह कर नियुक्त कर रक्खे हैं कि जो भी देवी की निंदा करने में तत्पर हो उसे मार डाला जाय ॥30॥ और जो पृथिवी में अत्यंत नीच होने पर भी सीता की गुण कथा में तत्पर हो उस विनीत के घर में रत्नवर्षा की जाय ॥31॥ हे देवि ! धान्य रूपी संपत्ति की इच्छा करने वाले खेत के पुरुष **अर्थ**ात् कृषक लोग अनुरागवश धान्य की राशियों में तुम्हारी स्थापना करते हैं ? भावार्थ□ लोगों का विश्वास है कि धान्य राशि में सीता की स्थापना करने से अधिक धान्य उत्पन्न होता है ॥32॥ हे देवि ! रामचंद्र जी ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है सो प्रसन्न हो कर इस पर चढ़ा जाय और अयोध्या की ओर चला जाय ॥33॥ जिस प्रकार लता के बिना वृक्ष, दीप के बिना घर और चंद्रमा के बिना आकाश सुशोभित नहीं होते उसी प्रकार तुम्हारे बिना राम, अयोध्या नगरी और देश सुशोभित नहीं होते ॥34॥ हे मैथिलि ! आज शीघ्र ही स्वामी का पूर्णचंद्र के समान मुख देखो । हे कोविदे ! तुम्हें पति वचन अवश्य स्वीकृत करना चाहिए ॥35॥ इस प्रकार कहने पर सैकड़ों उत्तम स्त्रियों के परिकर के साथ सीता पुष्पक विमान पर आरूढ हो गई और बड़े वैभव के साथ वेग से आकाशमार्ग से चली ॥36॥ अथानंतर जब उसे अयोध्यानगरी दिखी उसी समय सूर्य अस्त हो गया अतः उसने चिंतातुर हो महेंद्रोदय नामक उद्यान में रात्रि व्यतीत की ॥37॥ राम के साथ होने पर जो उद्यान पहले उसके लिए अत्यंत मनोहर जान पड़ता था वही उद्यान पिछली घटना स्मृत होने पर उसके लिए अयोग्य जान पड़ता था ॥38॥

अथानंतर सीता की शुद्धि के अनुराग से ही मानों जब सूर्य उदित हो चुका, किंकरों के समान किरणों से जब समस्त संसार अलंकृत हो

गया और शपथ से दुर्वाद के समान जब अंधकार भयभीत हो क्षय को प्राप्त हो गया तब सीता राम के समीप चली ॥39-40॥ मन की अशांति से जिसकी प्रभा नष्ट हो गई थी ऐसी हस्तिनी पर चढ़ी सीता, सूर्य के प्रकाश से आलोकित, पर्वत के शिखर पर स्थित महौषधि के समान यद्यपि निष्प्रभ थी तथापि उत्तम स्त्रियों से घिरी, उच्च भावना वाली दुबली पतली सीता, ताराओं से घिरी चंद्रमा की कला के समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी॥41-42॥ तदनंतर जिसे सब लोग वंदना कर रहे थे तथा जिसकी सब स्तुति कर रहे थे ऐसी धीर वीरा सीता ने विशाल, गंभीर एवं विनय से स्थित सभा में प्रवेश किया ॥43॥ विषाद, विस्मय, हर्ष और क्षोभ से सहित मनुष्यों का अपार सागर बार-बार यह शब्द कह रहा था कि वृद्धि को प्राप्त होओ, जयवंत होओ और समृद्धि से संपन्न होओ ॥44॥ अहो ! उज्ज्वल कार्य करने वाली श्रीमान् राजा जनक की पुत्री सीता का रूप धन्य है ? धैर्य धन्य है, पराक्रम धन्य है, उसकी कांति धन्य है, महानुभावता धन्य है, और समागम से सूचित होने वाली इसकी निष्कलंकता धन्य है ॥45-46॥ इस प्रकार उल्लसित शरीरों को धारण करने वाले मनुष्यों और स्त्रियों के मुखों से दिगदिगंत को व्याप्त करने वाले शब्द निकल रहे थे ॥47॥ आकाश में विद्याधर और पृथिवी में भूमिगोचरी मनुष्य, अत्यधिक कौतुक और टिमकार रहित नेत्रों से युक्त थे ॥48॥ अत्यधिक हर्ष से संपन्न कितनी ही स्त्रियाँ तथा कितने ही मनुष्य राम को टकटकी लगाये हुए उस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार कि देव इंद्र को देखते हैं ॥49॥ कितने ही लोग राम के समीप में स्थित लवण और अंकुश को देखकर यह कह रहे थे कि अहो! ये दोनों सुकुमार कुमार इनके ही सदृश हैं ॥50॥ कितने ही लोग शत्रुका क्षय करने में समर्थ लक्ष्मण को, कितने ही शत्रुघ्न को, कितने ही भामंडल को, कितने ही हनूमान् को, कितने ही विभीषण को, कितने ही विराधित को और कितने ही सुग्रीव को देख रहे थे ॥51-52॥ कितने ही आश्चर्य से चकित होते हुए जनकसुता को देख रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि वह क्षण मात्र में अन्यत्र विचरण करने वाले नेत्रों की मानो वसति ही थी ॥53॥ तदनंतर जिसका चित्त अत्यंत आकुल हो रहा था ऐसी सीता के पास जाकर तथा राम को देख कर माना था कि अब वियोगरूपी सागर का अंत आ गया है ॥54॥ आई हुई सीता के लिए लक्ष्मण ने अर्घ दिया तथा राम के समीप बैठे हुए राजाओं ने हड़बड़ाकर उसे प्रणाम किया ॥55॥

तदनंतर वेग से सामने आती हुई सीता को देख कर यद्यपि राम अक्षोभ्य पराक्रम के धारक थे तथापि उनका हृदय कांपने लगा ॥56॥ वे विचार करने लगे कि मैंने तो इसे हिंसक जंतुओं से भरे वन में छोड़ दिया था फिर मेरे नेत्रों को चुराने वाली यह यहाँ कैसे आ गई ? ॥57। अहो ! यह बड़ी निर्लज्ज है तथा महाशक्ति से संपन्न है जो इस तरह निकाली जाने पर भी विराग को प्राप्त नहीं होती ॥58॥ तदनंतर राम की चेष्टा देख, शून्यहृदया सीता यह सोचकर विषाद करने लगी कि मैंने विरह रूपी सागर अभी पार नहीं कर पाया है ॥59॥ विरह रूपी सागर के तट को प्राप्त हुआ मेरा मनरूपी जहाज निश्चित ही विध्वंस को प्राप्त हो जायगा-नष्ट हो जायगा ऐसी चिंता से वह व्याकुल हो उठी ॥60॥ 'क्या करना चाहिए' इस विषयका विचार करने में मूढ़ सीता, पैर के अंगूठे से भूमिको कुरेदती हुई राम के समीप खड़ी थी ॥ 61॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय राम के आगे खड़ी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो शरीरधारिणी स्वर्ग की लक्ष्मी ही हो अथवा इंद्र के आगे मूर्तिमती लक्ष्मी ही खड़ी हो ॥62॥

तदनंतर राम ने कहा कि सीते ! सामने क्यों खड़ी है ? दूर हट, मैं तुम्हें देखने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥63॥ मेरे नेत्र मध्याह्न के समय सूर्य की किरण को अथवा आशीविष-सर्प के मणि की शिखा को देखने के लिए अच्छी तरह उत्साहित हैं परंतु तुझे देखने के लिए नहीं ॥64॥ तू रावण के भवन में कई मास तक उसके अंतःपुर से आवृत्त होकर रही फिर भी मैं तुम्हें ले आया सो यह सब क्या मेरे लिए उचित था ? ॥ 65॥

तदनंतर सीता ने कहा कि तुम्हारे समान निष्ठुर कोई दूसरा नहीं है। जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य उत्तम विद्या का तिरस्कार करता है उसी प्रकार तुम मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥66॥ हे वक्रहृदय ! दोहलाके बहाने वन में ले जाकर मुझ गर्भिणी को छोड़ना क्या तुम्हें उचित था ? ॥67॥ यदि मैं वहाँ कुमरण को प्राप्त होती तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता ? केवल मेरी ही दुर्गति होती ॥68॥ यदि मेरे ऊपर आपका थोड़ा भी सद्भाव होता अथवा थोड़ी भी कृपा होती तो मुझे शांतिपूर्वक आर्यिकाओं की वसति के पास ले जाकर क्यों नहीं छोड़ा ॥69॥ यथार्थ में अनाथ, अबंधु, दरिद्र तथा अत्यंत दुःखी मनुष्यों का यह जिनशासन ही परम शरण है ॥70॥ हे राम ! यहाँ अधिक कहने से क्या ? इस दशा में भी आप प्रसन्न हों और मुझे आज्ञा दें। इस प्रकार कह कर वह अत्यंत दुःखी हो रोने लगी ॥71॥

तदनंतर राम ने कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं अभिप्राय की उत्कृष्ट विशुद्धता को जानता हूँ किंतु यतश्च तुम लोगों के द्वारा इस प्रकट भारी अपवाद को प्राप्त हुई हो अतः स्वभाव से ही कुटिल चित्त को धारण करने वाली इस प्रजा को विश्वास

दिलाओ । इसकी शंका दूर करो ॥72-73॥ तब सीता ने हर्ष युक्त हो 'एवमस्तु' कहते हुए कहा कि मैं पाँचों ही दिव्य शपथों से लोगों को विश्वास दिलाती हूँ॥74॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मैं उस कालकूट को पी सकती हूँ जो विषों में सबसे अधिक विषम है तथा जिसे सूंघकर आशीविष सर्प भी तत्काल भस्मपने को प्राप्त हो जाता है ॥75॥ मैं तुला पर चढ़ सकती हूँ अथवा भयंकर अग्नि की ज्वाला में प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपको अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ ॥76॥ क्षणभर विचारकर राम ने कहा कि अच्छा अग्नि में प्रवेश करो। इसके उत्तर में सीता ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि हाँ, प्रवेश करती हूँ ॥77॥

'इसने मृत्यु स्वीकृत कर ली' यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया और हनूमान् आदि राजा शोक के भार से पीड़ित हो उठे ॥78॥ 'माता अग्नि में प्रवेश करना चाहती है।' यह निश्चयकर लवण और अंकुश ने बुद्धि में अपनी भी उसी गति का विचार कर लिया **अर्थ**ात् हम दोनों भी अग्नि में प्रवेश करेंगे ऐसा उन्होंने मन में निश्चय कर लिया ॥79॥ तदनंतर महाप्रभाव से संपन्न एवं बहुत भारी हर्ष को धारण करने वाले सिद्धार्थ क्षुल्लक ने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि सीता के शीलव्रत का देव भी पूर्णरूप से वर्णन नहीं कर सकते फिर क्षुद्र प्राणियों की तो कथा ही क्या है ? ॥80-811॥ हे राम ! मेरु पाताल में प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते हैं परंतु सीता के शीलव्रत में कुछ चंचलता उत्पन्न नहीं की जा सकती ॥1॥ चंद्रमा सूर्यपने को प्राप्त हो सकता है और सूर्य चंद्रपने को प्राप्त कर सकता है परंतु सीता का अपवाद किसी भी तरह सत्यता को प्राप्त नहीं हो सकता ॥82-83॥ मैं विद्याबल से समृद्ध हूँ और और मैंने पाँचों मेरु पर्वतों पर स्थित शाश्वत-अकृत्रिम चैत्यालयों में जो जिन-प्रतिमाएँ हैं उनकी वंदना को है। हे राम ! मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीता के शील में थोड़ी भी कमी है तो मेरी वह दुर्लभ वंदना निष्फलता को प्राप्त हो जाय ॥84-85॥ मैंने वस्त्र खंड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप किया सो यदि ये तुम्हारे पुत्र न हों तो मैं उस तप की शपथ करता हूँ अर्थात् तप की शपथ पूर्वक कहता हूँ कि ये तुम्हारे ही पुत्र हैं ॥86॥ इसलिए हे बुद्धिमन् राम ! जिसमें भयंकर ज्वालावली रूप लहरें उठ रही हैं तथा जो सबका संहार करने वाली है ऐसी अग्नि में सीता प्रवेश नहीं करे ॥87॥ क्षुल्लक की बात सुन आकाश में विद्याधर और पृथ्वी पर भूमिगोचरी लोग 'अच्छा कहा-अच्छा कहा' इस प्रकारकी जोरदार आवाज़ लगाते हुए बोले कि 'हे देव प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, सौम्यता को प्राप्त होओ, हे नाथ ! हे राम ! हे राम! मनमें अग्नि का विचार मत करो ॥88-89॥ सीता सती है, सीता सती है, इस विषय में अन्यथा संभावना नहीं हो सकती। महापुरुषों की पत्नियों में विकार नहीं होता ॥90॥ इस प्रकार समस्त दिशाओं के अंतराल को व्याप्त करने वाले, तथा अश्रुओं के भार से गद्गद अवस्था को प्राप्त हुए शब्द, संक्षुभित जन सागर से निकलकर सब ओर फैल रहे थे ॥91॥ तीव्र शोक से युक्त समस्त प्राणियों के आंसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें महान कलकल शब्दों के साथ-साथ निकलकर नीचे पड़ रही थीं ॥92॥

तदनंतर राम ने कहा कि हे मानवो ! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करने में तत्पर हैं तो पहले आप लोगों ने अपवाद क्यों कहा था ? ॥63॥ इस प्रकार लोगों के कथन की अपेक्षा न कर जिन्होंने मात्र विशुद्धता में मन लगाया था ऐसे राम ने परम दृढ़ता का आलंबन कर किंकरों को आज्ञा दी कि ॥94॥ यहाँ शीघ्र ही दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौड़ी चौकोन पृथ्वी प्रमाण के अनुसार खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चंदन के सूखे और बड़े मोटे ईंधन से परिपूर्ण करो। तदनंतर उसमें बिना किसी विलंब के ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो कि जिसमें अत्यंत तीक्ष्ण ज्वालाएँ निकल रही हों तथा जो शरीरधारी साक्षात् मृत्यु के समान जान पड़ती हो ॥95-97॥ तदनंतर बड़े-बड़े कुदाले जिनके हाथ में थे तथा जो यमराज के सेवकों से भी कहीं अधिक थे ऐसे सेवकों ने 'जो आज्ञा' कहकर राम की आज्ञानुसार सब काम कर दिया ॥98॥

अथानंतर जिस समय राम और सीता का पूर्वोक्त संवाद हुआ था तथा किंकर लोग जिस समय अग्नि प्रज्वालन का भयंकर कार्य कर रहे थे उसी समय से लगी हुई रात्रि में सर्वभूषण मुनिराज महेंद्रोदय उद्यान की भूमि में उत्तम ध्यान कर रहे थे सो पूर्व वैर के कारण विद्युद्वक्त्रा नाम की राक्षसी ने उनपर महान उपसर्ग किया ॥99-101॥ तदनंतर राजा श्रेणिक ने गौतमस्वामी से इनके पूर्व वैर का संबंध पूछा सो गणधर भगवान् बोले कि हे नरेंद्र ! सुनो ॥102॥ विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में सर्वत्र सुशोभित गुंजा नामक नगर में एक सिंहविक्रम नामक राजा रहता था। उसकी रानी का नाम श्री था और उन दोनों का सकलभूषण नाम का पुत्र था । सकलभूषण की आठ सौ स्त्रियाँ थीं उनमें किरणमंडला प्रधान स्त्री थी ॥103-104॥ शुद्ध हृदय को धारण करने वाली किरणमंडला ने किसी समय सपत्नियों के कहने पर चित्रपट में अपने मामा के पुत्र हेमशिख का रूप लिखा उसे देख राजा सहसा परम कोप को प्राप्त हुआ परंतु अन्य पत्नियों के कहने पर वह पुनः प्रसन्नता को प्राप्त हो गया ॥105-106॥ पतिव्रता किरणमंडला किसी समय हर्ष सहित अपने पति के साथ सोई हुई थी सो सोते

समय प्रमाद के कारण उसने बार- बार हेमरथ का नाम उच्चारण किया जिसे सुनकर राजा अत्यंत कुपित हुआ और कुपित होकर उसने वैराग्य धारण कर लिया । उधर किरणमंडला भी साध्वी हो गई और मरकर विद्युद्वक्त्रा नाम की राक्षसी हुई ॥107-108॥
जब सकलभूषण मुनि भिक्षा के लिए भ्रमण करते थे तब वह दुष्ट राक्षसी कुपित हो अंतराय करने में तत्पर हो जाती थी। कभी वह मत्त हाथी का बंधन तोड़ देती थी, कभी घर में आग लगा देती थी, कभी रज की वर्षा करने लगती थी, कभी घोड़ा अथवा बैल बनकर उनके सामने आ जाती थी और कभी मार्ग को कंटकों से आवृत कर देती थी॥109-110॥ कभी प्रतिमायोग से विराजमान मुनिराज को, घर में संधि फोड़कर उसके आगे लाकर रख देती थी और यह कहकर पकड़ लेती थी कि यही चोर है तब हल्ला करते हुए लोगों को भीड़ उन्हें घेर लेती थी, कुछ परमार्थ से विमुख लोग उनका अनादर कर उसके बाद उन्हें छोड़ देते थे ॥111-112॥ कभी आहार कर जब बाहर निकलने लगते तब आहार देने वाली स्त्री का हार इनके गले में बाँध देती और कहने लगती कि यह चोर है ॥113॥ इस प्रकार अत्यंत क्रूर हृदय को धारण करने वाली वह पापिनी राक्षसी निर्वेद से रहित हो सदा एक से बढ़कर उपसर्ग करती रहती थी ॥114॥ तदनंतर यही मुनिराज महेंद्रोदयनामा उद्यान में प्रतिमा योग से विराजमान थे सो उस राक्षसी ने पूर्व वैर के संस्कार से उन पर परम उपसर्ग किया ॥115॥ वह कभी वेताल बनकर कभी हाथी सिंह व्याघ्र तथा भयंकर सर्प होकर और कभी नाना प्रकार के गुणों से दिव्य स्त्रियों का रूप दिखाकर उपसर्ग किया ॥116॥ परंतु जब इन उपसर्गों से इनका मन विचलित नहीं हुआ तब इन मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥117॥
तदनंतर केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा में जिनका मन लग रहा था ऐसे इंद्र आदि समस्त सुर असुर वहाँ आये ॥118॥ हाथी, सिंह, घोड़े, ऊँट, गधे, बड़े-बड़े व्याघ्र, अष्टापद, सामर, पक्षी, विमान, रथ, बैल, तथा अन्य-अन्य सुंदर वाहनों से आकाश को आच्छादित कर सब लोग अयोध्या की ओर आये। जिनके केश, वस्त्र तथा पताकाओं की पंक्तियाँ वायु से हिल रही थीं तथा जिनके मुकुट, कुंडल और हार की किरणों से आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥118-121॥ जो अप्सराओं के समूह से व्याप्त थे तथा जो अत्यंत हर्षित हो पृथिवीतल को अच्छी तरह देख रहे थे ऐसे देव लोग नीचे उतरे ॥122॥
तदनंतर सीता का वृत्तांत देख मेषकेतु नामक देव ने अपने इंद्र से कहा कि हे देवेंद्र ! जरा इस अत्यंत कठिन कार्य को भी देखो ॥123। हे नाथ ! देवों को भी जिसका स्पर्श करना कठिन है तथा जो महाभय का कारण है ऐसा यह सीता का उपसर्ग क्यों हो रहा है? सुशील एवं अत्यंत स्वच्छ हृदय को धारण करने वाली इस श्राविका के ऊपर यह दुरीक्ष्य उपद्रव क्यों हो रहा है ? ॥124-125॥ तदनंतर इंद्र ने कहा कि मैं सकलभूषण केवली की वंदना करने के लिए शीघ्रता से जा रहा हूँ इसलिए यहाँ जो कुछ करना योग्य हो वह तुम करो ॥126॥ इतना कहकर इंद्र महेंद्रोदय उद्यान के सन्मुख चला और यह मेषकेतु देव सीता के स्थान पर पहुँचा ॥127॥ वहाँ यह आकाशतल में सुमेरु के शिखर के समान कांति से युक्त दिशाओं को प्रकाशित करने लगा। विमान के शिखर पर स्थित हुआ ॥128॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस विमान की शिखर पर सूर्य के समान सुशोभित होने वाले उस मेषकेतु देव ने वहीं से सर्वजन मनोहारी राम को देखा ॥129॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित श्रीपद्मपुराण में सकलभूषण के केवलज्ञानोत्सव में देवों के आगमन का वर्णन करने वाला एक सौ चौथा पर्व समाप्त हुआ ॥104॥

## राम द्वारा धर्म श्रवण

एक सौ पाँचवाँ

कथा :

अथानंतर तृण और काष्ठ से भरी उस वापी को देख श्रीराम व्याकुलचित्त होते हुए इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥11॥ गुणों की पुंज, महा सौंदर्य से संपन्न एवं कांति और शील से युक्त इस कांता को अब पुनः कैसे देख सकूँगा ॥2॥ खिली हुई मालती की माला के समान सुकुमार शरीर को धारण करने वाली यह कांता निश्चित ही अग्नि के द्वारा स्पृष्ट होते ही नाश को प्राप्त हो जायगी ॥3॥ यदि यह राजा जनक के कुल में उत्पन्न नहीं हुई होती तो इस लोकापवाद को तथा अग्नि में मरण को प्राप्त नहीं होती ॥4॥ इसके बिना मैं क्षण भर के लिए भी और किससे सुख प्राप्त कर सकूँगा ? इसके साथ वन में निवास करना भी अच्छा है पर इसके बिना स्वर्ग में रहना भी शोभा नहीं देता ॥5॥ यह भी महा निश्चिंत हृदया है कि मरने के लिए उद्यत हो गई। अब दृढ़ता के साथ अग्नि में प्रवेश करने वाली है सो इसे कैसे रोका जाय ? लोगों के समक्ष रोकने में लज्जा उत्पन्न हो रही है ॥6॥ उस समय बड़े जोर से हल्ला करने वाला यह सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक

भी चुप बैठा है, अतः इसे रोकने में क्या बहाना करूँ? ॥7॥ अथवा जिसने जिस प्रकार के मरण का अर्जन किया है नियम से वह उसी मरण को प्राप्त होता है उसे रोकने के लिए कौन समर्थ है ? ॥8॥ उस समय जब कि यह पतिव्रता लवणसमुद्र के ऊपर हरकर ले जाई जा रही थी तब 'यह मुझे नहीं चाहती है' इस भाव से कुपित हो रावण ने खड□ग से इसका शिर क्यों नहीं काट डाला ? जिससे कि यह इस अत्यंत दुस्तर संशय को प्राप्त हुई है ॥9-10॥ मर जाना अच्छा है परंतु दुःसह वियोग अच्छा नहीं है क्योंकि श्रुति तथा स्मृति को हरण करने वाला वियोग कोई अत्यंत निंदित पदार्थ है ॥11॥ विरह तो जीवन-पर्यंत के लिए चित्त का संताप प्रदान करता रहता है और 'मर गई' यह सुन उस संबंधी कथा और इच्छा तत्काल छूट जाती है ॥12॥ इस प्रकार राम के चिंतातुर होने पर वापी में अग्नि जलाई जाने लगी । दयावती स्त्रियाँ रो उठीं ॥13॥

तदनंतर अत्यधिक उठते हुए धूम से आकाश अंधकारयुक्त हो गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो असमय में प्राप्त हुए वर्षाकालीन मेघों से ही व्याप्त हो गया हो ॥14॥ उस समय जगत् ऐसा जान पड़ने लगा मानो भ्रमरों से युक्त, कोकिलाओं से युक्त अथवा कबूतरों से युक्त दूसरा ही जगत् उत्पन्न हुआ है ॥15॥ सूर्य आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दया से आहृदय होने के कारण उस प्रकार के उपसर्ग को देखने के लिए असमर्थ होता हुआ शीघ्र ही कहीं जा छिपा हो ॥16॥ उस वापी में ऐसी भयंकर अग्नि प्रज्वलित हुई कि समस्त दिशाओं में जिसका महावेग फैल रहा था और जो कोशों प्रमाण लंबी-लंबी ज्वालाओं से विकराल थी ॥17॥ उस समय उस अग्नि को देख इस प्रकार संशय उत्पन्न होता था कि क्या एक साथ उदित हुए हजारों सूर्यों से आकाश आच्छादित हो रहा है ? अथवा पाताललोक के पलाश वृक्षों का समूह क्या सहसा ऊपर उठ आया है ? अथवा आकाश को क्या प्रलयकालीन संध्या ने घेर लिया है ? अथवा यह समस्त जगत् एक सुवर्णरूप होने की तैयारी कर रहा है अथवा समस्त संसार बिजलीमय हो रहा है अथवा जीतने की इच्छा से क्या दूसरा चलता-फिरता मेरु ही उत्पन्न हुआ है ? ॥18-20॥

तदनंतर जिसका मन अत्यंत दृढ़ था ऐसी सीता ने उठकर क्षणभर के लिए कायोत्सर्ग किया, भावना से प्राप्त जिनेंद्र भगवान् की स्तुति की, ऋषभादि तीर्थंकरों को नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधु और मुनिसुव्रत जिनेंद्र, जिनके कि तीर्थ की उस समय हर्ष के धारक एवं परम ऐश्वर्य से युक्त देव असुर और मनुष्य सदा सेवा करते हैं और मन में स्थित सर्व प्राणि हितैषी आचार्य के चरणयुगल इन सबको नमस्कार कर उदात्त गांभीर्य और अत्यधिक विनय से युक्त सीता ने कहा ॥21-24॥ कि मैंने राम को छोड़कर किसी अन्य मनुष्य को स्वप्न में भी मन-वचन और काय से धारण नहीं किया है यह मेरा सत्य है ॥25॥ यदि मैं यह मिथ्या कह रही हूँ तो यह अग्नि दूर रहने पर भी मुझे क्षण भर में भस्मभाव को प्राप्त करा दे□ राख का ढेर बना दे ॥26॥ और यदि मैंने राम के सिवाय किसी अन्य मनुष्य को मन से भी धारण नहीं किया है तो विशुद्धि से सहित मुझे यह अग्नि नहीं जलावे ॥27॥ यदि मैं मिथ्यादृष्टि, पापिनी, क्षुद्रा और व्यभिचारिणी होऊँगी तो यह अग्नि मुझे जला देगी और यदि सदाचार में स्थित सती होऊँगी तो नहीं जला सकेगी ॥28॥

इतना कहकर उस देवी ने उस अग्नि में प्रवेश किया परंतु आश्चर्य की बात कि वह अग्नि स्फटिक के समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल हो गई ॥29॥ मानो सहसा पृथिवी को फोड़ कर वेग से उठते हुए जल से वह वापिका लबालब भर गई तथा चंचल तरंगों से व्याप्त हो गई ॥30॥ वहाँ अग्नि थी इस बात की सूचना देने वाले न लूगर, न काष्ठ, न अंगार और न तृणादिक कुछ भी दिखाई देते थे ॥31॥ उस वापिका में ऐसी भयंकर भँवरें उठने लगी जिनके कि चारों ओर फेनों के समूह चक्कर लगा रहे थे जो अत्यधिक वेग से सुशोभित थीं तथा अत्यंत गंभीर थीं ॥32॥ कहीं मृदंग जैसा शब्द होने से 'गुलु गुल' शब्द होने लगा, कहीं 'भुं भुंदभुंभ' की ध्वनि उठने लगी और कहीं 'पट पट' की आवाज आने लगी ॥33॥ उस वापी में कहीं हुँकार, कहीं लंबी-चौड़ी धूंकार, कहीं दिमिदिमि, कहीं जुगुद् जुगुद्, कहीं कल कल ध्वनि, कहीं शसद-भसद, और कहीं चाँदी के घंटा जैसी आवाज आ रही थी ॥34-35॥ इस प्रकार जिसमें क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान शब्द उठ रहा था ऐसी वह वापी क्षणभर में तट पर स्थित मनुष्यों को डुबाने लगी ॥36॥ वह जल क्षणभर में घुटनों के बराबर, फिर नितंब के बराबर, फिर निमेष मात्र में स्तनों के बराबर हो गया ॥37॥ वह जल पुरुष प्रमाण नहीं हो पाया कि उसके पूर्व ही पृथिवी पर चलने वाले लोग भयभीत हो उठे तथा क्या करना चाहिए इस विचार से दुःखी विद्याधर आकाश में जा पहुँचे ॥38॥ तदनंतर तीव्र वेग से युक्त जल जब कंठ का स्पर्श करने लगा तब लोग व्याकुल हो कर मंचों पर चढ़ गये किंतु थोड़ी देर बाद वे मंच भी डूब गये ॥39॥ तदनंतर जब वह जल शिर को उल्लंघन कर गया तब कितने ही लोग तैरने लगे। उस समय उनकी एक भुजा वस्त्र तथा बच्चों को संभालने के लिए ऊपर की ओर उठ रही था ॥40॥ "हे देवि ! रक्षा करो, हे मान्ये ! हे लक्ष्मि ! हे सरस्वति ! हे महाकल्याणि ! हे धर्मसहिते ! हे सर्वप्राणि

हितैषिणि ! रक्षा करो ॥41॥ हे महापतिव्रते ! हे मुनिमानसनिर्मले ! दया करो। इस प्रकार जल से भयभीत मनुष्यों के मुख से शब्द निकल रहे थे ॥42॥

तदनंतर वापीरूपी वधू, तरंगरूपी हाथों के द्वारा कमल के मध्यभाग के समान कोमल एवं नखों से सुशोभित राम के चरणयुगल का स्पर्श कर क्षणभर में सौम्यदशा को प्राप्त हो गई। उसकी मलिन भँवरें शांत हो गई और उसका भयंकर शब्द छूट गया। इससे लोग भी सुखी हुए ॥43-44॥ वह वापी क्षण भर में नील कमल, सफेद कमल तथा सामान्य कमलों से व्याप्त हो गई और सुगंधि से मदोन्मत्त भ्रमर समूह के संगीत से मनोहर दिखने लगी ॥45॥ सुंदर शब्द करने वाले क्रौंच, चक्रवाक, हंस तथा बदक आदि पक्षियों के समूह से सुशोभित हो गई ॥46॥ मणि तथा स्वर्ण निर्मित सीढ़ियों और लहरों के बीच में स्थित मरकतमणि की कांति के समान कोमल पुष्पों से उसके किनारे अत्यंत सुंदर दिखने लगे ॥47॥

अथानंतर उस वापी के मध्य में एक विशाल, विमल, शुभ, खिला हुआ तथा अत्यंत कोमल सहस्त्र दल कमल प्रकट हुआ और उस कमल के मध्य में एक ऐसा सिंहासन स्थित हुआ कि जिसका आकार नाना प्रकार के बेल-बूटों से व्याप्त था, जो रत्नों के प्रकाश रूपी वस्त्र से वेष्टित था, और कांति से चंद्रमंडल के समान था ॥48-49॥ तदनंतर 'डरो मत' इस प्रकार उत्तम देवियाँ जिसे सांत्वना दे रही थीं ऐसी सीता सिंहासन पर बैठाई गई। उस समय आश्चर्यकारी अभ्युदय को धारण करने वाली सीता लक्ष्मी के समान सुशोभित हो रही थी ॥50॥ आकाश में स्थित देवों के समूह ने संतुष्ट होकर पुष्पांजलियों के साथ-साथ 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' यह शब्द छोड़े ॥51॥ गुंजा नाम के मनोहर वादित्र गूंजने लगे, नगाड़े जोरदार शब्द करने लगे, नांदी लोग अत्यधिक हर्षित हो उठे, काहल मधुर शब्द करने लगे, शंखों के समूह बज उठे, तूर्य गंभीर शब्द करने लगे, बाँसुरी स्पष्ट शब्द कर उठी तथा काँसे की झाँझ मधुर शब्द करने लगीं ॥52-53॥ वल्गित, वेडित, उद्धृष्ट तथा क्रुष्ट आदि के करने में तत्पर, संतोष से युक्त विद्याधरों के समूह परस्पर एक दूसरे से मिलकर नृत्य करने लगे ॥54॥ सब ओर से यही ध्वनि आकाश और पृथिवी के अंतराल को व्याप्त कर उठ रही थी कि श्रीमान् राजा जनक की पुत्री और श्रीमान् बलभद्र श्रीराम की परम अभ्युदयवती पत्नी की जय हो ॥55॥ अहो बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है इसका शील अत्यंत निर्मल है ॥55-56॥ तदनंतर माता के अकृत्रिम स्नेह में जिनके हृदय डूब रहे थे ऐसे लवण और अंकुश शीघ्रता से जल को तैर कर सीता के पास पहुँच गये ॥57॥ पुत्रों की प्रीति से बढ़ी हुई सीता ने आश्वासन देकर जिनके मस्तक पर सूंघा था तथा जिनका शरीर विनय से नम्रीभूत था ऐसे दोनों पुत्र उसके दोनों ओर खड़े हो गये ॥58॥ अग्नि में शुद्ध हुई स्वर्णमय यष्टि के समान जिसका शरीर अत्यधिक प्रभा के समूह से व्याप्त था तथा जो कमलरूपी गृह में निवास कर रही थी ऐसी सीता को देख बहुत भारी अनुराग से अनुरक्त चित्त होते हुए राम उसके पास गये ॥59-60॥ और बोले कि हे देवि ! प्रसन्न होओ, तुम कल्याणवती हो, उत्तम मनुष्यों के द्वारा पूजित हो, तुम्हारा मुख शरद् ऋतु के पूर्ण चंद्रमा के समान है, तथा तुम अत्यंत अद्भुत चेष्टा की करने वाली हो ॥61॥ अब ऐसा अपराध फिर कभी नहीं करूँगा अथवा अब तुम्हारा दुःख बीत चुका है। हे साध्वि ! मेरा दोष क्षमा करो ॥62॥ तुम आठ हजार स्त्रियों की परमेश्वरी हो। उनके मस्तक पर विद्यमान हो, आज्ञा देओ और मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो ॥63॥ हे सति ! जिसका चित्त अज्ञान के आधीन था ऐसे मेरे द्वारा लोकापवाद के भय से दिया दुःख तुमने प्राप्त किया है ॥64॥ हे प्रिये ! अब वन-अटवी सहित तथा विद्याधरों से युक्त इस समुद्रांत पृथिवी में मेरे साथ इच्छानुसार विचरण करो ॥65॥ समस्त जगत् के द्वारा परम आदरपूर्वक पूजी गई तुम, अपने पृथिवी तल पर देवों के समान भोगों को भोगो ॥66॥ हे देवि ! उदित होते हुए सूर्य के समान तथा इच्छानुसार गमन करने वाले पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो तुम मेरे साथ सुमेरु के शिखरों को देखो **अर्थ**ात् मेरे साथ सर्वत्र भ्रमण करो ॥67॥ हे कांते ! जो-जो स्थान तुम्हारे चित्त को हरण करने वाले हैं उन उन स्थानों में मुझ आज्ञाकारी के साथ यथेच्छ क्रीड़ा की जाय ॥68॥ हे मनस्विनि ! देवांगनाओं के समान विद्याधरों की उत्कृष्ट स्त्रियों से घिरी रह कर तुम शीघ्र ही ऐश्वर्य का उपभोग करो। तुम्हारे सब मनोरथ सिद्ध हुए हैं ॥69॥ हे प्रशंसनीये ! मैं दोष रूपी सागर में निमग्न हूँ तथा विवेक से रहित हूँ। अब तुम्हारे समीप आया हूँ सो प्रसन्न होओ और क्रोध का परित्याग करो ॥70॥

तदनंतर सीता ने कहा कि हे राजन् ! मैं किसी पर कुपित नहीं हूँ, तुम इस तरह विषाद को क्यों प्राप्त हो रहे हो ? ॥71॥ इसमें न तुम्हारा दोष है न देश के अन्य लोगों का। यह तो परिपाक में आने वाले अपने कर्म के द्वारा दिया हुआ फल है ॥72॥ हे बलदेव ! मैंने तुम्हारे प्रसाद से देवों के समान भोग भोगे हैं इसलिए उनकी इच्छा नहीं । अब तो वह काम करूँगी जिससे फिर स्त्री न होना पड़े ॥73॥ इन विनाशी, क्षुद्र प्राप्त हुए आकुलतामय अत्यंत कठोर एवं मूर्ख मनुष्यों के द्वारा सेवित इन भोगों से मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥74॥ लाखों

योनियों के मार्ग में भ्रमण करती-करती इस भारी दुःख को प्राप्त हुई हूँ। अब मैं दुःखों का क्षय करने की इच्छा से जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ ॥75॥ यह कह उसने निःस्पृह हो अशोक के नवीन पल्लव तुल्य हाथ से स्वयं केश उखाड़ कर राम के लिए दे दिये ॥76॥ इंद्रनील मणि के समान कांति वाले अत्यंत कोमल मनोहर केशों को देख राम मूर्च्छा को प्राप्त हो पृथिवी पर गिर पड़े ॥77॥ इधर जब तक चंदन आदि के द्वारा राम को सचेत किया जाता है तब तक सीता पृथ्वीमति आर्यिका से दीक्षित हो गई ॥78॥

तदनंतर देवकृत प्रभाव से जिसके सब विघ्न दूर हो गये थे ऐसी पतिव्रता सीता वस्त्रमात्र परिग्रह को धारण करने बालो आर्यिका हो गई ॥79॥ महाव्रतों के द्वारा जिसका शरीर पवित्र हो चुका था तथा जो महासंवेग को प्राप्त थी ऐसी सीता देव और असुरों के समागम से सहित उत्तम उद्यान में चली गई ॥80॥ इधर मोतियों की माला, गोशीर्षचंदन तथा व्यजन आदि की वायु से जब राम की मूर्च्छा दूर हुई तब वे उसी दिशा की ओर देखने लगे परंतु वहाँ सीता को न देख उन्हें दशों दिशाएँ शून्य दिखने लगीं। अंत में शोक और क्रोध के कारण कलुषित चित्त होते हुए महागज पर सवार हो चले ॥81-82॥ उस समय उनके शिर पर सफेद छत्र फहरा रहा था, चमरों के समूह ढोरे जा रहे थे, तथा वे स्वयं अनेक राजाओं से घिरे हुए थे। इसलिए देवों से आवृत इंद्र के समान जान पड़ते थे, उन्होंने लांगल नामक शस्त्र हाथ में ले रक्खा था, तरुण कोकनद-रक्त कमल के समान उनकी कांति थी और वे क्षण-क्षण में लोचन बंद कर लेते थे तदनंतर उच्च स्वर के धारक राम ने ऐसे वचन कहे जो आत्मीयजनों को भी भय देने वाले थे ॥83-84॥

उन्होंने कहा कि प्रिय प्राणी की मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है परंतु विरह नहीं; इसीलिए मैंने पहले दृढ़चित्त हो कर अग्नि-प्रवेश की अनुमति दी थी ॥85॥ जब यह बात थी तब फिर क्यों अविवेकी देवों ने सीता का यह अतिशय किया जिससे कि उसने यह दीक्षा का उपक्रम किया ॥86॥ हे देवो! यद्यपि उसने केश उखाड़ लिये हैं तथापि तुम लोग यदि उस दशा में भी उसे मेरे लिए शीघ्र नहीं सौंप देते हो तो मैं आज से तुम्हें अदेव कर दूंगा-देव नहीं रहने दूंगा और जगत् को आकाश बना दूंगा ॥87॥ न्याय की व्यवस्था करने वाले देवों द्वारा मेरी पत्नी कैसे हरी जा सकती है ? वे मेरे सामने खड़े हों तथा शस्त्र ग्रहण करें, कहाँ गये वे सब ? ॥88। इस प्रकार जो अनेक चेष्टाएँ कर रहे थे तथा विविध नीति को जानने वाले लक्ष्मण जिन्हें अनेक उपायों से सांत्वना दे रहे थे ऐसे राम, जहाँ देवों का समागम था ऐसे उद्यान में पहुँचे ॥89॥

तदनंतर उन्होंने मुनियों में श्रेष्ठ उन सर्वभूषण केवली को देखा कि जो गांभीर्य और धैर्य से संपन्न थे, उत्तम सिंहासन पर विराजमान थे ॥90॥ जलती हुई अग्नि से कहीं अधिक कांति को धारण कर रहे थे, परम ऋद्धियों से युक्त थे, शरणागत मनुष्यों के पाप को जलाने वाले शरीर को धारण कर रहे थे ॥91। जो केवलज्ञान रूपी तेज के द्वारा देवों में भी सुशोभित हो रहे थे, मेघों के आवरण से रहित उदित हुए सूर्य मंडल के समान जान पड़ते थे, ॥92॥ जो चक्षुरूपी कुमुदिनियों के लिए प्रिय थे, अथवा कलंकरहित चंद्रमा के समान थे, और मंडलाकार परिणत अपने शरीर के उत्तम तेज से आवृत थे ॥93॥

तदनंतर जो अभी-अभी ध्यान से उन्मुक्त हुए थे तथा सर्व सुरासुर जिन्हें नमस्कार करते थे ऐसे उन मुनिश्रेष्ठ को देखकर राम हाथी से नीचे उतर कर उनके समीप गये ॥94॥ तत्पश्चात् गृहस्थों के स्वामी श्रीराम ने शांत हो भक्तिपूर्वक अंजलि जोड़ प्रदक्षिणा देकर उन मुनिराज को मन-वचन-काय से नमस्कार किया ॥95॥ अथानंतर उन मुनिराज की शरीर संबंधी कांति के कारण जिनके मुकुट निष्प्रभ हो गये थे तथा लज्जा के कारण ही मानो चमकते हुए कुंडलों द्वारा जिनके कपोल आलिंगित थे, जिन्होंने भावपूर्वक नमस्कार किया था, और जो हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये हुए थे ऐसे देवेंद्र वहाँ नरेंद्र के समान यथायोग्य बैठे थे ॥96-97॥ नाना अलंकारों को धारण करने वाले चारों प्रकार के देव, मुनिराज के समीप ऐसे दिखाई देते थे मानो सूर्य के समीप उसकी किरणें ही हो ॥98॥ मुनिराज के निकट स्थित राजाधिराज राम भी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुमेरु के शिखर के समीप कल्पवृक्ष ही हो ॥99॥ मुकुट और कुंडलों से सुशोभित लक्ष्मण भी, किसी पर्वत के समीप स्थित बिजली से सहित मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे ॥100। महाशत्रुओं को भय देने में निपुण सुंदर शत्रुघ्न भी द्वितीय कुवेर के समान सुशोभित हो रहा था ॥101॥ गुण और सौभाग्य के तरकस तथा उत्तम लक्षणों से युक्त वे दोनों वीर लवण और अंकुश सूर्य और चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे ॥102॥ वस्त्रमात्र परिग्रह को धारण करने वाली आर्या सीता यद्यपि बाह्य अलंकारों से रहित थी तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सूर्य की मूर्ति से ही संबद्ध हो ॥103॥

तदनंतर धर्मश्रवण के इच्छुक तथा विनय से सुशोभित समस्त मनुष्य और देव जब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये तब शिष्य समूह में प्रधान, अभयनिनाद नामक, धीर वीर मुनि ने संदेह रूपी संताप को शांत करने के लिए सर्वभूषण मुनिराज से पूछा ॥104-105॥ तदनंतर

मुनिराज ने वह वचन कहे कि जो अत्यंत विस्तृत थे, चातुर्यपूर्ण थे, शुद्ध थे, तत्त्वार्थ के प्रतिपादक थे, मुनियों के प्रबोधक थे और कर्मों का क्षय करने वाले थे ॥106॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय उन योगिराज ने विद्वानों तथा महात्माओं के लिए जो रहस्य कहा था वह समुद्र के समान भारी था। हे श्रेणिक ! मैं तो यहाँ उसका एक कण ही कहता हूँ ॥107॥ उन परम योगी ने जो वस्तुतत्त्व का निरूपण किया था वह प्रशस्त दर्शन और ज्ञान के धारक पुरुषों के लिए आनंद देने वाला था तथा भव्य जीवों को इष्ट था ॥10॥
उन्होंने कहा कि यह लोक अनंत अलोकाकाश के मध्य में स्थित दो मृदंगों के समान है, नीचे, बीच में तथा ऊपर की ओर स्थित है ॥106॥ इस तरह तीन प्रकार से स्थित होने के कारण इस लोक को त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते हैं। मेरु पर्वत के नीचे सात भूमियाँ हैं ॥110॥ उनमें पहली भूमि रत्नप्रभा है जिसके अब्बहुल भाग को छोड़कर ऊपर के दो भागों में भवनवासी तथा व्यंतर देव रहते हैं । उस रत्नप्रभा के नीचे महाभय उत्पन्न करने वाली शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नाम की छह भूमियाँ और हैं जो अत्यंत तीव्र दुःख को देने वाली हैं तथा निरंतर घोर अंधकार से व्याप्त रहती हैं ॥111-112॥ उनमें से कितनी ही भूमियाँ संतप्त लोहे के तल के समान दुःखदायी गरम स्पर्श होने के कारण अत्यंत विषम और दुर्गम हैं तथा कितनी ही शीत की तीव्र वेदना से युक्त हैं। उन भूमियों में चर्बी और रुधिर की कीच मची रहती है ॥113॥ जिनके शरीर सड़ गये हैं ऐसे अनेक कुत्ते, सर्प तथा मनुष्यादि की जैसी मिश्रित गंध होती है वैसी ही उन भूमियों की बतलाई गई है ॥114॥ वहाँ नाना प्रकार के दुःख-समूह के कारणों को साथ में ले आने वाली महाशब्द करती हुई प्रचंड वायु चलती है ॥115॥ स्पर्शन तथा रसना इंद्रिय के वशीभूत जीव उस कर्म का संचय करते हैं कि जिससे वे लोहे के पिंड के समान भारी हो उन नरकों में पड़ते हैं ॥116॥ हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्री संग तथा परिग्रह से निवृत्त नहीं होने वाले मनुष्य पाप के भार से बोझिल हो नरकों में उत्पन्न होते हैं ॥117। जो मनुष्य-जन्म पाकर निरंतर भोगों में आसक्त रहते हैं ऐसे प्रचंडकर्मा मनुष्य नरकभूमि में जाते हैं ॥118॥ जो जीव स्वयं पाप करते हैं, दूसरे से कराते है तथा अनुमोदन करते हैं, वे रौद्र तथा आर्तध्यान में तत्पर रहने वाले जीव नरकायु को प्राप्त होते हैं ॥119॥ वज्रोपम दीवालों में ठूंस-ठूंस कर भरे हुए पापी जीव नरकों की अग्नि से जलाये जाते हैं और तब वे महाभयंकर शब्द करते हैं ॥120॥ जलती हुई अग्नि के समूह से भयभीत हो नारकी, शीतल जल की इच्छा करते हुए वैतरणी नदी की ओर जाते हैं और उसमें अपने शरीर को छोड़ते हैं **अर्थ**ात् गोता लगाते हैं ॥121॥ गोता लगाते ही अत्यंत तीव्र क्षार के कारण उनके जले हुए शरीर में भारी वेदना होती है। तदनंतर मृगों की तरह भयभीत हो उस असिपत्रवन में पहुँचते हैं ॥122॥ जहाँ कि पापी जीव छाया की इच्छा से इकट्ठे होते हैं परंतु छाया के बदले खड्ग, बाण, चक्र तथा भाले आदि शस्त्रों से छिन्न भिन्न दशा को प्राप्त होते हैं ॥123॥ तीक्ष्ण वायु से कंपित नरक के वृक्षों से प्रेरित तीक्ष्ण अस्त्रों के समूह से वे शरण रहित नारकी छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥124॥ जिनके पैर, भुजा, स्कंध, कर्ण, मुख, आँख और नाक आदि अवयव कट गये हैं तथा जिनके तालु, शिर, पेट और हृदय विदीर्ण हो गये हैं ऐसे लोग वहाँ गिरते रहते हैं ॥12॥ जिनके पैर ऊपर को उठे हुए हैं ऐसे कितने ही नारकी दूसरे बलवान् नारकियों के द्वारा कुंभीपाक में पकाये जाते हैं और कितने ही कठोर शब्द करते हुए घानियों में पेल दिये जाते हैं ॥126॥ तीव्र क्रोध से युक्त शत्रुओं ने जिन्हें मुद्गर से पीड़ित किया है ऐसे कितने ही नारकी अत्यंत तीव्र वेदना से व्याकुल हो पृथिवी पर लोट जाते हैं ॥127॥ तीव्र प्यास से पीड़ित दीन हीन नारकी विह्वल हो पानी माँगते हैं पर पानी के बदले उन्हें पिघला हुआ राँगा और ताँबा दिया जाता है ॥128॥ निकलते हुए तिलगों से भयंकर उस राँगा आदि के द्रव को देखकर वे प्यासे नारकी काँप उठते हैं, उनके चित्त फिर जाते है तथा कंठ आँसुओं से भर जाते हैं ॥129॥ वे कहते हैं कि मुझे प्यास नहीं है, छोड़ो-छोड़ो मैं जाता हूँ पर नहीं चाहने पर भी उन्हें बलात् वह द्रव पिलाया जाता है ॥130॥ चिल्लाते हुए उन नारकियों को पृथिवी पर गिराकर तथा लोहे के डंडे से उनका मुख फाड़कर उसमें बलात् विष, रक्त तथा ताँबा आदि का द्रव डाला जाता है ॥131॥ वह द्रव उनके कंठ को जलाता और हृदय को फोड़ता हुआ पेट में पहुँचता है और मल की राशि के साथ-साथ बाहर निकल जाता है ॥132॥ तदनंतर जब वे पश्चाताप से दुःखी होते हैं तब उन दीन हीन नारकियों को नरक भूमि के रक्षक मिथ्या शास्त्रों द्वारा कथित पाप का स्मरण दिलाते है ॥133॥ वे कहते हैं कि उस समय तुमने बोलने में चतुर होने के कारण गुरुजनों का उल्लंघन कर 'मांस निर्दोष है' यह कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥134॥ 'नाना प्रकार के मांस और मदिरा के द्वारा किया हुआ श्राद्ध अधिक फलदायी होता है', ऐसा जो तुमने पहले कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥135॥ यह कहकर उन्हें विक्रिया युक्त नारकी बड़ी निर्दयता से मार-मारकर उन्हीं का शरीर खिलाते हैं तथा वे अत्यंत दीन चेष्टाएँ करते हैं ॥136॥ 'राज्य-अवस्था स्वप्न-दर्शन के समान निःसार है। यह स्मरण दिलाकर उन्हीं से उत्पन्न हुए विडंबनाकारी उन्हें पीडित करते हैं और वे करुणक्रंदन करते हैं ॥

137॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पाप करने वाले जीव नारकियों की भूमि में क्षणभर के लिए भी विश्राम लिये बिना पूर्वोक्त प्रकार के दुःख पाते रहते हैं ॥138॥ इसलिए हे शांत हृदय के धारक सत्पुरुषो ! 'यह अधर्म का फल अत्यंत दुःसह है' ऐसा जानकर जिन शासन की सेवा करो ॥139॥ अनंतरवर्ती रत्नप्रभाभूमि भवनवासी देवों की निवास भूमि है यह पहले ज्ञात कर चुके हैं। इसके सिवाय देवारण्य वन, सागर तथा द्वीप आदि भी उनके निवास के योग्य स्थान हैं ॥140॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर और एक त्रस ये जीवों के छह निकाय कहे गये हैं ॥141॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल के भेद से द्रव्य छह प्रकार के हैं ऐसा श्री जिनेंद्रदेव ने रहस्य सहित कहा है ॥142॥ प्रत्येक पदार्थ का सप्तभंगी द्वारा निरूपण करने का जो मार्ग है वह प्रशस्त मार्ग माना गया है । प्रमाण और नय के द्वारा पदार्थों का कथन होता है। पदार्थ के समस्त विरोधी धर्मों का एक साथ वर्णन करना प्रमाण है और किसी एक धर्म का सिद्ध करना नय है ॥143॥ एकेंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय और पाँच इंद्रिय जीवों में बिना किसी विरोध के सत्त्व-सत्ता-नाम का गुण रहता है और यह अपने प्रतिपक्ष-विरोधी तत्त्व से सहित होता है ॥144॥ वे जीव शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म और बादर के भेद से दो प्रकार के जानना चाहिए। उन्हीं जीवों के फिर पर्याप्तक और अपर्याप्तक की अपेक्षा दो भेद और भी कहे गये हैं ॥145॥ जीवद्रव्य के भव्य अभव्य आदि भेद भी कहे गये हैं परंतु यह सब भेद संसार अवस्था में ही होते हैं, सिद्ध जीव इन सब भेदों रहित कहे गये हैं ॥146॥

ज्ञेय और दृश्य स्वभावों में जीव का जो अपनी शक्ति से परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीव का स्वरूप है, यह उपयोग ज्ञान दर्शन के भेद से दो प्रकार का है ॥147॥ ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादि के भेद से आठ प्रकार का है, और दर्शनोपयोग चक्षुर्दर्शन आदि के भेद से चार प्रकार का है। जीव के संसारी और मुक्त की अपेक्षा दो भेद हैं तथा संसारी जीव संज्ञी और असंज्ञी भेद से दो प्रकार के हैं ॥148॥ वनस्पतिकायिक तथा पृथिवीकायिक आदि स्थावर कहलाते हैं, शेष त्रस कहे जाते हैं। जो स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँचों इंद्रियों से सहित हैं वे पंचेंद्रिय कहलाते हैं ॥149॥ पोतज, अंडज तथा जरायुज जीवों के गर्भजन्म कहा गया है तथा देवों और नारकियों के उपपाद जन्म बतलाया गया है ॥150॥ शेष जीवों की उत्पत्ति का कारण सम्मूर्च्छन जन्म है । इस तरह गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छन की अपेक्षा जन्म के तीन भेद हैं परंतु तीव्र दुःखों से सहित योनियों अनेक प्रकार की कही गई हैं ॥151॥ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं। ये शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं ऐसा जानना चाहिए ॥152॥ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं तथा तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनंत गुणित हैं। तैजस और कार्मण ये दो शरीर आदि संबंध से युक्त हैं **अर्थ**ात् जीव के साथ अनादि काल से लगे हुए हैं और उपर्युक्त पाँच शरीरों में से एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ॥15॥

मध्यम लोक में जंबूद्वीप को आदि लेकर शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप और लवणसमुद्र को आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गये हैं ॥154॥ ये द्वीप-समुद्र पूर्व के द्वीप-समुद्र से दूने विस्तार वाले हैं, पूर्व-पूर्व को घेरे हुए हैं तथा वलय के आकार हैं। सबके बीच में जंबूद्वीप कहा गया है ॥155॥ जंबूद्वीप मेरु पर्वतरूपी नाभि से सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है, इसकी परिधि तिगुनी से कुछ अधिक कही गई है ॥156॥ उस जंबूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक लंबे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं। ये सभी समुद्र के जल से मिले हैं तथा इन्हीं के द्वारा जंबूद्वीप संबंधी क्षेत्रों का विभाग हुआ है ॥157-158॥ यह भरत क्षेत्र है इसके आगे हैमवत, उसके आगे हरि, उसके आगे विदेह, उसके आगे रम्यक, उसके आगे हैरण्यवत और उसके आगे ऐरावत ये सात क्षेत्र जंबूद्वीप में हैं। इसी जंबूद्वीप में गंगा, सिंधु आदि चौदह नदियाँ हैं। धातकीखंड तथा पुष्करार्ध में जंबूद्वीप से दूनी-दूनी रचना है ॥159-160॥ मनुष्य, मानुषोत्तर पर्वत के इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छ की अपेक्षा मूल में दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात हैं ॥161॥ देवकुरु, उत्तरकुरु रहित विदेह क्षेत्र, तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रों में कर्मभूमि है और देवकुरु, उत्तर कुरु तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमि के क्षेत्र हैं ॥162॥ मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की और जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की है। तिर्यंचों की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति मनुष्यों के समान तीन पल्य और अंतर्मुहूर्त की है ॥163॥

व्यंतर देवों के किन्नर आदि आठ भेद जानना चाहिए। इन सबके क्रीड़ा के स्थान यथायोग्य कहे गये हैं ॥164॥ व्यंतर और ज्योतिषी देवों का निवास ऊपर मध्यलोक में है। इनमें ज्योतिषी देवों का चक्र देदीप्यमान कांति का धारक है, मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देता हुआ निरंतर चलता रहता है तथा सूर्य और चंद्रमा उसके राजा हैं ॥165॥ ज्योतिश्चक्र के ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवों का

महालोक शुरू होता है यही अवलोक कहलाता है ॥166॥ ऊर्ध्वलोक में सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत और आरण, अच्युत ये आठ युगलों में सोलह स्वर्ग हैं ॥167-169॥ उनके ऊपर ग्रैवेयक कहे गये हैं जिनमें अहमिंद्र रूपसे उत्कृष्ट देव स्थित हैं। (नव ग्रैवेयक के आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं ॥170-171॥ इस लोकत्रय के ऊपर उत्तम देदीप्यमान तथा महा आश्चर्य से युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्म बंधन से रहित जीवों का स्थान जानना चाहिए ॥172॥ ऊपर ईषत्प्राग्भार नाम की वह शुभ पृथ्वी है, जो ऊपर की ओर किये हुए धवलछत्र के आकार है, शुभरूप है, और जिसके ऊपर पुनर्भव से रहित, महासुख संपन्न तथा स्वात्मशक्ति से युक्त सिद्धपरमेष्ठी विराजमान रहते हैं ॥173-174॥

तदनंतर इसी बीच में राम ने कहा कि हे भगवन् ! उन कर्मरहित जीवों के संसार भाव से रहित तथा दुःख से दूर कैसा सुख होता है ? ॥175॥ इसके उत्तर में केवली भगवान ने कहा कि इस तीन लोक का जो सुख है वह आकुलतारूप, विनाशात्मक तथा दुरंत होने के कारण दुःखरूप ही माना गया है ॥176॥ आठ प्रकार के कर्म से परतंत्र इस संसारी जीव को कभी रंच मात्र भी सुख नहीं होता ॥177॥ जिस प्रकार लोहे से वेष्टित सुवर्णपिंड की अपनी निज की कांति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्म से वेष्टित जीव की अपनी निज की कांति बिलकुल ही नष्ट हो जाती है ॥178॥ इस संसार के प्राणी निरंतर जन्म-जरा-मरण तथा बीमारी आदि के हजारों एवं मानसिक महादुखों से पीडित रहते हैं अतः यहाँ क्या सुख है ? ॥179॥ विषय-जन्यसुख खड्गधारा पर लगे हुए मधु के स्वाद के समान है, स्वर्ग का सुख जले हुए घाव पर चंदन के लेप के समान है और चक्रवर्ती का सुख विषमिश्रित अन्न के समान है ॥180॥ किंतु सिद्ध भगवान का जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आबाधा से रहित है, अनुपम है, और आत्मस्वभाव से उत्पन्न है ॥181॥ जिनकी निद्रा नष्ट हो चुकी है उन्हें शयन से क्या ? नीरोग मनुष्यों को औषधि से क्या ? सर्वज्ञ तथा कृतकृत्य मनुष्यों को दीपक तथा सूर्य आदि से क्या ? शत्रुओं से रहित निर्भीक मनुष्यों के लिए आयुधों से क्या? देखते-देखते जिनके पूर्ण रूप में सब मनोरथ सिद्ध हो गये हैं ऐसे मनुष्यों को चेष्टा से क्या ? और आत्मसंबंधी महासुख से संतुष्ट मनुष्यों को भोजनादि से क्या प्रयोजन है ? इंद्र लोग भी सिद्धों के जिस सुख की सदा उन्मुख रहकर इच्छा करते रहते हैं यद्यपि यथार्थ में उस सुख की उपमा नहीं है तथापि तुम्हें समझाने के लिए सिद्धों के उस आत्मसुख के विषय में कुछ कहता हूँ ॥182-185॥ चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इंद्र सहित समस्त देव अनंत काल में जिस सांसारिक सुख का उपभोग करते हैं वह कर्म रहित सिद्ध भगवान के अनंतवें भाग सुख की भी सदृशता को प्राप्त नहीं होता। ऐसा सिद्धों का सुख है ॥186-187॥ साधारण मनुष्यों की अपेक्षा राजा सुखी हैं, राजाओं की अपेक्षा चक्रवर्ती सुखी हैं, चक्रवर्तियों की अपेक्षा व्यंतर देव सुखी हैं, व्यंतर देवों की अपेक्षा ज्योतिष देव सुखी हैं ॥188॥ ज्योतिष देवों की अपेक्षा भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासियों की अपेक्षा कल्पवासी देव सुखी हैं, कल्पवासी देवों की अपेक्षा ग्रैवेयक वासी सुखी हैं, ग्रैवेयक वासियों की अपेक्षा अनुत्तर वासी सुखी हैं ॥189॥ और अनुत्तरवासियों से अनंतानंत गुणित सुखी सिद्ध जीव हैं । सिद्ध जीवों के सुख से उत्कृष्ट दूसरा सुख नहीं है ॥190॥ अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य और अनंतसुख यह चतुष्टय आत्मा का निज स्वरूप है और वह सिद्धों में विद्यमान है॥191॥ परंतु संसारी जीवों के वे ही ज्ञान दर्शन आदि कर्मों के उपशम में भेद होने से तथा बाह्य वस्तुओं के निमित्त से अनेक प्रकार के होते हैं ॥192॥ शब्द आदि इंद्रियों के विषयों से होने वाला सुख व्याधिरूपी कीलों के द्वारा शल्य युक्त है इसलिए शरीर से होने वाले सुख में सुख की आशा करना मोहजनित आशा है ॥193॥ जो गमनागमन से विमुक्त हैं, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके हैं एवं जो लोक के मुकुट स्वरूप हैं **अर्थ**ात् लोकाग्र में विद्यमान हैं उन सिद्धों का सुख अपनी समानता नहीं रखता ॥194॥ जिनका दर्शन और ज्ञान लोकालोक को प्रकाशित करने वाला है, वे क्षुद्र द्रव्यों को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान नहीं कहे जा सकते ॥195॥ जो हाथ पर स्थित आँवले के सर्व भागों के जानने में असमर्थ है ऐसा छद्मस्थ पुरुषों का ज्ञान सिद्धों के समान नहीं है ॥196॥ त्रिकाल संबंधी समस्त पदार्थों के विषय में एक केवली ही ज्ञान दर्शन से संपन्न होता है, अन्य नहीं ॥197॥ सिद्ध और संसारी जीवों में जिस प्रकार यह ज्ञान दर्शन का भेद है उसी प्रकार उनके सुख और वीर्य में भी यह भेद समझना चाहिए ॥198॥ यथार्थ में सिद्धों के दर्शन, ज्ञान और सुख को संपूर्ण रूप से केवली ही जानते हैं अन्य लोगों के वचन तो उपमा रूप ही होते हैं ॥199॥ यह जिनेंद्र भगवान का स्थान-सिद्धपद, अभव्य जीवों को अप्राप्य है, भले ही वे अनेक यत्नों से सहित हों तथा अत्यधिक काय-क्लेश करने वाले हों॥200। इसका कारण भी यह है कि वे अनादि काल से संबद्ध तथा विरह से रहित अविद्यारूपी गृहिणी का निरंतर आलिंगन कर शयन करते रहते हैं ॥201॥ इनके विपरीत मुक्तिरूपी स्त्री के आलिंगन करने में जिनकी उत्कंठा बढ़

रही है ऐसे भव्य जीव तपश्चरण में स्थित होकर बड़ी कठिनाई से दिन व्यतीत करते हैं अर्थात् वे जिस किसी तरह संसार का समय बिताकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं ॥202॥ जो मुक्ति प्राप्त करने की शक्ति से रहित हैं वे अभव्य कहलाते हैं और जिन्हें मुक्ति प्राप्त होगी वे भव्य कहे जाते हैं ॥203॥ सर्वभूषण केवली कहते हैं कि हे रघुनंदन! जिनेंद्रशासन को छोड़कर अन्यत्र सर्व प्रकार का यत्न होने पर भी कर्मों का क्षय नहीं होता है ॥204॥ अज्ञानी जीव जिस कर्म को अनेक करोड़ों भवों में क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियों का धारक ज्ञानी मनुष्य एक मुहूर्त में ही क्षण कर देता है ॥205॥ यह बात संसार में भी प्रसिद्ध है कि यथार्थ में निरंजन-निष्कलंक परमात्मा का दर्शन वही कर पाते हैं जिनके कि कर्म क्षीण हो गये हैं ॥206॥ यह सारहीन संसार का मार्ग तो अनेक लोगों ने पकड़ रक्खा है पर इससे परमार्थ की प्राप्ति नहीं, अतः परमार्थ की प्राप्ति के लिए एक जिनशासन को ही ग्रहण करो ॥207॥
इस प्रकार सकलभूषण के वचन सुनकर श्रीराम ने प्रणाम कर कहा कि हे नाथ ! इस संसार-सागर से पार लगाओ ॥208॥ उन्होंने यह भी पूछा कि हे भगवन् ! जघन्य मध्यम तथा उत्तम के भेद से भव्य जीव तीन प्रकार के हैं सो ये संसार-वास से किसी विधि से छूटते हैं ? ॥20॥ तब सर्वभूषण भगवान ने कहा कि जैनेंद्र शासन-जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनकी एकता ही को मोक्ष का मार्ग बताया है ॥210॥ इनमें से तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। अनंत गुण और अनंत पर्यायों को धारण करने वाला तत्त्व चेतन, अचेतन के भेद से दो प्रकार का है ॥211॥ स्वभाव अथवा परोपदेश के द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्व को ग्रहण करता है वह जिनमत का श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है ॥212॥ शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्य दृष्टि प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोषादि लगाना उनकी निंदा करना ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं ॥213॥ परिणामों की स्थिरता रखना, जिनायतन आदि धर्म क्षेत्रों में रमण करना-स्वभाव से उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शंकादि दोषों से रहित होना ये सब सम्यग्दर्शन को शुद्ध रखने के उपाय हैं ॥214॥ सर्वज्ञ के शासन में कही हुई विधि के अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेंद्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यग्चारित्र कहलाता है ॥215॥ जिसमें इंद्रियों का वशीकरण और वचन तथा मन का नियंत्रण होता है वही निष्पाप निर्दोष सम्यग्चारित्र कहलाता है ॥216॥ जिसमें न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करने वाले त्रस स्थावर जीवों पर अहिंसा की जाती है उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं ॥217॥ जिसमें मन और कानों को आनंदित करने वाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याणकारी वचन कहे जाते हैं उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं ॥218॥ जिसमें अदत्तवस्तु के ग्रहण में मन, वचन, काय से निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण दी हुई वस्तु ग्रहण की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥219॥ जहाँ देवों के भी पूज्य और महापुरुषों के भी कठिनता से धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है वह सम्यग्चारित्र कहलाता है ॥220॥ जिसमें मोक्षमार्ग में महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्यागपूर्वक परिग्रह का त्याग किया जाता है उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं ॥221॥ जिसमें मुनियों के लिए परपीडा से रहित तथा श्रद्धा आदि गुणों से सहित दान दिया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥222॥ जिसमें विनय, नियम, शील, ज्ञान, दया, दम और मोक्ष के लिए ध्यान धारण किया जाता है उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं ॥223॥ इस प्रकार इन गुणों से सहित, 'जिन शासन में कथित, परम अभ्युदय का कारण जो सम्यक्चारित्र है, कल्याण प्राप्ति के लिए उसका सेवन करना चाहिए ॥225॥ सम्यग्दृष्टि जीव शक्य कार्य को करता है और अशक्य कार्य की श्रद्धा रखता है परंतु जो शक्त **अर्थ**ात् समर्थ होता है वह चारित्र धारण करता है ॥225॥ जिसमें पूर्वोक्त समीचीन महागुण नहीं हैं उसमें सम्यक्चारित्र नहीं है, और न उसका संसार से निकलना होता है ॥226॥ जिसमें दया, दम, क्षमा नहीं हैं, संवर नहीं है, ज्ञान नहीं है, और परित्याग नहीं हैं उसमें धर्म नहीं रहता ॥227॥ जिसमें धर्म के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का आश्रय किया जाता है वहाँ धर्म नहीं है ॥228॥ जो मूर्खहृदय दीक्षा लेकर पाप में प्रवृत्ति करता है उस आरंभी के न चारित्र है और न उसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥229॥ जिसमें धर्म के बहाने सुख प्राप्त करने के लिए छह काय के जीवों की पीडा की जाती है उस धर्म से कल्याण की प्राप्ति नहीं होती ॥230॥ जो मारना, ताडना, बाँधना, आँकना तथा दोहना आदि कार्य करता है तथा गाँव, खेत आदि में आसक्त रहता है उस अनात्मज्ञ का दीक्षा लेना क्या है ? ॥231॥ जो वस्तुओं के खरीदने और बेचने में आसक्त है, स्वयं भोजनादि पकाता है अथवा दूसरे से याचना करता है, और स्वर्णादि परिग्रह साथ रखता है, ऐसे आत्महीन दीक्षित मनुष्य को क्या मुक्ति प्राप्त होगी ? ॥232॥ जो अविवेकी मनुष्य दीक्षित होकर मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप तथा विलेपन आदि का सेवन करते हैं वे मोक्षगामी नहीं हैं उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता ॥233॥ जो अपनी बुद्धि से हिंसा को निर्दोष कहते हुए शास्त्र वेष तथा चारित्र में दोष लगाते हैं वे मूढ़ता से सहित हैं-मिथ्यादृष्टि हैं ॥234॥ जो गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात रहता है, निरंतर ऊपर की ओर भुजा उठाये रहता है, महीने-महीने में एक बार भोजन करता है, मृगों के साथ

अटवी में शयन करता है, उन्हीं के साथ विचरण करता है, भृगुपात भी करता है, मौन से रहता है, और परिग्रह का त्याग करता है, वह मिथ्यादर्शन से दूषित होने के कारण कुलिंगी है तथा मोक्ष के कारण जो सम्यग्दर्शनादि उनसे रहित है। ऐसा जीव पैरों से चलकर किसी अगम्य स्थान अथवा मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता ॥235-237॥ जो धर्म बुद्धि से अग्निप्रवेश तथा जलप्रवेश आदि पाप करता है वह आत्महित के मार्ग में मूढ है और दुर्गति को प्राप्त होता है ॥238॥ जो रौद्र और आर्तध्यान में आसक्त है, काम पर जिसने विजय प्राप्त नहीं की है, जो खोटे काम करता है तथा उपाय से विपरीत प्रवृत्ति करता है उसकी निंदित गति-कुगति होती है ॥239॥ जो मनुष्य मिथ्यादर्शन से युक्त होकर भी धर्म बुद्धि से साधु और असाधु के लिए दान देता है वह विपुल अभ्युदय को देने वाले पुण्य कर्म का बंध करता है ॥240॥ यद्यपि ऐसा जीव स्वर्ग में उस धर्म का फल भोगता है तथापि वह सम्यग्दृष्टि को प्राप्त होने वाले फल के लाख में से एक भाग के भी बराबर नहीं है ॥241॥ जो मनुष्य उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करते हैं तथा चारित्र से प्रेम रखते हैं वे इस लोक में भी प्रशंसनीय होते हैं और मरने के बाद देवलोक में प्रधान होते हैं ॥242॥ मिथ्यादृष्टि कुलिंगी मनुष्य, बड़े प्रयत्न से क्लेश उठाकर भी देवों का किंकर बन तुच्छ फल को प्राप्त होता है। भावार्थ-मिथ्यादृष्टि कुलिंगी मनुष्य यद्यपि तपश्चरण के अनेक क्लेश उठाता है तथापि वह उसके फलस्वरूप स्वर्ग में उत्तम पद प्राप्त नहीं कर पाता किंतु देवों का किंकर होकर हीन फल प्राप्त कर पाता है ॥243॥ सम्यग्दृष्टि मनुष्य, सात आठ भवों में मनुष्य और देव पर्याय में परिभ्रमण से उत्पन्न हुए सुख को भोगता हुआ अंत में मुनिदीक्षा धारणकर मुक्त हो जाता है ॥244॥ वीतराग सर्वज्ञ देव के द्वारा दिखाये हुए इस मार्ग को विषयी मनुष्य प्राप्त नहीं करना चाहता ॥245॥ जो आशारूपी पाश से मजबूत बँधे हैं, मोह से अत्यधिक आक्रांत हैं, तृष्णारूपी घर में लाकर डाले गये हैं, पापरूपी जंजीर को धारण कर रहे हैं तथा स्पर्श और रस को पाकर जो दुःख को ही सुख मान बैठे हैं इस तरह नाना प्रकार के शरण रहित बेचारे दीन प्राणी निरंतर क्लेश उठाते रहते हैं ॥246-247॥ यह प्राणी मृत्यु से डरता है पर उससे छुटकारा नहीं हो पाता । इसी प्रकार निरंतर सुख चाहता है पर उसकी प्राप्ति नहीं हो पाती ॥248॥ इस प्रकार निष्फल भय और काम से वश हुआ यह प्राणी निरुपाय हो मात्र संताप को प्राप्त होता रहता है ॥249॥ निरंतर आशा से घिरा हुआ यह प्राणी भोग भोगने की चेष्टा करता है परंतु जिस प्रकार मच्छर स्वर्ण में संतोष नहीं करता उसी प्रकार यह प्राणी धर्म में धैर्य धारण नहीं करता ॥250॥ संक्लेश रूपी अग्नि से संतप्त हुआ यह प्राणी बहुत प्रकार के आरंभ करने में तत्पर रहता है परंतु किसी भी प्रयोजन को प्राप्त नहीं हटा अपितु इसके पास का जो सुख है वह भी चला जाता है ॥251॥ यह जीव पूर्वकृत पाप के कारण मनोभिलषित पदार्थ को प्राप्त नहीं होता किंतु अत्यंत दुर्जन बहुत भारी अनर्थ को प्राप्त होता है ॥252॥ 'मैं यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा।' इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी मरूँगा भी इस बात का कोई विचार नहीं करते ॥253॥ मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि प्राणी, कौन काम कर चुके और कौन काम नहीं कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृग पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमय में भी आक्रमण कर बैठती है ॥254॥ अहो ! मिथ्यादृष्टि मनुष्य, अहित को हित, दुःख को सुख, अनित्य को नित्य, भयदायक को शरणदायक, हित को अहित, सुख को दुःख, रक्षक को अरक्षक और ध्रुव को अध्रुव समझते हैं। इस प्रकार कहना पड़ता है कि मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की व्यवस्था अन्य प्रकार ही है ॥255-256॥ यह मनुष्य रूपी जंगली हाथी, भार्या रूपी बंधन में पड़कर बंध को प्राप्त होता है अथवा यह मनुष्यरूपी मत्स्य विषयरूपी मांस में आसक्त हो बंध का अनुभव करता है ॥257॥ कुटुंबरूपी बहुत कीचड़ से युक्त एवं लंबे-चौड़े मोहरूपी महासागर में फंसा हुआ यह प्राणी दुबले-पतले भैंसे के समान छटपटाता हुआ दुःखी हो रहा है ॥258॥ बेड़ियों से बँधे हुए मनुष्य का अंधे कुएं से छुटकारा हो सकता है परंतु स्नेह रूपी पाश से बँधा प्राणी उससे बड़ी कठिनाई से छूट पाता है ॥259॥ जिसका पाना मनुष्यलोक में भी अत्यंत दुर्लभ है ऐसी जिनेंद्र प्रतिपादित बोधि को प्राप्त करने के लिए अभव्य प्राणी योग्य नहीं है। इसी प्रकार जिनेंद्र कथित रत्नत्रय मार्ग को भी प्राप्त करने के लिए अभव्य समर्थ नहीं हैं ॥260॥ तीव्र कर्ममल कलंक से युक्त रहने वाले अभव्य जीव, निरंतर संसाररूपी चक्र पर आरूढ हो क्लेश उठाते हुए घूमते रहते हैं ॥261॥

तदनंतर हाथ जोड़ मस्तक से लगाकर राम ने कहा कि हे भगवन् ! क्या मैं भव्य हूँ? और किस उपाय से मुक्त होऊँगा? ॥262॥ मैं अंतःपुर से सहित इस पृथिवी को छोड़ने के लिए समर्थ हूँ, परंतु एक लक्ष्मण का उपकार छोड़ने के लिए समर्थ नहीं हूँ ॥263॥ मैं बिना किसी आधार के स्नेहरूपी सागर की तरंगों में तैर रहा हूँ, सो हे मुनींद्र ! अवलंबन देकर मेरी रक्षा करो ॥264॥ तदनंतर भगवान् सर्वभूषण केवली ने कहा कि हे राम ! तुम शोक करने के योग्य नहीं हो। आपको बलदेव का वैभव अवश्य भोगना चाहिए। जिस प्रकार इंद्र स्वर्ग की राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँ की राज्य लक्ष्मी को पाकर तुम अंत में जिनेश्वर दीक्षा को धारण करोगे तथा

केवलज्ञानमय मोक्षधाम को प्राप्त होओगे ॥265-266॥ इस प्रकार केवली भगवान् का उपदेश सुनकर जिन्हें हर्षातिरेक से रोमांच निकल आये थे, जिनके नेत्र विकसित थे, जो श्रीमान् थे एवं प्रसन्नमुख थे ऐसे श्रीराम धैर्य-सुख संतोष से युक्त हुए।॥267॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वहाँ जो भी सुर-असुर और मनुष्य थे वे राम को चरमशरीरी जानकर आश्चर्य से चकित हो गये तथा अत्यंत प्रसन्नचित्त हो केवलीरूपी सूर्य के द्वारा प्रकाशित वस्तुतत्त्व की प्रशंसा करने लगे ॥268॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में राम के धर्म श्रवण का वर्णन करने वाला एक सौ पाँचवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥105॥

## रामआदि के पूर्वभव

एक सौ छठवां पर्व

कथा :

अथानंतर जो विद्याधरों में प्रधान था, राम की भक्ति ही जिसका आभूषण थी, और जो हस्तयुगलरूपी महाकमलों से सुशोभित मस्तक को धारण कर रहा था ऐसे बुद्धिमान विभीषण ने निर्भय तेजरूपी आभूषण से सहित एवं निर्ग्रंथ मुनियों में प्रधान उन सकलभूषण केवली को नमस्कार कर पूछा कि ॥1-2॥ हे भगवन् ! इन राम ने भवांतर में ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जिसके फलस्वरूप ये इस प्रकार के माहात्म्य को प्राप्त हुए हैं।॥3॥ जब ये दंडकवन में रह गये थे तब इनकी पतिव्रता पत्नी सीता को किस संस्कार दोष से रावण ने हरा था ॥4॥ रावण धर्म, **अर्थ**, काम और मोक्षविषयक समस्त शास्त्रों का अच्छा जानकार था, कृत्य-अकृत्य के विवेक को जानता था और धर्म-अधर्म के विषय में पंडित था। इस प्रकार यद्यपि वह प्रधान गुणों से संपन्न था तथापि मोह के वशीभूत हो वह किस कारण परस्त्री के लोभरूपी अग्नि में पतंगपने को प्राप्त हुआ था ? ॥5-6॥ भाई के पक्ष में अत्यंत आसक्त लक्ष्मण ने वनचारी होकर संग्राम में उसे कैसे मार दिया ॥7॥ रावण वैसा बलवान्, विद्याधरों का राजा और अनेक अद्भुत कार्यों का कर्ता होकर भी इस प्रकार के मरण को कैसे प्राप्त हो गया ? ॥8॥

तदनंतर केवली भगवान् की वाणी ने कहा कि इस संसार में राम-लक्ष्मण का रावण के साथ अनेक जन्म से उत्कट वैर चला आता था ॥9॥ जो इस प्रकार है□इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में एकक्षेत्र नाम का नगर था उसमें नयदत्त नाम का एक वणिक रहता था जो कि साधारण धन का स्वामी था। उसकी सुनंदा नाम की स्त्री से एक धनदत्त नाम का पुत्र था जो कि राम का जीव था, दूसरा वसुदत्त नाम का पुत्र था जो कि लक्ष्मण का जीव था। एक यज्ञवलि नाम का ब्राह्मण वसुदेव का मित्र था सो तुम-विभीषण का जीव था ॥10-11॥ उसी नगर में एक सागरदत्त नामक दूसरा वणिक रहता था, उसकी स्त्री का नाम रत्नप्रभा था और दोनों के एक गुणवती नाम की पुत्री थी जो कि सीता की जीव थी ॥12॥ वह गुणवती, रूप, यौवन, लावण्य, कांति और उत्तम विभ्रम से युक्त थी । सुंदर चित्त को धारण करने वाली उस गुणवती का एक गुणवान् नाम का छोटा भाई था जो कि भामंडल का जीव था ॥13॥ जब गुणवती युवावस्था को प्राप्त हुई तब पिता का अभिप्राय जानकर कुल की इच्छा करने वाले बुद्धिमान गुणवान् ने प्रसन्न होकर उसे नयदत्त के पुत्र धनदत्त के लिए देना निश्चित कर दिया ॥14॥ उसी नगरी में एक श्रीकांत नाम का दूसरा वणिक् पुत्र था जो अत्यंत धनाढ्य था तथा गुणवती के रूप से अपहृतचित्त होने के कारण निरंतर उसकी इच्छा करता था। यह श्रीकांत रावण का जीव था ॥15॥ गुणवती की माता क्षुद्र हृदय वाली थी, इसलिए वह धन की अल्पता के कारण धनदत्त के ऊपर अवज्ञा का भाव रख श्रीकांत को गुणवती देने के लिए उद्यत हो गई। तदनंतर धनदत्त का छोटा भाई वसुदत्त यह चेष्टा जान यज्ञवलि के उपदेश से श्रीकांत को मारने के लिए उद्यत हुआ॥16-17॥ एक दिन वह रात्रि के सघन अंधकार में तलवार उठा चुपके-चुपके पद रखता हुआ नीलवस्त्र से अवगुंठित हो श्रीकांत के घर गया सो वह घर के उद्यान में प्रमादसहित बैठा था जिससे वसुदत्त ने जाकर उस पर प्रहार किया। बदले में श्रीकांत ने भी उस पर तलवार से प्रहार किया ॥18-19॥ इस तरह परस्पर के घात से दोनों मरे और मरकर विंध्याचल की महाअटवी में मृग हुए ॥20॥ दुर्जन मनुष्यों ने धनदत्त के लिए कुमारी का लेना मना कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि दुर्जन किसी कारण के बिना ही क्रोध करते हैं फिर उपदेश मिलने पर तो कहना ही क्या है ? ॥21॥ भाई के कुमरण और कुमारी के नहीं मिलने से धनदत्त बहुत दु:खी हुआ जिससे वह घर से निकलकर आकुल होता हुआ अनेक देशों में भ्रमण करता रहा ॥22॥ इधर जिसे दूसरा वर इष्ट नहीं था ऐसी गुणवती धनदत्त की प्राप्ति नहीं होने से बहुत दुःखी हुई । वह अपने घर में अन्न देने के कार्य में नियुक्त की गई **अर्थ**ात् घर में सबके लिए भोजन परोसने का काम उसे सौंपा गया ॥23॥ वह अपने मिथ्यादृष्टि स्वभाव

के कारण निर्ग्रंथ मुनि को देखकर उनसे सदा द्वेष करती थी, उनके प्रति ईर्ष्या रखती थी, उन्हें गाली देती थी तथा उनका तिरस्कार भी करती थी ॥24॥ कर्मबंध के अनुरूप जिसकी आत्मा सदा मिथ्यादर्शन में आसक्त रहती थी ऐसी वह अतिदुष्टा जिनशासन का बिलकुल ही श्रद्धान नहीं करती थी ॥25॥

तदनंतर आयु समाप्त होने पर आर्तध्यान से मर कर वह उसी अटवी में मृगी हुई जिसमें कि वे श्रीकांत और वसुदत्त के जीव मृग हुए थे ॥26॥ पूर्व संस्कार के दोष से उसी मृगी के लिए दोनों फिर लड़े और परस्पर एक दूसरे को मार कर शूकर अवस्था को प्राप्त हुए ॥27॥ तदनंतर वे दोनों हाथी, भैंसा, बैल, वानर, चीता, भेड़िया और कृष्ण मृग हुए तथा सभी पर्यायों में एक दूसरे को मार कर मरे ॥28॥ पाप कार्य में तत्पर रहने वाले वे दोनों जल में, स्थल में जहाँ भी उत्पन्न होते थे वहीं बैर का अनुसरण करने में तत्पर रहते थे और उसी प्रकार परस्पर एक दूसरे को मार कर मरते थे ॥29॥

अथानंतर मार्ग के खेद से थका अत्यंत दुःखी धनदत्त, एक दिन सूर्यास्त हो जाने पर मुनियों के आश्रम में पहुँचा ॥30॥ वह प्यासा था इसलिए उसने मुनियों से कहा कि मैं बहुत दुःखी हो रहा हूँ अतः मुझे पानी दीजिए। आप लोग पुण्य करना अच्छा समझते हैं ॥31॥ उनमें से एक मुनि ने सांत्वना देते हुए मधुर शब्द कहे कि रात्रि में अमृत पीना भी उचित नहीं है फिर पानी की तो बात ही क्या है ? ॥32॥ हे वत्स ! जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते हैं, जो पाप की प्रवृत्ति होने से अत्यंत दारुण है, जो नहीं दिखने वाले सूक्ष्म जंतुओं से सहित है, तथा जब सूर्य का अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन मत कर ॥33॥ हे भद्र ! तुझे दुःखी होने पर भी असमय में नहीं खाना चाहिए । तू दुःखरूपी गंभीर पानी से भरे हुए संसार-सागर में मत पड़ ॥32॥ तदनंतर मुनिराज की पुण्य कथा से वह शांत हो गया, उसका चित्त दया से आलिंगित हो उठा और इनके फलस्वरूप वह अणुव्रत का धारी हो गया। यतश्च वह अल्पशक्ति का धारक था इसलिए महाव्रती नहीं बन सका ॥35॥ तदनंतर आयु का अंत आने पर मरण को प्राप्त हो वह सौधर्म स्वर्ग में मुकुट, कुंडल, बाजूबंद, हार, मुद्रा और अंगद से सुशोभित उत्तम देव हुआ ॥36॥ वहाँ वह पूर्व पुण्योदय के कारण देवांगनाओं के सुख से लालित था, अप्सराओं के बड़े भारी परिवार से सहित था तथा इंद्र के समान आनंद से समय व्यतीत करता था ॥37॥

तदनंतर वहाँ से च्युत होकर महापुर नामक श्रेष्ठ नगर में जैनधर्म के श्रद्धालु मेरु नामक सेठ की धारिणी नामक स्त्री से पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ ॥38॥ उसी नगर में एक छत्रच्छाय नाम का राजा रहता था। उसकी श्रीदत्ता नाम की स्त्री थी जो कि रानी के गुणों की मानो पिटारी ही थी ॥36॥ किसी एक दिन पद्मरुचि घोड़े पर चढ़ा अपने गोकुल की ओर आ रहा था, सो मार्ग में उसने पृथिवी पर पड़ा एक बूढ़ा बैल देखा ॥40॥ सुगंधित वस्त्र तथा माला आदि को धारण करने वाला पद्मरुचि घोड़े से उतर कर दयालु होता हुआ आदरपूर्वक उस बैल के पास गया ॥41॥ पद्मरुचि ने उसके कान में पंचनमस्कार मंत्र का जाप सुनाया । सो जब पद्मरुचि उसके कान में पंचनमस्कार मंत्र का जप दे रहा था तभी उस मंत्र को सुनती हुई बैल की आत्मा उस शरीर से बाहर निकल गई **अर्थ**ात् नमस्कार मंत्र सुनते-सुनते उसके प्राण निकल गये ॥42॥ मंत्र के प्रभाव से जिसके कर्मों का जाल कुछ कम हो गया था ऐसा वह बैल, उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की श्रीदत्ता नाम की रानी के पुत्र हुआ । यतश्च छत्रच्छाय के पुत्र नहीं था इसलिए वह उसके उत्पन्न होनेपर बहुत संतुष्ट हुआ ॥43॥ नगर में बहुत भारी संपदा खर्च कर अत्यधिक शोभा की गई तथा बाजों से जो बहरा हो रहा था ऐसा महान् उत्सव किया गया ॥44॥

तदनंतर कर्मों के संस्कार से उसे अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो गया। बैल पर्याय में बोझा ढोना, शीत तथा आतप आदि से उत्पन्न दारुण दुःख उसने भोगे थे तथा जो उसे पंचनमस्कार मंत्र श्रवण करने का अवसर मिला था । वह सब उसकी स्मृतिपटल में झूलने लगा। महासुंदर चेष्टाओं को धारण करता हुआ वह, जब बालकालीन क्रीड़ाओं में आसक्त रहता था तब भी मन में पंचनमस्कार मंत्र के श्रवण का सदा ध्यान रखता था ॥45-46॥ किसी एक दिन वह विहार करता हुआ उस स्थान पर पहुंचा जहाँ उस बैल का मरण हुआ था। उसने एक-एक कर अपने घूमने के सब स्थानों को पहिचान लिया ॥47॥

तदनंतर वृषभध्वज नाम को धारण करने वाला वह राजकुमार हाथी से उतर कर दुःखित चित्त होता हुआ इच्छानुसार बहुत देर तक बैल के मरने को उस भूमि को देखता रहा ॥48॥ समाधि मरण रूपी रत्न के दाता तथा उत्तम चेष्टाओं से सहित उस बुद्धिमान पद्मरुचि को जब वह नहीं देख सका तब उसने उसके देखने के लिए योग्य उपाय का विचार किया ॥49॥ अथानंतर उसने उसी स्थान पर कैलास के शिखर के समान एक जिनमंदिर बनवाया, उसमें चित्रपट आदि पर महापुरुषों के चरित तथा पुराण लिखवाये ॥50॥ उसी मंदिर के द्वार पर उसने अपने पूर्वभव के चित्र से चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करने के लिए चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये ॥

51॥ तदनंतर वंदना की इच्छा करता हुआ पद्मरुचि एक दिन उस मंदिर में आया और हर्षित चित्त होता हुआ उस चित्र को देखने लगा। तदनंतर आश्चर्यचकित हो उसी चित्र पर नेत्र गड़ाकर ज्यों ही वह उसे देखता है कि वृषभध्वज राजकुमार के सेवकों ने उसे उसका समाचार सुना दिया ॥52-53॥ तदनंतर विशाल संपदा से सहित राजपुत्र, इष्ट के समागम की इच्छा करता हुआ उत्तम हाथी पर सवार हो वहाँ आया ॥54॥ हाथी से उतर कर उसने जिन मंदिर में प्रवेश किया और वहाँ बड़ी तल्लीनता के साथ उस चित्रपट को देखते हुए धारिणीसुत पद्मरुचि को देखा ॥55॥ जिसके नेत्र, मुख तथा हाथों के संचार से अत्यधिक आश्चर्य सूचित हो रहा था ऐसे उस पद्मरुचि को पहिचान कर वृषभध्वज ने उसके चरणों में नमस्कार किया ॥16॥

पद्मरुचि ने उसके लिए बैल के दुःखपूर्ण मरण का समाचार कहा जिसे सुन कर उत्फुल्ल लोचनों को धारण करने वाला राजपुत्र बोला कि वह बैल मैं ही हूँ ॥57॥ जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरु की पूजा कर संतुष्ट होता है उसी प्रकार वृषभध्वज राजकुमार भी शीघ्रता से पद्मरुचि की पूजा कर संतुष्ट हुआ। पूजा के बाद राजपुत्र ने पद्मरुचि से कहा कि मृत्यु के संकट से परिपूर्ण उस काल में आप मेरे प्रियबंधु के समान समाधि प्राप्त कराने के लिए आये थे ॥58-59॥ उस समय तुमने दयालु होकर जो समाधिरूपी अमृत का संबल मेरे लिए दिया था देखो, उसी से तृप्त होकर मैं इस भव को प्राप्त हुआ हूँ ॥60॥ तुमने जो मेरा भला किया है वह न माता करती है, न पिता करता है, न सगा भाई करता है, न परिवार के अन्य लोग करते हैं और न देव ही करते हैं ॥61॥ तुमने जो मुझे पंचनमस्कार मंत्र श्रवण का दान दिया था उसका मूल्य यद्यपि मैं नहीं देखता तथापि आपमें जो मेरी परम भक्ति है वही यह चेष्टा करा रही है ॥62॥ हे नाथ ! मुझे आज्ञा दो । मैं आपका क्या करूँ ? हे पुरुषोत्तम ! आज्ञा देकर मुझ भक्त को अनुगृहीत करो ॥63॥ तुम यह समस्त राज्य ले लो, मैं तुम्हारा दास रहूँगा। अभिलषित कार्य में इस शरीर को नियुक्त कीजिए ॥64॥ इत्यादि उत्तम शब्दों के साथ-साथ उन दोनों में परम प्रेम हो गया, दोनों को ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई, वह राज्य दोनों का सम्मिलित राज्य हुआ और दोनों का संयोग चिर संयोग हो गया ॥65॥ जिनका अनुराग ऊपर ही ऊपर न रहकर हड्डी तथा मज्जा तक पहुँच गया था ऐसे वे दोनों श्रावक के व्रत से सहित हुए। स्थिर चित्त के धारण करने वाले उन दोनों ने पृथिवी पर अनेक जिनमंदिर और जिनबिंब बनवाये ॥66॥ सफेद कमल की बोड़ियों के समान स्तूपों से सैकड़ों बार पृथिवी को अलंकृत किया ॥67॥

तदनंतर मरण के समय समाधि की आराधना कर वृषभध्वज ईशान स्वर्ग में पुण्य कर्म का फल भोगने वाला देव हुआ ॥68॥ उस देव के नयनों की कांति देवांगनाओं के नयन कमलों को विकसित करने वाली थी, तथा क्रीड़ा करते समय ध्यान करते ही उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते थे ॥69॥ इधर पद्मरुचि भी आयु के अंत में समाधिमरण प्राप्त कर ईशान स्वर्ग में ही सुंदर वैमानिक देव हुआ ॥70॥

तदनंतर पद्मरुचि का जीव वहाँ से चय कर पश्चिम विदेह क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर नंद्यावर्त नगर के राजा नंदीश्वर की कनकाभा रानी से नयनानंद नाम का पुत्र हुआ। वहाँ उसने चिरकाल तक विद्याधर राजा की विशाल लक्ष्मी का उपभोग किया ॥71-72॥ तदनंतर मुनि-दीक्षा ले अत्यंत विकट तप किया और अंत में समाधिमरण प्राप्त कर माहेंद्र स्वर्ग प्राप्त किया ॥73॥ वहाँ उसने पुण्यरूपी लता के महाफल के समान पंचेंद्रियों के विषय द्वार से अत्यंत सुंदर मनोहर सुख प्राप्त किया ॥74॥

तदनंतर वहाँ से च्युत होकर मेरु पर्वत के पश्चिम दिग्भाग में स्थित क्षेमपुरी नगरी में श्रीचंद्र नाम का प्रसिद्ध राजपुत्र हुआ ॥75॥ वहाँ उसकी माता का नाम पद्मावती और पिता का नाम विपुलवाहन था। वह वहाँ स्वर्ग में भोगे हुए कर्म का जो निःस्यंद शेष रहा था उसी का मानो उपभोग करता था ॥76॥ उसके पुण्य प्रभाव से उसका खजाना, देश तथा सैन्य बल सब ओर से प्रतिदिन परम वृद्धि को प्राप्त हो रहा था ॥77॥ वह श्रीचंद्र, एक ग्राम के स्थानापन्न, नाना खानों से सहित विशाल पृथिवी का प्रिया के समान महाप्रीति से पालन करता था ॥78॥ वहाँ वह हाव भाव से मनोज्ञ स्त्रियों के द्वारा लालित होता हुआ देवांगनाओं से सहित देवेंद्र के समान क्रीड़ा करता था ॥7॥ दोदुंदुक देव के समान महान् ऐश्वर्य को प्राप्त हुए उस श्रीचंद्र के कई हजार वर्ष एक क्षण के समान व्यतीत हो गये ॥50॥

अथानंतर किसी समय व्रत समिति और गुप्ति से श्रेष्ठ एवं बहुत भारी संघ से आवृत समाधिगुप्त नामक मुनिराज उस नगर में आये ॥81॥ 'मुनिराज आकर उद्यान में ठहरे हैं ।' यह जानकर मुनि की वंदना करने के लिए नगर के सब लोग हर्षपूर्वक बात-चीत करते हुए उद्यान में गये ॥82॥ भक्तिपूर्वक स्तुति करने वाले जनसमूह का मेघमंडल के समान जो भारी शब्द हो रहा था उसे कान लगाकर श्रीचंद्र ने सुना और निकटवर्ती लोगों से पूछा कि यह महासागर के समान किसका शब्द सुनाई दे रहा है ? जिन लोगों से राजा ने पूछा था वे उस शब्द का कारण नहीं जानते थे इसलिए उन्होंने मंत्री को राजा के निकट कर दिया ॥83-84॥ तब राजा ने मंत्री से कहा कि मालूम करो यह

किसका शब्द है ? इसके उत्तर में मंत्री ने जाकर तथा सब समाचार जानकर वापिस आ निवेदन किया कि उद्यान में मुनिराज आये हैं ॥85॥

तदनंतर जिसके नेत्र खिले हुए कमल के समान सुशोभित हो रहे थे तथा जिसके हर्ष के रोमांच उठ आये थे ऐसा राजा श्रीचंद्र अपनी स्त्री के साथ मुनि वंदना के लिए चला ॥86॥ वहाँ प्रसन्न मुखचंद्र के धारक मुनिराज के दर्शन कर राजा ने शीघ्रता से शिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया और उसके बाद वह विनयपूर्वक पृथिवी पर बैठ गया ॥87॥ भव्यरूपी कमलों में प्रधान राजा श्रीचंद्र को मुनिरूपी सूर्य के दर्शन होनेपर अपने आप अनुभव में आने योग्य कोई अद्भुत महाप्रेम उत्पन्न हुआ ॥88॥

तत्पश्चात् परम गंभीर और सर्व शास्त्रों के विशारद मुनिराज ने उस अपार जनसमूह के लिए तत्त्वों का उपदेश दिया ॥89॥ उन्होंने कहा कि अवांतर अनेक भेदों से सहित तथा संसार सागर से तारने वाला धर्म, अनगार और सागार के भेद से दो प्रकार का है ॥90॥ वक्ताओं में श्रेष्ठ मुनिराज ने अनुयोग द्वार से वर्णन करते हुए कहा कि अनुयोग के 1 प्रथमानुयोग 2 करणानुयोग 3 चरणानुयोग और 4 द्रव्यानुयोग के भेद से चार भेद हैं ॥91॥ तदनंतर उन्होंने अन्य मत-मतांतरों की आलोचना करने वाली आक्षेपणी कथा की । फिर स्वकीय तत्त्व का निरूपण करने में निपुण निक्षेपणी कथा की। तदनंतर संसार से भय उत्पन्न करने वाली संवेजनी कथा की और उसके बाद भोगों से वैराग्य उत्पन्न करने वाली पुण्यवर्धक निवेदनी कथा की ॥92-93॥ उन्होंने कहा कि कर्मयोग से संसार में दौड़ लगाने वाले इस प्राणी को मोक्षमार्ग की प्राप्ति बड़े कष्ट से होती है ॥94॥ यह संसार विनाशी होने के कारण संध्या, बबूले, फेन, तरंग, बिजली और इंद्रधनुष के समान है । इसमें कुछ भी सार नहीं है ॥95॥ यह प्राणी नरक अथवा तिर्यंचगति में एकांत रूप से दुःख ही प्राप्त करता है और मनुष्य तथा देवों के सुख में यह तृप्त नहीं होता है ॥96॥ जो इंद्र संबंधी भोग-संपदाओं से तृप्त नहीं हुआ वह मनुष्यों के क्षुद्र भोगों से कैसे तृप्त हो सकता है ? ॥97॥ जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका वह खजाना व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर विषय स्वाद के लोभ में पड़ यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्य पर्याय व्यर्थ चली जाती है ॥98॥ सूखे ईंधन से अग्नि की तृप्ति क्या है ? नदियों के जल से समुद्र की तृप्ति क्या है ? और विषयों के आस्वाद-संबंधी सुख से संसारी प्राणी की तृप्ति क्या है ? ॥99॥ जल में डूबते हुए खिन्न मनुष्य के समान विषय रूपी आमिष से मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहांधीकृत चित्त होकर मंदता को प्राप्त हो जाता है ॥100॥ सूर्य तो दिन में ही तपता है पर काम रात-दिन तपता रहता है । सूर्य का आवरण तो है पर काम का आवरण नहीं है ॥101॥ संसार में अरहट की घटी के समान निरंतर कर्मों से उत्पन्न होने वाला जो जन्म, जरा और मृत्यु संबंधी दुःख है वह स्मरण आते ही भय देने वाला है ॥102॥ जिस प्रकार अजंगम यंत्र जंगम प्राणी के द्वारा घुमाया जाता है उसी प्रकार यह अनित्य तथा बीभत्स शरीर भी चेतन द्वारा घुमाया जाता है । इस शरीर में जो स्नेह है वह मोह के कारण ही है ॥103॥ यह मनुष्य जन्म पानी के बबूले के समान निःसार है ऐसा जानकर कुलीन मनुष्य विरक्त हो जिन प्रतिपादित मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥104॥ जो उत्साह रूपी कवच से आच्छादित हैं, निश्चय रूपी घोड़े पर सवार हैं और ध्यानरूपी खड्ग को धारण करने वाले हैं ऐसे धीर वीर मनुष्य सुगति के प्रति प्रस्थान करते हैं ॥105॥ हे मानवो! शरीर जुदा है और मैं जुदा हूँ ऐसा विचार कर निश्चय करो तथा शरीर में स्नेह छोड़कर धर्म करो ॥106॥ जिन्हें सुख-दुःखादि समान हैं, जो स्वजन और परजनों में समान हैं तथा राग-द्वेष आदि से रहित हैं ऐसे मुनि ही पुरुषोत्तम हैं ॥107॥ उन्हीं मुनियों ने अपने शुक्ल-ध्यान रूपी नेत्र के द्वारा दुःख रूपी वन्य पशुओं से व्याप्त इस अत्यंत विशाल समस्त कर्मरूपी अटवी को भस्म किया है ॥108॥

इस प्रकार मुनिराज का उपदेश सुन कर श्रीचंद्र विषयास्वाद-संबंधी सुख से पराङ्मुख हो रत्नत्रय को प्राप्त हो गया ॥109॥ फलस्वरूप उस उदारचेता ने धृतिकांत नामक पुत्र के लिए राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराज के समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥110॥ अब वे श्रीचंद्रमुनि समीचीन भावना से सहित थे, त्रियोग संबंधी शुद्धि को धारण करते थे, समितियों और गुप्तियों से सहित थे तथा राग-द्वेष से विमुख थे ॥111॥ रत्नत्रय रूपी उत्तम अलंकारों से युक्त थे, क्षमा आदि गुणों से सहित थे, जिन-शासन से ओत-प्रोत थे, श्रमण थे और उत्तम समाधान से युक्त थे ॥112॥ पंच महाव्रतों के धारक थे, प्राणियों की रक्षा करने वाले थे, सात भयों से निर्मुक्त थे तथा उत्तम धैर्य से सहित थे ॥113॥ ईर्यासमिति पूर्वक उत्तम विहार करने में तत्पर थे, परीषहों के समूह को सहन करने वाले थे, मुनि थे, तथा बेला, तेला और पक्षोपवासादि करने के बाद पारणा करते थे ॥114॥ ध्यान और स्वाध्याय में निरंतर लीन रहते थे; ममता रहित थे, इंद्रियों को तीव्रता से जीतने वाले थे, उनके कार्य निदान **अर्थ**ात् आगामी भोगाकांक्षा से रहित होते थे, वे परम शांत थे और जिन शासन के परम स्नेही थे ॥

115॥ अहिंसक आचरण करने में कुशल थे, मुनिसंघ पर अनुग्रह करने में तत्पर थे, और बाल की अनीमात्र परिग्रह में भी इच्छा से रहित थे ॥116॥ स्नान के अभाव में उनका शरीर मल से सुशोभित था, वे आसक्ति से रहित थे, दिगंबर थे, गाँव में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक ही ठहरते थे ॥117॥ पर्वत की गुफाओं, नदियों के तट अथवा बाग-बगीचों में ही उनका उत्तम निवास होता था, उन्होंने शरीर से ममता छोड़ दी थी, वे स्थिर थे, मौनी थे, विद्वान थे और सम्यक् तप में तत्पर थे ॥118॥ इत्यादि गुणों से सहित श्रीचंद्रमुनि कामरूपी पंजर को जर्जर-जीर्ण-शीर्ण कर तथा समाधिमरण प्राप्त कर ब्रह्मस्वर्ग के इंद्र हुए ॥119॥

वहाँ वे उत्तम विमान में श्री, कीर्ति, धृति और कांति को प्राप्त थे, चूड़ामणि के द्वारा प्रकाश करने वाले थे, तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे ॥120॥ यद्यपि ध्यान करते ही उत्पन्न होने वाली परम ऋद्धि से क्रीड़ा करते थे तथापि अहमिंद्रदेव के समान अथवा भरत चक्रवर्ती के समान निर्लिप्त हो रहते थे ॥121॥॥ नंदन वन आदि स्थानों में उत्तम संपदाओं से युक्त सौधर्म आदि इंद्र जब उनकी ओर देखते थे तब उन जैसा वैभव प्राप्त करने के लिए उत्कंठित हो जाते थे ॥122॥ देवांगनाओं के नेत्रों को उत्सव प्रदान करने वाले वे ब्रह्मेंद्र, मणि तथा सुवर्ण से निर्मित एवं मोतियों की जाली से सुशोभित सुंदर विमान में रमण करते थे ॥123॥

श्रीसकलभूषण केवली कहते हैं कि हे विभीषण ! श्रीचंद्र के जीव ब्रह्मेंद्र की जो विभूति थी उसे बृहस्पति भी सौ वर्ष में भी नहीं कह सकता ॥124॥ जिनशासन अमूल्य रत्न है, अनुपम रहस्य है तथा तीनों लोकों में प्रकट है परंतु मोही जीव इसे नहीं जानते ॥12॥ मुनिधर्म तथा जिनेंद्रदेव के उत्तम माहात्म्य को जानकर भी मिथ्या अभिमान में चूर रहने वाले मनुष्य धर्म से विमुख रहते हैं ॥126॥ जो बालक **अर्थ**ात् अज्ञानी इस लोकसंबंधी सुख के लिए मिथ्यामत में प्रीति करता है वह अपना ध्यान रखता हुआ भी उसका वह अहित करता है जिसे शत्रु भी नहीं करते ॥127॥ कर्म बंध की विचित्रता होने से सभी लोग रत्नत्रय के धारक नहीं हो जाते । कितने ही लोग उसे प्राप्त कर भी दूसरे के चक्र में पड़कर पुनः छोड़ देते हैं ॥128॥ हे भव्यजनो ! अनेक खोटे मनुष्यों के द्वारा गृहीत एवं बहुत दोषों से सहित निंदित धर्म में रमण मत करो। अपने चित् स्वरूप के साथ बंधुता का काम करो ॥129॥ जिनशासन को छोड़कर अन्यत्र दुःख से मुक्ति नहीं है इसलिए हे भव्यजनो ! अनन्यचित्त हो निरंतर जिनभगवान की अर्चा करो ॥130। इस प्रकार देव से उत्तम मनुष्य पर्याय और मनुष्य से उत्तम देवपर्याय को प्राप्त करने वाले धनदत्त का वर्णन किया ॥131॥ अब संक्षेप से कर्मों की विचित्रता के कारण विविधरूपता को धारण करने वाले, वसुदत्तादि के भ्रमण का वर्णन करता हूँ ॥132॥

अथानंतर मृणालकुंड नामक नगर में प्रतापवान् तथा यश से उज्ज्वल विजयसेन नाम का राजा रहता था । रत्नचूला उसकी स्त्री थी ॥133॥ उन दोनों के वज्रकंबु नाम का पुत्र था और हेमवती उसकी स्त्री थी। उन दोनों के पृथिवीतल पर प्रसिद्ध शंभु नाम का पुत्र था ॥134॥ उसके श्रीभूति नाम का परमतत्त्वदर्शी पुरोहित था और उसकी स्त्री के योग्य गुणों से सहित सरस्वती नाम की स्त्री थी ॥135॥ पहले जिस गुणवती का उल्लेख कर आये हैं वह समीचीन धर्म से रहित हो कर्मों के प्रभाव से तिर्यंच योनि में चिरकाल तक भ्रमण करती रही ॥136॥ वह मोह, निंदा, स्त्री संबंधी निदान तथा अपवाद आदि के कारण बार-बार तीव्र दुःख से युक्त स्त्रीपर्याय को प्राप्त करती रही ॥137॥ तदनंतर साधुओं का अवर्णवाद करने के कारण वह दुःखमयी अवस्था से दुखी होती हुई गंगा नदी के तट पर हथिनी हुई ॥138॥ वहाँ वह बहुत भारी कीचड़ में फंस गई जिससे उसका शरीर एकदम पराधीन होकर अचल हो गया। वह धीरे-धीरे स-स शब्द छोड़ने लगी तथा नेत्र बंदकर मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुई ॥139॥ तदनंतर उसे मरती देख तरंगवेग नामक दयालु विद्याधर ने उसे कान में नमस्कार मंत्र का जाप सुनाया ॥140। उस मंत्र के प्रभाव से उसकी कषाय मंद पड़ गई, उसने उसी स्थान का क्षेत्र संन्यास धारण किया तथा उक्त विद्याधर ने उसे प्रत्याख्यान-संयम दिया। इन सब कारणों के मिलने से वह श्रीभूति नामक पुरोहित के वेदवती नाम की पुत्री हुई ॥141॥ एक बार भिक्षा के लिए घर में प्रविष्ट मुनि को देखकर उसने उनकी हँसी की तब पिता ने उसे समझाया जिससे वह श्राविका हो गई ॥142॥ वेदवती परम सुंदरी कन्या थी अतः उसे प्राप्त करने के लिए पृथिवीतल के राजा अत्यंत उत्कंठित थे और उनमें शंभु विशेष रूपसे उत्कंठित था ॥143॥ पुरोहित की यह प्रतिज्ञा थी कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि पुरुष संपत्ति में कुबेर के समान हो तथापि उसके लिए यह कन्या नहीं दूंगा ॥144॥ इस प्रतिज्ञा से शंभु बहुत कुपित हुआ और उसने रात्रि में सोते हुए पुरोहित को मार डाला । पुरोहित मरकर जिनधर्म के प्रसाद से देव हुआ ॥145॥

तदनंतर जो साक्षात् देवता के समान जान पड़ती थी ऐसी इस वेदवती को उसकी इच्छा न रहने पर भी शंभु अपने अधिकार से बलात् विवाहने के लिए उद्यत हुआ ॥146॥ साक्षात् रति के समान शोभायमान उस वेदवती का शंभु ने काम के द्वारा संतप्त मन से आलिंगन

किया। चुंबन किया और उसके साथ बलात् मैथुन किया ॥147॥ तदनंतर जो अत्यंत कुपित थी, अग्निशिखा के समान तीक्ष्ण थी, जिसका हृदय विरक्त था, शरीर काँप रहा था, जो अपने शील के नाश और पिता के वध से तीव्र दुःख धारण कर रही थी तथा जिसके नेत्र लाल-लाल थे ऐसी उस वेदवती ने शंभु से कहा कि अरे पापी ! नीच पुरुष! तूने पिता को मारकर बलात् मेरे साथ काम सेवन किया है, इसलिए मैं तेरे वध के लिए ही आगामी पर्याय में उत्पन्न होऊँगी। यद्यपि मेरे पिता परलोक चले गये हैं तथापि मैं उनकी इच्छा नष्ट नहीं करूँगी । मिथ्यादृष्टि पुरुष को चाहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है ॥148-151॥

तदनंतर उस बाला ने शीघ्र ही हरिकांता नामक आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ले अत्यंत कठिन तपश्चरण किया ॥152॥ लोंच करने के बाद उसके शिर पर रूखे बाल निकल आये थे, तपके कारण उसका शरीर ऐसा सूख गया था मानो मांस उसमें है ही नहीं और हड्डी तथा नसों का समूह स्पष्ट दिखाई देने लगा था ॥153॥ आयु के अंत में मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग गई । वहाँ पुण्योदय से प्राप्त हुए देवों के सुख का उपभोग करने लगी ॥154॥ वेदवती से रहित शंभु, संसार में एकदम हीनता को प्राप्त हो गया । उसके भाई-बंधु, दासी-दास तथा लक्ष्मी आदि सब छूट गये और वह दुर्बुद्धि उन्मत्त अवस्था को प्राप्त हो गया ॥155॥ वह झूठ-मूठ के अभिमान में चूर हो रहा था तथा जिनेंद्र भगवान् के वचनों से पराङ्मुख रहता था। वह मुनियों को देख उनकी हँसी उड़ाता तथा उनके प्रति दुष्ट वचन कहता था ॥156॥ इस प्रकार मधु मांस और मदिरा ही जिसका आहार था तथा जो पाप की अनुमोदना करने में उद्यत रहता था ऐसा शंभु तीव्र दुःख देने वाले नरक और तिर्यंचगति में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ॥157॥

अथानंतर दुःखदायी पाप कर्म का कुछ उपशम होने से वह कुशध्वज ब्राह्मण की सावित्री नामक स्त्री में पुत्र उत्पन्न हुआ ॥158॥ प्रभासकुंद उसका नाम था । फिर अत्यंत दुर्लभ रत्नत्रय को पाकर उसने विचित्रसेन मुनि के समीप दीक्षा धारण कर ली ॥159॥ जिसने रति, काम, गर्व, क्रोध तथा मत्सर को छोड़ दिया था, जो दयालु था तथा इंद्रियों को जीतने वाला था ऐसे उस प्रभासकुंद ने निर्विकार होकर तपश्चरण किया ॥160॥ वह दो दिन, तीन दिन तथा एक पक्ष आदि के उपवास करता था, उसकी सब प्रकार की इच्छाएँ छूट गई थीं, जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह शून्य वन आदि में ठहर जाता था ॥161॥ गुण और शील से संपन्न था, परीषहों को सहन करने वाला था, ग्रीष्मऋतु में आतापनयोग धारण करने में तत्पर रहता था, मलरूपी कंचुक से सहित था, वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे मेघों के द्वारा छोड़े हुए जल से भीगता रहता था और हेमंतऋतु में बर्फरूपी वस्त्र से आवृत होकर नदियों के तट पर स्थित रहता था, इत्यादि क्रियाओं से युक्त हुआ वह प्रभासकुंद किसी समय उस सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर की वंदना करने के लिए गया जो कि स्मृति में आते ही पाप का नाश करने वाला था ॥162-164॥ यद्यपि वह शांत था तथापि उसने वहाँ आकाश में कनकप्रभ नामक विद्याधर की विभूति देख निदान किया कि मुझे वैभव से रहित मुक्तिपद की आवश्यकता नहीं है । यदि मेरे तप में कुछ माहात्म्य है तो मैं ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ ॥165-166॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो पापकर्म के उदय से उत्पन्न हुई मूर्खता तो देखो कि उसने त्रिलोकी मूल्य रत्न को शाक की एक मुट्ठी में बेच दिया ॥167॥ अथवा ठीक है क्योंकि कर्मों के प्रभाव से अभ्युदय के समय मनुष्य के सद्बुद्धि उत्पन्न होती है और विपरीत समय में सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है । इस संसार में कौन क्या कर सकता है ? ॥168॥

तदनंतर जिसकी आत्मा निदान से दूषित हो चुकी थी ऐसा प्रभासकुंद, अत्यंत विकट तप कर सनत्कुमार स्वर्ग में आरूढ़ हुआ और वहाँ भोगों का उपभोग करने लगा ॥169॥ तत्पश्चात् भोगों के स्मरण करने में जिसका मन लग रहा था ऐसा वह देव अवशिष्ट पुण्य के प्रभाववश वहाँ से च्युत हो लंका नगरी में राजा रत्नश्रवा और उनकी रानी कैकसी के रावण नाम का पुत्र हआ। वहाँ वह निदान के अनुसार उस महान ऐश्वर्य को प्राप्त हआ जिसकी क्रियाएँ अत्यंत विलास पूर्ण थीं, जिसमें बड़े-बड़े आश्चर्य के काम किये गये थे तथा जिसने प्रताप से समस्त लोक को व्याप्त कर रक्खा था ॥170-171॥

तदनंतर श्रीचंद्र का जीव, जो ब्रह्मलोक में इंद्र हुआ था वहाँ दश सागर प्रमाण काल तक रह कर च्युत हो दशरथ का पुत्र राम हुआ। उसकी माता का नाम अपराजिता था। पूर्व पुण्य के अवशिष्ट रहने से इस संसार में विभूति, रूप और पराक्रम से राम की तुलना करने वाला पुरुष दुर्लभ था ॥172-173॥ पहले जो धनदत्त था वही चंद्रमा के समान यश से संसार को व्याप्त करने वाला मनोहर राम हुआ है ॥174॥ पहले जो वसुदत्त था फिर श्रीभूति ब्राह्मण हुआ वही क्रम से लक्ष्मी रूपी लता के आधार के लिए वृक्ष स्वरूप नारायण पद का धारी यह लक्ष्मण हुआ है ॥175॥ पहले जो श्रीकांत था वही क्रम-क्रम से शंभु हुआ फिर प्रभासकुंद हुआ और अब रावण हुआ था ॥176॥ वह रावण कि जिसने भरतक्षेत्र के संपूर्ण तीन खंड अंगुलियों के बीच में दबे हुए के समान अपने वश कर लिये थे ॥177॥ जो पहले गुणवती

थी फिर क्रम से श्रीभूति पुरोहित की वेदवती पुत्री हुई थी वही अब क्रम से राजा जनक की सीता नाम की पुत्री हुई है॥178॥ यह सीता बलदेव-राम की विनयवती पत्नी है, शील का खजाना है तथा इंद्र की इंद्राणी के समान सुंदर चेष्टाओं को धारण करने वाली है ॥179। उस समय जो गुणवती का भाई गुणवान था वही यह राम का परममित्र भामंडल हुआ है ॥180॥ ब्रह्मलोक में निवास करने वाली गुणवती का जीव अमृतमती देवी जिस समय च्युत हुई थी उसी समय कुंडलमंडित भी च्युत हुआ था सो इन दोनों का जनक की रानी विदेहा के गर्भ में समागम हुआ। यह बहिन-भाई का जोड़ा अत्यंत मनोहर तथा निर्दोष था ॥181-182॥ जो पहले यज्ञवलि ब्राह्मण था वह तू विभीषण हुआ है और जो वृषभकेतु था वह यह वानर की ध्वजा से युक्त सुग्रीव हुआ है॥183॥ इस प्रकार तुम सभी पूर्व प्रीति से तथा पुण्य के प्रभाव से पुण्यकर्मा राम के साथ प्रीति रखने वाले हुए हो ॥184॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद विभीषण ने सकलभूषण केवली से बालि के पूर्वभव पूछे सो केवली ने जो निरूपण किया उसे मैं कहता हूँ सो सुन ॥185॥

राग, द्वेष आदि दुःखों के समूह से भरे हुए इस चतुर्गति रूप संसार में वृंदावन के बीच एक कृष्णमृग रहता था । ॥186॥ आयु के अंत के समय वह मृग मुनियों के स्वाध्याय का शब्द सुन ऐरावत क्षेत्र के दितिनामा नगर में उत्तम मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुआ ॥187॥ वहाँ सम्यग्दृष्टि तथा उत्तम चेष्टाओं को धारण करने वाला विहीत नाम का पुरुष इसका पिता था और शिवमति इसकी माता थी। उन दोनों के यह मेघदत्त नाम का पुत्र हुआ था ॥188॥ मेघदत्त अणुव्रत का धारी था, जिनेंद्रदेव की पूजा करने में सदा उद्यत रहता था और जिन-चैत्यालयों की वंदना करने वाला था। आयु के अंत में समाधिमरण कर वह ऐशान स्वर्ग में उत्पन्न हुआ ॥189॥ जंबूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में विजयावती नगरी के समीप एक मत्तकोकिल नाम का उत्तम ग्राम है जिसमें निरंतर उत्सव होता रहता है तथा जो नगर के समान सुंदर है। उस ग्राम का स्वामी कांतशोक था तथा रत्नाकिनी उसकी स्त्री थी। मेघदत्त का जीव ऐशान स्वर्ग से च्युत होकर उन्हीं दोनों के सुप्रभ नाम का सुंदर पुत्र हुआ। यह सुप्रभ अनेक बंधुजनों से सहित था तथा शुभ आचार ही उसे प्रिय था ॥190-192॥ उसने संसार में दुर्लभ जिनमतानुगामी रत्नत्रय को पाकर संयतनामा महामुनि के पास जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥193॥ इस प्रकार उदार अभिप्राय और विशाल हृदय को धारण करने वाले सुप्रभ मुनि ने कई हजार वर्ष तक विधिपूर्वक कठिन तपश्चरण किया ॥194॥ वे सुप्रभ मुनि नाना ऋद्धियों से सहित होनेपर भी गर्व को प्राप्त नहीं हुए थे तथा संयोगजन्य भावों में उन्होंने सब ममता छोड़ दी थी ॥195॥ तदनंतर जिन्हें कषाय की उपशम अवस्था में होने वाला शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रकट हुआ था ऐसे वे महामुनि सिद्ध अवस्था को अवश्य प्राप्त होते परंतु आयु अधिक नहीं थी इसलिए उसी उपशांत दशा में मरणकर सर्वार्थसिद्धि गये ॥196॥ वहाँ तैंतीस सागर तक महासुख भोगकर वे बालिनाम के प्रतापी विद्याधरों के राजा हुए ॥197॥ जिन्होंने किष्किंध पर्वत पर विविध सामग्री से युक्त राज्य प्राप्त किया था, महागुणवान् सुग्रीव जिनका भाई है। लंकाधिपति रावण के साथ विरोध होने पर भी जो इस सुग्रीव के ऊपर राज्य लक्ष्मी छोड़ जीवदया के **अर्थ** दीक्षित हो गये थे, तथा गर्ववश रावण के द्वारा उठाये हुए कैलास को जिन्होंने साधु अवस्था में अपनी सामर्थ्य से केवल पैर का अंगूठा दबा कर छुड़वा दिया था। वही बालि मुनि उत्कृष्ट ध्यान के तेज से संसार रूपी वन को भस्म कर तीन लोक के अग्रभाग पर आरूढ़ हो आत्मा के निज स्वरूप में स्थिति को प्राप्त हुए हैं ॥198-201॥

श्रीकांत और वसुदत्त ने महावैर के कारण अनेक भवों में परस्पर एक दूसरे का वध किया है ॥202॥ पहले वेदवती की पर्याय में रावण का जीव सीता के साथ संबंध करना चाहता था उसी संस्कार से उसने रावण की पर्याय में सीता का हरण किया ॥203॥ जब रावण शंभु था तब उसने कामी होकर वेदवती की प्राप्ति के लिए वेदों के जानने वाले, उत्तम सम्यग्दृष्टि श्रीभूति ब्राह्मण की हत्या की थी ॥204॥ वह श्रीभूति स्वर्ग गया वहाँ से च्युत होकर प्रतिष्ठ नगर में पुनर्वसु विद्याधर हुआ सो शोकवश निदान सहित तपकर सानत्कुमार स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। तदनंतर वहाँ से च्युत हो दशरथ का पुत्र तथा राम का छोटा भाई परम स्नेही लक्ष्मण नाम का चक्रधर हुआ ॥205-206॥ इस वीर लक्ष्मण ने, नहीं छूटने वाले पूर्व वैर के कारण ही शंभु का जीव जो दशानन हुआ था उसे मारा है ॥207॥ यतश्च पूर्वभव में सीता के जीव को रावण के जीव के द्वारा भाई के वियोग का दुःख उठाना पड़ा था इसलिए सीता रावण के क्षय में निमित्त हुई है ॥208॥ लक्ष्मण ने भूमिगोचरी होने पर भी समुद्र को पारकर पूर्व पर्याय में अपना घात करने वाले रावण को मारा है ॥209॥ राक्षसों की लक्ष्मीरूपी रात्रि को सुशोभित करने के लिए चंद्रमा स्वरूप रावण को मारकर लक्ष्मण ने इस सागर सहित समस्त पृथिवी पर अपना अधिकार किया है ॥210॥ सकलभूषण केवली कहते हैं कि कहाँ तो वैसा शूर-वीर और कहाँ ऐसी गति ? यह कर्मों का ही माहात्म्य है कि असंभव वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ॥211॥ इस प्रकार वध्य और घातक जीवों में पुनः पुनः बदली होती रहती है **अर्थ**ात् पहली पर्याय में जो वध्य होता है

वह आगामी पर्याय में उसका घातक होता है और पहली पर्याय में जो घातक होता है वह आगामी पर्याय में वध्य होता है । संसारी जीवों की ऐसी ही स्थिति है ॥212॥ कहाँ तो स्वर्ग में उत्तम भोग और कहाँ नरक में तीव्र दुःख ? अहो ! कर्मों की बड़ी विपरीत चेष्टा है ॥213॥ जिस प्रकार परम स्वादिष्ट अन्न की महाराशि विष से दूषित हो जाती है, उसी प्रकार परम उत्कृष्ट तप भी निदान से दूषित हो जाता है ॥214॥ निदान अर्थात् भोगाकांक्षा के लिए तप को दूषित करना ऐसा है जैसा कि कल्पवृक्ष काटकर कोदों के खेत की बाड़ी लगाना अथवा अमृत सींचकर विषवृक्ष को बढ़ाना अथवा सूत के लिए उत्तम मणियों की माला का चूर्ण करना अथवा अंगार के लिए गोशीर्ष चंदन का जलाना ॥215-216॥ संसार में स्त्री समस्त दोषों की महाखान है। ऐसा कौन निंदित कार्य है जो उसके लिए नहीं किया जाता हो ? ॥217॥ किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है उसे भुवनत्रय में अन्यथा करने के लिए कौन समर्थ है? ॥218॥ जब धर्म धारण करने वाले मनुष्य भी इस गति को प्राप्त होते हैं तब धर्महीन मनुष्यों की बात ही क्या है ? ॥219॥ जो मुनिपद धारण करके भी साध्य पदार्थों के विषय में मत्सर भाव रखते हैं ऐसे संज्वलन कषाय के धारक मुनियों को उग्र तपश्चरण करने पर भी शिव अर्थात् मोक्ष अथवा वास्तविक कल्याण की प्राप्ति नहीं होती ॥220॥ जिस मिथ्यादृष्टि के न शम अर्थात् शांति है, न तप है और न संयम है उस दुरात्मा के पास संसार-सागर से उतरने का उपाय क्या है ? ॥221॥ जहाँ वायु के द्वारा मदोन्मत्त हाथी हरण किये जाते हैं वहाँ स्थल में रहने वाले खरगोश तो पहले ही हरे जाते हैं ॥222॥ इस प्रकार परम दुःखों का ऐसा कारण जानकर हे आत्महित के इच्छुक भव्य जनो ! किसी के साथ वैर का संबंध मत रक्खो ॥223॥

जिससे पापबंध हो ऐसा एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए । देखो, शब्द मात्र से सीता को कैसा अपवाद प्राप्त हुआ ? ॥224॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि जब सीता वेदवती की पर्याय में थी तब एक मंडलिक नाम का ग्राम था। उस ग्राम में एक सुदर्शन नामक मुनि आये। मुनि को उद्यान में आया देख लोग उनकी वंदना के लिए गये । वंदना कर जब सब लोग चले गये तब उनके पास एक सुदर्शना नाम की आर्यिका जो कि मुनि की बहिन थी बैठी रही और मुनि उसे सद्वचन कहते रहे । वेदवती ने उस उत्तम साध्वी-आर्यिका के साथ मुनि को देखा । तदनंतर अपने आपको सम्यग्दृष्टि बताने में तत्पर वेदवती ने गाँव के लोगों से कहा कि हाँ, आप लोग ऐसे साधु के अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा बतलाओ। मैंने उन साधु को एकांत में एक सुंदर स्त्री के साथ बैठा देखा है। वेदवती की यह बात किन्हीं ने मानी और जो विवेकी थे ऐसे किन्हीं लोगों ने नहीं मानी ॥225-228॥ इस प्रकरण से लोगों ने मुनि का अनादर किया। तथा मुनि ने यह प्रतिज्ञा ली कि जब तक यह अपवाद दूर न होगा तब तक आहार के लिए नहीं निकलूंगा । इस अपवाद से वेदवती का मुख फूल गया तब उसने नगरदेवता की प्रेरणा पा मुनि से कहा कि मुझ पापिनी ने आपके विषय में झूठ कहा है। इस तरह मुनि से क्षमा कराकर उसने अन्य लोगों को भी विश्वास दिलाया। इस प्रकार वेदवती की पर्याय में सीता ने उन बहिन-भाई के युगल की झूठी निंदा की थी इसलिए इस पर्याय में यह इस प्रकार के मिथ्या अपवाद को प्राप्त हुई है ॥229-231॥ यदि यथार्थ दोष भी देखा हो तो जिनमत के अवलंबी को नहीं कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता भी हो तो उसे सब प्रकार से रोकना चाहिए ॥232॥ फिर लोक में विद्वेष फैलाने वाले शासन संबंधी दोष को जो कहता है वह दुःख पाकर चिरकाल तक संसार में भटकता रहता है ॥233॥ किये हुए दोष को भी प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न का बड़ा भारी गुण है ॥234॥ अज्ञान अथवा मत्सर भाव से भी जो किसी के मिथ्या दोष को प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनमार्ग से बिलकुल ही बाहर स्थित है ॥235॥

इस प्रकार सकलभूषण केवली का अत्यधिक आश्चर्य से भरा हुआ उपदेश सुनकर समस्त सुर असुर और मनुष्य परम विस्मय को प्राप्त हुए ॥236॥ लक्ष्मण और रावण के सुदृढ़ वैर को जानकर समस्त सभा महादुःख और भय से सिहर उठी तथा निर्वैर हो गई। **अर्थ**ात् सभा के सब लोगों ने वैरभाव छोड़ दिया ॥237॥ मुनि संसार से भयभीत हो गये, देव लोग परम चिंता को प्राप्त हुए, राजा उद्वेग को प्राप्त हुए और कितने ही लोग प्रतिबुद्ध हो गये ॥238॥ अपनी वक्तृत्व-शक्ति का अभिमान रखने वाले कितने ही लोग अहंकार का भार छोड शांत हो गये। जो कर्मोदय से कठिन थे अर्थात चारित्रमोह के तीव्रोदय से जो चारित्र धारण करने के लिए असमर्थ थे उन्होंने केवल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया ॥239॥ कर्मों की दुष्टता के भार से जो क्षणभर के लिए मूर्च्छित हो गई थी ऐसी सभा 'हा हा, धिक चित्रम्' आदि शब्द कहती हुई साँसें भरने लगी ॥240॥ मनुष्य, असुर और देव हाथ जोड़ मस्तक से लगा मुनिराज को प्रणाम कर विभीषण की प्रशंसा करने लगे कि हे भद्र ! आपके आश्रय से ही मुनिराज के चरणों का प्रसाद प्राप्त हुआ है और उससे हम लोग इस उत्तम ज्ञानवर्धक पुण्य चरित को सुन सके हैं ॥241-242॥

तदनंतर हर्ष से भरे एवं अपने-अपने परिकर से सहित समस्त नरेंद्र सुरेंद्र और मुनींद्र सर्वज्ञदेव की स्तुति करने लगे ॥243॥ कि हे सकलभूषण ! भगवन् ! आपके द्वारा ये तीनों लोक भूषित हुए हैं इसलिए आपका यह 'सकलभूषण' नाम सार्थक है॥244॥ ज्ञान और दर्शन में वर्तमान तथा उपमा से रहित आपकी यह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी संसार की अन्य समस्त लक्ष्मियों का तिरस्कार कर अत्यधिक सुशोभित हो रही है ॥245॥ अनाथ, अध्रुव, दीन तथा जन्म जरा मृत्यु के वशीभूत हुआ यह संसार अनादि काल से क्लेश उठा रहा है पर आज आपके प्रसाद से जिनप्रदर्शित उत्तम आत्मपद को प्राप्त हुआ है ॥246॥ हे केवलिन् ! हे कृतकृत्य ! जो नाना प्रकार के रोग, बुढ़ापा; वियोग तथा मरण से उत्पन्न होने वाले परम दुःख को प्राप्त हैं, जो शिकारी के द्वारा डराये हुए मृगसमूह की उपमा को प्राप्त हैं तथा कठिनाई से छूटने योग्य दारुण एवं अशुभ महाकर्मों से जिनकी आत्मा अवरुद्ध है घिरी हुई हैं ऐसे हम लोगों के लिए शीघ्र ही कर्मों का क्षय प्रदान कीजिए ॥247॥ हे नाथ ! विषयरूपी अंधकार से व्याप्त संसार-वास में भूले हुए प्राणियों के आप दीपक हो, मोक्षप्राप्ति की इच्छारूप तीव्र प्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए सरोवर हो, कर्म समूहरूपी वन को जलाने के लिए अग्नि हो, तथा व्याकुलचित्त एवं नाना दुःखरूपी महातुषार के पड़ने से कंपित पुरुषों के लिए सूर्य हो ॥248॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराण में परिवर्ग सहित रामदेव के पूर्वभवों का वर्णन करने वाला एक सौ छठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥106॥

## सीता द्वारा दीक्षा धारण

एक सौ सातवाँ पर्व

कथा :

॥

तदनंतर कृतांतवक्त्र ने कहा कि जो आपके स्नेहरूपी रसायन को छोड़ने के लिए समर्थ है उसके लिए अन्य क्या असह्य है ? ॥8॥ जब तक मृत्युरूपी वन के द्वारा शरीर रूपी स्तंभ नहीं गिरा दिया जाता है तब तक मैं दुःख से अंधे इस संसाररूपी संकट से बाहर निकल जाना चाहता हूँ ॥9॥ अग्नि की ज्वालाओं से प्रज्वलित घर से निकलते हुए मनुष्यों को जिस प्रकार दयालु मनुष्य रोककर उसी घर में नहीं रखते हैं उसी प्रकार दुःख से संतप्त संसार से निकले हुए प्राणी को दयालु मनुष्य उसी संसार में नहीं रखते हैं ॥10॥ जब कि अभी नहीं तो बहुत समय बाद भी आप जैसे महान् पुरुषों के साथ वियोग होगा ही तब संसार को बुरा समझने वाला कौन पुरुष आत्मा के हित को नहीं समझेगा ? ॥11॥ यह ठीक है कि आपके वियोग से होने वाला दुःख अवश्य ही अत्यंत असह्य है फिर भी ऐसा दुःख पुनः प्राप्त न हो इसीलिए मेरी यह बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥12॥

तदनंतर व्यग्र हुए राम ने बड़ी कठिनाई से आँसू रोककर कहा कि मेरे समान लक्ष्मी को छोड़कर जो तुम उत्तम व्रत धारण करने के लिए उन्मुख हुए हो अतः तुम धन्य हो ॥13॥ इस जन्म से यदि तुम निर्वाण को प्राप्त न हो सको और देव होओ तो संकट में पड़ा हुआ मैं तुम्हारे द्वारा संबोधने योग्य हूँ ॥14॥ हे भद्र ! यदि मेरे द्वारा किया हुआ एक भी उपकार तुम मानते. हो तो यह बात भूलना नहीं। ऐसी प्रतिज्ञा करो ॥15॥ 'जैसी आप आज्ञा कर रहे हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कहकर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर उत्कट वैराग्य से भरा सेनापति सर्वभूषण केवली के पास गया और प्रणाम कर तथा बाह्याभ्यंतर सर्व प्रकार का परिग्रह छोड़ सौम्यवक्त्र हो गया। अब वह आत्महित के विषय में तीव्र पराक्रमी हो गया, गृह जंजाल से निकल चुका तथा सुंदर चेष्टा का धारक हो गया ॥16-17॥ इस प्रकार परम वैराग्य को प्राप्त एवं महासंवेग से संपन्न कितने ही महाराजाओं ने निर्ग्रंथ व्रत धारण किया जिन-दीक्षा ली ॥18॥ कितने ही लोग श्रावक हुए और कितने ही लोग सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। इस प्रकार हर्षित हो रत्नत्रयरूपी आभूषणों से विभूषित वह सभा अत्यंत सुशोभित हो रही थी ॥19॥

अथानंतर जब सकलभूषण स्वामी उस पर्वत से विहार कर गये तब भक्तिपूर्वक प्रणाम कर सुर और असुर यथास्थान चले गये ॥20॥ कमललोचन राम सकलभूषण केवली तथा मुक्ति के सिद्ध करने में तत्पर साधुओं को यथाक्रम से प्रणाम कर विनीत भाव से उस सीता के पास गये जो कि निर्मल तेज को धारण कर रही थी तथा घी की आहुति से उत्पन्न अग्नि की शिखा के समान देदीप्यमान थी ॥21-22॥ वह शांतिपूर्वक आर्यिकाओं के समूह के मध्य में स्थित थी, उसकी स्वयं की किरणों का समूह देदीप्यमान हो रहा था, वह उत्तम शांत भौंहों से युक्त थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो समूह से आवृत दूसरी ही ध्रुवतारा हो ॥23॥ जो सम्यक्चारित्र के धारण करने में अत्यंत दृढ़

थी, जिसने माला, गंध तथा आभूषण छोड़ दिये थे, फिर भी जो धृति, कीर्ति, रति, श्री और लज्जारूप परिवार से युक्त थी। जो कोमल सफेद चिकने एवं लंबे वस्त्र को धारण कर रही थी, अतएव मंद-मंद वायु से जिसके फेन का समूह मिल रहा था ऐसी पुण्य की नदी के समान जान पड़ती थी अथवा खिले हुए काश के फूलों के समूह से विशद शरद् ऋतु के समान मालूम होती थी अथवा कुमुदों के समूह को विकसित करने वाली कार्तिकी पूर्णिमा की चाँदनी के समान विदित होती थी, अथवा जो महाविराग से ऐसी जान पड़ती थी मानो दीक्षा को प्राप्त हुई साक्षात् लक्ष्मी ही हो, अथवा शरीर को धारण करने वाली साक्षात् जिनशासन की देवी ही हो ॥24-27॥ ऐसी उस सीता को देख संभ्रम से जिनका हृदय टूट गया था ऐसे राम क्षण भर कल्पवृक्ष के समान निश्चल खड़े रहे ॥28॥ स्वभाव से निश्चल नेत्र और भृकुटियों की प्राप्ति होने पर इस साध्वी सीता का ध्यान करते हुए राम ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतु की मेघमाला के समीप कोई पर्वत ही खड़ा हो ॥29॥ सीता को देख-देखकर राम विचार कर रहे थे कि यह मेरी भुजाओं रूपी पिंजरे के भीतर विद्यमान उत्तम सेना है अथवा मेरे नेत्ररूपी कुमुदिनी के लिए स्वभावतः चंद्रमा की कला है ॥30॥ जो मेरे साथ रहने पर भी मेघ के शब्द से भी भय को प्राप्त हो जाती थी वह बेचारी तपस्विनी भयंकर वन में किस प्रकार भयभीत नहीं होगी ? ॥31॥ विलंब की गुरुता के कारण जो सुंदर एवं अलसाई हुई चाल चलती थी वह सुकोमल सीता तप के द्वारा निश्चित ही नाश को प्राप्त हो जायगी ॥32॥ कहाँ यह शरीर और कहाँ जिनेंद्र का कठोर तप ? जो हिम वृक्ष को जला देता है उसे कमलिनी के जलाने में क्या परिश्रम है ? ॥33॥ जिसने पहले इच्छानुसार परम मनोहर अन्न खाया है, वह अब जिस किसी तरह प्राप्त हुई भिक्षा को कैसे प्रहण करेगा? ॥34॥ वीणा, बाँसुरी तथा मृदंग के मांगलिक शब्दों से युक्त तथा स्वर्गलोक के सदृश उत्तम भवन में स्थित जिस सीता की निद्रा, उत्तम शय्यापर सेवा करती थी वही कातर सीता अब डाभ को अनियों से व्याप्त एवं मृगों के शब्द से व्याप्त वन में भयानक रात्रि को किस तरह बितावेगी? ॥35-36॥ देखो, चित्त मोह से युक्त है ऐसे मैने क्या किया ? न कुछ साधारण मनुष्यों की निंदा से प्रेरित हो प्राणवल्लभा छोड़ दी ॥37॥ जो अनुकूल है, प्रिय है, पतिव्रता है, सर्व संसार की अद्वितीय सुंदरी है, प्रिय वचन बोलने वाली है, और सुख की भूमि है ऐसी दूसरी स्त्री कहाँ है ? ॥38॥ इस तरह चिंता के भार से जिनका चित्त व्याप्त था, जो अत्यंत दुखी थे, तथा जिनकी आत्मा काँप रही थी ऐसे राम चंचल कमलाकर के समान हो गये ॥39॥ तदनंतर केवली के वचनों का स्मरण कर जिन्होंने उमड़ते हुए आँसू रोके थे तथा जो बड़ी कठिनाई से अपनी उत्सुकता को रोक सके थे ऐसे श्रीराम किसी तरह पीड़ा रहित हुए ॥40॥

अथानंतर स्वाभाविक दृष्टि को धारण करते हुए राम ने संभ्रम के साथ सती सीता के पास जाकर भक्ति और स्नेह के साथ उसे नमस्कार किया ॥41॥ राम के साथ ही साथ सौम्यहृदय लक्ष्मण ने भी हाथ जोड़ प्रणाम कर आर्या सीता का अभिनंदन किया ॥42॥ और कहा कि हे भगवति ! तुम धन्य हो, उत्तम चेष्टा की धारक हो और यतश्च इस समय पृथिवी के समान शीलरूपी सुमेरु को धारण कर रही हो अतः हम सबकी वंदनीय हो ॥43॥ जिसके द्वारा तुम संसार-समुद्र को चुपचाप पार करोगी वह श्रेष्ठ जिनवचन रूपी अमृत सर्व प्रथम तुमने ही प्राप्त किया है । 44॥ हम चाहते हैं कि सुंदर चित्त की धारक अन्य पतिव्रता स्त्रियों की भी दोनों लोकों में प्रशंसनीय यही गति हो ॥45॥ इस प्रकार के क्रियायोग को प्राप्त करने वाली एवं उत्तम चित्त की धारक तुमने अपनी आत्मा दोनों कुल तथा लोक सब कुछ वश में किया है।॥46॥ हे सुनये! हमने जो कुछ साधु अथवा असाधु-अच्छा या बुरा कर्म किया है वह क्षमा करने योग्य है क्योंकि संसार दशा में आसक्त मनुष्यों से भल पद पद पर होती है ॥47॥ हे शांते ! हे मनस्विनि ! इस तरह जिन-शासन में आसक्त रहने वाली तुमने मेरे विषाद युक्त चित्त को भी अत्यंत आनंदित कर दिया है।॥48॥

इस प्रकार सीता की प्रशंसा कर प्रसन्न चित्त की तरह राम तथा लक्ष्मण, लवण और अंकुश को आगे कर नगरी की ओर चले ॥49॥ परम हर्ष को प्राप्त हुए विद्याधर राजा विस्मयाकंपित होते हुए बड़े वैभव से आगे-आगे जा रहे थे ॥50॥ हजारों राजाओं के मध्य में वर्तमान दोनों मनोहर वीरों ने, देवों से घिरे हुए इंद्रों के समान नगर में प्रवेश किया ॥51॥ उनके आगे नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़, बेचैन एवं अपने-अपने परिकर से विधिपूर्वक सेवित रानियाँ जा रही थीं ॥52॥ राम को प्रवेश करते देख महल के शिखरों पर आरूढ़ स्त्रियाँ, विचित्र रस से युक्त परस्पर वार्तालाप कर रही थीं ॥53॥ कोई कह रही थी कि ये राम बड़े मानी तथा शुद्धि में तत्पर हैं कि जिन्होंने विद्वान् होकर भी अपनी अनुकूल प्रिया हरा दी है-छोड़ दी है ॥54॥ कोई कह रही थी कि विशुद्ध कुल में जन्म लेने वाले वीर मनुष्यों की यही रीति है। इन्होंने जो किया है वह ठीक किया है ॥5॥। इस प्रकार की घटना से निष्कलंक हो दीक्षा धारण करने वाली जानकी किसके मन के लिए सुख उत्पन्न करने वाली नहीं है ? ॥56॥ कोई कह रही थी कि हे सखि ! सीता से रहित इन राम को देखो। ये चाँदनी से रहित चंद्रमा और

दीप्ति से रहित सूर्य के समान जान पड़ते हैं ॥57॥ कोई कह रही थी कि बुद्धिमान् राम स्वयं ही अत्यंत सुंदर हैं, दूसरे के आधीन होने वाली कांति इनका क्या करेगी ? ॥58॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! ऐसे पुरुषोत्तम पति को छोड़कर तूने क्या किया ? यथार्थ में तू वज्र के समान कठोर चित्त वाली है ॥59॥ कोई कह रही थी कि सीता परमधन्य, विवेकवती, पतिव्रता एवं यथार्थ स्त्री है जो कि आत्महित में तत्पर हो घर के अनर्थ से निकल गई दूर हो गई ॥60॥ कोई कह रही थी कि हे सीते ! तेरे द्वारा ये दोनों सुकुमार, मन को आनंद देने वाले तथा अत्यंत भक्त पुत्र कैसे छोड़े गये ? ॥61॥ कदाचित् भर्ता पर स्थित स्त्रियों का प्रेम विचलित हो जाता है परंतु अपने दूध से पुष्ट किये हुए पुत्रों पर कभी विचलित नहीं होता ॥62॥ कोई कह रही थी कि दोनों कुमार पुण्य से पोषण प्राप्त करने वाले परमोत्तम पुरुष हैं । यहाँ माता क्या करती है ? जब कि सब लोग अपने-अपने कर्म में निरत हैं **अर्थ**ात् कर्मानुसार फल प्राप्त करते हैं ॥63॥ इस प्रकार वार्तालाप करने वाली तथा पद्म अर्थात् राम (पक्ष में कमल) के देखने में तत्पर स्त्रियाँ भ्रमरियों के समान तृप्ति को प्राप्त नहीं हुई ॥64॥ कितने ही उत्तम मनुष्य लक्ष्मण को देखकर कह रहे थे कि यह वह नारायण है कि जो अद्भुत लक्ष्मी से सहित है, अपने प्रभाव से जिसने संसार को आक्रांत कर रक्खा है, जो हाथ में चक्ररत्न को धारण करने वाला है, देदीप्यमान है, लक्ष्मीपति है, सर्वोत्तम है और शत्रु स्त्रियों का मानो साक्षात् शरीरधारी वैधव्य व्रत ही है ॥65-66॥ इस प्रकार नगरवासी लोगों के समूह प्रशंसा कर जिन्हें नमस्कार कर रहे थे ऐसे राम और लक्ष्मण अपने भवन में उस तरह प्रविष्ट हुए जिस तरह कि दो इंद्र स्वयं विमान में प्रविष्ट होते हैं ॥67॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य राम के इस चरित को निरंतर जानता है-अच्छी तरह इसका अध्ययन करता है वह निष्पाप हो लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा सूर्य से भी अधिक शोभायमान होता है ॥68॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित श्री पद्मपुराण में सीता की दीक्षा का वर्णन करने वाला एक सौ सातवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥107॥

## लवणांकुश के पूर्वभव

एक सौ आठवां पर्व

कथा :

अथानंतर राजा श्रेणिक राम का पापापहारी चरित सुनकर अपने आपको संशययुक्त मानता हुआ मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि यद्यपि सीता ने दूर तक बढ़ा हुआ उस प्रकार का स्नेहबंधन तोड़ दिया है फिर भी सुकुमार शरीर की धारक सीता महाचर्या को किस प्रकार कर सकेगी ? ॥1-2॥ देखो, विधाता ने मृग के समान नेत्रों को धारण करने वाले, सर्व ऋद्धि और कांति से संपन्न दोनों लवणांकुश कुमारों को माता का विरह प्राप्त करा दिया। अब पिता ही उनके शेष रह गये सो निरंतर सुख से वृद्धि को प्राप्त हुए दोनों कुमार माता के वियोग जन्य-दुःख को किस प्रकार सहन करेंगे ? ॥3-4॥ जब महाप्रतापी बड़े-बड़े पुरुषों की भी ऐसी विषम दशा होती है तब अन्य लोगों की तो बात ही क्या है ? ऐसा विचार कर श्रेणिक राजा ने गौतम गणधर से कहा कि सर्वज्ञदेव ने जगत् का जो स्वरूप देखा है उसका मुझे प्रत्यय है, श्रद्धान है। तदनंतर इंद्रभूति गणधर, श्रेणिक के लिए लवणांकुश का चरित कहने लगे ॥5-6॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! काकंदी नगरी में राजा रतिवर्धन रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुदर्शन था और उन दोनों के प्रियंकर-हितंकर नामक दो पुत्र थे ॥7॥ राजा का एक सर्वगुप्त नाम का मंत्री था जो यद्यपि राज्यलक्ष्मी का भार धारण करने वाला था तथापि वह राजा के साथ भीतर ही भीतर स्पर्धा रखता था और उसके मारने के उपाय जुटाने में तत्पर रहता था ॥8॥ मंत्री की स्त्री विजयावली राजा में अनुरक्त थी इसलिए उसने धीरे से जाकर राजा को मंत्री की सब चेष्टा बतला दी ॥9॥ राजा ने बाह्य में तो विजयावली की बात का विश्वास नहीं किया किंतु अंतरंग में उसका विश्वास कर लिया। तदनंतर विजयावली ने राजा के लिए उसका चिह्न भी बतलाया ॥10॥ उसने कहा कि मंत्री कल सभा में आपकी कलह को बढ़ावेगा **अर्थ**ात् आपके प्रति बक-झक करेगा। परस्त्री विरत राजा ने इस बात को बुद्धि से ही पुनः ग्रहण किया अर्थात् अंतरंग में तो इसका विश्वास किया बाह्य में नहीं ॥11॥ बाह्य में राजा ने कहा कि हे विजयावलि ! वह तो मेरा परम भक्त है वह ऐसा विरुद्ध भाषण कैसे कर सकता है ? तुमने जो कहा है वह तो किसी तरह संभव नहीं है ॥12॥

तदनंतर दूसरे दिन राजा ने उक्त चिह्न जानकर **अर्थ**ात् कलह का अवसर जान क्षमारूप शस्त्र के द्वारा उस अनिष्ट को टाल दिया ॥13॥ 'यह राजा मेरे प्रति क्रोध रखता है-अपशब्द कहता है' ऐसा कहकर पापी मंत्री ने सब सामंतों को भीतर ही भीतर फोड़ लिया ॥14॥ तदनंतर किसी दिन उसने रात्रि के समय राजा के निवासगृह को बहुत भारी ईंधन से प्रज्वलित कर दिया परंतु राजा सदा सावधान रहता

था ॥15॥ इसलिए वह बुद्धिमान, स्त्री और दोनों पुत्रों को लेकर प्राकार-पुट से सुगुप्त प्रदेश में होता हुआ सुरंग से धीरे-धीरे से बाहर निकल गया ॥16॥ उस मार्ग से निकलकर वह काशीपुरी के राजा कशिपु के पास गया। राजा कशिपु न्यायशील, उग्रवंश का प्रधान एवं उसका सामंत था ॥17॥ तदनंतर जब सर्वगुप्त मंत्री राज्यगद्दी पर बैठा तब उसने दूत द्वारा संदेश भेजा कि हे कशिपो ! मुझे नमस्कार करो। इसके उत्तर में कशिपु ने कहा ॥18॥ वह स्वामी का घात करने वाला दुष्ट दुःखपूर्ण दुर्गति को प्राप्त होगा। ऐसे दुष्ट का तो नाम भी नहीं लिया जाता फिर सेवा कैसे की जावे ॥19॥ जिसने स्त्री और पुत्रों सहित अपने स्वामी रतिवर्धन को जला दिया उस स्वामी, स्त्री और बालघाती का तो स्मरण करना भी योग्य नहीं है ॥20॥ इस पापी का सब लोगों के देखते-देखते शिर काटकर आज ही रतिवर्धन का बदला चुकाऊँगा, यह निश्चय समझो ॥21॥ इस तरह, जिस प्रकार विवेकी मनुष्य मिथ्यामत को दूर हटा देता है उसी प्रकार उस दूत को दूर हटाकर तथा उसकी बात काटकर वह करने योग्य कार्य में तत्पर हो गया ॥22॥ तदनंतर स्वामि-भक्ति में तत्पर इस बलशाली कशिपु की दृष्टि, सदा चढ़ाई करने के योग्य मंत्री के प्रति लगी रहती थी ॥23॥

तदनंतर दूत से प्रेरित, चक्रवर्ती के समान मानी, सर्वगुप्त मंत्री बड़ी भारी सेना लेकर अनेक राजाओं के साथ आ पहुँचा ॥24॥ यद्यपि समुद्र के समान विशाल सर्वगुप्त, लंबे चौड़े काशी देश में प्रविष्ट हो चुका था तथापि कशिपु ने संधि करने की इच्छा नहीं की किंतु युद्ध करना चाहिए इसी निश्चय पर वह दृढ़ रहा आया ॥25॥ उसी दिन रात्रि का प्रारंभ होते ही रतिवर्धन राजा के द्वारा कशिपु के प्रति भेजा हुआ एक युवा दंड हाथ में लिये वहाँ आया और बोला कि हे देव ! आप भाग्य से बढ़ रहे हैं क्योंकि राजा रतिवर्द्धन यहाँ विद्यमान हैं। इसके उत्तर में हर्ष से फूले हुए कशिपु ने संतुष्ट होकर कहा कि वे कहाँ हैं ? वे कहाँ हैं ? 26-27॥ 'उद्यान में स्थित हैं। इस प्रकार कहने पर अत्यंत हर्ष से युक्त कशिपु अंतःपुर के साथ अर्घ तथा पादोदक साथ ले निकला ॥28॥ 'जो किसी के द्वारा जीता न जाय ऐसा राजाधिराज रतिवर्धन जयवंत है। यह सोचकर उसके दर्शन होनेपर कशिपु ने दान-सन्मान आदि से बड़ा उत्सव किया ॥29॥

तदनंतर युद्ध में सर्वगुप्त जीवित पकड़ा गया और राजा रतिवर्धन को राज्य की प्राप्ति हुई ॥30॥ जो सामंत पहले सर्वगुप्त से आ मिले थे वे स्वामी रतिवर्धन को जीवित जानकर रण के बीच में ही सर्वगुप्त को छोड़ उसके पास आ गये थे ॥31॥ बड़े-बड़े दान सन्मान देवताओं का पूजन आदि से रतिवर्धन राजा का फिर से जन्मोत्सव किया गया ॥32॥ और सर्वगुप्त मंत्री चांडाल के समान नगर के बाहर बसाया गया, वह मृतक के समान निस्तेज हो गया, उस पापी की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था तथा सर्वलोक में वह निंदित हुआ ॥ 33॥ महाकांति को धारण करने वाला काशी का राजा कशिपु वाराणसी में उत्कृष्ट लक्ष्मी से ऐसी क्रीड़ा करता था मानो दूसरा लोकपाल ही हो ॥34॥

अथानंतर किसी समय राजा रतिवर्धन ने भोगों से विरक्त हो सुभानु नामक मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥35॥ सर्वगुप्त ने निश्चय कर लिया कि यह सब भेद उसकी स्त्री विजयावली का किया हुआ है इससे वह परम विद्वेष्यता को प्राप्त हुई **अर्थ**ात् मंत्री ने अपनी स्त्री से अधिक द्वेष किया ॥36॥ विजयावली ने देखा कि मैं न तो राजा की हो सकी और न पति की हो रही इसीलिए शोकयुक्त हो अकाम तप कर वह राक्षसी हुई ॥37॥ तीव्र वैर के कारण उसने रतिवर्धन मुनि के ऊपर घोर उपसर्ग किया परंतु वे उत्तम ध्यान में लीन हो केवलज्ञान रूपी राज्य को प्राप्त हुए ॥38॥

राजा रतिवर्धन के पुत्र प्रियंकर और हितंकर निर्मल मुनिपद धारण कर ग्रैवेयक में उत्पन्न हुए। इस भव से पूर्व चतुर्थ भव में वे शामली नामक नगर में दामदेव नामक ब्राह्मण के वसुदेव और सुदेव नाम के गुणी पुत्र थे ॥36-40॥ विश्वा और प्रियंगु नाम की उनकी स्त्रियाँ थीं जिनके कारण उनका गृहस्थ पद विद्वज्जनों के द्वारा प्रशंसनीय था ॥41॥ श्रीतिलक नामक मुनिराज के लिए उत्तम भावों से दान देकर वे स्त्री सहित उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि में तीन पल्य की आयु को प्राप्त हुए ॥42॥ वहाँ साधु-दान रूपी वृक्ष से उत्पन्न महाफल से प्राप्त हुए उत्तम भोग भोग कर वे ऐशान स्वर्ग में निवास को प्राप्त हुए ॥43॥ तदनंतर जो आत्मज्ञान रूपी लक्ष्मी से सहित थे, तथा जिनके दुर्गतिदायक कर्म क्षीण हो गये थे ऐसे दोनों देव, वहाँ से भोग भोग कर च्युत हुए तथा पूर्वोक्त राजा रतिवर्धन के प्रियंकर और हितंकर नामक पुत्र हुए ॥44॥

रतिवर्धन मुनिराज शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा अघातिया कर्मरूपी वन को जला कर निर्वाण को प्राप्त हुए ॥45॥ संक्षेप से जिन प्रियंकर और हितकर वीरों का वर्णन किया गया है वे ग्रैवेयक से ही च्युत हो भव्य लवण और अंकुश हुए ॥46॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! काकंदी के राजा रतिवर्धन की जो पुत्रों से अत्यंत स्नेह करने वाली सुदर्शना नाम की रानी थी वह पति और पुत्रों के वियोग से

पीड़ित हो स्त्री स्वभाव के कारण निदान बंध रूपी साँकल से बद्ध होती हुई दुःख रूपी संकट में घूमती रही और नाना योनियों में स्त्री पर्याय का उपभोग कर तथा बड़ी कठिनाई से उसे जीत कर क्रम से मनुष्य हुई । उसमें भी पुण्य से प्रेरित धार्मिक तथा विद्याओं की विधि में निपुण सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक हुई ॥47-49॥ उनमें पूर्व स्नेह होने के कारण इस क्षुल्लक ने लवण और अंकुश कुमारों को विद्याओं से इस प्रकार संस्कृत सुशोभित किया जिससे कि वे देवों के द्वारा भी दुर्जय हो गये ॥50॥
गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार 'संसार में प्राणी को माता पिता सदा सुलभ हैं। ऐसा जान कर विद्वानों को प्रयत्नपूर्वक ऐसा काम करना चाहिए कि जिससे वे शरीर संबंधी दुःख से छूट जावें ॥51॥ संसार वृद्धि के कारण, विशाल दुःखों के जनक एवं निंदित समस्त कर्म को छोड़ कर हे भव्यजनो ! जैनमत में कहा हुआ तप कर तथा सूर्य को तिरस्कृत कर मोक्ष की ओर प्रयाण करो ॥52॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मपुराण में लवणांकुश के पूर्वभवों का वर्णन करने वाला एक सौ आठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥108॥

## राजा मधु

एक सौ नौवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिसकी चेष्टाएँ समस्त संसार में प्रसिद्धि पा चुकी थीं ऐसी सीता पति तथा पुत्र का परित्याग कर तथा दीक्षित हो जो कुछ करती थी वह तेरे लिए कहता हूँ सो सुन ॥ 1 ॥ उस समय यहाँ उन श्रीमान् सकलभूषण केवली का विहार हो रहा था जो कि दिव्यज्ञान के द्वारा लोक-अलोक को जानते थे ॥2॥ जिन्होंने समस्त अयोध्या को गृहाश्रम का पालन करने में निपुण, संतोष से उत्तम अवस्था को प्राप्त एवं समीचीन धर्म से सुशोभित किया था ॥3॥ उन भगवान् के वचन में स्थित समस्त प्रजा ऐसी सुशोभित होती थी मानो साम्राज्य से युक्त राजा ही उसका पालन कर रहा हो ॥4॥ उस समय के मनुष्य समीचीन धर्म के उत्सव करने वाले, महाभ्युदय से संपन्न, सम्यग्ज्ञान से युक्त एवं साधुओं की पूजा करने में तत्पर रहते थे॥5॥ मुनिसुव्रत भगवान का वह संसारापहारी तीर्थ उस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि अरनाथ और मल्लिनाथ जिनेंद्र का अंतर काल सुशोभित होता था ॥6॥ तदनंतर जो सीता देवांगनाओं की भी सुंदरता को जीतती थी वह तप से सूखकर ऐसी हो गई जैसी जली हुई माधवी लता हो ॥7॥ वह सदा महासंवेग से सहित तथा खोटे भावों से दूर रहती थी तथा स्त्री पर्याय को सदा अत्यंत निंदनीय समझती रहती थी ॥8॥ पृथिवी की धूलि से मलिन वस्त्र से जिसका वक्षःस्थल तथा शिर के बाल सदा आच्छादित रहते थे, जो स्नान के अभाव में पसीना से उत्पन्न मैल रूपी कंचुक को धारण कर रही थी, जो चार दिन, एक पक्ष तथा ऋतुकाल आदि के बाद शास्त्रोक्त विधि से पारणा करती थी, शीलव्रत और मूलगुणों के पालन करने में तत्पर रहती थी, राग-द्वेष से रहित थी, अध्यात्म के चिंतन में तत्पर रहती थी, अत्यंत शांत थी, जिसने अपने आपको अपने मन के अधीन कर रक्खा था, जो अन्य मनुष्यों के लिए दुःसह, अत्यंत कठिन तप करती थी, जिसका समस्त शरीर मांस से रहित था, जिसकी हड्डी और आँतों का पंजर प्रकट दिख रहा था, जो पार्थिव तत्त्व से रहित लकड़ी आदि से बनी प्रतिमा के समान जान पड़ती थी, जिसके कपोल भीतर घुस गये थे, जो केवल त्वचा से आच्छादित थी, जिसका भ्रकुटितल ऊँचा उठा हुआ था तथा उससे जो सूखी नदी के समान जान पड़ती थी। युग प्रमाण पृथिवी पर जो अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी, जो तप के कारण शरीर की रक्षा के लिए विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी, जो उत्तम चेष्टा से युक्त थी, तथा तप के द्वारा उस प्रकार अन्यथा भाव को प्राप्त हो गई थी कि विहार के समय उसे अपने पराये लोग भी नहीं पहिचान पाते थे ॥9-15॥ ऐसी उस सीता को देखकर लोग सदा उसी की कथा करते रहते थे। जो लोग उसे एक बार देखकर पुनः देखते थे वे उसे 'यह वही है। इस प्रकार नहीं पहिचान पाते थे ॥16॥ इस प्रकार बासठ वर्ष तक उत्कृष्ट तप कर तथा तैंतीस दिन की उत्तम सल्लेखना धारणकर उपभुक्त विस्तर के समान शरीर को छोड़कर वह आरण-अच्युत युगल में आरूढ़ हो प्रतींद्र पद को प्राप्त हुई ॥17-18॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो! जिन-शासन में धर्म का ऐसा माहात्म्य देखो कि यह जीव स्त्री पर्याय को छोड़ देवों का स्वामी पुरुष हो गया ॥19॥
जहाँ मणियों की कांति से आकाश देदीप्यमान हो रहा था तथा जो सुवर्णादि महाद्रव्यों के कारण विचित्र एवं परम आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था ऐसे उस अच्युत स्वर्ग में वह अपने परिवार से युक्त सुमेरु के शिखर के समान विमान में परम ऐश्वर्य से संपन्न प्रतींद्र पद को प्राप्त हुई ॥20-21॥ वहाँ लाखों देवियों के नेत्रों का आधारभूत वह प्रतींद्र, तारागणों के परिवार से युक्त चंद्रमा के समान सुशोभित हो रहा था ॥

22॥ इस प्रकार राजा श्रेणिक ने श्रीगौतम गणधर के मुखारविंद से अन्य उत्तमोत्तम चरित्र तथा पापों को नष्ट करने वाले अनेक पुराण सुने ॥23॥

तदनंतर राजा श्रेणिक ने कहा कि उस समय आरणाच्युत कल्प में देवों का ऐसा कौन अधिपति **अर्थ**ात् इंद्र सुशोभित था कि सीतेंद्र भी तपोबल से जिसका प्रतिस्पर्धी था ॥24॥ इसके उत्तर में गणधर भगवान् ने कहा कि उस समय वह मधु का जीव आरणाच्युत स्वर्ग का इंद्र था, जिसका भाई कैटभ था तथा जिसने बाईस सागर तक इंद्र के महान् ऐश्वर्य का उपभोग किया था ॥25॥ अनुक्रम से कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष बीत जाने पर अवशिष्ट पुण्य के प्रभाव से वे मधु और कैटभ के जीव भरतक्षेत्र की द्वारिका नगरी में महाराज श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न तथा शांब नाम के पुत्र हुए ॥26-27॥ इस तरह रामायण और महाभारत का अंतर कुछ अधिक चौंसठ हजार वर्ष जानना चाहिए ॥28॥ अरिष्टनेमि तीर्थंकर के तीर्थ में मधु का जीव स्वर्ग से च्युत होकर इसी भरत क्षेत्र में श्रीकृष्ण की रुक्मिणी नामक स्त्री से प्रद्युम्न नाम का पुत्र हुआ ॥29॥

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से कहा कि हे नाथ ! जिस प्रकार धनवान् मनुष्य धन के विषय में तृप्ति को प्राप्त नहीं होता है उसी प्रकार मैं भी आपके वचन रूपी अमृत के विषय में तृप्ति को प्राप्त नहीं हो रहा हूँ ॥30॥ हे भगवन् ! आप मुझे अच्युतेंद्र मधु का पूरा चरित्र कहिए। मैं सुनने की इच्छा करता हूँ, मुझ पर प्रसन्नता कीजिए ॥31॥ इसी प्रकार हे ध्यान में तत्पर गणराज ! मधु के भाई कैटभ का भी पूर्ण चरित कहिए क्योंकि आपको वह अच्छी तरह विदित है ॥32॥ उसने पूर्वभव में कौन सा उत्तम कार्य किया था तथा तीनों जगत् में श्रेष्ठ अतिशय दुर्लभ रत्नत्रय की प्राप्ति उसे किस प्रकार हुई थी ? ॥33॥ हे भगवन् ! आपकी यह वाणी क्रम-क्रम से प्रकट होती है, और मेरी बुद्धि भी क्रम-क्रम से पदार्थ को ग्रहण करती है तथा मेरा चित्त भी अनुक्रम से अत्यंत उत्सुक हो रहा है इस तरह सब प्रकरण उचित ही जान पड़ता है ॥34॥

तदनंतर गौतम गणधर कहने लगे कि जो सर्व प्रकार के धान्य से संपन्न है, जहाँ चारों वर्ण के लोग अत्यंत प्रसन्न हैं, जो धर्म, **अर्थ** और काम से सहित है, सुंदर-सुंदर चैत्यालयों से युक्त है, पुर ग्राम तथा खानों आदि से व्याप्त है, नदियों और बाग-बगीचों से अत्यंत सुंदर है, मुनियों के संघ से युक्त है ऐसे इस मगध नामक देश में उस समय नित्योदित नाम का बड़ा राजा था। उसी देश में नगर की समता करने वाला एक शालिग्राम नाम का गाँव था ॥35-37॥ उस ग्राम में एक सोमदेव नाम का ब्राह्मण था। अग्निला उसकी स्त्री थी और उन दोनों के अग्निभूति तथा वायुभूति नाम के दो पुत्र थे ॥38॥ वे दोनों ही पुत्र संध्या-वंदनादि षट कर्मों की विधि में निपुण, वेद-शास्त्र के पारंगत, और 'हमसे बढ़ कर दूसरा कौन है' इस प्रकार पांडित्य के अभिमान में चूर थे ॥39॥ अभिमान रूपी महादाह के कारण जिन्हें अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हुआ था ऐसे वे दोनों भाई 'सदा भोग ही सेवन करने योग्य हैं।' यह सोच कर धर्म से विमुख रहते थे ॥40॥

अथानंतर किसी समय अनेक साधुओं के साथ इस पृथ्वी पर विहार करते हुए नंदिवर्धन नामक मुनिराज उस शालिग्राम में आये ॥4॥ वे मुनि अवधिज्ञान से समस्त जगत् को देखते थे तथा आकर गाँव के बाहर मुनियों के योग्य उद्यान में ठहर गये ॥42॥ तदनंतर उत्कृष्ट आत्मा के धारक मुनियों का आगमन सुन शालिग्राम के सब लोग वैभव के साथ बाहर निकले।॥43॥ तत्पश्चात् अग्निभूति और वायुभूति ने उन नगरवासी लोगों को जाते देख किसी से पूछा कि ये गाँव के लोग परस्पर एक दूसरे से मिल कर समुदाय रूप में कहाँ जा रहे हैं ? ॥44॥ तब उसने उन दोनों से कहा कि एक निर्वस्त्र दिगंबर मुनि आये हुए हैं । उन्हीं की वंदना करने के लिए वे सब लोग जा रहे हैं ॥45॥ तदनंतर क्रोध से भरा अग्निभूति, भाई के साथ निकल कर बाहर आया और कहने लगा कि मैं समस्त मुनियों को वाद में अभी जीतता हूँ ॥46॥ तत्पश्चात् पास जाकर उसने ताराओं के बीच में उदित चंद्रमा के समान मुनियों के बीच में बैठे हुए उनके स्वामी नंदिवर्द्धन मुनि को देखा ॥47॥ तदनंतर सात्यकि नामक प्रधान मुनि ने उनसे कहा कि हे विप्रो ! आओ और गुरु से कुछ पूछो ! ॥48॥ तब अग्निभूति ने हंसते हुए कहा कि हमें आप लोगों से क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तर में मुनि ने कहा कि यदि आप लोग यहाँ आ गये हैं तो इसमें दोष नहीं है ॥49॥ उसी समय एक ब्राह्मण ने कहा कि ये दोनों इन मुनियों को वाद में जीतने के लिए आये हैं इस समय दूर क्यों बैठे हैं ॥50॥ तदनंतर 'अच्छा, ऐसा ही सही' इस प्रकार कहते हुए क्रोध से युक्त दोनों ब्राह्मण, मुनिराज के सामने बैठ गये और बड़े अहंकार में चूर होकर बार-बार कहने लगे कि बोल क्या जानता है ? बोल क्या जानता है ? ॥51॥ तदनंतर अवधिज्ञानी मुनिराज ने कहा कि आप दोनों कहाँ से आ रहे हैं ? इसके उत्तर में विप्र-पुत्र बोले कि क्या तुझे यह भी ज्ञात नहीं है कि हम दोनों शालिग्राम से आये हैं ॥52॥ तदनंतर मुनिराज ने कहा कि आप शालिग्राम से आये हैं यह तो मैं जानता हूँ । मेरे पूछने का अभिप्राय यह है कि इस अनादि संसार रूपी वन में

घूमते हुए आप इस समय किस पर्याय से आये हैं ? ॥53॥ तब उन्होंने कहा कि इसे क्या और भी कोई जानता है या मैं ही जानूँ। तत्पश्चात् मुनिराज ने कहा कि अच्छा विप्रो ! सुनो मैं कहता हूँ ॥54॥

इस गाँव की सीमा के पास वन की भूमि में दो शृगाल साथ-साथ रहते थे। वे दोनों ही परस्पर एक दूसरे से अधिक प्रेम रखते थे तथा दोनों ही विकृत मुख के धारक थे ॥55॥ इसी गाँव में एक प्रामरक नाम का पुराना किसान रहता था। वह एक दिन अपने खेत पर गया । जब सूर्यास्त का समय आया तब वह भूख से पीड़ित होकर घर गया और अभी वापिस आता हूँ यह सोचकर अपने उपकरण खेत में ही छोड़ आया ॥56-57॥ वह घर आया नहीं कि इतने में अकस्मात् उठे तथा अंजनगिरि के समान काले बादल पृथिवीतल को डुबाते हुए रात-दिन बरसने लगे। वे मेघ सात दिन में शांत हुए **अर्थ**ात् सात दिन तक झड़ी लगी रही। ऊपर जिन दो शृंगालों का उल्लेख कर आये हैं वे भूख से पीड़ित हो रात्रि के घनघोर अंधकार में वन से बाहर निकले ॥58-59॥

अथानंतर वर्षा से भीगे और कीचड़ तथा पत्थरों में पड़े वे सब उपकरण जिन्हें कि किसान छोड़ आया था दोनों शृंगालों ने खा लिये। खाते ही के साथ उनके उदर में भारी पीड़ा उठी । अंत में वर्षा और वायु से पीड़ित दोनों शृगाल अकामनिर्जरा कर मरे और सोमदेव ब्राह्मण के पुत्र हुए ॥60-61॥ तदनंतर वह प्रामरक किसान अपने उपकरण ढूँढ़ता हुआ खेत में पहुँचा तो वहाँ उसने इन मरे हुए दोनों शृंगालों को देखा। किसान उन मृतक शृगालों को लेकर घर गया और वहाँ उसने उनकी मशकें बनाई ॥62॥ वह प्रामरक भी जल्दी ही मर गया और मरकर अपने ही पुत्र के पुत्र हुआ। उस पुत्र को जाति-स्मरण हो गया जिससे वह गूंगा बनकर रहने लगा ॥63॥ 'मैं अपने पूर्वभव के पुत्र को पिता के स्थान में समझ कर कैसे बोलूँ तथा पूर्वभव की पुत्र-वधू को माता के स्थान में जानकर कैसे बोलूं' यह विचार कर ही वह मौन को प्राप्त हुआ है ॥64॥ यदि तुम्हें इस बात का ठीक ठीक विश्वास नहीं है तो वह ब्राह्मण मेरे दर्शन करने के लिए यहाँ आया है तथा अपने परिवार के बीच में बैठा है ॥65॥ मुनिराज ने उसे बुलाकर कहा कि तू वही प्रामरक किसान है और इस समय अपने पुत्र का ही पुत्र हुआ है ॥66॥ यह संसार का स्वभाव है। जिस प्रकार रंगभूमि के मध्य नट राजा होकर दास बन जाता है और दास प्रभुता को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पिता भी पुत्रपने को प्राप्त हो जाता है, और पुत्र पितृ पर्याय को प्राप्त हो जाता है। माता पत्नी हो जाती है और पत्नी माता बन जाती है ॥67-68॥ यह संसार अरहट के घटीयंत्र के समान है । इसमें जीव कर्म के वशीभूत हो ऊपर-नीची अवस्था को प्राप्त होता रहता है ॥69॥ इसलिए हे वत्स ! संसार दशा को अत्यंत निंदित जानकर इस समय गूंगापन छोड़ और वचनों की उत्तम क्रिया कर **अर्थ**ात् प्रशस्त वचन बोल ॥70॥

मुनिराज के इतना कहते ही वह अत्यंत हर्षित होता हुआ उठा, वह ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसका ज्वर उतर गया हो, उसके शरीर में सघन रोमांच निकल आये, तथा उसके नेत्र और मुख हर्ष से फूल उठे ॥71॥ भूत से आक्रांत हुए के समान उसने मुनि की प्रदक्षिणाएँ दीं। तदनंतर कटे वृक्ष के समान मस्तक के बल उनके चरणों में गिर पड़ा ॥72॥ उसने आश्चर्यचकित हो जोर से कहा कि हे भगवन् , आप सर्वज्ञ हैं। यहाँ बैठे-बैठे ही आप समस्त लोक की संपूर्ण स्थिति को देखते रहते हैं ॥73॥ मैं इस भयंकर संसार-सागर में डूब रहा था सो आपने प्राण्यनुकंपा से हे नाथ ! मेरे लिए रत्नत्रय रूप बोधि का दर्शन कराया है॥74॥ आप दिव्यबुद्धि हैं अत: आपने मेरा मनोगत भाव जान लिया। इस प्रकार कहकर उस प्रामरक के जीव ब्राह्मण ने रोते हुए भाई. बांधवों को छोड़कर दीक्षा धारण कर ली ॥75॥ प्रामरक का यह ऐसा व्याख्यान सन लोग मुनि तथा श्रावक हो गये ॥76॥ सब लोगों ने उसके घर जाकर पूर्वोक्त शृंगालों के शरीर से बनी मशकें देखीं जिससे सब ओर कलकल तथा आश्चर्य छा गया ॥77॥

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लोगों ने यह कहकर उन ब्राह्मणों की बहुत हँसी की कि ये वे ही पशुओं का मांस खाने वाले शृगाल ब्राह्मण पर्याय को प्राप्त हुए हैं ॥78॥ 'सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है' इस प्रकार के ब्रह्माद्वैतवाद में मूढ एवं पशुओं की हिंसा में आसक्त रहने वाले इन दोनों ब्राह्मणों ने सुख की इच्छुक समस्त प्रजा को लूट डाला है ॥79॥ तपरूपी धन से युक्त ये शुद्ध मुनि ब्राह्मणों से अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि यथार्थ में ब्राह्मण वे ही कहलाते हैं जो अहिंसा व्रत को धारण करते हैं ॥80॥ जो महाव्रत रूपी लंबी चोटी धारण करते हैं, जो क्षमारूपी यज्ञोपवीत से सहित हैं, जो ध्यानरूपी अग्नि में होम करने वाले हैं, शांत हैं तथा मुक्ति के सिद्ध करने में तत्पर हैं वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं ॥81॥ इसके विपरीत जो सब प्रकार के आरंभ में प्रवृत्त हैं तथा जो निरंतर कुशील में लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं परंतु क्रिया से ब्राह्मण नहीं हैं ॥82॥ जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नाम के धारक हैं उसी प्रकार व्रत से भ्रष्ट रहने वाले ये लोग भी ब्राह्मण नाम के धारक हैं इनमें वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नहीं है ॥83॥ जो ऋषि, संयत, धीर,

क्षांत, दांत और जितेंद्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही धन्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण हैं ॥84॥ जो भद्रपरिणामी हैं, संदेह से रहित हैं, ऐश्वर्य संपन्न हैं, अनेक तपस्वियों से सहित हैं, यति हैं और वीर हैं ऐसे मुनि ही लोकोत्तर गुणों के धारण करने वाले हैं ॥85॥ जो परिग्रह को संसार का कारण समझ उसे छोड़ मुक्ति को प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं सो यथार्थ में मोहरहित निर्ग्रंथ मुनि ही परिव्राजक हैं ऐसा जानना चाहिए । ॥86॥ चूंकि ये मुनि क्षीणराग तथा क्षमा से सहित होकर तप के द्वारा अपने आपको कृश करते हैं, पाप को नष्ट करते हैं इसलिए क्षपण कहे गये हैं ॥87॥ ये सब यमी, वीतराग, निर्मुक्त शरीर, निरंबर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निःस्पृह और बुध हैं अतः ये ही वंदना करने योग्य हैं ॥88॥ चूंकि ये निर्वाण को सिद्ध करते हैं इसलिए साधु कहलाते हैं, और उत्तम आचार का स्वयं आचरण करते हैं तथा दूसरों को भी आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहे जाते हैं ॥89॥ ये गृहत्यागी के गुणों से सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षा से भोजन करते हैं इसलिए भिक्षुक कहलाते हैं और उज्ज्वल कार्य करने वाले हैं, अथवा कर्मों का नष्ट करने वाले हैं तथा परम निर्दोष श्रम में वर्तमान हैं इसलिए श्रमण कहे जाते हैं ॥90॥ इस प्रकार साधुओं की स्तुति और अपनी निंदा सुनकर वे अहंकारी विप्रपुत्र लज्जित, अपमानित तथा निष्प्रभ हो एकांत में जा बैठे ॥91॥

अथानंतर जो अपने शृगालादि पूर्व भवों के उल्लेख से अत्यंत दुःखी थे ऐसे दोनों पुत्र सूर्य के अस्त होने पर खोज करते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कि वे भगवान् नंदिवर्धन मुनींद्र विराजमान थे ॥92॥ वे मुनींद्र संघ छोड़, निःस्पृह हो वन के एकांत भाग में स्थित उस श्मशान प्रदेश में विद्यमान थे कि जो अत्यधिक गर्तों से युक्त था, नरक कालों से परिपूर्ण था, नाना प्रकार की चिताओं से व्याप्त था, मांसभोजी वन्य पशुओं के शब्द से व्याप्त था, पिशाच और सर्पों से आकीर्ण था, सुई के द्वारा भेदने योग्य गाढ़ अंधकार से आच्छादित था, और जिसका देखना तीव्र घृणा उत्पन्न करने वाला था । ऐसे श्मशान में जीव-जंतु रहित शिलातल पर प्रतिमायोग से विराजमान उन मुनिराज को उन दोनों पापियों ने देखा ॥93-95॥ उन्हें देखते ही जिन्होंने तलवार खींचकर हाथ में ले ली थी तथा जो अत्यंत कुपित हो रहे थे ऐसे उन ब्राह्मणों ने एक साथ कहा कि लोग आकर तेरे प्राणों की रक्षा करें । अरे श्रमण ! अब तू कहाँ जायगा ? ॥66॥ हम ब्राह्मण पृथिवी में श्रेष्ठ हैं तथा प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं और तू महादोषों से भरा निर्लज्ज है फिर भी हम लोगों को तू 'शृगाल थे' ऐसा कहता है ॥97॥ तदनंतर जो अत्यंत तीव्र क्रोध से युक्त थे, दुष्ट थे, लाल-लाल नेत्रों के धारक थे, बिना विचारे काम करने वाले थे और दया से रहित थे ऐसे उन दोनों ब्राह्मणों को यक्ष ने देखा ॥98॥ उन्हें देखकर वह देव विचार करने लगा कि अहो ! देखो; ये ऐसे निर्दोष, शरीर से निःस्पृह और ध्यान में तत्पर मुनि को मारने के लिए उद्यत हैं ॥99॥ तदनंतर तलवार चलाने के आसन से खड़े होकर उन्होंने अपनी-अपनी तलवार ऊपर उठाई नहीं कि यक्ष ने उन्हें कील दिया जिससे वे मुनिराज के आगे उसी मुद्रा में निश्चल खड़े रह गये ॥100॥ महामुनि के विरुद्ध उपसर्ग करने की इच्छा रखने वाले वे दोनों दुष्ट उनकी दोनों ओर इस प्रकार खड़े थे मानो उनके अंगरक्षक ही हों ॥101॥

तदनंतर निर्मल प्रातःकाल के समय सूर्योदय होनेपर वे मुनिराज योग समाप्त कर एकांत स्थान से निकल बाहर मैदान में बैठे ॥102॥ उसी समय चतुर्विध संघ तथा शालिग्रामवासी लोग उन योगिराज के पास आये सो यह दृश्य देख आश्चर्यचकित हो बोले कि अरे ! ये कौन पापी हैं ? हाय-हाय! कष्ट पहुँचाने के लिए उद्यत इन पापियों को धिक्कार है । अरे! ये उपद्रव करने वाले तो वे ही आततायी अग्निभूति और वायुभूति हैं ॥103-104॥ अग्निभूति और वायुभूति भी विचार करने लगे कि अहो ! महामुनि का यह कैसा उत्कृष्ट प्रभाव है कि जिन्होंने बल का दर्प रखने वाले हम लोगों को कीलकर स्थावर बना दिया ॥105॥ इस अवस्था से छुटकारा होनेपर यदि हम जीवित रहेंगे तो इन उत्तम मुनिराज के दर्शन अवश्य करेंगे ॥106॥

इसी बीच में घबड़ाया हुआ सोमदेव अपनी अग्निला स्त्री के साथ वहाँ आ पहुँचा और उन मुनिराज को प्रसन्न करने लगा ॥107॥ पैर दबाने में तत्पर दोनों ही स्त्री पुरुष, बार-बार प्रणाम करके तथा अनेक मीठे वचन कहकर उनकी सेवा करने लगे ॥108॥ उन्होंने कहा कि हे देव ! ये मेरे दुष्ट पुत्र जीवित रहें, क्रोध छोड़िए, हे नाथ ! हम सब भाई-बांधवों सहित आपके आज्ञाकारी हैं ॥109॥

इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा कि मुनियों को क्या क्रोध है जो तुम यह कह रहे हो। हम तो सबके ऊपर दयासहित हैं तथा मित्र शत्रु भाई बांधव आदि सब हमारे लिए समान हैं ॥110॥ तदनंतर जिसके नेत्र अत्यंत लाल थे ऐसा यक्ष अत्यधिक गंभीर स्वर में बोला कि यह कार्य इन गुरु महाराज का है ऐसा जनसमूह के बीच नहीं कहना चाहिए ॥111॥ क्योंकि जो मनुष्य साधुओं को देखकर उनके प्रति घृणा करते हैं वे शीघ्र ही अनर्थ को प्राप्त होते हैं। दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टता तो देखते नहीं और साधुओं पर दोष लगाते हैं ॥112॥ जिस प्रकार दर्पण में अपने आपको देखता हुआ कोई मनुष्य मुख को जैसा करता है उसे अवश्य ही वैसा देखता है ॥113॥ उसी प्रकार साधु को देखकर

सामने जाना, खड़े होना आदि क्रियाओं के करने में उद्यत मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही फल पाता है ॥114॥ जो मुनि की हँसी करता है वह उसके बदले रोना प्राप्त करता है । जो उनके प्रति कठोर शब्द कहता है वह उसके बदले कलह प्राप्त करता है, जो मुनि को मारता है वह उसके बदले मरण को प्राप्त होता है, जो उनके प्रति विद्वेष करता है वह उसके बदले पाप प्राप्त करता है ॥115॥ इस प्रकार साधु के विषय में किये हुए निंदनीय कार्य से उसका करने वाला वैसे ही कार्य के साथ समागम प्राप्त करता है ॥116॥ हे विप्र ! तेरे ये पुत्र अपने ही द्वारा संचित दोष और अपने ही द्वारा कृत कर्मों से प्रेरित होते हुए मेरे द्वारा कीले गये हैं साधु महाराज के द्वारा नहीं ॥117॥ जो वेद के अभिमान से जल रहे हैं, अत्यंत कठिन हैं, निंदनीय क्रिया का आचरण करने वाले हैं तथा संयमी साधु की हिंसा करने वाले है ऐसे तेरे ये पुत्र मृत्यु को प्राप्त हों इसमें क्या हानि है ? ॥118॥ हाथ जोड़कर मस्तक से लगाये हुए ब्राह्मण, इस प्रकार कहते हुए, तीव्र क्रोधयुक्त तथा शत्रु भयदायी यक्ष और मुनिराज दोनों को प्रसन्न करने लगा ॥119॥ जिसने अपनी भुजा ऊपर उठाकर रक्खी थी, जो अत्यधिक चिल्लाता था, अपनी तथा अपने पुत्रों की निंदा करता था, और अपनी छाती पीट रहा था ऐसा विप्र अग्निला के साथ अत्यंत पीड़ित हो रहा था ॥120॥

तदनंतर मुनिराज ने कहा कि हे कमललोचन ! सुंदर ! यक्ष ! जिनका चित्त मोह से अत्यंत जड़ हो रहा है ऐसे इन दोनों का दोष क्षमा कर दिया जाय ॥121॥ तुझ पुण्यात्मा ने जिन-शासन के साथ वात्सल्य दिखलाया यह ठीक है किंतु हे भद्र ! मेरे निमित्त यह प्राणिवध करना उचित नहीं है ॥122॥ तत्पश्चात् 'जैसी आप आज्ञा करें' यह कहकर यक्ष ने दोनों विप्र पुत्रों को छोड़ दिया । तदनंतर दोनों ही विप्र-पुत्र समाधान होकर भक्तिपूर्वक गुरु के चरण-मूल में पहुँचे ॥123॥ और दोनों ने ही हाथ जोड़ मस्तक से लगा प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया तथा साधु दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। परंतु साधु-संबंधी कठिन चर्या को ग्रहण करने के लिए उन्हें शक्तिरहित देख मुनिराज ने कहा कि तुम दोनों सम्यग्दर्शन से विभूषित होकर अणुव्रत ग्रहण करो। आज्ञानुसार वे गृहस्थ धर्म के सुख में लीन विवेकी श्रावक हो गये ॥124-125॥ इनके माता-पिता समीचीन श्रद्धा से रहित थे इसलिए मरकर धर्म के बिना संसार सागर में भ्रमण करते रहे ॥126॥ परंतु अग्निभूति और वायुभूति संदेह छोड़ जिनशासन की भावना से ओत-प्रोत हो गये थे, तथा हिंसादिक लौकिक कार्य उन्होंने विष के समान छोड़ दिये थे इसलिए वे मरकर उस सौधर्म स्वर्ग में उत्तम देव हुए जहाँ कि समस्त इंद्रियों और मन को आह्लादित करने वाला दिव्य महान् सुख उपलब्ध था ॥127-128॥।

तदनंतर वे दोनों अयोध्या आकर वहाँ के समुद्र सेठ की धारिणी नामक स्त्री के उदर से नेत्रों को आनंद देने वाले पुत्र हुए ॥129॥ पूर्णभद्र और काश्चनभद्र उनके नाम थे। ये दोनों भाई सुख से समय व्यतीत करते थे। तदनंतर पुनः श्रावक धर्म धारणकर उसके प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुए ॥130॥ अबकी बार वे दोनों, स्वर्ग से च्युत हो अयोध्या नगरी के राजा हेमनाभ और उनकी रानी अमरावती के इस संसार में मधु, कैटभ नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए। ये दोनों भाई अजेय, सुंदर तथा यमराज के समान विभ्रम को धारण करने वाले थे ॥131-132॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिस प्रकार विद्वान् लोग अपनी बुद्धि को अपने आधीन कर लेते हैं उसी प्रकार इन दोनों ने सामंतों से भरी हुई इस पृथिवी को आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया था ॥133॥ किंतु एक भीम नाम का महाबलवान् राजा उनकी आज्ञा नहीं मानता था। जिस प्रकार चमरेंद्र नंदन वन को पाकर प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार वह पहाड़ी दुर्ग का आश्रय कर प्रफुल्लित था ॥134॥ राजा मधु के एक भक्त सामंत वीरसेन ने उसके पास इस आशय का पत्र भी भेजा कि हे नाथ ! इधर भीमरूपी अग्नि ने पृथिवी के समस्त घर उजाड़ कर दिये हैं ॥135॥

तदनंतर उसी क्षण क्रोध को प्राप्त हुआ राजा मधु, अपनी सब सेनाओं के समूह तथा योद्धाओं से परिवृत हो राजा भीम के प्रति चल पड़ा ॥136॥ क्रम-क्रम से चलता हुआ वह मार्गवश उस न्यग्रोध नगर में पहुँचा जहाँ कि उसका भक्त वीरसेन रहता था। राजा मधु ने बड़े प्रेम के साथ उसमें प्रवेश किया ॥137॥ वहाँ जाकर जगत के चंद्र स्वरूप राजा मधु ने वीरसेन की चंद्राभा नाम की चंद्रमुखी भार्या देखी। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि इसके साथ विंध्याचल के वन में निवास करना अच्छा है । इस चंद्राभा के बिना मेरा राज्य सार्वभूमिक नहीं है अपूर्ण है ॥138-139॥ ऐसा विचार करता हुआ राजा उस समय आगे चला गया और युद्ध में भीम को जीतकर अन्य शत्रुओं को भी उसने वश किया। परंतु यह सब करते हुए भी उसका मन उसी चंद्राभा में लगा रहा ॥140॥ फलस्वरूप उसने अयोध्या आकर राजाओं को अपनी-अपनी पत्नियों के सहित बुलाया और उन्हें बहुत भारी भेंट देकर सम्मान के साथ विदा कर दिया ॥141॥ राजा वीरसेन को भी बुलाया सो वह अपनी पत्नी के साथ शीघ्र ही गया और अयोध्या के बाहर बगीचे में सरयू नदी के तट पर ठहर गया ॥

142॥ तदनंतर सन्मान के साथ बुलाये जाने पर उसने अपनी रानी के साथ मधु के भवन में प्रवेश किया। कुछ समय बाद उसने विशेष भेंट के द्वारा सन्मान कर वीरसेन को तो विदा कर दिया और चंद्राभा को अपने अंतःपुर में भेज दिया परंतु भोला वीरसेन अब भी यह नहीं जान पाया कि हमारी सुंदरी प्रिया यहाँ रोक ली गई है ॥143-144॥

तदनंतर महादेवी के अभिषेक द्वारा, अभिषेक को प्राप्त हुई चंद्राभा सब देवियों के ऊपर स्थान को प्राप्त हुई। भावार्थ सब देवियों में प्रधान देवी बन गई ॥145॥ भोगों से जिसका मन अंधा हो रहा था ऐसा राजा मधु, लक्ष्मी के समान उस चंद्राभा के साथ सुखरूपी सागर में निमग्न होता हुआ अपने आपको इंद्र के समान मानने लगा ॥146॥

इधर राजा वीरसेन को जब पता चला कि हमारी प्रिया हरी गई है तो वह पागल हो गया और किसी भी स्थान में रति को प्राप्त नहीं हुआ **अर्थ**ात् उसे कहीं भी अच्छा नहीं लगा ॥147॥ अंत में मूर्ख मनुष्यों को आनंद देने वाला राजा वीरसेन किसी मंडव नामक तापस का शिष्य हो गया और मूर्ख मनुष्यों को आश्चर्य में डालता हुआ पंचाग्नि तप तपने लगा ॥148॥

किसी एक दिन राजा मधु धर्मासन पर बैठकर मंत्रियों के साथ राज्यकार्य का विचार कर रहा था । सो ठीक ही है क्योंकि राजाओं के आचार से संपन्न सत्य ही हर्षदायक होता है। उस दिन राज्यकार्य में व्यस्त रहने के कारण धीर-वीर राजा अंतःपुर में तब पहुँचा जब कि सूर्य अस्त होने के सन्मुख था ॥149-150॥ खेदखिन्न चंद्राभा ने राजा से कहा कि नाथ ! आज इतनी देर क्यों की ? हम लोग भूख से अब तक पीडित रहे ॥151॥ राजा ने कहा कि यतश्च यह परस्त्री संबंधी व्यवहार (मुकद्दमा) टेढ़ा व्यवहार था अतः बीच में नहीं छोड़ा जा सकता था इसीलिए आज देर हई है ॥152॥ तब चंद्राभा ने हँसकर कहा कि परस्त्री से प्रेम करने में दोष ही क्या है ? जिसे परस्त्री प्यारी है उसकी तो इच्छानुसार पूजा करनी चाहिए ॥153॥ उसके उक्त वचन सुन राजा मधु ने क्रुद्ध होकर कहा कि जो दुष्ट परस्त्री-लंपट हैं वे अवश्य ही दंड देने के योग्य हैं इसमें संशय नहीं है ॥154॥ जो परस्त्री का स्पर्श करते हैं अथवा उससे वार्तालाप करते हैं ऐसे दुष्ट नीच पुरुष भी पाँच प्रकार के दंड से दंडित करने योग्य हैं तथा देश से निकालने के योग्य हैं फिर जो पाप से निवृत्त नहीं होने वाले परस्त्रियों में अत्यंत मोहित हैं **अर्थ**ात् परस्त्री का सेवन करते हैं उनका तो अधःपात नरक जाना निश्चित ही है ऐसे लोग पूजा करने योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥155-156॥

तदनंतर कमललोचना देवी चंद्राभा ने बीच में ही बात काटते हुए कहा कि अहो ! आप बड़े धर्मात्मा हैं ? तथा पृथिवी का पालन करने में उद्यत हैं ॥157॥ यदि परदाराभिलाषी मनुष्यों का यह बड़ा भारी दोष माना जाता है तो हे राजन् ! अपने आपके लिए भी आप यह दंड क्यों नहीं देते ? ॥158॥ परस्त्रीगामियों में प्रथम तो आप ही हैं फिर दूसरों को दोष क्यों दिया जाता है क्योंकि यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है ॥159॥ जहाँ राजा स्वयं क्रूर एवं परस्त्रीगामी है वहाँ व्यवहार-अभियोग देखने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? सर्वप्रथम आप स्वस्थता को प्राप्त होइए ॥160॥ जिससे अंकुरों की उत्पत्ति होती है तथा जो जगत्का जीवनस्वरूप है उस जल से भी यदि अग्नि उत्पन्न होती है तब फिर और क्या कहा जाय ? ॥161॥ इस प्रकार के वचन सुनकर राजा मधु निरुत्तर हो गया और 'इसी प्रकार है।' यह वचन बार-बार चंद्राभा से कहने लगा ॥162॥ इतना सब हुआ फिर भी ऐश्वर्यरूपी पाश से वेष्टित हुआ वह दुःखरूपी सागर से निकल नहीं सका। सो ठीक है क्योंकि भोगों में आसक्त मनुष्य कर्म से छूटता नहीं है ॥163॥

अथानंतर सम्यक्प्रबोध और सुख से सहित बहुत भारी समय बीत जाने के बाद एक बार महागुणों के धारक सिंहपाद नामक मुनि अयोध्या आये ॥164॥ और वहाँ के अत्यंत सुंदर सहस्राम्र वन में ठहर गये । यह सुन अपनी पत्नी तथा अनुचरों से सहित राजा मधु उनके पास गया ॥165॥ वहाँ विधिपूर्वक गुरु को प्रणाम कर वह पृथिवीतल पर बैठ गया तथा जिनेंद्र प्रतिपादित धर्म श्रवणकर भोगों से विरक्त हो गया ॥166॥ जो उच्च कुलीन थी तथा सौंदर्य के कारण जो पृथ्वी पर अपनी सानी नहीं रखती थी ऐसी राजपुत्री तथा विशाल राज्य को उसने दुर्गति की वेदना जान तत्काल छोड़ दिया ॥167॥ उधर मधु का भाई कैटभ भी ऐश्वर्य को चंचल जानकर मुनि हो गया। तदनंतर मुनिव्रतरूपी महाचर्या से क्लेश का अनुभव करता हुआ मधु पृथ्वी पर विहार करने लगा ॥168॥ स्वजन और परजन-सभी के नेत्रों को आनंद देने वाला कुलवर्धन राजा मधु की विशाल पृथ्वी और राज्य का पालन करने लगा ॥169॥ महामनस्वी मधु मुनि सैकड़ों वर्षों तक अत्यंत कठिन एवं उत्कृष्ट तपश्चरण करते रहे। अंत में विधिपूर्वक मरणकर रण से रहित आरणाच्युत स्वर्ग में इंद्रपद को प्राप्त हुए ॥170॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो! जिनशासन का प्रभाव आश्चर्यकारी है क्योंकि जिनका पूर्व जीवन ऐसा निंदनीय रहा उन लोगों ने भी इंद्रपद प्राप्त कर लिया। अथवा इंद्रपद प्राप्त कर लेने में क्या आश्चर्य है ? क्योंकि प्रयत्न करने से तो मोक्षनगर तक पहुँच जाते हैं ॥171॥

हे श्रेणिक ! मैंने तेरे लिए उस मधु इंद्र की उत्पत्ति कही जिसकी कि प्रतिस्पर्धा करने वाली सीता प्रतींद्र हुई है ॥172॥ हे राजाओं के सूर्य ! श्रेणिक महाराज ! अब मैं इसके आगे विद्वानों के चित्त को हरने वाला, आठ वीर कुमारों का वह चरित्र कहता हूँ कि जो पाप का नाश करने वाला है, उसे तू श्रवण कर ॥173॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में मधु का वर्णन करने वाला एक सौ नौवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥109॥

## आठ कुमारों की दीक्षा

एक सौ दसवां पर्व
कथा :
अथानंतर कांचनस्थान नामक नगर के राजा कांचनरथ की दो पुत्रियाँ थीं जो सौंदर्य के गर्व से गर्वित थीं तथा जिनकी माता का नाम शतह्रदा था ॥1॥ उन दोनों कन्याओं के स्वयंवर के लिए उनके पिता ने महावेगशाली पत्रवाहक दूत भेजकर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओं को बुलवाया ॥2॥ एक पत्र इस आशय का अयोध्या के राजा के पास भी भेजा गया कि मेरी पुत्री का स्वयंवर है अतः विचारकर कुमारों को भेजिए ॥3॥ तदनंतर जिन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राम और लक्ष्मण ने परम संपदा से युक्त अपने सब कुमार वहाँ भेजे ॥4॥ तत्पश्चात् परस्पर प्रेम से भरे हुए, वे सब कुमार, लवण और अंकुश को आगे कर कांचनस्थान की ओर चले ॥5॥ सैकड़ों विमानों में बैठे, विद्याधरों के समूह से आवृत एवं लक्ष्मी से देवकुमारों के समान दिखने वाले वे सब कुमार आकाश-मार्ग से जा रहे थे ॥6॥ जिनकी सेना उत्तरोत्तर बढ़ रही थी तथा जो दूर छूटी पृथिवी को देखते जाते थे ऐसे सब कुमार काञ्चनरथ के उत्तम नगर में पहुँचे ॥7॥ वहाँ देव-सभा के समान सुशोभित सभा में नाना अलंकारों से भूषित यथायोग्य स्थापित विद्याधरों और भूमिगोचरियों की दोनों श्रेणियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥8॥ समस्त वैभवों से सहित राजा नाना प्रकार की चेष्टाएँ करते हुए उन श्रेणियों में उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि नंदन वन में देव सुशोभित होते हैं ॥9॥
वहाँ दूसरे दिन जिनका मंगलाचार किया गया था तथा जो उत्तम गुणों को धारण करने वाली थी ऐसी दोनों कन्याएँ ह्री और लक्ष्मी के समान अपने निवास स्थान से बाहर निकली ॥10॥ स्वयंवर-सभा में जो राजा आये थे कंचुकी ने उन सबका देश, कुल, धन, चेष्टा तथा नाम की अपेक्षा दोनों कन्याओं के लिए वर्णन किया ॥11॥ ये सब वानर, सिंह, शार्दूल, वृषभ तथा नाग आदि की पताकाओं से सहित विद्याधर बैठे हैं। हे उत्तम कन्याओ ! इन्हें तुम क्रम क्रम से देखो ॥12॥ उन कन्याओं को देखकर जो लज्जा को प्राप्त हो रहे थे तथा जिनकी कांति फीकी पड़ गई थी ऐसे राजकुमार उन कन्याओं के द्वारा देखे जाकर संशय की तराजू पर आरूढ़ हो रहे थे ॥13॥ जो राजकुमार उन कन्याओं के द्वारा देखे जाते थे वे अपने आभूषणों को सजाते हुए करने योग्य क्रियाओं को भूल जाते थे तथा हम कहाँ बैठे हैं यह भूल चंचल हो उठते थे ॥14॥ सौंदर्यरूपी गर्व के ज्वर से आकुल यह कन्या हम लोगों में से किसे वरेगी इस चिंता को प्राप्त हुए राजकुमार चंचल चित्त हो रहे थे ॥15॥ वे उन कन्याओं को देखकर विचार करने लगते थे कि क्या देव और दानवों के दोनों जगत् को जीतकर कामदेव के द्वारा ग्रहण की हुई, लोगों के उन्माद की कारणभूत ये दो पताकाएँ ही हैं ॥16॥
अथानंतर वे दोनों कुमारियाँ लवणांकुश को देख कामबाण से विद्ध हो निश्चल खड़ी हो गयीं ॥17॥ उन दोनों कन्याओं में मंदाकिनी नाम की जो बड़ी कन्या थी उसने अनुरागपूर्ण महादृष्टि से अनंगलवण को ग्रहण किया ॥18॥ और चंद्रमुखी तथा सुंदर भाग्य से युक्त चंद्रभाग्या नाम की दूसरी उत्तम कन्या ने अपने योग्य मदनांकुश को ग्रहण किया ॥19॥ तदनंतर उस सेना में जयध्वनि से उत्कृष्ट सिंहनाद से सहित हलहल का तीव्र शब्द उठा ॥20॥ ऐसा जान पड़ता था कि तीव्र लज्जा से भरे हुए लोगों के जो मन सब ओर उड़े जा रहे थे उनसे मानों आकाश अथवा दिशाएँ ही फटी जा रही थीं ॥21॥ उस कोलाहल के बीच समझदार मनुष्य कह रहे थे कि अहो ! हम लोगों ने यह योग्य उत्कृष्ट संबंध देख लिया जो इन कन्याओं ने राम के इन पुत्रों को ग्रहण किया है ॥22॥ मंदाकिनी **अर्थ**ात् गंगानदी, गंभीर तथा संसार प्रसिद्ध, लवणसमुद्र के पास गयी है सो इस लवण अर्थात् अनंगलवण के पास जाती हुई इस मंदाकिनी नामा कन्या ने भी कुछ अपूर्ण अयोग्य काम नहीं किया है ॥23॥ और सर्व जगत् की कांति को जीतने के लिए उद्यत इस चंद्रभाग्या ने जो मदनांकुश को ग्रहण किया है सो अत्यंत योग्य कार्य किया है ॥24॥ इस प्रकार उस सभा में सज्जनों की उत्तम वाणी सर्वत्र फैल रही थी सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम संबंध से सज्जनों का चित्त आनंद को प्राप्त होता ही है ॥25॥ लक्ष्मण की विशल्या आदि आठ महादेवियों के जो आठ वीर कुमार, सुंदर चित्त के धारक, आठ वसुओं के समान सर्वत्र प्रसिद्ध थे वे प्रीति से भरे हुए अपने अढ़ाई सौ भाइयों से इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे

मानो तारागणों के मध्य में स्थित ग्रह ही हो ॥26-27॥
वहाँ उन आठ के सिवाय बलवान तथा उत्कट चेष्टा के धारक जो लक्ष्मण के अन्य पुत्र थे वे क्रोधवश लवण और अंकुश की ओर झपटने के लिए तत्पर हो गये परंतु उन सुंदर कन्याओं को लक्ष्यकर उद्धत चेष्टा दिखाने वाली भाइयों की उस सेना को पूर्वोक्त आठ प्रमुख वीरों ने उस प्रकार शांत कर दिया जिस प्रकारकी मंत्र चंचल सर्पों के समूह को शांत कर देते हैं ॥28-29॥ उन आठ भाइयों ने अन्य भाइयों को समझाते हुए कहा कि 'भाइयो ! तुम सब उन दोनों भाइयों के साथ शांति को प्राप्त होओ। हे भद्र जनो! अब इन दोनों कन्याओं से क्या कार्य किया जाना है ? स्त्रियाँ स्वभाव से ही कुटिल हैं फिर जिनका चित्त दूसरे पुरुष में लग रहा है उनका तो कहना ही क्या है ? इसलिए ऐसा कौन उत्तम हृदय का धारक है जो उनके लिए विकार को प्राप्त हो। भले ही इन कन्याओं ने देवियों को जीत लिया हो फिर भी इनसे हम लोगों को क्या प्रयोजन है ? इसलिए यदि अपना कल्याण करना चाहते हो तो इनकी ओर से मन को लौटाओ' ॥30-32॥ इस तरह उन आठ कुमारों के वचनों से भाइयों का वह समूह उस प्रकार वशीभूत हो गया जिस प्रकार कि लगामों से घोड़ों का समूह वशीभूत हो जाता है ॥33॥
जिस स्थान में उन उत्तम कन्याओं के द्वारा सीता के पुत्र वरे गये थे वहाँ बाजों का तुमुल शब्द होने लगा ॥34॥ बहुत दूर तक दिग-दिगंत को व्याप्त करने वाले, बाँसुरी, काहला, शंख, भंभा, भेरी तथा झर्झर आदि बाजे मन और कानों को हरण करने वाले मनोहर शब्द करने लगे ॥35॥ जिस प्रकार इंद्र की विभूति देख क्षुद्र ऋद्धि के धारक देव शोक को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार स्वयंवर को विभूति देख लक्ष्मण के पुत्र क्षोभ को प्राप्त हो गये ॥36॥ वे सोचने लगे कि हम नारायण के पुत्र हैं, दीप्ति और कांति से युक्त हैं, नवयौवन से संपन्न हैं, उत्तम सहायकों से युक्त हैं तथा बल से प्रचंड हैं ॥37॥ हम लोग किस गुण में हीन हैं कि जिससे हम लोगों में से किसी एक को भी इन कन्याओं ने नहीं वरा किंतु उसके विपरीत हम सबको छोड़ जानकी के पुत्रों को वरा ॥38॥ अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जगत् की ऐसी ही विचित्र चेष्टा है, कर्मों की विचित्रता के योग से यह चराचर विश्व विचित्र ही जान पड़ता है ॥39॥ जिसे जहाँ जिस प्रकार जिस कारण से जो वस्तु पहले ही प्राप्त करने योग्य होती है उसे वहाँ उसी प्रकार उसी कारण से वही वस्तु अवश्य प्राप्त होती है ॥40॥ इस प्रकार जब लक्ष्मण के पुत्र शोक करने लगे तब जिसका आश्चर्य नष्ट हो गया था ऐसे रूपवती के पुत्र ने हँसकर कहा कि अरे भले पुरुषो ! स्त्री मात्र के लिए इस तरह क्यों शोक कर रहे हो ? तुम लोगों की इस चेष्टा से परम हास्य उत्पन्न होता है-अधिक हँसी आ रही है ॥ 41-42॥ हमें इन कन्याओं से क्या प्रयोजन है ? हमें तो मुक्ति की दूती स्वरूप जिनेंद्र भगवान् की कांति की प्राप्ति हो चुकी है **अर्थ**ात् हमारे मन में जिनेंद्र मुद्रा का स्वरूप झूल रहा है। फिर क्यों मूर्खों के समान तुम व्यर्थ ही बार-बार इसी का शोक कर रहे हो ? ॥43॥ केले के स्तंभ के समान निःसार तथा आत्मा को नष्ट करने वाले कामों के वशीभूत हो तुम लोग शोक और हास्य करने के योग्य नहीं हो ॥44॥ सब प्राणी कर्म के वश में पड़े हुए हैं इसलिए वह काम क्यों नहीं करते कि जिससे वह कर्म नष्ट हो जाता है ॥45॥ इस संसार रूपी सघन वन में भूले हुए प्राणी ऐसे दुःखों को प्राप्त हो रहे हैं इसलिए उस संसार वन को नष्ट करो ॥46॥ हे भाइयो ! यह कर्मभूमि है परंतु पिता के प्रसाद से मोहाक्रांत बुद्धि होकर हम लोग इसे स्वर्ग जैसा समझ रहे हैं ॥47॥ पहले बाल्यावस्था में पिता की गोद में स्थित रहने वाले मैंने किसी के द्वारा पुस्तक में बाँची गई एक बहुत ही सुंदर वस्तु सुनी थी कि सब भवों में मनुष्यभव दुर्लभ भव है उसे पाकर जो अपना हित नहीं करता है वह वंचित रहता है ठगाया जाता है ॥48-49॥ यह जीव पात्रदान से ऐश्वर्य को, तप से स्वर्ग को, ज्ञान से मोक्ष को, और पाप से दुःखदायी गति को प्राप्त होता है ॥50॥ 'पुनर्जन्म अवश्य होता है। यह जानकर भी यदि हम तप नहीं करते हैं तो फिर से दुःखों से भरी हुई दुर्गति प्राप्त करनी होगी ॥51॥
इस प्रकार संसार-सागर के मध्य दुःखानुभवरूपी भँवर से भयभीत रहने वाले वे वीरकुमार प्रतिबोध को प्राप्त हो गये॥52॥ और शीघ्र ही पिता के पास जाकर तथा प्रणाम कर विनय से खड़े हो हाथ जोड़ अत्यंत मधुर स्वर में कहने लगे कि हे पिताजी ! हमारी प्रार्थना सुनिए । आप विघ्न करने के योग्य नहीं हैं। हम लोग दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं सो इसमें अनुकूलता को प्राप्त हूजिए ॥53-54॥ इस संसार को बिजली के समान क्षणभंगुर तथा साररहित देखकर हम लोगों को अत्यंत तीव्र भय उत्पन्न हो रहा है ॥55॥ हम लोग इस समय किसी तरह उस उत्तम बोधि को प्राप्त हुए हैं कि नौका स्वरूप जिस बोधि के द्वारा संसार-सागर के उस पार पहुंचेंगे ॥56॥ जो आशीविष-सर्प के फन के समान भयंकर हैं, शंका **अर्थ**ात् भय जिनके प्राण हैं तथा जो परम दुःख के कारण हैं ऐसे भोगों को हम दूर से ही छोड़ना चाहते हैं ॥ 57॥ इस कर्माधीन जीव की रक्षा करने के लिए न माता सहायक है, न पिता सहायक है, न भाई सहायक है, न कुटुंबीजन सहायक हैं

और न मित्र लोग सहायक हैं ॥58॥ हे तात ! हम लोगों पर आपका तथा माताओं का जो उपमारहित परम वात्सल्य है उसे हम जानते हैं और यह भी जानते हैं कि संसारी प्राणियों के लिए यही बड़ा बंधन है परंतु आपके स्नेह से होने वाला सुख क्या चिरकाल तक रह सकता है ? भोगने के बाद भी उसका विरह अवश्य प्राप्त करना होता है और ऐसा विरह कि जो करोत के समान भयंकर होता है ॥59-60॥ यह जीव भोगों में तृप्त हुए बिना ही कुमित्र की तरह इस शरीर को छोड़ देगा तब क्या प्राप्त हुआ कहलाया ? ॥61॥

तदनंतर परमस्नेह से विह्वल लक्ष्मण उन पुत्रों को मस्तक पर सूंघकर तथा पुनः पुनः उनकी ओर देखकर बोले कि ये महल जो कि कैलास के शिखर के समान हैं, सुवर्ण तथा रत्नों से निर्मित हैं, सुवर्ण के हजारों खंभों से सुशोभित हैं, जिनके फर्शों की भूमियाँ नाना प्रकार की हैं, जो सुंदर-सुंदर छज्जों से सहित हैं, अच्छी तरह सेवन करने योग्य हैं, निर्मल हैं, सुंदर हैं, सब प्रकार के उपकरणों से सहित हैं, मलयाचल जैसी सुगंधित वायु से जिनमें भ्रमर आकृष्ट होते रहते हैं, जहाँ स्नानादि कार्यों के योग्य जुदी-जुदी उज्ज्वल भूमियाँ हैं, जो शरद्ऋतु के चंद्रमा के समान आभा वाले हैं, शुभ्रवर्ण हैं, जिनमें देवांगनाओं के समान स्त्रियों का आवास है, जो सब प्रकार के गुणों से सहित हैं, स्वर्ग के भवनों के समान हैं, वीणा, वेणु, मृदंग आदि के संगीत से मनोहर हैं और जिनेंद्र भगवान् के चरित संबंधी कथाओं से अत्यंत पवित्र हैं, सामने खड़े हैं सो हे बालको! इन महलों में सुख से रहकर अब तुम लोग दीक्षा धारणकर वन और पहाड़ों के बीच कैसे रहोगे ? ॥62-68॥ हे पुत्रो ! स्नेहाधीन मुझे तथा शोकसंतप्त माता को छोड़कर जाना योग्य नहीं है इसलिए ऐश्वर्य का सेवन करो ॥69॥

तदनंतर स्नेह के दूर करने में जिनके चित्त लग रहे थे, जो संसार से भयभीत थे, इंद्रियों से प्राप्त होने योग्य सुखों से एकांतरूप से विमुख थे, उदार वीरता के द्वारा दिये हुए आलंबन से जो सुशोभित थे तथा तत्त्व विचार करने में जिनके चित्त लग रहे थे ऐसे वे सब कुमार बुद्धि द्वारा क्षणभर विचार कर बोले कि इस संसार में माता-पिता तथा अन्य लोग अनंतों बार प्राप्त होकर चले गये हैं। यथार्थ में स्नेहरूपी बंधन को प्राप्त हुए मनुष्यों के लिए यह घर एक बंदी गृह के समान है ॥70-72॥ जिसमें पाप का परम आरंभ होता है तथा जो नाना दुःखों को बढ़ाने वाला है ऐसे गृहरूपी पिंजड़े की मूर्ख मनुष्य ही सेवा करते हैं बुद्धिमान् नहीं ॥73॥ जिस तरह शारीरिक और मानसिक दुःख हमें पुनः प्राप्त न हों उस तरह ही दृढ़ निश्चय कर हम कार्य करना चाहते हैं। क्या हम अपने आपके वैरी हैं ॥74॥ गृहस्थ यद्यपि यह सोचता है कि मैं निर्दोष हूँ, मेरे पाप नहीं हैं, फिर भी वह रखे हुए शुक्ल वस्त्र के समान मलिनता को प्राप्त हो ही जाता है ॥75॥ यतश्च गृहस्थाश्रम में निवास करने वाले मनुष्यों को उठ-उठकर पाप में प्रीति होती है इसीलिए महात्मा पुरुषों ने गृहस्थाश्रम का त्याग किया है ॥76॥ आपने जो कहा है कि अच्छी तरह ऐश्वर्य का उपभोग करो सो आप हमें ज्ञानवान् होकर भी अंधकूप में फेंक रहे हैं ॥77॥ जिस प्रकार प्यास से पानी पीते हुए हरिण को शिकारी मार देता है उसी प्रकार भोगों से अतृप्त मनुष्य को मृत्यु मार देती है ॥78॥ विषयों की प्राप्ति में आसक्त, परतंत्र, अज्ञानी तथा औषध से रहित यह संसार कामरूपी सांपों के साथ क्रीड़ा कर रहा है।

भावार्थ□ जिस प्रकार साँपों के साथ खेलने वाले अज्ञानी एवं औषध रहित मनुष्य मरण को प्राप्त होता है उसी प्रकार आस्रवबंध और संवर निर्जरा के ज्ञान से रहित यह जीव इंद्रिय भोगों के साथ क्रीड़ा करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है ॥79॥ घररूपी जलाशय में मग्न तथा विषयरूपी मांस में आसक्त ये मनुष्यरूपी मच्छ रोगरूपी वंशी के योग से मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥80। इसीलिए मनुष्यलोक के स्वामी, लोकत्रय के द्वारा वंदित भगवान् जिनेंद्र ने जगत् को अपने कर्म के आधीन कहा है । भावार्थ□ भगवान् जिनेंद्र ने बताया है कि संसार के सब प्राणी स्वीकृत कर्मों के आधीन हैं॥81॥इसलिए हे तात ! जिनका परिणाम अच्छा नहीं है, प्रियजनों का समागम जिनका प्रलोभन है, जो विद्वत्जनों के द्वेषपात्र हैं तथा जो बिजली के समान चंचल हैं ऐसे इन भोगों से पूरा पड़े **अर्थ**ात् इनकी आवश्यकता नहीं है ॥82॥ जब कि बंधुजनों के साथ विरह अवश्यंभावी है तब इस अटपटे संसार में क्या प्रीति करना है ? ॥83॥ 'यह मेरा प्यारा है। ऐसी आस्था केवल व्यामोह के कारण उत्पन्न होती है क्योंकि यह जीव अकेला ही गमनागमन के दुःख को प्राप्त होता है ॥84॥ मिथ्याशास्त्र ही जिसमें खोटे द्वीप हैं, मोहरूपी कीचड़ से जो युक्त है, जो शोक संतापरूपी फेन से सहित है, जन्मरूपी भँवरों के समूह से व्याप्त है, व्याधि तथा मृत्युरूपी तरंगों से युक्त है, मोहरूपी गहरे गर्तों से सहित है, क्रोधादि कषाय रूपी कर मकर और नाकों के समूह से लहरा रहा है, मिथ्या तर्कशास्त्र से उत्पन्न शब्दों से अत्यंत भयंकर है, मिथ्यात्व रूपी वायु के द्वारा कंपित है, दुर्गतिरूपी खारे पानी से सहित है और अत्यंत दुःसह तथा उत्कट वियोग रूपी बड़वानल से युक्त है ऐसे भयंकर संसार-सागर में हे तात ! हम लोग बहुत समय से खेद-खिन्न हो रहे हैं ॥85-88॥ नाना योनियों में परिभ्रमण करने के बाद हम बड़ी कठिनाई से मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए हैं इसलिए अब वह काम करना चाहते हैं कि जिससे पुनः इस संसार सागर में न डूबे ॥89॥

तदनंतर परिजन के लोगों से घिरे हुए माता-पिता से पूछकर वे आठों वीर कुमार क्रम-क्रम से घर रूपी कारागार से बाहर निकले ॥90॥ संसार-स्वरूप को जानने वाले, घर से निकलते हुए उन वीरों की उस प्रकार के विशाल साम्राज्य में ठीक उस तरह की अनादर बुद्धि हो रही थी जिस प्रकार कि जीर्ण-तृण में होती है ॥91॥ तदनंतर उन्होंने महेंद्रोदय नामा उद्यान में जाकर संवेगपूर्वक महाबल मुनि के समीप निर्ग्रंथ दीक्षा धारण कर ली ॥92॥ जो सब प्रकार के आरंभ से रहित थे, दिगंबर थे, क्षमा युक्त थे, दमन शील थे, सब झंझटों से मुक्त थे, निरपेक्ष थे और ध्यान में तत्पर थे ऐसे वे परम योगी निरंतर विहार करते रहते थे ॥93॥ समीचीन तप के द्वारा पाप को नष्ट कर, और अध्यात्मयोग के द्वारा पुण्य को रोककर जिन्होंने संसार का समस्त प्रपंच नष्ट कर दिया था ऐसे वे आठों मुनि अनंत सुख से युक्त निर्वाण पद को प्राप्त हुए ॥94॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य विनीत हो भक्तिपूर्वक इन आठ कुमारों के मंगलमय चरित को पढ़ता अथवा सुनता है सूर्य के समान कांति को धारण करने वाले उस मनुष्य का सब पाप नष्ट हो जाता है तथा उत्तम चंद्रमा का उदय होता है ॥95॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराण में आठ कुमारों की दीक्षा का वर्णन करने वाला एक सौ दसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥110॥

## भामंडल का परलोकगमन

एक सौ ग्यारहवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर वीर जिनेंद्र के प्रथम गणधर सज्जनोत्तम श्री गौतमस्वामी मन में आये हुए भामंडल का चरित्र कहने लगे ॥1॥ विद्याधरों की अत्यंत सुंदर स्त्री रूपी लताओं से उत्पन्न सुख रूपी फूलों के आस्रव में आसक्त भामंडल रूपी भ्रमर इस प्रकार विचार करता रहता था कि यदि मैं दिगंबर मुनियों की दीक्षा धारण करता हूँ तो यह स्त्रीरूपी कमलों का समूह निःसंदेह कमल के समान आचरण करता है **अर्थ**ात् कमल के ही समान कोमल है ॥2-3॥ जिनका चित्त मुझमें लग रहा है ऐसी ये स्त्रियाँ मेरे विरह में अपने प्राणों का सुख से पालन नहीं कर सकेंगी अतः उनका वियोग अवश्य हो जायगा ॥4॥ अतएव जिनका छोड़ना तथा पाना दोनों ही कठिन हैं ऐसे इन काम संबंधी सुखों को पहले अच्छी तरह भोग लूं; बाद में कल्याणकारी कार्य करूँ ॥5॥ यद्यपि भोगों के द्वारा उपार्जित किया हुआ पाप अत्यंत पुष्कल होगा तथापि उसे सुध्यान रूपी अग्नि के द्वारा एक क्षण में जला डालूंगा ॥6॥ यहाँ सेना ठहराकर विमानों से क्रीड़ा करूँ और सब ओर शत्रुओं के नगर उजाड़ कर दूं ॥7॥ दोनों श्रेणियों में शत्रु रूपी गेंडा हाथियों के मान रूपी शिखर की जो उन्नति हो रही है उसका भंग करूँ तथा उन्हें आज्ञा के द्वारा किये हुए अपने वश में स्थापित करूँ ॥8॥ और मेरु पर्वत के मरकत आदि मणियों के निर्मल एवं मनोहर शिलातलों पर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करूँ ॥9॥ इत्यादि वस्तुओं का विचार करते हुए उस भामंडल के सैकड़ों वर्ष एक मुहूर्त के समान व्यतीत हो गये ॥10॥ 'यह कर चुका, यह करता हूँ और यह करूंगा' वह यही विचार करता रहता था, पर अपनी आयु का अंतिम अवसर आ चुका है यह नहीं विचारता था ॥11॥

एक दिन वह महल के सातवें खंड में बैठा था कि उसके मस्तक पर वज्र गिरा जिससे वह मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥12॥ यद्यपि वह अपने जंमांतर की समस्त चेष्टा को जानता था तथापि इतना दीर्घसूत्री था कि आत्म-कल्याण में स्थित नहीं हुआ ॥13॥ तृष्णा और विषाद को करने वाले मनुष्यों को क्षणभर के लिए भी शांति नहीं होती क्योंकि उनके मस्तक के समीप पैर रखने वाला मृत्यु सदा अवसर की प्रतीक्षा किया करता है ॥14॥ क्षणभर में नष्ट हो जाने वाले इस अधम शरीर के लिए, विषयों का दास हुआ यह नीच प्राणी क्या क्या नहीं करता है ? ॥15॥ जो मनुष्य-जीवन को भंगुर जान समस्त परिग्रह का त्यागकर आत्महित में प्रवृत्ति नहीं करता है वह अकृतकृत्य दशा में ही नष्ट हो जाता है ॥16॥ उन हजार शास्त्रों से भी क्या प्रयोजन है जिससे आत्मा शांत नहीं होती और वह एक पद भी बहुत है जिससे आत्मा शांति को प्राप्त हो जाता है ।17॥ जिस प्रकार कटे पक्ष का काक आकाश में उड़ना तो चाहता पर वैसा श्रम नहीं करता उसी प्रकार यह जीव सद्धर्म करना तो चाहता है पर यह जैसा चाहिए वैसा श्रम नहीं करता ॥18॥ यदि उद्योग से रहित मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थ को पाने लगें तो फिर संसार में कोई भी विरही अथवा दरिद्र नहीं होना चाहिए ॥19॥ जो मनुष्य द्वार पर आये हुए अतिथि साधु को आहार आदि दान देता है तथा गुरुओं के वचन सुन तदनुकूल शीघ्र आचरण करता है वह कभी दुःखी नहीं होता ॥20॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि नाना प्रकार के सैकड़ों व्यापारों से जिसका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसके कारण जो प्रतिदिन दुःख का अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणी

की आयु हथेली पर रखे रत्न के समान नष्ट हो जाती है ॥21॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण में भामंडल के परलोकगमन का वर्णन करने वाला एक सौ ग्यारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥111॥

## हनूमान् को वैराग्य

एक सौ बारहवाँ
कथा :
अथानंतर पारस्परिक महास्नेह से बँधे राम लक्ष्मण का, उष्ण वर्षा और शीत के भेद से तीन प्रकार का काल धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था ॥1॥ परम ऐश्वर्य के समूहरूपी कमलवन में विद्यमान रहने वाले वे दोनों पुरुषोत्तम चंदन से लिप्त हुए के समान सुशोभित हो रहे थे ॥2॥ जिस समय नदियाँ सूख जाती हैं, वन दावानल से व्याप्त हो जाते हैं और प्रतिमायोग को धारण करने वाले मुनि सूर्य के सम्मुख खड़े रहते हैं उस समय राम-लक्ष्मण, जल के फव्वारों से युक्त सुंदर महलों में तथा समस्त प्रिय उपकरणों से सुशोभित उद्यानों में क्रीड़ा करते थे ॥3-4॥ चंदनमिश्रित जल के महासुगंधित शीतल कणों को बरसाने वाले चमरों तथा उत्तमोत्तम पलों से वहाँ उन्हें हवा की जाती थी। वहाँ वे स्फटिक के स्वच्छ पटियों पर बैठते थे, चंदन के द्रव से उनके शरीर चर्चित रहते थे, जल से भीगे कमल पुष्पों की कलियों के समूह से बने बिस्तरों पर शयन करते थे । इलायची लौंग कपूर के चूर्ण के संसर्ग से शीतल निर्मल स्वादिष्ट और मनोहर जल का सेवन करते थे, और नाना प्रकार की कथाओं में दक्ष स्त्रियाँ उनकी सेवा करती थीं। इस प्रकार ऐसा जान पड़ता था मानो वे ग्रीष्म काल में भी शीतकाल को पकड़कर बलात् धारण कर रहे थे॥-8॥
जिनका शरीर जल की धाराओं से धुल गया है ऐसे मुनिराज जिस समय वृक्षों के मूल में बैठकर अपने अशुभ कर्मों का क्षय करते हैं ॥9॥ जहाँ कहीं कौंधती हुई बिजली के द्वारा प्रकाश फैल जाता है तो कहीं मेघों के द्वारा अंधकार फैला हुआ है, जहाँ जल के प्रवाह विशाल घर-घर शब्द करते हुए बहते हैं और जहाँ किनारों को ढहाकर बहा ले जाने वाली नदियाँ बहती हैं, उस वर्षाकाल में वे मेरु के शिखर के समान उन्नत महलों में विद्यमान रहते थे, उत्तम वस्त्र धारण करते थे, कुंकुम केशर के द्रव से उनके शरीर लिप्त रहते थे, अपरिमित अगुरुचंदन का वे उपयोग करते थे। महाविलासिनी स्त्रियों के नेत्र रूप भ्रमर समूह के लिए वे कमलवन के समान सुखकारी थे और सुंदरी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हुए यक्षेंद्र के समान सुख से विद्यमान रहते थे ॥10-12॥
जिस काल में रात्रि के समय धर्मध्यान में लीन, एवं वन के खुले चबूतरों पर बैठे मुनिराज बर्फरूपी वस्त्र से आवृत हो स्थित रहते हैं, जहाँ अत्यंत शीत वायु से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, कमलों के वन सूख जाते हैं और जहाँ लोग सूर्योदय को अत्यंत पसंद करते हैं ऐसे शीतकाल में वे महलों के गर्भगृह में इच्छानुसार रहते थे, उनके वक्षःस्थल तरुण स्त्रियों के स्तनों की क्रीड़ा के आधार थे, वीणा, मृदंग, बाँसुरी आदि से उत्पन्न, कानों के लिए उत्तम रसायन स्वरूप मधुर स्वर को वे अपनी इच्छानुसार करते थे, जिन्होंने अपनी वाणी से वीणा को जीत लिया था ऐसी अनुकूल स्त्रियाँ बड़े आदर से उनकी सेवा करती थीं और इसीलिए वे देवियों के द्वारा सेवित देवों के समान जान पड़ते थे । इस प्रकार वे पुण्यकर्म के प्रभाव से रात-दिन अत्यधिक भोगसंपदा से युक्त रहते हुए सुख से समय व्यतीत करते थे ॥13-18॥
गौतमस्वामी कहते हैं कि इस तरह वे दोनों लोकोत्तम पुरुष सुख से विद्यमान थे। हे राजन् ! अब वीर हनूमान का वृत्तांत सुन ॥19॥ पूर्व पुण्य के प्रभाव से हनूमान् कर्णकुंडल नगर में देव के समान परम ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा था ॥20॥ विद्याधरों के माहात्म्य से सहित तथा उत्तमोत्तम क्रियाओं से युक्त हनूमान् हजारों स्त्रियों का परिवार लिये इच्छानुसार पृथ्वी में भ्रमण करता था ॥21॥ उत्तम विमान पर आरूढ तथा उत्तम विभूति से युक्त श्रीमान् हनूमान् उत्तम वन आदि प्रदेशों में देव के समान क्रीड़ा करता था ॥22॥
अथानंतर किसी समय जगत् के उन्माद का कारण, फूलों से सुशोभित एवं प्रिय सुगंधित वायु के संचार से युक्त वसंतऋतु आई ॥23॥ सो उस समय जिनेंद्र भक्ति से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसा हर्ष से भरा हनूमान् अंतःपुर के साथ मेरुपर्वत की ओर चला ॥24॥ वह बीच में नाना प्रकार के फूलों से मनोहर और देवों के द्वारा सेवित कुलाचलों के शिखरों पर ठहरता जाता था ॥25॥ जिनमें मदोन्मत्त भ्रमर और कोयलों के समूह शब्द कर रहे थे, तथा जो मनोहर सरोवरों से दर्शनीय थे ऐसे अनेकों वन, पत्र, पुष्प और फलों के कारण जो स्त्री-पुरुषों के युगल से सेवनीय थे ऐसे विचित्र वन, रत्नों से जगमगाते हुए पर्वत, जिनमें निर्मल टापू थे तथा अत्यंत स्वच्छ पानी भरा था ऐसी नदियाँ, जिनमें उत्तम सीढ़ियाँ लगी थी तथा जिनके तटों पर ऊँचे ऊँचे वृक्ष खड़े थे ऐसी वापिकाएँ, नाना प्रकार के कमलों की केशर से जिनका

पानी चित्र-विचित्र हो रहा था तथा जो मधुर शब्द करने वाले पक्षियों से सेवित थे ऐसे सरोवर, जो बड़ी-बड़ी तरंगों के साथ उठी हुई फेन पंक्ति से मानो अट्टहास कर रही थीं तथा जो बड़े-बड़े जल-जंतुओं से व्याप्त थी ऐसी अनेक आश्चर्यों से भरी महानदियाँ, सुशोभित वन-पंक्तियों एवं उत्तमोत्तम उपवनों से युक्त तथा मन को हरण करने में निपुण नाना प्रकार के भवन, और नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित, पाप नष्ट करने में समर्थ तथा योग्य प्रमाण से युक्त अनेकों जिनकूट इत्यादि वस्तुओं को देखता तथा स्त्रियों के द्वारा सेवित होता हुआ परम अभ्युदय का धारक हनूमान् धीरे-धीरे चला जा रहा था ॥26-33॥

जो आकाश में बहुत ऊँचे चढ़कर विमान के शिखर पर स्थित था तथा जिसके रोमांच निकल रहे थे ऐसा वह हनूमान् स्त्री के लिए तत् तत् वस्तुएँ दिखाता हुआ जा रहा था ॥34॥ वह कहता जाता था कि हे प्रिये ! देखो देखो, सुमेरु पर्वत पर शिखर के समीप वे कितने सुंदर स्थान हैं वहीं जिनेंद्र भगवान् के अभिषेक हुआ करते हैं ॥35॥ ये नाना रत्नों से निर्मित; सूर्य तुल्य, मनोहर, ऊँची और बड़े-बड़े शिखर देखो ॥36॥ इन मनोहर द्वारों से युक्त तथा रत्नों से आलोकित गंभीर गुफाओं और परस्पर एक दूसरे से मिली, दूर-दूर तक फैलने वाली किरणों को देखो ॥37॥ यह पृथिवीतल पर मनोहर भद्रशाल वन है, यह मेखला पर स्थित जगत् प्रसिद्ध नंदन वन है, यह उपरितन प्रदेश के वक्षःस्थल स्वरूप, कल्पवृक्ष और कल्पबेलों से तन्मय एवं नाना रत्नमयी शिलाओं से सुशोभित सौमनस वन है, और यह उसके शिखर पर हजारों जिन मंदिरों से युक्त देवों की क्रीड़ा के योग्य पांडुक नाम का अत्यंत मनोहर वन है ॥38-40॥ यह सुमेरु के स्वाभाविक सुरम्य शिखर पर परम आश्चर्यों से भरा हुआ वह जिनमंदिर दिखाई देता है कि जिसमें उत्सवों की परंपरा कभी टूटती हो नहीं है, जो अहमिंद्र लोक के समान है, यक्ष किन्नर और गंधर्वों के संगीत से शब्दायमान है, देवकन्याओं से व्याप्त है, अप्सराओं के समूह से आकीर्ण है, नाना प्रकार के गुणों से परिपूर्ण है और दिव्य पुष्पों से सहित है ॥41-43॥ जो जलती हुई अग्नि के समान लाल-लाल संध्या से युक्त मेघ समूह के समान प्रभा से युक्त है, स्वर्णमय है, सूर्यकूट के समान है, उन्नत है, सब प्रकार के उत्तम रत्नों के समूह से भूषित है, उत्तम आकृति वाला है, हजारों मोतियों की मालाओं से सहित है, छोटे-छोटे गोले और दर्पणों से सुशोभित है, छोटी छोटी घंटियों, रेशमी वस्त्र, फन्नूस और चमरों से अलंकृत है, उत्तमोत्तम प्राकार, तोरण, और ऊँचे गोपुरों से युक्त है, जिस पर नाना रंग की पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सुवर्णमय खंभों से सुशोभित है, गंभीर है, सुंदर छज्जों से युक्त है, जिसका संपूर्ण वर्णन करना अशक्य है, जो पचास योजन लंबा है और छत्तीस योजन चौड़ा है । हे कांते ! ऐसा यह जिन-मंदिर सुमेरु पर्वत के मुकुट के समान जान पड़ता है ॥44-48॥

इस प्रकार महादेवी के लिए मंदिर की प्रशंसा करता हुआ हनूमान जब मंदिर के समीप पहुँचा तब विमान के अग्रभाग से उतरकर हर्षित होते हुए उसने सर्वप्रथम प्रदक्षिणा दी ॥49॥ तदनंतर अन्य सबको छोड़ उसने अंतःपुर के साथ हाथ जोड़ मस्तक से लगा जिनेंद्र भगवान् की उस प्रतिमा को नमस्कार किया कि जो महान् ऐश्वर्य से सहित थी, नक्षत्र ग्रह और ताराओं के बीच में स्थित चंद्रमा के समान सुशोभित थी, सिंहासन के अग्रभाग पर स्थित थी, जिसका अपना विशाल तेज देदीप्यमान था, जो सफेद मेघ के शिखर के अग्रभाग पर स्थित शरत्कालीन सूर्य के समान थी, तथा सब लक्षणों से सहित थी ॥50-52॥ जिनेंद्र-दर्शन से जिन्हें महाहर्ष रूप संपत्ति की उद्भूति हुई थी ऐसी विद्याधरराज की स्त्रियों को दर्शन कर बड़ा संतोष उत्पन्न हुआ ॥53॥ तदनंतर जिनके सघन रोमांच निकल आये थे, जिनके लंबे नेत्र हर्षातिरेक से और भी अधिक लंबे दिखने लगे थे, जो उत्कृष्ट भक्ति से युक्त थीं, सब प्रकार के उपकरणों से सहित थीं, महाकुल में उत्पन्न थीं, तथा परचेष्टा को धारण करने वाली थीं ऐसी उन विद्याधरियों ने देवांगनाओं के समान जिनेंद्र भगवान की पूजा की ॥54-55॥ सुवर्णमय, पद्मराग मणिमय तथा चंद्र कांतमणिमय कमल, तथा अन्य स्वाभाविक पुष्प, सुगंधि से दिङ्मंडल को व्याप्त करने वाली परम उज्ज्वल गंध जिसकी धूमशिखा बहुत ऊँची उठ रही थी ऐसे पवित्र द्रव्य से उत्पन्न धूप, भक्ति से समीप में लाकर रक्खे हुए बड़ी-बड़ी शिखाओं वाले दीपक, और नाना प्रकार के नैवेद्य से हनूमान् ने जिनेंद्रदेव की पूजा की ॥56-58॥

तदनंतर जिसका शरीर चंदन से व्याप्त था, जो केशर के तिलकों से युक्त था, जिसका शरीर वस्त्र से आच्छादित था, जिसके पाप छट गये थे, जिसका मुकुट वानर चिह्न से चिह्नित एवं स्फुरायमान किरणों के समूह से युक्त था और हर्ष के कारण अत्यधिक विस्तृत नेत्रों की किरणों से जिसका मुख व्याप्त था ऐसे हनुमान ने जिनेंद्र भगवान का ध्यान कर, तथा पाप को नष्ट करने वाले स्तोत्रों से सुरासुरों के गुरु श्री जिनेंद्रदेव की प्रतिमा की बार-बार उत्तम स्तुति की ॥59-61॥ तदनंतर विलास-विभ्रम के साथ बैठी हुई अप्सराएँ जिसे देख रही थी ऐसे हनूमान् ने वीणा गोद में रख संगीत रूपी अमृत प्रकट किया ॥62॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होंने अपने नेत्र जिनेंद्र भगवान् की पूजा में लगा रक्खे हैं तथा जिनकी आत्मा नियम पालन में सावधान है ऐसे मनुष्य कल्याण को सदा अपने हाथ में रखते हैं ॥63॥ जो

जिनेंद्र भगवान् की पूजा में लीन हैं तथा उनके मंगलमय दर्शन करते हैं ऐसे निर्मल चित्त के धारक मनुष्यों के लिए कोई भी कल्याण दुर्लभ नहीं है ॥64॥ श्रावक के कुल में जन्म होना, जिनेंद्र भगवान में सुदृढ़ भक्ति होना, और समाधिपूर्वक मरण होना, यही मनुष्य जन्म का पूर्ण फल है ॥65॥ इस तरह चिरकाल तक वीणा बजाकर, बार-बार स्तुति और पूजा कर, वंदना कर तथा नयी-नयी भक्तिकर आत्मज्ञ जिनेंद्र भगवान के लिए पीठ नहीं देता हुआ हनूमान् नहीं चाहते हुए की तरह विश्रब्ध हो जिन-मंदिर से बाहर निकला ॥66-67॥ तदनंतर हजारों स्त्रियों के साथ विमान पर चढ़कर उसने उत्तम ज्योतिषी देव के समान मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा दी ॥68॥ उस समय सुंदर क्रियाओं को धारण करने वाला हनूमान एक दूसरे गिरिराज के समान प्रेमवश, मानो सुमेरु से जाने की अंतिम आज्ञा हो ले रहा हो ॥69॥ तदनंतर सब जिन मंदिरों पर उत्तम फूल बरसाकर भरतक्षेत्र की ओर धीरे-धीरे आकाश में चला ॥70॥

अथानंतर परमराग (अत्यधिक लालिमा पक्ष में उत्कट प्रेम) से युक्त संध्या सूर्य का आलिंगन कर खेद दूर करने की इच्छा से ही मानो अस्ताचल के ऊपर निवास को प्राप्त हुई ॥71॥ वह समय कृष्ण पक्ष का था, अतः तारारूपी बंधुओं से आवृत और चंद्रमारूपी पति से रहित रात्रि अत्यधिक सुशोभित नहीं हो रही थी इसलिए उसने आकाश से उतर सुरदुंदुभि नामक परम मनोहर प्रत्यंत पर्वत पर धीरे से अपनी सेना ठहरा दी ॥72-73॥ जहाँ कमलों और नील कमलों की सुगंधि को धारण करने वाली वायु धीरे-धीरे बह रही थी ऐसे उस प्रत्यंत पर्वत पर जिनेंद्रभगवान की कथा में लीन सैनिक यथायोग्य सुख से ठहर गये ॥74॥

अथानंतर हनूमान् कैलास पर्वत के ऊपरी मैदान के समान विमान की चंद्रशाला संबंधी शिखर के समीप सुख से बैठा था कि उसने बहुत ऊँचे आकाश से गिरते हुए तथा क्षण एक में अंधकार रूप हो जाने वाले देदीप्यमान कांति के धारक ज्योतिर्बिंब को देखा ॥75-76॥ देखते ही वह विचार करने लगा कि हाय-हाय बड़े दुःख की बात है कि इस संसार में वह स्थान नहीं है जहाँ देवसमूह के बीच भी मृत्यु इच्छानुसार क्रीड़ा नहीं करती हो ॥77॥ जहाँ देवों का भी जन्म सब ओर से बिजली, उल्का और तरंग के समान अत्यंत भंगुर है वहाँ अन्य प्राणियों की तो कथा ही क्या है ? ॥78॥ इस प्राणी ने संसार में अनंतबार जिस सुख-दुःख का अनुभव नहीं किया है वह तीन लोक में भी नहीं है ॥79॥ अहो ! यह मोह की बड़ी प्रबल महिमा है कि यह जीव इतने समय तक दुःख से भटकता रहा है ॥80॥ हजारों उत्सर्पिणियों और अपसर्पिणियों में कष्ट सहित भ्रमण करने के बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है सो खेद है कि वह उस प्रकार नष्ट हो गई कि जिस प्रकार मानो प्राप्त ही न हुई हो ॥81॥ विनाशी सुखों में आसक्त प्राणी कभी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते और उसी अतृप्त दशा में संताप से परिपूर्ण अंतिम अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं ॥52॥ चंचल, कुमार्ग में प्रवृत्ति करने वाली और अत्यंत दुःखदायी इंद्रियाँ जिन-मार्ग का आश्रय लिए बिना शांत नहीं होतीं ॥3॥ जिस प्रकार दीन मृग और पक्षी जाल से बद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार ये मोही प्राणी विषय-जाल से बद्ध होते हैं ॥84॥ जो मनुष्य सर्प के समान विषयों के साथ क्रीड़ा करता है वह मूर्ख फल के समय दुःख रूपी अग्नि से जलता है ॥85॥ जैसे कोई मनुष्य वर्षभर कष्ट भोगकर एक दिन के राज्य की अभिलाषा करे वैसे ही विषय-सुख का उपभोग करने वाला यह मूर्ख प्राणी, चिरकाल तक कष्ट भोगकर थोड़े समय के लिए सुख की आकांक्षा करता है ॥86॥ यद्यपि यह प्राणी जानता हुआ भी मोहरूपी चोर के द्वारा ठगाया जाता है तथापि कभी आत्मकल्याण नहीं करता इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ? ॥87॥ यह प्राणी मनुष्यभव में संचित धर्म का स्वर्ग में उपभोग कर पश्चात् लुटे हुए मनुष्य के समान दीन और दुःखी हो जाता है ॥88॥ यह जीव देवों संबंधी भोग भोगकर भी पुण्य के क्षीण होनेपर अवशिष्ट कर्मों की सहायता से जहाँ कहीं चला जाता है ॥89॥ पूज्यवर त्रिलोकीनाथ ने यही कहा है कि इस प्राणी का बंधु अथवा शत्रु अपना कर्म ही है ॥90। इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे उन निंदित तथा अत्यंत कठोर भोगों से पूरा पड़े-उनकी हमें आवश्यकता नहीं है ॥91॥ यदि मैं इन प्रियजनों का त्यागकर तप नहीं करता हूँ तो सुभूम चक्रवर्ती के समान अतृप्त दशा में मरूँगा ॥92॥ 'जो हरिणियों के समान नेत्रों वाली हैं, स्त्रियों के गुणों से सहित हैं, अत्यंत कठिनाई से छोड़ने योग्य हैं, भोली हैं और मुझ पर जिनके मनोरथ लगे हुए हैं ऐसी इन श्रीमती स्त्रियों को कैसे छोडूँ' - ऐसा विचारकर यद्यपि वह क्षणभर के लिए बेचैन हुआ तथापि वह तत्काल ही प्रबुद्धबुद्धि हो हृदय के लिए इस प्रकार उलाहना देने लगा ॥93-94॥ कि हे हृदय ! जिसने दीर्घकाल तक स्वर्ग में उत्तम विभूति की धारक गुणवती स्त्रियों के साथ रमण किया तथा मनुष्य-लोक में भी जो अत्यधिक हर्ष से भरी सुंदर स्त्रियों से लालित हुआ ऐसा कौन मनुष्य नदियों से समुद्र के समान नाना प्रकार के विषय-सुख संबंधी प्रीति से संतुष्ट हुआ है ? **अर्थ**ात् कोई नहीं । इसलिए हे नाना जन्मों में भटकने वाले श्रांत हृदय ! शांति को प्राप्त हो, व्यर्थ ही आकुलित क्यों हो रहा है ? ॥95-96॥ हे हृदय ! क्या नरक के भयंकर विरोध से दुःखदायी एवं तीक्ष्ण असिपत्र वन से संकटपूर्ण दुर्गम मार्ग, तूने सुने नहीं हैं कि जिससे रागोत्पत्ति से उत्पन्न समस्त सघन

कर्म रूपी पंक को तू तप के द्वारा नष्ट करने की इच्छा नहीं कर रहा है ॥17॥ धिक्कार है कि दीर्घ तथा निंदनीय दुःखरूपी सागर में डूबे हुए मेरा अतीतकाल सर्वथा निरर्थक हो गया। अब आज मुझे शुभ मार्ग और शुभ बुद्धि का प्रकाश प्राप्त हुआ है इसलिए संसार रूपी पिंजड़े के भीतर रुके आत्मा को मुक्त करता हूँ-भव-बंधन से छुड़ाता हूँ ॥98॥ इस प्रकार जिसने हृदय में दृढ़ निश्चय किया है तथा जीव लोक का जिसने यथार्थ विवेक देख लिया है ऐसा मैं मेघ के संसर्ग से रहित सूर्य के समान तेजस्वी होता हुआ सन्मार्ग पर गमन करने के लिए उद्यत हुआ हूँ ॥99॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण में हनूमान् के वैराग्य का वर्णन करने वाला एक सौ बारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥112॥

## हनूमान् को निर्वाण

एक सौ तेरहवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर रात्रि व्यतीत होने पर स्वर्ण के समान सूर्य ने दीप्ति से जगत् को उस तरह प्रकाश मान कर दिया जिस तरह कि साधु वाणी के द्वारा प्रकाशमान करता है ॥1॥ सूर्य ने नक्षत्र समूह को हटाकर कमलों के समूह को उस तरह विकसित कर दिया जिस तरह कि जिनेंद्रदेव भव्यों के समूह को विकसित कर देते हैं ॥2॥ जिस प्रकार पहले तपोवन को जाते हुए भरत ने अपने मित्रजनों से पूछा था उसी प्रकार महासंवेग से युक्त, तथा निःस्पृह चित्त हनूमान् ने मित्रजनों से पूछा ॥3॥ तदनंतर जिनके नेत्र अत्यंत दीन तथा चञ्चल थे, जो परम उद्वेग को धारण कर रहे थे एवं जो प्रेम से भरे हुए थे ऐसे मंत्रियों ने स्वामी से प्रार्थना की कि हे देव ! आप हम लोगों को अनाथ करने के योग्य नहीं हैं। हे उत्तम गुणों के धारक प्रभो ! भक्तों पर प्रसन्न हूजिए और उनका पालन कीजिए ॥4-5। इसके उत्तर में हनूमान ने कहा कि तुम लोग परम अनुयायी होकर भी हमारे अनर्थकारी बांधव हो; हितकारी नहीं ॥6॥ जो संसार समुद्र से पार होते हुए मनुष्य को उसी में गिरा देते हैं वे हितकारी कैसे कहे जा सकते हैं ? वे तो यथार्थ में वैरी ही हैं ॥7॥ जब मैंने नरकवास में बहुत भारी दुःख पाया था तब माता-पिता, मित्र, भाई-कोई भी सहायता को प्राप्त नहीं हुए थे; किसी ने सहायता नहीं की थी ॥8॥ दुर्लभ मनुष्य-पर्याय और जिन-शासन का ज्ञान प्राप्त कर बुद्धिमान् मनुष्य को निमेष मात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं है ॥9॥ परम प्रीति से युक्त आप लोगों के साथ रहकर जिस प्रकार भोग की प्राप्ति हुई है उसी प्रकार अब कर्म-निर्मित तीव्र विरह भी अवश्यंभावी है ॥10॥ अपने-अपने कर्म के आधीन रहने वाले ऐसे कौन देवेंद्र असुरेंद्र अथवा मनुष्येंद्र हैं जो कालरूपी दावानल से व्याप्त हो विनाश को प्राप्त न हुए हों ? ॥11॥ मैंने स्वर्ग में अनेकों बार हजारों पल्य तक भोग भोगे हैं फिर भी सूखे ईंधन से अग्नि के समान तृप्त नहीं हुआ ॥12॥ गमनागमन को देने वाला यह कर्म मुझसे भी अधिक महाबलवान है। मेरा शरीर तो अब अक्षम-असमर्थ हो गया है ॥13॥ प्राणी जिस दुर्गम जन्म संकट को पाकर मोहित हो जाते हैं स्वरूप को भूल जाते हैं। मैं उसे उल्लंघन कर गर्भातीत पद को प्राप्त करना चाहता हूँ॥14॥

इस प्रकार वज्रमय शरीर को धारण करने वाले हनूमान् ने जब अपनी दृढ़ चेष्टा दिखाई तब उसके अंतःपुर की स्त्रियों में रुदन का महाशब्द उत्पन्न हो गया ॥15॥ तदनंतर समझाने में समर्थ एवं नाना प्रकार के वृत्तांतों का निरूपण करने वाले वचनों के द्वारा विषाद से पीडित, व्यग्र स्त्रियों को सांत्वना देकर तथा समस्त पुत्रों को यथाक्रम से राजधर्म में लगाकर व्यवस्था पटु तथा शुभ कार्य में मन को स्थिर करने वाले राजा हनूमान्, मित्रों के बहुत बड़े समूह से परिवृत हो विमानरूपी भवन से बाहर निकले ॥16-18॥ जो रत्न और सुवर्ण से देदीप्यमान थी, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस तथा नाना प्रकार के चमरों से सुंदर थी और दिव्य-कमल के समान नाना प्रकार के वेलबूटों से सुशोभित थी ऐसी पालकी पर सवार हो परम अभ्युदय को धारण करने वाला श्रीमान हनुमान जिस ओर मंदिर का उद्यान था उसी ओर चला ॥19-20॥ जिस पर पताकाएँ फहरा रही थीं तथा जो मालाओं से सहित थीं ऐसी उसकी पालकी देखकर लोग हर्ष तथा विषाद दोनों को प्राप्त हो रहे थे और दोनों ही कारणों से उनके नेत्रों में आँसू छलक रहे थे ॥21॥ जो नाना प्रकार के वृत्तों से मंडित था, मैंना, भ्रमर तथा कोयल के कोलाहल से व्याप्त था और जिसमें नाना फूलों की केशर से सुगंधित वायु बह रही थी ऐसे मंदिर के उस महोद्यान में उस समय धर्मरत्न नामक यशस्वी मुनि विराजमान थे ॥22-23॥

जिनका मन वैराग्य की भावना से आप्लुत था ऐसे बाहुबली जिस प्रकार पहले धर्मरूपी रत्नों की महाराशि स्वरूप अत्यंत उत्तम योगी-श्री ऋषभ जिनेंद्र के समीप गये थे उसी प्रकार वैराग्य भावना से आप्लुत हृदय हनूमान् पालकी से उतरकर आकाशगामी एवं चारणर्षियों से

आवृत उन भगवान् धर्मरत्न नामक मुनिराज के समीप पहुँचा ॥24-25॥ पहुँचते ही उसने प्रणाम किया, बहुत बड़ी गुरुपूजा की और तदनंतर हस्तरूपी कमल-कुड्मलों को शिर पर धारण कर कहा कि हे महामुने ! मैं आपसे दीक्षा लेकर तथा शरीर से ममता छोड़ निर्द्वंद्व विहार करना चाहता हूँ अतः मुझ पर प्रसन्नता कीजिए ॥26-27॥ यह सुन उत्तम हृदय के धारक मुनिराज ने कहा कि बहुत अच्छा, ऐसा ही हो, जगत् को निःसार देख अपना परम कल्याण करो ॥28॥ विनश्वर शरीर से अविनाशी पद प्राप्त करने के लिए जो तुम्हारी कल्याणरूपिणी बुद्धि उत्पन्न हुई है यह बहुत उत्तम बात है ॥29॥

इस प्रकार मुनि की आज्ञा पाकर जो वैराग्य के वेग से सहित था, जिसने प्रणाम किया था, और जो संतुष्ट होकर पद्मासन से विराजमान था ऐसे हनूमान् ने मुकुट, कुंडल, हार तथा अन्य आभूषण, वस्त्र और मानसिक परिग्रह को तत्काल छोड़ दिया ॥30-31॥ उसने स्त्री रूपी बेड़ी तोड़ डाली थी, ममता से उत्पन्न जाल को जला दिया था, स्नेह रूपी पाश छेद डाली थी, सुख को विष के समान छोड़ दिया था, अत्यंत भंगुर शरीर को अद्भुत अपकारी देख वैराग्य रूपी दीपक की शिखा से मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया था, और कमल को जीतने वाली अपनी सुकुमार अंगुलियों से शिर के बाल नोच डाले थे। इस प्रकार समस्त परिग्रह से रहित, मुक्ति रूपी लक्ष्मी के सेवक, महाव्रतधारी, और वैराग्य लक्ष्मी से युक्त उत्तम हनुमान अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥32-34॥ उस समय वैराग्य और स्वामिभक्ति से प्रेरित, उदारात्मा, शुद्ध हृदय और महासंवेग में वर्तमान सात सौ पचास विद्याधर राजाओं ने अपने-अपने पुत्रों के लिए राज्य देकर मुनिपद धारण किया ॥35-67॥ इस प्रकार जिनके चित्त अत्यंत प्रसन्न थे, तथा जिनके सब कलंक छूट गये थे ऐसे वे विद्युतगति आदि नाम को धारण करने वाले मुनि हनूमान् की शोभा को प्राप्त थे **अर्थ**ात उन्हीं के समान शोभायमान थे ॥38॥

तदनंतर जो वियोगरूपी अग्नि से संतप्त थीं, महाशोकदायी अत्यंत करुण विलाप कर परम निर्वेद-वैराग्य को प्राप्त हुई थीं, श्रीमती थीं, संसार से भयभीत थीं, धीमती थीं, महा आभूषणों से रहित थीं, और शीलरूपी आभूषण को धारण करने वाली थीं ऐसी राज स्त्रियों ने बंधुमती नाम की प्रसिद्ध आर्यिका के पास जाकर तथा भक्तिपूर्वक नमस्कार और उत्तम पूजा कर दीक्षा धारण कर ली ॥39-41॥ उस समय उन सबके लिए वैभव जीर्णतृण के समान जान पड़ने लगा था सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम पुरुष राग करने वालों से अत्यंत विरक्त रहते ही हैं ॥42॥ इस प्रकार जो व्रत, गुप्ति और समिति के मानो उच्च पर्वत थे ऐसे श्री हनूमान् मुनि महातप रूपी धन के धारक, धीमान और गुण तथा शीलरूपी आभूषणों से सहित थे ॥43॥ हर्ष से भरे बड़े-बड़े राजा जिनकी स्तुति करते थे, अप्सराएँ जिन्हें नमस्कार करती थीं, जिन्होंने मोह की राशि भस्म कर दी थी, जो मुनियों में उत्तम थे, तथा पुरुषों में सूर्य के समान थे ऐसे श्रीशैल महामुनि ने सर्वज्ञ प्रतिपादित निर्मल आचार का पालन कर तथा जिनेंद्र संबंधी पूर्णज्ञान प्राप्त कर निर्वाण गिरि से सिद्ध पद प्राप्त किया ॥44-45॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में हनूमान् के निर्वाण का वर्णन करने वाला एक सौ तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥113॥

## इंद्र और देवों के बीच हुई कथा

एक सौ चौदहवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर लक्ष्मण के आठ वीर कुमारों और हनूमान की दीक्षा का समाचार सुन श्रीराम यह कहते हुए हँसे कि अरे ! इन लोगों ने क्या भोग भोगा ? ॥1॥ जो दूरदर्शी मनुष्य, विद्यमान भोग को छोड़कर दीक्षा लेते हैं जान पड़ता है कि वे ग्रहों से आक्रांत हैं अथवा वायु के वशीभूत हैं । भावार्थ-या तो उन्हें भूत लगे हैं या वे वायु की बीमारी से पीड़ित हैं ॥2॥ जान पड़ता है कि ऐसे लोगों की औषधि करने वाले कुशल वैद्य नहीं हैं इसीलिए तो वे मनोहर भोगों को छोड़ बैठते हैं ॥3॥ इस प्रकार भोगों के महासंग से होने वाले सुख रूपी सागर में निमग्न तथा चारित्र-मोहनीय कर्म के वशीभूत श्रीरामचंद्र की बुद्धि जड़रूप हो गई थी ॥4॥ भोगने में आये हुए अल्प सुख से उपलक्षित संसारी प्राणियों को यदि किसी के लोकोत्तर सुख का वर्णन सुनने में भी आता है तो प्रायः वह आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥5॥ इस प्रकार महाभोगों में निमग्न तथा प्रेम से बंधे हुए उन राम-लक्ष्मण का काल चारित्र रूपी धर्म से निरपेक्ष होता हुआ व्यतीत हो रहा था ॥6॥

अथानंतर किसी समय महा कांति से युक्त, उत्कृष्ट ऋद्धि से सहित, धैर्य और गांभीर्य से उपलक्षित सौधर्मेंद्र देवों की सभा में आकर विराजमान हुआ ॥7॥ नाना अलंकारों को धारण करने वाले समस्त मंत्री उसकी सेवा कर रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो अन्य छोटे पर्वतों से परिवृत सुमेरु महापर्वत ही हो ॥8॥ कांति से आच्छादित सिंहासन पर बैठा हुआ वह सौधर्मेंद्र सुमेरु के शिखर पर

विराजमान जिनेंद्र की शोभा को धारण कर रहा था ॥9॥ चंद्रमा और सूर्य के समान उत्तम प्रकाश वाले रत्नों से उसका शरीर अलंकृत था । वह मनोहर रूप से सहित तथा नेत्रों को आनंद देने वाला था ॥10॥ जिसकी बहुत भारी कांति फैल रही थी ऐसे निर्मल हार को धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो सीतोदा नदी के प्रवाह को धारण करता हुआ निषध पर्वत ही हो ॥11॥ हार, कुंडल, केयूर आदि उत्तम आभूषणों को धारण करने वाले देव उस सौधर्मेंद्र को सब ओर से घेरे हुए थे इसलिए वह नक्षत्रों से आवृत चंद्रमा के समान जान पड़ता था ॥12॥ इंद्र तथा देवों के लिए जो चंद्रमा और नक्षत्रों का सादृश्य कहा है वह मनुष्य की अपेक्षा है क्योंकि स्वर्ग के देव और ज्योतिषी देवों में बड़ा अंतर है। भावार्थ मनुष्य लोक में चंद्रमा और नक्षत्र उज्ज्वल दिखते हैं इसलिए इंद्र तथा देवों को उनका दृष्टांत दिया है यथार्थ में चंद्रमा नक्षत्र रूप ज्योतिषी देवों से स्वर्गवासी देवों की ज्योति अधिक है और देवों की ज्योति से इंद्रों की ज्योति अधिक है॥13॥ वह इंद्र स्वयं महाप्रभाव से संपन्न था और अपने तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशमान कर रहा था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेंद्र संबंधी अत्यंत ऊँचा अशोक वृक्ष ही हो ॥14॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यदि सब लोग मिल कर हजारों जिह्वाओं के द्वारा निरंतर उसका वर्णन करें तो सैकड़ों वर्षों में भी वर्णन पूरा नहीं हो सकता ॥15॥

तदनंतर उस इंद्र ने, यथायोग्य आसनों पर बैठे लोकपाल आदि शुद्ध हृदय के धारक देवों के समक्ष इस पुराण का वर्णन किया ॥16॥ पुराण का वर्णन करते हुए उसने कहा कि अहो देवो ! जिन्होंने अत्यंत दुःसाध्य, सुख को नष्ट करने वाले तथा महाशत्रु स्वरूप इस संसाररूपी महाअसुर को ज्ञानरूपी चक्र के द्वारा नष्ट कर दिया है और जो समस्त दोष रूपी अटवी को जलाने के लिए अग्नि के समान हैं उन परमोत्कृष्ट अर्हंत भगवान् की तुम निरंतर भक्तिपूर्वक भाव रूपी फूलों से अर्चा करो ॥17-18॥ कषायरूपी उन्नत तरंगों से युक्त तथा कामरूपी मगर-मच्छों से व्याप्त संसार रूपी सागर से जो भव्य जीवों को पार लगाने में समर्थ हैं, उत्पन्न होते ही जिनका इंद्र लोग सुमेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से उत्कृष्ट अभिषेक करते हैं। तथा भक्ति से युक्त, मोक्ष पुरुषार्थ में चित्त को लगाने वाले एवं अपने-अपने परिजनों से सहित इंद्र लोग तदेकाग्र चित्त होकर जिनकी पूजा करते हैं ॥19-211॥ विंध्य और कैलाश पर्वत जिसके स्तन हैं तथा समुद्र की लहरें जिसकी मेखला हैं ऐसी पृथिवी रूपी स्त्री का त्यागकर तथा मुक्ति रूपी स्त्री को लेकर जो विद्यमान हैं ॥22॥ महामोह रूपी अंधकार से आच्छादित, धर्महीन तथा स्वामीहीन इस संसार को जिन्होंने स्वर्ग के अग्रभाग से आकर उत्तम प्रकाश प्राप्त कराया था ॥23॥ और जिस प्रकार सिंह हाथियों को नष्ट कर देता है उसी प्रकार अत्यंत अद्भुत पराक्रम को धारण करने वाले जिन्होंने आठ कर्म रूपी शत्रुओं को क्षणभर में नष्ट कर दिया है ॥24॥ जिनेंद्र-भगवान्, अर्हंत, स्वयंभू, शंभु, ऊर्जित, स्वयंप्रभ, महादेव, स्थाणु, कालंजर, शिव, महाहिरण्यगर्भ, देवदेव, महेश्वर, सद्धर्म चक्रवर्ती, विभु, तीर्थकर, कृति, संसारसूदन, सूरि, ज्ञानचक्षु और भवांतक इत्यादि यथार्थ नामों से विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते हैं ॥25-27॥ उत्तम भक्ति से युक्त नरेंद्र और देवेंद्र गूढ़ तथा अगूढ़ **अर्थ** को धारण करने वाले अत्यंत निर्मल शब्दों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं ॥28॥ जिनके प्रसाद से जीव कर्मरहित हो तीन लोक के अग्रभाग में स्वस्वभाव में स्थित रहते हुए विद्यमान रहते हैं ॥29॥ जिनका इस प्रकार का माहात्म्य स्मृति में आने पर भी पाप का नाश करने वाला है और जिनका परम दिव्य पुराण हर्ष की उत्पत्ति का कारण है ॥30॥ हे आत्मकल्याण के इच्छुक देवजनो ! उन महा कल्याण के मूल देवाधिदेव जिनेंद्र भगवान् के तुम सदा भक्त होओ ॥31॥

इस अनादि-निधन संसार में अपने कर्मों से प्रेरित हुआ कोई विरला मनुष्य ही दुर्लभ मनुष्य पर्याय को प्राप्त करता है परंतु धिक्कार है कि वह भी मोह में फंस जाता है ॥32॥ जो 'अर्हंत' इस अक्षर से द्वेष करते हैं उन्हें चतुर्गति रूप बड़ी-बड़ी आवर्तों से सहित इस संसाररूपी महासागर में रत्नत्रय की प्राप्ति पुनः कैसे हो सकती है ? ॥33॥ जो बड़ी कठिनाई से मनुष्यभव पाकर रत्नत्रय से वर्जित रहता है, वह पापी रथ के चक्र के समान स्वयं भ्रमण करता रहता है ॥34॥ अहो धिक्कार है कि इस मनुष्य-लोक में कितने ही गतानुगतिक लोगों में संसार-शत्रु को नष्ट करने वाले जिनेंद्र भगवान का आदर नहीं किया ॥35॥ यह जीव मिथ्या तप कर अल्प ऋद्धि का धारक देव होता है और वहाँ से च्युत होकर मनुष्य पर्याय पाता है फिर भी खेद है कि द्रोह करता है ॥36॥ महामोह के वशीभूत हुआ यह जीव, मिथ्याधर्म में आसक्त हो बड़े-बड़े इंद्रों के इंद्र जो जिनेंद्र भगवान हैं उन्हें प्राप्त नहीं होता ॥37॥ विषय रूपी मांस में जिसकी आत्मा लुभा रही है ऐसा यह प्राणी मनुष्य पर्याय कर्म को पाकर मोहनीय के द्वारा मोहित हो रहा है, यह बड़े कष्ट की बात है ॥38॥ मिथ्यातप करने वाला प्राणी दुर्दैव के योग से यदि स्वर्ग भी प्राप्त कर लेता है तो वहाँ अपनी हीनता का अनुभव करता हुआ चिंतातुर हो जलता रहता है ॥39॥ वहाँ वह सोचता है कि अहो ! रत्नद्वीप के समान सुंदर जिन-शासन में पहुँचकर भी मुझ मंदबुद्धि ने आत्मा का हित नहीं किया अतः मुझे

धिक्कार है ॥40॥ हाय हाय धिक्कार है कि मैं उन मिथ्या शास्त्रों के समूह तथा वचन-रचना में चतुर, पापी, मानी तथा स्वयं पतित दुष्ट मनुष्यों के द्वारा कुमार्ग में कैसे गिरा दिया गया ? ॥41॥ इस प्रकार मनुष्य-भव पाकर भी अधन्य तथा निरंतर दुःख उठाने वाले मनुष्यों के लिए यह उत्तम जिन-शासन दुर्ज्ञेय ही बना रहता है ॥42॥ स्वर्ग से च्युत हुए महर्द्धिक देव के लिए भी जिनेंद्र प्रतिपादित रत्नत्रय का पाना दुर्लभ है फिर अन्य प्राणी की तो बात ही क्या है ? ॥43॥ सब पर्यायों में उत्तम मनुष्य-पर्याय में निष्ठापूर्ण रत्नत्रय पाकर जो आत्मा का कल्याण करता है वही धन्य है तथा वही अनुगृहीत उपकृत है ॥44॥

उसी सभा में बैठा हुआ इंद्ररूपी सूर्य, मन-ही-मन कहता है कि यहाँ की आयु पूर्ण होने पर मैं मनुष्य-पर्याय को कब प्राप्त करूँगा ? ॥45॥ कब विषयरूपी शत्रु को छोड़कर मन को अपने वश कर, तथा कर्म को नष्ट कर तप के द्वारा मैं जिनेंद्र संबंधी गति **अर्थ**ात् मोक्ष प्राप्त करूँगा ॥46॥ यह सुन देवों में से एक देव बोला कि जब तक यह जीव स्वर्ग में रहता है तभी तक उसके ऐसा विचार होता है, जब हम सब लोग भी मनुष्य-पर्याय को पा लेते हैं तब यह सब विचार भूल जाता है ॥47॥ यदि इस बात का विश्वास नहीं है तो ब्रह्मलोक से च्युत तथा मनुष्यों के ऐश्वर्य से युक्त राम-बलभद्र को जाकर क्यों नहीं देख लेते ? ॥48॥

इसके उत्तर में महातेजस्वी इंद्र ने स्वयं कहा कि सब बंधनों में स्नेह का बंधन अत्यंत दृढ़ है ॥49॥ जो हाथ-पैर आदि अवयवों से बँधा है ऐसे प्राणी को मोक्ष हो सकता है परंतु स्नेहरूपी बंधन से बंधे प्राणी को मोक्ष कैसे हो सकता है ? ॥50॥ बेड़ियों से बँधा मनुष्य हजारों योजन भी जा सकता है परंतु स्नेह से बंधा मनुष्य एक अंगुल भी जाने के लिए समर्थ नहीं है ॥51॥ लक्ष्मण, राम में सदा अनुरक्त रहता है वह इसके दर्शन करते-करते कभी तृप्त ही नहीं होता और अपने प्राण देकर भी उसका कार्य करना चाहता है ॥52॥ पलभर के लिए भी जिसके दूर होनेपर राम का मन बेचैन हो उठता है वह उस उपकारी लक्ष्मण को छोड़ने के लिए कैसे समर्थ हो सकता है ? ॥53॥ कर्म की यह ऐसी ही अद्भुत चेष्टा है कि बुद्धिमान मनुष्य भी विमोह को प्राप्त हो जाता है अन्यथा जिसने अपना समस्त भविष्य सुन रक्खा है ऐसा कौन सचेतन प्राणी आत्महित नहीं करता ॥54॥ इस प्रकार अहो देवो ! प्राणियों के विषय में यहाँ और क्या कहा जाय? इतना ही निश्चित हुआ कि उत्तम प्रयत्न कर अच्छे हृदय से संसार रूपी शत्रु का नाश करना चाहिए ॥55॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार यथार्थ मार्ग से अनुरक्त एवं जिनेंद्र भगवान् के गुणों के संग से अत्यंत पवित्र, सुरपति के द्वारा प्रदर्शित मनोहर मार्ग को पाकर जिनके चित्त विशुद्ध हो गये थे तथा जो मनुष्य-पर्याय प्राप्त करने की आकांक्षा रखते थे ऐसे सूर्य, चंद्र तथा कल्पवासी आदि देव संसार से भय को प्राप्त हुए ॥56॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराण में इंद्र और देवों के बीच हुई कथा का वर्णन करने वाला एक सौ चौदहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥114॥

## लक्ष्मण का मरण

एक सौ पंद्रहवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर आसन को छोड़ते हुए इंद्र को नमस्कार कर नाना प्रकार के उत्कट भाव को धारण करने वाले सुर और असुर यथायोग्य स्थानों पर गये ॥1॥ उनमें से राम और लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा करने के लिए चेष्टा करने वाले, क्रीड़ा के रसिक तथा पारस्परिक प्रेम से सहित दो देवों ने कुतूहलवश यह निश्चय किया, यह सलाह बाँधी कि चलो इन दोनों की प्रीति देखें ॥2-3॥ जो उनके एक दिन के भी अदर्शन को सहन नहीं कर पाता है ऐसा नारायण अपने अग्रज के मरण का समाचार पाकर देखें क्या चेष्टा करता है ? शोक से विह्वल नारायण की चेष्टा देखते हुए क्षण भरके लिए परिहास करें। चलो, अयोध्यापुरी चलें और देखें कि विष्णु का शोकाकुल मुख कैसा होता है ? वह किसके प्रति क्रोध करता है और क्या कहता है ? ऐसी सलाह कर रत्नचूल और मृगचूल नाम के दो दुराचारी देव अयोध्या की ओर चले ॥4-7॥ वहाँ जाकर उन्होंने राम के भवन में दिव्य माया से अंतःपुर की समस्त स्त्रियों के रुदन का शब्द कराया तथा ऐसी विक्रिया की कि द्वारपाल, मित्र, मंत्री, पुरोहित तथा आगे चलने वाले अन्य पुरुष नीचा मुख किये लक्ष्मण के पास गये और राम की मृत्यु का समाचार कहने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे. नाथ ! राम की मृत्यु हुई है। यह सुनते ही लक्ष्मण के नेत्रं मंद-मंद वायु से कंपित नीलोत्पल के वन समान चंचल हो उठे ॥8-10॥ 'हाय यह क्या हुआ ?' वे इस शब्द का आधा उच्चारण हो कर पाये थे कि उनका मन शून्य हो गया और वे अश्रु छोड़ने लगे ॥11॥ वन से ताड़ित हुए के समान वे स्वर्ण के खंभे से टिक गये और सिंहासन पर बैठे-बैठे ही मिट्टी के पुतले की तरह निश्चेष्ट हो गये

॥12॥ उनके नेत्र यद्यपि बंद नहीं हुए थे तथापि उनका शरीर ज्यों का त्यों निश्चेष्ट हो गया। वे उस समय उस जीवित मनुष्य का रूप धारणकर रहे थे जिसका कि. चित्त कहीं अन्यत्र लगा हुआ है ॥13॥ भाई की मृत्यु रूपी अग्नि से ताड़ित लक्ष्मण को निर्जीव देख दोनों देव बहुत व्याकुल हुए परंतु वे जीवन देने में समर्थ नहीं हो सके ॥14॥ 'निश्चय ही इसकी इसी विधि से मृत्यु होनी होगी' ऐसा विचारकर विषाद और आश्चर्य से भरे हुए दोनों देव निष्प्रभ हो सौधर्म स्वर्ग चले गये ॥15॥ पश्चात्ताप रूपी अग्नि की ज्वाला से जिनका मन समस्त रूपसे व्याप्त हो रहा था तथा जिनकी आत्मा अत्यंत निंदित थी ऐसे वे दोनों देव स्वर्ग में कभी धैर्य को प्राप्त नहीं होते थे **अर्थ**ात् रात-दिन पश्चात्ताप की ज्वाला में झुलसते रहते थे ॥16॥ सो ठीक ही है क्योंकि विना विचारे काम करने वाले नीच, पापी मनुष्यों का किया कार्य उन्हें स्वयं संताप का कारण होता है ॥17॥

तदनंतर 'यह कार्य लक्ष्मण ने अपनी दिव्य माया से किया है। ऐसा जानकर उस समय उनकी उत्तमोत्तम खियाँ उन्हें प्रसन्न करने के लिए उद्यत हुई ॥18॥ कोई स्त्री कहने लगी कि हे नाथ ! सौभाग्य के गर्व को धारण करने वाली किस अकृतज्ञ, मूर्ख और कुचतुर स्त्री ने आपका अपमान किया है ? ॥19॥ हे देव ! प्रसन्न हूजिए, क्रोध छोड़िए तथा यह दुःखदायी आसन भी दूर कीजिए । यथार्थ में जिस पर आपका क्रोध हो उसका जो चाहें सो कीजिए ॥20॥ यह कह कर परम प्रेम की भूमि तथा नाना प्रकार के मधुर वचन कहने में तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ आलि इन कर उनके चरणों में लोट गई॥21॥ प्रसन्न करने की भावना रखने वाली कितनी ही स्त्रियाँ गोद में वीणा रख उनके गुण-समूह से संबंध रखने वाला अत्यंत मधुर गान गाने लगीं ॥22॥ सैकड़ों प्रिय वचन कहने में तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ उनका मख देख वार्तालाप कराने के लिए सामूहिक यत्न कर रही थीं ॥23॥ उज्ज्वल शोभा को धारण करने वाली कितनी ही स्त्रियों स्तनों को पीड़ित करने वाला आलिंगन कर पति के कुंडलमंडित सुंदर कपोल को सूंघ रही थीं ॥24॥ मधुर भाषण करने वाली कितनी ही स्त्रियाँ, विकसित कमल के भीतरी भाग के समान सुंदर उनके पैर को कुछ ऊपर उठाकर शिर पर रख रही थीं ॥25॥ बालमृगी के समान चश्चल नेत्री को धारण करने वाली कितनी ही स्त्रियाँ उन्माद तथा विभ्रम के साथ छोड़े हुए कटाक्ष रूपी नील कमलों का सेहरा बनाने के लिए ही मानो उद्यत थीं ॥26॥ लंबी जमुहाई लेने वाली कितनी ही स्त्रियाँ उनके मुख की ओर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे अंगड़ाई ले रही थीं और अँगुलियों की संधिया चटका रही थीं ॥27॥ इस प्रकार चेष्टा करने वाली उन उत्तम स्त्रियों का सब यत्न चेतनारहित लक्ष्मण के विषय में निरर्थकपने को प्राप्त हो गया ॥28॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय लक्ष्मण की सत्रह हजार स्त्रियाँ मंद-मंद वायु से कंपित नाना प्रकार के कमल वन की शोभा धारण कर रही थीं ॥29॥

तदनंतर जब लक्ष्मण उसी प्रकार स्थित रहे आये तब बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुए संशय ने उन स्त्रियों के व्यग्र मन में अपना पैर रक्खा ॥30॥ मोह में पड़ी हुई वे भोली-भाली स्त्रियाँ मनमें ऐसा विचार करती हुई उनका स्पर्श कर रही थीं कि संभव है हम लोगों ने इनके प्रति मनमें कुछ खोटा विचार किया हो, कोई न कहने योग्य शब्द कहा हो, अथवा जिसका सुनना भी दुःखदायी है, ऐसा कोई भाव किया हो ॥31॥ इंद्राणियों के समूह के समान चेष्टा और तेज को धारण करने वाली वे स्त्रियाँ उस समय शोक से ऐसी संतप्त हो गई कि उनकी सब सुंदरता समाप्त हो गई ॥32॥

अथानंतर अंतःपुरचारी प्रतिहारों के मुख से यह समाचार सुन मंत्रियों से घिरे राम घबड़ाहट के साथ वहाँ आये ॥33॥ उस समय घबड़ाये हुए लोगों ने देखा कि परम प्रामाणिक जनों से घिरे राम जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए अंतःपुर में प्रवेश कर रहे हैं ॥34॥ तदनंतर उन्होंने जिसको सुंदर कांति निकल चुकी थी और जो प्रातःकालीन चंद्रमा के समान पांडुर वर्ण था ऐसा लक्ष्मण का मुख देखा ॥35॥ वह मुख पहले के समान व्यवस्थित नहीं था, स्वभाव से बिलकुल भ्रष्ट हो चुका था, और तत्काल उखाड़े हुए कमल की सदृशता को प्राप्त हो रहा था ॥36॥ वे विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा कारण आ पड़ा कि जिससे आज लक्ष्मण मुझसे रूखा तथा विषादयुक्त हो शिर को कुछ नीचा झुकाकर बैठा है ॥37॥ राम ने पास जाकर बड़े स्नेह से बार-बार उनके मस्तक पर सूंघा और तुषार से पीड़ित वृक्ष के समान आकार वाले उनका बार-बार आलिंगन किया ॥38॥ यद्यपि राम सब ओर से मृतक के चिह्न देख रहे थे तथापि स्नेह से परिपूर्ण होने के कारण वे उन्हें अमृत **अर्थ**ात् जीवित ही समझ रहे थे ॥36॥ उनकी शरीर-यष्टि झुक गई थी, गरदन टेढ़ी हो गई थी, भुजा रूपी अर्गल ढीले पड़ गये थे और शरीर, साँस लेना, हस्त-पादादिक अवयवों को सिकोड़ना तथा नेत्रों का टिमकार पड़ना आदि चेष्टाओं से रहित हो गया था ॥40॥ इस प्रकार लक्ष्मण को अपनी आत्मा से विमुक्त देख उद्वेग तथा तीव्र भय से आक्रांत राम पसीना से तर हो गये ॥41॥

अथानंतर जिनका मुख अत्यंत दीन हो रहा था, जो बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे, और जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त थे, ऐसे राम सब ओर

से उनके अंगों को देख रहे थे ॥42॥ वे कह रहे थे कि इस शरीर में कहीं नख की खरोंच बराबर भी तो घाव नहीं दिखाई देता फिर यह ऐसी अवस्था को किसके द्वारा प्राप्त कराया गया ?□ इसकी यह दशा किसने कर दी? ॥43॥ ऐसा विचार करते-करते राम के शरीर में कँपकँपी छूटने लगी तथा उनकी आत्मा विषाद से भा गई । यद्यपि वे स्वयं विद्वान थे तथापि उन्होंने शीघ्र ही इस विषय के जानकार लोगों को बुलवाया ॥44॥ जब मंत्र और औषधि में निपुण, कला के पारगामी समस्त वैद्यों ने परीक्षा कर उत्तर दे दिया तब निराशा को प्राप्त हुए राम मूर्च्छा को प्राप्त हो गये और उखड़े वृक्ष के समान पृथिवी पर गिर पड़े ॥45-46॥ जब हार, चंदन मिश्रित जल और तालवृंत के अनुकूल पवन के द्वारा बड़ी कठिनाई से मूर्च्छा छुड़ाई गई तब अत्यंत विह्वल हो विलाप करने लगे ॥47॥ चूंकि राम शोक और विषाद के द्वारा साथ ही साथ पीड़ा को प्राप्त हुए थे इसीलिए वे मुख को आच्छादित करने वाला अश्रुओं का प्रवाह छोड़ रहे थे ॥48॥ उस समय आँसुओं से आच्छादित राम का मुख बिरले-बिरले मेघों से टँके चंद्रमंडल के समान जान पडता था|4॥ उस प्रकार के गंभीर हृदय राम को अत्यंत दुःखी देख अंतःपुर रूपी महासागर निर्मर्याद अवस्था को प्राप्त हो गया **अर्थ**ात् उसके शोक की सीमा नहीं रही ॥50॥ जो दुःखरूपी सागर में निमग्न थीं तथा जिनके शरीर सूख गये थे ऐसी उत्तम स्त्रियों ने अत्यधिक आँसू और रोने की ध्वनि से पृथिवी तथा आकाश को एक साथ व्याप्त कर दिया था ॥51॥ वे कह रही थीं कि हा नाथ ! हा जगदानंद ! हा सर्वसुंदर जीवित ! प्रिय वचन देओ, कहाँ हो ? किस लिए चले गये हो ? ॥52॥ इस तरह अपराध के बिना ही हम लोगों को क्यों छोड़ रहे हो ? और अपराध यदि सत्य भी हो तो भी वह मनुष्य में दीर्घ काल तक नहीं रहता ॥53॥

इसी बीच में यह समाचार सुनकर परम विषाद को प्राप्त हुए लवण और अंकुश इस प्रकार विचार करने लगे कि सारहीन इस मनुष्य-पर्याय को धिक्कार हो। इससे बढ़कर दूसरा महानीच नहीं है क्योंकि मृत्यु बिना जाने ही निमेषमात्र में इस पर आक्रमण कर देती है ॥ 54-55॥ जिसे देव और विद्याधर भी वश नहीं कर सके थे ऐसा यह नारायण भी काल के पाश से वशीभूत अवस्था को प्राप्त हो गया ॥ 56॥ इन नश्वर शरीर और नश्वर धन से हमें क्या आवश्यकता है ? ऐसा विचारकर सीता के दोनों पुत्र प्रतिबोध को प्राप्त हो गये ॥57॥ तदनंतर 'पुनः गर्भवास में न जाना पड़े इससे भयभीत हुए दोनों वीर, पिता के चरण-युगल को नमस्कार कर पालकी में बैठ महेंद्रोदय नामक उद्यान में चले गये ॥58॥ वहाँ अमृतस्वर नामक मुनिराज की शरण प्राप्त कर दोनों बड़भागी मुनि हो गये ॥59॥ उत्तम चित्त के धारक लवण और अंकुश जब दीक्षा ग्रहण कर रहे थे तब विशाल पृथिवी के ऊपर उनकी मिट्टी के गोले के समान अनादरपूर्ण बुद्धि हो रही थी ॥60॥ एक ओर पुत्रों का विरह और दूसरी ओर भाई की मृत्यु को दुःख-इस प्रकार राम शोक रूपी बड़ी भंवर में घूम रहे थे ॥61॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि राम को लक्ष्मण राज्य से, पत्र से, स्त्री से और अपने द्वारा धारण किये जीवन से भी कहीं अधिक प्रिय थे ॥62॥ संसार में मनुष्य नाना प्रकार के हृदय के धारक हैं इसीलिए कर्मयोग से आप्तजनों के ऐसी अशोभन अवस्था को प्राप्त होने पर कोई तो शोक को प्राप्त होते हैं और कोई वैराग्य को प्राप्त होते हैं ॥63॥ जब समय पाकर स्वकृत कर्म का उदयरूप अंतरंग निमित्त मिलता है तब बाह्य में किसी भी परपदार्थ का निमित्त पाकर जीवों के प्रतिबोध रूपी सूर्य उदित होता है उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥34॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्मपुराण में लक्ष्मण का मरण और लवणांकुश के तप का वर्णन करने वाला एक सौ पंद्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥115॥

## श्रीरामदेव के विप्रलाप

एक सौ सोलहवां पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! लक्ष्मण के मृत्यु को प्राप्त होनेपर युग. प्रधान रामने इस व्याकुल संसार को छोड़ दिया ॥ 1॥ उस समय स्वरूप से कोमल और स्वभाव सुगंधित नारायण का शरीर यद्यपि निर्जीव हो गया था तथापि राम उसे छोड़ नहीं रहे थे ॥ 2॥ वे उसका आलिंगन करते थे, गोद में रखकर उसे पोंछते थे, सूंघते थे, चूमते थे और बड़ी उमंग के साथ भुजपंजर में रखकर बैठते थे ॥ 3। इसके छोड़ने में वे क्षणभर के लिए भी विश्वास को प्राप्त नहीं होते थे। जिस प्रकार बालक अमृत फलको महाप्रिय मानता है। उसी प्रकार वे उस मृत शरीर को महाप्रिय मानते थे ॥4॥ कभी विलाप करने लगते कि हाय भाई ! क्या तुझे यह ऐसा करना उचित था । मुझे छोड़कर अकेले ही तूने चल दिया ॥5॥ क्या तुझे यह विदित नहीं कि मैं तेरे विरह को सहन नहीं कर सकता जिससे तू मुझे दुःख रूपी अग्नि में डालकर अकस्मात् यह करना चाहता है ॥6॥ हाय तात ! तूने यह अत्यंत कर कार्य क्यों करना चाहा जिससे कि मुझसे पूछे बिना

ही परलोक के लिए प्रयाण कर दिया ॥7॥ हे वत्स! एक बार तो प्रत्युत्तर रूपी अमृत शीघ्र प्रदान कर । तू तो बड़ा विनयवान था फिर दोष के बिना ही मेरे ऊपर भी कुपित क्यों हो गया है ? ॥8॥ हे मनोहर ! तूने मेरे ऊपर कभी मान नहीं किया, फिर अब क्यों अन्य रूप हो गया है ? कह, मैंने क्या किया है ? ॥9॥ तू अन्य समय तो राम को दूर से ही देखकर आदरपूर्वक खड़ा हो जाता था और उसे सिंहासन पर बैठाकर स्वयं पृथिवी पर नीचे बैठता था ॥10॥ हे लक्ष्मण ! इस समय चंद्रमा के समान सुंदर नखावली से युक्त तेरा पैर मेरे मस्तक पर रखा है फिर भी तू क्रोध ही करता है क्षमा क्यों नहीं करता?॥11॥ हे देव ! शीघ्र उठ, मेरे पुत्र वन को चले गये हैं सो जब तक वे दूर नहीं पहुँच जाते हैं तब तक उन्हें वापिस ले आवें ॥12॥ तुम्हारे गुण ग्रहण से ग्रस्त ये स्त्रियाँ तुम्हारे बिना कुररी के समान करुण शब्द करती हुई पृथिवीतल में लोट रही हैं ॥13॥ हार, चूड़ामणि, मेखला तथा कुंडल आदि आभूषण नीचे गिर गये हैं ऐसी करुण रुदन करती हुई इन व्याकुल स्त्रियों को मना क्यों नहीं करते हो? ॥14॥ अब तेरे विना क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? वह स्थान नहीं देखता हूँ जहाँ पहुँचने पर संतोष उत्पन्न हो सके ॥15॥ जिसे देखते-देखते तृप्ति ही नहीं होती थी ऐसे तेरे इस मुख को मैं अब भी देख रहा हूँ फिर अनुराग से भरे हुए मुझे छोड़ना क्या तुझे उचित था ? ॥16॥ इधर भाई पर मरणरूपी संकट पड़ा है उधर यह अपूर्व शोकाग्नि मेरे शरीर को जलाने के लिए तत्पर है, हाय मैं अभागा क्या करूँ ? ॥17॥ भाई का उपमातीत मरण शरीर को जिस प्रकार जलाता और सुखाता है उस प्रकार न अग्नि जलाती है और न विष सुखाता है ॥18॥ अहो लक्ष्मण ! इस समय क्रोध की आसक्ति को दूर करो। यह गृहत्यागी मुनियों के संचार का समय निकल गया ॥19॥ देखो, यह सूर्य अस्त होने जा रहा है और तालाबों के जल में कमल तुम्हारे निद्रा निमीलित नेत्रों के समान हो रहे हैं ॥20॥ यह कहकर अन्य सब कामों से निवृत्त रामने शीघ्र ही शय्या बनाई और लक्ष्मण को छाती से लगा सोने को उपक्रम किया ॥21॥ वे कहते कि हे देव ! इस समय मैं अकेला हूँ। आप मेरे कान में अपना अभिप्राय बता दो कि किस कारण से तुम इस अवस्था को प्राप्त हुए हो ? ॥22॥ तुम्हारा मनोहर मुख तो उज्ज्वल चंद्रमा के समान सुंदर था पर इस समय यह ऐसा कांतिहीन कैसे हो गया ? ॥23॥ तुम्हारे नेत्र मंद-मंद वायु से कंपित पल्लव के समान थे फिर इस समय म्लानि को प्राप्त कैसे हो गये ? ॥24॥ कह, कह, तुझे क्या इष्ट है ? मैं सब अभी ही पूर्ण किये देता हूँ । हे विष्णो ! तू इस प्रकार शोभा नहीं देना, मुख को व्यापार सहित कर **अर्थ**ात् मुख से कुछ बोल ॥25॥ क्या तुझे सुख-दुःख में सहायता देने वाली सीता देवी का स्मरण हो आया है परंतु वह साध्वी तो परलोक चली गई है क्या इसी लिए तुम विषाद युक्त हो ॥26॥ हे लक्ष्मीपते ! विषाद छोड़ो, देखो विद्याधरों का समूह विरुद्ध होकर आक्रमण के लिए आ पहुँचा है और अयोध्या में प्रवेश कर रहा है ॥27॥ हे मनोहर ! कभी क्रुद्ध दशा में भी तुम्हारा ऐसा मुख नहीं हुआ फिर अब क्यों रहा है ? हे वत्स ! ऐसी विरुद्ध चेष्टा अब तो छोड़ो ॥28॥ प्रसन्न होओ, देखो मैंने कभी तुझे नमस्कार नहीं किया किंतु आज तेरे चरणों में नमस्कार करता हूँ। अरे ! तू तो मुझे अनुकूल रखने के लिए समस्त लोक में प्रसिद्ध है ॥29॥ तू अनुपम प्रकाश का धारी बहुत बड़ा लोकप्रदीप है सो इस असमय में चलने वाली प्रचंड वायु के द्वारा प्रायः बुझ गया है ॥30॥ तुमने राजाधिराज पद पाकर लोक को बहुत भारी उत्सव प्राप्त कराया था अब उसे अनाथ कर तुम्हारा जाना किस प्रकार होगा ? ॥31॥ अपने चक्ररत्न के द्वारा शत्रुओं के समस्त सबल दल को जीतकर अब तुम कालचक्र का पराभव क्यों सहन करते हो ॥32॥ तुम्हारा जो सुंदर शरीर पहले राजलक्ष्मी से जैसा सुशोभित था वैसा ही अब निर्जीव होने पर भी सुशोभित है ॥33॥ हे राजेंद्र ! उठो, निद्रा छोड़ो, रात्रि व्यतीत हो गई, यह संध्या सूचित कर रही है कि अब सूर्य का उदय होने वाला है ॥34॥

लोकालोक को देखने वाले जिनेंद्र भगवान का सदा सुप्रभात है तथा भगवान् मुनि सुव्रत देव अन्य भव्य जीवरूपी कमलों के लिए शरण स्वरूप हैं ॥35॥ इस प्रभात को भी मैं परम अंधकार स्वरूप ही जानता हूँ क्योंकि मैं तुम्हारे मुख को चेष्टारहित देख रहा हूँ॥36॥ हे चतुर! उठ, देर तक मत सो, निद्रा छोड़, चल सभास्थल में चलें, सामंतों को दर्शन देने के लिए सभा स्थल में बैठ ॥37॥ देख, यह शोक से भरा कमलाकर विनिद्र अवस्था को प्राप्त हो गया है विकसित हो गया है पर तू विद्वान होकर भी निद्रा का सेवन क्यों कर रहा है ? ॥38॥ तूने कभी ऐसी विपरीत चेष्टा नहीं की अतः उठ और राजकार्यों में सावधान चित्त हो ॥39॥ हे भाई! तेरे बहुत समय तक सोते रहने से जिन-मंदिरों में सुंदर संगीत तथा भेरियों के मांगलिक शब्द आदि उचित क्रियाएँ नहीं हो रही हैं ॥40॥ तेरे ऐसे होने पर जिनके प्रातःकालीन कार्य शिथिल हो गये ऐसे दयालु मुनिराज भी परम उद्वेग को प्राप्त हो रहे हैं ॥41॥ तुम्हारे वियोग से दुःखी हुई यह नगरी वीणा बाँसुरी तथा मृदंग आदि के शब्द से रहित होने के कारण सुशोभित नहीं हो रही है ॥42॥ जान पड़ता है कि मेरा पूर्वोपार्जित पाप कर्म उदय में आया है इसीलिए मैं भाई के वियोग से दुःखपूर्ण ऐसे कष्ट को प्राप्त हुआ हूँ ॥43॥ हे मानव सूर्य ! जिस प्रकार तूने पहले युद्ध में सचेत हो

मुझ शोकातुर के लिए आनंद उत्पन्न किया था उसी प्रकार अब भी उठ और अत्यंत खेद से खिन्न मेरे लिए एक बार आनंद उत्पन्न कर ॥44॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराण में श्रीरामदेव के विप्रलाप का वर्णन करने वाला एक सौ सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ॥116॥

## विभीषण द्वारा सम्बोधन

एक सौ सत्रहवाँ पर्व

कथा :

समाचार मिलने पर समस्त विद्याधर राजा अपनी स्त्रियों के साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी भाये ॥1॥ अपने पुत्रों के साथ विभीषण, राजा विराधित, परिजनों से सहित सुग्रीव और चंद्रवर्धन आदि सभी लोग आये ॥2॥ जिनके नेत्र आँसुओं से व्याप्त थे तथा मन घबड़ाये हुए थे ऐसे सब लोगों ने अंजलि बाँधे-बाँधे राम के भवन में प्रवेश किया ॥3॥ विषाद से भरे हुए सब लोग योग्य शिष्टाचार की विधि कर राम के आगे पृथिवीतल पर बैठ गये और क्षणभर चुप चाप बैठने के बाद धीरे-धीरे यह निवेदन करने लगे कि हे देव ! यद्यपि परम इष्टजन के वियोग से उत्पन्न हुआ यह शोक दुःख से छूटने योग्य है तथापि आप पदार्थ के ज्ञाता हैं अतः इस शोक को छोड़ने के योग्य हैं ॥4-5॥ इस प्रकार कहकर जब सब लोग चुप बैठ गये तब परमार्थ स्वभाव. वाले आत्मा के लौकिक स्वरूप के जानने में निपुण विभीषण निम्नांकित वचन बोला ॥6॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यह स्थिति अनादिनिधन है। संसारके भीतर आज इन्हीं एक की यह दशा नहीं हुई है ॥7॥ इस संसाररूपी पिंजड़े के भीतर जो उत्पन्न हुआ है उसे अवश्य मरना पड़ता है। नाना उपायों के द्वारा भी मृत्यु का प्रतिकार नहीं किया जा सकता ॥8॥ जब यह शरीर निश्चित ही विनश्वर है तब इसके विषय में शोक का आश्रय लेना व्यर्थ है । यथार्थ में बात यह है कि जो कुशल बुद्धि मनुष्य हैं वे आत्महित के उपायों में ही प्रवृत्ति करते हैं ॥9॥ हे राजन् ! परलोक गया हुआ कोई मनुष्य रोने से उत्तर नहीं देता इसलिए आप शोक करने के योग्य नहीं हैं ॥10॥ स्त्री और पुरुष के संयोग से प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं और पानी के बबूले के समान अनायास ही नष्ट हो जाते हैं ॥11॥पुण्यक्षय होने पर जिनका वैक्रियिक शरीर नष्ट हो गया है ऐसे लोकपाल सहित इंद्रों को भी स्वर्ग से च्युत होना पड़ता है ॥12॥ गर्भके क्लेशों से युक्त, रोगों से व्याप्त, तृण के ऊपर स्थित बूंद के समान चंचल तथा मांस और हड्डियों के समूह स्वरूप मनुष्य के तुच्छ शरीर में क्या आदर करना है ? ॥13॥ अपने आपको अजर-अमर मानता हुआ यह मनुष्य मृत व्यक्ति के प्रति क्यों शोक करता है ? वह मृत्यु को डाँढों के बीच क्लेश उठाने वाले अपने आपके प्रति शोक क्यों नहीं करता ? ॥14॥ यदि इन्हीं एक का मरण होता तब तो जोर से रोना उचित था परंतु जब यह मरण संबंधी पराभव सबके लिए समानरूप से प्राप्त होता है तब रोना उचित नहीं है ॥15॥ जिस समय यह प्राणी उत्पन्न होता है उसी समय मृत्यु इसे आ घेरती है। इस तरह जब मृत्यु सबके लिए साधारण धर्म है तब शोक क्यों किया जाता है ? ॥16॥ जिस प्रकार जंगल में भील के द्वारा पीडित चमरी मृग-बालों के लोभ से दुःख उठाता है उसी प्रकार इष्ट पदार्थों के समागम की आकांक्षा रखने वाला यह प्राणी शोक करता हुआ व्यर्थ ही दुःख उठाता है ॥17॥ जब हम सभी लोगों को वियुक्त होकर यहाँ से जाना है तब सर्वप्रथम उनके चले जाने पर शोक क्यों किया जा रहा है ? ॥18॥ अरे, इस प्राणी का साहस तो देखो जो यह सिंह के सामने मृग के समान वनदंड के धारक यम के आगे निर्भय होकर बैठा है ॥19॥ एक लक्ष्मीधर को छोड़कर समस्त पाताल अथवा पृथिवीतल पर किसी ऐसे दूसरे का नाम आपने सुना कि जो मृत्यु से पीड़ित नहीं हुआ हो ॥20॥ जिस प्रकार सुगंधि से उपलक्षित विंध्याचल का वन, दावानल से जलता है उसी प्रकार संसारके चक्र को प्राप्त हुआ यह जगत् कालानल से जल रहा है, यह क्या आप नहीं देख रहे हैं ? ॥21॥ संसाररूपी अटवी में घूमकर तथा काम की आधीनता प्राप्त कर ये प्राणी मदोन्मत्त हाथियों के समान कालपाश की आधीनता को प्राप्त करते हैं ॥22॥ यह प्राणी धर्म का मार्ग प्राप्त कर यद्यपि स्वर्ग पहुँच जाता है तथापि नश्वरता के द्वारा उस तरह नीचे गिरा दिया जाता है जिस प्रकार कि नदी के द्वारा तट का वृक्ष ॥23॥ जिस प्रकार प्रलयकालीन मेघ के द्वारा अग्नियाँ नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार नरेंद्र और देवेंद्रों के लाखों समूह कालरूपी मेघ के द्वारा नाश को प्राप्त हो चुके हैं ॥24॥ आकाश में बहुत दूर तक उड़कर और नीचे रसातल में बहुत दूर तक जाकर भी मैं उस स्थान को नहीं देख सका हूँ जो मृत्यु का अगोचर न हो ॥25॥ छठवें काल की समाप्ति होने पर यह समस्त भारतवर्ष नष्ट हो जाता है और बड़े-बड़े पर्वत भी विशीर्ण हो जाते हैं तब फिर मनुष्य के शरीर को तो कथा ही क्या है? ॥26॥ जो वनमय शरीर से युक्त थे तथा सुर और असुर भी जिन्हें मार नहीं सकते थे ऐसे लोगों को भी अनित्यता ने प्राप्त कर लिया है

फिर केले के भीतरी भाग के समान निःसार मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? ॥27॥ जिस प्रकार पाताल के अंदर छिपे हुए नाग को गरुड़ खींच लेता है उसी प्रकार माता से आलिंगित प्राणी को भी मृत्यु हर लेती है ॥28॥ हाय भाई ! हाय प्रिये ! हाय पुत्र ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ यह अत्यंत दुःखी संसाररूपी मेंढक, कालरूपी साँप के द्वारा अपना ग्रास बना लिया जाता है ॥29॥ 'मैं यह कर रहा हूँ और यह आगे करूँगा' इस प्रकार दुर्बुद्धि मनुष्य कहता रहता है फिर भी यमराज के भयंकर मुख में उस तरह प्रवेश कर जाता है जिस तरह कि कोई जहाज समुद्र के भीतर ॥30॥ यदि भवांतर में गये हुए मनुष्य के पीछे यहाँ के लोग जाने लगें तो फिर शत्रु मित्र किसी के भी साथ कभी वियोग ही न हो ॥31॥ जो पर को स्वजन मानकर उसके साथ स्नेह करता है वह नरकुंजर अवश्य ही दुःखरूपी अग्नि में प्रवेश करता है ॥32॥ संसार में प्राणियों को जितने आत्मीयजनों के समूह प्राप्त हुए हैं समस्त समुद्रों की बालू के कण भी उनके बराबर नहीं हैं। भावार्थ असंख्यात समुद्रों में बालू के जितने कण हैं उनसे भी अधिक इस जीव के आत्मीयजन हो चुके हैं ॥33॥ नाना प्रकारकी प्रियचेष्टाओं को करने वाला यह प्राणी, अन्य भव में जिसका बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन करता है वही दूसरे भव में इसका शत्रु हो जाता है और तीव्र क्रोध को धारण करने वाले उसी प्राणी के द्वारा मारा जाता है ॥34॥ जंमांतर में जिस प्राणी के स्तन पिये हैं, इस जन्म में भयभीत एवं मारे हुए उसी जीव का माँस खाया जाता है, ऐसे संसार को धिक्कार है ॥35॥ 'यह हमारा स्वामी है। ऐसा मानकर जिसे पहले शिरोनमन शिर झुकाना आदि विनयपूर्ण क्रियाओं से पूजित किया था वही इस जन्म में दासता को प्राप्त होकर लातों से पीटा जाता है ॥36॥ अहो! इस सामर्थ्यवान मोह की शक्ति तो देखो जिसके द्वारा वशीभूत हुआ यह प्राणी इष्टजनों के संयोग को उस तरह ढूँढ़ता फिरता है जिस तरह कि कोई हाथ से महानाग को ॥37॥ इस संसार में तिलमात्र भी वह स्थान नहीं है जहाँ यह जीव मृत्यु अथवा जन्म को प्राप्त नहीं हुआ हो ॥38॥ इस जीवने नरकों में ताँबा आदिका जितना पिघला हुआ रस पिया है उतना स्वयंभूरमण समुद्र में पानी भी नहीं है ॥39॥ इस जीव ने सूकर का भव धारणकर जितने विष्ठा को अपना भोजन बनाया है मैं समझता हूँ कि वह हजारों विंध्याचलों से भी कहीं बहुत अधिक अत्यंत ऊँचा होगा ॥40॥ इस जीव ने परस्पर एक दूसरे को मारकर जो मस्तकों का समूह काटा है यदि उसे एक जगह रोका जाय एक स्थान पर इकट्ठा किया जाय तो वह ज्योतिषी देवों के मार्ग को भी उल्लंघन कर आगे जा सकता है ॥41॥ नरक-भूमि में गये हुए जीवों ने जो भारी दुःख उठाया है उसे सुन मोह के साथ मित्रता करना किसे अच्छा लगेगा ? ॥42॥ विषय-सुख में आसक्त हुआ यह प्राणी जिस शरीरके पीछे पलभर के लिए भी दुःख नहीं उठाना चाहता तथा मोहरूपी ग्रह से ग्रस्त हुआ पागल के समान संसार में भ्रमण करता रहता है, ऐसे कषाय और चिंता से खेद उत्पन्न करने वाले इस शरीर को छोड़ देना ही उचित है क्योंकि इनका यह ऐसा शरीर क्या अन्य शरीर से भिन्न है विलक्षण है ? ॥43-44॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि विद्याधरों में सूर्य स्वरूप बुद्धिमान् विभीषण ने यद्यपि राम को इस तरह बहुत कुछ समझाया था तथापि उन्होंने लक्ष्मण का शरीर उस तरह नहीं छोड़ा 'जिस तरह कि विनयी शिष्य गुरु की आज्ञा नहीं छोड़ता है ॥45॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण में लक्ष्मण के वियोग को लेकर विभीषण के द्वारा संसार की स्थिति का वर्णन करने वाला एक सौ सत्रहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥117॥

## लक्ष्मण का संस्कार

एक सौ अठारहवां पर्व

कथा :

अथानंतर सुग्रीव आदि राजाओं ने कहा कि हे देव ! हम लोग चिता बनाते हैं सो उस पर राजा लक्ष्मीधर के शरीर को संस्कार प्राप्त कराइए ॥1॥ इसके उत्तर में कुपित होकर रामने कहा कि चिता पर माताओं, पिताओं और पितामहों के साथ आप लोग ही जलें ॥2॥ अथवा पाप पूर्ण विचार रखने वाले आप लोगों का जो भी कोई इष्ट बंधु हो उसके साथ आप लोग ही शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हों ॥3॥ इस प्रकार अन्य सब राजाओं को उत्तर देकर वे लक्ष्मण के प्रति बोले कि भाई लक्ष्मण ! उठो, उठो, चलो दूसरे स्थान पर चलें। जहाँ दुष्टों के ऐसे वचन नहीं सुनने पड़ें ॥4॥ इतना कहकर वे शीघ्र ही भाई का शरीर उठाने लगे तब घबड़ाये हुए राजाओं ने उन्हें पीठ तथा कंधा आदिका सहारा दिया ॥5॥ राम, उन सबका विश्वास नहीं रखते थे इसलिए स्वयं अकेले ही लक्ष्मण को लेकर उस तरह दूसरे स्थानपर चले गये जिस तरह कि बालक विषफल को लेकर चला जाता है ॥6॥ वहाँ वे नेत्रों में आँसू भरकर कहे कि भाई ! इतनी देर क्यों सोते हो ? उठो, समय हो गया, स्नान-भूमि में चलो ॥7॥ इतना कहकर उन्होंने मृत लक्ष्मण को आश्रयसहित (टिकने के उपकरण से सहित) स्नान की चौकी पर बैठा

दिया और स्वयं महामोह से युक्त हो सुवर्ण कलश में रक्खे जलसे चिरकाल उसका अभिषेक करते रहे ॥8॥ तदनंतर मुकुट आदि समस्त आभूषणों से अलंकृत कर, भोजन-गृह के अधिकारियों को शीघ्र ही आज्ञा दिलाई कि नाना रत्नमय एवं स्वर्णमय पात्र इकट्ठे कर उनमें उत्तम भोजन लाया जाय ॥9-10॥ उत्तम एवं स्वच्छ मदिरा लाई जाय तथा रस से भरे हुए नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन उपस्थित किये जावें। इस प्रकार आज्ञा पाकर स्वामी की इच्छानुसार काम करने वाले सेवकों ने आदरपूर्वक सब सामग्री लाकर रख दी ॥11-12॥ तदनंतर रामने लक्ष्मण के मुख के भीतर भोजन का ग्रास रक्खा। पर वह उस तरह भीतर प्रविष्ट नहीं हो सका, जिस तरह कि जिनेंद्र भगवान का वचन अभव्य के कान में प्रविष्ट नहीं होता है ॥13॥ तत्पश्चात् राम ने कहा कि हे देव ! तुम्हारा मुझ पर क्रोध है तो यहाँ अमृत के समान स्वादिष्ट इस भोजन ने क्या बिगाड़ा? इसे तो ग्रहण करो ॥14॥ हेलदमोधर! तुम्हें यह उत्तम मदिरा निरंतर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नील कमल से सुशोभित पान पात्र में रखी हुई इस मदिरा को पिओ ॥15॥ ऐसा कहकर उन्होंने बड़े आदर के साथ वह मदिरा उनके मुख में रख दी पर वह सुंदर मदिरा निश्चेतन मुख में कैसे प्रवेश करती ॥16॥ इस प्रकार जिनकी आत्मा स्नेह से मूढ़ थी तथा जो वैराग्य से रहित थे ऐसे रामने जीवित दशा के समान लक्ष्मण के विषय में व्यर्थ ही समस्त क्रियाएँ कीं ॥17॥ यद्यपि लक्ष्मण निष्प्राण हो चुके थे तथापि रामने उनके आगे वीणा बाँसुरी आदि के शब्दों से सहित सुंदर संगीत कराया ॥18॥ तदनंतर जिसका शरीर चंदन से चर्चित था ऐसे लक्ष्मण को बड़ी इच्छा के साथ दोनों भुजाओं से उठाकर रामने अपनी गोद में रख लिया और उनके मस्तक कपोल तथा हाथ का बार-बार चुंबन किया ॥19॥ वे उनसे कहते कि हे लक्ष्मण, तुझे यह ऐसा हो क्या गया जिससे तू नींद नहीं छोड़ता, एक बार तो बता ॥20॥ इस प्रकार महामोह से संबद्ध कर्म का उदय आने पर स्नेह रूपी पिशाच से आक्रांत राम जब तक यहाँ यह चेष्टा करते हैं तब तक वहाँ यह वृत्तांत जान शत्रु उस तरह क्षोभ को प्राप्त हो गये जिस तरह कि परम तेज **अर्थ**ात् सूर्य को आच्छादित करने के लिए गरजते हुए काले मेघ ॥21-22॥ जिनके अभिप्राय में बहुत दूर तक विरोध समाया हुआ था तथा जो अत्यधिक क्रोध से सहित थे ऐसे शत्रु, शंबूक के भाई सुंद के पुत्र चारुरत्न के पास गये और चारुरत्न उन सबको साथ ले इंद्रजित के पुत्र वनमाली के पास गया ॥23॥ उसे उत्तेजित करता हुआ चारुरत्न बोला कि लक्ष्मण ने हमारे काका और बाबा दोनों को मारकर पाताल लंका के राज्य पर विराधित को स्थापित किया ॥24॥ तदनंतर वानर वंशियों की सेना को हर्षित करने के लिए चंद्रमा स्वरूप एवं भाई के समान हितकारी सुग्रीव को पाकर विरह से पीड़ित रामने अपनी स्त्री सीता का समाचार प्राप्त किया ॥25॥ तत्पश्चात् लंका को जीतने के लिए युद्ध करने के इच्छुक रामने विद्याधरों के साथ विमानों द्वारा समुद्र को लाँघकर अनेक द्वीप नष्ट किये ॥26॥ राम-लक्ष्मण को सिंहवाहिनी एवं गरुडवाहिनी नामक विद्याएँ प्राप्त हुई। उनके प्रभाव से उन्होंने इंद्रजित आदि को बंदी बनाया ॥27॥ तथा जिस लक्ष्मण ने चक्र रत्न पाकर रावण को मारा था इस समय वही लक्ष्मण काल के चक्र से मारा गया है ॥28॥ उसकी भुजाओं की छाया पाकर वानरवंशी उन्मत्त हो रहे थे पर इस समय वे पक्ष कट जाने से अत्यंत आक्रमण के योग्य अवस्था को प्राप्त हुए हैं। शोक को प्राप्त हुए राम को आज बारहवाँ पक्ष है वे लक्ष्मण के मृतक शरीर को लिये फिरते हैं अतः कोई विचित्र प्रकार का मोह□ पागलपन उन पर सवार है ॥29-30॥ यद्यपि हल-मुसल आदि शस्त्रों को धारण करने वाले राम अपनी सानी नहीं रखते तथापि इस समय शोकरूपी पंक में फंसे होने के कारण उन पर आक्रमण करना शक्य है ॥31॥ यदि हम लोग डरते हैं तो एक उन्हीं से डरते हैं और किसी से नहीं जिनके कि छोटे भाई लक्ष्मण ने हमारे वश को सब संगति नष्ट कर दी ॥32॥ अथानंतर इंद्रजित का पुत्र वनमाली अपने विशाल वंश पर उत्पन्न पूर्व संकट को सुनकर क्षुभित हो उठा और प्रसिद्ध मार्ग से प्रज्वलित होने लगा **अर्थ**ात् क्षत्रिय कुल प्रसिद्ध तेज से दमकने लगा ॥33॥ वह मंत्रियों को आज्ञा दे तथा भेरी के द्वारा सब लोगों को युद्ध में इकट्ठा कर सुंद पुत्र चारुरत्न के साथ अयोध्या की ओर चला ॥34॥ जो सेना रूपी समुद्र से सुरक्षित थे तथा सुग्रीव के प्रति जिनका क्रोध उमड़ रहा था ऐसे वे दोनों□ वज्रमाली और चारुरत्न, राम को कुपित करने के लिए उद्यत हो उनकी ओर चले ॥35॥ चारुरत्न के साथ वनमाली को आया सुन सब विद्याधर राजा रामचंद्र के पास आये ॥36॥ उस समय अयोध्या किंकर्तव्यमूढ़ता को प्राप्त हो सब ओर से क्षुभित हो उठी तथा जिस प्रकार लवणांकुश के आने पर भय से काँपने लगी थी उसी प्रकार भय से काँपने लगी ॥37॥ अनुपम पराक्रम को धारण करने वाले रामने जब शत्रुसेना को निकट देखा तब वे मृत लक्ष्मण को गोद में रख बाणों के साथ लाये हुए उस वज्रावर्त नामक महाधनुष की ओर देखने लगे कि जो अपने स्वभाव में स्थित था तथा यमराज को भ्रकुटि रूपी लता के समान कुटिल था ॥ 38-39॥
इसी समय स्वर्ग में कृतांतवक्त्र सेनापति तथा जटायु पक्षी के जीव जो देव हुए थे उनके आसन कंपायमान हुए ॥40॥ जिस विमान में जटायु का जीव उत्तम देव हुआ था उसी विमान में कृतांतवक्त्र भी उसी के समान वैभव का धारी देव हुआ था ॥41॥ कृतांतवक्त्र के जीव

ने जटायु के जीवसे कहा कि हे देवराज ! आज इस क्रोध को क्यों प्राप्त हुए हो? इसके उत्तर में अवधिज्ञान को जोड़ने वाले जटायु के जीव ने कहा कि जब मैं गृध्र पर्याय में था तब, जिसने प्रिय पुत्र के समान मेरा लालन-पालन किया था आज उसके संमुख शत्रु की बड़ी भारी सेना आ रही है और वह स्वयं भाई के मरण से शोक-संतप्त है ॥42-43॥ तदनंतर कृतांतवक्त्र के जीव ने भी अवधिज्ञान रूपी लोचन का प्रयोग कर नीचे होने वाले अत्यधिक दुःख से दुःखी तथा क्रोध से देदीप्यमान होते हुए कहा कि मित्र, सच है वह हमारा भी स्नेही स्वामी रहा है । इसके प्रसाद से मैंने पृथिवीतल पर अनेक दुर्दांत चेष्टाएँ की थीं ॥44-45॥ इसने मुझसे कहा भी था कि संकट से मुझे छुड़ाना । आज वह संकट इसे प्राप्त हुआ है इसलिए आओ शीघ्र ही इसके पास चलें ॥46॥

इतना कहकर जिनके काले-काले केश तथा कुंतलों का समूह हिल रहा था, जिनके मुकुटों का कांति चक्र देदीप्यमान हो रहा था, जिनके मणिमय कुंडल सुशोभित थे, जो परम उद्योगी थे तथा शत्रुका पक्ष नष्ट करने में निपुण थे ऐसे वे दोनों श्रीमान् देव, माहेंद्र स्वर्ग से अयोध्या की ओर चले ॥47-48॥ कृतांतवक्त्र के जीवने जटायु के जीव से कहा कि तुम तो जाकर शत्रु सेना को मोहित करो उसकी बुद्धि भ्रष्ट करो और मैं राम की रक्षा करने के लिए जाता हूँ ॥49॥ तदनंतर इच्छानुसार रूप परिवर्तित करने वाले बुद्धिमान जटायु के जीवने शत्रु को उस बड़ी भारी सेना को मोहयुक्त कर दिया भ्रम में डाल दिया ॥50॥ 'यह अयोध्या दिख रही है। ऐसा सोचकर जो शत्रु उसके समीप आ रहे थे उस देव ने माया से उनके आगे और पीछे बड़े-बड़े पर्वत दिखलाये । तदनंतर अयोध्या के निकट खड़े होकर उसने शत्रु विद्याधरों की समस्त सेना का निराकरण किया और पृथिवी तथा आकाश दोनों को अयोध्या नगरियों से अविरल व्याप्त करना शुरू किया ॥ 51-52॥ जिससे 'यह अयोध्या है, यह विनीता है, यह कोशलापुरी है, इस तरह वहाँ की समस्त भूमि और आकाश अयोध्या नगरियों से तन्मय हो गया ॥53॥ इस प्रकार पृथिवी और आकाश दोनों को अयोध्याओं से व्याप्त देखकर शत्रुओं की वह सेना अभिमान से रहित हो आपत्ति में पड़ गई ॥54॥ सेना के लोग परस्पर कहने लगे कि जहाँ यह राम नाम का कोई अद्भुत देव विद्यमान है वहाँ अब हम अपने प्राण किस तरह धारण करें जीवित कैसे रहे ? ॥55॥ विद्याधरों की ऋद्धियों में ऐसी विक्रिया शक्ति कहाँ से आई ? बिना विचारे काम करने वाले हम लोगों ने यह क्या किया ? ॥56॥ जिसकी हजार किरणों से व्याप्त हुआ जगत् सब ओर से देदीप्यमान हो रहा है, बहुत से जुगनूँ विरुद्ध होकर भी उस सूर्य का क्या कर सकते हैं ? ॥57॥ जबकि यह भयंकर सेना समस्त जगत् में व्याप्त हो रही है तब हे सखे ! हम भागना भी चाहें तो भी भागने के लिए मार्ग नहीं है ॥58॥ मरने में कोई बड़ा लाभ नहीं है क्योंकि जीवित रहने वाला मनुष्य कदाचित् अपने कर्मों के उदयवश कल्याण को प्राप्त हो जाता है ॥59॥ यदि हम इन सैनिक रूपी तरंगों के द्वारा बबूलों के समान नाश को भी प्राप्त हो गये तो उससे क्या मिल जायगा ? ॥60॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रही थी तथा जिसे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसी वह विद्याधरों की समस्त सेना अत्यंत विह्वल हो गई ॥61॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनंतर जटायु के जीव ने इस तरह विक्रिया द्वारा क्रीड़ा कर दयापूर्वक उन विद्याधर शत्रुओं को दक्षिण दिशा की ओर भागने का मार्ग दे दिया ॥62॥ इस प्रकार जिनके चित्त चंचल थे तथा जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसे वे सब विद्याधर बाज से डरे पक्षियों के समान बड़े वेग से भागे ॥63॥

अब आगे विभीषण के लिए क्या उत्तर देंगे ? इस समय जिनकी आत्मा एक दम दीन हो रही है ऐसे हम लोगों की क्या शोभा है ? ॥64॥ हम अपने ही लोगों को क्या कांति लेकर मुख दिखावेंगे? हम लोगों को धैर्य कहाँ हो सकता है ? अथवा जीवित रहने की इच्छा ही हम लोगों को कहाँ हो सकती है ? ॥65॥ ऐसा निश्चय कर उनमें जो इंद्रजित का पुत्र ब्रजमाली था वह लज्जा से युक्त हो गया। यतश्च वह देवों का प्रभाव देख चुका था अतः उसे अपने ऐश्वर्य में वैराग्य उत्पन्न हो गया। फल स्वरूप वह सुंद के पुत्र चारुरत्न तथा अन्य स्नेही जनों के साथ, क्रोध छोड़ रतिवेग नामक मुनि के पास साधु हो गया ॥66-67। भयभीत करने के लिए जटायु का जीव देव, विद्युत्प्रकाश नामक शस्त्र लेकर उन सबको दक्षिण को ओर खदेड़ रहा था सो उन सब राजाओं को नग्न तथा क्रोधरहित देख उसने अपना विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र संकुचित कर लिया ॥68॥ उद्विग्न चित्त का धारी वह देव अवधिज्ञान का प्रयोग कर विचार करने लगा कि अहो ! ये सब तो प्रतिबोध को प्राप्त हो परम ऋषि हो गये हैं ॥69॥ उस समय (राजा दंडक की पर्याय में ) मैंने निर्दोष आत्मा के धारी साधुओं को दोष दिया था घानी में पिलवाया था सो उसके फल स्वरूप तिर्यंचों और नरकों में मैंने बहुत भारी दुःख उठाया है। तथा अब भी उसी दुष्ट शत्रुका संस्कार भोग रहा हूँ परंतु वह संस्कार इतना थोड़ा रह गया है कि उसके निमित्त से पुनः दीर्घ संसार में भ्रमण नहीं करना पड़ेगा ॥70-71॥ ऐसा विचारकर उस बुद्धिमान् ने शांत हो अपने आपका परिचय दिया और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन मुनियों से क्षमा माँगी ॥72॥

तदनंतर इतना सब कर, वह अयोध्या में वहाँ पहुँचा जहाँ भाई के शोक से मोहित हो राम बालक के समान चेष्टा कर रहे थे ॥73॥ वहाँ

उसने बड़े आदर से देखा कि कृतांतवक्त्र का जीव राम को समझाने के लिए वेष बदलकर एक सूखे वृक्ष को सींच रहा है ॥74॥ यह देख जटायु का जीव भी दो मृतक बैलों के शरीर पर हल रखकर परेना हाथ में लिये शिलातल पर बीज बोने का उद्यम करने लगा ॥75॥ कुछ समय बाद कृतांतवक्त्र का जीव राम के आगे जल से भरी मटकी को मथने लगा और जटायु का जीव घानी में बालू डाल पेलने लगा ॥76॥ इस प्रकार इन्हें आदि लेकर और भी दूसरे-दूसरे निरर्थक कार्य इन दोनों देवों ने राम के आगे किये। तदनंतर राम ने यथाक्रम से उनके पास जाकर पूछा कि अरे मूर्ख ! इस मृत वृक्ष को क्यों सींच रहा है कलेवर पर हल क्यों रक्खे हुए हैं ?, पत्थर पर बीज क्यों बरबाद करता है ? पानी के मथने में मक्खन की प्राप्ति कैसे होगी ? और रे बालक ! बालू के पेलने से क्या कहीं तेल उत्पन्न होता है ? इन सब कार्यों में केवल परिश्रम ही हाथ रहता है इच्छित फल तो परमाणु बराबर भी नहीं मिलता फिर यह व्यर्थ की चेष्टा क्यों प्रारंभ कर रक्खी है ॥77-80॥

तदनंतर क्रम से उन दोनों देवों ने कहा कि हम भी एक यथार्थ बात आपसे पूछते हैं कि आप इस जीवरहित शरीर को व्यर्थ ही क्यों धारण कर रहे हैं ? ॥81॥ तब जिनका मन कलुषित हो रहा था ऐसे श्री रामदेव ने उत्तम लक्षणों के धारक लक्ष्मण के शरीर का भुजाओं से आलिंगन कर कहा कि अरे अरे ! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मण की बुराई क्यों करते हो ? ऐसे अमांगलिक शब्द के कहने में क्या तुम्हें दोष नहीं लगता ? ॥82-83॥ इस प्रकार जब तक राम का कृतांतवक्त्र के जीव के साथ उक्त विवाद चल रहा था तब तक जटायु का जीव एक मृतक मनुष्य का शरीर लिये हुए वहाँ आ पहुँचा ॥84॥ उसे सामने खड़ा देख रामने उससे पूछा कि तु मोह युक्त हुआ इस मृत शरीर को कंधे पर क्यों रक्खे हुए है ? ॥85॥ इसके उत्तर में जटायु के जीव ने कहा कि तुम विद्वान् होकर भी हमसे पूछते हो पर स्वयं अपने आपसे क्यों नहीं पूछते जो श्वासोच्छास तथा नेत्रों की टिमकार आदि से रहित शरीर को धारण कर रहे हो ॥86॥ दूसरे के तो बाल के अग्रभाग बराबर सूक्ष्म दोष को जल्दी से देख लेते हो पर अपने मेरु के शिखर बराबर बड़े-बड़े दोषों को भी नहीं देखते हो ? ॥87॥ आपको देखकर हम लोगों को बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ क्यों कि यह सूक्ति भी है कि सदृश प्राणी अपने ही सदृश प्राणी में अनुराग करते हैं ॥88॥ इच्छानुसार कार्य करने वाले हम सब पिशाचों के आप सर्वप्रथम मनोनीत राजा हैं ॥89॥ हम उन्मत्तों के राजा की ध्वजा लेकर समस्त पृथिवी में घूमते फिरते हैं और उन्मत्त तथा प्रतिकूल खड़ी समस्त पृथिवी को अपने अनुकूल करने जाते हैं ॥90॥ इस प्रकार देवों के वचनों का आलंबन पाकर राम का मोह शिथिल हो गया और वे गुरुओं के वचनों का स्मरण कर अपनी मूर्खता पर लज्जित हो उठे ॥91॥ उस समय जिनका मोहरूपी मेघ-समूह का आवरण दूर हो गया था ऐसे राजा रामचंद्र रूपी चंद्रमा प्रतिबोधरूपी किरणों से अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥92॥ उस समय धैर्य गुण से सहित राम का मन मेघ-रूपी कीचड़ से रहित शरद् ऋतु के आकाश के समान निर्मल हो गया था ॥93॥ स्मरण में आये तथा अमृत से निर्मित की तरह मधुर गुरुओं के वचनों से जिनका शोक हर लिया गया था ऐसे राम उस समय उस तरह अत्यधिक सुशोभित हुए थे जिस तरह कि पहले पुत्रों के मिलाप-संबंधी सुख को धारण करते हुए सुशोभित हुए थे ॥94॥ उस समय उन्हीं गुरुओं के वचनों से जिन्होंने धैर्य धारण किया था ऐसे पुरुषोत्तम राम, जिनेंद्र भगवान् के जन्माभिषेक के जलसे मेघ के समान कांति को प्राप्त हुए थे ॥95॥ जिनकी आत्मा विशुद्ध थी तथा अभिप्राय कलुषता से रहित था ऐसे राम उस समय तुषार की वायु से रहित कमल वन के समान आह्लाद से युक्त थे ॥96॥ उस समय उन्हें ऐसा हर्ष हो रहा था मानो महान् गाढ़ अंधकार में भूला व्यक्ति सूर्य के उदय को प्राप्त हो गया हो, अथवा तीव्र क्षुधा से पीड़ित व्यक्ति इच्छानुकूल उत्तम भोजन को प्राप्त हुआ हो ॥97॥ अथवा तीव्र प्यास से ग्रस्त मनुष्य किसी महासरोवर को प्राप्त हुआ हो अथवा अत्यधिक रोग से पीड़ित मनुष्य महौषधि को प्राप्त हो गया हो ॥98॥ अथवा महासागर को पार करने के लिए इच्छुक मनुष्य को जहाज मिल गई हो अथवा कुमार्ग में पड़ा नागरिक सुमार्ग में आ गया हो ॥99॥ अथवा अपने देश को जाने के लिए इच्छुक मनुष्य व्यापारियों के किसी महासंघ में आ मिला हो अथवा कारागृह से निकलने के लिए इच्छुक मनुष्य का मजबूत अर्गल टूट गया हो ॥100॥ जिन मार्ग का स्मरण पाकर राम हर्ष से खिल उठे और फूले हुए कमल के समान नेत्रों को धारण करते हुए परम कांति को धारण करने लगे ॥101॥ उन्होंने मनमें ऐसा विचार किया कि जैसे मैं अंधकूप के मध्य से निकल कर बाहर आया हूँ अथवा दूसरे ही भव को प्राप्त हुआ हूँ ॥102॥ वे विचार करने लगे कि अहो, तृण के अग्रभाग पर स्थित जल की बूंदों के समान चंचल यह मनुष्य का जीवन क्षणभर में नष्ट हो जाता है ॥103॥ चतुर्गति रूप संसार के बीच भ्रमण करते हुए मैंने बड़ी कठिनाई से मनुष्य-शरीर पाया है फिर व्यर्थ ही क्यों मूर्ख बन रहा हूँ ? ॥104॥ ये इष्ट स्त्रियाँ किसकी हैं ? ये धन, वैभव किसके हैं ? और ये भाई-बांधव किसके हैं ? संसार में ये सब सुलभ हैं परंतु एक बोधि ही अत्यंत दुर्लभ है ॥105॥

इस प्रकार श्री राम को प्रबुद्ध जान कर उक्त दोनों देवों ने अपनी माया समेट ली तथा लोगों को आश्चर्य में डालने वाली देवों की विभूति प्रकट की ॥106॥ सुखकर स्पर्श से सहित तथा सुगंधि से भरी हुई अपूर्व वायु बहने लगी और आकाश अत्यंत सुंदर वाहनों और विमानों से व्याप्त हो गया ॥107॥ देवांगनाओं द्वारा वीणा के मधुर शब्द के साथ गाया हुआ अपना क्रम पूर्ण चरित श्री रामने सुना ॥108॥ इसी बीच में कृतांतवक्त्र के जीव ने जटायु के जीव के साथ मिलकर श्री राम से पूछा कि हे नाथ ! क्या ये दिन सुख से व्यतीत हुए ? देवों के ऐसा पूछने पर राजा रामचंद्र ने उत्तर दिया कि मेरा सुख क्या पूछते हो ? समस्त सुख तो उन्हीं को प्राप्त है जो मुनि पद को प्राप्त हो चुके हैं ॥109-110॥ मैं आपसे पूछता हूँ कि सौम्य दर्शन वाले आप दोनों कौन हैं ? और किस कारण आप लोगों ने ऐसी चेष्टा की ? ॥111॥ तदनंतर जटायु के जीव देव ने कहा कि हे राजन् ! जानते हैं आप, जब मैं वन में गीध था और मुनिराज के दर्शन से शांति को प्राप्त हुआ था ॥112॥ वहाँ आपने भाई लक्ष्मण और देवी-सीता के साथ मेरा लालन-पालन किया था । सीता हरी गई थी और उसमें मैं रुकावट डालने वाला था अतः रावण के द्वारा मारा गया था ॥113॥ हे प्रभो ! उस समय शोक से विह्वल होकर आपने मेरे कान में पच परमेष्ठियों से संबंध रखने वाला पंच नमस्कार मंत्र का जाप दिलाया था ॥114॥ मैं वही जटायु, आपके प्रसाद से उस प्रकार के तिर्यंच गति संबंधी दुःख का परित्याग कर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था ॥115॥ हे गुरो ! देवों के अत्यंत उदार महासुखों से मोहित होकर मुझ अज्ञानी ने नहीं जाना कि आप पर इतनी विपत्ति आई है ॥116॥ हे देव ! जब आपकी विपत्ति का अंत आया तब आपके कर्मोदय ने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया और कुछ प्रतीकार करने के लिए आया हूँ ॥117॥

तदनंतर कृतांतवक्त्र का जीव भी कुछ अच्छा-सा वेष धारणकर बोला कि हे नाथ ! मैं आपका कृतांतवक्त्र सेनापति था ॥118॥ आपने कहा था कि 'कष्ट के समय मेरा स्मरण रखना' सो हे स्वामिन् ! आपका वही आदेश बुद्धिगत कर आपके समीप आया हूँ ॥119॥ उस समय देवों की उस ऋद्धि को देख भोगी मनुष्य परम आश्चर्य को प्राप्त होते हुए निर्मलचित्त हो गये ॥120॥ तदनंतर रामने कृतांतवक्त्र सेनापति तथा देवों के अधिपति जटायु के जीवों से कहा कि अहो भद्र पुरुषो ! तुम दोनों विपत्तिग्रस्त जीवों का उद्धार करने वाले हो ॥121॥ देखो, महाप्रभाव से संपन्न एवं अत्यंत शुद्ध हृदय के धारक तुम दोनों देव मुझे प्रबुद्ध करने के लिए स्वर्ग से यहाँ आये ॥122॥ इस प्रकार उन दोनों से वार्तालाप कर शोकरूपी संकट से पार हुए रामने सरयू नदी के तट पर लक्ष्मण का दाह संस्कार किया ॥123॥

तदनंतर वैराग्यपूर्ण हृदय के धारक विषादरहित रामने धर्म-मर्यादा की रक्षा करने वाले निम्नांकित वचन शत्रुघ्न से कहे ॥124॥ उन्होंने कहा कि हे शत्रुघ्न ! तुम मनुष्यलोक का राज्य करो। सब प्रकार की इच्छाओं से जिसका मन और आत्मा दूर हो गई है ऐसा मैं मुक्ति पद की आराधना करने के लिए तपोवन में प्रवेश करता हूँ ॥125॥ इसके उत्तर में शत्रुघ्न ने कहा कि देव ! मैं राग के कारण भोगों में लुब्ध नहीं हूँ। मेरा मन निर्ग्रंथ समाधिरूपी राज्य में लग रहा है इसलिए मैं आपके साथ उसी निर्ग्रंथ समाधि रूप राज्य को प्राप्त करूँगा। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है ॥126॥ हे नरसूर्य ! इस संसार में मन को हरण करने वाले कामोपभोगों में, मित्रों में, संबंधियों में, भाई-बांधवों में, अभीष्ट वस्तुओं में तथा स्वयं अपने आपके जीवन में किसे तृप्ति हुई है ? ॥127॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराण में लक्ष्मण के संस्कार का वर्णन करने वाला एक सौ अठारहवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥118॥

## राम की दीक्षा

एक सौ उन्नीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर शत्रुघ्न के हितकारी और दृढ़ निश्चयपूर्ण वचन सुनकर राम क्षणभर के लिए विचार में पड़ गये । तदनंतर मन से विचार कर अनंगलवण के पुत्र को समीप में बैठा देख उन्होंने उसी के लिए परम ऋद्धि से युक्त राज्यपद प्रदान किया ॥1-2॥ जो पिता के समान गुण और.. क्रियाओं से युक्त था, तथा जिसे समस्त सामंत प्रणाम करते थे ऐसा वह अनंतलवण भी कुल का, भार उठाने वाला हुआ ॥3॥ परम प्रतिष्ठा को प्राप्त एवं उत्कट अनुराग और प्रताप को धारण करने वाले अनंतलवण ने विजय बलभद्र के समान पृथिवीतल के समस्त मंगल प्राप्त किये ॥4॥ विभीषण ने लंका का राज्य अपने पुत्र सुभूषण के लिए दिया और सुग्रीव ने भी अपना राज्य अंगद के पुत्र के लिए प्रदान किया ॥5॥

तदनंतर जिस प्रकार पहले भरत ने राज्य छोड़ दिया था उसी प्रकार रामने राज्य को विष मिले अन्न के समान अथवा अपराधी स्त्री के

समान देखकर छोड़ दिया ॥6॥ जो जन्म-मरण से भयभीत थे तथा जो शिथिलीभूत कर्म कलंक को धारणकर रहे थे ऐसे श्रीराम ने भगवान् मुनि सुव्रतनाथ के द्वारा प्रदर्शित आत्म-कल्याण का एक वही मार्ग चुना जो कि मोक्ष का कारण था, सुर-असुरों के द्वारा नमस्कृत था, साधक मुनियों के द्वारा सेवित था तथा जिसमें माध्यस्थ्य भाव रूप गुण का उदय होता था ॥7-8॥ बोधि को पाकर क्लेश भाव से निकले राम, मेघ-मंडल से निर्गत सूर्य के समान अत्यधिक देदीप्यमान हो रहे थे ॥9॥

अथानंतर राम सभा में विराजमान थे उसी समय अर्हदास नाम का एक सेठ उनके दर्शन करने के लिए आया था, सो राम ने उससे समस्त मुनिसंघ की कुशल पूछी ॥10॥ सेठ ने उत्तर दिया कि हे महाराज ! आपके इस कष्ट से पृथिवीतल पर मुनि भी परम व्यथा को प्राप्त हुए हैं ॥11॥ उसी समय मुनिसुव्रत भगवान की वंश-परंपरा को धारण करने वाले निबंध आत्मा के धारक, आकाशगामी भगवान् सुव्रत नामक मुनि राम की दशा जान वहाँ आये ॥12॥

मुनि आये हैं यह सुन अत्यधिक हर्ष के कारण जिन्हें रोमांच निकल आये थे तथा जिनके नेत्र फूल गये थे ऐसे श्रीराम मुनि के समीप गये ॥13॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिस प्रकार पहले विजय बलभद्र स्वर्ण कुंभ नामक मुनिराज के समीप गये थे उसी प्रकार भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओं के द्वारा सेवित एवं महाभ्युदय के धारक राम सुभक्ति के साथ सुव्रत मुनि के पास पहुँचे । गुणों के श्रेष्ठ हजारों निर्ग्रंथ जिनकी पूजा कर रहे थे ऐसे उन मुनि के पास जाकर रामने हाथ जोड़ शिर से नमस्कार किया ॥14-15॥ मुक्ति के कारणभूत उन उत्तम महात्मा के दर्शन कर रामने अपने आपको ऐसा जाना मानो अमृत के सागर में ही निमग्न हो गया होऊँ ।16॥ जिस प्रकार पहले महापद्म चक्रवर्ती ने मुनिसुव्रत भगवान की परम महिमा की थी उसी प्रकार श्रद्धा से भरे श्रीमान् रामने उन सुव्रत नामक मुनिराज की परम महिमा की ॥17॥ सब प्रकार के आदर करने में योग देने वाले विद्याधरों ने भी ध्वजा तोरण अर्घदान तथा संगीत आदि को उत्कृष्ट व्यवस्था की थी ॥18॥

तदनंतर रात व्यतीत होने पर जब सूर्योदय हो चुका तब रामने मुनियों को नमस्कार कर निर्ग्रंथ दीक्षा देने की प्रार्थना की ॥19॥ उन्होंने कहा कि हे योगिराज! जिसके समस्त पाप दूर हो गये हैं तथा राग-द्वेष का परिहार हो चुका है ऐसा मैं आपके प्रसाद से विधिपूर्वक विहार करने के लिए उत्कंठित हूँ ॥20॥ इसके उत्तर में मुनिसंघ के स्वामी ने कहा कि हे राजन् ! तुमने बहुत अच्छा विचार किया, विनाश से नष्ट हो जाने वाले इस समस्त परिकर से क्या प्रयोजन है? ॥21॥ सनातन, निराबाध तथा उत्तम अतिशय से युक्त सुख को देने वाले जिनधर्म में अवगाहन करने की जो तुम्हारी भावना है वह बहुत उत्तम है ॥22॥ मुनिराज के इस प्रकार कहने पर संसार की वस्तुओं में विराग रखने वाले रामने उन्हें उस प्रकार प्रदक्षिणा दी जिस प्रकार कि सूर्य सुमेरु पर्वत की देता है ॥23॥ जिन्हें महाबोधि उत्पन्न हुई थी, जो महासंवेग रूपी कवच को धारण कर रहे थे और जो कमर कसकर बड़े धैर्य के साथ कोका क्षय करने के लिए उद्यत हुए थे ऐसे श्री राम आशारूपी पाश को छोड़कर, स्नेहरूपी पिंजड़े को जलाकर, बी रूपी सांकल को तोड़कर, मोह का घमंड चूर कर, और आहार, कुंडल, मुकुट तथा वस्त्र को छोड़कर पर्यंकासन से विराजमान हो गये । उनका हृदय परमार्थ के चिंतन में लग रहा था, उनके शरीर पर मल का पुंज लग रहा था, और उन्होंने श्वेत कमल के समान सुकुमार अंगुलियों के द्वारा शिर के बाल उखाड़ कर फेंक दिये थे ॥24-27॥ जिनका सब परिग्रह छूट गया था ऐसे राम उस समय राहु के चंगुल से छूटे हुए सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे ॥28॥ जो शीलव्रत के घर थे, उत्तम गुप्तियों से सुरक्षित थे, पंच समितियों को प्राप्त थे और पाँच महाव्रतों की सेवा करते थे ॥29॥ छह काम के जीवों की रक्षा करने में तत्पर थे, मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रूप तीन प्रकार के दंड को नष्ट करने वाले थे, सप्त भय से रहित थे, आठ प्रकार के मद को नष्ट करने वाले थे ॥30॥ जिनका वक्षस्थल श्रीवत्स के चिह्न से अलंकृत था, गुणरूपी आभूषणों के धारण करने में जिनका मन लगा था और जो मुक्तिरूपी तत्त्व प्राप्त करने में सुदृढ़ थे ऐसे राम उत्तम श्रमण हो गये ॥31॥ जिनका शरीर दिख नहीं रहा था ऐसे देवों ने देव दुंदुभि बजाई, तथा भक्ति प्रकट करने में तत्पर पवित्र भावना के धारक देवों ने दिव्य पुष्पों की वर्षा की ॥32॥ उस समय श्री राम के गृहस्थावस्था रूपी महापाप से निष्क्रांत होनेपर कल्याणकारी मित्र कृतांतवक्त्र और जटायु के जीवरूप देवों ने महान् उत्सव किया ॥33॥ वहाँ श्री राम के दीक्षित होनेपर राजाओं सहित समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर आश्चर्य से चकित चित्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि देवों ने भी जिनका कल्याण किया ऐसे राम देव जहाँ इस प्रकार की दुस्त्यज विभूति को छोड़कर मुनि हो गये वहाँ हम लोगों के पास छोड़ने के योग्य प्रलोभन है ही क्या ? जिसके कारण हम व्रत की इच्छा से रहित हैं ॥34-36॥ इस प्रकार विचारकर तथा हृदय में अपनी आसक्ति पर दुःख प्रकट कर संवेग से भरे अनेकों लोग घर के बंधन से निकल भागे ॥37॥

शत्रुघ्न भी रागरूपी पाश को छेदकर, द्वेषरूपी वैरी को नष्ट कर तथा समस्त परिग्रह से निर्मुक्त हो श्रमण हो गया ॥38॥ तदनंतर विभीषण, सुग्रीव, नील, चंद्रनख, नल, क्रव्य तथा विराधित आदि अनेक विद्याधर राजा भी बाहर निकले ॥39॥ जिन विद्याधरों ने विद्या का परित्यागकर दीक्षा धारण की थी उनमें से कितने ही लोगों को पुनः चारणऋद्धि उत्पन्न हो गई थी ॥40॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राम के दीक्षा लेने पर कुछ अधिक सोलह हजार साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती नामक साध्वी के पास आर्यिका हुई ॥41-42॥

अथानंतर गुरु की आज्ञा पाकर श्रीराम निर्ग्रंथ मुनि,सुख-दुःखादि के द्वंद्व को दूर कर एकाकी विहार को प्राप्त हुए ॥43॥ वे रात्रि के समय पहाड़ों की उन गुफाओं में निवास करते थे जो चंचल चित्त मनुष्यों के लिए भय उत्पन्न करने वाले थे तथा जहाँ क्रूर हिंसक जंतुओं के शब्द व्याप्त हो रहे थे ॥44॥ उत्तम योग के धारक एवं योग्य विधि का पालन करने वाले उन मुनि को उसी रात में अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥45॥ उस अवधिज्ञान के प्रभाव से वे समस्त रूपी जगत् को हथेली पर रखे हुए निर्मल स्फटिक के समान ज्यों-का-त्यों देखने लगे ॥46॥ उस अवधिज्ञान के द्वारा उन्होंने यह भी जान लिया कि लक्ष्मण परभव में कहाँ गया परंतु यतश्च उनका मन सब प्रकार के बंधन तोड़ चुका था इसलिए विकार को प्राप्त नहीं हुआ ॥47॥ वे सोचने लगे कि देखो, जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्था में, तीन सौ वर्ष मंडलेश्वर अवस्था में और चालीस वर्ष दिग्विजय में व्यतीत हुए ॥48॥ जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पद का सेवन किया ॥49॥ और जिसने पच्चीस कम बारह हजार वर्ष भोगीपना प्राप्त कर व्यतीत किये वह लक्ष्मण अंत में भोगों से तप्त न होकर नीचे गया ॥50॥ लक्ष्मण के मरण में उन दोनों देवों का कोई दोष नहीं है, यथार्थ में भाई की मृत्यु के बहाने उसका वह काल ही आ पहुँचा था ॥51॥ जिसका चित्त मोह के आधीन था ऐसे मेरे तथा उसके वसुदत्त को आदि लेकर अनेक प्रकार के नाना जन्म साथ-साथ बीत चुके हैं ॥52॥ इस प्रकार व्रत और शील के पर्वत तथा उत्तम धैर्य को धारण करने वाले पद्ममुनि ने समस्त बीती बात जान ली ॥53॥ वे पद्ममुनि उत्तम लेश्या से युक्त, गंभीर, गुणों के सागर, उदार हृदय एवं मुक्ति रूपी लक्ष्मी के प्राप्त करने में तत्पर थे ॥54॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैं यहाँ आये हुए तुम सब लोगों से भी कहता हूँ कि तुम लोग उसी मार्ग में रमण करो जिसमें कि रघूत्तम□ राममुनि रमण करते थे ॥55॥ जिन-शासन में शक्ति और भक्तिपूर्वक प्रवृत्त रहने वाले मनुष्य, जिस समस्त प्रयोजन की प्राप्ति होती है ऐसे मुक्तिपद के निकटवर्ती जन्म को प्राप्त होते हैं ॥56॥ हे भव्य जनो! तुम सब जिनवाणी रूपी महारत्नों के खजाने को पाकर कुलिंगियों के दुःखदायी समस्त शास्त्रों का परित्याग करो ॥57॥ जिनकी आत्मा खोटे शास्त्रों से मोहित हो रही है तथा जो कपट सहित कलुषित क्रिया करते है ऐसे मनुष्य जंमांधों की तरह कल्याण मार्ग को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं ॥58॥ कितने ही । शक्तिहीन बकवादी मनुष्य नाना उपकरणों को साधन समझ 'इनके ग्रहण में दोष नहीं है। ऐसा कहकर उन्हें ग्रहण करते हैं सो वे कुलिंगी हैं । मूर्ख मनुष्य उन्हें व्यर्थ ही आगे करते हैं वे खिन्न शरीर होते हुए बोझा ढोने वालों के समान भार को धारण करते हैं ॥59-60॥ वास्तवमें ऋषि वे ही हैं जिनकी परिग्रह में और उसको याचना में बुद्धि नहीं है। इसलिए उत्तम गुणों के धारक निर्मल निर्ग्रंथ साधुओं की ही विद्वज्जनों की सेवा करनी चाहिए। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे भव्य जनो ! इस तरह बलदेव का चरित सुनकर तथा संसारके कारणभूत समस्त उत्तम भोगों का त्याग. कर यत्नपूर्वक संसारवर्धक भावों से शिथिल होओ जिससे फिर कष्टरूपी सूर्य के संताप को प्राप्त न हो सको ॥61-62॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध तथा रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराण में बलदेव की दीक्षा का वर्णन करने वाला एक सौ उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥119॥

## नगर में क्षोभ

एक सौ बीसवां पर्व

कथा :

अथानंतर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह योगी बलदेव के गुणों का वर्णन करने के लिए एक करोड जिह्वाओं की विक्रिया करने वाला धरणेंद्र भी समर्थ नहीं है ॥1॥ तदनंतर पाँच दिन का उपवास कर धीर वीर महातपस्वी योगी राम पारणा करने के लिए विधिपूर्वक-ईर्यासमिति से चार हाथ पृथिवी देखते हुए नंदस्थली नगरी में गये ॥2॥ वे राम अपनी दीप्ति से ऐसे जान पड़ते थे मानो तरुण सूर्य ही हों, स्थिरता से ऐसे लगते थे मानो दूसरा पर्वत ही हों, शांत स्वभाव के कारण ऐसे जान पढ़ते थे मानो सूर्य के अगम्य दूसरा चंद्रमा ही हों, उनका हृदय धवल स्फटिक के समान शुद्ध था, वे पुरुषों में श्रेष्ठ थे, ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्तिधारी धर्म ही हों, अथवा तीन लोक

के जीवों का अनुराग ही हों, अथवा सब जीवों का आनंद एकरूपता को प्राप्त होकर स्थिति हुआ हो, वे महाकांति के प्रवाह से पृथिवी को तर कर रहे थे, और आकाश को सफेद कमलों के समूह से पूर्ण कर रहे थे। ऐसे श्रीराम को देख नगरी के समस्त लोग क्षोभ को प्राप्त हो गये ॥3-6॥

लोग परस्पर कहने लगे कि अहो ! आश्चर्य देखो, अहो आश्चर्य देखो जो पहले कभी देखने में नहीं आया ऐसा यह लोकोत्तर आकार देखो ॥7॥ यह कोई अत्यंत सुंदर महावृषभ यहाँ आ रहा है, अथवा जिसकी दोनों लंबी भुजाएँ नीचे लटक रही हैं ऐसा यह कोई अद्भुत मनुष्य रूपी मंदराचल है ॥8॥ अहो, इनका धैर्य धन्य है, सत्त्व-पराक्रम धन्य है, रूप धन्य है, कांति धन्य है, शांति धन्य है, मुक्ति धन्य है और गति धन्य है ॥9॥ जो एक युग प्रमाण अंतर पर बड़ी सावधानी से अपनी शांत दृष्टि रखता है ऐसा यह कौन मनोहर पुरुष यहाँ कहाँ से आ रहा है ॥10॥ उदार पुण्य को प्राप्त हुए इसके द्वारा कौन-सा कुल मंडित हुआ है यह किस कुल का अलंकार है ? और आहार ग्रहणकर किस पर अनुग्रह करता है ? ॥11॥ इस संसार में इंद्र के समान ऐसा दूसरा रूप कहाँ हो सकता है? अरे ! जिनका पराक्रम रूपी पर्वत क्षोभ रहित है ऐसे ये पुरुषोत्तम राम हैं ॥12॥ आओ-आओ इन्हें देखकर अपने चित्त, दृष्टि, जन्म, कर्म, बुद्धि, शरीर और चरित को सार्थक करो। इस प्रकार श्रीराम के दर्शन में लगे हुए नगरवासी लोगों का बहुत भारी आश्चर्य से भरा सुंदर कोलाहल पूर्ण शब्द उठ खड़ा हुआ ॥13-14॥

तदनंतर नगरी में राम के प्रवेश करते ही समयानुकूल चेष्टा करने वाले नर-नारियों के समूह से नगर के लंबे-चौड़े मार्ग भर गये ॥15॥ नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों से परिपूर्ण पात्र जिनके हाथ में थे तथा जो जल की भारी धारण कर रही थी ऐसी उत्सुकता से भरी अनेक उत्तम स्त्रियां खड़ी हो गई ॥16॥ अनेकों मनुष्य पूर्ण तैयारी के साथ मनोज्ञ जल से भरे पूर्ण कलश ले-लेकर आ पहुँचे ॥17॥ 'हे स्वामिन् ! यहाँ आइए, हे स्वामिन् ! यहाँ ठहरिए, हे मुनिराज ! प्रसन्नतापूर्वक यहाँ विराजिए' इत्यादि उत्तमोत्तम शब्द चारों ओर फैल गये ॥18॥ हृदय में हर्ष के नहीं समाने पर जिनके शरीर में रोमांच निकल रहे थे ऐसे कितने ही लोग जोर-जोर से अस्पष्ट सिंहनाद कर रहे थे ॥19॥ हे मुनींद्र ! जय हो, हे पुण्य के पर्वत ! वृद्धिंगत होओ तथा समृद्धिमान होओ' इस प्रकार के पुनरुक्त वचनों से आकाश भर गया था।॥20॥ 'शीघ्र ही बर्तन लाओ, स्थाल को जल्दी देखो, सुवर्ण की थाली जल्दी लाओ, दूध लाओ, गन्ना लाओ, दही पास में रक्खो, चाँदी के उत्तम बर्तन में शीघ्र ही खीर रक्खो, शीघ्र ही खड़ी शक्कर मिश्री लाओ, इस बर्तन में कपूर से सुवासित शीतल जल भरो, शीघ्र ही पुड़ियों का समूह लाओ, कलश में शीघ्र ही विधिपूर्वक उत्तम शिखरिणी रखो, अरी, चतुरे! हर्षपूर्वक उत्तम बड़े-बड़े लड्डू दे' इत्यादि कुलांगनाओं और पुरुषों के शब्दों से वह नगर तन्मय हो गया ॥21-25॥ उस समय उस नगर में लोग इतने संभ्रम में पड़े हुए थे कि भारी जरूरत के कार्य को भी लोभ नहीं मानते थे और न कोई बच्चों को ही देखते थे ॥26॥ सकड़ी गलियों में बड़े वेग से आने वाले कितने ही लोगों ने हाथों में बर्तन लेकर खड़े हुए मनुष्य गिरा दिये ॥27॥

इस प्रकार जिसमें लोगों के हृदय अत्यंत उन्नत थे तथा जिसमें हड़बड़ाहट के कारण विरुद्ध चेष्टाएँ की जा रही थीं ऐसा वह नगर सब ओर से उन्मत्त के समान हो गया था ॥28॥ लोगों के उस भारी कोलाहल और तेज के कारण हाथियों ने भी बाँधने के खंभे तोड़ डाले ॥29॥ उनकी कपोल पालियों में जो मदजल अधिक मात्रा में चिरकाल से सुरक्षित था वह गंडस्थल तथा कानों के विवरों से निकल-निकलकर पृथिवी को तर करने लगा ॥30॥ जिनके कान खड़े थे, जिनके नेत्रों की पुतलियाँ नेत्रों के मध्य में स्थित थीं, जिन्होंने घास खाना छोड़ दिया था, और जिनकी गरदन ऊपर की ओर उठ रही थी ऐसे घोड़े गंभीर हिनहिनाहट करते हुए भयभीत दशा में खड़े थे ॥31॥ जिन्होंने भयभीत होकर बंधन तोड़ दिये थे तथा जिनके पीछे-पीछे घबड़ाये हुए सईस दौड़ रहे थे ऐसे कितने ही घोड़ों ने मनुष्यों को व्याकुल कर दिया ॥32॥ इस प्रकार जब तक दान देने में तत्पर मनुष्य पारस्परिक महाक्षोभ से चंचल हो रहे थे तब तक क्षुभित सागर के समान उनका घोर शब्द सुनकर महल के भीतर स्थित प्रतिनंदी नाम का राजा कुछ रुष्ट हो सहसा क्षोभ को प्राप्त हुआ और 'यह क्या है।‘ इस प्रकार शब्द करता हुआ परिकर के साथ शीघ्र ही महल की छत पर चढ़ गया ॥33-35॥

तदनंतर महल की छत से लोगों के तिलक और कलंकरूपी पंक से रहित चंद्रमा के समान धवल कांति के धारक उन प्रधान साधु को देखकर राजा ने बहुत से वीरों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर तथा प्रीतिपूर्वक नमस्कार कर इन उत्तम मुनिराज को यहाँ मेरे पास ले आओ ॥36-37॥ 'स्वामी जो आज्ञा करें' इस प्रकार कह कर राजा के प्रधान पुरुष, लोगों की भीड़ को चीरते हुए उनके पास गये ॥38॥ और वहाँ जाकर हाथ जोड़ मस्तक से लगा मधुर वाणी से युक्त और उनकी कांति से हृत चित्त होते हुए इस प्रकार निवेदन करने लगे कि ॥

39॥ हे भगवन् ! इच्छित वस्तु ग्रहण कीजिए' इस प्रकार हमारे स्वामी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं सो उनके घर पधारिए ॥40॥ अन्य साधारण मनुष्यों के द्वारा निर्मित अपथ्य, विवर्ण और विरस भोजन से आपको क्या प्रयोजन है ॥41॥ हे महासाधो ! आओ प्रसन्नता करो, और इच्छानुसार निराकुलता पूर्वक अभिलषित आहार ग्रहण करो ॥42॥ ऐसा कहकर भिक्षा देने के लिए उद्यत उत्तम स्त्रियों को राजा के सिपाहियों ने दूर हटा दिया जिससे उनके चित्त विषाद युक्त हो गये ॥43॥ इस तरह उपचार की विधि से उत्पन्न हुआ अंतराय जानकर मुनिराज, राजा तथा नगरवासी दोनों के अन्न से विमुख हो गये ॥44॥ तदनंतर अत्यंत यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करने वाले मुनिराज जब नगरी से वापिस लौट गये तब लोगों में पहले की अपेक्षा अत्यधिक क्षोभ हो गया ॥45॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने इंद्रिय संबंधी सुख का त्याग कर दिया था ऐसे मुनिराज ने समस्त मनुष्यों को उत्कंठा से व्याकुल हृदय कर सघन वन में चले गये और वहाँ उन्होंने रात्रि भर के लिए प्रतिमा योग धारण कर लिया **अर्थ**ात् सारी रात कायोत्सर्ग से खड़े रहे ॥46॥ सुंदर चेष्टाओं के धारक नेत्रों को हरण करने वाले तथा पुरुषों में सूर्य समान उन वैसे मुनिराज को देखने के बाद जब पुनः वियोग होता था तब तिर्यंच भी अत्यधिक अधीरता को प्राप्त हो जाते थे ॥47॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराण में नगर के क्षोभ का वर्णन करने वाला एक सौ बीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥120॥

## श्रीराम को आहार दान

एक सौ इक्कीसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर कष्ट सहन करने वाले, मुनिश्रेष्ठ श्री राम ने पाँच दिन का दूसरा उपवास लेकर यह अवग्रह किया कि मृग समूह से भरे हुए इस वन में मुझे जो भिक्षा प्राप्त होगी उसे ही मैं ग्रहण करूँगा-भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश नहीं करूँगा ॥1-2॥ इस प्रकार कठिन अवग्रह लेकर जब मुनिराज वन में विराजमान थे तब एक प्रतिनंदी नाम का राजा दुष्ट घोड़े के द्वारा हरा गया ॥3॥ तदनंतर उसकी प्रभवा नाम की रानी शोकातुर हो मनुष्यों के समूह से हरण का मार्ग खोजती हुई घोड़े पर चढ़कर निकली । अनेक योधाओं का समूह उसके साथ था । 'क्या होगा ? कैसे राजा का पता चलेगा ?' इस प्रकार अत्यधिक चिंता करती हुई वह बड़े वेग से उसी मार्ग से निकली ॥4-5॥ हरे जाने वाले राजा के बीच में एक तालाब पड़ा सो वह दुष्ट अश्व उस तालाब की कीचड़ में उस तरह फंस गया जिस तरह कि गृहस्थ स्त्री में फंसा रहता है ॥6॥

तदनंतर सुंदरी रानी, वहाँ पहुँचकर और कमल आदि से युक्त सरोवर को देखकर कुछ मुसकराती हुई बोली कि राजन् ! घोड़ा ने अच्छा ही किया ॥7॥ यदि आप इस घोड़े के द्वारा नहीं हरे जाते तो नंदन वन जैसे पुष्पों से सहित यह सुंदर सरोवर कहाँ पाते ? इसके उत्तर में राजा ने कहा कि हाँ यह उद्यान-यात्रा आज सफल हुई जब कि जिसके देखने से तृप्ति नहीं होती ऐसे इस अत्यंत सुंदर वन के मध्य तुम आ पहुँची ॥8-9। इस प्रकार हास्यपूर्ण वार्ता कर पति के साथ मिली रानी, सखियों से आवृत हो उसी सरोवर के किनारे ठहर गई ॥10॥ तदनंतर निर्मल जल में क्रीडा कर, फूल तोड़कर तथा परस्पर एक दूसरे को अलंकृत कर जब दोनों दंपति भोजन करने के लिए बैठे तब इसी बीच में उपवास की समाप्ति को प्राप्त एवं साधु की क्रिया में निपुण मुनिराज राम, उनके समीप आये ॥11-12॥ उन्हें देख जिसे हर्ष उत्पन्न हुआ था, तथा रोमांच उठ आये थे ऐसा राजा रानी के साथ घबड़ा कर उठकर खड़ा हो गया ॥13॥ उसने प्रणाम कर कहा कि हे भगवन् ! खड़े रहिए, तदनंतर पृथिवीतल को शुद्ध कर उसे कमल आदि से पूजित किया ॥14॥ रानी ने सुगंधित जल से भरा पात्र उठाकर जल दिया और राजा ने मुनि के पैर धोये ॥15॥ तदनंतर जिसका समस्त शरीर हर्ष से युक्त था ऐसे उज्ज्वल राजा ने बड़े आदर के साथ उत्तम गंध रस और रूप से युक्त खीर आदिक आहार सुवर्ण पात्र में रक्खा और उसके बाद उत्कृष्ट श्रद्धा ने सहित हो वह उत्तम आहार उत्तम पात्र **अर्थ**ात् मुनिराज को समर्पित किया ॥16-17॥ तदनंतर जिस प्रकार दयालु मनुष्य का दान देने का मनोरथ बढ़ता जाता है उसी प्रकार मुनि के लिए दिया जाने वाला अन्न उत्तम दान के कारण बर्तन में वृद्धि को प्राप्त हो गया था। भावार्थ□ श्री राम मुनि अक्षीणऋद्धि के धारक थे इसलिए उन्हें जो अन्न दिया गया था वह अपने बर्तन में अक्षीण हो गया था ॥18॥ दाता को श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि गुणों से युक्त उत्तम दाता जानकर देवों ने प्रसन्नचित्त हो आकाश में उसका अभिनंदन किया अर्थात् पंचाश्चर्य किये ॥19॥ अनुकूल□ शीतल मंद सुगंधित वायु चली, देवों ने हर्षित हो पाँच वर्ण की सुगंधित पुष्पवृष्टि की, आकाश में कानों को हरने वाला नाना प्रकार का

दुंदुभि नाद हुआ, अप्सराओं के संगीत की उत्तम ध्वनि उस दुंदुभिनाद के साथ मिली हुई थी, संतोष से युक्त कंदर्प जाति के देवों ने अनेक प्रकार के शब्द किये तथा आकाश में नाना रस पूर्ण अनेक प्रकार का नृत्य किया ॥20-22॥ अहो दान, अहो पात्र, अहो विधि, अहो देव, अहो दाता तथा धन्य-धन्य आदि शब्द आकाश में किये गये ॥23॥ बढ़ते रहो, जय हो, तथा समृद्धिमान होओ आदि देवों के विशाल शब्द आकाश रूपी मंडप में व्याप्त हो गये ॥24॥ इनके सिवाय नाना प्रकार के रत्न तथा सुवर्णादि उत्तम द्रव्यों से युक्त धन की वृष्टि दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई पड़ी ॥25॥ विशुद्ध सम्यग्दर्शन का धारक राजा प्रतिनंदी देवों से पूजा तथा मुनि से देशव्रत प्राप्त कर पृथिवी में गौरव को प्राप्त हुआ ॥26॥ इस प्रकार भक्ति से नम्रीभूत भार्या सहित राजा ने सुपात्र के लिए दान देकर अत्यधिक हर्ष का अनुभव किया और मनुष्य जन्म को सफल माना ॥27॥ इधर श्री रामने भी आगम में कहे अनुसार प्रवृत्ति कर, एकांत स्थान में शयनासन किया तथा तप से अत्यंत देदीप्यमान हो पृथिवी पर उस तरह योग्य विहार किया कि जिस तरह मानो दूसरा सूर्य ही पृथिवी पर आ पहुँचा हो ॥28॥

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें श्रीराम के आहार दान का वर्णन करने वाला एक सौ इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥121॥

## श्रीराममुनि को केवलज्ञान

एक सौ बाईसवां पर्व

कथा :

अथानंतर जिनके राग-द्वेष शांत हो चुके थे ऐसे श्री भगवान् बलदेव ने सामान्य मनुष्यों के लिए अशक्य अत्यंत कठिन तप किया ॥1॥ जब सूर्य आकाश के मध्य में चमकता था तब तेला आदि का उपवास धारण करने वाले राम वन में आहारार्थ भ्रमण करते थे और गोपाल आदि उनकी उपासना करते थे ॥2॥ वे व्रत गुप्ति समिति आदि के प्ररूपक शास्त्रों के जानने वाले थे, जितेंद्रिय थे, साधुओं के साथ स्नेह करने वाले थे, स्वाध्याय में तत्पर थे, अनेक उत्तम कार्यों के विधायक थे, अनेक महाऋद्धियाँ प्राप्त होने पर भी निर्विकार थे, अत्यंत श्रेष्ठ थे, परीषह रूपी योद्धा तथा मोह को जीतने के लिए उद्यत रहते थे, तप के प्रभाव से व्याघ्र और सिंह शांत होकर उनकी ओर देखते थे, जिनके नेत्र हर्ष से विस्तृत थे तथा जिन्होंने अपनी गरदन ऊपर की ओर उठा ली थी ऐसे मृगों के झुंड बड़े प्रेम से उन्हें देखते थे, उनका चित्त मोक्ष में लग रहा था, तथा जो इच्छा और आसक्ति से रहित थे। इस प्रकार उत्तम गुणों को धारण करने वाले भगवान् राम वन के मध्य बड़े प्रयत्न से ईर्या समितिपूर्वक मार्ग में विहार करते थे ॥3-6॥

कभी शिलातल पर खड़े होकर अथवा पर्यंकासन से विराजमान होकर उस तरह ध्यान के भीतर प्रवेश करते थे जिस तरह कि सूर्य मेघों के भीतर प्रवेश करता है ॥7॥ वे प्रभु कभी किसी सुंदर स्थान में दोनों भुजाएँ नीचे लटकाकर मेरु के समान निष्कंपचित्त हो प्रतिमायोग से विराजमान होते थे ॥8॥ कहीं अत्यंत शांत एवं वैराग्य रूपी लक्ष्मी से युक्त राम जूड़ा प्रमाण भूमि को देखते हुए विहार करते थे और वनस्पतियों पर निवास करने वाली देवांगनाएँ उनकी पूजा करती थीं ॥9॥ इस प्रकार अनुपम आत्मा के धारक महामुनि राम ने जो उस प्रकार कठिन तप किया था, इस दुःषम नामक पंचम काल में अन्य मनुष्य उसका ध्यान नहीं कर सकते हैं ॥10॥ तदनंतर विहार करते हुए राम क्रम-क्रम से उस कोटिशिला पर पहुँचे जिसे पहले लक्ष्मण ने नमस्कार कर अपनी भुजाओं से उठाया था ॥11॥ जिन्होंने स्नेह का बंधन तोड़ दिया था तथा जो कर्मों का क्षय करने के लिए उद्यत थे ऐसे महात्मा श्री राम उस शिला पर आरूढ़ हो रात्रि के समय प्रतिमा योग से विराजमान हुए ॥12॥

अथानंतर जिसने अवधिज्ञान रूपी नेत्र का प्रयोग किया था तथा जो अत्यधिक स्नेह से युक्त था ऐसे सीता के पूर्व जीव अच्युत स्वर्ग के प्रतींद्र ने उन्हें देखा ॥13॥ उसी समय उसने अपने पूर्व भव तथा जिन शासन के महोत्तम माहात्म्य को क्रम से स्मरण किया ॥14॥ स्मरण करते ही उसे ध्यान आ गया कि ये संसार के आभूषण स्वरूप वे राजा राम हैं जो मनुष्य लोक में जब मैं सीता थी तब मेरे पति थे ॥15॥ वह प्रतींद्र विचार करने लगा कि अहो ! कर्मों की विचित्रता से होने वाली मन की विविध चेष्टा को देखो जो पहले अन्य प्रकार की इच्छा थी और अब अन्य प्रकार की इच्छा हो रही है ॥16॥ अहो ! कार्यों की शुभ-अशुभ कर्मों में जो पृथक् पृथक् प्रवृत्ति है उसे देखो। लोगों का जन्म विचित्र है जो कि यह साक्षात् ही दिखाई देता है ॥17॥ ये बलभद्र और नारायण जगत् को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले थे पर अपने-अपने योग्य कर्मों के प्रभावक वे ऊर्ध्व तथा अधः स्थान प्राप्त करने वाले हुए **अर्थ**ात् एक लोक के ऊर्ध्व भाग में विराजमान होंगे और

एक अधोलोक में उत्पन्न हुआ ॥18॥ इनमें एक बड़ा तो क्षीण संसारी तथा चरम शरीरी है और दूसरा छोटा-लक्ष्मण, पूर्ण संसारी नरक में दुःखी हो रहा है ॥16॥ दिव्य तथा मनुष्य संबंधी भोगों से जिसकी आत्मा तृप्त नहीं हुई ऐसा लक्ष्मण पाप कर अभिमान के कारण नरक में दुःखी हो रहा है ॥20॥ यह कमललोचन श्रीमान् बलभद्र, लक्ष्मण के वियोग से जिनेंद्र भगवान् की शरण में आया है ॥21॥ यह सुंदर, पहले हल रत्न से बाह्य शत्रुओं को पराजित कर अब ध्यान की शक्ति से इंद्रियों को जीतने के लिए उद्यत हुआ है ॥22॥ इस समय यह क्षपक श्रेणी में आरूढ़ है इसलिए मैं ऐसा काम करता हूँ कि जिससे यह मेरा मित्र ध्यान से भ्रष्ट हो जाय ॥23॥ [ और मोक्ष न जाकर स्वर्ग में ही उत्पन्न हो ] तब महामित्रता से उत्पन्न प्रीति के कारण इसके साथ सुखपूर्वक मेरुपर्वत और नंदीश्वर द्वीप को जाऊँगा उस समय की शोभा ही निराली होगी। विमान के शिखर पर आरूढ़ तथा परम विभूति के सहित हम दोनों एक दूसरे के लिए अपने दुःख और सुख बतलावेंगे ॥24-25॥ फिर अधोलोक में पहुंचे हुए लक्ष्मण को प्रतिबुद्धता प्राप्त कराने के लिए शुभकार्य के करने वाले उन्हीं राम के साथ जाऊँगा ॥26॥ यह तथा इसी प्रकार का अन्य विचारकर सीता का जीव स्वयंप्रभ देव, अन्य देवों के साथ आरणाच्युत कल्प से उतरकर सौधर्म कल्प में आया ॥27॥ तदनंतर सौधर्म कल्प से चलकर वह पृथिवी के उस विस्तृत वन में उतरा जो कि नंदन वन के समान जान पड़ता था और जहाँ महामुनि रामचंद्र ध्यान लगाकर विराजमान थे ॥28॥

उस वन में अनेक फूलों की पराग को धारण करने वाली सुखदायक वायु बह रही थी और सब ओर पक्षियों का मनोहर कल-कल शब्द हो रहा था ॥29॥ वकुल वृक्ष के ऊपर भ्रमरों का सबल समूह चञ्चल हो रहा था तथा कोकिलाओं के समूह जोरदार मधुर शब्द कर रहे थे ॥30॥ नाना प्रकार के सुंदर शब्द प्रकट करने में निपुण मैनाएँ मनोहर शब्द कर रहीं थीं और पलाश वृक्षों पर बैठे शुक स्पष्ट शब्दों का उच्चारण करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे ॥32॥ भ्रमरों से सहित आमों की मंजरियाँ कामदेव के नूतन तीक्ष्ण बाणों के समान जान पड़ती थीं ॥32॥ कनेर के फूलों से पीला-पीला दिखने वाला वन ऐसा जान पड़ता था मानो पीले रंग के चूर्ण से क्रीड़ा करने के लिए उद्यत ही हुआ हो ॥33॥ मदिरा के गंडूषरूपी दौहद की उपेक्षा करने वाला वकुल वृक्ष ऐसा बरस रहा था जैसा कि वर्षा काल मेघों के समूह से बरसता है ॥34॥

अथानंतर इच्छानुसार रूप बदलने वाला वह स्वयंप्रभ प्रतींद्र जानकी का वेष रख मदमाती चाल से राम के समीप जाने के लिए उद्यत हुआ ॥35॥ वह वन मन को हरण करने वाला, एकांत, नाना प्रकार के वृक्षों से युक्त एवं सब ऋतुओं के फूलों से व्याप्त था ॥36॥ तदनंतर सुखपूर्वक वन में घूमती हुई सीता महादेवी, अकस्मात् उक्त साधु के आगे प्रकट हुई । ॥37॥ वह बोली कि हे राम ! समस्त जगत् में घूमती हुई मैंने बहुत भारी पुण्य से जिस किसी तरह आपको देख पाया है ॥38॥ हे नाथ ! वियोगरूपी तरंगों से व्याप्त स्नेहरूपी गंगा की धार में पड़ी हुई मुझ सुवदना को आप इस समय सहारा दीजिए डूबने से बचाइए ॥39॥ जब उसने नाना प्रकार की चेष्टाओं और मधुर वचनों से मुनि को अकंप समझ लिया तब मोहरूपी पाप से जिसका चित्त ग्रसा था, जो कभी मुनि के आगे खड़ी होती थी और कभी दोनों वगलों में जा सकती थी, जो काम ज्वर से ग्रस्त थी, जिसका शरीर काँप रहा था और जिसका लाल-लाल ऊँचा ओंठ फड़क रहा था ऐसी मनोहारिणी सीता उनसे बोली कि हे देव, अपने आपको पंडिता मानने वाली मैं उस समय बिना विचारे ही आपको छोड़कर दीक्षिता हो गई और तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी ॥40-42॥ तदनंतर विद्याधरों की उत्तम कन्याएँ मुझे हरकर ले गई। वहाँ उन विदुषी कन्याओं ने नाना उदाहरण देते हुए मुझसे कहा कि ऐसी अवस्था में यह विरुद्ध दीक्षा धारण करना व्यर्थ है क्योंकि यथार्थ में यह दीक्षा अत्यंत वृद्धा स्त्रियों के लिए ही शोभा देती है ॥43-44॥ कहाँ तो यह यौवनपूर्ण शरीर और कहाँ यह कठिन व्रत ? क्या चंद्रमा की किरण से पर्वत भेदा जा सकता है ? ॥45॥ हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और हे देवि ! तुम्हारे आश्रय से बलदेव को वरेंगी उन्हें अपना भर्ता बनावेंगी ॥46॥ हम सभी कन्याओं के बीच तुम प्रधान रानी होओ। इस तरह राम के साथ हम सब जंबूद्वीप में सुख से क्रीड़ा करेंगी ॥47॥ इसी बीच में नाना अलंकारों से भूषित तथा दिव्य लक्ष्मी से युक्त हजारों कन्याएँ वहाँ आ पहुँची ॥48॥ राजहंसी के समान जिनकी सुंदर चाल थी ऐसी सीतेंद्र की विक्रिया से उत्पन्न हुई वे सब कन्याएँ राम के समीप गई ॥49॥ कोयल से भी अधिक मधुर बोलने वाली कितनी ही कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो साक्षात् लक्ष्मी ही स्थित हो ॥50॥ कितनी ही कन्याएँ मन को आह्लादित करने वाले, कानों के लिए उत्तम रसायन स्वरूप तथा बाँसुरी और वीणा के शब्द से अनुगत दिव्य संगीतरूपी अमृत को प्रकट कर रही थीं। जिनके केश भ्रमरों के समान काले थे, जिनकी कांति बिजली के समान थी, जो अत्यंत सुकुमार और कृशोदरी थीं, स्थूल और उन्नत स्तनों को धारण करने वाली थीं, सुंदर शृंगार पूर्ण हास्य करने वाली थी, रंग बिरंगे वस्त्र पहने हुई थीं, नाना प्रकार के हाव-भाव तथा आलाप करने वाली थीं

और कांति से जिन्होंने आकाश को भर दिया था ऐसी वे सब कन्याएँ मुनि के चारों ओर स्थित हो उस तरह मोह उत्पन्न कर रही थीं, जिस तरह कि पहले बाहुबली के आसपास खड़ी देव-कन्याएँ ॥51-54॥ कोई एक कन्या छाया की खोज करती हुई वकुल वृक्ष के नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने उस वृक्ष को खींच दिया जिससे उस पर बैठे भ्रमरों के समूह उड़कर उस कन्या की ओर झपटे और उनसे भयभीत हो वह कन्या मुनि की शरण में जा खड़ी हुई ॥55॥ कितनी ही कन्याएँ किसी वृक्ष के नाम को लेकर विवाद करती हुई अपना पक्ष लेकर मुनिराज से निर्णय पूछने लगी कि देव ! इस वृक्ष का क्या नाम है ? ॥56॥ जिसका वस्त्र खिसक रहा था ऐसी किसी कन्या ने ऊँचाई पर स्थित माधवी लता का फूल तोड़ने के छल से अपना बाहुमूल दिखाया ॥57॥ जिनके हस्तरूपी पल्लव हिल रहे थे तथा जो हजारों प्रकार के तालों से युक्त संगीत कर रही थीं ऐसी कितनी ही कन्याएँ मंडली बाँधकर रासक क्रीड़ा करने के लिए उद्यत थीं ॥58॥ किसी कन्या ने जल के समान स्वच्छ लाल वस्त्र से सुशोभित अपने नितंबतट पर लज्जा के कारण आकाश के समान नील वर्ण का लहँगा पहन रक्खा था ॥59॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्य मनुष्यों के चित्त को हरण करने वाली इस प्रकार की क्रियाओं के समूह से राम उस तरह क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए जिस प्रकार कि वायु से मेरुपर्वत क्षोभ को प्राप्त नहीं होता है ॥60॥ उनकी दृष्टि अत्यंत सरल थी, आत्मा अत्यंत शुद्ध थी और वे स्वयं परीषहों के समूह को नष्ट करने के लिए वन स्वरूप थे, इस तरह वे सुप्रभ के समान शुक्ल ध्यान के प्रथम पाये में प्रविष्ट हुए ॥61॥ उनका हृदय सत्त्व गुण से सहित था, अत्यंत निर्मल था, तथा इंद्रियों के समूह के साथ आत्मा के ही चिंतन में लग रहा था ॥62॥ बाह्य मनुष्य इच्छानुसार अनेक प्रकार की क्रियाएँ करें परंतु परमार्थ के विद्वान् मनुष्य आत्म कल्याण से च्युत नहीं होते ॥63॥ ध्यान में विघ्न डालने की लालसा से युक्त सीतेंद्र, जिस समय सर्व प्रकार के प्रयत्न के साथ देवमाया से निर्मित चेष्टा कर रहा था उस समय अत्यंत पवित्र मुनिराज अनादि कर्म समूह को जलाने के लिए उद्यत थे ॥64-65॥ दृढ़ निश्चय के धारक पुरुषोत्तम, कर्मों की साठ प्रकृतियाँ नष्ट कर उत्तरवर्ती क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए ॥66॥ माघ शुक्ल द्वादशी के दिन रात्रि के पिछले पहर में उन महात्मा को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥67॥ सर्वदर्शी केवलज्ञान रूपी नेत्र के उत्पन्न होने पर उन प्रभु के लिए लोक अलोक दोनों ही गोष्पद के समान तुच्छ हो गये ॥68॥ तदनंतर सिंहासन के कंपित होने से जिन्होंने अवधिज्ञानरूपी नेत्र का प्रयोग किया था ऐसे सब इंद्र संभ्रम के साथ प्रणाम करते हुए चले ॥69॥ तदनंतर जो देवों के महा समूह के बीच वर्तमान थे, श्रद्धा से युक्त थे और केवलज्ञान की उत्पत्ति की पूजा करने के लिए उद्यत थे ऐसे सब इंद्र बड़े वैभव के साथ वहाँ आ पहुँचे ॥70॥ घातिया कर्मों का नाश करने वाले सिंहासनासीन राम के दर्शन कर चारणऋद्धिधारी मुनिराज तथा समस्त सुर और असुरों ने उन्हें प्रणाम किया ॥71॥ जिन्हें आत्मरूप की प्राप्ति हुई थी, तथा जो संसार के समस्त इंद्रों के द्वारा वंदनीय थे ऐसे परमेष्ठी पद को प्राप्त श्री राम के संपूर्ण समवसरण की रचना हुई ॥72॥ तदनंतर स्वयंप्रभ नामक सीतेंद्र ने केवलज्ञान की पूजा कर मुनिराज को प्रदक्षिणा दी और बार-बार क्षमा कराई ॥73॥ उसने कहा कि हे भगवन् ! मुझ दुर्बुद्धि के द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न हूजिए और मेरे लिए भी शीघ्र ही कर्मों का अंत प्रदान कीजिए **अर्थ**ात् मेरे कर्मों का क्षय कीजिए ॥74॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार अनंत लक्ष्मी द्युति और कांति से सहित तथा प्रसन्न मुद्रा के धारक भगवान बलदेव ने श्री जिनेंद्रदेव की उत्तम भक्ति से केवलज्ञान तथा अनंत सुख रूपी समृद्धि को प्राप्त किया ॥75॥ मुनियों में सूर्य के समान तेजस्वी श्री राम मुनि जब विहार करने को उद्यत हुए तब हर्ष से भरे देव शीघ्र ही भक्तिपूर्वक पूजा की महिमा, स्तुति तथा प्रणाम कर यथाक्रम से अपने-अपने स्थानों पर चले गये ॥76॥।

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराण में श्री राममुनि को केवलज्ञान उत्पन्न होने का वर्णन करने वाला एक सौ बाईसवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥122॥

## बलदेव की सिद्धि-प्राप्ति

एक सौ तेईसवाँ पर्व

कथा :

अथानंतर सीतेंद्र, लक्ष्मण के गुणरूपी सागर का स्मरण कर उसे संबोधने की इच्छा करता हुआ बालुकाप्रभा की ओर चला ॥1॥ मनुष्यों के लिए अत्यंत दुर्गम मानुषोत्तर पर्वत को लाँघकर तथा क्रम से नीचे रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा की भूमि को भी उल्लंघन कर वह तीसरी बालुकाप्रभा भूमि में पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने नारकियों की अत्यंत घृणित कष्ट की अधिकता से दुःसह एवं पाप कर्म से उत्पन्न अवस्था

देखी ॥2-3॥ लक्ष्मण के द्वारा मारा गया जो शंबूक असुरकुमार हुआ था वह शिकारी के पुत्र के समान इस भूमि में हिंसापूर्ण क्रीड़ा कर रहा था ॥4॥ वह कितने ही नारकियों को ऊपर बाँधकर स्वयं मारता था, कितनों ही को सेवकों से मरवाता था और घिरे हुए कितने ही नारकियों को परस्पर लड़ाता था ॥5॥ विरूप शब्द करने वाले कितने ही नारकी बाँधकर अग्निकुंडों में फेंके जाते थे, और कितने ही जिनके अंग-अंग में काँटा लग रहे थे ऐसे सेमर के वृक्षों पर चढ़ाये-उतारे जाते थे ॥6॥ कितने ही सब ओर खड़े हुए नारकियों के द्वारा लोह-निर्मित मसलों से कूटे जाते थे और कितने ही को निर्दय देवों के द्वारा अपना मांस तथा रुधिर खिलाया जाता था ॥7॥ गाढ़ प्रहार से खंडित हो पृथिवी तल पर लोटने वाले नारकी कुत्ते, बिलाव, सिंह, व्याघ्र तथा अनेक पक्षियों के द्वारा खाये जा रहे थे ॥8॥ कितने ही शूली पर चढ़ा कर भेदे जाते थे, कितने ही घनों और मुद्गरों से पीटे जाते थे, कितने ही तांबा आदि के स्वरस रूपी जल से भरी कुंभियों में डाले जाते थे ॥9॥ लकड़ियाँ बाँध देने से निश्चल खड़े हुए कितने नारकी करोंतों से विदारे जाते थे, और कितने ही नारकियों को जबरदस्ती ताम्र आदि धातुओं का पिघला द्रव पिलाया जाता था ॥10॥ कितने ही कोल्हुओं में पेले जाते थे, कितने ही बाणों से छेदे जाते थे, और कितने ही दाँत, नेत्र तथा जिह्वा के उपाड़ने का दुःख प्राप्त कर रहे थे ॥11॥ इस प्रकार नारकियों के दुःख देखकर सीतेंद्र को बहुत भारी दया उत्पन्न हुई ॥12॥

तदनंतर उसने अग्निकुंड से निकले और अन्य अनेक नारकियों के द्वारा सब ओर से घेरकर नाना तरह से दुःखी किये जाने वाले लक्ष्मण को देखा ॥13॥ वहीं उसने देखा कि, लक्ष्मण विक्रिया कृत मगर-मच्छों से व्याप्त वैतरणी के भयंकर जल में छटपटा रहा है और असिपत्र वन में शस्त्राकार पत्रों से छेदा जा रहा है ॥14॥ उसने यह भी देखा कि लक्ष्मण को मारने के लिए बाधा पहुँचाने वाला एक भयंकर नारकी कुपित हो हाथ में बड़ी भारी गदा लेकर उद्यत हो रहा है तथा उसे दूसरे नारकी मार रहे हैं ॥15॥ सीतेंद्र ने वहीं उस रावण को देखा कि जिसके नेत्र अत्यंत भयंकर थे, जिसके शरीर से मल-मूत्र झड़ रहे थे, जिसका मुख बहुत बड़ा था और शंबूक का जीव असुरकुमार देव जिसे लक्ष्मण के विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था ॥16॥

तदनंतर इसी बीच में महातेजस्वी सीतेंद्र, भवनवासियों के उस दुष्ट समूह को डाँटे दिखाता हुआ पास में पहुँचा ॥17॥ उसने कहा कि अरे ! रे ! पापी शंबूक ! तूने यह क्या प्रारंभ कर रक्खा है ? तुझ निर्दय चित्त को क्या अब भी शांति नहीं है? ॥18॥ हे अधमदेव ! क्रूर कार्य छोड़, मध्यस्थ हो, अत्यंत अनर्थ के कारणभूत इस अभिमान से क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? ॥19॥ नरक के इस दुःख को सुनकर ही प्राणी को भय उत्पन्न हो जाता है, फिर तुझे प्रत्यक्ष देखकर भी भय क्यों नहीं उत्पन्न होता है ? ॥20॥ तदनंतर शंबूक के शांत हो जाने पर ज्यों ही सीतेंद्र संबोधने के लिए तैयार हुआ त्यों ही अत्यंत क्रूर काम करने वाले, चंचल एवं दुग्रह चित्त के धारक वे नारकी देव की प्रभा से तिरस्कृत हो शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये ॥21-22॥ कितने ही दीन-हीन नारकी, धाराबद्ध पड़ते हुए आँसुओं से मुख को गीला करते हुए रोने लगे, कितने ही दौड़ते-ही-दौड़ते अत्यंत विषम गर्तों में गिर गये ॥23 ॥ तब सांत्वना देते हुए सीतेंद्र ने कहा कि 'अहो नारकियो ! भागो मत, भयभीत मत होओ, तुम लोग बहुत दुःखी हो, लौटकर आओ, भय मत करो, भय मत करो, खड़े रहो' इस प्रकार कहने पर भी वे भय से काँपते हुए गाढ़ अंधकार में प्रविष्ट हो गये ॥24-25॥ तदनंतर यही बात जब सीतेंद्र ने फिर से कही तब कहीं उनका कुछ-कुछ भय कम हुआ और बड़ी कठिनाई से वे चित्त की स्थिरता को प्राप्त हुए ॥26॥ शांत वातावरण होनेपर सीतेंद्र ने कहा कि महामोह से जिनकी आत्मा हरी गई है ऐसे हे नारकियो ! तुम लोग इस दशा से युक्त होकर भी आत्मा का हित नहीं जानते हो ? ॥27॥ जिन्होंने लोक का अंत नहीं देखा है, जो हिंसा, झूठ और परधन के हरण में तत्पर हैं, रौद्रध्यानी हैं तथा नरक में स्थित रहने वाले के प्रति जिनकी द्वेष बुद्धि है ऐसे लोग ही नरक में आते हैं ॥28॥ जो भोगों के अधिकार में संलग्न हैं, तीन क्रोधादि कषायों से अनुरंजित हैं और निरंतर विरुद्ध कार्य करने में तत्पर रहते हैं ऐसे लोग ही इस प्रकार के दुःख को प्राप्त होते हैं ॥29॥

अथानंतर सुंदर विमान के अग्रभाग पर स्थित सुरेंद्र को देखकर लक्ष्मण और रावण के जीव ने सबसे पहले पूछा कि आप कौन हैं ? ॥30॥ तब सुरेंद्र ने उनके लिए श्रीराम का तथा अपना सब वृत्तांत कह सुनाया और साथ ही यह भी कहा कि कर्मानुसार यह सब विचित्र कार्य संभव हो जाते हैं ॥31॥ तदनंतर अपना वृत्तांत सुनकर जो प्रतिबोध को प्राप्त हुए थे तथा जिनकी आत्मा शांत हो गई थी ऐसे वे दोनों दीनतापूर्वक इस प्रकार शोक करने लगे ॥32॥ कि अहो ! हम लोगों ने उस समय मनुष्य जन्म में धर्म में रुचि क्यों नहीं की ? जिससे पाप कर्मों के कारण इस अवस्था को प्राप्त हुए हैं ॥33॥ हाय-हाय, आत्मा को दुःख देने वाला यह क्या विकट कार्य हम लोगों ने कर डाला ? अहो ! यह सब मोह की महिमा है कि जिसके कारण जीव आत्महित से भ्रष्ट हो जाता है ॥34॥ हे देवेंद्र ! तुम्हीं धन्य हो, जो

विषयों की इच्छा छोड़ तथा जिनवाणीरूपी अमृत का पानकर देवों की ईशता को प्राप्त हुए हो ॥35॥
तदनंतर अत्यधिक करुणा को धारण करने वाले देवेंद्र ने कई बार कहा कि 'डरो मत, डरो मत, आओ, आओ, मैं तुम लोगों को नरक से निकालकर स्वर्ग लिये चलता हूँ' ॥36॥ तत्पश्चात् वह सुरेंद्र कमर कसकर उन्हें स्वयं ले जाने के लिए उद्यत हुआ परंतु वे पकड़ने में न आये। जिस प्रकार अग्नि में तपाने से नवनीत पिघलकर रह जाता है उसी प्रकार वे नारकी भी पिघलकर वहीं रह गये ॥37॥ इंद्र ने उन्हें उठाने के लिए सभी प्रयत्न किये पर वे उठाये नहीं जा सके। जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिंबित ग्रहण में नहीं आते उसी प्रकार वे भी ग्रहण में नहीं आ सके ॥38॥ तदनंतर अत्यंत दुःखी होते हुए उन नारकियों ने कहा कि हे देव ! हम लोगों के जो पूर्वोपार्जित कर्म हैं, वे निःसंदेह भोगने के योग्य नहीं हैं ॥39॥ जो विषयरूपी आमिष के लोभी होकर नरक के दुःख को प्राप्त हुए हैं तथा जो अपने द्वारा किये हुए कर्मों के पराधीन हैं उनका देव लोग क्या कर सकते हैं ? ॥40॥ यतश्च अपने द्वारा किया हुआ कर्म नियम से भोगना पड़ता है इसलिए हे देव! तुम हम लोगों को दुःख से छुड़ाने में समर्थ नहीं हो ॥41॥ हे सीतेंद्र ! हमारी रक्षा करो, अब हम जिस कारण फिर नरक को प्राप्त न हों कृपा कर वह बात तुम हमें बताओ ॥42॥
तदनंतर देव ने कहा कि जो उत्कृष्ट है, नित्य है, आनंद रूप है, उत्तम है, मूढ़ मनुष्यों के लिए मानो रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रय में प्रसिद्ध है, कर्मों को नष्ट करने वाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थ को देने वाला है, जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है और यदि प्राप्त हुआ भी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नहीं रख सके हैं, जो अभव्य जीवों के लिए अज्ञेय है और दीर्घ संसार को भय उत्पन्न करने वाला है, ऐसा सबल एवं दुर्लभ सम्यग्दर्शन ही आत्मा का सबसे बड़ा कल्याण है ॥43-45॥ यदि आप लोग अपना भला चाहते हैं तो इस दशा में स्थित होने पर भी सम्यक्त्व को प्राप्त करो। यह सम्यक्त्व समय पर बोधि को प्रदान करने वाला एवं शुभरूप है ॥46॥ इससे बढ़कर दूसरा कल्याण न है, न था, न होगा। इसके रहते ही महर्षि सिद्ध होंगे, अभी हो रहे हैं और पहले भी हुए थे ॥47॥ महा उत्तम अरहंत जिनेंद्र भगवान् ने जीवादि पदार्थों का जैसा निरूपण किया है वह वैसा ही है । इस प्रकार भक्तिपूर्वक दृढ़ श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है ॥48॥ इत्यादि वचनों के द्वारा नरक में स्थित उन लोगों को यद्यपि सीतेंद्र ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दिया था तथापि उत्तम भोगों का अनुभव करने वाला वह सीतेंद्र उनके प्रति शोक करने में लीन था ॥49॥ उसकी आँखों में उनका पूर्वभव झूल गया और उसे ऐसा लगने लगा कि देखो, जिस प्रकार अग्नि के द्वारा नवीन उद्यान जल जाता है उसी प्रकार इनका कांति और लावण्य पूर्ण सुंदर शरीर कर्म के द्वारा जल गया है ॥ 50॥ जिसे देख उस समय सारा संसार आश्चर्य में पड़ जाता था इनकी वह उदात्त तथा सुंदर क्रीड़ाओं से युक्त कांति कहाँ गई ? ॥51॥ वह उनसे कहने लगा कि देखो कर्मभूमि के उस क्षुद्र सुख के कारण आप लोग पाप कर इस दुःख के सागर में निमग्न हुए हैं ॥52॥ इस प्रकार सीतेंद्र के कहने पर अनादि भवों में क्लेश उठाने वाले उन लोगों ने वह उत्तम सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया जो कि उन्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था ॥53॥ उन्होंने कहा कि इस बीच में जिसका छूटना अशक्य है ऐसे इस दुःख को भोगकर जब यहाँ से निकलेंगे तब मनुष्य भव धारणकर श्री जिनेंद्र देव की शरण रहेंगे ॥54॥ अहो देव ! तुमने हम सबका बड़ा हित किया जो यहाँ आकर उत्तम सम्यग्दर्शन में लगाया है ॥55॥ हे महाभाग ! सीतेंद्र ! जाओ-जाओ अपने आरणाच्युत कल्प को जाओ और शुद्ध धर्म का विशाल फल भोगकर मोक्ष को प्राप्त होओ ॥56॥ इस प्रकार उन सबके कहने पर यद्यपि वह सीतेंद्र शोक के कारणों से रहित हो गया था तथापि परम ऋद्धि को धारण करने वाला वह मन ही मन शोक करता जाता था ॥57॥ तदनंतर महान पुण्य को धारण करने वाला वह धीर-वीर सुरेंद्र, उन सबके लिए बोधिदायक शुभ उपदेश देकर अपने स्थान पर आरूढ हो गया ॥58॥
नरक से निकलकर जिसकी आत्मा अत्यंत भयभीत हो रही थी ऐसा वह सीतेंद्र मन ही मन अरहंत सिद्ध साधु और केवलीप्रणीत धर्म इन चार की शरण को प्राप्त हुआ और अनेकों बार उसने मेरु पर्वत की प्रदक्षिणाएँ दी ॥59॥ नरकगति के उस दुःख को देखकर, स्मरण कर, तथा वहाँ के शब्द का ध्यान कर वह सुरेंद्र विमान में भी काँप उठता था ॥60॥ जिसका हृदय काँप रहा था तथा जिसका मुख शोभासंपन्न चंद्रमा के समान था, ऐसा वह बुद्धिमान् सुरेंद्र फिर से भरत क्षेत्र में उतरने के लिए उद्यत हुआ ॥61॥ उस समय वायु के समान वेगशाली घोड़े, सिंह तथा मदोन्मत्त हाथियों के समूह से युक्त, चलते हुए विमानों से और नाना रंग के वस्त्रों को धारण करने वाले, वानर तथा माला आदि के चिह्नों से युक्त मुकुटों से उज्ज्वल, नाना प्रकार के वाहनों पर आरूढ़, पताका तथा छत्र आदि से शोभित शतघ्नी, शक्ति, चक्र, असि, धनुष, कुंत और गदा को धारण करने वाले, सब ओर गमन करते हुए, अप्सराओं के समूह से सहित सुंदर देवों से और बाँसुरी तथा वीणा के शब्दों से सहित तथा जय जयकार, नंद, वर्धस्व आदि शब्दों से मिश्रित मृदंग और दुंदुभि के नाद से आकाश भर गया था ॥

62-65॥

अथानंतर परम अभ्युदय को धारण करने वाला सीतेंद्र श्री राम केवली की शरण में गया। वहाँ जाकर उसने हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया ॥66॥ तदनंतर सँसार-सागर से पार होने के उपाय जानने के लिए जिसका अभिप्राय दृढ़ था ऐसे उस विनयी सीतेंद्र ने श्री राम केवली की इस तरह स्तुति करना प्रारंभ किया ॥67॥ वह कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने ध्यानरूपी वायु से युक्त तथा तप के द्वारा की हुई देदीप्यमान ज्ञानरूपी अग्नि से संसाररूपी अटवी को दग्ध कर दिया है ॥68॥ आपने शुद्ध लेश्यारूपी त्रिशूल के द्वारा मोहनीय कर्मरूपी शत्रु का घात किया है, और दृढ़ वैराग्यरूपी वन के द्वारा स्नेहरूपी-पिंजड़ा चूर-चूर कर दिया है ॥69॥ हे नाथ ! मैं संसाररूपी अटवी के बीच पड़ा जीवन-मरण के संशय में झूल रहा हूँ अतः हे मुनींद्र ! हे भवसूदन ! मेरे लिए शरण हूजिए ॥70॥ हे राम ! आप प्राप्त करने योग्य सब पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, सब पदार्थों के ज्ञाता हैं, कृतकृत्य हैं, और जगत के गुरु हैं अतः मेरी रक्षा कीजिए, मेरा मन अत्यंत व्याकुल हो रहा है ॥71॥ श्री मुनिसुव्रतनाथ के शासन की अच्छी तरह सेवा कर आप विशाल तप के द्वारा संसार-सागर के अंत को प्राप्त हुए हैं ॥72॥ हे राम ! क्या यह तुम्हें उचित है जो तुम मुझे बिलकुल छोड़ अकेले ही उन्नत निर्मल और अविनाशी पद को जा रहे हो ॥73॥

तदनंतर मुनिराज ने कहा कि हे सुरेंद्र ! राग छोड़ो क्योंकि वैराग्य में आरूढ मनुष्य की मुक्ति होती है और रागी मनुष्य का संसार में डूबना होता है ॥74॥ जिस प्रकार कंठ में शिला बाँधकर भुजाओं से नदी नहीं तैरी जा सकती उसी प्रकार रागादि से संसार नहीं तिरा जा सकता ॥7॥। जिसका चित्त निरंतर ज्ञान में लीन रहता है तथा जो गुरुजनों के कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञान, शील आदि गुणों की आसक्ति से संसार-सागर को तैर सकता है ॥76॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! विद्वानों को यह समझ लेना चाहिए कि महाप्रतापी केवली आदि मध्य और अवसान में **अर्थ**ात् प्रत्येक समय सब पदार्थों के गुणों को ग्रस्त करते हैं जानते हैं ॥77॥ हे राजन् ! अब इसके आगे सीतेंद्र ने जो पूछा और केवली ने जो उत्तर दिया वह सब कहूंगा ॥78॥

सीतेंद्र ने केवली से पूछा कि हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! ये दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ हैं ? तथा लवण और अंकुश की आपने कौन-सी गति देखी है ? **अर्थ**ात् ये कहाँ उत्पन्न होंगे ? ॥79॥ तब केवली ने कहा कि राजा दशरथ आनत स्वर्ग में देव हुए हैं। इनके सिवाय सुमित्रा, कैकयी, सुप्रजा (सुप्रभा) और अपराजिता (कौशल्या), जनक तथा कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार बँधे हुए कर्म से उसी आनत स्वर्ग में तुल्य विभूति के धारक देव हैं ॥80-81॥ ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा समानता रखने वाले लवण और अंकुश नामक दोनों महाभाग मुनि कर्मरूपी धूलि से रहित हो अविनाशी पद प्राप्त करेंगे ॥82॥ केवली के इस प्रकार कहने पर सीतेंद्र हर्ष से अत्यधिक संतुष्ट हुआ। तदनंतर उसने स्नेह वश भाई-भामंडल का स्मरण कर उसकी चेष्टा पूछी ॥83॥ इसके उत्तर में तुम्हारा भाई भी, इतना कहते ही सीतेंद्र कुछ दुःखी हुआ। तदनंतर उसने हाथ जोड़कर पूछा कि हे मुनिराज, वह कहाँ उत्पन्न हुआ है ? ॥84॥ तदनंतर पद्मनाभ (राम) ने कहा कि हे अच्युतेंद्र ! तुम्हारा भाई जिस चेष्टा से जहाँ उत्पन्न हुआ है उसे कहता हूँ सो सुन ॥85॥

अयोध्या नगरी में अपने कुल का स्वामी अनेक करोड़ का धनी, तथा मकरी नामक प्रिया के साथ कामभोग करने वाला एक 'वज्रांक' नाम का सेठ था ॥86॥ उसके अनेक पुत्र थे तथा वह राजा के समान वैभव को धारण करने वाला था। सीता को निर्वासित सुन वह इस प्रकार की चिंता को प्राप्त हुआ कि 'अत्यंत सुकुमारांगी तथा दिव्य गुणों से अलंकृत सीता वन में किस अवस्था को प्राप्त हुई होगी' ? इस चिंता से वह अत्यंत दुःखी हुआ ॥87-88॥ तदनंतर जिसके पास दयालु हृदय विद्यमान था, और जिसे संसार से द्वेष उत्पन्न हो रहा था ऐसा वह वज्रांक सेठ परम वैराग्य को प्राप्त हो द्युति नामक मुनिराज के पास दीक्षित हो गया । इसकी दीक्षा का हाल घर के लोगों को विदित नहीं था ॥89॥ उसके अशोक और तिलक नाम के दो विनयवान् पुत्र थे, सो वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराज के पास अपने पिता का हाल पूछने के लिए गये ॥90॥ वहीं पिता को देखकर स्नेह अथवा वैराग्य के कारण अशोक तथा तिलक भी उन्हीं द्युति मुनिराज के पादमूल में दीक्षित हो गये ॥91॥ द्युति मुनिराज परम तपश्चरण कर तथा आयु का क्षय प्राप्त कर शिष्यजनों को उत्कंठा प्रदान करते हुए उर्ध्व ग्रैवेयक में अहमिंद्र हुए ॥92॥ यहाँ पिता और दोनों पुत्र मिलकर तीनों मुनि, गुरु के कहे अनुसार प्रवृत्ति करते हुए जिनेंद्र भगवान् की वंदना करने के लिए ताम्रचूडपुर की ओर चले ॥93॥ बीच में पचास योजन प्रमाण बालू का समुद्र (रेगिस्तान) मिलता था सो वे इच्छित स्थान तक नहीं पहुँच पाये, बीच में ही वर्षा काल आ गया ॥94॥ उस रेगिस्तान में जिसका मिलना अत्यंत कठिन था तथा जो पात्र दान से

प्राप्त होने वाले अभ्युदय के समान जान पड़ता था एवं जो अनेक शाखाओं और उपशाखाओं से युक्त था ऐसे एक वृक्ष को पाकर उसके आश्रय उक्त तीनों मुनिराज ठहर गये ॥95॥

तदनंतर अयोध्यापुरी को जाते समय जनक के पुत्र भामंडल ने वे तीनों मुनिराज देखे। देखते ही इस पुण्यात्मा के मन में यह विचार आया कि ये मुनि, आचार की रक्षा के निमित्त इस निर्जन वन में ठहर गये हैं परंतु प्राण धारण के लिए आहार कहाँ करेंगे ? ॥96-97॥ ऐसा विचारकर सद्विद्या की उत्तम शक्ति से युक्त भामंडल ने बिलकुल पास में एक अत्यंत सुंदर नगर बसाया जो सब प्रकार को सामग्री से सहित था, स्थान-स्थान पर उसने घोष अहीर आदि के रहने के ठिकाने दिखलाये । तदनंतर अपने स्वाभाविक रूप में स्थित हो उसने विनयपूर्वक मुनियों के लिए नमस्कार किया ॥98-99॥ वह अपने परिजनों के साथ वहीं रहने लगा तथा योग्य देश काल में दृष्टिगोचर हुए सत्पुरुषों को भावपूर्वक न्याय के साथ हर्ष सहित भोजन कराने लगा ॥100। इस निर्जन वन में जो मुनिराज थे उन्हें तथा पृथिवी पर उत्कृष्ट संयम को धारण करने वाले जो अन्य विपत्तिग्रस्त साधु थे उन सबको वह आहार आदि देकर संतुष्ट करने लगा ॥101॥ मुक्ति की भावना रख पुण्यरूपी सागर में वाणिज्य करने वाले मनुष्यों के जो सेवक हैं धर्मानुरागी भामंडल को उन्हीं का दृष्टांत देना चाहिए। **अर्थ** ात् मुनि तो पुण्यरूपी सागर में वाणिज्य करने वाले हैं और भामंडल उनके सेवक के समान हैं ॥102॥

किसी एक दिन भामंडल उद्यान में गया था वहाँ अपनी मालिनी नामक स्त्री के साथ वह शय्या पर सुख से पड़ा था कि अचानक वज्रपात होने से उसकी मृत्यु हो गई ॥103॥ तदनंतर मुनि-दान से उत्पन्न पुण्य के प्रभाव से वह मेरु पर्वत के दक्षिण में विद्यमान देवकुरु में तीन पल्य की आयु वाला दिव्य लक्षणों से भूषित उत्तम आर्य हुआ ॥104॥ इस तरह उत्तम दीप्ति को धारण करने वाला वह आर्य, अपनी सुंदर मालिनी स्त्री के साथ उस देवकुरु में महाविस्तार को प्राप्त हुए पात्रदान के फल का उपभोग कर रहा है ॥105॥ जो शक्तिसंपन्न मनुष्य, पात्रों के लिए अन्न देकर संतुष्ट करते हैं वे भोगभूमि पाकर परम पद को प्राप्त होते हैं ॥106॥ भोगभूमि से च्युत हुए मनुष्य स्वर्ग में भोग भोगते हैं क्योंकि वहाँ के मनुष्यों का यह स्वभाव ही है। यथार्थ में दान से भोग की संपदाएँ प्राप्त होती हैं ॥107॥

दान से सुख की प्राप्ति होती है और दान स्वर्ग तथा मोक्ष का प्रधान कारण है। इस प्रकार भामंडल के दान का माहात्म्य सुनकर सीतेंद्र ने बालुकाप्रभा पृथिवी में पड़े हुए रावण और उसी अधोभूमि में पड़े लक्ष्मण के विषय में पूछा कि हे नाथ ! यह लक्ष्मण पाप का अंत होने पर नरक से निकलकर क्या होगा ? हे प्रभो! वह रावण का जीव कौन गति को प्राप्त होगा और मैं स्वयं इसके बाद क्या होऊँगा ? यह सब मैं जानना चाहता हूँ ॥108-110॥ इस प्रकार प्रश्न कर जब स्वयंप्रभ नाम का सीतेंद्र उत्तर जानने के लिए उद्यत चित्त हो गया तब सर्वज्ञ देव ने उनके आगामी भवों की उत्पत्ति से संबंध रखने वाले वचन कहे ॥111॥

उन्होंने कहा कि हे सीतेंद्र ! सुन, स्वकृत कर्म के अभ्युदय से सहित रावण और लक्ष्मण, नरक संबंधी दुःख भोगकर तथा तीसरे नरक से निकलकर मेरुपर्वत से पूर्व की ओर विजयावती नामक नगरी में सुनंद नामक सम्यग्दृष्टि गृहस्थ की रोहिणी नामक स्त्री के क्रमशः अर्हदास और ऋषिदास नाम के पुत्र होंगे। ये पुत्र सद्गुणों से प्रसिद्ध, अत्यधिक उत्सवपूर्ण चित्त के धारक और प्रशंसनीय क्रियाओं के करने में तत्पर होंगे ॥112-115॥ वहाँ गृहस्थ की विधि से देवाधिदेव जिनेंद्र भगवान की पूजा कर अणुव्रत के धारी होंगे और अंत में मरकर उत्तम देव होंगे ॥116॥ वहाँ चिरकाल तक पंचेंद्रियों के मनोहर सुख प्राप्त कर वहाँ से च्युत हो उसी महाकुल में पुनः उत्पन्न होंगे ॥117॥ फिर पात्रदान के प्रभाव से हरिक्षेत्र प्राप्त कर स्वर्ग जावेंगे। तदनंतर वहाँ से च्युत हो उसी नगर में राजपुत्र होंगे ॥118॥ वहाँ इनके पिता का नाम कुमारकीर्ति और माता का नाम लक्ष्मी होगा तथा स्वयं ये दोनों कुमार जयकांत और जयप्रभ नाम के धारक होंगे ॥119॥ तदनंतर तप करके लांतव स्वर्ग जावेंगे। वहाँ उत्तम देवपद प्राप्त कर तत्संबंधी सुख का उपभोग करेंगे ॥120॥ हे सीतेंद्र ! तू आरणाच्युत कल्प से च्युत हो इस भरतक्षेत्र के रत्नस्थलपुर नामक नगर में सब रत्नों का स्वामी चक्ररथ नाम का श्रीमान् चक्रवर्ती होगा ॥121॥ रावण और लक्ष्मण के जीव जो लांतव स्वर्ग में देव हुए थे वे वहाँ से च्युत हो पुण्य रस के प्रभाव से तुम्हारे क्रमशः इंद्ररथ और मेघरथ नामक पुत्र होंगे ॥122॥ जो पहले दशानन नाम का तेरा महाबलवान् शत्रु था, जिसने भरतक्षेत्र के तीन खंड वश कर लिये थे, और जिसके यह निश्चय था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसे मैं नहीं चाहूँगा । निश्चय ही नहीं, जिसने जीवन भले ही छोड़ दिया था पर इस सत्यव्रत को नहीं छोड़ा था किंतु उसका अच्छी तरह पालन किया था। वह रावण का जीव धर्मपरायण इंद्ररथ होकर तिर्यंच और नरक को छोड़ अनेक उत्तम भव पा मनुष्य होकर सर्व प्राणियों के लिए दुर्लभ तीर्थकर नाम कर्म का बंध करेगा। तदनंतर वह पुण्यात्मा अनुक्रम से तीनों लोकों के जीवों से पूजा प्राप्त कर मोहादि शत्रुओं के समूह को नष्ट कर अर्हंत पद प्राप्त करेगा ॥123-127॥ और तेरा जीव जो चक्ररथ नाम का चक्रधर

हुआ था वह रत्नस्थलपुर में राज्य कर अंत में तपोबल से वैजयंत विमान में अहमिंद्र पद को प्राप्त होगा ॥128॥ वहीं तू स्वर्गलोक से च्युत हो उक्त तीर्थंकर का ऋद्धिधारी श्रीमान् प्रथम गणधर होगा ॥129॥ और उसके बाद परम निर्वाण को प्राप्त होगा। इस प्रकार सुनकर सीता का जीव सुरेंद्र, भावपूर्ण अंतरात्मा से परमसंतोष को प्राप्त हुआ ॥130॥ सर्वज्ञ देव ने लक्ष्मण के जीव का जो निरूपण किया था, वह मेघरथ नाम का चक्रवर्ती का पुत्र होकर धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ कितने ही उत्तम भवों में भ्रमण कर पुष्करद्वीप संबंधी विदेह क्षेत्र के शतपत्र नामा नगर में अपने योग्य समय में जन्माभिषेक प्राप्त कर तीर्थंकर और चक्रवर्ती पद को प्राप्त हो निर्वाण प्राप्त करेगा ॥131-133॥ और मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही पुनर्जन्म से रहित हो वहाँ जाऊँगा जहाँ भरत आदि मुनिराज गये हैं ॥134॥

इस प्रकार आगामी भवों का वृत्तांत जानकर जिसका सब संशय दूर हो गया था, तथा जो महाभावना से सहित था ऐसा सुरेंद्र सीतेंद्र, श्री पद्मनाभ केवली की बार-बार स्तुति कर तथा नमस्कार कर उनके अभ्युदय युक्त रहते हुए चैत्यालयों की वंदना करने के लिए चला गया ॥135-136॥ वह अत्यंत भक्त हो तीर्थंकरों के निर्वाण-क्षेत्रों की पूजा करता, नंदीश्वर द्वीप में जिन-प्रतिमाओं की अर्चा करता, देवाधिदेव जिनेंद्र भगवान् को निरंतर मन में धारण करता स्वयं केवली पद को प्राप्त हुए के समान परम सुख का अनुभव करता, पाप कर्म को भस्मीभूत मानता, हर्षित तथा सदाचार से युक्त होता और देवों के समूह से आवृत होता हुआ स्वर्गलोक चला गया ॥137-139॥ उस समय उसने स्वर्ग जाते-जाते भाई के पुरातन स्नेह के कारण देवकुरु में भामंडल के जीच को देखा और उसके साथ प्रिय वार्तालाप किया ॥140॥ वह सीतेंद्र सर्व मनोरथों को पूर्ण करने वाले उस आरणाच्युत कल्प में हजारों देवियों के साथ रमण करता हुआ रहता था ॥141॥ राम की आयु सत्रह हजार वर्ष की तथा उनके और लक्ष्मण के शरीर की ऊँचाई सोलह धनुष की थी ॥142॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह पुण्य और पाप का अंतर जान कर पाप को दूर से ही छोड़कर पुण्य का ही संचय करना उत्तम है ॥143॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! देखो जिनेंद्र देव के उत्तम शासन में धैर्य को प्राप्त हुए बलभद्र पद के धारी विभु रामचंद्र ने जन्म-जरा-मरण रूपी महाबलवान् शत्रु पराजित कर दिये ॥144॥ वे रामचंद्र, श्री जिनेंद्र देव के प्रसाद से जन्म-जरा-मरण का व्युच्छेद कर अत्यंत दुर्लभ, निर्दोष, अनुपम, नित्य और उत्कृष्ट कैवल्य सुख को प्राप्त हुए ॥145॥ मुनींद्र देवेंद्र और असुरेंद्रों के द्वारा जो स्तुत, महित तथा नमस्कृत हैं, जिन्होंने दोषों को नष्ट कर दिया है, जो सैकड़ों प्रकार के हर्ष से उपगीत हैं तथा विद्याधरों की पुष्प-वृष्टियों की अधिकता से जिनका देखना भी कठिन है ऐसे श्रीराम महामुनि, पच्चीस वर्ष तक उत्कृष्ट विधि से जैनाचार की आराधना कर समस्त जीव समूह के आभरणभूत, तथा सिद्ध परमेष्ठियों के निवास क्षेत्र स्वरूप तीन लोक के शिखर को प्राप्त हुए ॥146-147॥ हे भव्य जनो ! जिनके संसारके कारण-मिथ्या दर्शनादि भाव नष्ट हो चुके थे, जो उत्तम योग के धारक थे, शुद्ध भाव और शुद्ध हृदय के धारक थे, कर्मरूपी शत्रुओं के जीतने में वीर थे, मन को आनंद देने वाले थे और मुनियों में श्रेष्ठ थे उन भगवान राम को शिर से प्रणाम करो ॥148॥ जिन्होंने तरुण सूर्य के तेज को जीत लिया था, जिन्होंने पूर्ण चंद्रमा के मंडल को नीचा कर दिया था, जो अत्यंत सुदृढ़ था, पूर्व स्नेह के वश अथवा धर्म में स्थित होने के कारण सीता के जीव प्रतींद्र ने जिनकी अत्यधिक पूजा की थी, तथा जो परम ऋद्धि को प्राप्त थे ऐसे मुनि प्रधान श्रीरामचंद्र को नमस्कार करो ॥149-150॥ जो बलदेवों में आठवें बलदेव थे, जिनका शरीर अत्यंत शुद्ध था, जो श्रीमान् थे, अनंत बल के धारक थे, हजारों नियमों से भूषित थे और जिनके सब विकार नष्ट हो गये थे ॥151॥ जो अनेक शील तथा लाखों उत्तरगुणों के धारक थे, जिनकी कीर्ति अत्यंत शुद्ध थी, जो उदार थे, ज्ञानरूपी प्रदीप से सहित थे, निर्मल थे और जिनका उज्ज्वल यश तीन लोक में फैला हुआ था उन श्रीराम को प्रणाम करो ॥152॥ जिन्होंने कर्मपटल को जला दिया था, जो गंभीर गुणों के सागर थे, जिनका क्षोभ छूट गया था, जो मंदरगिरि के समान अकंप थे तथा जो मुनियों का यथोक्त चारित्र पालन करते थे उन श्री राम को नमस्कार करो ॥153॥ जिन्होंने कषायरूपी शत्रुओं को नष्ट कर सुख-दुःखादि.समस्त द्वंद्वों का त्याग कर दिया था, जो तीन लोक की परमेश्वरता को प्राप्त थे, जो जिनेंद्र देव के शासन में लीन थे, जिन्होंने पापरूपी रज उड़ा दी थी, जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से तन्मय हैं, संसार को नष्ट करने वाले हैं, तथा समस्त दुःखों का क्षय करने में तत्पर हैं ऐसे मुनिवर श्रीराम को प्रणाम करो ॥154-155॥

चेष्टित, अनघ, चरित, करण और चारित्र ये सभी शब्द यतश्च पर्यायवाचक शब्द हैं अतः राम को जो चेष्टा है वही रामायण कही गई है ॥156॥ जिसका हृदय आश्चर्य और हर्ष से आक्रांत है तथा जिसके अंतःकरण से सब शंकाएँ निकल चुकी हैं ऐसा जो मनुष्य प्रतिदिन भावपूर्ण मन से बलदेव के चरित्र को बाँचता अथवा सुनता है उसकी आयु वृद्धि को प्राप्त होती है, पुण्य बढ़ता है, तथा तलवार खींचकर हाथ में धारण करने वाला भी शत्रु उसके साथ वैर नहीं करता है, अपितु शांति को प्राप्त हो जाता है ॥157-158॥ इसके सिवाय इसके

बाँचने अथवा सुनने से धर्म का अभिलाषी मनुष्य धर्म को पाता है, यश का अभिलाषी परम यश को पाता है, और राज्य से भ्रष्ट हुआ मनुष्य पुनः राज्य को प्राप्त करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ॥159॥ इष्ट संयोग का अभिलाषी मनुष्य शीघ्र ही इष्टजन के संयोग को पाता है, धन का **अर्थ**ी धन पाता है। स्त्री का इच्छुक उत्तम स्त्री पाता है और पुत्र का अर्थी गोत्र को आनंदित करने वाला उत्तम पुत्र पाता है ॥160॥ लाभ का इच्छुक सरलता से सुख देने वाला उत्तम लाभ प्राप्त करता है, विदेश जाने वाला कुशल रहता है और स्वदेश में रहने वाले के सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥161॥ उसकी बीमारी शांत हो जाती है, ग्राम तथा नगरवासी देव संतुष्ट रहते हैं, था नक्षत्रों के साथ साथ सूर्य आदि कुटिल ग्रह भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥162॥ राम की कथाओं से निश्चिंतित, तथा दुर्भावित सैकड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा इनके सिवाय जो कुछ अन्य अमंगल हैं वे सब क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥163॥ अथवा हृदय में जो कुछ उत्तम बात है राम कथा के कीर्तन में लीन मनुष्य उसे अवश्य पाता है, सो ठीक ही है क्योंकि सर्वज्ञदेव संबंधी सुदृढ़ भक्ति इष्टपूर्ति करती ही है ॥164॥ उत्तम भाव को धारण करने वाला मनुष्य, जिनेंद्रदेव की भक्ति से लाखों भावों में संचित पाप कर्म को नष्ट कर देता है, तथा दुःख रूपी सागर को पारकर शीघ्र ही अर्हंत पद को प्राप्त करता है ॥165॥

ग्रंथकर्ता श्री रविषेणाचार्य कहते हैं कि बड़ी सावधानी से जिसका समाधान बैठाया गया है, जो दिव्य है, पवित्र अक्षरों से संपन्न है, नाना प्रकार के हजारों जन्मों में संचित अत्यधिक क्लेशों के समूह को नष्ट करने वाला है, विविध प्रकार के आख्यानों-अवांतर कथाओं से व्याप्त है, सत्पुरुषों की चेष्टाओं का वर्णन करने वाला है, और भव्य जीवरूपी कमलों के परम हर्ष को करने वाला है ऐसा यह पद्मचरित मैंने भक्ति वश ही निरूपित किया है ॥166॥ श्री पद्ममुनि का जो चरित मूल में सब संसार से नमस्कृत श्रीवर्धमान स्वामी के द्वारा कहा गया, फिर इंद्रभूति गणधर के द्वारा सुधों और जंबू स्वामी के लिए कहा गया तथा उनके बाद उनके शिष्यों के शिष्य श्री उत्तरवाग्मी **अर्थ**ात् श्रेष्ठ वक्ता श्री कीर्तिधर मुनि के द्वारा प्रकट हुआ तथा जो कल्याण और साधुसमाधि की वृद्धि करने वाला है, ऐसा यह पदमचरित सर्वोत्तम माल स्वरूप ॥167॥ यह पदमचरित, समस्त शास्त्रों के ज्ञाता उत्तम मुनियों के मन की सोपान परंपरा के समान नाना पाकी परंपरा से युक्त है, सुभाषितों से भरपूर है. सारपूर्ण है तथा अत्यंत आश्चर्यकारी है। इंद्र गुरु के शिष्य श्री दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद□यति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ ॥168॥ जो सम्यग्दर्शन की शुद्धता के कारणों से श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है, विस्तृत है, अत्यंत स्पष्ट है, उत्कृष्ट है, निर्मल है, श्री संपन्न है, रत्नत्रय रूप बोधि का दायक है, तथा अद्भुत पराक्रमी पुण्य स्वरूप श्री राम के माहात्म्य का उत्तम कीर्तन करने वाला है ऐसा यह पुराण आत्मोपकार के इच्छुक विद्वज्जनों के द्वारा निरंतर श्रवण करने के योग्य है ॥169॥

बलभद्र नारायण और इनके शत्रु रावण का यह चरित्र समस्त संसार में प्रसिद्ध है। इसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के चरित्रों का वर्णन है। इनमें बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धि द्वारा विचार कर अच्छे अंश को ग्रहण करते हैं और बुरे अंश को छोड़ देते हैं ॥170॥ जो अच्छा चरित्र है वह गुणों को बढ़ाने वाला है और जो बुरा चरित्र है वह कष्टों की वृद्धि करने वाला है, इनमें से जिस मनुष्य को जिस विषय की इच्छा हो वह उसी के साथ मित्रता को करता है **अर्थ**ात गुणों को चाहने वाला अच्छे चरित्र से मित्रता बढ़ाता है और कष्ट चाहने वाला बुरे चरित्र से मित्रता करता है। इससे इतना सिद्ध है कि बुरा चरित्र कभी शांति के लिए नहीं होता ॥171। जब कि परस्त्री को आशा रखने वाला विद्याधरों का राजा-रावण कष्ट को प्राप्त होता हुआ अंत में मरण को प्राप्त हुआ तब साक्षात् रति-क्रीड़ा करने वाले अन्य काम रोगी की तो कथा ही क्या है? ॥172॥ हजारों उत्तमोत्तम स्त्रियाँ जिसकी निरंतर सेवा करती थीं ऐसा रावण भी जब अतृप्त बुद्धि होता हुआ मरण को प्राप्त हुआ तब अन्य मनुष्य तृप्ति को प्राप्त होगा यह कहना मोह ही है ॥173॥ अपनी स्त्री के हितकारी सुख को छोड़कर जो पापी पर-स्त्रियों में प्रेम करता है वह सूखी लकड़ी के समान दुःखरूपी बड़े सागर में नियम से प्रवेश करता है ॥174॥ अहो भव्य जनो ! तुम लोग जिन शासन की भक्तिरूपी रंग में रंगकर तथा शक्ति के अनुसार सुदृढ़ चारित्र को ग्रहणकर शीघ्र ही उस स्थान को जाओ जहाँ कि बलदेव आदि महापुरुष गये हैं ॥175॥ पुण्य के फल से यह जीव उच्च पद तथा उत्तम संपत्तियों का भंडार प्राप्त करता है और पाप के फल से कुगति संबंधी दुःख पाता है यह स्वभाव है ॥176॥ अत्यधिक क्रोध करना, परपीड़ा में प्रीति रखना, और रूक्ष वचन बोलना यह प्रथम कुकृत अर्थात् पाप है और विनय, श्रुत, शील, दया सहित वचन, अमात्सर्य और क्षमा ये सब सुकृत अर्थात् पुण्य है ॥177॥ अहो ! मनुष्यों के लिए धन आरोग्य तथा सुखादिक कोई नहीं देता है। यदि यह कहा जाय कि देव देते हैं तो वे स्वयं अधिक संख्या में दुःखी क्यों हैं ? ॥178॥ बहुत कहने से क्या ? हे विद्वज्जनो ! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्म पद को तथा नाना प्रकार के विपाक से परिपूर्ण कर्मों के

स्वरस को अच्छी तरह जानकर सदा उसी की प्राप्ति के उपायों में रमण करो ॥179॥ हे विद्वज्जनो ! हमने इस ग्रंथ में परमार्थ की प्राप्ति के उपाय कहे हैं सो उन्हें शक्तिपूर्वक काम में लाओ जिससे संसाररूपी सागर से पार हो सको ॥180। इस प्रकार यह शास्त्र जीवों के लिए विशुद्धि प्रदान करने में समर्थ, सब ओर से अत्यंत रमणीय, और समस्त विश्व में सूर्य के प्रकाश के समान सब वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला है ॥181॥ जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेंद्र के मोक्ष जाने के बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह माह बीत जाने पर श्री पद्ममुनि का यह चरित्र लिखा गया है ॥182॥ मेरी इच्छा है कि समस्त श्रुत देवता जिन शासन देव, निखिल विश्व को जिन-भक्ति में तत्पर करते हुए यहाँ अपना सांनिध्य प्रदान करें ॥183॥ वे सब प्रकार के आदर से युक्त, लोक स्नेही भव्य देव समस्त वस्तुओं के विषय में अर्थात् सब पदार्थों के निरूपण के समय अपने वचनों से आगम की रक्षा करें ॥184॥ इस ग्रंथ में व्यंजनांत अथवा स्वरांत जो कुछ भी कहा गया है वही अर्थ का वाचक शब्द है, और शब्दों का समूह ही वाक्य है, यह निश्चित है ॥185॥ लक्षण, अलंकार, अभिधेय, लक्ष्य और व्यंगय के भेद से तीन प्रकार का वाच्य, प्रमाण, छंद तथा आगम इन सबका यहाँ अवसर के अनुसार वर्णन हुआ है सो शुद्ध हृदय से उन्हें जानना चाहिए ॥186॥ यह पद्मचरित ग्रंथ अनुष्टुप श्लोकों की अपेक्षा अठारह हजार तेईस श्लोक प्रमाण कहा गया है ॥
इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य प्रणीत पद्मपुराणमें बलदेव की सिद्धि-प्राप्ति का वर्णन करने वाला एक सौ तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥123॥